

भारतीय संस्कृति :
एक समाजशास्त्रीय समीक्षा

भारतीय संस्कृति : एक समाजशास्त्रीय समीक्षा

लेखक
गौरीशंकर शंभू
अध्यक्ष
समाजशास्त्र विभाग,
डी०ए०वी० कालेज
देहरादून

साहित्य सदन, देहरादून ।

प्रकाशक :
साहित्य सदन
देहरादून

प्रथम संस्करण
१९६५
मूल्य १७ ५०

मुद्रक
हीरा चार्ज प्रेस
देहली-६

विषयानुक्रम

संस्कृति	संस्कृति	६
हिंदुत्व	सामाजिक ऐतिहासिक आधार	६५
धर्म	हिन्दुत्व	
पुराणाय		६२
संस्कार तथा आश्रम		११५
वर्ण-व्यवस्था		१३६
कर्म तथा कर्मसिद्धांत		१६८
राजधर्म		२१३
उत्तमपुरुष		२६५
		२८०
भारत में इस्लाम	भारतीय संस्कृति में इस्लाम	
हिंदू सम्प्रदाय में इस्लामी संस्कृतिकरण		२६८
इस्लामी सघात से हिंदू संस्कृतिकरण		३१८
सामाजिककरण, समन्वय, पुनर्दत्तन, सुधार और सपर्य		३४६
		३७०
भारतीय संस्कृति और योरोपीय सभ्यता		
भारत और योरोपीय सभ्यता		४००
सामाजिक सांस्कृतिक रूपांतरण		४४४
विवाह, परिवार और जाति		५४०
भारत में आदिवासी संस्कृति		
आदिवासी समाज संस्कृति-संस्कृति		६८४
आदिवासीत्व, हिंदुत्व और योरोपीय सभ्यता		७७४

प्राक्थन

भारतीय सस्कृति की एक समाजशास्त्रीय समीक्षा के रूप में प्रस्तुत इस अध्ययन की नवीनता और मौलिकता इसके विषय-वस्तु में ही है, इसके प्रतिपादना में है। इसका एक आधार इतिहास है दूसरा मानवशास्त्र और तीसरा समाजशास्त्र। इसमें प्रतिपादित सस्कृति की व्याख्या मानवशास्त्रीय है किन्तु, उसकी समाजशास्त्रीय व्याख्या को इतिहास का नहीं, सामाजिक इतिहास का आधार प्रदान किया गया है। यहाँ भारतीय सामाजिक मर्यादा और परम्पराओं तथा उनके वैचारिक आधारों का उन्विनासी विस्तारण प्रस्तुत किया गया है। भारत के इतिहासकारों ने भारत को एक सामूहिक सातत्य मानते हुए भी, भारत के सांस्कृतिक इतिहास को, माधवारण, हिन्दू, मुस्लिम, और आधुनिक काल में बाँटा है। विनयकुमार सरकार, के० एम० पानिकर और रामधारी सिंह दिनकर जैसे अध्ययताओं ने इस विभाजन के औचित्य का असंगत माना है क्योंकि इनके अनुसार, जिस दशक इतिहास में, प्रारम्भ से वर्तमान तक, एक ही भाषा प्रवाहित हो रही है, उसके इतिहास को हिन्दू, मुस्लिम और आधुनिक काल में बाँटना त्वसगत नहीं लगता। सार मुस्लिम-काल और वर्तमान काल में एक और, हिन्दुत्व और इस्लाम का परस्पर सस्कृतिकरण हुआ है और दूसरी ओर, दोनों का परम्परावादी नमानान्तर पुनरन्वयन हुआ है।

प्रस्तुत अध्ययन में एक और हिन्दुत्व के सामाजिक-ऐतिहासिक अभ्युदय और उसके सामाजिक-वैचारिक आधारों (धर्म पुराण, आश्रम संस्कार वर्ण व्रम, और भारतीय सस्कृति में योरोपीय सभ्यता नामक दीपिका व अन्तर्गत मानवशास्त्रियों की एबल्चरेण (सस्कृतिग्रण) की धारणा व आधार पर, हिन्दुत्व और इस्लाम पर एक दूसरे व तथा दोनों पर योरोपीय सभ्यता के प्रभावों से उत्पन्न परिवर्तनों का विस्तारण किया गया है। भारतीय सस्कृति व इतिहासकारों ने 'आन्विवामी' कह जाने वाले भारतीयों व सांस्कृतिक यागदानों की उपमा की है किन्तु उनके लिए इतिहास-कार उत्तरदायी नहीं है। प्राचीन साहित्य में न तो हिन्दू और आन्विवामी का अन्तर मिलता है और न जाति तथा गणजाति का। हिन्दू और आन्विवामी में अन्तर अश्रेणी राज के काल में और योरोप की मानवशास्त्रीय विचारधारा व अन्तर्गत किया गया है। किन्तु यह अन्तर आज धना पर कर गया है कि भारतीय सस्कृति के विनयण में इसकी शास्त्राय व्याख्या की उपमा नहीं की जा सकती है। अतः इन अध्ययन में,

प्राकथन

भारतीय सस्कृति की एक समाजशास्त्रीय समीक्षा के रूप में प्रस्तुत इस अध्ययन की नवीनता और मौलिकता इसके विषय-वस्तु में न होकर, इसके प्रतिपादन में है। हमका एक आधार इतिहास है, दूसरा मानवशास्त्र और तीसरा समाजशास्त्र। इसमें प्रतिपादित सस्कृति की व्याख्या मानवशास्त्रीय है किन्तु, उसकी समाजशास्त्रीय व्याख्या को इतिहास का नहीं, सामाजिक इतिहास का आधार प्रदान किया गया है। यहाँ भारतीय सामाजिक संस्थाओं और परम्पराओं तथा उनके वैचारिक आधारों का उद्विकासी विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। भारत के इतिहासकारों ने भारत को एक सांस्कृतिक सातत्य मानते हुए भी भारत के सांस्कृतिक इतिहास को, साधारणतः, हिन्दू, मुस्लिम, और आधुनिक कालों में बाटा है। विनयकुमार सरकार, के० एम० पानिकर और रामधारी सिंह दिनकर जैसे अध्येताओं ने इस विभाजन के औचित्य का असंगत पाना है क्योंकि, इनके अनुसार, जिस देश के इतिहास में, प्रारम्भ से वर्तमान तक, एक ही गाथा प्रवाहित हो रही है, उसके इतिहास को हिन्दू, मुस्लिम और आधुनिक कालों में बाटना तकसगत नहीं लगता। सारे मुस्लिम-काल और वतमान काल में एक आर, हिन्दुत्व और इस्लाम का परस्पर सस्कृतिकरण हुआ है और दूसरी आर, दोनों का परम्परावादी नमानान्तर पुनरन्वयन हुआ है।

प्रस्तुत अध्ययन में एक आर हिन्दुत्व के सामाजिक-ऐतिहासिक अग्र्युदय और उनके सामाजिक-वैचारिक आधारों (धर्म, पुरपाथ, आश्रम संस्कार, वर्ण क्रम, राजधर्म और उत्तमपुरुष) का वर्णन है तो दूसरी ओर भारतीय सस्कृति में दम्नाम और 'भारतीय सस्कृति में योरोपीय मन्व्यता नामक शीपका के अन्तगत मानवशास्त्रियों की एकलचरेण (सस्कृतिकरण) की धारणा के आधार पर, हिन्दुत्व और इस्लाम पर एक दूसरे के तथा दोनों पर योरोपीय मन्व्यता के प्रभावा से उत्पन्न परिवर्तना का विश्लेषण किया गया है। भारतीय सस्कृति के इतिहासकारों ने 'आदिवासी' कह जाने वाले भारतीयों के सांस्कृतिक योगदानों की उपेक्षा की है किन्तु उसके लिए इतिहासकार उत्तरदायी नहीं हैं। प्राचीन साहित्य में न तो हिन्दू और आदिवासियों का अन्तर भिन्नता है और न जाति तथा गणजाति का। हिन्दू और आदिवासियों में अन्तर अग्रैजी राज के काल में और योरोप की मानवशास्त्रीय विचारधारा के अन्तर्गत किया गया है। किन्तु यह अन्तर आज वतना धर कर गया है कि भारतीय सस्कृति के विश्लेषण में उनकी शास्त्रीय व्याख्या की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। अतः इस अध्ययन में,

सस्कृति

सस्कृति समाजशास्त्रीय व्याख्या

सस्कृति का समाजशास्त्रीय अथ जनसाधारण में प्रचलित अथ से भिन्न है। जनसाधारण में प्रचलित, सामान्य अथ में, सस्कृति प्रतीक है मानव-व्यवहार के उन उपकरणों की जो मानव को सम्यक बनाए। पर, सम्यक क्या है? इस प्रश्न का न तो एक उत्तर हुआ है और न हो सकता है। 'सम्यक' के सदर्भ में सस्कृति की धारणा सभी यथायत्न प्रतीत होती है जब 'सम्यक' के साथ साथ 'असम्यक' की भी धारणा बनाई जाए। पर 'असम्यक' की परिभाषा करना उतना ही कठिन है जितना कि 'सम्यक' की। सस्कृति की धारणा का सम्बन्ध है मानव-व्यवहार और उसके उपकरणों से और आज यह स्पष्ट हो चुका है कि मानव व्यवहार, मानव की कुछ आधारभूत दैहिक, शारीरिक और मानसिक आवश्यकताओं से उत्पन्न होता है—व आवश्यकताओं जो मनुष्य का आगिक उद्विकास की प्रक्रिया की विरासत के रूप में मिली हैं। ऐसी दशा में यह कहना कठिन है कि कौन सा मानव-व्यवहार 'सम्यक' का प्रतीक है और कौनसा 'असम्यक' का। मानव व्यवहार की भिन्नताओं दस-काल के प्रभावों का

जहाँ आदिवासी-समाज सस्कृति-सकुन का विवरण प्रस्तुत किया गया है वहाँ आदिवासीत्व, हिन्दुत्व और यूरोपीय सभ्यता के पारस्परिक सघाता और परिणामों का भी विश्लेषण है ।

इतिहास और मानवशास्त्र पर आधारित होते हुए भी, प्रस्तुत अध्ययन न तो ऐतिहासिक है और न मानवशास्त्रीय । प्रस्तुत अध्ययन समाजशास्त्रीय है लेकिन उस श्रेणियों में जिसमें डा० के०एम० कपाडिया, डा० रामनारायण सक्सेना, श्री अवधकिशोर सरन और ड्यूमा तथा पोकाक जैसे भारतीय तथा विदेशी समाजशास्त्रियों और मानवशास्त्रियों ने भारतीय समाजशास्त्र की विषय-वस्तु का प्रतिपादन किया है । यहाँ भारतीय समाजशास्त्र में एक नव अर्कुरित मत को एक विस्तृत अध्ययन का रूप देने का प्रयास किया गया है और इसका आधार है भारतीय-सस्कृति के गत्यात्मक उद्विकास की सामाजिक ऐतिहासिक व्याख्या । यह अध्ययन एक ऐसा स्वतंत्र अध्ययन है जिसका उपयोग एक स्वतंत्र पुस्तक के रूप में भी हो सकता है और पाठ्य पुस्तक के रूप में भी । समाजशास्त्र मानवशास्त्र और इतिहास में, एक पाठ्य पुस्तक के रूप में इसका उपयोग वहाँ हो सकता है जहाँ विद्यार्थियों के अध्ययन का विषय भारतीय सस्कृति और समाज का गत्यात्मक उद्विकाम है ।

इस पुस्तक की रचना कई मायनों में आधारित है पहली हिन्दी में आज ऐसी पुस्तकों की आवश्यकता है जो किसी विश्वविद्यालय या कई विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों पर ही न आधारित हो बरन जिनमें सम्बंधित विषय का स्वतंत्र तथा विस्तृत प्रतिपादन हो क्योंकि किसी भी विषय के पाठ्यक्रम का उस विषय के उत्तरांतर विकास का अनुसरण करना है न कि विषय को पाठ्यक्रम का । दूसरे भारतीय समाजशास्त्र मानवशास्त्र और इतिहास के अध्ययनों में जो विकास हो रहा है और जिनकी अभिव्यक्ति अंग्रेजी में हो रही है उसे हिन्दी में लाना है क्योंकि आज अधिकाधिक विद्यार्थियों के पठनपाठन का माध्यम हिन्दी हो गई है । तीसरी सामाजिक विज्ञानों को हिन्दी में आज इस ढंग से व्यक्त करने की आवश्यकता है कि वे विश्वविद्यालयों के विभागों की चहारदीवारी से निबलकर पढ़े लिखे जनसाधारण तक भी पहुँच सकें । इन मायनों में निहित उद्देश्यों की पूर्ति इस अध्ययन से कहा तक हाता है, इसका निर्णय पाठकों और सहृदय समीक्षकों के पास है, लेखक के पास नहीं । लेखक उन सभी विद्वानों का आभारी है जिनके अध्ययनों और कृपियों से इस अध्ययन को प्रस्तुत करने में सहायता मिली है ।

समाजशास्त्र विभाग,
डी० ए० बो० बालेज,
देहरादून
फरवरी १३ १९६५

— गौरीशंकर भट्ट

संस्कृति

संस्कृति समाजशास्त्रीय व्याख्या

संस्कृति का समाजशास्त्रीय अथ जनसाधारण में प्रचलित अर्थ से भिन्न है। जनसाधारण में प्रचलित, सामान्य अर्थ में, संस्कृति प्रतीक है मानव-व्यवहार के उन उपकरणों की जो मानव को सम्यक् बनायें। पर, सम्यक् क्या है? इस प्रश्न का न तो एक उत्तर हुआ है और न हो सकता है। 'सम्यक्' के सदर्भ में संस्कृति की धारणा तभी यथाथ प्रतीत होती है जब 'सम्यक्' के साथ साथ 'असम्यक्' की भी धारणा बनाई जाय। पर 'असम्यक्' की परिभाषा करना उतना ही कठिन है जितना कि 'सम्यक्' की। संस्कृति की धारणा का सम्बन्ध है मानव-व्यवहार और उसके उपकरणों से और आज यह स्पष्ट हो चुका है कि मानव व्यवहार, मानव की कुछ आधारभूत दैहिक शरीरी और मानसिक आवश्यकताओं से उत्पन्न होता है—व आवश्यकताएँ जो मनुष्य का सामाजिक उद्विकास की प्रक्रिया की विरासत के रूप में मिली हैं। एसी दृष्टि में यह कहना कठिन है कि कौन सा मानव-व्यवहार 'सम्यक्' का प्रतीक है और कौनसा 'असम्यक्' का। मानव व्यवहार की भिन्नताएँ दश-काल के प्रभावा का

परिणाम हैं। सभी प्रकार के मानव व्यवहार के उदगम छात जीर उनके उद्देश्य समान है। त्रिवाह जीर परिवार के जा उद्देश्य जीर उदगम म्नात योराप म हैं वही भारत मे भी। उनम जो भि नतायें हैं वे देश काल के परिसीमन का परिणाम ह। ऐसी दगा म सस्कृति क मदभ म, 'सम्य तथा 'असम्य और उच्च' तथा 'निम्न की मायतायें स्वत निमल हा जाती है। न कोद सस्कृति उच्च है न निम्न, न वाँ सरस्कृति सम्य है और न कोइ असम्य।

समाजशास्त्रीय म दभ म सस्कृति का अथ सुमस्कृत भी नहीं है क्वाकि जिस प्रकार यह कहना कठिन है कि 'सम्य' क्या है, उसी प्रकार यह भी निर्धारित करना कठिन है कि सुसस्कृत क्या है। सभी प्राणियों मे सस्कृति निर्माण की क्षमता केवल मनुष्य म है और यही क्षमता मानव को मानवेतर प्राणियों मे भिन करती है¹। अत, मानव व्यवहार सुमस्कृत है और सुमस्कृत हाने के नाते ही मानव मानवेतर प्राणिया से भिन है। सुमस्कृत शब्द का यदि प्रयोग किया भी जा सकता है ता केवल मानवमात्र के व्यवहार के लिए क्योकि अन्य प्राणिया की अपेक्षा केवल मानव ही सस्कृतिवान अथवा सुमस्कृत है। समान आधारभूत दहिक तथा मानसिक क्षमताभा के कारण ही सभी स्थान और कालो म मनुष्य न सस्कृति का निर्माण किया है और देश काल की भिन्नताओ ने इम ससार के सास्कृतिक वैचिन्य को जन्म दिया है—वह वैचिन्य जिसके आधार जीर पृष्ठभूमि समान हैं और जिसकी अनकता म एकता जीर एकता मे अनेकता समायी हुई है। इमी कारण समाजशास्त्र मे यदि एक आर सामाय सस्कृति की धारणा है ता, दूसरी ओर, सस्कृति विशय की। देश काल की विभेप सीमाभा और सामाजिक सम्बन्धों के जाल म बधने पर ही मानव मस्कृति मस्कृति विशेष का रूप ग्रहण करती है। भारतीय, अमरीकी, चीनी, जापानी और योरापीय मस्कृतिया विगप सस्कृतिया है और मानव सस्कृति की अनकता की परिचायक हैं। गुद्ध सस्कृति की कपना उसी प्रकार स आकाश कुसुम की कल्पना के समान है जिस प्रकार गुद्ध प्राति की कपना। देश काँ की सीमाओ म बधी हुयी विशय सस्कृतिया के पारस्परिक आदान प्रदान और समान आधार म ही, मानव को

- 1 इसका तात्पय यह नहीं कि मानव की सस्कृति निर्माण की क्षमता किसी मूलप्रवृत्ति पर आधारित है। मानव उसी प्रकार सस्कृति या निर्माण नहीं करता है जिस प्रकार मक्ड़ी जाले या। सस्कृति क कारण अगत दहिक अगत मानसिक और अगत एतिहासिक ह। समाजशास्त्री आधारभूत क्षमता और मूलप्रवृत्ति को अलग-अलग मानते ह। मानव व्यवहार इतना विचरण गोल है और उस पर सस्कृति तथा सीतने का इतना प्रभाव है कि समाजशास्त्री यह मानते ह कि मूलप्रवृत्ति का सिद्धांत मानवतर प्राणिया के व्यवहार को तो स्पष्ट कर सकता है पर मानव का नहीं।

मस्वृति का स्वर प्रदान करने वाली मानव मस्वृति ममाधी दृषी है। मस्वृति उत्तरीय गान्धर्व और चिरन्तन है जितना कि स्वयं मनुष्य।

भारतीय मस्वृति साहित्य और अथ दत्ता के दत्तनाम प्रतिपादित मस्वृति की धारणा में सुमस्वृति का भाव ही प्रमुख है। कथ्यमान कि हिन्दू मस्वृति एक के लक्ष्मीमते पण्डित मस्वृति का दृष्टि की व्याख्या करते हुए सम्प्रति का 'भूषणभूत सम्यक्' कि या चेष्टा कहा गया है। मानव सम्यक्-असम्यक् चट्टायें करने मममय है, इसी कारण मानव मस्वृति निर्माण की क्षमता भी है। भूषणभूत सम्यक् चट्टायें मानव व्यवहार के प्रेरक कारक हैं जिनमें 'मनुष्य अपा जीवन के समस्त क्षेत्रों में उत्तरीयता हुआ मुख शक्ति प्राप्त कर या जो 'मनुष्य की आधिभौतिक, आधिदिव्य एवं आध्यात्मिक उत्तरीय के अनुकूल ही,' 'सक्षम कहा जा सकता है कि मनुष्य के लौकिक-आरलौकिक सवाम्युदय के अनुकूल आचार विचार ही मस्वृति है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि मानव-व्यवहार और उसका प्रत्यक्ष मस्वृति से इस प्रकार परिचित कि मस्वृति ही माध्यम से मानव के लौकिक-आरलौकिक स्वत्व और अस्तित्व का अथपण अभिव्यक्ति और मापता मिलती है और इसी माध्यम से उसके मुख शक्ति की भी परिमाणा होती है। यह भी निर्विवाद है कि मस्वृति के द्वारा निर्धारित सस्कारों के माध्यम से ही मानव का सामाजीकरण और मानवीकरण होता है। फिर भी, हम प्रकार की धारणाओं से यह सवा उठती है कि आधिर लौकिक आरलौकिक सवाम्युद के अनुकूल आचार विचार उत्पन्न करने वाली चट्टायें क्या है? यह सवा उत्तरीय ही महन और समाधान से पर है जितनी कि ईश्वर के अस्तित्व सम्बन्धी सवा। 'भूषणभूत सम्यक् चट्टायों का निराक्ष निधारण वस्तुतः प्रसम्भव है क्योंकि जा कुछ भारत के लिये 'सम्यक् चट्टायें है वह योराप के लिए असम्यक् हा सक्तो है। अतः, ऐसी परिभाषायें और धारणाएँ मानव-व्यवहार के विक्षेपण के उम स्तर पर केवार सिद्ध होती हैं जहा धारणाओं का मानव-व्यवहार के निरोधण और तज्जनित अनुभूति पर आधारित किया जाना है और सारा विक्षेपण सापथ तर्कों पर आधारित रहता है। मानव व्यवहार सम्बन्धी सवमाय और सावभौमिक निरप्या चट्टायों का निधारण सामाजिक गान्धर्व की वह समस्या है जिसका निराकरण सम्भवतः इन सान्धर्व के पाम नहा है और न होगा क्योंकि इनकी विषय वस्तु—मात्र और उसकी व्यवहारिक समानताया तथा असमानताया की वास्तविकता—निरपण न होकर मापता है।

सम्प्रति का परिभाषा के घरे म वाषा का सवप्रथम प्रयत्न श्मन्त के मानसशास्त्री ई० बी० टायलर (E. B. Tylor) ने म् जाटारह सो चौहतर परिभाषायें ३० म किया था। उनके अनुसार "सम्प्रति अथवा सम्यक्ता वह जटिल इवाह है जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, गीत, विधि म्दि और किसी भी उम क्षमता तथा अन्गाम (आदत) का समावेश रहता है जो मनुष्य,

समाज का सदस्य होने के नाते, ग्रहण करता है'। सम्बन्धित और सम्बन्धिता को टाइलर ने एक ही ढंग में रखवा है और आज भी अधिकतर मानवशास्त्री दाना को एक ही प्रमेय मानते हैं जबकि समाजशास्त्री संस्कृति और सम्बन्धिता को अलग अलग दो विशिष्ट प्रमेय मानते हैं। टाइलर ने समाज और संस्कृति का दो अलग अलग प्रमेय माना है। टाइलर की इस भावना को आज सद्भावित रूप से स्वीकार कर लिया गया है। इस भावना के अनुसार संस्कृति से तात्पर्य है मानव व्यवहार सम्बन्धी उस प्रमेय से जो किसी समूह विशेष या मानवजाति के जीवनयापन का आधार हो— वह आधार जो परम्परात्मक तथा रुढ़िगत होता है जो पीढ़ी दर पीढ़ी चला करता है जिसमें इतिहास समाया रहता है तथा जिसमें भूत लीन रहता है, वर्तमान अपने यथाय रूप में विद्यमान रहता है और भविष्य का आरोहण अकुरित हुआ करता है। समाज से तात्पर्य लिया जाता है सामाजिक सम्बन्धों के उस जाल से जो किसी विशिष्ट मानव समूह या मानवजाति में पाया जाता है। समाज संस्कृति में समाया रहता है और संस्कृति समाज में। समाज संस्कृति के स्वतन्त्र अस्तित्व और कालगत प्रसरण का मुख्य माध्यम है और संस्कृति के ही कारण समाज को विशिष्टता मिलती है क्योंकि सामाजिक सम्बन्ध, संस्कृति द्वारा ही परिभाषित होने हैं। इसी कारण, लावा (Lowie) और लिण्टन (Linton) ने संस्कृति को सामाजिक आनुवंशिकता या विरासत (Social Heredity) कहा है। इसमें कोई संदेह नहीं कि सर्वप्रथम संस्कृति मानव व्यवहार की वह विरासत है जो मानव को समाज से समाज का सदस्य होने के नाते प्राप्त होती है—वह विरासत जिसे मानव अस्वीकार भी नहीं कर सकता।

मानवशास्त्रियों ने एक अन्य सम्प्रदाय के अनुसार, सामाजिक विरासत की वास्तविकता मुख्यतया मानसिक (Psychic) है क्योंकि यह वास्तविकता वस्तुतः व्यक्ति के मस्तिष्क में समायी रहती है और मानव-व्यवहार में प्रतीका के रूप में अवतरित होती है। मानव की विचार प्रक्रियाएँ, आदर्श और अर्थों संस्कृति का एक मुख्य आधार हैं। सम्भवतः इसी तथ्य का ध्यान में रखते हुए लेश्ले व्हाइट (Leslie White) ने संस्कृति को क्रिया-ज्ञान (Acts), वस्तुओं (Objects) और विचारों (Ideas) तथा भावनाओं (Sentiments) का वह जटिल संगठन माना है जिसका अस्तित्व प्रतीका में निहित रहता है और यह प्रतिपादित करने का प्रयास किया है कि संस्कृति एक प्रकार की प्रतीकात्मक (Symbolic) सतत (मिलतिलवार Continuous) संचयी (Cumulative) और प्रगतिशील (Progressive) प्रक्रिया है। लेश्ले व्हाइट (Leslie White) की परिभाषा में एक बार संस्कृति का मानसिक पक्ष पर जोर है ता दूसरी बार उसकी प्रतीकात्मक वास्तविकता और ऐतिहासिकता पर।

संस्कृति के मानसिक और ऐतिहासिक पक्षों को आधार बनाते हुए क्लाइड क्लुक्होर्न (Clyde Kluckhohn) ने यह प्रतिपादित किया है कि संस्कृति की आत्मा

वस्तुतः समायी रहती है उन सभी आकल्पनाओं (Designs) में जो मानव व्यवहार का नेतृत्व करती हैं, जिनका जन्म ऐतिहासिक प्रक्रियाओं में होता है और जो स्पष्ट भी होनी हैं और अस्पष्ट भी, युक्तियुक्त भी हैं और जायुक्तिक भी। मानव-व्यवहार का नेतृत्व करने वाली आकल्पनाएँ प्रणाली सबद्ध होती हैं और उनकी उत्पत्ति अशत पर्यावरण, अशत ऐतिहासिक प्रक्रिया और अशत मानव की आवाह-भूत दृष्टि तथा मानसिक आवश्यकताओं के घात प्रतिघात के कारण होती है। जीवन-यापन का नेतृत्व करने वाली आकल्पनाएँ, एक ओर, मानवमात्र में पायी जाती हैं और दूसरी ओर, देश-काल की सीमाओं से घिरे विशिष्ट मानव समूह (या समूहों) में जिसे (जिह) समाज (अथवा समाजों) की सजा दी जाती है।

क्रोबोर (Kroeber) द्वारा प्रतिपादित धारणा में सस्कृति के अखण्ड, सचयी प्रक्रिया पक्ष पर ही जोर दिया गया है। क्रोबोर के अनुसार, सस्कृति मानव-व्यवहार का अपने में समेटे हुए एक सतति (Continuum) है, जिसकी व्यक्ति (Individual) और जीव (Organism) से परे एक अलग स्वतन्त्र सत्ता है। सस्कृति वस्तुतः एक अमर प्रवाह है—वह प्रवाह जिसकी सीमाएँ आदि और भावी इतिहास में निहित हैं, जिसकी गत्यात्मकता से दृष्टि समष्टि, परिवर्तन, स्थायित्व तथा ऐतिहासिक घटनाओं का निर्माण होता है और जो व्यक्तियों तथा उनके मध्य से अथवा बाहर से आयी हुयी लहरी (तत्वों) को आत्मसात करता हुआ आगे बढ़ता रहता है। मानव सस्कृति अमर है। उसने अग (सस्कृति विशेष) विशृंखलित हो सकते हैं पर लुप्त नहीं। हडप्पा तथा मोहनजोदड़ों और मेसापोटामिया तथा मिश्र की प्राचीन सस्कृतियाँ विशृंखलित हो गयी हैं पर मानव सस्कृति में उनके यागदान अमर हैं क्योंकि आखिरकार मानव सस्कृति मनुष्य की सामाजिक विरासत है।

अपने वास्तविक रूप में सस्कृति वस्तुतः वह उपकरण है जिसके द्वारा मनुष्य प्रकृति के साथ अपना सामञ्जस्य और अनुकूलन स्थापित करता रहा है। प्राकृतिक पर्यावरण के साथ चलने वाले सहयोग और सघष में ही मानव सस्कृति का निर्माण करता है और इसी कारण, सस्कृति पर प्राकृतिक पर्यावरण की छाप रहती है। मनुष्य पर्यावरण का न तो दास है और न स्वामी ही। वह पर्यावरण को अपने अनुकूल बनाने के लिए निरन्तर प्रयास करता रहता है। इसी दृष्टिकोण से, यह कहा गया है कि सस्कृति पर्यावरण का वह भाग है जिसका निर्माण स्वयं मनुष्य ने किया है। मालिनोव्स्की (Malinowski) के उपयानितावादी दृष्टिकोण से सस्कृति वह यन्त्र (Apparatus) है जिसके द्वारा मानव अपनी शारीरिक आवश्यकताओं (Organic Needs) को पूरा करता है। भोजन-प्यास, सुरक्षण और काम-तपस्वि व प्राथमिक आवश्यकताएँ हैं जिनकी पूर्ति और सतुष्टि के प्रयास में द्वितीयक आवश्यकताओं का जन्म होता है। ये आवश्यकताएँ सावभौमिक हैं, अतएव, सस्कृति भी सावभौमिक है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के प्रयास में ही सस्थाओं का

जन्म हाता है, जिनका द्वारा मानव व्यवहार के आन्तरिक मापदंड निर्धारित होते हैं। जा, इस दृष्टिकोण से यह कहा जा सकता है कि प्राथमिक तथा द्वितीयक आवश्यकताओं की लुप्ति के प्रयास में निर्मित संस्थाओं की पारस्परिक सम्बन्ध प्रणाली ही मस्त्रुति है¹।

यह दृष्टिकोण उतना उपयोगितावादी है कि विलक्षण के स्तर पर इसकी माहेदयता नष्ट होना का डर रहता है क्योंकि संस्कृति का प्रत्येक तत्व और उपकरण उतना उपयोगी नहीं है जितना कि इस मत में मान लिया गया है। संस्कृति तब रूप धारित है और अतः पर भी। बहुत से ऐसे तत्व हैं जिनकी उपयोगिता ढूँढ निकालना कठिन है। दूसरी ओर, इस मत से यह भी स्पष्ट होता है कि संस्थाओं के सम्बन्ध जाल का सुगठित रूप और विशिष्टता कहाँ से मिलती है और जा कुछ भी विशिष्टता एक बार मिट जाती है वह परिवर्तन प्रक्रिया में किस प्रकार स्थायी रहती है? इन प्रश्नों का सन्तुष्ट उत्तर तभी मिल सकता है जब सैद्धांतिक रूप से यह मान लिया जाय कि संस्कृति एक ऐतिहासिक प्रक्रिया है—एक प्रक्रिया जो मास्त्रुतिक आदर्शों तथा अहंता (Ideals and Values) को जन्म देती है और उनसे प्रभावित भी होती रहती है। यहाँ पर यह समझना भूल जाय कि उपयोगितावादी दृष्टिकोण निराधार है। संस्कृति से आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। अतएव, वह उपयोगी है। हाँ यह अवश्य है कि संस्कृति की वास्तविकता उपयोगिता तब ही सीमित नहीं है। उपयोगी होने के साथ साथ संस्कृति कुछ और भी है।

मस्त्रुति जैसे जटिल प्रयत्न का परिभाषा की सीमा में बाधन का प्रयोग वस्तुतः सागर म सागर भरने के समान है। सम्भवतः इसी कारण आज तक न संस्कृति का कोई परिभाषा पूर्ण उत्तरी है और न सर्वमान्य ही हो सकी पायिव अपायिव है। इसी कारण, संस्कृति के तत्वों और आकार को निर्धारित करने, उसके सामाजिक रूप को समझने का प्रयास किया गया है क्योंकि संस्कृतिविषयक सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि संस्कृति के रूप का विकास और आत्मा क्यों किस प्रकार और क्यों से उत्पन्न, परलंबित पुनित और पालित पायित होते रहते हैं? आगबन (Ouburn) द्वारा यह निर्धारित करने का प्रयास कि संस्कृति की आत्मा उसके पायिव (Material) और अपायिव (Non material) भागों के पारस्परिक गठन में समायी रहती है इसी दिशा में उठा हुआ एक कर्म है। सामान्यतः पर संस्कृति पायिव और अपायिव पहलुओं में बँटी हुयी शिखायी पत्ती है यद्यपि यह विभाजन उतना स्पष्ट नहीं है जितना कि आगबन ने उसे मान लिया है। यह कर्ना सरल है कि पायिव वह है जो भौतिक है, जड़ है, जिसे स्पष्ट दृष्टि और मूषन से जाना जा सकता है और जो कुछ अमूर्त अर्थ और भावनाओं

आदर्शों तथा अर्हता से सम्बन्धित है, वह अपार्थिव है। पर सस्कृति के सर्वांगीण गठन में, पार्थिव में अपार्थिव का पुट रहता है और अपार्थिव में पार्थिव का। सस्कृति-गठन में पार्थिव-अपार्थिव का सम्मिश्रण इतना प्रगाढ़ होता है कि यह कहना कठिन है कि पार्थिव अपार्थिव कहा में प्रारम्भ होते हैं, या कहा उनका अंत होता है या कहा वे एक दूसरे को स्थान देते हैं। यह निर्धारित करना कठिन है कि मंदिर, मस्जिद और चर्च में कितना पार्थिव है और कितना अपार्थिव। सस्कृति के पार्थिव और अपार्थिव पक्षों में स्पष्ट विभाजन रेखा खींचना कठिन है और यही इस मत की सबसे बड़ी कठिनाई और कमजोरी है। पार्थिव अपार्थिव की धारणाओं से न तो सस्कृति के रूप का पता चलता है और न उसकी आरम्भ का क्या कि सस्कृति पार्थिव-अपार्थिव का योग न होकर, उनके प्रगाढ़ सम्मिश्रण से उत्पन्न एक प्रमाह्वुवन प्रणाली है—वह प्रणाली जिसके तत्वों का उनके सद्म से अलग करते ही उनका वास्तविक महत्त्व और स्वत्व अमहीन हो जाता है। इस दृष्टिकोण से सस्कृति का पार्थिव-अपार्थिव पक्षों में धारणात्मक विभाजन अतार्थिक सा लगता है। यह इस धारणा की ही कमजोरी है कि इस पर आधारित सामाजिक परिवर्तन का सांस्कृतिक विलम्बन (Cultural Lag) वाला सिद्धांत तक की कसीटी पर खरा न उतर सके¹। इस विषय में आज केवल इतना ही माय है कि सस्कृति के पार्थिव अपार्थिव पहलू अक्राट्य वास्तविकता है किन्तु उनके अलग अलग आधार पर कोई भी उपयोगी, विश्लेषणात्मक उपकरण (Useful Analytical Tool) गढ़ना कठिन है क्योंकि व्यवहार में पार्थिव अपार्थिव का अन्तर समाप्त हो जाता है।

अमरीकी प्रसरणवादियों (Diffusionists) ने सस्कृति क्षेत्र (Culture Area) की धारणा के द्वारा सस्कृति के रूप और आकार को समझने प्रसरणवादियों का प्रयास किया है। सस्कृति-क्षेत्र की धारणा इंग्लैंड और जर्मनी दृष्टिकोण की प्रसरणवादी धारणाओं की उत्पत्ति है। जर्मन प्रसरणवादियों ने मानव-सस्कृति के विशेष तत्वों का निर्धारित करने, उनके आधार पर, मानव सस्कृति का कुछ विशुद्ध सस्कृति क्षेत्रों में बांटने का प्रयास किया है क्योंकि इनकी मायता के अनुसार इस पृथ्वी पर सबसे प्रथम कुछ विशिष्ट, विशुद्ध और सजातीय सस्कृतियों का जन्म हुआ और बाद में उनके मिश्रण से वर्तमान मानव सस्कृति का। इनके अनुसार, वर्तमान मानव-सस्कृति के आधार हैं कुछ निश्चित तत्व-समूह (Trait Complexes) जो विभिन्न स्थानों में उत्पन्न होकर प्रसरित और मिश्रित हुए हैं। इनके मतानुसार, यदि दो सस्कृति क्षेत्रों के तत्वों में साम्य है तो वह इस बात का प्रमाण है कि समान तत्व वाली सस्कृतियाँ न एक ही तत्व-समूह से समान तत्व ग्रहण किये हैं। इस प्रकार, जर्मनों के प्रसरणवादियों के

अनुसार तत्व सकुला के निर्धारण से ही सस्कृति का समझा जा सकता है। जर्मन भाषा में तत्व सकुल के लिए कुल्तूरक्रीज (Kulturkreis) शब्द का प्रयोग किया गया है। इस कारण, इस मत के अनुयाइया को कुल्तूरक्रीज सम्प्रदाय भी कहा गया है। इसका विपरीत, इंग्लैंड के प्रसरणवादिया नवतमान मानव सस्कृति का एक ही उदगम स्रोत (मिथ) मानकर, वतमान मानव सस्कृति को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। इन दोनों मतों की तीव्र आलोचना इस आधार पर की गयी है कि इनके अनुयाइया ने विभिन्न सस्कृतियों के समान तत्वों को उनके मद्दों से निकाल कर उन्हें अलग-एक स्तर पर रखा। ऐसा करना अशास्त्रीय है क्योंकि, जसा पहले कहा जा चुका है किसी भी सस्कृति तत्व का वास्तविक महत्व और स्वत्व उसके सद्म में है। अपने सद्म से अलग, सस्कृति तत्व वस्तुतः उस पुरज के समान है जिस मशीन से चलाने के लिए तैयार किया गया हो।

अमरीकी प्रसरणवादिया ने प्रसरण के सिद्धांत को मानते हुए इस बात पर जोर दिया कि केवल सस्कृति साम्य ही प्रसरण का प्रतीक नहीं है। प्रसरण को निर्धारित करने के लिए यथेष्ट प्रमाणों की आवश्यकता है और वे प्रमाण तभी निर्धारित किये जा सकते हैं जब सस्कृति, उसके तत्वों और तत्व सकुलों के भौगोलिक प्रसरण का निरीक्षण करके, प्रसरण क्षेत्र को निर्धारित किया जाय। किसी भी सस्कृति विशेष का भौगोलिक प्रसार-क्षेत्र, उसका सस्कृति क्षेत्र है। जिस स्थान अथवा क्षेत्र में उस सस्कृति के प्रमुख तत्वों या तत्व सकुलों का सबसे अधिक केन्द्रिकरण होता है, वह उसका भौगोलिक सस्कृति केन्द्र (Geographical Culture Centre) है। केन्द्र की अपेक्षा, परिधि पर तत्वों या तत्व सकुलों का केन्द्रिकरण अपेक्षाकृत कम हो जाता है और वहाँ सजातीयता की अपेक्षा विजातीयता अधिक पायी जाती है। प्रत्येक सस्कृति क्षेत्र की परिधि, किसी दूसरे सस्कृति-क्षेत्र से मिलती है। इस कारण, सस्कृति क्षेत्र की परिधियों की सीमा में मिश्रित सस्कृतियाँ पनपा करती हैं। इस प्रकार, सस्कृति क्षेत्र की धारणा, एक ओर, सस्कृति विशेष के अध्ययन का उपकरण है तो, दूसरी ओर, विभिन्न सस्कृतियों के वर्गीकरण का एक प्रयास है—वह प्रयास जिसकी सफलता ध्यानाकर्षक होने के साथ-साथ सद्देहास्पद रही है।

इस धारणा का जन्म और पालन पोषण अमरीका के उन सग्रहणियों में हुआ था जहाँ अमरीकी आदिवासियों के सांस्कृतिक उपकरणों का वर्गीकृत करके उनके भौगोलिक प्रसरण के दिग्गम की समस्या का हल ढूँढना था। इस धारणा के सख्त में बर्दगवायों की गयी हैं जिनका समाधान नहीं हो पाया है। प्रथम, सस्कृति-तत्व या तत्व-सकुल समानरूप से चारों ओर प्रसरित नहीं हैं, अतएव, सस्कृति क्षेत्र की धारणा ही अनुपयुक्त लगती है। दूसरे, यह भी निर्धारित करना कठिन है कि किसी भी सस्कृति का प्रमुख तत्व या तत्व-सकुल क्या है? यदि उनका निर्धारण हो भी जाय तो यह निश्चित करना कठिन हो जाएगा कि किन तत्वों या तत्व सकुलों के आधार

पर क्षेत्र का निर्धारण किया जाय। उन्ही कारण, अमरीका में, विशेषतः बहा के आदिवासी क्षेत्रों में, सस्कृति क्षेत्रों की सन्ध्या पर मतवय नहीं पाया जाता है। मिश्रित तत्व समुल्ल वर्गीकरण की वह जटिल समस्याएँ उत्पन्न करती हैं जिनका हल ढूँढना मुश्किल हो जाता है। तीसरे, इस धारणा में यह मान लिया गया है कि सस्कृति-तत्वों या तत्व समुल्लों से किसी भी सस्कृति का सम्पन्न हो सकता है। इस धारणा के आधार पर अमरीका में जितने भी अध्ययन हुए हैं उनमें किसी भी सस्कृति का वर्णन करने के लिए केवल उम सस्कृति के तत्वों की तालिका बनाने पर ही ध्यान दिया गया है। पर, कोई भी सस्कृति अपने तत्वों की तालिकामान ही नहीं है और न वह उसका याग है। किसी भी सस्कृति की आत्मा अपने तत्वों के पारस्परिक सामंजस्य में समायी रहती है, न कि उनकी तालिका में¹।

सस्कृति क्षेत्रों की धारणा का जन्म सन् १९५० के आसपास हुआ था और वही इसका सबसे अधिक प्रयोग भी किया गया है। सद्धान्तिक स्तर पर इस धारणा के कुछ योगदान हैं जिनसे सस्कृति को समझने में सहायता मिली है और जिनके कारण सस्कृति को एक धारणात्मक उपकरण (Conceptual Tool) बनाने की दिशा में प्रयास हुए हैं और हा रहे हैं। प्रथम, सस्कृति क्षेत्र एक आनुभूतिक वास्तविकता है जिसका निर्धारण किया जा सकता है यद्यपि उसके निर्धारण में महत्व लाना बड़ा मुश्किल है क्योंकि सस्कृति-क्षेत्र के निर्धारण के आधार एक नहीं अनेक हो सकते हैं। इस विषय पर, अमरीकी मानवशास्त्रियों के वाद विवाद इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। भारत में, भाषा के आधार पर सस्कृति-क्षेत्रों का निर्धारित करने का प्रयत्न किया गया है पर यह निर्धारण न तो पूर्ण है और न अंतिम। भाषा या बोली के आधार पर नए भ्रान्ता की भाँति इस बात का प्रमाण है कि यह निर्धारण पूर्ण नहीं है। यदि मकान बना विधि या वैवाहिक रीतियों के आधार पर सस्कृति क्षेत्र बनाए जाय तो वे अलग-अलग भाषावादी प्रांता से भिन्न होंगे। अतः, सस्कृति क्षेत्र एक ऐसी धारणा है जिसे जो कोई पहचानना नहीं सकता है और आवश्यकतानुसार इसका प्रयोग किया जा सकता है। दूसरे, सस्कृति क्षेत्रों की धारणा के प्रमुख आधार सस्कृति तत्व (Culture-Traits) अथवा तत्व-समुल्ल (Trait Complex) की धारणाओं का सस्कृति क्षेत्रों की धारणा की अपेक्षा अधिक प्रयोग किया गया है और आज भी किया जा रहा है।

सस्कृति-तत्व (Culture Trait) सस्कृति के वे अंश, उपादान या उपकरण हैं, जिनसे मिलकर सस्कृति बनती है, जो सस्कृति की अधिकतम छोटी इकाई होते हैं, जो पारिवर्तनीय भी होते हैं और अपारिवर्तनीय भी और, जिन्हें सस्कृति विनिर्माण के लिए, अलग-अलग किया जा सकता है? पर यहाँ प्रश्न उठता है कि सस्कृति की अधिकतम छोटी इकाई है क्या? उदाहरण के लिए खान का कमरा मकान की इकाई है। पर,

मेज कुर्मी, जलमारी उगवी अलग अलग इकाइया है जिनको अधिकतम छोटी इकाई नहीं कहा जा सकता है क्योंकि उनमें अपनी स्वयं की इकाइयाँ विद्यमान हैं। अतः, सस्कृति तत्व का निधारण अथ मयनकत्ता, उसकी समस्या और दृष्टिकोण पर निर्भर है। पार्थिव तत्वा का निर्धारण और निरूपण अर्थात् पार्थिव तत्वा की अपना अधिक सरल है, जिसके कारण तत्व निधारण की कठिनाई और भी बढ़ जाती है क्योंकि पार्थिव और अपार्थिव एक ही में मिल रहते हैं। तीसरे जसाकि खाने के कमर के उदाहरण में स्पष्ट है सस्कृति के तत्व (Traits) का अथपूर्व अस्तित्व अन्य तत्वों के मसग में ही होता है। ऐसी ही तत्व समर्गा में जा इकाइयाँ बनती हैं उन्हें तत्व सकुल (Trait Complex) कहा जाता है। मकान, विवाह पूजा पद्धतियाँ तत्व सकुल हैं। प्रत्येक सस्कृति, कई तत्व सकुल से बना हुआ एक विशिष्ट सकुल है जिसे सस्कृति सकुल (Culture Complex) की धारणा से व्यवहृत किया जाता है। चौथे सकुल, तत्वों से बना योग मात्र नहीं है। सकुल वस्तुतः वह सामाजिकसम्बन्धित प्रणाली है जो तत्वों के बीच में पाई जाती है। प्रसरण होता अवश्य है पर वास्तविक प्रसरण वही है जहाँ बाहर से लिया हुआ तत्व आत्मसात कर लिया जाता है। वास्तव में, सकुल बनता तभी है जब कई तत्व एक प्रणाली में एकाकार हो जाते हैं। भारत की हिन्दू पूजा पद्धति में, आगम निगम और जायों की ध्वन तथा द्राविडों की पुष्पापण पद्धतियों का एक प्रणाली में एकीकृत होना इसका उदाहरण है। यही एकीकरण की प्रवृत्ति, श्रोवर की मायता में सस्कृति का आन्तरिक बहाव (Inherent Drift of Culture) है और कोली (Cooley) की मायता में सस्कृतिगत समनुगति की प्रवृत्ति (Strain of Coherency) है जिसके कारण सस्कृति में एकात्मकता बनी रहती है। प्रत्येक सस्कृति बाह्य तत्वा का आत्मसात कर लेती है और अपने सभी तत्वा का एक में पिरोए रहती है। इसी प्रवाह में सस्कृति की आत्मा है और इसी में सस्कृति की एकीकरण (Integration) की प्रवृत्ति।

अतः सस्कृति की वास्तविकता एक सुगठित व्यवहार इकाई की सामाजिक वास्तविकता है, जो जटिल है जिसके तत्वा में अपनी निजी प्रणाली, तारतम्य, सस्कृति-कलाप प्रवृत्ति या प्रवाह पाया जाता है जो मानव-व्यवहार का परिवर्धित किए रहती है जो अपना काय भी है और कारण भी, जो परम्परागत है तथा अविनाश और समष्टि दाना को अपने में समेट हुए है जिसकी उत्पत्ति अगत नैतिक, अगत मानसिक और अगत पर्यावरिक (Environmental) कारका से हुई है जोर जिसका अस्तित्व और स्थायित्व, एक आर भीगोलिक है तो दूसरी ओर, कालगत (Temporal) और ऐतिहासिक। जिन मानव-स्थितियाँ पर मना विज्ञान का प्रबल प्रभाव है या रहा है उहाँ इस इकाई की वास्तविकता का मुख्यतः मानसिक (Psychical) माना है और इस बात पर जोर दिया है कि सस्कृति का स्वत्व प्रधानतः व्यक्ति में है, तथा उसमें जो समष्टिकारी तत्व पाए जाते हैं वे व्यक्ति

ने पर सस्कृति की स्वतंत्र सत्ता के द्योतक नहीं है वरन् समान पर्यावरण, अनुभूति, सामाजीकरण, सस्थाओं, अर्थात् (Values) और आदर्शों (Ideals) के व्यक्ति पर प्रभाव की उत्पत्ति है। इसी दृष्टिकोण से, सस्कृति की परिभाषा करते हुए रथ बेनेडिक्ट (Puth Benedict) ने कहा है कि सस्कृति वस्तुतः उन्नी प्रकार एक इकाई है जिस प्रकार व्यक्ति। एक सस्कृति एक व्यक्ति का भाति विचारों और नियमों का लगभग एक सगत कलाप (More or less a consistent pattern of thought and action) होती है। प्रत्येक सस्कृति में कुछ विशिष्ट उद्देश्य (Characteristic Purposes) उत्पन्न हो जाते हैं जिनके सामाजिकव्यवस्था, स्थायी एकीकरण से सगत कलाप (Consistent Pattern) उत्पन्न होता है। इन्हीं उद्देश्यों के अनुसार प्रत्येक सस्कृति के अनुवाहक अपनी अनुभूति का निरंतर सचित्त एक समेकित किया करते हैं और इन्हीं उद्देश्यों की आवश्यकताओं के अनुपात में प्रत्येक सस्कृति में बाहर से आए हुए तत्त्व निरंतर अधिकाधिक अनुरूप आकार (Congruous Shape) ग्रहण किया करते हैं। प्रत्येक सस्कृति के विशिष्ट उद्देश्यों से मिलकर उस सस्कृति के सदस्या में, एक प्रधान मनोवृत्ति (Dominant Attitude) बनती है जो उस एकीकरण, विशिष्टता और नरतय प्रदान करती है। इसी प्रधान मनोवृत्ति का, किन्हीं किन्हीं मानवशास्त्रियों ने अर्थ (Value) और किसी न आंतरिक प्रवृत्ति (Ethos) कहा है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्रत्येक सस्कृति में अपना एक प्रवाह होता है। यह प्रवाह अनुभवगम्य है। पर, इस प्रवाह का कस बणन किया जाय और ससार की विभिन्न सस्कृतियों में पाए जाने वाले प्रवाहों में पायी जाने वाली समानताया तथा असमानताओं का किस प्रकार वर्गीकृत किया जाय और उन्हें किस भाषा में व्यक्त किया जाय यह एक जटिल समस्या रही है और आज भी है। उदाहरण के लिए, यदि यह कहा जाय कि मनमौजी (Happy go-Lucky) मनोवृत्ति किसी सस्कृति के लोगों की प्रधान मनोवृत्ति है तो सबसे बड़ा प्रश्न यह उठता है कि यह मनोवृत्ति है क्या? और क्या इसकी कोई सवमाय परिभाषा हो सकती है। रथ बेनेडिक्ट और मारग्रेट मीड जैसे मानवशास्त्रियों की जो आलोचना हुयी है, उसके आधार पर तो यही कहा जा सकता है कि नहीं। वास्तव में, समाजशास्त्र, मानवशास्त्र और मनो-विज्ञान में जिन पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग होता है वे अपने गुणात्मक हैं कि अलग-अलग सस्कृतियों के सन्दर्भ में उनके अलग अलग अर्थ होते हैं, जिसके कारण, उनकी सवमाय परिभाषा नहीं हो पाती है। और फिर एक यह प्रश्न भी है कि क्या निरीक्षण और अनुभव के आधार पर किसी सस्कृति विद्वेय की प्रधान मनोवृत्ति को निर्धारित किया जा सकता है? इसका उत्तर 'हाँ' में भी दिया जा सकता है और 'ना' में भी। 'हाँ' में इसलिए कि कई अध्ययन इस प्रकार किए गए हैं और किए जा रहे हैं और 'ना' इसलिए कि एक आर इस प्रकार के अध्ययन और निर्धारण में अध्ययनकर्ता की मनोवृत्ति का प्रभाव रहता है और दूसरी ओर दो अध्ययनकर्ता एक

मेज-कुर्मी, जलमारी उगकी अलग अलग इकाइयाँ हैं जिनकी अधिकतम छाटी इकाई नहा कहा जा सकता है क्योंकि उनमें अपनी स्तय की इकाइया विद्यमान है। अतः सभृति तत्व का निधारण अयनकता उसकी समस्या नीर दष्टिवाण पर निभर है। पायिव तत्वा का निर्धारण और निरूपण अर्थायिव तत्वा की अपत्ता अधिक सरल है जिसका कारण तत्व निधारण की कठिनाइ और भी बढ जाती है क्याकि पायिव और अर्थायिव एक ही म मिल रत्त ह। तीसरे, जसाकि खान के कमर के उदाहरण से स्पत्त है, सभृति के तत्व (Traits) का अथपूर्ण अस्तित्व अय तत्वा के ससग म ही होता है। ऐम ही तत्व समर्गो स जो इकाइयाँ बनती हैं उह तत्व सकुल (Trait Complex) कहा जाता है। मनान, विवाह, पूजा पद्धतिया तत्व सकुल हैं। प्रत्येक सभृति कई तत्व सकुला स बना हुआ एक विशिष्ट सकुल है, जिमे सभृति सकुल (Culture Complex) की धारणा से व्यक्त किया जाता है। चौथ, सकुल, तत्वा स बना योग मात्र नती है। मकुत्त वस्तुत बह सामजस्ययुक्त प्रणाती है जो तत्वा के वाच म पाई जाती है। प्रसरण होता अवश्य है पर वास्तविक प्रसरण वही है जहा बाहर स लिया हुआ तत्व आत्मसात कर लिया जाता है। वास्तव म, सकुल बनता सभी है जब कई त व एक प्रणाली म एकाकार हो जाते है। भारत की हिंदू-पूजा पद्धति म आगम निगम और आर्यो की हवन तथा द्राविडा की पुष्पापण पद्धतियो का एक प्रणाली म एकीकृत हाना इसका उदाहरण है। यही एकीकरण की प्रवृत्ति, श्रोवर की मायता म, सभृति का आन्तरिक बहाव (Inherent Drift of Culture) है और कोले (Cooley) की मायता म सभृतिगत समनुगति की प्रवृत्ति (Strain of Coherency) है जिसका कारण सभृति म एकात्मकता बनी रहती है। प्रत्येक सभृति बाह्य तत्वा का आत्मसात कर लती है और अपने सभी तत्वा का एक म पिरोए रहती है। इसी प्रवाह म सभृति की आत्मा है और इसी म सभृति की एकीकरण (Integration) की प्रवृत्ति।

अतः सभृति की वास्तविकता एक सुगठित व्यवहार इकाई की सामाजिक वास्तविकता है जो जन्म है जिसके तत्वा म अपनी निजी प्रणाली तारतम्य, सभृति-कलाप प्रवृत्ति या प्रवाह पाया जाना है, जा मानव व्यवहार का परिवर्धित किए रहती है, जा अपना काय भी है और कारण भी जो परम्परागत है तथा व्यक्ति नीर समष्टि दाना को अपने म समष्ट हुए है जिसकी उत्पत्ति अगत दहिब अगत मानसिक और अगत पर्यावरिक (Environmental) कारका स हुई है और जिसका अस्तित्व और स्थायित्व एक आर, भौगालिक है तो दूसरी ओर, कालगत (Temporal) नीर ऐतिहासिक। जिन मानवशास्त्रिया पर मना विज्ञान का प्रबल प्रभाव है या रहा है उहान इस इकाई की वास्तविकता का मुख्यत मानसिक (Psychical) माना है और इस बात पर जोर दिया है कि सभृति का स्वरूप प्रधानत व्यक्ति म है तथा उनम जा समष्टिकारी तत्व पाए जाने हैं वे व्यक्ति

ने पर सस्कृति की स्वतन्त्र सत्ता के छातक नहीं हैं बरन समान पर्यावरण, अनुभूति सामाजीकरण, सम्थाओं, बर्हाजा (Values) और आदर्शों (Ideals) के व्यक्ति पर प्रभाव की उत्पत्ति है। इसी दृष्टिकोण से, सस्कृति की परिभाषा करते हुए रथ बेनेडिक्ट (Puth Benedict) ने कहा है कि सस्कृति वस्तुतः उसी प्रकार एक इकाई है जिस प्रकार व्यक्ति। एक सस्कृति एक व्यक्ति की भाँति विचारों और नियमों का लगभग एक मगन कलाप (More or less a consistent pattern of thought and action) होती है। प्रत्येक सस्कृति में कुछ विशिष्ट उद्देश्य (Characteristic Purposes) उत्पन्न होते हैं जो उनके सामाजिकव्यवस्था के स्थायी एकीकरण से सगत कलाप (Consistent Pattern) उत्पन्न होता है। इसी उद्देश्यों के अनुसार प्रत्येक सस्कृति के अनुवाहक अपनी अनुभूति का निरंतर सचित एवं समकित किया करते हैं और इन्हीं उद्देश्यों की आवश्यकताओं के अनुपात में प्रत्येक सस्कृति में बाहर से आए हुए तत्व निरंतर अतिरिक्त अनुसूच आकार (Congruous Shape) ग्रहण किया करते हैं। प्रत्येक सस्कृति के विशिष्ट उद्देश्यों से मिलकर उस सस्कृति के सदस्या में, एक प्रधान मनावृत्ति (Dominant Attitude) बनती है जो उसे एकीकरण, विशिष्टता और नरतय प्रदान करती है। इसी प्रधान मनावृत्ति का, किन्हीं किन्हीं मानवशास्त्रियों ने बर्हा (Value) और किसी न आंतरिक प्रवृत्ति (Ethos) कहा है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्रत्येक सस्कृति में अपना एक प्रवाह होता है। यह प्रवाह अनुभवगम्य है। पर, इस प्रवाह का कस वणन किया जाय और उसका की विभिन्न सस्कृतियों में पाए जाने वाले प्रवाहों में पायी जाने वाली समानताया तथा असमानताओं को किस प्रकार वर्गीकृत किया जाय और उन्हें किस भाषा में व्यक्त किया जाय यह एक जटिल समस्या रही है और आज भी है। उदाहरण के लिए, यदि यह कहा जाय कि मगनीजी (Happy go-Lucky) मनावृत्ति किसी सस्कृति के लोगों की प्रधान मनावृत्ति है तो सबसे बड़ा प्रश्न यह उठता है कि यह मनावृत्ति है क्या? और, क्या इसकी कोई सबमाय परिभाषा हो सकती है। रथ बेनेडिक्ट और मार्ग्रेट मीड जैसे मानवशास्त्रियों की जो आलाचना हुयी है, उसके आधार पर तो यही कहा जा सकता है कि नहीं। वास्तव में, समाजशास्त्र, मानशास्त्र और मनो-विज्ञान में जिन पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग होता है वे इतने गुणात्मक हैं कि अलग-अलग सस्कृतियों के मदम में उनके अलग-अलग अर्थ होते हैं, जिसके कारण, उनकी सबमाय परिभाषा नहीं हो पाती है। और फिर एक यह प्रश्न भी है कि क्या निरीक्षण और अनुभव के आधार पर किसी सस्कृति विशेष का प्रधान मनावृत्ति को निर्धारित किया जा सकता है? इसका उत्तर 'हाँ' में भी दिया जा सकता है और 'ना' में भी। हाँ में इसलिए कि कई अध्ययन इस प्रकार किए गए हैं और किए जा रहे हैं और 'ना' इसलिए कि एक आर इस प्रकार के अध्ययन और निर्धारण में अध्ययनकर्ता की मनावृत्ति का प्रभाव रहता है और दूसरी ओर दो अध्ययनकर्ता एक

मेग बुर्गी, जल्मारा उमकी अलग अलग इनादया है जिनका अधिकतम छाटी इकाई नहीं कहा जा सकता है क्योंकि उनमें अपनी स्वयं की इनादया विद्यमान है। अतः, मनुष्य तत्व का निधारण अध्ययनकर्ता उमकी समस्या तौर दृष्टिकान पर निर्भर है। पार्थिव तत्वा का निर्धारण और निरूपण अपार्थिव तत्वा की अपक्षा अधिक सरल है जिसके कारण तत्व निधारण की कठिनाई और भी बन जाती है क्योंकि पार्थिव और अपार्थिव एक ही में मिले रहते हैं। तीसरे असावि राने के कमरे के उदाहरण में स्पष्ट है मनुष्य के तत्व (Traits) का अध्ययन अस्तित्व अन्य तत्वा के समग्र में ही होता है। ऐसी ही तत्व समग्रों से जो इकाइयाँ बनती हैं उन्हें तत्व समुच्च (Trait Complex) कहा जाता है। मकान, विवाह, पूजा पद्धतियाँ तत्व समुच्च हैं। प्रत्येक मनुष्य, कई तत्व समुच्चों से बना हुआ एक विशिष्ट समुच्च है जिसे मनुष्य तत्व समुच्च (Culture Complex) की धारणा से व्यक्त किया जाता है। चौथे, समुच्च तत्वों से बना योग मात्र नहीं है। समुच्च वस्तुतः वह सामान्यव्युक्त प्रणाली है जो तत्वा के बीच में पाई जाती है। प्रसरण होता अवश्य है पर वास्तविक प्रसरण वही है जहाँ बाहर से लिया हुआ तत्व आत्मगत कर लिया जाता है। वास्तव में, समुच्च बनता तभी है जब कई तत्व एक प्रणाली में एकाकार हो जाते हैं। भारत की हिन्दू पूजा पद्धति में आगम नियम और आयों की हवन तथा द्राविडों की पुष्पापण पद्धतियों का एक प्रणाली में एकीकृत होना इसका उदाहरण है। यही एकीकरण की प्रवृत्ति, श्रोवर की भाष्यता में, मनुष्य का आन्तरिक बहाव (Inherent Drift of Culture) है और कोले (Cooley) की भाष्यता में मनुष्यगत समनुगति की प्रवृत्ति (Strain of Coherency) है जिसके कारण मनुष्य में एकात्मकता बनी रहती है। प्रत्येक मनुष्य बाह्य तत्वा का आत्मगत कर लेता है और अपने सभी तत्वा का एक में पिरोए रहती है। इसी प्रयत्न में मनुष्य की आत्मा है और इसी में मनुष्य की एकीकरण (Integration) की प्रवृत्ति।

अतः मनुष्य की वास्तविकता एक सुगठित व्यवहार इकाई की सामाजिक वास्तविकता है जो जन्म से जिसके तत्वों में अपनी निजी प्रणाली तारतम्य मनुष्य-कलाप प्रवृत्ति या प्रवाह पाया जाता है, जो मानव-व्यवहार का परिवेष्टित किए रहती है, जो अपना काम भी है और कारण भी जो परम्परागत है तथा व्यक्ति और समष्टि दोनों को अपने में मग्न हुए है जिसकी उत्पत्ति अगत दृष्टि अगत मानसिक और अगत पर्यावरणिक (Environmental) कारणों से हुई है जो जिसका अस्तित्व और स्थायित्व एक आर भीगोलिक है तो, दूसरी आर कालगत (Temporal) और ऐतिहासिक। जिन मानव-स्थितियों पर मनुष्य विमान का प्रबल प्रभाव है या रहा है उहाँ इन इकाई की वास्तविकता का मुख्यतः मानसिक (Ideological) माना है और इस बात पर जोर दिया है कि मनुष्य का व्यवहार प्रधानतः व्यक्ति में है, तथा उम जो समष्टिकारी तत्व पाए जाते हैं वे व्यक्ति

न पर सस्कृति की स्मृत न मत्ता व छातक नहीं हैं वरन समान पर्यावरण, अनुभूति, सामाजिकरण, सन्ध्याभा अर्थात् (Values) और आदर्शों (Ideals) व व्यक्ति पर प्रभाव की उत्पत्ति हैं। इसी दृष्टिकोण से, मस्कृति की परिभाषा करते हुए रथ बेनेडिक्ट (Puth Benedict) ने कहा है कि मस्कृति वस्तुतः सभी प्रकार एक उदाई है जिस प्रकार व्यक्ति। एक मस्कृति एक व्यक्ति की भाँति विचारों और क्रियाओं का स्वभाव एक मगन कलाप (More or less a consistent pattern of thought and action) होती है। प्रत्येक मस्कृति में कुछ विशिष्ट उद्देश्य (Characteristic Purposes) उत्पन्न हो जाते हैं जिनके सामंजस्यपूर्ण स्थायी एकीकरण से सतत कलाप (Consistent Pattern) उत्पन्न होता है। उही उद्देश्यों के अनुसार प्रत्येक मस्कृति के अनुवाहक अपना अनुभूति का निरंतर मचित एक समकित किया करते हैं और इही उद्देश्यों की आवश्यकताओं के अनुसार म प्रत्येक मस्कृति में बाहर से आए हुए तत्व निरंतर अधिकाधिक अनुरूप आकार (Congruous Shape) ग्रहण किया करते हैं। प्रत्येक मस्कृति के विशिष्ट उद्देश्यों से मिलकर, उस मस्कृति के सदस्या में, एक प्रधान मनावृत्ति (Dominant Attitude) बनती है जो उस एकीकरण, विशिष्टता और नरतय प्रदान करती है। इसी प्रधान मनावृत्ति का, किही किरी मानवशास्त्रियों ने मूल्य (Value) और किमी ने आंतरिक प्रवृत्ति (Ethos) कहा है।

इसमें बाई सन्देह नहीं कि प्रत्येक मस्कृति में अपना एक प्रवाह होता है। यह प्रवाह अनुभवगम्य है। पर, इस प्रवाह का कस बणन किया जाय और ससार की विभिन्न मस्कृतियों में पाए जाने वाले प्रवाहों में पायी जाने वाली समानता तथा अममानताओं का किस प्रकार वर्गीकृत किया जाय और उह किस भाषा में व्यक्त किया जाय यह एक जटिल समस्या रही है और आज भी है। उदाहरण के लिए, यदि यह कहा जाय कि मनमौजी (Happy go-Lucky) मनावृत्ति किसी मस्कृति के लोगों की प्रधान मनावृत्ति है तो सबसे बड़ा प्रश्न यह उठता है कि यह मनावृत्ति है क्या? और, क्या इसकी कोई सवमाय परिभाषा हो सकती है। रथ बेनेडिक्ट और मारग्रेट मोड जैसे मानवशास्त्रियों की जो आलाचना हुयी है, उनके आधार पर तो यही कहा जा सकता है कि नहीं। वास्तव में, मानवशास्त्र मानवशास्त्र और मनोविज्ञान में जिन पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग होता है व उतन गुणात्मक है कि अलग-अलग मस्कृतियों के मन्दम में उनके अलग अलग अर्थ होते हैं, जिसके कारण उनकी सवमाय परिभाषा नहीं हो पाती है। और फिर एक मह प्रश्न भी है कि क्या निरीक्षण और अनुभव के आधार पर किसी मस्कृति विशेष की प्रधान मनावृत्ति को निर्धारित किया जा सकता है? इसका उत्तर 'हाँ' में भी दिया जा सकता है और 'ना' में भी। 'हाँ' में इसलिए कि कई अध्ययन इस प्रकार किए गए हैं और किए जा रहे हैं और 'ना' इसलिए कि एक ओर इस प्रकार के अध्ययन और निर्धारण में अध्ययनकर्ता की मनावृत्ति का प्रभाव रहता है और दूसरी ओर दो अध्ययनकर्ता एक

ही निष्पत्ति पर नहीं पहुँच पाता है। इसी कारण, यह कहा गया है कि सस्कृति की प्रथम प्रवृत्ति वस्तुतः वीजगणित में प्रयोग होने वाले एक्स (X) या जे के समान है जिसका आवृत्तानुसार जलजलमूय निकाला जा सकता है। किंतु इन सभी कठिनाइयों और झंझटों के अलावा यह सिद्ध नहीं होता है कि प्रत्येक सस्कृति विशेष में अपनी निजी प्रवृत्ति और प्रवाह नहीं पाए जाते हैं। हाँ यह अवश्य है कि उनके वर्णन और विश्लेषण के उपकरण उतने उपयुक्त और प्रभावपूर्ण नहीं हैं, जितना कि उन्हें होना चाहिए। वर्तमान समय में, मूल्य (Values), राष्ट्रीय चरित्र (National Character) और सस्कृति में व्यक्तित्व (Personality in Culture) सम्बंधी होने वाले अध्ययन इसी वास्तविकता को स्पष्ट करने की दिशा में किए जाने वाले प्रयास हैं।

बेनडिक्ट के अनुसार, सस्कृति में एकीकरण (Integration) उसके विशिष्ट उद्देश्यों और उनसे उत्पन्न प्रधान मनोवृत्ति से उत्पन्न होता है। किंतु आज यह मायता त्याग दी गयी है क्योंकि प्रधान मनोवृत्ति का एकीकरण पाया जाना यह सिद्ध नहीं करता है कि गौण मनोवृत्ति या मनावृत्तियाँ या तो अनुपस्थित रहती हैं या उनका प्रभाव नहीं के बराबर होता है। सस्कृति एक जटिल स्काई है। उसका एकीकरण, वस्तुतः एक साथ पाई जाने वाली कई मनोवृत्तियों के घात प्रतिघात और सामंजस्य का परिणाम है। मुख्य आपत्ति 'प्रधान' शब्द के प्रयोग से है (क्योंकि प्रधान न तो निरपेक्ष है और न शाश्वत) और इस मायता से है कि एक सस्कृति में एक ही प्रधान मनोवृत्ति पायी जाती है। इसी कारण, विद्वानों ने कलाप (Pattern) की धारणा और मना के प्रयोग पर भी आपत्ति प्रकट की है। क्ल्यूहान ने सस्कृति के बाह्य (Overt) और आंतरिक (Covert) दो पहलू माने हैं और इस बात पर जोर दिया है कि कलाप (Pattern) की धारणा का बाह्य पहलू या पक्ष पर लागू करना चाहिए क्योंकि इस पक्ष में कलाप स्पष्ट होते हैं। उनका और श्रोबर का यह भी कहना है कि कलाप एक नहीं कई हो सकते हैं और दाना ने उनके रूप प्रकार और सम्बन्धों का अलग अलग निर्धारित किया है¹ जो इस बात का प्रतीक है कि कलापों का निर्धारण, सस्कृति की जटिलता और गुणात्मकता का कारण एक समाधान रहित समस्या है।

ओप्लर (Oppler) ने यह निष्कर्ष निकाला है कि सस्कृति एकीकरण (Integration of Culture) निरपेक्ष न होकर मापेय है। किसी भी सस्कृति में एकीकरण पूर्ण नहीं है। विभिन्न सस्कृतियों की एकीकरण की मात्रा में अंतर होता है। ऐसी दृष्टि में प्रधान मनोवृत्ति की धारणा सभी सस्कृतियों पर लागू नहीं हो सकती है किन्तु भारत जहाँ उन सस्कृतियों पर जिन्होंने अपना ऐतिहासिक प्रभुत्व

म ग्रन्थ सांस्कृतिक धाराशा का आत्मसात करने का प्रयत्न किया है। ओपलर का कथन तबसगत है क्याकि प्रत्येक संस्कृति में, एक सीमा तक व्यावहारिक विचरण शीलता (Behavioural Variation) स्वीकृत है। उदाहरणार्थ भारत का शिक्षा-यथा में जब अध्यापक कक्षा में प्रवेश करता है तब विद्यार्थी ग्रपण अपने स्थान पर उठकर उसका स्वागत और उसके प्रति आदर प्रगट करत हैं। यह एक सांस्कृतिक प्रथा है। विन्तु, वास्तविक व्यवहार में कुछ विद्यार्थी सीधे गन्ने हा जाते हैं, कुछ थोडा उठकर फोरन बैठ जाने हैं, कुछ खडे होने का संकेतमात्र करतें हैं और बडे ही रहते हैं। इसी प्रकार, प्रत्येक हिन्दू के लिए विवाह आवश्यक है लेकिन अविवाहित रहने वाले का समाज से निकाल नहीं दिया जाता है। विवाह सम्पन्न करने के लिए कोई भी हिन्दू चाहे तो यह आयममाजी पद्धति को अपना सकता है, या सनातनी पद्धति को या उस बानूनी पद्धति को जिसको हिन्दू मरिज एकट और स्पेगल मरिज एकट जैस अधिनिषमा द्वारा मायता प्रदान की गयी है। इसमें यह स्पष्ट हो जाता है कि सांस्कृतिक व्यवहार और मर्यादाओं में एक सीमा तक विचलन (Deviation) माय रहता है। विचलन तथा विचरण की प्रवृत्ति और प्रधान मनोवृत्ति, तब के दृष्टिकोण में, परस्पर विरोधी हैं और एक की मायता दूसरे को स्वतः समाप्त कर देती है। इसी कारण, मस्कृति के एकीकरण को स्पष्ट करत के लिए प्रधान मनोवृत्ति का मिद्धान्त बमजोर पडता है।

इसी कठिनाई को दूर करने के लिए लिंटन (Linton) ने मस्कृति के तत्वों का तीन श्रेणियां में बाटा है—प्रथम, सब-यापी (Universalties) जिनमें विचरण और विचलन समाय रहता है, दूसर वैकल्पिक (Alternatives) जिनमें वैकल्पिक विचरण और विचलन माय होना है जैस हिन्दुआ में अपनायी जान वाली विवाह-पद्धतियां और, तीसर विशेष (Specialities) जो विशेष पत्ते (Statuses) और उनमें सम्बन्धित भूमिकाओं (Roles) से सम्बन्धित रहते हैं जैस डाक्टरा, वकीलो, अध्यापको, राजनीतिज्ञ और व्यापारियों के पदे और भूमिकाया से सम्बन्धित आदर्श और मर्यादायें। लिंटन की इस मान्यता से यह सिद्ध होता है कि एकीकरण इही विभिन्न तत्वों के बीच में पाय जाने वान सामग्रस्य की मात्रा में निहित हाता है। इसी दृष्टिकोण से, ओपलर (Oppler) ने यह प्रतिपादन किया है कि एकीकरण किसी एक प्रेरक प्रवृत्ति से उत्पन्न न हातर कई प्रेरक प्रवृत्तियों के घात प्रतिघात और सामग्रस्य में उत्पन्न एक सन्तुलन है। प्रेरक प्रवृत्तियां का ओपलर ने थीम (Theme) की मया दी है। मस्कृति का स्वरूप और आत्मा इही प्रेरक प्रवृत्तियां का परस्पर सम्बन्ध में निहित रहता है। विन्तु इन प्रेरक प्रवृत्तियां का निर्धारण उतना ही दुप्तर है जितना कि कयाय अथवा कयापा का निर्धारण। आज, एक थोर, प्रायः के

ही निष्पत्ति पर नहीं पहुँच पाते हैं। इसी कारण यह कहा गया है कि सस्कृति की अन्तर्मुखी प्रवृत्ति वस्तुतः बीजगणित में प्रयोग होने वाले एक्स (x) या ज के समान है जिसका आवश्यकतानुसार उलग अलग मूल्य निकाला जा सकता है। किन्तु, इन सभी विद्वानों और आलोचनाकारों में यह सिद्ध नहीं होता है कि प्रत्येक सस्कृति विशेष में अपनी निजी प्रवृत्ति और प्रवाह नहीं पाए जाते हैं। हाँ, यह अवश्य है कि उनके वर्णन और विश्लेषण के उपकरण उतने उपयुक्त और प्रभावपूर्ण नहीं हैं जितना कि उन्हें होना चाहिए। वर्तमान समय में मूल्यों (Values) राष्ट्रीय चरित्र (National Character) और सस्कृति में व्यक्तित्व (Personality in Culture) सम्बन्धी होने वाले अध्ययन इसी वास्तविकता को स्पष्ट करने की दिशा में किए जाने वाले प्रयास हैं।

बेनडिक्ट के अनुसार, सस्कृति में एकीकरण (Integration) उसके विशिष्ट उद्देश्यों और उनसे उत्पन्न प्रधान मनोवृत्ति से उत्पन्न होता है। किन्तु सस्कृति आज यह मायता त्याग दी गयी है क्योंकि प्रधान मनोवृत्ति का एकीकरण पाया जाना यह सिद्ध नहीं करता है कि गौण मनोवृत्ति या मनोवृत्तियाँ या तो अनुपस्थित रहती हैं या उनका प्रभाव नहीं के बराबर होता है। सस्कृति एक जटिल स्काई है। उसका एकीकरण, वस्तुतः एक साथ पाई जाने वाली कई मनोवृत्तियों के घात प्रतिघात और सामंजस्य का परिणाम है। मुख्य आपत्ति 'प्रधान' शब्द के प्रयोग से है (क्योंकि प्रधान नहीं निरपेक्ष है और न शाश्वत) और इस मायता से है कि एक सस्कृति में एक ही प्रधान मनोवृत्ति पायी जाती है। इसी कारण, विद्वानों ने कलाप (Pattern) की धारणा और मन्त्र के प्रयोग पर भी आपत्ति प्रकट की है। क्लैपहॉर्न ने सस्कृति के बाह्य (Overt) और आन्तरिक (Covert) दो पहलू माने हैं और इस बात पर जोर दिया है कि कलाप (Pattern) की धारणा का बाह्य पहलू या पक्ष पर लागू करना चाहिए क्योंकि इस पक्ष में कलाप स्पष्ट होते हैं। उनका और प्रायर का यह भी कहना है कि कलाप एक नहीं कई हो सकते हैं और दाना ने उनके रूप, प्रकार और संख्याओं का अलग अलग निर्धारित किया है¹ जो इस बात का प्रतीक है कि कलापों का निर्धारण, सस्कृति की जटिलता और गुणात्मकता के कारण एक समाधान रहित समस्या है।

ओप्लर (Oppler) ने यह निष्पत्ति का प्रयत्न किया है कि सस्कृति एकीकरण (Integration of Culture) निरपेक्ष न होकर सापेक्ष है। किसी भी सस्कृति में एकीकरण पूर्ण नहीं है। विभिन्न सस्कृतियों की एकीकरण की मात्रा में अन्तर होता है। ऐसी दृष्टि में, प्रधान मनोवृत्ति की धारणा सभी सस्कृतियों पर लागू नहीं हो सकती है, विशेषतः भारत जहाँ उन सस्कृतियों पर जिज्ञान अपनी ऐतिहासिक प्रक्रिया

मे अनक साम्कनक धाराओ को आत्मसात करने का प्रयत्न किया है। ओपलर का अन्धन नकमगत है क्योंकि प्रत्येक संस्कृति में, एक सीमा तक व्यावहारिक विचरण शीलता (Behavioural Variation) स्वीकृत है। उदाहरणार्थ, भारत में शिक्षा-लय में जब अध्यापक कक्षा में प्रवेश करता है तब विद्यार्थी अपने अपने स्थान पर उठकर उसका स्वागत और उसके प्रति आदर प्रगट करते हैं। यह एक साम्कृतिक प्रथा है। किन्तु वास्तविक व्यवहार में कुछ विद्यार्थी सीधे खड़े हो जाते हैं कुछ थोड़ा उठकर फौरन बैठ जाते हैं कुछ खड़े होने का संकेतमात्र करते हैं और बैठे ही रहते हैं। इसी प्रकार, प्रत्येक हिन्दू के लिए विवाह आवश्यक है लेकिन अविवाहित रहने वाले को समाज में निकाल नहीं दिया जाता है। विवाह सम्पन्न करने के लिए कोई भी हिन्दू चाहे तो वह जायसमाजी पद्धति को अपना सकता है, या सनातनी पद्धति को या उस नानुनी पद्धति का जिसको हिन्दू मरिज एक्ट और स्पेशल मैरिज एक्ट जम अधिनियमों द्वारा मायता प्रदान की गयी है। इसमें यह स्पष्ट हो जाता है कि साम्कृतिक व्यवहार और मर्यादाओं में एक सीमा तक विचलन (Deviation) माय रहता है। विचलन तथा विचरण की प्रवृत्ति और प्रधान मनोवृत्ति, एक के दृष्टिकोण में, परस्पर विरोधी हैं और एक की मायता दूसरे को स्वतः समाप्त कर देती है। इसी कारण, संस्कृति के एकीकरण को स्पष्ट करने के लिए प्रधान मनोवृत्ति का सिद्धांत कमजोर पड़ता है।

इसी कठिनाई का दूर करने के लिए लिटन (Linton) ने संस्कृति के तत्वों का तीन श्रेणियों में बाटा है—प्रथम, सर्वव्यापी (Universalties) जिनमें विचरण और विचलन समाय रहना है, दूसरे वैकल्पिक (Alternatives) जिनमें वैकल्पिक विचरण और विचलन माय होना है जैसे हिन्दुओं में अपनायी जाने वाली विवाह-पद्धतियाँ और, तीसरे विशेष (Specialities) जो विशेष पदों (Statuses) और उनसे सम्बन्धित भूमिकाओं (Roles) से सम्बन्धित रहते हैं जम डाक्टर, वकील, अध्यापक, राजनीतिज्ञ और व्यापारियों के पदों और भूमिकाओं से सम्बन्धित श्रावण और मर्यादाएँ¹। लिटन की इस मायता से यह सिद्ध होता है कि एकीकरण इन्हीं विभिन्न तत्वों के बीच में पाये जाने वाले सामंजस्य की माय में निहित होता है। इसी दृष्टिकोण से, ओपलर (Oppler) ने यह प्रतिपादित किया है कि एकीकरण किसी एक प्रेरक प्रवृत्ति से उत्पन्न नहकर कई प्रेरक प्रवृत्तियों के घात प्रतिघात और सामंजस्य से उत्पन्न एक सन्तुलन है। प्रेरक प्रवृत्तियों का ओपलर न थीम (Theme) की सगा दी है। संस्कृति का स्वरूप और आत्मा इन्हीं प्रेरक प्रवृत्तियों के परस्पर सम्बन्ध में निहित रहता है। किन्तु, इन प्रेरक प्रवृत्तियों का निर्धारण उतना ही दुष्कर है जितना कि कलाप अथवा कला का निर्धारण। ध्यान, एक और, प्रायः के

1 लिटन, राल्फ वि चत्चरल थकपाउण्ड आक पसनालिटी

ही निरूपण पर नहीं पहुँच पाते हैं। इसी कारण यह कहा गया है कि सस्कृति की अन्तर्मुखी प्रवृत्ति वस्तुतः वाजगणित म प्रयाग हान वाले एक्स (X) या ज क समान है जिसका आवश्यकतानुसार अलग अलग मूय निकाला जा सकता है। किन्तु इन सभी कठिनाइयों और आलाचनाओं में यह सिद्ध नहीं होना है कि प्रत्येक सस्कृति विशेष में अपनी निजो प्रवृत्ति और प्रवाह नहीं पाए जाते हैं। हाँ, यह अवश्य है कि उनके ध्वनि और विश्लेषण के उपकरण उतने उपयुक्त और प्रभावपूर्ण नहीं हैं जितना कि उन्हें होना चाहिए। वर्तमान समय में अर्थशास्त्र (Values), राष्ट्रीय चरित्र (National Character) और सस्कृति में व्यक्तित्व (Personality in Culture) सम्बन्धी होने वाले अध्ययन इसी वास्तविकता को स्पष्ट करने की दिशा में किए जाने वाले प्रयास हैं।

बेनेडिक्ट के अनुसार, सस्कृति में एकीकरण (Integration) उसके विशिष्ट उद्देश्यों और उनसे उत्पन्न प्रधान मनोवृत्ति से उत्पन्न होता है। किन्तु सस्कृति आज यह मायता त्याग दी गयी है क्योंकि प्रधान मनोवृत्ति का एकीकरण पाया जाना यह सिद्ध नहीं करता है कि गौण मनोवृत्ति या मनोवृत्तियाँ या तो अनुपस्थित रहती हैं या उनका प्रभाव नहीं के बराबर होता है। सस्कृति एक जटिल स्काई है। उसका एकीकरण वस्तुतः एक साथ पाई जाने वाली कई मनोवृत्तियों के घात प्रतिघात और सामंजस्य का परिणाम है। मुख्य आपत्ति 'प्रधान शक्ति' के प्रयोग से है (क्योंकि प्रधान न तो निरपेक्ष है और न शाश्वत) और इस मायता से है कि एक सस्कृति में एक ही प्रधान मनोवृत्ति पायी जाती है। इसी कारण, विद्वानों ने कलाप (Pattern) की धारणा और मना के प्रयोग पर भी आपत्ति प्रकट की है। बल्युसान ने सस्कृति के बाह्य (Overt) और आन्तरिक (Covert) दो पहलू माने हैं और इस बात पर जोर दिया है कि कलाप (Pattern) की धारणा का बाह्य पहलू या पक्ष पर लागू करना चाहिए क्योंकि इस पक्ष में कलाप स्पष्ट होते हैं। उनका और ओवर का यह भी कहना है कि कलाप एक नहीं कई हो सकते हैं और दोनों ने उनके रूप प्रकार और सम्बन्धों का अलग अलग निर्धारित किया है¹ जो इस बात का प्रतीक है कि कलापों का निर्धारण सस्कृति की जटिलता और गुणात्मकता के कारण एक समाधान रहित समस्या है।

ओपलर (Oppler) ने यह निष्कर्ष निकाला है कि सस्कृति एकीकरण (Integration of Culture) निरपेक्ष न होकर सापेक्ष है। किसी भी सस्कृति में एकीकरण पूर्ण नहीं है। विभिन्न सस्कृतियों की एकीकरण की मात्रा में अंतर होता है। ऐसी दृष्टि में, प्रधान मनोवृत्ति की धारणा सभी सस्कृतियों पर लागू नहीं हो सकती है विशेषतः भारत जहाँ उन सस्कृतियों पर जिन्होंने अपनी ऐतिहासिक प्रक्रिया

ने अनन्य साम्प्रतिक धाराओं का आत्मसात करने का प्रयत्न किया है। ओपलर का कथन तन्त्रसंगत है क्योंकि प्रत्येक मस्जुति में, एक सीमा तक, व्यावहारिक विचरणा-शीलता (Behavioural Variation) म्बीकृत है। उदाहरणार्थ भारत के शिक्षालयों में जब अध्यापक कक्षा में प्रवेश करता है तब विद्यार्थी अपने अपने स्थान पर उठकर उसका स्वागत और उसके प्रति आदर प्रकट करते हैं। यह एक साम्प्रतिक प्रथा है। किन्तु वास्तविक व्यवहार में कुछ विद्यार्थी सीधे सटे हा जाते हैं, कुछ थोड़ा उठकर पीरा बैठ जाते हैं, कुछ सटे होने का संकेतमात्र करते हैं और बैठे ही रहते हैं। इसी प्रकार, प्रत्येक हिन्दू के लिए विवाह आवश्यक है लेकिन अविवाहित रहने वाले का समाज से निकाल नहीं दिया जाता है। विवाह सम्पन्न करने के लिए कोई भी हिन्दू चाहे तो वह आयममाजी पद्धति को अपना सकता है, या सनातनी पद्धति का या उस कानूनी पद्धति को जिसको हिन्दू मैरिज एक्ट और स्पेशल मैरिज एक्ट जैसे अधिनियमों द्वारा भायता प्रदान की गयी है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि साम्प्रतिक व्यवहार और मर्यादाओं में एक सीमा तक विचलन (Deviation) भायता है। विचलन तथा विचरण की प्रवृत्ति और प्रधान मनोवृत्ति, तब क दृष्टिकोण में, परस्पर विरोधी हैं और एक की भायता दूसरे को स्वतः समाप्त कर देती है। इसी कारण, सस्कृति के एकीकरण को स्पष्ट करने के लिए प्रधान मनोवृत्ति का सिद्धान्त कमजोर पता है।

इसी कठिनाई को दूर करने के लिए लिटन (Linton) ने सस्कृति क तत्वों का तीन श्रेणियाँ में बाँटा है—प्रथम, सधन्यायी (Universalities) जिनमें विचरण और विचलन समाय रहता है दूसरे वैकल्पिक (Alternatives) जिनमें वैकल्पिक विचरण और विचलन भाय होना है जैसे हिन्दुओं में अपनायी जान वाली विवाह-पद्धतियाँ और, तीसरे विशेष (Specialities) जो विशेष पदा (Statuses) और उनसे सम्बन्धित भूमिकाओं (Roles) से सम्बन्धित रहते हैं जैसे डाक्टरों वकीलों, अध्यापकों, राजनीतिज्ञों और व्यापारियों के पदों और भूमिकाओं से सम्बन्धित आदर और मर्यादाएँ^१। लिटन की इस मान्यता में यह सिद्ध होता है कि एकीकरण इन्हीं विभिन्न तत्वों के बीच में पाये जाने वाले सामान्यता की भायता में निहित होता है। इसी दृष्टिकोण में, ओपलर (Oppler) ने यह प्रतिपादित किया है कि एकीकरण किसी एक प्रवृत्ति से उपन न हाकर कई प्रेरक प्रवृत्तियों के घात प्रतिघात और सामान्यता में उत्पन्न एक सन्तुलन है। प्रेरक प्रवृत्तियों का ओपलर ने थीम (Theme) की म्भा दी है। मस्कृति का स्वप्न और आत्मा इन्हीं प्रेरक प्रवृत्तियों के परस्पर सम्बन्धों में निहित रहता है। किन्तु इन प्रेरक प्रवृत्तियों का निर्धारण उतना ही दुकर है जितना कि कृपा अथवा कृपा का निर्धारण। धान, एक और, भायद के

१ लिटन, राल्फ दि कल्चरल चर्याउण्ड आफ पमनालिट्टी

मनोविद्वान् व सिद्धांतों में प्रभावित मानवशास्त्री बाल्यकाल में अर्जित तथा मर्चित प्रतिप्रियाओं के अंतराल में जिनके द्वि-त्रि-दुष्टों में सभ्यता की प्रेरक प्रवृत्तियाँ का दूषण का प्रयत्न करते हैं और, दूसरी ओर उपयोगितावादी विचार-धारा से प्रभावित समाजशास्त्री और मानवशास्त्री सभ्यता की सामाजिक संरचना की कामात्मकता में प्रेरक उद्देश्य दूषण में प्रयत्नशील हैं। एकीकरण, प्रेरक प्रगति और आंतरिक प्रवाह जैसी धारणाएँ सभ्यता की मानसिक जटिलता की द्योतक हैं। व मानव-जन्मभूति से पर नहीं है। पर, उनका साद्देश्य निर्धारण और वगन वह समस्या है जिसका हल मानवशास्त्र और समाजशास्त्र में नहीं मिल पाया है यद्यपि इन दोनों शास्त्रों के प्रतिष्ठापाक इस दशा में प्रयत्नशील हैं।

यहाँ तक प्रस्तुत विचार विमर्श से यह स्पष्ट है कि सभ्यता को स्पष्ट और परिभाषित करने के लिए न तो मतव्य हुआ है और न सम्भवतः होगा। सभ्यता के लक्षण सभ्यता पर लोगो ने अनेक पहलुओं से विचार किया है। सभ्यता के जितने आनुभूतिक पहलू हैं उन पहलुओं पर आधारित मतों में सार है और उह सहसा अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। इनमें से कोई मत तब सारहीन प्रतीत होता है जब अथ पहलुओं को गौण मानकर किसी पहलु विषय को ही महत्वपूर्ण मान लिया जाता है और उसी के आधार पर कोई मत प्रतिपादित किया जाता है। सभ्यता विषयक मतमतांतर और विचार विमर्श में सभ्यता के कुछ भाव-भौतिक और सवमाय लक्षण (Attributes) निर्धारित हो गये हैं जो सभ्यता को स्पष्ट करने का एक अच्छा माध्यम है। ये लक्षण इस प्रकार हैं — 1 सभ्यता वह व्यवहार है जो मनुष्य समाज से सीखता है। किन्तु सभ्यता को न तो धर्मता अथवा अभ्यासा (Habits) का योग कहा जा सकता है और न समस्याओं के सुलभान का कोई एक परम्परागत तरीका। यह भी नहीं कहा जा सकता है कि सभ्यता की उत्पत्ति व्यक्ति के नरादय में ही होती है क्योंकि सभ्यता में नरादयकारी तथा लुब्धकारी दोनों तत्व विद्यमान हैं 2 सभ्यता समाज का एक पहलू है। इसी से सभ्यता की सामाजिक विशेषता का जन्म होना है। आंगिक उन्निकास की प्रविष्टा और मानवतर प्राणियों में समाज के पाये जाने के आधार पर यह कहा जा सकता है कि समाज का अवतरण सभ्यता से पहले हुआ है। किन्तु मानवी उन्निकास के सम्भ में यह कहना कठिन है कि सभ्यता प्राथमिक है या समाज। हाँ यह अवश्य है कि समाज के ही माध्यम से सभ्यता चलती है और उसमें समाज की धारणा एकीकरण की प्रवृत्ति अधिक होती है। समाज के आधार और सभ्यता के स्वरूप में कोई कारण सम्बन्ध नहीं है 3 सभ्यता सन्निध्य (Transmissible) होती है और इसी कारण उसमें ऐतिहासिकता आती है 4 सभ्यता वस्तुतः एक आदर्श है जो सर्व अप्राप्य रहता है

1 यहाँ पर यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि इतिहासियों और समाजशास्त्रियों

यद्यपि उसने मानव का माय दान अद्वय हाता है, उ मन्वति स जैमा नि मलिनाम्बी न प्रतिपादित किया है, मानव आवश्यकताओं की पूर्ति हाती है ७ मन्वति म अनुसूतन की समता हाती है और, जसा कि पद पढ़ा जा चुका है, मन्वति म एकीकरण की प्रवृत्ति होती है जिसन मन्वति म एनात्मरता और एचिक विगपता जाती है ।

हसकाविटम (Herskovits) न मस्कृति व कुछ विराधाभासों (Paradoxical) लक्षणा का घणन किया है । प्रथम, मस्कृति मानव जीवन का निधारण करती है, किन्तु मानव व सजग विचारण म उसका विरला ही प्रवण हाता है, वय, कि सस्कृति व्यक्ति म भी है और व्यक्ति से पने भी । दूसर, मस्कृति स्यामी भा है और गत्यात्मक भी । निरन्तर परिवतन म म्यायिक बनाय रखना सस्कृति की विगपता है । तीसर एक ओर, सस्कृति मवकालीन तथा सावभौमिक है ता, दूसरी ओर उसक राष्ट्रीय, क्षेत्राय और स्थानीय रूप भी पाय जात हैं । दूसर शब्दों म कहा जा सकता है कि सस्कृति सामाय भी है और विशेष भी । मानव-जीवन की सामाय, सावभौमिक आवश्यकतायें ही मस्कृति की सामायता और सावभौमिकता का जन्म दर्ती हैं । परिवार, विवाह, श्रायिक तथा राजनैतिक सस्यायें, भाषा, कला और मनाविनाय, धर्म सामाजिक ज्ञान और प्रौद्योगिकी सस्कृति के सामान्य आधार हैं और सबन पाये जाते हैं । ये सामाय आधार मानव-जीवन की सामाय आधारभूत आवश्यकतायें म सम्बन्धित हैं । सस्कृति की विचरणशीलता से ही विशेष सस्कृतियाँ का प्रादुर्भाव हाता है । विचरणशीलता के कारक हैं भौगोलिक परिस्थितियाँ, प्रौद्योगिक विकास व अज्ञमान स्तर, विभिन्न मस्कृतियाँ के अलग-अलग आंतरिक प्रवाह और ऐतिहासिक परिस्थितियाँ तथा घटनायें । भारत का इस्लामी राजनैतिक प्रभुत्व म आना वह परिस्थिति है जिसके कारण भारत म हिन्दू-मस्कृति के स्थान पर भारतीय मस्कृति का अम्युदय हुआ । यदि सन सत्रह सौ तिरौसठ ईसवी म फास इलैंड स हार न जाता और उसक फरस्वरूप भारत इग्ट व राजनैतिक प्रभुत्व म न आता तो सम्भवत वतमान भारत की मास्कृतिक धारा किसी श्राय दिशा की ओर प्रवाहित हाती ।

एक धारणा व रूप में सस्कृति का प्रयाण चार सन्दर्भों म किया जा सकता है—(अ) किसी भी समय विगप म सम्पूर्ण मानवमात्र व जीवनयापन के तरीका (Ways of Living) और आकल्पनायें (Designs) की सम्पूर्णता व लिये । यही सम्पूर्णता सामाय मस्कृति (The Culture) का आधार है । (ब) उन कई समाजों से जिन समूह के सस्या के व्यवहार म निहित जीवन-यापन के तरीकों व लिये जिनके व्यवहार म, कम मा अधिक माया म, एकीकरण पाया जाता हा उस अज्ञानी स्थानीय

तथा मायगास्त्रियाँ व मती में अन्तर है । इतिहासज्ञों के अनुसार मस्कृति मानव की सिद्धियाँ का अनिलेख है । इस मा यता में प्रगति अथवा अवनति का नाव निहित है जो मानवगास्त्रियों को अभाय है ।

संस्कृति। इसी धारणा के मन्त्र में उपसंस्कृति (Sub Culture) या उपसंस्कृतियाँ (Sub Cultures) और संस्कृतिविशेष (A Culture) जमी धारणाओं का प्रयोग होता है। (ग) किसी समाजविशेष के विशिष्ट व्यवहार कलाप (Pattern of behaviour peculiar to a given society) के लिये, जैसे भारतीय संस्कृति या अमरीकी संस्कृति। (द) एक बड़े जटिल और विजातीय समाज के विभिन्न समूहों के अलग अलग जीवन यापन के तरीकों के लिये जिसका उदाहरण है भारत के विभिन्न भाषा क्षेत्रों में फली हुई संस्कृतियाँ।

२

संस्कृति-प्रक्रियाएँ (Culture Processes)

संस्कृति का चाहे जिस रूप या स्तर में देखा जाय इस तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि संस्कृति एक प्रवाहशील प्रक्रिया है। संस्कृति परिरक्षण, प्रक्रिया के दो मुख्य पहलू हैं—एक परिरक्षण (Preservation) स्थायित्व और स्थायित्व (Stabilization) और, दूसरा, वृद्धि (Growth) विकास तथा परिवर्तन (Change)। संस्कृति परिरक्षण प्रक्रिया के मुख्य आधार है अभ्यासीकरण (Habituation) धर्मार्थ अभ्यास या आदत का बनना¹ संस्कृति के सिद्धान्तों के अनुसार गिन्ना-दीक्षा (Indoctrination & Education) और सातत्य (Continuance) की समान भावना। वास्तव में व्यक्ति संस्कृति में ही जन्म लेता है। संस्कृति व्यक्ति से पहले ही विद्यमान होती है और इसी कारण, व्यक्ति संस्कृति का सर्वहक बन जाता है यद्यपि इसका यह तात्पर्य नहीं कि व्यक्ति के समक्ष एक समष्टिकारी प्रमेय के रूप में, संस्कृति ही प्रधान है।

1. जन्म के समय मानव गिन्ना की मातृपेणियों और नाड़ी संस्थान में न कोई सगठन होता है और न कोई सुगठित व्यवहार। गिन्ना न तो कहीं आल टहरा कर देख ही सकता है और न किसी दिग्गय काय में अपनी मातृपेणियों का प्रयोग ही कर सकता है। यहाँ तक मूल मूत्र को निकालने वाली मातृपेणियों पर भी उसका नियंत्रण नहीं रहता है। अभ्यास के द्वारा ही धीरे धीरे, व्यक्ति को मातृपेणियों पर नियंत्रण मिलता है और अभ्यास संस्कृति का प्रभाव के अनुसार होता है। उदाहरणार्थ, एक और गरीर विकास के दौरान में गिन्ना को मूल मूत्र त्यागन वाले स्नायुओं पर नियंत्रण मिलता है तो दूसरी ओर, अभ्यास द्वारा उसे यह सीखना पड़ता है कि जहाँ किस प्रकार मूल मूत्र का त्याग किया जाये।

व्यक्ति सम्पत्ति में है और मस्कृति व्यक्ति में, लेकिन प्रतीकामक हानि के कारण तथा मानव अनुभव में निहित हानि के कारण मस्कृति एक काल्पनिक प्रवाह बन जाती है जबकि व्यक्तिगत ध्यान प्राप्त रहते हैं। सीखना (Learning) की शक्ति के ही कारण व्यक्ति मस्कृति को अपना कर, मस्कृति-भवहक बनता है और, इसी कारण, मस्कृति-परिष्कारण में वह सामाजिक मनावनात्मिक प्रक्रिया प्रधान बन जाती है जिसे समाज मनो-वैज्ञानिकों ने अनुकरण (Imitation) कहा है और जो मानव के सीखने में एक महत्वपूर्ण तत्त्व है।

परिरक्षण न्यायित्व और सातत्य के कारण ही मस्कृति एक संचयी प्रक्रिया (Cumulative Process) बन जाती है जिसमें से मस्कृति का इतिहासो-मुख्य उन्विकासी रूप उभरता है जिसका विश्लेषण आगे किया जायेगा। परिरक्षण के ही दृष्टिकोण से मस्कृति का वह प्रक्रिया कहा जा सकता है जो निरन्तर वृद्धि (Growth) की ओर उभर रही है। इस दृष्टिकोण से, यह भी कहा जा सकता है कि मस्कृति, विनोप, मस्कृति विनोप का विश्लेषण ही सकता है किन्तु मस्कृति हानि (Cultural Loss) या मस्कृति निष्प्रापता (Cultural Death) नहीं होती है। मानव मस्कृति जजर और अमर है क्योंकि मस्कृति विनोप के विश्लेषण हानि पर, उसके तत्व प्रसरित होकर, सम्पूर्ण मानव मस्कृति के अर्थ तत्वों में मिल जाते हैं या अर्थ तत्वों का हटा देना है या उनका स्थान ले लेते हैं। उदाहरण के लिए हड़प्पा और माहेंजोदड़ो की मस्कृति आज समाप्त हो चुकी है लेकिन उसके अनेक तत्व भारतीय मस्कृति में विद्यमान हैं और भारतीय मस्कृति मानव-मस्कृति का एक विनोप रूप है। इसलिए श्रोत्र न कहा है कि मस्कृति कभी भी निष्प्राप नहीं होती है।

वृद्धि मस्कृति की एक वस ही स्वाभाविक प्रक्रिया है जैसे परिरक्षण। उपनायों (Inventions) इसका उदाहरण हैं। यह सही है कि आवश्यकता (Necessity), खेल (Play)¹ और आकस्मिक घटनायों (Accidents)² उपनायों को जन्म देती रही हैं किन्तु, वास्तव में उपनायों को जन्म देने वाली हैं मस्कृति विकास से उत्पन्न होने वाली परिस्थितियाँ जिनके कारण उपनायों का जन्म सम्भव होता है। प्रत्येक उपनाय के पीछे एक शक्ति विकास प्रक्रिया चला करती है वैसे ही जिस पानी के उबलने के पीछे एक प्रक्रिया चलती रहती है। हम उपनाय के प्रति वैसे ही अवगत होने हैं जस चाय के लिये उबलने वाले पानी के प्रति। किन्तु पानी सभी उबलता है जब पानी में गर्मी पहुँचाने वाली प्रक्रिया एक अवस्था विनोप में पहुँच जाती है। इसी कारण, एक उपनाय का दूसरे से सम्बन्ध है। गीगा बनाने की कला के विकास से

1 साइकिल माटर और हवाई जहाज की उपनायों मनोविनोद और खेल की मनोवृत्ति के कारण हुई हैं।

2 पेनिसिलिन की उपनाय घटनायों हुई थी।

दूरबीन बनी और उमराव खगोल विज्ञान (Astronomy) का विकास हुआ। माइक्रोस्कोप के बनने से औषधिशास्त्र का विकास हुआ। यूटन के सिद्धांताने आइंस्टीन के सिद्धांतों को आधारगिना रखी। अनुकूल परिस्थितियों में ही आविष्कारक आविष्कार करता है। बिना अनुकूल परिस्थितियों के आविष्कार स्वीकार ही नहीं होता है। यह जानते हुये भी कि बालू से चादी निकल सकती है उसके लिए प्रयास नहीं किया जाता है क्योंकि प्राथमिक दृष्टिकोण से यह लाभदायक नहीं है। उपनायें, वास्तव में, सृष्टि की सचयी प्रक्रिया में उत्पन्न होती हैं और, इसी कारण कई उपनायें समानांतर विकास के रूप में एक साथ अलग-अलग स्थानों या स्थितियों में अवतरित होती हैं। मारकोनी और जर्मनी चंद्र बगु ने एक साथ बेतार के तार के विचार पर कार्य करना प्रारम्भ किया था। प्रत्येक उपनायें पीछे उसकी विनास कहानी रहती है जो इस बात का प्रमाण है कि उपनायें एक सतत विकास का परिणाम हैं और उनका सम्बन्ध सृष्टि-वृद्धि में है।

इसका यह तात्पर्य नहीं है कि सृष्टि बस एक सचयी प्रक्रिया है और उमराव परिवर्तन होने ही नहीं हैं। सृष्टि में, एक ओर, सचयी वृद्धि प्रक्रिया चला करती है और, दूसरी ओर, परिवर्तन प्रक्रिया। परिवर्तन प्रक्रिया के कारण तत्त्वों को क्रमशः न दो श्रेणियों में रखा है— एक बाह्य और दूसरी आंतरिक¹। आंतरिक तत्त्वों में उत्पन्न होने वाले सृष्टि-परिवर्तन मुख्यतः तीन श्रेणियों में आते हैं। एक श्रेणी में वे परिवर्तन आते हैं जो जीवन निवास (Subsistence)—प्रौद्योगिक (Technological)—आर्थिक (Economic) स्तर में परिवर्तन होने के कारण होते हैं जैसे कृषि के अनुसंधान से जनसंख्या तथा शहरीकरण का बढ़ना। दूसरी श्रेणी में वे परिवर्तन आते हैं जो जैविकीय मनादिनादी प्रेरणा (Biological Plea Impulses) के कारण होते हैं। खेल, विज्ञान, कला, फौज, मनोरंजन और परिहास में होने वाले परिवर्तन इसी श्रेणी में आते हैं। इसी श्रेणी में वे परिवर्तन भी आते हैं जो उस अवस्था में आते हैं जब किसी सृष्टि-तत्त्व से तम आकर लग उसे बदल देते हैं। सन अठारहवीं शताब्दी में हवाई द्वीपों के निवासियों का कुछ निपेधा में तम आकर उन्हें सहायता देने का इसका एक उदाहरण है²। तीसरी श्रेणी में वे परिवर्तन आते हैं जो वृद्धि के कारण

1 क्रोबर ए० एल० एथापलोजी पृष्ठ 396-425

2 जिन निपेधों को हवाई द्वीप के निवासियों ने ताड़ा था वे इस प्रकार हैं—

(अ) स्त्रियों का फेला और नारियल खाने का निपेध, (ब) स्त्री पुण्या का एक साथ बँधकर खाने का निपेध, (स) सम्प्रदाय द्वारा किसी व्यक्ति को भूमि को न छूना और दूसरों के कंधों पर जाना क्योंकि सम्प्रदाय द्वारा छूने से भूमि सम्प्रदाय की ही जाती थी, (द) त्योहारों को घरों के अंदर बँधकर मनाना।

हाते है। नाबर ने इह वद्धि परिवर्तन कहा है। सम्यक्त ऐतिहासिक मजहबा, जैसे बुद्धवाद, इस्लाम और इमादयत, का विकास तथा प्रसार और उनसे होने वाले परिवर्तन तथा क्रान्तियों (Revolutions) से हानवाये परिवर्तन इस श्रेणी में आते हैं।

संस्कृति परिवर्तन प्रक्रिया की गत्यात्मकता में उत्पन्न तनाव, संस्कृति परिवर्तन के आंतरिक प्रतिकारकों (Factors) का जन्म देते हैं। यदि मानव-संस्कृति की सम्पूर्णता के मद्देन में विचार किया जाय तो ऐसा प्रतीत होगा कि सभी परिवर्तन प्रतिकारक और प्रक्रियाएँ (Factors and Processes of Change) आंतरिक ही होती हैं। किन्तु, जब हम विशेष संस्कृतियों के मद्देन में विचार करते हैं तो हम यह मिलाता है कि एक संस्कृति विशेष में अनेक ऐसी परिवर्तन प्रक्रियाएँ होती हैं जो बाह्य प्रतिकारकों (External Factors) से उत्पन्न होती हैं। बाह्य प्रतिकारक से तात्पर्य है उस प्रतिकारक से जो किसी संस्कृतिविशेष में बाहर से आया हो। भारत में आधुनिक प्रौद्योगिकी (Modern Technology) इसका उदाहरण है। बाह्य प्रतिकारकों (External Factors) के प्रभाव से उत्पन्न होने वाली प्रक्रियाओं को दो मुख्य श्रेणियों में रखा जाता है जिनमें से एक का प्रसारण की मन्ना दी गई है और दूसरी को संस्कृतिकरण या एकत्वरेण (Acculturation) की। यह पट्टे ही कहा जा चुका है कि प्रसारण एक सामाजिक प्रक्रिया है। मानव इतिहास तथा मानव संस्कृति के गठन में प्रसारण काफ़ी महत्वपूर्ण रहा है। संस्कृतियाँ एक दूसरे से बँस ही सांस्कृतिक तत्वा का लेती रहती हैं जो व्यक्ति एक दूसरे से विचारों तथा व्यवहारों को ग्रहण करते रहते हैं। प्रसारण, वस्तुतः, संस्कृति की स्वाभाविक विशेषता ही है यद्यपि यह नहीं माना जा सकता कि प्रसारण यत्रवत्र स्वचालित है क्योंकि प्रसारण, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, तब वास्तविक होता है जब एक संस्कृति का तत्व दूसरी संस्कृति में इस प्रकार स्वीकृत हो जाता है कि ग्रहण किया हुआ तत्व, ग्रहण करने वाली संस्कृति का अंग बन जाता है। इसी कारण प्रसारण प्रक्रिया में मानव प्रतिकारक (Human Factor) महत्वपूर्ण हो जाता है।

प्रसारण, संस्कृति-तत्त्व पर निर्भर न होकर मानव की भीषणता पर निर्भर करता है। अतः, प्रसारण प्रक्रिया इसी कारण अतिरिक्त में आती है प्रसारण से कि मानव विभिन्न संस्कृतियों में विभाजित हान तथा अलग अलग संस्कृतियों से प्रभावित होने पर भी अलग अलग संस्कृतियों का तत्वा का उपयोग में लाने में सफल होता है। यद्यपि म औद्योगिक क्रान्ति की जननी बनानिक प्रौद्योगिकी (Scientific Technology) का ससार-व्यापी प्रसार इसका उदाहरण है। प्रसारण में मानव प्रतिकारक की महत्ता इसी से सिद्ध होती है कि प्रसारण का प्रतिफल ही सामाजिक व्यवस्था उत्पन्न होता है जैसे कि उपयोग के प्रति। जैसा कि मुद्रण-यंत्र, आलू और टमाटर के ससार-व्यापी

सतत परिवर्तनशील है। किन्तु साथ ही साथ समाज रीतिया (Usages) तथा प्रक्रियाएँ (Procedures) अधिकार (Authority) तथा पारस्परिक सहायता (Mutual Aid) बहुमुखी समूहना (Many Groupings) तथा विभाजन (Divisions) और मानव व्यवहार के नियंत्रण (Controls of Human Behaviour) तथा स्वाधीनता (Liberties) की एक प्रणाली है। सामाजिक सम्प्रदाय का एक पहलू साहचर्य (Association), संगठन (Organization) संरचना (Structure) तथा बहुमुखी सामूहिकरण (Groupings) का है। ता दूसरा पहलू सामाजिक नियमों (Norms) और उनसे उत्पन्न संस्थाओं का है।

सामाजिक आदर्श नियम (Social Norms), आदर्शों (Ideals) और अहंता (Values) से सम्बंधित रहते हैं और एक आर, सामाजिक सम्बन्धों का आदर्श का प्रतिपादित करते हैं तथा, दूसरी आर मानव व्यवहार का नियमित करते हैं। आदर्श नियम जबकि आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक होते हैं यद्यपि उनमें तब जबकि प्रवृत्तियाँ म बहुधा संघर्ष भी रहता है। समाज में विवाह तथा परिवार द्वारा यौन नियमन (Sex Regulation) इसका उदाहरण है। सामाजिक आदर्श नियमों का मानव व्यक्तित्व में उत्पन्न मनोवृत्तियों (Attitudes) तथा संवेग (Sentiments) से सबल मिलता रहता है और इसी कारण समाज में जब कोई आदर्श नियम भंग होता है तो आदर्श नियम भंग करने वाले के प्रति समाज में राय उत्पन्न होता है।

समाज में मनुष्य वस्तुतः आदर्श नियमों पर ही निर्भर करता है। मानव समाज का आदर्श नियम आनुवंशिक नहीं है। वे मानव की कृति हैं। अपनी सीख (Learning) तथा प्रतीकात्मक संदेशवहन (Symbolic Communication) की क्षमताओं के कारण ही मनुष्य उनका निर्माण कर सका है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि संस्कृत सामाजिक आदर्श है। सामाजिक आदर्शों के रूप में संस्कृति सामाजिक आदर्श नियमों में ही समाहित रहती है। मानव व्यवहार में आदर्श और वास्तविकता पारस्परिक सामंजस्य में रहते हुए भी अलग अलग रहते हैं। सामाजिक आदर्श नियम इसी कारण एक ओर, वास्तविकता से सम्बंधित रहते हैं ता, दूसरी ओर, आदर्श से। इसके फलस्वरूप, आदर्श और वास्तविकता के बीच सामाजिक आदर्श नियमों का लम्बा सिलसिला पाया जाता है। अपने में आदर्शों को समाहित किए हुए सामाजिक आदर्श नियम सामाजिक सम्बन्धों में प्रत्याशाओं (Expectations) को जन्म देते हैं, जो समाज के मूल में निहित साहचर्य (Association) का आधार बन जाती हैं।

सामाजिक आदर्श नियमों से ही संस्थाओं की उत्पत्ति होती है। एक संस्था सामाजिक आदर्श नियमों का वह जाल है जिससे मानव जीवन की एक या कई

आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हानी है। विज्ञान आर्थिक व्यवस्था राजनैतिक व्यवस्था, मन्वै व प्रणाली (Kinship System) आरधम व आधारभूत आवश्यकताओं है जा सरथा-या द्वारा पूण हाती हैं। सस्थायें एक आर सामाजिक आर्या नियमा म बधी रहनी है तो दूसरी ओर म माजिक सम्बन्ध व जाल स। मन्वा का सामाजिक पहलू समिति (Association) है। समिति, किसी उद्देश्य की पूर्ति क लिए साठित नामा जिन् समूह न जबकि सस्था किसी उद्देश्य की पूर्ति क लिए नियमित आर्या नियमा वा जाल है। विवाह सस्था का समिति पन परिवार है। समिति साठन सामाजिक साहचर्य (Association) म निहित सामुहिकरण (Grouping) का एक परिणाम है। समाज को धारणा म सामुहिकरण का नाव वम ही निहित है जस दूध म मकनन। समूह बड़े प्रकार क हात हैं और समाजशास्त्रिया न बन् दष्टिकाणो से उनकी व्याख्या भा की है जिस यहा पर दुहराना विषयातिरक हागा। यहा पर स्तना वहना आवश्यक हागा कि जबकि आवश्यकताओं की पूर्ति क्षेत्र (Territory) अपने प्रकार क प्रति सजगता (Consciousness of Kind) और सामाजिक प्रतिष्ठा क आधार पर सामाजिक सम्प्रदाय का सामुहिकरण हाता है निम्न उक्तन समूह मानव-व्यवहार का प्रभावित करन हैं।

एक समाज क विभिन्न समूह एक एकीकृत सामाजिक व्यवस्था म बध रहत हैं जिसे साधारणतः सामाजिक सगठन की मना प्रदान की जाती है। किन्तु सामाजिक सम्बन्ध के जाल का एक दूसरा पहलू भी है और वह है स्तरीकरण (Stratification) तथा उच्चोच्चपरम्परा (Hierarchy) का। सामाजिक सम्बन्ध के जाल म आयु (Age), लिंग (Sex), धन (Wealth) जन्मजात अथवा अर्जित (Achieved) प्रतिष्ठा के आधार पर प्रत्येक व्यक्ति का एक विविष्ट सामाजिक प्रतिष्ठा (Social Status) मिलती है और उसी पर उसकी सामाजिक भूमिका (Social Pole) निर्भर करती है। सामाजिक सम्बन्ध के जाल म निहित प्रतिष्ठा भूमिका प्रणाली (Status Role System) एक आर व्यक्ति क व्यवहार को प्रभावित करती है, व्यक्ति तथा समाज म एकीकरण तथा तात्काल्य लाती है तथा, दूसरी आर, उस सामुहिकरण का आधार बन जाती है जिसम ऊच-नीच का भाव पाया जाता है।

जब यह सामुहिकरण जन्मजात प्रतिष्ठा पर आधारित रहता है ता उसका परिणाम हाता है जाति व्यवस्था जा भारतीय समाज की विशेषता है और जब यह अर्जित प्रतिष्ठा (Achieved Status) पर आधारित होता है ता उसका परिणाम होता है वर्ग व्यवस्था (Class System) जा यास्य अमरीकी समाज की विशेषता मानो जाती है। वास्तव म, प्रयत्न समाज म दाना प्रकार का प्रतिष्ठाओं क तत्क मिल रहने है और इसी कारण, जाति तथा वर्ग मनारब्जायी प्रमय हैं। हा, यह अर्थ है कि की जाति क तत्क अर्थ मात्रा म पावे जान है और वहीं वर्ग क। जाति-वर्ग प्रणालिया म जा सामाजिक व्यवस्था उत्पन्न हाती है, उक्त सामाजिक संरचना

की धारणा प्रदान की गई है। सामाजिक आदर्श नियम (Social Norms) सामाजिक संगठन (Social Organization) और सामाजिक संरचना (Social Structure) सामाजिक वास्तविकता के तीन पहलू हैं जिनके कारण समाज और संस्कृति एक में मिले रहते हैं। संस्कृति के विश्लेषण में सामाजिक संगठन तथा संरचना का विस्तारण स्वतः आ जाता है।

समाज और संस्कृति का अंतर एक दूसरे ढंग से भी समझा जा सकता है। समाज मानव में ही नहीं बल्कि मानवोत्तर प्राणियों में भी पाया जाता है। अपने सांस्कृतिक पहलू के ही कारण, मानव समाज मानवोत्तर प्राणियों के समाज से भिन्न हो जाता है। प्राणी संसार में समाज एक सावभौमिक प्रमय है जबकि संस्कृति केवल मानव में ही पाई जाती है। इस दृष्टिकोण से तीन तथ्यों का विश्लेषण आवश्यक हो जाता है—पहला सावभौमिक समाज के मूल आधार और विशेषताय क्या है; दूसरा मानव तथा मानवोत्तर समाज में क्या समानताएँ हैं और तीसरा किन दशाओं में मानव समाज मानवोत्तर समाजों से भिन्न है। मानव तथा मानवोत्तर समाजों की समानता तथा भिन्नता में ही वे तथ्य छिपे हैं जो समाज और संस्कृति के अंतर को समझने में सहायक हो सकते हैं।

समाज की धारणा में सामुहिकरण का भाव निहित है लेकिन समाज केवल समूहमान नहीं है। समाज कोई वर्गीकृत श्रेणी भी नहीं है। समाज वस्तुतः निहित है प्राणी द्वारा पर्यावरण के साथ किये जाने वाले सामाजिक अनुकूलन (Social Mode of Adaptation) में। अतिजीविता (Survival), प्रजनन (Procreation) और आहार पापण (Nutrition) के लिये प्राणियों का पर्यावरण के साथ सामाजिक अनुकूलन (Social Mode of Adaptation) करना आवश्यक है। सामाजिक अनुकूलन एक वह माध्यम है जो पारस्परिक उत्दीपन (Mutual Stimulus) तथा प्रतिचार (Response) से प्रादुर्भूत साहचय (Association) से उत्पन्न होता है। साहचय ही समाज के सामुहिकृत रूप को जन्म देता है। पारस्परिक उत्दीपन और प्रतिचार बढ़ा पाया जाता है जहाँ एक प्राणी से दूसरे प्राणी का इस प्रकार उत्दीपन मिलता है कि उत्दीपित प्राणी उत्दीपक प्राणी के प्रति जागरूक (Aware) हो जाता है। प्राणी का जिस क्रिया में पारस्परिक उत्दीपन प्रतिचार पाया जाता है उस अतिक्रिया की धारणा प्रदान की जाती है और अतिक्रिया ही सामाजिक क्रिया (Social Act) का दूसरा नाम है। अतिक्रिया वस्तुतः समाज का आधार है क्योंकि अतिक्रिया पर आधारित सम्बन्ध ही सामाजिक सम्बन्ध है। अतः, समाज प्राणियों (Organisms) का वह सामुहिकरण (Aggregation) है जिसमें पारस्परिक उत्दीपन जागरूकता तथा प्रतिचार के जाल के आधार पर, प्राणी-साहचय (Association of Organisms) उत्पन्न होता है। समाज अपने मूलरूप में, अतिक्रिया से उत्पन्न होने वाले प्राणी साहचय में ही निहित रहता है।

समाज इस प्रकार, एक जैविक आवश्यकता है। समाज जीव क ही समाज एक सुगठित इकाई है लेकिन समाज जीव नहीं है। एक सद्चारी समूह हान क कारण, समाज जाव म मल्ल भिन हा जाता है। प्राणी-अतिजीविता (Survival of Organism) म समाज एक महत्वपूर्ण कारक है¹। इसका यह तात्पर्य नहीं कि प्राणी अतिजीविता समाज पर ही निर्भर है। अतिजीविता प्राणी तथा समाज दाना पर निर्भर है। हा, यह अवश्य है कि जहा समाज अस्तित्व मे आया है वहा समाज अतिजीविता का एक महत्वपूर्ण माध्यम बन गया है। समाज क माध्यम मे प्राणी पर्यावरण क साथ अनुकूलन तथा सन्तुलन करने मे सफल हाता है समाज स प्राणी को बल प्राप्त हाता है समाज क ही माध्यम से प्राणी का सुरक्षा (Protection) तथा आहार पापण (Nutrition) प्राप्त हाते हैं और समाज क ही माध्यम स प्रजनन की प्रक्रिया सम्पन्न हाती है। प्राणी-साहचय जा पारस्परिक उद्दीपन जागृकता तथा प्रतिचार पर आधारित रहता है समाज का मूल आधार है किन्तु यह समझना भूल हागी कि समाज केवल प्राणियो स ही मिलकर बनता है। समाज, वस्तुतः, प्राणी स पर पारस्परिक उद्दीपन प्रतिचार की श्रृंखलाजा स बना एक विन्याम (Arrangement) है जा निरन्तर प्रवाहित होता रहता है। साहचय स सामाजिक कार्यों का विशेषीकरण (Specialization of Social Functions) उत्पन्न हाता है जा समाज के एकीकरण तथा नरन्तर्य मे महायक होता है। साहचय विन्यायीकरण तथा एकीकरण स समाज मे, एक भार, संरचना उत्पन्न हाती है तथा, दूसरी भार, नरन्तर्य का अभ्युदय हाता है।

प्राणी की एक जैविक आवश्यकता के रूप म, समाज के मुख्य चार सावभौमिक आधारभूत कार्य हैं। पहला जनसंख्या का बनाये रखना, जिसके मुख्य साधन हैं आहारपापण का प्रवण (Provision of Nutrition) क्षति या चाट मे सुरक्षा (Protection against Injury) और नय प्राणिया का प्रजनन (Reproduction

- 1 एली (Allee) द्वारा सफेद चूहों पर किया गया परीक्षण इसका उदाहरण है। इस परीक्षण में यह दिखाया गया है कि सफेद चूहे जब छोटे छोटे समूहों में रहते जाते थे तब उनकी वृद्धि अधिक होती थी। यदि किसी चूहे क सिर में घोट लग जाती थी या कोई घाव हो जाता था तो दूसरे चूहे चाटकर उस टोक कर लेते थे। एसी दशा में यदि कोई चूहा अलग रहना जाना था तो अप चूहे उसकी दलनाल नहीं कर पाते थे और उसकी अतिजीविता की सम्भारना कम हा जाती थी। जब पिजडे का ताप कम कर दिया जाना था और गीत बढ़ाया जाता था तो सारे चूहे एक साथ इस प्रकार सट कर बैठ जाते थे कि एक दूसरे क सम्पर्क से अपने को गम रख सके—हसकीदिट्स मन एण्ड रिज यवस पृष्ठ 32

of New Organisms)। दूसरा समाज की जनमख्या में सामाजिक कार्यों का विभाजन। इसी आधार से विशेषाकरण और सामाजिक प्रतिष्ठा तथा भूमिका प्रणाली उत्पन्न होती है। तीसरा, समाज समूह में समकक्ष बाँध रखना जिसके लिये एक और समाज सदस्य में सम्पर्क बनाये रखने तथा पारस्परिक सहिष्णुता की नींव दूसरी बार, बाह्य सदस्य के प्रतिरोध की प्रेरणा मिलती है। यही स समाज तथा व्यक्ति में तादात्म्य उत्पन्न होता है। व्यक्ति समाज के साथ अपना अभिन्नान (Identity) स्थापित करता है। चौथा, सामाजिक प्रणाली (Social System) को नैरतय प्रदान करना।

समाज वस्तुतः प्राणी की उस जैविक क्षमता की उत्पत्ति है जिसके कारण वह पर्यावरण के साथ सामाजिक अनुकूलन करने में समर्थ होता है। आगिक उद्विकास (Organic Evolution) के साथ साथ प्राणी की यह क्षमता भी बढ़ती है और इसी कारण आगिक उद्विकास के साथ साथ समाज के गुणों की आधार की अभिव्यक्ति भी बदल गई है। प्रत्येक प्राणी में समाज के आधार की अभिव्यक्ति उसकी जैविक संरचना की विशेषताओं के अनुसार हुई है। कीड़े मकाड़ा, चींटियाँ, मधुमक्खियाँ, चिड़ियों, वानरा और मनुष्य में पाये जाने वाले समाजों का अंतर इसका प्रमाण है। इसलिये किंग्सले डेविस¹ (Kingsley Davis) ने यह कहा है कि समाज की उत्पत्ति आगिक उद्विकास से न होकर आगिक उद्विकास के आधार पर हुई है। आगिक उद्विकास के बहुमुखी होने के कारण ही समाज एक विचरणशील प्रमेय (Variable Phenomenon) बन गया है। लेकिन, समाज की विचरणशीलता के बावजूद भी, सभी प्रकार के समाजों में कुछ आधारभूत तत्व पाये जाते हैं। साहचर्य, समूह में रहने की प्रवृत्ति सामाजिक सम्बंधों में प्रभुत्व अनुवर्तन (Dominance Submission), व्यक्तियों समूहों और व्यक्तियों तथा समूहों के बीच पाई जाने वाली प्रतियोगिता (Competition) तथा सहकारिता के प्रमेय सामूहिकरण (Grouping) सामाजिक सम्बंधों की जटिलता व्यक्ति में समाज के साथ तादात्म्य तथा अभिन्नान (Identity) स्थापित करने की प्रवृत्ति आयु (Age) लिंग (Sex), बल (Strength) तथा प्रतिष्ठा (Status) पर आधारित विभिन्न सामाजिक भूमिकाएँ (Social Roles), सामाजिक सम्बंधों में निहित पारस्परिक प्रत्याशाएँ (Expectations) और सामाजिक संरचना तथा नैरतय सभी समाजों में पाये जाते हैं।

प्रत्येक समाज में व्यक्ति को अपने समाज के व्यवहार कलापों को ग्रहण करना पड़ता है। सभी समाजों में व्यक्ति की सदस्यता जन्म पर आधारित होती है

किन्तु यथा कथा बाह्य मदस्य भी समाज में दाखिल किये जाने हैं। चाहे कोई व्यक्ति किसी समाज विशेष में जन्मा हुआ या बाहर से आकर मदस्यता ग्रहण की है, दाना अदम्याआ में समाज और उसके सदस्यों के साथ सामंजस्य स्थापित करना आवश्यक हो जाता है। यही स, समाज तथा व्यक्ति के बीच तादात्म्य लाने वाली प्रक्रिया में सामाजिकरण (Socialization) का अभ्युदय होता है। सामाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से व्यक्ति सामाजिक सम्बन्धों में भाग लेकर तथा समाज के व्यवहार पैटर्न (Patterns of Behaviour) का ग्रहण करके और समाज के साथ सामंजस्य स्थापित करके, समाज में अपने लिए एक स्थान बनाता है। सामाजीकरण में अभ्यासीकरण (Habituation) अनुकरण (Imitation) और सीखने (Learning) का महत्वपूर्ण हाथ रहता है। प्राणी के सामाजीकरण पर किये गये परीक्षणों के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि किस सीमा तक इसमें मूल प्रवृत्तियों का हाथ रहता है और किस सीमा तक सामाजिक उत्तेजन (Social Stimulation) का। उदाहरणार्थ मुर्गी का बच्चा मुर्गी का दाना चुगता देख कर ही दाना चुगना प्रारम्भ करता है यद्यपि उसमें दाना चुगने की जैविक क्षमता पहले ही से विद्यमान रहती है। इस विषय में दो तथ्य स्पष्ट हैं—एक, जिस प्राणी की जैविक संरचना मानव की जैविक संरचना के जितना समीप है, उतना ही उसमें सीखने की अधिक क्षमता है यद्यपि भाषागत प्रतीका तथा पीढ़ी दर पीढ़ी संचित सामाजिक अनुभव के माध्यम से सीखने की क्षमता बसल मनुष्य में ही है। दूसर, जिस प्राणी की जैविक संरचना मानव की जैविक संरचना में जितना दूर है, उसके सामाजिक व्यवहार के निर्धारण में आनुवंशिक कारकों का उतना ही अधिक हाथ है।

संस्कृति के आधारों को स्पष्ट करत समय यह दिखाया गया है कि अपनी जैविक संरचना में मानव अन्य प्राणियों से भिन्न है और इसी कारण मानव-समाज भी अन्य प्राणियों के समाज से भिन्न है। यह मानव की जैविक संरचना की विशेषताओं का ही परिणाम है कि मानव में सीखने के आधार और यत्र अधिक तीव्र हा गये हैं, और उसमें सीखने का क्षेत्र अधिक व्यापक हुआ गया है। भाषागत प्रतीका और लिपि के कारण मानव का सीखना अधिक गतिशील हुआ गया है। प्रौद्योगिकी (Technology) का निर्माण बसल मनुष्य में ही किया है। मानव की सीखने की क्षमता तथा प्रौद्योगिकी के कारण मानव समाज में पाया जाने वाला विशेषीकरण आनुवंशिकता पर आधारित नहीं है। मनुष्य का ध्यान शरीर का ताप समान रखने की आवश्यकता है और इसी कारण मनुष्य गर्मों में शीतलता लाने का प्रयास करता है और शीतलता में गर्मों। इसका परिणाम यह हुआ है कि मानव में यौन प्रिया क्रतुओं के प्रभाव में मुक्त हो गई है। मानव में यौन प्रिया सतत चरती रहती है, जिसके कारण मानव की प्रजनन-शक्ति अन्य प्राणियों की अपेक्षा अधिक बढ़ गई है। जन्म-निर्धारण-शक्ति के कारण मानव में आशय का अभ्युदय हुआ है जिसके कारण मानव-

समाज, आनुवंशिक कारकों के स्थान पर, स्यादश नियम व्यवस्था (Normative Order) से अधिक प्रभावित रहता है। सन्धेप मे, जविक आनुवंशिकता (Biological Heredity) की अपेक्षा, मानव व्यवहार तथा समाज सामाजिक आनुवंशिकता (Social Heredity) से अधिक प्रभावित रहत है। मानव समाज मे सामाजिक आनुवंशिकता के पहलू का जुड जाना ही मानव समाज की विशेषता है। मानव की सामाजिक आनुवंशिकता मे ही सस्कृति निहित है। इसी आधार पर किंग्सले डविस ने विभिन्न समाजों का नौ श्रेणियों मे वर्गीकरण किया है। एक श्रेणी मे मानवैतर प्राणियों के समाज आते हैं जिन्हें जविक सामाजिक प्रणाली की सत्ता दी गई है और दूसरी श्रेणी मे मानव समाज आता है जिस सामाजिक-सांस्कृतिक प्रणाली कहा गया है।

मानव एक है पर अनेक। मानव सस्कृति भी 'अविभक्त विभक्तपे' (एकता-अनेकता) के प्रमेय मे सन्निहित है। इसी कारण सामाज्य सस्कृति (The Culture) तथा विशिष्ट सस्कृति (A Culture) मे अंतर भी किया जाता है। उसी प्रकार मानव समाज मे भी एकता अनेकता का प्रमेय सन्निहित हा गया है। गिंसवग के अनुसार, मानव सम्बन्धों का सम्पूर्ण ज्ञान सामाज्य समाज है जबकि विशेष समाज कुछ व्यक्तियों का वह समूह है जो एक विशेष प्रकार के सम्बन्धों या व्यवहार प्रकारों (Modes of Behaviour) से बंधा रहता है। विशिष्ट समाज की यह धारणा इतनी परमाणुवादीय (Atomistic) प्रतीत हाती है कि अततागत्वा समाज तथा समूह का अंतर ही निरापन्न हा जाता है।

पर्यावरण भौगोलिक तथा ऐतिहासिक परिस्थितियों की भिन्नताओं ने विशिष्ट मानव समाजों का जन्म दिया है। हिमालय, अरब सागर हिन्द महासागर तथा बंगाल की खाड़ी ने उन भौगोलिक परिस्थितियों को विशिष्टता प्रदान की जिसे भारत भूमि की सजा दी गई है। इन विशिष्ट भौगोलिक परिस्थितियों मे विशिष्ट ऐतिहासिक परिस्थितियां तथा प्रक्रियाएँ चलती रही है जिनसे भारतीय समाज का निर्माण हुआ है। देग काल की सीमाओं से बँधने पर ही विशिष्ट अस्तित्व मे आता है। अतः विशिष्ट समाज देग काल की सीमा से बंधा एक वह समाज विशय है जिसकी अपनी विशिष्ट सस्कृति है। पर्यावरण और भौगोलिक तथा ऐतिहासिक परिस्थितियों के अतिरिक्त सस्कृति विकास के स्तर की भिन्नता, राष्ट्र, धर्म तथा भाषा ने भी विशिष्ट समाज के परिसीमन मे योग दिया है। इ ही कारणों का परिणाम है कि विशिष्ट समाज मे भी विशिष्ट समाजों की उत्पत्ति हाती है। भारत मे हिन्दू मुस्लिम और आदिवासी समाजों की विशिष्टता इसका उदाहरण है।

नैरतय सस्कृति और समाज दोनों की विशेषता है। सस्कृति के नैरतय का आधार समाज है और समाज के नैरतय का आधार सस्कृति। इसी कारण, मानव स्तर पर सस्कृति तथा समाज दोनों मे ऐतिहासिकता का समावश होता है। दोनों का

अम्बित्व म बाल (Time) की पण्डमूमि रहती है। सम्कृति परिवर्तन सामाजिक व्यवस्था मे प्रतिरुग्णित हाता है और सामाजिक परिवर्तन सम्कृति म। अत, सस्कृति के विश्लेषण म समाज का विश्लेषण आवश्यक हो जाता है और समाज के विश्लेषण म सस्कृति का। किमका, किस सन्दर्भ म कहा तक विरूपण हा यह विश्लेषणकर्ता क नष्टिकोण और आवश्यकता पर निर्भर करता है।

४

सस्कृति और सभ्यता

इतिहासज्ञ और समाजशास्त्री सस्कृति (Culture) और सभ्यता (Civilization) म अंतर करते उनको अलग-अलग प्रमय मानते हैं जबकि मानवशास्त्री उनको एक ही प्रमय के दो ऐसे स्तर मानते हैं जिनम केवल माना का अंतर है न कि प्रकार का। सभ्यता शब्द जपजी ने शब्द सिविलीजेशन (Civilization) का हिंदी पर्याय है। शब्दकोश मे सभ्यता मे अर्थ लिया जाता है 'समाज या सस्कृति की प्रगति से, या प्रगति की उस दशा म जिसमे कला, विज्ञान और राज प्रबंध (Statecraft) का अपेक्षाकृत अधिक विकास हुआ हो, या उस सस्कृति म जो वर्तमान यारोप का लक्षण है'। मानव इतिहास इस बात का साक्षी है कि प्रौद्योगिकी और शहरीकरण के विकास के साथ-साथ विज्ञान कला राज प्रबंध की उन्नति होती आयी है और वर्तमान यारोप की सस्कृति उन्नी निरंतर विकास का एक परिणाम है। यारोपीय सस्कृति स उत्पन्न कुछ तत्व (जस शहरीकरण प्रौद्योगिकी, औद्योगीकरण, विनोपीकरण, बौद्धिकता धमनिरपेक्षिता, राजनीतिक तथा आर्थिक शक्तिमों और साधना का बन्धीकरण और प्रभुता सम्पन्न राज्य) आज यारोपीय सस्कृति के ही तत्व नहीं हैं—ये तत्व मारे मसार म फल रह हैं और एक प्रमुख परिवर्तनकारी मकुल बन गये हैं। इसी सकुल का समाजशास्त्री सभ्यता की धारणा म बाधते हैं। सभ्यता का घनिष्ट सम्बन्ध पार्थिव म स्थापित किया जाता है। ओडम (Odem) ने सभ्यता के पांच आधार मान हैं—1 शहरीकरण (Urbanization) 2 साध साध विनोपीकरण (Specialization) और सन्ध्रण (Concentration) 3 प्रौद्योगिकी और उद्योग तन्त्र (Industrialism), 4 बौद्धिकता तथा धमनिरपेक्षिता 4 शक्ति का बन्धीकरण और 5 तानाशाही राज्य (Totalitarian State)¹। इसी आधार पर यह कहा गया है कि सभ्यता सस्कृति की एक विक्रमि

1 ओडम, एच० डब्ल्यू०, अण्डरस्टडिंग सोमायटी अख्याय 15

अवस्था तथा विंगपीकृत प्रौद्योगिक स्तर (Specialized Technical Level) है। किन्तु, वह विकसित अवस्था तथा विंगपीकृत प्रौद्योगिक स्तर क्या है? उसका उत्तर मानवशास्त्रियों की उम परिभाषा में मिलता है जिसमें यह कहा गया है कि सम्यता शहरी सस्कृति है।

समाजशास्त्रियों की ऐसी भावना है कि सस्कृति की अपेक्षा सम्यता का अधिक यथाथ मापण्ड हो सकता है। सम्यता सदैव विकामा-मुख रहती है और जिना किसी प्रयास के स्थानांतरित हाती रहती है। इसी दृष्टिकोण से सम्यता की परिभाषा में यह कहा गया है कि सम्यता से तात्पर्य उस सम्पूर्ण यंत्र (Mechanism) और मगहन में है जो मनुष्य ने अपने जीवन की दशाओं को नियंत्रण मलानक प्रयास में निर्मित किया है। इसमें मानव की सामाजिक संगठन प्रणाली ही नहीं बरन उसके द्वारा निर्मित प्रविधियाँ (Techniques) और भौतिक यंत्र (Material Instruments) भी सम्मिलित हैं। सस्कृति मानव की उन वृत्तियाँ स बनती हैं जिनसे उमकी लालमाओ (Cravings) की तुष्टि हाती है या जिनका मानव साम्य साधन के रूप में स्वीकार करता है। ऐसी वृत्तियोंका सम्बन्ध जातरिक आवश्यकताओं से हाता है न कि बाह्य आवश्यकताओं से। ये वृत्तियाँ भ्रह्मो, रागात्मक लगन, बौद्धिक माहमिकता (Intellectual Adventures) और शलियों (Styles) क क्षेत्र से सम्बन्धित हैं। सस्कृति सम्यता का वैपम्य (Antithesis) है। अपने जीवन यापन क प्रकारा विचारा, कला (Art), धम (Religion) प्रतिमोदन (Recreation) और आनंद विनोद (Enjoyment) के दैनिक स-यवहार (Duly Intercourse) में, सस्कृति मानव स्वभाव की अभिव्यक्त है।

आडम के अनुसार, सम्यता की अपेक्षा, सस्कृति में स्वसादवतीकरण (Self Perpetuation) और स्थायित्व की अधिक क्षमता है। सस्कृति में सम्यता की अपक्षा, वह शक्ति भी अधिक अतनिहित है जिसके द्वारा सस्कृति अपना पुनरुत्पादन (Reproduction) ही नहीं कर सकती है बरन विकास की विभिन्न अवस्थाओं में उदविकसित भी होती रहती है। अतः, सस्कृति का सम्बन्ध जनस है जबकि सम्यता का सम्बन्ध राज्य (State) से। सस्कृति सप्रयित समाज (Composite Society) है जिसमें अपने पुनरुत्पादन की क्षमता है और सम्यता सघटक समाज (Constituent Society) है जिसमें सीमित प्रकार के विशेष उद्देश्य या उद्देश्य की ही पूति होती है। सस्कृति समाज के विकास का सर्वोच्च साधन है जबकि सम्यता, अपने में ही सीमित, एक साधन है न कि किसी साध्य के लिए साधन। सस्कृति एक आधारभूत सामाजिक प्रक्रिया (A Fundamental Social Process) और सामाजिक साधनों (Social Means) का प्रतीक है जबकि सम्यता प्रतीक है सामाजिक पदार्थों

(Social Products) और पारिष्व प्राविधिक साधना (Material Technical Means) की। सभ्यता प्रतीक है वृद्धि (Growth), विकास (Development) उत्पत्तिकाम (Evolution) और अतिजीविता (Survival) की और सम्यता प्रतीक है प्रगति (Progress), निधि (Achievement), नाति (Revolutions) और अयोगति (Decline) की। मशीन (Machine) जनपुत्र (Mass) और वर्ग (Class) सम्यता के चिह्न हैं। जन (The people), प्रजातन्त्र (Democracy) मानव चपटारे (Human Striving) और व्यक्तिगत तथा व्यक्तिगत (Personal Individual) सयाग (Opportunities) सभ्यता के प्रतीक हैं। सभ्यता युवावस्था (Youthful), विचारमय (Ideological) अनौपचारिक (Informal) यथार्थ (Realistic) और मानव जाति के भावना तथा आत्मा की मार वस्तु है। सम्यता का युवावस्था बौद्धिकता, सगठन, प्राविधिकता और मुटापिया (Utopia) की ओर अधिक रहता है। सभ्यता प्रतीक है सामाजिक निर्णयवाद (Social Determinism) की जबकि सम्यता प्रतीक है प्राविधिक निर्णयवाद (Technical Determinism) की। सभ्यता का विकास जन जीवन के घरातिल सहाना है जबकि सम्यता जन जीवन पर अकारणित (Superimposed) होती है। साधारणतः, सभ्यता सहवामी समुदाय और प्राथमिक समूहों के जीवन का प्रतिबिम्ब होती है जबकि सम्यता प्रतिबिम्ब होती है नगरीय प्राप्ति (Urban Attainments) औद्योगिक व्यवस्था (Industrial Order), द्वितीयक समूहों (Secondary Groups) बड़े-बड़े शहरों की तरह संगठित राष्ट्रों और साम्राज्यों की। सामाजिक उत्पत्तिकाम की सभी अवस्थाओं में लागू होने वाली, सभ्यता संचयी विरासत (Cumulative Heritage) है जबकि सम्यता विकसित प्रगति का एक अवस्था होती है।

साधारणतः सभ्यता और सम्यता में ऐसे ही विभेद किये जाते हैं। इन विभेदों के आधार पर सम्यता का जो रूप निरखता है उसमें कुछ अवाञ्छनीयता का भाव भवता है। यदि सभ्यता वाञ्छनीय है तो सम्यता भी क्या सभ्यता और सम्यता दोनों ही मानव की वृत्तियाँ हैं। इन विभेदों के बावजूद भी यह कहना कठिन है कि कहीं सम्यता प्रारम्भ होती है और कहीं सभ्यता। यदि सामान्य मानव-सभ्यता के सन्दर्भ में विचार किया जाय तो सम्यता भी सभ्यता में हीन हो जायगी क्योंकि उस स्तर पर सभी कुछ मानव सभ्यता का अंग है। सम्यता और सभ्यता के विभेद अतिसूक्ष्म यद्यपि सब अंग है जब हम सभ्यता के सन्दर्भ में मानव वृत्तियाँ (उनके स्वभाव और सम्बन्ध) पर विचार करते हैं। मानव चिन्ताओं के प्रारम्भ में ही शहरों, प्रौद्योगिकी, बौद्धिकता आदि उन विशेषताओं का जन्म हुआ था जो आज

1. यहाँ तक प्रस्तुत सम्यता का धारणा के विषय अध्ययन के लिए दक्षिण जोरुम की पुस्तक थ्रुट्टरस्ट्रिंग मासायरी अध्याय 15

हम सभ्यता के लक्षण मानते हैं। इन लक्षणा का विकास शहरीकरण और प्रौद्योगिकी के साथ साथ बना है। अतः यह कहना गलत है कि सभ्यता ही मचयी प्रक्रिया है। सभ्यता और सस्कृति दोनों ही मचयी प्रक्रियाएँ हैं। इसका यह तात्पर्य नहीं कि सभ्यता और सस्कृति में अंतर करना आवश्यक नहीं। वर्तमान संसार में पारोप की औद्योगिक शहरी व्यवस्था बन रही है और एक प्रमुख परिवर्तनकारी शक्ति का रूप ले रही है। आज तक के उच्चतम विकास में एक ऐसा संकुल बन गया है जिसे धारणा की सीमा में लाना आवश्यक है। शहरी प्रौद्योगिक औद्योगिक तत्व और उनमें उत्पन्न सामाजिक आर्थिक विशेषताएँ इस संकुल के मुख्य आधार हैं। यही संकुल सभ्यता है जो वस्तुतः प्रतीक है मानव सस्कृति के विकास की एक अवस्था विशेष का। इसी दृष्टिकोण से यह कहना ठीक होगा कि सभ्यता शहरी व्यवस्था की संस्कृति है।

५

सस्कृति के कारक तत्व

यह निर्विवाद है कि मानव की शहरी इहिक (जवकीय) आवश्यकताएँ सस्कृति निर्माण में प्रथम कारक हैं। शिकार करने के लिए शेर के पंजों के पास रहना के लिए बिच्छू के पास उभरा विपभरा डक है और शरीर का गम रचने के लिए टुण्ड प्रदेश के जानवरों के शरीर पर बाल। किन्तु मनुष्य के पास न तो शर के समान कोई पंजा है न बिच्छू के समान कोई डक और न शरीर को गम रखने के लिए शरीर पर उगने वाले घने उम्बे बाल। गर्मी सर्दी से बचने के लिए मनुष्य को कपड़ों और घर की आवश्यकता है, भूख मिटाने के लिए फल अनाज तथा शिकार की श्रम अपने बचाव के लिए अस्त्र शस्त्रा की। सस्कृति को जन्म देने वाली शहरी दहिक आवश्यकताएँ मानव का शरीर संरचना से उत्पन्न होती हैं और मानव को शरीर संरचना आंगिक उद्विकासी प्रक्रिया (Organic Evolutionary Process) की उत्पत्ति है। सीधे खाने पीने का परो पर चलने की क्षमता चलन फिरने के भार में शर्तों का मुक्त होना, हाथ और कलाई का अधिक सुगमता में चला जाकर घुमा सकता, अंगुलियों और अंगुठी की सहायता से वस्तुओं का पकड़ कर उनकी अनेक पहलुओं में देख सकता दृष्टि में शक्ति के शक्ति की क्षमता (त्रिविध दृष्टि Stereoscopic Vision), अमूर्त विचार क्षमता (Abstract Thinking), 'तात्त्विक तथा काय कारण सम्बन्ध स्थापित कर सकने में सक्षम मस्तिष्क और भाषा के माध्यम से गठे हुए प्रतीकों के द्वारा विचारों के आदान प्रदान की शक्ति के शारीरिक विशेषताएँ हैं जो मानव का प्रकृति से वरदान के रूप में मिली हैं और जिन्होंने मानव को सस्कृति-

निर्माण की क्षमता प्रदान की है। मानव मस्तिष्क, हाथ और भाषा ही व मुख्य उपकरण हैं जिनके द्वारा सस्कृति निर्माण सम्भव हुआ। आंगिक उदविकास की प्रक्रिया ही ऐसी रही है कि, एक ओर, मानव नाम क प्राणी न उन शारीरिक उपकरणों की खाधा जितस अथ प्रकार क प्राणी प्रकृति स सामञ्जस्य स्थापित किया करत है और, दूसरी ओर, उस वे शारीरिक विशेषताय प्राप्त हुई जिनकी सहायता से उसने प्रकृति में सामञ्जस्य स्थापित करने के लिए अशरीरी (Extra Corporeal) उपकरण उत्पन्न किए। यही नहीं, भाषा की निर्मित करने की क्षमता के कारण, मानव अपने अनुभवा को परम्परागत बनाने में सफल हुआ। कार्य कारण सम्बन्ध स्थापित कर सकने की क्षमता और हाथ की संरचना से मिले कौशल ने यदि अशरीरी उपकरणों (सूत्र, मातायात के साधन वृषि, कपड़े, कला, राज्य इत्यादि) के निर्माण में सहायता की तो अमृत विचार विमर्श की क्षमता और भाषा प्रतीकों ने अनुभवों को सुरक्षित रखने और आकल्पनाओं को बढ़ाने में सहायता की। इही क्षमताओं के कारण, अथ प्राणियों के विपरीत, यदि मानव को प्रकृति के अनुकूल बनना पडा तो उसने प्रकृति को भी अपने अनुकूल बनाने का प्रयत्न किया। यह सर्वविध है कि यदि मनुष्य हवाओं के रुख को न बदल सका तो उसने नारों में परदे लगाकर मातायात में हवा का लाभ उठाया, यदि वह नदियों की प्रलयकारी बाढ से न बच सका तो उसने बाध-बाध कर उन पर नियंत्रण पाने का प्रयत्न किया। प्राकृतिक सन्तुलन को समाप्त कर मानव ने अपना एक अलग सन्तुलन (सांस्कृतिक सन्तुलन) स्थापित किया। सस्कृति, चम्पुत, यह परदा है जो मानव ने अपने और प्रकृति के बीच तान रक्खा है। ✓

६

सस्कृति ऐतिहासिक पक्ष

सर चार्ल्स डार्विन (Sir Charles Darwin) और उनके अनुयायियों द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों के अनुसार, मनुष्य और उसकी शारीरिक विशेषताएँ प्रागिक उदविकासी प्रक्रिया की उत्पत्ति हैं। जीव विकास-वेत्ताओं (Paleontologists) और नूतनवेत्ताओं (Cecologists) के अनुसार इस पृथ्वी के वर्तमान तथा विलुप्त प्राणी उदविकासी आंगिक प्रक्रिया की उत्पत्ति हैं। प्राणी प्राणी की शरीर रचनाओं में पाई जाने वाली समानताएँ और पृथ्वी के गभ में पाये गये लुप्त प्राणियों के कंकाल (जीवाश्म

१ विधेय अध्ययन के लिए देखिए ग्रहण चाइल्ड द्वारा रचित मेक्स हिमेल्टक अध्याय २

fosil), इसके प्रमाण है। जीव विज्ञान विभाग वेत्ताजा के अनुसार इस बात के प्रमाण अवश्य मिलते हैं कि आज से सक्कड़ा करोड़ों वर्ष पूर्व एक बृहत् युग था जब एककोपी (प्रजीव Protozoa) जीव उत्पन्न हुए। इस युग का आरम्भियोज्वायक (Archaozoic प्राजीवाय) युग कहा गया है। उसके बाद प्रोटिरोज्वायक (Proterozoic पूर्व पुराजावीय) युग में बहुकापी (Metazoa) प्राणियों की उत्पत्ति हुई। मानव बहुकापी है, अतएव उसने उत्पन्न की जड़ें इसी युग के विकास में हैं। पैलियोज्वायक (Palaeozoic पुराजीवीय) युग को मछलियाँ का युग कहा गया है क्योंकि इस युग में रीढ़धारी (Vertebrate) प्राणियों के विकास के दौरान में मछलियाँ का विकास हुआ। इस युग में प्राणिक विकास काफी गति से हुआ। इस युग के अंत तक उभयचरा (Amphibia) मत्तक जन्म प्राणी जो पानी में भी रह सकते हैं और पृथ्वी पर भी) और रगने वाले प्राणियों का विकास हो चुका था। मेसोज्वायक (Mesozoic मध्यजीवीय) युग में रगने वाले प्राणियों (Reptiles सरीसृपों उरगों) का चरम विकास हुआ और यह विकास इस सीमा तक पहुँचा कि इस युग के अंत तक इस युग में विकसित, भारी भरकमवाली रेप्टाइलो (Reptiles) का अंत हो गया। पैलियोज्वायक युग के अंतिम अर्धाय में छोटे स्तनधारी (स्तनपायी, Mammals) प्राणी अस्तित्व में आ चुके थे। मेसोज्वायक युग में प्रचण्ड, दत्याकार भारी भरकमवाली रेप्टाइलो न पृथ्वी पर इतना प्रभुत्व जमा रखा था और उनसे पृथ्वी इतनी अशांत थी कि घतमान स्तनपायी प्राणियों के पुंज छिपे से रहे और उनका विकास रुका सा रहा। मेसोज्वायक युग के बाद सेनोज्वायक¹ (Cenozoic नूतन जीवीय) युग में वर्तमान स्तनपायी प्राणियों का, जिनमें मनुष्य भी शामिल है, विकास हुआ। जीव विकास के दृष्टिकोण से सेनोज्वायक को दो युगों में बाटा गया है—एक टर्शियरी (Tertiary) और दूसरा क्वाटनरी (Quaternary)। टर्शियरी में बड़े बड़े स्तनपायी प्राणियों (बंदरों, बानरों) और मानव के प्रकार के तथा स्वयं मानव का जन्म देने वाली प्राणिक शाला का विकास हुआ। क्वाटनरी युग के आरम्भ होते होते जीवाश्म के रूप में ऐसे प्राणी मिलते हैं जो बस्तुतः मानव के समान नहीं हैं कि तु अपनी शरीर रचना में बानरों की अपेक्षा मानव के अधिक निकट हैं। क्वाटनरी युग का आरम्भ दस लाख वर्ष ईसा पूर्व हुआ था और वह वर्तमान में समाया हुआ है। इस युग के मध्य में वर्तमान मानव के जीवाश्म (Fossils) मिलते हैं। अतएव, यह कहा जा सकता है कि वर्तमान मानव का अस्तित्व लगभग पचास हजार वर्ष से अधिक पुराना नहीं है। प्राणिक विकास के इस सक्षिप्त विवरण से यह न समझना चाहिए कि ये युग पूर्व निर्धारित हैं और किसी अदृश्य वाजना के अनुसार अथवा अवसर पर प्राणी विकसित हो गए। आगिक उदयिकास एक जटिल प्रक्रिया है जिसमें आनुवंशिक

1 सेनोज्वायक को केनोज्वायक (Cenozoic) भी कहा जाता है।

कृता और पर्यावरण का हाथ रहा है। जीव (Organism) में निरंतर परिवर्तन होने के कारण ही ये विकास सम्भव हुआ है और स्वयं मानव का गठन भी धनक परिवर्तनों का परिणाम है। यह विकास और परिवर्तन क्या हुआ? मानव इस पृथ्वी पर क्यों विकसित हुआ? इन प्रश्नों का शास्त्रीय स्पष्टीकरण तो सम्भव हुआ है किन्तु, इस विकास का क्या उद्देश्य है इस प्रकार के प्रश्नों के उत्तर न दिए जा सकें हैं और न दिए जा सकें हैं क्योंकि इस प्रश्नों का ध्यान दान न है न कि समाजशास्त्र में। हा, यह अवश्य है यदि मानव का गठन गलत विकास हुआ यदि मानव का नी आदि है तो मानव द्वारा निर्मित संस्कृति का भी आदिकार है और उसकी भी अपना विकास कहना है।

मिथ्यात इस तथ्य का अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि संस्कृति का आदि और उसका विकास व्रम नहीं है। उनीयवा शताब्दी के प्रारम्भ और मध्य में मानव-शास्त्रियों ने जहाँ, एक ओर मानव के आंगिक और सांस्कृतिक विकास की गृह्यिया का सुश्रुताया चहाँ, दूसरी ओर, आदिकालीन संस्कृति की व्याज के व्यूह में भी संक-गए। इसी प्रयास में सांस्कृतिक उद्विकासवाद (Cultural Evolutionism) की धारणा का जन्म हुआ और इस धारणा के प्रतिष्ठापापका न यह प्रतिपादित किया कि इतिहास की गति प्रगति की ओर है। दूसरी ओर, साइयत से प्रभावित इति-हासकारों ने यह लिखान का प्रयत्न किया कि मानव पतन की ओर जा रहा है। किन्तु, शास्त्रीय दृष्टिकोण से ये दोनों मन गलत हैं क्योंकि इतिहास हम नहीं बता सकता है कि मानव प्रगति की ओर है या पतन की ओर। प्रगति क्या है? इस प्रश्न का शास्त्रीय उत्तर ही कठिन है। तथ्या का निरीक्षण और वर्गीकरण करके तथा उनमें निहित काय कारण के सम्बन्धों के आधार पर विकास प्रक्रिया का प्रतिपादित करने ही शास्त्र भूत और वर्तमान की एक श्रृंखला में जोड़ने वाली कहिया का स्पष्ट कर सकता है। संस्कृति उद्विकास एक निरंतर सचयो प्रक्रिया है और, परिवर्तनों के रूप में, एक ऐतिहासिक तथ्य है किन्तु दुर्भाग्यवत्, इतिहासकारों ने, इस प्रक्रिया को स्पष्ट करने के बजाय, या तो उसमें उद्देश्य, पूर्व निर्धारित गति और निश्चि दृष्टन का प्रयत्न किया है या उसमें अपनी काइ पृथ निर्धारित मायता या उससे किसी भावी कायक्रम का उचित ठहराने का प्रयत्न किया है। हर्बर्ट स्पेंसर (Herbert Spencer) और लुइ मारगन (Lui Morgan) ने यह प्रतिपादित किया कि सभी मानव समाज और संस्कृतिया प्रगति की ओर जा रही हैं और प्रगति की चरम सीमा है याराण अथरीकी समाज का स्तर। इसी विचारधारा के प्रभाव में, इग्लैंड के इतिहासकारों ने विवटा-

- 1 विशेष अध्ययन के लिए देगिए — 1 सट्टानी, एम० आर० मन इन इवोल्यूशन, 2 हावल्स, विलियम मनकाइड से फार, 3 ग्रूम, राबर्ट आन पाइडिंग दि मिडिल लिंक

रिया के राज्यकाल का स्वर्णिम युग कहा। मायग ने इतिहास के ही माध्यम से यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि ऐतिहासिक प्रक्रिया सत्सत्ता को साम्यवाद की ओर लिए जा रही है और सम्भवतः इसी कारण प्रत्येक साम्यवादी, जाति की कामना करता हुआ जाति के लिए प्रयत्न करता है यद्यपि उसके विचार से इतिहास का यही प्रारम्भ है कि जाति के द्वारा पूनीवात् नष्ट हो और साम्यवाद की स्थापना हो। इतिहास इतिहास है—एक निरन्तर विकास प्रम। चाहे हम उसे एक वैज्ञानिक की भाँति निष्पक्ष और तटस्थ होकर देखें या अपनी आँखों पर किसी विचारधारा विशेष का रंगीन चन्मा लगाकर।

आज यह सबमाय है कि ऐतिहासिक प्रक्रिया में सांस्कृतिक उद्विकास निहित रहता है किन्तु उसके पीछे न तो कोई पूर्वनिर्धारित उद्देश्य है, न कोई गति विक्षेप और न उसका कोई निष्पष्ट गतय। सांस्कृतिक उद्विकास एक ऐतिहासिक प्रक्रिया है जिसमें ऐतिहासिक परिस्थितियाँ सचयी परिवर्तन और विकास को इस प्रकार प्रभावित करती हैं कि भूत और वर्तमान को मिलाने वाली मुख्य कड़ियाँ, अपना अस्तित्व बनाए रखते हुए, ऐतिहासिक प्रक्रिया को वर्तमान में ले आती हैं। एक स्थिति दूसरे को जन्म देती है और दूसरी तीसरी को—एक सोपान दूसरे तक पहुँचने में सहायता करता है और दूसरा तीसरे तक। अपने में कुछ मुख्य आधारों को समेटे हुए विकास प्रक्रिया इस प्रकार चलती रहती है कि उद्विकास अस्तित्व में आता है। मानव के लिए उद्विकास की कल्पना सम्भवतः उतनी ही प्राचीन है जितना कि स्वयं मानव क्योंकि प्रत्येक काल और स्थान में, मानव ने भूत और वर्तमान के काय-कारण सम्बन्ध को स्थापित करके उन्हें समझने का प्रयत्न किया है। सृष्टि रचना की कथाय इसका प्रमाण हैं। आधुनिक शास्त्रीय मापदण्डों के कारण उद्विकाम का तटस्थ और शास्त्रीय अध्ययन पहले की अपेक्षा अधिक सम्भव है। सम्भवतः, इसी कारण यदि एक ओर सांस्कृतिक उद्विकाम की पुरानो धारणा की तीव्र आलोचना करके उसे अशास्त्रीय कहा गया है तो दूसरी ओर सांस्कृतिक उद्विकास को एक ऐतिहासिक तथ्य मानकर उसके वास्तविक स्वरूप और वारको का समझने का प्रयत्न किया गया है। जूलियन स्टीवार्ड (Julian Steward) ग्राडन चाइल्ड (Gordon Childe) और लेश्ले व्हाइट (Leslie White) सांस्कृतिक उद्विकास के वर्तमान समीक्षकों में से हैं।

प्राचीन उद्विकामवादियों ने यह प्रतिपादित किया था कि उद्विकास की प्रक्रिया कुछ अवस्थाओं (Stages) से होकर गुजरती है और इस संबंध में मॉर्गन (Morgan) द्वारा प्रतिपादित जंगलीपन (Savagery), बबरता (Barbarian) और सभ्यता (Civilization) की अवस्थाओं समाजशास्त्रीय और मानसवादी साहित्य में काफी प्रसिद्ध हैं। ग्राडन चाइल्ड ने अपने निबंधन में मायग की उद्विकास विषयक धारणा का परित्याग किया है किन्तु उसके द्वारा निर्धारित अवस्थाओं की

नामावली का प्रयोग किया है। चाइल्ड के अनुसार जगलीपन बबरना और सम्पत्ता आर्थिक विकास की तीन प्रधान अवस्थाओं की शक्त हैं। जिस प्रकार औद्योगिक क्रान्ति न आर्थिक परिवर्तनों के साथ साथ सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तनों का जन्म लिया, वही प्रकार प्रत्येक अवस्था के आर्थिक संगठन ने तत्कालीन सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तनों को जन्म दिया। जगली अवस्था शीतक है उस सामाजिक-आर्थिक संगठन की जिममें मनुष्य कदमूल और थाल्ट पर जीवन बसर करता था, बबरना उस अवस्था की जब मानव ने कृषि का आविष्कार किया और जानवर पालना आरम्भ किया और सम्पत्ता उस अवस्था की जब मनुष्य न तांबा, काँसा और लोहा जैसे धातुओं का प्रयोग करना सीखा¹। उससे ह्लाइट न भी इसी विकास नामावली का प्रयोग किया है किन्तु उनको मायता में प्रत्येक नाम प्रतीक है उस अवस्था का जब मनुष्य एक विशेष प्रकार की शक्ति का प्रयोग करता था। जगलीपन में मानव ने अपनी शारीरिक शक्ति का नियंत्रित किया, बबर अवस्था में कृषि और जानवरों की शक्ति को और सम्पत्ता अवस्था में धातुओं के प्रयोग से उत्पन्न शक्ति को। ह्लाइट के अनुसार, इन शक्तियों पर नियंत्रण और उनका प्रयोग सस्कृति के उद्विकास और परिवर्तन का मुख्य कारण है। स्टीवाड के अनुसार, उद्विकास निहित है उन सांस्कृतिक नियमितताओं (Cultural Regularities) में जो सभी सांस्कृतियों में अवतरित होती रही है। ये नियमितताएँ पाँच हैं जिन्हें स्टीवाड ने अवस्थाओं न कह कर युग कहा है²। सांस्कृतिक उद्विकास के निबचन की इन रूपरेखाओं में यह स्पष्ट है कि सस्कृति कुछ अवस्थाओं से होकर गुजरी है और किसी भी सस्कृति के ऐतिहासिक अध्ययन में, विकास की अवस्थाओं का निर्धारण आवश्यक सा है। भारतीय सस्कृति न समान जिन सस्कृतियों का लिखित प्रमबद्ध इतिहास मिलता है, उनके विकास की कहानी, ऐतिहासिक अवस्थाओं की पठभूमि में अधिक स्पष्ट ही उठती है।

यूरोप की परम्परा में इतिहास का अधिकतर काल प्रम विधान (Chronology) के ही रूप में देगा गया है जिसके कारण वही इतिहास मुख्यतः राजपरानों के उत्थान और पतन की कहानी मात्र रहा है। राजपरानों के उत्थान-पतन केवल घटनाएँ हैं जो ऐतिहासिक प्रक्रिया का जन्म देने वाली कुछ विनिष्ट शक्तियों पर निर्भर रहती हैं। इगनण्ड, फ्रान्क और रूम के राजपरानों का पतन, वहा की राज्य शक्ति का कारण हुआ और ये शक्तियाँ परिणाम हैं इन टाँग में फटने वाली विचारधाराओं की जननी वहा की ऐतिहासिक परिस्थितियों की। इसी कारण, यह

- 1 चाइल्ड यो० प्राइडन 1 मन मंशत हिमसेल्फ, 2 ह्लाइट हैपेड इन हिस्ट्री,
3 सोगल इवोल्यूशन
4 बीस एण्ड ह्युमन एन इन्टेलिजेंस टू एन्थ्रोपॉलॉजी

कहा गया है कि इतिहास की वास्तविक विषयवस्तु है जहाँ (Values), परम्पराय (Tradition) और तान्त्रिकाय (Myths) का अनक प्रकार स मानव जीवन और व्यवहार को प्रभावित करती हइ इतिहास की गति और गिा का भी प्रभावित करती ह। अहाँ, परम्पराय और लोनागाथायें युग युग तक चलता रहती है और इसीलिये वतमान की समस्याआ तथा गुत्थियो का मुलाने और समजन के लिये इनका एतिहासिक स्पष्टीकरण आवश्यक है। इतिहास वास्तव म समाज क व्यावहारिक पक्ष का मनाविज्ञान और दशन है जिसक अध्ययन वा वास्तविक विषय है युग युग म विकसित हान वाल मस्कृति क गुण (Qualities) आर कलावा (Patterns) की उत्पत्ति विकास परिवतन और उनकी कायात्मक प्रक्रिया (Functional Process)। इसी दष्टिकोण स समाजशास्त्र की इतिहास वा दशन कहा गया है। समाजशास्त्रीय दष्टिकोण स, घटनायें नही वरन घटनाआ को जन्म देने वाली प्रक्रियाय और शक्तिया मस्कृत्वपूर्ण ह। भारत जसे दश म जहा सांस्कृतिक विकास का त्रिक इतिहास विद्यमान है आर जहाँ नाना प्रकार क मानव समूह अलग अलग रहते हय भी एक तार म गुथत रह हैं इतिहास का कवल राजनतिक या आर्थिक निवचन एकागी है। भारतीय मस्कृति वा इतिहास साधारणत मानव मूहाआ (Human Values) दगना, धर्मा कलाओ सामूहिक जीवन यापन क प्रकार। और अनेकता म एकता स्थापित करने वाली विचारधाराओ के सतत विकास का इतिहास है¹।

परम्परागत इतिहास की एक अय कमजारी भी है। यह परम्परा का ही प्रभाव है कि इतिहास का अध्ययन क्षेत्र वहाँ से प्रारम्भ होता है जहा से मानव मस्कृति या मस्कृतिया का लिखित विवरण प्राप्त होता है। किन्तु लिपि और लेखन कला का इतिहास पाच हजार वष से अधिक पुराना नही है। यह सबविदित है कि भारत म हडप्पा और मोहनजोदडो म लिपि के प्रमाण पाय गय है। हडप्पा और मोहनजोदडो की मस्कृति का काल तीन हजार वष ईसवी पूव के लगभग आता है। किन्तु मानव का अस्तित्व उससे कही अधिक प्राचीन है। आर्यों के आगम म जिन परम्पराआ अथवा विचारो का आभास मिलता है वे लेखबद्ध होने के वहुत पहल अस्तित्व म आ चुकी होंगी। अतएव मस्कृति के विकास को पूर्णरूपेण समझन क लिये ऐतिहासिक क्षेत्र और अध्ययन रीति को अधिक व्यापक बनाने की आवश्यकता है और वह तभी हो सकता है जब इतिहास और प्रागतिहास का समन्वय किया जाय। आडन चार्ल्ड के मतानुसार, प्रागतिहास इतिहास को युगा पीछे भूतकाल मे ले जाकर, अधिक व्यापक और वास्तविक बना देता है। आखिरकार, वतमान म मस्कृति क मुरय उपकरण (कुपि अग्नि धातुआ का प्रयाग चक्र (पहिया) और

लेखन कला) का अन्वेषण और विकास प्रागतिहासिक काल में ही हुआ है।

प्रागतिहास का अध्ययन स्वयं पूर्ण नहीं है क्योंकि प्रागतिहासिक अध्ययन भूगर्भशास्त्र (Geology) जाव विकास विज्ञान (Palaeontology) और पुरातत्वशास्त्र (Archaeology) के पारस्परिक महत्वाग पर निर्भर है यद्यपि इस अध्ययन में पुरातत्वशास्त्र का ही प्रमुख भाग रहता है। जिस प्रकार, इतिहासकार लिखित अभिलेखा के माध्यम से मानव मस्त्रुति का निवचन करता है उसी प्रकार पुरातत्ववेत्ता उन पुरान वा के माध्यम से जा मानव से सम्बन्धित रह हैं या जिन पर मानव के निमाण कीर्ण को अमिउ ठाप गी है, मानव मस्त्रुति के उत्गम, विनास और प्रसरण का समझन का प्रयास करता है। मानव द्वारा निमित्त अनन वस्तुग प्रस्तरी उन अथवा अपने प्रारम्भिक रूप में पथ्वी के गभ में पायी गयी हैं जिह पुरातत्ववेत्ताओं के फावडा न गान निकाग है और जिनके द्वारा मानव के प्रागतिहासिक अस्तित्व पर काफी प्रकाश पडा है। यह स य है कि न तो मानव द्वारा निमित्त सभी कुछ प्रस्तरीकृत हुआ है और न काल के गाल में ही जाने से बचा है। वास्तव में, मानव द्वारा निमित्त मस्त्रुति के पार्थिव न व ही पथ्वी के गभ में पडे रह पाए हैं जिनका एक नगण्य अंश ही हमारे सामने आ पाया है। पार्थिव के द्वारा पुरातत्व कता अपासि का भी समझने का प्रयत्न करना है और एक बडी सीमा तक, उससे सफलता भी मिलती है। वर्तमान समय में भी, मन व्यक्त्ति के साथ उसकी प्रिय वस्तु अथवा दैनिक जीवन में काम आने वाली वस्तुओं का दफनान या जलान की प्रथा है और यह प्रथा आत्मा और पारलौकिक जीवन में विश्वास पर आधारित है। अतएव, यदि कही ऐसी वस्तु मिले जिसमें बडे इये गव को दैनिक व्यवहार की वस्तुओं के साथ दफनाया गया हो तो पुरातत्ववेत्ता की मह धारणा गलत न टाणी कि जिन लागा ने उन गव को दफनाया था उनका आत्मा और पारलौकिक जीवन में विश्वास रहा होगा।

७

मानव-मस्त्रुति के चार अवधाय

यूरोप, मध्य एशिया, भारत, इण्डोनेशिया, चीन और अफ्रीका में पाये गये पुरातत्वा और मानवीय जीवाश्मों (Humanoid Fossils) के आधार पर, प्रागतिहास के विद्यापिधान में मानव-मस्त्रुति के उत्गम और विकास की स्तरधारणें प्रस्तुत की हैं। यह पक्ष ही सिद्धा जा चुका है कि जाव विकास विज्ञान-कताओं के द्वारा प्रतिपासित सेनोसोयिक (Cenozoic) युग को टर्शियरी और क्वाटर्नरी नामक

दा भागो में बाटा जाता है। टर्शियरी की अवधि लगभग छ करौड़ वर्ष ईसवी पूर्व से लेकर सत्तर लाख वर्ष ईसवी पूर्व तक मानी जाती है और क्वाटनरी लगभग एक लाख वर्ष पूर्व से प्रारम्भ होकर वर्तमान में समा जाता है। टर्शियरी मत्त्वपूर्ण भूगर्भीय उषल पुथल का समय माना जाता है। इसी युग में पर्वतराज हिमालय का जन्म हुआ और भारत कहा जाने वाला भूभाग अस्तित्व में आया। इसी काल में बड़े बड़े स्तनपायी जानवरों का उदविकास हुआ। पृथ्वी के परतों का अध्ययन करके, भूगर्भशास्त्रियों ने टर्शियरी का चार कालों में बाटा है—इयोसीन (Eocene) आलिगोसीन (Oligocene), मायोसीन (Miocene) और प्लायोसीन (Pliocene)। टर्शियरी के प्रारम्भ में नील नदी की घाटी में कुछ ऐसे जीवाश्म मिले हैं जो इस बात के प्रतीक हैं कि इस काल में बंदरों (Monkeys) और वानरों (Apes) का अलग अलग विकास हो चुका था क्योंकि टर्शियरी के मध्यकाल (मायोसीन Miocene) से मिलने वाले जीवाश्म वानरों के प्रकार के होते हुये भी, उनसे भिन्न हैं। अफ्रीका भारत और इण्डोनेशिया से प्राप्त, मध्य टर्शियरी के जीवाश्म शरीर रचना के दृष्टि कोण में वानरों से भिन्न हैं और मानव के अधिक समीप हैं। इसी कारण, यह मत निर्धारित किया गया है कि मानव को जन्म देने वाली विकास शाखा का उदगम मध्य-टर्शियरी में ही और मानव का विकास अफ्रीका तथा योरोप से लेकर एशिया तक फैले हुए क्षेत्र में हुआ है। मानव और वानरों की विकास शाखाओं को मिलाने वाली कड़ी का क्या रूप था इसका निश्चय नहीं हो सका है और न ही संकेतों से क्योकि उदविकास एक सतत परिवर्तनकारी प्रक्रिया है¹। क्वाटनरी में मानव और मानव प्रकार के जीवाश्म भी मिलने हैं और मस्कृति के पार्थिव उपकरण भी। यही वह काल है जिसमें मानव और मस्कृति का विकास हुआ। भूगर्भशास्त्रियों के अनुसार, क्वाटनरी को दो कालों में विभक्त किया जाता है—प्लस्टोसीन (Pleistocene) और हालोसीन (Holocene)। प्लस्टोसीन में वर्तमान मानव के जीवाश्म नहीं मिलते हैं। यह अवश्य है कि प्लस्टोसीन से जितने भी जीवाश्म मिले हैं वे शरीर रचना में, टर्शियरी के जीवाश्मों की अपेक्षा वर्तमान मानव के अधिकतम समीप हैं और जिनके ये जीवाश्म हैं वे वर्तमान मानव के पूर्वजों के रूप में मानव मस्कृति के प्रादि निर्माता हैं।

धर्मों तक प्राप्त प्रमाणों के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता है कि मानव मस्कृति के उदगम और विकास के रहस्य प्लस्टोसीन में ही निहित हैं। प्लस्टोसीन हिम युग का भी काल है क्योंकि इस काल में पृथ्वी का उत्तरी गोलार्ध

-
- 1 विनोप अध्ययन के लिये 1 ह्वान, ई० ए० अप फ्राम दि एप,
 2 हावेल्स, विलियम मन लाइण्ड से फार, 3 ब्रूम, राबर्ट आन फार्डिंडग
 दि मिनिंग लिंक

चार बार हमलच्छादित हुआ। दो हिम युगों के बीच के उष्णकाल को अन्तर्हिमयुग (Interglacial Period) कहते हैं। आज तक चार हिम युग हुए हैं और चार अन्तर्हिम युग। आज चौथे अन्तर्हिम युग में रहने हुए क्या हम पाँचवें हिमयुग की ओर बढ़ रहे हैं? सम्भवतः हाँ। कुछ नीची पर्वतों के रंगमच पर हिमयुगों के उतार बढ़ाव, व उठान गिरते परदे रहे हैं जिनके आगे-पीछे मानव और मस्तिष्क के विकास का नाटक चलता रहा है। प्रथम अन्तर्हिमयुग से लेकर द्वितीय अन्तर्हिमयुग तक यारोप, अफ्रीका, इण्डोनेशिया और चीन में प्रस्तरीकृत मानव कबालों के कई अवशेष मिले हैं जिनमें जावा और चीन के अवशेष प्रमुख हैं। जिन प्राणियों के ये अवशेष हैं वे मानवी विकास दिशा में काफी बढ़ गये थे किन्तु फिर भी वतमान मानव का रूप नहीं प्राप्त कर सके थे। इन्हें क्रमशः जावा मानव (Java Man) और चीनी मानव (China Man) की मनायें दी गयी हैं। जावा मानव का उस मानवी प्रकार का वानर (Ape) कहा गया है जो सम्भवतः खड़ा होकर चलता होगा। जावा मानव ने माय मिल मस्तिष्क के अवशेष नश्वर ह। चीनी मानव को जावा मानव की ही श्रेणी में रखा जाता है यद्यपि उसकी शरीर रचना मानवी दिशा में अधिक प्रगति कर गयी थी और जहाँ पर उसका अवशेष पाया गया है वहाँ मस्तिष्क के निश्चित पारिवर्तक प्रमाण भी पाये गये हैं। शरीर में ये प्राणी दृढाकार रहे होंगे।

तीसरे अन्तर्हिमयुग से लेकर चौथे हिमयुग के मध्य और उत्तरार्द्ध तक, यारोप, उत्तरी अफ्रीका और फिलिस्तीन तक, एक विशेष प्रकार की विकास ग्राह्य के संकटा नर-काल मिले हैं जिनका शरीर प्ररूप का नियन्डरथल (Neanderthal) की सजा दी गयी है। चौथे हिमयुग का मध्यकाल नियन्डरथल मानव और उसकी मस्तिष्क का चरमवर्तक था क्योंकि चौथे हिमयुग के समाप्त होत-होत नियन्डरथल मानव और उसकी मस्तिष्क दाना यारोप से नुप्त हो गये। भारी सिर, सखीण मथ्या, आग की धार निकली हुयी मोहों की हड्डी, भारी जबड़ा, सर्वांग मासल गदन के कारण ऊपर की ओर उठा हुआ सा मुख, गाल लम्बी छाती, घुटना तर लम्बे हाथ और सड़े हान पर आगे की ओर झुक झुक सा दन्ता हुआ शरीर, यथा नियन्डरथल की मुख्य शारीरिक विशेषतायें हैं। चौथे हिमयुग के बाद जहाँ एक ओर नियन्डरथल की समाप्ति होती है वहाँ दूसरी ओर वतमान मानव का प्रसार होता है। जावा मानव, चीनी मानव और नियन्डरथल के विरुद्ध साक्ष्यायें हैं जो उभरी काल में म फूरी हैं जिससे से वतमान मानव की गान्धा निकली है। इनके लिये न ता मानव की मना का ही प्रयाग किया जाता है और न इन्हें वतमान मानव का पूर्वज ही माना जाता है। सभी विकास-शास्त्रज्ञों से एक तथ्य स्पष्ट हो उठता है और वह निश्चित प्रथम में यदि, एक ओर, मानव के हाथ चलने के भार से मुक्त होत गये तो, दूसरी ओर, मानव मस्तिष्क बढ़ता गया जिसके कारण मानव मस्तिष्क का उत्तरात्तर विकास सम्भव हुआ।

पथी म से खोद निकाल गये पुरातनपो के आधार पर प्रागतिहासज्ञान ने मानव सभ्यता के चार प्रागतिहासिक सापान निर्धारित किये हैं जिनके नाम हैं प्राचीन प्रस्तरयुग (Palaeolithic), नव प्रस्तरयुग (Neolithic), कांस्य युग (Bronze Age) और लौह युग (Iron Age)। वर्तमान युग लौह युग है और इसका प्रारम्भ उस समय में होता है जब स मनुष्य ने लोहे का प्रयोग करना प्रारम्भ किया। प्रस्तरयुग में मानव पत्थर के औजारों का प्रयोग करता था और कांस्य युग में कांस के। कुछ ऐसे भी नुकीले और कौनों पर थोड़ा थोड़ा तराश हुये पत्थर मिलते हैं जिनका देखकर यह प्रभास होता है कि जस के सांस्कृतिक उदयकाल के हैं। अंग्रेजी में इन्हें इयोलिथ (Eoliths उदयकालीन प्रस्तर) की मजा दी गयी है। किंतु यह स प्नेहास्प है कि इन पत्थरों का मानव ने ही बनाया है। अधिकतर सम्भावना इसी बात की है कि प्रायः उदयकालीन प्रस्तरों का प्राकृतिक सक्रियता न गढ़ा है और मानव न उनका प्रयोग किया हो। इसमें कोई शक नहीं कि मानव न पत्थरों के औजारों का गढ़न के पहल पत्थरों का औजारों की भांति प्रयोग करना सीखा होगा।

प्राचीन प्रस्तरयुगीन औजारों का प्रति पुरातत्ववेत्ता निश्चित हैं कि वे मानव द्वारा ही गढ़े गये हैं। प्राचीन प्रस्तरयुग का प्रारम्भ प्लेस्टोसीन के साथ होता है। प्राचीन प्रस्तरयुग मानव-सभ्यता के इतिहास में एक लम्बा विकास काल है जिसमें यदि एक ओर, माट और भट्टे पत्थर के औजार मिलते हैं तो, दूसरी ओर उसक अंत में छोटे और बारीकी से गढ़े हुये औजार मिलते हैं।

यूरोप में प्राप्त पुरातनपो के आधार पर प्रागतिहासज्ञान ने प्राचीन प्रस्तर युग को तीन कालों में बाटा है—प्रारम्भिक (Lower) मध्य (Middle) और अंतिम (Upper)। प्रारम्भिक प्राचीन प्रस्तरयुग (Lower Palaeolithic) में ऐसे औजार मिलते हैं जिन्हें एक बड़े पत्थर को गूँदकर बनाया गया है। हाथ से पकड़कर प्रहार करना इन औजारों का मुख्य प्रयोग प्रतीत होता है। प्रयोग के दृष्टिकोण से, इन्हें मुण्डिका कुत्हाडिया (Hand Axes) कहा जाता है। चौथे हिमयुग में नियन्त्रित मानव के प्रस्तरयुग कालों के साथ साथ ऐसे औजार पाये गये हैं जिन्हें किसी बड़े पत्थर में से चोट लगाकर निकाला हुयो चिपिया (Flakes) से गढ़ा गया है। औजारों के गढ़न की कला के आधार पर, प्रथम प्रकार के औजारों को कोरटूल (Core Tool आंतरक औजार) और दूसरे प्रकार को फ्लेक टूल (Flake Tool पथुक औजार) कहा गया है। यूरोप में प्रारम्भिक प्रस्तर युग में आंतरक औजारों की प्रधानता है और मध्य प्रस्तर युग में पथुक औजारों की। इसका यह तात्पर्य नहीं कि प्राचीन प्रस्तरयुग के मध्य में आंतरक औजारों का प्रयोग ही समाप्त हो गया था। वास्तव में मध्य प्रस्तरयुग में दोनों प्रकार के औजार पाये जाते हैं पर पथुक औजारों की बाहुल्यता के साथ। बाटने छीलने और छूँ करने के लिये पथुक औजारों का प्रयोग

किया जाता रहा होगा। प्राचीन प्रस्तरयुग के अंतिम भाग में पत्थर और हड्डी दाना प्रकार के औजार मिलने हैं। इन औजारों का आकार छोटा होने के साथ-साथ लम्बा और नुकीला हो गया है। ये औजार वस्तुतः उस प्रकार के हैं जैसे तीर के छोर पर लगे वाला शर (Arrow Head) या दाधारों चाकू का फल। इस काल में पाये गये पत्थर के शरों के ही आधार पर यह अनुमान किया गया है कि इस काल में घनुष का प्रयोग हो गया होगा। इस काल में भी पथुर्क औजारों की बाहुल्यता है और इनके गठन की कारीगरी पहले की अपेक्षा अधिक विकसित है क्योंकि, इन्हें प्रयोगानुकूल बनाने के साथ-साथ इन्हें सुन्दर और आकर्षक बनाने का भी प्रयत्न किया गया है। प्राचीन प्रस्तर युग के अंतिम काल में पाये गये हड्डियों के औजार तबकाशी के द्वारा काफी जलजुत किये गये हैं। इस युग के अन्त तक औजारों का गठन के लिये भी हीनार बनने लगे थे।

इस युग के अन्त पार्थिव अवस्था में अपार्थिव जीवन की भांती मिलती है। जैसा कि चानी मानव के खाद्य स्थला में स्पष्ट है, प्राचीन प्रस्तर-युग के मध्यकाल तक, मानव का आग का प्रयोग जाना हुआ था जिसमें आग चलकर काम और लाह के प्रयोग में उस उपयोगिता मिली। उसी स्थिति में प्रधान चीन की चाऊ-काऊ टिन नामक कदरा में मानव-खापट्टियों बीच से इस प्रकार लगी मिली है कि माना उन्हें ठोडकर भेजा निकाला गया है। यही नहीं, साथ ही साथ चिचोरी हुई हड्डियाँ भी मिली हैं। इन तथ्यों के आधार पर यह अनुमान किया जाता है कि सम्भवतः चानी मानव नरभक्षक था ?

नियन्त्रण का कदराओं में रहना नियन्त्रण के सामूहिक जीवन का प्रतीक है। नियन्त्रण की नियामक गुणों में गवा के साथ दफनाये गये पत्थर के औजारों से, नियन्त्रण के पारलौकिक तथा आत्मा सम्बन्धी विद्वानों का प्रमाण मिलता है। प्राचीन प्रस्तरयुग के अंतिम काल में जहाँ एक ओर, शरों के साथ-साथ साथ-साथ आग का प्रयोग लक्ष्मणों में हुए मिलने हैं वहीं दूसरी ओर, इन गवा की हड्डियों भी रगी हुई पायी गयी हैं। प्रागैतिहासिकों की ऐसी मान्यता है कि इस प्रकार की अन्वेषण क्रिया में जादुवी विश्वास समाप्त है। इस युग की कला में, एक ओर, सौन्दर्यवाद के लिये है तो, दूसरी ओर, जादुवी विचारों में ओतप्रोत। हाथी दात या मिट्टी की बनी छोटी-छोटी नारी मूर्तियाँ, जिनके यौनिक भाग बनावट के बनावे गये हैं इस बात का प्रतीक है कि मृतानन्दन के लिये इस काल में किसी न किसी प्रकार की निषेध-पूजापद्धति (Fertility Cult) रही होगी। पाम और स्नान की अवधारणा में गुणों में मत जानकर और गिदार के चित्र इसलिये बनाये जाते थे ताकि बाहर भी गिदार बहुतायत से प्राप्त हो। यह प्रयोग कुछ वैसा ही है जैसा कि उस जादुवी अनुष्ठान में पाया जाता है जिसमें, जिस व्यक्ति को टाने या टटके से मारना

होता है, उसके गाजर या जाट के पुतले की नकली हत्या करन है¹। बला क इस प्रयाग के पीछे वह भावना है जिसमें जादू और धम की उत्पत्ति हुयी है। कुछ भी हो, इस युग की बला अधिकतर सादेस्य थी। इस काल क गमाज म जादुयी अनुष्ठानो का सम्पन करने वालो को प्रधानता प्राप्त हो चुकी थी। इसक अतिरिक्त, पत्थर, हडडी हाथी दात, कौडी और दाल के आभूषणो का प्रचार था। चाइल्ड के अनुसार, इस काल म व्यापार के यथष्ट प्रमाण मिल है।

प्राचीन और नवप्रस्तरयुग के बीच म सत्रमणकालीन प्रस्तरयुग (Mesolithic) माना गया है जा, एक ओर प्राचीन प्रस्तरयुग का समाप्त होता हुन नव प्रस्तरयुग प्रसार है और दूसरी ओर, नवप्रस्तरयुग का नवोत्पत्ति काल। इस युग की अधि प्रस्तरयुग की अपेक्षा बहुत ही कम है। यागप मे, जलवायु परिवतन के कारण वर्षीली परिस्थिनियाँ समाप्त हा गयी और वतमान परिस्थिनियाँ आई। बड़े-बड़े जानवरों क स्थान पर, मछली पानी मे रहन वाला चिडियाँ और खरगाश हा मानव जीवन के मुख्य आधार रह गय। प्राचीन प्रस्तरयुग की बला समाप्त हो गयी किन्तु जादुयी विचार बने रह। पत्थर क औजार इतने छोट बनाये जाने लगे कि उनका आकार एक या आधा इंच के लगभग रह गया। कड औजारों को एक साथ एक लाइन म लगाकर चाकू जारी, हसिया या शल्य की भाति प्रयाग किया जाने लगा। जगलो की बढि ने कुल्हाडिया की आवश्यकता का जन्म दिया जिनका निर्माण इस काल के अन्त म होने लगा था। कुल्हाडिया आतम्ब (Core) भी थी और पथुक (Flake) भी। उनका हाथ से भी प्रयाग होता था और हैंडिल (Haft) लगा कर भी। प्राचीन प्रस्तरयुग मे घिसकर और पालिश करके हडिन्या के औजार बनाने पर किया जाने लगा। कुत्ता सबसे पहला जानवर है जिम मनुष्य ने इसी युग मे पालना शुरू किया। मिट्टी के बतनो और धनुष का प्रयाग भी इस काल म मिलता है।

प्राचीन प्रस्तरयुग और सत्रमणकालीन प्रस्तरयुग (Mesolithic Period)

- I धम (Religion) और जादू (Magic) समाज-शास्त्रीय दृष्टिकोण से एक ही श्रेणी में आते हैं। दोनों दृष्टि में विश्वास और उससे सम्बन्धित क्रियाओं में निहित हैं। दोनों की उत्पत्ति बहा होती है जहाँ मानव मानसिक असुरम्भा (Emotional Insecurity) का अनुभव करता है और उसे दूर करने में असहायता का अनुभव करता है। जादुया विश्वास और क्रियाओं में मनुष्य दृष्टि पर नियंत्रण पाकर, उसके द्वारा मनोवाछित फल पाने का प्रयत्न करता है जबकि धम में मनुष्य देवी शक्ति से मनोवाछित फल पाने की प्रार्थना करता है। प्रार्थना धम का प्रतीक है और जत्र मत्र जादू का।

की सस्फुटि खाद्य सामग्री एकत्र करने वाली (Foodgathering) मध्यव्यवस्था पर आधारित है जबकि नवप्रस्तरयुगीन सस्फुटि कृषि पर आधारित आर्थिक व्यवस्था पर। पशुपालन कृषि जोर बालू या पत्थर में घिस कर बनाए हुए अपेक्षाकृत बड़े आकार के पत्थर के औजार, नवप्रस्तरयुग की मुख्य विापतायें हैं। यह पहले ही कहा जा चुका है कि जन्मायु परिवर्तन के कारण, बर्फीली परिस्थितियों के स्थान पर, घने जंगलों का विकास हुआ जिससे लकड़ी काटने के लिए कुल्हाड़ी की आवश्यकता का जन्म हुआ। सभ्रमणकालीन प्रस्तर युग में ही घिसकर बनायी हुयी कुल्हाड़ियों का बनना प्रारम्भ हो गया था कि तु नवप्रस्तरयुग में उनकी निर्माणकला का चरम विकास हुआ। इन पत्थर की कुल्हाड़ियों के एक किनारे छथवा बीच में हैंडिल लगाया जाता था और उनसे बड़े-बड़े पेड़ गिराए जा सकते थे।

पशुपालन और कृषि का आविष्कार मानव सस्कृति के इतिहास में एक अति-कारी कदम है और इन आविष्कारों के कारण इस युग का बड़ी महत्व है जाओद्याधिक अति बालू वतमान युग का। कृषि के आविष्कार का श्रेय नारिया का दिया जाता है क्योंकि एसा अनुमान किया जाता है कि जंगल के किनारे पर गिवार के लिए गए हुए पुरुषों का प्रताप्ता करते हुए अवकाश के क्षणों में नारिया न ही बीजा का भूमि पर गिरत और उगने देखा होगा। आज भी आदिवासियों में, हल लगाने के अतिरिक्त कृषि का अधिकतर काय विशेषतया बीज बोना, सिंचिया के द्वारा ही किया जाता है। कुछ भी हा, जसा कि एच० जी० वेल्स ने लिखा है मनुष्य ने कृषि प्रारम्भ करने के पहले अनेक फसल काटी हागी। कृषि का अनुमान वस्तुतः कहा हुआ, यह एक विवादग्रस्त प्रश्न है। फिलिप्पीन के माउंटकारमेल (Mount Carmel) में पाए गए हडियों के आधार पर यह अनुमान किया जाता है कि सम्भवत इगी क्षेत्र में सभ्रमणकालीन प्रस्तरयुग के अतिम भाग में, मानव न फसल बोना और काटना सीख लिया हागा। कृषि के अनुसंधान की सम्भावना मध्य एशिया में ही है। फिर भी, जसा कि डॉडन चाइल्ड ने लिखा है नव प्रस्तरयुग में सप्तर के तीन क्षेत्रों में कृषि और पशुपालन के प्रमाण मिलत हैं—मध्य एशिया (Near East) में जौ, गेहूँ, जलून और सनई (Flax) की खेती और ढार, सुअर, बकरी और भेड़ का पालन, दक्षिणी पूर्वी एशिया में चावल, गन्ना, बपास की खेती और मुर्गी तथा भय (Water buffalo) का पालन, और अमरीका में मक्का, टमाटर आलू और तम्बाकू की खेती। गौ और घोड़े का पालन बाद में प्रारम्भ हुआ।

इन तथ्यों को ध्यान में रखत हुए यह कहा जा सकता है कि याता कृषि का अनुसंधान अलग अलग क्षेत्रों में स्वतन्त्र रूप से हुआ माएक ही साथ इन तीनों क्षेत्रों में कृषि और पशुपालन के ज्ञान का प्रसरण हुआ। अधिक सम्भावना प्रसरण की ही है। कुछ लोगों का यह भी मत है कि कदमूत और फल पर निर्भर रहने वाले शत्रुओं ने कृषि का अनुसंधान किया हागा और आस्रेट पर निर्भर रहने वाले मनुष्यों

ने पशुपालन का । किन्तु पुरातत्वो के अवशेष इस विषय में मौन हैं क्योंकि न तो प्राचीनतम पीघा जीर कृषि के औजारों के अवशेष ही मिलते हैं और न जानवरों के प्राप्त अस्थिपत्र इस बात की गवाही देने हैं कि उनका पालने वाल खेतों पर निभर थे या शिकार पर । अभी तक प्राप्त पुरातत्वो के अवशेष और उन पर आधारित प्रमाण केवल इसी तथ्य के परिचायक है कि, कृषि और पशुपालन साथ साथ अस्तित्व में आकर, कृषि पर आधारित सामाजिक आर्थिक व्यवस्था के कारण बने ।

कृषि और पशुपालन के आविष्कार में अधिक महत्वपूर्ण इसके सामाजिक आर्थिक परिणाम हैं क्योंकि इ ही परिणामों में वर्तमान मानव सभ्यता की आधारशिलाएँ रखी हुई हैं । कृषि और पशुपालन के कारण मानव का खाद्य सामग्री पर अधिक निश्चित नियंत्रण प्राप्त हुआ जिसके परिणामस्वरूप, एक ओर जीवों की सुरक्षा और जनसंख्या बढ़ी तथा दूसरी ओर किराएँ, जीवन के म्यानों पर व्यवस्थित जीवन का अभ्युदय हुआ । कृषि की मांग है व्यवस्थित जीवन और इसी मांग ने ग्राम्य जीवन का जन्म लिया । खाद्य सामग्री की वृद्धि और निश्चितता ने तब एक ओर, मानव के हाथ में अतिरिक्त धन (Surplus Wealth) दिया वही दूसरी ओर विशेषीकरण (Specialization) और खाद्य सामग्री का उत्पन्न करने के अतिरिक्त अन्य कार्यों को प्रोत्साहित किया । इस युग के औजारों की विशेषता द्वारा निर्मित हुए हैं जिन्हें भाजन की चिन्ता नहीं थी । वास्तव में अधिक भोज्य सामग्री उत्पन्न करके ही मानव सभ्यता का विकास कर सका । धनमान समय में भी कारखानों और कला तथा साहित्य के क्षेत्र में कार्य करने वाले उस अतिरिक्त भाग्य सामग्री पर ही जीवित रहते हैं जिस किसान उत्पन्न करता है ।

चाटवुड के अनुसार कृषि के लिए उपयुक्त पीघों को छानने का प्रयास में वनस्पतिशास्त्र का उत्पन्न है, अनाज को पीसने और सनई की जाल से कपड़ा बुनने में भौतिक शास्त्र के आटा गवने और नशीले द्रव तयार करने में रसायन शास्त्र के और खाद्य अन्वाद्य जानवरों के चुनाव में प्राणिशास्त्र के । उनमें ठीक ही कहा है कि बीसवीं शताब्दी के सारे ज्ञान विज्ञान की जड़ नवप्रस्तरयुग में ही हैं । नवप्रस्तरयुगीन चार्ति का प्रभाव सामाजिक जीवन पर भी पड़ा । यह पहले ही कहा गया है कि कृषि ने स्थिर सामाजिक जीवन की आवश्यकता का प्रोत्साहन दिया जिससे सामाजिक जीवन अस्तित्व में आया । यारोप में नवप्रस्तरयुगीन ग्रामों के चारों ओर खोली हुई लायी इसका प्रमाण है । कृषि ने नारी और पुरुषों के कार्यों में विभाजन ला दिया और यह कृषि का ही परिणाम है कि कृषि व्यवस्था में नारी और बच्चे भार न होकर बरताने हुए गए । आज भी कृषक के लिए त्रिवाह परिवार और बच्चे उतने ही आवश्यक हैं जितनी कि कृषि । इस युग का ग्राम एक आत्मनिर्भर सामाजिक आर्थिक इकाई रहा होगा । इस बात के भी प्रमाण हैं कि इस युग में कृषि करने वाले जानवर पालने वाले और पत्थर निवालने वाले विशेषीकृत समूह अस्तित्व में आ गये हागे और

उनमें विनिमय-यापार होता रहा होगा। इस युग में, जनसंख्या के साथ साथ, सांस्कृतिक वचिश्य भी बढ़ा। पाल हुए जानवर, कृषि के लिए प्रयुक्त पौधा, प्रयाग म लायी हुयी कुल्हाडिया और अन्य औजारों मिट्टी के बरतना की सजावट, बरत के प्रकारों और शव दफनान से सम्बन्धित दृष्टिया के आकार पर, मध्य एशिया से लकर याराप तक अनक नवप्रस्तरयुगीन सस्कृतिया ता निर्धारित किया जा सकता है। प्राचीन प्रस्तरयुग का अप ता इस युग के तब दफनान के अनुष्ठान काफी विस्तृत है। नारी मूर्तियों की पूजा भी विद्यमान है और इन सबके साथ जाटुमी विचार और विश्वास भी। सनइ (Flax) के कपड़े बनाने और मता के लिए स्मारक बनाने के भी प्रमाण इस युग में मिलते हैं। सशेष में यही वह युग है जब मानव ने वर्तमान की आधार शिला रखी और उन परिस्थितियों को जन्म दिया जिहां कांस्ययुग और लौहयुग की राहरी तथा साम्राज्यवादी सस्कृति का जन्म दिया।

प्राचीन और नवप्रस्तरयुग की भांति कांस्य और लौहयुग भी एक सक्रमणवालीन युग के द्वारा उत्पन्न भी हैं और जुड़े हुए भी। नव प्रस्तरयुग कांस्य-युग का अन्त लगभग चार हजार वर्ष ईसा पूर्व होता है और कांस्ययुग का प्रारम्भ तीन हजार वर्ष ईसा पूर्व के लगभग।

इस प्रकार लगभग एक हजार वर्ष का समय नवप्रस्तरयुग और कांस्ययुग का अन्त करता है। इस काल को ताम्रयुग (Copper Age or Chalcolithic or Chalcolithic) की संज्ञा दी गयी है। ताम्र अथवा ताँबा और मानव अपने गुड धातुरूप में पाए जाते हैं। अतएव, सर्वप्रथम उनका दुर्लभता का मानव ने पर्यर व दुर्लभता की भांति प्रमाण किया होगा। ताँबा ऐसी धातु है कि उसे दूपाटनर वांछित आकार दिया जा सकता है। कांस्य अथवा कामा ताँबा और टीन (Tin) से मिलकर बनी धातु है और कामा तभी बन सकता होगा जब मनुष्य का यह ज्ञान हुआ होगा कि ताँबा और टीन, आग की मत्पता में, गलाकर एक में मिलाए जा सकते हैं। मनुष्य ने काँसा बनाना क्या और कहाँ सीखा यह कहना कठिन है। टीन मिट्टी में मिली रहती है जिस पर्यचान कर और मत्पत्तर निमात्ता पटना है। अतएव, काम की उत्पत्ति तभी हुयी होगी जब मनुष्य ने टीन को पर्यचानना और आग के द्वारा धातुआ का मत्पता सीख लिया होगा। आग के द्वारा धातुआ का गलाना मानव ने क्या जाना ? मत् एव रक्ष्य है जिसे मुलगा करना कठिन है। हम जानें कि सम्भावना अधिक है कि काम का बनना मध्य एशिया, विन्पेपता पश्चिमी एशिया, में प्रारम्भ हुआ होगा। चादल के अनुसार, तीन हजार पांच सौ वर्ष ईसा पूर्व के लगभग, पश्चिमी एशिया में कामे का प्रयाग मिश्रता है। यहाँ में इसका प्रसार ग्रीस और, कुछ पश्चिमिया यान, पाट और यूनाट (दुवाय Troy) में हुआ। याराप में कामे का प्रयाग एक हजार आठ सौ वर्ष ईसा पूर्व के लगभग होता प्रारम्भ हुआ। तीन हजार वर्ष ईसा पूर्व के लगभग की से बनी हुयी वस्तुआ का प्रयाग इरान और भारत तक

पाया जाता है। मोहनजोदडो की सस्कृति वास्ययगीन सस्कृति है। यही त्ही, इसका प्रचार चीन की ह्वांगहा नदी की घाटी तक म हुआ।

वास्ययुग म भी अनेक प्रभावशाली आविष्कार और परिवर्तन हुए। इस युग क मुख्य आविष्कार हैं हल आग के द्वारा धातु का गलाने का पान, पहिया (चक्र) और लेखन कला (लिपि)। जाग के द्वारा धातु के गलाने के पान म कसि जसी मजदूर धातु मनुष्य के हाथ म आई जिससे उसके जीगर और भी सुदृढ़ हा गए। धातु का गलाना एक विशय पान है जिसका पीनी दर पीढी चलना एक प्रयत्न सम्भावना है। अतएव, धातु के गलाने वाला न एक विशिष्ट समूह शयवा वग का रूप धारण किया हागा। कासा, ताम्र और साना पत्थर और मिट्टी की अपेक्षा अधिक अल्प्य रह हागे। अतएव, वे उसी का प्राप्त हा सकते हाग जिसके पास अति रिक्त धन होगा और जा धातु का गलाने वालो की सेवामें प्राप्त कर सका होगा। उधर हल के आविष्कार और प्रयाग न उपज बढाकर, अतिरिक्त धन का और भी बढाया। विभि न सस्कृति वाल समूहा म सघष और युद्ध नव प्रस्तरयुग म ही आ गया था। कास के प्रयाग न उस सघष को और भी बढावा दिया। अतएव, सम्राटा और सामन्ता का जन्मदय हुआ जिनका कास के प्रयोग पर अधिकार था। कास के अधिकाधिक प्रयोग न अतिरिक्त धन की आवश्यकता का जोर भी बढाया जिसे गुलामी प्रथा और साम्राज्य स्थापन के द्वारा पूण किया गया। बेबीलोनिया, सुमरिया और असीरिया के साम्राज्य इसका प्रमाण है। घाडे और पहिये के प्रयोग ने बलगाटी जोर रख को जम दिया जिसस मानव पहन की अपेक्षा अधिक गतिवान हो गया। इसस यन्त्र एक ओर विभि न सम्कृतिया मे पहल की श्रमशा अधिक सम्भव स्थापित करने का मौका मिला ता दूसरी जोर युद्ध और साम्राज्य मस्थापन का प्रोत्साहन भी। इटल्या मोहनजोदडा से लकर मसोपाटमिया तक मिली हुई सीलों (Seals) म स कुछ वयवितक सम्पत्ति का प्रमाण है ता कुछ अनेक राज्या और साम्राज्यो की।

वास्ययुग म सामाजिक वग अस्तित्व म ता चुक धे और सामाजिक संगठन पहन की अपेक्षा अधिक जटिल हो गया था। पहिए के प्रयाग से कुम्हार का चाक (Potter's wheel) अस्तित्व म आया जिससे मिट्टी के बने बाना और भी सुगम हा गया। लेखन कला अथवा लिपि के आविष्कार ने मानव अनभव जोर प्रतीका को सुरक्षित रखने म सहायता दना प्रारम्भ किया। यास्तव म दबा जाय ता पहिया (चक्र) और लिपि के आविष्कार काफी महत्त्वपूर्ण है। मनीन पर आधारित वर्तमान युग की सम्पत्ता वस्तुत पहिया पर ही दौड रही है कयाकि पहिया के प्रयोग के बिना मनीन का प्रयाग असम्भव है। आलीनिक आत्मा और जादू सम्बधी विश्वासो ने इस युग म धम का रूप लेना प्रारम्भ किया। जहाँ क्वा वास्ययुग की सम्पत्ता मिली

वहा देवधर भी मिले हैं¹। इन सब परिवर्तना और आविष्कारों के सचयी प्रभावों ने शहरीकरण का जन्म दिया। नियोजित शहर और धूप से सुखायी इटों के मकान इस युग का एक अत्यन्त विकास है। क्रोबर के अनुसार, ताम्र के सामाजिक प्रभाव और परिणाम नहीं के बराबर थे। किन्तु वास्तविकता और कामे के प्रयोग ने सस्कृति और सामाजिक संरचना को निश्चय ही प्रभावित किया। इसका तात्पर्य यह नहीं कि धातु के प्रयोग ने एक नयी सामाजिक व्यवस्था को जन्म दिया। धातु के प्रयोग ने वस्तुतः एक नयी सामाजिक व्यवस्था को सबल प्रदान किया। वास्तव्युग, क्रोबर के अनुसार, वह युग है जिसने वर्गों, मन्नाटा, देवताभा, स्मारका, लेखन-कला और शहरीकरण का अन्वयुद्ध जोर पुनसवलन देखा। जहाँ वही भी जनमख्या और परिस्थितियाँ अनुकूल थीं, वास्तव्युग नायकों, अभिजाता और सामन्तों का युग हा गया¹।

लोह का आविष्कार और प्रयोग उस समय के ठीक लगभग दो हजार वर्ष बाद हुआ जब मानव ने ताँबे को गलाने, ढालने और अन्य धातुओं के साथ मिलाकर का नान प्राप्त कर लिया था। यह आविष्कार एशिया माइनर (Asia Minor) बड़े जाने वाले क्षेत्र में हुआ क्योंकि बारह सौ वर्ष ईसा पूर्व इस क्षेत्र में लोह का प्रयोग पाया गया है। लगभग एक हजार वर्ष ईसा पूर्व यूनानियों का इसका ज्ञान प्राप्त हुआ। जिस प्रकार ताम्र को पृथ्वी से उठाकर मनुष्य ने उसका प्रयोग करना सीखा उसी प्रकार लोहा भी अनुमानतः मनुष्य को सबसे पहले मिट्टी में पड़ा मिला होगा। लोहे को गलाना, ढालना और फोलाद बनाना मानव ने बाद में सीखा। इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि पहले लोहा एक मूल्यवान् धातु था क्योंकि पहले इसका प्रयोग शूटियाँ बनाने और काँच की वस्तुओं में पन्चीकारी करने के लिए किया जाता था। किन्तु, बाद में यह जनमुलभ हो गया और अन्य आविष्कारों के साथ प्रजातन्त्रीय विचारों का कारण बना। वास्तविक अभिजाता और जन्म, काय तथा धन से सत्ता-सम्पन्न व्यक्तियों के प्रयोग की वस्तु थी किन्तु लाहा जनसाधारण के प्रयोग की वस्तु बना और लोह का प्रयोग सबत्र शक्तिशालीकरण का कारण सिद्ध हुआ। लोह के प्रयोग के साथ साथ अक्षरों द्वारा लिखन की लिपि और छोटी छोटी मुद्राओं का निर्माण का भी आविष्कार हुआ। यही सीना आविष्कार एशिया माइनर में ही हुए और वहाँ से चारों ओर फैले। वास्तव्युग में लिपि का आविष्कार ताँहा गया था पर लिखन के लिये चित्रा और जटिल प्रतीकों का प्रयोग किया जाता था जिसमें लेखन कला जनमुलभ नहीं थी। अक्षरों के प्रयोग

1 इसका तात्पर्य यह बदापि न लेना चाहिए कि जादू और आत्मा में विश्वास ने धर्म को जन्म दिया था या जादू धर्म का पूर्ववर्ती रूप है। धर्म के अधिक ठोस प्रमाण इसी काल में मिलते हैं।

1 क्रोबर, ए० एल० एन्सापलोजी पृष्ठ 701

ने लेखन कला को और सरल बना दिया। मुद्राओं के प्रचलन न व्यापार का प्रोत्साहन दिया और लोहे के अस्त्र शस्त्रों ने युद्ध और साम्राज्य स्थापन का। यही वह युग है जब यूनानिया, ईरानियों और रोम की सभ्यताओं और साम्राज्यों का विकास हुआ। रोम-साम्राज्य के पतन का काल हम इतिहास की सीमाओं में आता है। वास्तव में, इतिहास का प्रारम्भ ही लौहयुग के साथ-साथ होता है। वर्तमान मानव लौहयुग के चरमोत्कृष्ट काल में रह रहा है।

इस प्रकार, मानव सस्कृति विशेषतया योरोप में, प्राचीन प्रस्तरयुग नवप्रस्तर युग कास्ययुग और लौहयुग के चार सोपानों से गुजरी है। ये सोपान योरोप की भूमि पर एक क्रमिक विकास प्रक्रिया के रूप में मिले हैं किन्तु यह विकास क्रम नियति द्वारा निर्धारित नहीं है और न ही अवश्यभावी ही है। ये चारो सोपान इतिहास की अवस्थाओं मात्र हैं जिनका घटित होना संयोग पर अधिक निर्भर करता है न कि किसी पूर्वनिर्धारित जटिल योजना पर। यह साचना कि सारा संसार एक ही समय में एक युग विशेष के प्रभाव में था या संसार के सारे लोग इन्हीं अवस्थाओं में से गुजर रहे हैं और जो नहीं गुजरे हैं उन्हें गुजरना पड़ेगा, पुरातत्वीय और ऐतिहासिक तथ्यों का विरुद्ध है। जब योरोप सारे युगों को पार करता हुआ लौहयुग में आ गया था तब प्रशांत महासागर के अनेक द्वीप प्रस्तरयुगीन अवस्था में थे। लाह का आविष्कार एशिया माइनर में हुआ किन्तु उसका ढालना चीन में प्रारम्भ हुआ। अतएव जब चीन और उसके बाद अन्य एशिया लौहयुग में प्रवेश कर रहे थे तब योरोप कास्ययुग में था। दूसरी ओर यह मान लेना कि प्रत्येक क्षेत्र में इन अवस्थाओं का क्रम अवतरित होना अनिवार्य है ऐतिहासिक निबन्धन के साथ मजबूत करता है। अफ्रीका का गणजातियाँ और जापान के निवासी कास्ययुग में प्रवेश किये बिना ही लौहयुग में प्रवेश कर गये हैं। वास्तव में जसा कि पहले कहा जा चुका है ये युग चार सोपानों के समान हैं और संयोग पर आधारित विकास हैं। यह आवश्यक है कि इनमें प्रत्येक विकास ने मानव सस्कृति के अनेक पहलुओं को विकसित होने में सहायता दी। अतएव इन्हें मानव सस्कृति की प्रावस्थाओं (Cultural Phases) भी कहा जा सकता है। संसार के अधिकतर भागों में इन युगों के प्रमाण मिलते हैं किन्तु जैसा पहले कहा जा चुका है, प्रत्येक युग की अवस्थाओं सारे संसार में न तो समकालीन हैं और न परस्पर अनुरूप। भारत की प्रस्तरयुगीन सस्कृति, अनेक विषयों में योरोप का प्रस्तरयुगीन सस्कृति से भिन्न है। अतएव एक यह भी मत है कि योरोप में किये गये अध्ययनों के आधार पर गनी गयी नामावली का संसार के अन्य क्षेत्रों पर लागू करना तर्कमगत नहीं है। इस मत में बहुत कुछ सार है फिर भी, अध्ययन की सुविधा के लिए धारणाओं और सामान्य रूपरेखाओं के रूप में इनका प्रयोग करने में कोई भी अनौचित्य नहीं है।

हिन्दुत्व सामाजिक-ऐतिहासिक आधार

भारतीय मस्कति, दस काल की सीमा में बंधी हुई, एक विशेष मस्कति है, जिसका उदभव और विकास मानव मस्कति की पृष्ठभूमि में हुआ है। प्रारम्भ में लेकर बनमान तक, भारतीय मस्कति का विकासकाल का चार अन्तर्भाग में बाँटा जा सकता है। प्रथम प्रागतिहासिक काल का भारत में आर्यों का आन और हिन्दू समाज का निर्माण तक का काल है, दूसरा बौद्धकाल का एक आर, बौद्धिक कागहन तथा चेतना और दूसरी धार अन्तिमस्त बद्धि समान का प्रति प्रतिप्रिया का काल है, तीसरा मुस्लिम काल जिसमें इस्लाम के सम्पर्क में हिन्दुत्व का अन्विकास प्रभावित हुआ और चौथा बनमान काल जिसमें पश्चिमी मन्पना का व्यापन मघात न बनक परिवर्तन प्रक्रिया का जन्म दिया। अतः भारतीय मस्कति का विकास काल के ये चार अन्तर्भाग एक दूसरे में अलग नहीं हैं क्योंकि उनमें एक ही गत्या प्रवाहित हो रही है। ये चार अन्तर्भाग बस्तुतः एक मन्पना के चार अन्तर्भाग के समान हैं। एकता में अनेकता और जनकता में एकता समेटे हुए भारतीय मस्कति का प्रवाह उम गगा का समान है जो अनेक सहायक नदियाँ को धारमनात करके भी उम गगा ही बनती रहती है। आज भी भारतीय उसी समाज में रह रहे हैं जो बदा में वर्णित है और

आज भी वशो व रचयिताओ तथा महात्मा बुद्ध का प्रेरित करने वाले जाति और अहायेँ भारतीयो को प्रभावित कर रही हैं ।

आज म लगभग पचास वष पहलू सर हरबट रिसर्च ने लिखा था कि भारत मे यारोप जम प्रागतिहासिक अवशय नही पाय जात है और इस कारण भारत के प्रारम्भिक निवासियो और मस्कति के बारे म यवेष्ट नान नही हा पाता है । इसम कोई स ह नही कि भारत की गम जलवायु म जीवात्म (Fossil) वम मुरभित नही रह पाये हैं जम व योरोप म हैं । फिर भी आज वह स्थिति नही है जा रिसले के समय म थी । पिछल तीम वर्षों म सरकारी और गर सरकारी मस्थाओ की छत्र छाया मे पुरातत्ववेत्ताओ न भारत की प्रागतिहासिक मस्कति के अनक पुरानागय दूढ निवाले हैं । ✓

२

भारत म प्रागतिहास

सन 193० इसवी म डीटेरा और पटरसन के नेतत्व म यल और कमिन्ज विश्वविद्याल्या द्वारा मगठित अक्षपक दल ने यह निर्धारित किया कि भारतीय मस्कति उत्तनी ही प्राचीन है जितनी कि यारोप की । यारोप के समसामयिक चार हिम युग का आगमन निगमन उत्तरी भारत मे भी हुआ है जिसक प्रमाण सि ध की सहायक साजान नदी की घाटी म बिद्यमान हैं । पजाब राजस्थान गजरात मध्य प्रदेश, कर्नाटक, ममूर विहार आसाम और बगाल, लगभग सम्पूर्ण भारतवष म, प्रागतिहासिक मानव द्वारा निमित पत्थर क औजार पाए गए है । सोआन नमन्य और गोलकरी नल्या की घाटियो म भी मानव द्वारा निमित पत्थर क औजार मिले हैं । साजान नदी की घाटी मे पाय गये औजार, पानी क साथ बट्कर आय हये पत्थरा (Pebbles) स बचाये गय हैं और उनम जा तरक (Core) तथा पथुक (Flake) दाना प्रकार क औजार पाये गय हैं । दक्षिण म पाये जान वाले औजारों मे आतरक औजारा की ही प्रधानता है । इसी आधार पर स्टुअट विगाण ने यह मत प्रतिपादिन किया है कि उत्तरी भारत से लेकर उत्तरी यारोप तक पथुक औजारो की और दक्षिण भारत से लेकर दक्षिण यारो तक आतरक औजारा की परम्पराओ का विकास हुआ है । इन औजारो म काटने और छोलने क औजार पाये जात हैं यद्यपि इनम मुष्टिका कुहाडियो (Hand Axes) का बाहुत्य ह । वास्तव म, योरोप से लवर भारत तक प्रस्तरकालीन युग म मुष्टिका कुहाडियो की ही बहुतायत है । पुरातत्ववेत्ताओ के अनुसार, गगा सि ध के मलान के अतिरिक्त, भारत के प्रत्यक भाग

प्राचीनता के प्रमाण मिले हैं। किन्तु भौतिक स्तरीकरण (Stratigraphy) के पट्टे न होने के कारण यह कहना कठिन है कि भारत के किस भाग में मानव की उत्पत्ति हुई। भू-भौतिक प्राचीनता ज्ञान की अनुकूलता और वादात्मकता में ये गये अवसोपा के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सम्भवतः भारतवर्ष में मानव की उत्पत्ति शिथिल भूभाग में हुई और वहाँ से वह बांग्लादेश, मोरान, घाटी में पायी जाने वाली मुष्टिका-बुन्हाडियों (Hand Axes) के प्रमाण को जानकर हुए चीन से भी यही मत प्रतिपादित किया है कि भारत में मानव की उत्पत्ति दक्षिण में ही होनी होगी और प्रथम हिमयुग के अन्त तक पंजाब में उसका प्रमाण हुआ होगा¹।

मध्यमकालीन प्रस्तरयुग (Mesolithic) के औजार भी लगभग सम्पूर्ण भारत में पाये गये हैं। योरोप और अफ्रीका में पाये गये, उस काल के औजारों की शक्ति ये औजार भी ठाठे आकार के हैं और माराप में पाये गये औजारों के काफी अनुकूल हैं। अन्तिमतर ये औजार भूमि की सतह पर पाये गये हैं। अतः, यह निष्कर्ष करना कठिन है कि वे किस युग के हैं। एक ओर ये औजार लौह के औजारों के साथ पाये गये हैं और दूसरी ओर ये उन मिट्टी के बस्तियों के साथ पाये गये हैं जो ईसापूर्व चौथी शताब्दी में अधिक प्राचीन नहीं हैं। इस प्रमाण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भारत में मध्यमकालीन प्रस्तरयुग लौहयुग के मध्यकाल में है।

मसूर के चीनलडुग जिले में ब्रह्मगिरि नामक स्थान पर की गई खुदाई में मध्यमकालीन प्रस्तरयुग और नवप्रस्तरयुग के औजार साथ-साथ पाये जाते हैं। अतः यह सिद्ध होता है कि मसूर के क्षेत्र में अब और प्राचीन प्रस्तरयुगों के मध्यमकालीन प्रस्तरयुग आया है। यद्यपि यह निश्चित करना कठिन है कि योरोप की भाँति यहाँ भी मध्यमकालीन प्रस्तरयुग प्लेस्टोसीन युग के अन्त में आया है। पश्चिम की महाशैव पहाड़ियों पर पाये गये पुरावों का भी यही हाल है। भारत के मध्यमकालीन प्रस्तरयुग की सम्पत्ति में गुजरात की सम्पत्ति सबसे प्राचीन है और यहाँ पाये गये कबाला में पूर्वी अफ्रीका और मिस्र के निवासियों की भी पारंपरिक विषयों पायी गयी हैं। इस सम्पत्ति के निर्माण-कारिणों के जीवन का आधार गाय, भेड़, घोड़े, बकरी, चूना मछली और मगर का पिकार था। वे गाय का स्तनपान दफनाने के लिए सम्भवतः कुत्ते पालते थे।

पालिका जिले में नवप्रस्तरयुगीन औजार निलारी, मसूर, हैराबाद, मध्य-प्रदेश, गुजरात, गुजरात, बरमौर, पश्चिमी बंगाल, छत्ता नागपुर और उड़ीसा के

1 एच० डी० गजालिया आर० सी० मजूमदार द्वारा सम्पादित वदिक एज० में

क्षेत्रों में पाये गये हैं। नवप्रस्तरयुगीन अवशेष और अन्य भूगर्भीय प्रमाण इतने कम हैं कि यह कहना कठिन है कि भारत में नवप्रस्तरयुगीन संस्कृति के निमाता कौन थे? ब्रह्मगिरि और गुजरात के प्रमाण इस बात के अवश्य चोखे हैं कि भारत में नवप्रस्तरयुग लौहयुग के पहले आया है। वास्तव में भारत की नवप्रस्तरयुगीन संस्कृति के अधिक वैज्ञानिक अध्ययन की आवश्यकता है।

ताम्र अवशेष दाआबा, हैदराबाद, नागपुर, मद्रास और मसूर के क्षेत्रों में पाये गये हैं। सिंध नदी की घाटी में ताम्र, विश्वपतया कासे के अवशेषों का बाहुल्य है। यह सबविदित है कि हड़प्पा और मोहनजोदड़ों की संस्कृति कांस्ययुगीन संस्कृति है। हड़प्पा और मोहनजोदड़ों की संस्कृति पर ईराक की दजला और फरात नदियों की घाटी में विकसित तत्कालीन कांस्ययुगीन संस्कृति का प्रभाव स्पष्ट है। इस आधार पर, विद्वानों का यह मत है कि भारत में कांस्य का प्रयोग का पान मध्य एशिया से आया है। स्टुअर्ट पिगाट के मत में गंगा सिंधु के मैदान में ताम्र और कांस्य संस्कृतियों के विकसित होने का एक कारण यह भी है कि राजस्थान, छोटा नागपुर और सिंधु भूमि (बिहार) में तांबा और कासा पाया जाता रहा होगा। तांबे और कासे के अवशेषों के रूप में जीजारा हथियार (कुल्हाड़ी, तलवार और डेगर आदि) और आभूषण पाये गये हैं। भौतिक स्तरीकरण की अनुपस्थिति में यह निधारित करना कठिन है कि भारत में धातु का प्रयोग कब प्रारम्भ हुआ। ऋग्वेद में धातु के लिये अयम शब्द का प्रयोग अवश्य हुआ है पर उससे भी यह निष्कर्ष करना कठिन है कि भारत में धातु के प्रयोग का वास्तविक समय क्या है क्योंकि ऋग्वेद के रचनाकाल पर ही विद्वानों में मतभेद उत्पन्न है। दाआबा की कांस्य संस्कृति हड़प्पा और मोहनजोदड़ों की संस्कृति से प्राचीन समझी जाती है क्योंकि एक छोटी वहा कास की तलवार अनुपस्थित है और दूसरी ओर, वहा कास के औजारों के साथ साथ पत्थर के भी औजार पाये जाते हैं।

दाआबा में लखर ड्यूब नदी की घाटी तक पाये जाने वाले कांस्य औजारों की बनावट और आकार में साम्य है जिसके आधार पर स्टुअर्ट पिगाट ने यह प्रतिपादित किया है कि कासे के प्रयोग का पान रखने वाले भारत में पश्चिम की ओर से स्थानान्तरित हुए हैं। अभी तक भारत में लौहयुगीन संस्कृति के प्रतीक हैं भीमकाय पत्थरों के स्मारक जो लगभग सम्पूर्ण भारत में पाये गये हैं। इनमें से केवल कुछ ही खुदायी हुयी हैं। इनकी खुदाई से जो कुछ भी प्रमाण और अवशेष प्राप्त हुए हैं वे इस बात के चोखे हैं कि ये सभी स्मारक किसी विद्यमान काल के नहीं हैं। कश्मीर का स्मारक नवप्रस्तरयुग का है। राची के स्मारक में नवप्रस्तरयुगीन औजारों का प्रयोग करने लगे हुए मिट्टी के बतन, तांबे और कास की बनी वस्तुएँ तांबे और सोने के आभूषण और गलाये हुये लाह के अवशेष साथ-साथ पाये गये हैं। राजपूताना के स्मारकों में ढक्कनदार मिट्टी के बतन मिले हैं जिनमें

जली हुयी मानव अस्थिया पायी गयी हैं। यही नही राजपूताना के स्मारको मे सत्रमणकालीन प्रस्तरयुग के औजारो के समान गढे हुये पत्थर के छोटे छोटे पथुक औजार (Flake Tools) भी पाये गये है जिससे यह आभास मिलता है कि सम्भवत ये स्मारक सत्रमणकालीन प्रस्तरयुग के है। द्वा ए के स्मारक भी किसी एक काल विशेष के नही है। उनमे नवप्रस्तरयुग से लेकर लौहयुग तक के उतकरण पाये जाते हैं।

इन स्मारका के जाघार पर यह निणय करना कठिन है कि क्या और किस प्रकार ताम जोर कास्य सस्कृतियो का लौहयुग मे सत्रमण हुआ। इन स्मारका की उत्पत्ति और निर्माण के कारणो को भी अभी तक ठीक ठीक निदिचन नही किया गया है। निदिचन यह है कि अधिकतर स्मारक अत्येष्टि क्रिया से सम्बन्धित है पर साथ ही साथ यह भी निर्धारित है कि आसाम के स्मारक निवेचन मनाड और पूर्वज-पूजा (Ancestor Worship) से सम्बन्धित हैं। सम स्पष्ट है कि इन स्मारको के निर्माण के अनेक कारण रहे है। इन स्मारका के अधिक गहन अध्ययन की जाव दयवता है जोर जब तक यह अध्ययन नही जाता है कास्य और लौह युगो के मध्य की सत्रमणकालीन सस्कृति का ठीक ठीक निर्धारण भी कठिन है। अतएव, पुरातत्व के प्रमाणो के आधार पर यह नही कहा जा सकता कि भारत मे लाहे का प्रयोग वन प्रारम्भ हुआ यद्यपि यह निश्चित है कि जायो का लाहे का प्रयोग का नाम था और जायो की सस्कृति लौहयुगीन सस्कृति थी।

इस प्रकार, पुरातत्व के अवरोपा से भारतीय सस्कृति का ज्ञान अधूरा ही रहता है। इसका दाप पुरातत्व को नही दिया जा सकता क्योकि भारत मे पुरातत्व का अध्ययन वस्तुत नही करवावर हुआ है। यह पुरातत्व का ही वरदान है कि आज हडप्पा और मोहनजोदडो की सस्कृति को हम पहल की अप ता अधिक समझते है और भारतीय सस्कृति का पिछले पाच हजार वर्षो का इतिहास अधिक स्पष्ट हो गया है। हा, यह अवश्य है कि पुरातत्व विज्ञान से अधिकतर पार्थिव सस्कृति का ही साध जाता है। इसी कारण डा० सुनीति कुमार चटर्जी ने यह कहा है कि पुरातत्व के द्वारा प्राचान भारतीय सस्कृति की एक शाकीमात्र दखन का मिलती है और अधिकतर वह भागी जाती है पार्थिव सस्कृति की। उनके अनुगार, मानव शास्त्रीय, समाजशास्त्रीय, धर्मशास्त्रीय और पुरातत्वीय अध्ययन रीतियो के साथ यदि भाषा शास्त्रीय अध्ययन रीति का जोड दिया जाय तो भारत की प्रागतिहासिक प्रक्रिया और भा स्पष्ट टा जाएगी¹।

1. भाषा के प्रमाणो के आधार पर किया गया यह घन डा० सुनीति कुमार चटर्जी के अध्ययन पर आधारित है। देखिये आर० सी० मजूमदारकृत बधिक एज।

भाषा डा० सुनीति कुमार चटर्जी के अनुसार, सस्कृति की अभिव्यक्ति का एक मुख्य माध्यम है और भाषा के द्वारा ही सस्कृति प्रसारण होता है। यह निर्विवाद है कि भारत में छ प्रकार की प्रजातियाँ का आगमन, निगमन और मिश्रण हुआ है। प्रजाति और भाषा में कोई कारण सम्बन्ध नहीं है पर यह नहीं कहा जा सकता है कि एक प्रजाति समूह की अपनी विशिष्ट भाषा और सस्कृति नहीं होती है। प्रजातियों के साथ भारत में भाषा सस्कृतियाँ (Language Cultures) भी आईं। जिनमें भारतीय सस्कृति का निगमन हुआ है। भारत में जान वाला प्रजातियाँ क लोग आज आस्ट्रिक (Austroic कौल, मुण्डा) तिब्बती चीनी (Tibeto Chine or Sino Tibetan) द्राविड और आर्य परिवार की भाषाओं का अलग अलग बोलते हैं किन्तु इही भाषा भाषियों की सांस्कृतिक विगमताओं का मिलन से भारतीय सस्कृति और उसकी स्थायी प्रेरक शक्तियाँ और सांस्कृतिक प्रक्रियाओं का अभ्युत्थन हुआ है। एक ओर, भारत में विभिन्न भाषा सस्कृतियाँ आती रहीं हैं और, दूसरी ओर कपि पर आधारित आर्थिक जीवन तथा एक प्रकार से ससार से अलग एक बड़े भूभाग में रहने के कारण उनका पारस्परिक सम्मिलन और आदान प्रदान भी होता रहा है। भाषा का प्रमाणों के आधार पर यह कहना कठिन है कि भारत में आने के समय प्रत्येक भाषा सस्कृति का प्रयत्न का मानसिक और आध्यात्मिक गठन किस प्रकार का था यद्यपि अन्य मानवी शास्त्रों की सहायता से इस बात का बहुत कुछ अनुमान अवश्य लगाया जा सकता है कि प्रत्येक भाषा सस्कृति का पार्थिव और अपार्थिव स्वरूप कैसा था और भारतीय जीवन का पार्थिव, अपार्थिव मानसिक और भावना जगत में उसका क्या योगदान रहा है।

डा० गृह के साथ साथ डा० सुनीति कुमार चटर्जी भी यह मानते हैं कि भारत के आदि निवासी नीग्रिटो थे यद्यपि अब नहीं बचे पाये ही जाते हैं और न उनकी भाषा ने ही बाद में आने वाली भाषाओं को प्रभावित किया। अन्य त आदिवासी होने के कारण नीग्रिटो सस्कृति का भारतीय सस्कृति पर बड़ा प्रमुख प्रभाव नहीं पड़ा और यदि कुछ प्रभाव पड़ा भी तो वह आन्टिक, द्राविड और आर्य भाषा सस्कृतियों की तहाँ में आत्मसात् हो गया। यह अनुमान किया जाता है कि वृक्ष की श्रेणी में आने वाले वृक्ष की पूजा और यमराज की कल्पना वस्तुतः नीग्रिटो लोगों की ही देन है। प्रोटो आस्ट्रालोयड प्रजाति के लोग, सुनीति कुमार चटर्जी के अनुसार आस्ट्रिक भाषा भाषी थे। प्रोटो आस्ट्रालोयड (Proto Austroloid) का आगमन पश्चिम से हुआ उनकी आदिवासी भाषा का विकास भारत में ही हुआ और यही से इस प्रजाति और भाषा भाषियों का प्रसार पूर्व की ओर हुआ। भारत की काठ या मुण्डा, मान खमेर (आसाम) और निकोबार द्वीप की बालिया आस्टिक परिवार की हैं। बर्मा, हिन्दचीन (इंडो चाइना) इंडोनेशिया, मेलानेशिया माईक्रानेशिया और पालीनेशिया की भाषाओं भी इसी परिवार में आती हैं। इस प्रकार, आस्ट्रिक

भापा भापिया का प्रसार कश्मीर से लेकर ईस्टर द्वीप तक हुआ। यही नहीं, मेलानेशियन और पालीनेशियन समूहों के अस्तित्व में आने के बाद उनका भारत में पुनः आगमन हुआ और इस प्रकार अनेक पालीनेशियन और मेलानेशियन तत्व भारतीय संस्कृति में मिल गये। जैसा कि डॉ० गुनीति कुमार चटर्जी का मत है महात्मा बुद्ध के समय तक आस्ट्रिक परिवार के भापा भापिया का प्रसार गंगा के मैदान में रहा है। धीरे धीरे वे आर्य भापा भापी हो गये। एक हजार पाँच सौ और छ सौ ईसवी पूर्व के बीच में ये आर्य भापा भापी हुए। निपाट और चण्डाल सजाओ का प्रयोग आर्यों ने उन्हीं के लिये किया है। कुछ भी हो आस्ट्रिक भापा भापी प्राटो-आस्पाल्वायड की संस्कृति ने भारत को आधारभूत सांस्कृतिक तत्व प्रदान किये हैं। चावल, कदली, नारियल (नारियल) और ताम्बूल (पान) जैसे अनेक पदार्थों के नामों की उत्पत्ति न तो संस्कृति में है और न द्राविड भाषाओं में। इससे यह स्पष्ट है कि यहाँ के उन पुष्प पादपजातों के नाम जिनसे आर्य और द्राविड भापा भापी परिचित नहीं थे, आस्ट्रिक भापा भापियों को देना है। भारत में नवप्रस्तरयुगीन संस्कृति में बीज आस्ट्रिक भापा भापिया न ही बोये। मिट्टी के बरतन, चावल की खेती, गन्ने से शक्कर का निर्माण पूजा तथा अनुष्ठान और धार्मिक तथा सामाजिक कृत्यों में पान, हल्दी और सिंदूर का प्रयोग हाथी पालना और कपास से कपड़े बुनना कुछ ऐसे पार्थिव तत्व हैं जो आस्ट्रिक भापा भापियों से मिले हैं। गिनने में कोडी (बीस) को इक्की मानना, चंद्रमा की कलाओं के आधार पर तिथियाँ को गिनना, नजर में विश्वास, कच्छावतार मत्स्यगंधा और गणनाग की गाथाएँ, वानर और गणेश की पूजा और अडे से मट्टि उत्पत्ति की कहानी भारतीय संस्कृति के वे अपार्थिव तत्व हैं जिनकी जड़ें आस्ट्रिक संस्कृति में हैं। शव को खुला छोड़कर अत्येष्टि किया करना सहवास-गृहा (Dormitories) का निर्माण, नरमुण्डा का गिकार और नाव की पूजा बहुत सम्भव है मेलानेशिया में आये हुए प्रवासियों की देना हो और विभिन्न संस्कारों में नारियल का प्रयोग पालीनेशिया के प्रवासियों की।

द्राविड और आर्य भापा भापिया ने ही भारतीय, विशेषतया हिन्दू, संस्कृति को उसके मुख्य आधार प्रदान किये हैं। आज द्राविड परिवार की भाषाएँ मुख्यतया दक्षिण में ही सीमित हैं किन्तु मध्य भारत में पायी जाने वाली गाड़ी, कुची और ओराखा बोलियाँ तथा बिलोचिस्तान में पायी जाने वाली द्राहवी बोली के आधार पर भापा बन्तानिका और इतिहासकारों ने यह मत प्रतिपादित किया है कि सम्भवतः आर्यों के आने से पहले द्राविड भापा भापी सम्पूर्ण भारत में फैले हुए थे। अपनी ध्वनि संरचना के कारण, डॉ० गुनीति कुमार चटर्जी के अनुसार, द्राविड परिवार की भाषाएँ फिना उग्रियन (Finno-Ugric) भाषाओं के अधिक निकट हैं और यह निकटता इस बात का प्रमाण है कि द्राविड ईरान के उस पार से भारत में आये हैं। भारत में आर्यों ने जिस अथवा दस्यु सजा का प्रयोग उन लोगों के लिये किया है

जा उनसे पहले भारत के निवासी थे। जाधुनिक फारसी में 'डह्यु' 'डह' या 'डीह' जसी सनाखों का पाया जाना इस सम्भावना का प्रतीक है कि आर्यों और द्राविडों का प्रथम साक्षात्कार ईरान में ही हुआ होगा। यह भी सम्भव है कि 'डह' मन्त्र का प्रयोग ईरानियों ने यूनानियों से लिया है। यूनानी 'टह' मन्त्र का प्रयोग कैस्पियन सागर के दक्षिण पूर्व में रहने वाले डहाइ, लागा के लिए किया करते थे। अतएव, यह कहा जा सकता है कि 'डहाई' या द्राविड कहे जाने वाले लोग कैस्पियन सागर के दक्षिणी पूर्वी तटवर्ती प्रदेश के निवासी थे।

एक दिन विश्वविद्यालय के मानवशास्त्र के प्रोफेसर श्री हेमटाफ का मत है कि भारत में आर्यों के फलने व बाद, समुद्रों भाग से आकर द्राविड दक्षिणी भारत में बस गये और यही कारण है कि आज द्राविड भाषायें दक्षिणी भारत में ही सीमित हैं। उत्तरी भारत से दक्षिणी भारत तक फैली हुयी अनेक ऐतिहासिक परम्परायें और उमड़े पाये जाने वाला साम जस्य इस मन को गहरी मान्यता में बाधक है। यह भी निश्चयपूर्वक गृहीत जा सकता कि द्राविड भाषा भाषी मडीटरनियन प्रजाति ही के थे। हडप्पा और मोहनजोदड़ो की खुदाई में पायी गयी सोलो पर अंकित लिपि का कुछ लोगो ने वर्तमान द्राविड लिपियाँ का प्रारम्भिक रूप मान कर यह प्रतिपादित किया है कि हडप्पा और मोहनजोदड़ो का सस्वृति द्राविड सस्वृति है? यह निश्चित है कि तीन हजार दो सौ पचास ईसवी पूर्व से लेकर दो हजार ईसवी पूर्व के मध्य, भारत में ताम्रयुगीन सस्वृति का विकास हुआ और जिसके निर्माण में द्राविड भाषा भाषियों का हाथ अवश्य है। बहुत सम्भव है कि जिन्हें वेदों में दास या 'दस्यु' सहरो तथा लोहे और पत्थर के सप्तभुजी दुर्गों का निर्माणकर्ता कहा गया है वही द्राविड हैं और हडप्पा तथा मोहनजोदड़ो की सस्वृति का निर्माता भी¹।

सर जान मारशल के अनुसार, हडप्पा और मोहनजोदड़ो की सस्वृति ताम्र युगीन सस्वृति है और उसका अस्तित्व तीन हजार दो सौ पचास ईसवी पूर्व से लेकर दो हजार सात सौ पचास ईसवी पूर्व के मध्य रहा होगा। इसका क्षत्र सम्पूर्ण सिन्ध, पंजाब बलूचिस्तान और गंगा के मैदान के एक भाग से लेकर बाडियाबाद पश्चिमी घाट और दक्षिणी भारत के कुछ भागों में फैला रहा होगा। किन्तु हडप्पा और मोहनजोदड़ो की खुदाई में मिले पुरातत्व के अवशेष ही इस सस्वृति का प्रतीक हैं और उन्हीं के द्वारा इस सस्वृति के स्वरूप को जाना जा सकता है। सभी विद्वानों का मत है कि यह सस्वृति ताम्रयुगीन गहरी सस्वृति थी और उन सांस्कृतिक प्रक्रिया का एक परिणाम थी जिसने सिन्ध और नील नदियों के बीच में आने वाले भूभाग में फैलित ताम्र तथा कैस्पियन सस्वृतियों को जन्म दिया। इसी काल की सुमेर, बबीलोन मिस्र और

1 सुन्दरम पी० एम० सत्यद जजुल लतीफ द्वारा सम्पादित और संप्रहीत एन आउटलाइन आफ दि कल्चरल हिस्ट्री आफ इंडिया पृष्ठ 1

असीरिया की सस्कृतिया तथा हडप्पा और मोहनजोदडो की सस्कृति में इतना साम्य है कि पुरातत्ववेत्ता हडप्पा मोहनजोदडो की सस्कृति को एक अलग छुटपुट विकास न मानकर उसे मिस्र से भारत तक फैली हुयी सांस्कृतिक विकास श्रृंखला की एक बड़ी मानते हैं। फिर भी, हडप्पा मोहनजोदडो की सस्कृति अपनी समकालीन सस्कृतिया के पूणतया अनुरूप नहीं है—उसकी अपनी विशिष्टतायें हैं और अपना एक अलग व्यक्तित्व। हडप्पा मोहनजोदडो की सस्कृति के निर्माणकर्ताओं को कपास में बपड़े बनाने का ज्ञान था जबकि तत्कालीन मध्य एशिया के लोग इस ज्ञान से वंचित थे। मध्य एशिया की भांति, यहाँ भी चित्रलिपि का विकास हुआ है किन्तु यहाँ की लिपि में प्रयोग किये गये चित्र अपने ढंग से निराले हैं। यहाँ बनाये जाने वाले मिट्टी के बतनों के आकार और उन पर बनायी जाने वाली चित्रकारी भी अपने ढंग की निराली है। हडप्पा मोहनजोदडो में, जैसा कि पुरातत्ववीय अवशेषों से विदित होता है सस्कृति केन्द्रित है जनसाधारण में किन्तु तत्कालीन मध्य एशिया की सस्कृतिया के केन्द्रबिन्दु हैं वहाँ के अभिजात्यवर्ग। परधरो पर खुदाई और नक्काशी करने की कला और धार्मिक विश्वास भी हडप्पा मोहनजोदडो की सस्कृति को एक अलग सांस्कृतिक विशिष्टता प्रदान करते हैं।

हडप्पा और मोहनजोदडो के अवशेषों से सबसे पहला आभास यह मिलता है कि सिंध नदी की घाटी में नगर नियोजन (City Planning) का पान था क्योंकि हडप्पा और मोहनजोदडो के नगर सुनियोजित हैं। पक्की इटों के बने मकान, उनमें स्नानागार और नालियों की व्यवस्था, मकानों का एक सीधी लाइन में बना होना, सड़कें और जनपथों का सीधा तथा चौड़ा होना, सावजनिक सभ्रागारा और मलबहन, स्वच्छता तथा पानी निकालने की व्यवस्था के अवशेष इस बात का प्रमाण हैं कि हडप्पा और मोहनजोदडो के नगर नियोजित थे। ये अवशेष इस तथ्य के भी प्रमाण हैं कि इन शहरों में सहवासी जीवन अत्यंत मगठित था और जनसाधारण को आवश्यक नगरीय सुविधायें प्राप्त थी। श्री के० एन० दीक्षित का मत है, मौर्यकालीन रथ प्रहरी-मण्डल तथा प्रबंधक मण्डल की व्यवस्था और गुप्तनाल की नगर परिपटी की जहाँ सिंधु नदी की घाटी में विकसित ताम्रयुगीन सस्कृति में हैं।

पुरातत्ववेत्ताओं ने इस सस्कृति के अनेक पार्थिव तत्वा तथा विशेषताओं का निर्धारित किया है। यह निर्विवाद है कि इस सस्कृति का पार्थिव आधार कृषि था। किन्तु कृषक के अतिरिक्त, कुम्हार, बुनकर, बडई, राज और धातु की वस्तुयें बनाने वाला के पेशे भी मुख्य थे। मान, चाँदी, ताँबे, काँस और पकौड़ी तथा पालिश की हुयी मिट्टी के आभूषणों का भी प्रचलन था। अनक प्रकार के मिट्टी के बतनों का प्रयोग होता था यद्यपि यदा-कदा ताँबे, काँस, चाँदी तथा चीनी मिट्टी के बतन भी प्रयोग में लाये जाते थे। पकौड़ी हुयी तथा चीनी मिट्टी की तकलियाँ, दगमलक प्रणाली पर आधारित बोट, सिक्का का आभास देने वाले गाले चाँदी के टुकड़े और कपड़ा

बनाये का कला समझिशाही व्यापार व प्रतीक हैं। भारत तथा एशिया के विभिन्न भागों के निवासियों के साथ हडप्पा और मोहनजोदड़ो के निवासियों के व्यापारिक सम्बन्ध थे। यहाँ प्रयाग में लगे जाने वाले शल और मोती, श्री दीक्षित के मतानुसार दक्षिण के द्राविडों विशेषतया तामिल भाषा भाषियों, से आये होंगे। सुमर और गाम की खुदाई में पायी गयी हडप्पा और मोहनजोदड़ो की सील इस बात की पुष्टि करती हैं कि इन संस्कृतियों के निमाताओं में सांस्कृतिक तथा व्यापारिक सम्बन्ध थे। उत्कीरण (Engraving) और प्रतिरूपण (Modelling) की कलाओं के भी अनेक प्रमाण मिलते हैं। हडप्पा और मोहनजोदड़ो में पायी गयी सीलों पर तत्कालीन जानवरों और धार्मिक कला के खुदे हुए चित्र पाये गये हैं जिनमें, एक ओर, उन काल में पाये जाने वाले जानवरों का पता मिलता है और दूसरी ओर, वहाँ के निवासियों के पारंगीक विश्वासों का। बास में डली और आभरणों तथा बालों की माला में सजी नारियों की मूर्तियाँ अनेक मुद्राओं में पायी गयी हैं, जिनमें नृतकों की मूर्ति काफी प्रसिद्ध है। साथ ही साथ मिट्टी और पत्थर की भी मूर्तियाँ पायी गयी हैं। मिलीने सी लगेन वाला छोटो मिट्टी की बेलगाड़ियों का वही रूप है जो सिंध में वर्तमान बलगाड़ियों का है। इसी आधार पर लागे का यह अनुमान है कि हडप्पा का समय अत्यंत प्रसिद्ध भारतीय बलगाड़ी अस्तित्व में आ गयी थी। खुदायी में प्राप्त पाँच सौ सीलों इस बात का प्रमाण है कि हडप्पा मोहनजोदड़ो के निवासी चित्रलिपि का प्रयोग करते थे यद्यपि यह आज तक भी पढ़ी नहीं जा सकी है।

सीलों पर खुदे चित्रों और पत्थर का बनी मूर्तियों के आधार पर जिन धार्मिक विश्वासों और कला का निराधारित किया गया है उनमें यह स्पष्ट पता चलता है कि हडप्पा मोहनजोदड़ो के निवासियों के धर्म उनमें विश्वास और प्रथाओं में हिन्दुत्व का प्रारम्भिक रूप था। पत्थर और मिट्टी की बनी अद्भुत नारी मूर्तियाँ, जो हडप्पा और मोहनजोदड़ो में ही नहीं बरन् संपूर्ण पश्चिमी एशिया और योरोप तक पायी गयी हैं शक्ति या पृथ्वी माता या प्रकृति देवी की प्रतीक मानी गयी हैं और लोगों का ऐसा अनुमान है कि ये मूर्तियाँ उन विश्वासों और अनुष्ठानों की परिचायक हैं जिन पर आज चलकर आगत धर्म और देवी भगवता की कल्पनाएँ आधारित हैं। हडप्पा की एक सील में उल्टी लटी हुआ एक नग्न नारी की योगि में एक उमता हुआ पेड़ चित्रित किया गया है जो सम्भवतः उस विश्वास और कल्पना का प्रतीक है जिसने आगे चलकर अरब की 'पृथ्वीमाता' या पृथ्वी की कल्पना का रूप लिया। एक सील पर खुदे चित्र में ऐसा आभास मिलता है कि मानो नारी की बलि देने की तैयारी हो। नारी की बलि दी जाती थी या नहीं यह तो निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। हाँ, यह अवश्य कहा जा सकता है कि शक्ति की पूजा में बकरी की बलि दी जाती थी क्योंकि एक सील में एक पूजक बकरी का लं जा रहा है और अनेक देवों एक पवित्र में खड़े हैं। शक्ति की पूजा में बकरी की बलि देने की प्रथा आज भी विद्यमान है। हडप्पा और

मोहनजोदडो में मिली सीला के आधार पर, विद्वानों का यह अनुमान है कि वहाँ के निवासियों के धर्म में शिव और जैन धर्मों का पुट था। शिव की अनेक रूपा में कल्पना की गयी है। एक सीला में शिव को तीन मूर्त तथा तीन नेत्रों के साथ पद्मासन में अंकित किया गया है। यही नहीं उनके सिर पर सीगा वाली पोशाक है। उनके दाहिनी ओर एक हाथी तथा बाध है और बाइ ओर गडा तथा भया और सिंहासन के नीचे एक हरिण सजा है। इससे यह स्पष्ट है कि 'त्रिमूर्ति', 'त्रिनेत्र' 'भूतनाथ' पद्मपति और 'महायागी' के रूप में शिव की कल्पनाएँ इस युग में अस्तित्व में आ चुकी थीं। बहुत सम्भव है कि सीगा वाली पोशाक ही आगे चलकर त्रिशूल में प्रतिरक्षित हो गयी हो। किन्हीं किन्हीं सीलों में शिव का चतुर्भुजी के रूप में अंकित किया गया है और सम्भवतः इसी कल्पना से आगे चलकर चतुर्भुज देवताओं की कल्पना की गयी है। देवताओं को जन योगियों की मुद्रा में अंकित करना और ऋषभ (बैल) का प्रतीकात्मक रूप में उनके साथ सम्बंधित करना जन धर्म के प्रारम्भिक रूप से लगत है। यहाँ मिले शकवाकार (Conical) और रभाकार (Cylindrical) पत्थरों के आधार पर यह अनुमान लगाया जाता है कि सम्भवतः शिव और 'गणेश' की पूजा 'लिंग' और 'योनिस' के रूप में की जाती थी। आज भी मंदिरों में शिव-मूर्तियों और अर्धा लिंग और 'यानिस' के ही प्रतीकों के रूप में गढ़े जाते हैं। हड़प्पा और मोहनजोदडो के लग पीपल का पवित्र मानते थे। विभिन्न देवताओं के वाहन इस काल में पवित्र और पूजा योग्य समझे जाते थे। मुह में मछली लिए घड़ियाल को लोग सिंघ का प्रतीक मानते हैं और यह प्रतिपादित करते हैं कि सम्भवतः हड़प्पा मोहनजोदडो के निवासी नदियों की भी पूजा करते थे। स्वस्तिक और चक्र, जसा कि विद्वानों का मत है सूर्य के प्रतीक समझे जान चाहिए। इस प्रकार, हिन्दुत्व की अनेक विधायाँ हड़प्पा और मोहनजोदडो की संस्कृति में विद्यमान हैं। मजुर्वेद तथा अथर्ववेद में वर्णित प्रेतात्माओं और जादुयी विचारों में विद्वानों हड़प्पा की संस्कृति के प्रभाव के ही परिणाम हैं।

हिन्दुत्व का अभ्युदय

आज में चार पीढ़ा पूर्व जब यह निर्धारित किया गया कि सस्कृत और उसमें उत्पन्न भाषाएँ आप भाषाएँ हैं और ईरान से लेकर याराप तक फैली हुयी प्रायः भाषाओं में उनका मूल सम्बंध है तो सट्टा यह मान लिया गया कि भारत में जो कुछ भी स्पष्ट है वह आर्यों को देन है। किन्तु, बाद की भाषा से यह धारणा बदल गयी।

ताज यह निर्विवाद है कि आर्यों के पहले भी भारत में सुमगठित और उच्च सस्कृति विद्यमान थी। आय शब्द धर्मनिद कौसाम्बी के अनुसार, 'ऋ धातु से बना होने के कारण, घुमक्कड (यायावर) या मुमाफिर का जय देना है। आय सस्कृति निश्चय ही यायावरो की मस्कृति थी और जय सस्कृति का भारत में द्राविडीकरण हुआ है। जय मस्कृति के द्राविडीकरण की प्रक्रिया ईरान में ही प्रारम्भ हो गयी थी और इसी कारण पंजाब और ब्रह्म के निवासी आर्यों का उतने अपरिचित नहीं लगे जितने कि वे नवागतुको का लगने चाहिए। हडप्पा और माटनजादडो के दूहो (Mounds) के विभिन्न पत्तों में पाए गए विभिन्न प्रकार के मिट्टी के बतन, जो झुलस हुए हैं इस बात का प्रमाण है कि जिन स्थानों में ये दूह जन गए हैं वे कई बार जाबाद हा हाकर उजडे हैं। मिट्टी के बतनों का झुलसा होना जाग लगाकर उजाडन का सातक है। इसी आधार पर स्टुअट पिगाट ने यह मत प्रतिपादित किया है कि लगभग एक हजार वर्ष तक आय स्थानांतरण की लहरें भारत का प्रभावित करती रही¹। भारत में आस्ट्रिक भाषा भाषी नवप्रस्तरयुगीन मस्कृति के अग्रदूत रहे हैं, द्राविड भाषा भाषी ताम्र और कांस्ययुगीन सस्कृति के और जय लौहयुगीन मस्कृति के। आर्यों के भारत में स्थानांतरित होने से भी अधिक महत्वपूर्ण है आस्ट्रिक, द्राविड और आय मस्कृतियों को एक मूल में बांधने वाली वह समकाल प्रक्रिया जिसने हिंदू मस्कृति का जन्म देकर फिर भारतीय मस्कृति का जन्म दिया। वास्तव में आय और मुस्लिम मस्कृतियों द्वारा जापरिवर्तित प्रायः आय (आस्ट्रिक तथा द्राविड) मस्कृतियों के आधार ही अखिल भारतीय मस्कृति की आधारभूत आत्मा है।

जय और प्रायः जय मस्कृतियों के समकाल के अन्य प्रमाण हैं। शिव (आदि पुरुष) और उमा (आदि प्रकृति) की कल्पना द्राविडों की देन है। ताशिक स्तर पर यह कल्पना आर्यों की पृथ्वी माता और 'आकाश पिता की कल्पना से कहीं अधिक व्यापक, रहस्यात्मक और तत्काल प्रतीत होती है। शिव लिंग की पूजा हो सकता है आस्ट्रिक भाषा भाषियों की देन हो कि तु, एक सर्वकल्याणकारी देवता के रूप में शिव की कल्पना द्राविडों की ही देन है। हिंदुओं के धार्मिक विचार दर्शन, प्रथाएँ और मस्कार जागम' और निगम दो श्रेणियों में आते हैं। निगम प्रतीक है वैदिक त्रियाम्ना ब्रह्मकाण्ड और बलिभुक्त हवन का और जागम ताशिक तथा पौराणिक प्रथाजा और मस्कारा का जिसमें योगिक तथा धार्मिक जादुयो विचारधारयें और प्रथायें भी सम्मिलित हैं। रूप लीप नवध पुष्प भजन कीर्तन के साथ देवमूर्ति की पूजा करना ही पूजा कहलाता है। पूजा निश्चय ही जागम की श्रेणी में जाती है। यही नहीं,

1 चटर्जी, सुतीति कुमार आर० सी० मजूमदार द्वारा सम्पादित 'वैदिक एज' में पृष्ठ 115

2 पिगाट, स्टुअट प्रोहिस्टोरिक इण्डिया पृष्ठ 218

पूजा का ही व्युत्पत्ति भी द्राविड भाषा में है। इस प्रकार आगम का अपना एक अलग मसाला रहा है यद्यपि आगम और निगम न एक दूसरे का प्रभावित किया है। गीता में कृष्ण का यह कहना कि यदि कोई पूज्य पुण्य अर्पित करके निष्ठा के साथ मेरी आराधना करता है तो वह मुझे स्वीकृत है इस बात का प्रतीक है कि गीता की रचना के समय आगम-मन्त्र और अनुष्ठान माय्य हो चुके थे। गीता जोर महाभारत के समय तक पुण्यवम (पूजा) और पशुकर्म (हवन बलि) का समन्वय हा चुका था। हिन्दू धार्मिक अनुष्ठानों और त्रियाघो में यह समन्वय आज भी विद्यमान है।

वदा में वर्णित आर्यों के देवताओं की मूर्त्तियों का धीरे धीरे समाप्त होना, उनका मानवीकरण होना और अनाथों के देवताओं का सर्वोपरिता मिलना जहाँ एक ओर आर्यों के द्राविडीकरण का प्रतीक है वहाँ दूसरी ओर अनाथों पर आर्यों की सामन्तिक विजय का। आज प्रकृति के पुनारीय और उनके देवता के अद्भुत वर्णन मन्त्र और मूय जा निराकार प्राकृतिक शक्तियों के प्रतीक हैं। आग चलकर इन प्राकृतिक शक्तियों की मानवी रूप में कल्पना की गयी है द्राविड विचारधारा के प्रभाव का परिचायक है। आर्यों के सबसे बड़े देवता इंद्र (पुर दर) उत्तर दिक्काल में बसल दिक्पाल मान्य रह गए और सभी देवताओं में विष्णु और शिव सर्वोपरि हो गए। विष्णु और शिव की सर्वोपरिता यहाँ तक बढ़ी कि अथ देवता कर्त्तों से छुटकारा पान के लिए गिर या विष्णु की शरण में आने लगे। हनुमान और गणेश जस देवता और देवी भगवती के उनके रूप निश्चय ही प्राकृतिक आग मस्कृति के प्रतीक हैं। कल्प ने इंद्र की पूजा के स्थान पर गाबरधन पर्वत की पूजा का प्रतिस्थापित किया था जो इस बात का प्रमाण माना जाता है कि किस प्रकार कृष्ण के नृत्य में अनाथों ने अपनी साम्प्रतिक विजय-यत्ना का पहचान का प्रयत्न किया और उसमें सफल भी हुए। हिन्दू सामाजिक मगठन में टोटमवाद (Totemism) का प्रभाव गुरु तथा नाग के रूप में जानवरों की पूजा और पशु, घोड़ा तथा घोड़ा की पूजा अनाथ साम्प्रतिक तथा के ही प्रतीक हैं।

अनाथों में घाए हुए उनके सामाजिक तत्व आज भी भारतीय मस्कृति के अंग बन हुए हैं। देव भाभी का सम्बन्ध, बलि तथा उत्तरदिक्क साहित्य में मानसतात्मक प्रथाओं की धार निर्देश नारिकर सिद्धर हल्दी और पान का मस्कारा तथा उमवा में प्रयोग, जो की रोटी मम जोर मक्कन जा आर्यों के प्राण पन्थ हैं के अनिश्चित प्रयास में लागू जाने वाले प्राणपन्थ और बस्तों में घाती माटी, दुपन्था, माफा और उत्तरीय अनाथ साम्प्रतिक तत्व हैं। राम और गीता की कथा तथा राम भारत के अनेक उपाख्यान का उत्पत्ति भी अनाथ विचारधारा में है। वास्तव में, भारतीय विचारधारा के आश और अज्ञान के मूलधार में अनाथ है। मुनि कुमार चटर्जी ने तो यहाँ तक कहा है कि भारतीय मस्कृति मूल में वारह आग अनाथ मस्कृति है। वास्तव में, भारतीय मस्कृति का ताना है अनाथ और बाना प्राय तथा

प्रायः और अनाय के ताने-बाने से ही भारतीय सस्कृति के आधार का निर्माण हुआ है। आय और अनाय सास्कृतियों के संगम से ही भारतीय सस्कृति की सामाजिक एवं समन्वयकारी विशेषता का जन्म होता है। इसी समन्वयकारी विशेषता ने भारतीय सस्कृति को विशिष्टता, एकत्व और स्थायित्व प्रदान किया है। यही वह विशेषता है जिसने विभिन्न सास्कृतिक प्रजातिक मानव समूहों को एक सूत्र में बांध दिया। आर्यों और अनायों की सस्कृतियों के समन्वय न एक विशिष्ट दर्शन का जन्म दिया, जिसका मुख्य आधार हैं सहिष्णुता, अहिंसा, जीवन के सभी प्रकारों के प्रति पवित्रता की भावना, सम्पूर्ण दुर्गों और बुराइयों को दूर करने के लिए तपस्या, यम नियम और ज्ञान का आश्रय लेना तथा रहस्यात्मक अनुभवों द्वारा अदृश्य वास्तविकता का पाने की अभिलाषा, जीवन के दुखों तथा उनके मूलकारणों के प्रति अवगत होकर यथार्थ, समुदाय (सहवासी) तथा मानवमान के जीवन से उन्हें दूर करने की प्रेरणा, रागात्मक भावनाओं तथा रहस्यात्मक अनुभूतियों में सामंजस्य रखते हुए बुद्धि पर अद्विग आश्रय बनाए रखना, जीवन में समन्वय (अनेकात्मवाद) की अभिलाषा और जीवन के सभी प्रकारों को अदृश्य और अलौकिक वास्तविकता के रूप में मानकर उनमें एकत्व की अनुभूति करना¹।

आय और अनाय सस्कृतियों के संगम से ही हिन्दुत्व और हिन्दू समाज का जन्म हुआ और जसा कि पहले कहा जा चुका है हिन्दुत्व ने ही विभिन्न प्रजातिक तथा सास्कृतिक समूहों को एक सूत्र में बांध दिया। हिन्दुत्व पसरण की यह प्रक्रिया आज भी जारी है। हिन्दुत्व और हिन्दू समाज न तो पूर्णतया आय है और न अनाय। जसाकि वैदिक और उत्तरवैदिक साहित्य से स्पष्ट है धीरे धीरे, आर्यों पर अनायों का प्रभाव पडा और प्राय तथा अनाय सस्कृतियों का संगम हुआ। इस संगम से उत्पन्न सामाजिकता में अनायों के विचार दर्शन और प्रथायें 19 रूपों में प्रस्फुटित हुयीं। भारत की परम्परागत सामाजिक आर्थिक विशिष्टतायें इसी सामाजिकता के साथ साथ अस्तित्व में आती हैं। सम्राट सुदास की विजय के साथ साथ भारतीय राजनैतिक संगठन में सम्राट की धारणा का जन्म होता है और तभी से भारत का राजाआने, अन्य राजाओं के राज्यों का हड़प न करके वरन उन्हें अपने साम्राज्य में मिलाकर, सदैव सम्राट की पदवी प्राप्त करने का प्रयत्न किया है। सम्राट बनना राजा का धर्म है और पराजित राजा के राज्य को हड़प लेना अधर्म है। सम्भवत इसी कारण, जहा एक ओर, भारत के राजाओं ने सम्राट बनकर भारत को एक सूत्र में बांधने का प्रयत्न किया है वहा दूसरी ओर भारत के बाहर उपनिवेश स्थापित करने से दूर रहे हैं। भारतीय राजनैतिक दर्शन पर भी अनेकात्मवाद का प्रबल प्रभाव रहा है।

1 चटर्जी, सुनीति कुमार आर० सी० मजूमदार द्वारा सम्पादित पुस्तक वैदिक एज में

भारतीय पर्यावरण के प्रभाव और अनार्यों के सम्पर्क न किए हुए आर्यों को कृषक बना दिया। भूमि से बाहर स्थायी जीवन बिताना यद्यपि ही एक आधारभूत आवश्यकता है और उस आवश्यकता की पूर्ति के साथ साथ जगत्प्रसिद्ध भारतीय ग्राम का अस्तित्व हुआ। सम्मिलित और मयुक्त परिवार एक ही जीवन की एक ही आवश्यकता है। यद्यपि साहित्य में उस बात के यथेष्ट प्रमाण मिलते हैं कि किन प्रकार भारत में परिवार की मयुक्तता प्रथम गणना का प्रयास किया गया है और आज अनेक प्रबल परिवर्तनकारी शक्तियों के आघातों का सहते हुए भी भारतीय परिवार की मयुक्तता सुरक्षित है। कृषि का सहायता प्रदान करने वाले पशु और उनको करने वाले व्यक्ति अथवा समूह कृषक समाज की एक ही आवश्यकता है जिसके परिणामस्वरूप प्रारम्भ में ही लकड़ी लोहा और चमड़े के कार्यों पर आधारित पैना और उनके करने वाला का वणन मिलता है। उद्यम आया न भारत में प्रजातिवाद, वणभेद और जाति भ्रष्टमयता के विचारों का जन्म लिया। जाति भ्रष्टमयता के विचारों ने ही इस भावना को जन्म दिया कि वणन का नाम जातों का मातापिता ईश्वर से मिला है और इस ज्ञान के सभी अधिकारी नहीं हैं। कृषक समाज की आवश्यकताओं और वणभेद के विचारों ने ही सम्भवतः वणभेद का प्रारम्भ किया। कालांतर में इसी परिस्थिति ने कृषि पर आधारित भारत की उग सामाजिक आर्थिक व्यवस्था का जन्म दिया जिसका मुख्य आधार जाति में निर्धारित हुआ। इसका यह तात्पर्य नहीं कि वण व्यवस्था में ही जाति प्रथा का जन्म दिया। वण और जाति सहसम्बन्धित किन्तु स्थायी सामाजिक व्यवस्थाएँ हैं। पैना ने एक साथ मिलकर व्यक्ति और समूह की सामाजिक प्रतिष्ठा का निर्धारण किया है। कृषक-समाज की आवश्यकताओं ने प्रतिष्ठा को कममूल्य मानने पर जोर दिया जससे प्रजातिवाद तथा जाति भ्रष्टमयता के विचारों का जन्म पर। गणकर्म विभाग वाली विचारधारा ने जन्म पर जोर देकर व्यक्ति को वण में स्थान दिया किन्तु सामाजिक स्थिति का जन्मजात मानने वाली विचारधारा ने जाति में। साथ और अनाथ सहसृष्टियाँ के समक्ष वण व्यवस्था और गणजाति-व्यवस्था का समझाने में जाति-व्यवस्था का अस्तित्व हुआ जिसका स्पष्टीकरण आगे किया जायगा। किन्तु काल से लेकर वर्तमान समय तक वण और जाति व्यक्ति के जीवन और व्यवहार का प्रभावित करते रहे हैं और यह इस बात का प्रतीक है कि भारत में प्रारम्भ में ही व्यक्ति समष्टि का अंग रहा है। कृषि पर आधारित सामाजिक प्रणाली की सम्मान माग ही यही है।

इस प्रकार, आर्थिक-व्यवस्था के सम्बन्ध में हिन्दू के दो विचारधाराएँ

1. आ. मेले. माइन इंडिया एंड दि वस्तु पृष्ठ 15। पानोकर ४० एन० । सर्वे आफ इंडियन हिस्ट्री पृष्ठ 8-10

हुआ किंतु वह पल्लवित और पुष्पित हुआ उत्तरवर्द्धिक काल में। उत्तरवर्द्धिक काल में ही वेदांत ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद लिखे गये। इन चर्या में निहित धार्मिक विचारों और दर्शन में ही हिन्दू समाज और सृष्टि का सगठित और स्थायी हान में सहायता दी। वर्द्धिक काल के आय केवल आयावन (वर्तमान पंजाब और पश्चिमी उत्तर प्रदेश) को ही जानते थे किंतु बाद में, धीरे धीरे, वे पूर्व और पश्चिम की ओर फलित गये। रामायण की कथा का ऐतिहासिक पक्ष इस बात का प्रतीक है कि रामायण काल में विद्याचल की तलहटी से उत्तर विष्किन्धा तरु फैल हुये सघन वन प्रदेश में महा-वर्द्धा जाय श्रुति रहते थे और सम्भवतः उन्नी के द्वारा हिन्दुत्व का प्रसरण हुआ होगा। किंतु महाभारत काल में यह स्थिति बदल जाती है। महाभारत काल में भारत के वर्तमान भौगोलिक क्षेत्र का ज्ञान हो जाता है। कुरुक्षेत्र के मदान में सम्पूर्ण भारत के योद्धा एकत्र होते हैं। यहां तक कि हिमालय कलाश और मानसरोवर का ज्ञान भी प्राप्त हो जाता है। रामायण काल में तपस्वियों की कल्पना नहीं की जा सकती थी किंतु महाभारत काल में दासी पुत्र विदुर ही सम्राट धृतराष्ट्र के मित्र और सहायक हैं। वेदों के रचयिता और पाण्डु तथा धृतराष्ट्र के जनक महर्षि वेदव्यास स्वयं एक निषाद स्त्री की सन्तान हैं। इस प्रकार जया ज्यो आयों का विस्तार होता गया और वे यहां के आदिवासियों के सम्पर्क में आते गये, सामाजिक सामञ्जस्य की समस्या सामने आती गयी। इस समस्या का निराकरण दृष्टा वण व्यवस्था और जाति व्यवस्था द्वारा। किंतु अत्यन्त प्राचीन काल से जहां एक ओर वण व्यवस्था एक आदर्श कल्पना मात्र रही है और कभी भी समाज में उस कड़ाई के साथ लागू नहीं किया जा सका वहां, दूसरी ओर, जन्म पर आधारित जातिव्यवस्था समाज में दृढ़ता प्राप्त करती गयी और इस दृढ़ता के विरुद्ध बराबर विद्रोह भी होने लगे। हिन्दुत्व एक सतत विकसित और प्रसरित सामाजिक संकुल रहा है। सश्लेषण और सात्मीकरण इसकी विशेषता रही है जिसके कारण भारत में आये हुये विभिन्न प्रकार के समूहों को हिन्दुत्व एकता सूत्र में बाधन में सफल हुआ है। हा, केवल इस्लाम इसका अपवाद है।

वास्तव में हिन्दुत्व के दार्शनिक और सामाजिक आधारों का विकास और समन्वय तथा सगठन उत्तरवर्द्धिक काल में ही हुआ। उपनिषदों में ही आत्मा निरपेक्ष निराकार ब्रह्म और ईश्वर तथा मानव के सम्बन्ध की कल्पना और व्यवस्था की गयी। उत्तरवर्द्धिक काल में ही धर्म की उस व्यापक धारणा का प्रतिपादन किया गया जो हिन्दू सामाजिक दर्शन की अपनी निजी विशेषता है। धर्म भाषा, मुक्ति और आवागमन के सिद्धांतों का निर्धारण भी उत्तरवर्द्धिक काल में ही हुआ। ये सिद्धांत ही वास्तव में हिन्दू धर्म तथा समाज की व आधारभूत शिलायें हैं जिन्होंने हिन्दुत्व का स्थायित्व प्रदान किया है। प्रत्येक युग में आवश्यकतानुसार इन्हीं सिद्धांतों का विवेचन और निवचन होता रहा है और उसी से हिन्दू का प्रणायें

मिलती रही हैं। गृह्य सूत्रा और धर्म-सूत्रा न हिन्दुत्व के सामाजिक आधार की नींव डाली। गृह्य-सूत्रा के द्वारा हिन्दू गृहस्थ के धर्मोत्तर जीवन का नियमित जोर निर्धारित किया गया। गभाधान से लेकर मय्यु पयन्त तक के अनन्त संस्कारों का निर्धारण और नियमन गृह्य-सूत्रों द्वारा ही हुआ। गृह्य सूत्रा द्वारा निर्धारित संस्कारों में सम्बन्धित कल्पा (Rituals) को मानने वाला ही वास्तव में हिन्दू है। हिन्दुत्व के दार्शनिक सिद्धांत (जैसे कर्म और आवागमन के सिद्धांत) जोरों के द्वारा भी अपनाये जा सकते हैं किन्तु गृह्य कल्पा (Domestic Ritual) का वही अपनायगा जा वस्तुतः हिन्दू है। आज भी जहाँ हिन्दुत्व है गृह्य-सूत्रों में वर्णित गृह्य-कल्प पाये जाते हैं। गृह्य कल्पों में ही हिन्दुत्व को उसके सामाजिक आधार प्रदान किये। धर्म सूत्रों में सामाजिक यंत्रणों और प्रथाओं का वर्णन है। धर्म-सूत्र किसी युग प्रथा का रचना न होकर कई युगों की रचनाये हैं। धर्मसूत्रों की हिन्दुओं की विधि प्रणाली (Legal System) कहा जा सकता है। धर्म सूत्र अपने वास्तविक रूप में समाज का मण्डित रखने की प्रेरणा के प्रतीक हैं।

वैदिक काल में हिन्दूकरण (Hinduisation) की जा प्रक्रिया प्रारम्भ हुई थी उत्तर वैदिक काल में उसका प्रसार बढ़ता गया जिसके फलस्वरूप अनन्त गण जातियाँ हिन्दू समाज और धर्म के क्षेत्र में आती गयीं। सम्भवतः इसी प्रसरण और उससे उत्पन्न सामाजिक सामंजस्य की आवश्यकता ने एक बार वर्ण-भेदस्था का प्रोत्साहन दिया तो दूसरी बार जाति व्यवस्था और जन्मजात सामाजिक उच्चाञ्च परम्परा की भावना का। वैदिककालीन साहित्य की अपना उत्तरवैदिककालीन साहित्य में जातियों और वर्णों के नाम अधिक मिलते हैं। यही वह युग है जब यह विचार पर करने लगा था कि जाति जन्म पर आधारित है। इस युग में ब्राह्मण वर्णों का रचना इस बात का प्रमाण है कि ब्राह्मण वर्णों के समाजिक जीवन का आकार बना कर अपनी सामाजिक स्थिति को उच्च बनाने में सफल हो रहे थे। किन्तु साथ ही साथ, विश्वामित्र और वशिष्ठ के सपथ की कहानी इस बात का भी प्रतीक है कि इस युग में ब्राह्मण-शत्रु सपथ भी चल रहा था। महाभारत में कर्ण ने इंद्र के म्यान पर गावरधन पवत की पूजा पर जार दिया जा वैदिक धर्म और दक्षताओं के प्रति विद्रोह का प्रतीक है। आग चक्कर, ईसा पूर्व छठी शताब्दी में जन आर बौद्ध धर्मों के प्रवक्तव्य का शत्रु परिवारों में उत्पन्न हुआ यदि एक ओर, इतिहास की आस्थितिक घटनाये हैं तो दूसरी ओर, ब्राह्मण-शत्रु सपथ से उत्पन्न सामाजिक प्रक्रिया के परिणाम भी हैं। बौद्धों, शैवों, शक्ती और मगध के राज्य बन्त हुए राजनैतिक संगठन के प्रतीक हैं जो माय-साथ, बन्त हुए शत्रु प्रभाव के भी प्रतीक हैं। दूसरी ओर, यज्ञ और पशुपाल पर आधारित वैदिक कर्मकाण्ड जनसाधारण का सन्तुष्ट करन में असफल हो रहा था। उत्तर वैदिककालीन समाज और धर्म के प्रति हानि का ही प्रतिनिधित्व के फलस्वरूप उपनिषदों में वर्णित दान का

विकास और प्रचार हुआ ।

उपनिषद् अनेक है और सभी उपनिषदां में वर्णित दशन कि ही त्रिही स्थलो में, एक दूसरे में विरोधी भी है । उपनिषदां में विरोधी विचारों के आजाते का एक मुख्य कारण यह है कि वे किसी एक कालविशेष की रचनाएँ नहीं हैं । उत्तर वैदिक काल से लेकर मुसलमानों के आने के समय और उसके बाद तक भी उपनिषदां की रचनाएँ और उनमें वर्णित विचारों और दशना की व्याख्या तथा निबन्धन होता रहा है और यही कारण है कि उपनिषदों में वही वही विरोधी विचार एकत्र हो गए हैं । किंतु यह निश्चित है कि उपनिषद् उत्तरवैदिक काल में चलने वाली एक विशाल विचारधारा और दशन की उपज हैं । वैदिक सामाजिक दशन इहलौकिक है और उसका मुख्य आधार है यज्ञों पर आधारित ऋषि कण्ड । यज्ञ में ऋषि का तात्पर्य है यज्ञ से । वैदिक ऋषि यज्ञाभ्युत्थ और ऋषिकाण्डी होने के साथ-साथ, बहुदेववादी भी है । वेदा में यज्ञ रचना और देव-स्तुति इसलिए की जाती है कि वे सब माटे हो घोट बलवान हों फल की उन्नति हो और शत्रुओं पर विजय मिले । वैदिक विचारों में इस लोक को उत्साह और आनन्द के साथ अपनाया गया है । जन्म न तो दुख का कारण है और न मृत्यु का पूर्वरूप । वैदिक विचारकों के लिए यह ससार सुख का माध्यम है—यह न तो प्रपञ्च है और न मायामय । वेदों में स्वर्ग की कामना भी इसी भाव से की गयी है कि वहाँ भी पृथ्वी पर उपलब्ध भागों का सुख प्राप्त हो ।

ठीक इसके विपरीत उपनिषदों की विचारधारा इहलौकिक न होकर पारलौकिक है । ससार नश्वर है—उस मकड़ी के जाले के समान जो मकड़ी से उत्पन्न होकर फिर मकड़ी में ही समा जाता है । देवता अनेक है किंतु इनके ऊपर भी एक देवता है, अदृश्य, अनन्त, अचञ्चल निर्विकार और अज्ञान । इसी कल्पना ने सब शक्तिमान ईश्वर, परब्रह्म परमपिता परमेश्वर की कल्पनाओं का जन्म दिया । मण्डि के आदिकारण ब्रह्म की कल्पना उपनिषद् दशन की एक विशेषता है । ब्रह्म एक है पर अनेक भाव निराकार है पर साकार भी । अतएव वह त्रिगुण भी है और सगुण भी । त्रिगुण की उपासना ने ज्ञान साधना तथा योग पर जोर दिया और सगुण की उपासना ने भक्ति और अवतार पर । ब्रह्म की ही कल्पना ने कालांतर में द्रव्य अद्वैत और विशिष्टाद्वैत जैसे वादों को जन्म दिया । उपनिषद् दशन में एक आर ससार का क्षणभंगुर माना गया तो दूसरी ओर ससार और जीवन को मायामय । जीव ईश्वर का अंश है अतएव उसी में समा जाना उसका धर्म है । जन्म और मृत्यु के चक्र से छुटकारा पाने में ही जीव का कल्याण है । मानव जीवन का आदर्श है मुक्ति मोक्ष, जिसके मिलने का माध्यम है ससार का वास्तविक ज्ञान न कि वैदिक ऋषि कण्ड । वैराग्य, साधना, चिन्तन ध्यान और समाधि का ज्ञान प्राप्ति के मुख्य साधन माना गया है जिसे उपनिषद् भी सम्भव है जन्म मनुष्य ससार में अलग रहे । कोई आश्चर्य नहीं यदि, उपनिषद्काल में वनाश्रम-व्यवस्था की विशेष व्याख्या करके उसे

लागू करने का प्रयत्न किया गया। उपनिषदी में जहां एक ओर, यज्ञों और पशुबलि का तिरस्कार किया गया वहां, दूसरी ओर कम की विस्तृत व्याख्या करके ज्ञान प्राप्ति के साधनों को भी कम के अंतर्गत लाने का प्रयास किया गया। इस प्रकार, उपनिषदा में वैदिक कर्मकाण्ड के स्थान पर ज्ञानमाग पर जोर दिया गया। किंतु, हिंदू सामाजिक जीवन में दोनों माग अलग-अलग चलते रह सके। गीता को एक ऐसा उपनिषद कहा जा सकता है जिसमें इन दोनों मार्गों को समीप करने का प्रयास किया गया है। गीता में कम की व्याख्या ही इस समन्वय का प्रतीक है। गीता दत्तन, इहलौकिक भी है और पारलौकिक भी। हिंदू सामाजिक जीवन का प्रेरणा देने वाली अर्हति में एक ओर इस लोक के प्रति प्रेरित करती है तो दूसरी ओर परलोक के प्रति। ✓

४

बुद्धवाद और जनवाद

इसकी पूरव छठी शताब्दी में उत्पन्न होने वाले जन और बुद्ध धर्मों में एक आर, उपनिषदिक विचारधारा को प्रोत्साहन दिया तो दूसरी ओर वैदिक कर्मकाण्ड और ब्रह्मणवाद का विरोध किया। वास्तव में, जैनवाद और बुद्धवाद का विकास उपनिषदिक और वैदिक विचारधाराओं का ही पष्ठभूमि में हुआ और यही कारण है कि जनवाद और बुद्धवाद के रूप में हम सामाजिक तथ्यों के नये निवचन मिलते हैं। इसीलिए जैन और बुद्ध धर्मों के जातिभाव को धार्मिक मान्यता न कहकर सामाजिक मान्यता कहा जाता है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि हड़प्पा और मोहनजोदड़ों की सीला में खुदे हुए कुछ चित्र जन-यागियों के समान लगते हैं जो इस बात का प्रतीक हैं कि जन परम्पराओं में भारत में पहले ही से विद्यमान था। उधर, अहिंसा सत्संग की नित्यता अनित्यता मोक्ष तथा कर्मसम्बन्धी विचार और साधना की मायताओं, बुद्ध के पहले ही माय हा चुकी थी। जैन और बुद्ध धर्मों के प्रवर्तकों ने इन विचारों का वह सामाजिक पुट दिया जिसकी जड़ वैदिक काल और उपनिषदा में ही जप चुकी थी। इसी कारण, सनातन हिंदू धर्म का विरोध करते हुए भी ये धर्म हिंदू समाज से दूर न जा सके। जनमतवादी जनमत के साथ हिंदू परम्पराओं का मानते रहे हैं। बुद्धमत के लिए कहा जाता है कि वह हिन्दुत्व का एक बौद्धिक रूप है और इस कथन में अतिशयोक्ति भी नहीं है। यह भी माना जाता है कि पौराणिक कथाओं को बौद्ध आर्यों के अनुसार गढ़कर, उन्हें जातक कथाओं के रूप में रखा गया। इसकी पहली गताओं में, महायान के उत्थान और नागाजून के गुरुवाद की धारणा न बौद्ध धर्म का हिन्दुत्व के और भी समीप ला दिया। नागाजून का

बुद्धवाद आगे चलकर शंकर के अद्वैतवाद का आधार बना। वज्रयान के रूप में परम्परागत यागिक तंत्रवाद पुनः स्थापित हुआ और सहजयान के रूप में वह रहस्यवादी विचारधारा पतनी जिसने एक आरंभ सिद्धा की परम्परा को जन्म दिया तो दूसरी आरंभ मध्यकालीन भक्तिमार्ग तथा काय परम्परा का। यह कहना असंगत है कि भारत में बुद्धवाद का लोप हो गया। वास्तविकता तो यह है कि बुद्धवाद एक प्रवाहशालिनी सरिता की भाँति जनक धाराओं में बँटकर हिन्दुत्व के प्रशांत महासागर में विलीन हो गया।

यह निश्चित है कि जावाद और बुद्धवाद का भारतीय सामाजिक जीवन, विशेषतया सामाजिक अर्हियों पर कातिकारी प्रभाव पड़ा। इन दोनों धर्मों ने निवृत्तिमार्गी प्रवृत्तियों का प्रोत्साहित किया जिसके फलस्वरूप एक आरंभ सत्यास का सामाजिक भावात्म्य बढ़ा तो दूसरी ओर माक्ष 'कवल्प तपस्या, और 'समाधि का। जैन मुनियों ने तो तपस्या का उसकी पराकाष्ठा तक पहुँचाने का प्रयत्न किया कि तु बौद्धों ने सम्यक मार्ग को ही उचित ठहराया। दोनों ने ससार को दुःखमय मानकर ससार त्यागने पर जार दिया और इस प्रकार दोनों ने उपनिषदों के मार्ग का अनुसरण किया। हाँ, यह जवश्य है कि बौद्धों ने तपस्या के द्वारा शरीर का कष्ट दन पर जार नहीं दिया। दोनों ने 'अहिंसा परमात्म' के आदेश को प्रतिपादित किया यद्यपि इस आदेश प्रतिपालन में दोनों ने जलग अलग मार्गों का अनुसरण किया। जिनियों ने किसी भी प्रकार में जीव हत्या न हो इस पर जार दिया। छानकर पाना पाना भाग को बुझारते हुये चलना और बालों को उस्तर से काटने के स्थान पर उखाड़ा की क्रियायें इसी विचारधारा का परिणाम हैं। सम्भवत यही कारण है कि जिनियों ने कपि के स्थान पर व्यापार का अधिक उचित ठहराया यद्यपि कृषि में जीव हत्या की अधिक सम्भावना रहती है। इसका दूसरा स्पष्टीकरण यह है कि आदिवासियों के हिन्दू समाज में शूद्र के स्तर पर संगठित होान के कारण, कृषि के लिए जब श्रमिक उपलब्ध होने लगें तो वे शूद्र के स्तर पर व्यापार को अपना कर अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा को उच्च बनाने का प्रयास किया। बुद्ध ने व्यक्ति के लिए हिंसा बजित की किन्तु उस पराकाष्ठा तक नहीं जहाँ तक जिनियों ने किया। बौद्धों में कहीं कहीं जानवरों का मारना तो हिंसा माना गया है किन्तु मरे हुए जानवरों का मांस खाना अहिंसा। अहिंसा सम्बन्धी जन विचारधारा ने अतृप्ततागतना बौद्धिक अहिंसा का रूप लिया और स्यान्वाद और अनेकतावाद के मतों का जन्म हुआ। 'स्यात' का अर्थ है शायद या सम्भवत और स्यादनाद से तात्पर्य लिया जाता है उस विचारधारा से जो इस मायता पर आधारित है कि हो सकता है कि दूसरा भी सही हो। इसी प्रकार अनेकतावाद का भी यही अर्थ है कि इस ससार में धर्म और मुक्ति के मार्ग अनेक हैं और सम्भवत सभी मार्ग ठीक हैं। आज स्यान्वाद और अनेकतावाद जन धर्म के ही एकाधिकार में नहीं हैं। आज के भारतीय संस्कृति की

आत्मा में लीन हो चुके हैं। भारत में सांस्कृतिक महिष्णुता और सामासिकता की जड़ भी सम्भवतः स्यादवाद और अनेकात्मवाद में ही है। स्यादवाद और अनेकात्मवाद से उत्पन्न प्रेरणाएँ आज भी उनकी ही प्रभावपूर्ण हैं जितनी कि वे कभी थीं। पूर और पश्चिम में समन्वय स्थापित करने तथा वादों के चक्कर से अलग एक स्वतंत्र वदेशिक नीति अपना देने की पृष्ठभूमि में स्यादवाद और अनेकात्मवाद की ही प्रेरणाएँ काम कर रही हैं। इनका प्रभाव मता में यदि भारत की समजोरी निहित है तो उनकी मजिनी शक्ति भी इन्हीं में है।

बुद्धवाद और जनवाद अपने युग की सामाजिक धार्मिक शक्तियाँ हैं जिनका उदभव ब्राह्मणवाद बौद्धिक कमकाण्ड और उपनिषद् की प्रभूत शुद्ध एवं नीरस व्याख्याओं के प्रति हानि वाली प्रतिक्रिया में हुआ। जैन और बौद्ध धर्मों का आविर्भाव और प्रसार ही उस प्रयोग के परिणाम में हुआ या जो मुख्यतया अज्ञान थे। इसके कई प्रमाण हैं कि कुर और पांचाल के आज मगध के परिवर्तित आर्यों का अपने में निम्न सम्भव थे। सम्भवतः, इसी कारण मगध के आर्यों में वेद, ब्राह्मणवाद और शक्ति मयस्था के प्रति जो प्रतिक्रिया हुई उसका चरमरूप बुद्धवाद के रूप में हुआ। बुद्धवाद में, बौद्धिक प्रथाओं के प्रतिकूल यज्ञों को हटाना माना गया है। महात्मा बुद्ध ने जाति की जन्मजात न मानकर कमगत जाना और शक्ति बाल में पनपी हुई 'आत्मगत सब भूतेषु और पण्डिता समस्तानां की विचारधारा पर जोर दिया जिसके परिणामस्वरूप यह भारत का घर बन गया कि ऊँच-नीच का भ्रम भाग न ता जन्मजात है और न ईश्वरकृत है—जगत् सर्व मनुष्यकृत है। माता का जीवन का आत्म मानते हुए महात्मा बुद्ध ने इस बात पर जोर दिया कि मानव का बलयाण हमी में है कि वह जाति बण और ऊँच-नीच की भावनाओं में डूबने का प्रयत्न करे। जीवन का माध के योग्य बनाया जा सकता है पर कर्मों के द्वारा। यह कहकर कि निम्न स्थिति वाला व्यक्ति भी अपने कर्मों द्वारा पवित्र जीवन का प्राप्त हो सकता है भगवान् बुद्ध ने कम सिद्धांत का एक शक्तिशाली प्रगतिशील रूप प्रदान किया। परम्परागत विचारधारा के अनुसार, मानव जीवन और दुःख मुक्त इस जीवन तथा पूर्वजीवन के कर्मनुसार प्राप्त है। महात्मा बुद्ध ने भी यह माना कि कम सचित प्राप्त रहने हैं। किन्तु साथ ही साथ उन्होंने यह भी माना कि कम कुछ नहीं करके कम ही सब कुछ हो सकता है कि कम के द्वारा निम्न स्थिति भी उपर उठकर प्राप्त कर सकता है। कमवाद के कम सिद्धांत को वेद तथा उपनिषद् के मनीषियों ने निराशामय भाग्यवाद का रूप दिया उसका भगवान् बुद्ध ने एक प्रगतिशील आगावाद का रूप दिया। बुद्धवाद में कम की विचारधारा की गई। बौद्धिक काल में, यह कम के प्रतीक थे। उपनिषद् काल में यज्ञ के माय-भाग, चिंतन और माधन भी कम की श्रेणी में आ गए। किन्तु बुद्धवाद में, भगवान् बुद्ध के सम्यक माध पर आधारित समाचार भी कम की शक्ति में आ गए। यह नियम प्राणायाम जप-नप, अस्तव्य

और अपरिग्रह इत्यादि कम के प्रतीक बन गए। कम की इसी व्यापक व्याख्या ने गीता में अनामकितयाग की धारणा का रूप ले लिया। महात्मा गांधी के प्रमल आशावाद पर निश्चय ही अनामकित योग की छाप रही है और उनका सादाजीवन वितान तथा साध्य के स्थान पर साधन की पवित्रता पर अधिक जार देना, उसी आदर्श से प्रभावित मजान पड़ते हैं जिसमें कर्मों की पवित्रता और सम्यक माग पर जार दिया गया है।

अनेक प्रजातियाँ का सगम स्थल हात हुए भी, भारत प्रजातिवाण के भयकर रागा से मुक्त रहा है। भारत प्रारम्भ से ही अनेक ससृतियाँ का मधान रहा है। यह, सम्भवतः, जनवाण के अनेकान्तवाद और बुद्धवाद के सम्यक माग की ही देन है। के० गम० पतिनकर के अनुमार सघों की स्थापना और स्त्रियाँ को भिक्षुणी बनने की अनुमति देना धास्तव में मानव इतिहास में नातिकारी परिवर्तन के प्रतीक हैं। यह बुद्धवाद का ही प्रभाव है कि कालांतर, सघों के स्थान पर 'मठा और अखाडा का महत्व बढ़ गया। सघों के शरण गच्छामि' बुद्धवाद का एक प्राथमिक नारा था। सघ परम्परा ने परिणामस्वरूप मध्ययुग में मुसलमानों के प्रभाव के अंतगत, भारत में विशपतया उत्तरी भारत में पथ परम्परा प्रादुभूत हुयी। प्रत्येक पथ के प्रणता ने जाति पाति और ऊच-नीच का विरोध किया। महात्मा बुद्ध ने सयासी को ही मुक्ति का भागी ठहराया और सयासी वह है जो समाज से अलग होकर जाति पाति के बंधन में ऊपर उठ गया है। यह बुद्धवाद का ही प्रभाव है कि सयास हिंदू सामाजिक जीवन का वह श्रेण बन गया है जहाँ न कोई जाति है और न पाति। जाति-यवस्था के विरुद्ध उठने वाले विद्रोहियों का सयास से ही आश्रय और सतुष्टि मिलते रहे हैं। आज भी यह माना जाता है कि दणियाँ और सयासियों की कोई जाति नहीं हाती है और न उन्हें जातिगत छुआछूत तथा खानपान के नियमों का मानना चाहिए। निगुडा वाहन नातर भवता तर चमार यह कथन और इसमें निहित दणिकाण बुद्धवाद के कम सिद्धांत से अप्रत्यक्षत प्रभावित है। महात्मा बुद्ध ने लावभापा के द्वारा सपना-सदेश लोग तन पहुंचाया और, साथ ही साथ, बधिक कमकाण्ड और उपनिषदों के शुष्क ज्ञानमाग के स्थान पर सरल कममाग का उचित ठहराया। जाति प्रपा, ग्राहणमाग बधिक कमकाण्ड तथा उपनिषदों के शुष्क, नीरस ज्ञानवाण से उबी हुयी जनता को बुद्धवाद अधिक जाकपक तथा श्रयस्कर प्रतीत हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि बुद्धवाद एक सामाजिक आन्दोलन बन गया और उसमें उत्पन्न सामाजिक नाति की लहर एक ओर जाति पाति का विरोध करने वाले मध्यकालीन सतों की वाणी में प्रसुटित हुयी ता दूसरी ओर महात्मा गांधी के कार्यों और विचारों में। छठी शताब्दी में एकर गुप्त साम्राज्य के अंत तक चलने वाला ब्राह्मण बौद्ध सघ, सामाजिक आन्दोलन का ही प्रतीक है। यह निश्चित है कि बुद्धवाद ने जनसाधारण को आवर्षित किया और उन समूहों का प्रभावित किया जो हिंदुत्व के क्षेत्र के बाहर

थ जा, जाग चलकर, बूढ़वाद की समाप्ति के साथ साथ, वे हिंदू समाज का अंग बन गये। अतएव, यह कहा जा सकता है कि जहा, एक ओर, बूढ़वाद ने वैदिक हिंदू धर्म तथा समाज के प्रति विद्रोह की आवाज उठाई वहा दूसरी ओर, आय अनाय सम्भवतः स उत्पन्न हिंदूकरण की प्रक्रिया का बढ़ावा भी दिया। बूढ़वाद नव निवचित वैदिक धर्म के प्रसार का एक प्रयास था।

उपो-ज्या बौद्ध धर्म का विवास हुआ था। प्राग्मतिशास्त्र के रूप में जानि व्यवस्था का बजाये रखने के लिये बड़े अनुशासना की व्यवस्था की गयी। बूढ़वाद के प्रभाव के कारण हिंदुत्व के पुनसंगठन का प्रयास किया गया और इस बात का प्रयास किया गया कि यह पुनसंगठन जनसाधारण के स्तर पर हो। किन्तु जैसा कि मीमांसा सिद्धांतों¹ में स्पष्ट है इन पुनसंगठन में कल्पवादिता (Ritualism) का प्रागण्य था। गठनी शताब्दी में शंकर ने इस कल्पवादिता को अद्वैतवाद का दार्शनिक आधार प्रदान करके इस गुणक एक नीरम में स वचाया और हिंदुत्व का वह दार्शनिक सिद्धान्त प्रदान किया जिसे कारण हिंदुत्व इस्लाम और ईसायत के आघातों को आत्मसात कर मरा। शंकर ने उपनिषदों के आधार पर अद्वैतवाद के दार्शनिक प्रतिपादन करके कारणे कल्पाचार को निरर्थक बना। कर्तव्य (Rituals) की शंकर ने उसी प्रकार में भक्तना की जसी कि बौद्धों ने की थी और इसी कारण मीमांसका ने उन्हें प्रच्छन्न बौद्ध की शता दी है। कुछ भी हा, शंकर ने बूढ़वाद के दार्शनिक आधार को आत्मसात करके, हिन्दुत्व के पुनसंगठन में महायता की। दूसरी ओर, उत्तर में बद्राघाम पूर्व में पुरी पश्चिम में शारिका और दक्षिण में शृगरी नामक स्थानों पर चार मठों की स्थापना करके शंकर ने हिंदुत्व के पुनसंगठन का प्रात्माहित किया। मीमांसकों का परामित करके शंकर ने बूढ़वाद और हिंदुत्व का परस्पर समीप घाने में सहायता दी जिसका परिणाम यह हुआ कि पुरी का बौद्धाण्य मर्त्तिर हिंदुभा का मर्त्तिर हा गया। सा प म यत् कहा जा सकता है कि दमवी शताब्दी के अंत में, हिंदुत्व अपना सांभौमिक प्रभुत्व स्थापित करने में सफल हुआ। पुनप्रतिपादित सिद्धांतों में हिंदुत्व का वह दार्शनिक प्रयास किया जिसे बूद्धिवादी वर्गों में मान्यता मिली और जिसने बूढ़वाद का आत्मसात कर लिया। कश्मीर में लेनर कुमारी अ तरीप तक शिव विष्णु और देवी की पूजा का प्रसार और प्रतिपादन हुआ

1 'मीमांसा दर्शन का विषय है वैदिक विधि नियंथा का आगम समझाना उनको परस्परिक संगति उठाना और मुक्तियों द्वारा कर्मकाण्ड के मूल सिद्धांतों का प्रतिपादन करना। विधि विधा प्रयत्न जिस कर्म का करने से जन्म-जन्मांतर में परमानन्द की प्राप्ति हो उस वेद प्रतिपाद्य विधियुक्त कर्म का अनुष्ठान है। पक्ष है'। मीमांसा दर्शन के द्वारा वैदिक कर्मकाण्ड विधि के पुनस्तयन का प्रयास किया गया है—गरीला, वाचस्पति भारतीय दर्शन पृष्ठ 342

और तत्कालीन दसा में बिना किसी गवा के, परमात्मा, जीवात्मा, माया और जाति तथा धर्म शास्त्रा के आधार पर संगठित समाज में जवतारा के मिद्धार्ता को स्वीकार कर लिया गया १। किंतु इस प्रकार जहा एक ओर हिन्दुत्व के संगठनकारी आधार आस्तित्व में आ रहे थे वहाँ दूसरी ओर अनक वादों में पढकर हिन्दू समाज निश्चु गलित भी हो ग्या था। शबो शाकना और वणवा के सधप उभी प्रकार अवाटय एतिहासिक तथ्य है जिम प्रकार बदिक् काल में ब्राह्मणा तथा क्षत्रियों और बाद में बौद्धों तथा ब्राह्मणा के बीच में चलन वा सधप। इसी स्थिति में, इस्लाम के प्रवेश में हिन्दु व में अनक परिवर्तनकारी प्रनियाओं का जन्म दिया जिनका विश्लेषण करने के पढक हिन्दुत्व के उन वैचारिक आधारों का स्पष्टीकरण अपेक्षित है जिनके द्वारा हिन्दुत्व में यक्ति और समाज की मर्यादों निर्धारित की गई हैं।

५

हिन्दुत्व के वैचारिक आधार

हिन्दुत्व के सामाजिक तथा वैचारिक आधार एक सतत विकासशील सचयी एतिहासिक प्रनिया रहे हैं। प्रागतिहासिक काल से लेकर भारत में इस्लाम के प्रवेश के काल तक हिन्दुत्व के सामाजिक तथा दार्शनिक आधारों की नींव पडी है जो कालांतर में इस्लाम तथा यारापाय सभ्यता के प्रभावा से परिवर्तित होान पर भी स्थाया रहे हैं। हिन्दुत्व जीवन मापन का एक तरीका है जिसके प्ररणा स्रोत निहित हैं व्यक्ति तथा समाज सम्बन्धी उन विचारा में जिन्हें हिन्दुआ ने एक ओर यक्ति तथा समाज के सम्बन्धों और दूसरी ओर इत्लौकिक तथा पारलौकिक जीवन को नियमित करने के प्रयास में विकसित किया है। सभी प्राणिया में केवल मानव ही विचारशील प्राणी हैं। केवल मानव ही आदश नियमों का निर्माण करता है और केवल मानव ही वर्तमान के आधार पर भूत तथा भविष्य को एक शृंगार में आउने का प्रयास करता है। आदश नियमों द्वारा सामूहिक जीवन का नियमन मानव की ही विशेषता है और इसी विशेषता का परिणाम है कि प्रत्येक काल और स्थान में मानव ने जीवन रणन का प्रतिपादन किया है। हिन्दू मानव ने जिम जीवन रणन को विकसित किया वहाँ, अपने सम्बन्धित सामाजिक पथ के साथ हिन्दुत्व के रूप में प्राविभूत हुआ। वना के प्रगोसाजा उपनिषदों के मनीषिया वम शास्त्रा ने रचयिताओं स्मृतिकारा और समय समय पर आविभूत होने वाले समाज

सुधारका ने जिस वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवन दर्शन का प्रतिपादित किया है, वही हिन्दुत्व है। हिन्दुत्व वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवन के प्रति एक दृष्टिकोण विशेष है। प्रभु के अनुसार, हिन्दुओं ने सामाजिक संगठन से सम्बन्धित समस्याओं पर काफी गम्भीरता से ध्यान दिया है और मानव जीवन के संगठन का जहाँ तक सम्भव हो सका उत्तमतर बनाएँ का प्रयास किया है। इसी प्रयास में, हिन्दुत्व को आधारभूत धारणाओं और उनसे नियमित हिन्दू सामाजिक संगठन की प्रणाली की रूपरेखाएँ भी विकसित हुई हैं। हिन्दू जीवन यापन में मानवीय तथा मानवीय जीवन की आवश्यकताओं, अभिरूचियों, उद्देश्यों तथा आकांक्षाओं के समन्वय का प्रयास किया गया है। इस समन्वय के दो आधार हैं—एक, इहलौकिक जीवन की आवश्यकताओं और दूसरा, इस जीवन तथा ससार से परे जीवन की आवश्यकताएँ तथा उद्देश्य। हिन्दू के लिए यह ससार एक रंगमंच है और मानव-जीवन एक साधनमात्र है—वह साधन जिससे जीवन-स्वात्म्य (मुक्ति मोक्ष) की प्राप्ति होती है। शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति जैविक गुण भी है और आवश्यकता भी। मानवीयता नित्य त शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति से आगे उठा हुआ एक कदम है क्योंकि शरीर नश्वर है। अमर है तो केवल आत्मा। आत्मा को निरन्तर प्रबुद्ध करत हुआ, जीवन-स्वात्म्य की प्राप्ति का प्रयास ही मानवीयता है। इस दृष्टिकोण की वास्तविकता इस तथ्य में निहित है कि मानव जीवन केवल शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति तक ही सीमित नहीं है। मानवीयता निहित है शास्त्र प्रणीत धर्म के अनुसार जीवन व्यतीत करने में। मानवीयता की भाग है मोक्ष और मोक्ष की प्राप्ति धर्म से हाता है। अतः, जीवन धर्म से बंधा है। मोक्ष जीवन तथा ससार से विमुक्त होने पर नहीं मिलता है। वह मिलता है जीवन का उसकी स्वाभाविक अभिरूचियों के साथ अपनाने में।

इसलिए, धर्म का साथ-साथ, जीवन अथवा और काम से भी बंधा हुआ है। धर्म अथवा काम और मोक्ष का समन्वय और साधन काम से होता है। काम का माध्यम नै धर्म, अथवा, काम और मोक्ष की साधना पुरुषार्थ है। पुरुषार्थ आवश्यक है क्योंकि मानव जाति का उद्देश्य केवल पुरुष ही बन रहना नहीं है। मानव जीवन का उद्देश्य है मानवीय स्तर से मानवीयता की आरंभिक स्तर हाना जिसका तात्पर्य है पुरुष से पुरुषात्तम और नर से नरात्तम हाना। इस साधना में व्यक्ति और समाज दोनों आवश्यक है क्योंकि पुरुष में पुरुषात्तम बनने की प्रक्रिया में व्यक्ति और समाज एक दूसरे का पूरक हैं। व्यक्ति ने समाज की साधना हाती है और समाज से व्यक्ति की। व्यक्ति और समाज में किसी प्रकार का विरोध नहीं है बल्कि कि उनका सम्बन्ध का प्रणयन धर्म से है। समाज के रंगमंच पर व्यक्ति का जीवन एक सतत प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया की कुछ आधारभूत अवस्थाएँ (आश्रम) हैं जिनका साधन पुरुषार्थ के लिए आवश्यक है क्योंकि ये अवस्थाएँ मानव की शारीरिक तथा स्वाभाविक अभि-

रुचियो का एक सहज परिणाम हैं। जत व्यक्ति अपने गुण तथा बर्णों के कारण ही समाज तथा धर्म से बधता है और इसकारण पुरुषार्थ की माधना का तात्पर्य है गुण कम के अनुसार समाज में धर्म प्रणीत ब्यक्तित्व जीवन को अपनाते का प्रयास करना¹। इस प्रकार हिंदुत्व तथा जीवन के प्रति हिंदू दृष्टिकोण कुछ धारणाओं में निहित है। ये धारणाएँ हैं—धर्म, अर्थ, काम, माया (पुरुषार्थ), कम मिद्धा तथा जीव वर्णाश्रम व्यवस्था। ये धारणाएँ तथा इनमें निहित ब्यक्तित्व तथा सामाजिक जातन की आवश्यकताएँ और उद्देश्य हिंदुत्व के आधार हैं। इन्हीं धारणाओं में हिंदू समाज तथा गण्टृति का उसकी विशेषताएँ प्रदान का है। ये धारणाएँ किसी भी रूप में निरपेक्ष नहीं हैं। वे सापेक्ष हैं व्यक्ति की मानसिक तथा सामाजिक आवश्यकताओं और देश काल की परिस्थितियों से। युग युग की आवश्यकताओं के अनुसार इन धारणाओं के सबद्धन और प्रतिपादन में ही हिंदुत्व का विकास निहित है।

1 हिंदुत्व का यह आधारभूत विचार सम्पूर्ण हिंदू वाङ्मय में पाए जाते हैं। वेदा संहिताओं का अध्याय आरण्यक उपनिषदों सूत्रों स्मृतियों महाकाव्यों नीति शास्त्रों तथा पुराणों और गान्धर्व, काव्य तथा जन साहित्य में इसी आधारभूत विचार का समयांतरांतर विकास हुआ है।

हिन्दुत्व

पाचवा अध्याय धर्म

धर्म और रिलीजन

हिंदुत्व में धर्म से वट जब नहीं लिया जाता है जो अप्रती में रिलीजन (Religion) से लिया जाता है यद्यपि साधारणतः हिंदी में धर्म शब्द का प्रयोग रिलीजन के प्रयोग रूप में किया जाना लगा है। चम्बस की ट्रिडिथ मचुरी डिक्शनरी (1947) के अनुसार, रिलीजन का अर्थ है दवी शक्ति का प्रति मनुष्य की अनुत्ता के वत य की मायता ईश्वर के प्रति प्रेम तथा अनुत्ता के वत य का पालन आस्था तथा पूजा पद्धति की वाई भी प्रणाली और टननता अथवा वतय का भाव। रिलीजन के दो पहलू हैं—एक दवी शक्ति के प्रति अनुत्ता का भावना और दूसरा दवीशक्ति के प्रति अनत्ता की भावना से प्रेरित यकिनो का एक मजहबी सगठन में मगठित हाना। रिलीजन दल का प्रयोग बुद्धवाद ईसाइयत और इस्लाम के लिए अधिक उपयुक्त है नकि हिंदुत्व के लिए। बुद्धवाद इस्लाम और ईसाइयत एक बार, दिय नान और आधि-दविक के प्रति भावना अनुत्ता की अनिवायता से सम्बधित है और दूसरी ओर, सध सगठन में। हिंदुत्व में सध सगठन पर जारन हाने के कारण, हिंदुत्व बुद्धवाद, इस्लाम और ईसाइयत से भिन्न हा जाता है। धर्म की धारणा वही तक समष्टिमूलक है जहा तक अर्थ और काम का सम्ब व है। अपने मूलरूप में, धर्म की वारण व्यक्तिमूलक

है। अतः धर्म रिलीजन नहीं है यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि धर्म में रिलीजन और रिलीजन में धर्म के तत्वा का एकदम अभाव है।

गांधी के अनुसार, हिंदू जीवन धर्म, जय, काम और मोक्ष की धारणाओं से ओतप्रोत है। यहाँ तक कि हिंदू मान्यताओं में यह माना जाता है कि 'तिह' से भी उस भूतकाल का वर्णन है जिसमें जीवन के चार आदर्श—धर्म अथवा काम और मोक्ष की पूर्ति तथा प्राप्ति का प्रयास निहित रहता है। लेकिन इन चारों धारणाओं में केवल धर्म की ही धारणा ऐसी है जो भारतीय विचारधारा में युग युग से चली आ रही है और जिसके द्वारा एवं बड़े जन-समूह में एक निश्चित विचार तथा व्यवहार कलाप का निर्माण हुआ है। धर्म शब्द की व्युत्पत्ति इतनी व्यापक है कि इसका प्रयोग मानव क्रिया के सभी रूपों के निरूपण तथा निर्माण के लिए किया गया है। भारतीय संस्कृति की तीन विशेषताएँ आध्यात्मिकता (Spirituality) आजस्विकता (Vitality) और बौद्धिकता (Intellectuality) धर्म की धारणा के विभिन्न रूपों से ही आविर्भूत हुई हैं¹।

जैसा कि राधाकृष्णन ने कहा है धर्म की धारणा उन रूपों (Forms) और क्रियाओं (Activities) को समेटे हुए है जो मानव जीवन का आधार हैं और जिनसे मानव-जीवन का निर्माण होता है। मानव जीवन में विभिन्न अभिरुचियाँ (Interests), अनेक आकांक्षाएँ (Desires) और विरोधी आवश्यकताएँ (Conflicting Needs) का समावेश होता है। ये अभिरुचियाँ आकांक्षाएँ और आवश्यकताएँ बर्तनी और परिवर्तित होती रहती हैं। हिंदुत्व में विपरीत धर्म की धारणा का उद्देश्य है इन सभी का एक इकाई में समाहित करना। धर्म सिद्धांत हम आध्यात्मिक वास्तविकताओं का पहचानने के प्रति जागरूक बनाता है। किंतु, यह जागरूकता मस्तिष्क का त्याग करने में नहीं आती है। यह जागरूकता आती है सांसारिक जीवन में अथवा काम और आध्यात्मिक आस्था (Spiritual Faith) का निर्माण करने के लिए लेकिन का समन्वय करने में। जीवन की अभिरुचियाँ आकांक्षाएँ और आवश्यकताएँ अनेक हैं किंतु जीवन एक सुगठित इकाई है। यहाँ लौकिक (Secular) तथा अलौकिक (Sacred) में अंतर नहीं है और न भक्ति तथा मुक्ति ही परस्पर विरोधी हैं क्योंकि मानव जीवन में लौकिक तथा अलौकिक दोनों का समावेश होता है। यहाँ धर्म अथवा काम साथ साथ चलते हैं। यही कारण है कि धर्म की धारणा में मानव जीवन जगती आकांक्षा तथा अर्हाओं का एकीकरण मिलती है। इस प्रकार धर्म मानव जीवन में अर्थात् वह धारणा है जिसके द्वारा मानव जीवन के लौकिक तथा अलौकिक पक्षों का एक सूत्र में पिरो कर, एक आत्म समाज में, यंत्रित व अधिकार तथा कर्मों का एक व्यापक सिद्धांत में निरूपित करने का प्रयास किया गया है। धर्म

एक ओर मानव की सम्पूर्ण नैतिक क्रियाया की विधि है और, दूसरी ओर एक प्रकार का यह नीशा जिसमे मानव की सभी नैतिक क्रियायें प्रतिबिम्बित होती हैं।

धर्म की धारणा, एक ओर लौकिकता में अवगठित है ता दूसरी ओर अलौकिकता में। धर्म एक ओर जीवन ज्ञान को परिवर्धित किए है ता दूसरी ओर, समाज में व्यक्तित्व की गरीबी मानसिक तथा आध्यात्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति के प्रयास से सम्बन्धित है। धर्म ब्रह्म धारणा है जिसके द्वारा हिन्दुत्व में व्यक्ति के यह लौकिक तथा पारलौकिक जीवन को नियमित तथा निरूपित करने का प्रयास किया गया है। धर्म का सम्बन्ध मानव जीवन की आवश्यकताओं तथा समस्याओं से है। मानव जीवन की आवश्यकताओं का सात एक ही है किन्तु उनकी अभिव्यक्ति बहुमुखी होती है। इसी कारण, हिन्दू जीवन में धर्म की अभिव्यक्ति भी बहुमुखी होती है। धर्म की धारणा, वस्तुतः एक बहुमूल्य पुष्प से समान है। जिस प्रकार बहुमूल्य पुष्प अनेक पक्षुडियां में बँट जान पर भी अपनी सुगन्धि एकता बनाय रखता है, उसी प्रकार धर्म भी मानव जीवन की गरीबी मानसिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक आवश्यकताओं का एक सिद्धान्त में लपेटे हुए है। धर्म को व्यवस्था सभी बहुमुखी सिद्धांत की व्याख्या में निहित है। हिन्दू विचार में नैति (जिसका अर्थ न हो) की प्रधानता रही है और यही कारण है कि हिन्दू के लिए सभी कुछ यह रहस्य है जिसका अन्तिम ज्ञान पाना असम्भव है। इसी विचार ने हिन्दुत्व में रहस्यात्मकता की पुष्टि देकर हिन्दू विचार को लचीला बना लिया है। इस विचार के प्रभाव का परिणाम यह हुआ है कि जहाँ एक ओर, धर्म ग्रन्थों में धर्म के निरूपण का प्रयास किया गया है वहाँ, दूसरी ओर यह भी स्वीकार किया गया है कि धर्म का स्वरूप अत्यन्त जटिल है। धर्म के अन्तिम तथा गायब स्वरूप का विचारण एक दुस्कर कार्य है।

इसी मायता का यह परिणाम है कि धर्म की व्याख्या अनेक दृष्टिकोणों से की गई है। एक ओर शास्त्रिक व्युत्पत्ति का आधार पर धर्म की आत्मा को आवरण का प्रयास किया गया है ता दूसरी ओर धर्म के लक्षणात्मक तथा व्यजनात्मक अर्थों के आधार पर धर्म के स्वरूप को निवारित करने का प्रयास किया गया है। हिन्दुत्व में निहित रहस्यमय विचार में सम्पुटित होने के कारण, धर्म की व्याख्या भारतीय दर्शन की आध्यात्मिक परम्परा में की गई है। धर्म का सम्बन्ध व्यक्ति तथा समाज के सम्बन्धित्व के आत्मपक्षा से है और इस कारण धर्म का सामाजिक दर्शन से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। हिन्दू विचार उन सामाजिक ऐतिहासिक परिस्थितियों की उत्पत्ति है जिनके प्रभाव के अंतर्गत हिन्दुत्व का निर्माण हुआ है। अतः

धर्म की धारणा का अपना सामाजिक ऐतिहासिक पक्ष है। सामाजिक ऐतिहासिक पक्ष से तात्पर्य उन सामाजिक ऐतिहासिक परिस्थितियों से है जिन्होंने धर्म की धारणा के निरूपण का प्रभावित किया है। राधाकृष्णन, कुमार स्वामी और अरविन्द नवतमान परिस्थितियों में धर्म की दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत की है। राधाकृष्णन ने तो पश्चिमी विचार के मुद्दों में धर्म की व्याख्या की है¹। प्रभू ने आर्य-हिन्दू समाज के मनावनानिक विलयन के मद्देन में धर्म की व्याख्या की है²। गांधी ने भारतीय विचार की सामाजिक ऐतिहासिक विवेचना के संदर्भ में धर्म की व्याख्या की है³।

२

धर्म व्युत्पत्ति और परिभाषा

संस्कृत भाषा के कापा में धर्म शब्द के अनेक अर्थ मिलते हैं। अमरकाय के अनुसार धर्म शब्द के अर्थ हैं—मुक्त या पुण्य, वैदिक विधि—यागादि, धर्मराज, योग्य स्वभाव, आचार और सामरस का पीने वाला। अर्थ कापा के अनुसार धर्म शब्द के अर्थ हैं—शास्त्रान्त कर्म के अनुष्ठान में उत्पन्न होने वाले भावी फल का साधनस्वरूप शुभ जन्म या पुण्यापुण्य रूप भाग्य, ध्यान और स्मात धर्म, विहित विद्या से सिद्ध होने वाला गुण या कर्म जय अदष्ट, आत्मा, दृष्ट को धारण करने से जीवात्मा, आचार या मदाचार, दम्भ का गुण, स्वभाव, उपमा यागादि, अहिंसा, सामाज्यायी सत्य, धनुष, ज्योतिष मत में लग्न से नवम स्थान या भाग्य भवन और दान आदि। व्याकरण की रीति में धर्म शब्द 'धञ्' (धारणे) धातु के आगे 'मन्' प्रत्यय लगाने से बनता है। इसकी व्युत्पत्ति तीन प्रकार से की जा सकती है—पहली जिसमें लोके धारण किया जाय वह धर्म है (धियते लोके अनन्येति धर्म), दूसरी, जो लोके धारण कर वह धर्म है (धरति धारमति वा लोकेति धर्म), तीसरी, जो दूसरे के द्वारा धारण किया जाय वह धर्म है (धियते मत्त धर्म)⁴। इस प्रकार धर्म शब्द का धातुगत अर्थ है 'धारण करना'। धर्म की जिस धारणा में हिन्दू भावन का प्रभावित किया है, उसका मूल रूप धर्म धातुगत अर्थ पर

- 1 राधाकृष्णन एस० एच० हिन्दू धर्म आफ लाइफ
- 2 प्रभू, पी० एच० हिन्दू सोशल आगनाईजेशन
- 3 गांधी, बी० जी० इण्डियन पाठ ४५ दि एजेंस
- 4 बस्याण हिन्दू संस्कृति अथ पृष्ठ 369

आधारित है यद्यपि उसकी लक्षणात्मक तथा व्यजनात्मक व्युत्पत्तियाँ म मत मतांतर पाया जाता है। रामदास गौड़ ने म म धम १-२ के वादिक प्रयोगा¹ स धम का जो अर्थ निकलता है उसके अनुसार किसी वस्तु वा अवस्तु की, घात्म या अनात्म की विधायक वृत्ति को उसका धम कहते हैं। पत्यक पदाय का व्यक्तित्व जिस वृत्ति पर निर्भर है वही उस पत्यक का धम है।

धम शब्द के धातुगत अर्थ (धारण करने) के आधार पर धम की अनेक लक्षणात्मक तथा व्यजनात्मक व्युत्पत्तियाँ करके धम की निरूपित करने का प्रयास किया गया है। धम का मूल धारणा है जो धारण करे वह धम है (धारयतीति धम)। किंतु यहाँ प्रश्न उठता है कि कौन धारण करे, क्या धारण करे और किसको धारण करे? महाभारत के कणपव म उद्धृत एक श्लोक म निहित मान्यता म यह भाव है कि 'धारण करने से लोग इस धम कहते हैं। धम प्रजा को धारण करता है। जो धारण के साथ रहे, वह धम है—यह निश्चय है'²। इसी का एक 'यज्ञनात्मक' अर्थ यह भी किया जाता है कि 'जो समाज का अधिकार धारण करे, वह धम है'³। इसी व्याख्या के सत्त्व की स्पष्ट करते हुए प्रभू ने लिखा है कि धम, निश्चय ही, वह सिद्धांत है जिसमें सार ब्रह्माण्ड का सुरभिण रहने की क्षमता है⁴। सस्कृति की योग्या के प्रकरण म यह पहले ही कहा जा चुका है कि सस्कृति मानव के आत्मीय व्यवहार म निहित रहती है। समाज और व्यक्ति सस्कृति द्वारा ही धारण किये जाते हैं। इस दृष्टिकोण से धम मानव व्यवहार समाज तथा सस्कृति का धारण करने वाला हुआ। मानव व्यवहार समाज तथा सस्कृति एक बार, आदम नियमों के जाल म बँधे रहने हैं और दूसरी बार, वास्तविकता म जो आत्म के अनुरूप हात हुए भी उसमें भिन्न रहती है। इसी कारण यह कहा गया है कि धम आचार या संचार से उत्पन्न होता है, (आचार प्रभवा धमों)⁵। इसी सत्त्व म निम्न मे दी हुई धम की उस व्याख्या की साथकता सिद्ध होती है जिसके अनुसार

1 रामदास गौड़ ने जिन वादिक प्रयोगों का उल्लेख किया है वे ये हैं —

(अ) त्रीणि पदा विप्रकृते विष्णुर्गर्भा अदान्य । अतो धर्माणि धारयन् ॥१॥ ऋग्वेद

(ब) धर्मा लोकात् धियते पुण्यात्मभिर्वा,

(स) धारणाद्धममित्याहुः — देखिये रामदास गौड़ द्वारा रचित हिन्दुत्व ।

2 धारणाद्धममित्याहुर्धर्मो धारयते प्रजा ।

यत स्वाद्धारणसयुक्त स धम इति निश्चय ॥ महाभारत कण० 69/58

कल्याण वही पृष्ठ 369

3 कल्याण वही पृष्ठ 161

4 प्रभू, पी० एच० हिंदू सोशल आगनाईजेशन पृष्ठ 79

5 कल्याण वही पृष्ठ 372

धर्म का अर्थ नियम किया गया है—वह नियम जो व्यक्ति तथा समाज को धारण किये रहता है। लेकिन धर्म का उद्देश्य केवल धारण करना ही नहीं है। धर्म सुख और आनन्द का मूल है (धर्मो सुखमासीत्)¹। सुख का प्रचार का हाता है—लौकिक तथा अलौकिक अथवा आध्यात्मिक। लौकिक सुख के पक्ष की प्रधानता पर जोर देने के लिए ही कहा गया है कि 'धर्म म धर्म हाता है और धर्म स सुख हाता है (धर्माद्धर्मो तत सुखम्)'²। वशपिक दशन के रचयिता कणाद न धर्म का लौकिक तथा पारलौकिक सुखा जोर बल्याण का माधन माना है। उसके अनुसार जिनमे लौकिक सुख तथा पारलौकिक कल्याण (परमाथ) की मिद्धि हो वह धर्म ह (यतोऽभ्युदयनि श्रेयमसिद्धि स धर्म)³।

इस व्याख्या से यह तात्पर्य निकलता है कि धर्म उन सदाचारी नियमों में निहित है जिनके द्वारा लौकिक तथा पारलौकिक सुखों का धारण हो। व्यक्ति का जीवन अस्थाई है। उसके जीवन में जाने वाले सुख तथा दुख भी अस्थाई हैं। किन्तु जीव नित्य (स्थायी) है और इस कारण, धर्म भी नित्य (स्थायी) है⁴। अतः, नित्य जीव को नित्य सुख नित्य धर्म से ही मिल सकता है। लेकिन, वह नित्य धर्म क्या है? मनु ने धर्म के चार लक्षण बताये हैं और वे हैं वेदानुक्त स्मृति सम्मत, आचारनिष्ठ तथा आत्मप्रिय व्यवहार⁵। मानवधर्मशास्त्र में धर्म के दशक लक्षण बताये गये हैं और वे हैं—यति (सत्ताप) क्षमा श्रम (आत्मनियन्त्रण) अस्तेय (त्याग), शौच (शुद्धता), इन्द्रिय निग्रह धी (वायमुक्ति) विद्या (ज्ञान) सत्य और अश्रोक⁶। मनु द्वारा निर्धारित किये हुए लक्षणों की व्याख्या से यह निष्कर्ष निकलता है कि धर्म का सम्बन्ध उन नियमों से है जिनमें मानव जीवन में समय तथा सदाचार उत्पन्न होते हैं और जिनके माध्यम से मानव जीवन का शरीरी, मानसिक तथा आध्यात्मिक अभ्युदय होता है। समय तथा सदाचार की पृष्ठभूमि में सत्कारा का महत्व बट जाता है। इसी दृष्टिकोण से धर्म की व्याख्या करते हुए रामदास गौड़ ने लिखा है 'समयी जीवन सत्कारा को सम्पन्न करता है और सत्कार का फल हाता है शरीर

1 कल्याण वही पृष्ठ 369

2 वही

3 कल्याण वही पृष्ठ 370

4 धर्मो नित्य सुख दुःखेऽनित्य जीवो नित्य हेतुरस्थाप्यनित्य — भारत सावित्री

5 वेद स्मृति सदाचार स्वस्थ च प्रियमात्मन ।

एतच्चतुर्विध प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ।

6 यति क्षमा दमोस्तेमपशौचमिन्द्रियनिग्रह धीविद्या सत्यमक्रोधो दण्ड धर्मलक्षणम्

और जीवात्मा का उत्तरात्तर विकास । धर्म पहले समाज का उपदेश है अनति के लिए नियम है समय उस उपदेश व नियम का पालन है सस्कार उन समयों का सामूहिक फल है और किसी विशेष देश काल और निमित्त में विशेष प्रकार की अनति अवस्था में प्रवृत्त करने का द्वार है और सब सस्कारों का अंतिम वाय विकास है । समय सस्कार विकास व 'नियम सस्कार अभ्युदयनिश्चयस' यह धर्मनिष्कूल वस्तु का त्रियात्मक रूप है । यह सभी मिल कर 'संस्कृति' का इतिहास बनाता है । धर्म यदि ग्राम, जनात्म की विधायक वृत्ति है तो संस्कृति उसका त्रियात्मक रूप है । धर्म जात्म और अनात्म का, जीवात्मा और शरीर का विधायक है, सस्कार हर जीवात्मा और हर शरीर का विकास करने वाला है । धर्म व्यक्ति का तरह समाज का भी विधायक है (धर्मो धारयति प्रजा) और सस्कार समाज का विकास करने वाला है¹।

धर्म समय और सस्कार के उन नियमों में निहित है जो मानव जीवन को व्यक्ति और समाज का अभ्युदय तथा निश्चयस की ओर ले जाने है । किंतु इसका तात्पर्य यह नहीं कि धर्म कोई जटिल व धन है । धर्म व धन नहीं है क्योंकि धर्म धन पर आधारित है । मानव जीवन में धन अविद्या से जाता है न कि विद्या से । धर्म का आधार विद्या है न कि अविद्या । 'जो धर्म दूसरे धर्म का बाधा दे, वह धर्म नहीं है, अधर्म है । जो धर्म समस्त धर्मों का अविरोधी है वही यथायर्थ है'² । धर्म मानव जीवन के सभी पक्षों का सम्यक् किंतु अनतिशील विकास है । हिंदू शास्त्रकारों के अनुसार, एक सामाजिक प्राणी के रूप में मनष्य पर जिन चार कारणों का प्रभाव पड़ता है, वही देश, काल, धर्म और गुण । धर्म व नियम है जो देश काल धर्म और गुण का समन्वय करके व्यक्ति तथा समाज का अभ्युदय के मार्ग पर ले जाते हैं । धर्म समाज में मानव की स्वाभाविक प्रवृत्तियों की ऊर्ध्वगामी अभिव्यक्ति का आधार है । मानव जीवन में धर्म उतना ही स्वाभाविक है जितना कि स्वयं मानव जीवन । धर्म मानव जीवन का रक्षा वच है । धर्म को धारण करना और उसकी रक्षा करना मानव के लिये आवश्यक है । धर्म का जो नाश करेगा धर्म उसका विनाश करेगा और जो धर्म की रक्षा करता है धर्म उसकी रक्षा करता है (धर्म एव ह्येता इति धर्मो रक्षति रक्षितः) ³ । इमीलिय भारत सावित्री में कहा गया है कि कभी भी नामना न भय से लाभ से तथा जीवन अस्तित्व के संरक्षण के लिये भी धर्म का परित्याग न करे (न जातु कामान भयान लोभाद्

1 गोड रामदास हिंदुत्व पृष्ठ 11

2 धर्म यो बाधते धर्मो न स धर्म कुधर्म तत ।

अविरोधी तु यो धर्म स धर्म सत्यविजय ॥ कल्याण वही पृष्ठ 171

3 कल्याण वही 161

धमम् स्यजेज्जीवितस्यापि हतो) ।

धम की उपयुक्त व्याख्या से धम की धारणा से सम्बंधित कई तथ्य और उन तथ्यों से सम्बंधित कई शक्यो उत्पन्न होती हैं—पत्नी, क्या धम बदल सदाचारी नियमों का सप्रह मान है या दूसरे शब्दों में धम केवल गणित ही सीमित है । यदि हाँ, तो सदाचार की कमीटी क्या है ? दूसरी यदि धम समय तथा संस्कार से क्या सदाचार है तो समय संस्कारमय सदाचार का आधार क्या है ? समय-संस्कार का सम्बंध क्या विचार से है । अतः यहाँ महत् ही प्रश्न उठता है कि धम क्या का सम्बंध क्या है ? तीसरी, धम का वास्तविक स्वरूप क्या है ?

३

धर्म, स्वधर्म और अर्थधर्म

धार्मिक अर्थ के दृष्टिकोण से विचार करते हुए गांधी ने यह लिखा है कि धर्म के अनेक अर्थों में हम मानव कृतव्यवस्था का भी रथ सकते हैं । मानव-जीवन बहुमुखी है । अतः मानव कृतव्यवस्था भी बहुमुखी है । परिवार के प्रति कृतव्यवस्था, सामाजिक कृतव्यवस्था, अर्थव्यवस्था, सांस्कृतिक कृतव्यवस्था और राजनितिक कृतव्यवस्था मानव-कृतव्यवस्था के अनेक पक्ष हैं । इसमें प्रथम धर्म से तात्पर्य लिया जा सकता है उन मानव कृतव्यवस्था से जिनका वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवन धारण किया जा सके । कृतव्यवस्था के साथ अर्थव्यवस्था का भी विचार आ जाता है और जहाँ कृतव्यवस्था का विचार आता है वहाँ सदाचार की धारणा आ जाती है । धम की धारणा में निहित सदाचार की भावना का विचारना न अनेक रूपों में व्यक्त किया है । महाभारत के शांति पर्व में जाये एक प्रसंग के अनुसार वही व्यक्ति धम का अर्थ समझता है जो मन, वचन और कर्म से दूसरे के कल्याण का चिन्तक ही नहीं रहता है बल्कि दूसरे के कल्याण में निरंतर रत रहता है । मनु के अनुसार धम वह है जिसका विद्वान् अनुसरण करें और जो उन सज्जनों द्वारा बिना किसी शर्त के ग्रहण किया जाये, जिनमें दूसरे के प्रति घणा और द्वेष न हो । श्रेष्ठ आधार पर, धम के विभिन्न रूपों में अंतर किया गया है । एक आधार है स्वधर्म की धारणा और दूसरा ओर है विधम, कृधम, परधम, धर्मानुसंध, उपधम और अर्थधम की धारणाएँ । स्वधर्म ही श्रेष्ठस्वरूप है । स्वधर्म में मरना श्रेष्ठ है । परधम नमनीय (स्वधर्म निघन श्रेष्ठ परधर्मों प्रयावह) । स्वधर्म का अर्थ है अपना धम जिसमें यह तात्पर्य लिया जा सकता है कि व्यक्ति का जो अपना धम है वही दूसरे का धम है । हमका तात्पर्य यह नहीं कि व्यक्ति मनमाने ढंग में धम की परिभाषा करके, संनृत्त धमने व्यवहार का चला सकता है । स्वधर्म वह धम है जो व्यक्ति के गुण, धर्म, वृत्त, धार्मिक, देश, काल और

धर्म शास्त्रों के अनुसार हान के साथ साथ, समयानुकूल और तकसगत भी हो। स्वधर्म का आधार केवल व्यक्ति ही नहीं है स्वधर्म का आधार व्यक्ति के साथ साथ समाज भी है।

स्वधर्म की धारणा तब स्पष्ट हाती है जब अधर्म की धारणा पर भी विचार किया जाय। भागवत पुराण के आधार पर प्रभू ने अधर्म के पांच भेद बताये हैं जो इस प्रकार हैं—विधर्म, परधर्म धर्माभास, उपधर्म और छलधर्म^१। कल्याण के हिन्दू संस्कृति के मूल धर्म के लक्षण और रहस्य की व्याख्या करते हुए श्री गोविन्द नारायण असापा ने अधर्म के इन पांच प्रकारों में कुधर्म की धारणा भी जोड़ दी है^२। इस प्रकार जो स्वधर्म नहीं है, अर्थात् जो अधर्म है उसके छ प्रकार हैं। जो स्वधर्म के प्रतिकूल है वही विधर्म है। विधर्म की व्युत्पत्ति (विगत धर्मेण विधर्म) के अनुसार स्वधर्म में विगत (गिरी हुई अर्थात् प्रतिकूल) त्रियाय विधर्म की श्रेणी में आती है। धर्म को शास्त्रविहित और शास्त्रोक्त माना गया है। अतः विधर्म का अर्थ हुआ शास्त्रप्रणीत स्वधर्म के विपरीत आचरण। कुधर्म (कुत्सित धर्म कुधर्म) वह है जो निन्दनीय है और निन्दनीय वही है जो न तो शास्त्रोक्त है और न दश काल तथा वर्णधर्म-व्यवस्था की मर्यादों के अनुसार है। कुधर्म शब्द के एक अर्थ अथवा अनुसार जो स्वधर्म के लिए बाधक हो वही कुधर्म है (धर्मों या न बरते धर्म)। पर का अर्थ है अन्य दूसरा। अतः, परधर्म का अर्थ हुआ, वह धर्म जो अपने लिये (स्वधर्म) न होकर दूसरे के लिए है। स्वधर्म तथा परधर्म की धारणा में इस तथ्य को यक्त करती है कि हिन्दू-जीवन दशक में प्रत्येक व्यक्ति और समाज के लिये उनकी परिस्थितियों के अनुसार, प्रत्येक के अपने अलग अलग धर्म हैं जो प्रत्येक का अपने ही धर्म का अनुसरण करना चाहिए। यही कारण है कि हिन्दुत्व में धर्म प्रचार तथा धर्म परिवर्तन पर जोर न देकर सद् अस्तित्व पर जोर दिया गया है। वे सिद्धांत जो निरूपित आचार (Established Morals) के विरुद्ध हैं जो पाण्डित्य तथा दम्भयुक्त हैं, उपधर्म की श्रेणी में आते हैं। धर्माभास की श्रेणी में वह आचरण आता है जो व्यक्ति दश काल तथा वर्णाश्रम-व्यवस्था की मर्यादों का ध्यान न रखते हुए, अपनी व्यक्तिगत इच्छा की पूर्ति के लिए करता है। छलधर्म धर्म है जो केवल नाममात्र के लिए धर्म है, जिसका आधार सत्य में न होकर जल्प में है।

धर्म (स्वधर्म) और अधर्म (न धर्म अधर्म) की इस व्याख्या से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि धर्म वही आचरण है जो, एक ओर शास्त्रविहित हो, देश, काल तथा समाज की मर्यादों के अनुरूप हो और दूसरी ओर स्वभाव विहित (स्वभाव-

१ प्रभू पी० एच० हिन्दू सोशल आगनाइजेशन पृष्ठ 28

२ कल्याण वही पृष्ठ 270-271

विहित) हो। धम केवल व्यक्तिगत स्वभाव विहित आचरण नहीं है। धम का अर्थ है व्यक्ति के आचरण को स्वभावविहित रखने हुए दण्ड काट की परिस्थितियाँ, सामाजिक आवश्यकताएँ तथा धार्मिक अनुष्ठानों का अनुसरण करना। यही आचरण, सगम तथा सत्कार में बधते हुए, कम से बध जाता है। यही कारण है कि हिन्दुत्व में धर्म के साथ कम की व्याख्या की गई है और कम के मान धम की। धम कममय है और कम धममय। धम का आधार कम है और कम का आधार धम। धम आदर्शमय आचरणीय सिद्धान्त अवश्य है लेकिन उस सिद्धान्त की साधना केवल उमक ज्ञानमात्र में ही नहीं होती है। धम का व्यावहारिक पर उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि सद्भावितक पक्ष¹। जैसा कि कहा गया है, लौकिक पुरुषों का मत है कि धिया या कम द्वारा सिद्ध होकर कल्याणकारी होना धम का लक्षण है (त्रियामाध्यमे सति श्रेयस्करत्वमिति लौकिका)²।

४

धम के आधार

धम के तीन स्तंभ माने गए हैं। धन, अध्ययन तथा दान प्रथम स्वधम म आते हैं तब दूसरे स्तंभ में और आचार्य-कुल-ज्ञान तथा ब्रह्मचर्य तीसरे स्वधम में³। इस दृष्टिकोण से आचार्यकुलवास ब्रह्मचर्य धन अध्ययन (स्वाध्याय अर्थात् वेदाध्ययन) दान तथा तप (दम और अस्त्रय) धम के मुख्य आधार हैं। इनकी साधन व्यक्ति का पुण्यलाभ का भागी बनाती है। इनमें व्यक्ति अमलत्व को प्राप्त होता है। धम की यह व्याख्या, आश्रम-यवस्था का आश्रम-यवस्था पर आधारित है। आचार्य-कुलवास, ब्रह्मचर्य तथा अध्ययन का सम्बन्ध ब्रह्मचर्ये आप्त म है, दान का सम्बन्ध गृहस्थाश्रम से है और तप का वानप्रस्थ तथा सान्यास में। धन का सम्बन्ध सभी आश्रमों में है क्योंकि धन का लक्षणात्मक अर्थ है त्याग। आश्रम-यवस्था, जैसा कि आगे स्पष्ट किया जायगा एक ओर, धम परम्परा में आती है और दूसरी ओर, धम परम्परा में। ब्रह्मचर्य आश्रम ज्ञान-यन की परम्परा में आता है क्योंकि इस आश्रम में ब्रह्मचारी अपने 'स्व' का धर्मानुसार हानन का प्रयास करता है। गृहस्थाश्रम, एक

1 इसीलिए जसा कि राधाकृष्णन ने लिखा है, हिन्दुत्व में महत्वही एकता (Peligious Conformity) पर जोर न देकर जीवन के प्रति व्यापक तथा सदाचारी दृष्टिकोण पर अधिक जोर दिया गया है। यहाँ व्यवहार सिद्धान्त से पहले आता है और व्यवहार के माध्यम से सिद्धांत समझा जाता है।

2 कल्याण यही पृष्ठ 370

3 यही

और, जीवन यज्ञ का क्षेत्र है और, दूसरा ओर दान का। गृहस्थाश्रम के धर्मनुसार, गृहस्थ के लिये पंचमहायज्ञ (भूतयज्ञ मनुष्ययज्ञ पितृयज्ञ देवयज्ञ तथा ब्रह्मयज्ञ¹) करन का विधान है। गृहस्थ का जीवन त्याग तथा दान का जीवन है क्योंकि गृहस्थ वस्तुतः पत्नी मत्तार वत्ने कुलके सदस्योः अनिधियो और अपन पर निर्भर व्यक्तियों की सेवा म रत रत्ता है। गृहस्थ वस्तुतः पुत्र तथा पितृ का मरक्षक है। गृहस्थाश्रम म व्यक्ति अपन सामाजिक कर्णा नो चुकाता है। इसीलिये गृहस्थाश्रम की धारणा मया तथा दान की धारणा म प्राप्त ह और हि दू जीवन मे दान की अनक धारणा म पायी जाती हैं (जम विद्यादान, गणितज्ञान जीवनदान अनज्ञान रतिदान तथा कर्णाज्ञान इत्यादि)। धर्म की विवचना म दान का भी धर्म का आकार माना गया ह। धर्म की उत्पत्ति मत्व स हाती ह दया और दान स वह बढ़ता है। धर्मा म वह निवास करता है और प्राध स उसका नाम होता है (सत्याज्जायत दयया दानेन च बधत धर्माया तिष्ठति त्रौषाणश्मति)। धर्म की धारणा, इस दृष्टिकोण स परमाय पर आधारित है न कि स्वाध पर। धर्म अध तथा काम की पूर्ति के लिये अपनाया गया गृहस्थजीवन वस्तुतः त्याग तपस्यामय कठिन पुण्याध का जीवन है। वानप्रस्थ अन्तिम यज्ञ की तयारी है। सत्यास आत्माहृति की तयारी है। वानप्रस्थ और श्रामण—ये दाना आश्रम भवित-यज्ञ के आश्रम भयवा अवस्थाय ह क्योंकि इन आश्रमा म व्यक्ति अपन को इश्वर के प्रति समर्पित कर देता ह। यह भक्ति प्रवृत्तिमार्गी न होकर निवृत्तिमार्गी हाती है क्योंकि इसका आधार हाता ह आत्मज्ञान तथा आत्मदशन। इसप्रकार धर्म को आश्रम कतय के रूप म स्पष्ट किया गया है। यज्ञितगत सद्भ म, धर्म का सम्बन्ध मोक्ष स है और सामाजिक सद्भ मे वणागमयवस्था से। मनु और याज्ञवल्क्य न इसी आधार पर धर्म की विवचना की है।

मनु के अनुसार मन (Mind), वाक् (Speech) और देह (Body) सभी कर्मों का आधार हैं। कम से ही मानव-जीवन की विभिन्न गतिया बनती हैं। कम व परिणाम अच्छे भी हात हैं और बुरे भी। बुद्धि व्यक्ति आवागमन के चक्र मे फसा रहता है और सुबुद्धि को आवागमन के चक्र और मत्यु जाल से छुटकारा मिलता है। जीव की सभी उच्च तथा निम्न गतिया अच्छे बुरे कर्मों के अनुसार बनती हैं। जीवन मत्यु तथा आवागमन मे छुटकारा पाना (मोक्ष) मानव जीवन का उद्देश्य है जिसकी प्राप्ति उन धर्म-कर्मों म हाती है जा धर्मरहित हैं और जिनमे आत्मज्ञान की प्राप्ति होता है। धर्मरहित कर्मा म इन्द्रोक्ति तथा पारलौकिक सुखों की प्राप्ति हाती है। वेद विहित कर्म, एक जार विवृत्ति की जार ल जाता है और दूसरी जार प्रवृत्ति की

1 इन यज्ञ का सविस्तार वर्णन भाग्यव्यवस्था की श्यारमा के सद्भ में किया जा रहा है।

आर । जीवन का उच्चतम ध्येय निवृत्ति है न कि प्रवृत्ति और निवृत्ति आत्मज्ञान में मिलती है । आत्मज्ञान में तत्काल उच्च ज्ञान से है जो मनुष्य को इस संसार में उठाकर जन्मद्वय और निश्चय की ओर ले जाता है जिसमें आनन्द मय भूतेषु (मभी प्राणियों में अपनी ही जमी आत्मा है) की भावना रहती है । जीवन में उच्चतम उद्देश्य की प्राप्ति उन्नी व्यक्ति का हानी है जो रागादिमय बन्धि का निर्धारण करता है और अपनी धर्मता का बर्दाशन तथा आत्मज्ञान का प्राप्ति की ओर लगाता है । तप और विद्या में ही जीवन का उच्चतम उद्देश्य (मार्ग) का प्राप्ति होती है जिसे प्राप्ति करना मनुष्य का धर्म है । अतः, यह कहा जा सकता है कि वह बर्दाहित धर्म, जो आत्मज्ञान तथा मोक्ष का साधन है, धर्म है । धर्म वेद विहित, मुक्त धर्मों से उत्पन्न वह रहस्यमय शक्ति है जो 'ह्यौनिक तथा पारलौनिक जीवन में मनुष्य की सहायक रहती है^१ । धर्म ही एक ऐसा मित्र है, जो मर्ने पर भी जीव के साथ जाता है, और सब ता' शरार के नाश के साथ ही छोड़ कर चल जात है^२ ।

मनु द्वारा प्रस्तुत धर्म-धर्म की इस व्याख्या को याज्ञवल्क्य ने भी स्वीकार किया है । याज्ञवल्क्य-स्मृति के टीकाकार बाल्मिकी के अनुसार धर्म-संचय (Accumulation of Karma) की जड़ें धर्म अधर्म में हैं और धर्म-संचय के तीन परिणाम होते हैं—पहला, गति (उच्च या निम्न स्थिति में जन्म), दूसरा धाम और और तामरा भोग (सुख और दुःख) । याज्ञवल्क्य ने विभिन्न वर्णों के लिये, आधर्म धर्म निरूपित करने का प्रयास किया है । विधानांतर के अनुसार धर्म के सम्बन्ध में याज्ञवल्क्य ने छ विषयों का वर्णन किया है जो इस प्रकार हैं—वर्ण धर्म, आधर्म धर्म वर्णाश्रम-धर्म, गुण धर्म, निमित्त धर्म और साधारण धर्म^३ । इन छ प्रकार के धर्मों से मनुष्य के लिए मुक्ति (Pigbt Karma) का निधारण होता है । याज्ञवल्क्य के अनुसार, धर्म पर आधारित सुकर्म के मुख्य तत्व हैं सत् आचार दम अहिंसा दान, स्वाध्याय (बर्दाशन) और आत्मज्ञान । इन सभी में आत्मज्ञान परमधर्म है^४ ।

१ प्रभू हिंदू सांगल आगनाइजेन पृष्ठ 30-33

२ एक एव मुहूर्त धर्मो निघनऽप्यनुयाति य ।

शरीरेण सम नाग सधम पत्तु गच्छति ॥ बल्याण वही पृष्ठ 370

३ धर्म धर्म का सम्बन्ध है चार वर्णों (ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) के धर्मों से आधर्मधर्म का चार आधर्मों (ब्रह्मचर्य गृहस्थ, वानप्रस्थ, और समाप्त) के धर्मों से, वर्णाश्रमधर्म का चार वर्णों तथा आधर्मों के धर्मों के पारस्परिक सम्बन्धों से, गुणधर्म धर्मिक के गुणानुसार धर्मों से, निमित्तधर्म का धर्म परिस्थितियाँ से सम्बन्धित धर्मों से और साधारणधर्म का धर्म धर्म का से जो सभी स्त्री-पुरुषों से लिये समानरूप से आवधिक है—प्रभू वही पृष्ठ 37-36

इस प्रकार अपने मूलरूप में धर्म आचार है (आचार प्रथमा धर्म)। लेकिन धर्म तबल आचारमान नहीं है। धर्म वस्तुतः वह आचार है जो समय और मस्कार से बचा हुआ है। और समय तथा मस्कार सुकर्म से बंधे हुए हैं। धर्म का उद्देश्य केवल आचार समय मस्कार तथा सुकर्म से ही नहीं है। धर्म का अन्ततोगत्वा उद्देश्य है अभ्युत्थ और निश्चयन से जिसका स्वाभाविक परिणाम है आत्मज्ञान के द्वारा मान्य प्राप्ति। धर्म इहलौकिक तथा पारलौकिक जीवन का संयोजक है। धर्म पार्थिव जीवन से परे वह शक्ति है जो जीव के कर्मों से प्रस्फुटित होकर जीवात्मा के साथ प्रवाहित होती रहती है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि धर्म देव या प्रारब्ध है। हिंदुत्व की विचारधारा में प्रयत्न (कर्म) बीज के समान है और देव क्षेत्र के समान। जिस प्रकार क्षत्र में बीज बाने से फल उत्पन्न होता है उसी प्रकार कर्म से देव प्रतिफलित होता है। बिना कर्म के देव भी निष्प्राण रहता है। जिस प्रकार, हवा के प्रभाव से अग्नि प्रज्वलित होती है, उसी प्रकार, कर्म से देव का प्रभाव भी बढ़ जाता है। जमे तेल के कर्म होने के साथ साथ दीपक की लौ में द होती रहती है, उसी प्रकार, बिना कर्म की सहायता के देव का प्रभाव भी मर जाता रहता है। कर्म ही देव का प्रेरक है¹। अतः, देव कर्म पर आधारित है और धर्म देव से परे एक अलग सत्ता है। इसमें काइ से दह नहीं कि धर्म का आधारभूत ग्रन्थ उस कृतव्य-संहिता (Code of Duties) से है जो मानव समाज के सुनिश्चित संगठन के लिये आवश्यक है। लेकिन धर्म कर्म संहिता के अतिरिक्त कुछ और भी है। धर्म की धारणा में वह भाव भी निहित है जिसमें धर्म को एक प्रकार की प्रच्छन्न शक्ति समझा जाता है—वह शक्ति जिसकी रहस्यमयी प्रच्छन्न क्रियात्मकता में मानव को दण्डित (Punish) अथवा प्रतिफलित (Reward) करने की क्षमता है²।

आचार समय, मस्कार और शास्त्रविहित कर्म होने के कारण धर्म परम्परा और प्रथा का भी रूप ले लेता है किन्तु धर्म केवल परम्परा ही नहीं है। धर्म का प्रत्यक्ष सम्बन्ध सत्य (Truth) और विवेक (Reason) में है। यदि परम्परा तर्क या सत्य के प्रतिकूल है तो परम्परा को धर्म की धरणी में नहीं रखना जा सकता है। धर्म का आधार है विवेक जो कोरा तक नहीं है वरन् जो सत्य और सत्तारूप से सम्बन्धित है। कौटिल्य ने धर्म को शाश्वत सत्य कहा है। उपनिषदा में धर्म का सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का आधार माना जाता है। धर्म सर्वोत्कृष्ट है धर्म ब्रह्म में भी परे है। महाभारत में धर्म का मसार का धारण करने वाला कहा गया है। रामायण में धर्म का लाभ (Profit) तथा प्रमोद (Pleasure) का माध्यम मानते हुए उस मसार का सार तथा शक्ति माना गया है। कर्म में आवेकता है लेकिन धर्म से जीव का मुक्ति

1 प्रभू बही पृष्ठ 28 29

2 गोखले, बी० जी० पृष्ठ 25

मिलती है। धर्म की धारणा में अलौकिक अनुकम्पा (Divine Grace) का भाव भी निहित है। धर्म उस अलौकिक शक्ति का प्रतीक है जिससे मानव जीवन प्रभावित होता रहता है। बौद्धों के अनुसार धर्म में अच्छे-बुरे का अंतर स्पष्ट होता है। धर्म शासक का भी शासक है। धर्म में राज्य की पार्श्विक शक्ति में सदाचार का समावेश होता है और धर्म से ही, सदाचारी तथा आध्यात्मिक अर्हता के आधार पर व्यक्ति तथा समाज के सम्बन्ध निरूपित होते हैं। जैसा कि पहले कहा जा चुका है धर्म का केवल साधारण सदाचार नहीं माना जा सकता है। भारत में धर्म की व्याख्या युग युग से होती चली आ रही है। धर्म की धारणा की उत्पत्ति तो मानव-व्यवहार की एक महिमा (A Code of Human Behaviour) के रूप में हुई किन्तु, एक दीर्घकालीन व्याख्या की प्रक्रिया में, धर्म की धारणा में रहस्यात्मकता का समावेश हुआ। धर्म की धारणा में रहस्यात्मक (The Mystical), युक्तियुक्त (The Rational), आध्यात्मिक (The Metaphysical) और उपयोगितावादी (The Practical) दृष्टिकोण का समावेश हुआ है¹। वास्तव में हिन्दुत्व में धर्म की जो धारणा विकसित हुई है, उसकी जात्मा सर्वव्यापी है। धर्म मानवी प्रयास की साधकता की कसौटी है। मानवी प्रिया के सभी प्रकार, चाहे वे व्यक्तिगत हो या सामाजिक, सदाचारी हो या आधिदैविक, युक्तियुक्त हो या रहस्यात्मक और लौकिक हो या आध्यात्मिक, धर्म से ही निरूपित होते हैं। अपना इस ध्यापकता के कारण ही धर्म भारतीय विचारधारा का केंद्र बन गया। धर्म के विभिन्न अध्यापकों से यह प्रेरणा मिलती रही जिसके द्वारा सामाजिक अस्तित्व अपरिवर्त्य आदर्शों में प्रेरित जीवन बन गया। धर्म की धारणा कोई सद्भावितक सूत्रमात्र नहीं है। यह एक व्यावहारिक सिद्धान्त है जिसकी अभिव्यक्ति, एक आर, जनसाधारण के जात्रन में, दूसरी आर, दिलीप, भरत, राम, युधिष्ठिर, अशोक समुद्रगुप्त, हर्ष और अकबर जैसे पौराणिक तथा ऐतिहासिक पुरुषों के कृत्यों में हुई है। मकदकाळीन तथा विपन्न परिस्थिति में धर्म से ही जनसाधारण को शांति तथा काम की प्रेरणा मिली है²।

हिन्दुत्व में जिस सर्वव्यापी, वैयक्तिक तथा सामाजिक धर्मचरण का एक रहस्यात्मक जीवन-दान के रूप में निरूपण किया गया है उसकी कसौटी क्या है? धर्म की प्रथम कसौटी है वेद, शास्त्र और स्मृति में निरूपित आचार-तत्त्व। अतिल वेद को धर्म का मूल कहा गया है (वेदादखिलो धर्ममूलम्)। धर्म की वेदविहित (वेद में कहा हुआ वेद विहितत्व) माना गया है। वेद में जिसकी प्रेरणा दी गई है वही धर्म है (वेदनाल्लक्षणा-यो धर्म)। गीता में कहा गया है कि 'वेद में कहा हुआ धर्म है और उसमें विपरीत अधर्म है (वै प्रणहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विषय)। श्रुति (वेद) और स्मृति (धर्मशास्त्र)

1 गोखले बी० जी० वही पृष्ठ 28

2 वही पृष्ठ 27

में जो बुझ रहा गया है, वह धम कहलाता है (श्रुतिस्मृतिभ्यामुदित यत स धम प्रकीर्तित)। 'श्रुति और स्मृति में कहे हुए धम को करता हुआ मनुष्य इस लोक में यश पाना है और मरकर परलोक में उत्तम सुख या मोक्ष को प्राप्त होता है'। 'श्रुति और स्मृति में वर्णित सदाचार परम धम है। इसलिए आरम्भनाम द्विज सदा सदाचार से युक्त रहें'। विद्वान्, यह मानना भूल होगी कि धम कोई श्रुति स्मृति विहित अपरिवर्तनीय शाश्वत धारणा है। मन ने अखिल वेद का धम का मूल माना है लेकिन उनके मत में केवल वेद ही धर्माचरण की एकमात्र कसौटी नहीं है। मनु के अनुसार, वेद के साथ साथ, विद्वान् का आचरण भी धम का प्रमाण और उनकी कसौटी है। बहस्पति के अनुसार, धम के विषय में शास्त्र का अक्षर पालन करके कोई नियम नहीं माना चाहिये। शास्त्र का अर्थात् अनुसरण करने से धम विषयक विचार युक्तिहीन हो जाते हैं और उसके परिणाम धम के लिए अनिकारक होते हैं। धम विचार की जटिलता तथा गहराई को ध्यान में रखते हुए धर्माचरण के लिए एक व्यावहारिक सिद्धांत के रूप में यह कहा गया है कि 'महापुरुष जिस मार्ग का अनुसरण करें वही पथ ठीक है' (धमस्य तत्त्वम निहितम गुहाया महाजनो यन गत स पथा)। महाभारत में यह भी कहा गया है कि धम-अधम का निर्णय करने में विद्वान् का बुद्धि का आश्रय लेकर, परिस्थिति पर अधिक ध्यान देना चाहिये¹। धम की उत्पत्ति सत्य से होती है और सत्य की धारणा निरपेक्ष न होकर सापेक्ष होती है। सत्य की सापेक्षता दश-नाम की परिस्थितियाँ से बधी रहती है। देश-काल की परिस्थितियाँ गत्यात्मक होती हैं। अतः, सत्य की धारणा भी गत्यात्मक है और सत्य से उत्पन्न धम भी गत्यात्मक है। यह धम के प्रति गत्यात्मक विचार तथा उसकी गत्यात्मकता के लचीलपन को सुरक्षित रखने का परिणाम है कि धम की समय-समय पर अनेक रूपों में कल्पना की गई है। धम का वयविकत भी माना गया है और सामाजिक भी। धम का अर्थात् समष्टिवादिता के चक्र से बचाये रखने के लिये ही, धम के उच्चतम उद्देश्य (मोक्ष) की धारणा को व्यक्ति-सही सम्बन्धित रखा गया है। मनु ने तो यहाँ तक कहा है कि यदि काम और अध धमरहित हो तो उनका त्याग कर देना चाहिये और यदि ऐसा लगे कि भविष्य में धम से कष्ट हाने की सम्भावना है या यदि धम मानना के प्रति तूटता है तो धम का ही परित्याग कर देना चाहिए⁴।

1 श्रुतिस्मृत्युदित धममनुतिष्ठन् हि मानव ।

इह श्रुतिस्मृतिभ्यामुदित प्रत्य चानुत्तम सुतम । कर्त्तव्यं यही पृष्ठ 370

2 आचार प्रथमो धम श्रुत्युक्त स्मात् एव च ।

तस्मादस्मिन् सदा युक्तो नित्य स्यात्तत्त्वज्ञान द्विज । कर्त्तव्यं यही

3 प्रभू, पी० एच० यही पृष्ठ 27 28

4 यही पृष्ठ 35

धर्म एक गत्यात्मक धारणा

धर्म की धारणा का विकास एक गत्यात्मक विचारधारा में हुआ है। भारत की सामाजिक ऐतिहासिक परिस्थितियों ने धर्म की धारणा के विचार का ढाला है। धर्म की धारणा में व्यक्तिगत सामाजिक तत्त्व रहस्यात्मक विचारों का समावेश भारतीय विचारधारा के विकास की ऐतिहासिक परिस्थितियों में हुआ है। अतः, धर्म की सर्वांगीण व्याख्या के लिए धर्म की धारणा के विकास का ऐतिहासिक विवेचन भी आवश्यक है। लोगों की ऐसी मान्यता है कि धर्म की धारणा की उत्पत्ति 'ऋत' की धारणा में हुई। 'ऋत' की धारणा प्रारम्भिक वैदिक साहित्य में पाई जाती है और इस आधार पर यह मत प्रतिपादित किया गया है कि सम्भवतः ऋत की धारणा आर्यों की है जो उनकी विचारधारा के रूप में भारत में आई। 'ऋत' का एक अर्थ है वह शक्ति जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की व्यवस्था का आधार है। अपने विपर्याय 'अनरीत' के सदृश में 'ऋत' का अर्थ होता है नैतिक व्यवस्था। नैतिक व्यवस्था के सदृश में 'ऋत' का व्यावहारिक रूप एक ओर, नकारात्मक हो जाता है और दूसरी ओर आदेशात्मक जिसके कारण ऋत की संज्ञा से भी परे एक अलग रहस्यात्मक सत्ता का रूप ले लेता है। 'ऋत' वस्तुतः ब्राह्मण्ड में व्याप्त वह शक्ति है जिसके नियमों से देवता भी बंधे हुए हैं। ऋत तथा मन की धारणाओं भारत के प्रारम्भिक सामाजिक तथा नैतिक विचारों में ताने बाने के रूप में विद्यमान हैं। प्रारम्भिक वैदिक साहित्य में जहाँ 'ऋत' से तात्पर्य ब्रह्माण्ड की पार्ष्व व्यवस्था तथा मन-व्यवस्था से है, वहाँ इसका तात्पर्य सांसारिक नैतिक नियम से भी है।

यही 'ऋत' की धारणा कालांतर में धर्म की धारणा के रूप में प्रस्फुटित हुई। वैदिक साहित्य में ऋत की धारणा के साथ साथ धर्म का प्रयोग त्रिन अर्थों में होता है वह हैं आचार (Custom), नैतिक नियम (Moral Laws) सामाजिक नियम अथवा कर्तव्य तथा अधीन्य (अर्थात् What is right)। ब्राह्मणग्रन्थों में धर्म की धारणा 'ऋत' की धारणा का स्थान ले लेती है और इसका कारण है भारत में जटिल तथा विजातीय समाज में एक सामंजस्य लाने की आवश्यकता। प्रारम्भ से ही, भारत विभिन्न प्रजातिका तथा गणराज्य समूहों का समाज रहा है और प्रारम्भ से ही भारत के विभिन्न समूहों को एक समाज, गणराज्य तथा राष्ट्र में संगठित करने का प्रयास चलता रहा है। भारत में, एकता में एकता लाने का प्रयास किया गया है और भारतीय विचारों में प्रमाणों में जोतप्रान्त है। धर्म तथा स्वयं की धारणाओं में इस प्रयास में सफलता मिली है। भारत में आर्यों के साथ-साथ, आर्यों तथा जनार्जनों के सम्पर्क से जो स्थिति निर्माणात् हुई उसकी धारणाओं में 'ऋत' की धारणा से पूर्ण नहीं हो सकी और जनार्जनों की धारणाओं में 'ऋत' का स्थान नहीं था, कालांतर में 'ऋत' का आधार पर धर्म की धारणा विकसित हुई। यही कारण है कि वैदिक साहित्य में, धीरे-धीरे

धर्म की धारणा देवताओं, ऋषियों, पितरों, मनुष्य तथा मानवतर प्राणियों के प्रति कर्तव्य संहिता (Code of Duties) के रूप में विकसित होती है। धर्म की इस धारणा में एक अंग, ऋत की धारणा में व्याप्त प्रकृतिवादी (Naturalist) दृष्टिकोण बना रहता है और, दूसरी ओर, व्यक्ति तथा समाज के सम्बन्धों का नैतिक आधार भी मिलता है।

पाणिनि के निबन्धन में धर्म का अर्थ है धर्मप्राण कृत्य तथा प्रथा। धर्मशास्त्रों में एक अंग, धर्म की वर्ण व्यवस्था के सन्दर्भ में व्याख्या की गई और, दूसरी ओर, जाधर्म व्यवस्था के सन्दर्भ में धर्मशास्त्रों में की गई व्याख्या के अनुसार धर्म वस्तुतः शास्त्रावत वर्णाश्रमी कृत्यों में निहित है। धर्म की इस व्याख्या में, एक ओर, व्यक्ति के जन्म से लेकर मृत्यु तक के कर्तव्यों को निरूपित करने का प्रयास है और, दूसरी ओर वर्ण-व्यवस्था के निरूपण के द्वारा, समाज के विभिन्न समूहों की सामाजिक प्रतिष्ठा तथा कर्तव्यों को निर्धारित करने का प्रयास। इस प्रकार, धर्मशास्त्रों के युग में धर्म से तात्पर्य लिया गया है एक आदर्श तथा सुगठित समाज की सभी इच्छाओं की प्रतिष्ठा तथा कर्तव्यों में। यही सं धर्म के अन्तर्गत सम्पूर्ण मानव कर्तव्यों का लिया जाना चाहिए और धर्म का एक व्यापक जीवन दर्शन के रूप में प्रस्तुत किया गया।

इस बहुमुखी विकास का परिणाम यह हुआ कि धर्म अनेक सन्दर्भों तथा जगहों में प्रयुक्त होना लगा। जैसा कि गोखले ने लिखा है धर्म से जन्म लिए जाने लगा आचारपरक श्रौचित्य, नैतिक कर्तव्य, सदगुण, सुष्ठव धार्मिक कर्तव्य, धार्मिक मद-गुण, आदर्श निरपेक्ष सत्य सामान्य नियम अथवा सिद्धांत (Universal Law or Principle), दलीय कर्तव्य (Convention), प्रथा तथा परम्परा संहिता (Code of Customs & Traditions) धर्म विधि (Canon Law) या विधि (Law) तथा अन्तर्जातीय विधि (Intertribal Laws) स¹। धर्म की इस व्यापक धारणा में जहाँ, नैतिक आदर्श नियम (Ethical Norm) धार्मिक कर्तव्य, रहस्यात्मक सत्ता (Mystical Entity) तथा आदर्श के भाव निहित हैं वहाँ इसमें आर्थिक राजनैतिक प्रजातिक तथा वक्तिक और व्यावसायिक (Professional) व्यवहार-संचालन के नियम भी निहित हैं। इस व्यापक व्याख्या में धर्म को सामाजिक सहचारी जीवन के एकीकरण की प्रक्रिया (Process) का उपकरण (Instrument) बनाने का प्रयास किया गया है। एकीकरण सभी प्रकार के सहचारी जीवन की आवश्यकता है। मानव के सहचारी जीवन (सामाजिक जीवन) में वह आवश्यकता संस्कृति से पूर्ण होती है। भारतीय समाज में उस आवश्यकता की पूर्ति के लिए धर्म की धारणा निरूपित की गई है और इसी कारण भारतीय संस्कृति धर्मप्राण संस्कृति है।

धर्म की इसी व्यापक विनायता को ध्यान में रखते हुए महाभारत में कहा

गया है कि सभी प्राणियों की वृद्धि तथा विकास के लिए और उन्हें परस्पर हानि पहुंचाने में रोक्ने के लिए धर्म उपमपन्न हुआ है। अतः धर्म साधारण तथा एकमुखी न होकर जटिल तथा बहुमुखी है। इसका सम्बन्ध राज्य तथा प्रजा के व्यवहार, जाति तथा परिवार-समूह, जीवन की अवस्थाओं, दान उपाय, मोक्ष नारी पुष्पा के वन या तथा सामान्य मानव बतन्त्या से है। भारतीय विचार व विकास के दौरान में धर्म पर अनेक दृष्टमुखी विचारों तथा धारणाओं का आवरण चढ़ता रहा है। फिर भी धर्म धारणा की अपनी जा मा है जो विभिन्न धारणाओं तथा विचारों के आवरण में भी अन्तुष्य रही है। धर्म की आत्मा सदाचारी जहाजा (Moral Values) के संरक्षण तथा स्थायित्व के प्रति अिद्वन्द्व म निहित है। धर्म की धारणा में एक शाश्वत सत्ताचार व्यवस्था का भाव निहित है जो नृत्त में निहित अज्ञानमय की विचारों पर आधारित है, जो अपरिवर्तनीय तथा स्थाई रहा है और जो निरीह मानवी अधिमाता (Preferences) सुविधाओं (Conveniences) या प्रवृत्तियों (Manipulations) से एकत्र स्वतंत्र ही नहीं बरन उनके प्रति उपनिभ भा रहा है। धर्म की धारणा रहस्यात्मकता में लिपटी हुई है क्योंकि इस धारणा में मनुष्य से पर एक सत्ता में विश्वास रहा है। यही कारण है कि धर्म की धारणा में रहस्यात्मकता का पुट आया।

धर्म की धारणा में निहित रहस्यात्मकता के भाव के लिए भारतीय विचारधारा के मुख्य प्रवाह तथा सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियाँ भी उत्तरदायी हैं। भारत में जायों के आने के बाद जिस सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था का संगठन हुआ, उसमें एक आर धे जाय और दूसरी आर जनाय एक आर धे विजित और दूसरी और पराजित। तत्कालीन भारत में भूमि ही जय का एकमात्र साधन थी जिसकी उत्पादन-क्षमता सीमित थी। दूसरी आर, क्षत्रिया तथा ब्राह्मणों के रूप में, ऐसा वण अस्तित्व में जा रहा था जो उत्पादन न हाकर बवल परिजीवीमात्र था। अतः वैदिक समाज की एक आवश्यकता थी विभिन्न गणनातियों का एक समाज में संगठित करना जो वण व्यवस्था के द्वारा हुआ दूसरी, सामाधारण की उत्पादन-व्याय में लगाए रचना ताति परिजीवी वर्गों का अस्तित्व बना रहा, और तीसरी व्यक्ति तथा समाज के परीक्षण का वनाए रचना जा जाधर्म व्यवस्था तथा संस्कार द्वारा सम्पन्न हुआ। ऐसा व्यवस्था में बाद आच्य नती यदि धर्म का मानव तथा समाज के पर एक रहस्यात्मक दबी सत्ता के रूप में प्रस्तुत किया गया। भारत की ही नहीं, बरन तत्काल समाज की ही विचारधारा रहस्यात्मक थी। मानव विचारों पर स रहस्यात्मकता का आवरण तब से उत्तरता प्रारम्भ हुआ जब में विज्ञानवादिता का प्रभाव बढ़ा। विज्ञानवादी विचारधारा के आविर्भाव के पश्च मानव सम्बन्धा जितनी भी विचार प्रणालियाँ अस्तित्व में आई हैं उनमें रहस्यात्मकता का पुट रहा है। यूनानी ईसाई और इस्लामी विचार प्रणालियाँ इसका प्रमाण हैं। धर्म की धारणा की सबसे

बड़ी विरोधता यह है कि रहस्यात्मक होने हुए भी यह उस प्रकार में दबी अध्यादेश नहीं है जिस प्रकार न इसाइयत और इस्लाम हैं। धर्म सर्वोच्च दबी सत्ता से परे एक जलम मता है। इस्लाम और इसाइयत की भांति धर्म कार्य अपरिवर्तनीय तथा अनिम विचार प्रणाली भी नहीं है। धर्म देश-जात से बंधा हुआ है। यह अदृश्य है कि वह मानव से परे है लेकिन वह मानव से सबथा अलग भी नहीं है। यही कारण है कि हिन्दुत्व की विचारधारा में धर्म की प्रेरक वह देवी सत्ता नहीं है जिम्मा अस्मित्व मानव न एकत्म अर्थ में वरन, वह देवी सत्ता है जो मनुष्य के रूप में भी धर्म की प्रेरणा देती है। धर्म की धारणा में श्यायित्व की भावना न होकर समवाप्ति युग युगों का भावना व्याप्त है।

इसा वैचारिक पर्यवेक्षण का प्रभाव है कि जब हिन्दुत्व तथा हिन्दु मता के प्रसार तथा सघन के कारण आर्यावर्ती समाज का विशुद्धत्व हुआ तो ब्रह्मवाद एक वैचारिक तथा सामाजिक जाति के रूप में प्रभुत्व प्राप्त हुआ। ब्रह्मवाद में धर्म के रहस्यावादी पक्ष पर ही भगवान् का चोट की गई। लेकिन, ब्रह्मवाद भी धर्म के आधारभूत विचार में मूल न हो सका। ब्रह्मवाद का विकास मगध तथा अजन्ती जय साम्राज्य की पर्यवेक्षण में हुआ था। गीर्षो के प्रभुत्व और ऐश्वर्य की आधार गिला जासाधारण के धर्म से उत्पन्न सम्पत्ति थी यद्यपि जन साधारण को उनके

- 1 हिन्दुत्व की विचारधारा में ईश्वर को एक साथ, धर्म का स्रोत तथा धर्म से बंधा हुआ माना गया है। इसमें कोई संदेह नहीं कि धर्म जाचार से उत्पन्न होता है लेकिन धर्म के प्रभु स्वयं अच्युत (भगवान्) है (जाचारप्रभवो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युत)। भगवान् धर्म का मूल है (धर्ममूलं हि भगवान् सर्वदेवमयी हरि)। भगवान् स्वयं धर्म के जानने वाले ही नहीं वरन स्वयं धर्म का रूप है (धर्मो धमन्विदुताम)। भागवत में लिखा है कि धर्म की रक्षा के लिए भगवान् स्वयं अवतार लेते हैं (धमावतारोऽवतारः)। गीता के चौथे अध्याय (श्लोक 7-8) में भगवान् कृष्ण से कहा गया है हे अर्जुन! जब जब धर्म की ग्लानि होती है तब तब अधम व अभ्युत्थान (विनाश पतन) के लिए मैं अपना सज्जन करता हूँ (अर्थात् अवतार लेता हूँ)। साधुओं के परित्राण दुष्टों के विनाश और धर्म सस्थापना के लिए मैं युग युग में प्रकट होता रहता हूँ। ऐसा जान पड़ता है कि माता ईश्वर तथा धर्म सम्बन्धी विचारों में द्विविधा या विरोधाभास है। एनिहासित्व सत्ता में यह विरोधाभास समाप्त हो जाता है। चूंकि विचारधारा में धर्म ही सर्वोपरि है। लेकिन, बाल्यकाल में, सबकालीन परिवर्तितियों में जो साकार का उपासना बंदी और जनसाधारण को एक अतीतिक आश्रय की जादुशक्तता हुई, तो अवतारवाद की कल्पना के साथ धर्म को जोड़ कर, उस ईश्वरमय मान लिया गया।

श्रम के पन् स वृत्ति किए बिना न तो साम्राज्य रह सकता था और न साम्राज्य का ऐश्वर्य । और जहा जनसाधारण को उनके श्रम से उपाजित फल से वचित किया जाता है वहा या तो क्रान्ति होती है या यदि क्रान्ति सम्भव न हो तो जनसाधारण को किसी न किसी मानसिक सन्तोष के माध्यम की आवश्यकता होनी है । धर्म की रहस्यारमकता तथा पारलौकिकता से, यण-यवस्था की सत्तान्वित सामाजिक व्यवस्था के शोषण से जनसाधारण की मानसिक सन्तोष मिला । यह इसी रहस्यारमक विचारधारा का प्रभाव था कि राजधर्म में सम्राट की राजपि के रूप में कल्पना की गई और सम्राट को एक दिव्य गरम्भ के रूप में प्रस्तुत किया गया । इस प्रकार, धर्म की धारणा में निहित पारलौकिकता सामाजिक परिस्थितियों को देन है । यह सामाजिक परिस्थितियों का ही प्रभाव है कि बुद्धवाद जैसे ताति बारी जा दार्शनिक कल्पना का प्रभावता मिली और उसके फलस्वरूप मत्वायानी बुद्धवाद में बोधिमत्त्व का कल्पना जाइ । जिन परिस्थितियों में धर्म की धारणा का जन्म दिया था उन्हान बुद्धवाद का जन्म मिया और यह धर्म की धारणा का ही प्रभाव है कि बुद्धवाद भी पारलौकिकता के प्रभाव में मृत न रह सका । मोक्ष की धारणा बुद्धवाद में निर्वाण के रूप में प्रतिफलित हुई । हा, यह अवश्य है कि बुद्धवाद में धर्म का निवचन एक नये ढंग से किया गया । यहां धर्म की सत्त्व सम्भव साग सयास और निर्वाण में ही सीमित रक्ता गया । लेकिन, धर्म की बुद्धवाणी व्याप्त्या से ही मजहब की नींव पड़ी । बुद्धवाद ही पहला ऐतिहासिक तथा सगठित मतत्व था जिसके प्रभाव से उत्पन्न ऐतिहासिक प्रवाहों ने कालांतर में, ईसाइयत तथा इस्लाम जैसे मजहबों का जन्म दिया ।

धर्म की धारणा के ऐतिहासिक निवचन से यह स्पष्ट होता है कि धर्म की धारणा कोई अपरिवर्तनीय तथा अन्तिम धारणा के रूप में नहीं प्रतिपादित की गई है । मानव जीवा दंग, बाल, गुण तथा श्रम में यथा हुआ है । इन भौतिक परिस्थितियों का प्रतीक है और काल ऐतिहासिक परिस्थितियों का । गुण में तापय व्यक्ति की स्वाभाविक क्षमताओं में ही श्रम का उठा स्वाभाविक क्षमताओं के अनुसार वम करने की क्षमता से । धर्म का सम्बन्ध मानव से है । अतः, धर्म भी दंग, बाल, गुण तथा श्रम के कारण से परे नहीं है । दंग, बाल, गुण तथा श्रम के कारण ही मानव में तथा मानव व्यवहार में विचरणशीलता आती है और चूकि मानव तथा मानव व्यवहार विचरणशील है, धर्म विचार में भी विचरणशीलता का समावेश आवश्यक है । राजपि भौतिक के द्वारा ही हुई गिनाया के अनुसार 'दंग बाल' की परिस्थितियां, जावयताओं तथा अपवर्ण के कारण जा धर्म है, यह धर्म ही सत्ता है और न धर्म है यह धर्म ही सत्ता है । धर्म सम्बन्धी यह

विचार इस तथ्य का प्रमाण है कि धर्म के गत्यात्मक निर्धारण की आवश्यकता सदैव बनी रहती है क्योंकि मानव जीवन ही गत्यात्मक है। वास्तव में, एक ओर, मानव शाश्वत है और दूसरी ओर विचरणीय। यही कारण है कि, एक ओर, धर्म की धारणा में मानव सम्बन्धी आघारभूत शाश्वत सिद्धांतों को प्रतिपादित करने का प्रयास किया गया है और, दूसरी ओर, विभिन्न परिस्थितियाँ तथा अपवादों के अनुसार उन सिद्धांतों में लचीलापन बनाय रखा गया। इसी कारण एक ओर, जसा कि पहले कहा गया है स्वधर्म की धारणा प्रतिपादित की गई है और, दूसरी ओर, अधर्म की एक ओर, सामान्य धर्म तथा मानवधर्म की कल्पना रखी गई है और दूसरी ओर, आपद्धर्म की। सामान्य धर्म के ही लिए नित्य तथा सावभौम की सनाओ का प्रयोग किया है। इतिहास के गुणों के सर्वांगीण विकास के लिये आश्रय धर्म की धारणा प्रतिपादित की गई है। सामाजिक दृष्टिकोण से, मानव जीवन में परिवार तथा विवाह का सर्वाधिक महत्त्व है जिस कुल धर्म की धारणा से व्यक्त किया गया है। गुण तथा धर्म के अनुसार समाज में व्यक्ति की जा प्रतिष्ठा बनती है और उससे जो स्तरान्तरण (Stratification) अस्तित्व में आता है, उम्र वयस धर्म के सामाजिक ढाँचे में रखा गया है। सामाजिक जीवन के राजनतिक पक्ष का राजधर्म की धारणा में बाधा गया है। वयस और जाधर्म की धारणाएँ वस्तुतः धर्म की धारणा का प्राण हैं। धर्म का सारा निरूपण वयसाधर्म के ही निरूपण में निहित है। वयसाधर्म-व्यवस्था वस्तुतः हिन्दुत्व की आत्मा है। हिन्दू संस्कृति वयसाधर्म अनुमादित है। इसी कारण, हिन्दुत्व में धर्म संस्कृति का भी प्रतीक माना गया है।

६

धर्म के विभिन्न रूप

यहाँ यह स्पष्ट हो जाता है कि धर्म एक ऐसी रहस्यात्मक सत्ता है जिसका सम्बन्ध, एक ओर मानव की शाश्वतता से है और दूसरी ओर, मानव जीवन की गत्यात्मकता तथा उसके विभिन्न पहलुओं से। इस दृष्टिकोण में, धर्म की व्याख्या में धर्म के विभिन्न पहलुओं की व्याख्या अपेक्षित हो जाती है। धर्म के कितने पहलू हैं या धर्म के कितने रूप हैं? यह विषय जहाँ सतत विचार का प्रश्न रहा है वहाँ इसका समाधान मतमतान्तर का भी विषय रहा है। स्वधर्म तथा अधर्म और उनके विभिन्न रूपों की धारणाओं का स्पष्टीकरण पहले ही किया जा चुका है। यह भी पहले लिखा जा चुका है कि याज्ञवल्क्य ने धर्म के प्रश्न पर विचार करते हुए वयसधर्म, आश्रमधर्म, वर्णाश्रमधर्म, गुणधर्म, निमित्तधर्म तथा साधारणधर्म की

व्याख्या की है। अतः, यह कहा जा सकता है कि याज्ञवल्क्य के अनुसार छ प्रकार के धर्म हैं। भारतीय विचार (Indian Thought) की ऐतिहासिक विवेचना के सन्दर्भ में धर्म की धारणा की व्याख्या करते हुए गोसले ने धर्म के जिन पहलुओं या प्रकारों का वर्णन किया है, वे हैं मानवधर्म, वर्णधर्म, आश्रमधर्म, कुलधर्म, राजधर्म तथा सस्कृति के रूप में धर्म¹। सस्कृति जैसा कि पहले अध्याय में दिखाया गया है समाज के जातियों को अपना धर्म समेट रहती है। हिन्दू विचारधारा में मानव जीवन के व्यक्तिगत तथा सामाजिक आदर्श धर्म में ही निहित हैं। अतः, हिन्दू दृष्टिकोण में धर्म सस्कृति का प्रतीक है। कुलधर्म का सम्बन्ध परिवार और गृहस्थाश्रम में है जिनका, आगे चलकर, यथास्थान वर्णन किया जायगा। धर्म के सामाजिक पहलुओं का स्पष्ट करने के लिए धर्म के जिन पहलुओं का यहाँ वर्णन किया गया है वे हैं मानवधर्म, पुरुषधर्म, आश्रमधर्म, वर्णधर्म, कर्मधर्म और राजधर्म। धर्म की स्वाभाविक परिणति उत्तमपुरुष की धारणा में होती है अतः, अतः म उत्तमपुरुष की धारणा का विस्तारण किया गया है।

मानवधर्म की धारणा में, धर्म के सामाजिक तथा शाश्वत आधारों का निर्धारित करने का प्रयत्न किया गया है। मानव धर्म की धारणा में सावभौमिकता का भाव निहित है क्योंकि मानवधर्म की मायता इस धारणा पर आधारित है कि दश, काल गुण तथा श्रम के कारणों से उत्पन्न विचरणों के ज्ञात हुए भी, मानव जीवन सर्वत्र समान है और, इस कारण, वह कुछ आधारभूत नियमों तथा सिद्धांतों में बंधा हुआ है। यही सर्व-यापी आधारभूत नियम तथा सिद्धांत मानवधर्म का मार है। किन्तु यहाँ प्रश्न उठता है कि वे सर्व-यापी, आधारभूत नियम तथा सिद्धांत क्या हैं? इस प्रश्न का उत्तर कई प्रकार में दिया गया है। एक दृष्टिकोण से मानवधर्म यह है जो मानव में निहित औचित्य की प्रेरणा पर आधारित है और जिसमें मानव का इष्ट-लौकिक तथा पारलौकिक सुख की प्राप्ति होती है। औचित्य की प्रेरणा ही मानव को सत्वर्गों की ओर प्रेरित करती है। अतः धर्म का एक बाह्यरूप है और दूसरा आन्तरिक। धर्म का बाह्य रूप मनुष्य को बन्धन में बाधता है और आन्तरिक रूप औचित्य की प्रेरणा से। इस दृष्टिकोण से, धर्म मनुष्य का उन प्रारंभिक से बाधता है जो उसे अपनी अन्तर्निर्दिष्ट नियमों का पालन करने हुए अतृप्तता प्राप्त करना चाहिये। इसी दृष्टिकोण से, धर्म का मानव के उन गुणों का मध्यम्य, उनमें सम्मिलित प्रियेय तथा अविद्येय का विधापक, मन्त्रालय और निवचन माता जा सरता हजिाम, मनुष्य के बाह्य तथा आन्तरिक रूपों और यद्विन् तथा समूहों के सम्बन्धों की उचित विभागीयता तथा प्रेम से निर्धारित होता है। अपन इस रूप में धर्म वस्तुतः विद्येय है जो मानव को इष्टलौकिक सुख तथा योग की धारण करता है।

यह फिर प्रश्न उठता है कि विवेक की बसोटी क्या है ? इस प्रश्न का सुलझाने के लिए मानवधर्म की विशेषताओं का निर्धारित करने का प्रयत्न किया गया है यद्यपि विभिन्न विद्वानों में इस विषय में एकमतता नहीं है। मनु के अनुसार, जसा कि पहले लिखा जा चुका है, मानवधर्म के लक्षण हैं वृत्ति क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह धी, विद्या, सत्य और अक्रोध। विष्णुधर्मशास्त्र में सहिष्णुता, सयगात्रता, सयम इन्द्रियनिग्रह अहिंसा गुरु क प्रति श्रद्धा, तीर्थयात्रा, दुःखी क प्रति महानुभूति नरलता अभिलाषा से मुक्ति दत्तो तथा ब्राह्मणों का आदर और अत्रय मानवधर्म के लक्षण बताए गए हैं। भागवत पुराण के अनुसार मानवधर्म अहिंसा सत्य, चारी न करने की भावना इच्छा नाश तथा अभिलाषा क रागा से मुक्ति और उन कर्मों का दूरना कृत्वि चक्रित तथा अच्छा हा में निहित है। कौटिल्य ने मानवधर्म के लक्षणा में अहिंसा सयनिष्ठा, गृहता, अविषय दया और क्षमा को मुख्य माना है। महाभारत में अहिंसा का उच्चतम मानवधर्म माना गया है। गीता में निष्काम कर्म का मानवधर्म माना गया है। मनुस्मृतिकरण सर्वोच्च धर्म की परिभाषा प्रयात् रूप में की है। सामाजिक कर्तव्य (Social Duty) या कल्प कर्तव्य के रूप में भी धर्म परिभाषित किया गया है। इन विभिन्न दृष्टिकोणों का आधार पर मानवधर्म यह निष्कर्ष निकाला है कि धर्मने सामाजिक नावगोमिक पक्ष में मानवधर्म का धर्म है जो नैतिक जीवन में सत्य अहिंसा, आ मनिग्रह तथा करुणा पर आधारित है, जो मानव प्रकृति का मानवीय बनाने का उपकरण तथा मानव प्रवृत्तियों का उत्पत्तीकरण का माध्यम है।

धर्म की विवेचनाओं के वर्णनों में सामाजिक धर्म निषधम साधारणधर्म, सावभौम धर्म विगपधर्म तथा आपद्धम जसी संज्ञाओं का भी प्रयोग किया है। सामाजिक धर्म साधारण और सावभौम पर्यायवाची विगपण है और उनका अर्थ है शास्त्र में। धर्म के माध्यम से उनका तात्पर्य हो जाता है शास्त्र धर्म से जिसकी व्याख्या मर्यादा में नवधर्म की धरणा के रूप में की गई है। विगपधर्म का अर्थ है उस धर्म से जो सामाजिक से भिन्न हो और जो परिस्थिति विगप की मांग है। दया आर दान सामाजिक धर्म में आता है। लेकिन यदि रोगी कृपण्य मांगता, दया करके उस कृपण्य दाना धर्म हागा। आपद्धम का तात्पर्य उभय धर्म से है जो जपत्तिका के त्रिधर्मों में। अहिंसा सामाजिक धर्म है अविनय्य फलने पर नूनको मारना धर्म में हागा। विगपधर्म तथा आपद्धम सामाजिक धर्म के अपवाद के रूप में परिभाषित किया गया है। अपवाद परिस्थिति जय हात हैं। अतः वे सामाजिक न गेकर जस्वाई हात हैं।

छठा अध्याय

पुरुषार्थ

धर्म और पुरुषार्थ

धर्म पुरुषार्थ का साधन माना गया है। पुरुषार्थ का तात्पर्य है प्रयत्न अथवा प्रयत्नात्—य प्रयत्न जिनसे जीवन के उद्देश्य की पूर्ति हो। हिन्दू जीवन दण्ड के निरूपण तथा व्याख्या में पुरुषार्थ का अर्थ उचित हो गया है। अर्थात् दण्डित धर्म में, पुरुषार्थ मानव जीवन के उद्देश्य का प्रतीक माना गया है। हिन्दू जीवन दण्ड के प्रयोगकर्ता न जीवन के चार उद्देश्य माने हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। ये चारों अलग-अलग पुरुषार्थ माने गये हैं। धर्म का पदम पुरुषार्थ माना गया है जो इस सत्य का प्रतीक है कि मनी पुरुषार्थों में धर्म ही सर्वोपरि है। महाभारत के रचयिता महर्षि व्यास ने भारत तावित्री के अन्तिम दण्डों में कहा है कि मैं हाथ उठा उठा कर सदा धर्म की पूर्ति करने के लिए बटुता हूँ कि धर्म में अर्थ और काम की साधना होती है। अतः धर्म का ही अनुसरण क्या न करो? अर्थ और काम की साधना है। फिर भी यह ध्यान रखो कि धर्म का परित्याग कभी भी नहीं करना चाहिये।

धम उसी प्रकार न नित्य है जैसे आत्मा¹। धम प्रथम पुरुषार्थ इसलिए है कि वह अथ तीन पुरुषार्थों का साधन ही नहीं बरन उनका आधार है। अथ दूसरा पुरुषार्थ है, काम तीसरा और मोक्ष चौथा। संहृत भाषा में 'अथ' के अनेक अर्थ हैं लेकिन, एक पुरुषार्थ के रूप में अथ से तात्पर्य लिया जाता है इहलौकिक तथा पार्थिव सम्पन्नता से। काम से साधारणतः अर्थ लिया जाता है मानव की उन एपणाओं में जिनसे आनंद का प्राप्ति होती है तथा जिनसे जीवन तथा इन्द्रियों की तुष्टि होती है। साधारणतः काम शब्द मानव में निहित यौन प्रेरणा का पर्याय माना जाता है यद्यपि अपने 'यापन' अर्थ में यह प्रतीक है मानव की उन सभी जैविक एपणाओं का जो मानव में जैविक तथा मानसिक तनाव उत्पन्न करती हैं और जिनकी तुष्टि इन्द्रिय जनित सुख का साधन होती है। मोक्ष से तात्पर्य है मुक्ति से—आवागमन के चक्र से छुटकारा पाने से।

मानव जीवन का अततोमत्वा और सर्वोच्च पुरुषार्थ है मोक्ष जिसका एकमात्र साधन है धम। इसलिये धम मोक्ष से भी महत्वपूर्ण है। लेकिन वेदों में धम से ही मानव की प्राप्ति सम्भव नहीं है क्योंकि मोक्ष मानव जीवन की एक सतत विकास-प्रक्रिया (अभ्युदय) का चरमात्मक है। मोक्ष का सम्बन्ध पारंगीक जीवन से है, जो इहलौकिक जीवन का उन्नयन है। इहलौकिक जीवन का स्वाभाविक विकास अथ और काम से होता है—वह अथ और काम जो धम पर आधारित है। अथ और काम का सम्बन्ध सामारिक जीवन से है। धम, अथ और काम के माध्यम से मोक्ष की ओर ल जाता है अतः धम का स्तर अथ और काम की अपेक्षा उच्चतर है। धम अथ और काम, वस्तुतः प्रतीक हैं मानव के नैतिक (Moral) भीतिक (Material) तथा मानसिक (Mental) साधना (Resources), उपकरणों तथा शक्तियों के जो मानव का अपने में ही उपलब्ध रहते हैं और जिनकी साधना के बिना मोक्ष की साधना नहीं हो सकती है। अतः पुरुषार्थ, वस्तुतः एक साधना है जिसमें धम के आधार पर अथ तथा काम (अथवा इहलौकिक जीवन) की साधना करते हुए, पारंगीक जीवन का साधन का प्रयास निहित है। पुरुषार्थ अभ्युदय तथा निश्चय की साधना का माध्यम है।

धम पुरुषार्थ का आधार अथ है, लेकिन एक धारणा के रूप में। धम की धारणा पुरुषार्थ धारणा का एक पहलू है। धम और पुरुषार्थ एक दूसरे पर आश्रित हैं। धम के बिना पुरुषार्थ की साधना हो सकती है और न बिना पुरुषार्थ के धम की। पुरुषार्थ केवल एक धारणामात्र नहीं है। पुरुषार्थ वस्तुतः जीवन-दान का एक सिद्धांत है। जीवन दान एक सिद्धांत के रूप में पुरुषार्थ से तात्पर्य है धम के माध्यम से अथ काम तथा मोक्ष की साधना। मानव धम अथ तथा काम का स्वाभाविक विकास

है। अतः, चारों पुरुषार्थों में धर्म अथ और काम की आधारभूत महत्ता है। धर्म की व्यापक व्याख्या के लिये अथ काम तथा मांश की विगद व्याख्या आवश्यक है।

धर्म का अन्ततोगत्वा उद्देश्य है मांश प्राप्ति। मांश प्राप्ति, निवृत्ति का प्रतीक है। इसी कारण, यह कहा जाता है कि धर्म निवृत्ति की ओर ल जाता है जिसके फलस्वरूप, हिन्दुत्व में जीवन के प्रति नास्ति तथा नश्वरात्मक दृष्टिकोण का समावेश हुआ है। किंतु, हिन्दुत्व के प्रति यह दृष्टिकोण सम्बन्ध नहीं है। गीता इसका ज्वलन उदाहरण है। गीता में जीवन का कर्मोन्नत मानव उन्नत अपनाने की प्रेरणा दी गई है। पुरुषार्थ सिद्धान्त में धर्म के साथ अथ तथा काम को प्रधानता देकर इहलौकिक जीवन के आधारभूत महत्त्व पर जोर दिया गया है। शरीर का धर्म साधना का प्राथमिक साधन माना गया (शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्)। शरीर के साधना के लिये अथ और काम की साधना आवश्यक है। हा यह अवश्य है कि हिन्दुत्व में शरीर और उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति को ही जीवन का एकमात्र उद्देश्य नहीं माना गया है। मानव जीवन केवल शरीरी आवश्यकताओं की पूर्ति तक ही सीमित नहीं है। यदि ऐसा होता तो मनुष्य अथ जानवरों से भिन्न न होता। शरीरी दृष्टिकोण में मानव-जीवन में जन्म विकास ह्रास (जरा) तथा मृत्यु का चक्र है। जिवन प्रथम की यह स्वाभाविक प्रक्रिया है जिसकी अन्ततोगत्वा नहीं की जा सकती है। मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जो, अपनी मानसिक विगदताओं के कारण, जीवन का अन्ततोगत्वा उद्देश्य के बारे में सोचता है। यही कारण है कि हिन्दुत्व में एक ओर इहलौकिक जीवन के निरूपण का प्रयास किया गया है और, दूसरी ओर इहलौकिक जीवन के अन्ततोगत्वा उद्देश्य को पारलौकिक के साथ जोड़ा गया है। हिन्दुत्व में पहले इस पृथ्वी पर मानव अस्तित्व में सम्बन्धित आधारभूत प्रश्नों की महत्ता पर विचार किया गया है, फिर, मानव अस्तित्व के सवागीण विकास तथा उसके सभाव्य, अन्ततोगत्वा उद्देश्य पर विचार किया गया है और फिर, इन विचारों के आधार पर व्यक्ति, घटना तथा परिस्थिति के पारस्परिक सम्बन्धों को निर्धारित किया गया है। हिन्दुत्व में व्यक्ति, परिवार, समूह, समाज तथा राष्ट्र और जीवन तथा निर्जीव के सम्बन्ध इसी विचार पर आधारित हैं। हिन्दुत्व निवृत्तिमार्गी प्रवृत्ति का जीवन दान है। प्रवृत्ति मनुष्य का स्वभाव है लेकिन निवृत्ति ही अस्वाभाविक नहीं है। निवृत्ति सधर्म है। अतः, मत्फलदायिनी है। आसक्ति में अनासक्ति का समन्वय जीवन का उद्देश्य है। यही कारण है कि पुरुषार्थ विचार में धर्म, अथ, काम और मोक्ष का समन्वय किया गया है। जहाँ, एक ओर, धर्म तथा मांश (निवृत्ति) का विचार चलता है वहाँ, दूसरी ओर, अर्थ और काम (प्रवृत्ति) का भी विचार चलता है।

अथ

यह पहले ही कहा जा चुका है कि संस्कृत भाषा में 'अथ' शब्द कई सन्दर्भों में प्रयुक्त किया जाता है। जसा कि गोखले ने लिखा है अथ में साधारणतः तात्पर्य लिया जाता है समृद्धि तथा सांसारिक पक्ष की प्राप्ति सुविधा लाभ धन, व्यापारिक जीवन का परिणाम, व्यापारिक विषय वस्तु तथा राय, निया और मूल्यसः। विधि (Law) के सन्दर्भ में अथ से तात्पर्य है प्रतिवादा, अभियोग तथा प्रायतःपत्र अथवा याचिका (Petition) सः। इस प्रकार, अथ शब्द के अनेक अर्थ हैं। ऋग्वेद के आधार पर पुरुषार्थ के सन्दर्भ में, अथ का तात्पर्य उन पार्थिव वस्तुओं से है जिनकी गृहस्थी चलाने परिवार बमान तथा धार्मिक कृत्यों का सम्पादन करने में आवश्यकता पड़ती है^१। अथ का एक अर्थ उस वस्तु अथवा उन वस्तुओं से है जिनकी इन्द्रियो द्वारा अनुभूति की जा सके^२। जिन वस्तुओं की इन्द्रियो द्वारा अनुभूति की जा सकती है वे हैं रूप रस गंध, स्पर्श और शब्द। प्रभू के अनुसार, पुरुषार्थ के सन्दर्भ में अर्थ से तात्पर्य लिया जा सकता है उन सभी उपकरणों से जो सांसारिक समृद्धि की प्राप्ति के लिए आवश्यक हैं। प्रभू ने धन और सत्ता को सांसारिक समृद्धि का प्रतीक माना है^३।

धन की भांति, अथ की धारणा का विकास विभिन्न सामाजिक ऐतिहासिक परिस्थितियों तथा सन्दर्भों में हुआ है और इसकारण, उसे अनेक रूपों में व्यक्त किया गया है। वेदा में मानिक तथा समृद्ध जीवन की एक सतत अभिलाषा व्यक्त की गई है। ऋग्वेद की ऋचाभा तथा उपनिषदा की प्राधनाभा में धन धारणा की वृद्धि, सांसारिक समृद्धि शतायु होन की अभिलाषा, गायो तथा घोड़ों की वृद्धि, सत्तान की समृद्धि तथा सुखी जीवन की याचना की प्रायनायें मिलती हैं^४। जब जनक ने याज्ञवल्क्य से यह जानना चाहा था कि वे धन तथा पशु की कामना पसन्द करते हैं

1 गोखले, बी० जी० वही पृष्ठ 51

2 इन्द्रियेभ्य परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च पर मन

मनसस्तु परा बुद्धिबुद्ध्यात्मा महान पर — ब्रह्मोपनिषद् बह्वली 3, अ० 1

3 प्रभू पी० एच० वही 79-80

4 यजुर्वेद— 1० 18, १० 77 म० स० 1 से 80

प्रश्नोपनिषद् द्वितीय प्रश्न— मंत्र 8 से 13,

द्वितीय मुण्डक प्रथम खण्ड, तृतीय मुण्डक प्रथम खण्ड, एतरोपनिषद्

द्वितीय खण्ड, तत्तरोपनिषद्— गीशावल्ली, तृतीय अनुवाक

सामवेद-पूर्वाचिक पृष्ठ खण्ड जाग्नेयखण्ड, ऐन्द्रखण्ड, उत्तराचिक प्रथम खण्ड

या शास्त्राथ में विजय को तो याज्ञवल्क्य ने दोनों की कामना प्रकट की थी । ऋग्वेद में धन के लिये रथि शब्द आया है जिसका तात्पर्य पशु, भोजन सत्तान वासस्थान तथा प्रचुर आजीविका से है । उपनिषदा में भी जीवन के उच्चतम उद्देश्य की पूर्ति के लिये मासार्थिक पदार्थों की प्राप्ति की कामना की गई है ।

महाभारत में यह कहा गया है कि यही जिस धर्ममय्या जाता है वह नितांत धन पर ही आधारित है । जो किसी का धन छीनता है वह धन के साथ-साथ उसका धर्म भी छीन लेता है । निधनता पाप है । सभी प्रकार के मत तथा धार्मिक कर्मों का मूल धन ही है । धन से धन की वस ही प्राप्ति होती है जम हाथिया द्वारा हाथिया को पकड़ा जाता है । धार्मिक कृत्या मुक्त हय, साहस, शोध और शिद्धता का आधार धन ही है । धनहीन के लिये धार्मिक कृत्या की माधनता दुष्कर है क्योंकि धन धार्मिक कृत्यों का वम ही स्यात है जस सरिताओं का स्यात पवनो में है । कौटिल्य के अनुसार, दान तथा एषणाओं की पूर्ति धन पर निर्भर है धन, धन की सर्वाधिक महत्ता है । राज्य के चार मुख्य कर्तव्य हैं—उपाजन करना उपाजना का सुरक्षित रखना, उनमें निरंतर सुधार तथा बद्धि करना और उनसे उत्पन्न होने वाले लाभ को उनमें वितरित करना जो उस पान के दास्य तथा अधिकारी हों । कौटिल्य अविश्वकी वराग्य का विरोधी है क्योंकि जनसाधारण में वराग्य की प्रवृत्ति आर्थिक उत्पादन का अवबद्ध करती है । उसने तो यही तक कहा है कि जो समाज तथा परिवार की भाग को पूरा किये बिना वराग्य का अपनाता है उस राज्य द्वारा दंड मिलना चाहिये । अपने अध्यात्म में कौटिल्य ने यही तक लिखा है कि साम्राज्य के गाँवों में समासिध के आन की अनुमति नहीं होना चाहिये क्योंकि गाँव में उनकी उपस्थिति में ग्रामीणा की आर्थिक क्रिया में बाधा पड़ती है । पंचतंत्र और हितोपदेश जो जनसाहित्य की परम्परा में आने हैं में भी अथ परम्परा पर उनका ही आर दिया गया है जिनका कि शास्त्रा में । शास्त्र द्वारा पंचतंत्र से उद्धृत अथा के अनुसार, धन मनुष्य का सर्वाधिक सम्बन्धी है । धन से भोज, विश्वास तथा सत्ता प्राप्त होती है निम्नवर्गी धनवान को आदर मिलता है जबकि उच्चवर्गी धनहीन का लाभ निरादर की दृष्टि से देखते हैं । निधनता अशिमान है और मनुष्य में भी बुरी है बिना धन के मनुष्य भी बरार हा जाने हैं धनहीनता सभी बुराईयों की जड़ है निम्नवर्गी का जीवन जोषित तक मरतन के समान है । क्या सरितागर में कहा गया है कि धन का उद्देश्य है मुक्त जिण धन से मुक्त न प्राप्त हा वह बरार है । धन केवल सत्ता में ही नहीं प्राप्त हाता है धन के लिये प्रयास जायत्यक है धन केवल सभी का प्राप्त हाता है जो परिश्रमी, साहसी तथा विद्वानी है ।

इसीप्रकार, शुक्रनीतिसार म भी, ग्रथ परम्परा को धनाजन के सद्भ मे व्यक्त किया गया है । शुक्रनीतिसार के लेखक के अनुसार, जिस पुरुष के स्त्री, सत्तान तथा मित्र है उसके लिये दैनिक धनापाजन उचित है । दान के लिये धन आवश्यक है । बिना दान और वन व मानव जस्तित्व का महत्व ही क्या है ? प्रत्येक को भविष्य के लिये धन सचय करना चाहिये । जब तक किसी के पास धन है, तभी तक उसका सम्मान होता है । धनहीन व्यक्ति वह चाहे कितना ही योग्य क्या न हो, स्त्री तथा सत्तान द्वारा त्यागा जा सकता है । इस ससार म धन ही सारे पुत्रपार्थो की जड है । अतः, वध उपाय से धनाजन करना उचित है । शुक्रनीतिसार म विद्या सेवा शीघ्र, कृषि व्यापार, शिल्प तथा शिल्पकारिता और यहा तक कि मिश्राटन धनाजन के वध उपाय माने गए है¹ ।

धन का उपाजन और सचय तथा उससे मिलने वाला इहलौकिक कल्याण भारतीय विष्णुपत हिन्दू विचार म व्याप्त है । हिन्दू विचार मे धन की वाछनीयता कई प्रकार म व्यक्त का गई है । इस वाछनीयता के प्रमाण हैं व शब्द जिनके माध्यम से इस व्यक्त किया गया है । धन वह है जो मनुष्य की पूजा (धनम) और 'द्रव्य' हो, जो उपाजिन (वित्त) हो, जिसका व्यक्ति विनियोजन (स्वपातय) कर सक, जो सचय (अय) का परिणाम हा, जो विभव' का स्रोत और 'भोग्य' हो और जो हस्तान्तरणीय (Transferable) होने क कारण व्यवहाय हा अर्थात् जो विवाद (Dispute) तथा मुकदमबाजा (Litigation) का कारण हा² । धन को हिरण्य कहा गया है जिसके अर्थ है—सोना चादी सोने का बना बतन, मूल्यवान धातु धन, सम्पत्ति तथा कौडी इत्यादि³ । वैदिक साहित्य म पशु को धन का मुख्य साधन माना गया है किन्तु पाली म लिखे बौद्ध ग्रंथ मिलिन्द पथ म धन की श्रेणी म जिन वस्तुना का रक्त्वा गया है उनम पशु का उल्लेख नहा है जो इस तथ्य का प्रमाण माना जा सकता है कि बौद्धकाल म धन का पशुपाल्य (Pastoral) आधार समाप्त हो गया था । बौद्ध ग्रंथो म कृषि और व्यापार का वत्त (आर्थिक क्रिया) का आधार माना गया है । महाभारत म भी वत्त को ससार का मूलाधार माना गया है । जब तक राजा वत्त को साध रहता है सभी कुछ मुचारूप म चला करता है । कमण्डक नीतिशास्त्र म यह कहा गया है कि वत्त के बिना स के साथ साथ ससार का भी विनाश हो जाता है । धर्मशास्त्रो म कृषि, पशुपालन औद्योगिक कलाया व्यापार तथा ऋण देने का वत्त के आधार कहा गया है⁴ ।

1 गोपले बी० जी० वही पृष्ठ 54

2 वही

3 आपटे, बी० एस० वही

4 गोपले, बी० जी० वही पृष्ठ 55

एतिहासिक सादभ म विचार करन पर, अथ परम्परा म कई विचार प्रवाह एक साथ प्रवाहित हाते हुए दिखाई पडत हैं । पहला ज्या-ज्यो उत्पादन बढता गया और प्रौद्योगिकी का विकास होना गया अथ की धारणा अधिक व्यापक होती गई । बर्दिक काल म धन पगु म केंद्रित समझा जाता था किन्तु बौद्धकाल म कृषि तथा व्यापार का धन का केंद्र समझा जान लगा । दूसरा, प्राचीन ग्रन्था म धन की समष्टिवादी धारणा प्रतिपादित की गई है जबकि पञ्चतन्त्र तथा हितोपदेश जस जन वाता वाते ग्रन्था म व्यक्ति का धनाजन तथा समृद्धि का मुख्य केंद्र माना गया है । तीसरा, एक ओर धन का वित्त, स्वपातेय भाग्य तथा व्यवहाय माना गया है और, दूसरी ओर, विलास, वैभव तथा शिवाव की भत्सना की गई है¹ । चौथा, उत्पादन म लगे वर्गों की सामाजिक प्रतिष्ठा का सतत ह्रास हुआ है² । इन विभिन्न तथा परस्पर विराधी विचार प्रवाहा का परिणाम यह हुआ है कि भारत म धन का धारणा म गर आर्थिक विचारों का समावृण हुआ और सारी धन परम्परा इहलौकिक होते हुए भी पारलौकिकता की ओर उन्मुख हुई ।

अथ की धारणा क साथ साथ त्याग तथा वराग्य की भावना क्या आई ? अथ विचार म इहलौकिक विचारा क साथ-साथ, पारलौकिक विचारा का समावेश

- 1 मनु ने दिलावटी तथा अनावश्यक व्यय की भत्सना की है और शुक्र ने अपध्ययी को राज्य से निकाल दन का विधान किया है । विधि निर्माताओं ने साधारणत धनियों द्वारा किए गए अप-पय के लिए कड़े दण्ड का विधान किया है । इसका स्पष्टीकरण यह दिया जाता ह कि भारत में अथ परम्परा धम प्रधान रही ह, अथ नीति पर आधारित रहा ह न कि केवल भोग पर, मानव क्रियाओं का केंद्र मानव रहा ह न कि धन, और हिन्दू विचार तथा सस्कृति धर्म-मूल (कतव्या-मुख) रहे ह । यहाँ अथ की केवल एक उपकरण के रूप में स्वीकार किया गया ह क्योंकि अथ का उद्देश्य धमसाधना ह । धम के माध्यम से अथ और अथ क माध्यम से धम की साधना, हिन्दुत्व का मुख्य उद्देश्य है । इसी कारण, हिन्दुत्व में अथ की धारणा गर आर्थिक आधारों पर की गई ह ।
- 2 बौद्ध ग्रन्था में उच्च तथा निम्न जातियों का बटुपा बलन मिलता ह । निम्न जातियों के वर्गों में साधारणत आग्नेय, जाल लगाकर गिकार करना धमड़े क काम, कुम्हारी, चाँस के काम, कपडा-बुनाई तथा नाई के काम को रक्ता गया है । धमशास्त्रों में उत्पादक वर्गों, वन्द्य तथा गूड को निम्न सामाजिक प्रतिष्ठा प्रदान की गई ह । वन्द्य तथा गूड वर्गों के प्रति द्वय बर्दिक काल से घसता रहा ह । बौद्धिक के अनुसार, राज्य ऋष चाहे तब वर्णों को समाप्त करने का उसे अधिकार है । गूडों को प्रारम्भ से ही अन्य वर्गों का सेवक माना गया ह—गोतले वही पृष्ठ 56

क्यों हुआ ? इसका उत्तरदायी धर्म को ठहराया जाता है। इसमें कोई सदेह नहीं कि हिंदू विचार की धर्मप्राणता ने ही अर्थ की धारणा में पारलौकिकता का पुट दिया है। किंतु यहाँ प्रश्न उठता है कि धर्म में ही पारलौकिकता का समावेश क्यों हुआ ? इसका एक उत्तर रहस्यात्मक तथा आध्यात्मिक है। इस उत्तर के अनुसार, जहाँ उच्चतम उद्देश्य माक्ष है, वहाँ पारलौकिकता का विचार अवश्यभावी है। दूसरा उत्तर सामाजिक ऐतिहासिक है। सामाजिक ऐतिहासिक दृष्टिकोण से, भारतीय समाज की पुनरावृत्त विपन्न परिस्थितियाँ, आर्थिक पृष्ठभूमि तथा वगैरे सघष ने यहाँ के पारलौकिक विचार को स्थायी रूप से जन्म दिया। मौर्य साम्राज्य के विकास तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार के आदिवासी समाज के विशृंखलन ने, पारलौकिक विचारों वाले सामाजिक आंदोलन, बुद्धवाद तथा जनवाद को जन्म दिया। गुप्त साम्राज्य के विशृंखलन से जो विपन्न परिस्थितियाँ अस्तित्व में आईं उन्होंने वेदाती विचारधारा को जन्म दिया, इस्लामी सघात से हिंदू समाज में जो परिस्थितियाँ आईं उनके प्रभाव से पारलौकिक विचारधारा वाले दक्षिणा तथा भक्ति आंदोलन का आविर्भाव हुआ और वर्तमान समय में अंग्रेजी राज्य के माध्यम से योरोपीय सघात ने गांधीवाद को जन्म दिया।

वृत्तिक युग ब्राह्मण क्षत्रिय सघष का युग है। बुद्धवाद क्षत्रिय सर्वोपरिता का परिचायक है लेकिन बुद्धवाद का ह्रास ब्राह्मणों की पुनर्विजय का। बौद्ध तथा जैन आंदोलनों को क्षत्रिय वश्य तथा शूद्रों से प्रोत्साहन मिला। किंतु धर्मशास्त्रों के युग में, ब्राह्मण क्षत्रिय सघष समाप्त हो गया था और ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वश्य शूद्र के विरुद्ध संगठित हो गए थे। यह संगठन एक प्रकार की संधि थी जिसमें ब्राह्मणों का पौरोहित्य काय से उत्पन्न धार्मिक सत्ता मिली और क्षत्रियों को राजनतिक सत्ता। भारत की विशालता और प्रजातिक तथा सांस्कृतिक भिन्नता ने यहाँ व परिस्थितियाँ उत्पन्न की जिनमें साम्राज्य स्थापन का प्रोत्साहन मिला। भारतीय इतिहास में साम्राज्य स्थापकों का तब तक मघष चलता रहा जब तक कि अंग्रेजों ने उसे एक राज्य-राज्य में न बाध दिया। साम्राज्य के मुख्य आधार हैं अतिरिक्त उपज जो कर के रूप में ली जाती है सेना नौकरशाही तथा सम्राट के प्रति जन भक्ति। भारत एक वृद्धिप्रधान प्रदेश रहा है। वृद्धि पर आधारित ग्रामीण सामाजिक संगठन, जो मौर्य काल में अस्तित्व में आया न निष्प्रवाह आर्थिक व्यवस्था को जन्म दिया। धातुओं की कमी ने प्रौद्योगिकी के स्तर का नीचा रखता। इसका परिणाम यह हुआ कि उत्पादन का स्तर कम रहा। एक ओर उत्पादन का स्तर कम रहा और दूसरी ओर उसी निम्न उत्पादन स्तर पर सामान्य खड़े होते रहे जिसका अधिकतर भार वश्यों तथा शूद्रों का बहन करना पड़ा। ऐसी दशा में, जन भक्ति लाने के लिए सम्राटत्व का दबी अवगुठन में लपेट दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि उत्पादन का एक बड़ा भाग राज्य, सेना तथा नौकरशाही पर खर्च होता रहा

जिसके परिणामस्वरूप, एक ओर, जन दारिद्र्य बढ़ा और, दूसरी ओर, राजसी बभव तथा एश्वय । अथ परम्परा में व्याप्त पारलौकिकता का पुट जन-दारिद्र्य से उत्पन्न विपन्नता की मानसिक अभिव्यक्ति है । लेकिन, यह केवल एक स्पष्टीकरण है न कि एक अंतिम सिद्धान्त ।

हिंदू विचार परम्परा में, अथ सम्बन्धी प्रवृत्तिमार्गी विचारों को इहलौकिक जीवन की शारीरिक तथा मानसिक आवश्यकताओं के आधार पर स्पष्ट किया गया है और निवृत्तिमार्गी विचारों को आध्यात्मिक आवश्यकताओं के आधार पर । राधाकृष्णन द्वारा प्रस्तुत अथ की व्यवस्था इसी परम्परा में आती है । राधाकृष्णन के अनुसार, अथ का सम्बन्ध मानव जीवन के आर्थिक तथा राजनैतिक पक्षों से है । अथ से अधिकार तथा समद्विलिप्ता की लालसा शांत होती है । सम्पत्तिलिप्ता मानव की एक आधारभूत एपणा है जिसकी अभिव्यक्ति अथ के माध्यम से होती है । धन तथा सुख की प्राप्ति के लिए प्रयत्न, एक उचित मानव आकांक्षा है । लेकिन इनसे आध्यात्मिक मुक्ति तभी मिलेगी जब ये प्रयत्न धर्मोन्मुख होंगे । अजन तथा भोग की स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए हमारे लिए यह आवश्यक है कि हम अपनी इच्छा को किसी सीमा तक सीमित करें । आध्यात्मिक मुक्ति के लिए, मानव जीवन का नियमन आवश्यक है । धर्म नियमन का माध्यम है और अथ आध्यात्मिक मुक्ति का एक साधन । अतः, अथ धर्म पर आधारित है । धर्म इहलौकिक भी है और पारलौकिक भी । इसकारण धर्मोन्मुख अथ एक ओर, इहलौकिकता का साधन है और, दूसरी ओर पारलौकिकता का^१ ।

३

काम

काम तीसरा पुरुषार्थ है । अथ की भांति काम को जहाँ, एक ओर, इहलौकिक जीवन का एक आधारभूत साधन माना गया है, वहीं दूसरी ओर, काम को निवृत्ततम पुरुषार्थ मानकर, उस त्यागन की प्रेरणा दी गई है । साथ ही साथ, यह भी सत्य है कि हिंदू विचार-परम्परा में काम को धर्म साधन का एक आवश्यक उपकरण भी माना गया है—यह उपकरण जिसकी अकहेतना प्रभावनीय है । अथ के साथ साथ, काम भी आध्यात्मिक मुक्ति की प्रक्रिया में आवश्यक याग देता है । अतः, काम को भी धर्मोन्मुख तथा धर्मप्राण बनाने का प्रयास किया गया है । हिंदू विचार परम्परा में, अथ-परम्परा

की भाँति, काम परम्परा भी इहलौकिकता तथा पारलौकिकता की विचार लहरियों पर हिलकार खाती रही है। लेकिन, काम सम्बन्धी इहलौकिक तथा पारलौकिक विचार परम्पराओं, उनके उदगम स्रोतों तथा उनके सम्बन्धों पर विचार करने से पहले, काम की धारणा तथा जीवन में उसकी -पावहारिक अभिव्यक्तियों की व्याख्या करना आवश्यक है।

आप्ट न काम शब्द के जो अर्थ दिए हैं वे इस प्रकार हैं—अभिलाषा, इच्छा (एषणा), अभिलाषा पात्र, अनुराग तथा प्रेम, इन्द्रिय उपभोग के प्रति अभिलाषा या लगाव, जिसे चार पुरुषार्थों में से एक माना गया है सम्भाग स तुष्टि की अभिलाषा, इन्द्रियता, कामदेव¹, रेतस, एक प्रकार का आम का पेड़। इन सभी अर्थों के सारांश के रूप में काम से तात्पर्य निकलता है इन्द्रिय सतुष्टि की अभिलाषा से। इन्द्रिया है दस—कान, त्वचा, चक्षु (आँख), जिह्वा, नासिका पायु (गुदा) उपस्थ (जननेन्द्रिय) हस्त (हाथ), पाद (पंज) तथा वाक (बाणी)। इनमें पहली पाँच ज्ञानेन्द्रिय (बुद्धीन्द्रिय) कही गयी हैं और शेष कर्मेन्द्रिय क्योंकि पहली पाँच इन्द्रियों द्वारा जीव को प्रतिबाध होता है अर्थात् उसे अपने पर्यावरण का ज्ञान होता है और शेष इन्द्रियों द्वारा जीव कमरत रहता है। किमी किसी ने मन को भी एक इन्द्रिय माना है और मन को इन्द्रिय मान लेने से इन्द्रियों की संख्या ग्यारह हो जाती है। लेकिन अधिकतर मायता इसी पक्ष में है कि मन इन्द्रियों का राजा है²। इन्द्रियों से जीव की जविक आवश्यकताओं

1. हिन्दू मायता में काम के देवता की कल्पना की गई है जिसे काम या मदन भी कहा जाता है। हिन्दू पौराणिक परम्परा में काम को कृष्ण तथा दक्षिण की सन्तान माना गया है। उसकी पत्नी ह रति। देवताओं के प्रायना करने पर, काम ने शिव की तपस्या भंग की थी ताकि शिव पावती की ओर आकृष्ट हों और शिव-पावती के समागम से उत्पन्न पुत्र, देवताओं को कष्ट देने वाले राक्षस, तारक का वध करे। किंतु, काम की घट्टता से क्रुद्ध होकर शिव ने अपने तीसरे नेत्र की शक्ति से उसे जलाकर साक कर दिया। रति के प्रायना करने पर शिव ने काम के पुनजन्म का वर दिया जिसके फलस्वरूप काम का जन्म प्रद्युम्न के रूप में हुआ। काम का सगा मित्र वसन्त ह और धनुष बाण उसके अस्त्र अस्त्र ह। काम के धनुष की प्रत्यक्षा मधुमखिलियों की पवित से बनी ह और उसके बाण फूलों के ह—आप्टे वही पृष्ठ 143

2. तत्तरीयोपनिषद बल्ली 2, अनुयाक 3, "आत्मानोमय । तेनपूण "।

आत्मान रयिन विद्धि शरीर रयमेव च

बुद्धि तु सारणि विद्धि मन प्रग्रहो व च । कठोपनिषद बल्ली 3, अ० 1, श्लोक 3,

"मनो ब्रह्मति ध्यजानात् । मनसो ह्येव लत्वमानि भूतानि प्रायन्ते ।

मनसा जानानि जीवन्ति । मन प्रयन्त्यभिस विन तीति" । तत्तरीय, प० 3, अनु० 4

की पूर्ति होती है। श्वास लेना, मल मूत्र त्याग, प्रजनन और पर्यावरण का अनुभव जीव का इन्द्रियो द्वारा ही होता है। जबकि आवश्यकता के उत्पन्न होने पर जीव म जो शक्ति प्रवाहित होती है और उससे जो तनाव उत्पन्न होता है उसका निरसन इन्द्रिया द्वारा ही होता है। तनाव के निरसन से जो तुष्टि की अवस्था आती है, उससे सुख का अनुभव होता है। भूख लगना तनाव की स्थिति है लेकिन, भोजन मिलने के बाद, जो तुष्टि की अवस्था आती है, वह सुख की अवस्था है। एक ओर, इन्द्रियो का सम्बन्ध शरीर से है और, दूसरी ओर मन भ्रष्टा मानसिक प्रमेय स। इसी कारण, इन्द्रियो तथा उनकी स्वाभाविक क्रिया को शारीरिक तथा मानसिक सुख का आधार माना गया है। इसी दृष्टिकोण से, साधारणतः, काम का तात्पर्य सुख से लिया जाता है। एक अथ माधारण अथ मे काम मे सम्भोग एषणा या सम्भोग का अथ लिया जाता है किन्तु यह दृष्टिकोण एकांगी है।

प्रभू न काम का मनावितान के सिद्धा तों के सदम मे स्पष्ट किया है। प्रभू के अनुसार, काम से तात्पर्य उन एषणाओं से है जो मानव म भोग और जीवन तथा इन्द्रियो की तुष्टि के लिए हाती हैं। इन एषणाओं म यौन एषणा भी शामिल है जिसके लिए साधारणतः काम शब्द का प्रयोग किया जाता है। इन्द्रिय भोग और एषणाओं के दृष्टिकोण से, काम शब्द का अथ अधिक व्यापक हा जाता है। प्राकृत आवेग (Natural Impulses) मूलप्रवृत्तियाँ¹ (Instincts), मानव एषणाएँ (Desires of Man) और मानव की प्राकृत मानसिक प्रवृत्तियाँ (Natural Mental Tendencies) काम के अंतर्गत आ जाती हैं। काम म व सभी धारणाएँ आ जाती है जिन्हें आधुनिक समाज मनोविज्ञान म अनिलाषाया (Desires), आवश्यकताया (Needs), प्रेरकों (Motives), आंतरिक उद्दीपना (Urges) या चालका (Drives) की धारणाया के माध्यम से व्यक्त किया जाता है। आधुनिक सामाजिक

‘इन्द्रियेभ्य पर मनो’—कठोपनिषद् श्लोकी 3 अ० 2,

- 1) हिन्दी में मूलप्रवृत्ति का शब्द अंग्रेजी शब्द इन्स्टिक्ट (Instinct) के लिए प्रयोग किया जाता है। इन्स्टिक्ट से तात्पर्य लिया जाता है उन जन्मजात प्रवृत्तियों से जो प्राणी के जविक सगठन में निहित होती है और उसके व्यवहार की चालक होती है। मानव-व्यवहार सीला हुआ व्यवहार है। सीला हुआ व्यवहार जन्मजात जविक प्रवृत्तियों से प्रेरित नहीं होता है। मूलप्रवृत्ति का सिद्धान्त जानवरों के व्यवहार पर अधिक लागू होता है। इस कारण, आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान में मूलप्रवृत्ति सिद्धान्त को त्याग दिया गया है। मूलप्रवृत्ति शब्द का प्रयोग यदि किया भी जा सकता है तो केवल जन्मजात जविक एषणाओं के लिए।

मनोविज्ञान में यह माना जाता है कि अपने आधारभूत रूप में मानव एक जीव है। अतः मनुष्य की भी कुछ जैविक आवश्यकताएँ तथा क्षमताएँ हैं। जैविक आवश्यकताओं के कारण, जब जीव में तनाव बढ़ता है और आवश्यकता की पूर्ति के लिए शक्ति उपलब्ध तथा प्रवाहित होती है तो अपनी जैविक क्षमताओं के द्वारा जीव आवश्यकता की पूर्ति करके तनाव को दूर करता है। भूख लगने पर भोज्य की तलाश इसका उदाहरण है। आवश्यकता की सन्तुष्टि से सुख मिलता है। सुख अर्थात् जैविक और अर्थात् मानसिक होता है लेकिन सुख की अनुभूति एक मानसिक प्रमेय है। जैविक आवश्यकता की पूर्ति क्रिया चक्र द्वारा होती है अर्थात् पहले आवश्यकता का अनुभव होता है फिर एपणा का अभ्युदय होता है, फिर उस वस्तु अथवा परिस्थिति की तलाश होती है जिससे आवश्यकता पूर्ण हो जाय और आवश्यकता के पूर्ण होने पर सुख का अनुभव होता है। आवश्यकता की पूर्ति न होने से तैराश्य की भावना आती है। जैसा कि सांस्कृतिक विद्वानों द्वारा लिखा गया है, मानव एक ऐसा प्राणी है जिसकी आधारभूत आवश्यकताएँ अर्थात् जैविक हैं और अर्थात् सामाजिक सांस्कृतिक। जैविक के ही आधार पर सामाजिक-सांस्कृतिक का निर्माण हुआ है। मनुष्य की जैविक आवश्यकताएँ तथा एपणाएँ अर्थात् काम के अंतर्गत आती हैं और अर्थात् धर्म के अंतर्गत और सामाजिक सांस्कृतिक आवश्यकताएँ धर्म तथा मोक्ष के अंतर्गत। मानव की जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति सामाजिककरण के द्वारा होती है जिसके लिए हिन्दुत्व में आश्रमव्यवस्था तथा संस्कार का विधान किया गया है।

इस प्रकार, काम से तात्पर्य मानव की आधारभूत जैविक आवश्यकताओं और एपणाओं से है जिनकी अवहेलना नहीं की जा सकती है क्योंकि बिना उनकी पूर्ति के मानव अस्तित्व ही असम्भव है। काम तपित् वाञ्छनीय है क्योंकि काम तपित् के बिना न तो जीवन और समाज का धारण हो सकता है और न धर्म का। काम की आवश्यकता तथा महत्ता को अनेक प्रकार से व्यक्त किया गया है। महाभारत में कहा गया है कि धर्म अथ और काम की साधना का स्वाभाविक परिणाम है सुख, जिससे अधिक महत्त्वपूर्ण और कुछ नहीं है। सुख वाञ्छनीय है क्योंकि सुख साधना स्व (Self) की एक विशेषता है। सदगुण और लाभ सुख के लिए ही अपनाये जाते हैं। सदगुण सुख का मूल है। सारी क्रियाओं का अन्ततोगत्वा उद्देश्य सुख है¹। सुख, एक आराम की एक विशेष अवस्था है और, दूसरी ओर जीवन का एक आधार। लेकिन, धर्म इन दोनों पहलुओं के साथ, जहाँ सुख इष्टलौकिक है वहाँ पारलौकिक भी। सुख का एक रूप शरीर है और दूसरा मानसिक। हिन्दू विचार में शरीर तथा मन को आवश्यकताओं की महत्ता को बराबर स्वीकार किया गया है जिसका प्रमाण यह है कि काम को जीवन का एक अन्तः मान लिया गया है। काम की एक पुरोपाय

के रूप में कल्पना हिंदू विचार में व्याप्त इसी भावना का व्यक्त करती है कि काम एषणाओं की स्वाभाविक अभिव्यक्ति आवश्यक है क्योंकि उनका दमन सामाजिक तथा मानसिक अव्यवस्थाओं का प्रोत्साहित करता है। धर्म, अथ और मांग के साथ काम के आदम का स्वीकार करने का तात्पर्य ही यही है कि जीवन दान के पारलौकिक तथा दहलौकिक पक्षा का उचित समन्वय हो सके।

हिंदू विचार में जहां एक ओर, काम की महत्ता स्वीकार की गई है और उच्च बात पर भी जोर दिया गया है कि पुण्याय की साधना में काम-साधना एक आवश्यक आधार है वहां, दूसरी ओर इस तथ्य पर भी जोर दिया गया है कि काम केवल एक साधन है। किसी भी दशा में काम साध्य नहीं है। साध्य है माध्य, जिसका सहयोगी है आध्यात्मिक सुख, न कि शरीरी सुख। शरीरी सुख का अपना महत्व है लेकिन वह आध्यात्मिक सुख के मांग को केवल एक सीढ़ी है। शरीरी सुख केवल वही तक वाछनीय है जहां तक वह इन्द्रिय लोभपता का नाश करने तथा आत्मा का प्रबुद्ध करके आत्मा को शरीरी बंधना से छुड़ाने का एक उपकरण है। इसीलिए, काम की आवश्यकता, महत्ता तथा वाछनीयता की कसौटी है धर्म। वही काम वाछनीय है जो धर्मोमुख है। कौटिल्य न काम का वाछनीय माना है न कि कामलानुपता को। कामलानुपता कौटिल्य के अनुसार अपयज्ञ तथा घनहीनता का कारण है। काम लोभपता के ही कारण व्यक्ति चारा गवयां तथा अत्राछनीय पुण्या की नीच सगति में पड़ता है¹। हिंदू विचार में काम वाछनीय तथा आवश्यक भी है लेकिन साथ ही साथ काम मनुष्य का शत्रु भी है²। काम की वाछनीयता का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि काम के बिना प्रजनन सम्भव नहीं है जिसके कारण हिंदू विचार में विवाह तथा गृहस्थाश्रम को आवश्यक माना गया है।

हिंदू विचार में अथ-परम्परा की भांति, काम परम्परा भी द्विभाजी विचारों का विषय रही है। एक विचार परम्परा में काम का आवश्यक माना गया है लेकिन आध्यात्मिक सुख की प्राप्ति के साधन के रूप में। इस परम्परा में काम का धर्मप्राण माना गया है और इसमें काम की व्याख्या आध्यात्मिक आवश्यकताओं के मन्दन में की गई है। मनाविदलपण (Psycho analysis) के सिद्धांतों के दृष्टिकोण से यह विचार-परम्परा काम के उन्नतीकरण (Sublimation) के विचार की परिचायक है। इस विचार परम्परा में आध्यात्मिकता तथा पारलौकिकता का प्राधान्य है और

1 गोलले वी० जी० वही पृष्ठ 76

2 मनुष्य के छ शत्रु माने गये हैं जिनमें से काम एक है। यह शत्रु इन प्रकार है—काम शोध, लोभ, मोह, मद तथा मत्सर (इत्यादि) (प्रभू वही पृष्ठ 80)। ये छ शत्रु जबकि मानसिक प्रमेय हैं और जसा कि मनु द्वारा प्रस्तुत धर्म की व्याख्या से स्पष्ट है, इनका परित्याग धर्म साधना का लक्षण है।

इस पर एक ओर, जहाँ वराह्य तथा सत्यास का प्रभाव रहा है वहाँ, दूसरी ओर गीता के निष्काम कर्मयोग का। धर्म की धारणा में व्याप्त घति क्षमा, दम, अस्तेय इन्द्रिय निग्रह अभ्युदय तथा निश्चयस जसे विचारों का सम्बन्ध इसी विचार-परम्परा से है। यह परम्परा आध्यात्मिक तथा निवृत्तिवादी है। काम सम्बन्धी दूसरी विचार परम्परा एकदम इसके प्रतिकूल है जिसके प्रतिनिधि हैं लोकायत सम्प्रदाय तथा चार्वाक दशन। लोकायत तथा चार्वाक सम्प्रदायों का जीवन दशन नितांत भौतिकतावादी तथा इहलौकिक है। चार्वाक ने वैदिक परम्परा, उसके आध्यात्मिक सिद्धांतों को बर्णनात्मक तथा पुरोहितवाद की भक्तना की और कल्पवाद की यह कहकर हसी उड़ाई कि यदि ज्योतिष्मत् के अनुष्ठान में बलि दिया हुआ पशु स्वर्ग जाता है तो पशु के स्थान पर, बलि देने वाला अपन पिता की ही बलि क्यों नहीं चढ़ाता है। चार्वाक के मत में सारे यज्ञ तथा अनुष्ठान ब्राह्मणों ने अपने स्वार्थ के लिये ढूँढ़ निकाले हैं। चार्वाक के लिए स्वर्ग, नर, ईश्वर और मोक्ष कोरी कल्पनाएँ हैं। समार न तो माया है और न क्षण भंगुर। ससार और मानव जीवन से बढ़कर कोई और सत्य नहीं है। इसलिए मनुष्य का यह धर्म है कि जब तक जिये, मुख से जिये और ऋण लेकर भी घी पिये। यह देह तो भस्मीभूत (नाशवान) है इसका पुनरागमन कहाँ होता है ?' लेकिन, ऐसे विचारों की परम्परावादियों तथा जना और बौद्धों ने बराबर भक्तना की है। तीसरा मत मनु का है जिसमें धर्म अथ और काम के उचित समन्वय पर जोर दिया गया है। मनु के अनुसार, एक आदर्श सम्राट धर्म अथ और काम की उचित महत्ता को जानता है¹। इस प्रकार हिन्दू विचार परम्परा में, एक ओर, काम से उत्पन्न सुख की साधना पर जोर दिया गया है और, दूसरी ओर, उसे एक न्यूनतम शरीरी आवश्यकता मान कर और उसे वराह्य तथा सत्यास की ओर उन्मुख करके, मोक्ष का एक साधन माना गया है। हिन्दू विचारधारा पर पारलौकिकता का इतना प्रभाव रहा है कि काम को यहाँ के अधिकतर विचारकों ने अवाञ्छनीय वाञ्छनीयता का रूप में ही देखा है। इसका परिणाम यह हुआ है कि मानव जीवन में काम की अभिव्यक्तियों के जितने साधन और प्रकार हैं उन्हें जहाँ उचित माना गया है वहाँ, साप ही साथ उन्हें अनुचित भी कहा गया है।

काम के साधनों में नारी का मुख्य स्थान है और इसी कारण काम धारणा सम्बन्धी विचार-परम्परा में नारी-सौन्दर्य के आदर्श और उसके रहस्य का काफी वणन है। नर-नारी के सन्तसर्ग से उत्पन्न सुख का स्रोत विवाहिन प्रेम के आदर्श में माना गया है। यही कारण है कि नारी के आदर्श सौन्दर्य का वणन पत्नी और माँ के रूप में किया गया है। गरुड पुराण में कहा गया है कि बही स्त्री अपने पति की सच्ची पत्नी

1 गोषले, बी० जी० वही पृष्ठ 76-77

2 जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी—गीता

है, जो अपने पति में सीठे ढंग में झोली है, गर्ह-काय के प्रबन्ध में चतुर है, जिसका स्वत्व पति के स्वत्व से मिल गया है और जो अपने स्वत्व का पति के मुख के लिए अर्पित कर देती है। जिस पुरुष को पत्नी चन्दन के रूप से अपने शरीर को मजाती है, नित्यप्रति स्नान के बाद अपने शरीर का इत्रादि से सुवासित करती है, कम धाना खाती है और कम तथा मोटा झोली है सदैव अपने पति में आसक्ति रखती है और अपने पति की प्रजनन इच्छा की पूर्ति के लिए सदाव तयार रहती है तथा गृहस्थी के सुख और समृद्धि के लिए दयामय सदगुणी कार्यों में रत रहती है, वह पुरुष, वास्तव में, मनुष्य नहीं बरन स्वर्ग का देवता है ^१।

हिन्दू विचारधारा में नर नारी के नैसर्गिक विचार का काम का साधन माना गया है। नर नारी का नैसर्गिक विचार ही प्रेम है जिसकी तीन प्रकार की अभिव्यक्ति मिलती है। नर-नारी के प्रेम की एक अभिव्यक्ति है दाम्पत्य-जीवन या गृहस्थाश्रम का साधारण है। इस सन्दर्भ में, रूमानी प्रेम एक सतत अभिलाषा नहीं है बरन् दाम्पत्य-जीवन का पूर्व रूप है। शकुन्तला-दुष्यन्त, मालती-माधव, नल-दमयन्ती और शिव-शक्ति की कथाएँ इसका उदाहरण हैं। इसका दूसरा रूप है एक 'सतत आध्यात्मिक' अभिलाषा का, जिसकी अभिव्यक्ति वृष्ण की लीलाया तथा विद्यापति और चढोनास के गीतों में हुई है। इस सन्दर्भ में, नर-नारी को आदि पुरुष तथा आदि प्रकृति के रहस्यात्मक प्रमेय समझा गया है। नर-नारी का ससग, शरीर तथा आत्मा के नैसर्गिक ससग का खेल है। काम इसी रहस्य की आबन्धक अभिव्यक्ति है जिसकी व्याख्या काम-शास्त्र और तंत्रों में की गई है। सजुराहो के मंदिर में बन कामानि व्यक्त के मूर्ति चित्र इसी रहस्य की कलात्मक अभिव्यक्ति है। साहित्य में इसी रहस्य की शृङ्गारिकता की शली में व्यक्त किया गया है। यही शली भाग चलकर नायिका भेद तथा नख गिख बणन की साहित्यिक परम्परा में प्रस्फुटित हुई। 'गोपी' और 'त्रिपुर सुन्दरी' इसी रहस्यात्मक अभिव्यक्ति में उत्पन्न धारणाएँ हैं।

हिन्दू विचारधारा में शृङ्गारिक अभिव्यक्ति का एक साधारण आध्यात्मिक है और दूसरा इहलौकिक। इहलौकिक शृङ्गारिक प्रेमाभिव्यक्ति का प्रतीक है गणिका। हिन्दू विचारधारा में नारी के दो रूप हैं—एक पत्नी का और दूसरा गणिका का। गणिका नर-नारी के नैसर्गिक विचार की तीसरी अभिव्यक्ति है। 'गोपी' और 'त्रिपुर सुन्दरी' यदि आध्यात्मिक-मुख्य प्रमेयों के धारणात्मक रूप हैं, तो गणिका इहलौकिक रूमानी प्रेम की अभिव्यक्ति का साधन है। गणिका की धारणा अनेक रूपा में अभिव्यक्त हुई है। आम्रपाली, नगरवधू विररूपा और देवनागी उनके मुख्य रूप हैं। हिन्दू विचारधारा में गणिका का एक लम्बा इतिहास है जिसका प्रारम्भ वैदिक काल से होता है। बौद्ध धर्म में गणिका और उनके कृत्या के यहाँ-वहाँ अनेक बणन मिलते हैं। कौटिल्य के

गणिका को समाज का एक आवश्यक अंग माना है और कूटनीति, गुप्तचर और दूतों के कार्यों में उसके महत्व को स्वीकार किया है। ललित, साध ही साध, कौटिल्य ने गणिका के व्यवहार तथा पेशे पर नियंत्रण रखने की राय दी है। वात्स्यायन ने काम सूत्र में गणिका और उसकी कलाओं का विशद वर्णन करके उसके ससग से मिलने वाले सुख का वाछनीय माना है। इस्लामी प्रभाव के अंतर्गत नारी के गणिका रूप को और भी प्राधाय मिले। इस युग में, जसा कि गाखले ने लिखा है, समाज की सुसंस्कृत रुचियों का केन्द्र नतवी, गायिका, वेश्या और गणिका हो गई। संस्कृत नाटका की व्याख्या करते हुए कीच ने लिखा है कि यहा बहुपत्नीत्व की विलासिता के साथ साथ पुरुष के लिए गणिका के ससग की विलासिता भी वाछनीय है। यहा पुरुष की बौद्धिक रुचियों का केन्द्र पत्नी नहीं बरन गणिका है। साहित्य, कला, संगीत, नृत्य और नाटक का बौद्धिक सुख पुरुष को गणिका और उसके सहयोगियों के ससग से मिलता है।

इसी सन्दर्भ में, हिंदू विचारधारा में व्याप्त नारी के प्रति द्विविधापूर्ण विचारों को समझा जा सकता है। नारी एक ओर, पत्नी है पुरुष की पूरक तथा अर्धांगिनी है और, दूसरी ओर, प्रेमिका है। प्रेमिका के रूप में, एक ओर नारी प्रतीक है एक सतत रहस्यात्मक अभिलाषा की, पुरुष के प्रति सतत आकर्षित प्रकृति की या चतन्य को आवृष्ट करने वाली माया की और दूसरी ओर, गणिका अथवा इष्टौविक प्रेमिका की—वह प्रेमिका जो पुरुष के बौद्धिक उद्दीपन का सबल है। पत्नी के रूप में नारी केवल त्याग तथा तपस्या की मूर्ति है उसका स्वत्व केवल पति में है। पतिव्रता का आदर्श ही यही है कि मन वचन, काम से पत्नी अपने को पति में लीन कर दे और अंधे, बहरे, क्रोधी तथा दीन पति का भी अपमान न कर। कथा में ऐसी पतिव्रता का भी वर्णन मिलता है जो अपने पति की इच्छा पूर्ण करने के लिये उसे वेश्या के पास ले गई थी। किंतु, गणिका के समक्ष पुरुष का स्वत्व नहीं है। हिंदू विचारधारा में पत्नी और प्रेमिका अलग-अलग रही हैं। यही कारण है कि जहाँ नारी पत्नी है मा है पूज्य है, वहाँ वह प्रमदा भी है। जहाँ, एक ओर, नारी नर की खान है वहाँ, दूसरी ओर वह नरक का द्वार भी है। गणिका को भी, एक ओर, वाछनीय माना गया है किंतु दूसरी ओर उसकी भत्सना की गई है। मनु ने गणिका को चोर और ठगों की श्रेणी में रक्खा है। गौतमधर्मशास्त्र में यह कहा गया है कि गणिका की हत्या करने वाले को कोई पाप नहीं लगता है और न वह किसी दण्ड का भागी ही होता है। संगीत तथा नृत्य का सम्बन्ध गणिका से रहा है। अतः, उसे भी अवाछनीय माना गया है। धर्मशास्त्रों में यह भी विधान है कि गणिका तथा अभिनता की साक्षी (गवाही) अमाय है।

काम-परम्परा की विचारधारा ने साहित्य में सुवानुभूति की अभिव्यक्ति के लिये रस सिद्धांत को जन्म दिया। सौंदर्य सुख का उद्दीपक है। अतः सौंदर्यशास्त्र का काम परम्परा की विचारधारा के अंतर्गत रखा जा सकता है। कविता, नाटक, चित्रकला, संगीत और वस्तुकला इसी के अन्तर्गत आते हैं। सौंदर्य-सुख सिद्धान्त का आधार है रस सिद्धांत। रस से तात्पर्य है मानव-मस्तिष्क में निहित भाव-प्रकारों से। मुख्य रस हैं आठ—शृंगार, हास्य, करुणा, रोद्र, वीर, भयानक, वीरभक्त और अद्भुत। शास्त्र रस सम्भवतः जैना और बौद्ध द्वारा निर्धारित किया हुआ है। रस की अभिव्यक्ति ध्वनि द्वारा होती है। लेकिन, रस की अनुभूति के लिये रसिक का होना आवश्यक है क्योंकि रस से उत्पन्न सुवानुभूति मानव-मस्तिष्क की वस्तु है। हिन्दू विचारधारा में प्रतिपादित रस सिद्धांत इन बातों का प्रमाण है कि यहाँ सौंदर्य-सुख का जीवन का एक अंग माना गया है किन्तु, साथ ही साथ उस अवाञ्छनीय भी। बौद्ध विचारों के सदस्या के लिये संगीत तथा वाद्य संगीत सुनने की तथा नृत्य, नाटक (यहाँ तक कि कथयुक्तियों का समाप्ता तक) देखने की मनाही थी। धर्मशास्त्रों में कला सम्बन्धी पन्ना का हेतु मानने की प्रवृत्ति मिलती है¹।

काम के अर्थ साधनों के प्रति भी, इसी प्रकार द्विविधापूर्ण विचारधारा मिलती है। अनेक साक्षियों के आधार पर गोखले ने यह दिखाया है कि सुन्दर भोजन तथा वस्त्र, पेय, सुवासित अंगराग, अलंकार आदि, संगीत तथा अर्थ कलाओं और त्योहारों पर मनाई जाने वाली खुशियाँ हिन्दू जीवन का आधारभूत अंग रही हैं। समाज, गोष्ठी तथा आपानक का वर्णन मिलता है। समाज से तात्पर्य है एक प्रकार के क्लब जैसे सगठन में जहाँ कविता पाठ, नृत्य तथा संगीत का आयोजन होता था। गोष्ठी से तात्पर्य उस सगठन से है जहाँ साहित्य तथा कला सम्बन्धी विषयों की चर्चा होती है और आपानक से तात्पर्य है उस पार्टी से जो मंदिर-भवन के लिये जादाचित्त की गई हो। ये तथ्य इन बातों के प्रमाण हैं कि जीवन में भौतिक सुखों की साधना एक अवाञ्छनीय आवश्यकता है। लेकिन, साथ ही साथ, हिन्दू विचार में इन तथ्यों पर भी जोर दिया गया है कि 'शरीर नश्वर है, समार माया है, सभी कुछ अस्थिर है, मानव-जीवन में शरीर नहीं आत्मा अधिपत्यस्वर है। विषयागतिक से उत्पन्न सुख की अनुभूति कम ही है जब हृदय चवाने वाले कुत्तों के मुँह से निकलने वाले मूत्र के स्वाद में कुत्तों का होती है। यह अवश्य है कि हिन्दू विचार में गन्ध्याश्रम का धर्म आश्रम का आधार माना गया है और उसकी महत्त्वात्ता गई गई है। लेकिन, साथ ही साथ इन तथ्यों पर भी जोर दिया गया है कि गन्ध्याश्रम केवल साधन है, साध्य नहीं। काम पुण्यार्थ है अर्थात् ऐकिक काम ही श्रेयस्वर नहीं है। मानव जीवन का साध्य है निष्काम काम—वह काम जो आवश्यक है, जिसकी अज्ञानता नहीं

की जा सकती किन्तु जिसके परिणाम के प्रति कर्ता की आसक्ति न हो। इसीलिये, उपमा के तौर पर कहा गया है कि मनुष्य को इस ससार में बसे ही रहना चाहिये जस पानी में कमल रहता है।

हिन्दू विचार में अथ तथा काम सम्बन्धी विचारधारा इहलौकिक भी है और पारलौकिक भी। वदो में जिस मानव जीवन को उत्पत्ता की गई है, वह इहलौकिक है। पुराण तथा उपनिषदों पर पारलौकिक विचारधारा का प्राधान्य है। बुद्धवाद को एक प्रकार से इहलौकिक पारलौकिकता का हामी है क्योंकि बुद्धवाद में, जहाँ, एक ओर, इस जन्म के कर्मों पर जोर दिया गया है, ईश्वर की सत्ता को अस्वीकार किया गया है, वहाँ, दूसरी ओर, आवागमन को माना गया है, इन्द्रिय निग्रह, अस्तेय और दम पर जोर दिया गया है, सभी कुछ शून्य माना गया है और मानव जीवन का सर्वोत्कृष्ट साध्य माना गया है कर्तव्य अथवा मोक्ष। गीता में भी इसी इहलौकिक पारलौकिकता के विचार का प्राधान्य है। वदान्त दर्शन भी पारलौकिक विचारधारा से प्रोत्पन्न है। शंकराचार्य का शिववाद और कालांतर में उत्पन्न होने वाला भक्ति आन्दोलन भी पारलौकिक विचारधारा से प्रभावित है। महात्मा गांधी द्वारा प्रतिपादित सत्याग्रह तथा सत्याग्रही की धारणाओं पर सत्तोपन्द्रिय निग्रह अस्तेय और दम की विचारधाराओं का प्रभाव है। इस प्रकार, हिन्दू विचारधारा, एक ओर, इहलौकिक रही है और, दूसरी ओर, पारलौकिक। जसा कि पहले कहा जा चुका है गोखले के अनुसार, भारतीय इतिहास में बार बार उत्पन्न होने वाली सकटापन्न तथा विषम परिस्थितियों ने हिन्दू विचार को पारलौकिक बना दिया है। लेकिन यहाँ प्रश्न उठता है कि क्या हिन्दू विचारधारा में व्याप्त पारलौकिकता का विचार कर्त्तल इतिहासज्ञ है या, उसका कोई सामाजिक मनोवैज्ञानिक महत्व भी है। इस प्रश्न पर विचार करने के लिये चौथे पुरुषार्थ अर्थात् मोक्ष की व्याख्या आवश्यक है।

४

मोक्ष

मोक्ष शब्द का प्रयोग कई अर्थों में होता है जिनमें से मुख्य हैं—विमोचन छुड़ाना पलायन, स्वतंत्रता, उद्धार, प्रत्यक्ष अपण, मृत्यु छोड़ना अथवा पतन, गिरना बिखेरना, दायित्व निभाना, ग्रहण की समाप्ति और जन्म तथा मृत्यु के चक्र से छुटकारा पाना। किन्तु पुरुषार्थ की धारणा में मोक्ष का तात्पर्य है आवागमन से छुटकारा पाना। हिन्दू विचार में सारा ससार ईश्वर अथवा ब्रह्ममय है। जीव उसी ईश्वर का अंश है। अद्वैतवादी दर्शन में जीव ईश्वर का वह अंग है जो माया से आवृत्त है। जीव ईश्वर से उत्पन्न हुआ है और ईश्वर में लीन होने की उसमें प्रवृत्ति है। शरीर

नद्वय है किन्तु आत्मा अमर है। ईश्वर म लीन होने के लिये जीव के लिये कम आवश्यक है। अपन कर्मों से ही जीव माया के बंधना को तोड़कर ईश्वर म लीन हो सकता है। ससार म चौरासी लाख योनिया हैं और अपन कर्मों के अनुसार ही जीव किसी न किसी यानि मे जन्म पाता है। हिन्दू के लिए, एक आर, सभी योनिया के जीवों मे समानता है और, दूसरी ओर, मानव जीवन एक सतत प्रक्रिया का परिणाम है। मानव जीवन दुर्लभ है, वह सत्वर्गों के प्रयास से ही मिलता है। मानव यानि धार्मिक उद विकास का चर्मोत्पन्न है। हिन्दू के लिये जीवन का भूत, वतमान और भविष्य अलग अलग नहीं है—वे एक प्रक्रिया और नरतय म बंध हैं। मानव जीवन एक बह अवसर है जिसम रत्कर जीव जन्म तथा मयु के बंधना म छुटकारा पा सकता है। अर्थात् जीव ईश्वर म लीन हो सकता है। अत मानव जीवन एक सत्रमण की अवस्था है जिसम घमानुसार जीवन व्यतीत करके जीव अभ्युदय और निश्चयस की आर जा सकता है। शरीर के साथ-साथ ममार भी नद्वय है। अत मोक्ष वह अवस्था है जहा जीव एक ओर, ससार के बंधना से मुक्त हो जाता है और दूसरी ओर, वह ईश्वर म लीन हो जाता है। माक्ष वह अवस्था है जहा जीव के लिये कम की आवश्यकता नहीं रह जाती है। मत्यु माण का मा माण की आर अग्रसर होने का एक माध्यम है। वैभक्तिज्ञ ज्ञान के दृष्टिकान से माण, धम अथ और काम का स्वाभाविक परिणाम है। धम, अथ और काम जीव को समाज मे बाधने हैं किन्तु मोक्ष इनसे छुटकारा दिलाता है। अथ और काम सामाजिक हैं किन्तु माक्ष वैयक्तिक।

माण की धारणा रहस्यात्मक और आध्यात्मिक है। मोक्ष की धारणा का सम्बन्ध इस आधारभूत प्रश्न मे है कि जीवन का अन्ततोगत्वा उद्देश्य क्या है और जीव का ससार तथा उस रहस्यात्मक गतिन म क्या सम्बन्ध है जिसके लिये हिन्दुत्व मे नति शा का प्रयोग हुआ है। सभी प्राणिया म केवल मनुष्य ही ऐसा प्राणी है जिसके सामन जीवन के अन्ततोगत्वा उद्देश्य का अह प्रश्न सदैव विद्यमान रहता है। इस प्रश्न का उत्तर ग्राजन म हिन्दुत्व म रहस्यात्मक विचार का अभ्युदय हुआ है जिसका सार वेदा म वर्णित ऋत की धारणा है। हिन्दू के लिये मानव मे परे कोई धीर सत्ता है। मानव अनादि नहीं है। अनादि है वह सत्ता जिससे स्वय मानव उत्पन्न हुआ है। मानव-जीवन का उद्देश्य केवल मानव ही बने रहन म नहीं है क्योंकि मानव-जीवन मणभगुर है। मानव सारर जन्म, विकास, बाधक तथा मत्यु का शिकार है। मानव जीवन का स्वाभाविक उद्देश्य है उस अनादि म मिल जाना, क्योंकि जा अनादि है वही अमर है। मनुष्यत्व से दवत्व की ओर अग्रसर होना मानव-जीवन का उद्देश्य है। मा म इसा उद्देश्य की पूर्ति का एक साधन है क्योंकि माण मनुष्य का मनुष्यत्व की आर से दवत्व की आर ल जाता है।

हिन्दुत्व म माण का मानव-जीवा का एक स्वाभाविक उच्चतम उद्देश्य माना गया है। हिन्दुत्व म सारा मानव जीवन एक शिक्षण मत्र है, जीवन के उच्चतम उद्देश्य का

प्राप्त करने का एक अवसर है। वर्णाश्रम व्यवस्था उस उच्चतम उद्देश्य का प्राप्त करने का मुख्य माध्यम है। आश्रम का अर्थ है अवस्था। आश्रम-व्यवस्था से तात्पर्य है ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सत्यास की उन अवस्थाओं में जिनसे गुजरता हुआ और जिनके माध्यम से हुई शिक्षा नीक्षा से व्यक्ति अपने का इस प्रकार अनुशासित करता तथा ढालता है कि वह अपने उद्देश्य के समीप पहुँच जाय। वण में तात्पर्य समाज में मनुष्य के स्थान से है। समाज में मनुष्य आश्रम तथा वण के अनुसार काम करता हुआ मोक्ष की ओर अग्रसर होता है। पुरुषार्थ वह उपकरण है जिसके द्वारा व्यक्ति—एक ओर, वर्णाश्रम को साधता है और दूसरी ओर जीवन के उच्चतम उद्देश्य मोक्ष को। इसमें कोई संदेह नहीं कि मोक्ष पारलौकिक है और मोक्ष में वराग्य की भावना निहित है। लेकिन मोक्ष नितांत पारलौकिक नहीं है। बिना अर्थ और काम की साधना के मोक्ष की साधना नहीं हो सकती। धर्म अर्थ और काम की साधना से ही मोक्ष की साधना हो सकती है। मोक्ष धर्म, अर्थ और काम की साधना की प्रक्रिया की स्वाभाविक परिणति है। जसा कि पहले कहा जा चुका है मोक्ष का सम्बन्ध व्यक्ति से है। लेकिन, साथ ही साथ मोक्ष का सम्बन्ध उस व्यक्ति से है जिसका सामाजिकरण हो चुका है अर्थात् जिसने धर्म अर्थ तथा काम की साधना कर ली है। इसीलिये कहा गया है कि बिना सामाजिक ऋण चुकाये अर्थात् बिना धर्म, अर्थ तथा काम की साधना किये, व्यक्ति को मोक्ष नहीं मिल सकता है और न उसे मोक्ष की साधना करनी ही चाहिये।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि मोक्ष जीव के उद्विकास की एक अवस्था है जिसकी ओर जीव स्वभावतया उ मुख है। यह स्वाभाविक उ मुखता मानव जीवन में प्रधानतम स्थान ग्रहण कर लेती है क्योंकि सभी जीवों में मानव उच्चतम है और उस रहस्यमयी सत्ता के अधिकतम समीप है। अतः जीवन का माधोमुख बनाना मानव जीवन का धर्म है। धर्म इस स्वाभाविक उ मुखता का उसकी स्वाभाविक गति प्रदान करता है। यह अवश्य है कि धर्म मोक्ष का एकमात्र साधन है। लेकिन यहाँ प्रश्न उठता है कि व जौन में धर्मोन्मुख उपाय है जिनके माध्यम से मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है। इसका उत्तर यह दिया गया है कि वासना और मोक्ष परस्पर विरोधी है। अतः ससार के प्रति वीतराग होने से मोक्ष मिलता है क्योंकि मोक्ष वह अवस्था है जहाँ जीव इतना वीतराग हो जाता है कि वहाँ न तो वासना रह जाती है और न काम की आश्रयता। इसी दृष्टिकोण से गीता में कहा गया है कि मोक्ष उस मिलता है जो वमरत हान पर भी स्थितप्रज्ञ है जिसकी वमफल में आसक्ति नहीं है, जिसके त्रिये जय पराजय तथा सुख-दुःख समान हैं। महाभारत में स्वधर्मपालन को मोक्ष का साधन माना गया है। स्वधर्म से तात्पर्य है व्यक्ति के वण तथा आश्रम के अनुसार नियत काम से। किंतु, मोक्ष का साधन केवल धर्मप्राण काम ही नहीं है। मोक्ष का साधन है निवृत्तिमार्गी पान से युक्त काम।

मनु वं भ्रतुमार, कवल धम वम ही स मोक्ष नही मिलता है । धम-वम से, अधिक से-अधिक अगले जीवन म सुख मिल सकता है । लेकिन, वह परमसुख, जहा स मामागिक अस्तित्व की पुनरावृत्ति नही जाती है, आत्मज्ञान से मिलता है । आत्मज्ञान, एक ओर, निवृत्ति की भावना मे निहित है और, दूसरा ओर, 'आत्मवत सब भूतेषु' की भावना मे । आत्मज्ञान का शाब्दिक अर्थ है आत्म, अपना अथवा आत्मा का ज्ञान । लेकिन, इसका व्यञ्जनात्मक अर्थ उस ज्ञान से है जा इस अनुभूति म निहित है कि सभी प्राणिया म एक जसी आत्मा है । अत सभी प्राणी समान हैं और सभी तसी रहस्यात्मक आदिशक्ति के विभिन्न रूप हैं । आत्मज्ञान का तात्पर्य है आत्मा के द्वारा आत्मा का ज्ञान प्राप्त करन से । आत्मज्ञान के साधन हैं रागात्मिका प्रवृत्ति का दमन, आत्म नियंत्रण, वनाध्ययन, तप और विद्या । भक्तिमार्गी विचारधारा म प्रपत्ति (ईश्वर वं प्रति आत्मसमर्पण) का माय का प्रधान साधन माना गया है क्योंकि चानमागि सबके लिये सुलभ नही है । गीता मे इन तीनों का समन्वय हुआ है । गीता के अनुसार, ससार कमश्रेय है क्योंकि ससार ही जीव को वम से बाधता है । जीवन यज्ञ है और कम उस यज्ञ की आहुति । गीता म समत्वबुद्धि से आश्रम, वण, देश और काल के अनुसार किये हुये वम की ही मो १ का प्रधान साधन माना गया है । लेकिन, माय ही साध, गीता म उस वम का सर्वोपरिता दी गई है जिसके पीछे प्रपत्ति और स्थितप्रज्ञता की भावना है । गीता उस ज्ञान का उपदेश है जा मनुष्य को निवृत्तिमार्गी प्रवृत्ति की ओर प्रेरित करता है ।

इस विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि मो १ का सर्वोपरि साधन है । समार तथा व्यक्तिक पारस्परिक सम्बन्ध का मयाध ज्ञान । गीता म कहा गया है कि 'जैत प्रज्ज्वलित अभि इधन को भस्म कर देती है वैसे ही ज्ञानरूपी अग्नि सभी वमों का भस्म कर देती है अर्थात् ज्ञान मनुष्य का बीतराग तथा वामनारहित बना देता है । इसी कारण, 'ज्ञान वं समान इस ससार म दूसरा कुछ पवित्र नही है । याग के—समत्व म पूणता प्राप्त मनुष्य समग्र पर अपनी भाष म उस ज्ञान का पाता है भ्रष्टाचार, ईश्वरपरायण और जिनद्विष पुण्य ज्ञान का पाता है और ज्ञान पात्र तुरत परम ज्ञान का पाता है । 'समाप्ती और मागी यह है जो वमपर पर अनाधित होकर वम करता ह न कि समस्त दियाआ का त्याग करने वाला । 'स याग याग है और योग का अर्थ है मनु के सकृत्पा का त्याग २ । इसन यह निष्कर्ष निकलता है कि निवृत्ति ज्ञान की यह अवस्था है जिसमे व्यक्ति का समत्व बुद्धि मिलती है । यह ज्ञान की यह अवस्था है जहा मनुष्य व लिये जैव-जीव, जम मनु जगती-ब्रह्मा, सुख-दुख और युद्ध तथा ज्ञानि सब इसणिय समान लगते हैं कि वे

१ गीता ४/३७,३८,३९

२ गीता ०/१,२

सब किसी एक रहस्य से प्रेरित है। मोक्ष की धारणा ध्यवित को इस ज्ञान की ओर प्रेरित करती है क्योंकि यह ज्ञान ही मानव की अंतिम सीमा है। किन्तु, यह ज्ञान तभी मिल सकता है जब व्यक्ति को अपने शरीर तथा उसकी आवश्यकताओं और समाज तथा उसकी आवश्यकताओं का ज्ञान हो। यह ज्ञान उसी का मिल सकता है जिसने शरीर तथा समाज की साधना की हो। निवृत्ति ज्ञान, शरीर तथा समाज के स्तर से ऊपर उठा हुआ ज्ञान है।

मानुष्य के जीवन का आधार न केवल रोटी है और न केवल इन्द्रिय साधना। श्रम और काम यदि सुख देते हैं तो दुःख भी। अथ और काम तपति और अतपति से हैं। तपति से सत्पुत्रि प्राप्ति है लेकिन अतपति नैराश्य को जन्म देती है। नैराश्य, जसा कि आज के सामाजिक मनोविज्ञान में माना जाता है धनेक व्यक्तिगत तथा सामाजिक व्याधियाँ का जन्म देता है। ध्यवित को नैराश्य से बचाने का एकमात्र साधन है सत्कार तथा यत्न का समत्व ज्ञान, जिसमें निवृत्ति निहित है और जो मोक्ष का साधन है। इसी सत्त्व में, विमोचन तथा उद्धार के अर्थ में, मोक्ष की धारणा की साधकता सिद्ध होती है। मोक्ष पारलौकिक की ओर उन्मुख है किन्तु मोक्ष की धारणा न इहलौकिक जीवन का ही प्रेरित किया है। यह कहा जा सकता है कि मोक्ष की धारणा का भारतीय इतिहास की सङ्कटबालीन तथा विषम परिस्थितियों से बल मिला है यद्यपि इसकी उत्पत्ति का आधार यही परिस्थितियाँ ही नहीं हैं। भारतीय जन जीवन में मोक्ष की धारणा गंगा की भाँति प्रभावित होती रही है और सङ्कट कालीन परिस्थितियों में मोक्ष की ही धारणा ने भारत में व्यक्ति तथा समाज की नैराश्य से रक्षा की है। मोक्ष की धारणा का सम्बन्ध इस विचार से है जिसमें नर को नरोत्तम और पुरुष को पुरुषोत्तम बनाने की प्रेरणा है।

५

पुरुषार्थ समाजशास्त्रीय महत्त्व

पुरुषार्थ सिद्धांत का सम्बन्ध उस जीवन दर्शन से है जिसमें यह माना गया है कि मानव-जीवन का सम्बन्ध इहलोक और परलोक दोनों से है। एक ओर, दीर्घायु मानव जीवन की ओर, दूसरी ओर एक साथ समृद्धि तथा मोक्ष की अभिलाषा इसका प्रमाण है। धर्म की धारणा के एक अंग के रूप में पुरुषार्थ सिद्धांत दोनों लोकों के साधन को एक सामञ्जस्य में लाने का प्रयास है। पुरुषार्थ सिद्धांत इस मायता पर आधारित है कि मानव स्वभाव के अनन्त पहलू हैं जिन्हें एक जीवन सिद्धांत में समेटित किया जा सकता है। स्वभावतया, एक ओर, मानव शरीरी आवश्यकताओं से बंधा है और दूसरी ओर, बौद्धिक आवश्यकताओं से, मानव

जीवन में, एक ओर, बौद्धिक आवश्यकताएँ हैं और, दूसरी ओर, आध्यात्मिक, मानव जीवन, एक ओर, भावात्मक है और, दूसरी ओर, सौंदर्यात्मक। मानव की प्रकृति ही ऐसी है कि मानव अस्तित्व स्वभावतया बहुमुखी है। ये बहुमुखी आवश्यकताएँ परस्पर विरोधी भी हैं, लेकिन मानव जीवन में उनका अपना स्थान है जिसकी जड़हेलना नहीं की जा सकती। बिना उनकी अभिव्यक्ति के मानव-जीवन अपूर्ण रहेगा। मानव तभी मानव रहेगा जब उनका उचित स्थान मिले। सुगठित व्यक्तित्व के विकास के लिये यह आवश्यक है कि इन आवश्यकताओं के सापेक्ष महत्व का स्वीकार करके, इनमें प्रत्येक का मानव जीवन में उचित स्थान दिया जाय। पुरुषार्थ सिद्धांत में, मानव जीवन में, इन आवश्यकताओं की अभिव्यक्ति के सामञ्जस्य का निर्धारित करने का प्रयास किया गया है। पुरुषार्थ सिद्धांत वह आदर्श विधान है जिसके द्वारा इन आवश्यकताओं की पूर्ति का तरीका और मयादाएँ निर्धारित होती हैं। पुरुषार्थ सिद्धांत में इहलौकिक भौतिक अभिलाषाओं तथा आध्यात्मिक जीवन का एक सामञ्जस्य में लाने का प्रयास निहित है।

पुरुषार्थ की साधना में जहाँ एक ओर मानव की यौन आवश्यकता प्रजनन एवम् और अधिकार तथा समृद्धि के प्रति उसकी लालसा की तृप्ति होती है वहाँ, दूसरी ओर, पुरुषार्थ में मानव के कलात्मक तथा सांस्कृतिक जीवन की ओर इस सतार में ऊपर उठकर परमात्मा में लीन हाने की साधना पूरी होती है। पुरुषार्थ का सम्बन्ध सम्पूर्ण मानव जीवन से है न कि उनके किसी अंग विशेष से। मानव जीवन की आशाओं तथा उच्चावाधाओं उसकी मयमी तथा विलासी प्रवृत्तियों और उसमें निहित उन्मात्कीकरण तथा आध्यात्मकीकरण की भावनाओं की संतुष्टि पुरुषार्थ से होती है। द्वितीय तथा तृतीय पुरुषार्थ (अर्थ और काम) मानव को ऐहिक अभिरुचियों, प्रियाओं और प्रयासों के प्रतीक हैं जबकि धर्म और माक्ष पारलौकिक अभिरुचियाँ, प्रियाओं तथा प्रयासों के। अर्थ, काम और मोक्ष परस्पर धर्म द्वारा जुड़े हुए हैं। मनुष्य में पशुत्व और देवत्व का समावेश हुआ है। पुरुषार्थ मनुष्य का देवत्व की ओर ल जाता है क्योंकि पुरुषार्थ, मानव प्रियाओं को एक आदर्श जीवन दर्शन में संगठित करके, मानव की आध्यात्मिकता का प्राप्ति के प्रयास में सहायक होता है¹।

प्रभु के अनुसार पुरुषार्थ सिद्धांत में हिन्दू-सामाजिक जीवन के मनोवैज्ञानिक तथा नैतिक (Psycho-moral) आधार का समन्वय में सहायता मिलती है। पुरुषार्थ सिद्धांत से यह स्पष्ट होता है कि हिन्दू जीवन-दर्शन में धर्म सबसे महत्वपूर्ण है और काम को महत्ता सबसे कम है। अर्थ का स्थान धर्म और काम के मध्य में आता है। मोक्ष का स्थान धर्म से बढ़कर है लेकिन, वास्तविक जीवन में, धर्म की प्रधानता इसलिये बढ़ जाती है कि वह माता का एकमात्र साधन है। पुरुषार्थ से यह

1. कपाडिया, ए० एम० सरिज एण्ड कॅमिटी इन इंडिया पृष्ठ 25, 26, 27

भी पता चलता है कि सिद्धांततः मानव जीवन में धर्म अथवा काम के उचित समन्वय की आवश्यकता है। पुत्रपाथ का सम्बन्ध व्यक्ति तथा समाज दोनों से है। पुत्रपाथ से, एक ओर व्यक्ति तथा समाज के सम्बन्धों के नियमों का औचित्य का प्रतिपादन होता है, उनकी त्रियाया के उचित पारस्परिक सम्बन्धों की परिभाषा होती है और दूसरी ओर, पुत्रपाथ की धारणा में सनिहित प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष विचारों में यह भी पता चलता है कि व्यक्ति तथा समाज के अनुचित सम्बन्धों को दूर कर सकते हैं और उनमें किस प्रकार सुदृढ़ता पाया जा सकता है। पुत्रपाथ में व्यक्ति तथा समाज और उनके पारस्परिक सम्बन्धों नियंत्रित होते हैं¹।



सातवां अध्याय

संस्कार तथा आश्रम

आश्रम संस्कार और पुण्याय

द्विद्व विचारधारा में पुण्याय धर्म का मुख्य साधन है। पुण्याय का माध्यम समाज में व्यक्ति के उच्च शक्ति विकास से है जिसमें उसकी लौकिक तथा आध्यात्मिक इहलौकिक तथा पारलौकिक, जैविक तथा मानसिक और व्यक्तिगत तथा सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। मानव-जीवन गर्भाधान जन्म विकास और मृत्यु के जीवन चक्र में चलता रहता है। द्विद्व विचारधारा में मानव जीवन चक्र को दो रूपों में देखा गया है—एक है आवागमन का चक्र जिसमें आत्मा विभिन्न यानियों में होती हुई मनुष्य धोनि में आती है और वहां से, यदि जीव का जीवन धर्मानुसार हुआ तो माणव माध्यम से उस परमशक्ति में लाना जा जाती है जो उसका मूल स्रोत है। दूसरा चक्र है व्यक्ति के जीवन का। इस चक्र में गर्भाधान जन्म, विकास तथा मृत्यु का चक्र चलता रहता है और शरीर जीवन चक्र पर व्यक्ति आन-जाते रहते हैं। पुण्याय का सम्यक् दाता प्रकार के जीवन चक्र से है क्योंकि पुण्याय, एक ओर, व्यक्ति के चक्र से उत्पन्न भी शक्तिवाता है।

गर्भाधान, जन्म विकास तथा मृत्यु प्राणी के जैविक गुण हैं। जसा कि पट्ट

कहा जा चुका है समाज की उत्पत्ति मानव के जैविक गुणा में हुई है। प्रजनन और अतिजीविता जीव की आधारभूत विशेषताएँ हैं। प्राणी का जीवन चक्र समाज में चलता है। मानव-समाज सस्कृतिमय है। अतः, मानव समाज में व्यक्ति का जीवन चक्र सस्कृतिमय हो गया है। अर्थात् गर्भाधान, जन्म, विवाह तथा मृत्यु के साथ अनेक आदेश नियम तथा अनुष्ठान जुड़ गए हैं। ये अनुष्ठान सबत्र पाये जाते हैं यद्यपि इनकी अभिव्यक्ति, देश, काल और सामाजिक आदेश के अनुसार, अलग अलग समाजों में अलग अलग पाई जाती है। मानवशास्त्रियों ने इन अनुष्ठानों को राइट्स आफ पैसेज (Rites of Passage) की संज्ञा दी है क्योंकि इन अनुष्ठानों के द्वारा, एक शरीर, व्यक्ति का सामाजिकरण होता है उसे उसकी उचित तथा आवश्यक सामाजिक प्रतिष्ठा (Social Status) और भूमिका (Role) मिलती है और, दूसरी ओर, जैविक तथा मानसिक विकास चक्र के जीवन चक्र में उसे एक अवस्था से दूसरी अवस्था तक पहुँचाने में सहायता मिलती है। जन्म, विवाह तथा मृत्यु से सम्बंधित और सबत्र पाये जाने वाले अनुष्ठान इसका प्रमाण है। मानव-समाज में राइट्स आफ पैसेज (Rites of Passage) व्यक्ति के सामाजिकरण (Socialization) तथा सस्कृतिकरण (Enculturation) का मुख्य माध्यम है¹।

1 चपेल (Chapple) और कून (Coon) के अनुसार जीवन चक्र दो प्रकार के होते हैं—एक व्यक्तिगत तथा दूसरा सामाजिक। व्यक्तिगत जीवन चक्र से तात्पर्य व्यक्ति के जन्म, विकास, ह्रास और मृत्यु की जैविक विशेषताओं से न होकर, इनसे सम्बंधित सामाजिक सांस्कृतिक प्रथाओं से है। इसी प्रकार, सामाजिक चक्र का अर्थ चक्रिक वृद्धि या परिवर्तन से नहीं है। सामाजिक जीवन में व्यक्ति तथा समाज को प्रभावित करने वाले, कुछ नियमित तथा अनियमित परिवर्तन आते रहते हैं जिनसे सामाजिक अंतर्क्रिया की सामान्य क्रियाशीलता में व्यवधान आ जाता है और उस व्यवधान से जो व्यक्तिगत तथा सामाजिक संकट उत्पन्न होता है, वह अनुष्ठानों द्वारा दूर किया जाता है। जन्म, विवाह तथा मृत्यु से संकटापन्न अनियमित परिवर्तन हैं जो परिवार तथा सम्बंधित वर्ग में व्यक्ति के जीवन को प्रभावित करते हैं इन परिवर्तनों से सम्बंधित अनुष्ठानों को राइट्स आफ पैसेज (Rites of Passage) कहा गया है क्योंकि इनके द्वारा अपने सामाजिक संबंधों में व्यक्ति एक अवस्था से दूसरी अवस्था में पहुँचता है। गर्भा का अधिक या कम या बिल्कुल न होना फसल का खराब होना महामारी फलना इत्यादि ऐसे संकटापन्न परिवर्तन हैं जो सामूहिक जीवन को प्रभावित करते हैं। इनसे सम्बंधित अनुष्ठानों (जिस वर्ण लाने या महामारी को भगाने के अनुष्ठानों) को राइट्स आफ इंटेंसिफिकेशन (Rites of Intensification) कहते हैं क्योंकि इनसे सामाजिक अंतर्क्रिया और भी तीव्र हो जाती है—

हिंदू विचार के अनुसार, पुरुषार्थ की कामना वही व्यक्ति कर सकता है जिसका उचित और आवश्यक सामाजिकरण हो। पुरुषार्थ-माधना के द्वारा व्यक्ति के जिनके गुणा का प्रतिफलन और जिनके आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। इसके लिये व्यक्ति के सामाजिकरण का आवश्यकता है जो हिंदू विचारधारा के अनुसार सत्कार विधान तथा आश्रम व्यवस्था में पूर्ण होती है। जिन्हें मानवशास्त्री राइटस आफ पैसज वर्त है उन्हें हिंदू विचार में मस्कार कहा गया है। हिंदू विचार में ऐसा माना गया है कि मस्कार से जीवत्मा का परिभाजन तथा विकास होता है। मस्कार से ही व्यक्ति धर्म अथवा काम और मांग की अवस्थाओं तक पहुँचता है। पुरुषार्थ साधना का सम्बन्ध धर्म तथा गुण में है। धर्म का सम्बन्ध व्यक्ति की प्रयास क्षमता और गुणों के सम्बन्ध व्यक्ति की भर्तृनिहित क्षमताओं से है। जीवन चक्र में धर्म का प्रस्तुत धर्म धीरे धीरे होता है। इसीलिए हिंदू विचारधारा में जीवन चक्र के आश्रमों (ब्रह्मचर्य गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास) की धारणा की गई है। पहले आश्रम का सम्बन्ध पुरुषार्थ से है, दूसरे आश्रम का दूसरे तथा तीसरे पुरुषार्थ से और तीसरे चोय आश्रम का चतुर्थ पुरुषार्थ से। लेकिन आश्रमों में व्यक्ति का प्रतिक विकास मस्कार के माध्यम से होता है। इस प्रकार आश्रम तथा सत्कार हिंदू विचार में व्यक्ति के सामाजिकरण के मुख्य माध्यम हैं। व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास बस आश्रम और सत्कार पर ही नहीं निर्भर है, व्यक्तित्व विकास में गुण एक प्रधान आधार है। गुण के ही आधार पर व्यक्ति का सामाजिक संगठन में एक स्थान मिलता है। हिंदू विचारधारा में गुण (धर्म के साथ) सामाजिक संगठन का आधार है। गुण-धर्म पर आधारित सामाजिक संगठन बण है। सत्कार बण पर आधारित है और बण सत्कार पर। मस्कार बस्तुतः आश्रम तथा बण के बीच में आता है क्योंकि एक आश्रम, मस्कार आश्रम का आधार है और, दूसरी ओर, बण का। लेकिन, मस्कार आश्रम तथा बण का उद्देश्य है पुरुषार्थ-माधना और पुरुषार्थ-माधना का ध्येय है धर्म-साधना। इसीलिये धर्म का एक ही बण ही धर्म है।

२

सत्कार

मस्कार शब्द के अर्थ अर्थ हैं पूर्ण करना, गुंठ करना, पालना करना, पूर्ण, परिभाजित, धारण करना, गुंठ, गिना, बंधन, अज्ञान, मस्तिष्क सत्कार का अर्थ की दोहा, नयारी, अज्ञान, राजावट, पवित्र करना, साधना का निष्पन्न निष्पन्न धारणा, क्षमता का प्रभाव या क्रिया गुण, आत्मप्रजनन का गुण, स्मृति की क्षमता या स्मृति चिह्न, पवित्र करने का गुण

और यज्ञोपवीत प्रनुष्ठान । इन अर्थों की तुलनात्मक व्याख्या से सस्कार से टालने, गुद, सर्वाङ्गित, पवित्र तथा परिमार्जित करने का अर्थ निकलता है । सस्कार शिक्षा और प्रशिक्षण दोनों है । इस दृष्टिकोण से सस्कार वह है जिससे परिमार्जन हुआ, शुद्धता तथा पवित्रता प्राप्त हुई, शिक्षा दीक्षा मिले और इन सबके फलस्वरूप त्रिमिक विकास हो । सस्कार केवल एक उपकरण है जिसका मन्वथ अशत भागध के जैविक पक्ष, अशत मानसिक पक्ष और अशत सांस्कृतिक पक्ष स है । सस्कार से यवित का त्रिमिक विकास होता है क्योंकि सस्कार के द्वारा ब्यक्ति का सामाजीकरण हाता है । मानव की जविक मानसिक विशेषताय, श्रम गुण और कम, सस्कार द्वारा प्रस्फुटित तथा विकसित हाती है ।

हिन्दू विचारधारा म सस्कार का अर्थ रुढिगत हा गया है । सस्कार से अर्थ लिया जाता है उन अनक अनुष्ठानों से जा ब्यक्ति के गर्भाधान स लेकर अत्येष्टि तक किये जाते हैं । धमशास्त्रों के अनुसार ब्यक्ति को अनक सस्कारों से होकर गुजरना पडता है । धमशास्त्रों म सस्कार का तात्पर्य है गारार सस्कार से क्पाकि गर्भाधान से लेकर अत्येष्टि तक सस्कार ही शरीर को पवित्रता प्रदान करते हैं । हिन्दू विचारधारा म ऐसा विश्वास किया जाता है कि सस्कार मानव शरीर को इहलोक तथा परलाक दाना मे पवित्र करत हैं । सस्कार ब्यक्तित्व के त्रिमिक विकास के परिचायक है । सस्कार कितन है ? यह मतमतांतर का विषय है । गह्य सूत्रों के अनुसार सस्कार लगभग चालीस हैं जबकि गौतम धमसूत्र व अनुभार सस्कार अडतालीस हैं । एक मत व अनुसार सस्कार सोलह हैं जबकि मनु के अनुभार सस्कार बारह है¹ । साधारणत सोलह सस्कार माने जाने हैं जिनम बारह मुख्य है और य्ता उनका ही वणन किया जाता है² ।

गर्भाधान का जथ है गभ रखना रना या धारण करना । विवाह के दान गह प्रवेग के चौथे दिन वर वध के मिलन के पहलू, जिन अनुष्ठाना का गर्भाधान और विधान है वे गर्भाधान सस्कारों के अ तगत आते हैं । वर (पति) पुसवन अग्नि म चार आहुतिया अर्पित करव वधू (पत्नी) स सम्भाग करन हुए जो मन पत्ता ह उमका जथ है हमारे मन ह्य नाभि तन और त्वा मि हए है म तुम्हे वाम व व वन से वावता हैं और यह

1 प्रभू पी० एच० वही पृष्ठ 222

2 सस्कारों के दो पहलू ह—एक वह पहलू जो धमग्रथों तथा धमशास्त्रों में प्रति पादित किया गया ह और वमरा वह जाघास्तविक यत्रार म दखन को मिउता ह और विचरणगील ह । उदाहरणार्थ प्रभू ने यह लिखा ह कि गर्भाधान सस्कार विवाह निष्पत्ति या अतुर्थों कम व समय किया जाता ह । जवध में इयका व्या घहारक रूप मि न ह । वहा गर्भाधान के तीसरे या सानवे महीने में गभवती स्त्रा की षोछ भर पर यह सस्कार किया जाता ह । यह प्रया सभी जातियों और सभी परिवारों में समान रूप से नहीं पाई जाती ह । यहां हाल अर्थ सस्कारों का भी ह ।

बचन अविमोचित रहेगा । पत्नी का अलिंगनपाश म बाधते हुए पति मह कामना करता है कि उनका प्रेम चबवा चकई की भांति अटल रहेगा । इसके बाद पति विष्णु, अश्विन अग्नि और इन्द्र इत्यादि देवताओं में मुन्दर तथा बलिष्ठ पुत्र की प्राप्ति करता है । गर्भाधान मस्कार विवाह सस्कार का अन्तिम अनुष्ठान है^१ । गर्भाधान सस्कार उस प्रतिमा की प्रति है जो घर यधु परिवार चलाने के लिये, विवाह के समय करते हैं । गर्भाधान मस्कार इस बात का प्रतीक है कि सवेदान और प्रजनन विवाह का एक आवश्यक अंग है । पुसवन मस्कार का तात्पर्य उम अनुष्ठान म है जा गर्भधारण क तीसर महीने मे इसीलिए किया जाता है कि पुत्र ही उत्पन्न हा क्याकि पुत्र परिवार नैरतय का मुख्य माध्यम है । गर्भाधान तथा पुसवन सस्कार जन्म क पहले के मस्कार हैं ।

जातकम, नामधेय, निष्कमण, अन्नप्राशन तथा चूडाकम सस्कारा का सम्बन्ध दशवी अवस्था स है । जातकम सस्कार जन्म के समय किया जाता है । जानकम से इस सस्कार से सम्बन्धित अनुष्ठान मे पिता बच्चे का भवग्रहण चूडाकम तक करता है और उसके कान म तिस मन्त्र का उच्चारण करता है उसमे बच्चे क दीर्घायु तथा भधावा होने की कामना रहती है । जातकम सस्कार क बाद पहले बच्चे के मुह म धी और शहद रखा जाता है और बाद म मां बच्चे का स्तन पान कराती है । जातकम के बाद ही स्तनपान का विधान है । नामधेय मस्कार जन्म के दसवें या बारहवें दिन सम्पन्न किया जाता है । शिशु का नामकरण इस मस्कार का मुख्य उद्देश्य है^२ । निष्कमण-मस्कार जन्म के चौथ महीने मे हाता है । इस मस्कार के साथ शिशु को घर के बाहर निकाला जाता है ।

१ प्रभू गो० एच० यही पृष्ठ १५१७५

२ नामकरण, शास्त्रकारों के अनुसार अथ तमहत्वपूर्ण है । शास्त्रकारों के अनुसार, नाम ऐसा होना चाहिए जिससे व्यक्ति के परिवार समुदाय तथा वंश का पता चले । मनु के अनुसार नाम वंश का प्रतीक होना चाहिए । ब्राह्मण का नाम मंगल और क्षत्रीय (गर्भवत) का सूचक होना चाहिए । गर्भवत के आधार पर स्त्रियों की यह मान्यता है कि ब्राह्मण का नाम का अंत गर्भत शब्द का साथ होना चाहिए (जैसे दिष्णु गर्मा) । क्षत्रीय का नाम से बल तथा रक्षा का बोध होना चाहिए (जैसे बल धर्मा) । वंश का नाम से धन तथा पुष्टि (समृद्धि) का बोध होना चाहिए (जैसे यमुभूति) और गूढ का नाम से दाम भय व्यक्त होना चाहिए (जैसे रामदीन या रामदास) । क्षत्रीयों के नाम उच्चारण में सरल, मनोहर और मंगलसूचक होने चाहिए । उनमें किसी भी प्रकार की आक्रूरता नहीं प्रगट होनी चाहिए तथा उनकी अन्तिम मात्रा दीर्घ होनी चाहिए—प्रभू यही पृष्ठ

इस संस्कार में, अनुष्ठान के तौर पर, शिशु को सूय को अर्पित किया जाता है और वह इस बात का प्रतीक है कि इस संस्कार के बाद शिशु उस महानतम शक्ति के सम्पर्क में जाता है जो इस संसार का प्रभावित करती है। निष्क्रमण संस्कार के बाद से शिशु परिवार के बाहर के सदस्यों के सम्पर्क में आना शुरू करता है। अन्न प्राशन संस्कार में, जन्म के छठे महीने बाद, शिशु का पहली बार दूध में उबाला हुआ चावल (खीर) का माड़ चटाया जाता है। बूडाकम का दूसरा नाम मुन्न भी है। इसमें शिशु के गभुवारे बाल पहली बार उतार जाते हैं। यह जन्म के पहले या तीसरे साल में होता है।

उपनयन संस्कार बाल्यावस्था तथा किशोरावस्था के सत्रमणकाल में किया जाता है।

उपनयन संस्कार किस आयु में किया जाय, इस पर विद्वानों में उपनयन सावित्री मतभेद है। विद्वानों ने अलग अलग वर्णों के लिए अलग-अलग और समावर्तन आयु का विधान किया है। कुछ विद्वानों के अनुसार, ब्राह्मण का उपनयन संस्कार आठ साल की आयु में होना चाहिए, क्षत्रिय का ग्यारह साल की आयु में और वैश्य का बारह साल की आयु में। याज्ञवल्क्य के अनुसार उपनयन संस्कार परिवार की प्रथा के अनुसार, किसी भी उचित समय पर किया जा सकता है। उपनयन संस्कार के बाद से विद्याभ्यास प्रारम्भ होता है। इसलिये, कुछ के अनुसार ब्राह्मण का उपनयन पाचवें साल में, क्षत्रिय का छठे साल में और वैश्य का आठवें साल में होना चाहिए। विद्वानों ने उपनयन संस्कार की कम से कम तथा अधिक में अधिक आयु का भी विधान किया है। इस विधान के अनुसार, ब्राह्मण बालक का उपनयन संस्कार आठ से सोलह वर्ष की आयु में, क्षत्रिय बालक का ग्यारह से बाईस वर्ष की आयु में और वैश्य का बारह से लेकर चौबीस वर्ष की आयु में होना चाहिए।

गुरु के लिए उपनयन संस्कार का विधान नहीं है। हिन्दू विचारधारा में विद्वानों की ऐसी मान्यता रही है कि प्रत्येक व्यक्ति जन्म से गुरु होता है और संस्कार से वह द्विज बनता है। द्विज से तात्पर्य है उसका जिसका दूसरा जन्म है। एक जन्म माँ के गर्भ से होता है और दूसरा उपनयन संस्कार में। उपनयन संस्कार पुरुषार्थ की साधना में पहला चरण है क्योंकि उपनयन संस्कार के बाद ही यज्ञिक विद्या आरम्भ करने का आचार्यकुलवामी होता है और धर्म के स्वरूप का समझने का प्रयत्न करता है। उपनयन संस्कार के फौरन बाद ही आचार्य शिष्य का गौच (स्वच्छता) और आचार (महाचार) की शिक्षा देता है जिसका तात्पर्य यह है कि शौच तथा आचार की दीक्षा उपनयन संस्कार के बाद ही प्रारम्भ होती है। उपनयन संस्कार से व्यक्ति का वस्तुतः दूसरा जन्म होता है। उपनयन संस्कार के साथ व्यक्ति वस्तुतः त्रिप्राणीयता यथा उत्तरदायिनी, प्रत्यागाजा तथा आवागाजा के उस संसार में जन्मता है जिसमें रहने के लिए उस अपने को तैयार करने की शिक्षा दी जायगी।

उपनयन संस्कार के बाद से ही व्यक्ति का सक्रिय सामाजिक जीवन प्रारम्भ होता है। इसलिए उपनयन संस्कार का सर्वाधिक सामाजिक महत्व है। उपनयन संस्कार को मानसशास्त्र की भाषा में राइट ऑफ इनीशिएशन (Rite of Initiation) का मना दी जा सकती है क्योंकि उपनयन से व्यक्ति के सक्रिय सामाजिक जीवन तथा उसकी शिक्षा का सूत्रपात होता है। सूत्रपात संस्कार (Rites of Initiation) सर्वत्र पाए जाते हैं, यद्यपि इनकी अभिव्यक्ति अलग अलग समाजा में अलग अलग है।

उपनयन को यज्ञोपवीत भी कहा जाता है। यज्ञोपवीत से तात्पर्य जनक से है। उपनयन संस्कार में यज्ञोपवीत धारण किया जाता है। यज्ञोपवीत दो प्रकार से धारण किया जाता है—एक, मूत्र व नीच घड़ी रखकर और, दूसरा, विवाह के समय। विवाह के समय पहने जाने वाले जनक की दुगा जनक कहते हैं। ब्राह्मणों में दोनों प्रकार से जनक धारण किया जाता है। कुमार अवस्था में तीन ताग का जनक धारण किया जाता है और दुर्गा जनक के बाद में छ ताग का। श्रद्धिया जीव वक्ष्यो में, विवाह के समय जब दुगा जनक का संस्कार होता है तो छ ताग का जनक धारण किया जाता है। ऐसा माना जाता है कि जनक व तीन ताग तान ऋणा (देव ऋण ऋषि ऋण और तित् ऋण) के परिचायक हैं। इन ऋणा का चुकाना व्यक्ति का कर्तव्य है क्योंकि ये सामाजिक ऋण हैं। विवाह के समय दाहुरा जनक धारण करने का तात्पर्य यह है कि पुरुष स्त्री के भी सामाजिक ऋणा का अपने ऊपर लेता है। ब्राह्मण वर्ग में लिंगा का उपनयन संस्कार भी रखकर होता है और श्रद्धिया तथा वक्ष्य वर्ग के लिंगा का माधारण तौर पर।

उपनयन-संस्कार का सामाजिक मानसिक महत्व है और यह महत्त्व इस संस्कार से सम्बंधित अनुष्ठानों से स्पष्ट होता है। जिस बालक का उपनयन-संस्कार होता है उसे उम्र बढ़ने पर ब्राह्मण हुआ तो मूज की यदि श्रद्धिया हुआ तो प्रयत्न की और यदि वक्ष्य हुआ तो ऊन व धातु की करधनी पहनाने का विधान है। फिर उसके हाथ में एक डाला दिया जाता है और फिर उसके गारार पर यज्ञोपवीत धारण करवाया जाता है। इन उपकरणों में साथ बालक विद्याध्ययन के लिए तैयार हुआ समझा जाता है। आचार्य फिर उम्र बढ़ने पर बालक को ब्रह्मचर्य का धर्म लेने के लिए तैयार है। कुमार के 'हा' करने पर आचार्य उसे अपना गिर्य बना लेता है और फिर उसे 'काम ब्रह्मचारिण' की मना देकर गायत्री मंत्र का दाया दना है। शिष्ट जीवन में गायत्री मंत्र का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस गायत्री मंत्र भी वक्त है। इसका धारण गायत्री मंत्र में उपयोग होता है। गायत्री मंत्र की ही से उपनयन संस्कार में सम्बंधित है। धर्मशास्त्रों में गायत्री मंत्र की दीक्षा का एक संस्कार माना गया है। गायत्री मंत्र के अनुसार गायत्री संस्कार का ता उपनयन-संस्कार के बाद होता चाहिए या उपनयन संस्कार के बाद तीन मंत्रों के भीतर भावर। मनु के अनुसार गायत्री संस्कार ब्राह्मण कुमार की सातह सात की आयु के पहले, श्रद्धिया कुमार का चांदी माल का आयु के

पहले और वश्य कुमार की चौबीस माल की आयु क पहले होना चाहिए । मावित्री सस्कार और सावित्री मंत्र की साधना ब्रह्मचर्य आश्रम के कृत्यों का एक अंग है । उपनयन सस्कार के बाद से विद्याभ्ययन आरम्भ होता है और जब विद्यार्थी जीवन की समाप्ति होती है अथवा जब ब्रह्मचारी आचार्यकुलवास करके, गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होने के लिए, वापस आता है तो समावतन सस्कार किया जाता है जो इस बात का प्रतीक है कि अब व्यक्ति की शिक्षा-दीक्षा समाप्त हो चुकी है और वह गृहस्थाश्रम के उत्तरदायित्व का सभालने के योग्य है ।

उपनयन सावित्री और समावतन सस्कारों का सम्बन्ध व्यक्ति की शिक्षा-दाक्षा से है—वह शिक्षा-दीक्षा जो उसे सामाजिक कृत्यों का भार उठाने के योग्य तथा धर्मोन्मुख अथ और काम की साधना के उपयुक्त बनाती है । यज्ञोपवीत सस्कार के बाद से ही व्यक्ति के लिए त्रिकाल सध्या, दैनिक स्नान और शरीर की शुद्धता तथा स्नान पान में विवकी व्यवहार का पालन आवश्यक हो जाता है । उपनयन सस्कार, इस प्रकार, आत्म अनुशासन तथा इन्द्रिय निग्रह का प्रारम्भ है । शिक्षा से मस्तिष्क पर अनुशासन आता है और शिक्षा के माध्यम से ही व्यक्ति धर्म के वास्तविक स्वरूप का समझने का प्रयत्न करता है । इस प्रकार, उपनयन सस्कार मस्तिष्क तथा शरीर की उस शिक्षा-दीक्षा का प्रवेश द्वार है जिसके माध्यम से व्यक्ति धर्म का भावी जीवन के लिए तैयार करता है । उपनयन सस्कार के बाद ही व्यक्ति ब्रह्मचर्य जीवन यतीत करके और धर्म का वास्तविक स्वरूप समझ करके, व्यक्ति को तथा सामाजिक आवश्यकताओं तथा कर्मों के प्रति अवगत होता है और उनकी पूर्ति करन तथा उनको निभाने की योग्यता ग्रहण करता है ।

विवाह सस्कार गृहस्थाश्रम का प्रवेश द्वार है । गर्भाधान सस्कार से लेकर समावतन तक व्यक्ति का सामाजिकरण पूरा हो जाता है और उसके बाद से विवाह और यह सामाजिक ऋणा को चुकाने तथा सामाजिक कृत्यों के निभाने अत्येष्टि का प्रयत्न होता है । विवाह सस्कार के साथ साथ व्यक्ति ब्रह्मचारी से गृहस्थ हो जाता है और समाज के आधार जय तथा काम पुत्रपार्थों की साधना में तैयार होता है । जन्म से व्यक्ति समाज के अन्दर आता है और मृत्यु में समाज के बाहर जाता है । जन्म-व्यक्ति के इष्टौकिक सत्कार में आने का प्रवेशद्वार है और मृत्यु पारलौकिक सत्कार का प्रवेशद्वार है । मृत्यु से व्यक्ति पित्रा के सत्कार में प्रवेश करता है । मृत्यु से व्यक्ति के सामाजिक सम्बन्ध अस्त-यस्त होन है जिन्हें अत्येष्टि सस्कार द्वारा पुनः सामंजस्य मिलता है ।

विवाह और अत्येष्टि सस्कार अलग-अलग कई विधि विधानों में बटे हुए हैं । विवाह सस्कार में दो पहलू हैं—एक मवसान नियमों के अनुसार और प्रगस्त (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, प्रजापत्य) तथा अप्रगस्त (आमुरगांधव, राक्षस तथा अंगारक) विवाह प्रकारों में सम्बन्धित है और दूसरा कर्म-ब्राह्मण से । विवाह सस्कार में

वाग्दान (तिलक, वरी-छा) लगान (विवाह की तिथि निश्चिन करना), मन्वाहरण (विट्ठी लावा), गणपति पूजन, मण्डप प्रतिष्ठा मान पूजन वमापारा पूजन, आयुष्य जप, नासिक धाद का मन्त्र ब्रह्मिण स्नान वरधात्रा मधुपत्र (वर का स्वागत, लपकानी), वधु-मस्कार, वधु का वस्त्रापहार (चढ़ावा), ममञ्जन (वर द्वारा वधु के साथ एक सूत्र म बंधन का मन्त्र), गाथाचार व-यादान मगलमूत्र, गजाहाम, पाणिग्रहण, गठव धन, अग्नि प्रप्रिणा सत्यपदी वधु का भागीवाद (मुमगली) ध्रुव दर्शन, चतुर्थीकम और विवाह मण्डप का उद्यापन कमकाण्ड मुख्य हैं। य कमकाण्ड पुरोहित द्वारा करवाये जाते हैं और हिंदू विवाह-मस्कारक विधि विधान का मुख्य अंग हैं। किन्तु अन्त एम कमकाण्ड है जो स्थान-स्थान पर भिन्न है और जिन्हें बिना पुरोहित की सहायता के घर के लोग बिगेरन नारिया करती है। पितरों के कमकाण्ड इस खेती में आते हैं जो बहूया नारिया करती हैं। जनक के आम नाम, अरुध के गावों में घोड़ी की स्त्री द्वारा वधु का मुद्राग दन की प्रथा है जो अद्यपि नहीं पाई जाती है।

इसीप्रकार अन्य दृष्ट-मस्कार के मुख्य कमकाण्ड हैं—प्राण गृह (मरणान्त व्यक्ति के मुह में तुलसी या गगाजल डालना) अर्था मवारना, गवया ग, अनुस्तरणी (गोदान) दाह, कपाल त्रिया उदक कम (जप दना जो दम दिन तक चरता है), अशोक (मृत व्यक्ति के परिवार तथा कपाल त्रिया करने वाल का दसना तक अगविष मानना), अस्थि सञ्चयन, गार्तिकम, स्नान (वित्तमेघ अर्था समाधि निर्माण), पि दान (अववा) और मणि-वीकरण (नरजी, बर्षी)। अहिनाग्नि सिंगु, गमिणी, नवप्रभूना तथा रजस्वला, विवादिता तथा विधवा, परिश्रानक, सयामी तथा अन्तप्रस्थ प्रयात्री, ज्ञान मन्त्र तथा पतित (धमद्रागे, प्रतिलाम विवाह में उपन अग्नि अस्थि हटा कर देने वाला, पाप-चार व्यभिचारिणी स्त्री) के लिए अलग अलग अन्तर्दृष्टि का विधान है। मनु के अनुसार पतित अ-प्रति का अधिकारी नहीं है। हिंदू विधि विधान में जीवच्छाद (जादित आद) का भी विधान है। जिस प्रकार विवाह कमकाण्ड के विचित्र भाग अन्तर्गत में देयन का मिला है, वन ही अन्तर्दृष्टि कमकाण्ड के स्थानीय विचरित भाग अन्तर्गत में मिला है।

सस्कारों में जहां जहां अर व्यक्ति का सामाजिक हाना है वही, दुःखी और, सस्कारों में व्यक्ति का मानसिक तथा सामाजिक परिष्कार भी होता है। सस्कारों के माध्यम से व्यक्ति का सामाजिक जीवन के विभिन्न स्तरों में प्रवेश करता है। सस्कारों में सामाजिक उपरक्षण है जिनके माध्यम से व्यक्ति समाज का सदस्य बनता है और सामाजिक जीवन की गरिमा का अनुभव करता है। गमाधान से लेकर धुआकम तक के सस्कार व्यक्ति का उपन परिवार तथा मन्विक्रम का

1. सस्कारों के विस्तृत अन्तर्गत के लिए देखिए राजबली पाण्डेय द्वारा दृष्ट हिंदू मस्कार।

सदस्यता की गरिमा का अनुभव करात है, उपनयन से लेकर समावतन तक के सस्कार उस सामाजिक प्रत्याशाओं (Social Expectations) से परिचित कराते हैं, विवाह सस्कार से उस ब्राह्मिक पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन की गरिमा का अनुभव होता है और अर्यष्टि सस्कार से पारलौकिक जीवन की महत्ता निर्धारित होती है। सस्कारों का ही माध्यम से व्यक्ति की मानसिक, जैविक तथा सामाजिक आवश्यकताओं का नियोजन होता है जिससे पुरुषार्थ की साधना में सहायता मिलती है। विभिन्न सस्कारों से सम्बन्धित अनुष्ठानों में वह सामाजिक वातावरण उत्पन्न होता है जिसमें एक धार, सामाजिक उद्देश्यों की महत्ता निरंतर उठती है और दूसरी ओर उस वातावरण में सामाजिक उद्देश्यों का संदेशवाहकता बढ़ जाती है जिसके कारण, व्यक्ति द्वारा, सामाजिक उद्देश्यों की ग्रहणशीलता बढ़ जाती है। सस्कारों का, एक ओर, सामाजिक महत्त्व है और दूसरी ओर, मानसिक। सस्कार से जीवात्मा का विकास होता है, ऐसा हिन्दू मनीषियों का मत है।

३

आश्रम-व्यवस्था

आश्रम व्यवस्था सस्कारयुक्त जीवन की एक स्वाभाविक अभिव्यक्ति है। आप्त के अनुसार आश्रम शब्द के मुख्य अर्थ हैं—वह स्थान, गृह, काठरी या कुटीर जहाँ सत्यासी निवास करते हैं। व्यवस्था अर्थात् या व्यवस्था कालेज स्कूल (शिक्षण संस्था), धर्म या कुज जहाँ तपस्वी तप करते हैं। आश्रम शब्द व्यक्ति के सामाजिक जीवन की चार अवस्थाओं (ब्रह्मचर्य गृहस्थ्य वानप्रस्थ और सत्यास) में प्रत्येक के लिये प्रयुक्त होता है^१। हिन्दू विचारका की यह मान्यता है कि व्यक्ति का सस्कारयुक्त सामाजिक-जीवन ब्रह्मचर्य गृहस्थ्य वानप्रस्थ और सत्यास की चार अवस्थाओं से गुजरता है। ये अवस्थाएँ पुरुषार्थ साधन के त्रय आवश्यक हैं। इन चार अवस्थाओं के समन्वित रूप को आश्रम व्यवस्था की संज्ञा दी जाती है और इन आश्रमों से सम्बन्धित सामाजिक तथा व्यक्तिगत कल्याण को आश्रम धर्म की। सस्कारों का सम्बन्ध व्यक्ति के सामाजिकरण तथा सामाजिक विकास से है। सस्कार विधान में व्यक्ति के सामाजिक विकास की अवस्थाएँ निहित हैं। व्यक्ति का जैविक तथा सामाजिक विकास साथ साथ चलता है। सस्कारों में जैविक विकास का सामाजिक मानसिक उन्मुक्तता तथा गति मिलती है। आश्रम व्यक्ति के जैविक सामाजिक तथा मानसिक विकास की मुख्य अवस्थाएँ हैं—वे

अवस्थाओं जिनसे व्यक्ति की जैविक एपणाआ की सामाजिक धर्मव्यक्ति मिलती है और व्यक्ति पुरपाप की साधना करता हुआ जीवन के परम उदय (मार्ग) का प्राप्त करता है। सत्कार और आश्रम व्यक्ति की जैविक एपणाआ तथा समताआ के सामाजिक प्रतिपोषण (Nurture) के माध्यम है।

प्रभू के अनुसार, आश्रम शब्द की व्युत्पत्ति 'श्रम' धातु से हुई है। 'श्रम' का अर्थ है सन्तिय होना या प्रयास करना और सप्रयाम अथवा सन्तिय हान की नियन्त्रिता या अवस्था। 'श्रम' का व्यजनात्मक अर्थ हुआ वह स्थान जहाँ सन्तिय हुआ जाय या प्रयास किया जाय। इस व्युत्पत्ति से आश्रम का शाब्दिक अर्थ हुआ 'रहन या विधाम करने का स्थान'। आश्रम, अपने व्यजनात्मक अर्थ से इस दृष्टिकोण से, प्रतीक हो जाता है जीवन यात्रा की एक अवस्था या स्थान का, जहाँ विधाम करके, व्यक्ति अगली यात्रा अवस्था की तैयारी करता है। इस शब्द में चारों भागों को मान्य की जाए ले जाने वाले जीवन के राजमाय के चार विधाम स्थल कहा जा सकता है। महाभारत में व्यास ने आश्रम अवस्था का चार भागों कहा है जो व्यक्ति को ब्रह्म तक ले जाता है। आश्रम का प्रारम्भिक धातुगत अर्थ चाह जा भी रहा हो, आश्रम धारणा का ऐतिहासिक विधाम सामाजिक समस्या के रूप में हुआ है। प्रत्येक 'आश्रम' एक सामाजिक समस्या है क्योंकि प्रत्येक आश्रम व्यक्ति के सामाजिक जीवन की एक अवस्था विगप के लिये आदर्श नियम प्रतिपादित करता है। प्रत्येक आश्रम व्यक्ति के जैविक सामाजिक विकास प्रम की एक विगप सम्पादक अवस्था है जिसमें रहकर व्यक्ति को उस अवस्था की दशाआ के अनुसार, अपने का इस प्रकार दीक्षित तथा सन्तिय और सप्रयाम करना पड़ता है कि वह विकास प्रम की अगली अवस्था तक पहुँचने का योग्य हो जाय। जीवन एक विकास-प्रम है और आश्रम व्यवस्था इसी विकासप्रम का एक मिलसिला। एक आश्रम (अवस्था) स्वभावतया दूसरे आश्रम में परिणत हो जाता है।

जसा कि पहले कहा जा चुका है, हिंदू विचारधारा के अनुसार, व्यक्ति के सामाजिक जीवन का चार भागों में बाँटा गया है। ये चार भागों हैं ब्रह्मचर्य ब्रह्मचर्य आश्रम गृहस्थ्य, वानप्रस्थ और सत्यास। ब्रह्मचर्य आश्रम वह अवस्था है जो जननमन मस्कार से प्रारम्भ होकर समावहन सम्कार तक रहती है। ब्रह्मचर्य आश्रम में व्यक्ति का विद्यार्थी जीवन आता है। हिंदू समाजताआ में विद्यार्थी का आचार्य कुलवासी, ब्रह्मचारी तथा स्नातक की मनार्थे दी गई हैं। ब्रह्मचर्य आश्रम में रहने का मनलक्ष्य है आचार्य के आश्रम में रहकर और ब्रह्मचर्य जीवन का व्यतीत करत हुए, शिक्षाध्ययन करना। ब्रह्मचर्य आश्रम के लिये, हिंदू विचारना में अनेक नियमों तथा कर्तव्यों का प्रतिपादन किया है जिनका एक ही उद्देश्य है और वह है

आत्म समय तथा साधारण जीवन यापन । इन नियमों में जोर इस बात पर नहीं है कि विद्यार्थी का क्या लेना चाहिये वरन् जोर इस बात पर दिया गया है कि किन्-किन वस्तुओं के बिना विद्यार्थी का काम चल सकता है क्योंकि ब्रह्मचर्य आश्रम का अन्ततोगत्वा उद्देश्य है धर्म का ज्ञान प्राप्त करना और समय इन्द्रिय निग्रह अस्तेय और दम का यावहारिक दीक्षा लेना ।

ब्रह्मचर्य आश्रम में सभी व्यवित समान हैं चाहे वे किसी भी वर्ण के हों और चाहे वे धनवान घर के हो या गरीब घर के^१ । उपनयन संस्कार के साथ-साथ ब्रह्मचर्य-आश्रम प्रारम्भ होता है और उपनयन संस्कार साधारण जीवन यापन के प्रति पहली शिक्षा है । मूज की वरधनी लगाटी, यज्ञोपवीत, दंड कमण्डल धारण किये हुए, व्यक्ति भिक्षाटन प्रारम्भ करता है क्योंकि भिक्षाटन ब्रह्मचर्य आश्रम का साधारण है । शतपथ ब्राह्मण के अनुसार भिक्षाटन में ब्रह्मचारी का त्रिनम्र जाना चाहिये और उसे लज्जा का अनुभव नहीं जाना चाहिये क्योंकि वह अपने लिये नहीं वरन् आचार्य तथा आश्रम के लिये भिक्षाटन करता है । भिक्षाटन में लज्जा या हीनता का अनुभव न हो इसलिये भिक्षाटन की शिक्षा उपनयन संस्कार में ही मिल जाती है । उपनयन संस्कार में कुमार पहली भिक्षा अपने माता पिता तथा सगे सम्बन्धियों से मांगता है । गुरु की आज्ञा से ही विद्यार्थी भिक्षाटन प्रारम्भ करता है । विद्यार्थी के लिये यह आवश्यक है कि वह गृहस्थ में भिक्षा के अतिरिक्त और कुछ स्वीकार न करे । भिक्षाटन परमार्थ की पहली शिक्षा है ।

मनु के अनुसार, ब्रह्मचारी को केवल दो ही बार भोजन करना चाहिये— एक बार प्रातःकाल और दूसरी बार संध्याकाल । ब्रह्मचारी का अल्पभोजी होना चाहिये । अति भोजन से बचना आवश्यक है क्योंकि अतिभोजन से अनारोग्यता तथा वनायुता वन्ती है । अति भोजन से मनुष्य अपुण्य और अस्वर्गी होता है । दूषित भोजन के वही परिणाम हात में जाते हैं जतिभोजन के हैं । मास में दूषित मिष्ठान्न और ताम्बूल का सबन विद्यार्थी के लिये त्याज्य है । भोजन की भांति साद वस्त्र पर जोर

- 1 हिन्दू शिक्षा व्यवस्था में आचार्य कुल में सभी विद्यार्थियों को एक ही सा जीवन बिताना पड़ता था । धना तथा निधन, गारक तथा प्रजा और उच्च तथा निम्न प्रविष्टा वाले परिवारों से आय हुए विद्यार्थियों का समान जीवन बिताना पड़ता था । रामायण और महाभारत में आइ हूइ क्याजा से यह स्पष्ट होता है कि राजकुमारों का भी विद्यार्थी जीवन की वही कठिनाइयाँ उठानी पड़ती थीं जा अथ साधारण परिवार के विद्यार्थियों को उठानी पड़ती थीं । कृष्ण सुदामा का विद्यार्थी-जीवन इसका उदाहरण है । भिक्षाटन पणशाला में निग्रह, यत्कल यत्त्र धारण और कुशा से बनी चटाई पर शयन सभी को समान रूप से अपनाता पड़ता था । प्रभू वही पृष्ठ 117

दिमा गया है। मनु के अनुसार, ब्राह्मण ब्रह्मचारी को सनई की छाल से बन कपड़े, क्षत्रिय को रेशमी तथा वस्त्र को ऊनी कपड़ से उतना शरीर ढकना चाहिये जितना आवश्यक है। इनके उत्तरीय (चादर) प्रमथ बारहसिंघा, रूक (एक प्रकार का हरिण) और बकरी की खाल के बने हान चाहिये। इसी प्रकार, ब्राह्मण विद्यार्थी का जनेऊ कपास का, क्षत्रिय का सनई तथा वस्त्र का ऊन का बना होना चाहिए। विष्णु के अनुसार ब्राह्मण विद्यार्थी का कपड़ा लाल रंग का (मजिष्ठा से रंगा हुआ) और वस्त्र विद्यार्थी का कपड़ा पील रंगा या (हल्दी से रंगा हुआ) हाना चाहिये या वस्त्र विद्यार्थी का वस्त्र कच्चे रेशम का हो। ब्रह्मचारी के हाथ म रहने वाला डंडा सीधा, गर-जला धार दखने में सम्यक् होना चाहिये। उसके डंडे में किमी के हृदय में भय और उद्वेग नहीं हाना चाहिये क्योंकि उसका डंडा उसकी रक्षा के लिये है न कि किमी पर आक्रमण करने के लिये। अजन सुवामिन तस जूता तथा छाता उवटन नत्य, गीन तथा वाद्य, धूत (जुवा) और जनवाद (गणगण) ब्रह्मचारी के लिये त्याग्य हैं। ब्रह्मचर्य तन के पालन के लिये यह आवश्यक है कि ब्रह्मचारी स्त्रियों से उतनी ही बात करे जितनी आवश्यक हो। सूर्योदय से पहले उठना, नित्यप्रति स्नान करना, दिन में न सोना, प्रतिदिन दो बार (प्रातः और सांयाकाल) मध्या करना आचार्य के प्रति निष्ठा रखना ब्रह्मचारी के आवश्यक वन्य हैं।

ब्रह्मचर्य आश्रम इस प्रकार, वह अवस्था है जिसमें व्यक्ति एक जोर वनाध्ययन करता हुआ धर्म के स्वरूप को समझता है और दूसरी जोर, साधारण अग्नेयपूर्ण तथा आत्मनिग्रही जीवन बिताने की व्यावहारिक शिक्षा लेता है। विद्यार्थी के लिये सत्यभाषी, आत्मनिग्रही आरिग्रही और अहिंसक जीवन का आदेश रखा गया है। ब्रह्मचारी के लिये यह आवश्यक है कि वह अपने का काम प्रायः मद और गम से दूर रखे। गौतम के अनुसार ब्रह्मचर्य आश्रम में निश्चित जिह्वा, भुजा और सामाशय को नियंत्रण तथा अनुशासन रखने की शिक्षा दीक्षा लेता है। ब्रह्मचर्य आश्रम उद्यत तप, त्याग और समस्त जीवन के लिये अपनाइ गई अनुशासित दीक्षा है जो गृहस्थ्य वाप्रस्थ और सांयात आश्रमों के लिये आवश्यक है।

ब्रह्मचर्य आश्रम अथवा विद्यार्थी जीवन की एक और विशेषता है जो हिन्दुओं द्वारा निरूपित शिक्षा पद्धति में पाई जाती है। यह विद्यार्थी आचार्यकुलवासी अर्थात् आचार्य के आश्रम का निवासी होता है। विद्यार्थी आचार्य के लिये पुत्र नृत्य है और विद्यार्थी के लिये आचार्य आध्यात्मिक पिता के समान। आचार्य तथा विद्यार्थी द्वारा बनी जाने वाली प्राधना जो प्रथम में तत्तरीय उपनिषद से उद्घन की है, का कारण इस प्रकार है, 'हं प्रभा ॥ हम दाना को रखा करो। हम साय माय भाजन मिल। हम रण पारम्परिक सहाय तथा सामञ्जस्य के साथ तान प्राप्ति के लिये अपनी शक्तियों का उपयोग करें। हम दाना के दीच वनी नी घना के भाग का आतिर्भाव न ह। यह प्राधना इस बात का प्रमाण है कि हिन्दू शिक्षा व्यवस्था में विद्यार्थी का

आचार्य की पूण देव रख म छोडने का विधान है । ब्रह्मचर्य आश्रम म विद्यार्थी अपने परिवार म नही के बराबर सम्भ्रम रखता है । अत, ब्रह्मचर्य आश्रम वह अवस्था है जिसम ब्रह्मचारी पूणतया उम पर्यावरण म रहता है जहा आचार्य की प्रधानता रहती है विद्यार्थी के सामने परिवार तथा शिक्षा मर्यादा की परस्पर विरोधी माय तार्थी नही रहती हैं, ब्रह्मचारी के लिय सम्पूण पर्यावरण तथा आदर्श एकसम रहत है जिसके कारण जीवन का उच्चतम और अततोगत्वा उद्देश्य तथा आदर्श सदब प्रखर रहता है । समान नतिकता तथा अनतिकता का मिश्रण है । समाज म यवित पर नैतिकता तथा अनतिकता दोना का प्रभाव पडता है । आचार्यकुलवास गतिक धर्मा चरण म श्रातप्रात रहता है । अत, ब्रह्मचर्य आश्रम से यवित को वह सभ तथा नतिक पर्यावरण मिलता है जिसमे व्यक्ति का स्वतंत्र व्यक्तित्व विकसित होता है । ब्रह्मचर्य आश्रम, वस्तुतः उम स्वतंत्र तथा आदर्श पर्यावरण को नियोजित करने का विधान है जिसस समाज के उच्चतम तथा अततोगत्वा आदर्श के अनुकूल व्यक्तित्व विकसित हो सक¹ ।

गाहस्थ्य आश्रम वह अवस्था है जो स्नातकोत्तर जीवन से प्रारम्भ होकर वानप्रस्थ क प्रारम्भ तक रहती है । यवित की स्नातक अवस्था ब्रह्मचर्य गाहस्थ्य आश्रम आश्रम का एक भाग है । लेकिन, वास्तव मे, स्नातकत्व वह अवस्था है जा शिक्षा समाप्ति के बाद स विवाह संस्कार तक रहती है । स्नातक का अर्थ है स्नान किया हुआ । शिक्षा समाप्ति के बाद जब ब्रह्मचारी आचार्य का आश्रम छोडता है तो उसके पहल वह स्नान करता है । यह स्नान इस बात का प्रतीक माना गया है कि यवित की शिक्षा पूण हो गई है और अब वह गृहस्थाश्रम मे प्रवेश करने के उपयुक्त हो गया है । यह स्नान समावहन संस्कार का एक अंग है, जो शिक्षा समाप्ति के बाद पितकुल मे वापस जान का प्रतीक है । ब्रह्मचर्य आश्रम धर्म को समझने की अवस्था है तो गृहस्थाश्रम धर्म का कार्यावित करके धर्म सचय की अवस्था । ब्रह्मचर्य आश्रम जीवन की तयारी है तो गृहस्थाश्रम धर्म धर्म । ब्रह्मचर्य आश्रम म व्यक्ति पुरुषार्थ के नाप म से अवगत होता है लेकिन गृहस्थाश्रम म यवित पुरुषार्थ के कम पक्ष को अपनता है । गृहस्थाश्रम वह अवस्था है जिसम व्यक्ति अर्थ तथा काम की साधना करता है ।

गाहस्थ्य आश्रम वह अवस्था है जिसम व्यक्ति सामान्यतया धर्म की, विनय तथा, अर्थ, काम और कुलधर्म की साधना मे प्रवृत्त होता है । गृहस्थाश्रम जीवन के महानतम उद्देश्य, मान, की साधना का पूवरूप है । अत, गृहस्थाश्रम एक साधन है साध्य नही । गृहस्थाश्रम एक मथमण काल है जिसम कुलधर्म की साधना करता हुआ व्यक्ति अगम आश्रमो के लिय, अपने तै तयार करता है । गृहस्थाश्रम एक वृत्त

है—व्यक्ति, पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन के प्रति एक दायित्व है—जिसे निभाना व्यक्ति का कर्तव्य है क्योंकि इस दायित्व के निभाने सधम-सचय होता है। गृहस्थाश्रम सामाजिक कर्तव्य है अर्थात् लेकिन, व्यक्ति गृहस्थाश्रम में, अपने लिये प्रवेश करता है क्योंकि धर्म सचय से व्यक्ति को मोह मिलता है। गृहस्थाश्रम प्रवृत्ति की वार ले जाता है। लेकिन, व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि वह गृहस्थाश्रमी प्रवृत्ति को निवृत्ति की ओर ले जाय क्योंकि जीवन का अन्ततोगत्वा उद्देश्य है सत्य और मोक्ष।

विवाह, गृह और कुल गृहस्थाश्रम के आधार हैं। विवाह से ही गृह तथा गृहस्थी की स्थापना होती है। गृह में तात्पर्य उस स्थान से है जहाँ पित्रो तथा पुत्रों का वासस्थान है। गृहस्थ गृह स्वामी नहीं हैं। वह तो वास्तव में पित्रा और पुत्रों की सम्पत्ति का सन्तक है। गृह वह माध्यम है जिससे वंश परम्परा चला करती है। इमीकारण, गृहस्थाश्रम वह अवस्था है जिसमें व्यक्ति कुलधर्म का पालन करता है। गृह से सम्बन्धित नियमों और कर्तव्यों गृहस्थाश्रम में आते हैं। ये विधायक और कर्तव्य शास्त्रोक्त हैं। गृहस्थाश्रम में व्यक्ति उन सभी शास्त्रोक्त विधायक का पालन करता है जिनका उद्देश्य हाता है कुल का परिरक्षण और ऐश्वर्य बनाय रखना। गृहस्थाश्रम का आधार है धर्म और धर्म के जिस पक्ष में पारिवारिक कर्तव्य नियमित हाता है उस कुलधर्म कहा गया है। कुलधर्म से तात्पर्य है कुछ निश्चित आनुषंगिक तथा कर्तव्य (Fidial and Ritual Duties) में जिनका उद्देश्य पुरुषार्थ की माधना है। आनुषंगिक-धर्म (Fidial Duties) के रूप में कुलधर्म से तात्पर्य है परिवार के विभिन्न सदस्यों के उचित पारस्परिक सम्बन्ध से और कर्तव्य-कर्तव्यों से तात्पर्य है पक्ष महाभक्त मना में जिनसे ज्ञान अनजान में किये पाप छूट जाते हैं और जिनका करना गृहस्थ के लिये आवश्यक है^१।

महात्मा बुद्ध ने अनुष्णर गृहस्थ का आह्वान कि वह जीव हत्या, अश्रम तथा असत्य से दूर रहे, दूरियों के साथ व्यवहार में पशुपात, शत्रुता, निवृद्धिता और डर का पाम न माने, भाद्रक द्रव्यों के सदन, कुमंग अश्रमण्यता और जुव में धन का अपमान न कर, बलात्कारी, डोग करने वाले, चाटुकारों और अव्ययी मनुष्यों के साथ न दूर रहे और अपने माता पिता, आचार्यों तथा बड़ा का श्रम कर। माता पिता तथा बड़ा का श्रम और उनकी आत्मा का पालन करे तथा तपस्या का परम कर्तव्य माने, यथा है। प. गी. के प्रति गृहस्थ का व्यवहार धर्म, जय और ज्ञान की मयात्मा का अनुसार हाता चाहिये। परिवार के सम्बन्धों में पारस्परिक आदर और एक दूसरे की चिन्ता सामान्यतः कुलधर्म का गौरव माना गया है^२।

१ गोपले, श्री. जी. वही पृष्ठ ५१

२ गोपले, श्री. जी. वही पृष्ठ ५१

गृहस्थ के लिये नियत किए हुए इन कृतव्यो से यह स्पष्ट होता है कि गृहस्थ का जीवन, एक आर, धर्म, अथ और काम की साधना के लिये है और, दूसरी आर, कुल तथा समाज के प्रति परमाय करने के लिए है। इसीलिए, गृहस्थाश्रम को निष्काम कर्मयोग का क्षेत्र कहा गया है। गृहस्थ का जीवन ऋषिया, पित्रो कुल देवताओं, अतिथिया और भृत्या की सेवा के लिए है। धर्म-शास्त्रो में निरूपित किए गए विधान के अनुसार दक्षी वेचल शोप भोग के अधिकारी हैं अर्थात्, गृहस्थ और उसकी पत्नी उसी भोजन (भोग) के अधिकारी ह जा ऋषिया देवो, पित्रो गृह देवताओं, अतिथिया तथा भृत्यो के उचित भाग स शोप रह जाता है। गृहस्थ को कभी भी धन सचय की चिन्ता नहीं करनी चाहिये क्योंकि उसके जीवन का उद्देश्य धन सचय नहीं परन धर्म-सचय है। धर्म सचय दान और या से होता है न कि धन स। दान तथा यज्ञ का साधन होने के नाते, धन गृहस्थ के लिए एक साधन है न कि साधन। गृहस्थाश्रम इस दृष्टिकोण से बृह अवस्था है जिसमें व्यक्ति अथ और काम की साधना करते हुए दान यज्ञ (अर्थात् सात्त्विक वस्तुओं के त्याग) की प्रशिक्षा लेता है।

गाहस्थ्य जीवन से सम्बन्धित ऋण, यज्ञ तथा दान की धारणाओं गाहस्थ्य आश्रम की सामाजिक तथा मानसिक आवश्यकता महत्ता तथा गारिमा को स्पष्ट करती हैं। उनयज्ञ-संस्कार का वर्णन करते समय यह लिखा जा चुका है कि यज्ञापीत के तीन ताग, हिन्दू मायताओं के अनुसार उन तीन ऋणो का प्रतीक हैं जो व्यक्ति को जन्म से मिलने हैं और जिनसे उन्मूण हाना व्यक्ति का कृत्य है। ये ऋण हैं ऋषि ऋण, पित ऋण और देव ऋण। गृहस्थाश्रम इन ऋणों में उन्मूण हाने का अवसर है।

ऋषि, पित्र और देव हिन्दू मायताओं के अनुसार व्यक्ति तथा समाज के तीन मुख्य विधायक हैं। पित व्यक्ति के जैविक स्वरूप का कारक है। पित से ही व्यक्ति का अस्तित्व है। पित पुत्र से मिलकर कुल बनता है। प्रत्येक व्यक्ति एक और, पित्रो की शृंखला और, दूसरी ओर पुत्रो की शृंखला की एक कड़ी है। गृह पित्रा तथा पुत्रा अर्थात् भूत तथा भावी पीढ़ियों के सदस्यों का निवास-स्थान है। गृहस्थ और गृह कुल की भूत और भावी पीढ़ियों की शृंखला की वर्तमान कड़िया हैं। व्यक्ति और कुल पित्रा से है। अतः व्यक्ति पित्रा का ऋणी है। गृहस्थ को गृहस्वामी अवश्य कहा गया है किन्तु वास्तव में हिन्दू मायताओं के अनुसार गृहस्थ तो गृह का नवल ट्रस्टी (Trustee यासी) है। विवाह के अवसर पर जो पवित्र अग्नि जलाई जाती है उसका सन्तै बनाय रक्षना गृही का कर्तव्य है। गृह मूत्रा में गृह बनाने के लिये तिन विधियों का वर्णन किया गया है और उनमें जो

मय प्राय हैं उनम गह को वह स्थान माना गया है जहा म पित उत्पन्न हुए हैं और जहा पुत्र तथा बछड़े आयेंगे। इही मन्त्रा म गह की रक्षा, दीर्घायु तथा समृद्धि क लिए दवताओं का आवाहन किया गया ह^१।

गह प्रवस पर हवन करने की प्रथा है और धम गास्त्रा म इसका विधान है। रमोई परोक्षने क पहले दव पित्रा क नाम पर चूल्ह के सामन भाग लगान की प्रथा पाई जाती है। अग्नि वस्तुत गह दवता ह। प्रत्येक हिन्दू गह म देव पित्रा का एक अलग स्थान होता है। प्रत्येक गह क अपने पित होने हैं और अपन देव जा गह की रक्षा किया करत है जिह प्रसन रचना गहस्थ का बनय है क्याकि गहस्थ इनका ऋणी है। पित यदि व्यक्ति के जिक अस्तित्व क निमित्त ह दव सुरक्षा तथा समृद्धि के ता ऋपि उस पान क जिमक द्वारा व्यक्ति का धम का पान मिलता है। हिन्दू मायताआ क अनुमार व्यक्ति क पाम अपना कुछ नहीं है वह जो कुछ भी हाता है पित्रा, ऋपियो और देवा के कारण हाता है। अत, यस्ति उनका ऋणी है और उनक ऋण म उक्कण होना यवित का कतव्य।

या और दाा क उपकरण हैं जिनके द्वारा व्यक्ति इन ऋणा से उक्कण हाता है, धम सचय करना है और बानप्रस्य तथा सयास-आश्रमा के ऋण भरण का तैयार करता है। गाहस्थ्य जीवन म अथ और काम की माधना के साथ साथ यन तथा दान की माधना म व्यक्ति म निवस्त्या मुख प्रवनि का अन्वयुक्त हाता है जा व्यक्ति की माध की और ल जाती है। या का अथ है त्रि नयवा त्याग। गीता म यन का यजनात्मक अथ निष्काम कम और परमाथ क रूप म किया गया है। यन दवताआ तथा दूसरो के प्रति समपण है^२। यस्ती निष्काम समपण की धारणा म दान की धारणा आ जाती है। निदा के रूप म दान का अथ ह वाटना, विभाजिन

1 प्रभू, पी० एच० वही पृष्ठ 218

2 गीता क अनुसार, प्रजापति ने रूप क अत में, प्रजा तथा यज्ञ दोनों को साथ साथ उत्पन्न किया। यज्ञ, प्रजा की इच्छित कामनाओं को देने वाला ह। मानव प्राणी कम से बधा हुआ ह और यज्ञ कम से उत्पन्न होता ह। अत, यज्ञ मानव प्राणी के लिये स्वभावतया आयत्तक ह। यज्ञ से देवताओं की उन्नति होती ह और देवताआ से मनुष्य को प्रिय भोग मिलते ह तथा उसकी उन्नति होती ह। जो पुरुष देवताओं को अर्पित किये बिना भोगा को भोगता ह वह चोर ह। यज्ञ दवताओं के प्रति समपण का एक माध्यम ह। यज्ञ में परमाथ की भावना निहित ह क्याकि यज्ञ से भेष बचे हुए अन्न को खाने वाले श्रेष्ठ पुरुष साथ पापों से छूट जाते ह और जो पापी अपने शरीर-पीषण के लिए ही पकते हैं, वे तो पाप का ही खाते ह। परमात्मा का वास यज्ञ में ह। अत लोक सग्रह में कमयत आयत्तक ह (१७-२४)। यज्ञ तीन प्रकार के ह—सात्विक,

करना और सीधा करना। सत्ता के रूप में दान से सामान्यतः ग्रह लिया जाता है देना, सिखाना और अनुदान में। दान का अर्थ हस्तांतरण, भेंट, उपहार और भिक्षा से भी है। दान का सामान्य अर्थ है वह जो दूसरा को दिया जाय। लेकिन हर प्रकार का देना दान नहीं है। दान के साथ वयो, किसका और किस प्रकार का विचार जुड़ा हुआ है। श्रेष्ठ दान वही है जो कर्तव्य समझकर, बिना किसी प्रत्याशा के, दश, काल और पात्र के अनुसार दिया जाय। जिस दान में देनेवाले में प्रत्युपकार की भावना हो, दान के फल के प्रति आसक्ति हो, जिमके देने में निष्काम भावना न हो, देश, काल और पात्र का विचार न हो, दान लेने वाले के प्रति तिरस्कार की भावना हो, वह दान निकृष्ट है और त्याज्य है¹। दान केवल भिक्षा नहीं है। दान व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन की आवश्यकता है क्योंकि दान दश, काल पात्र और निष्काम क्रम से दिया हुआ है। दान धर्म यज्ञ है। दान वह मायम है जिसके द्वारा व्यक्ति समाज के प्रति अपना योगदान देता है। व्यक्ति समाज से है और समाज व्यक्ति से। समाज से मिले योगदान से व्यक्ति बनता है और व्यक्ति के योगदान से समाज चलता है। दान समाज के प्रति व्यक्ति का समर्पण है। दान सधर्म की साधना होती है। अतः, दान न तो प्रत्युपकार है और न वह प्रत्युपकार के लिए किया जाता है। दान कर्तव्य है। ऋषि, पित्र, देव और मनुष्य समर्पित से दान के भागी है क्योंकि व्यक्ति इनका ऋणी है। यही कारण है कि पठन पाठन और शिक्षण-कार्य को विद्यादान कहा गया है और विवाह विधियां धर्म-यादान एक महत्वपूर्ण विधि है। सिद्ध मायमताओं के अनुसार जहां दान है वहीं यज्ञ है।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि आचार्यकुलवास यज्ञ, दान और तप धर्म के तीन स्तंभ हैं। तप के तीन प्रकार हैं—शारीरिक, धार्मिक और मानसिक। दश ब्राह्मण, गुरु और ज्ञानी की पूजा पवित्रता सरलता ब्रह्मचर्य और अहिंसा शारीरिक

राजस और तामस। शास्त्रविधि, अन्न, दान मंत्र, दक्षिणा तथा श्रद्धा रहित यज्ञ तामस है, दम्भाचरण तथा फलासक्ति के लिये किया हुआ यज्ञ राजस है और शास्त्रविधि से नियत, परमकर्तव्य मानकर अनासक्तिभाव से दिया हुआ यज्ञ सात्विक है और परम श्रेष्ठ है (17/11 12, 13)।

- 1 यज्ञ की भांति गीताकार ने दान के भी तीन प्रकार बताये हैं—सात्विक, राजस और तामस। सात्विक दान ही श्रेयस्कर है। सात्विक दान 'देना उचित है एसा समझकर बदला मिलने की आशा के बिना, देण, काल और पात्र को देखकर' दिया जाता है। राजस दान वह है जो बदला मिलने के लिये जयया फल को सम्यक् और दुःख के साथ दिया जाता है। देण, काल और पात्र का विचार किये बिना बिना मान के, तिरस्कार से दिया हुआ दान तामस कहलाता है—गीता, 17/20 22

तप है, दुःख न देन वाला सत्य प्रिय हितकर वचन तथा धर्म प्रत्याका अम्याम वाचिक तप है, और मन की प्रगतिता सौम्यता मौन आत्मसमय तथा भावना गुद्धि मान-मिक तप है^१। नष्ट उठाकर दुराग्रहपूर्वक अथवा दूसर के नाश के लिए विषा हृष्टा तप तामस है। सात्वा, मान और पूजा के लिए दम्भपूर्वक क्रिया हृष्टा अस्थिर तथा अनिश्चित तप राजस है। तामस और राजस तप अज्ञानीय हैं क्योंकि उनमें आमोक्ति का भाव रहता है। सिद्ध मायताआ के अनुसार चाँदनीय है सात्त्विक तप जो पारौरिक वाचिक तथा मानविक तथा की समभावपूर्वक परम श्रद्धापूर्ण निष्काम-साधना है^२। यज्ञ दान और तप व्यक्ति तथा समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति अवश्य करते हैं। तबिन उनका ग्यान ओम् तत मन म है। जाम् प्रतीक है, ब्रह्म वा, उस रहस्यात्मक परम सत्ता का जिससे से व्यक्ति का आधिभवि हुआ है और जो व्यक्ति का अन्तर्भाव गत-य है। ग्राहण वर और यज्ञ ब्रह्म म ही उत्पन्न हुए है। इसलिए वही (तत्) ब्राम् स य तथा कल्याणकारी (सत) है और सब कुछ अमय है। ब्रह्मवादी 'जाम का उच्चारण करके (अथवा सभी कुछ ब्रह्ममय मानकर) यज्ञ दान और तपस्वी क्रियाएँ करता है। भाधार्षी तत (ज्यात सब कुछ उमी स है) की भावना स, बम फल की इच्छा न रखता हुआ, या दान तथा तपस्वी क्रियाएँ किया करता है। सत्य कल्याण प्रशस्त धर्म यज्ञ तप-गान म हृद्धता और तन के निमित्त बम के मरुत्प म मत का भाव आता है। जत जिम यज्ञ दान और तप म श्रद्धा नही है वह अमत् है^३। श्रद्धा त तत्पय है 'ओम् तत मन के प्रति समर्पण जिम गीताकार ने निष्काम बम कहा है।

या, दान और तप की क्रियाओं में यज्ञ तथा दान तत मन के प्रति समर्पित अथ तथा काम की साधना, गृहस्थाश्रम का मून है। तबिन, इस साधना में शास्त्राव्य बर्मा तथा कर्तव्य का ही अधस्तर माना गया है। शूर्य का यज्ञ धर्म है कि वह शास्त्राव्य विधियां म यज्ञ और तप का जीवन व्यतीत कर। शूर्य उपकरण चूर्हा (चुलि) चमत्ता (पदपा) मां (पम्बर) निश बट्टा और जल्पान के प्रयोग स जान (नजा) म - 12 हत्या अवयम्माया है। दा 512 हत्या से व्यक्ति का छुटकारा भी मित्र उक्तता है। दा 24 यमावी 12-13 म छुटकारा पात क निश तथा दान और तप का साधना के लिए साधकों म शूर्य के लिए पचमहायता का विधान किया गया है। य यनमहायत हैं प्रत्यया, पितृपात, दम्पता, नयन और नया। अवयव और विद्या-गान त प्रति अति शय म उक्तता पाता है। अध्वयन और विद्या-गान म शूर्यपात का साधना होती है। श्रद्धा जुगान म तप और भाव

१ गीता १७/११, १५ १६

२ गीता १७/१७ १८ १९

३ गीता १७/२३ २५

दना पितयज्ञ क प्रतीक है। पितयज्ञ से व्यक्ति पितृऋण से उन्मुक्त होता है। देवताओं के प्रति अर्पित किया जाने वाला द्रव्य (आहुति) देवयज्ञ है जिसके द्वारा व्यक्ति देव ऋण में उन्मुक्त होता है। भूतयज्ञ भोजन की आहुति के द्वारा मानव जीवन का प्रभावित करने वाली प्रतात्माआ (भूतो) का प्रसन करके, उनके अहितकर प्रभावों से बचने की पूजा है। अतिथि सत्कार तथा पूजा नयन में आता है¹। यज्ञ दानप्रधान है न कि स्वाधप्रधान। इन यज्ञों को करना गृहस्थ का कर्तव्य है और यह कर्तव्य मानवीय तथा सामाजिक आवश्यकता है। ऋषि, पित, देव भूत तथा अतिथि की सेवा गृहस्थ का कर्तव्य ही नहीं वरन् उत्तरायित्व है। बिना इनके ऋण से उन्मुक्त हुए गृहस्थ मोक्ष का अधिकारी नहीं होता है²। किन्तु गृहस्थ के लिए यह आवश्यक है कि वह इस दायित्व को निस्पृह होकर निभाय। निस्पृह तथा निष्काम होकर अथ तथा काम की साधना और गृहस्थ आश्रम के कर्तव्य का निभाना तप नहीं तो और क्या है? हिंदू मान्यताओं में गृहस्थ आश्रम को तपस्या माना गया है और यज्ञों को नित्य सुख का स्रोत। इसी विचारधारा की पृष्ठ भूमि में, हिंदू गृह, परिवार के एकीकरण तथा उसके आध्यात्मिक नरतय की एक कड़ी बन गया है।

वानप्रस्थ तीसरी अवस्था है जिसमें शास्त्र विधान के अनुसार व्यक्ति गृहस्थ आश्रम त्याग कर, तप के लिए वन में निवास करता है। गृहस्थ जीवन वानप्रस्थ निर्लिप्त सांसारिक कर्तव्यों का जीवन है। वानप्रस्थ आश्रम गृहस्थ आश्रम से आगे, इसी निर्लिप्तता की आर उठा हुआ एक और कदम है। जब व्यक्ति पंचमहायज्ञों और अथ तथा काम की साधना करते हुए गृहस्थाश्रम के कर्तव्यों को पूरा कर ले और सभी ऋणा से उन्मुक्त हो जाय तब आश्रम धर्म के नियमानुसार व्यक्ति को सभी कुछ पुत्रों को सौंप कर जगत् में निवास करना चाहिए और धीरे धीरे सामारिक वस्तुओं में अपना सम्बन्ध कम करना चाहिए। वानप्रस्थ का अर्थ है वन में निवास करने वाला। वानप्रस्थ आश्रम के धर्मानुसार कुल, गृह और ग्राम का जात्रय छोड़ कर व्यक्ति को, वनवास करते हुए और अपनी ईर्ष्या का वश में करते हुए, नियत द्रव्य वनन का प्रयास करना चाहिए। नियत द्रव्य हान के लिए शास्त्रों में कर्ममूल के भोजन मीठी वस्तुओं का त्याग भूमि गयन वल्कल वस्त्र व्रतचारा जीवन और रागरहित वनवासी जीवन का विधान किया

1 गोखले ने जिन पांच यज्ञों का वर्णन किया है वे हैं—ब्रह्म-यज्ञ (अध्ययन तथा शिक्षण कार्य) पित यज्ञ (श्राद्ध तथा तपण), भूत यज्ञ (प्रेमाओं के प्रति आहुतिया देना) अतिथि यज्ञ (अतिथि-सत्कार) और नयज्ञ (मानवता के प्रति त्याग)। जिसे गोखले ने अतिथि यज्ञ कहा है वह प्रभू के अनुसार नयज्ञ में आता है। गोखले ने जिन यज्ञों का वर्णन किया है उनमें देव-यज्ञ नहीं है।

2 प्रभू पी० एच० एच० पर 210-218

गया है। वानप्रस्थ अवस्था में व्यक्ति को किसी भी प्रकार के विलामी प्रसाधना की प्राप्ति का प्रयास नहीं करना चाहिए और भूल से आत होने पर भी उन कर्ममूला का स्वीकार नहीं करना चाहिए जो ग्राम में उत्पन्न हुए हैं। वानप्रस्थी के लिए यह आवश्यक है कि वह अपना धार्मिक में अधिक समय श्रुतियाँ (वदो) तथा उपनिषदों के अध्ययन में लगाए और तप के द्वारा शरीर की शुद्धि करने, अपनी आत्मा का प्रबुद्ध करे क्योंकि वानप्रस्थ मोक्ष की तयारी का काल है।

वानप्रस्थ आश्रम वस्तुतः अध्ययन, चिंतन, आत्मसमर्पण वान तथा सभी जीवा के प्रति अनुकम्पा की भावना का जीवन है। इसके साथ-साथ, वानप्रस्थी के लिए पंचमहायज्ञ का भी विधान है। वानप्रस्थी को पंचमहायज्ञ उसी लगन से करने चाहिए जम कि उन्हें गृहस्थ करता है। वानप्रस्थ आश्रम में यदि व्यक्ति चाहता अपनी सत्धर्मिणी (पत्नी) को भी साथ रख सकता है यद्यपि पत्नी के साथ हात हुए भी ब्रह्मचर्य व्रत आवश्यक है। वानप्रस्थ गृहस्थाश्रम के प्रसार की एक ऐसी अवस्था है जिनमें व्यक्ति धारे धार सत्सारा-न्याय की शिक्षा लेता है। भनावज्ञानिक दृष्टिकोण से यह कहा जा सकता है कि ऐसी शिक्षा मानव के जैविक विकास की प्रक्रिया में अनुकूल है क्योंकि कर्मोद्दिष्टता की बढ़ती हुई शिथिलता के साथ साथ, अथ और काम के प्रति निर्निष्ठता का भाव जहाँ आत्म-समर्पण को प्रोत्साहित करता है वहाँ व्यक्ति को नराश्रय से भी बचाता है। जहाँ जीवन का उद्देश्य माया हो, वहाँ ऐसी शिक्षा दोषा आवश्यक नहीं जान पड़ती है।

संन्यास व्यक्ति के जीवन की चौथी तथा अंतिम अवस्था है। आश्रमों के दृष्टिकोण से व्यक्ति के जीवन की चार अवस्थाएँ हैं—श्रद्धाचारी गृही, वानप्रस्थी संन्यास और संन्यासी। संन्यासी वह व्यक्ति है जिसने सत्सारा का पूरा त्याग कर लिया है। इसलिए संन्यासी के लिए यह विधान है कि वह भिक्षा पर निर्भर रहे और भिक्षा भी दिन में बस एक बार लें। यदि भिक्षा न मिलता उसे दुखी और यदि मिलता सुखी नहीं होना चाहिए। संन्यासी के लिए मुख्य दुख लाभ अलाभ और जीवित तथा मृत समान है। संन्यासी का जीवन का आश्रय है वीतराग क्योंकि संन्यासी शून्य का अर्थ है मम (अपना सभी कुछ) त्यागी (यागने वाला)। संन्यासी के जीवन का आदर्श है इन्द्रिय निग्रह, राग द्वेष रहित अहिंसक जीवन। संन्यास वस्तुतः व्यक्ति की यह मानसिक अवस्था है जहाँ व्यक्ति का सामाजिक व्यक्तित्व समाप्त हो जाता है। संन्यासी के पारिवारिक बंधन समाप्त हो जाते हैं वह एक गृहीन परिव्राजक हो जाता है और सम्पत्ति व स्थान पर बंधन मिटाएँ उसका जीवन का आधार हो जाता है। संन्यासी का अन्त्याश्रमी कहा गया है जिसका तात्पर्य यह है कि संन्यासी सभी आश्रमों में पड़े है।

संन्यास आश्रम में प्रविष्ट करना श्रद्धालु जीवन में ही पारलौकिक जीवन में प्रवेश करना है। संन्यास आश्रम में एसा माना जाता है कि, व्यक्ति

का सांसारिक अस्तित्व समाप्त हो जाता है। सयास आश्रम में प्रविष्ट हुआ व्यक्ति मृत समझा जाता है। उसके बंधु वा बंधव प्रतीकात्मक रूप से उसकी अंत्येष्टि कर देते हैं और ऐसा माना जाता है कि प्रतीकात्मक रूप से जलाई हुई चिता की राख और लपटा से सयासी के रूप में व्यक्ति का पुनर्जन्म हुआ है। सयासी होने वाला व्यक्ति अपना पहला नाम छोड़ कर दूसरा नाम रखता है। साधारण व्यक्ति के लिए दाह संस्कार का विधान है लेकिन सयासी के लिए समाधि संस्कार का क्योंकि सयासी होने वाले व्यक्ति की अंत्येष्टि पहले ही हो चुकी हुई मानी जाती है। सयास आश्रम में व्यक्ति सांसारिक बंधनों से उन्मुक्त हुआ समझा जाता है और इसी कारण सयासी के लिए व्रण जाति ऊँच नीच तथा छूत-अछूत के सांसारिक बंधन निरर्थक है।

४

आश्रम व्यवस्था के आधार

हिंदू जीवन दर्शन में पुरुषार्थ, संस्कार और आश्रम अत्यावश्यक हैं। संस्कार और आश्रम व्यक्ति के जैविक विकास का सामाजिक आधार प्रदान करते हैं और पुरुषार्थ व्यक्ति के जैविक सामाजिक विकास को आदर्शिक आधार प्रदान करके व्यक्ति के लिए मानसिक प्रेरक बन जाते हैं। संस्कार आश्रम और पुरुषार्थ सामाजिक पंथ भूमि में व्यक्ति के जैविक तथा मानसिक विकास को, एक आरंभ गति तथा दिशा प्रदान करते हैं और दूसरी ओर, उस नियंत्रित भी करते हैं। आश्रम का एक आधार है संस्कार और दूसरा पुरुषार्थ। संस्कार, आश्रम का सामाजिक आधार है और पुरुषार्थ आदर्शिक। प्रत्येक आश्रम व्यक्ति के जैविक सामाजिक विकास की वह अवस्था है जिसमें व्यक्ति उस अवस्था से सम्बंधित पुरुषार्थ की सामना करता है। ब्रह्मचर्य आश्रम वह अवस्था है जिसमें व्यक्ति का धर्म के विभिन्न पहलुओं और अभिव्यक्तियों का ज्ञान प्राप्त करना पड़ता है। इसी अवस्था में व्यक्ति यह सीखता है कि धर्म समाज तथा व्यक्ति का आधार है और मानव जीवन का परम लक्ष्य। धर्म ब्रह्मचर्य आश्रम का नीचे अध तथा काम गृहस्थाश्रम के प्रमुख पुरुषार्थ हैं। गृहस्थाश्रम में 'जप और काम उस व्यक्ति के जीवन के प्रमुख पुरुषार्थ हैं जिसने पहले ही धर्म का महानिर्णय तथा व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कर लिया है और जिसमें यह भी सिखाया है कि मानव जाति का सर्वोपरि पुरुषार्थ है और उसके लिए आत्म ज्ञान आवश्यक है^१।

१ प्रभू के अनुसार गृहस्थाश्रम में अध और काम पुरुषार्थों की प्रधानता इसलिए रखी गई है कि व्यक्ति के जैविक विकास में एक अवस्था यह आती है जहाँ

वानप्रस्थ आश्रम में धर्म और मोक्ष जीवन के मुख्य पुरुषार्थ हो जाते हैं यद्यपि इनमें धर्म का स्थान प्रधान रहता है। स याम आश्रम म माक्ष सर्वोपरि पुरुषार्थ हा जाता है। स्यासी क लिए मोक्ष भी उसका धर्म हा जाना ह। वास्तव म यदि देखा जाय तो, सभी आश्रमों का सम्बन्ध म मात्र स है। हाँ यह अवश्य है कि कहां मोक्ष को प्रत्यक्ष प्रधानता मिली ह और कहीं अप्रत्यक्ष। अस सभी आश्रमों की परिणति स यास म होती है वस ही सभी पुरुषार्थों की परिणति माक्ष मे हाती है।

आश्रम व्यवस्था एक बार धर्म परम्परा स सम्बन्धित रही है और दूसरी ओर, यन परम्परा स। चारों आश्रमों का चार प्रकार के यन माना गया है। ब्रह्मचर्य-आश्रम को ज्ञान यन की अवस्था माना गया है। ब्रह्मचर्य आश्रम को ज्ञान यन की अवस्था माना गया है क्याकि इस अवस्था म व्यक्ति आत्म नियन्त्रण तथा ज्ञान की दीक्षा लेता है। गृहस्थाश्रम को कर्मयन कहा गया है। गृहस्थाश्रम म अथ और काम की साधना करता हुआ, व्यक्ति पत्नी, सन्तान, कुल, आचार्य, प्रतिधि तथा देवा के प्रति अपने दायित्व को निभाता है। गृहस्थाश्रम, इस प्रकार, निस्वाय सेवा की अवस्था है और निस्वाय सेवा के द्वारा ही व्यक्ति समाज के प्रति अपना योगदान देता है। वानप्रस्थ आश्रम, एक बार धीरे धीरे, अथ काम और मसार क त्याग की तथा, दूसरी बार, उस अंतिम यज्ञ की तयारी ह जा मयास आश्रम म पूण हाती है। सयास आश्रम म परमशक्ति के प्रति सदापण करके व्यक्ति ज्ञानभवन हो जाता है। सयास, एक बार सम्पूर्ण त्याग तथा दूसरी बार आत्माहुति की अवस्था है। आत्मा हुति का अर्थ ह आत्मा की आहुति अर्थात् पूणत्व का प्राप्ति क त्रिये आत्मा की परमात्मा के प्रति पूण तथा निरपेक्ष प्रपत्ति। आत्माहुति पूणत्व की दृष्टा से उत्पन्न हाती है। हिन्दू विचारधारा म पूणत्व ही उच्चतम उद्देश्य है। पूणत्व मानवी नहा

जीवन में जय तथा काम की प्रधानता बढ़ जाती ह यद्यकि अथ और काम ध्यवित तथा समाज की आनुषंगिकता के जग ह। अथ और काम व्यक्तित तथा समाज की त्रिपंगुलता के गारोरिक, दृष्टिक तथा मानसिक आधार ह। व्यक्ति और समाज क लिए उनकी उचित अभिव्यक्ति आवश्यक ह जिसे धर्म द्वारा नियन्त्रित करने का प्रयत्न किया गया ह। अथ और काम का धर्म तथा आश्रम व्यवस्था क द्वारा मानव जीवन में इस प्रकार समन्वय किया गया ह कि उनकी उचित अभिव्यक्ति से मानव तथा समाज को बच रक्षा, स्थायित्व वृद्धि तथा विकास मिले जो प्रत्येक व्यक्ति क चरितार्थ क अनुकूल हो। धर्म तथा आश्रम क द्वारा अथ और काम की अभिव्यक्ति, व्यक्ति में साग आत्मनिर्द्वन्द्व तथा आत्मगति की प्रोत्साहित करती ह। इग मजग आत्मनिर्द्वन्द्व तथा आत्मगतिके साथ तथा उनकी सामूहिक आनुषंगिकता की ऐतिहासिकता क योज निहित ह—प्रन वही पृष्ठ ७७

का सांसारिक अस्तित्व समाप्त हो जाता है। सत्यास आश्रम में प्रविष्ट हुआ व्यक्ति मृत समझा जाता है। उसके बंधु या धर्म प्रतीकात्मक रूप से उसकी अंत्येष्टि कर देते हैं और ऐसा माना जाता है कि प्रतीकात्मक रूप से जलाई हुई चिता की राख और लपटा से सत्यासी के रूप में व्यक्ति का पुनर्जन्म हुआ है। सत्यासी हान वाला व्यक्ति अपना पहला नाम छोड़ कर दूसरा नाम रखता है। साधारण व्यक्ति के लिए दाह संस्कार का विधान है लेकिन सत्यासी के लिए समाधि संस्कार का यद्यपि सत्यासी होने वाले व्यक्ति की अंत्येष्टि पहले ही हो चुकी हुई मानी जाती है। सत्यास आश्रम में व्यक्ति सांसारिक बंधन से उन्मुक्त हुआ समझा जाता है और इसी कारण सत्यासी के लिए व्रण जाति ऊच नीच तथा दूत जहूत के सांसारिक बंधन निरर्थक हैं।

४

आश्रम व्यवस्था के आधार

हिन्दू जीवन दान में, पुरुषार्थ, संस्कार और आश्रम जयायाधित है। संस्कार और आश्रम व्यक्ति के जैविक विकास का सामाजिक आधार प्रदान करते हैं और पुरुषार्थ, व्यक्ति के जैविक सामाजिक विकास का आदर्शिक आधार प्रदान करते हैं और व्यक्ति के लिए मानसिक प्रेरक बन जाते हैं। संस्कार आश्रम और पुरुषार्थ सामाजिक पृष्ठभूमि में व्यक्ति के जैविक तथा मानसिक विकास को, एक आर, गति तथा दिशा प्रदान करते हैं और दूसरी ओर उसे नियंत्रित भी करते हैं। आश्रम का एक आधार है संस्कार और दूसरा पुरुषार्थ। संस्कार, आश्रम का सामाजिक आधार है और पुरुषार्थ आदर्शिक। प्रत्येक आश्रम व्यक्ति के जैविक सामाजिक विकास की वह अवस्था है जिसमें व्यक्ति उच्च अवस्था से सम्बंधित पुरुषार्थ की सामना करता है। द्वादशवय आश्रम वह अवस्था है जिसमें व्यक्ति का धर्म का विभिन्न पहलुओं और अभिव्यक्तियों का ज्ञान प्राप्त करना पड़ता है। इसी अवस्था में व्यक्ति यह सीखता है कि धर्म समाज तथा व्यक्ति का आधार है और मान्य जीवन का परम लक्ष्य। धर्म द्वादशवय आश्रम का और अर्थ तथा काम गृहस्थाश्रम का प्रमुख पुरुषार्थ है। गृहस्थाश्रम में अर्थ और काम उस व्यक्ति का जीवन के प्रमुख पुरुषार्थ हैं जिसने पहले ही धर्म का सार्थक तथा यावहारिक ज्ञान प्राप्त कर लिया है और तिसने यह सीख लिया है कि माधु जीवन का सर्वोपरि पुरुषार्थ है और उसके लिए आत्म ज्ञान आवश्यक है।

- 1 प्रभू के अनुसार गृहस्थाश्रम में अर्थ और काम पुरुषार्थों की प्रधानता इसलिए रखी गई है कि व्यक्ति के जैविक विकास में एक अवस्था वह आती है जब

वानप्रस्थ आश्रम में धर्म और मान्य जीवन के मुख्य पुरुषार्थ हो जाते हैं यद्यपि इनमें धर्म का स्थान प्रधान रहता है। स यास आश्रम में मान्य सर्वोपरि पुरुषार्थ हो जाता है। स यासी के लिए मोक्ष भी उसका धर्म ही होता है। वास्तव में यदि देखा जाय तो, सभी आश्रमों का सम्बन्ध मान्य ही है। हाँ यह ध्यवश्यक है कि कही मोक्ष को प्रथम प्रधानता मिली है और कही धर्म प्रथम। जैसा सभी आश्रमों की परिणति स यास में होती है वही सभी पुरुषार्थों की परिणति मान्य में होती है।

आश्रम व्यवस्था, एक और धर्म परम्परा से सम्बन्धित रही है और, दूसरी ओर, धर्म परम्परा से। चार आश्रमों को चार प्रकार के यज्ञ माना गया है। ब्रह्मचर्य-आश्रम का ज्ञान यज्ञ की अवस्था माना गया है। ब्रह्मचर्य आश्रम का ज्ञान यज्ञ की अवस्था माना गया है क्योंकि इस अवस्था में व्यक्ति आत्म नियंत्रण तथा ज्ञान की दीक्षा करता है। गृहस्थाश्रम का कर्मयज्ञ कहा गया है। गृहस्थाश्रम में अथ और काम की साधना करता हुआ, व्यक्ति पत्नी, सन्तान कुल, आचार्य, अनिधि तथा देवा के प्रति अपने दायित्व का निभाता है। गृहस्थाश्रम, इन प्रकार, निस्वार्थ सेवा की अवस्था है और निस्वार्थ सेवा के द्वारा ही व्यक्ति समाज के प्रति अपना योगदान देता है। वानप्रस्थ आश्रम एक और धर्म धीरे धीरे, अथ, काम और समार के त्याग की तथा, दूसरी ओर, उस अन्तिम यज्ञ की तैयारी है जो स यास आश्रम में पूरा होती है। स यास-आश्रम में परमात्मा के प्रति सर्वांगीण करके व्यक्ति पानभक्त हो जाता है। स यास, एक और सम्पूर्ण त्याग तथा, दूसरी ओर, आत्मानुति की अवस्था है। आत्मा तृप्ति का अर्थ है आत्मा की आहुति अर्थात् पूणत्व की प्राप्ति के लिए आत्मा का परमात्मा के प्रति पूण तथा निरपथ प्रपत्ति। आत्मानुति पूणत्व का अर्थ है उत्सन्न होना। त्रिद्विचारागार में पूणत्व ही उत्कृष्टतम उद्देश्य है। पूणत्व मानवी नृत्

जावन में अथ तथा काम की प्रधानता उड़ जाती है क्योंकि अथ और काम व्यक्ति तथा समाज का आनुवर्गिकता के अंग है। अथ और काम व्यक्ति तथा समाज की विमाणात्मता के पारार्थिक, दार्शनिक तथा मान्यिक आधार है। व्यक्ति और समाज के लिए उनका उचित अन्वितिक अर्थ है कि धर्म द्वारा नियंत्रित करने का प्रयोग किया गया है। उद्योग-धर्म का धर्म तथा आश्रम व्यवस्था के द्वारा मान्य-जीवन में इन दोनों अर्थों को प्राप्त करने का उचित अन्वितिक अर्थ है कि मान्य-जीवन में इन दोनों अर्थों को प्राप्त करने का उचित अन्वितिक अर्थ है कि मान्य-जीवन में इन दोनों अर्थों को प्राप्त करने का उचित अन्वितिक अर्थ है। धर्म तथा आश्रम के द्वारा अथ तथा काम को नियंत्रित करने का उचित अन्वितिक अर्थ है कि मान्य-जीवन में इन दोनों अर्थों को प्राप्त करने का उचित अन्वितिक अर्थ है। स यास आत्मनियन्त्रण तथा आत्मनियन्त्रण का उचित अन्वितिक अर्थ है कि मान्य-जीवन में इन दोनों अर्थों को प्राप्त करने का उचित अन्वितिक अर्थ है। आत्मनियन्त्रण तथा आत्मनियन्त्रण का उचित अन्वितिक अर्थ है कि मान्य-जीवन में इन दोनों अर्थों को प्राप्त करने का उचित अन्वितिक अर्थ है। वास्तविकता के अन्तर्गत आत्मनियन्त्रण का उचित अन्वितिक अर्थ है कि मान्य-जीवन में इन दोनों अर्थों को प्राप्त करने का उचित अन्वितिक अर्थ है।

मानवीय एपणा है जा पुरुष को पुरुषोत्तमत्व की ओर ले जाती है । सत्यास आश्रम मे ही व्यक्ति, इस मसार मे आत्मा के स्थान, महत्व और अथ को समझकर, अपने को मोक्ष के लिये तयार करता है । इस प्रकार, चार आश्रमा मे जबिक तथा सामाजिक आवश्यकताओ के अनुसार, व्यक्ति को ज्ञान, कम, भक्ति व प्रति आत्मसमर्पण करना पडता है । प्रत्येक आश्रम मे सम्बन्धित यत्न, उस आश्रम के उद्देश्य को व्यक्त करता है । यत्न मे, जसा कि पहले कहा जा चुका है त्याग तथा समर्पण की भावना रहती है । आश्रम को यत्न मानकर आश्रम के उद्देश्य के प्रति, व्यक्ति मे समर्पण की भावना लाने का प्रयास किया गया है । आश्रम व्यवस्था मे ज्ञान, कम और भक्ति के प्रति प्रमत्त अपने को समर्पित करता हुआ व्यक्ति, एक ओर जैविक तथा सामाजिक आवश्यकताओ की पूर्ति करता है और दूसरी ओर, जीवन के परम उद्देश्य मोक्ष को प्राप्त करता हुआ पूर्णत्व को प्राप्त करता है ।

गोखले के अनुसार आश्रम व्यवस्था का निरूपण ब्राह्मण ग्रन्थो के युग मे हुआ है यद्यपि इनका उल्लेख पाणिनि तथा कौटिल्य के युग मे भी मिलता है । धर्म शास्त्रो मे प्रत्येक आश्रम के धर्म का विस्तृत निरूपण मिलता है¹ । प्रारम्भ मे तीन आश्रमा का ही वर्णन मिलता है । छांदोग्य उपनिषद् मे धर्म के तीन स्वर्धो (जाचायकुलवास, गृहस्थ जीवन तथा तप) के रूप मे केवल तीन ही आश्रमो का वर्णन मिलता है । मनुस्मृति मे भी, विद्वाना का ऐसा मत है कि तीन ही आश्रमा का निरूपण हुआ है । हिंदू विचारधारा मे तीन आश्रमा का निरूपण दो दृष्टिकोणा से किया गया है । एक, ज्ञानप्रस्थ और सत्यास वस्तुतः एक ही आश्रम मे जाते हैं । अतः उह एक ही आश्रम माना जा सकता है । दूसरे, जब सत्यास मे सम्पूर्ण त्याग हा जाता है और व्यक्ति का अपने लिये तथा ससार के लिये अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है तो सिद्धांततः सत्यास आश्रम का अस्तित्व ही नहीं है । इसीकारण, एक विचारधारा यह भी रही है कि सत्यास वस्तुतः आश्रम ही नहीं है । इसीलिये चार के स्थान पर तीन आश्रमो का वर्णन मिलता है । प्रारम्भ मे ब्रह्मचर्य गृहस्थ, ज्ञानप्रस्थ तथा सत्यास के अनुक्रम का भी वर्णन नहीं मिलता है । ब्रह्मचर्य गृहस्थ ज्ञानप्रस्थ तथा सत्यास के अनुक्रम मे आश्रमो का वर्णन उपनिषदो के उत्तरकाल मे मिलता है² ।

हिम ज्ञान मे व्यक्ति जिस आश्रम मे प्रवेश करे यह मतमतांतर का विषय रहा है । जिस अवधि और जिस आयु तक व्यक्ति विभिन्न आश्रमो मे रहे, यह भी मतमतांतर का विषय है । हिम आयु मे व्यक्ति ब्रह्मचर्य आश्रम मे प्रवेश करे, इसका निवारण अलग अलग वर्गों के लिये अलग अलग किया गया है । जिसका वर्णन आगे चल कर, वर्ण व्यवस्था के सन्दर्भ मे किया जायगा । इस विषय मे सवमाय माधारण

1 गोखले धी० जी० वही पृष्ठ 38

2 प्रभ० पी० एच० वही पृष्ठ 8,

नियम यह है कि जब व्यक्ति की शिक्षा दीक्षा समाप्त हो जाय और व्यक्ति वैवाहिक जीवन का दायित्व संभालने के योग्य हो जाय तब वह गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे। जब बाल में भुरिया पड़ने लगे, बाल सफेद हान लगे और व्यक्ति पीना को देख ले, तब स्त्री के साथ वनवासी जीवन व्यतीत करे और इस प्रकार धीरे धीरे अपन को सम्पूर्ण त्याग तथा आत्माहुति के लिये तैयार करे। वात्स्यायन ने सौ साल की स्वाभाविक आयु का तीन काल (बाल्य, यौवन तथा स्थविर) में बांटा है। वात्स्यायन ने अनुसार, विद्या ग्रहण का काल है, यौवन काम की स्वाभाविक एषणा की सन्तुष्टि का और स्थविरकाल (वृद्धावस्था) धर्म तथा मोक्ष की साधना का। लेकिन, साथ ही साथ वात्स्यायन ने यह भी कहा है कि मानव जीवन अस्थिर तथा अनिश्चित है। अतः, जब अवसर मिले तभी विद्या, काम, धर्म तथा मोक्ष का साधन करना उचित है। इसका तात्पर्य यह है कि त्रिवर्गी पुष्ट्यार्थ (धर्म, अध और काम) का उचित समन्वय करके उनकी इस प्रकार साधना करनी चाहिये कि उनमें से कोई भी किसी का बाधक न बने। मनु ने भी इसी पर जोर दिया है कि त्रिवर्ग पुष्ट्यार्थ के उचित समन्वय में ही व्यक्ति का सर्वोत्तम लाभ होता है^१।

इन चारों आश्रमों का अनुक्रम से पालन करना चाहिये या नहीं, यह भी मतमातर का विषय है। मनु ने गृहस्थाश्रम के बाद सीधे संन्यास आश्रम में प्रविष्ट होने की अनुमति दी है। जाबाल श्रुति से उद्धरण देने हुए, मनु के भाष्यकार कुल्भुक भट्ट ने यह लिखा है कि ब्रह्मचर्य आश्रम का पूर्ण होने पर व्यक्ति को प्रथम गृहस्थ्य, ज्ञानप्रस्थ तथा संन्यास आश्रमों में प्रवेश करना चाहिये या, यदि व्यक्ति चाहता है वह ब्रह्मचर्य आश्रम के बाद या गृहस्थाश्रम के बाद सीधे संन्यास आश्रम में प्रवेश कर सकता है। स्वामी न्यायनन्द ने केवल उसी का ब्रह्मचर्य से संन्यास आश्रम में जान की राय दी है नियम दस साधना की क्षमता हो। मानववत्स्य ने भी गृहस्थाश्रम से संन्यास आश्रम में प्रविष्ट होने की अनुमति दी है^२। लेकिन दूसरी ओर धर्मशास्त्रों में यह कहा गया है कि प्रत्येक व्यक्ति का प्रथम चार आश्रमों का अनुक्रम जीवन स्थानीय करना चाहिये क्योंकि मानव का भागी वही व्यक्ति होता है जो आश्रमों का अनुक्रम के अनुसार जीवन व्यतीत करता हुआ, मानिक जीवन व्यतीत करता है और जिसे रूप होता है और जीवन का अन्तिम स्थिति मिश्रण तथा परिवर्तन में व्यतीत करता है।

हिंदू विचारधारा में साधारणतः चारों आश्रमों का अनुक्रमानुसार जीवन व्यतीत करने की महत्ता स्वीकार की गई है। सीधे संन्यास में संन्यास आश्रम में प्रवेश करने की अनुमति जाबाल के रूप में केवल विभिन्न दसकों में दी गई है। जीवन एक अद्वितीय विकास है और जीवन को अकारणतः तभी पूरा हो सकता

१ प्रभू पी० एच० चहो पृष्ठ ४०

२ प्रभू चहो पृष्ठ ४१

जब जैविक विकास की सभी अवस्थाओं के अनुसार जीवन व्यतीत किया जाय ।
जैसा कि पहले कहा जा चुका है ब्रह्मचर्य गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा सत्याम का अनुक्रम
व्यक्ति के जैविक, मानसिक तथा सामाजिक विकास का आधार है । ब्रह्मचर्य-आश्रम
से व्यक्ति ऋषि ऋण से उच्छ्रुण होता है गृहस्थ आश्रम में पित ऋण से और वान-
प्रस्थ तथा सत्याम से देव ऋण से । य तीना ऋण सामाजिक आवश्यकताओं में बंध हैं ।
अतः इनमें से किसी की भी अवहेलना नहीं की जा सकती । हा, यह अवश्य है कि वान
प्रस्थ तथा सत्याम को एक में मिलाया जा सकता है क्योंकि उनका उद्देश्य एक है । हिंदू
विचारधारा में यह सवमाय है कि मान का अधिकारी वही है जिसने सत्याम के पहले
के तीना दायित्वा का भार निभा लिया है । स्वयं मनु ने यह स्वीकार किया है कि
जा व्यक्ति बिना तीना आश्रमों के दायित्व को निभाये मोक्ष प्राप्ति का प्रयास करता
है, वह ऊँच गामी होने के बजाय अध पतित होता है ।

यह इसी विचारधारा का परिणाम है कि, एक ओर, ब्रह्मचर्य तथा सत्याम
आश्रमों का सर्वाधिक वाञ्छनीय माना गया है और, दूसरी ओर, गृहस्थ आश्रम को
सर्वाधिक महत्ता दी गई है । व्यास के अनुसार गृहस्थ से पशुधा और अय
अनेक प्राणियों का सहायता मिलती है । गृहस्थ आश्रम में ही धर्म, अथ तथा काम की
एक साथ साधना होती है । गृहस्थ जीवन के दायित्वों तथा कर्तव्यों को निभाना ही
सर्वोच्च धर्म है । गृहस्थाश्रम में ही धर्म, अथ तथा काम की साधना का प्रयोग
मोक्ष की साधना के लिये किया जा सकता है । गृहस्थ आश्रम वस्तुतः अय आश्रमों
का आधार है क्योंकि गृहस्थ वही दातृ पर ब्रह्मचारी, ऋषि और देव निभर करत
है । गृहस्थाश्रम ही वयनितक तथा सामाजिक ऋणों से उच्छ्रुण होने का मायम है ।
गृहस्थाश्रम से ही प्रजनन की आवश्यकता की पूर्ति होती है । जिस प्रकार सभी
प्राणियों का आधार वायु है उस सभी छोटी बड़ी नदियों का आधार समुद्र में है
वैसे ही सभी आश्रमों का आधार और दायित्व गृहस्थाश्रम से है । सभी आश्रमों के
व्यक्तियों में गृहस्थ का स्थान श्रेष्ठ है क्योंकि गृहस्थ तीना आश्रमों के व्यक्तियों का
आधार प्रदान करता है । मनुस्मृति के अनुसार, जिस व्यक्ति को इस लोक में स्थायी
गुण और परलोक में नित्य सुख की चाह हो उसके लिये गृहस्थाश्रम का दायित्व
निभाना आवश्यक है । गृहस्थाश्रम के लिये महान प्रयत्नों की आवश्यकता है क्योंकि
गृहस्थाश्रम का भार मगवत ही उठा सकता है^१ । लेकिन हिंदू विचारधारा में गृहस्था

- 1 महाभारत में पाण्डित्य में जाये एक प्रसंग के अनुसार, जब सत्तर से तम
आकर युधिष्ठिर ने सत्याम लेने की सोची तो उनके भाइयों, उनकी पत्नी तथा
द्विपायन व्यास ने उन्हें गृहस्थाश्रम में ही रहने की सलाह दी । उनको वह
दृष्टान्त सुनाया गया जिसमें कुछ ब्राह्मण कुमारों ने अल्पायु में सत्याम ले लिया
था और इंद्र ने उन पर दया करके उनको यह शिक्षा दी थी कि गृहस्थाश्रम का

श्रम की बाछनीयता सापेक्ष है न कि निरपेक्ष । गृहस्थाश्रम न तो अपने में पूर्ण है और न अपने तक ही सीमित है । सभी आश्रम परस्पर निर्भर साधन हैं । एक साधन के रूप में प्रत्येक आश्रम दूसरे आश्रम से बंधा हुआ है । जीवन का साध्य है भ्रममुक्त्य और निश्चयस जिसकी चरम अभिव्यक्ति है मोक्ष । व्यक्ति अपनी जगह पर है और समाज अपनी जगह पर । गृहस्थाश्रम से व्यक्ति समाज से बंधता है । व्यक्ति मानप्रस्य और समाज व्यक्ति को समाज से ऊपर उठाते हैं—वही, जन्म व्यक्ति का ही स्वत्व समाप्त हो जाता है और वह सर्वात्मता में लीन हो जाता है । व्यक्ति का सर्वात्मत्व में लीन होना एक क्रमिक विकास प्रक्रिया है । आश्रमा का अनुक्रम इसी विकास प्रक्रिया की श्रृंखला है ।

वापित्व दिये बिना साक्षात् बेकार है । उस दृष्टान्त में आपे इन्द्र के कपनानुसार गृहस्थाश्रम के उचित प्रबंध पर ही सभी कुछ निर्भर है । गृहस्थाश्रम का जीवन प्रोष्ठ और परित्र है क्योंकि उसमें जीवन का उद्देश्य ही संपत्ति के लिये काफी स्थान है— प्रभू यही पृष्ठ 93

वर्ण-व्यवस्था

वर्ण-व्यवस्था में धर्म के सामाजिक पक्ष को अभिव्यक्ति हुई है। जैसे आश्रम को एक ओर व्यवस्था माना गया है और, दूसरी ओर, धर्म माना गया है, वैसे ही वर्ण का, एक ओर, व्यवस्था माना गया है और दूसरी ओर, धर्म। हिन्दू मान्यताओं के अनुसार, व्यक्ति एक ओर सत्कारों के माध्यम से आश्रम धर्म पालन करता हुआ, सामाजिक होता है और जीवन के परम उद्देश्य को प्राप्त करता है और दूसरी ओर सामाजिक व्यक्ति अपने स्वाभाविक गुणों के अनुसार किसी-न किसी वर्ण में जीवन व्यतीत करता है। समाज में व्यक्ति का जीवन एक ओर सत्कार तथा आश्रम से बढ़ा हुआ है और दूसरी ओर, वर्ण से। आश्रम धर्म तथा व्यवस्था व्यक्ति में निहित जबकि क्षमता (धर्म) को स्वाभाविक अभिव्यक्ति के सामाजिक संचालन की योजना पर आधारित है और वर्ण धर्म तथा व्यवस्था व्यक्ति के स्वाभाविक गुणों के सामाजिक विकास तथा संचालन पर है। सत्कार तथा आश्रम से व्यक्ति का स्वाभाविक जबकि तथा सामाजिक विकास होता है। वर्ण से व्यक्ति का उसके स्वाभाविक गुणों के अनुसार सामाजिक प्रतिष्ठा तथा भूमिका (Social Status and Role) मिलती है। आश्रम व्यवस्था का प्रत्यक्ष सम्बन्ध समाज में व्यक्ति और

सामाजिक संगठन से है, लेकिन वण व्यवस्था का सम्बन्ध वग तथा सामाजिक संरचना से है। वण का प्रत्यक्ष सम्बन्ध उन समूहों और उनके पारस्परिक सम्बन्धों से है जिनमें, अपने स्वाभाविक गुणों के अनुसार, प्रत्येक व्यक्ति का स्थान मिलता है वण से ही व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा तथा भूमिका निर्धारित होती है। अतः वण व्यवस्था की सामाजिक क्रिया का आधार बन जाता है। इसी कारण हिन्दू मायताधर्म में, वण का सम्बन्ध धर्म से है। वण के अनुसार धर्म ही व्यक्ति का धर्म है और यही मायता वण धर्म का सार है।

अपन मूल रूप में वण एक संरचनात्मक सामाजिक व्यवस्था है जिसका आधार धर्म है। समाजशास्त्रीय मायताओं के अनुसार जहाँ सामाजिक संरचना (Social Structure) में वयों समूहों में उच्चोच्चपरम्परा (Hierarchy) पाई जाती है और उसी उच्चोच्च परम्परा के अनुसार व्यक्ति की सामाजिक भूमिका तथा प्रतिष्ठा निर्धारित होता है। हिन्दुत्व में प्रतिपादित समाजशास्त्रीय मायताओं के अनुसार, सामाजिक उच्चोच्चपरम्परा भूमिका तथा प्रतिष्ठा का आधार धर्म है। इस दृष्टिकोण से वण व्यवस्था के दो अयो-यायिन पहलू हैं—एक, सामाजिक वण व्यवस्था (Social Class System) का और दूसरा वण धर्म का। पहलू का सम्बन्ध समाज में स्वभावतः उत्पन्न होने वाले वर्गों उनके स्तरों तथा उनमें निहित उच्चोच्च परम्परा से है और दूसरे का इन वर्गों की सामाजिक महत्ता और इनमें जाने वाले व्यक्तियों के धर्मों से है। वण व्यवस्था तथा वण धर्म व सामाजिक उपकरण हैं जिनके माध्यम से व्यक्ति की सामाजिक वृत्ति का अभिव्यक्ति मिलती है।

२

वण की व्याख्या

वण की धारणा व समुचित स्पष्टीकरण के लिए वण व्यवस्था तथा वण धर्म का जगत्-जगत् स्पष्टीकरण आवश्यक है। सभ्यता भाषा में वण शब्द के कई अर्थ मिलते हैं। क्रिया के रूप में वण शब्द के अर्थ हैं—गणना, यत्न करना, पहना, लिखना, चित्रण करना, अंकित करना, प्रणाम करना, प्रसारना, पढ़ना और प्रभावित करना। तथा के रूप में, वण शब्द का अर्थ है—पाना, रंग, लक्ष्मी का रंग, सौन्दर्य, एक मानव समूह, गणजाति (Tribe) रंग, प्रजाति नस्ल, प्रकार, एक जार ध्वनि एक गण ध्वनि प्रतिष्ठा, परिधान अलंकरण, बाह्य स्वरूप, गीतधर्म, गीत का विषय, उपासना, दखान, हाथियों व रहने का स्थान विशेषता और धार्मिक अनुष्ठान इत्यादि, वण का प्रयोग बाह्यण। शत्रिय वंश और पृष्ठ में से

प्रत्येक वग के लिए भी किया जाता है¹ और इसी सद्भ म वण गद का सबसे अधिक प्रचलन है। वण शब्द की व्युत्पत्ति व्री धातु से की जा सकती है। 'व्री' धातु का अर्थ है 'चुनना या चुना हुआ होना। इस सद्भ म वण शब्द का अर्थ हुआ वह जा औरा की अपेक्षा चुना गया है। मानव समाज के सद्भ म वण का आगम है वग। अतः समाजशास्त्रीय सद्भ म, वण गद का अर्थ हुआ चुना हुआ वग। जहाँ चुनने का भाव है वही पूर्वता या पूर्वगामिता क्रम (Order of Precedence) का भाव आ जाता है। व्याकरण में अक्षरों के क्रम के लिए वण माला गद का प्रयोग किया गया है जो इस तथ्य की पुष्टि करता है कि जहाँ वण शब्द का प्रयोग चुन, चुने हुए या वग के अर्थ में हुआ है वहाँ पूर्वगामिता क्रम (Order of Precedence) का भाव विद्यमान है और जहाँ पूर्वगामिता क्रम का भाव है, वही उच्चाच्च परम्परा का भाव है। इरावती बर्वे के अनुसार संस्कृत साहित्य में मानव समाज का वर्णन करने के लिए जहाँ वण गद का प्रयोग हुआ है वहाँ वण से तात्पर्य है वग की सामाजिक प्रतिष्ठा तथा स्थिति से। अतः वण व्यवस्था में तात्पर्य है सामाजिक वर्गों की प्रतिष्ठा तथा उनकी कार्यात्मक महत्ता का अनुक्रम से।

हिंदू मान्यताओं के अनुसार, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—ये चार वर्ण समाज के आधार हैं। प्रत्येक व्यक्ति का अपने गुण तथा कर्मों के अनुसार इन्हीं में से किसी न किसी का सदस्य होना पड़ता है और जिस वर्ण का व्यक्ति सदस्य होता है उसी के अनुसार जीवन बिताना व्यक्ति का धार्मिक कर्तव्य हो जाता है। प्रत्येक वर्ण के सदस्यों के क्या सामाजिक कर्तव्य हैं इसका निरूपण धर्म के द्वारा किया गया है। चारों वर्ण एक उच्चाच्चपरम्परा में गुंथे हुए हैं जिसमें ब्राह्मण की प्रतिष्ठा सर्वोपरि है और शूद्र की निम्नतम। सामाजिक प्रतिष्ठा में क्षत्रिय, ब्राह्मण से निम्न किंतु वैश्य से उच्च माना गया है और वैश्य क्षत्रिय से निम्न किंतु शूद्र से उच्च माना गया है।

1 आष्टे, वी० एस्० दि स्टूडेंट्स संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी पृष्ठ 493

2 सामान्यतः, चार वर्ण माने गए हैं यद्यपि कहीं-कहीं तीन वर्णों का भी उल्लेख मिलता है और कहीं कहीं पाँच का। प्रारम्भिक वैदिक साहित्य में कहीं कहीं आय तथा दास और कहीं कहीं ब्राह्मण और राजा या या क्षत्रिय दो ही वर्णों का वर्णन मिलता है। आय समाज में ब्राह्मण, राजा या (क्षत्रिय) और वीण (वैश्य) तीन वर्णों का उल्लेख मिलता है। शूद्र वर्ण की उत्पत्ति बाद में हुई ऐसा माना जाता है। मुक्तनीतिसार की रचना मुसलमानों के आक्रमण काल के समय हुई है। उसमें शूद्र वर्ण से नीचे एक पाचवाँ श्लेच्छ वर्ण जोड़ दिया गया है। शूद्रों के नीचे चाण्डाला इत्यादि का एक ऐसा वर्ण रहा है जिसे साधारणतः अवर्ण माना गया है लेकिन, कहीं कहीं उसे पंचम वर्ण मान लिया गया है।

यहाँ यह प्रश्न उठता है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र क्या हैं ? महाभारत के वन पर्व में यह कहा गया है कि सत्ययुग^१ में वण विभाजन नहीं वर्ण और प्रजाति था। किन्तु महाभारत के शांतिपर्व में प्राये एक प्रसंग में, वण व्यवस्था की उत्पत्ति के प्रश्न पर महर्षि भृगु से यह कहलाया गया है कि पहले ब्राह्मण वण की उत्पत्ति हुई और बाद में क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र वर्णों की। ब्राह्मण का वण सित (श्वेत) क्षत्रिय का साहित (रक्तम) वैश्य का पीत (पाला) और शूद्र का असित (कृष्ण) था। इस आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है कि सम्भवतः भारत में वण-व्यवस्था का आधार विभिन्न प्रजातियों का सम्पर्क रहा है। भारत के इतिहासकारों ने बहुधा वण-व्यवस्था का आधार प्रजाति को माना है जिस मानवशास्त्र के विद्यार्थियों ने अस्वीकार किया है। गोखले के अनुसार, 'जब आय भारत में आय तो सबसे पहला प्रजाति के आधार पर सामाजिक विभाजन का प्राविर्भाव हुआ। यही विभाजन प्रागे चल कर वण व्यवस्था का आधार बना यद्यपि कालांतर में सामाजिक विभाजन के आधार के रूप में, प्रजाति का महत्त्व समाप्त हो गया। फिर भी प्रजाति के आधार पर उत्पन्न हुआ सामाजिक विभाजन एक समाजशास्त्रीय परिकल्पना (Sociological Fiction) के रूप में बनता रहा'^२। गोखले ने, एक ओर वण की उत्पत्ति प्रजाति से मानी है और दूसरी ओर वण को केवल परिकल्पना (प्रवास्तविकता) कहा है। पात्रिकर ने भी वण-व्यवस्था को परिकल्पना ही माना है क्योंकि उनके अनुसार इतिहास द्वारा यह सिद्ध किया जा सकता है कि चतुर्वर्णी विभाजन, वास्तव में कभी अस्तित्व में था ही नहीं^३।

यहाँ ये प्रश्न उठते हैं एक, क्या वण कभी परिकल्पना ही है या केवल भाषा है जिसकी प्राचीन हिन्दू समाजशास्त्रियों ने केवल रूपना ही की है और जिसने कभी भी व्यावहारिक वास्तविकता का रूप लिया ही नहीं है, दूसरा, क्या वण व्यवस्था का आधार प्रजाति है। वण किस प्रकार की वास्तविकता है ? इस प्रश्न के समाधान की समस्या का आगे के लिए धारक, यहाँ इस प्रश्न का लक्ष्य है कि क्या वण व्यवस्था का आधार प्रजाति है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारत में समार की लगभग सभी मुख्य प्रजातियाँ पाई जाती हैं और यह भी सही है कि ससार के जिन

१ हिन्दू विचार के अनुसार, मानव इतिहास चार युगों में बँटा हुआ है सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग। वर्तमान युग कलियुग है। सत्ययुग धर्म का स्वर्णिम युग माना जाता है। सत्ययुग में धर्म का बराबर ह्रास होता रहा है। कलियुग अधर्म का युग है जिसका अन्तमान कल्प अवतार द्वारा होगा।

२ गोखले, बी० जी० यही पृष्ठ ३०

३ पात्रिकर, के० एम० हिन्दू सोसायटी एंड फार रोड्स पृष्ठ ७

क्षत्रो मे अनेक प्रजातियो का सम्पन्न हुआ है, वहाँ सामाजिक वर्गों का विभाजन प्रजाति तथा नम के आधार पर हुआ है। अमरीका तथा अफ्रीका के सामाजिक संगठन में पाया जाने वाला वर्ण भेद और उसके आधार पर उत्पन्न होने वाला सामाजिक विभाजन इसका प्रमाण है। जगत् महाभारत के पिछले उद्धरण से स्पष्ट है प्रत्येक विभाजन (वर्ग) के वर्ण से उसके एक अलग प्रजाति होने का आभास मिलता है। ब्राह्मण का वर्ण श्वेत है जिससे उसके श्वेत प्रजाति होने का, वश्य का पीला अर्थात् मंगोलियन प्रजाति होने का और द्रुह का कृष्ण वर्ण होने के कारण नीग्रोइड प्रजाति का होने का आभास मिलता है। ब्राह्मण और द्रुह के प्रजाति गठन में साधारणतया अंतर है, यह डा० मजूमदार के उत्तर प्रदेश के प्रजाति सर्वेक्षण के परिणाम से स्पष्ट है। ब्राह्मण में सामायत काकस्वायड प्रजाति के तत्वों का बाहुल्य है और द्रुह में प्रोटा जास्ट्राल्याड प्रजाति के तत्वों का¹। हटन के अनुसार चारों वर्गों का अलग अलग रंग से सम्बंधित होना यह जाहिर करता है कि सम्भवतः वर्ण भेद वही पर, किसी न किसी रूप में, प्रजाति से सम्बंधित है। विभिन्न वर्गों का अलग अलग रंग से सम्बंधित करना, मिस्र की उस प्राचीन प्रथा की याद दिलाता है जिसका अनुगार प्राचीन मिस्र में मिस्र निवासियों का लोहित वर्ण का, एशियावासियों को पीत वर्ण का, मिस्र के उत्तर में रहने वालों का श्वेत वर्ण का और नीग्रो का कृष्ण वर्ण का दियाया जाता था²।

हटन ने, जसा कि उनके उपयुक्त मत से स्पष्ट है केवल यह सम्भावना ही मानी है कि हो सकता है कि किसी रूप में वर्ण का सम्बंध प्रजाति से हो। लेकिन, उन्होंने इस सम्भावना का केवल सम्भावना ही मानकर छोड़ दिया है। उन्होंने स्वयं यह दिखाया है कि किस प्रकार हावाट ने वर्ण के प्रजातीय सिद्धांत की आलाचना की है। हटन ने वर्ण का सामाजिक वर्ग माना है। हटन के शब्दों में, 'एसा लगता है कि अपने प्रारम्भिक रूप में वर्ण चार वर्ग (Classes) थे, जिनमें प्राग्बदिक समाज विभाजित था और यह सम्भव है कि बदिक काल में इनमें वह अंतर न था जिस कि लया न जा सके। प्राग्बदिक काल का चतुर्वर्णी विभाजन तत्कालीन समाज के चार वर्गों में विभाजित होने का प्रतीक है'³।

इंगवती बर्से के अनुसार यह मानना भूल हागी कि वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति प्रजातिक भिन्नता के प्रति उस सजगता से हुई है जिसका आधार केवल त्वचा का वर्ण है। प्रजाति केवल त्वचा के वर्ण पर ही आधारित नहीं है। यह अवश्य है कि बदिक साहित्य में धायवर्ण तथा दासवर्ण का वर्णन मिलता है और धायों का

1 मजूमदार, डी० एन० रसेज एण्ड कल्चर आफ इण्डिया पृष्ठ 51-51

2 हटन, जे० एच० कार्ट इन इण्डिया पृष्ठ 65

3 हटन, जे० एच० यही पृष्ठ 64-65

स्वनवर्णों तथा दामा का कृष्ण वर्णों चित्रित किया गया है। लेकिन साथ ही साथ, यह भी सही है कि वैदिक साहित्य में ब्राह्म (ब्राह्मण) और राजाज (क्षत्र क्षत्रिय) वर्णों का भी उल्लेख मिलता है। ये दोनों वर्ण आर्यों के ही सामाजिक संगठन में थे और इनके अन्तर का आधार त्वचा का रंग न होकर इनकी सामाजिक प्रतिष्ठा तथा भूमिका का अन्तर था। जहाँ कहीं आर्यों के तीन वर्णों का उल्लेख है, वहाँ 'विग' का तीसरा वर्ण कहा गया है। विग का अर्थ है सभी सामान्य जन। इसी आधार पर वैदिक साहित्य में समाज का विभाजन (विग का पति) कहा गया है। इसी सन्दर्भ में वर्ण के उभय अर्थ की साधकता स्पष्ट होती है जिनमें वर्ण से 'बुद्धि' का तात्पर्य लिया गया है। ब्राह्म और राजाज का अर्थ उन वर्णों से है जो विग में से चुन लिए जायें। अर्थात् वे अपने-अपने कार्य के आधार पर व्यवसाय (विग) में भिन्न हैं। विग, जन साधारण के रूप में प्रतीत है कृषक पशुपालक, व्यापारी और सैनिक का। ब्राह्म, राजाज और विग (वश्य) आर्यों के सामाजिक संगठन में तीन वर्ण थे। इन तीनों वर्णों के लिए समान दत्तताओं की पूजा करते थे और जन्म से मृत्यु तक वे समान सम्भारों का मानते थे। तीनों वर्णों के लिए उन्नयन-सत्कार करते थे¹। इनके विभाजन का आधार प्रजाति न होकर उनके सामाजिक कार्यों की भूमिकाओं का भिन्नता थी।

महाभारत के जिस प्रसंग में चार वर्णों के अलग-अलग रंगों का उल्लेख किया गया है, उसी प्रसंग में आगे चलकर वर्ण का आधार त्वचा के रंग का न मानकर वर्ण को माना गया है। जय भगुन यह कहा कि वर्ण का आधार त्वचा का रंग है तो भरद्वाज ने यह कहा कि वर्णों की त्वचा के रंग तो विविध हैं। उनके आधार पर चार वर्णों का विभाजन किस प्रकार सम्भव हुआ? इस पर भगुन उत्तर दिया कि वर्णों में वस्तुतः कोई अन्तर नहीं है। पहले सारा नगर ब्राह्मण वर्ण में था। लेकिन बाद में अलग-अलग वर्णों के कारण अलग-अलग वर्णों का आविर्भाव हुआ। चार वर्णों की उत्पत्ति द्विज वर्ण में से हुई है। जिन द्विजों में भोग-सुख की प्रासक्ति बढ़ी जिनमें श्रम और श्रमता की विशेषताओं की उत्पत्ति हुई जिनमें साहस और बल का आविर्भाव हुआ जो स्वयम् की ओर से उभरने हुए और जिनका वर्ण स्वतन्त्र था, वह क्षत्रिय हुए। स्वयम् के प्रति उत्तमोत्तम रक्त तथा कृष्णवर्ण-युक्त कृषक तथा पशुपालक वर्ण और अमत्यप्रिय, हिंसक दिना विना विचार के जीविका के लिए सभी वर्णों को अपनाते बाल शीघ्र परिभ्रष्ट और कृष्णवर्णी द्विज गूढ़ हुए। इस प्रकार क्षत्रिय, वैश्य तथा गूढ़ वर्णों के लोग ब्राह्मण वर्ण के स्वयम् से प्रमाण गिरे हुए लोग हैं। सबका धार्मिक तथा मानिक प्रियाओं का करने का अधिकार है। वर्ण का आधार धर्म-धर्म है न कि त्वचा वर्ण।

होकाट^१ ने भी वर्ण-व्यवस्था में प्रजातिक आधार को अस्वीकार किया है और इस बात पर जोर दिया है कि चारों वर्णों के रंग का जो वखन मिलता है उसकी प्रजातिक महत्ता न होकर, कल्पाचारी महत्ता (Ritual Significance) है। चार रंग प्रतीक हैं चार कोना के। श्वेत उत्तर का प्रतीक है, लालित पूव का, पीत दक्षिण का और कृष्ण पश्चिम का। चारों वर्ण के लग शहर या गांव के इन चारों कोना में अलग अलग रहते थे—ब्राह्मण उत्तर में, क्षत्रिय पूव में, वैश्य दक्षिण में और शूद्र पश्चिम में। अत्यंत शहर के बाहर रहने थे और इसी कारण उनका अवर्णा कहा गया है। होकाट के सिद्धांत में उस कल्पना का अधिक पुट है जो हिंदू विचारधारा से मेल नहीं खाता है। यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि भारतीय जनता में व्याप्त प्रजातिक भिन्नता ने वर्ण विचार को प्रोत्साहन नहीं दिया है। सबसे अधिक निश्चित तथ्य यह है कि हिंदू विचारधारा में जिस रूप में वर्ण का निरूपण किया गया है, उसका आधार प्रजाति नहीं है। वर्ण, जसा कि आगे चलकर स्पष्ट किया जायगा प्रतीक है मानव की उन आधारभूत विधायक वक्तिया के जिनमें मानव की सामाजिक वृत्ति की अभिवृत्ति, गुण तथा कम के आधार पर वर्णों के रूप में होती है। ब्राह्मण प्रतीक है सत्व गुण का जिसका आधार ज्ञान तथा निमलत्व में है। हिंदू विचारधारा में ज्ञान प्रकाशमान है। अतः उसका वर्ण सित अथवा श्वेत है। शूद्र तमोगुण का प्रतीक है जिसका आधार अज्ञान में है। अज्ञान ही तम (अंधकार) है और तम का वर्ण है कृष्ण (काला)। राग कामना और आसक्ति रजोगुण का आधार हैं। लोहित रागात्मिका वृत्ति का प्रतीक है। क्षत्रित्व की विधायक वृत्ति रागात्मिका है। अतः क्षत्रिय का वर्ण लोहित है। पीत, लोहित तथा कृष्ण वर्णों के सम्मिलित प्रभाव में उत्पन्न होता है। जहां रज और तम मिल गए हैं वहां पीत अथवा वैश्य वर्ण है। इस प्रकार ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्णों के अलग अलग वर्ण उनकी वक्तिया गुणा के प्रतीक हैं न कि प्रजाति के। वर्णनात्मक स्पष्टीकरण में प्रतीकों का प्रयोग हिंदू विचारधारा की एक अभिन्न परम्परा रही है जिसका यहां भी प्रयोग हुआ है। वर्ण को जाति मानना वैसा ही धारणात्मक विभ्रम है जसा कि वर्ण का प्रजाति मानना। भारतीय इतिहास तथा दर्शन के विद्वानों बहुधा इस वर्ण और जाति विभ्रम में फँसते रहे हैं। उदाहरणार्थ के० एम० पानिकर ने ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र का चार जातिया माना है। खुवण व्यवस्था को उद्दिष्ट चतुर्जाति व्यवस्था कहा है। अपनी इस भावना के आधार पर, उन्होंने यह लिखा है कि चतुर्वर्ण व्यवस्था केवल एक सद्भाषित योजना है जो वास्तविक व्यवहार से सम्बंधित न होकर जाति आदान से सम्बंधित है। इतिहास के माध्यम से यह सिद्ध किया जा सकता है कि समाज का चार जातिया में विभाजन कभी भी

अस्तित्व में आया ही नहीं। पान्निकर भी गाखले की भाँति चतुर्वर्ण-व्यवस्था को एक समाजशास्त्रीय परिवर्तन (Sociological Fiction) मानते हैं। गाखले के अनुसार, वर्ण का मूलधार प्रजाति में है यद्यपि जसा कि महाकाया स्मृतियाँ और पुराणों में आये वर्णन से स्पष्ट है आगे चलकर, वर्ण विभाजन का आधार पेशा (Occupation) और प्रतिष्ठा (Status) हो गए। किन्तु दूसरी ओर गाखले ने यह भी कहा है कि प्रारम्भिक जाय समाज में वर्ण के आधार पर जा विशेषीकरण और उसके फलस्वरूप सामाजिक विभाजन की प्रक्रिया चल रही थी, उसी न आगे

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वश्य और गूढ़ पान्निकर के अनुसार सुगठित जाति इकाइयों नहीं हैं। ब्राह्मण एक हजार आठ सौ उपजातियों में विभक्त है। एतिहासिक काल में क्षत्रिय नाम की जाति पाई ही नहीं जाती है। महापद्मनन्द के बाद से जितने भी परिचित राज परिवारों का वर्णन मिलता है, वे क्षत्रिय जाति के नहीं हैं। मौर्य गूढ़ थे, गुप्त सम्राट वश्य थे और भारतीय ब्राह्मण प। उदयपुर के सोसोदिया राजपूत मूलतः ब्राह्मण थे। महाराजा कुम्भा ने अपने गिलालेख में अपने को विप्र कहा है। राठौर राजपूत दक्षिण की एक गणजाति थे जिन्हें आठवीं और नवीं शताब्दियों में राजपूत का स्तर मिला। उसी प्रकार, वश्य और गूढ़ भी विजातीय समूह हैं। गोदावरी के उत्तर में जो सामाजिक सत्ता राजपूतों के हाथ में रही है गोदावरी के दक्षिण में वही सामाजिक सत्ता आंध्र के रेडडी तामिलनाडु के वल्लाल तथा मालावार के नायडों के हाथ में रही है यद्यपि, इन वर्गों को गूढ़ की ही श्रेणी में रक्ता गया है। भारत के विभिन्न भागों में जिन जिन परिवारों ने राज्य किया है, उनमें से अधिकतर गूढ़-वर्ण से ही आये हैं। बंगाल के पालवर्गी शासक और मराठा राज-परिवार इसका प्रमाण हैं। यहाँ यह स्पष्ट है कि पान्निकर वर्ण की जाति मानते हैं और एक वर्ण के अन्तर्गत आने वाले विभिन्न अन्तर्विवाही समूहों को उपजाति। समाज शास्त्रीय दृष्टिकोण से ये मायतायें गलत हैं। एक जाति है न कि उपजाति—पान्निकर, ४० एम० हिंदू सोसायटी एट वास रोड पृष्ठ ७, ८ ९

जसा कि पहले लिखा जा चुका है जिस समय आय भारत में आय उस समय उनमें वर्ण-व्यवस्था दिखती थी जिसे आधार विनियोजन की आवश्यकता थी। एक ओर, धैर्यहीन वर्ण के लिए ब्राह्मणों का विनियोजन समूह अस्तित्व में था रहा था और, दूसरी ओर, सार्वभौमिक क्षत्रियों का आरंभ और, तृतीय, पशुपालन तथा ध्यान के लिए विनियोजन वर्ण के समूह अलग अलग हो रहे थे।

चलकर वण व्यवस्था को जन्म दिया। लेकिन, बाल्य तर म, धीरे धीरे जब वण के साथ पेशा और सामाजिक प्रतिष्ठा के आधार जुड़े तब, प्रसार के द्वारा वर्णों का विभाजन हुआ, और, बाद म, जब अनेक गणजातियों को वण व्यवस्था में मिलाया गया तथा जब सात्म गणजातियां म जब सस्वार सम्बन्धी तथा साम्प्रदायिक अंतर बढ़े तब वण व्यवस्था ने जाति व्यवस्था का रूप लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि जन तथा बौद्ध धर्मों के माध्यम से होने वाले विरोध व बावजूद भी, ईसा का पाचवीं शताब्दी पूर्व वण का अर्थ जाति हो गया था¹।

वण विषयक इन धारणा से दो मायतायें निकलती हैं—एक, वण व्यवस्था ने ही जाति-व्यवस्था का जन्म दिया है और दो, वण जाति का दूसरा नाम है। भारत के मानवशास्त्रियों तथा समाजशास्त्रियों को ये दोनों मायताएं अर्थात् हैं। इरावती बर्वे के अनुसार, साधारणतया वण के लिये जाति शब्द का प्रयोग किया जाता है किन्तु यह प्रयोग तत्समगत नहीं है क्योंकि वण और जाति, हिंदू विचार धारा में, दो अलग अलग प्रमेय हैं। प्राचीनतम सस्कृत साहित्य में केवल वण शब्द का प्रयोग मिलता है और जसाकि पहले कहा जा चुका है वही दो वर्णों का उल्लेख मिलता है और कहीं तीन वर्णों का। चौथे वण का प्रयोग उत्तरकालीन वैदिक साहित्य में मिलता है। बाद में सस्कृत पाली तथा प्राकृत साहित्य में एक ओर, वण शब्द का प्रयोग मिलता है और दूसरी ओर जाति कुल और यानि का। इसमें सबसे अधिक प्रयोग जाति शब्द का ही मिलता है। यहाँ जाति शब्द का प्रयोग उन समूहों के लिये किया गया है जिनका आधार जन्मजात सामाजिक प्रतिष्ठा है। सस्कृत साहित्य में जातियों का सबसे पहला वर्णन मनुस्मृति में मिलता है। मनु ने ही सबसे पहले यह मिथ्या प्रतिपादित किया कि विभिन्न जातियों की उत्पत्ति शुद्ध वर्णों के सम्पर्क में उत्पन्न होने वाली वण-संकरता से हुई है। मनु ने ऐसा प्रतीत होता है, जाति व्यवस्था को वण व्यवस्था में फिट करने का प्रयास किया है। इस बात की सम्भावना अधिक है कि भारत में आर्यों के पहले ही जाति-व्यवस्था अस्तित्व में आ चुकी थी। आर्यों के आगमन के बाद एक ओर आर्यों के तीन वर्ण थे और दूसरी ओर दो दण्ड जाति-व्यवस्था या गणजाति व्यवस्था से विकसित हुई थी। एक विशिष्ट वण के रूप में वश्यवण का विकास भारत में ही हुआ। साथ ही साथ, अनेक देशज तत्व भी आर्यों की वण व्यवस्था में मिल गए। अतः बहुत सम्भव है कि जाति-व्यवस्था से सम्पर्क होने पर आर्यों ने उन उस व्यवस्था में फिट करने का प्रयास किया जिसका ज्ञान उनको पहले ही म था। जाति और वण ऐसा प्रतीत होता है दो

1 गोल्ले बी० जी० यहाँ पृष्ठ 31

2 इस विचार के पार्ष्णों का वर्णन आदिवासी सस्कृति के संश्लेष में किया गया है।

मस्वृतिषा की अलग अलग सामाजिक प्रणालियाँ हैं जिनका सम्मिलन भारत में हुआ¹ ।

हटन ने भी सिद्धान्ततः यही माना है कि जाति-व्यवस्था के मूल-आधार श्राव्यों के पहले ही भारत में आ चुके थे । हटन भी जाति और वर्ण का अलग-अलग प्रमय मानते हैं । हटन के अनुसार बहुधा जाति और वर्ण का एक दूसरे का पर्याय समझा जाता है यद्यपि जाति का वह अर्थ नहीं है जो वर्ण का है । भारत की प्रत्येक जाति किसी न किसी वर्ण के अंतर्गत आती है जिसके फलस्वरूप जानियों का वर्ण के अनुसार वर्गीकरण हो सकता है । अतः, प्रत्येक वर्ण लगभग समान स्तर वाली जातियों का एक वर्ग है । उदाहरणार्थ, ब्राह्मण-वर्ण के अंतर्गत वायकुब्ज, गौड, सरयूपारीण सनाढ्य सारस्वत, और चितपावन इत्यादि ब्राह्मण जातियाँ आती हैं । इसीप्रकार हटन ने यह कहा है कि वर्ण की प्रकृति बट नहीं है जो जाति की है । केवल एक सीमा तक ही वर्ण का जाति कहा जा सकता है । वास्तव में, इस भाष्यता की सम्भावना अधिक युक्तियुक्त जान पड़ती है कि वैदिक युग में चार वर्ण चार वर्गों के समान थे न कि चार जातियों के समान और उत्तर वैदिक काल के विद्वानों ने जब वैदिक साहित्य में जाति प्रथा के आधारों की राज की तो उन्होंने वर्ण-व्यवस्था की ध्यात्वा जाति प्रथा के सन्दर्भ में भी जिसके कारण जाति और वर्ण एक दूसरे के पर्याय बन गए । फिर भी, किसी भी दशा में, वर्ण जाति नहीं है । हाँ, प्रत्येक वर्ण या समान स्तर वाली जातियों का एक समूह समझा जा सकता है । चारों वर्गों के अन्तर्गत चार वर्गों का प्रयोग किया जाता है आज के चार बड़ा बड़ी जातियों के अलग अलग समूह हैं और ये समूह उच्च सामाजिक प्रतिष्ठा-प्रणाली (Social Status System) में वर्ण हैं जिसका आधार धर्म है । एक सामाजिक इकाई के रूप में वर्ण जाति से अधिक व्यापक और अनिश्चित हैं ।

जाति का जन धानु से निकला है जिसका अर्थ है जन्म लेना । जन्म के आधार पर मिली हुई सामाजिक प्रतिष्ठा अन्तर्वैवाहिक पणा, ऊँच-नीच का भेद-भाव और शान धान के नियम जाति की मुख्य विशेषताएँ हैं । जाति जन्म पर आधारित एक सामाजिक राजनितिक गठन का है जिसमें व्यक्ति का जीवन पूणत घिरा रहता है । इसके विपरीत जसा कि पहले कहा जा चुका है, वर्ण का अर्थ है वर्ण या वर्ण का आधार है गुण और जन्म न कि जन्म । जाति और वर्ण हिन्दू विचारधारा में, अलग अलग सामाजिक जातियों में वर्ण हुए हैं । सनातन के आधार पर, प्रभु ने भी यह मत व्यक्त किया है कि वर्ण और जाति अलग अलग सम्भाव्य हैं यद्यपि, जनीक सम्भावना है दोनों एक में मिल गइ हैं । कल्प में, जसाकि सनातन का

1 कर्षे, इरावती हिन्दू सोसायटी एन इन्टरप्रिटेगन पृष्ठ 51-57

2 हटन, जे० एच० पास्ट इन इंडिया पृष्ठ 61-67

मत है, आय और दास वर्णों का उल्लेख मिलता है और, बहुत सम्भव है कि अपने मूलरूप में, वर्ण शब्द का प्रयोग आय और दास के वर्ण भेद को स्पष्ट करने के लिए किया गया हो यद्यपि, कालांतर में इसका प्रारम्भिक प्रयोग लुप्त हो गया और अनन्त समूहों के लिए वर्ण शब्द का प्रयोग होने लगा हो। लेकिन, फिर भी, वर्ण शब्द के सामान्य तथा विशेष अर्थों का दृष्टिकोण से वर्ण की जाति नहीं माना जा सकता है। बाद के साहित्य में वर्ण के आधार पर जाति की व्याख्या मिलती है जिसके कारण जाति और वर्ण के विषय में भ्रांति उत्पन्न होती रही है। अतः जाति के आधार पर वर्ण की व्याख्या करना, वास्तव में, तर्क को उल्टा कर देता है¹।

मनु ने वर्ण का माध्यम में जाति को स्पष्ट किया है लेकिन मनु ने भी वर्ण और जाति का अलग अलग रक्खा है। मनु ने, एक और, चार वर्णों का उल्लेख किया है और, दूसरी ओर, सत्तावन जातियाँ का। मनु के अनुसार वर्ण केवल चार हैं— ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जिनके वर्ण साक्ष्य से जातियों की उत्पत्ति हुई है। मनु के अनुसार, यदि किसी वर्ण का व्यक्ति अपने ही वर्ण की स्त्री से विवाह करे तो सत्तान दण्ड वर्ण की होनी और उसका वही वर्ण होगा जो माता पिता का है। यदि कोई पुरुष अपने से एक डिगरी निम्न वर्ण में विवाह करता है (जैसे ब्राह्मण पुरुष क्षत्रिय स्त्री से व्याह करे) तो सत्तान पिता के वर्ण की होती है यद्यपि उसमें मातृ दाप आ जाता है। वर्णसंकर सत्तान तब होती है जब उच्च वर्ण का पुरुष अपने वर्ण से दो या तीन डिगरी नीचे वर्ण की स्त्री से व्याह करे (जैसे ब्राह्मण पुरुष का वैश्य या शूद्र स्त्री से या क्षत्रिय का शूद्र स्त्री से व्याह) और उच्च वर्ण की स्त्री अपने से निम्न वर्ण के पुरुष से व्याह करे। वर्णसंकर से वर्ण नहीं जातियाँ अस्तित्व में आती हैं और वर्णसंकर जातियाँ के पुनः वर्णसाक्ष्य से और नई जातियाँ उत्पन्न होती हैं। इस प्रकार वर्णों तथा जातियों का वर्ण-साक्ष्य से जातियों की संख्या बढ़ती रही है²। यही से अनुलोम तथा प्रतिलोम विवाहों की धारणाएँ अस्तित्व में आईं। अनुलोम विवाह से तात्पर्य है पुरुष द्वारा अपने या अपने से निम्न वर्ण में विवाह करना और प्रतिलोम का अपने से उच्च वर्ण में विवाह करना। अतः मनु के अनुसार, जातियाँ अनुलोम और प्रतिलोम विवाहों का परिणाम हैं। इस आधार पर यह

1 प्रभू, पी० एच० यही पृष्ठ 303-304

2 वर्ण साक्ष्य से किस प्रकार जातियाँ उत्पन्न हुईं ह मनु के आधार पर इसके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं— ब्राह्मण पिता और वैश्य माता की सत्तान से अनुलोम और ब्राह्मण पिता तथा शूद्र माता की सत्तान से निषाद का उत्पत्ति हुई है। क्षत्रिय पिता और ब्राह्मण माता की सत्तान से सूत जाति की, वैश्य पिता और क्षत्रिय या ब्राह्मण माता की सत्तान से मागध और विदह जातियों की उत्पत्ति हुई है— प्रभू यही पृष्ठ 301

कहा जा सकता है कि यह मायता निर्मूल है कि वर्णों के विभाजन से जातियाँ बनी या वर्ण ही कालांतर में जाति हो गए। मनु ने वर्ण को म्यायो मानकर जातियाँ का स्पष्ट करन का प्रयास किया है न कि उहोंने यह प्रतिपादित किया है कि प्रत्येक वर्ण के प्रसार और विभाजन में उस वर्ण की जातियाँ उत्पन्न हुई हैं।

अपनी प्रजातिक तथा साम्प्रतिक विजातिका कारण कि भारत प्रारम्भ में ही वर्णजातियाँ और जातियाँ का दग रहा है। भारत में ही नहीं जहाँ भी विभिन्न जातियाँ और सम्प्रतियाँ का संगम हुआ है वहाँ जाति (जन्म पर आधारित समूह) और वर्ण (वह समूह जो गुण कर्म या धन पर आधारित होते हैं) साथ साथ पाये गये हैं। जातियों में व्यक्ति का स्थान पूर्वनिर्धारित रहता है क्योंकि जाति में व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा जन्म जान होती है। लेकिन वर्ण में व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा अर्जित होती है। वर्य वर्णवस्था जाति व्यवस्था की अपक्षा अधिक लचीली है और उसमें व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा चलिया (Mobile) होती है। वर्ण व्यक्ति (व्यक्तियाँ) द्वारा अर्जित सामाजिक प्रतिष्ठा पर निर्भर करता है। वर्णव्यवस्था वस्तुतः वह वर्ण व्यवस्था है जिसका धाविभाव, हिन्दू विचार धारा के आधार पर, भारत में हुआ है। हिन्दू विचारधारा आदर्शोन्मुख है क्योंकि उसका आधार धर्म की धारणा है। वर्णव्यवस्था एक आदर्श-समाज की आदर्श वर्ण व्यवस्था है। वर्ण, जैसा कि हिन्दू विचार धारा में उनका प्रतिपादन हुआ है, व आदर्श सामाजिक इकाइयाँ हैं जिनमें अपने गुणों के अनुसार विभिन्न व्यक्ति और समूह फिट हो सकते हैं। अतः सम्भावना इस बात की नहीं है कि वर्ण से जातियाँ उत्पन्न हुई हैं वरन् जातियाँ से वर्ण की धारणा उत्पन्न हुई है। वर्ण का आधार उस सामाजिक दगन में है जिसका आधार है नति अविभक्त विभक्त्यु (एकता में धनेकता) एको अह वदृस्या (एक होन हुए भी मैं अनक हूँ) आत्मवत् सबभूत्यु (सभा प्राणी अपन समान हैं) की भावनाएँ। सामाजिक दगन का निर्माण सामाजिक परिस्थितियों में होता है। भारत की सामाजिक परिस्थिति जातिगत रही है जिस एक समय तथा एक कार्यात्मक सामाजिक संरचना में लान के लिए सामाजिक ऋणक रूप में, वर्ण की धारणा प्रतिपादित की गई है। वर्ण व्यवस्था सामाजिक संरचना और स्तरीकरण की वद जाँ। व्यवस्था है जिसमें सभी प्रकार के प्रजातिक, राजनतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक साम्प्रदायिक और विगत गणजातीय-समूह फिट हो सकते हैं। इसी कारण प्रत्येक वर्ण वद समूह है जो अनक जाति समूहों में बग हुआ है। वर्ण एक आदर्श धारणागत है। वर्ण का सम्बन्ध व्यक्ति के सामाजिक स्थितिक व उस पहलु में है जिस समाजगतभी वदिक आदर्श व्यवस्था (Legitimate Normative Order) कहत है। वर्ण का सामाजिक स्थितिक आदर्श सामाजिक विचार में है।

वर्ण त्रियक मनु की धारणा का स्पष्ट करत हूण प्रनू ने लिखा है कि वर्तमान हिन्दू-समाज में जो जातिव्यवस्था मिलती है उस वर्णव्यवस्था समानता वस्तुतः

संघातिक भ्रम है। सिद्धांततः जाति अलग है और वर्ण अलग। जाति जन्म से है और वर्णक्रम से। समाज में यकिन की जाति निश्चित है लेकिन उसका वर्ण परिवर्तनशील। वर्ण अर्जित सामाजिक प्रतिष्ठा पर आधारित है जो, हिंदू मान्यताओं के अनुसार, क्रम पर निर्भर करती है। अतः, क्रम के आधार पर व्यक्ति अपना वर्ण परिवर्तित कर सकता है। यही कारण है कि भारत के प्राचीन तथा अर्वाचीन इतिहास में अनेक ऐसे उदाहरण मिलते हैं जिनमें यकिन और समूहों ने, स्वर्जित सामाजिक प्रतिष्ठा के आधार पर, अपने वर्ण बदले हैं।

विश्वामित्र ने क्षत्रित्व से ब्राह्मणत्व पद प्राप्त किया था। हरिवंश पुराण के अनुसार नाभगरिष्ठ के दो पुत्र जो वश्य थे, ब्राह्मण हो गए थे। राजपूताना के गोखर मन्वक ब्राह्मणों का पूज्य एसा कहा जाता है कि, एक मेर¹ था जिसको एक मुनि ने यजुर्वेद में दीक्षा दी थी। ऐसा प्रसिद्ध है कि बंगाल के व्यासोक्त ब्राह्मण उस शास्त्र की सतान हैं जिसको स्वयं याज्ञिक ऋषि ने ब्राह्मण बनाया था। शिवाजी का क्षत्रिय वर्ण में आना एक इतिहास प्रसिद्ध तथ्य है। बंगाल की कायस्थ जाति को आज द्विज की श्रेणी में रखा जाता है यद्यपि, सौ साल पहले उसे क्षूद्रों की श्रेणी में रखा जाता था²। महाभारत के अनुशासन पर्व के एक श्लोक में यह कहा गया है कि मेकल द्रविड, साट पीण्ड को दशिर, गौडिक दरद दब, चवर, शवर बवर किरात जीर यवन इत्यादि मूलतः क्षत्रिय जातियाँ हैं जो ब्रह्मज्ञान की उपमा करने के कारण अपनी वर्तमान अधोगति (अथवा क्षूद्र की स्थिति) को प्राप्त हुई हैं। वर्तमान समय में भी साधारणतः यह विश्वास पाया जाता है कि धर्म रम सुधारने से उच्चतर सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त की जा सकती है। आज निम्न स्तर की जातियों में जो सुधार आन्दोलन चल रहे हैं, उनमें माम मदिशा त्यागने और सात्विक जीवन वितान पर अधिक जोर दिया जा रहा है³। भारत में निम्नवर्णी जातियों पर जो पुस्तकें सुधारवादी दृष्टिकोण से लिखी जा रही हैं, उनमें बहुधा यहाँ दिखाया जाता है कि जाति जाति निम्न समझी जाती है प्राचीन काल में वह निम्न नहीं थी। उसका स्थान बहुधा क्षत्रियों में रखा जाता है⁴ या ब्राह्मणों में। उत्तर प्रदेश और राजस्थान की भाट जाति के लिए अभी हाल ही से भट्ट-ब्राह्मण शब्द का प्रयोग किया जाना लगा है जो कि भाट जाति का प्रतीक माना जाता है कि भाट शब्द वस्तुतः भट्ट का अपभ्रंश है और भाट वे हैं जो वाण, कर्तृण बिल्हण मम्मट मनु के टीकाकार बालमभट्ट तथा

1 मेर गूढ़ों की श्रेणी में आते हैं।

2 हटन त्र० एच० कास्ट इन इण्डिया पृष्ठ 6०

3 भट्ट जी० एत० टुडस एण्ड मेजस आफ स्टेटस मोबिलिटी एनाग दि चमात आफ देहरादून बी ईस्टर्न एथनापॉलॉजिस्ट, वाल्यूम XIV न० 3

4 उदाहरणार्थ देखिए गिदधर्नासिंह यादव द्वारा रचित यादव परिवार

यनयत्वय के टीकाकार कुल्लूक भट्ट की पम्परा में आते हैं।

हिन्दू मायतामो के अनुसार वण वह प्रादश आधार है सामाजिक प्रतिष्ठा पद्धति का वह सोपान है जिस पर जाति-व्यवस्था की चलिष्णुता (Mobility of the Caste System) निर्भर है। वण-व्यवस्था घम जाति-चलिष्णुता (Caste-Mobility) का प्रेरक रहा है। वण घम से जाति व्यवस्था में लचीलापन आया है। यह कहना अत्युक्ति न होगी कि वण-व्यवस्था घम जाति व्यवस्था का वह आदर्श रूप है जहाँ व्यक्ति को जाति के बंधन से छुटकारा मिलता है और व्यक्ति अपनी स्वाभाविक बत्ति के अनुसार काम करके जाति अथवा जन्म से मिली प्रतिष्ठा को बदल सकता है। जन्म से सभी गदर होते हैं। वण व्यक्ति की बत्ति के अनुसार किये हुए काम से मिलता है। व्यक्ति की बत्ति पूर्णतः पूर्वनिर्धारित नहीं होती है। सामाजिकरण के द्वारा उमका विकास होता है। व्यक्ति का वण तभी निर्धारित है जब सामाजिकरण के द्वारा व्यक्ति की विधायक बत्ति का पूर्ण विकास हो जाय। लेकिन हिन्दू विचारधारा में जाति और वण के सामाजिक स्तरों से परे एक नितात वयनितक स्तर भी है जहाँ व्यक्ति के लिए न तो जाति का बंधन रहता है और न वण का। वह स्तर है सत्यास का। सत्यास की विधायक है सात्विक बत्ति। ब्राह्मणत्व सात्विक बत्ति का परिचायक है। आत्म तथा वण के माध्यम में व्यक्ति में सात्विक बत्ति का उन्वोधन और प्राप्ति ही सन्श्रेष्ठ सामाजिक उद्देश्य है। इसी कारण हिन्दुत्व में वण श्रम व्यवस्था को घम का एक आधार कहा गया है। वण और आश्रम सामाजिक नया वयनितक जीवन की वे अस्थायें हैं जिनके माध्यम से व्यक्ति उम स्तर पर पहुँचता है जहाँ न तो व्यक्ति का ही अस्तित्व है और न वण तथा आश्रम का। धर्म, यह कहना कि वण ही जाति है एक गदरानिक भूल है। वण का स्तर जाति में ऊपर है। जाति का सम्बन्ध सामाजिक व्यवस्था में है लेकिन वण का सम्बन्ध स्तरीयत सामाजिक व्यवस्था के उस आश्रम सिद्धांत से जा हिन्दू सामाजिक ऋण की अपनी निजी विपत्ता है। राधाकृष्णन के अनुसार वण-व्यवस्था का मुख्य आधार है व्यक्ति का गुण तथा काम न कि जाति। गुण काम पर आधारित वण जाति नहीं है क्योंकि जाति जन्म तथा आनुवंशिकता पर आधारित है¹।

एक सामाजिक इकाई के रूप में, वण न तो प्रजाति है और न जाति। वण केवल एक प्राण सामाजिक इकाई है जिसका मूल तत्व वण विपयक धारणा तथा घम में है। वण की धारणा और घम दो आग प्रलय तथ्य नहीं हैं। दाना का एक दूधन में धनिष्ठ सम्बन्ध है। लेकिन यह समझना भूल जाय कि दोनों घनोपाश्रित हैं। हिन्दू धर्म-धर्म में वण का जन्म प्रवार निरूपण किया गया है उमन आधार पर यह कहा जा सकता है कि हिन्दू विचारधारा में घम का आधार वण

1 गोपले, बी० जा० की पुस्तक इण्डियन पाठ द्यू वि एग्नेज से उदघत पृष्ठ 32

नहीं है वरन वण का आधार धर्म है। वण के निरूपण में धर्म (अर्थात् ध्यवित तथा समाज की विधायक वृत्ति) का आधार माना गया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारतीय समाज में सगठन में प्रजाति, जाति और गणजाति से उत्पन्न हान वाली विजातिता का सम्बन्ध हुआ है जिसके कारण भारत के सामाजिक सगठन में प्रजातीय, जातीय तथा गणजातीय समूहों की भिन्नता रही है। यह भी बहुत सम्भव है कि इन समूहों को एक व्यवस्था में लाने की समस्या और आवश्यकता नहीं वण व्यवस्था की धारणा का प्रोत्साहित किया हो। लेकिन हिन्दू विचारधारा में वण का निरूपण जिस रूप में हुआ है उस रूप में वण न तो प्रजाति है न जाति और न गणजाति। वण इन सभी से ऊपर एक ऐसी धारणा है जिसमें ये सभी समूह समा जाते हैं। हिन्दू विचारधारा में वण विषयक दो परम्परायें मिलती हैं—एक परम्परा उस विचारधारा की है जिसमें वण के अस्तित्व तथा उत्पत्ति को रहस्यात्मक ढंग से स्पष्ट वरन का प्रयास किया गया है और दूसरी परम्परा उस विचारधारा की है जिसमें वण को धर्म के आधार पर निरूपित करने का प्रयास निहित है। वण व्यवस्था का मुख्य आधार है वण धर्म न कि जाति या प्रजाति। हा जाति, गणजाति और प्रजाति की भिन्नता तथा उनके सामाजिक सम्पर्क के सम्बन्ध से वह पर्यावरण अवश्य अस्तित्व में आया जिसकी पृष्ठभूमि में वण धर्म का प्रतिपादन हुआ है।

वण और जाति का समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से समझने के लिए एक और तथ्य पर विचार करना आवश्यक है। जाति गणजाति (Tribe) का सामाजिक अनु रूप है न कि वण का। गणजाति की भांति जाति जन्म और गणजाति पर आधारित एक अन्तर्विवाही सामाजिक राजनतिक सगठन है जिसके सदस्य सिद्धांततः वण धर्म आवागमन और पुनर्जन्म हिन्दू सत्त्वारी तथा आथर्मो को मानते हैं और ब्राह्मणवादी कर्त्तव्य में विश्वास करते हैं। गणजाति और जाति में अंतर इतना है कि प्रत्येक गणजाति एक क्षेत्र विष्णु की निवासि होती है, एक विशेष वाली या भाषा का प्रयोग करती है और उसके सदस्य जाति के सदस्यों की भांति एक पेशा विष्णु से ही नहीं बंधे होते हैं। गणजाति के सदस्य सभी आवश्यक पेशों का करते हैं और उनके सामान पेशों की उच्चता और निम्नता का प्रश्न नहीं रहता है। हिन्दू सामाजिक संरचना में निम्न स्तरों में अनेक जाति समूह पाये जाते हैं जिनके कल्प (Rituals) कमकाण्ड (Iutcs) और गन्तार ब्राह्मणों द्वारा सम्पादित नहीं होते हैं किन्तु वे गणजाति इसलिए नहीं हैं कि उन्होंने ग्रामीण वृषि व्यवस्था में परम्परानुसार किसी एक पेशे को अपना लिया है जिस पर उनका प्राधिकार है। मानवशास्त्रियों की इसी मान्यता है कि जब एक गणजाति ग्रामीण वृषि व्यवस्था में एक पेशे पर एकाधिकार प्राप्त कर लेते हैं तो उसे जाति का रूप लेना शुरू है। अनेक गणजातियों में वर्णानुसार चतुर्वर्गी विभाजन

के आधार पर भी जातियों के उत्पन्न होने के प्रमाण इतिहास में हैं और वतमान आदिवासी समाज में भी। इस प्रकार, गणजाति का जाति में बराबर रुगन्तरण होता रहा है और हिन्दू समाज में जातियों की महत्ता बढ़ती रही है। एक ओर जातियाँ बढ़ती रही हैं और, दूसरी ओर जैसा कि बुद्धवादी, जनों निराकार एकेश्वरवाणी पद्यों और ब्रह्मसमाज तथा आर्यसमाज जैसे आन्दोलनों में स्पष्ट है, समय समय पर जाति व्यवस्था का विरोध करके वण सिद्धान्त का लागू करने का प्रयास किया गया है। इन आन्दोलनों के द्वारा हिन्दूकरण का प्रसार होता रहा है क्योंकि ये आन्दोलन जाति के तथा जादुई विश्वासों और प्रथाओं के विरोधी रहते हैं कि हिन्दुत्व के। सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि अधिकतर आन्दोलनों के प्रणेता ब्राह्मण रहते हैं। उच्च, निम्नस्तर की जातियाँ और गणजातियाँ ब्राह्मणों की कम-वाणी सेवा के लिए लालायित रही हैं। इस प्रकार धार्मिक सामाजिक आन्दोलन तथा हिन्दू प्रथाओं का स्वतः स्वीकार करके गणजातियाँ जातियों का रूप लेती रही हैं। इसका एक कारण आर्थिक रहा है क्योंकि जाति के रूप में एक पक्ष पर एकाधिकार मिलने से गणजाति को आर्थिक सुरक्षा मिलती रही है और दूसरा कारण रहा है एक वैध (Legitimate) धार्मिक-सामाजिक-गठन (हिन्दू समाज) की सामाजिक प्रतिष्ठा प्रणाली में एक निश्चित स्थान पाने की प्रेरणा जो मकसदबद्ध के अनुसार सबसे पाई जाती है। वण सिद्धान्त में निहित धार्मिक सामाजिक प्रतिष्ठा के सिद्धान्त द्वारा सामाजिक प्रतिष्ठा का उच्चतर बनाने की सम्भावना और हिन्दुत्व की भोगवादी विचारधारा ने गणजाति की जाति में रूपांतरित होने की ओर भी प्रेरणा दी।

इस प्रकार गणजाति के रूपांतरण में ज्यों-ज्यों हिन्दू समाज का आकार बढ़ा, जातियाँ की संख्या बढ़ी जातियाँ में उच्च स्तर प्राप्त करने की प्रेरणा भी बढ़ी और जितनी ही यह प्रेरणा बढ़ी, उतना ही जाति प्रथा के विरुद्ध विद्रोह भी बढ़े। बुद्धवाद विक्षिप्त गणजातियों की ओर से पत्ता आना शुरू हुआ। ज्यों-ज्यों आन्दोलन बढ़े त्यों-त्यों वण सिद्धान्त को एक आगावादी सामाजिक-संरचना व्यवस्था के रूप में निश्चित और प्रतिपादित किया गया क्योंकि हर आन्दोलन में सामाजिक-संरचना को एक प्रगतिशील आधार प्रदान करने की आवश्यकता पड़ी। स्वामी दयानन्द में प्रेरित आर्यसमाज आन्दोलन इस प्रक्रिया का एक प्राथमिक उदाहरण है। इसका परिणाम यह हुआ कि वण व्यवस्था, धीरे-धीरे कम-पर आधारित एक मुमुक्षुवृत्त आर्य वण-व्यवस्था बन गई जिसमें हिन्दू-समाज में सामाजिक चलिष्णुता प्रेरित होती रही। अलग-अलग क्षेत्रों में, विभिन्न गणजातियाँ न विभिन्न जातियों का रूप लियाँ किन्तु वण सिद्धान्त के आधार पर हिन्दुत्व में गणजित किया गया। यही कारण है कि, एक आर्य अथवा भारतीय जातिवादी नहीं पाई जाती है और, दूसरी आर्य अनुभवों जातियाँ (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) सारे हिन्दू समाज में पाई जाती हैं। हिन्दू समाज ब्राह्मण जातियों, क्षत्रिय जातियाँ, वैश्य जातियों और शूद्र

जातियो म सगठित है क्याकि अलग अलग प्रदेशो मे अलग अलग समूहो को ब्राह्मण क्षत्रिय, वश्य जीर शूद्र के स्तर मिले। यही कारण है कि ब्राह्मण ता सारे भारत मे पाए जाते हैं किन्तु व अलग अलग अतिवादी समूहो म बटे हुए है। एक ओर, आर्यों का वण सिद्धान्त है और दूसरी ओर आदिवासी सगठन की गणजाति। जाति व्यवस्था, वण तथा गणजाति के बीच की, एक सामाजिक व्यवस्था है¹।

३

वण धम

वण धम वस्तुतः यह आचार है जो विभिन्न वण के व्यक्तियों के लिए निरूपित किया गया है। विभिन्न वर्णों के अनुसार अलग अलग आचार नियमों का निरूपण व्यक्ति की सामाजिक वृत्ति में पाये जाने वाले अंतर के आधार पर किया गया है। इसीलिए वण का आधार जन्म को न मानकर गुणानुसार कम को माना गया है। वण व्यवस्था का उद्देश्य है व्यक्ति का अभ्युदय और निश्चयम् जातिद्वेष भावना में गुणानुसार कम से प्राप्त होता है। अपने वण के अनुसार कार्य करने से, पुत्रजन्म के द्वारा व्यक्ति का अभ्युदय होता रहता है। लेकिन साथ ही साथ, सभी व्यक्ति समान हैं उनमें अंतर है ता केवल गुण और कम का। व्यक्ति वर्णों में विभाजित अवश्य रहते हैं, पर सभी वण अयो-याधित हैं। समाज सभी वर्णों की अयो-याधिता में निहित है। समाज में सभी वर्णों की अयो-याधिता उसी प्रकार से एकीकृत रहती है जगत् जीव के सभी अंग प्रत्यंग। सभी वण इस संसार में व्याप्त विराट् पुरुष के अंग हैं। व्यक्तियों की सामाजिक वृत्तियों में पाये जाने वाला अंतर स्पष्ट है, पर, साथ ही साथ वह एक रहस्य भी है—वह रहस्य जो विराट् पुरुष के रहस्य में समाया हुआ है। अतः, वण का आधार एक अलौकिक रहस्य है। इसी कारण हिन्दू विचारधारा में एक धार, वण-व्यवस्था को उस रहस्यात्मक अलौकिक विराट् की सामाजिक अभिव्यक्ति माना गया है जहाँ परस्पर समान और अयो-याधित कहा गया है और, दूसरी धार व्यक्तियों में पाये जाने वाले अंतर और तदनुसार कम के आधार पर विभिन्न वर्णों तथा उनके आचार का निरूपण किया गया है। इसीलिये, हिन्दू विचारधारा में, एक धार विभिन्न वर्णों की उत्पत्ति विषयक विचार मिलता है और, दूसरी ओर, वण धम तथा सभी वर्णों के लिए समान धम विषयक विचार मिलता है।

1 वण, जाति और गणजाति में जो सतति (Continuum) है उसका विशद वर्णन, आगे चलकर, आदिवासी संस्कृति के संदर्भ में किया गया है।

साधारणतः चार वर्णों का प्रतिपादन मिलता है। य चार वर्ण हैं—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वश्य और शूद्र। वर्ण धर्म के निरूपण में इन चार वर्णों को चार प्रकार की वक्तियाँ माना गया है। प्रत्येक 'यक्ति में एक न एक वृत्ति प्रधान होती है और प्रत्येक व्यक्ति की प्रधान वृत्ति का पूरा प्रस्फुटन तथा विकास समाज में होता है। इन चार वृत्तियों का ब्राह्मणत्व क्षत्रीत्व, वश्यत्व और शूद्रत्व की सहाय दी जा सकती है। प्रत्येक वर्ण इस दृष्टिकोण में वह वर्ग है जिसके सदस्यों में एक वृत्ति विशेष की प्रधानता रहती है—ब्राह्मण वर्ण में ब्राह्मणत्व की क्षत्रिय में क्षत्रीत्व की, वश्य में वश्यत्व की और शूद्र में शूद्रत्व की। वर्ण व्यवस्था इस दृष्टिकोण से वह सामाजिक व्यवस्था है जिसमें चार प्रधान वृत्तियों के आधार पर व्यक्तियों और समूहों का वर्गीकरण किया गया है। हिन्दू मान्यताओं में इन चार वृत्तियों का पूर्वनिर्धारित तथा स्थायी मान लिया गया है और इस मान्यता का निरूपण अनुभूतिक तथा दार्शनिक परम्पराओं के सम्मेलन से किया गया है।

प्रत्येक व्यक्ति की प्रधान वृत्ति उसमें गुणों की और गुण धर्मों की जन्म देने है। इसलिये वर्ण का आधार है वृत्ति गुण तथा धर्म का वह सम्बन्धित रूप जिसकी अभिव्यक्ति व्यक्ति तथा वर्ग के सामाजिक गुणों तथा धर्मों में होती है। हिन्दू मान्यता में सामाजिक व्यवस्था का आधार है आचार क्योंकि व्यक्ति तथा समाज की विधायक वृत्ति धर्म है। जो नियम चारों वृत्तियों के सामाजिक विधायक है उही से मिलकर वर्ण धर्म बनता है। वर्ण धर्म के द्वारा चारों वृत्तियों को आदर्श समाज में आदर्श अभिव्यक्ति का निरूपित करने का प्रयत्न किया गया है।

वर्ण व्यवस्था तथा वर्ण धर्म के आधारों की व्याख्या की चार अभिव्यक्ति गीता में हुई है। प्रभु के अनुसार वर्ण धर्म के सिद्धान्त का जो निरूपण वर्ण धर्म और गुण गीता में किया गया है। वह सबके अधिक अग्रगण्य, विद्वद् और सुनिश्चित है। गीता में प्रस्तुत वर्ण सिद्धान्त में प्रकृत गुणों के आधार पर समाज का चार वर्णों में बाटा गया है। प्रभु के अनुसार गुण वह मानसिक प्रवृत्तियाँ हैं जो व्यक्ति के जिविक तथा मानसिक गठन में निहित क्षमताओं से उत्पन्न होती हैं। वर्ण-व्यवस्था का एक आधार मानसिक है और दूसरा मानसिक-आचारी (Psycho Moral)। जहाँ वर्ण का आधार गुण माना गया है वहाँ सामाजिक आधार को अपना मानसिक आचारी आधार अधिक प्रधान हो जाता है। गुणों में वर्ण-व्यवस्था को मानसिक-आचारी आधार (Psycho-Moral Bases) मिले हैं¹। गीता में एक बार यह सिद्ध किया गया है कि प्रकृति सात्विक राजस और तामस तीन प्रवृत्तियों से व्याप्त है और चारों समार दो ही तीन प्रवृत्तियों तथा इनके पात प्रतिपात के कारण है और, दूसरी बार यह सिद्ध किया गया है कि इन्द्रोक्तिक

जीवन से पर एक स्तर वह भी है जहा यह प्रवृत्तिया उस विराट पुरुष म ऐसे लीन हा जाती हैं जैसे सरितायें सागर मे । उस स्तर पर गुण तो रहते है लेकिन गुणा का इहलौकिक प्रभाव अ यकन हो जाता है । यही वह स्थिति है जहा "यत्किं वर्णाश्रम से ऊपर उठकर परम तत्त्व मे मिल जाता है" १ । गीता के चौथे अध्याय मे भगवान कृष्ण न कहा है, ' गुण कम के विभाजन के आधार पर मैंन चार वण उत्पन्न किये ह । मैं चार वर्णों का कता हाने पर भी अविनाशी और अकर्ता हू कयाकि कर्मों के फल मे न ता मेरी स्पहा है और न कम मुझ स्पश ही करते है । इसप्रकार, जो मुझे अच्छी तरह जानत है, व कम-ब धन म नही बधते है २ ।

गीता के अनुसार सात्त्विक राजसी और तामसी भाव परमात्मा से उत्पन्न हुए है । परमात्मा इन भावो पर निर्भर नही हैं, वरन ये भाव परमात्मा पर निर्भर हैं । सारा ससार इही त्रिगुणी भावा मे मोहित हो रहा है जिसके कारण परम अयय (अविनाशी ईश्वर) का पहचानना बठिन है । ईश्वर इन भावो स उच्च और भिन है । त्रिगुणी भावो स दबी माया उत्पन्न होती है जिसस वही पार पाते हैं जो इश्वर की शरण म जाते है ३ । इसप्रकार अलौकिक स्तर त्रिगुणी भावा से परे है । चौहवें अध्याय म, दूमर ढग से इसी तथ्य पर जोर दिया गया है । कृष्ण के कथनानुसार 'महदब्रह्म अर्थात् प्रकृति मेरी योनि है । उसमे मैं गर्भाधान करता हू और उससे प्राणीमात्र की उत्पत्ति हाती है सब योनिया म जिन जिन प्राणियों की उत्पत्ति होती है, उनकी उत्पत्ति का स्थान मेरी प्रकृति है और उनम बीजारोपण करने वाला पिता पुष्प मैं हू । सत्त्व, राजस और तामस ये तीनों गुण प्रकृति से उत्पन्न होते हैं और इस अविनाशी जीवात्मा को शरीर से बाधत है ४ ।

सात्त्विक, राजस और तामस गुण केवल जविक या शरीरी ही नही हैं । त्रिगुणी भाव अथवा बत्तिया जविक भी है और मानसिक भी । गीता के अनुसार सत्त्वगुण निमल होने क कारण प्रकाशक आरोग्यकर और देही को सुख तथा पान से बाधनेवाला है । रजामुण रागरूप हाने स तण्णा और आसक्ति का मूल है और वह देहधारी को बमपाग म बाधत है । तमामुण अनानमूलक है । तमोगुण देहधारीमात्र का मोह म डारता है और देही का अभावधानी भ्रालस्य तथा निद्रा के पास म बाधत है । सत्त्व आत्मा म गाति तथा मुख का रजम कम का और तमस पान ढक वर प्रमाद का प्रोत्साहित करता है । तीना गुणा का एक साथ सहस्रस्तित्व नही पाया जाता है यद्यपि तीना इस ससार म विद्यमान रहत हैं कयाकि गीता म कहा गया है कि जब

१ गीता २/४, ४०

२ गीता ४/१३, १४

३ वही ७/१२ १३ १४

४ वही १४/३, ४, ५

रजस और तमस दबते हैं तब सत्त्व, जब सत्त्व और तमस दबते हैं तब रजस और जब सत्त्व तथा रजस दबते हैं तब तमस उभरता है^१।

तीना गुण अलग अलग वस्तियों तथा उनके लक्षणों को जन्म देते हैं। सत्त्वगुण की बड़ी वृद्धि होती है जहां सब इन्द्रिया द्वारा इस दह में प्रकाश और ज्ञान का उत्पन्न होता है। जहां लाभ प्रवृत्ति बर्षों का आरम्भ अशांति और इच्छा का उदय होता है वही रजोगुण की वृद्धि होती है। तमोगुण की वृद्धि बहा होती है जहां अनाद, मदता, असावधानी और माह उत्पन्न होता है। सत्त्व गुण प्रधान देहधारी जन्म मरता है ता वह उत्तम जानिया के निम्न लोक को पाता है रजोगुण प्रधान देहधारी जन्म मरता है। सत्त्वगुण स ज्ञान रजोगुण म योग और तमोगुण स असावधानी माह तथा मगी लाव (मनुष्य लाव) तथा तमोगुण प्रधान मृत्यानि (पशुयानि) में जन्म पाता है। सत्त्वगुण स ज्ञान उत्पन्न हान है। जत सत्त्वगुण ही सर्वश्रेष्ठस्वर है अर्थात् सात्त्विक मनुष्य अज्ञान उत्पन्न हान है। जत सत्त्वगुण ही सर्वश्रेष्ठस्वर है अर्थात् सात्त्विक मनुष्य ऊंचे चरन हैं राजनी मध्य म रते हैं और अंतिम गुण बाल तामसी अज्ञानता पाते हैं। त्रिगुण भाव स परे पारलौकिक सत्य तक अर्थात् तमो पुरुषता है जब वह ज्ञान के द्वारा यह अनुभव कर लता है कि गुणों के सिवा और कोई बर्ता नहीं है। गुणा से परे जा भाव है वही परमात्मा का भाव है। गुण अर्थात् तमो पुरुषता है जब वह देह के सग से उत्पन्न होने वाले तीनों गुणों को पार कर गुणातीत हो जाता है। गुणातीत वह है जो प्रकाश प्रवृत्ति और माह प्राप्त हान पर दुःख नहीं मानता अर्थात् उनमें प्रवृत्ति होने पर उह बुरा नहीं समझता और उनसे निवृत्ति होने पर उनकी आकांक्षा नहीं करता जो उपासीन की भांति स्थिर है जिस गुण विचलित नहीं करत, जा यह मानकर चलता है कि गुण ही इस सगार में बना है और इस कारण, बमकल के परिणाम से विचलित न होकर स्थिर रहता है जो सुख-दुःख में सम और स्वयं रहता है जा मिट्टी के ढल पत्थर और सान को समान समझता है, प्रिय अप्रिय वस्तु प्राप्त होने पर एक समान रहता है जिसके लिये निन्दा और स्तुति मान और अपमान, मित्र और शत्रु समान हैं और जिन्में समस्त आरम्भों का त्याग कर दिया है अर्थात् जिसमें बर्ता की भावना का लाल हो गया है^२।

गाना में गद्यास और त्याग में अंतर विद्या गया है। कामना से उत्पन्न हुए बर्षों के त्याग का जानी त्याग के नाम से जानने हैं और समस्त बर्षों के फल के त्याग को बुद्धिमान लोग त्याग करत हैं। अर्थात् बर्षों के लिये बर्ष का सबथा त्याग सम्भव नहीं है। अतः, त्यागी वह है जो बमकल का त्याग करना है। गुणातीत बम-त्यागी नहीं करत बमकल-त्यागी है। जहां नियत बम को आवश्यक मानकर, उसके

1 गीता 14 6, 7, 8, 9, 10
2 गीता 14/11 23

फल का त्याग किया जाता है, वह त्याग सात्त्विक है। जहां कम का दुःखकारक समझ कर जीर काया-कष्ट के भय में कम का त्याग किया जाता है, वह त्याग राजस है और जहां माह्वग नियत कम का त्याग किया जाता है वह त्याग तामस है। गुणा तीत वह है जो सात्त्विक त्याग करता है। इससे यह निष्कप निक्लता है कि गुणानुसार कम मानव जीवन का एक स्थाई सत्य है जिसकी अवहेलना नहीं की जा सकती। ज्ञान, ज्ञेय और परिजाता कम प्ररणा व तीन तत्त्व हैं और इन्द्रिय, त्रिया तथा कर्ता कम के तीन अंग है। ज्ञान तथा ज्ञेय की सहायता से ही व्यक्ति परिजाता और परिजाता ज्ञान के बाद इन्द्रिय और त्रिया के माध्यम से कता बनता है। व्यक्ति परिजाता तथा कता गुणानुसार बनता है। इसीकारण, गीता में सभी कुछ त्रिगुणी भावा का विकार कहा गया है। मनुष्य भी इन त्रिगुणी भावों के विकार में भुवन नहा है¹।

ज्ञान, कम कर्ता, बुद्धि, धृति और सुख भी त्रिगुणी भावा के विकार का परिणाम हैं। उपाहरणार्थ ममस्त भूतो म एक ही भविनाशी भाव और विविधता में एकता का भाव की जनभूति सात्त्विक ज्ञान को जन्म देती है भिन्न भिन्न भूता में विभिन्न विभक्त भावा को देयता, राजस ज्ञान को और क्षणभंगुर नागवान गरीर का आत्मा मानकर उमम आसक्त रहन का भाव जो युक्ति तथा तत्व अथ से रहित होता है, तामस ज्ञान का जन्म देता है। फलेच्छा आसक्ति और रागद्वेष से रहित, नियत कम ही सात्त्विक है, जबकि भागच्छा और जह भाव से किया कम राजस है। परिणाम ज्ञान हिंसा और गति का विचार त्रिये त्रिना माह्वश किया हुआ काय तामस है। जिसके लिये सफरता असफलता ह्य शक बराबर है जो आसक्ति और अहराररहित है जिसमें दन्ता और उत्साह² वह कर्ता सात्त्विक जो रागी कमफल की इच्छा वाला लामी, हिंसावान, मलिन ह्य और गति वाला है वह राजस और जो अ-वस्थित, असस्कारी, चक्की गठ, नीच जालसी अप्रसन्नचित्त और दीघमूर्खी है वह तामस है। सात्त्विक बुद्धि बही है जिसमें प्रवृत्ति निवृत्ति काय, अकाय, भय, अभय और बन्धन तथा माय का उचित ज्ञान है। राजसी बुद्धि धम अधम और काय तथा अकाय का विवेक करन में असमर्थ रहती है और तामसी बुद्धि अधकार से घिरी हुई अधम को धम मानती है। जहां मन प्राण और इन्द्रिया की त्रिया को साम्यबुद्धि में धारण किया जाय वहां सात्त्विकी धृति होती है, जहां फल की आकांक्षा हो और धम काम तथा अय का आसक्तिपूर्वक किया जाय, वहां राजसी और जहां दुःख, निद्रा भय गति निराशा तथा मद का भाव हो वहां तामसी धृति होती है। जिसके अभ्यास से प्रसन्नता आती है और दुःख का अंत होता है, जो आरम्भ में विषममान किन्तु परिणाम में अमन जसा होता है और जो आत्मज्ञान का

प्रसन्नता से उत्पन्न होता है वही सुख सात्त्विक होता है। त्रियम् और इन्द्रिया के संयोग से जा आरम्भ में अमृत ममान किन्तु परिणाम में विषममान ज्ञान है वह राजस और जा निद्रा, आलस्य तथा प्रमाण से उत्पन्न होता है तथा जिसका प्रारम्भ तथा परिणाम आत्मा को माहयस्त करने वाला होता है वह सुख तामस है^१।

इस प्रकार, पृथ्वी में, या स्वर्ग में अथवा देवराज्य में, एसा काइ नी प्राणी नहीं है जा, प्रवृत्ति में उत्पन्न इन तीनों गुणों से मुक्त हो। मनुष्य नी इनमें मुक्त नहीं है^२। ज्ञान, धर्म, बुद्धि कम और मूल जिनमें मनुष्य का जीवन बसा हुआ है इन्हीं त्रिगुणी भावों के अधीन है। प्रत्येक व्यक्ति का स्वभाव एसा त्रिगुणी भावों में अलग अलग बनता है जिनमें अनुसार व्यक्ति कमरत होता है। स्वभाव द्वारा ही स्वयम् की उत्पत्ति होती है। स्वयम् में अनात्मिक भावों से उत्पन्न होने परम तत्त्व को भङ्गना है, जिनमें सभी प्राणियों की उत्पत्ति हुई है और जिनमें यत् सारा समस्त व्याप्त है। स्वयम् ही माय का मायन है क्योंकि स्वयम् ही स्वयम् है। विषय स्वयम्, सुख पर धर्म में कदा अछा है। स्वभाव में मनुष्य काय करने का अर्थ है कि जो पाप नहीं लगता क्योंकि जिस प्रकार अग्नि के साथ धूल का संयोग है उसी प्रकार सभी वस्तुओं के साथ दोष का संयोग है। अतः स्वभावानुसार कम का संपादन होने पर भी नहीं छोड़ना चाहिये। स्वभावविहित कम (गुण के अनुसार कम) धर्म का एक मुख्य आधार है। यह वह सीढ़ी है जिसके द्वारा व्यक्ति मनुष्य तथा निधन की ओर अग्रसर होता है। सायम् द्वारा निष्कामता रूपी परम सिद्धि उसे मिलता है जो असन्न बुद्धि (आत्मिक से रहित बुद्धि वाला) चिन्ताया (कामना रहित) और स्पृहविगत (रुचि रहित) होता है^३।

शास्त्रण शान्ति वच्य और गूढ का विभाजन उनमें स्वभावजय गुणा में उत्पन्न होने वाले कमों के कारण है। ज्ञान (ज्ञानभाव में कमरत रहना) धर्म, तप, योग शान्ति (धर्मा), आज्ञा (सत्त्वता) ज्ञान (ब्रह्मज्ञान) विज्ञान (अनुभव, साक्षात् ज्ञान) और आस्तिकता शास्त्रण के, योग मंत्र धर्म दक्षता युद्ध में पाठ में दिक्षाना दान और सामन शान्ति के, साक्षात् गार ता और सायम् वच्य के तथा मवा काय गूढ के स्वभावजय कम हैं^४। शास्त्रण प्रतीक में सात्त्विक बलित का और इगकारण, शास्त्रण यह है जिसकी प्रवृत्ति सात्त्विक ज्ञान सात्त्विक कम सात्त्विक वत त्व, सात्त्विक बुद्धि, सात्त्विक धर्म और सात्त्विक गुण की ओर है। एसा प्रकार, शान्ति और वच्य की प्रवृत्ति राजस की ओर है और गूढ का तानन की ओर।

1 गीता 18/10-30

2 वही 18/40

3 वही 18/47, 46 47 48

4 गीता 18/41-44

वण धम का निरूपण, इस प्रकार, स्वभावगत कृत्यों के रूप में किया गया है। इस निरूपण में स्वभावजय गुण तथा कम की भिन्नता को आधार गुणानुसार माना गया है। लेकिन यह मानना भूल हागी कि वण केवल कृतव्य वण धम स्वभावजय गुण तथा कर्मों की भिन्नता पर ही आधारित है। वण धम का मार ही यही है कि वण धम पर आधारित है न कि धम वण पर^१। वण धम में, स्वभावजय गुण तथा कम की भिन्नता की जननी विधायक वृत्ति की भिन्नता के आधार पर एक लचीली सामाजिक संरचना को प्रतिपादित करने का प्रयास किया गया है। वण धम उन कृत्यों में निहित है जो ब्राह्मण क्षत्रिय वश्य तथा शूद्र वर्ग के सदस्य, अपने अपने स्वभावजय गुणों के आधार पर, कम के रूप में ग्रहण करते हैं। उदाहरणार्थ, महाभारत के शान्ति पर्व में भीष्म के कथनानुसार शिक्षण, आत्म नियंत्रण और तप ब्राह्मण के, अध्ययन, जनरक्षा, यज्ञ और दान क्षत्रिय के, अध्ययन, दान यज्ञ और उचित साधना से धन संचय वश्य के तथा तीनों वर्गों की सेवा शूद्र के कृत्य हैं। भीष्म के अनुसार शूद्र को कभी भी धन-संचय नहीं करना चाहिये क्योंकि धन संचय से शूद्र जय वण के लागे से उच्चतर, हा जाता है। धन संचय शूद्र के लिये पाप है क्योंकि शूद्र का पालन पोषण अन्य वर्गों का धम है। शूद्र तो केवल मेवक है उसके पास जा कुछ भी है, वह उसके स्वामी का है। शूद्र यज्ञ कर सकता है किंतु बिना वदिक मंत्रों का उच्चारण किये^२।

महाभारत के अनुशासन पर्व में उपवास धम पान विवचन वदविहित आचार का पानन, निरंतर वेद पाठ गृह की पवित्र अग्नि का प्रज्वलित रखना, यज्ञ और अहिमा ब्राह्मण के स्वाध्याय रक्षण, यज्ञ तथा दान व अतिरिक्त प्रारम्भ किये हुए कार्यों को पूरा करने की लगन, अपराधियों को उनके अपराध के अनुसार दंड देना तथा दुखी जनों की सहायता के लिये तत्परता क्षत्रिय के, सच्चा व्यापार वश्य का तथा तीनों वर्गों की सेवा शूद्र के कृत्य हैं^३। महाभारत में एक अन्य स्थान पर भरद्वाज को वण धम का महत्त्व बतलाते हुए महर्षि भृगु ने कहा है कि ब्राह्मण वह है जो जात कम तथा धर्म सत्कारा से ससृष्ट किया गया है जिसका आपरण शुद्ध है वेदाध्ययन में जिसकी निष्ठा है जो नित्य वृत्ति (दैनिक व्यवहार) तथा सत्य के प्रति सदैव सजग रहता है, जिसके साथ सत्य दान अहिमा अद्रोह दया, अपा (शील), उपकार और तप सम्पन्नित हैं। इसीप्रकार क्षत्रिय वह है जो क्षत्रियोचित कृत्यों का पालन करने में साथ-साथ स्वाध्याय (व्यापयन) दान तथा धन संचय की ओर प्रवृत्त हो।

१ प्रभू, पी० एच० घटी पृष्ठ ३१८

२ प्रभू, पी० एच० घटी पृष्ठ ३०५-३०६

३ घटी पृष्ठ ३०७

व्यवहृत है जो पशुपालन, कृषक, धनीपावन के साधना में लगा हुआ, गुडाचरण वाला तथा स्वाध्यायी हा जोर, सद्र वह है जो सबभन्नी, अनाचारी, अनुचि और अस्वाध्यायी^१ है।

भागवत पुराण में वर्णों के आधार पर ब्राह्मण धर्मिक व्यक्तियों को गूढ़ का अन्तर बरक वण धर्म का निरूपण किया गया है। भागवत पुराण में निरूपित वर्णों के लक्षणों का आधार विभिन्न वर्णों की स्वभाविक वृत्तियों का अन्तर तथा उन उत्पन्न होने वाली विभिन्न मानसिक विशेषताएँ (Psychological Traits) हैं। उदाहरणार्थ मानस स्वभाव आम नियम, आम नियम (मितापनाम) पवित्रता, सत्ताप क्षमा सरलता (जात्रव) विद्या तथा सत्यता और स्वयं निष्ठा ब्राह्मणक, वीरता, गीय सास तत्र दान का मनियोग्य धर्म ब्राह्मणक प्रति मित्रभाव, अनुकम्पा, गोलता तथा दूगरा की रक्षा का भाव क्षत्रियक ईश्वर तथा गुरुक प्रति निष्ठा, सीमा बना का पापण उद्योग और दानता व्यक्तक तथा विनम्रता पवित्रता स्वामी के प्रति अनन्य सेवा का भाव वण (जिनमें वण भ्रमा का पाठ न हा) चारी करने की प्रवृत्ति का अभाव मत्स्यता और पशु तथा ब्राह्मणों की रक्षा गद्र क लाप है^२। मनु न प्रत्येक वर्ण की प्रथम वर्ण पर वण धर्म का आधारित किया है। वण का पठन पाठन ब्राह्मणक लिये, रक्षण क्षत्रियक लिये दानावृत्ति (सेती कृषिदाय) वैश्यक लिये और सेवा गूढ़क लिये उत्तम वर्तमान हैं^३।

जहां एक ओर, विभिन्न वर्णों के लिये धर्म का अलग अलग निरूपण किया गया है, वहां दूसरी ओर सभी वर्णों के लिए समान धर्म का भी निरूपण वण-व्यवस्था में किया गया है। वण स्वभाव गुण धर्म के अनुसार भिन्न धर्मिक समान धर्म हैं, लेकिन वण भिन्नता का आधार ता बरक मानस में हा है।

जहां जीवन का उच्च मानवीयता है वहां वण ता बरक मानवीयता प्राप्ति के माध्यम हैं। एसी दशा में यह आश्चर्य हो जाता है कि वण धर्म में पर उग धर्म का निरूपण किया जाय ता विभिन्न वण धर्मों के साथ और विभिन्न वर्णों के माध्यम से मानव का मानवीयता की जाय जाय। महाभारत के शांतिपर्व में, नाम के कथनानुसार धर्म (अथाधी नाम) स्वभावपण, चाय (समविभाग) क्षमा, विवाहित पत्नी का ही पालनानुति करना गूढ़ आचरण गणक त दूर रक्षा मन्त्रण (जात्रव), दान करना और भ्रमा का पारण मन्त्री वर्णों का धर्म है। महाभारत के अनुमान पर्व में सभी के प्रति आनिष्कभाव (सदानिष्कभाव) धर्म धर्म तथा धर्म की साधना और अपनी अपनी पाम्थ्य के अनुसार निरूपण

१ मनु पृष्ठ ३१८

२ पृष्ठ ३१६

३ पृष्ठ ३०८

सभी वर्णों का समान धर्म माना गया है। मनु ने अहिंसा सत्य आस्तेय शौच इन्द्रिय-निग्रह दम क्षमा आज्ञा और दान को सभी वर्णों का समान धर्म माना है¹।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि धर्म के साथ साथ आपद्धर्म की भी धारणा मिलती है। धर्म शाश्वत है लेकिन वह देश काल की परिस्थितियों तथा वर्ण धर्म और मर्यादाओं से पर नहीं है। देश काल की परिस्थितिया का प्रभाव आपद्धर्म इतना प्रबल है कि देश-काल के अनुसार धर्म भी भ्रम हो सकता है। वर्ण धर्म भी देश काल की परिस्थितिया तथा मर्यादाओं से उन्मुख नहीं है। आपत्ति अथवा संकट काल में यदि वर्णधर्म का पालन सम्भव न हो तो आपत्तिकालीन वर्ण धर्म (आपद्धर्म) का आश्रय लिया जा सकता है। महाभारत के शान्तिपर्व में यह कहा गया है कि आपत्तिकाल में ब्राह्मण क्षत्रिय के कर्मों को अपना सकता है या यदि क्षत्रिय कम उसकी सामर्थ्य के बाहर हो तो वह वैश्य कर्म को अपना सकता है। यदि वक्ष्यकर्म अपनाता भी है तो वह मदिरा नमक तिलहन (Sesamum Seeds) गदन पर बाल वाले जानवर सांड शह मांस और पका हुआ भोजन किसी भी दशा में न बेच। उसी प्रकार आपत्तिकाल में क्षत्रिय भी वैश्य कर्म अपना सकता है। महाभारत में यह नहीं लिखा गया है कि तीनों वर्ण शूद्र कर्म को अपना सकते हैं या नहीं? लेकिन प्रभू ने यह निष्कर्ष निकाला है कि महाभारत में तीनों वर्णों का किसी भी दशा में शूद्र कर्म अपनाने की अनुमति नहीं है²।

धर्मशास्त्र में भी वर्ण धर्म के निरूपण में आपद्धर्म को स्वीकार किया गया है। यहाँ भी आपत्तिकाल में ब्राह्मण को क्षत्रिय या वैश्य कर्म क्षत्रिय को वैश्य कर्म और वैश्य का शूद्रकर्म अपनाने की अनुमति दी गई है। धर्मशास्त्रों के अनुसार यदि ब्राह्मण और क्षत्रिय कृषिकार्य को अपनाते हैं तो उन्हें इन बातों का ध्यान रखना चाहिये कि उनसे किसी भी जीव का चाट न पहुँचे और न उसकी हत्या हो और यदि वे व्यापार काय को अपनाते हैं तो वे पका हुआ तिलहन नमक पशु मनुष्य रजा तथा मर्द या उनमें बना कपड़ा फल वृक्षमूल औषधि की जड़ी बूटिया, जानी शास्त्र विष मांस साम सभी प्रकार के सुगन्धित तैल दूध मखन तेल मांस गन्धक जगसी चौपाये पशु गरम नील गाय और एक खुरवा चौपाये जानवरों को छानकर उन सभी वस्तुओं का व्यापार कर सकते हैं बिना व्यापार करना वैश्य का धर्म है। मनु के अनुसार विद्या यात्रिक वन्य भक्ति (मजदूरी) सेवा (नीचरा) पशुपालन विपणि (व्यापार) कृषि घटि भिक्षा और कुम्भीरति (मूत्रधारी) जानवर पोषण के ब्रह्म शास्त्रों के अनुसार आपत्तिकाल में सभी वर्णों के लिए उपयोग

1 प्रभू, पी० एच० यही पृष्ठ 30, 307

2 यही पृष्ठ 308

कर सकते हैं। अकाल या निरीह आवश्यकता के पड़ने पर, यदि भोजन के न मिलने पर जीवन का ही खतरा हो तो नाज्य के रूप में चाण्डाल से भी गाय या कुत्ता स्वीकार करने में पाप नहीं लगता है—वस ही जैसे आकाश पर कभी भी बीचड़ की छाप नहीं लगती है। हा यह अवश्य है कि किसी भी दशा में किसी भी वण के व्यक्ति का अपने से उच्च वण के काम का नहीं अपनाना चाहिये^१।

वण धर्म को स्वधर्म के रूप में प्रतिपादित किया गया है और इस रूप में वण धर्म के प्रति यह धारणा रही है कि अपने वण का धर्म दूसरे वण के वण धर्म और धर्म से कहीं अच्छा है। यदि व्यक्ति अपने वर्ण के धर्म की अपूर्ण स्वधर्म साधना कर पाता है और दूसरे के वण-धर्म की साधना करने की उसमें क्षमता भी है तो भी उसे अपने ही वण के धर्म को अपनाना चाहिए। वण के अनुसार काम के प्रति निष्ठापूर्ण समर्पण वण धर्म का मुख्य आधार है। गीता में निष्काम कामयोग के जीवन दर्शन की पट्टभूमि में इसी पर जोर दिया गया है और महाभारत में धर्मक प्रसंगात् द्वारा इस स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

महाभारत के वन पर्व में उस धर्म व्याघ्र^२ की कथा आई है जिसमें कौणिक नामक सपरिवी ब्राह्मण ने वण तथा धर्म की शिक्षा ली थी। ब्राह्मण ने जब यह आश्चर्य प्रकट किया कि व्याघ्र को धर्म व्याघ्र क्या कहा जाता था तो व्याघ्र ने उत्तर दिया, 'जिस काम के लिए सज्जनवर्तों ने मुझे जन्म दिया है, मैं उसमें रत हूँ मैं अपना जीवन अपने उच्च वण के लोका तथा बड़ा कर्त्तव्य भ्रमित कर दिया है निम्न वर्ण में जन्म लेकर भी एवं व्यक्ति आचारणीय हो सकता है, चाहे जन्म या काम में वह अधिक ही कम न हो प्रारब्ध स्वभावितमान है पूज्यजन्म के कर्मों के परिणाम में छुटकारा पाना कठिन है मरने के लक्षण रत पूज्यजन्म के कर्मों तथा पापों का परिणाम है लेकिन अधिकता केवल साधन मात्र हैं क्योंकि जिनका वध होता है वह भी उसके पूज्यजन्मों के प्रभाव के कारण होता है हममें न प्रत्येक

१ अनु. पी० एच० ३०८-३०९

२ व्याघ्र उसे कहते हैं जिसका काम जानवरों और पक्षियों को पकड़ना उनका वध करना और मांस बनना है। धर्म व्याघ्र सत्ता का प्रयोग प्रतीक है उस व्याघ्र का जो धर्म के मग को समझता था और जिसका आचरण धर्मात्सुता था। धर्म-व्याघ्र व्याघ्र धर्म को प्रारब्ध समझ कर करता था। यह गत्यभाषी था, उसमें किसी के प्रति द्वेष नहीं था, अपनी सामर्थ्य के अनुसार वह भिगा तथा दान किया करता था, देवों, अतिथियों और भक्तों का सेवा से जो वध रहता था, उसीपर वह अपना जीवन व्यतीत करता था, उसमें किसी के प्रति घणा का भाव न था और न यह कभी किसी की दुर्गाई करता था।

अपने कर्मों के प्रभाव में है। इसलिए यह देखना हमारा कर्तव्य हो जाता है कि किस प्रकार कम प्रभाव का दूर किया जा सकता है। दान, सत्यता, गुरु की सेवा, जपन, व्रत, धर्म के प्रति निष्ठा, सत्कार, अहंकार से मुक्ति और निष्काय सम्नापण इत्यादि कम प्रभाव से मुक्त हानि के अनेक साधन हैं। हमारे कर्मों की अच्छाई तथा बुराई का विषय में बहुत कृष्ण कहा जा सकता है। लेकिन, महान गौरव उम ही मिळता है जो अपने व्रत धर्म (स्वधर्म) में रत रहता है। धर्म-साधन व्रत धर्म का इस विद्वान्पण का मुनवर ब्राह्मण का यह निश्चय हो गया कि अपनी कर्म-परायणता के कारण धर्म-साधन नहीं वास्तव में ब्राह्मण है। तपस्वी ब्राह्मण कौणिक का गला में 'जा ब्राह्मण अहंकारी, पापी, दुष्प्रवृत्ति वाला और नीच कर्मों में प्रवृत्त हाता है वह वस्तुतः गूढ़ है और जो गूढ़ सत्कारों सत्यभाषी और भ्रमनिग्रही है वह वस्तुतः ब्राह्मण है। जपन कम से ही कोई व्यक्ति ब्राह्मण बनता है और अपने कम में ही वह दुर्देव को प्राप्त होता है।'

महाभारत में आय भीम-नहुष के प्रसंग¹ से भी यही निष्कर्ष निकलता है कि व्रत धर्म, कम पर आधारित है न कि जन्म पर। अजगररूपी नहुष के यह पृच्छन पर कि ब्राह्मण कौन है युधिष्ठिर ने उत्तर दिया कि ब्राह्मण वह है जिसमें सत्य, दान, क्षमा, उत्तम शील दया, तापस प्रवृत्तियाँ और कर्त्तव्य के भाव हों। अजगर के यह कहने पर कि ये लक्षण तो शूद्र में भी पाये जा सकते हैं युधिष्ठिर ने कहा कि यदि ये लक्षण किसी शूद्र में विद्यमान हों तो वह शूद्र नहीं ब्राह्मण है और यदि किसी ब्राह्मण में ये लक्षण अनुपस्थित हों तो वह ब्राह्मण नहीं गूढ़ है। युधिष्ठिर के कथनानुसार ब्राह्मण और शूद्र का अंतर उनकी अलग अलग जीवन वृत्तियों की विशेषताओं पर आधारित है न कि जन्म पर। इसपर अजगर (नहुष) ने प्रश्न किया 'तब जाति का अंतर तब तक बेकार है जब तक मनुष्यों का कम विभिन्न व्रत-वृत्तियों के अनुसार न हो ?'

1 नहुष, भीम और युधिष्ठिर का प्रसंग धनपर्व में आया है। नहुष पाण्डवों के पूजक थे। ऋषियों के प्रति उनका व्यवहार अत्यन्त क्रूर था। एक बार ऋषियों से उन्होंने अपना रथ तिचवाया था जिससे दुर्लभ होकर एक ऋषि ने उन्हें धाप दी थी कि उनका पुत्र जन्म अजगर रूप में हो। साथ ही साथ उन्हें यह धरदान भी दिया कि उनका उद्धार उनके वंशज पाण्डवों से होगा। जन्म में अजगर रूप के रूप में नहुष ने भीम को पकड़ लिया और अपने बंधु पराक्रम के बावजूद भी भीम अपने को छुड़ा न पाये। अजगर ने भीम का छोड़ने का वादा इस बात पर किया कि उसके प्रश्नों का ठीक-ठीक उत्तर दें। भीम के उत्तर न दे सकने पर धर्मराज युधिष्ठिर को बुलाया गया और उन्होंने सपने प्रश्नों का उचित उत्तर देकर भीम को छोड़ा। अजगर का सबसे पहला प्रश्न था कि ब्राह्मण कौन है ?

अजगर के प्रश्न का माराश यह निकलता है कि क्या वण और जाति एक ही हैं ? इस पर युधिष्ठिर ने उत्तर दिया, 'वण माकय के कारण किसी भी व्यक्ति की जाति निर्धारित करना कठिन है सभी वर्णों के स्त्री पुरुष पारस्परिक सम्भाग में सत्ता नात्मत्ति करते रहे हैं और कर रहे हैं भाषा सम्भोग मत्स्य और जन्म सभी वर्णों में समान रूप से पाये जाते हैं सभी वण के लागू किये करने का अधिकार है धर्म के तत्त्वदर्शियों का यह कहना है कि गौतम का सबसे अधिक वाछनीय मानवीय लक्षण है लेकिन शील का विकास सस्वारा द्वारा होता है जन्म के समय प्रत्येक मनुष्य गूढ से किसी भी प्रकार उच्च नहीं होता है¹ जन्मकर्म के सस्वारा के समय प्रत्येक मनुष्य की माँ उसकी सावित्री है और पिता उसका आचार्य प्रत्येक व्यक्ति का गद्गत्व ता उपनयन के बाद समाप्त होता है ब्राह्मण वस्तुतः वह है जिसमें सस्वारा कृत वृत्ति (सस्वाराकृत वृत्ति) पाई जाय ।

महाभारत के अनुशासन पत्र में महेश्वर से यह कहलाया गया है कि निम्न वण का कोई भी व्यक्ति, इस जन्म में स्वधर्म का पालन करके, अगले जन्म में उच्च वण का प्राप्त कर सकता है । लेकिन जो व्यक्ति अपने वण धर्म का पालन नहीं करता है उसका अगला जन्म, इस जन्म के निम्नवण में होगा । इस प्रकार इस सिद्धांत के अनुसार मनुष्य उच्च वण इस जन्म में नहीं करन अगले जन्म में प्राप्त कर सकता है बशर्ते कि इस जन्म में वह अपने वण धर्म का अनुसरण करे । इस जन्म के कम पिछले जन्मों के कर्मों का परिणाम है और उनमें छुटकारा तभी मिल सकता है अर्थात् उच्च वण तभी प्राप्त हो सकता है जब इस जन्म में मिले कर्मों को लगन के साथ किया जाय । इस सिद्धांत के अनुसार वण धर्म मुख्यतः और धर्म साधारणतः यथासाध्य हैं जिनके द्वारा व्यक्ति प्रत्येक जन्म में उच्चतर स्तर पा सकता है । आत्मा गमन और धर्म गतत् उन्निवास के साधन हैं ।

वण धर्म के इस विवेचन में यह निष्कर्ष निकलता है कि वण का आधार धर्म है और वण धर्म जहाँ एक आर स्वभावजय गुणा से बंधा है, वहाँ वण धर्म में धर्म दूसरी धार धर्म में । धर्म वण का आधार है । लेकिन, जैसा कि पिछले विवेचन में स्पष्ट होता है धर्म का स्वरूप प्रचारकी विचारणागर्भ मिलती है । एक विचारधारा यह है कि प्रत्येक व्यक्ति का वण उसके पूर्वजन्म के धर्म गतय पर आधारित है और वहाँ भी व्यक्ति इस जन्म में अपने धर्म का धर्म सकता है । दूसरी धारधारा यह है कि पूर्वजन्म के धर्म नहीं हैं । इस जन्म में धर्म से ही वण बनता है । महाभारत गूढ में भी इस जन्म के धर्मों पर धारणा है । सुखा का गिज्ञाता के अनुसार, धर्म जीवन के धर्मों के ही धारणा है । जीवन बनता है । जहाँ कि गीता में है महात्मागाधीन जन्म धर्म का धर्म ।

1 जन्मना प्राप्त गूढ सस्वाराद्विज उच्चतर ।

एक म मिलाया है। महात्मागांधी के अनुसार, 'मेरा यह विश्वास है कि जैसे प्रत्येक व्यक्ति को आनुवंशिकता में एक आकार मिलता है, वैसे ही उसे अपने प्रजनयिताओं (Progenitors) से कुछ विशेष विशेषताएँ तथा गुण मिलते हैं। इस तथ्य को स्वीकार करना अपनी शक्ति को सर्वाधिक करता है क्योंकि इससे अपनी महत्वाकांक्षाओं पर उचित रोक लग जाती है और अपनी शक्ति के लिए आध्यात्मिक जिज्ञासा तथा आध्यात्मिक उद्विकास का क्षेत्र विस्तृत हो जाता है। मन सत्त्व वर्णाश्रम धर्म का ही अपनाया है।' महात्मागांधी ने वण व्यवस्था को जन्म पर आधारित एक पुष्ट काम विभाजन की व्यवस्था मानी है क्योंकि जसा कि उन्होंने कहा है, 'मेरे सामने उच्चता तथा निम्नता का कोई प्रश्न नहीं है। मेरे सामने केवल कर्तव्य का प्रश्न है'¹। अतः यहाँ पर यह प्रश्न उठता है कि वण का आधार जन्मजात गुण-कर्म है या अर्जित कर्म और सामाजिक प्रतिष्ठा।

महाभारत के शांतिपर्व में जनक को वण की वास्तविकता समझते हुए महर्षि पाराशर ने कहा है कि ब्रह्मविद ब्राह्मण सदाचारी शूद्र को भी ब्राह्मणस्वरूप मानते हैं। निम्नवर्णी व्यक्ति वण व्यवस्था में अपने का ऊँचा उठाने के लिए, उच्च-वर्णी लोगों के आचार का अनुसरण कर सकते हैं यद्यपि उन्हें मन्त्राच्चारण की आज्ञा नहीं है। जनक द्वारा यह पूछा जान पर कि मनुष्य जन्म से दूषित होता है या कर्म से, पाराशर ने उत्तर दिया कि एक ऋषिवाण से मनुष्य दोनों से दूषित हो सकता है। फिर भी दाना में एक विषय अंतर है। जो व्यक्ति निम्न परिवार में जन्म लेने पर भी निम्न कर्म नहीं करता है वह जन्म से दूषित नहीं होता है और उच्च परिवार में जन्म लेने वाला व्यक्ति यदि नीच कर्म करता है तो उसके कर्म उस दूषित करते हैं। जन्म और कर्म में अधिकतर दूषित प्रभाव कर्म का ही पड़ता है।

हिन्दूधर्मग्रन्थों में अनेक ऐसे उदाहरण मिल जाते हैं जिनमें जन्म की अपेक्षा कर्म के आधार पर वण का निर्धारण किया गया है या वण परिवर्तन हुआ है। रामायण और महाभारत में पता चलता है कि अपने प्रयत्नों से विश्वामित्र ने ब्राह्मण पद प्राप्त किया था²। परंपुराण जन्म से ब्राह्मण किन्तु कर्म से क्षत्रिय थे। महाभारत

1 गोपले, धी० जी० इण्डियन थॉट थू दि एजज पृष्ठ 34-35

2 वशिष्ठ के ब्राह्मण बल से प्रभावित होकर हूँ। विश्वामित्र ने क्षत्र बल त्याग कर ब्राह्मण बल के लिए तपस्या की थी। वशिष्ठ विश्वामित्र सभय में इतिहासकारों ने सभय काल के दृढ़ निकालन का प्रयास किया है क्योंकि वशिष्ठ ने विश्वामित्र के इस प्रयास को विरोध किया था। काफी परिश्रम के बाद विश्वामित्र का ब्राह्मण-पद मिला था। लेकिन, प्रभु के अनुसार, यदि हम वर्णों को मात्स्यिक, राजस तथा तामस वर्णों के आधार पर विभाजित मानें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि राजस मानसिक प्रवृत्तियों को सहसा त्याग कर मात्स्यिक की अपनाता सरल नहीं है—प्रभु यही पृष्ठ 320

से कीरव पक्ष के प्रमुख सेनानी द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और अश्वत्थामा जन्म से ब्राह्मण किन्तु कर्म से क्षत्रिय थे। देवापि सिधुद्वीप और वीरहृदय क्षत्रिय राजकुमार थे किन्तु उन्हें ब्राह्मणत्व का पद मिला। इन्द्र जन्म से ब्राह्मण हात हुए भी कर्म से क्षत्रिय माने गये। भागवत पुराण में भी वण परिवर्तन के अनेक उदाहरण दिये हैं। सम्राट् गर्माति का क्षत्रिय वण में जन्म लेने पर भी ब्राह्मणत्व का पद मिला और नामाग नामक राजकुमार को कर्म के आधार पर वैश्य का पद। भागवत पुराण में सम्पूर्ण मात्र क वण परिवर्तन के उल्लेख मिलते हैं। मौन्य गोत्र के सदस्या को ब्राह्मण वण मिला यद्यपि वे मुद्गल नाम के क्षत्रिय से उत्पन्न हुए थे। सम्राट् ऋषभदेव के सौ पुत्रों में से इक्ष्वाकु को ब्राह्मणत्व का पद मिला। पद्म पुराण के अनुसार महाभारत के रचयिता महर्षि वेदव्यास असत-क्षत्र-कुल (निम्नस्तर) में जन्म थे और वशिष्ठ वंश का पुत्र थे। किन्तु दानों को द्विज की श्रेणी में रक्खा गया है^१। वण धर्म में होहि दुर्ब का उसका सामञ्जस्यकारी गुण (Accomodative Quality) मिला है। यह इसी विचार का परिणाम है कि भगवान रामचन्द्र जैसे क्षत्रिय को, श्रीकृष्ण जन्म यादव को, वाल्मीकि जन्म निषाद को तुकाराम और अश्वदेव जन्म क्षत्रियों का मोरावाइ जैसी क्षत्रियों का, गामदेव जन्म दर्जों का रंगस जन्म क्षत्रिय का और बबीर जन्म मुसलमान को हिन्दू-समाज में उच्च पद मिला है^२। यह वण धर्म में निहित आदर्श का ही परिणाम है कि ऐतिहासिक काल में अनेक व्यक्तिओं तथा जातियों के वण-स्तर के परिवर्तन के उदाहरण मिलते हैं जिनका वणन पटल किया जा चुका है।

४

वण अस्माननायें

वण धर्म का एक दूसरा पहलू भी है और वह है उसका पूर्वनिर्धारित रूप। प्रत्येक व्यक्ति के लिए उसका वणधर्म अलौकिक तथा पूर्वनिर्धारित है जिसका पालन करना उसका धर्म है। वणधर्म के माप-माप वण का भी पूर्वनिर्धारित माना गया। इसकी अभिव्यक्ति वण-संस्था में पाई जान वाली उच्चा-चपरम्परा (Hierarchy) में मिलती है। यह इसी विचार का परिणाम है कि विभिन्न वर्गों के लोग के लिए विभिन्न व्यावहारिक मापदण्ड का निर्धारित किया गया है यद्यपि,

१ प्रभू पृष्ठ ३२१

२ पृष्ठ ३०१

एक म मिलाया है। महात्मागांधी के अनुसार, मरा यह विश्वास है कि जैसे प्रत्येक व्यक्ति का आनुवंशिकता से एक जाकार मिलता है, वैसे ही उस अपने प्रजनयिताओ (Progenitors) से कुछ विनाप विशेषताएं तथा गुण मिलते हैं। इस तथ्य को स्वीकार करना अपनी शक्ति का सर्वव्यक्त करना है क्योंकि इससे अपनी महत्वाकांक्षाओं पर उचित रोक लग जाती है और अपनी शक्ति के लिए आध्यात्मिक जिनासा तथा आध्यात्मिक उद्विकास का क्षेत्र विस्तृत हो जाता है। मने सदैव वर्णाश्रम धर्म को ही अपनाया है।' महात्मागांधी ने वर्ण-व्यवस्था को जन्म पर आधारित एक पुष्ट वायु विभाजन की व्यवस्था मानी है क्योंकि जसा कि उन्होंने कहा है, मेरे सामने उच्चता तथा निम्नता का काइ प्रश्न नहीं है। मेरे सामने केवल कर्तव्य का प्रश्न है¹। अतः यहाँ पर यह प्रश्न उठता है कि वर्ण का आधार जन्म ज्ञात गुण कम है या अर्जित कम और सामाजिक प्रतिष्ठा।

महाभारत के शांतिपर्व में जनक को वर्ण की वास्तविकता समझते हुए महर्षि पाराशर ने कहा है कि वेदविद ब्राह्मण सत्पात्री शूद्र को भी ब्राह्मणस्वरूप मानते हैं। निम्नवर्णी व्यक्ति वर्ण-व्यवस्था में अपने को ऊँचा उठाने के लिए, उच्च वर्णी लोगों के आचार का अनुसरण कर सकते हैं यद्यपि उन्हें मन्त्राच्चारण की आज्ञा नहीं है। जनक द्वारा यह पृथक् जान पर कि मनुष्य जन्म से दूषित होता है या कम से, पाराशर ने उत्तर दिया कि एक ऋषिद्वारा से मनुष्य दोना से दूषित हो सकता है। फिर भी दोना में एक विशेष अंतर है। जो व्यक्ति निम्न परिवार में जन्म लेने पर भी निम्न कम नहीं करता है वह जन्म से दूषित नहीं होता है और उच्च परिवार में जन्म लेने वाला व्यक्ति यदि नीचे कम करता है, तो उसके कम उस दूषित करते हैं। जन्म और कर्म में अधिरतर दूषित प्रभाव कम का ही पड़ता है।

हिन्दूधर्मग्रंथों में जनक उस उपाहरण मिल जाते हैं जिनमें जन्म की अपेक्षा कर्म के आधार पर वर्ण का निर्धारण किया गया है या वर्ण परिवर्तन हुआ है। रामायण और महाभारत से पता चलता है कि अपने प्रयत्नों से विद्वान्मित्र ने ब्राह्मण पद प्राप्त किया था²। परगुराम जन्म में ब्राह्मण किन्तु कर्म से क्षत्रिय था। महाभारत

- 1 गोल्ले वी० जी० इण्डियन घाट धू दि एजज पृष्ठ 34-35
- 2 घण्ट के ब्राह्मण बल से प्रभावित होकर ही विद्वान्मित्र ने क्षात्र बल त्याग कर ब्राह्मण बल के लिए तपस्या की थी। घण्ट विश्वामित्र तपस में इतिहासकारों ने बगसघब के तथ्य को दृढ़ निकालने का प्रयास किया है क्योंकि घण्ट ने विद्वान्मित्र के इस प्रयास का विरोध किया था। काफी परिश्रम के बाद विद्वान्मित्र को ब्राह्मण पद मिला था। लेकिन प्रभू के अनुसार, यदि हम वर्णों की सांख्यिक राजस तथा तामस गणों के आधार पर विभाजित मानें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि राजस धानसिक प्रवृत्तियों को सहता त्याग कर सांख्यिक को अपनाता सरल नहीं है—प्रभू वही पृष्ठ 3-0

मे कौरव पक्ष के प्रमुख सेनानी द्रोणाचार्य कृपाचार्य और अश्वत्थामा जन्म से ब्राह्मण
 किन्तु कम से क्षत्रिय थे। देवापि मिथुद्वीप और वीरहृष्य क्षत्रिय राजकुमार थे
 किन्तु उन्हें ब्राह्मणत्व का पद मिला। इन्द्र जन्म से ब्राह्मण होते हुए भी कम से
 क्षत्रिय मान गये। भागवत पुराण में भी वण परिवर्तन के अनेक उदाहरण प्राय हैं।
 सम्राट गयाति का क्षत्रिय वण में जन्म लेने पर भी ब्राह्मणत्व का पद मिला और
 नामाग नामक राजकुमार को कम के आधार पर वैश्य का पद। भागवत पुराण में
 सम्पूर्ण गात्र के वण परिवर्तन के उल्लेख मिलते हैं। मौग्न्य गोत्र के सदस्या को
 ब्राह्मण वण मिला यद्यपि वे मुदगल नाम के क्षत्रिय से उत्पन्न हुए थे। सम्राट्
 ऋषभदेव के सौ पुत्रों में से इक्यासी को ब्राह्मणत्व का पद मिला। पद्म पुराण के
 अनुसार महाभारत के रचयिता महर्षि वेदव्यास असत क्षत्र-कुल (निम्नस्तर) में जन्मे
 थे और वसिष्ठ वंशवा पुत्र थे। किन्तु दाना का द्विज की धरणी में रक्षित गया है^१।
 वण घम से ही हिन्दुत्व का उसका साम-जस्यकारी गुण (Accomodative Quality)
 मिला है। यह इसी विज्ञापता का परिणाम है कि भगवान रामचन्द्र जब क्षत्रिय को,
 श्रीकृष्ण जब यादव को बाल्मीक जैसे निषाद का तुकाराम और अम्बेदेकर जन्म क्षुद्रो
 का मोरावाड़ जैसी क्षत्राणी का, नामदेव जन्म दर्जों का रदास जब धरत्यज का और
 कबीर जन्म मुसलमान का हिन्दू-समाज में उच्च पद मिला है^२। यह वण घर्म में
 निहित आदर्श का ही परिणाम है कि ऐतिहासिक काल में अनेक व्यक्तियों तथा
 जातियाँ के वण-स्तर के परिवर्तन के उदाहरण मिलते हैं जिनका वणन पहले किया
 जा चुका है।

४

वण घममानतायें

वण घम का एक दूसरा पहलू भी है और वह है उसका पूर्वनिर्धारित
 रूप। प्रत्येक व्यक्ति के लिए उसका वणघम अलौकिक तथा पूर्वनिर्धारित है जिसका
 पालन करना उसका धर्म है। वणघम के माय-माय वण का भी पूर्वनिर्धारित माना
 गया। हमकी अभिप्रेतित वर्णव्यवस्था में पाई जाने वाली उच्चा-चरम्परा
 (Hierarchy) में मिलती है। यह हमी विचार का परिणाम है कि विभिन्न वर्णों
 के गणना के लिए विभिन्न व्यावहारिक मापदण्ड का निर्धारित किया गया है यद्यपि,

१ प्रभू पृष्ठ 321

२ पृष्ठ 311

सिद्धांततः, सभी वर्णों को समान माना गया है। सस्कारों में वण वण में भेद किया गया है और सस्कारों की विवेचना के साथ साथ इस भेद का उल्लेख भी किया गया है। यहाँ उनका मरिचक पुनरुल्लेख आवश्यक है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वण के लामा को व्रमण आठ ग्यारह और बारह वर्षों का आयु में विद्या आरम्भ करनी का विधान है। गूद्र के लिए न ता विद्या अध्ययन का ही विधान है और न उपनयन सस्कार का ही। ब्राह्मण क्षत्रिय और वश्य के लिए वेदाध्ययन की अनुमति है। गूद्र को वेदाध्ययन से वचित रक्खा गया है। उपनयन सस्कार में प्रयुक्त हान वाले वस्त्र, यथापवीत और इन्त में भी वण के अनुसार अंतर रक्खा गया है। अनुलाम विवाह के सिद्धांतों के अनुसार प्रत्येक पुरुष का अपने तथा अपने से निम्न वण में विवाह करने का अधिकार है और प्रतिलाम विवाह के सिद्धांतों के अनुसार कोई भी पुरुष अपने से उच्च वण में विवाह नहीं कर सकता है। इन वैवाहिक सिद्धांतों का स्वाभाविक परिणाम यह है कि जिस पुरुष का वण जितना निम्न है उसका पत्नी चुनने का क्षेत्र उतना ही सीमित है अपने वास्तविक रूप में यह नियंत्रण सामाजिक नियोग्यता के अतिरिक्त और क्या है? जो वण सामाजिक उच्चोच्च-परम्परा के सापान में जितना निम्न है उस पर यह नियोग्यता उतनी ही अधिक लामू हाती है। विवाह के द्वारा वण गूद्धता बनाय रखने की वाछनीय माना गया है और वणसाक्ष्य का अवाछनीय। वण भेद में कल्पाचार (Ritualism) पर अधिक जोर दिया गया है। गूद्र के सस्कारों में वदिक मन्त्रों का प्रयोग न करने का विधान किया गया है। गूद्र के लिए अत्यज गन्ध का प्रयोग किया गया है जिसका जय है निम्नतम। जो वण जितना उच्च है उसका सस्कार उतनी ही सघन वदिक मन्त्रों से विध और धनिक जादेशों के अनुसार है। इस सन्दर्भ में वदिक धर्म

1 यही 113 114 115 116

2 जहाँ, एक ओर, अनुलोम तथा प्रतिलोम विवाह के नियमों के रूप में वण वण में पाई जाने वाली सामाजिक नियोग्यताओं का विचार मिलता है वहाँ, दूसरी ओर, जसा कि प्रभू ने दिखाया है, महाभारत में वण अतिविवाहा के अनेक उदाहरण भी मिलते हैं जो विभिन्न वर्णों की आधारभूत समानता का प्रतीक मान जा सकता है। शातनु (क्षत्री) का सत्यवती (गूद्र कन्या) से, दुष्यंत (क्षत्री) का गन्तुला (ब्राह्मण ऋषि कण्व की कन्या) से सम्राट ययाति (क्षत्री) का प्राज्ञण पुरोहित गदाचाय की कन्या द्रव्यानी से और च्यवन ऋषि का राजकुमारी मुक्क्या से विवाह इस तथ्य का उदाहरण है कि महाभारत काल में वणभेद विवाह का आधार नहीं था। लेकिन, साथ ही-साथ, यह कहना कठिन है कि कहाँ तक यह विवाह एक सामाजिक नियम का प्रतीक है। इन्हें अनुलोम प्रतिलोम सिद्धांतों का अपवाद भी कहा जा सकता है।

विभिन्न वर्णों के लिए अलग अलग पूर्वनिर्धारित आदम है।

इस प्रकार वर्णधर्म के निरूपण में, एक ओर मनुष्य में पाये जाने वाले गुणों तथा कर्मों के भेद के अनुसार चतुर्वर्णों व्यवस्था का आधारभूत मान लिया गया है और कम पर जोर देकर उसे अजित सामाजिक प्रतिष्ठा के आधार पर एक ठोकीली वग व्यवस्था के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है तथा दूसरी ओर चार वर्णों का स्थायी मानकर प्रत्येक वर्ण के लिए अलग अलग व्यावहारिक नियमों का निर्धारित करने का प्रयास किया गया है। जहाँ चारों वर्णों का स्थायी मान कर, उनके लिए पूर्वनिर्धारित नियमों के निरूपण का प्रयास किया गया है वहाँ कम के स्थान पर जन्म का प्रधानता मिल गई है जिसके कारण वर्ण से जाति का विभ्रम हा जाता है। यही कारण है कि हिंदू विचारधारा में वर्ण का लक्ष्य जन्म तथा कर्म सम्बंधी द्विविधापूर्ण विचारधारा मिलता है जिसके कारण वर्ण तथा वर्णधर्म के वास्तविक स्वरूप को जानने में सफलता नहीं मिल पाई है। एक ओर, मनुष्य तथा कम पर आधारित वर्ण का वह आदम रूप मिलता है जिसकी व्याख्या तथा प्रतिपादन वेद, पुराण, गीता और महाभारत इत्यादि ग्रंथों में मिलता है और, दूसरी ओर, वर्ण का वह रूप है जो अममानताओं तथा नियोग्यताओं से सम्बंधित रहा है। वर्तमान भारत में यह द्विविधापूर्ण विचारधारा चल रहा है। आयसमाज में वर्ण-व्यवस्था के पुनरुद्धार का प्रयत्न किया और गांधी ने उस मुयुक्तिपूर्ण बनाने का प्रयास किया। दूसरी ओर एम इतिहासकार तथा विचारक हैं जिन्होंने वर्तमान जाति-व्यवस्था के आधार पर वर्ण की विवचना करके उस दोषपूर्ण ढहरान का प्रयत्न किया। वर्ण के वास्तविक स्वरूप के समझने के लिए, वर्ण की उत्पत्ति के सम्बंध में जितनी विचारधाराएँ मिलती हैं, उनका विवचन आवश्यक है।

५

चर्गात्पत्ति के सिद्धान्त

हिंदू विचारधारा में, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, वर्ण-व्यवस्था का मानव-जीवन का स्थायी आधार माना गया है। लेकिन वर्णों की धाराया स्थायी नहीं है। वर्णों का धारणा का हिंदू विचारधारा में एक गहन उन्विद्य है। वर्ण विचार का प्रथम प्रस्ताव कर्मर में हुआ है, और, बाद में गमदानुसार, इन विचारों की व्याख्या, दृष्टा विवचन और परिवर्तन हुआ रहा। इन विचारों पर, एक ओर युग-युग की सामाजिक परिस्थितियों का प्रभाव पड़ा है और, दूसरी ओर, भारत की सर्वांगीण सामाजिक परिस्थिति ने इस पर प्रभाव डाला है। यह वह विचार है जो भारत के

धमग्रन्था मे निहित है। दूसरा विचार, भारत के इतिहासकारों तथा इण्डालोजिस्ट का है। धम ग्रन्था में निहित वण सम्बन्धी तथ्यों के आधार पर इन्होंने वण के उदभव का स्पष्ट करने का प्रयास किया है। वण उदभव सम्बन्धी तीसरा विचार भारत के समाजशास्त्रियों का है जिसका प्रणयन अब प्रारम्भ हुआ है।

ऋग्वेद के पुरुषसूक्त में एक अलौकिक रहस्यात्मक विराट् पुरुष की कल्पना की गई है।

इसी पुरुष से सारे ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुई है और सारे ब्रह्माण्ड रहस्यवादी में यही पुरुष व्याप्त है। इसी पुरुष के मनस से चन्द्रमा की, आकाश सस्य की, मुख में इन्द्र और जगिन की श्वास स वायु की नाभि स अन्तरिक्ष की, सिर स आकाश की, पदा स भूमि की और

बाहो से चार दिशाओं की उत्पत्ति हुई है। ब्राह्मण वण इसी विराट् पुरुष का मुख है।

राज्य (क्षत्रिय) इसकी भुजाय वश्य इसकी जघायें और शूद्र इसके पर है¹।

पुरुष सूक्त की इन पक्तियों का प्रतीकात्मक अर्थ निकाला गया है। पुरुष प्रतीक माना

गया है समाजरूपा शरीर का और मुख बाहु जघा और पर के रूप में ब्राह्मण, क्षत्रिय

वश्य तथा शूद्र वण समाजरूपी शरीर के अंग हैं। समाज में इन वर्णों का वही महत्त्व

है जो शरीर में मुख बाहु, जघा और पर का है। इसी आधार पर यह विचारधारा

मिलती है कि सभी वर्णों के व्यक्तिवस्तुतः समान हैं—वस ही जो शरीर के सभी अंग।

जैसे शरीर के सभी अंगों का महत्त्व है वैसे ही समाज में सभी वर्णों का महत्त्व है।

जिस प्रकार मुख, बाहु, जघा और पर का शरीर में उपयोगी महत्त्व है उसी प्रकार

ब्राह्मण क्षत्रिय, वश्य और शूद्र वर्णों का समाज में उपयोगी महत्त्व है। इसी विराट् पुरुष

के अंगों के रूप में वर्णों की उत्पत्ति का विचार महाभारत और गीता में मिलता

है। उपनिषदों में पुरुष का स्थान ब्रह्म न ल लिया है और वही वही पुरुष के स्थान

पर प्रजापति की कल्पना रखी गई है।

ब्राह्मणग्रन्था तथा उपनिषदों में भी यही रहस्यात्मक विचारधारा मिलती

है। शतपथ ब्राह्मण में एक स्थान पर यह कहा गया है कि प्रत्येक वण में पाये जान

वाले अग्नि के चार दिग्गजों से चार वर्णों की उत्पत्ति हुई है। दिग्गज ब्राह्मण से

मानवी ब्राह्मण की क्षत्रिय क्षत्रिय से मानवी क्षत्रिय की दिग्गज वश्य से मानवी वश्य

की आर दिग्गज शूद्र से मानवी शूद्र की उत्पत्ति हुई है। तत्रय सहिता में शूद्र का प्रजापति

के चरणों से उत्पन्न हुआ माना गया है। बह्मण्यक उपनिषद में वर्णों की उत्पत्ति

के विषय में यह कहा गया है कि प्रारम्भ में केवल ब्राह्मण के अतिरिक्त आर का वण

नहीं था। किन्तु अन्त में उसकी समृद्धि न हो सकी। अतः कल्याण की प्राप्ति के लिए

1 ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद बाहु राज्य इति ।

ऊरु तदस्यैव धन्य पदभ्याम शूद्रो अजायत ॥

क्षण वण क। उत्पत्ति हुई। क्षत्र वण, इन्द्र, वरुण, सोम, रद्र, परजन्य, यम, मत्य और ईशान इत्यादि देवा से मिलकर बना। जब उससे भी काम न चला तो वसु, रुद्र, आदित्य, विश्वान्व जीर मरुत इत्यादि क रूप मे विशम (वश्यत्व) की उत्पत्ति हुई और उससे भी काम न चलने पर पूगन देव क रूप म गूद्र की उत्पत्ति हुई और जब इनसे भी काम न चला तो मानव-कल्याण के लिए धम की उत्पत्ति हुई। वह-दारण्यकापनिपत्र क अनुसार इह्लोकि क चार वर्णों का उत्पत्ति चार दिव्य वर्णों से हुई है। छादाग्य उपनिषद म इस रहस्यात्मक विचार का एक नया रहस्यात्मक आधार प्रदान किया गया है। छातोम्य उपनिषद के अनुसार किसी भी वण म जन्म, पवजम क कर्मों क अनुसार होता है। जिनका आचार इस ज म उच्छा ह उहे अगला जन्म ग्राहण, क्षत्रिय या वश्यवण म मिल्गा और जिनका आचार इस जन्म म दूषित है उह अगला जन्म कुला सुवर या गद यानि म मिल्गा^१।

महाभारत म कई प्रकार स वर्णों की उत्पत्ति को स्पष्ट किया गया है। महाभारत म आये एक ऋषिकण क अनुसार सत्ययुग म वण और जाति का नद महाभारत का नदी था। गातिपत्र म महर्षि भगु क कथनानुसार पहल कव्य गृहमुरी याज्ञना की ही उत्पत्ति हुई और वा म चार वण अस्तित्व म दृष्टिकोण आये। यही वह सिद्धात भी मिल्ता है जिसके अनुसार महमाना जाता है कि मूलत ग्राहण का वण सित क्षत्रिय का लहित, वश्य का पीत और शूद्र का असित है। महाभारत म यह सिद्धात भी प्रतिपात्त किया गया है कि द्विजवण स ही सार वर्णों तथा जातिया की उत्पत्ति हूर है। वणभावय स जातियो की उत्पत्ति का सिद्धात भी महाभारत म मिल्ता है। महाभारत क गातिपत्र म पुष्पसूक्त म निहित रहस्यात्मक सिद्धात का भी वणन मिल्ता है। महाभारत के अनुसार, ग्राहण की उत्पत्ति ब्रह्मा क मुन से हुई, क्षत्रिय की ब्रह्मा क वाग्भा उ वैश्य की जघामा ग और शूद्र का ब्रह्मा क चरणा म। गातिपत्र मे भीष्म क कथनानुसार प्रारम्भ मे प्रजापति (जा प्रजा का पति अथवा रण है) न केवल चार वण उत्पन्न किए और उनके कर्तव्य का निर्धारित किया। लेकिन बाद म इन चार वर्णों के साक्य से अन्व समूह उत्पन्न हुए। महाभारत क अनुगामन पत्र म आये जाव तथा पारांगर क मन्वाद स यह भी स्पष्ट हाता है कि महाभारत म जहा, एक बार सभी वर्णों का समान माना गया है यहा, दूसरी आर, आनुवंशिक दामताओ की भिन्नता का भी वण भिन्नता का आधार माना गया है। जनक क यह पूछने पर कि वणभेद का आधार क्या है, पारांगर न उत्तर दिया कि सत्तान म माता पिता की ही उत्पत्ति हाती है और यदि भूमि और बीज अछे नहीं है ता उनमे उत्पन्न सत्तान भी अच्छी नहीं हागे। महाभारत म विभिन्न वर्णों के गुण तथा कर्मों क निर्धारण का

भी प्रयाग मिलता है। यहाँ यह कहना अत्युक्ति न होगी कि महाभारत में जहाँ सभी मनुष्या का समान माना गया है, सभी वर्णों को प्रजापति के अंगों के रूप में माना गया है, सभी वर्णों को मूलतः समान कहा गया है और इस आधारभूत समानता के सिद्धांत का उम सीमा तक ले जाया गया है जहाँ वर्ण का आधार इहलौकिक जीवन का मस्कार, गुण और कम ही हैं वहाँ, दूसरी ओर "यस्मिन्-व्यक्ति तथा समूह समूह में पाए जाने वाले गुण भेद का आधार आनुवंशिक भी माना गया है। गीता में, विराट पुरुष से नसार तथा वर्णों की उत्पत्ति के विचार की जलौकिक पण्डभूमि में, स्वभावजन्य गुण कम की भिन्नता को वर्ण भिन्नता का आधार माना गया है। मनुस्मृति में जलौकिक तत्व से निमित्त चार वर्णों को आधारभूत और "आश्वत मानकर, उनके आधार पर जातियाँ को स्पष्ट करने का प्रयाग किया गया है। इस प्रकार, धर्म या में निहित वर्ण उत्पत्ति के सिद्धांतों का एक आधार जलौकिक है और दूसरा स्वभावजन्य गुण कम। इन सिद्धांतों में मानव की आधारभूत समानता स्वीकार की गई है लेकिन साथ ही साथ स्वभावजन्य गुण कम की भिन्नता को भी आधारभूत माना गया है।

वर्ण "यवस्था की उत्पत्ति से सम्बन्धित अथवा विचार इंडोलॉजिस्ट (Indologist), इतिहासकारों और समाजशास्त्रियों तथा मानवशास्त्रियों के हैं जिन्होंने धर्मग्रन्थों में निहित सामग्री के आधार पर वर्ण के स्वरूप और उत्पत्ति का निधारित करने का प्रयाग किया है। इस विचार में जो विचार प्रतिपादित किए गए हैं उनमें एकमतता नहीं है और न होने की सम्भावना ही है क्योंकि धर्मग्रन्थों में निहित सामग्री का निवचन कई दृष्टिकोणों से किया जा सकता है। विषय वस्तु को स्पष्ट करने के दृष्टिकोण से यहाँ मुख्य मुख्य विचारों का वर्णन किया जा रहा है।

ऋग्वेद में कहीं तीन वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय और विसा) का उल्लेख मिलता है और कहीं ब्राह्मण क्षत्रिय वश्य और शूद्र चार वर्णों का। पुरुषसूक्त के विषय प्रजापति सम्पक में लाया जा ऐसा मत है कि यह वाद की रचना है। प्रभू ने हाग (Haug) का मत का उल्लेख किया है जिसके अनुसार यह प्रतीत ससृष्टि तथ्य है कि वर्ण-व्यवस्था के आधार में जाति "यवस्था रही है¹।

हाग (Haug) का अनुसार यह सत्य है कि ऋग्वेद के प्रारम्भ के अंग में जाति प्रथा का उल्लेख नहीं है और न जाति प्रथा का उस रूप में वर्णन ही मिलता है जिस रूप में उगना निरूपण पुराणों और स्मृतियों में मिलता है। तबिन यह भी नहीं वर्णन करता सकता कि ऋग्वेदिक काल में जाति प्रथा का अस्तित्व ही नहीं था। हा, यह अर्थ है कि इस काल में विभिन्न वर्णों में पाए जाने वाले अवरोध (Barriers) इतने प्रबल नहीं थे जितने कि वे बाद में हो गए। इसी सम्बन्ध में हट्टन ने लिखा है

कि वणव्यवस्था अपने मूलरूप में अनावृत वणव्यवस्था (Open Class System) के रूप में थी। प्रभू ने यह निष्कर्ष निकाला है कि ऋग्वेद में जिस समाज की स्वरूपाओ का वर्णन है, उसमें वण तो थे लेकिन वेणा, दान पात और विवाह के आधार पर वण-वण में भेद न था। इसका एक सम्भव कारण यह भी हो सकता है कि ऋग्वेद में मूलतः आर्यों के ही समाज का वर्णन है। अधिकतर विद्वानों का यही मत है कि वण व्यवस्था के रूप में ऋग्वेदीय समाज की वण-व्यवस्था वसुन्तम की अपणा यत्नित गुणों पर अधिक आधारित थी।

लेकिन ऋग्वेदीयकाल की सामाजिक वर्ण व्यवस्था से सम्बंधित दो अन्य तथ्यों का उल्लेख यहां आवश्यक है। पहला तथ्य यह है कि तत्कालीन आर्यों के समाज में वग व्यवस्था अकुरित हो चुकी थी जिसका प्रमाण ब्राह्म (पुण्ड्रितवण), क्षत्रिय, (अभिजात्य या शासक वग) और विशा (जनसाधारण) नामक तीन वर्णों का उल्लेख है। यह इस बात का प्रमाण है कि तत्कालीन आर्यों के समाज में कार्यत्मक विशेषीकरण (Functional Specialization) की प्रक्रिया प्रसिद्ध हो जा चुकी थी और आर्यों में विवर्गी वण विभाजन वसी का परिणाम था। दूसरा तथ्य यह है कि, एक ओर, मित वर्णों आर्यों का वर्णन मिलता है और, दूसरी ओर अमित वर्णों दासा अथवा दस्यु का। दास या दस्यु का प्रमाण अनाथों के लिए हुआ है। ऋग्वेद में आठ वर्णन के अनुसार अनाथ वे हैं जिनकी स्वचा कृष्णवण की है, जिनकी नाम चौड़ी है, जिनकी भाषा समझ में नहीं आता है, जिनमें जन और ईश्वर की पूजा नहीं पाई जाती है और जो विचित्र प्रकार की प्रथाओं का पालन करते हैं। ऋग्वेद में गूढ दास का कोई स्पष्टीकरण नहीं मिलता है और कालांतर में शूद्र का दास शब्द का प्रयोग हो गया। यह भी कहा जा सकता है कि दास या दस्यु का प्रयोग साधारणतः द्राविडों तथा प्राक-द्राविड गणजातियां के लिए हुआ होगा। प्रभू व

- 1 प्रभू ने एक ब्राह्मण श्लोक का कथन उद्धृत किया है जिसमें यह कहा है कि 'मं कवि हं, मेरे पिता वध थे मेरी माता अनाज पीसने वाली थीं प्रथि भगु के कुछ ब्रह्म' ऐसा कहा जाता है रथ निर्माण का कला में निपुण ध (पृष्ठ 293)। यथाति (क्षत्रिय) और दस्यु (ब्राह्मण कथा), दुष्यन्त (क्षत्रिय) और गुरुतला (ब्राह्मण कथा) के विवाहों जैसे उदाहरण देकर प्रभू ने यह निर्धारित किया है कि विवाह के आधार पर वण-वण में भेद न था (पृष्ठ 291)।
- 2 इसी आधार पर कुछ विद्वान वण की उत्पत्ति भारत में होने वाले प्रजाति-सम्पर्क (Contact of Races) से मानते हैं यद्यपि, जसा कि पहले लिखा जा चुका है, वण प्रजाति नहीं हैं। रिसेले ने प्रजाति की वण ही नहीं जानि का आधार माना है और डॉ० मजूमदार ने जाति के मूलधारों की संघर्ष और प्रजाति सम्पर्क (Clash of Cultures and Contact of Races) में निर्धारित करने का प्रयास किया है।

अनुसार, सम्भव है कि शूद्र कोई मुख्य दास गणजाति रही हो जिसके आधार पर पराजिता को आर्यों ने शूद्र की सजा दी हो और कालांतर में शूद्र शब्द का व्युत्पत्तिक अर्थ दास (गुलाम) के अर्थ में आ गया¹। इरावती कर्वे के अनुसार, शूद्र शब्द का प्रारम्भिक अर्थ और इतिहास अनिश्चित है। बहुत सम्भव है कि यह कोई गणजातीय (Tribal) नाम रहा हो जो कालांतर में निम्नतम सामाजिक स्तर का प्रतीक बन गया हो²।

इरावती कर्वे ने वर्णोत्पत्ति का एक अर्थ स्पष्टीकरण दिया है। उनके अनुसार, इस बात की अधिक सम्भावना जान पड़ती है कि जाति के प्रकार का संगठन भारत में आर्यों के पहले ही अस्तित्व में आ चुका था। जब भारत में आर्य विजिता के रूप में आया तो उन्होंने अपनी त्रिवर्णी वर्ण व्यवस्था को देशज सामाजिक-व्यवस्था से ऊपर रखवा। इस प्रकार, जब जाति और वर्ण व्यवस्था का सम्मिलन हुआ तो देशज सामाजिक-व्यवस्था के अनेक तत्व वर्ण व्यवस्था में मिल गए। वर्ण व्यवस्था की जड़ें देशज जाति व्यवस्था के आरंभ में ही बनी गईं। ब्राह्मणों ने अपने वर्ण में अनेक देशज समूहों को मिलाया। क्षत्रियों ने अनाथ राजपरिवारों की राजकुमारियाँ से विवाह किए और विश, धीरे धीरे, श्रमिकों की अवस्था से ऊपर उठकर एक धनाढ्य वर्ण के रूप में बदल गए। बौद्ध साहित्य में वैश्य का वर्णन ऋग्वेदिक काल के विश (सबसाधारण कृषक और पशुपालक) के रूप में मिलकर धनाढ्य व्यापारी के रूप में मिलता है। इस काल में कृषक और पशुपालक हेतु दृष्टि से देखा जा सकता है। एक सबसाधारण श्रमिक वर्ण से आर्य विश का एक धनाढ्य व्यापारी वर्ण में रूपान्तरण तभी हुआ जब पराजित वर्ण के लोग बंठित तथा निम्न कार्य के लिए उपलब्ध हुए³। इसकी पुष्टि इस तथ्य से भी होती है कि आर्यों के सम्कार, जिनमें यज्ञोपवीत मुख्य है केवल तीन ही वर्णों के लिए हैं। विश वर्ण के लोगों को आर्यों के समाज में उच्चस्थान प्राप्त करने के लिए निरंतर प्रयास करना पड़ा है। व्यापार तथा उत्पादन में लगे होने के कारण, एक आर्य वैश्यवर्ण का सम्पर्क श्रमिकवर्ण (शूद्र) से रहा और, दूसरी ओर उच्चवर्ण के लोगों से। सम्भवतः यह उच्च सामाजिक स्थिति प्राप्त करने का ही प्रयास था कि बुद्धवादी जादोलन का सबसे अधिक प्रभाव वैश्य तथा शूद्र वर्ण के लोगों पर ही पड़ा। आज भी हिन्दू समाज में उच्चस्तर प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील जातियों में (जो अधिकतर शूद्र वर्ण में आती हैं) आर्य सम्कारों जिनमें यज्ञोपवीत मुख्य है, को अपनाने पर जोर दिया जाता है। वर्ण व्यवस्था के इस पहलू पर आवश्यक स्थान पर पुनः विचार किया जायगा।

1 प्रभू, पी० एच वही पृष्ठ 203

2 कर्वे, इरावती हिन्दू सोसायटी एन इन्टरप्रिटेगन पृष्ठ 63

3 वही पृष्ठ 67

वैदिक युग के बाद, धीरे-धीरे, वर्णों में अंतर बढ़ता हुआ मिनता है। शतपथ ब्राह्मण में चारों वर्णों के लिए अलग-अलग सम्बोधन शब्दों के प्रयोग का विधान मिलता है। यही नहीं, अलग-अलग वर्णों के लिए अलग-अलग आकार के पिंडों का भी विधान है। साथ ही साथ, यह भी विधान है कि ब्राह्मण गायत्री मंत्र भू, क्षत्रिय भुव और वैश्य स्व से उच्चारण करे क्योंकि ब्राह्मण की उत्पत्ति भू शब्द से, क्षत्रिय की भुव और वैश्य की स्व शब्द से हुई है। तृतीय ब्राह्मण के अनुसार, ब्राह्मण का मन वा अनुष्ठान वस्तु ऋतु में क्षत्रिय को दीप्य ऋतु में और वैश्य का पतमड की ऋतु में करना चाहिए। इस प्रकार, ब्राह्मणमंत्र के रचनाकाल में विभिन्न वर्णों के अधिकारों का समाजिक प्रतिष्ठानों में अंतर आता दिखाई पड़ता है जो सत्ता और उपनिषदों के रचनाकाल में बढ़ता ही गया। इस काल में गूढ़ शब्दों का प्रयोग चतुर्थ वर्ण के लिए बहुधा किया गया है। यहाँ गूढ़ की अन्वय नियोग्यताओं का उल्लेख मिलता है। वह मन में सम्मिलित ना हो सकता था लेकिन उम मन करने का अधिकार न था। अम वर्णों की सेवा ही उसका काम था। अम वर्ण के लिंग क चरणा को घोलने के लिए ही गूढ़ मन में सम्मिलित हो सकता था क्योंकि वह स्वयं प्रजापति क चरणा से उत्पन्न हुआ है। इस काल में यहाँ तक विधान मिलता है कि ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य के वर्ण क लोका को गूढ़ से प्रत्यक्ष जान नहीं करनी चाहिए। इस काल में केवल शत्रु स्त्री या पुरुष से विवाह करने का नियम मिलता है।

महाभारत में जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है एक ओर, मन्यवस्था का वह रहस्यात्मक स्पष्टीकरण मिलता है जिसका आदिशत ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में है और, दूसरी ओर स्वभावज्ञान गुणधर्मों के आधार पर वर्ण का सामाजिक व्यवस्था का आधार प्रतिपादित करने का प्रयास मिलता है। यहाँ वर्णज्ञान के आधार पर जातिधर्मों को स्पष्ट करने का भी प्रयास मिलता है। यह वह प्रयास है जिसका व्यापक प्रयोग मनु ने किया है। वही काल के बाद से चार वर्णों का सामाजिक व्यवस्था का स्थायी आधार मानने का विचार मिलता है और महाभारत इस विचार का अपवाद नहीं है। इसी कारण महाभारत में अनुष्ठान विवाहों का बाह्य और प्रतिलोम विवाहों का आवाहनीय माना गया है। गीता महाभारत का ही एक अंग है। महाभारत में स्वभावज्ञान गुणधर्मों के आधार पर वर्णव्यवस्था का एक आत्म आवाहन मन्यवस्था के रूप में प्रतिपादित करने का जो प्रयास किया गया है, गीता में उसी को युक्तिपूर्वक बनाने का प्रयास है। गीता में गुणों की भिन्नता की आधारभूत धर्म स्वभावज्ञान माना गया है जिसमें यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि गुण, माध्यात्म आनुवंशिक हाने हैं जो कर्मों द्वारा स्थायी भी हो सकते हैं और कर्मों द्वारा बने भी जा सकते हैं।

1. गीता के लिए यह कहा जाता है कि गीता में उस सामाजिक व्यवस्था के लिए

ऐतिहासिक निवचन की मान्यवादी पद्धति से प्रभावित इतिहासकार वण जीर जाति को वण-व्यवस्था के विरोध पहलू मानकर, उ हे कुछ मतत, स्थायी सामाजिक सामाजिक जाधिक आवश्यकताओं की उत्पत्ति मानते ह। उनके आधिक निवचन अनुसार धम ग्र-यो मे वण-व्यवस्था का निरूपण एक आदश के रूप मे किया गया है जबकि वास्तविकता कुछ और रही है। वण व्यवस्था उनके अनुसार, वस्तुतः एक साम तवादी व्यवस्था है जिसका उदभव कृषि के साथ साथ होता है। वणव्यवस्था तथा धम एक निष्प्रवाह सामाजिक आर्थिक व्यवस्था के प्रतीक हैं जो भारतीय आर्थिक इतिहास की एक विशेषता रही है। ग्राम और ग्रामीण व्यवस्था का उदभव भी कृषि के साथ साथ होता है। कौसाम्या क अनुसार जब ग्राम सामाजिक राजनतिक संगठन तथा आर्थिक उत्पादन की एक इकाई बना और ग्रामीणता को सर्वोपरिता मिली, तभी जातिप्रथा मे रूढ़िवादिता आई। ग्रामीणता पर आधारित निष्प्रवाह अथव्यवस्था (Stagnant Economy) से जो सामाजिक मकुल (Social Complex) उत्पन्न हुआ वह वण-व्यवस्था पर आधारित जाति-व्यवस्था थी। एसी दग म जाति-व्यवस्था का आधार वण धम वा जिसस निष्प्रवाह जय-व्यवस्था और भी निष्प्रवाह बनी रही। इसमे कोई स दह नहीं कि वण व्यवस्था तथा धम मे विभिन्न वर्गों के बीच और विभिन्न सामाजिक शक्तियों क बीच सन्तुलन बना रहा। इस व्यवस्था से ब्राह्मणों का पीरोहित्य मत्ता पर एकाधिकार मिला, क्षत्रियो से मणिक तथा राजनतिक सत्ता पर और वश्यों का आधिक सत्ता पर जिसस चारों वर्गों म सहयोग आवश्यक हो गया और सामाजिक मरचना गुचार रूप से चलनी रही। जाति स सामाजिक मरचना का यदि रूढ़िवादिता मिली तो वण स कृषि तथा ग्रामीणता पर आधारित सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था की सीमाओं के अतगत सामाजिक मरचना का एक सामित लक्ष्योत्पन्न मिसा¹।

इस दृष्टिकोण स वण-व्यवस्था तथा वणधम भारत की आर्थिक परिस्थितियों का परिणाम हैं। अपनी सांस्कृतिक तथा प्रजातिक विजातिता के कारण भारतीय सामाजिक बहुमुखी रहा है। वणधम ने इसी बहुमुखी समाज के एकीकरण

एक युवितयुक्त दशन को प्रतिपादित करने का प्रयास किया गया है जिसमें असमानता का आधारभूत भाव निहित था और जिसे गीता की प्रतिष्ठा के कारण स्थायित्व भी मिला। गीता की रचना के पहले ही यह व्यवस्था अस्तित्व में आ चुकी थी। गीता में इस व्यवस्था को अनावृत और लक्ष्योत्पन्न बनाने का प्रयास है। गुणकमविभाग के सिद्धांत के आधार पर गीता ने इस व्यवस्था में उदारता सान का प्रयास किया है ताकि सिद्धांततः, उसमें ऊर्ध्वगामी तथा अधोगामी चरित्रता की सम्भावना बनी रहे—गोखले वही पृष्ठ 33

की आवश्यकता का पूरा किया है। भारत का बहुमुखी समाज जीवन निर्वाह वाली अर्थ-व्यवस्था (Subsistence Economy) पर आधारित रहा है। इसके उत्पादन के तरीके पुराने रहे हैं और यहाँ आर्थिक विकास के लिए आवश्यक धातुओं की कमी रही है। आर्थिक निष्प्रवाह न सामाजिक निष्प्रवाह का प्रोत्साहित किया और वणधर्म ने विभिन्न वर्गों के स्तर तथा कार्यों का पूर्वनिर्धारित करके, सामाजिक आर्थिक निष्प्रवाहता में सहभाग दिया। निष्प्रवाह परिस्थितियाँ में सामाजिक एकीकरण की आवश्यकता ने रूढ़िवादिता को जन्म दिया जिसकी अभिव्यक्ति हुई प्रत्येक वर्ण के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक कार्यों के पूर्वनिर्धारण में जिस धर्म की धारणा के आधार पर और भी घुट्ट किया गया। मिथ्यातत्त्व धर्म के आधार पर वर्ण का परिवर्तनीय माना गया लेकिन व्यवहार में वर्ण पूर्वनिर्धारित ही रहा। वणधर्म के आधार पर हिंदू समाज में अनेक विजातीय समूहों का सामूहिक अवस्था हुआ लेकिन प्रत्येक समूह को पूर्वनिर्धारित सामाजिक प्रतिष्ठा प्रणाली में ही एक न एक स्तर मिला। गांधी के वाक्य धर्म सम्बन्धी विचार निष्प्रवाह आर्थिक व्यवस्था की आवश्यकताओं की घुट्ट-भूमि में ही समझे जा सकते हैं। गांधी ने वर्णव्यवस्था को जन्म पर आधारित और पूर्वनिर्धारित कर्तव्य व्यवस्था के रूप में स्वीकार किया है और, साधु हूँ साधु उत्स, अर्थ व्यवस्था को अपनाएँ पर जार किया है जिसमें व्यक्ति की 'यूनितम आवश्यकताएँ हूँ और उनकी पूर्ण उत्पादन के उन्ही प्राचीन तरीकों से ही जा निष्प्रवाह भारतीय आर्थिक संगठन की विगपताएँ हैं'। गांधी ने जिस अर्थ व्यवस्था, सामाजिक व्यवस्था तथा वर्णाश्रमव्यवस्था की कल्पना की है उसमें अस्तित्व, धर्म, आत्म निष्पट, अभावान्छातीति (Wantlessness) धार्मिक मर्यादा, सन्तोष और दरिद्रनाराज्य का आश्रय सर्वोपरि है और यही आदर्श भारतीय, विशेषतः हिंदू समाज का आदर्श रहा है। माकमवादिओं के अनुसार यह आश्रय उस सामन्तवादी सामाजिक व्यवस्था की उपज है जिसमें, निम्न प्रौद्योगिकीय स्तर के कारण, आर्थिक विपत्तयें न हो सकीं जिसके कारण, एक भोग, जन साधारण का सन्तोष या पाठ पढ़ाया गया और, दूसरी ओर, सामन्तों के धर्म और वनव्यवस्था अलौकिक आधार प्रदान किया गया^२।

1 यही

2 अर्थमेव धर्म, धर्मवर्तों सम्पाद और उत्तम अलौकिक गुणों की कल्पना, सम्पाद की राजस्व मानना, भोग, गुप्त और मूल्य सामानों का वैभव, जिसका अनुकरण धर्म जी सरकार ने भी किया, इसके प्रमाण बताये जाते हैं। शत्रियों ने इस वैभव को धनाया, ब्राह्मणों ने उसे पुत्रितपुत्रन आधार प्रदान किया क्योंकि ब्राह्मण की रक्षा शत्रियों का कर्तव्य रहा है। धर्मों ने इस वैभव के निर्माण में योगदान दिया। यह सारा वैभव शत्रुओं के परिश्रम ने निर्मित हुआ। अर्थ भवनों चढ़े-चढ़े शिल्पों, ऊँचे ऊँचे मंदिरों तथा मस्जिदों और शालीगान मकबरों का निर्माण उन्ही धर्म ने हुआ है जिसका त्याग जनसाधारण ने किया है।

भावमवादी इतिहासकारों ने वण व्यवस्था में वण सघप के तत्वों को निर्धारित किया है। विश्वामित्र और वगिष्ठ का सघप इस विचारधारा के विद्वानों के लिए ब्राह्मण-क्षत्रिय सघप का प्रतीक है। विश्वामित्र को ब्राह्मण पद प्राप्त करने के लिए निरंतर सघप और तपस्या करनी पड़ती थी और उन्हें अनेक परीक्षाएँ भी देनी पड़ी थी जो इस बात का प्रमाण माना जाता है कि ब्राह्मण पद एक वगविशेष के एवाधिकार में था जिसे पाना कठिन कार्य था¹। रामायण में यह कथा आई है कि राम ने उस गूढ़ का बंधन डाला था जिसने दूद्र-कर्म छोड़ कर तप कर्म अपना लिया था। मनुष्य रूप में भगवान् के सभी अवतार क्षत्रिय वण में ही हुए हैं। ऐसा कहा जाता है कि महात्मा बुद्ध और महावीर स्वामी का क्षत्रिय वण में जन्म लेना इतिहास की भावस्मिन् घटनाएँ मात्र नहीं हैं। बुद्धवाद तथा जनवाद ब्राह्मणवाद के विरुद्ध आंदोलन थे और यही कारण है कि इन दोनों आंदोलनों का सबसे अधिक प्रभाव क्षत्रिया, वैश्या और दूद्रों पर पड़ा। क्षत्रिय और वैश्य वण, वण-सघप से उत्पन्न होने वाले आंतरिक सामाजिक भाषाता को सातम करने वाले वण रहे हैं क्योंकि, वण-व्यवस्था में निहित सामाजिक प्रतिष्ठा व्यवस्था में उच्च स्तर प्राप्त करने वाले समूहों को, जाति के रूप में, इन्हीं वर्णों में सर्वाधिक स्थान मिलता रहा है। क्षत्रिय वण में सबसे अधिक विद्रोही प्रवाह सातम हुए हैं और इसी कारण भारत के जिन जिन भागों (बंगाल, तामिलनाडु और आंध्र प्रदेश) में क्षत्रिय वर्ण अनुपस्थित रहा है, वहाँ हिंदू समाज का संगठन अधिक असंतुलित रहा है। दूद्रों को अत्यंत मानने की, कल्पना, उन्हें सत्कारों से वंचित करने का प्रयास, उन्हें मोक्ष का अधिकारी न मानना, वेदाध्ययन और तप से उन्हें अलग रखना उन्हें अछूत मानना और उन्हें अन्य तीन वर्णों के समान सामाजिक अधिकार न देना, वग सघप की भावना के प्रतीक माने जाते हैं। यही कारण है कि इस्लाम के प्रभाव से जब एक नया यातावरण अस्तित्व में आया तो समाजसुधारकों की एक बड़ी संख्या का प्रादुर्भाव दूद्रों और क्षत्रियों में ही हुआ। आज भी भारत के विभिन्न भागों में निम्नवर्णी जातियाँ, एक और हिंदू समाज में उच्च स्तर प्राप्त करने के लिए जहाँ उन कर्मों को अपनाती हैं जिन्हें ब्राह्मणोंचित बताया गया है तो दूरी और, अपने का क्षत्रिय या ब्राह्मण सिद्ध करने का प्रयास करती हैं।

इस प्रकार, भावमवादी विचारधारा में वण-व्यवस्था तथा धर्म को उग सामंत

-
- 1 लेखिका, प्रभू के अनुसार, विश्वामित्र द्वारा किया जाने वाला सघप और तपस्या उन ब्राह्मणोंचित गुणों को प्राप्त करने का प्रयास है जो ब्राह्मण वण के स्वभाव अन्य गुणों के अनुसार स्वाभाविक है। विश्वामित्र का सघप काल, प्रभू के मत में, उस मानसिक शिक्षा बोधा का काल है जो ब्राह्मण के लिये स्वभावतया आवश्यक है—प्रभू वही पृष्ठ 310-320

वादा व्यवस्था तथा उनसे सम्बन्धित सामाजिक आदर्श के रूप में स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है जो भारत की सामंती अवस्था की परिस्थितियों में उत्पन्न हुए। यह निर्विवाद है कि वण-व्यवस्था वस्तुतः एक विरोध प्रकार की वग-व्यवस्था है, और, इस तथ्य का भी एकदम अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि इसमें वग सघष की प्रक्रिया का संघर्ष अनाव र्था है। आधुनिक समाजशास्त्रीय मापताओं में एक यह मापता भी स्वीकार की जाने लगी है कि सामाजिक संरचना में एकीकरण (Integration) और समवेग्य (Solidarity) का साथ साथ संघर्ष भी पाया जाता है। स्तरीकरण (Stratification) और उसमें उत्पन्न वग-व्यवस्था सर्वत्र पाए जाते हैं। संघर्ष भी सर्वत्र पाया जाता है। लेकिन हर दशा में संघर्ष का परिणाम विश्रुत नहीं ही नहीं है और न अव्यवस्था ही वग का एकमात्र कारण है। अव्यवस्था का वग का एकमात्र कारण तथा वग का संघर्ष-परिस्थिति की ही उत्पत्ति मानने का कारण भाष्यवादी दृष्टिकोण एकांगी हो गया है। प्रत्येक सामाजिक-संरचना आदर्शव्यवस्था से सम्बन्धित रहती है किसी भी समाज में वग का धारणा उस समाज के आदर्शिक नियमों के ही अनुसार होती है¹। वणव्यवस्था की उत्पत्ति का केवल आर्थिक निवचन इस दृष्टिकोण से एकांगी है यद्यपि उसकी नितांत अवहेलना नहीं की जा सकती है। प्रभू ने सामाजिक मनाविधान के सिद्धांतों का आधार पर वण का स्पष्ट किया है।

प्रभू भी वणव्यवस्था को वगव्यवस्था मानते हैं। वग-व्यवस्था एक

प्रभू का सामाजिक
मनाविधानिक
निवचन

सांख्यिक सामाजिक प्रमेय है जिसकी उत्पत्ति एक आधारभूत सामाजिक आवश्यकता के कारण होती है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि सामाजिक संरचना से ही समाज का समवेग्य और संरक्षण मिलता है। अतः प्रत्येक समाज की यह आधारभूत आवश्यकता है कि

उसके संरक्षण संरचना के विभिन्न स्तरों में रखे जाय और उसके परम्पर्य जा भी सदस्य सामाजिक संरचना के जिन स्तर में हैं, उसके अनुसार उस सामाजिक उद्देश्य के अनुष्ण काम करने की प्रेरणा मिले। वगव्यवस्था और स्तरांतरण—हो माध्यम हैं जिनके द्वारा इस सामाजिक उद्देश्य की पूर्ति होती है क्योंकि संरचना के माध्यम में, प्रत्येक व्यक्ति की क्षमताओं के अनुसार, उसके उच्च स्तर सामाजिक प्रतिष्ठा और समिधा के लिये चुना जाता है जिनके कि यह माध्यम होता है। सामाजिक स्यादित्व के लिये यह भी आवश्यक है कि समाज उन माध्यमों का भी दृढ़ निवचन जिनके द्वारा प्रत्येक स्तर के व्यक्ति का सामाजिक उद्देश्य के अनुसार अपनी भूमिका निभाने की प्रेरणा मिले। वगव्यवस्था, स्तरांतरण, सामाजिक प्रतिष्ठाओं और भूमिकाओं (Statuses & Roles) की उच्चारण परम्परा और उनका कथनान तथा उनके अनुसार कार्य करने की प्रेरणा

1 विंगव अध्येयन के लिए देखिये जॉन जेक्स द्वारा रचित 'की प्रायत्तमा आद्य सोसियाताजिकस थ्योरी अध्याय 7 और 8।

प्रत्येक समाज में पाई जाती है। इस दृष्टिकोण से समाज का दो श्रेणियों में रखा जा सकता है—एक प्रतियोगी (Competitive) और दूसरी अप्रतियोगी (Non-Competitive)। प्रतियोगी समाज में, जनसंख्या को विभिन्न स्तरों (वर्गों) और भूमिकाओं में जाने तथा उनके अनुसार व्यक्तियों का कार्य करने की प्रेरणा प्रतिस्पर्धा (Competition) से मिलती है जबकि अप्रतियोगी समाज में प्रत्येक व्यक्ति का सामाजिक प्रतिष्ठाओं तथा भूमिकाओं के अनुसार कार्य करने की प्रेरणा पूर्वादिशित कृतव्यों से मिलती है। इसी कारण, प्रतियोगी समाज (उदाहरणार्थ याराप अमरीकी समाज) में जोर दिया जाता है प्रतियोगिता की भावना से उत्पन्न होने वाली प्रेरणा पर और अप्रतियोगी समाज (उदाहरणार्थ भारतीय समाज में) व्यक्ति की क्षमताओं और उनके अनुसार पूर्वादिशित कृत्यों का करने पर¹। सर्वोत्तम सामाजिक संरचना वही है जिसमें व्यक्ति की जिन सामाजिक आवश्यकताओं और सामाजिक उद्देश्यों में संघर्ष नहीं—उनमें पूर्ण सामंजस्य है।

समाज-व्यवस्था के सांख्यिक प्रमेय पर, अध्ययन की सुविधा के लिये सामाजिक मानसिक (Social Psychological) तथा व्यक्तिगत मानसिक (Individual-Psychological) दृष्टिकोण से विचार किया जा सकता है क्योंकि समाज-व्यवस्था व्यक्ति और समाज की आवश्यकताओं की उत्पत्ति है। यह मानना कि समाज-व्यवस्था में आनुवंशिकता का प्रभाव नहीं के बराबर होता है, भ्रम है। जहाँ एक ओर, मानव आनुवंशिकता समाज का एक मुख्य आधार है वहाँ दूसरी ओर मानव आनुवंशिकता की अभिव्यक्ति सामाजिक पर्यावरण पर निर्भर करती है। जिसे यह मान्यता है कि सामाजिक संगठन में आनुवंशिकता का हाथ नहीं हीना चाहिए वे वस्तुतः वंशानुक्रम (Descent) का आनुवंशिकता समझ बैठे हैं। आनुवंशिकता में तात्पर्य है व्यक्ति की उन गुणगणना क्षमताओं से जो उस उसके जिन संगठन से मिलती हैं। प्रत्येक व्यक्ति का जिन संगठन समान नहीं होता है। इसी कारण व्यक्ति-व्यक्ति में स्वाभाविक क्षमताओं याग्यताओं बुद्धि और प्रवृत्तियों में अंतर होता है जो अथ सामाजिक कारणों (जैसे धन परिवार और उच्च तथा निम्न की भावना) के साथ स्तरीकरण का कारण बन जाता है। यह मान्यता ठीक है कि आनुवंशिक क्षमतायें पूजा से मिलती हैं लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं कि आनुवंशिक क्षमतायें कबस पतन ही होती हैं। सामाजिक पर्यावरण में ही आनुवंशिक क्षमताओं की अभिव्यक्ति होती है और पर्यावरण का प्रभाव और शिक्षा दीक्षा से ये क्षमतायें बढ़ती भी जा सकती हैं किन्तु कबल एक सीमा तक। इसी सम्बन्ध में गीता की यह मान्यता समझी जा सकती है जिसमें यह कहा गया है कि प्रत्येक दीनान में एक एक स्वभावजय गुण की प्रधानता होती है।

इस दृष्टिकोण से जैसा कि प्रभू ने स्पष्ट किया है, वगव्यवस्था वह माध्यम है जिसके द्वारा व्यक्ति की जैविक मानसिक क्षमताओं की अभिव्यक्ति ही नहीं होती है बल्कि उसकी जैविक मानसिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी होती है। दूसरी ओर, वगव्यवस्था वह माध्यम है जिससे समाज में मानसिक समन्वय बना रहता है। व्यक्ति तथा समूह और व्यक्ति, समूह तथा समाज में मानसिक समन्वय में वगव्यवस्था का हाथ रहता है। इसी कारण, प्रत्येक समाज में, समाज द्वारा निर्धारित सामाजिक प्रतिष्ठाओं के अनुसार भूमिकाओं का निभाने की प्रेरणा देने के लिए सामाजिक पारितोषिक तथा दण्ड (Social Reward and Punishment) का विधान रहता है। चूंकि सभी स्तर और भूमिकाएँ समान नहीं होती हैं, सभी दण्डों में पारितोषिक और दण्ड भी समान नहीं होते हैं। समाज द्वारा मिलने वाला पारितोषिक तीन प्रकार का होता है—प्रथम श्रेणी में वे पारितोषिक आते हैं जो भौतिक वस्तुओं के रूप में होते हैं जिनसे व्यक्ति को पापण तथा आराम मिलता है, दूसरी श्रेणी में वे पारितोषिक जिनसे व्यक्ति का सुख (Humour) और व्यपवर्तन (Diversions) होता है और तीसरी श्रेणी में वे पारितोषिक आते हैं जिनमें आत्मसम्मान (Self Respect) और आत्मनिर्घोषिता (Ego Expression) की एपणा की सन्तुष्टि होती है। वगव्यवस्था में आत्मसम्मान और आत्मनिर्घोषिता की एपणा की सन्तुष्टि पर जोर दिया गया है न कि भौतिक पदार्थों, सुख और व्यपवर्तन पर।¹

बुद्ध ने यह कहा है कि वगव्यवस्था के मगटन का सर्वोत्तम नियम यह है जिम, आनुवंशिकता और वंशानुक्रम के स्थान पर नतिवृत्ता की प्रधानता हो। किन्तु, प्रभू के अनुगार, इस मायने में यह भाव छिपा है कि मानव व्यक्ति की जैविक क्षमताओं और उसके स्वाभाविक गुण (अथवा) गुणा तथा उनकी अभिव्यक्ति और नतिवृत्ता में परस्पर विरोध हो। वे परस्पर विरोधी नहीं बल्कि एक दूसरे की पूरक हैं। अतः उत्तम वगव्यवस्था या सामाजिक मगटन यह नहीं है जिसका आधार बल नतिवृत्ता ही हो। उचित व्यवस्था है वह जिम, विभिन्न वर्गों के लिये व्यक्तिगत कल्याण में, व्यक्ति तथा उसके वंश में सम्बन्धित जैविक (Biological) तथा परि-पाणाय (Natural) तथ्या और आवश्यकताओं का आधार बनाया जाय। लेकिन, जैविक तथ्या पर ध्यान देने के लिए, इस बात पर ध्यान देकर कि व्यक्ति की जैविक क्षमताएँ उसके माता पिता के अनुगार होंगी, इस बात पर ध्यान देने की आवश्यकता है कि प्रत्येक व्यक्ति की अपनी आनुवंशिक क्षमताएँ होती हैं जो उसके स्वभावजय गुण-रम का प्रभावित करती हैं। वही वगव्यवस्था उत्तम है जिसमें व्यक्ति की स्वाभाविक क्षमताओं का अभिव्यक्ति के लिये काफी गुंजायमान हो।

वगव्यवस्था के इन समाज-मानवगतिक सिद्धांतों के सार में, प्रभू ने वग-

व्यवस्था की समाजशास्त्रीय महत्ता का आका है। प्रभू के अनुसार, हिन्दुओं की वण-व्यवस्था, माट तौर पर, आनुवंशिकता सिद्धांत के आधार पर, मानव क्रियाओं का संगठन करने तथा उन्हें और मानवी याग्यता को पूर्णत्व प्रदान करने की दिशा में किये हुए एक बड़े पराक्षण के अतिरिक्त और क्या है? वणसिद्धांत निश्चय ही आनुवंशिकता सिद्धांत पर आधारित है लेकिन वणसिद्धांत के निरूपण में आनुवंशिकता का अर्थ वंशानुक्रम या पतनता नहीं है। वणसिद्धांत में आनुवंशिकता से तात्पर्य है व्यक्ति के स्वाभाविक जैविक उपकरणों से जिसकी सहायता से व्यक्ति सामाजिक विरासत में सम्मिलित होकर अपने व्यक्तित्व का विकास करता है और जो समाज तथा सामुदायिकता का आधार है। इस ही हिंदू विचारकों ने स्वभावज्ञ गुण कहा है। इसीलिये, यह भावना निर्धारित की गई है कि जन्म से प्रत्येक व्यक्ति सूक्ष्म रहता है और उस तब तक सूक्ष्म ही समझा जाना चाहिये जब तक कि उसमें उच्चतर रचनात्मक सामाजिक कार्यों (ब्राह्मणत्व क्षत्रिय और वश्यत्व) के सम्पादन की क्षमता न विकसित हो। आश्रम और संस्कार विधान के माध्यम हैं जिनके द्वारा व्यक्ति का सामाजिक जीवन होता है और उसकी जैविक क्षमताओं का अभिव्यक्तिपूर्ण विकास होता है। आश्रमव्यवस्था से, व्यक्ति के मस्तिष्क में सत्कार-व्यवस्था तथा उसमें उसके स्थान के प्रति ज्ञान तथा प्रतिबोधन का विकास होता है। धर्म इस विकास की आदेश व्यवस्था का आधार है। आश्रमधर्म से व्यक्ति को वाञ्छनीय सामाजिक आदर्शों का ज्ञान ही नहीं होता है, वरन् उनको प्राप्त करने की उसे प्रेरणा भी मिलती है। कम उन जैविक क्षमताओं की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है जिनका विकास समाज में होता है। अतः, वण-व्यवस्था वह व्यवस्था है जिसमें व्यक्ति को अपने स्वभावज्ञ गुणों के अनुसार सामाजिक जीवन बितान का क्षेत्र मिलता है और इसका प्रधान प्रेरक धर्म धर्म का सिद्धांत¹।

गुण आनुवंशिक क्षमताओं की सामाजिक अभिव्यक्ति का स्वाभाविक परिणाम है और यही वण का एक मुख्य आधार है। इस दृष्टिकोण से प्रत्येक वण वह सामाजिक पर्यावरण प्रस्तुत करता है जिसमें व्यक्ति के उस गुणविशेष के विकास को प्रोत्साहन मिलता है जिसका कि मध्यम वण में है। लेकिन वण केवल स्वभावज्ञ गुण (जैविक क्षमता) पर ही आधारित नहीं है। वण का आधार धर्म भी है जिसमें वणव्यवस्था में निश्चिन्ता का पुट आता है। इसीलिये प्रभू ने यह कहा है कि वण व्यवस्था जैविक तथा नैतिक सामाजिक तथा व्यक्ति और भौतिक तथा आध्यात्मिक समस्याओं के समाधान का प्रयास पर आधारित है। मानव-जीवन के सभी पहलुओं को व्यक्ति तथा सामाजिक का एकीकरण करके, उन्हें संगठित सामाजिक समस्याओं के माध्यम से उपलब्ध करना, ताकि वे व्यक्ति की सामाजिक,

मानसिक, जैविक तथा वैयक्तिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें, वर्णाश्रमव्यवस्था का प्रधान उद्देश्य है। इसी सद्बलम वणव्यवस्था के जैविक तथा नैतिक आधारों के महत्व के साथ साथ इसके मानसिक आधार का भी महत्व बढ़ जाता है। अतः यह कहा जा सकता है कि आश्रमव्यवस्था के साथ साथ, वणव्यवस्था का उद्देश्य वह सामाजिक क्षमता (Social Efficiency) लाना है जो समुदाय और उसके सदस्यों के जैविक (Physical) मानसिक (Mental) और नैतिक (Moral) कल्याण के लिये है। वर्णाश्रमव्यवस्था की धारणा का उद्देश्य समाज का वह क्षमता प्रदान करना है जिसके द्वारा व्यक्ति की क्षमताओं को समाज उत्तमतर बना सकें ताकि व्यक्तियों की उत्तमतर क्षमताओं की श्रियाशीलता के द्वारा जो उत्तमतर है, उसका निरूपण और नियमन हो सक और सामाजिक संरचना के प्रत्येक वग में उस उत्तमतर की अवतारणा हो सक जा व्यक्ति तथा समाज दोनों के लिये हितकर है। इसीलिये, आश्रमव्यवस्था व्यक्ति के सामाजिकरण और सामाजिक परिपोषण की वह योजना है जिसमें व्यक्ति के जीवन में उत्तमतर का विकास हो सके और वणव्यवस्था वह योजना है जिसके द्वारा व्यक्ति के स्वभाव और उनके आधार पर आविभूत वर्गों का, सामाजिक क्षमता के लिये उचित समन्वय हो सके¹।

वणव्यवस्था में प्रत्येक वग को अलग-अलग कर्तव्यों तथा उत्तरदायित्वों से बाध दिया गया है ताकि प्रत्येक वग, अपनी क्षमता के अनुसार, एक विशेष वग में दक्षता प्राप्त कर सके और सामुदायिक जीवन के प्रति अपनी सेवाओं का योग दे सके। इसप्रकार, वणव्यवस्था का उद्देश्य है उत्तमतर तथा अधिकाधिक सामाजिक कल्याण का उपलब्धि करके, सामाजिक तथा वैयक्तिक जीवन में उसका समन्वय करना। सामाजिक मनुष्य और सभ्यता का निर्माण तथा उसका प्रोत्साहन वणव्यवस्था का उद्देश्य है। लेकिन इस उद्देश्य की पूर्ति उस आर्थिक संगठन द्वारा हो सकती है जिसकी धारणा वणव्यवस्था तथा धर्म का सद्बलम की गई है। धन संचय आह्वान का मुख्य धर्म नहीं है, उसका मुख्य धर्म है आध्यात्मिक तथा भौतिक जिज्ञासाओं के रहस्य का उद्घाटन। दार्शनिक बल उतना ही धन-संचय कर सकता है जितना कि उन पर निर्भर व्यक्तियों की वैयक्तिक तथा गुरुओं के लिये आवश्यक है क्योंकि जनसंख्या उसका मुख्य धर्म है। वदय का धर्म है समाज के आर्थिक माधनता का समर्थ बनाने के लिये धनोत्पादन और धनसंचय। व्यक्तिगत स्वाध के लिये धनसंचय धर्म है क्योंकि दरवाज वणधर्म का आधार है। इसप्रकार आह्वान, दार्शनिक और वैयक्तिकों का धर्म है सामाजिक कल्याण में रचनात्मक योगदान और जो इस योगदान के अभाव में, वही शून्य है और उनका कर्तव्य है उन वर्गों की सेवा जो सामाजिक कल्याण में रचनात्मक योगदान करने में रत हैं। इसप्रकार वैयक्तिकता का निरूपण इस

दृष्टिकाएँ स किया गया है कि विभिन्न प्रकार की मानव शक्तियाँ को, उन विभिन्न कार्यों में लगाया जा सके जो उनमें स प्रत्येक के लिये अलग अलग अनुकूल हैं और सामूहिक रूप से सभी को सामाजिक संगठन, सामाजिक स्यायित्व तथा सामाजिक प्रगति के उद्देश्य की पूर्ति की ओर लगाया जा सके। वर्ग स्थाना की वर्ग व्यवस्था में वर्ग प्रतिष्ठा (Class Status) का आधार सत्ता (Power) तथा प्राधिकार (Authority) युक्त धन है जबकि वर्ण व्यवस्था में धन और प्रतिष्ठा (Status), सत्ता और प्राधिकार विद्या की निस्वाय सेवा और सफलता तथा इहलौकिक सुखों के प्रति लालसा का परस्पर अलग रखने का प्रयास किया गया है और उसमें सफलता भी मिली है¹। हिन्दू दार्शनिकों की विचारधारा में सामाजिक हित तथा सामाजिक उद्देश्य और व्यक्तिगत हित तथा व्यक्तिगत उद्देश्य न तो परस्पर विरोधी हैं और न उनमें परस्पर सघष ही है क्योंकि हिन्दू सामाजिक व्यवस्था का आधार है धर्म जिसके माध्यम से सारी मानवी क्रियाएँ (जैविक, मानसिक, भौतिक, राजनतिक, नैतिक, व्यक्तिगत और सामाजिक) परिभाषित और समन्वित होती हैं।

प्रभू का सामाजिक मनोवैज्ञानिक सिद्धांत, स्तरीकरण के सामाजिक मनोवैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर प्रतिपादित एक नया सिद्धांत है जिसमें वर्ण व्यवस्था की एक आदर्श के रूप में विवेचना की गई है। एसा स्पष्टीकरण युक्तियुक्तकरण (Rationalization) का प्रतीत होता है। प्रभू के स्पष्टीकरण की उपयोगिता तभी स्पष्ट होती है जब वर्ण-व्यवस्था का आदर्श समाज की आदर्श वर्ण व्यवस्था के रूप में देखा जाए।

कम तथा कमसिद्धान्त

कम, पुरुषाय और वर्णाश्रम

कम, जसा कि पहले कहा जा चुका है इहलौकिक तथा पारलौकिक जीवन का मयाजक है। पुरुषाय सिद्धांत में इसी आधारभूत मायता की अभिव्यक्ति हुई है। इहलौकिक जीवन का सम्बन्ध अथ, काम, आश्रम और वर्ण व्यवस्था में है जिनका आधार कम है। इहलौकिक जीवन वैयक्तिक-सामाजिक है न कि सामाजिक-व्यक्तिक। कम इहलौकिक जीवन के माध्यम से व्यक्ति का पारलौकिकता की ओर ले जाता है। माय मानव जीवन का चरम उद्देश्य है। व्यक्ति उस रहस्यमयी मत्ता का एक अंग है जो इस सत्ता में ध्याप्त होने पर भी इसमें परे है। जीव इसी रहस्यमयी मत्ता का एक अंग है जो कुछ काल के लिए इहलौकिक जीवन धारण करता है। इस रहस्यमयी मत्ता की द्रष्टा ईश्वर, परमात्मा और प्रजापति का धारणाओं से व्यक्ति किया गया है। इसी सत्ता के अंग को आत्मा कहा गया है जो जीव में ध्याप्त होकर जीवात्मा का रूप लेती है। पारलौकिक जीवन में जिनका प्रयोग द्वारा होता है, आत्मा और परमात्मा एक में मिल जाते हैं। बड़ा व्यक्ति का अस्तित्व एक बड़े मानव अस्तित्व में मिल जाता है। पारलौकिक जीवन में जीवाना, परमात्मा और कम एकानार हा

जाते हैं। इसी कारण, यह कहा गया है कि परमात्मा भी धम से परे नहीं है।

इहलौकिक जावन म आत्मा और परमात्मा अलग-अलग रहते हैं। यहा आत्मा दहीवान हो जाता है। देहीवान होने के कारण आत्मा पकृतिमय हो जाता है और इम कारण दहीवान में सत, रज और तम गुणो का प्रवेश हा जाता है। प्रकृतिमय हाने के कारण, जीवात्मा मे क्रियाशीलता जाती है। श्रम दहीवान का गुण है। देह श्रमयुक्त आत्मा ही जीवात्मा है जिसका लीन क्षेत्र प्रकृतिमय ससार है। जीवात्मा, आत्मा की सन्मणकालीन इहलौकिक अभिव्यक्ति है। इस सन्मण काल मे देहीवान होने के कारण, जीवात्मा कम से बधता है क्यकि देहीवान के अस्तित्व का आधार ही कम है। बिना कम के देहीवान का अस्तित्व ही अमम्भव है। अत इहलौकिक जावन कम के माध्यम से धम स बरता है। दूसरे शब्दो मे यह भी कहा जा सकता है कि इहलौकिक जीवन म धम की अभिव्यक्ति कम से होती है। इहलौकिक जीवन की साधना केवल धम स नही बरन् धम कम स होती है। धम और कम इहलौकिक जीवन के दो आधार हैं। पुर्याय साधना और वर्णाश्रम व्यवस्था धम कम दानो पर आधारित हैं। हा यह अवश्य है कि कम की कसौटी धम है और इस कारण धर्म कम से परे है। मोक्ष न तो निष्क्रियता स मिलता है ओर न केवल धम स। मोक्ष का साधन है धमप्राण कम। वास्तव म धम पर आधारित कम ही इहलौकिक तथा पारलौकिक जीवन की साधना का आधार है। व्यक्ति (जीवात्मा) म कम वसे ही लिप्त है जस मूय में प्रकाश। व्यक्तित्व समाज और ससृति मानव-जीवात्मा की त्रियाशीलता के स्वाभाविक परिणाम है। इहलौकिक जीवन कम का परिणाम है और इहलौकिक कम पारलौकिक जीवन की आधारशिला है। इहलौकिक जीवन म व्यवस्था कम स नही कम सिद्धांत स जाती है। कम सिद्धांत निरपेक्ष नही है, कम सिद्धांत धमसापक्ष है क्यकि मानवी त्रियाशीलता का एक आधार जविक है और दूसरा सासृतिक।

कम¹ मानव का एक आधारभूत गुण है। अर्कमा मानव का अस्तित्व वसे ही अबास्तविक है जस आकांग कुमुम। कम इहलौकिक तथा पारलौकिक

1 कम शब्द ससृति भाषा क 'कमन' शब्द से व्युत्पन्न है। 'कमन' शब्द का प्रयोग कई अर्थों में हुआ है—जसे, क्रिया, काय, कृति, निष्पादन, क्रियापालन व्यापार, पद, कतव्य धार्मिक कमकाण्ड (Religious Rite), कोई एक विंगय क्रिया, नतिक कतव्य उत्पाद (Product), परिणाम, एक स्वाभाविक या क्रिया शील गुण, दस (Taste) पूवजन्म के कर्मों का परिणाम, किसी क्रिया का उद्देश्य (व्याकरण में) और गति। जसा कि अगले मणन से स्पष्ट होगा कमसिद्धांत के विचार में क्रिया काय, कृति, कृत्य, कतव्य, दस और गति के भावार्थों का समावेश हुआ है।

जीवन का नियामक है। धम, धय, काम और मोक्ष की साधना का माध्यम कम है— यह कम जो धमानुकूल है। अतः कम मनुष्य का स्वाभाविक धम है जोर कमातीत होना जीवन का अततागत्वा उद्देश्य। कम से अम्युदय भी मिलता है और अघागति भी। मुकमसमाप्त (परमगति) की साधना हाती है और अकम से अघागति मिलती है। कम तथा अकम के विचार और निणय का आधार धम है। कमिकम क परिणामा से उत्पन्न भाग का ही नाम जीवन है। दुख मुख भाग-बन्दा का सम्बन्ध कम और देहीवान से है। नही नश्वर है और आत्मा अमर। स्वभावतया आत्मा अमरत्व (ब्रह्म, परमात्मा, ईश्वर और प्रजापति) की ओर उमुख है और जीव सामारिक (इहलीकिक) गतियों की ओर। चौरासी लाख यानिया जीव की विभिन्न सामारिक गतिया है। जीवात्मा के मुकम आत्मा का अमरत्व की ओर ले जाते हैं और अकम सामारिक गतिया की ओर। आत्मा अमर अवश्य है, लकिन जीवात्मा क कमों क प्रभावा से वह पर नहीं है।

मुकम आत्मा को परमात्मा से मिलने से सहायता देत है लेकिन अकमों के कारण आत्मा की, कमनुसार जीव की विभिन्न गतिया से पुनरावृत्ति हुआ करती है। अमरत्व की प्राप्ति योग्य है जो मुकम से मिलती है। जीवात्मा क रूप से, जीव की विभिन्न गतियो से कमनुसार पुनरावृत्ति आवागमन है। आवागमन का चक्र और कम के माध्यम है जिनके द्वारा जीवात्मा अपना सतत उन्विकास और अम्युदय कर सकता है। आवागमन से मुक्ति जीवन का सर्वोन्वष्ट उद्देश्य है। मानव-यानि सबश्रेष्ठ है और एक ओर वह मनकमों का परिणाम है और, दूसरी ओर, सत कमों क लिये यह एसा अपूर्व अवसर है जो देवदुःख है। इमीतिये मसार को कमअंन कहा गया है और धम कम को जीवा मा क उस सतत उन्विकास का माध्यम जिनकी अंनम परिणति माप्त और मुक्ति (आवागमन से छुटकारा) है। स्वयं और नक की धारणाओं का सम्बन्ध भी कममिज्ञान है। इहलीकिक कमों क अनुसार ही जीवात्मा को स्वयं और नक के जीवन का भाग मिलता है और उमक बाण, पून-पावन से किये हुए इहलीकिक कमों क अनुसार, जीवात्मा का पुन इहलीकिक गति मिलती है जिसे वह धपन कमों के अनुसार पुन बना या बिगाड सकता है। इस प्रकार कम का दाहरा फल मिलता है और दोहरा प्रभाव पडता है। और इस कारण, ज्य एन ओर, व्यक्त कमों क अधीन है वहा, दूसरी ओर, कम भी व्यक्ति क अधीन है क्योंकि मानव जीवन व्यक्ति को चाँदिय कम चुनन और करन का अवसर प्रदान करता है।

कममिज्ञान, पुरुषाय और वगाअम मिज्ञानता क साथ साथ, हिन्दुत्व का एक वह मीज्ञानिक आधार है जिनकी उन्विति एतिहासिक प्रक्रिया से हुई है। हिन्दुत्व को अन्ध भाधारभूत धारणाओं की भाँति कम-विचार और कममिज्ञान का विभिन्न ऐतिहासिक परिस्थितिया से धीरे धीरे विकास हुआ है। कम मिज्ञान क निष्कर्ष को

जाते हैं। इसी कारण, यह कहा गया है कि परमात्मा भी धम से परे नहीं है।

इहलौकिक जीवन में आत्मा और परमात्मा अलग-अलग रहते हैं। यहाँ आत्मा देहीवान् हा जाता है। देहीवान् हान के कारण आत्मा प्रकृतिमय हो जाता है और इस, कारण देहीवान् में सत्, रज और तम गुणा का प्रवेश हो जाता है। प्रकृतिमय होने का कारण जीवात्मा में क्रियाशीलता आती है। श्रम देहीवान् का गुण है। देह श्रमयुक्त आत्मा ही जीवात्मा है जिसका लीला क्षेत्र प्रकृतिमय सत्सार है। जीवात्मा, आत्मा की मन्मथकालीन इहलौकिक अभिव्यक्ति है। इस सन्मथ काल में देहीवान् होने के कारण, जीवात्मा कम से बढ़ता है क्योंकि देहीवान् के अस्तित्व का आधार ही कम है। बिना कम के देहीवान् का अस्तित्व ही असम्भव है। जब इहलौकिक जीवन, कम के माध्यम में धम से बढ़ता है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि इहलौकिक जीवन में धम की अभिव्यक्ति कम से होती है। इहलौकिक जीवन की साधना केवल धम से नहीं बरन धम कम में होती है। धम और कम इहलौकिक जीवन के दो आधार हैं। पुण्याथ साधना और वर्णाथम व्यवस्था धम कम दोनों पर आधारित हैं। हा, यह अवश्य है कि कम की कसौटी धम है और इस कारण, धम कम से परे है। मोक्ष न तो निष्क्रियता से मिलता है और न केवल धम से। मोक्ष का साधन है धमप्राण कम। वास्तव में धम पर आधारित कम ही इहलौकिक तथा पारलौकिक जीवन की साधना का आधार है। व्यक्ति (जीवात्मा) में कम कम ही लिप्त है जैसे सूय में प्रकाश। व्यक्तित्व, समाज और संस्कृति मानव-जीवात्मा का क्रियाशीलता के स्वाभाविक परिणाम हैं। इहलौकिक जीवन कम का परिणाम है और इहलौकिक कम पारलौकिक जीवन की आधारगिला है। इहलौकिक जीवन में व्यवस्था कम से नहीं कम सिद्धांत से आती है। कम सिद्धांत निरपेक्ष नहीं है, कम सिद्धांत धममापथ है क्योंकि मानवी क्रियाशीलता का एक आधार जविक है और दूसरा सांस्कृतिक।

कम^१ मानव का एक आधारभूत गुण है। अर्कमा मानव का अस्तित्व यस ही अवास्तविक है जैसे आकाश कुमुम। कम इहलौकिक तथा पारलौकिक

१ कम शब्द संस्कृत भाषा के 'कमन' शब्द से व्युत्पन्न है। 'कमन' शब्द का प्रयोग कई अर्थों में हुआ है—जैसे, क्रिया, काय, कृति, निष्पादन, क्रियापालन, व्यापार, पद, कृत्य धार्मिक कमकाण्ड (Religious Rite), कोई एक विशेष क्रिया, नतिक कृत्य उत्पाद (Product), परिणाम एक स्वाभाविक या क्रियाशील गुण, दय (Fate) पूज्यम के कर्मों का परिणाम, किसी क्रिया का उद्देश्य (व्याकरण में) और गति। जसा कि अगले वचन से स्पष्ट होगा कमसिद्धांत के विचार में क्रिया काय, कृति, कृत्य, कृत्य, दय और गति के भावार्थों का समावेश हुआ है।

जीवन का नियामक है। धम, धय, काम और मोक्ष की साधना का माध्यम कम है—
 वह कम जा घमानुकूल है। अतः, कम मनुष्य का स्वाभाविक धम है और कर्माशीत
 होना जीवन का अंततोगत्वा उद्देश्य। कम म अम्युदय भी मिलता है और अवर्गति
 भी। सुकमसमोक्ष (परमगति) की साधना हानी है और अवम स अधगति मित्रा है।
 कम तथा अरुम के विचार और निष्पत्ति का आधार धम है। कर्मात्म के परिणामों से
 उत्पन्न भाग का ही नाम जीवन है। दुख सुख भाग-वर्णन का सम्बन्ध कम और
 देहीवान स है। दही नद्वर है और आत्मा अमर। स्वभावतया आत्मा अमरत्व (अम,
 परमात्मा, ईश्वर और प्रजापति) की आर स मुक्त है और जीव साक्षात्क (उत्पत्ति)
 गतियों की आर। चौरासी लाख यानिया जीव की विभिन्न साधारिक गति है।
 जीवात्मा क सुकम आत्मा का अमरत्व की आर ल जान है और अम्य साक्षात्क
 गतियों की आर। आत्मा अमर अवश्य है लेकिन जीवात्मा क अमों क प्रनामों से
 यह पर नहीं है।

सुकम आत्मा को परमात्मा म मिलन म सहायता दत है लेकिन अमों के
 कारण आत्मा की कमानुसार, जीव की विभिन्न गतिया म पुनरावृत्ति दृष्टा अती
 है। अमरत्व की प्राप्ति मोक्ष है जा सुकम म मिलती है। जीवात्मा क अम से,
 जीव की विभिन्न गतिया म, कर्मानुसार पुनरावृत्ति आनागमन है। आवागमन क
 चक्र और कम क माध्यम है जिनके द्वारा जीवात्मा अपना अम्य उत्पन्न करता है
 अम्युदय कर सकता है। आवागमन से मुक्ति, जीवन का सर्वोत्कृष्ट उद्देश्य है। अम्य
 यानि सवधेष्ट है और एक आर, वह सतकर्मों का परिणाम है और, दुःख अम, अम्य
 कर्मों क लिय वह ऐसा अपुव अवसर है जो दण्डुम है। अम्योदये सुकम का अम्य
 मठा गया है और धम कम का जीवात्मा क उम मरुत उत्पन्न क अम्य
 जिनका अन्तिम परिणति मोक्ष और मुक्ति (आवागमन म अम्यकार) है। अम्य
 नक की पारणाया का सम्बन्ध भी कमिद्वान है। अम्योदिक कर्मों क अम्य
 ही जीवात्मा का स्वय और नक के जीवन का भाग मिलता है और अम्य अम्य
 जीवन म विषे हुए इहलौकिक कर्मों क अनुसार आनाम का अम्य अम्य
 मिलती है जिसे वह अपने कर्मों के अनुसार पुन बना या अम्य अम्य
 प्रकार, कम का दाहरा फल मिलता है और अम्य प्रनाम अम्य अम्य
 कारण जहा एक आर स्वयिन कर्मों क अधीन है अम्य, अम्य अम्य, अम्य
 क अधीन है कर्मात्म मानव जीवन अम्य का अम्य अम्य अम्य
 अवसर प्रदान करता है।

कमिद्वान, पुण्याय और अनाथम गिद्वाना क अम्य अम्य
 एव यह मदानिक आपार है जिनकी अम्य अम्य अम्य
 की अम्य आपारभूत पारणाया की भाति कम विचार और अम्य अम्य
 ऐतिहासिक परिस्तिपतिमा म धीरे धीरे विभाग दृष्टा है। अम्य अम्य

ऐतिहासिक परिस्थितियों ने प्रभावित किया है और इस प्रभाव के कारण किस प्रकार कमसिद्धांत विकसित हुआ है इसका विश्लेषण आगे किया जायगा। यहाँ तो इतना ही कहना पर्याप्त है कि कमसिद्धांत हिंदू धर्म, दशन और सामाजिक जीवन की आधारशिला है। बुद्धवाद और जावाद में उस वैदिक कमवाङ्म की भंगना की गई है जिससे कमसिद्धांत का उदभव हुआ है लेकिन कमसिद्धांत का परिव्याग नहीं किया गया है। कमसिद्धांत बौद्ध और जन जीवन दशनों का आधार है जिसके कारण बुद्धवाद और जनवाद हिन्दुत्व का एक अंश रह हैं। जीवन के उच्चतम उद्देश्य माध की धारणा, कमसिद्धांत और उससे सम्बन्धित पुनर्जन्म तथा गावागमन की धारणाओं के सद्भ में ही स्पष्ट होती है। कमसिद्धांत से ही वर्णाश्रमव्यवस्था को उसके नैतिक आधार प्राप्त हुए हैं। इसी सद्भ में कमसिद्धांत का समाजशास्त्रीय महत्त्व भी स्पष्ट होता है। गाखल के अनुसार, यदि धर्म स यह 'यवत हाता है कि क्या हाना चान्धिये तो कम में यह स्पष्ट हाता है कि क्या है और क्या हो सकता है'। कम, एक आर, इस तथ्य का स्पष्टीकरण है कि जो है वह क्या है और, दूसरी ओर, इस तथ्य की पूर्वसूचना है कि व्यक्ति अपना जीवन क्या से क्या बना सकता है। धर्म नियामक है व्यक्ति और समाज का—उम समाज का जन्म व्यक्ति का अस्तित्व और निर्माण होता है। कम, व्यक्ति के जीवनपथ में व्यक्तिगत तथा सामाजिक धिया बलापों की ढालता रहता है। यदि धर्म प्रतीक है उस आदर्श व्यवस्था का जिसमें व्यक्ति की सामाजिक, माहट्टनिक और जविक मानसिक एण्णाओं की स्वस्थ और मुचार अभिव्यक्ति होती है तो कम प्रतीक है उस माध्यम का जिसके द्वारा वास्तविकता को आत्म की ओर ल जाया जा सकता है। धर्म का सम्बन्ध मानव जीवन के आदर्श से है कम का आदर्श मूल वास्तविकता से। धर्म व्यक्तिगत सामाजिक जीवन की व्यवस्था का निरूपण है और कम धर्म में निहित व्यवस्था के अनुसार, सामाजिक तथा सामाजिक भिन्नताओं में व्यवस्था लान का एक विशिष्ट तथा प्रभावपूर्ण प्रयास¹।

२

कम सिद्धांत ऐतिहासिक उद्विकाम

कमसिद्धांत का सप्रथम रूपक निरूपण उपनिषदों में मिलता है। उपनिषदों में कमसिद्धांत के उम पर का निरूपण मिलता है जिसका विश्लेषण महाभारत गीता, धर्मशास्त्रों और पतञ्जलि के दश भूतों में हुआ है। यह कमसिद्धांत

का वह रूप है जो साधारणतः हिंदू विचारधारा में प्राप्त है। लेकिन, उसके पहले सतपथ ब्राह्मण में कमसिद्धांत के साथ साथ पुनर्जन्म और आवागमन का उल्लेख मिलता है¹ या इस बात का प्रमाण है कि उपनिषदों के पहले कमसिद्धांत के मुख्य आधार अस्तित्व में आ चुके थे। यह तथ्य इसका भी प्रमाण है कि उपनिषदों में कम-निष्ठात के विचार का जो निरूपण मिलता है वह वस्तुतः परिणति है उस विचार की जिसकी जड़ें ब्रह्म काल में पड़ चुकी थी, जो ब्राह्मण ग्रन्थों के काल में अकुरित हुआ और औपनिषदिक काल में इस औपनिषदिक विचार का पुनित्युक्त बनाकर उसे दार्शनिक तथा आध्यात्मिक आधार प्रदान किये गये।

वेदा से ब्राह्मण का आधार बन गए। वेदा में यह विचार मिलता है कि आत्मा अमर है और शरीर नाशवान है। अमरत्व (अमरत्व) की कल्पना भी वेदों में मिलती है। ऋग्वेद की एक प्राथना में अग्नि से अमरत्व पाने की कामना प्रकृत की गई है। ऋग्वेद के दसवें मण्डल में अग्नि का इसलिये आवाहन किया गया है कि वह मृत व्यक्ति को मित्रा और देवा के पास ले जाये²। इसी मण्डल के एक मंत्र में आत्मा को मृत्यु-संसार में वापस बुलाकर उस एक नये शरीर में प्रवेश करने को कहा गया है। ऋग्वेद में इस कल्पना का भी उल्लेख है कि मृत व्यक्ति की आत्मा की इस पृथ्वी पर पुनरावृत्ति हुआ करती है। जयवद में आत्मा के आवागमन का विचार मिलता है क्योंकि यहाँ यह विचार प्रकृत किया गया है कि मृत्यु के बाद मृत व्यक्ति अपनी उन स्थितियों में मित्रा और माता पिता की आत्माओं में मित्रा है जो उससे पहले मर चुके हैं। वेदा में व्यक्तिगत अमरत्व का भी विचार मिलता है क्योंकि यहाँ व्यक्त एक मायता के अनुसार यह माना गया है कि जो व्यक्ति मर जाता है वह अपन सम्पूर्ण शरीर के साथ पारलौकिक संसार में जन्म लेता है³। यही विचार जागे चलकर इस विचार में बढ गया कि पुन्यात्मा और धर्मात्मा सदैव स्वयं जाते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों

1 यही पृष्ठ १४

2 ऋग्वेद में, जसा कि गोपले ने लिखा है, स्वयं और नर की कल्पना नहीं मिलती है यद्यपि पारलाकिक संसार की कल्पना अवश्य मिलती है। यहाँ देवपान (द्वयलोक) और पितृपान (पितृलोक) का दणन आया है। ऋग्वेद में आई देवपान और पितृपान की कल्पनाओं के अनुसार देवपान और पितृपान के लोको ह जहाँ मृत्यु के बाद सदाधारा व्यक्ति निवात करते हैं—गोपले यही पृष्ठ १७ १५

3 यही पृष्ठ १७ १५

में इहीं विचारों का प्रसार और विकास हुआ है।

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार जो व्यक्ति तप का साधन करता है, वह स्वयं में अपनी-सभी शारीरिक क्रियाओं यहाँ तक कि मनुष्य क्रिया कभी साध जाता है। शतपथ ब्राह्मण में सर्वप्रथम 'कर्मफल' के विचार का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। ऋषि भगु को नक म पापात्माया को मिलने वाली यातनाओं के दिग्दर्शन कराये जाने का उल्लेख शतपथ ब्राह्मण में आया है। यही इस विचार का उल्लेख है कि इस ससार में मनुष्य जिस भोजन को खाता है उसी के द्वारा वह दूसरे ससार में खाया जाता है। यही, सर्वप्रथम 'ब्रह्मण' (ब्रह्म) की कल्पना तथा इस विचार का उल्लेख मिलता है कि जिस पूण जान प्राप्त हो जाता है वह ब्रह्म में लीन होकर मुक्ति पा जाता है। ऐतरेय ब्राह्मण में नचिवेता की कथा आई है जिसमें यम द्वारा नचिवेता को वे लोक दिखाने का प्रसंग आया है जहाँ लोगों को इहलौकिक कर्मों का फल भोगना पड़ता है¹।

गोखले का मत है कि कमसिद्धांत का सभी आधारभूत तथा आवश्यक तत्वा का निरूपण वैदिक काल के अंत (700 ईसवी पूर्व के लगभग) में हाता हुआ मिलता है यद्यपि कमसिद्धांत का निरूपण उपनिषदा में हुआ है। ऋग्वेद में विकसित 'ऋत' की धारणा और वेदों से लेकर ब्राह्मणग्रन्थों तक विकसित होने वाली यज्ञ, यज्ञाचार, कर्म (Ritual) और कल्पवाद (Pitualism) सम्बन्धी धारणाएँ कमसिद्धांत की प्रधान आधार शिलाएँ हैं। धर्म की धारणा के उद्भव की ऐतिहासिक व्याख्या करते हुए यह लिखा जा चुका है कि ऋग्वेद में पाई जाने वाली 'ऋत' की धारणा कालांतर में धर्म की धारणा के रूप में अवतरित हुई। इहलोक तथा परलोक की विधायक वृत्ति के रूप में धर्म की धारणा 'ऋत' की ही धारणा पर आधारित है। ऋग्वेद के ऋतसूक्त में व्यक्त विचार के अनुसार यह सारा ब्रह्माण्ड विरचित्तकी की उत्पत्तिसंस्था से उत्पन्न हुआ है लेकिन उस तत्पत्तिसंस्था से सबसे पहले 'ऋत' नाम की उत्पत्ति हुई (ऋत च सत्यं चाभीष्टात्तपसोऽभ्यजायत)²। ऋत इस दृष्टिकोण से, वह सत्य है जिसपर यह ब्रह्माण्ड आधारित है। इसलिये, 'ऋत' का अर्थ उम महान, गार्वन नियम (Cosmic Law) का रूप में किया गया है जो ब्रह्माण्ड की व्यवस्था का आधार है। अर घातु से ऋत की व्युत्पत्ति करने पर 'ऋत' का अर्थ हाता है व्यवस्थित नियमित और निर्धारित। अतः ऋत व्यवस्था नहीं बरन व्यवस्था का व्यवस्थित करने वाला सर्वव्यापी और रहस्यमय सिद्धांत है। 'ऋत' वस्तुतः विधायक विधान है जिसमें देव मनुष्य प्रकृति और समाज बंधे हुए हैं। कमसिद्धांत वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवन में पूर्वमूर्चि व्यवस्था लाने का प्रयास है यद्यपि कमसिद्धांत वस्तुतः उच्च व्यवस्था का निरूपण करता है जिसका नियम अटल है और जिससे व्यक्ति तथा

1 प्रभू बही पृष्ठ 18

2 कल्पान रिदू ससृति अथ पृष्ठ 11

समाज बंधे हुए हैं। कमसिद्धांत में निहित व्यवस्था का विचार ऋग्वेद में विकसित 'ऋत'-धारणा का ही सागदान है।

ऋग्वेद में 'ऋत' की धारणा के साथ साथ यज्ञ परम्परा भी पाई जाती है। वैदिक काल के अंत में 'ऋत' की धारणा लुप्त हो जाती है और उसका स्थान पर यज्ञ से सम्बंधित कल्प (Pitval) का प्रधानता मिलती है। वैदिक काल के प्रारम्भ में यज्ञ का उद्देश्य देवताओं की कृपा का आवाहन है जबकि वैदिक काल के अंत और उत्तर वैदिककाल में, यज्ञ ही इप्सित वस्तुओं का प्रदान करने वाला है। अतः देवों के स्थान पर यज्ञ का सर्वोपरिता मिली जिसका परिणाम यह हुआ कि यज्ञ, साधन के स्थान पर, साध्य हो गया। यज्ञ के साथ ही जाने के साथ-साथ 'कल्प' की महत्ता बढ़ी जिसका परिणाम यह हुआ कि ऋत का रहस्यात्मक विचार के स्थान पर कल्पवादिता के विचार ने जोर पकड़ा। ऋत में जाग्रत, शाश्वत व्यवस्था सिद्धांत का विचार था वह कल्प में जुड़ गया। यहाँ 'ऋत' का अर्थ हो गया यज्ञों से सम्बंधित कल्पों की व्यवस्था का सिद्धांत। ब्राह्मणग्रन्थ इसी कल्पवादिता (Ritualism) से ओतप्रोत हैं। बग-व्यवस्था के विकास में पुराहित बग की बढ़ती हुई सर्वोपरिता और पौराहित्य-कर्मकी जटिलता ने कल्पवादिता का और भी प्रोत्साहित किया। इसका परिणाम यह हुआ कि पौराहित्यकर्म रहस्यवादिता के अवगुहन में परिवर्तित हो गया। ऋत के स्थान पर यज्ञ का ही इस ब्राह्मण्ड में व्याप्त व्यवस्था का आधार और यज्ञ के साथ कल्प को ब्राह्मण्ड का रहस्य का प्रतीक मान लिया गया।

वेदों में आत्मा की अमरता, इस संसार में परे लोक (दशवान और पितृलोक) समाज की व्यवस्था की धारण करने का ऋत यज्ञ और कल्प तथा उपनिषदों में यज्ञ के द्वारा सामाजिक यातनाओं में मुक्ति पान के विचार अस्तित्व के अभाव में। ब्राह्मणग्रन्थों में कल्पवादिता के आधार पर इन्हीं विचारों का विकसित किया गया और उपनिषदों में इन्हीं विचारों के आधार पर कमसिद्धांत का प्रतिपादन किया गया। प्रभू के अनुसार कर्मफल का विचार भी यज्ञ में मिलता है¹। उपनिषदों में कर्मफल की धारणा के साथ-साथ आवागमन और पुनर्जन्म की धारणाएँ भी जुड़ गई। वास्तविकता तो यह है कि उपनिषदों के काल की सामाजिक-ऐतिहासिक परिस्थितियों में कर्मफल भाग, आवागमन और पुनर्जन्म की धारणाओं के माध्यम में वैदिक धारणाओं का एक प्रातिकारी रूप दिया गया और प्राचीन सिद्धांतों का उद्धार रणामा में व्यक्त किया गया। कमसिद्धांत में शहर प्रतिष्ठा (Double Attribution) की धारणा इसका उदाहरण है। शहर प्रतिष्ठा में सातवें कर्मफल के रूप में पक्ष पर्याप्त

म मृत या दण्ड भोग जीर बाद म कमफल के भोग के ही कारण, इल्लोक म पुनजम । इहलोक जीर परलोक म कमफल के भोगन की धारणा को दाहरप्रतिदण्ड की धारणा कहा गया है । यह धारणा दा विचारा के मिलने स बनी है । इसमे वदा मे पाये जाने वाले भावी प्रतिदान (Future Pecompense) के विचार का सम्मिलन आवागमन के सिद्धांत की नई धारणा से हुआ है¹ । गतपथ ब्राह्मण के बाद से कर्मानुसार पुनजम के विचार का विकास बराबर मिलता है । गतपथ ब्राह्मण म तो इतना ही कहा गया है कि प्रत्येक व्यक्ति अपन ही द्वारा निर्मित मसार म जन्मता है² । लेकिन उपनिषदो मे इस विचार का स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि मृत यनित की आत्मा गया शरीर धारण करती है । कथापनिषद म कहा गया है कि नक्षत्र प्राणी बीज की भांति गल जाता है और बीज की ही भांति पुन उत्पन्न होता है³ एक मा के गभ से शरीर धारण करके उत्पन्न होता है और दूसरा पीध के रूप म अवतरित होता है क्योंकि प्रत्येक अपने ज्ञान और कर्म मे अनुसार जन्मता है⁴ ।

बृहदारण्यकोपनिषद मे कहा गया है कि मृत्यु के बाद आत्मा शरीर को त्याग देता है और इस जन्म म किये हुए कर्मों का सचित फल ही उसके गाय जाता है । अगल जन्म म आत्मा को क्या रूप मिलेगा यह कमफल द्वारा निर्धारित होता है । इसी उपनिषद म इस प्रश्न के उत्तर म कि मृत्यु के बाद आत्मा का क्या हाता है यागवल्क्य ने उत्तर दिया है कि मानव का भावी जीवन उसके कर्मों से निर्धारित होता है । शुभ कर्मों का परिणाम शुभ होता है और अशुभ कर्मों का परिणाम अशुभ (पुण्यो व पुण्यनाशमणा भवति पाप पापे) । निम प्रजा टिडडा घास की एक पत्ती का किनारा तभी छाडता है जब दूसरी को पकड़ लेता है, उसी प्रकार यह आत्मा मानव शरीर को तभी छाडता है जब इस दूसरे प्रकार के अस्तित्व मे स्थान मिल जाता है । जिस प्रकार, गुनार, अपनी इच्छानुसार सान को नये और गुनार आकारा मे ढालता है उसी प्रकार यह आत्मा अपन लिय नये नय और सुदरतर अस्तित्वा का निर्माण किया करता है । चाहे यह अस्तित्व पितरा के मध्य हो चाहे गंधर्वों के मध्य चाहे अयताम्रा के मध्य और चाहे उन अन्य प्राणियों म जिनमे कि आत्मा चाहे ।

कर्मानुसार पुनजन्म के विषय म बृहदारण्यकोपनिषद म यह कहा गया है कि शरीर स आत्मा के निबलने के साथ साथ प्राण भी निबल जाते हैं जसा जितना

1 सोलंके, पी० जी० यही पृष्ठ ७७

2 यही पृष्ठ ७८

3 प्रभू पी० एच० यही पृष्ठ १८

4 सोलंके, पी० जी० यही पृष्ठ ७९

5 प्रभू, पी० एच० यही पृष्ठ १७

आचार और व्यवहार होगा वैसा ही उसका आत्मा होगा। जिसके कम मन हान है वह सत होता है और जिसके कम जमन, वह जमत। पवित्र कर्मों न पवित्रता आती है और अपवित्र कर्मों न अपवित्रता इसीलिये यह कहा जाता है कि "यदि कवल इच्छाम्ना (काम) का डेर है। जैसी जिमकी इच्छाय जाती हैं वना उनका श्रुतु हाता है" जसा जिमका श्रुतु वना जमका श्रुतु वना श्रौर जसा जिमका कम वना उनका उन्विकाम होना है जब नश्वर मनप्य उच्छा रहित हा जाता है ता वह अमर हो जाता है और प्रकृत का प्राप्न कर लेता है प्रत्येक व्यक्ति का तब तक बार-बार जम लेना पटना है जबतक कि वह कर्मनीत न हा जाय। छादाय उप नियम म कहा गया है कि अक्षर आचरण वाच (रमणावाचरणा) मन्ना धर्मिय वा वैन्य वण म जम न्त है जबकि वर आचरण वाच (कपूर्वाचरणा) मुना गकर या चाण्डाल क रूप म जम ल्त है। कौतिलनी उपनियम म य क्त गया है कि अपन कम और विद्या क मनगार एक आत्मा का पना मउनी चिदिया नन्ना गर साप या मनप्य या किसी अय यानि म ज म लता है। कडापनियम म ता यहा तर कहा गया है कि अपन कम श्रौर जान (यथाकम यथाश्रतम्) क अनमर आत्मा अनात्म यानिया (पठ पीषा क रूप म) म भी जम न्ता है।

वरा और धारण्यका म यवत हुआ उ विचार कि जामा जमर और प्रत्येक व्यक्ति की आत्मा को इस जम क कमानमार आत् जम म मुन या तुन भोगना पडता है उपनियम म जावागमन की धारणा क आधार पर एक नया रूप लता है। आपनियमिक विचारधारा म इन जम क कमानमार आत्मा का अण जम म मुन या तुन ही न। भागना पडता है वरन आन या जनात्म योनिया म नी जम लेना पडता है। या वर और शायण य वा की जिवा शरा का पूा लान नही हुआ है। छादाय उपनियम म कहा गया है कि उचित पूजा और या क मायम से आत्मा का जावागमन क चन म मुक्ति मित्र मता है। एक अय उपनियम के अनुसार पूजा और या म सा सा का ईश्वर (राम) क तय वा ही परम माय्य (परमम तापम) हा जाना है तम एक मरिता वा मण्ड क माय माय्य हाता है। लकि यह माय्य उही का प्राप्त हाता है ता वीरगाय प्रगात श्रौर जानत है। इगप्रकार, जनिप म जम आवागमन की धारणा मित्रा है व्हा य ना धारणा मित्रा है कि जम म आवागमन क पत्र म मक्ति ना मित्र मरता है। जोनियमिक विचारधारा म आना क प्रत्यागत्वा अन्वित्र क ता है—एक श्रौतिय शार जम कम पर आधारित आवागमन है और दूसरा पारलौकिक मर जम जान युत कम म म ग गवन म मित्र मरता है। जाना प्रत्यागमन श्रौर कर्मनीत जाने का विचार मन्प्रथम उपनिषदा म ही आया है कि ना क चतुस्र क प्रार म

यक्त किया गया है। ब्राह्मण्य के काल में कमसिद्धान्त में यज्ञ विचार का भाव था और उपनिषदों से ज्ञान विचार का भाव। उपनिषदों के ही काल में हिन्दू विचारधारा और जीवन-रूपन पारलौकिकता की ओर उन्मुख हुए।

औपनिषदिक काल में हिन्दू विचारधारा का जो विकास हुआ है, उसे गोखले ने भारत के सामाजिक इतिहास की एक आवश्यक परिणति माना है। इस दृष्टिकोण से औपनिषदिक विचारधारा भारतीय ऐतिहासिक विकास की एक तत्कालीन आवश्यकता के रूप में प्रस्फुटित तथा विकसित हुई। इस विकास के लिये दो परिस्थितियाँ उत्तरदायी हैं—एक वह परिस्थिति जो ब्राह्मण्य के काल की बौद्धिक विचारधारा के रूप में आई, जिसमें वार कल्पवाले न बौद्धिक जीवन को गुप्त एवं नीरस बना दिया था और जिसमें ब्राह्मण वर्ग का सामन्तवाणी एकाधिकार बढ़ रहा था। दूसरी वह परिस्थिति थी जो तत्कालीन सामाजिक आर्थिक संकट से उत्पन्न हुई थी। यह वह परिस्थिति थी जिसमें युद्धों के द्वारा जमीनों का प्रसार बढ़ रहा था जिसके परिणामस्वरूप जनसाधारण को आर्थिक तबाही सहन करना पड़ रहा था। औपनिषदिक विचारधारा में आत्मज्ञ के उस विचार का वर्णन नहीं मिलता है जो बौद्धों में मिलता है। औपनिषदिक विचारधारा में बौद्धिक विकास तो मिलता है किन्तु साथ ही साथ ज्ञानोक्ति जीवन के प्रति ध्यान का भी भाव मिलता है। औपनिषदिक विचारधारा एक और बौद्धिक परम्परा से लिपटी हुई है किन्तु बौद्ध धार्मिक स्वरूप पर और दूसरी ओर उन्मुख बौद्धिक परम्परा के प्रति शक्य है—वह धारणा जो हम तथ्य में उत्पन्न होती हुई जान पड़ती है कि तत्कालीन नई परिस्थितियाँ न उत्पन्न समसामयिक समाधान करने में बौद्ध परम्परा अनुपयोगी थी। उन निषेधों की प्रति की धारणा हम ध्यान का प्रतीक है कि उन्मुख और विज्ञान के स्थान पर रहस्यात्मकता का प्रधानता मिली जिसमें पारलौकिकता का विचार की प्राप्ति मिली। रहस्यात्मकता का विचार का विपरीत परिस्थितियाँ में ही प्रथम मिलता है। ड्यूबोय (Deussen) का जो धारणा पर गौरव न यह स्वीकार किया है कि सम्भवतः औपनिषदिक विचारधारा का प्रथम तत्वा का प्रणयन क्षत्रिय वर्ग में हुआ है और राजनैतिक अधिन गण के अधिकारी क्षत्रिय का पारलौकिकता के विचार की ओर उन्मुख होना हम बात का प्रमाण माना जा सकता है कि औपनिषदिक विचारधारा का प्रणयन विपरीत सामाजिक आर्थिक और बौद्धिक परिस्थितियों में हुआ होगा। अतः यह कहना तत्कालीन ज्ञान पत्रों में कि कमसिद्धान्त का प्रथम निरूपण सामाजिक विपन्नता का एक रूप का रूप में हुआ¹। इसमें यह ध्वनि है कि कमसिद्धान्त का उन्मुख निराशात्मक। जो वास्तविक रूप में हुआ। किन्तु क्या कम

सिद्धांत वास्तव में निराशावादी है ? इस प्रश्न पर यथास्थान प्रागे विचार किया जायगा।

कर्मसिद्धांत में उद्भव के आधार का कुछ भी रहे हा, लेकिन इसके विषय में एक तथ्य निश्चित है और वह यह है कि कर्मसिद्धांत पर आधारित जीवन दर्शन ने एक बड़े अभिनव माग प्रस्तुत किया जिसके चारों ओर सभी कुछ व्यवस्थित था और उसमें व्यवस्था का आधार था कर्म। इस माग पर बहुरिक दत्ता की सर्वोपरिता नहीं थी क्योंकि यहाँ मनुष्य स्वयं अपने जीवन का निर्माता था। यहाँ मनुष्य के सामने जीवन का एक लम्बा वितान था जिसके इन ओर इहलौकिक जीवन था और उस पार पारलौकिक जीवन। इसी माग पर वह पान प्रतिपादित हुआ जिसमें यह मायता है कि 'गरीब जिन दो प्रकार के तत्वा से मिलकर बना है उनमें से एक है भूतार्थ्य और दूसरा कर्माश्रय। कर्माश्रय एक मनुषी प्रकृति है जिसका निर्माण जीव के पूर्व जन्म तथा इस जन्म के कर्मों से होता है। कर्माश्रय जीव के भावी जीवन का निर्माता है। प्रत्येक आत्मा और जीवन का कर्माश्रय अलग-अलग होता है। प्रत्येक जीव कर्माश्रय से बंधा है। इहलौकिक जीवन अशुभ है और जब तक यह क्षणता रहती जीव और जीवन कर्माश्रय से बंध रहेगे तथा आशागमन के चक्र में फँस रहेगे। पूणत्व का अर्थ कर्माश्रय तथा आशागमन से मुक्ति पाना है। मानव-जीवन उसी पूणत्व की प्राप्ति है। पूणत्व किसी दबी अनुकम्पा से नहीं अपने ही प्रयत्न से मिलता है। मनुष्य नियत कर्मसिद्धांत से बंधा है, नियति से नहीं। नियत कर्म के माध्यम से मनुष्य स्वयं अपना नियति का निर्माण कर सकता है। कर्माश्रय यदि एक ओर प्रारंभ का नियामक है तो दूसरी ओर प्रारंभ का भी।

उपनिषद् में निरूपित कर्मसिद्धांत में इहलौकिक या पारलौकिक प्रारंभ तथा वा भ्रंश का सुलभता जिसमें भारतीय जन जीवन के उल्लाह और प्रेरणा स्रोत का बल मिला। कर्म की यह व्याख्या निराशावादी नहीं आशावादी है। कर्म की इस व्याख्या में व्यक्ति के लिये परिवार, मान, जाति, गणजानि और राज्य में अधिक कर्म का महत्व बढ़ जाता है। यही कर्मसिद्धांत उस सामाजिक व्यवस्था का नतिक आधार बन जाता है जिसमें विभिन्न प्रजातियों में सभ्यता, जापात्रा तथा धर्मों के व्यक्ति और समूह एक सूत्र में बंधा रहे है। धर्म के साथ कर्मसिद्धांत हिंदू नतिकता का आधार है और इस आधार का सूत्रगत धर्मनिरपेक्षता में ही हुआ। यही वह नतिकता है जो 'प्रविभक्त विभवतपु' की भावना पर आधारित है। कर्म का वास्तविक नतिकता नहीं है। कर्म वह नतिकता है जिसका आधार आध्यात्मिक है। कर्म कारण हिंदू सामाजिक जीवन में कर्मसिद्धांत का उद्भव नतिक तथा आध्यात्मिक धर्म (Abluc) के रूप में हुआ है और इसी रूप में उपनिषद् का वास्तविक व्याख्याकारों ने इसकी व्याख्या की है।

महाभारत में कर्मसिद्धान्त को एक जीवन दर्शन के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह पहले ही लिखा जा चुका है कि महाभारत में कर्म का आधार कर्म महाभारत माना गया है। लेकिन यहाँ कर्म की व्याख्या उस रूप में नहीं है जिस रूप में बुद्ध ने की है। यहाँ कर्म को व्यक्ति की स्वाभाविक वृत्ति से जोड़ दिया गया है। व्यक्ति की स्वाभाविक वृत्ति पूवजन्म के कर्मों से बंधी है। प्रभू द्वारा महाभारत के वनपर्व से उद्धृत एक अंश के अनुसार, 'कर्मों द्वारा संचित भार के साथ आत्मा का पुनर्जन्म होता है कर्मों के परिणाम से ही व्यक्ति का सुख दुःख और सम्पन्नता विपन्नता की प्राप्ति होती है। पूवजन्म में किये हुए कर्म किसी भी प्राणी को कभी नहीं छोड़ते हैं। यह कर्म का ही परिणाम है कि इस जीवन में सज्जन को दुःख मिल सकता है और दुज्जन को सुख। महाभारत के अनुशासन पर्व में ऋषि वहस्पति ने युधिष्ठिर से कर्मसिद्धान्त की विवचना करते हुए कहा है कि मृत्यु के पश्चात् मनुष्य के अच्छे बुरे कर्म उसके साथ जाते हैं और उनके द्वारा उसके अगले जन्म का प्रारंभ निश्चित होता है। गतिपथ में यह कहा गया है कि आत्मा की अगली योनि भी इस जन्म के कर्मों से निर्धारित होती है। वनपर्व में कहा गया है कि मनुष्य को अपने किंचित कर्म का भी परिणाम भोगना पड़ता है। मनुष्य के कर्म उसके साथ जाते हैं। कर्म के परिणाम कभी भी नष्ट नहीं होते हैं (नास्ति कृतस्य नाशः)। कर्मों के ही कारण आत्मा का बार बार जन्म लना पड़ता है। मनुष्य के कर्म शुभ भी होते हैं और अशुभ भी और यह निश्चित है कि मनुष्य वसा ही काटेगा जसा नि बायेगा। कोई भी अपनी दृष्टानुसार अपने प्रारंभ का नियम नहीं कर सकता है। पूवजन्म में किये हुए कर्मों का परिणाम इस जन्म में भोगना पड़ता है। जो इस कर्मसिद्धान्त में अनभिज्ञ है, वह अपने दुर्भाग्य के लिए देवी दाविता को वासते रहते हैं यद्यपि वे यह नहीं जानते कि उनका दुर्भाग्य उनके ही अशुभ कर्मों का परिणाम है¹। इन उद्धरणों से यह स्पष्ट होता है कि महाभारत में कर्म का दैव के रूप में प्रतिपादित किया गया है। महाभारत में कर्म और उसके परिणाम को इतना अवश्यम्भावी माना गया है कि महाभारत का कर्मसम्बन्धी विचार स्ववली हो गया है। यद्यपि उस दृष्टान्तित से बचने का प्रयास भी किया गया है। अनुशासन पर्व में कहा गया है कि व्यक्ति के प्रयत्न कीजें व समान है। दैव भूमि व समान और फल (कर्मफल) दाना व सम्मिलन का परिणाम है²। यहाँ कर्म के सम्बन्ध में यह विचार प्रधान है कि जो जमा करेगा, वसा उसने योग्य होगा।

यह कर्त्ता अनिर्णयित नहीं गयी कि महाभारत में कर्म का अवाञ्छनीय किन्तु अनिवार्य आवश्यकता के रूप में प्रस्तुत किया गया है। महाभारत के अनुशासन पर्व

1 प्रभू पी० एच० पृष्ठ 21, 22, 23

2 गोसते, वी० जी० दही पृष्ठ 101

अस्पृश ही कम की प्रशंसा करते हैं, जिसके कारण व दैहिक अस्तित्व के प्रपञ्च में प्रसन्नतापूर्वक फले रहते हैं लेकिन, जिन्हें धर्म का पूण ज्ञान है वे कम की वंदना ही प्रशंसा नहीं करते हैं जैसे नदी में जल पीता हुआ व्यक्ति कुछ का जग भी ध्यान में नहीं लाता है (शांतिपर्व) मनुष्य सद्वचन कम के प्रभाव के अंतर्गत रहता है और इस कारण उद्य यह अवश्य सोचना चाहिये कि किस प्रकार वह कम का प्रतिविधान (Atonement) कर सकता है और किस प्रकार वह अपने को असद दुर्देव में मूर्त कर सकता है (वनपर्व) चाहे कोई प्राणी सबल हो या कमजोर, लम्बा हा या छोटा, जीणता और मृत्यु सभी का निगल जात है। हा, हमारा अपवाद वही है मर्त है जो पुनर्जन्म से बच सके क्योंकि आत्मा अपर (शांतिपर्व) प्रत्येक व्यक्ति का आत्मा में मान्य प्राप्ति का प्रयास करना चाहिये क्योंकि यह मसार अनेक कठिनाइयाँ और श्रुतियों से भरा पड़ा है (शांतिपर्व)।

परलोक का विचार महाभारत में और भी विस्तृत हुआ है। महाभारत में आत्मा के अस्तित्व के तीन स्तर बताये गये हैं। इग लोक का कमभूमि कहा गया है और परलोक की फलभूमि। पञ्च भूमि कदा स्तर हैं—एक स्तर है स्वर्ग और नरक का जहाँ कर्मानुसार जीव को फल भोगना पड़ता है। दुर कर्मों के कारण नरक की यातनायें भोगनी पड़ती हैं और अच्छे कर्मों के कारण स्वर्ग के भाग का सुख मिलता है। महाभारत के वनपर्व में स्वर्ग के भोगों की विस्तृत तालिका का वर्णन है। लेकिन स्वर्ग के भाग यकिन के कर्मों के अनुपात से ही मिलने हैं और ज्यों ही अपने कर्मों के अनुपात में व्यक्ति स्वर्ग के सुख और नरक की यातनायें भोगता है उन पुनर्जन्म में किये हुए कर्मों के अनुसार पुनः दुःख लोक की विमान किमी यात्रि में जन्म लेना पड़ता है। इस प्रकार, स्वर्ग नरक और दुःख लोक के बीच में कर्मानुसार जीवात्मा का आवागमन चलता रहता है। परलोक में स्वर्ग नरक से पर एक अन्य स्तर, ज्ञानात्मक पद (ज्ञानात्मक पद), है जिसकी प्राप्ति परलोक है जहाँ से परलोक में पुनर्जाति नहीं होती है। महाभारत में मान्य का जय है ज्ञानात्मक पद में लाने वाला और उमदी प्राप्ति तभी जाना है जब मनुष्य जन्म और मृत्यु के चक्र तथा जन्म उत्पन्न होने का सुख दुःख में सुखिन पा जाय।

ज्ञानात्मक पद की प्राप्ति और आवागमन के चक्र से सुखिन का माधव धर्म है और धर्म के एक नही कनेन डार है। धर्मप्राण किया नहीं भी विद्वान्नी हाता (शांति पर्व)। महाभारत के अनुसार ज्ञानात्मक पद जहाँ का प्राप्त होता है जो स्वाध्याय तथा अज्ञान रहित जीव समर्पित है और जिसके पूजापात प्राप्त हो जाता है। महाभारत में मान्य नियति और स्वयंम ज्ञान में है व तीन मुख्य भाग बताये गये हैं। प्राणी कम में बंधन में बंधता है। लज्जा, विद्या (प्राण) से उद्योग मर्तित जानी

है। ज्ञान स प्राणी मनातन, जनीन्द्रिय और अजर हो जाता है। ज्ञान सरिता के जल के समान है और कम कुए के जल के समान। सरिता के जल का पावर जिस प्रकार कुएँ की चिंता नहीं रहती उसी प्रकार ज्ञान की प्राप्ति से कम की चिंता छूट जाती है। ज्ञान स प्राणी उस अवस्था में पहुँच जाता है जहाँ न तो बलेग है, न मृत्यु, न जन्म और न पुनर्जन्म¹। निवृत्ति और सत्तप धर्म का अर्थ द्वार है जिससे आवागमन स मुक्ति मिल सकती है। निवृत्ति और सत्तप वह अवस्था है जहाँ कम का अस्तित्व नहीं है। इस अवस्था की प्राप्ति वामना के अंत से होती है। वासना का अंत वासना की वस्तुओं के त्याग से होता है। एक वासना की पूर्ति से दूसरी वासना उत्पन्न होती है और इस प्रकार कभी न समाप्त होन वाली वासना चक्र अस्तित्व में आता है जिसके परिणामस्वरूप कम की उत्पत्ति होती है और प्राणी आवागमन के चक्र में बंधता है। जब हर बार नया इंधन डालने से अग्नि प्रज्वलित होती है, वैसा ही प्रत्येक वासना की वस्तु स वामना प्रवृत्ति का प्रादोक्षण मिलता है। वासना की उत्पत्ति छन दखन और मुनने वाली कमन्द्रियास उत्पन्न होने वाले सुख की अनुभूति में होती है। जिसन जिन वस्तु के सुख का अनुभव नहीं किया है, उम उस वस्तु की इच्छा नहीं होती है। अतः, सुख प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति वामना वाली वस्तुओं का न बखन न छूने और न दखन का प्रण करे।

महाभारत में जसा कि पिछले वचन से स्पष्ट है निवृत्ति को उन पराजया तक ल जाया गया है जहाँ प्रत्येक के लिए पढ़चना यदि असम्भव नहीं तो दुष्कर अवश्य है। सातन पर तक से जाने वाली ज्ञान की अनुभूति भी हर एक के बस की बात नहीं है। इसलिए महाभारत में कम से मुक्ति पान के लिए एक बीच का माग अपनाया गया है। वह माग है सत्तप और स्वधर्म का जिनका प्रमाण है धर्म-व्याध का प्राग जा महाभारत के वनपर्व में जाया है और जिनका वचन पहल किया जा चुका है। धर्म-व्याध के अनुसार कमरहित इन्द्रोक्तिक जीवन असम्भव है। गुन कर्मों न गुन यानि मिलनी है और पाप कर्मों से पापयानि प्राप्य पूर्व जन्म के कर्मों का परिणाम कतना बलवान होता है कि उसका प्रभाव स बचना असम्भव है इन्द्रोक्तिक जीवन पूर्वजन्म के कर्मों का परिणाम है और इन्द्रोक्तिक जीवन में स्वधर्म का पालन ही धर्म है स्वधर्म त्याग पाप है स्वधर्म पालन के लिए किये गए कम न तो दूषित करत हैं और पूर्वसंचित कमभार का ही बटान हैं जिना कम में स्वधर्म की साधना हो वहाँ श्रयस्कर है चाह वह कम अधिक् का ही क्यों न हो। महाभारत में स्वधर्म में सत्तप वचनधर्म में है²।

उमा प्रसंग में महाभारत में यह कहा गया है कि केवल अन्वयुद्धि ही अर्थात्

1 प्रभू, पी० एच० वही पृष्ठ 21 22 24

2 वही पृष्ठ 25

छिन के घटित होने पर तथा वाछित के न पाने पर शीघ्र करता है। वाछित और अवाछित या अभीष्ट और अन अभीष्ट के लिये किय जान वाला शीघ्र स जीवन का कष्ट कम नहीं होता बरन् बढ़ता है। ज्ञानतुल्य मनीषी जिनके ज्ञान न उह सातोपी और सुखी बनाया है, जिनमें सुख और दुर्भाग्य के प्रति समभाव है वही वस्तुन सुखी है। सातोप ही परम सुख का साधन है। सातोप ज्ञानी का लक्षण है और असतोप मूढ़ का। विषाद स पराजित व्यक्ति जिसकी गतिनयां शीघ्र हो गई हैं पुण्याथहीन हो जाता है। निर्वै (असतोपमय निराशा) में कोई लाभ नहीं होता क्योंकि कर्मफल का भोग प्राक्क्यभावी है। घन अज्ञानन क स्थान पर दुर्बल म मूर्खित पाने के उपायो नी साज का प्रयास अविन श्रेयस्कर है। इसका एक ही साधन है और वह है सातोप के साथ स्वयम पाठन। कम क साथ सातोप भाव का समाजन यह भारत क ही काम म हुआ।

श्रीमद्भगवद्गीता में जिम साधारणन गीता¹ का नाम दिया जाता है कम-सिद्धांत को एक व्यापक जीवन णन क रूप में प्रस्तुत करने का गीता का प्रथम किय गया है। गीताकार ने श्रीमद्भगवद्गीता का उप-निष्काम कम निषद अथवा ब्रह्मविद्यातगत योगशास्त्र की गणनी है जो इन बात की प्रतीक है कि गाना की रचना उपनिषद् की विचार-परम्परा में हुई है। महाभारत क रचयिता कावेय्याम कहा गया है क्योंकि वह ब्रह्म परम्परा स बंधे हुए हैं। किन्तु गीताकार न महाभारत में वर्णित घटना (महाभारत युद्ध) के प्रसंग का आधार बनाकर उन णन का प्रतिपादन किया है जिसमें प्रणया ज्ञान के न होकर उपनिषद् में है। लेकिन गीताकार न वैदिक परम्परा का पूणतया नने त्यागा है। वैदिक परम्परा प्रकृति तथा प्रवृत्तिवादी है और उपनिषद् की परम्परा ज्ञानमार्गी हान के कारण निवृत्तिवादी। गीताकार न निवृत्तिमार्गी प्रकृति क सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है और ज्ञान कम तथा अविन (प्रकृति) इन सिद्धान्त क प्रथम आधार हैं। प्रकृति का आधार है कम और निवृत्ति का ज्ञान तथा प्रकृति।

- 1 गीता का अर्थ है गाया हुआ या कहा हुआ। किन्तु, अपने रङ्गिन अर्थ में गीता प्रतीक है उन श्लोकों के सग्रह का जिनमें मध्याद के रूप में धर्म और ब्रह्म विद्या सम्बन्धी सिद्धान्त को निरूपित तथा स्पष्ट किया जाता है। इस दृष्टिकोण से गीता वस्तुन प्रगीत ह एक विनय रचना गौरी की और इसी कारण गिवगीता, रामगीता और श्रीमद्भगवद्गीता इत्यादि अन्य गीतायें मिलती हैं। लेकिन इन गीताओं में श्रीमद्भगवद्गीता ही सबसे अधिक लोचप्रिय रही ह और इस कारण, साधारणन, गीता से श्रीमद्भगवद्गीता का तात्पर्य किया जाता ह। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण और भजून क सम्वादों द्वारा कम सिद्धान्त को स्पष्ट किया गया ह।

है। पान स प्राणी मनातेन अतीन्द्रिय और अजर हो जाता है। ज्ञान सरिता के जल के समान है और कम कुएं के जल के समान। सरिता व जल का पावर जिस प्रकार कुएँ की चिंता नहीं रहती, उसी प्रकार पान की प्राप्ति स कम की चिंता छूट जाती है। पान से प्राणी उस अवस्था में पहुँच जाता है जहाँ न तो क्लेश है न मृत्यु न जन्म और न पुनर्जन्म¹। निवृत्ति और सत्तोप धम का अर्थ द्वार है जिससे आवागमन संभूत मिल सकती है। निवृत्ति और सत्तोप वह अवस्था है जहाँ कम का अस्तित्व नहीं है। इस अवस्था की प्राप्ति वासना के अंत में होती है। वासना का अंत वासना की वस्तुओं के त्याग से होता है। एक वासना की पूर्ति से दूसरी वासना उत्पन्न होती है और इस प्रकार कभी न समाप्त होने वाला वासना चक्र अस्तित्व में आता है जिसके परिणामस्वरूप कम की उत्पत्ति होती है और प्राणी आवागमन के चक्र में बंधता है। जन्म हर बार नया इधर डालने से अग्नि प्रज्वलित होती है वैसे ही प्रवेश वासना की वस्तु से वासना प्रवृत्ति का प्रोत्साहन मिलता है। वासना की उत्पत्ति छन, देखने और सुनने वाली कमद्रिया से उत्पन्न होने वाले सुख की अनुभूति में होती है। जिसने जिस वस्तु का सुख का अनुभव नहीं किया है, उसे उस वस्तु की इच्छा नहीं होती है। अतः सुख प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति वासना वाली वस्तुओं का न चखने न छूने और न देखने का प्रयत्न करे।

महाभारत में, जसा कि पिछले वचन से स्पष्ट है निवृत्ति की उन परावांछा तक ल जाया गया है जहाँ प्रवेश के लिए पहुँचना यदि असम्भव नहीं तो दुष्कर अशक्य है। सत्तोप पत्र तक से जान वाले पान की अनुभूति भी हर एक के वस की बात नहीं है। इसलिए महाभारत में कम से मुक्ति पाने के लिए एक बीच का माग अपनाया गया है। वह माग है सत्तोप और स्वधम का जिसका प्रमाण है धम याध का प्रसंग जो महाभारत के वनपर्व में आया है और जिसका वचन पहले किया जा चुका है। धमव्याध के अनुसार कमरहित इहलौकिक जीवन असम्भव है। गुण कर्मों से गुण कर्म मिलती है और पाप कर्मों से पापयानि प्रारब्ध पूरे जन्म के कर्मों का परिणाम, इतना बलवान आता है कि उसके प्रभाव से बचना असम्भव है इहलौकिक जीवन पूरा पान के कर्मों का परिणाम है और इहलौकिक जीवन में स्वधम का पान ही धम है स्वधम त्याग पाप है स्वधम पान के लिए विय हार कम न तो दूषित करते हैं और पूरसंचित कमभार का ही बढ़ाते हैं जिग कम में स्वधम की साधना ही वही थयस्कर है चाहे वह कम बंधन का ही क्यों न हो। महाभारत में स्वधम में सत्तोप वणधम में है²।

उसी प्रसंग में महाभारत में यह कहा गया है कि केवल अल्पवृद्धि ही धम

1 प्रभू, पी० एच० यही पृष्ठ 21, 22, 24

2 यही पृष्ठ 2)

छिन के घटित हान पर तथा वाछित के न पाने पर गोक करता है। वाछित और अवाछित या अभीष्ट और अन अभीष्ट के लिये किये जाने वाले शोक में जीवन का कष्ट कम नहीं होता बरन् बढ़ता है। मानसपन मनीषी जिनके पान न उन्हें सातोपी और मुसीबनाया है, जिनमें सुख और दुर्भाग्य क प्रति समभार है वही वस्तुन मुसीब हैं। सन्ताप ही परम सुख का साधन है। सन्ताप मानो का लक्षण है और असन्तोष मूढ का। विपाद से पराजित व्यक्ति, जिनकी गतिधर्मों धीमे हो गई हैं, पुनर्प्राप्त होने जाता है। निर्वेद (असन्तोषम निराशा) में कोई लाभ नहीं होता क्योंकि कमफल का भोग प्राप्तिभावी है। अतः सन्तापन के म्यान पर दुर्बल ग मुनि पान क उपाय की पान का प्रयास अधिक भय करके है। इसका एक ही साधन है और वह है सन्ताप के साथ स्वयं पान। कम के साथ सन्ताप भाव का समाजन यह भारत के ही बात में हुआ।

श्रीमद्भगवद्गीता में जिन साधारणतः गाथा का नाम दिया जाता है, कम सिद्धान्त को एक व्यापक जीवन पान के रूप में प्रस्तुत करने का मीना का प्रयास किया गया है। गीताकार ने श्रीमद्भगवद्गीता को उपनिषद्काल में निषेध अर्थात् प्रत्येक विद्यालयगत साधनात्मक की मनायी है जो पान बात की प्रतीक है कि गाथा की रचना उपनिषदों का विचार-परम्परा में हुई है। महाभारत में रचयिता का वेदमार्ग कहा गया है क्योंकि वेद परम्परा में बड़े हुए हैं। किन्तु गीताकार ने महाभारत में बर्णित घटना (मगधराय युद्ध) के प्रसंग का आधार लेकर उम पान का प्रतिपादन किया है किन्तु प्रेरणा स्यात् वेद में न हारर, उपनिषद् में है। लेकिन गीताकार ने वैदिक परम्परा का ही नीचे सागा है। बर्णित परम्परा प्रकृति तथा प्रवृत्तिवादी है और उपनिषदों में परम्परा पानमार्गों हान के कारण निरवृत्तिवादी। गाथाकार ने विद्विषयों के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है और पान कम तथा अक्षि (अक्षि) का प्रथम आधार है। प्रकृति का आधार है कम और अक्षि का प्रथम आधार है।

1 गीता का अर्थ है गाथा हुआ या कहा हुआ। किन्तु गीताकार ने गाथा प्रतीक है उन पानों के मगध का दिग्दर्शन के लिए प्रकृति तथा प्रवृत्तिवादी सिद्धान्त को निरवृत्ति तथा अक्षि के अक्षि से गीता वस्तुन प्रतीक है एक सिद्धान्त का प्रथम आधार निरवृत्ति, साधनात्मक और अक्षिवादी सिद्धान्तों में विलीन है। लेकिन इन गीताओं में अक्षिवादी सिद्धान्तों का प्रथम आधार है और इन कारण, साधनात्मक, अक्षिवादी सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जाता है। श्रीमद्भगवद्गीता का अर्थ है कि गीताकार ने सिद्धान्त को प्रकृति का आधार है।

गीताकार के अनुसार न तो प्रवृत्ति ही सर्वोपरि है, न ज्ञान और न प्रपत्ति और न इनमें से किसी की अवहेलना ही की जा सकती है। प्रवृत्ति कम की ओर प्रेरित करती है किन्तु कारा जीर निरोह कम बंधन है। माक्ष वहीं है जहाँ कम का आधार ज्ञान और प्रपत्ति है। ज्ञान, प्रपत्ति और कम त्रिभुज के तीन बिन्दुओं की भाँति परस्पर बँधे हुए हैं और इस कारण तीनों के सम वय से ही माक्ष मिल सकता है। ज्ञान, कम और प्रपत्ति का सम-वय निष्कामकर्मयोग में होता है जिसे गीताकार ने मोक्ष का साधन माना है। निष्कामकर्मयोग के द्वारा जीव मोक्ष की ओर अपना उत्तरोत्तर विकास कर सकता है। निष्कामकर्म के सिद्धांत पर आधारित होने के कारण गीता महाभारत में भिन्न ही जाती है। इसी कारण गीता में प्रतिपादित कमसिद्धांत महाभारत में प्रतिपादित कमसिद्धांत की अपेक्षा अधिक प्रगतिशील और प्ररक है। सम्भवतः, इसी कारण सप्तशतीन परिस्थितियों में भारतीय जन जीवन को जितनी प्रेरणा गीता से मिली है उतनी किसी अन्य धर्म ग्रंथ से शायद ही मिली हो और आज भी जन जीवन में जितना प्रभाव गीता का है, उतना रामायण के बाद शायद ही किसी धर्मग्रंथ का हो^१।

गीता की रचना के पहले कम और मोक्ष से सम्बन्धित जितने सिद्धांत तथा विचार प्रतिपादित हो चुके थे गीताकार ने निष्कामकर्मयोग के सिद्धांत की पृष्ठभूमि में उन्हीं का नव निवचन करके उन्हें एक सिद्धांतमूल में प्रस्तुत किया।

- 1 समय समय पर, गीता पर लिखे गये भाष्य इसका प्रमाण हैं। गीता पर जितने भी भाष्य लिखे गये हैं वे सप्तशतीन परिस्थितियों में ही लिखे गये हैं। जब बौद्ध-ब्राह्मण संघर्ष अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया था और उसके फलस्वरूप जाठरों-गनाहदों के आस पास सामाजिक संघर्षयुक्त विपन्न परिस्थिति उत्पन्न हो गई थी तो शंकर ने गीता पर भाष्य लिखकर ज्ञानमार्गी अद्वैतवाद का प्रतिपादन किया। बौद्धवादी विचारधारा पहले से ही गीता के अधिक समीप थी। शालांतर में, रामानुज ने गीता पर भाष्य लिखकर प्रपत्ति मार्ग का प्रतिपादन किया। यही मार्ग आगे चल कर भक्ति या दोलन के रूप में प्रस्फुटित हुआ। शंकर की निगुण अद्वैतवादी, ज्ञानाश्रयी विचार धारा, प्रपत्ति मार्ग से सम्बन्धित होकर, तुलगा की सगुण अद्वैतवादी ज्ञानाश्रयी विचारधारा के रूप में प्रस्फुटित हुई। आगे चल कर अग्रजी राजबाल में, जब स्वातन्त्र्य-संग्राम के कारण सामाजिक विपन्नता आइ तो तिलक ने गीता रहस्य लिखकर, देगन्काल की मर्यादा के अनुसार निष्काम कर्म करने के आदर्श को प्रतिपादित किया। महात्मा गांधी के जायिक और राजनतिक कायन्त्रम के प्रेरणा स्रोत गीता में हैं, यह उनके द्वारा जिन गीता भाष्य से स्पष्ट है। गांधी का सत्याग्रही गीता का स्थितप्रज्ञ, ज्ञानी, नवत और निष्काम कर्मयोगी ही है।

'नेति' का रहस्यवादी विचार, जो उपनिषद् में परिलक्षित हुआ था गीता में व्याप्त है। यह सप्तरक्षगभगुर और नागवान है। इस सप्तरक्ष पर एक शक्ति है जो इस सप्तरक्ष में व्याप्त है लेकिन फिर भी इस सप्तरक्ष में पर है। यह सत्ता अगम अगाध, अन्तर, अव्यक्त और परम है। उसके सङ्का और हजारों रूप हैं, जो नाना प्रकार के स्थिति में न वण में सत्वरण और भिन्न आदिति बात है (11/5)। इसमें समूचा स्यावर तथा जगम जगत समाहित है (11/7)। परम सत्ता का रूप ब्रह्म स्थिति चतुर्धा स ही देखा जा सकता है क्योंकि वह सामान्य नहीं ईश्वरीय योग है (11/8)। परम सत्ता का रूप अनेक मुख और आकाश वाला अनन्त अद्भुत दशान वाला, अनेक दिग्गम प्रामुख्य तथा उच्चत शक्ति वाला है। यह अद्भुत (रम्यमुक्त), अनन्त और सबव्यापी देव का रूप है। उसका तेज आकाश में एक साथ प्रकाशित हजार सूर्यों जसा है और उसमें अनेक प्रकार से विभक्त समूचा जगत एक साथ विद्यमान है। उसका न तो आदि है, न मध्य और न अन्त (11/10 11 12, 13 16)। उसका रस अनेक मुख, हाथ और नेत्र वाला है वह अनन्त है। उसका तेज सभी दिशाओं में देखीयमान हो रहा है (11/17)। उसकी शक्ति अनन्त है, मुख चन्द्र उसका नेत्र है, उसका मुख प्रकृतिलिखित अक्षरों के समान है, उसका तेज म जगत तप रहा है (11/19)। जाकाश और पृथ्वी के बीच के अन्तर में और समस्त दिशाओं में वही अनेक व्याप्त है (11/20)। वह तेजयुक्त विश्वव्यापी अनन्त परम और आदि देव है। उस किमी ने भी नहीं देखा है उसका अन्त अनुभव किया जा सकता है (11/27)। उसका बीच अनन्त है उसकी शक्ति अपार है यही सब कुछ धारण करता है इसलिए वही सब है (11/40)। वह विश्व का परमस्थान और परमधाम है। इसलिए वह पुराण पुरुष है (11/38)। वह परम अन्तर जगत् का अन्तम आधार नानातन्त्रम का अविनाशी स्थाय तनातन पुरुष है (11/18)। उसका रूप विश्व रूप है (11/16)। वही जगत् का सत्वरण (14/3) वही पालनहार त्रिण्डु (11/21), और वही मङ्गल है (11/32 33 34)। जने जगत् हृण दीपन में वग से अन्त हुए परम पत्ने रहने हैं वही ही सभी कुछ उन्नत मुर में वग म प्रकाश करता रहता है (11/23), यही वही का त्रिष्टय पुरुष है त्रिण गीताकारन, एक आर, पुराण-पुरुष तथा मनातन पुरुष कहा है और, दूसरी ओर दूसरे परमात्मा, सत्य तथा परम पुरुष कहा है। यही गीता का श्रीरूप है। वह पुरुषात्मान जीवा का पिता, जीवैश्वर्य दशाना दश और जगत का स्वामी है। वह सत्य ही धरने का अन्त द्वारा जानता है (10/15)। इस गीता में व्याप्त उनकी त्रिभूतियों ही उन्नत अक्षरों की

1. यही गीता में विहित विचार का विश्लेषण गीता के विभिन्न अध्यायों से किये हुए श्लोकों के भाषाओं के आधार पर किया गया है। अतः, मन्दर्भ की ध्येयन करने के लिए, जहाँ आवश्यक है अध्याय श्लोक सत्यापित किए गये हैं। उदाहरणार्थ, यहाँ 11/5 से तात्पर्य है अध्याय 11 श्लोक सत्याप 5।

परिचायक है। वह एक अव्ययनीय गुह्य रहस्य है।

गीता के अनुसार, पुरुष और प्रकृति दाना अनादि हैं। पुरुष सबव्यापी, अगम, अज्ञोचर, सनातन अव्यक्त, अविकारी, अजन्मा, गुणतीत और चेतन है। प्रकृति सगुण और विकारयुक्त है। दह (क्षेत्र) प्रकृति से उत्पन्न होती है और क्षेत्र म व्याप्त क्षेत्रज्ञ पुरुष है। विकार तथा गुण प्रकृति म उत्पन्न होते हैं (13/9)। जो कुछ भी चर अचर वस्तु उत्पन्न होती है वह क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के संयोग से उत्पन्न होती है (13/20)। महद्ब्रह्म अर्थात् प्रकृति पुरुष की यानि है। वह उसमें गर्भाधान करता है और उसमें प्राणीमात्र की उत्पत्ति होती है (14/3)। सब योनियों में जिन जिन प्राणियों की उत्पत्ति होती है, उनकी उत्पत्ति का स्थान पुरुष की प्रकृति है और उनमें बीजारोपण करने वाला पिता, पुरुष ही है (14/4)। परमपुरुष सभी देहधारियों में व्याप्त है और दह म स्थित जा परम पुरुष है, वह सबसाक्षी, अनुमति देनेवाला, भर्ता,

1 सब प्राणियों के हृदय में विद्यमान आत्मा, भूतमात्र का जादि, मध्य और अन्त आदित्यो में विष्णु, ज्योतिषों में जगमगाता सूर्य, वायुओं में मरीचि, नक्षत्रों में चन्द्र, वेदों में सामवेद, देवों में इन्द्र, इन्द्रियों में मन, प्राणियों का चेतन, दद्रा में शक्र, यक्ष और राक्षसों में कुबेर, वसुधो में अग्नि, पर्वतों में मेरु, पुरोहितों में बृहस्पति, सेनापतियों में कार्तिक स्वामी, सरोवरों में सागर, महर्षियों में भृगु, वाणी में ओम, यज्ञों में जपयज्ञ, स्यावरों में हिमालय, वक्षों में अश्वत्थ (पीपल), देवियों में नारद, गधवों में चित्ररथ, सिद्धा में कपिल मुनि, अश्वों में अमृत से उत्पन्न उच्चश्रवा, हाथियों में ऐरावत, मनुष्यों में राजा, हथियारों में वज्र, गायों में कामधेनु, प्रजा की उत्पत्ति का कारण कामदेव, सर्पों में वासुकि नागों में शेषनाग, जलचरों में वरुण, पितरों में अयमा, दण्ड देने वाला में यम, दत्ता में प्रह्लाद, गिनने वालों में काल, पशुओं में सिंह, पक्षियों में गरुड, पावन करने वाले में पवन, शस्त्रधारियों में परशुराम, मछलियों में मगरमच्छ, नदियों में गंगा, सृष्टि यों का जादि अन्त और मध्य विद्याओं में आत्मविद्या, विवादका का वाद, अक्षरों में आकार, रामासों में द्रव अविनाशी काल, सबकर्ता, मत्स्य और उत्पत्ति, कीर्ति, लक्ष्मी, वाणी स्मृति मेधा, घति और क्षमा सामो में बृहत् साम, छत्रों में गायत्री महीनों में मागधीय, ऋतुओं में यज्ञत छल करने वाले का दूत, प्रतापी का प्रभाव जय और निदम्य सात्विक भाव वाले का सत्व, विष्णु कुल में पामुदेव, पाण्डवों में धनजय मुनिदों में ध्यास करिषा में उदना नासक का दण्ड, जय चाहने वालों की नीति, गुह्य बातों में मौन, ज्ञान वालों का ज्ञान, उत्पत्ति का कारण स्यावर जगम का जनक, चहो परम सत्ता है। सागर की विभूतियाँ उसी से हैं (10 20-41)।

भोक्ता, महेश्वर और परमात्मा भी कहलाता है (13/22)। विकार और गुण प्रकृति से उत्पन्न होते हैं (13/19)। इस कारण काय कारण का हतु प्रकृति है और सुख-दुःख में हतु पुरुष है (13/20)। पुरुष के दो स्तर हैं—एक परमपुरुष का जो सर्व-व्यापी और अव्यक्त है और दूसरा, प्रकृति में रहने वाला पुरुष (जीव) का।

पुरुष का आधार आत्मा है जो परमात्मा का अंश है। जीवात्मा ही क्षेत्रज्ञ है। व्यक्ति, शरीर, इन्द्रिया (ज्ञान और कर्मेन्द्रिया) मन बुद्धि और आत्मा से मिलकर बनता है। शरीर (दह) से अधिक सूक्ष्म इन्द्रिया है, उनसे अधिक सूक्ष्म मन है, उससे अधिक सूक्ष्म बुद्धि है और जो बुद्धि से भी अधिक सूक्ष्म है वह आत्मा है (3/42)। आत्मा इन्द्रिय और मन के लिये अगम्य और विकार रहित है (2/55)। इन्द्रियों के स्वप्न सर्वाँ और गर्मी तथा सुख और दुःख देने वाले होते हैं, और, अनित्य ज्ञान के कारण वे आते जाते रहते हैं (2/14)। आत्मा परमात्मा का अंग है धर्म, आत्मा अजर-अमर है और वह न मरता है और न मारा जाता है। जो इस मारने वाला और मारा हुआ जानता है, वह वस्तुतः कुछ नहीं जानता है (2/10)। नागवानता दह है न कि आत्मा (2/18)। आत्मा अजमा नित्य, साश्वत और पुरातन है। शरीर के नाश से इसका नाश नहीं होता। आत्मा न कभी जमता है और न मरता है। यह भूत भविष्य और वर्तमान तीनों में विद्यमान है (2/20)। आत्मा का न तो गत्य छूट सकता है, न आग जला सकती है, न पानी भिगा सकती है और न वायु इसे सुखा सकती है। आत्मा नियम, सवगत स्थिर अचल और सनातन है (2/23,24)। आत्मा तो नित्य जन्म तथा मरण वाला है (2/26)। सबकी देह में विद्यमान यह आत्मा नियम और अवध्य है (2/30) और इस कारण नूनमात्र की जन्म में पहले और मृत्यु के बाद की अवस्थाएँ अव्यक्त हैं। उनकी वक्ता वर्तमान अवस्था ही व्यक्त है (2/20) और वह भी कुछ काल के लिये है।

दह (क्षेत्र) में पंच महाभूत (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश) अहता (अहकार अर्थात् शरीर के प्रति विद्यमान अहभाव) बुद्धि, प्रकृति दस इन्द्रिया (पाँच ज्ञानेन्द्रिया नास, श्रोत्र, घ्राण, जीभ और त्वचा तथा पाँच कर्मेन्द्रिया हाथ, पैर, मुख, लिंग और गुदा), एक मन, पाँच विषय (ज्ञानेन्द्रिया के विषय सूचना, सुनना, दृश्यता, चरना और छूना), इच्छा, द्वेष, गुण, दुःख, गप्ता (शरीर के तत्त्वा की परस्पर सहयोग करने की शक्ति) चतन शक्ति और धृति (शरीर के परमाणुओं का एक दूसरे से सटे रहने का गुण जो अहभाव के कारण ही सम्भव है और जो व्यक्त प्रकृति में विद्यमान है) का भाग है जिनके कारण दस विपर्ययक रहनी हैं (13/19)। देह में उत्पन्न ज्ञान का विकार का कारण सात्विक, राजस और तामस तीन गुण हैं जो प्रकृति में प्रतिहित हैं। यह मारा ममता और अज्ञान सार के कारण पुरुष और प्रकृति के मयाग में अन्वय में रहता है। अतः उनका जीवन के आधार प्रकृति के दस तीनों गुणों के कारण है। इन्द्रिया विषय, मन और बुद्धि उत्पन्न निशाम स्थान हैं। सारा

अस्य और मारे भूतमात्र इ ही तीन गुणा के व्यापार की लीला का परिणाम है। गीताकार के त्रिय बह ममार गुणत्रयविभागयोग¹ है। सत्वगुण प्रकाश, आरोग्य, सुख, शान्ति और ज्ञान का कारक है, रजोगुण क्रम, राग, तण्णा और जासक्ति का, तमागुण अज्ञान, माह, असावधानी, आत्स्य, निद्रा और प्रमाद का (14/5 10)। काम, त्रास, मत्, लोभ और अहकार जा मनुष्य के शत्रु है राजस तथा तामस गुणा से उत्पन्न हान है (3/37, 40, 41, 43)। मन और इन्द्रिया स्वभावतया राजस और तामस की ओर झुकती ह। जहा सात्विक है, वहा राजस और तामस नहीं हैं, जहा राजस है वहा सात्विक और तामस नहीं है और जहा तामस है, वहा सात्विक और राजस नहीं है (14/10, 11, 12, 13, 14)। व्यक्ति, बग, क्रम कता, ज्ञान, बुद्धि, धृति, सुख सन्नास, त्याग, धारणा यत्न, भक्ति, श्रद्धा और दान, सक्षेप म जितने भी सामाजिक मानसिक (Social Psychological) प्रमेय हैं वे सभी गुणत्रयविभाग याग स बध है। प्रकृति के ये तीन गुण गीताकार के अनुसार देहधारी की तीन आधारभूत जविक मानसिक (Bio Psychological) प्रकृति है जिनम मनुष्य का व्यक्ति तथा सामाजिक व्यापार विधान बधा हुआ है। इनम सात्विक सर्वाधिक वालनीय है और तामस सर्वाधिक अवाछनीय। मा त सात्विकता मे मिलता है। अतः, सात्विकता मानव जीवन का सर्वोत्तम उद्देश्य है।

गीता के अनुसार, जो सर्वोत्तम अविनाशी है वह ब्रह्म है प्राणिमात्र म अपनी मत्ता म जा रहता है वह श्रयात्म है। अधिभूत परममत्ता का नागवान स्वरूप है अधिभूत अधिभूत म रत्न वाला उसका जीवस्वरूप है और प्राणीमात्र का उत्पन्न करने वाला सृष्टि-व्यापार क्रम है (8/3, 1)। प्राणी का भौतिक आधार देह है जा प्रकृति मे मिलता है। प्रकृति का जग होने का कारण देह म प्रकृति का गुण व्याप्त रहते है और देह का व्यापार का कारण बनते हैं। प्रकृति से उत्पन्न होने वाल गुण मात्र रजस और तमस अविनाशी देहधारी (जीव) को देह का सम्बन्ध म बाधते हैं (14/5)। रजागुण देहधारा को क्रमपात्र म बाधता है (14/7)। गीता म क्रम का प्रति प्रकृतिवादी दृष्टिकोण अपनाया गया है क्योंकि गीताकार का मत म प्रकृति से उत्पन्न हुए गुण प्रत्येक मनुष्य का क्रम कराते हैं (3/5)। देहधारी के तिम्ये क्रम त्याग सम्भव नहीं (18/11) क्योंकि शरीर का व्यापार क्रम त्रिय बिना नहीं चल सकता (3/8)। चान्तव म कोई देहधारी एक क्षण भी क्रम त्रिय बिना नहीं रह सकता (3/5)। क्रम गुण की स्वाभाविक-व्यावहारिक अभिव्यक्ति है। अतः जहा गुण है वहा क्रम है। क्रम गुण म बस ही व्याप्त है जन्म फल म शुभच या मूय म प्रकाश। गुण स्वाभाविक है अतः, गुणानुसार क्रम भी स्वाभाविक है। गुणानुसार स्वाभाविक क्रम से देहधारा क्या ईश्वर को भी बधना पडता है। भगवान् कृष्ण न वहा है, 'मे भूतमात्र

का इश्वर अविनाशी और अजमा है फिर भी, अपन स्वभाव को लेकर अपनी मामा के बल से जन्म ग्रहण करता है (40)। मैं अविनाशी हूँ लेकिन, फिर भी गुणानुसार कम के आधार पर मैंने चार वर्ण उत्पन्न किये हैं (413)। मैं कम से रखा रहता हूँ यद्यपि सोना लोहा म न ता मुझे वृद्ध करने का है और न पाने का है (3/22)। लेकिन हा, यदि मैं कम न करूँ तो ये तीना लोक भ्रष्ट हो जायें और मैं अव्यवस्था का कर्ता तथा इन लोकों का नाश करने वाला बनूँ (3/24)।

गुणानुसार कम ही व्यवस्था का आधार है। सार ब्रह्माण्ड की व्यवस्था गुणानुसार कम पर ही आधारित है। मानव जीवन व्यापार और व्यवस्था भी मानव के गुणानुसार कम पर आधारित हैं। बल कम न करने से मनुष्य निष्काम नहीं बन सकता और न कम के बल बाहरी त्याग से वह मांग ही पा सकता है (34)। जीवन के लिये कम इतना आवश्यक और स्वाभाविक है कि उसका सम्पूर्ण त्याग हो ही नहीं सकता। कम का त्याग हर दशा में बल बाहरी ही रहगा। जो मनुष्य कम करने वाला इन्द्रिया का रासना है परन्तु उनके विषया का चिन्तन मन में करता है वह मूढ़ या मिथ्याचारी है (36)। मानव जीवन का सार्वत्रिक मानसिक तथा वाचिक प्रवृत्तियाँ से उत्पन्न स्वाभाविक आवश्यकताओं की पूर्ति कम ही होता है। कम जबकि तथा मानसिक और बलवन्त तथा सामाजिक प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति का माध्यम है। इसी कारण, गीताकार ने इन्द्रिय क्रिया और कर्मा का कम के तीन अंग माने हैं और ज्ञान ज्ञेय तथा परिचायक का कम की प्रेरणा में विद्यमान तान तन्व (19,19) यथाकि पदों के अन्वय कम (ज्ञेय) और उनकी विधि (ज्ञान) का जानकर व्यक्ति परिचायक बनता है और फिर इस प्रकार प्राण की हुई प्रेरणा के बल से वह इन्द्रियों द्वारा क्रिया का कर्ता बनता है। कम में परिचायक और कर्ता एक ही मिल जाते हैं। कम के तीन अंग और ज्ञान ज्ञेय तथा परिचायक की प्रतीति नहीं कम समग्र बनता है। धर्म कर्ता साधन क्रिया और देव सभी प्रकार के कर्मों के कारण (18/14-15)।

जगत् कि महाभारत में माना गया है गीता में कम का कारण कर्म ही नहीं है। अब का वही तक हाथ है जहां तक स्वाभाविक गुण और उत्कृष्ट प्रभाव का सम्बन्ध है और उत्तम आधार क्षेत्र है। कर्ता साधन और क्रियाएँ देव तथा क्षेत्र में उन्मत्तितान पर भी उनका अधीन नहीं हैं। महाभारत के धर्मशास्त्र के अन्वय देव कर्ता प्रवृत्त है कि दवागुणों के कम करने के अभाव में कर्ता के लिये कोई और चारा ही नहीं है। अतः, गीताकार के अन्वय एसा नहीं है यथाकि साधन और क्रिया के द्वारा कर्ता क्षय और अब के प्रभाव से उत्तर उठ सकता है। महाभारतकार ने इस बात पर जोर दिया है कि क्रियान् असा यथा धा, वह बल काट देता है जब कि गीताकार ने इस बात पर जोर दिया है कि जो जो बल काट देता है, यथा काटगा। कर्ता नहीं गीताकार ने यह भी बताया है कि ज्ञान का प्रभाव कि ज्ञान के कर्ता-कर्ता प्रकार है

और जिस प्रकार उनके द्वारा मांस मिल सकता है। गीता के अट्टारह अध्यायों में अठारह प्रकार के योगों की निष्काम कर्मसिद्धांत के आधार पर की गई व्याख्या इसका प्रमाण है। गीता की विचारधारा दैववादी नहीं है क्योंकि, गीता के अनुसार, जगत का प्रभु १ कर्त्तापिन को रचता है और न कर्म का और न कर्म और न कर्म और फल का मूल साधना है। प्रकृति ही सब करती है। ईश्वर किसी के पाप या पुण्य का नहीं भावता। अज्ञान के द्वारा ज्ञान के ढक जान पर लग मोह (रागात्मक बंधन) में पड़ते हैं। (अतः) ज्ञान द्वारा जिनके पाप धुल गए हैं, वे ईश्वर का ध्यान करने वाले, तमय हुए उसमें स्थिर रहने वाले, उसी को सर्वश्रेष्ठ मानने वाले लोग मोक्ष पाते हैं (5/14, 15, 17)।

कर्म स्वाभाविक है। अतः कर्म बंधन नहीं है। बंधन है कर्मफल के प्रति आसक्ति, मोह और लगाव। कर्म मनुष्य का स्वाभाविक अधिकार है—यह अधिकार जो जन्मजात है। लेकिन कर्मफल मनुष्य के अधिकार में नहीं है। गीता के अनुसार, मनुष्य के लिये निष्प्रियता असम्भव है और कर्मफल उसके अधिकार के बाहर (2/47)। कर्मफल के प्रति आसक्ति ही मानव को आवागमन के बंधन में बाधता है। कर्मफल के प्रति आसक्ति काम, क्रोध और अहंकार से उत्पन्न होती है। काम, क्रोध और अहंकार राजस तथा तामस गुणों की प्रधानता से उत्पन्न होते हैं। ज्ञान इन्द्रिया, मन और बुद्धि राजस और तामस गुणों के प्रभाव में आती हैं तो, काम, क्रोध, मद, लाभ और अहंकार का प्रभाव बढ़ता है जिससे नाशक जाता है और दृष्टि धारी वेसुध हो जाता है (3/40)। रजागुण लाभ का कारण है और कर्म की आरंभ प्रवृत्ति करने का भी (14/17)। काम क्रोध और लाभ आगुरी सम्पत्ति हैं और इनके प्रभाव में किया हुआ कर्म बंधन में बाधता है क्योंकि इनसे कर्म के फल के प्रति आसक्ति बढ़ती है, जिससे दृष्टि धारी को इस संसार में बार बार जन्म लेना पड़ता है (10/10)। गीता में प्रतिपादित सिद्धांत के अनुसार मानव जीवन में न तो कर्मफल के प्रति आसक्ति का स्थान है और न कर्मों के प्रति 'अहं या कर्त्तापिन के भाव का। जब सब कर्म प्रकृति के गुणों द्वारा किये हुए होते हैं और सारा कर्म-व्यापार प्रकृति के गुणों की सीला का व्यापार है तो 'मैं कर्त्ता हूँ यह वह मनुष्य मानता है जो अहंकार से मूढ हो गया है (3/27)। अपने अपने विषयों के प्रति इन्द्रिया का रागद्वेष रहता ही है। मनुष्य को उनका वगैरे नहीं हाना चाहिये क्योंकि वे मनुष्य के मांग में बाधक हैं (3/11)। इसी कारण, गुण-बन्धन के विभाग का रहस्य जानने वाला पुरुष उनमें आसक्ति नहीं होना क्योंकि वह जानता है कि सारा कर्म-व्यापार तभी उत्पन्न होता है जब गुण गुण में उत्पन्न हैं (3/28)। प्रकृति के गुणों से माहं हुए मनुष्य गुणों के कर्मों में आसक्ति रहते हैं। वे ज्ञानी और मन्-बुद्धि हैं (3/29)। ज्ञानी कामना वाले कर्मयोग का करने वाले स्वयं को श्रेष्ठ मानने वाले, तम मरण रूपी कर्मफल में विश्वास करने वाले तथा भाग और एतदय के लिये ही कर्म करने वाले अज्ञानी

हैं यह कि भोग और ऐश्वर्य में लिप्त रहनेवाला की बुद्धि मारी जाती है (२ 12-13) । विषयों व चिंतन से आसक्ति, आसक्ति से कामना कामना से ज्ञाथ, मोघ से मग्ना, मूढता से स्मृतिभ्रांति और स्मृतिभ्रांति में जान-नाश की उत्पत्ति हानी है । जाननाश की अवस्था मतव की अवस्था है (२ 62 63) और जहां जान वा नाश होता है वही अज्ञान का तम छा जाता है जिससे मनुष्य में कमफल के प्रति आसक्ति छाती है और वह सामारिक बंधन में बंधता है ।

जीवन में कम भावभाव है न कि कमफल की कामना और उसका प्रति स्पृहा तथा लगाव । जीवन का अनन्तागवा उद्देश्य कामना नहीं बरन मोघ है । माग बंधन नहीं स्वतंत्रता है परमगति है निर्वाण है । माग वह अवस्था है जहां सामारिक बंधन नहीं हैं और सामारिक बंधन वहां नहीं हैं जहां न ता प्रकृति का बंधन है और न प्रकृति से उत्पन्न होने वाले गुणों के व्यापार का । माग अद्वय और निस्पृह की अवस्था है क्योंकि माग परम पुरुष व साध आत्मा व सम्मिलन की अवस्था है और परमपुरुष अद्वय तथा निस्पृह है । अपन स्वभाव के अनुसार बमरन होते हुए भी परम पुरुष निस्पृह है । उसका बम नता उस स्पृग करत है और न उनको उसे लागू ही है (4/14) । माग गुणातीत की अवस्था है और मनस्प गुणातीत तब होता है जब जान द्वारा उस यह अनुभव हो जाता है कि गुणों के सिवा और कोई बर्त्ता नहीं है ।

इहलौकिक जीवन में जो इस गुण-व्यापार व भोग को जानता है वही गुणातीत¹ है । देहधारी तभी मोघ पाता है जब वह दृष्ट व सगम उत्पन्न होने वाले तीनों गुणों का पार कर जाता है (14/20) । जहां बमपत्र की इच्छा नहीं है, जहां गुणातीतता है, वहीं आत्मपरायणता व ब्रह्मपरायणता² का अनुभव होता है और

- 1 गुणातीत वह है जो प्रकाश प्रकृति और मोह प्राप्त होने पर दुःख नहीं मानता, इनके प्राप्त न होने पर इनकी इच्छा नहीं करता, उदासीन की भांति जो स्थिर है, जिसे गुण विचलित नहीं करत, जो यह मानकर स्थिर रहता है कि गुण ही अपना काय कर रहे हैं जो कभी विचलित नहीं होता, जो गुण दुःख में तम और स्वस्थ रहता है, मिटटी व टले, पत्थर और सोने की समान समप्रता है, प्रिय अप्रिय धरतु प्राप्त होने पर समान रहता है जिसके लिये निन्दा और श्रुति, मान और अपमान तथा शत्रु और मित्र सामान्य हैं और ज्ञान समान आरम्भों (सर्वरों) का त्याग कर दिया है (14/22 23, -1 2) ।
- 2 जो तान गुण पर व स्थिर है उनसे अलिप्त रहता, गुण दुःख व दुर्गों से मुक्त होता, निश्चय तम वस्तु में स्थिर रहता और ज्ञान धरतु को पाने और सम्भालने व पाठ से मुक्त रहना, आत्मपरायणता है । आत्मा व द्वारा

यही अभ्युदय माक्ष का साधन बनता है। यह अभ्युदय न तो सत्कार त्याग से मिलता है और न सवाम कम से। इसकी प्राप्ति हाती है निष्काम कम से—उस कम से जो नियत समझ कर किया जाता है लेकिन जिसके फल के प्रति आसक्ति नहीं है। यही कम सात्त्विक है क्योंकि यही कम दिव्यकम का आधार है। इसमें कोई सादेह नहीं कि कम की गति गूढ़ है। कम और अकम के विषय में समझारों को मोह भी हुआ है और होता है। कम, अकम और निषिद्ध कम का भेद भी जानना आवश्यक है। लेकिन, कम की गूढ़ गति के भेद को वही जानता है जो कम में अकम और अकम में कम देखता है (4/16, 17, 18) क्योंकि दिव्य जन्म और कम का रहस्य यही है। किन्तु यह जानानुभूति वही है जहाँ निस्पह और समत्व (समभाव) है। कम की सिद्धि चाहने वाले इस लोक में दबताओं का पूजते हैं इसमें उन्हें कमगणित फल मनुष्यलोक में तुरन्त मिल जाता है (4/12)। लेकिन, इससे न तो कम-ब-घन से मुक्ति मिलती है और न माय मिलता है। इसीलिये गीता में भगवान् कृष्ण ने कहा है 'कम-ब-घन में व नहीं पडत जो मुझ अच्छी तरह जानते हैं (4/14) जो मेरे दिव्य जन्म और कम का रहस्य जानता है, वह शरीर त्याग करके, पुनर्जन्म नहीं बल्वि मुझे पाता है (4/9)।

मनुष्य के लिये कम स्वाभाविक, आवश्यक वाछनीय और नियत है न कि कमफल और उसके प्रति लालसा। कम फलसक्ति जनानता मूढ़ता दासता और बन्धन है। परम पुरुष जिसमें मनुष्य की परमगति स्थित है कम में रह है न कि कमफल में। मानव स्तर पर गुणानुसार कम की दा श्रेणियां हो जाती हैं—एक, सवाम कम की और दूसरी निष्काम कम की। सवाम कम जिसमें कमफल के प्रति आसक्ति रहती है, राजस और तामस में उत्पन्न होता है। कमफलासक्ति में मानव के शत्रु अहंकार, मद, माह काम और कामना का वास है। कमफलासक्ति से ज्ञानता जाती है जो अभ्युदय का नष्ट अधागति का कारण बनती है। इसका विपरीत निष्काम कम सात्त्विकता का जनक है। वह सत्त्व से उत्पन्न होकर सात्त्विकता और सात्त्विक बल्लि को जन्म देता है। सात्त्विकता ही अभ्युदय और माय का साधन है। सात्त्विक कम ही कम-ब-घन से मुक्ति कर सकत हैं, और सात्त्विक कम वह है जिसमें निष्कामता है। निष्कामता वहा है जहाँ कम के प्रति अहंकार का भाव नहीं है जहाँ कम की प्रकृति के गुणा का व्यापार समना जाता है जहाँ गुणातातता है जहाँ समत्व है और जहाँ सारे आरम्भ कामना आर मक्त्प बल्लि में ही लय हो गय हैं। निष्कामता की अवस्था समातीत का भी अवस्था है क्योंकि जिसे किसी प्राश्रय की लातगा नहीं है वह काय में अच्छी तरह लगा हुआ भी कुछ नहीं करता है

आत्मा को जानना ब्रह्मपरायणता है। जिस प्रकार, सरोवर से वे सारे काम निकलते हैं जो पृथ से निकलते हैं घम ही, ज्ञानदान ब्रह्मपरायण की, जो वेदों में है वह आत्मानभव मिलता रहता है (2/45, 16)।

(4/20) । जो आसा रहित है, जिसका मन अपने बंध में ही जिराने योग्य मयह छाट दिया है और जिसका गिराव भर ही कम करता है वह कम करता हुए भी कम का दोषी नहीं होता (4/12) जो यथा काम में सन्तुष्ट रहता है जो सुखदुःखादि द्वेष से मुक्त हो गया है जो सफलता निष्कलता में तत्पक्ष है वह कम करता हुए भी कम-ब-धन में ही रहता (4/22) ।

पूण कामसायास असम्भव है ज्योति दहधारी में कम अतनिहित है । सायास और वैराग्य से न तो कोई काम ही त्याग सकता है और न मसार को क्यानि, कम का आधार, शरीरी व्यापार, से मुक्ति मनुष्य ही बाद मिल सकती है । इसीलिये, गीताकार के अनुसार अग्नि और अग्नि का त्याग करने वाला स यासी नहीं है । सायासी वह है जो कामफल का आश्रय लिये बिना काम करता है (७/१) । इस दृष्टिकोण से काम-सायास अव्यक्तदिक् है, अतः कामसायास का विचार अभावा है । गीताकार ने त्याग का सायास का आधार माना है । कामना से उपाय हुए कर्मों का त्याग सायास है और समस्त कर्मों का फल का त्याग त्याग है (18/2) । कामफल का त्याग ही सात्विक त्याग है । किन्तु ही विचारवान् पुण्य कहने है कि दापमय हानि का कारण कामसायास त्यागन योग्य है और यत्न, दान तथा तपस्वी काम त्यागन योग्य नहीं है (18/3) । गीताकार को काम सम्बन्धी मायता इस द्विविधा से परे है । गीताकार के लिये कोई भी काम दाप से उगी प्रकार मुक्त नहीं है जब कोई भाग्यिण्युष्ण से मुक्त नहीं है । जहाँ कामफल का त्याग किया जाता है वही कर्ता कामफल का दाप से मुक्त हो जाता है । अतः यत्न दान और तपस्वी काम सभी दोषरहित हात हैं जब उन्हें आसक्ति और फल-छाड़ना का त्याग करके किया जाय (18/3, 5-6) । गीताकार के लिये फल-छाड़ना ही यत्न और तप सात्विक हानि के कारण वाछनीय है । जिस यत्न दान और तप में फल-छाड़ना का प्रति भाग्यिण्युष्ण है वह सर्वान हानि के कारण अकरणीय है (17/11-22) । नियत काम का त्याग उचित नहीं है त्याग्य है नियत काममय और कामफल का प्रति भाग्यिण्युष्ण (19/7, 9) । मनुष्य के लिये कामफल का त्याग ही सम्भव है और उन जो त्यागता है उसे त्यागी कहलाना है (18/11) । कामफल त्यागी का कामफल का प्रभाव नहीं लगता (19/12) । इसलिये, जो भाग्यिण्युष्ण और अहंकार रहित है, जिसमें दन्ता और उगाह है जो सफलता निष्कलता में ही काम नहीं करता, वह काम सात्विक है (18/26) और जो सात्विक काम है, वह योग्य रहित, कुछ भावना वाला त्यागी और बुद्धिमान हानि का कारण अनुविधाजनक काम का दूषण नहीं करता और सुविधा वाला काम में लायनी होता (18/10) ।

जिस सायास बंधन है वह गीताकार के अनुसार कामसायास है और कामफलमय काम की भावना से काम द्वारा समर्थ है । कामसायास का बिना काम सायास सायास है (7/6) । इसलिये, मनुष्य काम में अन्तर्गत करता है । सायास ! जिस सायास करता है । उस मनुष्य को । जिसने मन का सायास का त्याग नहीं है वह

वभी यागी नहीं है। सत्यता (6/2) । योग की साधना के लिये कम की साधना आवश्यक है । शक्ति उसे ही मिलती है जो कमयोग द्वारा याग साधता है (6/3) । कमयोग का अर्थ है कमफलमक्ति का त्याग करके कम की साधना करना । जब मनुष्य इन्द्रियो के दिषयो में या कम में जासकत नहीं होता है और सब सकल्प तज दता है, तब वह यागाहृत कहलाता है (6/4) । योगी वह है जो आत्मा से आत्मा का उद्धार करे और आत्मा से आत्मा का उद्धार वही होता है जहाँ मन इन्द्रियो के वग म न रहकर बुद्धि और आत्मा के वश में रहता है । जिसने अपना मन जीता है, जो सम्पूर्ण रूप में गात हुआ गया है जिसकी आत्मा सर्वांगरमी, सुख-दुख और मान अपमान में नमान रहती है, जो ज्ञान और अनुभव से तप्त है, जो इन्द्रियजित और अविचल है जिसके लिये मिट्टी पत्थर और माता समान है, ऐसा इश्वरपरायण मनुष्य यागी कहलाता है (6/9, 10) । योगी वह है जा शरीर से, मन से, बुद्धि से या केवल इन्द्रियो से भी जासकिरहित हाकर आत्मबुद्धि के लिये कम करता है (6/11) । जिनके याग साधना है जिसने अपने हृदय का विगुद्ध किया है जिसने मन और इन्द्रियो को जीता है और जा भूतमात्र को जपन ही जसा समवता है ऐसा मनुष्य कम करता हुआ भी उसमें जलित रहता है (6/7) ।

जब एक निरंतर याग आत्मा के अनुसन्धान और ब्रह्मप्राप्तिरूप सुख के अनुभव की ओर प्रयत्न है (6/21) । इसीलिये लगन से प्रयत्न करता हुआ योगी, पाप में छटककर अनेक जमा से विगुद्ध हाता हुआ परमगति को प्राप्त हाता है (6/11) । याग का जित्तुगत सबाम धृति कम करने वाले की स्थिति पार कर जाता है (6/14) । यत्न में मदहान के कारण जो यागभ्रष्ट हाजाते हैं उनका नाश न तो इस तरह में हाता है और न परलोक में क्याकि कल्याण मार्ग में जाने वाले की वही दुर्गति नहीं होती है (6/40) । पुण्यपापी लोगों को मिलने वाले स्थान को पाकर और जहाँ बहुत समय तक रहकर यागभ्रष्ट मनुष्य पवित्र और साधन वाच के घर में जम लाता है या जानवा योगी के घर में जम लाता है जहाँ उस पूज्यम के बुद्धि और ज्ञानार मिलन है और जहाँ से वह माक्ष के लिये पुन आये जाता है क्योंकि पूर्वाभ्यास उस याग की ओर जवाय सीधता है (6/41-44) । उक्त योगी, तपस्वी, ज्ञानी और कमजोड़ी में वाचक है (6/46) ।

समता का ही नाम योग है (2/18) । गाता में समता के लिये 'समभाव' और 'सम व ग न' का प्रयोग हुआ है । समता निष्कामता की साधना में आती है । समाजसमावर्तित दृष्टिकोण मध्य कक्षा में सदा है कि 'समता' 'समभाव' या 'समत्व' चम्पुत ए- विषय मान्यता (Attitude) है जिसमें जीवन के कम-त्याग के परिणामों में प्रति आसक्ति है । है सफ-ता क्रमकक्षा में विषय जीवन मत्तु रक्षा है जिसमें रागादिवाच्यति का त्यागहामया है और जिसमें इन्द्रियो के विषयों में प्रति-गात नहीं है । समत्व बुद्धि की एक अवस्था है—जहाँ अवस्था जग बुद्धि,

मन जोर इन्द्रिया व विषया में हटकर समत्व और समाधि में स्थिर हो जाती है जिसके कारण व्यक्ति में कलङ्का की कामना नष्ट हो जाती है। गीताकार के अनु-
सार, बुद्धि का स्थान माह नहीं, समाधि और समत्व है (२/५२-५३)। समाधि और
समत्व में स्थिर हुई बुद्धि का समत्वबुद्धि कहा गया है। समत्वबुद्धि की तुलना में
केवल कम बहुत तुच्छ है (२/४९) क्योंकि जहाँ केवल कम करने वाला व्यक्ति कम
बचन में पड़ता है और लक्ष्य का पात्र है, वहाँ समत्व बुद्धिवाले पुण्य का पाप पुण्य
का स्वप्न नहीं होना और वह, कम न उतारने होने वाले फल का त्याग करके, कम
बचन में मुक्त हो जाता है (२/५०-५१)। समत्व बुद्धि स्थितप्रज्ञता^१ से आती है
जो स्थितप्रज्ञता स्थिरबुद्धि^२ से। प्रज्ञानता वहीं है जहाँ मन बुद्धि व वगैरे में है
और इन्द्रिया का व्यापार रागद्वेषपरहित होकर चलता है (१/६४)। स्थिरबुद्धि से
प्रज्ञानता और चित्त की प्रज्ञानता से स्थिरबुद्धि आती है (२/६०)। प्रज्ञानता और
स्थिरबुद्धि से शांति आती है जो शांति से मुक्त। इस प्रकार शांति और मुक्त
की उत्पत्ति समत्व से होती है न कि कमफल या इच्छा जोर कामना से^३। समत्व ही
वही स्थिति है जहाँ मनुष्य आत्मपरायण होता हुआ ब्रह्मपरायण होता है। यहाँ माह
नहीं रहता जोर इन्द्रिय का पट्टवान् होती है और यदि मनुष्यकाल में भी एसी स्थिति
दिखाता ब्रह्मनिर्माण की प्राप्ति दाती है (२/२)।

स्थित प्रज्ञता स्थिरबुद्धि और समत्व के लिये गयम आवश्यक है। जहाँ सब
प्राणी सान है, वहाँ सम्यगी जागता^४ और जहाँ सब लाग जागते रहते हैं वहाँ ज्ञानवान्
मुनि साना रहता है (- ६९)। जो इन्द्रिया को मन व द्वारा नियम में रगता हुए सग

- 1 स्थितप्रज्ञता प्रज्ञा की वद् जयत्या है जहाँ समस्त कामनाओं का त्याग हो
जाता है और आत्मा द्वारा ही आत्मा में सन्तुष्टि उत्पन्न होती है (२/५५)।
- 2 यही बुद्धि स्थिर है जिसमें सुख दुःख से विकार न उत्पन्न हो जो राग भय
और श्रेयसहित हो, जिसमें शुभ-अशुभ की प्राप्ति से स्वयं और पाक न हो,
जिसके प्रभाव से इन्द्रिया अपने विषयों में से घबरा हो सिमट जाती है, जैसे
पट्टन व सब अंग बाह्य समान से सिमट कर अलग हो जाते हैं। स्थिर बुद्धि
इन्द्रियों के वग में न रहकर, इन्द्रियों को अपने वग में रगती है और स्वयं
अन्तर बल में स्थित रहती है (२/५६-५७, ५९-६१)।
- 3 जहाँ समत्व नहीं, वहाँ न तो विषय है और न भक्ति, जहाँ भक्ति नहीं है,
वहाँ शांति नहीं है और जहाँ शांति नहीं है, वहाँ मुक्त नहीं है (२/६६)।
सब कामनाओं का त्याग करके या पुरुष इच्छा, ममता और अहंकार
रहित होकर विचारता है, वही ज्ञानि पाता है (२/७०)। जिस मनुष्य में
सत्कार व भोग ज्ञान हो जाते हैं वही ज्ञानि प्राप्ति करता है न कि कामना
वाला मनुष्य (२/७०)।

रहित हाकर कर्मोद्भवा द्वारा कमयाग का आरम्भ करता है, वह श्रेष्ठ पुण्य है (३/७)। समत्व न तो अतिभाजी का प्राप्त होना है और न उपवासी का और न अति स्वप्नशील को और न अति जागन वाले को। तो मनुष्य आहार विहार सोन जागने और दूसरे कर्मों में परिमित रहता है उमका याग दुग्भजन हो जाता है (६/१६,१७)। भलीभांति नियमबद्ध मन जब आत्मा में स्थिर होता है और मनुष्य सारी कामनाओं से निस्पृह हो जाता है तब वह योगी कहलाता है (६/१८) और आत्मा का परमात्मा व साय जोड़ने का प्रयत्न करने वाला स्थिरचित्त योगी की स्थिति वायुरहित स्थान में अचल रहने वाले दीपक की सी वही गई है (६/१९)। जिनका मन समत्व में स्थिर हो गया है, उन्होंने इस देह में रहते ही ससार को जीत लिया है। ब्रह्म निष्कलक और समभावी है। इसीलिये जिसने समत्व पा लिया है वह ब्रह्म में ही स्थिर होता है (५/१९)। देहात् से पहले, जिसने इस देह से ही काम और क्रोध के वेग को सहन करने की शक्ति प्राप्ति कर ली है, उस मनुष्य ने समत्व पाया है वही मुखी है (५/२३)।

समत्व, इस प्रकार, न तो निष्क्रियता है और न शून्यता। समत्व न तो वैराग्य है, न सत्यास और न कोरी निवृत्ति। समत्व कोरा योग भी नहीं है और न वह कौरी विरक्ति है। समत्व उगानीनता भी नहीं है। समत्व निष्काम, कमठ तथा सश्रिय जीवन का आध्यात्मिक बौद्धिक आधार है क्योंकि समत्व वह निष्काम भनावृत्ति है जो स्थिरबुद्धि से उत्पन्न होती है। निष्कामता कम में नहीं मन और बुद्धि में होती है। निष्कामता तब उत्पन्न होती है जब मन और बुद्धि को समय के द्वारा इस प्रकार दीक्षित किया जाय कि कमफल की कामना के प्रति आमक्ति ही न रह जाय। योग बवल समाधि अभ्यास और ध्यान नहीं है। निष्कामता स कम का वा योग ही योग है। इसीलिये गीता का कम सिद्धांत निष्काम कमयोग का सिद्धांत है, जो कमसंयाम में बतल है। ईश्वर, ब्रह्म और आत्मा निष्काम हैं। समत्व उनका गुण है। इसलिये निष्कामता तथा समत्व का उदभव कम सं न हाकर पान से होता है—वह पान जिसमें सुख दुख लाभ हानि, जय पराजय कम अकम समान हैं और कमफलच्छा का लोप हो गया है (२/४१)। जमे अज्ञानी लाग आमक्त होकर कम करते हैं कम पानी को आमक्ति रहित हाकर कम करना चाहिये (३/२५)। केवल अज्ञानी ही भय-युर फल का आरोप ईश्वर पर करता है। परन्तु जिनके अज्ञान का आत्मपानद्वारा नाश हो गया है उनका सुख व समान प्रजागमय उनका पान, परमतरत वा दान कराता है (५/१६)। पान द्वारा जिनके पाप धूल गए हैं व ईश्वर का ध्यान करने वा ल समय हुए, उममें स्थिर रहने वाला उमा का सत्य मानने वा ल लाग मा व पान है (५/१७)।

निष्कामकमयाग कम व पर आधारित है और समत्व पान पर। एगलिये निष्कामकमयाग तनुत पानकमयागयाग है। समत्वमय निष्कामकमयाग पान

मग है जा द्रव्य घन स वही बत्वर है यथाकि कममात्र ज्ञान म ही परावाप्या को पहुँचत है (4/33) । वहे स बडा पापी भी ज्ञानरूपी नीर के द्वारा सब पापों को पार कर जाता है (4/36) । जग प्रज्वलित अग्नि इधन का भस्म कर देती है कम ही ज्ञानरूपी अग्नि सज कमों को भस्म कर देती है (1/37) । ज्ञान के समान इस समार म दूसरा कुछ पवित्र नहीं है और समत्व मे पूजता प्राप्त मनुष्य समय आन पर अपा छाप म उमको पाता है । थदावार, ईश्वरपरायण और जित्तिद्रव्य पुण्य ज्ञान पाता है और ज्ञान पाकर तुरत ज्ञानि को प्राप्त होता है । थद्वारहित, सशमयान अज्ञानी के लिये न यह लाक है और न परलाक । जिसने समत्वरूपी योग द्वारा कमबल का त्याग किया है और ज्ञान द्वारा सग्य का छिन कर डाला है, उस ज्ञानार्थी का कमब घन नहीं हाता (4/39-41) । उस लाक को दो अवस्थायें हैं—एक ज्ञानयोग की ओर दूसरी कमयोग की (3/3) । ज्ञान और कम न तो परस्पर विरायी है और न भिन्न । ज्ञान की परिणति कम मे है और कम की ज्ञान म । दाता अजायाभित है । ज्ञान और कम को भिन्न पडित नहीं अज्ञानी मानत है । एक मे अच्छी तरह स्थिर रहन वाला भी दोनो का फल पाता है । ज्ञानी और योगी को एक ही गति मिलती है । तत्त्वदर्शी दोनो का समान पाता है (5/45) ।

अमानित्य, अदभित्व, अहिंसा क्षमा सरलता, छायाय की सेवा, गुदता, स्थिरता, आत्मसमय, इन्द्रिया क विषया म वराग्य, अह्वाररहितता, जम, मरण, जरा, व्याधि दुख और दावा का निरन्तर भान, पुत्र स्त्री और गृह आदि म मोट तथा ममता का अभाव, प्रिय और अप्रिय म नित्य समभाव ईश्वर म अत्य ध्यान पूजन एक निष्ठ भक्ति, एकांत स्थान का गवन, जनसमूह म सम्मिलित होने की शक्ति, छायात्मिक ज्ञान की नित्यता का भान और ज्ञानमदान—यह सब ज्ञान कर्ताता है । इसके जा विपरीत है यह अज्ञान है (13/1-11) । त्विन य सब ज्ञान क लक्षण हैं । ज्ञान जेय या माध्यम है । जेय वह है जिसम मा म मिलता है और वह अज्ञानि परबल है ज्ञान गत है और न अगत जो गुणानीत अव्यक्त तथा अलिप्त है और जा जेय भी है और अविषय भी, जा गतिमान है और स्थिर भी, जा नूता म अविभक्त है और विभक्त भी, जा प्राणिया का पालन-कर्ता भी है और नागर भी । ज्ञान वही है, जेय वही है और ज्ञान म जा प्राप्त हाता है वह भी वही है (13/12-17) । इगीनिये यह कहा गया है कि क्षेत्र (गार) और भक्ष (क्षेत्र का ज्ञान नाग सघान ईश्वर) के भेद का ज्ञान ही ज्ञान है (13/2) । ज्ञान वह मान मिता गता है जग समस्त म कारण ज्ञाना म ज्ञाना की पहचान हाती है जवान ज्ञान भूमान म एक ही आ मा का अनुभव हाता है—यह ज्ञाना जा परमात्मा, परबल और ईश्वर का वद गरी अग है । इगीनिये ज्ञान का ज्ञानान (ज्ञाना म ज्ञाना क ज्ञान) ज्ञानान और ज्ञाना को परमात्मा म ज्ञाने ही है और ज्ञानि ज्ञान का पहचान हाता है जहा निविप्यता, समत्व, निजाम, स्थिर-

बुद्धि और स्थिरप्रवृत्ता के कारण आत्मपरायणता के द्वारा ब्रह्मपरायणता आती है। यह ब्रह्मकार का भाव नहीं है और न कर्त्तापन का भाव है। इसा ज्ञान पर आधारित कम निष्काम कम है। यही ज्ञान सात्त्विक और वाञ्छनीय है क्योंकि ज्ञान की इसी शक्तिया में मनुष्य ज्ञान के द्वारा समस्त भूता में अविनाशी भाव को और विविधता में एकात्मता देता है (18/20)। जो ज्ञानचक्र द्वारा क्षेत्र तथा क्षेत्रण का भेद और प्रकृति के द्वारा प्राणियों की कस मुक्ति हाती है, यह ज्ञानता है वही ब्रह्म का पाता है (13/34)।

ज्ञानवान् आत्मा और ब्रह्म में स्थिर होता है। इसी कारण, ज्ञानवान् ही समस्त जीव निष्कामता पाता है। गीताकार के अनुसार ज्ञान की मनोऽज्ञा मूढ नहीं है क्योंकि ज्ञानी ब्रह्म में स्थित रहता हुआ भी संसार में स्थित रहता है—वैसे ही जल कमल पानी में स्थित रहता है। ज्ञान वह मनाऽत्मा है जिसमें कम का आधार इन्द्रिया के विषयो में परायणता नहीं बरन आत्मा में परायणता के द्वारा ब्रह्मपरायणता का भाव है। यह समस्त ब्रह्म की विभूतिया की लीला है। इनमें वास्तव हान् हुए भी वस्तु अवाप्त है कर्मरत हान् हुए भी वह कर्मका है, स्वाभावानुसार अपने गुणों के उतते हुए भी वह गुणातीत है। जहां ज्ञान में ब्रह्मपरायणता है वहां मनुष्य कम करत हुए भी कर्मों में लिप्त नहीं है। परायणता में निभरता और लगाव का भाव है। परायणता में आश्रय वक्ति का भी भाव निश्चयमान है। ब्रह्मपरायणता का अर्थ है ब्रह्म के प्रति निभरता लगाव, तात्पर्य और समर्पण का भाव। ब्रह्मपरायणता सात्त्विक है क्योंकि यह इन्द्रिया के विषयो के प्रति परायणता नहीं है। जहां ब्रह्मपरायणता है वहां प्रवृत्ति, जाश्रय श्रद्धा और भक्ति की भावना है। गीताकार के लिये जिस प्रकार कम और ज्ञान में द्विविधा नहीं है उसी प्रकार ज्ञान, भक्ति तथा श्रद्धा में अंतर नहीं है। ब्रह्मपरायणता समस्त निष्कामकम ज्ञान और भक्ति तथा श्रद्धा में उपाय होती है। प्रवृत्ति (श्रद्धा भक्ति), निष्कामकम और समस्त ज्ञान का स्वाभाविक प्रतिफल है। ज्ञान स्वभावतया भक्त हो जाता है और भक्त ज्ञानी क्योंकि ज्ञान का आधार ब्रह्मपरायणता है। इसी लिये निष्कामकमयागा ज्ञान भक्त है और भक्ति योग है तथा भक्त योग है। भगवान् कृष्ण के अनुसार 'नित्य ध्यान करत हुए मुझ में मन लगाकर जो श्रद्धापूर्वक गरी उपासना करता है, उस में श्रद्धा योगी मानता है। इसलिए, अज्ञान के प्रति भगवान् कृष्ण का आश्रय है सब धर्मों का त्याग कर तु मरी परण में आ।

स्थिर के प्रति श्रद्धा और आश्रयना का भाव भक्ति का आधार है क्योंकि भक्ति सभी योग है जब इसमें समस्त है और समस्त याता ज्ञान से आसक्तता है या श्रद्धा तथा अश्रय भाव में। ज्ञानयोग सबके लिये मुख्य योग है क्योंकि ज्ञान का वित्त अध्ययन में लगा हुआ है उह वस्तु अधिष्ठ है। अध्ययन गति का लक्ष्य गरी वस्तु से ही पासना है (12/5)। इसीलिये यह ध्यानयोग है कि कम में आसक्त अज्ञानी

मनुष्यो की बुद्धि का पानी डावाडोल न करे, परन्तु, समत्वपूर्वक अच्छे प्रकार से कम करके, उन्हें सब कर्मों में लगाव (१/२६)। इसका यह अर्थ है कि नही पानकनसपासयोग की पराक्पठा की प्राप्ति सम्भव न ही, वही श्रद्धा और श्रद्धा भाव में किया हुआ कम ही निष्कामकर्मयोग है। श्रद्धा रखकर और द्वेष छोड़कर कम करने वाले व्यक्ति कमवर्जन से छूट जाते हैं (३/३१) और नारी वश्य, शूद्र तथा पापयोनि भी ईश्वर का आश्रय ग्रहण करके परमगति पाउ हैं (७/३० ३१ ३२)। मनुष्य में स्वभाव से ही तीन प्रकार की श्रद्धा होती है क्योंकि श्रद्धा सात्त्विक, तामस और राजस गुणा का अलग अलग अनुमरण करती है और जैसा जिसका स्वभाविक गुण होता है वही उमकी श्रद्धा होती है (१७/३)। सात्त्विकी श्रद्धा वाले ज्ञेयताया का भजत हैं राजसी वाले मया की और तामसी वाले भूतप्रेतादि का (१७/४)। जो यत्, दान और तप तथा मय काय श्रद्धा रहित होता है वह असत कर्मात्ता है। असत काय में न ता यत् का प्रयाजन गिद्ध होता है और न परलोका का (१७/२९)। ईश्वर का आश्रय और उपासना श्रद्धा का आवश्यक अर्थ है क्योंकि भगवान् ब्रह्म का शरण में 'जा मुक्त म परायण रहार, सब कर्म मुझे समरण करके एक निष्ठा से मरा ध्यान करने हुए, मरी उपासना करते हैं और मूकम जिनका चित्त विरोधा हुआ है उह मनुष्यी नगार से मे उदपटवार कर देता हूँ (१२/६ ७) और मरा आश्रय ग्रहण करने वाला मदा सब कम करता हुआ भी मरी कृपा से शाश्वत पर पाता है (१९/६)। श्रद्धाभाव का प्राप्त, प्रसन्नचित्त मनुष्य न तो शोक करता है न कुछ चाहता है वरन भूतभाग में सम्भाव रखकर मरी परम भक्ति पाता है (१८/५४)। म कौन हू कसा हू इस भक्ति द्वारा व (भक्त) वधाध जानता है और इस प्रकार मूक वधाध जानकर मूकम प्रथम करता है (१९/५५)।

पान में भक्ति है और भक्ति में पान और दाना में समत्वपूर्वक निष्कामकर्म है। तन भक्ति का मद्धानिक आधार क्या है?—यह पीनाहार में भगवान् कर्ण के कथना से स्पष्ट किया है। उपाट्टपाय, 'म सबकी उत्पत्ति का कारण हू और सब मूक ही प्रवृत्त हात हैं यह जानकर समझदार लोग नाशपूर्वक मूक भक्त हैं (१०/९) जो सब कम मुझ मनवित करता है मूकम परायण रहता है मरा भक्त बनता है, आसक्ति का त्याग करता है और प्राणीमात्र में द्वपरन्ति हाकर रहता है, वह मुझे पाता है (११/५५)। अथा विद्वन्मय शिष्याने के वां भगवान् कर्ण अजु न में कहन है, जो मर दान न लून किये है यह दान न ता व स दा सधत है, न तप म, न दान म और न यग म मर तस्यध मे लेगा पान ए म दान और मूक मे पकारित प्रवृत्त करन अत य शक्ति में ही सम्भव है, (११/५३, ५४)। दण्डे अप्पाय में भगवान् कर्ण का कथा है 'मूकम चित्त त्याग यात्, मुझे प्राणायन करन पाउ एक मूरक का पाप करा हू मरा हू चित्त पान करत हू म तोय में और पानद म रता है म प्रकार, मूक मे तमय रहा वालों का मूक प्रय से भजो यात्रा का में

ज्ञान देता हूँ, जिसमें वे मुझ पाते हैं और उनके ऊपर दया करके, उनके हृदय में स्थित मैं, चानरूपी प्रकाशमय दीपक से, उनके उचानरूपी अधवार का नाश करता हूँ (10/9-11)। यत, मनुष्य के लिये यह श्रेयस्कर है कि मन से सब कर्मों को 'उस अर्पित करके, उसमें परायण होकर तथा विवक बुद्धि का आश्रय लेकर निरंतर 'उसमें' चित्त लगाये (18/57)। इसीलिये, भगवान् कृष्ण का आदेश है अपना मन मुझमें लगा, अपनी बुद्धि मुझ में रख (दयोकि) इससे 'स (जन्म) के बाद तिमशय ही तू मुझे पावेगा (12/8) जो कर, जो खाय जो हवन में डाले, जो दान में दे, जो तप करे, वह सब मुझे अर्पण करके करना (दयो कि) इससे तू शुभाशुभ फल देने वाले कर्म-बन्धन से छूट जाएगा और फलत्यागरूपी समत्व को पाकर तथा जन्म मरण से मुक्त होकर मुझे पावेगा (9/27, 28) भारी दुराचारी भी यदि मुझे अनय भाव में भज तो उसे साधु हुआ ही मानना चाहिये मर भवत का कभी नाश नहीं होता (9/30-31) राग, भय और क्रोध से रहित हुए मरा ही ध्यान करते हुए मरा ही आश्रय लेने वाले, ज्ञानरूपी तप से पवित्र हुए, बहुता ने मेरे स्वरूप को पाया है (4/10) श्रद्धावान् योगभ्रष्ट हो सकता है स। मोक्षभ्रष्ट नहीं (6/37-44)।

गीता के अनुगार, जो 'उसका आश्रय लेकर जरा और मरण से मुक्त होने का प्रयत्न करते हैं, वे पूज्य ब्रह्म तथा अध्यात्म का जोर अशुद्ध कर्म को जानते हैं। जो 'उस अधिभूत अधिदेव और अधियन्त्रयुक्त को पहचानते हैं वे समत्व पाए हुए मृत्यु के समय भी 'उसे पहचानते हैं और परमगति पाते हैं (7/29-30)। जात (दुखी) जिनासु (जानने की प्रेरणा वाले), अर्थार्थी (कुछ प्राप्ति की इच्छा वाले) जोर ज्ञानी—ये चार प्रकार के गदाचारी मनुष्य ईश्वर का आश्रय लेते हैं और उस भजते हैं। किन्तु इनमें जो नित्य समभावी एक का भजन वाला है वह जानी ही श्रेष्ठ है क्योंकि ईश्वर ज्ञानी को प्रिय है और जानी ईश्वर का। जानसगी यह जानकर ईश्वर का आश्रय लेता है कि ईश्वर के पान के सिवा दूसरी कोई उत्तम गति नहीं है। भवत ता सभी अच्छे हैं पर जानी तो ईश्वर की आत्मा है (7/16, 17-18)। गीता के अनुसार भक्ति का आधार, विकार भाव या राग नहीं है वरन् भक्ति का आधार ज्ञान है। भक्ति वयवितक कष्टा त्रिकारा आवगा दुता जोर कमिया म प्राण पान का माध्यम भी नहीं है। भक्ति ज्ञानकममय प्रपत्ति है जिसका आधार बौद्धिक है न कि रागात्मक। ज्ञान कम और भक्ति एक दूसरे के पूरक है। मुक्त कम वही है जो ज्ञान और भक्ति पर आधारित है और श्रेष्ठ भक्ति की है जो ज्ञान पर आधारित है। दस प्रकार का ज्ञान भक्ति और कम ज्ञान का आधार है। गीता में कम ज्ञान और भक्ति का जो समकम प्रस्तुत किया गया है उगम ज्ञान का वह मानसिक प्रशिक्षण और अभ्यास माता गया है जिसके आधार पर कम और भक्ति का महत्त्व स्पष्ट होता है। गीता में कमठ जीवा की कल्पना की गई है लेकिन उस कमठ जीवा का आधार ज्ञानप्राप्त प्रपत्ति है। गीता का कमयाग प्रस्तुत ज्ञानभक्तिमाग है। गीता में प्रतिपादित

कर्मसिद्धांत का आधार जान है। गीता बौद्धिकता पर आधारित कर्म की प्रेरणा है— वह बौद्धिकता जिसका आधार संपत्त्व है अविभक्त विभक्तपु का अनुभव है जो आत्म-परायण तथा ब्रह्मपरायण है और इसकारण इहलौकिक जीवन में निहित है।

इसी बौद्धिकता की कसौटी पर एक बार कर्म को अपनाने तथा कर्मरत होकर माक्ष पाने की प्रेरणा दी गई है और दूसरी बार कर्मसिद्धांत का प्रतिपादित किया गया है। गीता के अनुसार, जो मनुष्य आत्मा में रमण करने वाला उसी में तप्त रहने वाला तथा सन्ताप मानने वाला है, उस कुछ करने को नहीं रहता क्योंकि न तो करने या न करने में उसका कुछ स्वाध है और न नूतमान में ही उसका कोई निजी स्वाध है। अतः रहकर कर्म करने का पुरुष ही मोक्ष पाता है। इसलिए सगरहित होकर निरंतर कर्म करना ही मनुष्य के लिए श्रेयस्कर है (3/17-19)। नियत, कृतव्यक्त वह कर्म है जो स्वधम लाक्षणिक, यत्न दान और तप के पालन के लिए किया जाता है। काय तथा अथाय के नियम का आधार शास्त्र है (19/24)। लेकिन माय ही साथ सात्त्विक, नियत कर्म का आधार निष्कामता है (18, 23)। इसलिए गीता में, नियत तथा कृतव्यक्त कर्म को भी जान भक्ति और निष्कामता पर आधारित किया गया है। स्वधम स्वधम है और स्वधम वह है जो स्वाभाविक गुणा के अनुसार हो। गुणानुसार कर्म के आधार पर वर्णाश्रम-व्यवस्था की रचना हुई है। अतः, व्यक्ति को अपने स्वाभाविक गुणा के अनुसार वर्णाश्रमी तथा स्वधमस्वी स्वधम का पालन करना चाहिए क्योंकि 'स्वभाव के अनुसार कर्म करने वाले व्यक्ति को पाप नहीं लगता (18-47)। स्वभावतः प्राप्त कर्म का मदाय होने पर भी तूला छाटना चाहिए (18-48), स्वधम करने कर्म में रह कर मनुष्य मोक्ष पाता है (16-15)। जिन्हें द्वारा प्राणियाँ ही प्रवृत्ति जाना है जिसके द्वारा यत्न द्वारा मनोर ध्याय है, उन जो पुरुष स्वधम द्वारा भजता है वह मोक्ष पाता है (19-40)। सुतर परधम से त्रिगुण स्वधम आता है परधम भयाय के और स्वधम में मत्पु भी श्रेयस्कर है (13-35), स्वधम में द्विचिंतना उचित नहीं (कर्मणि) स्वधम मान में पाप होता है (2/31-33)। मुक्त हुए तथा लाभ हानि का समान समर्थ कर स्वधम करने से पाप नहीं होता (2-35)।

स्वधम के माय-माय चारमण्ड की दृष्टि में किया हुआ कर्म भी नियत कृतव्यक्त कर्म है (3-20)। अर्थ और काम की मायना लोकात्पु के अन्तगत आती है। लोका-गण्ड जावा के लिए अनिवार्य है जो चारमण्ड के लिए कर्म ही आवश्यक है। बिना कर्म के लाक्षणिक ध्यान नहीं है। किन्तु लाक्षणिक मायन है माय्य तूला। माय्य है माय्य जिसे लिए चारमण्ड जना मायना में म एक है। जीवन के गुणानुसार प्रवृत्ति जायग त्रिगुण, पथ और कर्म की मायना के रूप में सात्त्विक-राज-माय्यम मात्र है। लेकिन लाक्षणिक चारमण्ड द्वारा चारमण्ड का कर्म मात्त्विक है जो चारमण्ड का मरम के रूप में विशा जाय।

गीता में यथाय किया हुआ कम भी नियत कर्तव्य तम की श्रेणी में आता है। यज्ञ से वचा हुआ जगत खाने वाले लोग सनातनब्रह्म को पाते हैं। यज्ञ न करने वाले के लिए यह लोभ नहीं है, ता परलाक हो ही कहाँ से सकता है (4/31)। यथाय किये जाने वाले कम के अतिरिक्त कम से इस लोक में बन्धन पैदा होता है। इसलिए, रागरहित यथाय कम करना ही श्रेयस्कर है (3/9)। लेकिन यथाय कम क्या है? यथाय कम का एक रूप वह है जिसमें यज्ञ फल की प्राप्ति के लिए किया जाता है¹। लेकिन गीताकार के मत में 'यज्ञ से वर्षा होती है वर्षा से अन्न उत्पन्न होता है अन्न में से भूतमात्र उत्पन्न होते हैं और यज्ञ कम से होता है। कम प्रकृति से उत्पन्न होता है प्रकृति अक्षरब्रह्म से उत्पन्न होती है और इसलिए सबव्यापक ब्रह्म सदा यज्ञ में विद्यमान है (3/14, 15)। वद में जितने प्रकार² के यज्ञों का वर्णन हुआ है, वे सत्र कम से ही उत्पन्न होते हैं। लेकिन, वास्तविकता यह है कि यज्ञ में 'अपण ब्रह्म है' वि (हवन की वस्तु) ब्रह्म है और ब्रह्मरूपी अग्नि में हवन करने वाला भी ब्रह्म है³। और चूँकि यज्ञ कम है, यज्ञ का अर्थ है कम का साथ ब्रह्म का मेल साधना। यज्ञ का सार यह है कि यज्ञ ब्रह्ममय है। अतः यथाय कम वही कम है जो

- 1 वेदों में फल की प्राप्ति के लिए यज्ञ का विधान है। यह यज्ञ सकाम है, जिसका गीताकार ने इस प्रकार वर्णन किया है,—यज्ञ के सहित प्रजा को उत्पन्न करके प्रजापति ब्रह्मा ने कहा, "यज्ञ द्वारा तुम्हारी वृद्धि हो। यह तुम्हें इच्छित फल दे। तुम यज्ञ द्वारा देवताओं का पोषण करा और देवता तुम्हारा पोषण करें। एक दूसरे का पोषण करते हुए तुम कल्याण पाओ। यज्ञ द्वारा सत्पुष्ट हुए देवता तुम्हें इच्छित भोग देंगे। उनका बदला दिया बिना उतका दिया हुआ जो भोगेगा वह जयन्त चोर है (3/10-12)।"
- 2 विभिन्न प्रकार के यज्ञों का वर्णन गीता में इस प्रकार किया गया है —जितने योगी देवताओं का पूजनरूपी यज्ञ करते हैं जितने ब्रह्मरूप अग्नि में यज्ञ द्वारा यज्ञ की होमते हैं, जितने अथर्णादि इन्द्रिया या समयरूप यज्ञ करते हैं कुछ गरुदादि विषयों को इन्द्रियाग्नि में होमते हैं जितने ही समस्त इन्द्रियबन्धनों को और प्राणरूपों को ज्ञानदीपक में आत्मसमयरूपी योगाग्नि में होमते हैं, (यहाँ सात्त्विक योग और समय है) कोई यज्ञाय द्रव्य दान करते हैं कोई तप करता है कोई अष्टांग योग साधते हैं, कोई स्वाध्याय और ज्ञान यज्ञ करते हैं, कोई प्राणाधार करके अपान को प्राणवाय और प्राण को अपान में होमते हैं और कोई आहार समय करके प्राणों को प्राण में होमते हैं (4/25-30)।
- 3 यहाँ अध्याय में भगवान् कृष्ण का इस पद्यन में भी यही भाव व्यक्त है — 'यज्ञ का सरूप मैं हूँ यज्ञ मैं हूँ यज्ञ द्वारा पितरों का आधार मैं हूँ, यज्ञ का प्रजापति मैं हूँ, आठुति मैं हूँ अग्नि मैं हूँ और हवन-द्रव्य मैं हूँ (9/16)।'

इस ब्रह्मपरायण ज्ञान पर आधारित है और जो इस ज्ञान का अनुभव करता हुआ बन करता है वही मोक्ष पाता है। यज्ञ के द्वारा जो काम के साथ ब्रह्म का मेल साधता है, वही ब्रह्म को पाता है (4/24, 32)। ब्रह्मपरायण होने के कारण, यज्ञ के स्वभावतया ज्ञान और भक्ति की जोर उभूख हो जाता है। ज्ञान का बड़ा मानव वाक अहकारी, घन तथा मान के मद में मस्त हुए दम्भी और विधिरहित नाममात्र के ही यज्ञ करते हैं (10/17)। फल की इच्छा और दमन किया या राजसी है (17/12) और जिसमें विधि नहीं, ज्ञान की उत्पत्ति नहीं मात्र नहीं त्याग नहीं थडा नहीं, वह यज्ञ सामग्री है (17/13)। सात्त्विक यज्ञ वह है जो निधिपूर्वक नतप्य ममज्ञ कर और मन का यज्ञ में विरोध कर दिया जाता है (17, 11)। अतः सात्त्विक यज्ञ निष्काम है। इसी कारण, द्रव्ययज्ञ की अपेक्षा ज्ञानयज्ञ अधिक अच्छा है क्योंकि काम-मात्र ज्ञान में ही परावाष्टा को पहुँचने हैं (4 33)। इसी प्रकार, दान और तप रूपी वही नियत वनव्य काम श्रेयस्कर है जो ब्रह्मपरायण ज्ञान और भक्ति से उत्पन्न हुई निष्कामता पर आधारित हैं।

गीता में प्रतिपादित कर्मसिद्धान्त, इस प्रकार, निष्काम कर्मयोग का सिद्धांत है जो, सिद्धांततः, ज्ञान और भक्ति की जोर उभूख है। गीताकार की यह आधारभूत सिद्धांतिक मायता है कि काम में निष्कामता ज्ञान और भक्ति के योग से जाती है। सम्भवतः, इसी कारण गीताकार ने कर्मसिद्धान्त का निष्कामकर्मयोग का सिद्धांत कहा है। गीता में स्वानुष्ठान पर, इस बात पर जोर दिया गया है कि माया ज्ञान मिलता है। लेकिन, साथ ही साथ इस तथ्य पर भी जोर दिया गया है कि मोक्ष उस ज्ञान से नहीं मिलता है जो शून्यवादी तथा विरविनशायी है। उपनिषद् के ब्रह्मवादी तथा महाभारत के आत्मवादी ज्ञान की गीताकार ने ब्रह्मपरायणता ज्ञान की धारणा देकर उम प्रपत्ति जोर निष्कामकर्म पर आधारित किया है। यह अवश्य है कि ज्ञान और प्रपत्ति से निष्कामकर्म आता है और गीताकार ने सिद्धांततः इस स्वीकार भी किया है। लेकिन माय-ही माय, गीताकार ने यह भी स्वीकार किया है कि 'अज्ञानमाय में ज्ञानमाय श्रेयस्कर है, ज्ञानमाय में ध्यानमाय और ध्यानमाय में कामयोग क्योंकि कामयोग में अतः मत्तुरत गति आ जाती है (12/12)। इसी प्रकार, भक्ति की मोक्ष साधन उत्पन्न हुए गीताकार ने भगवान् कर्म में कहना है, यदि मन स्थिर करके सामर्थ्य न हो तो अज्ञानमाय द्वारा, यदि अज्ञानमाय की सामर्थ्य हो तो जिनमें काम के द्वारा और यदि निमित्त काम की भी सामर्थ्य हो तो यत्नपूर्वक सब कर्मों के फल का त्याग करके ज्ञान का प्रदान करना (12/9, 11)।

यही यज्ञ ज्ञान उत्पन्न हो जाता है कि काम बिना ज्ञान और भक्ति के निष्कामकर्म का मायता हो सकता है? गीताकार ने इस प्रश्न को उत्तर देने का एक विचार छोड़ दिया है क्योंकि यह यह माय-माय पर चला है कि निष्कामकर्म ज्ञान

गीता में यज्ञाय किया हुआ कम भी नियत कतव्य कम की धेनी में जाता है। यज्ञ से बचा हुआ अमृत खाने वाले लोग सनातनब्रह्म को पाते हैं। यज्ञ न करने वाले के लिए यह लोक नहीं है सो परलोक ही ही कहा से सकता है (4/31)। यज्ञाय किये जान वाले कम के अतिरिक्त कम से इस लोक में बचन पैदा होता है। इसलिए, रागरहित यज्ञाय कम करना ही ध्येयस्कर है (3/9)। लेकिन यज्ञाय कम क्या है? यज्ञाय कम का एक रूप वह है जिसमें या फल की प्राप्ति के लिए किया जाता है¹। लेकिन गीताकार के मत में 'यज्ञ से बचा होती है वर्षा से अन उत्पन्न होता है अन में से भूतमान उत्पन्न होते हैं और यज्ञ कम से होता है। कम प्रकृति से उत्पन्न होता है, प्रकृति अधरब्रह्म से उत्पन्न होती है और इसलिए सब यापक ब्रह्म सदा यज्ञ में विद्यमान है (3/14, 15)'²। बद में जितने प्रकार³ के यज्ञ का वर्णन हुआ है, वे सब कम से ही उत्पन्न होते हैं। लेकिन वास्तविकता यह है कि यज्ञ में 'अपण ब्रह्म है रवि (हवन की वस्तु) ब्रह्म है और ब्रह्मरूपी अग्नि में हवन करने वाला भी ब्रह्म है'³। और चूँकि यज्ञ कम है, यज्ञ का अर्थ है कम के साथ ब्रह्म का मेल साधना। यज्ञ का सार यह है कि यज्ञ ब्रह्ममय है। अतः यज्ञाय कम वही कम है जो

- 1 वेदों में फल की प्राप्ति के लिए यज्ञ का विधान है। यह यज्ञ सकाम है, जिसका गीताकार ने इस प्रकार वर्णन किया है,—यज्ञ के सहित प्रजा की उत्पन्न करके प्रजापति ब्रह्म ने कहा, "यज्ञ द्वारा तुम्हारी वृद्धि हो। यह तुम्हें इच्छित फल दे। तुम यज्ञ द्वारा देवताओं का पोषण करो और देवता तुम्हारा पोषण करें। एक दूसरे का पोषण करते हुए तुम कल्याण पाओ। यज्ञ द्वारा सत्पुष्ट हुए देवता तुम्हें इच्छित भोग देंगे। उनका बदला दिये बिना, उनका दिया हुआ जो भोगेगा वह अवश्य चोर है (3/10-12)।"
- 2 विभिन्न प्रकार के यज्ञों का वर्णन गीता में इस प्रकार किया गया है—बिना योगी देवताओं का पूजनरूपी यज्ञ करते हैं कितने ब्रह्मरूप अग्नि में यज्ञ द्वारा यज्ञ की होमते हैं, कितने श्रवणादि इंद्रियों का समयरूप यज्ञ करते हैं कुछ गन्धादि विषयों को इंद्राग्नि में होमते हैं कितने ही समस्त इंद्रियकर्माँ को और पाण्डुर्यों को ज्ञानदीपक से आत्मसमयरूपी योगाग्नि में होमते हैं (यहाँ तात्पर्य योग और समय है), कोई यज्ञाय द्रव्य दान करते हैं कोई तप करते हैं कोई अष्टांग योग साधते हैं कोई स्वाध्याय और ज्ञान यज्ञ करते हैं, कोई प्राणायाम करके अपान को प्राणवायु और प्राण को अपान में होमते हैं और कोई आहार समय करके प्राणा को प्राण में होमते हैं (1/-, 30)।
- 3 'यज्ञे अध्याय में भगवान् कृष्ण ने इस पद्यन में भी यही भाव व्यक्त है—'यज्ञ का सारूप्य है यज्ञ में है यज्ञ द्वारा पितरों का आधार है, यज्ञ का यज्ञरूपिण है, आहुति में है, अग्नि में है और हवन द्रव्य में है' (9/16)।

इस ब्रह्मपरायण ज्ञान पर आधारित है और जो इस ज्ञान का अनुभव करता हुआ मन करता है वही मां पाता है। मन के द्वारा जो कम क साय ब्रह्म का मूल साधता है, वही ब्रह्म का पाता है (4/24, 32)। ब्रह्मपरायण होने के कारण, यथाय कम स्वभावतया ज्ञान और भक्ति की ओर उन्मुख हो जाता है। जपन का बड़ा मानने वाला अह्वारी, घन तथा मान के मद म भस्त हुए दम्भी और विधिरहित नाममात्र के ही यज्ञ करत हैं (10/17)। फल भी इच्छा और दम्भ से किया या राजसी है (17/12) और जिसम विधि नहीं, अन्न की उत्पत्ति नहीं, मन्त्र नहीं त्याग नहीं, श्रद्धा नहीं, वह यज्ञ साधत है (17/13)। सात्त्विक यज्ञ वह है जो विधिपूर्वक कृत्य समझ कर और मन का यज्ञ म पिरोकर किया जाता है (17,11)। जल सात्त्विक यज्ञ निष्काम है। इसी कारण, ब्रह्मयज्ञ की अपेक्षा, ज्ञानयज्ञ अधिक अच्छा है क्योंकि कम-मात्र ज्ञान म ही पराकारण को पहुँचत है (4/33)। इसी प्रकार दाल और तप रूपी वही नियत कर्तव्य कम श्रेयस्कर है जो ब्रह्मपरायण ज्ञान और भक्ति से उत्पन्न हुई निष्कामता पर आधारित हैं।

गीता में प्रतिपादित कमसिद्धांत इस प्रकार, निष्काम कमयोग का सिद्धांत है जो, सिद्धांततः, ज्ञान और भक्ति की ओर उन्मुख है। गीताकार की यह आधारभूत नैतिक मायता है कि कम में निष्कामता ज्ञान और भक्ति के माग से आती है। सम्भवतः, इसी कारण गीताकार ने कमसिद्धांत का निष्कामकर्मयोग का सिद्धांत कहा है। गीता में स्थान-स्थान पर, इन बातों पर ज़ार दिया गया है कि माग ज्ञान न मिलता है। जिन माग ही-साय इस लक्ष्य पर ज़ार दिया गया है कि योग उक्त ज्ञान से नहीं मिलता है जो गुरुवचन तथा किरिस्तिवादी है। उपनिषदों के दृष्ट-वानी तथा महाभारत के आत्मवानी ज्ञान की गीताकार ने ब्रह्मपरायणता ज्ञान की धारणा देकर उग प्रपत्ति और निष्कामकर्म पर आधारित किया है। यह ब्रह्म है कि ज्ञान और प्रपत्ति से निष्काम कम आता है और गीताकार ने निष्कामकर्म ही स्वीकार भा किया है। लेकिन, मायन्ही साय, गीताकार ने यह भी स्वीकार किया है

और भक्ति तीना अयोध्याश्रित है और तीना मित्रक तथा अलग अलग व्यक्ति म यह मनादशा उत्पन्न करते है जिसम निवृत्तिमार्गी प्रवृत्ति आती है और जिसमे, सभी परिस्थितियां म, व्यक्ति का आत्मोत्साह तथा आत्मविश्वास मिलते हैं। निवृत्ति या प्रवृत्ति स हा जीवन को वाचना गीताकार का स्वीकार नहीं है क्योंकि न त निवृत्ति ही अपने मे पूण है और न प्रवृत्ति ही। निवृत्ति और प्रवृत्ति का विवाद ही अथहीन है। गीताकार के लिए वाञ्छनीय है वह मनोदशा जहा निवृत्ति और प्रवृत्ति एक म मिल जात है। चाहे कोई ज्ञान स चल या भक्ति स या निष्कामकर्म से सबकी परिणति निवृत्तिमार्गी प्रवृत्ति म होती है। इसीलिए, गीता का कमसिद्धान्त अधिक प्रेरक और आत्मावादी है क्योंकि इससे उच्च तथा निम्न, पापी तथा भक्त योगी तथा स यासी, गरी तथा पुरुष और ब्राह्मण तथा शूद्रो को एक सी प्रेरणा मिलती है।

गीता हिंदू सामाजिक ज्ञान का एक अंग है और उमक गत्यात्मक विकास की एक विषय अवस्था है। सामाजिक ज्ञान के गत्यात्मक विकास की विभिन्न अवस्थाओं का विकास सामाजिक ऐतिहासिक विकासक्रम की गत्यात्मकता म सम्बंधित हाता है। सामाजिक ज्ञान म जहाँ सामाजिक आदर्श तथा अर्थात् सन्निहित रहती हैं वहाँ उमम सामाजिक ऐतिहासिक परिस्थितियां भी प्रतिबिम्बित हातो हैं। सामाजिक ज्ञान जहा सामाजिक आदर्श तथा जहाओं को भूत से चतमान और चतमान म विषय की छोर ले जाकर समाज को नरतय प्रदान करता है वहाँ, उसम युग की गत्यात्मक आवश्यकताओं के अनुसार परिवर्तन भी हुआ करता है। अपने युग का आवश्यकताओं के अनुसार, गीता हिंदू सामाजिक ज्ञान का एक विषय सम्बंधित रूप है। गीता कल्पाचारी ब्रह्मिक कमकाण्ड की विराधो है क्योंकि उपनिषदा की ज्ञानाश्रयी ज्ञान के विकासम ही पहल ब्रह्मिक कमकाण्ड का विराध हा चुका था और उमका सामाजिक महत्ता समाप्त हा चुकी थी। उपनिषदा की ज्ञानाश्रयी ज्ञान निवृत्तिवादी थी। कल्पाचारी ब्रह्मिक कमकाण्ड यदि छोर प्रवृत्तिवादी था तो ओपनिषदिक विचारधारा छोर निवृत्तिवादी। ज्ञान के कल्पाचारी कमकाण्ड म प्रवृत्ति और उपनिषदा की विचारधारा म निवृत्ति निवृत्ति ज्ञानों उन परावाप्टाओं का पट्टक चुके थे जग म जीवन रखा क दो अन्तिम छोर प्रवृत्ति रह गये थे। दृष्टि पर आध्यात्मिक संघर्ष म निवृत्ति आध्यात्म परमाथ था, निवृत्ति और प्रवृत्ति दोनों के मन्तुलन की आवश्यकता थी। गीता म, निष्काम कर्म का आधार पर, यही मन्तुलन ज्ञान का प्रयास किया गया है।

गीता का एका मत है कि गीता का रचना ज्ञान के समय जाति-व्यवस्था का अस्तित्व यह गद थी जिसका कारण गीता म गुण जम के आधार पर वर्णों का प्रतिज्ञान का प्रयास किया गया है ताकि सामाजिक-व्यवस्था जाति-व्यवस्था म निवृत्ति अस्तिमी अन्तःप्रण म चरक गत और भक्ति का सामाजिक चलिष्णुता को प्रेरणा का अकार मिले। सामाजिक ज्ञान म गुण का आधार गुण है जा कर्म का भी

आधार है और व्यक्ति के चरम उन्विकाम (परमंगति) की अवस्था में दोनों लय
 हा जाते हैं क्योंकि वहाँ न तो गुण है न कम और न वण। इस प्रकार गीता म
 वण यवन्मा की दवी आधार प्रदान किया गया है और उसी आधार पर यह सिद्ध
 करने का प्रयास किया गया है कि दवी स्तर पर वण भिन्नता समाप्त हो जाती
 है। इहलौकिक जीवन (सामाजिक जीवन) का आधार ब्रह्ममय है। अतः कम भी
 ब्रह्ममय है और चूँकि कम ब्रह्म की विगषता है न कि फणनक्ति कम का आधार
 केवल कम का अधिकार है न कि कमफणसक्ति। यही वह दृष्टिकोण है जिसम
 निवृत्ति प्रवृत्ति का सम्मिलन होता है। चूँकि सभी कुछ ब्रह्ममय है वास्तविक ज्ञान वही
 है जो ब्रह्मपरायण है और निष्काम कम तथा ब्रह्मपरायण ज्ञान की स्वभाविक
 परिणति भक्ति है। ऐसा कहा जा सकता है कि भारतीय समाज की धिजातीयता
 जा जातियों गणजातियाँ और प्रजातियों में सनिहित है ने ही उस ब्रह्म की कल्पना
 को प्रेरित किया है जिसमें सारे विजातीय गुण लय हो जाते हैं और केवल ब्रह्म रह जाता
 है जो सारी विभिन्नताओं की तह में निहित एतत्त्व का प्रतीक है। यह कहा जा सकता
 है कि विजातीय समाज में एतत्त्व की आवश्यकता की स्वभाविक माग के कारण ही
 गीता में ज्ञान का आधार वह अनुभूति मानी गई है जो प्रपत्ति और अविभक्त
 विमनस्यु पर आधारित है। समाज का प्रविकासी अवस्था से बचाने के लिए ही
 गीता में सम्मवादि युगे युगे की धारणा आई है। इस प्रकार, सिद्ध सामाजिक ज्ञान
 के रूप में, गीता हिन्दू विचार का वह मशीपित रूप है जो समाज की एकता तथा
 व्यक्ति की सामाजिक वृत्ति का पूण अभिव्यक्ति और समाज में व्यक्ति तथा समाज
 की गत्यात्मक चलिष्णुता (Dynamic mobility) बनाए रखने की मायता पर
 आधारित है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि गीता में प्रतिपादित कमगिदा न
 या दैववादी (Fatalistic) विचार से मुक्त रहने का प्रयास किया गया है।
 यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि जातिव्यवस्था की बढती हुई जटिलता
 के क्षय-नाश, कमसिद्धान्त जहाँ एक धार, जातिव्यवस्था में निहित असमानताओं
 को स्पष्ट करने में प्रयुक्त हुआ वहाँ, दूसरी ओर, लोग को जातिगत सामाजिक स्तर
 कमों तथा समासताओं को दवी विधान के रूप में स्वीकार करने तथा कम के द्वारा
 धमयचय करके उसके मुक्ति पान की प्रेरणा देने में भी उत्तम प्रयोग हुआ है।
 इसका परिणाम यह हुआ कि कमसिद्धांत में ही धारणा के साथ धमयचय के साथ
 साथ स्वयं और नरक की धारणाओं के साथ धमयचय गई ता दूसरी ओर कम
 और जाति से सम्बन्धित सामाजिक आदिक क्रियाओं में धमयचय प्रवृत्ति का प्रयास
 विहित कम और मानव धम के उन सामाजिक नियमों में जिनका पट्ट बन दिया
 जा चुका है और जो मुख्यतया मनु के मानव धमगामन से प्रतिपादित हैं। इन
 सबका सम्मिश्रित प्रभाव यह तथा कि कम न की धारणा से धमयचय प्रवृत्ति
 विचारधारा में सिद्धांततः इस तत्त्व के निरन्तर करने का प्रयास निवृत्ता है कि कम

देव से सम्बन्धित होन पर भी पूणतया देव के बश में नहीं है ।

यह इसी सामाजिक ऐतिहासिक परिस्थिति का परिणाम है कि वैदिक कमकाण्ड और

जन्म पर आधारित जाति व्यवस्था के विरोधी होने पर भी
बुद्धवाद और जनवाद कमसिद्धांत को न छोड़ सके और देव तथा
मनुवाद में प्रयत्न सम्बन्धी उस द्विधिया से न हट सके जिससे कम सम्बन्धी

हिन्दू विचार प्राप्त है । उदाहरणार्थ, महात्मा बुद्ध ने यह कहा है कि जन्म से न कोई ब्राह्मण होता है और न अन्वयज । कम से ही कोई व्यक्ति अन्वयज होता है और कोई व्यक्ति कम के ही आधार पर ब्राह्मण बनता है । किसी से उसकी जाति मत पूछा बल्कि उसके आचरण की परीक्षा करो क्योंकि खराब से भी खराब लकड़ी से पवित्र अग्नि उत्पन्न की जा सकती है । लेकिन, दूसरी ओर धम्मपद में कम सिद्धांत का एक निमग्न रहस्य शक्ति के रूप में निरूपित किया गया है । धम्मपद के अनुसार, प्रत्येक पापी अपने पापों से घिरा रहता है किसी व्यक्ति के कम उसका कम ही दूषित करते हैं जन्म उसके सद्कर्म उस पवित्र करते हैं पापकर्म पापी का बस ही अनुमरण करते हैं जैसे राव्य अग्नि का अनुसरण करती है, पापी का इहलौकिक तथा पारलौकिक मसार में कष्ट भोगना पड़ता है, सत्कर्म मत व्यक्ति का पारलौकिक मसार में बसे ही स्वागत करने हैं जन्म किसी के संगे सम्बन्धी एक लम्बी यात्रा में वापस आने पर उसका स्वागत करने हे कम मन्त्रणी है इसलिए, छोटे से भी छोटे कम की ज्वलना नहीं करनी चाहिए, छोटे छोटे कम संचित होकर उसी प्रकार एक बड़े कम में परिणत हो जाते हैं जिन प्रकार बूद बूद से घड़ा भर जाता है, आकाश, समुद्रतल की गहराई या पहाड़ की गुफाओं में सारे ससार में कहीं भी कोई स्थान नहीं है, जहां कोई अपने कर्मों का प्रभाव से मुक्त हो सके । अतः, पापकर्मों से अलग रहना और मन का शुद्ध रखना मनुष्य का कर्तव्य है¹ । इस प्रकार, बुद्धवाद में कम सम्बन्धी विचारों में आत्मावादी और निरात्मावादी विचारों का सम्मिलन मिलता है । यहाँ, एक ओर, यह माना गया है कि जन्म कुछ नहीं है, कम ही प्रधान है और कम के ही आधार पर व्यक्ति का इहलौकिक जीवन बनता है और कम ही इहलौकिक जीवन की उच्चता या निम्नता की बसौटी है और, दूसरी ओर, यह माना गया है कि कम ही पुनर्जन्म का कारण है और चूंकि कम व्यक्ति का कम ही पीछा करता है जन्म रात अग्नि का पीछा करती है, कम पुनर्जन्म में भी परिवर्तित होता है । बुद्धवादी आत्मा का नहीं मानते । इस कारण, बुद्धवाद में कमसिद्धांत एक रहस्यपूर्ण कारण काय (Cause-Effect) की प्रक्रिया का रूप लेता है । बुद्धवादियों ने पुनर्जन्म में पुनर्जन्म के प्रभावों की सम्भावना को स्वीकार करते हुए भी कमसिद्धांत का दृष्टिकोण विचारधारा से मुक्त रखा ।

1. गोतले की पुस्तक इन्डियन फाट एंड एजेंज में से उद्धृत पृष्ठ 100, 101 ।

स्मृतिपा, सूत्र और नीतिशास्त्रों में कमनिष्ठात का जातिव्यवस्था का आधार माना गया है और धर्म, ज्ञान तथा योग का माहा का माघन । मनु के अनुसार, मन, वाक और दह म उत्पन्न हानर, कम की परिणति अच्छे बुर परिणामा म होती है । कम ही मनुष्य की विभिन्न गतियों का कारण है । मानसिक पापों का कारण व्यक्ति का जस अन्वयज जाति म हाता ह और वाणी द्वारा किए हुए पापों का कारण उसका जम पानी मा चौपाये का रूप म हाता है । शरीर द्वारा किए हुए पापों का कारण स्थावर वस्तुओं की गति मिलती है । कमालुमार नक यातना नागकर व्यक्ति का पुन जम पैना पडता है । जिस भाव स हम जम मे कम किया जाता है, पुनजम के बाद, भावी जीवन म उसी के अनुसार उमरा परिणाम मिलता है । कमपण जन्म भागना पडता ह, जिसका लिए पुनजम आवश्यक है । मनु के अनुसार आत्मज्ञान (आत्मा के द्वारा आत्मा का ज्ञान) ही कमवधम म मुक्ति पान का एकमात्र साधन ह । मनु के आत्मज्ञान की कल्पना गीता के ज्ञान की कल्पना का ही अनुरूप ह । वेदविहित कम धर्मज्ञान हान का कारण इहलाक और परलाक म सुख द सवना ह, मुक्ति नही । जम का पुण पा उम ही मिलता ह जो आत्मज्ञान की प्राप्ति, राग-व्यक्तियों का नाश (गम) करत और स्वाध्याय म रत रहता है । आत्मज्ञान की प्राप्ति ही मनुष्य का आत्मनिरु धर्म है । इसलिए मनु न वेदविहित कर्मों का द्वारा धर्मवच्य का प्ररणा दो ह ।

यागवच्य के अनुसार, कमवच्य (कर्मवच्य) का आधार धर्म और अधर्म ह । जाति (उच्च अथवा निम्न स्तर म जम), जातु और भोग (सुख-दुःख) कमवच्य म ही उत्पन्न होने हैं । यागवच्य न वाचनाय अथवा नियत कम का ही धर्म माना ह । याग वच्य के अनुसार वाचनाय अथवा नियत कम वह ह जो वाधम, आधम धर्म, वणाधमधम, गुणधम, निमित्तधम और साधारणधम स सम्बन्धित है । दण आचार दण, अहिंसा, दान और स्वाध्याय के महित काम सभी कर्मों म आत्मज्ञान परमधम है क्योंकि आत्मज्ञान आत्मज्ञान म हाता है और आत्मज्ञान माण का साधन है । गुणनीतिमार के अनुसार, मनुष्य का इहलौकिक जीवन पुनजम का कर्मों म क्या रहता ह । कम अगले जम म व्यक्ति के दण का निमाण ही नहीं करत हैं परत उसकी बौद्धिक प्रवृत्ति का भी निमित्त करत हैं । अपन पुनजम का कर्मों का कारण ही व्यक्ति पाप या पुण्य का आरम्भसर हाता है । गुणनीतिमार म प्रतिपासित कम-निष्ठात म इहलौकिक जीवन का कारण, देव और कम, पर आपारित माना गया है और दण का पुनजम तथा हम जम के कर्मों से उत्पन्न माना गया है । दण प्रवार, गुणनीतिमार म, एत और, देव का प्रारम्भ का निरापेक्ष माना है तो दूसरी ओर,

देव को इस जन्म के कर्मों के प्रभाव के अतगत माना है। शुश्रूणीतिमार म एक ओर सन्निय जीवन पर आधारित पीरपदशन की प्रशसा की गई है, दववादियो की भक्तना की गई है और दूसरी ओर जीवन का दव-कम के अधीन माना गया है जा इस बात का प्रनीक है कि शुश्रूणीतिसार दव कम की प्राथमिकता से सम्बधित प्रश्न मे निहित द्विविधा से व्याप्त है¹।

पतालि के योगसूत्रो² म यह मायता प्रतिपादित की गई है कि अविद्या और बलेश कर्मों का कारण है। बलेश पाच प्रकार के हैं — अविद्या (पुरुष और प्रकृति को भ्रमवश एक मानना), अस्मिता (गरीर और जीव को एक मानना) राग (विषयो मे लगाव), द्वेष (दुख देने वाली वस्तुओं के प्रति घणा और उनसे दूर रहने का भाव) और अभिनिवश (जीवन से लगाव और मत्यु मे डर का भाव)। अविद्या प्रधान बलेश है और शेष उसके विभेद हैं। अविद्या अज्ञान नहीं बल्कि विभ्रम है। पाप-कम तथा पुण्यकम का कारण बलेश है। जाति आयु और भोग का कारण कम है और कर्मों का प्रभाव इहलौकिक तथा पारलौकिक दोनों प्रकार के जीवन पर पडता है। मनुष्य के कम गुबल, कृष्ण और गुबलकृष्ण की श्रेणियो म आते हैं। स्वाध्याय और ध्यान दुवल कर्मों की श्रेणी म आते हैं कयोकि इनका आधार मानसिक है, ये किसी बाह्य साधन पर आधारित नहीं है और इनमे किसी को पीडा नहा होती है। कृष्ण श्रेणी म वे कम आते है जो शुक्लकर्म के विपरीत होने के कारण दुष्कम बहे जाते हैं।

1 प्रभू, पी० एच० वही पृष्ठ 35-37।

2 योगसूत्रों से तात्पर्य उन नियमों से है जिनके द्वारा योग की साधना हो सकती है। योग हिंदुओं के छे दगनों में एक दगन है लेकिन योगसूत्रो का सम्बन्ध योग की ध्यावहारिक क्रियाओं के नियमों से है। योगसूत्र के नियम ह जिनसे कम बचन से मुक्ति मिलती है। योग का अर्थ है आत्मा का ईश्वर से योग। योग 'युज' धातु से निकला है जिसका अर्थ है जोडना। योग में यह माना जाता है कि आत्मा और ईश्वर में जो वियोग है उसे योगिक क्रियाओं द्वारा दूर किया जा सकता है। इसलिए, योग का अर्थ प्रयास से भी है— उस प्रयास से जिससे आत्मा परमात्मा का मिलन हो सकता है। योगसूत्रों में योग शब्द का प्रयोग प्रयास के ही अर्थ में किया गया है। इसलिए, योगसूत्र एक आध्यात्मिक दगन की अपेक्षा एक प्रकार की योगिक क्रिया सहिता है। आत्मा-परमात्मा के मिलन की अवस्था समाधि है। अतः, योग शब्द का प्रयोग समाधि-अवस्था के लिए भी किया जाता है। लेकिन, जहाँ कम योग, ज्ञानयोग और भक्तियोग जैसे प्रयोग आते हैं, वहाँ योग का अर्थ प्रणाली हो जाता है। गीता में, निष्काम कम को जन्म देने वाली मनोदगना के लिए योग शब्द का प्रयोग किया गया है।

सुफलक्ष्मण कर्मों में दोनों श्रेणियों की विशेषतामें विद्यमान रहती हैं। योगी कमफल की अभिलाषा त्याग देता है, इसलिए, उसका कम इस क्रिमी भी श्रेणी में नहीं आते हैं। योगी के कम ईश्वर के प्रति आर्पित हान हैं और वे केवल भूतकालिक ऋणों और उत्तरदायित्वों को निभाने के लिए किए जाते हैं और इस कारण योगी भावी ऋणा और उत्तरदायित्वों के बंधन में मुक्त हो जाता है। योगी के कर्मों का प्रेरणास्रोत अविद्या नहीं बिकर है क्योंकि वह पुण्य और प्रकृति के अंतर का जानता है। योगी कम को ईश्वरच्छा समझकर ग्रहण करता है। ज्ञानाग्नि उसकी अविद्या को जलाकर भस्म कर देती है। इसलिए, योगी बंधनों और कर्मों के बंधन में मुक्त हो जाता है। ज्ञान की प्राप्ति से योगी के कम से कर्तव्य का भाव लुप्त हो जाता है। ज्ञान की प्राप्ति का अवस्था के साथ साथ योगी धर्ममग्न हो जाता है अर्थात् वह धर्म कम तो करता है लेकिन जस मग्न सभी ने अछूना रहता है वैसे ही योगी भी समार और कर्मों से अलिप्त रहता है। एसा ज्ञानवान का पुनर्जन्म नहीं होता। पतञ्जलि साधनशास्त्र में निहित दृष्टिकोण गीता के निबट है क्योंकि इसमें भी ज्ञान साधन का आधार है ज्ञान पुण्य और प्रकृति के भ्रम की अनुभूति है और योगी वस्तुतः गीता का निष्काम कमयोगी है।

३

कर्मसिद्धान्त के आधार

विच्छल ज्ञान से यह स्पष्ट है कि कर्मसिद्धान्त वनाश्रम व्यवस्था तथा धर्म के साथ, हिंदू व्यवस्था सामाजिक जीवन का एक आधार है जिसका विकास सामाजिक विचार के रूप में घटते घटते हुआ है। भारत की सामाजिक उत्तिष्ठात्मिक परिस्थितियाँ न हय विनास की गतिविधि का निमित्त बिया है। साथ ही साथ, कर्म सिद्धान्त का निर्माण बद्ध विचारधारकों के समिप्लन में हुआ है। गोप्य के अनुसार कर्म, आयागमन और कर्मस्थानान्तरण की धारणाओं से मिलकर कर्मसिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ है। कर्म सिद्धान्त में कर्म की धारणा ही सबसे प्रधान है। शान्ता के अनुसार कर्म दायित्वों की वह बिया है जो उसका जसिय, कर्मवित्तवतया सामाजिक अस्तित्व का आधार है। कर्म, आधारभूत जसिय बियाओं के रूप में जीव का गुण है। लेकिन कर्म की यह धारणा कर्म के उत्पन्न-ज्ञान पर आधारित है। कर्म का ज्ञान धारणा में प्रकृतियानी दृष्टिकोण निहित है। कर्मसिद्धान्त में कर्म का धारणा का

दूसरा रूप भी है। कम व्यक्ति का नैतिक उत्तरदायित्व है—वह उत्तरदायित्व जिम्मे लिये व्यक्ति ही उत्तरदायी है। कम की धारणा का यह रूप धम से यथा है जा सम्भवत 'ऋत' की धारणा से आया है। इसी आधार पर कम, अकम, मुकम, नियत कम, वनस्य-कम, पुण्य-कम, पाप कम, गुण कम तथा कृष्ण कम के विचार विकसित हुए हैं। एक श्रेणी में वह कम जाता है जा नियत कत य, मुकत, और पुण्यकम है और दूसरी श्रेणी, में वह कम आता है जा अकम पापकम तथा कृष्ण कम है। पहली श्रेणी में आने वाला कम और उसके प्रचार करणीय हैं और दूसरी श्रेणी में आने वाला कम अकरणीय। करणीय कम का आधार एक आर श्रम और गुण को माना गया है और, दूसरी आर वद तथा धम का। श्रम और गुण का सम्बन्ध शरीर व्यापार और इन्द्रिया के विषय से है। श्रम और गुण ही वह आधार हैं जिन्हें समाज-मनाविज्ञान में चालक (Drive) और आधारभूत आवश्यकताओं (Basic Needs) या एषणाओं (Desires) का मायाँ दी जाती हैं। चालक का अस्तित्व स्वतः नहीं है। चालक का अस्तित्व उद्देश्य (Goal) से सम्बन्धित है और उद्देश्य का स्थान व्यक्ति में आकर पर्यावरण में होता है। चालक जबकि मानसिक प्रवृत्ति है और जीव की क्रियाशीलता तक उपन होती है जो चालक उद्देश्य की आर उन्मुख होकर जीव का उद्देश्य प्राप्ति के लिए प्रेरित करता है। जो मस्वति और समाज क्रिया का आधार है।

कम के विषय में हिन्दू विचार आधुनिक सामाजिक मनाविज्ञान के विचार में धारा भिन्न है। सामाजिक मनोविज्ञान विज्ञान है न कि विज्ञान। विज्ञान का आधार आनुभूतिकता (Empiricism) है जिसमें जीव का जीव प्रकृति के माध्यम से स्पष्ट किया जाता है। आनुभूतिक सामाजिक विज्ञान (समाजशास्त्र मानवशास्त्र और समाजमनाविज्ञान) में मानव जीव के साथ समाज और मस्वति को वहाँ तक ध्यान में रखा जाता है जहाँ तक जीव का जाव से स्पष्ट करने के सिद्धांत के प्रयोग का सम्बन्ध है। लैटिन, समाज और मस्वति जबकि नहीं हैं। समाज और मस्वति पर जीव हैं यद्यपि मस्वति जो विज्ञान का अपने में निहित जादों के अनुसार गति और गति प्रदान करता है। हिन्दू विचार में श्रम और गुण मानव क्रिया के जबकि आधार (चालक) है लैटिन मानव क्रिया श्रमगुणामुख ही नहीं है। इन्द्रिया के विषय श्रम-गुण में उल्लेख है और क्रिया के श्रमगुणामुख होने का तात्पर्य है कम का शिष्य-वागमना में बाधना। हिन्दू का सामाजिक आर्य मान है। हिन्दू विचार नैतिक पर आधारित है। इसीलिये श्रम गुण व और धम पर आधारित करणीय कम वह है जो मोक्ष की आर है जाय। समाज, गुण तथा श्रम पर आधारित है। इसका अभिव्यक्ति यथा प्रमत्त्यवस्था में नहीं है। अतः कम, एक आर, वर्णाश्रम व्यवस्था से यथा है और दूसरी आर, माता से। लैटिन, चूँकि जीव का अन्तर्गत्य उद्देश्य मान है, मान की वास्तविकता का अन्तर्गत्य स्वभावतया कम का आधार का

जाना है। माय का तात्पर्य है 'नति' में मिल जाना, श्रम गुण में परे हो जाना क्योंकि 'नति' ही श्रमगुण में परे है यद्यपि श्रम गुण उससे प्रेरित हैं। अतः, माय की वास्तविकता के अनुभव से तात्पर्य है 'नति' का ज्ञान प्राप्त करना और उसने परायण रहकर कम करना क्योंकि अन्तिम उद्देश्य वही है। इसीलिये हिन्दू विचारधारा में कम का ज्ञान मुख बनाने की प्रेरणा दी गई है और ज्ञान से तात्पर्य लिया गया है आत्मज्ञान में। श्रम गुण की अवहत्या नहीं हो सकती। व्यक्ति, आश्रम और वण अर्थात् समाज की, इहलौकिक जीवन की अवहत्या नहीं हो सकती। अतः समाज माध्यम है माय का और इसीलिये समाज में किया हुआ कम भी मायामुक्त ज्ञान चाहिये। माय निष्कारण की अवस्था है। अतः, माय का माधन कम भी निष्कारण ज्ञान चाहिये। माय व्यक्ति का अधिभार है जो कर्तव्य में मिश्रता है और कर्तव्य की साधना कम द्वारा होती है। अतः कर्तव्य कम करना व्यक्ति का नतिक उत्तरदायित्व है। कम में नतिकता का विचार कर्तव्य कम की धारणा पर आधारित है।

जहाँ माय का योग कम गया है वहाँ कम का आधार योग का माना गया है। योग समाधि है। अतः कर्तव्य कम वह है जो समाधि का ज्ञान ज्ञान में सहायक है। समाधि शारीरिक तनी मानसिक अवस्था है। अतः, शरीर में मन का हटाया ही कम माना गया है। महाकम में तप का भाव आ गया है, जिसका एक रूप सप्रवास शरीर का कष्ट देना, ईद्रव्य का दमन करना है और दूसरा, ज्ञान निष्कारणता और भक्ति द्वारा उस मानसिक अवस्था पर पहुँचना जहाँ कम केवल शरीर आधार रह जाय। कम उत्तरदायित्व है, गुणानुसार व्यक्ति का अपना धर्म है। अतः कम स्थानान्तरणीय है। महाकम दान व विचार में बंध जाता है। महाभारत में यह विचार व्यक्त किया गया है कि राजा के कुर्मों में प्रजा पर दसों विपदाय आती है और मानव धर्मशास्त्र में मृत कहा गया है कि स्त्री का अपने पति व बर्षों का पत्र भागना परतता है। अतः महाकम निकलना है कि कमका एक प्रकार की यज्ञी है जिसे हस्तगतित्त किया जा सकता है और जो व्यक्ति व साथ रहती है। किन्तु जिसे मानने व कम की हस्तगतनीय विपदाता कहा है और जिसका आधार पर कम को एक प्रकार का भौतिक प्रमय माना गया है वह वस्तुतः कम का वह रूप है जो हिन्दू विचार और व्यवहार में व्याप्त दूषण विचार (The Idea of Pollution) से सम्बन्धित है। शुद्ध पवित्र बना है और पापकम दूषित करत है। दूषण करने तक ही सम्मित नहीं रहता है। इसीलिये दैनिक गोचर व नियमा का उन बर्षों की श्रेणी में रचना गया है जो व्यक्ति का पवित्र करने हैं। दैनिक स्नान और तीर्थयात्रा का अन्त विचार मध्य है। इसा कारण जिसे व्यक्ति को जाति प्रितनी उच्च है, बर्षों के लिये उक्त ही जन्म दैनिक गोचर बर्षों का विधान है और सम्बन्धन शीलिये

शौच धर्म के दस लक्षणों में एक है। जन्म और मृत्यु के अवसर पर किये जाने वाले अनेक कल्प क्रमों (Ritual Acts) की साधकता दूषण विचार के सद्बोध में ही स्पष्ट होती है। जाति-अन्तर्वैवाहिकी तथा खानपान के नियमों को भंग करने वाले दूषित हुए माने जाते हैं और उनके लिये अनेक पवित्रकारी कल्प क्रमों का विधान है जिनमें गंगास्नान, गंगाजलपान, गंगाजल से अभिसिञ्चन, सत्यनारायण तथा भागवत की कथा सुनना मुख्य हैं।

कुर्मों से उत्पन्न पाप को धोने का विचार उस वैदिक विचार का ऐतिहासिक प्रतिफल है जिसमें यह माना जाता था कि यज्ञ, तप और मनस्ताप से पाप धुल जाते हैं। इसी विचार के आधार पर अनेक पावनकारी कल्पा (Purificatory Rituals) के सामाजिक विधान का उत्पन्न हुआ है जो करणीय क्रम की श्रेणी में आते हैं। इन सभी कल्पा में यह विचार निहित है कि समान से समान की उत्पत्ति होती है (Like Produces Like)¹, किसी के स्पर्श में रहनेवाली किसी वस्तु या उससे किसी अंग के प्रति किया जाने वाला वाय, वस्तुतः उसके प्रति किया वाय है² और दबी शक्ति को नियन्त्रण में लाकर उसके द्वारा मनोवाञ्छित फल प्राप्त किये जा सकते हैं³। यह विचार उस प्राचीनतम विचार से उत्पन्न हुआ है जिसमें यह माना जाता था कि मनुष्य का जो कुछ भिन्नता है देवताओं की अनुबन्धा से मिलता है। प्रत्येक व्यक्ति को मिलने वाला पाप पुण्य सुख दुःख अच्छा-बुरा पहले ही से निर्धारित है जो उसकी विधि है और उसका भाग्य है। देवा द्वारा निर्धारित भाग ही व्यक्ति का भाग्य है और भाग्य दिव्य दिष्ट (देवा द्वारा पूर्वनिर्धारित) है। यही से भाग्य, विधि प्राग्बन्ध देवयोग और मानव जीवन के भूत, वर्तमान तथा भविष्य का प्रभावित करने वाली एक निरीह रहस्यात्मक शक्ति की धारणा के रूप में देव धारणा का अन्वय हुआ जा करम की धारणा से मिल गई। फलतः कमसिद्धांत सम्बन्धी

- 1 जैसे मिर्जापुर जिले की कौरवा गणजाति के लोग वर्षा लाने के लिये पहाड़ियों पर से बड़े बड़े पत्थरों का इसलिये लुढ़का देते हैं कि पत्थरों की गडगडाहट यादलों की गडगडाहट को आकर्षित करती है और बादलों की गडगडाहट के आने का मतलब है यादलों का तथा वर्षा का आना।
- 2 नाल (Piacenta) गाड़ना और मण्डन के बालों को गंगा में या किसी नदी में प्रवाहित करना इस विचार पर आधारित है कि नाल या बालों पर पड़ने वाले प्रभाव वस्तुतः बच्चे पर पड़ेंगे। यणीकरण और मारण की तांत्रिक क्रियायें इसी विचार पर आधारित हैं।
- 3 गडा तापीय के द्वारा मनोवाञ्छित फल पाने का प्रयास इसी विचार पर आधारित है। झाड़ू-पूक से घोमारी तथा चापाए बुर करना इसी विचार पर आधारित है कि झाड़ू-पूक करने वालों के नियन्त्रण में कोई आधिदैविक शक्ति रहती है। मिट्टी उस ही माना जाता है जिसका किसी न किसी आधिदैविक शक्ति की तिष्ठि है। इस प्रकार की क्रियायों को मानवशास्त्र में जादुपी क्रियायें (Magical Practices) कहते हैं।

विचारधारा कही कही देववादी हो गई ।

लेकिन कमसिद्धांत का आधार यह विचार नहीं है कि कम देव का प्रतिफल है । कम-सिद्धांत का आधार यह है कि कम ही भाग्य है (भाग्यम कम) । कम और देव महाभारत में धर्मव्याध के इस कथन का पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि देव सर्वोपरि है और वर्तमान जीवन की गति देव का परिणाम है जिसे बिना द्वय के स्वीकार करना मनुष्य का धर्म है । धर्मव्याध का कथन इस विचार का विरोधी है कि कम ही भाग्य है । देव तथा कम का लेकर द्विविधापूर्ण विचार व्यक्त किया गए हैं । संस्कृत के प्रसिद्ध अग्नेज विद्वान कीच ने कमसिद्धांत का मूलतः देवपरक (Fatalistic) कहा है और मकडानल ने यह कहा है कि जावागमन तथा कमसिद्धांत के सम्मिलित प्रभाव के परिणामस्वरूप व्यक्ति को एक ओर, इस जन्म को पूर्वज मा का प्रतिफल मान कर भाग्य पर सत्ताप करने की प्रेरणा मिलती है और दूसरी ओर, इससे त्रिषागीलता सिधिल हो जाती है, स पासो-मुग्धता बढ़ती है और कम आत्ममूलक हो जाता है क्योंकि माया व्यक्तिमूलक है । इसका परिणाम यह होता है कि अपरपरक गुणा (Other Regarding Virtues) के विकास के लिये बहुत कम की सम्भावना रह जाती है¹ । इसी आधार पर यह भी कहा गया है कि कमसिद्धांत निराशावादी है क्योंकि इसमें व्यक्ति स्वातंत्र्य के लिये स्थान नहीं है । सशप म कम निराशावादी जीवन का कथन है ।

राधाकृष्णन के अनुसार, कभी-कभी यह कया जाता है कि कमसिद्धान्त मानव स्वातंत्र्य का विरोधी है यद्यपि यदि उसका ठीक-ठीक विवेचन किया जाता है तो वास्तविकता कुछ और ही निकलती है । कमसिद्धांत में मानव-स्वातंत्र्य का विरोध नहीं है । कमसिद्धांत हम मायता पर आधारित है कि प्रकृति ही नहीं बनू मस्तित्व और आचार भी व्यवस्थित हैं और यह व्यवस्था उस स्थित विधान पर आधारित है जिसका सरासव तथा निरीशक स्वयं कमाध्य (ईस्तर) है । दिव्य विधान की ध्रुवहेलना असम्भव है । प्रत्येक कम एक अ य याय-मुग्ध पर मुग्धता है और उसका परिणाम यही, इसी जीवन में मिश्रता है । स्थित विधान में कथे होने पर भी कमसिद्धान्त, सिद्धान्त, व्यक्ति के जन्मजात मानसिक तथा जविक उन्नतता पर आधारित है क्योंकि कमसिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति का, अपने मानसिक जविक उन्नतता के अनुसार, कम करने की छूट है । कमसिद्धान्त की आधारभूत प्रेरणा यह है कि कभी भी, किसी भी समय, कदा भी व्यक्ति अपने अन्तःकरण के लिये प्रयास कर सकता है । कोई भी, पापी हो या परमात्मा, कभी भी छूट नहीं है² ।

1 प्रभू पी० एच० की पुस्तक हिन्दू सोशल आगनाइजेशन में से उद्धृत पृष्ठ ५३-५४

2 एम० राधाकृष्णन दि हिन्दू धर्म काक लाइफ पृष्ठ ७१ ७२

गोचर धर्म के दस लक्षणों में से एक है। जन्म और मृत्यु के अवसर पर किये जाने वाले अनेक कल्प कर्मों (Ritual Acts) की साधनता दूषण विचार के सादृश्य में ही स्पष्ट होती है। जाति अन्तर्वैवाहिकी तथा खानपान के नियमों को भंग करने वाले दूषित हुए माने जाते हैं और उनके लिये अनेक पवित्रकारी कल्प कर्मों का विधान है जिनमें गंगास्नान, गंगा जलपान, गंगाजल से अभिसिंचन, सत्यनारायण तथा भागवत की कथा सुनना मुख्य है।

कुर्मों से उत्पन्न पाप को धोने का विचार उस वैदिक विचार का ऐतिहासिक प्रतिफल है जिसमें यह माना जाता था कि यत्र तप और मनस्ताप में पाप धुल जाते हैं। इसी विचार के आधार पर अनेक पावनकारी कल्पों (Purificatory Rituals) के सामाजिक विधान का उत्पन्न हुआ है जो करणीय कर्म की श्रेणी में आते हैं। इन सभी कल्पों में यह विचार निहित है कि समान से समान की उत्पत्ति होती है (Like Produces Like)¹, किसी के स्पर्श में रहनेवाली किसी वस्तु या उससे किसी शक्ति के प्रति किया जाने वाला कार्य, वस्तुतः उसके प्रति किया गया है² और दवी शक्ति का नियंत्रण मालूम कर उसके द्वारा मनोवाञ्छित फल प्राप्त किया जा सकते हैं³। यह विचार उस प्राचीनतम विचार से उत्पन्न हुआ है जिसमें यह माना जाता था कि मनुष्य का जो कुछ मिश्रता है देवताओं की अनुभूति से मिलता है। प्रत्येक व्यक्ति को मिलने वाला पाप पुण्य सुख दुःख अच्छा-बुरा पहले ही से निर्धारित है जो उसकी विधि है और उसका भाग्य है। देवा द्वारा निर्धारित भाग ही व्यक्ति का भाग्य है और भाग्य, दिव्य दृष्टि (देवा द्वारा पूर्वनिर्धारित) है। यही से भाग्य, विधि, प्रारब्ध, देवयोग और मानव जीवन के भूत, वतमान तथा भविष्य को प्रभावित करने वाली एक निरीह रहस्यात्मक शक्ति की धारणा के रूप में देव धारणा का अन्वय हुआ जा कर्म की धारणा से मिल गई। फलतः, कर्मसिद्धांत सम्बन्धी

- 1 जसे मिर्जापुर जिले की कौरवा गणजाति के लोग वर्षा लाने के लिये पहाड़ियों पर से बड़े बड़े पत्थरों का इतलिय लुढ़का देते हैं कि पत्थरों की गडगडाहट बादलों की गडगडाहट को आकर्षित करती है और बादलों की गडगडाहट से आने का मतलब है बादलों का तथा वर्षा का आना।
- 2 नाल (Placenta) गडना और मुण्डन के बालों को गंगा में या किसी नदी में प्रवाहित करना इस विचार पर आधारित है कि नाल या बालों पर पड़ने वाले प्रभाव वस्तुतः वच्च पर पड़ेगे। यही कारण और कारणों की तीव्र क्रियाएँ इसी विचार पर आधारित हैं।
- 3 गडना शक्ति के द्वारा मनोवाञ्छित फल पाने का प्रयास इसी विचार पर आधारित है। गडना पूरा से बीमारों तथा बाधाएँ दूर करना इसी विचार पर आधारित है कि गडना पूरा करने वालों के नियंत्रण में कोई आधिदैविक शक्ति रहती है। गडना उम ही माना जाता है जिसकी किसी न किसी आधिदैविक शक्ति की तिद्धि है। इस प्रकार की क्रियाओं को मानवशास्त्र में जादुवी क्रियाएँ (Magical Practices) कहते हैं।

विचारधारा कही कही दबवादी हो गई ।

लेकिन कममिद्वान्त का आधार यह विचार नहीं है कि कम देव का प्रतिफल है । कम-
मिद्वान्त का आधार यह है कि कम ही भाग्य है (भाग्यम कम) ।

कम और दब महाभारत में घमघ्वाघ के इस कथन का पहलू ही उल्लेख किया जा
चुका है कि देव सर्वोपरि है और वर्तमान जीवन की गतिदेव का
परिणाम है जिसे बिना देव के स्वीकार करना मनुष्य का धर्म है । घमघ्वाघ का कथन
इस विचार का विरोधी है कि कम ही भाग्य है । देव तथा कम का तकर द्विविधापूर्ण
विचार व्यक्त किया गए हैं । सस्कृत के प्रसिद्ध अंग्रेज विद्वान कीष न कममिद्वान्त
को मूलतः दबपरक (Fatalistic) कहा है और मत्थानल ने यह कहा है कि आवा-
गमन तथा कममिद्वान्त के सम्मिलित प्रभाव के परिणामस्वरूप व्यक्ति को एक ओर,
इस जन्म को पूर्वज मा का प्रतिफल मान कर भाग्य पर सत्ताप करने की प्रेरणा मिलती
है और, दूसरी ओर, इससे त्रिशासीलता विधिल हो जाती है, स वासो-सुखता बढ़ती
है और कम आत्ममूलक हो जाता है क्योंकि भोग व्यक्तिमूलक है । इसका परिणाम
यह होता है कि अन्तरपरक गुणा (Other Regarding Virtues) के विकास के लिये
बहुत कम की सम्भावना रह जाती है¹ । इसी आधार पर यह भी कहा गया है कि
कममिद्वान्त निराशावादी है क्योंकि इसमें व्यक्ति स्वात्म्य के लिये स्थान नहीं है ।
अन्त में, कम निराशावादी जीवन का बन्धन है ।

राधाकृष्णन के अनुसार, कभी-कभी यह कहा जाता है कि कममिद्वान्त
मानव स्वतन्त्र्य का विरोधी है यद्यपि यदि उसका ठीक-ठीक विश्लेषण किया जाना है
तो वास्तविकता कुछ और ही निकलती है । कममिद्वान्त में मानव-स्वात्म्य का
विरोध नहीं है । कममिद्वान्त इस भावना पर आधारित है कि प्रकृति ही नहीं बरन्
व्यक्ति और आकार भी व्यवस्थित है और यह व्यवस्था उस दिव्य विधान पर
आधारित है जिसका मरणा तथा निरोधन स्वयं कमाध्याय (ईश्वर) है । दिव्य
विधान की अवहेलना असम्भव है । प्रत्येक कम एक अन्त्य यावन्तु पर तुल्यता
है और उसका परिणाम यही, इसी जीवन में, मिलता है । दिव्य विधान से बंध होने
पर भी कममिद्वान्त, मिद्वान्त व्यक्ति के जन्मजात मानसिक तथा जैविक
उत्तरणा पर आधारित है यद्यपि, कममिद्वान्त के अनुसार, प्रत्येक व्यक्ति का, अपने
मानसिक जैविक उत्तरणा के अनुसार बंध करने की शक्ति है । कममिद्वान्त की
आधारभूत प्रेरणा यह है कि कभी भी किसी भी समय, बाद भी व्यक्ति अपने
अन्त्य के लिये प्रयास कर सकता है । काइ भी, पापी हा या धर्मात्मा कभी भी
एक नहीं है² ।

1 प्रभू पी० एच० की पुस्तक हिन्दू लोगल आगनाइजेशन में से उद्धृत
पृष्ठ 43-44

2 एच० राधाकृष्णन दि हिन्दू धर्म काक साइकल पृष्ठ 71-72

कमसिद्धांत में देव का विचार कम की धारणा से बढ़ा है। कम और देव अयो-याश्रित हैं। देव कर्म का प्रतिफल है न कि कम देव का। बिना कम के देव निष्प्रिय तथा निष्फल हो जाता है। देव की सिद्धि कम से हांती है (बिना पुरुषकारण देवमत्र न सिध्यति)। महाभारत में युधिष्ठिर के यह पूछने पर कि देव और कम में कौन प्रधान है, भीष्म ने यह उत्तर दिया कि 'परपकार (जिसका आधार कम है) बीज के समान है और देव क्षेत्र के समान जोर शस्यम (फसल) जोतों के प्रभाव का परिणाम है। जिस प्रकार बिना बीज के क्षेत्र (क्षेत्र) से फल नहीं उत्पन्न होता उसी प्रकार, बिना कम के देव निष्फल रहता है। देव पर निर्भर रहने से कुछ नहीं मिलता, सभी कुछ कम से ही मिलता है¹। कम के प्रभाव से देव बरे ही प्रबल हो उठता है जैसे बिना तेल के दीपक की लौ। देव में अपना कोई प्रभुत्व नहीं है। जम सिध्य गुरु का अनुसरण करता है, वस हा एक दति के कम, देव सनिर्निमित्त है वर, उसके पौरुष का अनुसरण करते हैं। इत जहा कम है, वही देव है। स्वयं देव और कम के सम्मिलित प्रभाव से मिलता है।

देव कमगचय से बनता है और कम सचयपूर्वजम में भी होता है और इस जम में भी। अतः देव इस जम तथा पूर्व जम के कर्मों के अधीन है। गुणनीति-सार में, जसा कि पहले कहा जा चुका है जीवन को देव और कमका प्रतिफल माना गया है और कम में पूर्वजम तथा इस जम के कर्मों को सम्मिलित किया गया है। इस जम के कम भावी प्रारब्ध का बदल सक्त हैं। इसलिये गुणनीतिसार में कहा गया है कि अततागत्वा कम ही अच्छे बुरे प्रारब्ध का कारण बनत है। लेकिन, साथ ही साथ, गुणनीतिसार में यह भी कहा गया है कि इस जम के कम अगज जम की बौद्धिक तथा जय प्रवृत्तिका का निधारित करते हैं। इस प्रकार, गुणनीतिसार का देव तथा कममध्यधी विचार द्विविधापूर्ण तथा अस्पष्ट है। यावत्त्वयं व अनुमार, कम सिद्धि पुरुषकार (मानव प्रयास) तथा देव के बीच व्यवस्थित हांती है। देव पूर्व जम के पौरुष की अनिर्पवित है। कमसिद्धि न केवल देव से हांती है न केवल स्वभाव से न केवल (समय) में और न केवल पुण्यकार से। जस केवल एक पट्टिय स रूप नहीं चलता है कम ही बिना पुण्यकार (प्रयास) के देव की सिद्धि नहा हांती है। चकि देव और कम परस्पर निर्भर हैं जगार सुकृत कर्मों में लगे रहते हैं और कनीक कम न करके देव पर निर्भर करते हैं।

1 प्रभु पी० एच० घटी पृष्ठ 29 30, 37

2 बादर मन कर एक अधारा। देव देव आलसी पुकारा—तुलसीदास

मि सिद्धांत के तीसरे आधार आवागमन के सद्बोध में विचार करने पर देव की धारणा अधिक स्पष्ट हो जाती है। आवागमन की धारणा एक आवागमन और नति विचार पर आधारित है और दूसरी ओर आत्मा की अमरता के विचार पर। जो नति है वही परब्रह्म या परमात्मा का स्वरूप है। आत्मा उभका वह अंग है जो दृष्टधारा के रूप में इस मसार में आता है। शरीर नश्वर है और आत्मा अमर है तथा इन्द्र का अंग होने के कारण आत्मा परदेव ईश्वर में मिलने के लिये उभुव रहता है। आत्मा की अमरता का विचार कम-सिद्धांत का केवल एक आधार है जिसका विकास वैदिक काल में हुआ है। कम-सिद्धांत का मुख्य आधार यह विचार है कि प्रत्येक व्यक्ति की आत्मा का इस जन्म के कर्मों के अनुसार अगले जन्म में मुख्य या द्वितीय भागना पडता है जिसमें छुटकारा पान के उदिक उपाय उपासना और यज्ञ हैं। नियत कालव्यय कम के द्वारा माता प्राप्ति का विचार इसी वैदिक विचार में निकला है जो गीता में आकर निष्काम कम हो गया है। माता का वीतराग का मिलना है और जब तक मनुष्य वीतराग नहीं होता है तब आवागमन में मुक्ति नहीं मिलती है। लेकिन मुक्ति और आवागमन के चक्र के बीच में स्पष्ट अच्छे और बुरे दाना प्रकार के कम करता है। अच्छे कम में मुख्य भाग मिलता है और बुरे कर्मों से सातता यों अच्छे बुरे कर्मों के फल का मृत्यु के बाद, मनुष्य स्वर्ग और तर्क में भागता है और बाद में पुनः पुनः जन्म के द्वारा इन तारों में कम पूर्वकर्मों के अनुसार जीवन गति मिलती है। गति में जाति आयु और भाग शामिल हैं। गीता में भी यह माना गया है कि गुण स्वाभाविक अवस्था में जन्म होता है। कम और आवागमन का चक्र तब तक चलता रहता है जब तक कि आत्मा परमात्मा में न मिल जाय। प्रत्येक जन्म माता की ओर बचने का एक अवसर है क्योंकि प्रत्येक जन्म में पूज्य के कर्मों के प्रभाव का दूर करके कमगचय का गुण किया जा सकता है। गुण कमगचय के लिये नति कम आवश्यक है। कमसिद्धांत, इस प्रकार, अवगति तथा प्रगति दोनों के लिये अवसर प्रदान करता है।

कमसिद्धांत, वस्तुतः नियतकम (विना साधारणतः स्वधर्म का अंग है) की धारणा और इस अनुभूति पर आधारित है कि व्यक्ति का वर्तमान जीवन (उभका परिवार विषय में जन्म उभका वर्तमान सामाजिक प्रतिष्ठा, जाति का उभका मुख्य और द्वितीय) मयाग का परिणाम नहीं करत उभका पूर्वजन्म के कर्मों का परिणाम है जिस स्वधर्म पात्र के द्वारा समुन्नत बनाया जा सकता है। कमसिद्धांत में निश्चित मायता के अनन्तर, वर्तमान जन्म पूर्वजन्म के कारण है और इस जन्म के कर्मों की प्रतिष्ठा पूर्वजन्मों के कर्मों पर होता है जिसमें नये कम धर्मिक में आता है। यह कहना कि यह जन्म पूर्वजन्म के कर्मों का परिणाम है और उभका के अनुसार वर्तमान तथा भविष्य जीवन निवारित होता है यह माना है कि कम-सिद्धांत मयाग की भांति कार्य करने का स्वभावित माय है जो कि वस्तुतः का नहीं

है। इस मायता का यह भी निष्पन्न निकलता है कि मनुष्य जीवन समुद्र में उठती हुई कम की लहरों का वसे ही दाग है जसे बिना पनवार और माशी की नाव। कमसिद्धांत, वस्तुतः दा नियमों पर आधारित है—पहला, कम क्रिया है जिमकी प्रतिक्रिया का होना स्वाभाविक है क्योंकि प्रत्येक क्रिया की प्रतिक्रिया होती है, जो नष्ट नहीं होती। मन, वाक और शरीर में मनुष्य जो कुछ करता है, उसकी प्रतिक्रिया नष्ट न होकर व्यक्ति में ही रहती है। दूसरा, चूंकि कम का प्रतिक्रिया नष्ट नहीं होती है प्रत्येक व्यक्ति का अपने कर्मों की प्रति क्रियाओं का वहन करना पड़ता है। अपने कर्मों से उत्पन्न हुई प्रतिक्रियाओं के लिये व्यक्ति ही उत्तरदायी है जैसे अत्यधिक शराब पीने वाले के जिगर की खराबी का उत्तरदायित्व उसी पर है। व्यक्ति को कम करने की स्वतंत्रता है और इस कारण, उसके अच्छे बुरे कर्मों से उत्पन्न प्रतिक्रियाओं का उत्तरदायित्व भी उसी का है। कम से उत्पन्न प्रतिक्रिया को ईश्वर भी मिटा नहीं सकता है और न वह उसका भार वहन कर सकता है। भूलना क्षमा याचना तथा क्षमा करना मानवी आचार का नियम है न कि प्रकृति का। कम की प्रतिक्रिया का प्रकृति में जमिटा छाप पड़ती है, जिमका परिणाम भागना ही पड़ता है। कम की प्रतिक्रिया का भूलने या क्षमा करने का अर्थ यह निकलता है कि मानो कम हुआ ही है। कम करके फिर ऐसा मानना कि कम हुआ ही नहीं है, न तकमगत है और न वायसगत। इमीलिय, हिन्दुत्व में लिये वाय की जो कल्पना की गई है, उसमें 'क्षमा' और 'पश्चात्ताप' के लिये कोई स्थान नहीं है। प्रायना, ध्यान पूजा, जप तप और पाश्चात्ताप केवल विचारों का सुद्ध कर सकते हैं। कम से उत्पन्न प्रतिक्रिया पर उनका कोई बल नहीं है। कम ही कम की प्रतिक्रिया का हटा सकता है। इसीलिये कमसिद्धांत में व्यक्ति ही अपने प्रारंभ का निर्माता तथा निर्णायक है। कमसिद्धांत ईश्वरीय नियम है।

कमसिद्धांत इस प्रकार, इस मायता पर आधारित है कि व्यक्ति के अच्छे बुरे कर्मों से उत्पन्न प्रतिक्रियाएँ उसके स्वयं तक के भाग का कारण बनकर उनमें पुनर्जन्म का प्रभावित करते हुए हमारे जीवन या निर्दिष्ट करने वाली प्रवृत्तियों का अंग बन जाती है। कमसिद्धांत में वर्तमान की भूल के आधार पर स्पष्ट करने की प्रवृत्ति रही है जिमके कारण कमसिद्धांत भाग्यवादी प्रतीत होता है। हमका अम्बी बार नती क्रिया का मतलब कि कमसिद्धांत में इस जीवन का पूरा जीवन के कम करने का प्रतिकार माना गया है किन्तु कमसिद्धांत यही समाप्त नहीं होता है। कमसिद्धांत के अनुसार पूरा जन्म में भी व्यक्ति को कम की स्वतंत्रता थी और इस जन्म में भी है। यदि पूरा जन्म का कमगन्ध इस जन्म का कारण है तो यह जीवन लिये कमगन्ध का एक मुअवगर भी है जिमका सदुपयोग करने दब के कुप्रमाणा को दूर किया जा सकता है। कम से ही कम करता है। यदि पहला अवसर हाथ से

निकल गया ता वतमान क्या निकले ? इम दष्टिकाण से कमसिद्धात समाज के नियमानुमार, अम्युदय और निश्रदेम प्राप्त करन क लिय व्यक्ति का एक निरन्तर प्रेरक बन जाता है। कमसिद्धात का एक पहलू जितना दववादी है दूसरा पहलू उतना ही आसावादी और प्रगतिवादी। सामाजिक छाण्डों क अनुसार व्यक्ति के व्यवहार का प्ररित करन का कमसिद्धान्त एक माध्यम है क्यकि, एक ओर, कमसिद्धात उत्तरात्तर विनाश की आसा प्रदान करता है और दूसरी ओर, समाज द्वारा नियत क्तव्य की ओर प्ररित करता है।

दव इस प्रकार परिवर्तनीय है। दव काई परासकित नहीं है। दव बाहर से भी नहीं लागा जाता है। दव व्यक्ति क कममचय की उत्पत्ति है। नये कममचय से स्व का बदला जा सकता है। दव एक गत्यात्मक धारणा है। नियतकम दव का से स्व का माध्यम है। नियतकम आग्न है जिमका व्यवहार म लाना वय-सुधारने का माध्यम है। नियतकम अम्युदय और निश्रदेम की धारणायें कमसिद्धात की किन्क तथा सामाजिक आदस है जिसकी पूर्ति कम स ही होती है। 'स्व' कममचय और 'नियत कम' तथा अम्युदय और निश्रदेम की धारणायें कमसिद्धात की गत्यात्मक बना देनी हैं क्यकि नचित कर्मों की प्रतिक्रियाओं क प्रभाव (स्व) का निरन्तर परिभाजन और परिष्कार कमसिद्धान्त का आदस है। यहा कम ही कर्म का मरक्षक और सुधारक है। स्व कम म निहित है न कि कम दव म। कमसिद्धान्त यदि वतमान का सुयुक्तिनकृत बनाता है ता उन सुधारों की प्रेरणा भी है। कमसिद्धान्त से आगावाणी और निरागावाणी दाना के प्रकार के निष्पय निकाले जा सकत हैं और निकाले भी गण हैं। किन्तु दव और कम का लेकर जा विवाद घला है या चलता है वह वसा ही विवाद् है जो मानव-व्यवहार म आनुवगितता और पर्यावरण को लेकर घला है। जिम प्रकार आनुवगितता और पर्यावरण म से किसी एक का प्रायमिकता नहीं दी जा सकती वने ही दव और कम म म किमी एक का प्राथमिकता नहीं धामताओं का प्रतीक है, दव व्यक्ति की सामाजिक, जतिक तथा मानसिक परिस्थितियों म निहित है और दव गति (Condition) है न कि प्रारण्य। कम उन धामताओं और परिस्थितियों के अनुसार, जीवन का अम्युदय और निश्रदेम की आर ल जाने का नियत प्रयास है।

कमसिद्धांत सामाजिक-ऐतिहासिक पथवेक्षण

इतिहास इस तथ्य का प्रमाण है कि कमसिद्धांत भारतीय जन जीवन का प्रेरणा स्रोत रहा है¹। कमसिद्धांत से विभिन्न सामाजिक ऐतिहासिक परिस्थितियां म जीवन का मायक तथा सोद्देश्य निवचन करने में सहायता मिली है और कमसिद्धांत की यही विशेषता उसकी सजीवनी शक्ति रही है। गोमले ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि विपन्न परिस्थितियों में कम के दबवादी निवचन ने और सम्पन्न परिस्थितियों में प्रगतिवादी तथा आगावादी निवचन ने जन जीवन का प्रेरणा दी। कमसिद्धांत के दोहरे निवचन की सम्भावना से ही कमसिद्धांत का बल मिला है। कमसिद्धांत के भिन्न भिन्न निवचन भारत की सामाजिक ऐतिहासिक परिस्थितियों की दन है। ऋग्वेद की 'ऋत धारणा' का प्रभाव में कम नतिक उत्तर

- 1 अगोक के गिलालेखों में सत कम करने, पापकर्मों से दूर रहने और स्वग नक का उल्लेख मिलता है। समुद्रगुप्त के कुछ सिक्कों में यह प्रगति लिखी हुई है कि उसने अपने मुकर्मों से स्वग को जीत लिया है। सातवीं शताब्दी के चीनी यात्री ह्वेनसांग ने यह लिखा है कि भारतीय दूसरे लोक में मिलने वाले कमफल से भय खाते हैं। ग्यारहवीं शताब्दी के इतिहासकार अलबरूनी ने लिखा है कि कम के सम्बन्ध में हिन्दुओं में दो विचार पाये जाते हैं—एक विचार के अनुसार कम का स्रोत ईश्वर में है और दूसरे के अनुसार दब कम का आधार है। कम की जच्छाई बुराई, कम पर निभर न होकर, करने वाले की प्रवृत्ति पर निभर होती है और कमफल या तो इस लोक में मिलता है या परलोक में। अलबरूनी ने उसी कमसिद्धान्त का वर्णन किया है जो उपनिषदों में विवक्षित हो चुका था। सत्रहवीं शताब्दी में फ्रांसीसी इतिहासकार वॉनियर और टर्नियर ने इस बात का उल्लेख किया है कि हिन्दू आत्मा के आयागमन में विन्यास करते हैं और किसी जानवर को मारना और मांस भक्षण अनुचित मानते हैं। लेकिन, इन इतिहासकारों का यह भी मत है कि निरामिषता का कारण भारत में घरागाहों की कमी है और यदि हिन्दू जानवर मारना और उसका मांस पाना आरम्भ कर दें तो बहुत जल्दी ही सारा पशुधन समाप्त हो जायगा। इन इतिहासकारों ने आत्मा तथा आयागमन के विचारों और मनुष्य, पशु तथा पौधे के रूप में पुनर्जन्म का उल्लेख किया है। उन्नीसवीं शताब्दी में एच डुवायने आयागमन के विचार के पाये जाने का उल्लेख किया है। इस प्रकार, कमसिद्धांत प्रत्येक युग में भारतीय जन-जीवन का प्रेरणा स्रोत रहा है—गोमले, पृ० जी० यही

दायित्व के रूप में आया। पुरोहितवाद के प्रभाव के साथ-साथ कम कल्प और मस्कार के रूप में प्रस्तुत किया गया। लेकिन, पुरोहितवाद के विरुद्ध होने वाली प्रतिप्रिया के कारण कम की नैतिक धारणा को बल मिला। कम की नैतिक धारणा में कम के मस्कारी तथा कल्पाचारी पहलू का तब घट मिला जब पुरोहित तथा क्षत्रिय वर्णों का सम्मिलित प्रभुत्व बढ़ा। इसी मद्दम में कमसिद्धांत का प्रयोग सूत्रा तथा वैश्या के निम्न सामाजिक स्तर को सुसुवित्पण बनाने तथा उन्हें सत्तोय दिलाने के लिए किया गया। इस मद्दम में कमसिद्धांत का ईश्वरवादी पहलू पनपा क्योंकि यहाँ कम को दुर्भाग्य का एकमात्र कारण माना गया।

यही संयास और निवृत्ति के भाव कमसिद्धांत से बंध गये। मौर्य-शासनायुग में अश्वमेध और बुद्धवाद के विनाश के साथ-साथ कमसिद्धांत के नैतिक पहलू को प्रभुत्वता मिला जिससे ब्रह्म और क्षत्र वर्णों को एक नयी प्रेरणा मिली। मौर्यकाल के अंत हुए व्यापार का काल है और मौर्यों ने बुद्धवाद का इसलिए अपनाया था कि इसका, एक क्षत्र, उत्पादक वर्णों का प्रोत्साहन मिला था और दूसरी ओर शासनायुग का सामाजिक एकात्मता मिलनी थी। यही कम का यह पहलू सामने आया जिसमें मनुष्य का कम से भी बंधना माना गया है और यह कहा गया कि परस्वाय ही कम से छटन का माध्यम है। कम के इस विचार में यह भाव निहित है कि कम की अच्छाईया और पुरोहितों द्वारा की हुस्तान्तरित की जा सकती हैं। कम का यह विचार व्यवस्थित न होकर सामाजिक है और बौद्ध में विकसित हुआ है जिसका प्रमाण बौद्धों की धार्मिकता की कल्पना का अस्तित्ववाद की धारणा परस्वाय निष्ठा में कम तथा ईश्वर की अनुकम्पा के विचार पर आधारित है। कम का अर्थ है यह विचार गुप्त और निरीह है और, साथ ही साथ पूर्णतः व्यवस्थित है। कम में मुक्ति पान के लिए परस्वाय-कम की धारणा सामाजिकता की भावना से अलग है और वय धर्म का आधार है। साथ ही साथ, यह विचार कि परस्वाय कम करने वाले का ईश्वर की अनुकम्पा मिलनी है भक्ति और प्रार्थना का आधार बना जिस मुस्लिम धर्म की रिश्ते सामाजिक परिस्थितियों में अधिक प्रोत्साहन मिला।

कम के साथ आवागमन और स्वयं तथा नर के विचारों का सम्मिलन तब हुआ जब आर्याजनों में आर्यों का प्रसार तथा और दान आदिव्यापार के माध्यम से विस्तृत हुआ। मौर्य का प्रभाव सभी धर्मों के विकास प्रमाण बौद्ध धर्म में है। बौद्ध आदेशों का विस्तृतता। विचार टिका के साथ बर्तित बौद्ध धर्म का गुप्त और वय की धारणा-कल्पना था। बिना उनके मौर्य का धर्म का जावन हुआ अगम्य था। अतः स्वयं में पूजन के विचार से बुद्धवाद का उत्पन्नता मिली। मौर्य-शासनायुग का पतन का कारण यह हुआ—विदेशियों के आक्रमण और नर की ज्वरी दर जिसमें अगम्य पतन है। बौद्धवाद के बाद धार्मिकवाद का पुनरादय हुआ जिसमें नई धार्मिक व्यवस्था के आदेशों का अभिप्रेरित मिली। पहला गतान्तरिक का न गुप्त-शासनायुग

के अंत तक, वाणव तथा शैव पंथा को जनप्रियता मिली जिसे गुप्त सम्राटो ने प्रोत्साहित किया। इसी युग की समाप्ति तक, कमसम्बन्धी पौराणिक तथा वदाती विचारों के सम्मिलन में, कमसिद्धांत का अंतिम रूप विकसित हुआ। पुराणों में ही नम और देव की धारणाओं का गठबन्धन हुआ जिससे वैयक्तिक-सामाजिक जीवन में, एक ओर, कमसिद्धांत वर्तमान को पूर्व जन्म का परिणाम मानने के लिए सातोष का साधन बना और, दूसरी ओर उस परिणाम से मुक्ति पाने की आशा का साधन। पश्चिम के प्रभाव के कारण कमसिद्धान्त से देववादी विचार को पुनः अलग किया गया जिसका प्रमाण गीता पर लिखे गांधी और तिलक के भाष्य हैं। राधाकृष्णन के निवचन में कम साध्यात्मिक आवश्यकता है। कमसिद्धांत ईश्वरीय नियम है, देव केवल परिस्थिति है। किंतु, कमसिद्धांत का यह निवचन केवल बौद्धिक षण तक ही सीमित है। ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया में, कमसिद्धांत में गत्यात्मक तथा देववादी विचारों का समावयव हुआ है और विभिन्न परिस्थितियों के अनुसार कहीं देववादिता को प्रधानता दी गई है तो कहीं गत्यात्मकता का।

राजधर्म

धर्म, जैसा कि पिछले वचन में स्पष्ट है व्यक्ति तथा समाज का आधार है। धर्म धर्म का आधार है जिसके कारण व्यक्ति और समाज प्रत्येक धर्म में बंधे हुए हैं। आश्रम परिवार कुल, वन और जाति व्यक्ति के सामाजिक जीवन का नियंत्रित करण हैं जोर से सभी धर्म पर आधारित हैं। हिन्दू सामाजिक गण्डन में परिवार, कुल आश्रम-व्यवस्था का, जाति और ग्राम सामाजिक गण्डन के बहुमुखा अंग रहे हैं जो धर्म पर आधारित किया गया है। व्यक्ति का प्रत्येक उन्मूलन ही सामाजिक गण्डन से रहा है। इन गण्डनों में उत्पन्न व्यवस्था समाज का स्तर है। लेकिन, इन व्यवस्था में ऊपर भी एक स्तर है जो राज्य तथा सम्राटत्व का स्तर है। राज्य तथा सम्राटत्व का स्तर राजनितिक-सामाजिक गण्डन का स्तर है। परिवार, कुल का स्तर व्यक्ति तथा राज्य और सम्राटत्व की धीरे में मान है। राज्य और सम्राटत्व के धर्म ही धर्म हैं जो कि परिवार कुल का जाति और ग्राम सामाजिक गण्डन, राज्य और सम्राटत्व—का आधार भी धर्म का माना गया है। राज्य और सम्राटत्व का सामाजिक काय है व्यवस्था बनाए रखना—बहु व्यवस्था शिथिल

आधार धर्म है। धर्म की रक्षा, धर्मानुसार सामाजिक व्यवस्था को ढालना और बनाए रखना, सम्राट तथा राज्य का नियत कर्तव्य है। धर्म की अवहलना राज्य को ही नहीं, सम्राट का भी छिन भिन्न कर सकती है, क्योंकि धर्म उसी की रक्षा करता है जो धर्म की रक्षा करता है। धर्म व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन का ही नहीं बरत सार ऋणाण्ड का आधार है। अतः, धर्म, राज्य और सम्राट का भी आधार है जिमकी रक्षा करना राज्य तथा सम्राट के लिए बस ही आवश्यक है जैम कि व्यक्ति के लिए। धर्मपालन तथा धर्मरक्षा ही राज्य का एकमेव कर्तव्य बस है—बवल् कर्तव्य बस ही नहीं, धर्म है। राज्य तथा सम्राट की सत्ता का आधार निरीह गनित नहा धर्म है और धर्मनुसार राज्य-बस ही राजधर्म है।

धर्म की धारणा से हिन्दू का सम्पूर्ण जीवन आवृत है। सम्भवतः, इसी कारण हिन्दू राजनितिक विचार भी धर्म की धारणा व आधार पर विकसित हुआ है। विधि (Law) और शक्ति (Force) राज्य के दो मुख्य का आधार धर्म हैं जिनका निष्पन्न धर्म के आधार पर किया गया है। धर्म का सम्बन्ध समाज और इहलौकिक जीवन से होने के साथ साथ रहस्यात्मक दिव्यशक्ति से भी है। जो कुछ धर्ममय है या धर्म पर आधारित है, वह दिय है वह रहस्यात्मक दिव्यशक्ति से प्रेरित है। राज्य सम्राट, विधि और दण्ड भी, इस कारण, दिव्यशक्ति से प्रेरित हैं। सम्राटत्व सम्राट में दिव्य की अभिपक्ति तथा विभूति है। दण्ड और विधि का आधार भी वही रहस्यात्मक दिव्यशक्ति धर्म है। हिन्दू विचारधारा में राज्य केवल राज्य नहीं बरत धर्म राज्य है और राजा कर्तव्य राजा नहीं बरत राजपि है। राजा जनक का उपाहरण इसका प्रमाण है। राजा जनक का विदेह कहा गया है क्योंकि राजा होते हुए भी वह सच्चा और योगी य। शतपथ ब्राह्मण में सम्राट को प्रजापति का प्रतिनिधि कहा गया है।

राजधर्म की धारणा का विकास ब्रह्मकाल से मिलता है। ऋग्वेद में विधि और नियम के लिए ब्रह्म का प्रयोग आया है। इस दृष्टिकोण से घटिका काल यत् कहा जा सकता है कि विधि ब्रह्म है और ब्रह्म व्यक्ति का नहीं बरत राज्य का है। धर्म की रक्षा करना सम्राट का मुख्य कर्तव्य है यह विचार ब्रह्मकाल में ही अस्तित्व में आ चुका था। गत पय ब्राह्मण में धर्म की रक्षा करना राजा का धर्म माना गया है। कीर्तित्व में अध दाम्ब में कहा है कि ब्राह्मण सम्राट अपना प्रजा के सुख का अपना सुख गमकता है और प्रजा का सुख धर्मपालन में ही प्राप्त किया जा सकता है। आत्म राज्य बना है जो धर्म की बहुमूर्ती गरिमा की रक्षा करे। राज्य का कर्तव्य धर्म के साथ साथ अध और काम के धर्मों को राज्य रक्षा है। क्योंकि, जसाकि विच्छेद बर्तन से स्पष्ट है, धर्म अध और काम सामाजिक व्यवस्था का आधार है। बौद्ध धर्म में, इसलिए, धर्म का दण्ड से श्रेष्ठ माना गया है। सामाजिक व्यवस्था निरीह दण्ड के प्रयोग से नहीं

वरन् धर्मपालन से बनती है। इसीलिए, बौद्धिक के अन्तर्गत और धर्मशास्त्रों में राजधर्म के अन्तर्गत, एक आर, जनरग के धर्म का रखा गया है और, दूसरी आर, वर्णाश्रम-व्यवस्था की आधारभूत समस्याओं में व्यवस्था अन्तर्गमन का। वर्ण-व्यवस्था की रक्षा राजधर्म में मुख्य धर्म माना गया है। राजधर्म में वर्णव्यवस्था की रक्षा का विचार इतना व्यापक रहा है कि इस्लामी राजनैतिक विचार में भी इसका समावेश हुआ। आई न अबबरी में अदुल्फज्ज न भी वर्ण व्यवस्था की रक्षा का मुख्य धर्म माना है। बौद्धिक न राजधर्म को धर्म माना है और समाज का धर्मिक¹।

राजकाज का आधार धर्म है और धर्म के ही आधार पर राज्य का संगठन हुआ चाहिए। इनके भारतीय इतिहास में अनेक प्रमाण मिलते हैं। राज-धर्म राज्य काज में धर्म का धारण करने के कारण ही सुविष्टि को धर्मराज के ऐतिहासिक बहा गया है। मछाट अंगार पहला ऐतिहासिक साक्ष्य है जिसमें प्रमाण राज्यधर्म को धर्म का आधार प्रदान करने का सफल प्रमाण दिया।

यह राजनीति का धर्म में डालने का ही परिणाम था कि अंगार न सैनिक विजय के स्थान पर धर्म विजय की धारणा रखी। उमन अपने राज्य में सम्मों और चट्टानों पर नतिकता के निषेध सुदवाए ताकि जनजावन का संगठन नैतिकता का आधार पर हो सके। धर्म महामात्रा की नियुक्ति करके अंगार न जनता में धर्म प्रसार की प्रारम्भिक दत्त का प्रयास किया। मुक्त, दया उदारता, सत्यता, पवित्रता, बढा तथा धार्मिक पुरुषा का प्रति सम्मान, अपने पर निरतर तथा धर्मजात व्यक्तियों का प्रति सहृदयता का व्यवहार आत्मपरीक्षा करणा सहनशीलता और अहिंसा तथा सबके लिए समान धर्म अंगार न धर्म का अन्तर्गत रखा है। समुद्रगुप्त न, एक और अमुर विजय को अपनाया और, दूसरा धार, धर्म विजय का। इस्लामवाद के किले का धर्म में सुद हल लता में समुद्रगुप्त का धर्मराज बहा गया है क्योंकि उमन काहण तथा दीन का धर्म देन की दक्षिणी, वं सिता तथा बला का मरसक का और धार्मिक धर्म तथा धर्मधर्मों का प्रति उमरी निष्ठा था—अंगार में यह धर्म के उच्च धर्मों से प्रेरित था। इसी प्रकार, मछाट लय न भी धर्म का राजकाज का माध्यम बनाया। जमा कि हुवनम्बा न निष्ठा न लय न दुर्जा का दक्षिण दिया, सम्मनों का प्रतिनिधि दिया, अराधनीय का अध्यापक दिया और विद्वानों का बहारा दिया²।

अबबर न भी राजकाज में इही निष्ठा का धारण करने का प्रयास किया। यह धर्म की ही परम्परा के प्रभाव का परिणाम था कि अबबर न भी धर्मराज प्रति समानता का भाव रखा। यह धर्म ही बहा जा चुका है कि धर्म न अबबर न में अदुल्फज्ज

1 गोपते धी० जी० धरी पृष्ठ 43

2 धरी पृष्ठ 10

फजल ने चार वर्षों की रक्षा को राज्य का एक मुख्य कर्तव्य माना है, जो राजधर्म की परम्परा के प्रभाव का प्रतीक है। आगे चलकर, सनहवीं शताब्दी में, शिवाजी ने महाराष्ट्रधर्म के आगम को सामने रखकर अपने राज्य को संगठित किया। युग-युग से खली आनी हुई राजधर्म की धारणा का ही यह प्रभाव है कि महात्मा गांधी ने शान्तिकारी आन्दोलन की भूमना की और राष्ट्रवादी राजनीति तथा स्वातंत्र्य संग्राम को धर्म का जामा पहनाकर, नैतिकता का आधार प्रदान किया। महात्मा गांधी का यह कहना कि साधन उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कि साध्य, राजधर्म की धारणा में निहित प्रेरणा का परिणाम है। राधाकृष्णन के अनुसार, जहाँ धर्म का आधार धर्म है वहाँ लौकिक (Secular) तथा अलौकिक का अंतर समाप्त हो जाता है। राज्यकाय में भी लौकिक तथा अलौकिक का भेद साधक नहीं है क्योंकि राज्य का आधार नैतिकता हानी चाहिए। राज्य नैतिकता से परे नहीं है। राज्य का अस्तित्व व्यक्ति के कल्याण के लिए है। अतः राज्य को व्यक्ति से त्याग मागने का कोई अधिकार नहीं है। हा, राज्य को उन परिस्थितियों को लाने का अधिकार अवश्य है जिनसे उसको अपना उद्देश्य पूरा करने में सहायता मिले। राधाकृष्णन ने इसी तथ्य पर जोर दिया है कि सामाजिक, जायिक तथा राजनैतिक क्रियाओं का आधार नैतिकता होनी चाहिए।

दूसरे प्रकार, भारत की विशेषतया हिन्दू राजनैतिक विचारधारा में, धर्म की रक्षा के लिए राज्य का नितांत आवश्यक माना गया है और राजकाज के लिए सम्राट का आवश्यक माना गया है। लेकिन राज्य और धर्म का रक्षक सम्राट निरक्षुण नहीं है क्योंकि राज्य और सम्राट के अस्तित्व का आधार धर्म है और धर्म पालन तथा धर्म की रक्षा उनका कर्तव्य है। धर्म का अधिकारी सम्राट नहीं पुराहित है। धर्म निरूपण सम्राट का कर्तव्य नहीं है और पुराहित तथा आचार्यों का कर्तव्य है। इसी कारण राज्य और सम्राट का अस्तित्व एक आधार है और धर्म का निरूपण करने वाले आचार्यों का अस्तित्व एक आधार। श्रुति और स्मृति धर्म के आधार हैं जिनका निरूपण उन आचार्यों के द्वारा हुआ है जो राज्यसत्ता के अधिकारी नहीं रहे हैं। भारत में जब जमा गणतन्त्र विकसित नहीं हुआ तब के कारण यहाँ धर्माधिकारियाँ तथा राज्यसत्ता के अधिकारियाँ का यह गणप अणुस्थित रहा है जो योरोप के इमार्स चर्च के अधिकारियों में रहा है। इस्लाम की भाँति यहाँ उन अंतिम क्रिधियों (Final Laws) का भी निरूपण नहीं हुआ क्योंकि यहाँ धर्म को देव काल की मर्यादाओं में अणुसार निरूपित करने का विचार रखा है। इस कारण यहाँ यह गणप भी नहीं मिलता है जो मुस्लिम काउंटेन्स और उमात्रा में देवों का मिलना है और जिनका बचन भारतीय संस्कृति में इस्लाम के विरूपण के मन्वन्ध में किया जाएगा। यहाँ

कारणा का परिणाम है कि भारत व राजतंत्र में विद्योक्तेसी (Theocracy) का विचार का प्रभाव रहा है। जसाकि प्रागतिहासिक मिश्र में पाया गया है भारत में सम्राट और पुरोहित एक में नही भिन्न हैं। यहाँ सम्राट और पुरोहित अलग अलग रहें हैं जिसके कारण राजतंत्र निरमुक्ता व दुष्परिणामों से बचा रहा है। धर्म का राज्य का आधार बनाने का कारण जहाँ सम्राट और राजतंत्र निरमुक्ता में बच रहा है वहाँ राज्यपाल और उच्च प्रदाय में नतिकता का धर्म और सम्राट भी समावण हुआ है। राज्य तथा सम्राट का अस्तित्व का आधार धर्म है इस विचार का कारण धर्मशास्त्र धुनिया स्मृतिया तथा नीतिशास्त्र में राज्य तथा सम्राट के अधिकारों तथा बतना का निरूपित करने का बराबर प्रयास मिलता है। उदाहरणार्थ विष्णुधर्मशास्त्र में दत्त बना गया है कि सम्राट का मुख्य कर्तव्य पुरोहिता का दण्ड देना तथा साधु और धर्मात्मा का सम्मान प्रदान करना है क्योकि क्यालिप उपाय दण्ड देने की सजा मिली है।

कोटिल्य ने दण्ड का प्रणाम का आधार माना है। उपाय दण्ड देने की सजा मिली है। आधार है और जन नियंत्रण के लिए दण्ड से बचकर और बाद माध्यम नहीं है। लकिन माय ही माय कोटिल्य ने यह भावना है कि निरीह दण्ड जनविश्राम का प्रेरणा देता है और हत्या दण्ड दण्ड देने वाले के प्रति, विद्रोह का जन्म देता है। आन्तरिक बुरा होता है ना उपाय उचित ही वमा दण्ड देना है। उचित दण्ड सत्य तथा योग्य वस्तुओं प्राप्त होती है। जहाँ अज्ञान का कारण दण्ड का प्रयोग लाभ जो प्रोप पर आधारित होता है वहाँ मुष्था में ही ना बरन तापुओर तथा प्रतिप्रिया और राज्य का प्राणान मिलता है। कोटिल्य का मत है कि दण्ड एक शासकीय दण्ड है जिसका वाछना है कि दण्ड सत्य होना है जहाँ ज्ञानाग नित्यता पर आधारित है।

1. विद्योक्तेसी का सिद्ध राज्य का नियम, नियमों से ही जिसमें ईश्वर को राजतंत्र की सर्वोच्च सत्ता माना जाता है और राज्य के विचारों को मुख्य धारण माना जाता है। राज्य के नियम मानवजन व हानर ईश्वरजन से जाते हैं क्योकि सर्वोच्च शासक सम्राट व होकर ईश्वर होता है। राज्य का तंत्र म धर्मशास्त्र का समभावता, उपाय दण्ड नगरक व पदाधिकारों तन्मय होता है। पारिभाषिक का संविधान इसका उदाहरण है। प्रतीक राज्य का म भारत व राजतंत्र का आधार ईश्वर का ही नियमता है जो, जिसके कारण भारतवर्ष मुक्तमाता का एक उपाय भारत की जगत स्थापन व शासक शासक द्वारा माना था।
2. गीतल द... का पहला पृष्ठ 19
3. दहा पृष्ठ 19

बौद्ध ग्रन्थों में इस तथ्य पर जोर दिया गया है कि धर्म शासकों का भी शासक है और दण्ड का आधार निरीह गति नहीं बरन धर्म है। बौद्धग्रन्थों में धर्म का वह परम्परा माना गया है जो धर्म निष्पक्षता और परापूर्वकारिता पर आधारित है। राजधर्म का आधार जय धर्म, बल, माना और परिपक्व हैं जिसका तात्पर्य यह है कि राजधर्म का उद्देश्य है जय की साधना धर्मपालन समयानुसार उचित मात्रा में दण्ड का प्रयोग और राजधर्म का गणू करने के लिए परिपक्व की आवश्यक मनना का पाठन। धर्म का बोद्धा न सत्य का प्रतीक माना है। राजधर्म की धारणा में इस प्रकार, धर्म और दण्ड के मिश्रण में एक में मिल गए हैं जिसके कारण राजधर्म में, विशेषतया दण्ड के उपयोग में, नतिनता का समावेश हुआ है। इस कारण राजधर्म में दण्ड केवल निरीह राजनतिक गति और राज्य एक निरुद्देश्य प्रशासक संगठन होने से बचे हैं और सम्राट की निरुत्थानता पर राय लगी रही है। यही कारण है कि हिंदू राजनतिक विचारशास्त्र में धर्म का बड़ा राज्य तथा सम्राट के प्रति विद्रोह करने का अधिकार मिला हुआ है जहाँ राज्य तथा सम्राट धर्म के पथ से डिग चुके हैं। इसी कारण, महाभारत का युद्ध धर्मयुद्ध है और कुरुक्षेत्र धर्मक्षेत्र है। गुप्त रामदाम न गिवाजी को अधर्म के प्रति लक्षण की राह दे दी थी न कि औरगजेव के प्रति। देवामुर सम्राट का कल्पना का मन्वन्ध भी अधर्म के प्रति धर्म सम्राट और धर्म की अततागत्वा विजय से है। कोई आश्चर्य नहीं यदि वर्तमान भारत में भारत चीनी युद्ध का देवामुर तथा अधर्म के प्रति धर्म का सम्राट बड़ा गया है।

राजतन्त्र का धर्मशास्त्र मानने के विचार से हिंदू राजनतिक संगठन में उन अनेक समाजशास्त्रीय तथ्यों का प्रस्फुटन हुआ है जो भारतीय संस्कृति के रामधर्म और प्रयाग धर्म के अभिन्न अंग बन गये हैं। राजतन्त्र में धर्म के धर्म तथा सामाजिक धर्म के सम बंध का प्रयोग किया गया है। राजतन्त्र में धर्म के सामाजिक पक्ष का निवचन परिकार कुशल गति धर्मशास्त्र-धर्मशास्त्र, क्षेत्रीय प्रथाओं युग समयानुसार और मानवता के उन नियमों के रूप में किया गया है जिनका निरूपण धर्मशास्त्र और स्मृतिशास्त्र में हुआ है। धर्मशास्त्रों और स्मृतिशास्त्रों प्रथाओं पर आधारित रची है। अतः, राजतन्त्र में धर्म का आधार प्रथा रीति है। यही कारण है कि धर्मशास्त्रों में विराधी प्रथाओं का उल्लंघन मित्ता है और धर्मशास्त्रों का उल्लंघन मित्ता है कि राज्य प्रशासन में प्रथा विधि सभी गतिशास्त्री है। राष्ट्रीय समाज की गामाहित गामाहित विजायिता का ही इसका कारण माना जा सकता है। भारत प्राग्भूत ही गामाहित और गणजानिता का रूप रहा है और प्रत्येक जाति तथा गणजानिता के अंतर्गत सामाजिक-सांस्कृतिक नियम रहे हैं। इसका अतिरिक्त क्षेत्रीय संस्कृतियों का भी है। धर्मशास्त्र इन विजायिताओं में गामाहितता मानने का प्रयाग है और यही प्रयाग हिंदू गामाहित संगठन का आधार रहा है। लकिन यह गामाहितता का ता किसी मन्वन्ध द्वारा धारणी गई है और न किसी राज्य द्वारा। एसी रीति में

सामाजिक जीवन के आधारभूत नियम के रूप में प्रथा को ही प्रमाण मानने की परम्परा रही है। यह कारण भारत में उम राजनैतिक विचारधारा का अभ्युदय हुआ है जिसमें यह माना गया है कि प्रजा की प्रथाओं व अनुसार प्रणाली बनना ही सम्राट का धर्म है। जातियाँ और गणजातियाँ व नियमों का लागू करना राज्य का धर्म और विभिन्न जातियाँ तथा गणजातियाँ व नियमों का लागू करना राज्य का धर्म माना गया है। मुस्लिम तथा अग्रज शासकों ने भी इस नियम की अवहता नहीं की। अग्रजों राज्यकाय में जब स्वीय विधि (Personal Law) का महिमावद्ध करने का प्रयत्न उठा तब यही नियम माय ठहराया गया कि जहाँ धर्मश्रया में मतभेद का प्रयत्न ही निश्चित अधिक प्रमाण है। भारत में सर्वव्यापिनी मत्ता का श्रीगणेश अग्रजों राज्यकाल में हुआ है। प्रथा की सर्वोपरिता का ही यह परिणाम है कि भारतीय सामाजिक विधान प्रणाली एक ओर जटिल है और दूसरी ओर अधिकतर सामाजिक विधान प्रणाली में प्रथा का सामान्यविधि का प्रभाव माना गया है। प्रथाओं के विचार अपवाद का भी उतना ही अधिक प्रमाण माना गया है जितना कि किन्हीं निरूपित विधि को। हिन्दू विवाह अधिनियम (1954) इसका प्रमाण है। इस अधिनियम में अनुसार बहुपतीत्व जमाय है लेकिन जोनमारवावर में बहुपतीत्व माय है योकि वहाँ की प्रथा व अनुसार बहुपतीत्व वहाँ के सामाजिक जीवन का आधार है। इन अधिनियम व अनुसार समग्र विवाह वही वधव्य है जहाँ प्रान्ति प्रथा में इसका विराय न हा।

यह एक महिहासिक तथ्य है कि विजयनगर व हिन्दू राजाओं ने अपने लिए 'जातिगर' (Mantener of caste) की उपाधि ग्रहण की थी। सम्राट के जातिरक्षण होने का तापय है जातिगत प्रथाओं की रखा करना तथा उनको लागू करना। एसी दशा में जाति तथा गणजाति पचायता का महत्त्व स्वतः बढ जाता है। जाति तथा गणजाति पचायत और सामयचायत राज्य तथा व्यक्ति के बीच में, अतर्वाँ सामाजिक भेद (Buffer Social Zone) के स्थान रही हैं। विभिन्न जातियों तथा गणजातियों व बीच में व्यवस्था बनाये रखना और आश्रम तथा वर्गों व नियमों को व्यवस्थित रखना राज्य का मुख्य कर्तव्य रहा है। एसा तात्पर्य यह निकलता है कि विभिन्न जातियों गणजातियों तथा वर्गों व स्वयं की रक्षा करना और उन व्यवस्थित रखना राज्य का मुख्य कर्तव्य रहा है। प्रथा का प्रमाण मानने हुए राज्य का धारणा व अनुसार राज्य का मुख्य कर्तव्य है जीवन कर्तव्य प्राणियों— धर्म धर्म और काम (जिनमें परिवार जाति धारणा और वर्ग की व्यवस्था आ जाती है) को व्यवस्थित रखना। हिन्दू सामाजिक समूहों का धारणा में राज्य का स्थान असाधकता और व्यवस्था व धारणा में आता है क्योंकि राज्य का मुख्य कर्तव्य असा

जबता को रोकना और वणाश्रमी व्यवस्था और व्यक्तिव, साम्प्रतिक तथा सस्यायी सुरक्षा का बनाये रखना है। माण्य का सम्बन्ध व्यक्ति से है। अतः, मोक्ष राजधर्म क क्षेत्र से बाहर है।

हिंदू राजनतिक व्यवस्था की धारणा में राज्य तथा सम्राट के दो पहलू हैं— एक पहलू है धर्म अथवा काम की व्यवस्था के संरक्षक का, स्वधर्म के परिपोषक का और परापरकारी कृपानु का जोर दूसरा, जो केवल व्यवस्था का माध्यम है और अराजकता का अवरोधक है, जितना कर्तव्य उन प्रयासों का लागू करना है जिनका व्यक्ति परिवार जाति वंश, आश्रम ग्रामीण सामाजिक समूह और धनोपाजन में पालन करता है। व्यक्ति का राज्य से वही तक सम्बन्ध है जहाँ तक धर्म और काम की व्यवस्थित साधना का सम्बन्ध है। व्यक्तिव जीवन के उच्चतम उद्देश्य मोक्ष से राज्य का कोई सम्बन्ध नहीं है। साथ ही साथ व्यक्ति का राज्य से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है क्योंकि राज्य का मुख्य कर्तव्य है—कुलधर्म जातिधर्म वंशधर्म तथा सक्षेप में स्वधर्म का व्यवस्थित करना। व्यक्ति का प्रत्यक्ष सम्बन्ध परिवार, जाति तथा ग्राम से है क्योंकि वही उससे सामाजिक जीवन तथा अस्तित्व की परिसीमाएँ हैं। ऐसा दगा में, राज्य व्यवस्था में दो प्रयोनिया का प्रस्फुटन होता है—एक राज्य समाज का केन्द्र है और जनकल्याण का मुख्य माध्यम है। उसका अस्तित्व परापरकाराण है अतः, उसके अधिकार असमीमित हैं और दूसरे उसका अधिकार वही तक सीमित है जहाँ परिवार, जाति वंश आश्रम व्यवस्था और ग्रामसमूह के अधिकारों का अंत होता है। इसलिए राजतंत्र में दो परम्पराएँ मिलती हैं। एक भारत राज्य का सम्बन्ध सम्पूर्ण मानव जीवन से है—सभी कुछ उसका कर्तव्य तथा अधिकार क्षेत्र में आता है। राजधर्म में परापरकारिता के विचारों का राज्य का वसभी अधिकार तथा कर्तव्य दिष्ट है जो जनकल्याण के लिए आवश्यक है लेकिन, दूसरी ओर सामाजिक व्यवस्था (परिवार जाति और ग्राम) के कारण उससे अधिकार सीमित है। अतः परापरकार और अपरिग्रह राज्यधर्म के दो मुख्य आधार ही जाते हैं लेकिन उनका विस्तार वही तक है जहाँ से परिवार जाति ग्राम, वंश तथा आश्रम की सीमाएँ प्रारम्भ होती हैं। इसका एक परिणाम यह है कि भारत में जनहिताय व्यवस्था बनाये रखना के लिए राज्य ने एक मन्त्र के रूप में व्यक्ति तथा सामाजिक जीवन के सभी अंगों का व्यवस्थित किया है और दूसरा इन व्यापक कार्यों के वास्तविक नीति राज्य कभी भी निरन्तर अधिभारित रूप में ले गया। यद्यपि यह प्रश्न उठाया जाता है कि जहाँ राज्य सरकार है और इसलिए उन असमीमित अधिकारों में जाने है क्या वही व्यक्ति स्वतंत्रता का सन्तान है? अस्तित्व के मत में प्राचीन भारत में राज्य समाज का केन्द्र और जनकल्याण का मुख्य माध्यम समाज जाता था किन्तु कारण राज्य काय क्षेत्र का ही विस्तृत था। लेकिन इस व्यक्ति-स्वातंत्र्य पर प्रभाव अभी पर्याप्त मात्रा में राज्य के बहुमुखी धर्म मुख्यतः राज्य का नीति-निर्णायक द्वारा है।

धर्म के आधार पर प्रथा को राजस्व और सामाजिक व्यवस्था का आधार मानने का एक और परिणाम निकला । राजस्व के निष्पन्न मजहान नर दण्ड और याय के लागू कर का प्रश्न है, हिंदू विचारका न समता सिद्धांत (The Principle of Equity) को स्वीकार किया है । तमकि पहन कहा जा चुरा है कौटिल्य न इन बात पर जोर दिया है कि दण्ड अपराध के अनुकूल होना चाहिए । दण्ड का अपराध के अनकूल बनाने के सिद्धांत म समता सिद्धांत निहित है । किन इन सिद्धांत का व्यावहारिक प र प्रथा पर आधारित था । इसलिए व्यवहार म समता सिद्धांत अपनहाय ही रहा । प्रथा क आधार पर वण व्यवस्था का जा रूप विकसित हुआ वह वण व्यवस्था के मद्दातिव रूप म भिन्न रहा है । जमा कि वण क निरक्षण के सम्बन्ध म स्पष्ट किया गया है सिद्धांतत सभी वर्णों का समान माना गया है यद्यपि व्यवहार म विभिन्न वण जलमान रहे हैं । वणव्यवस्था का अप है एन उच्चोच्च परम्परा प्रणाली म वये विभिन्न समूह जिनका सामाजिक स्तर मूलत अपमान है । राजस्व का उद्देश्य माना गया है विभिन्न वर्णों और उनकी प्रदायी व्यवस्था का बनाने रखना, जिसका प्रावहार्गिक निष्पन्न निकलता है वण परबना की उच्चोच्च परम्परा म निहित प्रदायी सममानताका का व्यवस्थित ही नगी करना वरु उद्देश्यका भी रखना । इसकारण हिंदू दण्ड विधान म विभिन्न वर्णों क समान अपराध के लिए एक ही दण्ड का विधान किया है । जिस प्रकार, एतसी चायिक व्यवस्था म मुसलमान क प्रति वाकिर की माफी (मार्गी) मान 7 उगी प्रकार प्रदायी हिंदू-व्याय-व्यवस्था म प्राप्ति न विच्छेद गूढ ता माफी अमा म 2 । इस परम्परा का यह भा परिणाम है कि परम्परागत हिंदू राजस्वतित व्यवस्था म प्राप्ति एन प्रकार का मय प्रति नागरिक रहा है और प्राप्ति का नेन अधिार म बतित रखा गया है । सामाजिक म यह मया आइ है कि व्यवस्था सामाजिक उग म का मय कर किया जा जा लपरी जाया व्यनात कर रहा था यमकि परम्परानुसार ता उच्चवर्गिका विगत शायता, का अधिार न कि गया था । यह म मया की उा तमाम नियोग्यताका का जय हुआ है किहू प्राप्ति सामाजिक विधान और समानताका काय से दूर मया का प्रम न किया जा गया है ।

1. अतः ए० एम० एच० एच० गवर्नमेण्ट हा एजिडेंट इण्डिया एच० एच० राजस्व म यह परम्परा का नी की हुई है । भारत क सामाजिक का चिक सामाजिक म मय का जनवस्था का मूल माध्यम माना गया है किन साम ही-माय यह नी स्वीकार किया गया है कि साम की निरक्षण यथिनायकता न नहीं बनाया है जाट इनक लिए साम सामान्य और साम प्रदायी क विधान का कायम अनाया गया है ।

समता का सिद्धांत नया नहीं पुराना है, जो हिन्दुत्व में ही नहीं बरन अन्य सामाजिक-धार्मिक प्रणालियों में भी पाया गया है। लेकिन, उन व्यावहारिक जमाने प्रदान का आदान नया है, जिसकी उत्पत्ति यारोप के मुबार आदालत के युग में हुई है। इस आन्दोलन के प्रभाव के परिणामस्वरूप वर्तमान भारत में समता सिद्धांत को स्वीकार करने उस अधिक-व्यावहारिक आजार प्रदान किया गया है।

राजधर्म की धारणा में इस प्रकार राजसत्ता का आधार प्रथा है। प्रथा से ही राजसत्ता की सीमाएँ और परिमिताय निर्धारित होती हैं। मन्त्रभारत राज्योत्पत्ति स्मृतियों और नीतिशास्त्रों में प्रथा का ही प्रमाण मानकर राजसत्ता की सीमाओं का निर्धारित किया गया है। लेकिन, हिन्दू विचारधारा में राज्य केवल प्रथा पर ही आधारित नहीं है।

राजसत्ता का एक अन्य आधार भी है और वह है राज्योत्पत्ति का दैवी सिद्धांत (The Divine Theory of the Origin of State)। यहाँ राज्य एक दैवी सृजन है एक दिव्य प्रमय से और राज्य का अधिष्ठाता सम्राट एक पुत्र है—वह पुत्र जिसमें दैवी गुणों का समावेश होता है। हिन्दू विचारधारा में राज्यात्पत्ति के तीन सिद्धांत मिलते हैं—एक मनुष्य सिद्धांत दूसरा सवित्य सिद्धांत और तीसरा दैवी सिद्धांत। मनुष्य आवश्यकताओं के कारण राज्य की उत्पत्ति के सिद्धांत का प्रमाण वैदिक साहित्य में मिलते हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मण में यह कहा जाई है कि अमुरा से बार बार हारने पर देवों ने इंद्र का अनाथ मनुष्य चुना क्योंकि अमुरों में मनुष्य नरत्व था और देवों में मनुष्य नरत्व नहीं था। युद्ध का सविनय नेता धार्मिक काल में सम्राट बना गया। वैदिक साहित्य में राज्याभिषेक का जो वर्णन मिलता है उसमें सम्राट द्वारा रथों की दौड़ के खेल में भाग लेने का उल्लेख मिलता है, जो इस बात का प्रमाण है कि उस काल में सम्राट में मनुष्य गुणों का अधिक अंश ही पाया जाता था। इन कारणों पर यह कहा जा सकता है कि मनुष्यत्व की आवश्यकताओं के कारण ही आयुष्य का प्रारम्भिक काल में सम्राट का पद का आविर्भाव हुआ होगा। यह निश्चित है कि वैदिक काल में सम्राट मुख्यतः मनुष्य नरता और मनुष्य ही है। उसका मुख्य कार्य मनुष्य नरत्व है। यह पक्ष ही कहा जा सकता है कि धार्मिकवादी सम्राट पुराहित नहीं था। सम्राटत्व धर्म का काम और अधिकार था और पौराणिक कार्य ब्राह्मण का अधिकार तथा काम। सम्राट अपने राज्य तथा प्रजा के लिए यथा आवश्यक था लेकिन यथा मनुष्योक्ति ब्राह्मण हुआ करता था कि मनुष्य। भारत में इतिहास में ब्राह्मण मनुष्य के प्रमाण मिलते हैं लेकिन प्रमाण अपवाद का सिद्ध करत हैं न कि सामान्य नियम का। मनुष्य नरता होने के कारण सम्राट पुराहित तथा था का र था था। मनुष्य तथा राज्य प्रजा के मनुष्य हैं यह विचार उत्पन्न था मनुष्यत्व में आ गया था क्योंकि उस काल की मनुष्य आवश्यकताओं के कारण सम्राट का पद स्थायी हो गया था। मनुष्य मनुष्य है, यह विचार पुराहित धर्म की दृष्टि से गहरी

है। इसी विचार के आधार पर आंग बल्लर गामक को दबी घुस माना गया। सामक में दशक की स्थापना पुरातन वग द्वारा हुई है ऐसा इतिहासकारों का मत है।

संविदा सिद्धांत (Contract Theory) का निष्पन्न बौद्ध न किया है। महाभारत में राज्यात्मनि के दबी सिद्धांत का निष्पन्न हा चुका था किन्तु बौद्धों ने इस सिद्धान्त का अनुसरण नहीं किया क्योंकि बौद्ध विचारधारा दिव्यवादी नहीं है। बौद्ध विचारधारा में राज्य की उत्पत्ति उस समयोने (संविदा Contract) से हुई है जो राजा और प्रजा के बीच में था है। इस समयोने के अनुसार राजा ने जब प्रजा की रक्षा की प्रतिज्ञा की तो प्रजा ने राजा का राजस्व देना स्वीकार किया। राजस्व, बौद्ध विचारधारा में राजा और प्रजा के सम्बन्धी सेवाओं के रूप में राजा का दिया हुआ प्रजा का वागदान है। इस सिद्धान्त में यह भी निहित है कि जब कोई भी पक्ष समयोने को तोड़ता है तो उसको दण्ड दिया जाता है। इसी आधार पर बौद्धों ने प्रजा की रक्षा और प्रजा के राजा का कर्तव्य माना और राजस्व द्वारा राजा के साथ सहयोग करने पर प्रजा का कर्तव्य। इस सिद्धान्त के अतिरिक्त यह भी स्पष्ट होता है कि राजा का पक्ष न तो एकल निरपेक्ष है और न निरंकुश। स्वीकारण, राजस्व में, जसा कि पहले लिखा जा चुका है बौद्धों ने परिष्कृत जिनका साक्ष्य प्रजा की संपत्ति परियोजना में दिया जा सकता है। का मन्त्रपूज्य स्थान दिया है। बौद्धों की विचारधारा में राजा और राज्य की उत्पत्ति ही तब तब जब मनुष्य का स्वर्गिय युग में अक्षय पतित हो गया जहां न राजा की आवश्यकता थी न राज्य की और न प्रजा की रक्षा की। राज्यात्मनि का यह सिद्धान्त एक मुक्तिपथ बनना मात्र है, जिनके बल बौद्ध धर्म में ही मायता मिली और बुद्धवाद के साथ-साथ समाज भी बनाया गया है।

सिद्ध विचारधारा में राज्यात्मनि के दबी सिद्धांत को ही प्रधानता मिली है। किन्तु कान में ही सति सिद्धांत का विचार मन्त्र पटल के प्रमाण मिलते हैं। एक वंश में मन्त्रों का दंड का संस्कार और अपदक कहा गया है। अपदक में मन्त्रों की गति का तब स्थिति के रूप में बयान किया गया है और मन्त्रों के धारण में मन्त्रों का प्रजात्मनि का प्रतिनिधि माना गया है। किन्तु युग के बाद इसी परम्परा का विचार मिलता है, जिनमें दबी सिद्धांत के साथ धर्म की धारणा का मनोबल हुआ है। सिद्ध विचारधारा में राज्यात्मनि के दबी सिद्धांत का मार देते हैं कि जब धर्म पतित होता है तो उस पर आपातित राज्य तथा उत्तम राज मन्त्रों का विद्य है। महाभारत में, एक कथानक के रूप में, राज्यात्मनि के दबी सिद्धांत का निष्पन्न

का विचार मिलता है। महाभारत के अनुसार एक समय वह था जब न तो राज्य की आवश्यकता ही थी और न राज्य का अस्तित्व ही था। इस वापनिक युग में प्रत्येक व्यक्ति स्वनिर्वाहित जीवन व्यतीत करता था और बड़ी व्यवस्था का आधार था। किंतु, यह अवस्था अधिक दिन न चल सकी और अव्यवस्था का अभ्युदय हुआ जिसमें मत्स्य-यायक का प्राधान्य बढ़ा। तब, दुखी मानव की प्राधना से प्रेरित होकर प्रजापति ने एक विधि-संहिता (A Code of Laws) की रचना की चार उमर लागू करने के लिए अपने पुत्र विराज, को इस मसाले में भेजा। और तब प्रजापति द्वारा रचित विधि संहिता के आधार पर मत्स्य-यायक के स्थान पर धर्म की स्थापना हुई¹। इस कथानक से यह निष्कर्ष निकलता है कि मानवी व्यवस्था के आधार धर्म का लागू करने वाला सम्राट और राजतंत्र दिव्य है। य सभी एक ही सज्जन के परिणाम हैं।

गीताकार ने देवा के सम्राट इन्द्र को तथा गामक के दण्ड का ईश्वर की विभूतिया माना है (10/22, 38)। यही सम्राट का ही नहीं बरन सम्राट की सत्ता के आधार दण्ड को भी दिव्य माना गया है। सम्राट गामक के रूप में उस दिव्य शासक का प्रतीक है। उसकी सत्ता का आधार वह दिव्य उद्देश्य है जिसके लिए उसका गजन हुआ है। देव और सम्राट की बुराई करना मानव-अधिकार के बाहर है। मनु के अनुसार सम्राट के द्वारा शठ दवताया का वायु सम्पादित होता है। प्रजा को लाभ पहुँचाना इन्द्र-कर्म है, राजस्व उगाहना मूय कर्म है (वसु भी जम मूर्ध अपनी किरणा से पानी पी लता है), चारा चार गुप्तचरा का भजना वायु कर्म है प्रजा पर नियंत्रण रखना यम-कर्म है, दुराचारी का दण्ड देना वरुण-कर्म है प्रजा को सुखी रखना चंद्र कर्म है, दुराचारी और अपराधी को नष्ट करना अग्नि कर्म है, और प्रजा का भरण पापण पथवी कर्म है। गतपथ ब्राह्मण के अनुसार राधाभिषेक के समय सम्राट के शरीर में अग्नि और बहस्पति का प्रदग् होता है और अश्वमेध तथा वाजपय यज्ञ करने से उमर दवताया का स्तर मित्रता है²।

इस प्रकार, सम्राट का देवी विभिन्न मानने का विचार वैदिक काल में मिलता है यद्यपि इसका प्रतिराषण इमा के जन्म से पहले की दूसरी गन्तारी में हुआ है। राज्यापत्ति के सतिन तथा सतिन मिद्वाना का प्रतिपादन उम काल में हुआ था जब भारत में छोटे छोटे गणराज्य थे और उनका शासन कुछ दिन चुन अधिनायक।

1 मत्स्य-यायक की धारणा बड़ी मछली द्वारा छोटी मछली के निर्गल जाने के प्रमेय पर आधारित है। बड़ी मछली सबल होने के कारण छोटी मछली को खा जाती है। जत मत्स्य-यायक का तात्पर्य याय की उस व्यवस्था से हुआ है। याय सबल के पक्ष में रहता है जहा बड़ा छोटे को सगवत फसाल को घर दवाता है। जिसका लाली उसकी भक्ष की भावना मत्स्य-याय का मूलाधार है।

2 गोसले की पुस्तक इंडियन वाट थू दि एजेंज में उद्धरण सद्धर्म के आधार पर पृष्ठ 149

3 गोसले की पृष्ठ 102

के हाथ में रहा करता था। बुद्धवाद का अम्बुदय थावत्नी, कौशांबी और मगध जैसे गणराज्यों की पृष्ठभूमि में हुआ है और उन्हीं की पृष्ठभूमि में राजकीयत्व का सन्निहित प्रतिपादित हुआ है। गणराज्य में सामक्य और साहित्य का प्रत्यक्ष सम्बन्ध रहता था। देवी सिद्धान्त को प्रोत्साहन उस समय मिला जब जायों के प्रसार के कारण, गणराज्या के आधार पर साम्राज्या का बनना बिगड़ना प्रारम्भ हुआ। गणराज्य का शासक राजा है लेकिन साम्राज्य का शासक सम्राट। सम्राट का प्रजा से प्रयत्न सम्बन्ध नहीं था। इसलिए साम्राज्य को मजठित रखने के लिए प्रजा में सम्राट के प्रति भक्ति गान के लिए गावत् के मत में सम्राटत्व में देवत्व की स्थापना की गई। मौर्य साम्राज्य की पृष्ठभूमि में पनपने वाले कौटिल्य के विचारा में सम्राट की तुलना यम और इन्द्र से मिलती है। साम्राज्य की ही पृष्ठभूमि में अन्वय यम की प्रोत्साहन मित्र। इस तथ्य के ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है कि मौर्य सम्राट प्रपन का जो देवता मानते थे या नहीं। अभाव न निश्चय ही अपने को देवता नही कहा है और वह बुद्धधर्म के प्रभाव के कारण ही सक्ता है। मौर्य साम्राज्य के नष्ट होने के बाद, सम्राटत्व की धारणा पर एक बार, धर्मशास्त्रा के विचारा का प्रभाव बढ़ा और दूसरी बार यूनानी, फारसी और मध्य एशियाई विचारा का।

यूनान फारस और मध्य एशिया के सम्राटत्व सम्बन्धी विचारा से भारत के परम्परागत देवी सिद्धान्त का प्राप्ताहन मिला। सम्राट की छत्रछाया में पनपने वाले पुराहितव्य के जलित्व से देवी सिद्धान्त को वनिक काट से हा प्रथम मिला था। इसी वारिक विकास का परिणाम है कि कुगत सम्राट के राज्य काल में प्रथम सम्राट न अपने लिए उन बड़ी बड़ा उपाधिया का प्रयोग किया है जिससे सम्राटत्व में देवत्व का आभाव मिला है। गुप्तकाल में देवता जीर भी विस्मृत हुआ। "लागवा" के सम्म पर खुले रूप में मनुस्मृत का पृथी पर निरास करने वाला एक उपाध बना गया है। मध्ययुग के प्रारम्भिक काल में जगत् कि मनुस्मृत और पुस्तक पर लिखा है सम्राट का प्रजा सिन्धु और मह्य कहा गया है और उस बात पर गार किया गया है कि चूकि सम्राट के शासन में देवताओं का वास है अतः, त ता उससे प्रति द्वेष रगता चाण्डि त उस युवा मया बना चाण्डि जीर न उन पर "गाराप" करना चाण्डि। सम्राट का आर करना तथा उसकी आज्ञा मानना प्रजा का कर्तव्य है। बड़ी बड़ी उपाधिया से सम्राट को विभूषित करने की परम्परा गुप्त काल में भी पाई जाती है यद्यपि इस काल में गुप्त सम्राट का देवपुत्र मानने के विचार का हाथ हुआ क्योंकि नगर में देव के मानना इत्यामी सिद्धान्त के विरुद्ध है। हा सिद्ध परम्परा में सम्राट का देव पुत्र मानने का विचार बगबर बना रहा। विश्वभारत नामक मन्थन महाकाव्य में जिनका रचना सिन्धु

के काल में हुई है, शिवाजी को युगावतार कहा गया है— एसा युगावतार जो विष्णु का जस है, जा आठ लोकपालों के जग से अत्रतरित हुआ है और जा वस्तुतः विष्णु पुत्र है¹ ।

राजधर्म में राज्योत्पत्ति का दवी सिद्धांत, इस प्रकार, राज्य का अधिक सुदृढ़ बनाने के लिए अस्तित्व में आया। लेकिन इस सिद्धांत की विगणता यह है कि इसमें राज्य दिया है न कि स्वयं सम्राट। सम्राट की दीयता वैयक्तिक नहीं है, वह सस्यागत है। सम्राट दीय नहीं है वरन सम्राटत्व दिव्य है। वाइ भी व्यक्तिक नहीं तब दीय है जहाँ तब वह सम्राटत्व के कर्तव्य का पालन करता है। सम्राटत्व के कर्तव्य पालन का आधार धर्म है। अतः, सम्राट वही तब दीय है जहाँ तब वह धर्मानुसार राजकाज में राजधर्म का पालन करता है। दैवी सिद्धांत से जसा कि स्वाभाविक था, राजसत्ता के एकीकरण को प्रोत्साहन मिलता रहा जिसके कारण समय-समय पर, साम्राज्य का संगठित, एकीकृत और केंद्रीभूत करने में सहायता मिली। दैवी सिद्धांत वह माध्यम रहा है जिससे सम्राट के प्रति प्रजा की निष्ठा प्रोत्साहित होती रहा है। लेकिन, साथ ही साथ, इस सिद्धांत में वह विचार भी निहित है कि जहाँ सम्राट धर्म से गिर जाता है, वहाँ उसकी दीयता समाप्त हो जाती है। अतः सम्राट की आज्ञा का पालन प्रजा का वही तब धर्म है, जहाँ तब वह धर्मानुसार राजधर्म को करता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि सम्राट का मिला हुआ दण्ड का अधिकार दवी अधिकार है लेकिन सम्राट उस अधिकार का मनमाना प्रयोग नहीं कर सकता है। सम्राट के दिव्य अधिकार दण्ड के प्रयोग की कमीटी धर्म भी दीय है। इस प्रकार, राज्योत्पत्ति के दवी सिद्धांत में जहाँ राज्य को दीय माना गया है वहाँ धर्म का भी दीय मानकर दिव्य को दीय के आधार पर मस्यागत करने का प्रयास किया गया है। राजसत्ता एक दिव्य सस्था है जिसमें कार्यात्मक ढंग से सम्बन्धित होने के कारण ही सम्राट दीय है। इस सिद्धांत के अन्तर्गत परिणाम निकल—एक, राज्य सत्ता का आधार नतिक्रम है न कि निरीह व्यक्ति और उसका निरकुण प्रयोग जो दूसरा जहाँ सम्राट धर्म से विमुख हो प्रजा को उसकी आज्ञा न मानने का अधिकार है। हिंदू विचारधारा में विकसित राजधर्म की धारणा जहाँ एक जोर सामाजिक ऐतिहासिक परिस्थितियों की उत्पत्ति है वहाँ दूसरी धारा हमने राजसत्ता में नतिक्रम का समावेश हुआ तथा उन जवन्मियों में राज्य के प्रति विश्वास करने का व्यक्तिक अधिकार बना रहा जहाँ राज्य और सम्राट धर्म से निमुख हो।

सम्राटत्व की धारणा भारत की सामाजिक ऐतिहासिक परिस्थितियों की

1 सरदार, रिनयकुमार दि पाजिटिव बकप्राउण्ड आफ हिंदू सोसियोलोजी
भाग 1 पृष्ठ 512

५८० भूमि में विकसित हुई है। यहाँ सम्राट् क्षत्रीय अधिनायकों को अपने शासन में रखकर साम्राज्य की स्थापना करते रहे हैं। भारत गणजातियाँ में बसा था और प्रत्येक गणजाति अपने में एक राष्ट्र थी। जसा कि गाँडा के राजनतिक प्रचार में स्पष्ट है, कुछ गणजातियाँ न क्षत्रीय राज्याँ का रूप ले लीयाँ और इसप्रकार क्षत्रीय राज्याँ का विकास हुआ। भारत में, एक बार क्षत्रीय राज्यों की स्थापना की परम्परा मिलती है और दूसरी ओर अखिल भारतीय साम्राज्य-स्थापना की। चन्द्रगुप्त मौर्य, अशोक, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य अलाउद्दीन खिलजी, अकबर और गजनेज और गिवाजी सम्राट् बनने की भावना प्रेरित रहे हैं। यातायात के साधनों की अगुवियाँ के कारण, प्रत्येक शासन की सम्भारना न हान में चन्द्रगुप्त सम्राट् के आदेश आया। सम्राट् का कार्य दिव्यजय करके अर्थात् क्षत्रीय शासन का अपने अधीन करके और उनसे कर लेकर साम्राज्य की स्थापना करता रहा है। क्षत्रीय शासन सम्राट् के नाम पर राज्य करते रहे हैं। ईस्ट इंडिया कम्पनी ने भी अपने लिए कम्पनी बहादुर का लिलाव चुना और अगरह से सत्ता तक मुगल सम्राट् के नाम पर राज्य किया। अंग्रेजी सरकार ने भी देवी रियासतों का कार्यभार रक्खा। इस प्रकार के कई परिणाम निकले पड़ला भारत में जननी जन्मभूमिद्वय स्वशासित गरीबों की भावना तो विकसित हुई किन्तु राष्ट्रीयता की भावना क्षीण रही। दूसरा सम्राट् के स्तर का राजनतिक गठन प्रारम्भ रहा और क्षत्रीय तथा स्थायीय स्तर जल्य। तीसरा, सम्राट् की सत्ता के बने रहने तक राजनतिक शासित रही किन्तु उस सत्ता के क्षीण हान ही अराजकता के कारण। यही कारण है कि भारत में एक बार, अशोक चन्द्रगुप्त और अकबर के राजनतिक स्थापित के अन्तिम युग रहे हैं और दूसरी बार, राजनतिक अशासित के कारण। चौथा सम्राट् ने पिना का भावना में शासन किया है और यह कारण उन्हें प्रजा के लिए सभी कुछ सम्भव करने का प्रयास किया है जिनका परिणाम यह हुआ कि प्रजा में निभरता का भावना रही है। पाषाण, मगदत्व में शिल्पना की प्रतिपासित करने में उन इतना समर्थाली बनाने की प्रेरणा मिली कि सम्राट् का वैभव उसी शिल्पना का प्रतीक बन जाय। वैभव को सम्राट् के प्रभाव का मापन बनाया गया। बड़ी-बड़ी इमारतें, सवारी, बर्तन और पराजगरी काय वैभव प्रमाण के मापन बन। किन्तु भारतीय इतिहास में सम्राट् के राज स्तर का वैभव का जा बलन मिला है जहाँ भारत जगता पर पडा। भारत की आदिक संस्कृति का आधार जीवन विधानी रूप में जिनका स्तर आश्रिताना क्षत्रीय में निम्न ही रूप में। समा परिणामस्वरूप, जनता का सर्व भारी कर शासन है जिनके कारण, एक ओर जनशक्ति बलना रहा है और, दूसरी ओर आदिक प्रगति निष्प्राप्त रही है और इन सबका एक सम्मिलित परिणाम यह रहा है कि भारतीय विचारधारा इतिहास के गरीब युग में आधुनिकता तथा पारदर्शिता की धार उभर रहा है। भारतीय विज्ञान का भाग्यवाँता आज की नई दुर्गों की दन है।

उत्तमपुरुष

गीताकार के अनुसार, 'इस लोक में धर (नाशवान) और अक्षर (अविनाशी) पुरुष हैं। भूतमान धर है जो स्थिर रहने वाला जन्तु है, वह अक्षर कहलाता है। लेकिन इन दोनों के सिवा उत्तमपुरुष और है, जो परमात्मा कहलाता है जो तीन लोकों में प्रवेश करके उनका पापण करता है। अतः जो धर और अक्षर से उत्तम है वह पुरुषोत्तम कहलाता है (15/16, 17, 18)। इस प्रकार गीताकार ने उत्तमपुरुष को पुण्योत्तम और पुरुषोत्तम को ईश्वर माना है। पूण, पुरुष नहीं, पुरुषोत्तम है। पुरुषोत्तम उत्तम पूणत्व का प्रतीक है जिसे प्राप्त करना मानव जीवन का चरम उद्देश्य है। धर्म की धारणा का विश्लेषण करते हुए यह लिखा जा चुका है कि धर्म इहलौकिक तथा पारलौकिक जीवन का संयोजक है। पुण्यार्थ, वर्णाश्रमव्यवस्था और कर्म जहां, एक ओर 'यवित' के सामाजीकरण का माध्यम बनकर 'यवित' तथा समाज का तात्कालिक स्थापित करते हैं और 'यवित' को सस्मृतितवान बनाते हैं वहाँ, दूसरी ओर इनके द्वारा 'यवित' का इहलौकिक जीवन पारलौकिकता की ओर उन्मुख होता है। पुण्यार्थ वर्णाश्रम और कर्म मोक्ष के साधन हैं। सिद्धांततः, इनकी परिणति माक्ष में होती है। मोक्ष पूणत्व की अवस्था है। पूणत्व पुरुषोत्तम

मे है। घत, मोक्ष पुरुषोत्तम की गति की प्राप्ति है। जसा कि पहल कहा जा चुका है, हिन्दू दृष्टिकोण में, मानव जीवन का उद्देश्य केवल पुण्य बने रहने तक ही सीमित नहीं है। यहा जीवन का उद्देश्य है पुरुषोत्तमत्व की प्राप्ति। पुरुषोत्तमत्व की प्राप्ति एक सतत उन्विकामी प्रक्रिया है। धर्म कम और जागृगमन उस प्रक्रिया के आधार है। हिन्दू-दृष्टिकोण में जीवन आत्मा की वह यात्रा है जिसका गतव्य मोक्ष है। मानव जीवन एक सतत स्राज है उस पूण्य की जो ज्ञानातीत गुणातीत कर्मानित और अव्यवत है।

नर, नारायण और नरोत्तम मानव-जीवन की उन्विकासी प्रक्रिया की तीन अवस्थायें हैं। नर प्रतीक है पुरुष का ग्रावत मानव का, नारायण नर में दवत्न का और नरोत्तम नर का उद्विकास की उस धरम अवस्था का जहाँ इहलौकिक नर पार लौकिक सारगत विराट में मिल जाता है। मोक्ष इस विवात की उच्चतम गति का प्रवेग द्वार है। धर्म अथ और काम ये माध्यम हैं जिनके द्वारा जीवन का प्रयास पहनुओ का एकीकृत करके वह माक्ष की ओर उन्मुख किया जाता है। जीवन का पूण्य उस ही प्राप्त होता है जो इहलौकिक जीवन में पूण्य प्राप्त करने का प्रयास करता है। इसीलिये हिन्दू विचारधारा में जहा एक ओर, इहलौकिक तथा पारलौकिक जीवन का विभिन्न पहनुओ पर विचार किया गया है वहा दूसरी ओर, इहलौकिक जीवन में पूण्य क्या है व्यक्ति विकास में कौनसी अवस्था पूण्य की अवस्था है और पूण्य-अवस्था का प्राप्त हुए मनुष्य की क्या विगपतायें हैं इस पर भी विचार किया गया है। जब धर्म अथ काम माग वण कम निवृत्ति प्रवृत्ति सम्बन्धी विचारों का वृत्तिक काल से लेकर वतमान समय तक गत्यात्मक विकास हुआ है और समयानुसार उनमें परिवर्तन हात रहे हैं उगी प्रकार इहलौकिक पूण्य या पूण्य परिवर्तन की धारणा का भी गत्यात्मक विकास हुआ है और समयानुसार उसमें परिवर्तन होता रहा है। उत्तमपुरुष की धारणा पूण्यमनुष्य की धारणा है जिनका उन्वय बर्दिक काल में हुआ है और जिन युग-युग की मर्मांग्ना का अनुसार दाता गया है। इसी गत्यात्मक विकास का परिणामस्वरूप पूण्य पुण्य के प्रतीक का रूप में उत्तमपुरुष यागी, श्रितप्रण अहत बोधितत्व कास्तिन, जागृगमन और गत्याग्रही उसी धारणाओं का विशाल हिन्दू विचारधारा में हुआ है।

उत्तमपुरुष वह है जो इहलौकिक पूण्यता का प्राप्त करके पारलौकिक पूण्यता का अधिकारी हो गया है। इसीलिये उत्तमपुरुष न तो निजात इहलौकिक है और न निजात पारलौकिक। उत्तमपुरुष वह है जिसका इहलौकिक जीवन में पारलौकिक उन्मुखता का समावेश हो गया है। जसा कि धर्म, अथ और काम की धारणाओं से स्पष्ट है वही इहलौकिक जीवन पूण्य है जिसमें धर्मप्राप्त अथ और काम की धारणा हाता है। धर्मप्राप्त अथ और काम की धारणा से तात्पर्य है धर्म द्वारा निर्धारित धारणा नविक विधियों के अनुसार

उत्तमपुरुष

अथ और काम की साधना करना। अथ और काम की साधना समाज और सस्कृति से होती है। अतः, इहलौकिक पूणत्व का अर्थ हुआ, समाज और सस्कृति के आदेश नियमों के साथ व्यक्ति का पूण तादात्म्य जो तभी होता है जब 'व्यक्ति का पूण सामाजिकरण' हा जाय। उत्तमपुरुष की धारणा उस पूण मनुष्य की धारणा है जो इहलौकिक तथा पारलौकिक जीवन का मध्य बिन्दु है। इसीलिये, उत्तमपुरुष का एक पहलू सामाजिक और दूसरा आध्यात्मिक (Metaphysical) है। इहलौकिक जीवन का निष्पादन करते हुए जो पुरुष आत्मपरायण तथा ब्रह्मपरायण है, वही उत्तम पुरुष है।

वदिक साहित्य में कई ऐसी धारणाएँ मिलती हैं जिनसे यह स्पष्ट होता है कि व्यक्ति का पूण सामाजिकरण पूणत्व प्राप्ति का एक मुख्य आधार है। यह वेदा में पहले ही कहा जा चुका है कि पुरुषार्थ में अथ और काम का उत्तम पुरुष समावेश व्यक्ति के सामाजिकरण तथा उसकी सामाजिक वृत्ति की तुष्टि की आवश्यकता की महत्ता का स्पष्ट करता है। वदिक साहित्य में पाई जाने वाली 'सभ्य' तथा शिष्ट की धारणाएँ इस महत्ता को और भी स्पष्ट करती हैं। ऋग्वेद में सभ्य से तात्पर्य उस व्यक्ति से है जो सभा का सदस्य होने के योग्य है। सभा का वही सदस्य होने योग्य है जो वयस्क है, जिसमें सभा के नियमों को समझने तथा उनके अनुसार नियम लेने की क्षमता है। अनुभव, वयस्कता, योग्यता और अवधारणा (Comprehension सोचने-समझने की क्षमता) 'सभ्य' की मुख्य विशेषताएँ हैं। अतः सभ्य वह है जो अपने अनुभव वयस्कता योग्यता और अवधारणा के कारण सभासद होकर, शासक वर्ग को उचित सलाह दे सके। सभा से तात्पर्य गणजातीय पंचायत (Tribal Panchayat) से है। इस दृष्टि कोण से, सभ्य वही है जिसका पूण और सुचारु सामाजिकरण हो गया हो। अथर्ववेद में 'शिष्ट' शब्द का प्रयोग शिक्षा दीक्षा, अनुशासन और आत्मनियंत्रण के अर्थ में किया गया है। अतः यह कहा जा सकता है कि शिष्ट वह है जिसने सामाजिकरण में निहित शिक्षा दीक्षा अनुशासन और आत्मनियंत्रण के द्वारा सस्कृति के आदर्शों को पूणतः आत्मसात् कर लिया हो। समाज के आदर्शों (Ideals) और अर्थात् (Values) के अनुसार व्यवहार ही शिष्टाचार कहलाता है। अतः, शिष्ट वही है जिसमें समाज का आदेश व्यवहार पाया जाता हो। जो सभ्य और शिष्ट है, वही आदर्श नागरिक है।

लेकिन सभ्य शिष्ट और 'नागरिक पूण मनुष्य' के परिचायक नहीं है। सभ्य, 'शिष्ट और नागरिक' होना समाज और सस्कृति के साथ तादात्म्य स्थापित करना है। सामाजिक सांस्कृतिक तादात्म्य पूणत्व का केवल एक इहलौकिक आधार है। पूणत्व का आधार केवल सामाजिक सांस्कृतिक तादात्म्य नहीं है। ऋग्वेदिक विचार धारा के अनुसार, पूणत्व का प्रतीक 'ऋत' है। अतः, जैसा कि पहले कहा जा चुका है,

रहस्यमय सारवत नियम है—वह नियम जिस पर सारी व्यवस्था आधारित है। इहलौकिक तथा पारलौकिक दोनों व्यवस्थाओं का आधार 'अन' है। ऋत ही सत्य है। अतः, जो सत्य है वही नैतिक आनन्द है। सत्य इहलौकिक जीवन भी है और पारलौकिक जीवन भी। त्विन, इसमें भी बड़ा एक सत्य है और वह यह है कि इहलौकिक का आधार पारलौकिक है। पूणत्व न केवल इहलौकिकता है और न पारलौकिकता। पूणत्व पारलौकिकता पर आधारित इहलौकिकता है। इमोल्सिय, वनो म प्रतिपादित इहलौकिक जीवन दोनों इनकी कृपा कल्याण और लक्षणप्रद के प्रति विराग की भावनाओं से बचा है। वदो म आय विचार क अनुसार पूण वह है जो मत्पु के बाद स्वयंसेवा या पितृयानम निवाग करने का अधिकारी है। यहा देवताओं को प्रमत्त करने के लिये किय गय यज्ञ प्राथम्ये और कल्प पूणत्व का आधार माने गए है।

औपनिषदिक विचारधारा का प्रस्फुटन हात ही पूण मनुष्य और पूणत्व के आधार सम्बन्धी विचारों म परिवर्तन आया। उपनिषदों म आत्मनिष्ठ दान उपनिषद् में और दया न तां एक साथ मिलकर और न अलग-अलग पूण उत्तमपुरुष हैं—ये तो केवल साधनमात्र हैं जिनके आधार पर पूणत्व को प्राप्त किया जा सकता है। औपनिषदिक विचारधारा के अनुसार पूण है ज्ञान—वह ज्ञान जो विज्ञान से ऊपर है। यहाँ ज्ञान वह अनुभूति है जिसमें पारलौकिक तत्त्व की वास्तविकता प्रगट होती है। इहलौकिक की भिन्नता म आत्म व्याप्त है जिसका उद्गम और परिणति ब्रह्म म है। आत्मा और ब्रह्म एक है। इहलौकिक की भिन्नता म आत्मा तथा ब्रह्म को आधारभूत एकरता समाप्त हुई है और सम्पूर्ण इहलौकिक पारलौकिक ब्रह्म का रहस्य है—यही ज्ञान वास्तविक ज्ञान है। इस ही आत्मज्ञान तथा ब्रह्मज्ञान को यज्ञा दी गई है। इसी ज्ञान से पारलौकिकता की अनुभूति होती है अतः, इसी ज्ञान म मुक्ति मिलता है। इसकारण केवल ज्ञान ही पूण है। औपनिषदिक विचारधारा म ज्ञान पूणत्व का प्रतीक है और उत्तमपुरुष अर्थात् पूण मनुष्य यही है, जो जानी है।

औपनिषदिक विचारधारा से उत्तमपुरुष के रूप म योगी की धारणा उत्पन्न हुई है। यदि ज्ञान ही पूण है तो उग पूणता क प्राप्त करने का साधन क्या है। योगान्तर का विचारधारा के अनुसार साध ज्ञान के साधन का उपकरण है। साध का अर्थ है जोड़ना मिलाना और मध्यक म लाना इत्यादि। साध यही है जहाँ साधना और ब्रह्म का योग हो जहाँ इहलौकिक तथा पारलौकिक की विधि समाप्त हो जाय और सत्ता की भिन्नता म एकरता (अविभक्ता विभक्त्यु) का अनुभूति का अनुभव हो। योगान्तर की विचारधारा म योग आश्रय न आता है। योगाभ्यास क साधन है यम नियम, आसन, प्रणायाम, प्राणायाम, धारणा, ध्यान और समाधि।

योगाधि साध का अन्वेषा है यद्यपि योगाधि की ही अन्वेषा म ध्वनित के

ध्यान का धारण की हुई वस्तु से योग हा जाता है। योगाचार की विचारधारा का मूलधार यह है कि आत्मशक्ति और आत्मज्ञान के उत्बोधन के लिये शरीर को समय से रखना और अभ्यास द्वारा इन्द्रियनिग्रह आवश्यक है। योगी शरीर से हट कर आत्मा में रमण करता है। शरीरी एपणाओ तथा वासनाओ का उसमें अंत हो जाता है। वह सासारिक शरीरी सुख का नहीं बरन परमानन्द का अनुभव करता है। आत्मसिद्धि के द्वारा उस जा आध्यात्मिक शक्ति मिलती है, उसमें उम प्रलौकिक सुख ही नहीं बरन् मनचाह भ्रमभ्य को भी प्राप्ति हो जाती है¹। योग रहस्यवादिता से अलगप्रोत है। इस्लाम में सूफी सत भी इसी परम्परा में जाते है। योग की ही विचारधारा से तप की धारणा उत्पन्न हुई है। तप का अर्थ है अभ्यास द्वारा शरीरी आवश्यकताओ को दबाना और आध्यात्मिक शक्ति को जगाना। शरीर में भस्म लगाना, जटाजूट रखना, सर्दों तथा गर्मी में नगे बदन रहना गंधिया में भी अग्नि तापना, उल्टा लटककर नीचे से धुआं मुलगाना एक पर से या एक हाथ उठा कर वर्षों खड़े रहना प्राणवायु रोककर समाधिस्थ होना योग के व निवृष्ट रूप हैं जो तांत्रिक विचारधारा के प्रभाव के कारण अस्तित्व में जाये हैं। योगी के रूप में पूण मनुष्य वस्तुतः वह है जो योगाभ्यास द्वारा इहलौकिक शरीरी आधार से ऊपर उठ जाता है जो पारलौकिक के समीप पहुँच जाता है और जिसे ईश्वरीय प्रसाद मिल जाता है जिससे वह शरीरी याधियों—जरा, भोगों और वासनाओ से मुक्त हो जाता है। योगी इस ससार में रहते हुए भी परमानन्द में स्थित रहता है।

वदिक विचारधारा का औपनिषदिक विचारधारा में जो परिवर्तन मिला उससे वस्तुतः कई विचार प्रशाखाये अस्तित्व में आई। एक वचारिक प्रशाखा के अनुसार ज्ञान पूणत्न का प्रतीक है दूसरी के अनुसार योग और तीसरी के अनुसार भक्ति। अतः उपनिषदों की विचारधारा से उत्तमपुरुष के रूप में ज्ञानी, योगी और भक्त की धारणाओ का प्रस्फुटन हुआ। औपनिषदिक विचारधारा निवृत्तिमार्गी है। अतः, ज्ञानी योगी और भक्त की निवृत्त पुरुष के रूप में कल्पना की गई है। ज्ञानी ज्ञान द्वारा निवृत्त होता है योगी योग द्वारा और भक्त प्रपत्ति के द्वारा। यहाँ ज्ञान

1. वामभाग में जटा तंत्र का प्रभाव रहा है इस विचारधारा ने कापालिक, सिद्ध भरव और जीघड इत्यादि की धारणाओं को जन्म दिया है। कापालिक, सिद्ध भरव और जीघड वे पुरुष हैं जिनके लिये यह समझा जाता है कि उन्होंने शक्ति सिद्ध कर रखी है जिसके द्वारा वे अलौकिक कृत्यों को सम्पादित कर सकते हैं। तंत्र में योगाचार की विचारधारा सकाम शक्ति की साधना का रूप ले लेती है। किन्तु, वाममार्गी सिद्ध हो सकते हैं, उत्तम पुरुष नहीं।

पूणत्व का सर्वोत्कृष्ट आधार है। लेकिन उसके लिये ध्यानात्मकता की आवश्यकता है। माग और तप उस अध्यात्म का आधार हैं। भक्ति उनके लिये है जो ज्ञान और योग के माग को नहीं अपना सकते हैं। लेकिन, ज्ञान याग और भक्ति वस्तुतः एक ही मनोदशा तक पहुँचने के तीन माग हैं। पूणत्व वस्तुतः न ता ज्ञान है न याग और भक्ति। पूणत्व तो वह मनादशा है जहाँ व्यक्ति ब्रह्मपरायण हो जाता है। उस मनोदशा के लिये कुछ साधन आवश्यक हैं। ये साधन हैं नैतिकता अहिंसा, सत्य-प्रियता, योगप्रियता, कर्मा और जात्मनिष्ठता जिन्हें महाभारत में पूण पुरुष के गुण माना गया है। पूजा पाठ तीर्थयात्रा और ध्यान में इन गुणों के विकास का प्रोत्साहन मिलता है। सत विचार, सत्य भाषण और सतकाम से वह नैतिक गाल विनसित होता है जिससे या तो निष्काम भक्ति द्वारा या आत्मज्ञान द्वारा निलिप्ति का अनुभव प्राप्त होता है। अतः पूणपुरुष का अन्तिम रूप ज्ञानी का है। उत्तमपुरुष का इहलौकिक जीवन समाप्त नहीं हो जाता है। सबकल्याण के लिये उत्तमपुरुष का अस्तित्व आवश्यक है क्योंकि उत्तमपुरुष को धरने लिये कुछ करना आवश्यक नहीं रह जाता है। वह समार का सुख-दुःख में निवृत्त होकर, सबकल्याणकारी आशयों की पूर्ति में रत रहता है। उत्तमपुरुष वस्तुतः कल्याणकारी ब्रह्म और ज्ञान का प्रकाशस्वरूप है।

गीता में, जसा कि पहले कहा जा चुका है ब्रह्म के आधार पर ज्ञान, भक्ति और योग का समन्वय हुआ है। गीता के अनुसार, ब्रह्म, ज्ञान और भक्ति गीता में माग हैं जिनका आधार निष्कामता और स्थितप्रज्ञता है क्योंकि उत्तमपुरुष निष्कामता तथा स्थितप्रज्ञता के द्वारा ही आत्मपरायणता तथा ब्रह्मपरायणता घाती है। जो ब्रह्म ज्ञान और भक्ति निष्कामता तथा स्थितप्रज्ञता पर आधारित है, उन्हीं के द्वारा आत्मा और ब्रह्म का योग होता है। गीता का अनुसार स्थितप्रज्ञ ही निष्काम ब्रह्मयोगी, ज्ञानयोगी और भक्तयोगी है। यही ब्रह्म, ज्ञान और भक्ति आदश है जो निष्काम है और ब्रह्मपरायण है। अतः गीता के अनुसार, उत्तमपुरुष यही है जो स्थितप्रज्ञ है। गीताकार ने स्थितप्रज्ञ तथा समाधिस्थ में अन्तर नहीं किया है जिससे यह निष्पत्ति निकाला जा सकता है कि समाधि का आधार स्थितप्रज्ञता है। स्थितप्रज्ञता की उत्पत्ति समत्वबुद्धि में होती है। समत्वबुद्धि का एक आधार निष्कामता है और दूसरा समभाव। इंग्लिशमें, गीताकार ने उन्हीं स्थितप्रज्ञ कहा है जो मन की उठी हुई समस्त कामनाओं का त्याग करता है, आत्मा द्वारा ही आत्मा में संशुद्ध रहता है। राग, भय और क्रोध रहित होता है, न ता दुःख में दुःखी होता है और न सुख की इच्छा रखता है। गुण अगुण के प्रति समभाव रखता है और सब इंद्रियों का योग में रखकर ईश्वर में रत रहता

है। स्थितप्रज्ञ कछुने की भाँति अपने सब अंगों को इन्द्रियों के विषया में से समेटे रहता है। स्थितप्रज्ञ वह कमयोगी है जो केवल कम को कम समझकर कम करता है और कमफलात्कृत से सगरहित होने के कारण, श्रम अश्रम, दुःख सुख और राग भय तथा शोध से विचलित नहीं होता। कम करते हुये स्थितप्रज्ञ वैसे ही शांत रहता है जैसे नदियों के निरंतर प्रवह कराने पर भी समुद्र। गीता का स्थितप्रज्ञ ममार में प्रवृत्त होते हुए भी नसार स वस ही निवृत्त रहता है जैसे पत्र सपकष।

गीता में उत्तमपुरुष की धारणा निवृत्तिवादी प्रवृत्ति के जीवन-दशान पर आधारित है। लेविन, बुद्धवाद तथा जनवाद में उत्तमपुरुष की धारणा बुद्धिवादी जन निवृत्तिवादी दशान के आधार पर निरूपित की गई है। उत्तमपुरुष वादी विचार में की धारणा के रूप में बुद्धवाद में अहत् और बोधिसत्व की उत्तमपुरुष धारणाओं का तथा जैनवाद में 'वेजलिन की धारणा का विकास हुआ है। 'अहत् अलौकिक नहीं लौकिक पुरुष है। नतिक्ता,

आध्यात्मिकता और ज्ञानपरायणता अहत् के मुख्य गुण हैं। अहत् वह है जो लोगों को धर्म का माग दिखाये, जिसका मस्तिष्क सत्यानुभव में डूबा हुआ और शांत है, जो आत्मनिग्रही है, जो सुख दुःख में पक्ष की घटान के समान अविचलित रहता है, जो जानतप्त है और इस ससार में रहते हुए भी ससार से विरक्त है। 'अहत् अपने दोषों के प्रति सजग है और परछिद्रा-वेपण से दूर, मस्तिष्क विचार, वाणी और कम से शांत तथा सभी दशाभा में अपने का शांत रखता हुआ, वह सदैव जागरूक रहता है। शील, समाधि और ज्ञानानुभूति उसके वे उपकरण हैं जिनसे उस मुक्ति मिलती है। पश्वी के समान सहिष्णु रहते हुए वह सग्रह तथा विषया के त्याग में सुख का अनुभव करना है। वह ससार का धस ही ग्रहण करना है जैसे मधुमक्खी पुष्प के रंग या उसकी गंध को अधुष्य रखत हुए उससे मधु ग्रहण करती है। अहत् का माग दुःखरहित और मुक्त है जिसके कारण उसमें कामनायें जल जानी हैं और देवता उसकी स्पर्धा करते हैं। अहत् धर्म का मूर्तिमान रूप है और धर्मपथ प्रदर्शक है। अहत् सम्यकमार्गी है—वह न तो अत्यधिक विषयासक्त होता है और न यागियों की भाँति अपने शरीर का तप के नाम पर अत्यधिक कष्ट देता है। वह अपने मस्तिष्क को सत्यानुभूति और सत्यशोध में लगाता है जिसके लिये उस अपने शरीर और मस्तिष्क को अभ्यास द्वारा प्रशिक्षित करना पड़ता है।

सम्यक दृष्टि सम्यक सक्त्प सम्यक वाणी सम्यक कम, सम्यक जीविका सम्यक प्रयत्न, सम्यक स्मृति व सात साधन है जिनके द्वारा यकिन ससार में रहते हुए भी सासारिक बंधनों से मुक्ति पाकर सम्यक समाधि को प्राप्त होता है। सम्यक दृष्टि और सम्यक सक्त्प से ज्ञान आता है सम्यक वाणी सम्यक कम और

सम्यक् जीविका से शील और सम्यक् प्रयत्न सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि म समाधि। अतः, अहत वह है जो अष्टांगिक माग का अनुसरण करके, पानवान, शीलवान तथा समाधिस्थ हो गया है। ज्ञान, शील और समाधि अहत के तीन स्वरूप हैं। अहत की धारणा हीनयानी बुद्धवाद की देन है। हीनयानी बुद्धवाद दो सम्प्रदायों में विभाजित है—एक स्वविरवाद और दूसरा वभाषिक। स्वविर का मतलब है शानी या तत्वदर्शी। स्वविर विभज्यवादी सम्प्रदाय भी है। विभज्यवाद का अर्थ है विदलेपण द्वारा प्रत्येक वस्तु के अच्छे-बुरे भाग को अलग कर देना। स्वविरवाद और विभज्यवाद का आधार तत्त्वज्ञान है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि अहत मूलतः तत्त्वज्ञान है और जीवन की वह अवस्था है जिसे प्राप्ति कर जीव सांसारिक क्रिया कलापों की आर नही मुड़ता।

अच्छाइयों का अज्ञान करना और चित्त को समय में रखना आवश्यक है। ब्रह्मचर्य बुद्ध के अनुसार लाभ सत्कार, प्रशंसा, सदाचार समाधि और ज्ञान के लिये नहीं है। ब्रह्मचर्य का मुख्य उद्देश्य है चित्त को मुक्ति। चित्त की मुक्ति ही जीवन का सर्वोत्तम उद्देश्य है। इसीलिये, सम्यक् समाधि की चार अवस्थाएँ बताई गई हैं—पहली, विरक्ति के अनुभव की अवस्था, दूसरी, विचारों और वितर्कों का जजाल समाप्त होने के साथ साथ गाँव के अनुभव की अवस्था, तीसरी, समाधि के आनंद के प्रति उदासीनता की अवस्था, चौथी 'पूण प्रज्ञा' अथवा निर्वाण की अवस्था जो दुःख मुक्त से परे होती है। सम्यक् समाधि की अवस्था तक पहुँचने के लिये सात सम्मर मागों का अभ्यास आवश्यक है। गरीर मन और पापी से भले बुरे कर्मों का पर्याय ज्ञान प्राप्ति करना सम्यक् दृष्टि है। दुःख, दुःख का कारण, दुःख का जन्म आर दुःखों के अन्त का उपाय—ये चार आय सत्य हैं जिनकी अनुभूति रगत रूप जीवन बिताने का सकल्प भी सम्यक् सकल्प है। यह पापी सम्यक् है जो मिथ्या भाषण घुमलसोरी, बटुता और बकवास जत याचिर दुःखमों से मुक्त है। सम्यक् कर्म है। प्राणिहिंसा, मुद्र और प्राणि-माग मद्य-नशा विरम्यापार पर जो कर्म हिंसा, घोरी और व्यभिचार के कायिक दुःखमों से मुक्त है वही कर्म सम्यक् कर्म है। प्राणिहिंसा, मुद्र और प्राणि-माग मद्य-नशा विरम्यापार पर निभर जीविका शूटी जीविका है। अतः, मुद्र निष्कपट एवं शास्त्रिक कर्मों द्वारा उपाजित जीविका ही सम्यक् जीविका है। जो प्रधान गम विचारों से प्रेरित है वह सम्यक् प्रयत्न बड़े जाने है। गरीर चित्त चयना और मन के विषयों से निरन्तर मुक्ति पाने के उपाय की स्मृति सम्यक् स्मृति है क्योंकि गरीर, चित्त, वेदना और मन के विषयों से मुक्त होना के उपायों की ओर से विरमत होन पर, व्यक्ति इनमें कत माना है और उस दुःख भोगना पड़ता है—

'अहृत' की धारणा ज्ञानवादी तथा भक्तिवादी है। नितांत ज्ञानवादी होने के कारण 'अहृत' की धारणा गुण्व और नीरस भी है। 'अहृत' जनसाधारण के दैनिक दुःख-मुक्त के जीवन की प्रेरणा न बन सका। उधर, बुद्ध के निर्वाण के लगभग चार सौ साल बाद जब बुद्धवाद पर हिन्दुत्व का प्रभाव पड़ा तो महायानी बौद्ध सम्प्रदाय का अम्युदय हुआ। महायानी सम्प्रदाय ज्ञानमार्गी न होकर भक्तिमार्गी था। इस सम्प्रदाय के अनुयाइयों ने बुद्ध का मनुष्य के भाग्य का 'गासक' और नियन्ता स्वीकार किया जिसके फलस्वरूप बुद्धवाद ईश्वरवादी तथा भक्तिप्रधान हो गया।

माध्यमिक और योगाचार, महायानी बुद्धवाद की दो उपशाखायें हैं। माध्यमिक विचारधारा गूणवादी थी। योगाचार का अर्थ है वह आचार जिसके द्वारा 'योग' अथवा 'बोधि' प्राप्त हो। 'बाधि' प्रबुद्ध ज्ञान का प्रतीक है। अतः, बुद्धवाद की महायानी विचारधारा के अनुसार उत्तमपुरुष वह है जो लौकिक आचारों का पालन करते हुए प्रबुद्धता को प्राप्त हो। प्रबुद्धता ज्ञानानुभूति की अवस्था है। ज्ञान की तीन कोटियाँ हैं—परिकल्पित (कल्पनाश्रित ज्ञान), परतन्त्र (सापेक्ष ज्ञान) और परिनिष्पन्न (सत्याश्रित ज्ञान)¹। सत्याश्रित ज्ञान का अनुभव बाधि प्राप्ति की उच्चतम अवस्था है जिसके लिये निरंतर प्रयास की आवश्यकता है वैसे ही जैसे जीवात्मा को परमात्मा में मिलने के लिए निरंतर प्रयास की आवश्यकता है। अतः, महायानी विचारधारा के अनुसार, उत्तमपुरुष वह है जो 'बोधिसत्त्व' है। 'बोधिसत्त्व' ज्ञान और करुणा का मूर्तिमान स्वरूप है। बाधिसत्त्व सत्याश्रित ज्ञान की अनुभूति के कारण निर्वाण का अधिकारी हो गया है, लेकिन जनहिताय करुणा के कारण, इस ससार में तब तक बार-बार जन्म लेता है या लेता रहेगा जब तक कि इस ससार के सभी प्राणी मुक्ति न पा जाय। 'बाधिसत्त्व' वस्तुतः बाधि का सत्त्व है जो, ससार के कल्याण के लिये, युगानुसार युग युग में अवतरित होता रहता है। 'बाधिसत्त्व' प्रत्येक युग का पथप्रदर्शक और उद्धारकर्ता है। बाधिसत्त्व की धारणा में वही विचार निहित है जो गाना की सम्भवामि युगे युग की धारणा में निहित है। बाधिसत्त्व केवल ज्ञानी नहीं बरन कमशील जानी है। निर्वाण प्राप्ति के लिये 'बाधिसत्त्व' का जितना कर्तव्य अपने प्रति है, उतना दूसरों के प्रति भी है क्योंकि 'बाधिसत्त्व' अपने तथा ससार के निर्वाण की प्रेरणा से प्रेरित है। 'बाधिसत्त्व' की धारणा 'अहृत' की अपेक्षा अधिक सामाजिक है।

जनवाद में प्रादुर्भूत केवलिन की धारणा बौद्धा की अहृत की धारणा से मिलती जुलती है²। जनवादी विचारधारा, बुद्धवादी विचारधारा की भाँति, ब्रह्मवादी न होकर पुरुषार्थमूलक और धर्मप्रधान रही है। अतः, इसमें आचरण की प्रधानता दी गई है और इसी कारण इस विचारधारा को नास्तिक भी कहा गया है।

1 गरोला, वाचस्पति वही पृष्ठ 150

2 गोखले बी० जी० वही पृष्ठ 205

जैनवादी विचारधारा म 'सम्यक ज्ञान, सम्यक दान और सम्यक चरित्र ही मोक्षसाधन के तीन रत्न या उद्देश्य बताए गए हैं'¹ । जिनिया के मतानुसार बापि अथवा ज्ञान की पाच श्रेणिया हैं—एक मतिज्ञान (जो मन, इन्द्रिय, स्मृति, प्रत्यभिज्ञा तथा तत्व म प्राप्त हा), दूसरा, श्रुति-ज्ञान (जा शब्द एव सचेता म प्राप्त हा) तीसरा, अवधिज्ञान (जा त्रिकालजय वस्तुषा के प्रत्यक्षीकरण से प्राप्त हा) चौथा, मन-पश्यमान (जो दूसरो के मन से प्राप्त हो), और पाचवा, केवल ज्ञान (जो जीवमूर्ति वा ज्ञान है)² । जब मनुष्य आत्मगत ज्ञानबाधक कर्मों का मूढ कर डालता है तब उमका शिव्य दृष्टि प्राप्त होली है जो आन्तरिक हाती है और जिसम अन्तत ज्ञान वा साक्षात्कार हाता है । यही ज्ञान कवल ज्ञान है जा जीव-मूर्ति अहंता का प्राप्त हाता है³ । कवल ज्ञान का प्राप्त करन काल कवलिन है और कवलिन जीव-मूर्ति है । कवलिन क लिए उम्पर दान और सम्यक चरित्र साध्यक है । सम्यक चरित्र के लिए गरार, मन तथा वाणी का वह योग आवश्यक है जा ज्ञान और नतिवता पर आधारित है । योग क लिए तप आवश्यक है । पूण तथा उत्तमपुरुष के रूप म कर्त्तव्य वा वही प्रादुर्भाव हाता है, जहाँ ज्ञान तथा नतिवता पर आधारित तप के द्वारा, आत्मा तथा ममार के वास्तविक स्वरूप वा पूण ज्ञान अवतरित हाता है ।

अद्वैत वेदांत म उत्तमपुरुष की धारणा जीव-मूर्ति की धारणा क रूप म प्रतिपादित की गई है । अद्वैत वेदान्त की विचारधारा एक-वरवादी तथा अद्वैत वेदान्त ब्रह्मवादी है । न्य विचारधारा म ममार ब्रह्म जीव माया के योग म से उत्तमपुरुष बना है । माया मिथ्या है । अत मायापरायणता अज्ञान है । आत्मा और ब्रह्म एक हैं । अत ज्ञान का आधार आत्मपरायणता तथा ब्रह्मपरायणता म है । अविद्या का नाश तत्वज्ञान म हाता है और तत्वज्ञान की उत्पत्ति 'मै ही ब्रह्म ह (अहं ब्रह्मास्मि) की अनुमति म हाता है । तत्वज्ञान की प्राप्ति ही मुक्ति है क्यकि तत्वज्ञान की प्राप्ति के बाद न ता किसी प्रकार क कर्म करन की आवश्यकता है और न नाम्म तथा उपन्य क साध्य का । वेदान्त की विचारधारा म तत्वज्ञान तथा आत्मज्ञान को एक माना गया है । तत्वज्ञान की प्राप्ति क लिए अत करण की गृहि आवश्यक है जिसक लिए नैतिक गुणों को बलवान बनान की आवश्यकता है । अत करण की गृहि क लिए वेदों म प्रतिपादित कर्मों का भी आवश्यकता है । तत्वज्ञान का उदय कविहित कर्मों से परिगुह अत करण में ही हाता है । माया क लिए कर्म और ज्ञान दाना आवश्यक है । जा पुरुष, कारणरूप ब्रह्म और वायस्व जगत दानों का जानता है, वह अज्ञान (मत्स्य) पर विजय प्राप्त करके मूर्ति (मा १)

1 गरोला, वाचस्पति वही पृष्ठ 02

2 वही पृष्ठ 01

3 वही पृष्ठ 107

को प्राप्त करता है। वेदान्त में मोक्षप्राप्ति के नित्य साधना को बहिरग तथा अन्तरग श्रेणियों में रखना गया है। विवेक, वराग्य, क्षमादि और मुमुक्षुत्व बहिरग तथा श्रवण, मनन, निदिध्यासन और समाधि अन्तरग साधन हैं¹।

जिस प्रकार, गीता में उत्तमपुरुष की कल्पना निष्काम कर्मसिद्धांत के सादभ में की गई है उसी प्रकार, वेदान्त में उत्तमपुरुष की कल्पना अद्वैतवादी सिद्धांत के सादभ में की गई है। वेदान्त के अनुसार जीव-मुक्त यह है जो ब्रह्मनिष्ठ है। जीव-मुक्त वह भवस्था है जहां कर्तृत्व भोक्तृत्व तथा भोग (सुख दुःख) के बन्धन नष्ट हो जाते हैं। यह अवस्था तब आती है जब गुरु के उपदेश, श्रुतिवाक्य तथा स्वानुभव से आत्मा और ब्रह्म की एकता का ज्ञान हो जाता है और उस ज्ञान के द्वारा अज्ञान का नाश होने से अखण्ड ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। ऐसी दशा में अज्ञान से उत्पन्न सग्य और विषय नष्ट हो जाते हैं और आत्मा एवसाय ब्रह्मज्ञान में तत्पर हो जाती है। 'उस आत्मत्व से साक्षात्कार ज्ञान पर जीव-मुक्त पुरुष की बुद्धिस्थित वासनामय कामनायें (हृदय प्रिय) समाप्त हो जाती हैं और सम्पूर्ण निवृत्त सादह विच्छिन्न हो जाते हैं। जिसके सशय नष्ट हो गए हैं जिसकी अविद्या क्षीण हो चुकी है, ऐसे मुक्त पुरुष के जन्मांतर में तथा ज्ञानोत्पत्ति के समय इस जन्म में किए गए सारे काय भी नष्ट

- 1 नित्य वस्तु को नित्य और अनित्य वस्तु को अनित्य समझना विवेक है। इस लोक के भोग विलास और परलोक के कर्मजय यज्ञयागादि दोनों प्रकार की वस्तुओं पर फला से सबंध विमुख हो जाना ही वराग्य है। गम, दम तितिक्षा उपरति समाधान और श्रद्धा को क्षमादि (षट्सम्पत्ति) कहा गया है। इंद्रियों के विषयों को सममित करके आत्मवस्तु में चित्त लगाने का नाम ही क्षम है। इंद्रियों को उनके विषयों से हटाकर ब्रह्मसाक्षात्कार की ओर लगाना दम है। मान अपमान, सुख दुःख और शीत ताप को समभाव से सहन करना तितिक्षा है। समस्त कर्मों में फलेच्छा शून्यता और कर्मों का भगवान् के प्रति समर्पण उपरति है। समाधान में शुद्ध बुद्ध परब्रह्म में तत्पर होना तथा गुरु सुधूषा आती है। गुरुवाक्य तथा शास्त्रवाक्य में विश्वास करना श्रद्धा है। अज्ञान से मुक्त होकर मोक्ष की इच्छा को मुमुक्षुत्व कहते हैं। विवेक वराग्य को जन्म देता है, वराग्य मोक्ष की इच्छा को और मोक्ष की इच्छा ब्रह्मज्ञानसा को जन्म देती है। सम्पूर्ण वेदान्त वाक्यों का एक ही अद्वितीय ब्रह्म में तात्पर्य समझना श्रवण, वेदान्त के अनुकूल व्यक्तियों द्वारा अद्वितीय ब्रह्म का चिन्तन मनन, देह से लेकर बुद्धि तक फले हुए जड़ पदार्थों में एक ही ब्रह्म को देखना निदिध्यासन और ज्ञाता, ज्ञेय तथा ज्ञान के अन्तर को हटाकर ब्रह्म में चित्तवृत्ति को एकाकार करना समाधि है।

हो जाते हैं। यह साधान में ही हूँ (जय साक्षाद्दहमेव) इस प्रकार जीवित रहते हुए भी वह मुक्त हो जाता है¹।

गीता के उत्तमपुरुष (स्थितप्रज्ञ) के आध्यात्मिक पक्ष को वदात्त की जीव-मुक्त की धारणा में अधिब विस्तार दिया गया है। गीता का उत्तमपुरुष निष्काम कामयोगी है, ससार में उसका अस्तित्व का आधार काम है। स्थितप्रज्ञ के लिए निष्काम काम ही सब कुछ है। स्थितप्रज्ञ की ब्रह्मनिष्ठा का आधार निष्काम काम है। लेकिन, जीव-मुक्त काम से उतना घासन्न नहीं है, जितना कि वह ब्रह्म से है। स्थितप्रज्ञ के लिए पुरुष और प्रकृति के योग में बना ससार मूलतः निष्काम काम का क्षेत्र है। जीव-मुक्त के लिए ब्रह्म और माया के योग से उत्पन्न ससार मूलतः काम क्षेत्र नहीं है। ससार वहीं तक ग्रहणाय है जहाँ तक ससार से ब्रह्म का आभास होता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि जीव-मुक्त के लिए 'अहं' सबसे बड़ा अनिष्ट है। उसका अस्तित्व प्रेम और करुणा में है वह ईश्वर की इच्छा से प्रेरित है, उससे जीवन का उद्देश्य जनकल्याण की भावना का जगाना तथा स्वाध्यायियों का दमन करना है लेकिन, साथ ही साथ, इसमें भी कोई संशय नहीं है कि जीव-मुक्त काम की अपेक्षा वैराग्य से अधिब प्रेरित है। स्थितप्रज्ञ की प्रेरणा है निवृत्तिवादी प्रवृत्ति और जीव-मुक्त की प्रेरणा है निवृत्ति तथा वैराग्य। स्थितप्रज्ञ के लिए कल्याणकार साहसहीन है और वय तथा जाति के बंधन बंधन त्रिगुणात्मक प्रकृति की लाना है। जीव-मुक्त के लिए, वैविहित बलाचार, वय और आश्रम निर्दनीय नहीं तथा ग्रहणीय हैं यद्यपि निवृत्ति (वैराग्य) श्रेयस्कर है। धर्म वचन के मर्म बड़े प्रतिष्ठा-साधक गुरु ने जीव-मुक्त के सामाजिक काम के दो स्तर माने हैं—एक अल्पतम काम निवृत्ति तथा वैराग्य का और दूसरा सामान्य (जनकल्याण) के लिए किए गए काम का²। लेकिन, दोनों दशाओं में, जीव-मुक्त मूलतः निवृत्तिवादी है।

हिंदू सामाजिक जीवन-रूप की सरिता निवृत्ति तथा प्रवृत्ति के बीच में प्रवाहित होना हुई, कहीं निवृत्ति की ओर और कहीं प्रवृत्ति का ओर तरंगित होती रती है। तटा का अस्तित्व सरिता से है न कि सरिता का तटा से। सरिता बहती हुई जलधारा है जो अपने तटा का रण करती हुई बहती रहती है। सरिता के तट जलधारा में समाहित रहने हैं क्योंकि सरिता का जलधारा ही तटों का साधकता प्रदान करती है। जिन प्रकार, सरिता के तटा का सरिता में अलग नहीं किया जा सकता और उह सरिता से अलग करके अलग अलग नहीं आया जा सकता, उन्ही प्रकार न ता निवृत्ति और प्रवृत्ति के विचारों का हिंदू सामाजिक जीवन-रूप की सरिता में अलग ही किया जा सकता है और न अलग-अलग करके उन्हें आया हो या

1. गरीमा, वाचस्पति चर्चा पृष्ठ 416

2. गोपले चर्चा पृष्ठ 207

सतता है। जिस प्रकार, सरिता के दोनो तट हर दशा म तट है और उनम विभेद नहीं है, उसी प्रकार निवृत्ति और प्रवृत्ति म विभेद नहीं किया जा सकता। प्रवृत्ति निवृत्ति की परिभाषा है और निवृत्ति प्रवृत्ति की। हिन्दू विचारधारा म प्रवृत्ति कारी पारिव्यता नहीं है। प्रवृत्ति धर्म के लिए है, काम के लिए है और अर्थ के लिए है। धर्म, अर्थ और काम म प्रवृत्ति, एक ओर, मोक्ष के लिए है और, दूसरी ओर, लोभसग्रह के लिए। मोक्ष और लोभसग्रह का विचार ही प्रवृत्ति का निवृत्तिवादी रूप देता है और मोक्ष तथा लोभसग्रह के विचार का मद्दम म निवृत्ति प्रवृत्ति का विभेद बस ही समाप्त हो जाता है जैसे सरिता के प्रवाह मे उससे दोनो तटा का विभेद। मोक्ष और लोभसग्रह का विचार हिन्दू सामाजिक जीवन दशन की सरिता का मुख्य प्रवाह है। हा, यह अवश्य है कि जहा मोक्ष प्रधान है वहा जीवन प्रवाह निवृत्ति की ओर अधिक बढ़ गया है और जहा लोभसग्रह प्रधान है, वहा प्रवृत्ति की ओर—उस प्रवृत्ति की ओर जिसका आधार लोभसग्रह है न कि व्यक्तिगत स्वाध। उत्तमपुरुष न बल निवृत्तिवादी है और न केवल प्रवृत्तिवादी। उत्तमपुरुष वह है जिसके जीवन म मोक्ष और लोभसग्रह के उद्देश्यो का समन्वय हुआ है। गीता म यह समन्वय निष्काम काम योग के द्वारा हुआ है और वेदा म वेदांग्य के द्वारा। इन दोनो मार्गों का प्रतिपादन धर्म अलग अलग युगो मे हुआ है लकिन दोनो लोभसग्रह से गुजरते हुए मोक्ष की ओर जाते हैं।

मध्ययुगीन तथा वर्तमान भारत म उत्तमपुरुष की जा धारणाय विवक्षित हुई है उनम एक आर आध्यात्मिक तथा निवृत्तिवादी प्रवृत्ति का विचारो मध्ययुग का समन्वय हुआ है और दूसरी ओर, ज्ञान भक्ति तथा काम के वर्तमान युग तक समन्वित रूप का समावेश। त्रिगुण विचारधारा के ज्ञानश्रयी करिया का कल्पाचार और मसार को मिथ्या कहा और, त्रिगुण के ज्ञान तथा भक्ति को भक्ति का साधन माना, लकिन सासारिक जीवन तथा लोभसग्रह के विचार का नहीं छाड़ा। गुरुदास तथा तुलसीदास जस सगुण विचारधारा के भक्त कविया न राम और कृष्ण के रूप में उत्तमपुरुष की धारणा को प्रतिपादित किया। उन्होंने एक ओर, उत्तम पुरुष का अलौकिक मानवीकरण माना और दूसरी ओर, उस लोभसग्रहाय कामयोगी या लीलाधारी का रूप मे प्रस्तुत किया। राम और कृष्ण सम्भवामि युग युग की विचारधारा के सद्म म मर्यादापुरुषोत्तम के रूप मे प्रस्तुत किए गए हैं। राम और कृष्ण पुरुषोत्तम हैं जो युग युग की आवश्यकताओं के अनुसार, मर्यादाओं की रक्षा तथा लोभसग्रह के लिए, मानवी आधार मे, उत्तमपुरुष का रूप धारण करते हैं। उत्तमपुरुष की यह धारणा पुरुषोत्तम की धारणा म लीन हो जाती है, और इगकारण उत्तमपुरुष वस्तुतः वह अलौकिक पुरुष हो जाता है जो लोभसग्रह के लिए और युगधर्म की रक्षा के लिए उत्तमपुरुष के रूप मे इस ससार म आता है। इस दृष्टिकोण से उत्तमपुरुष एक अलौकिक आत्मा नहीं बरन युग की

भी आत्मा है। श्री अरविन्द ने उत्तमपुरुष को वह अलौकिक आत्मा माना है जो कृष्ण के रूप में प्रत्येक युग के कुरुभोज रूपी धर्मक्षेत्र में अधम का नाश करने के लिए तथा धर्म की स्थापना के लिए अवतरित हुआ करती हैं। उत्तम दिव्य है, अतः उत्तमपुरुष भी वह दिव्य पुरुष है जिसमें युग के आदर्श सन्निहित रहते हैं।

आठवीं शताब्दी से लेकर वर्तमान समय तक भारत, एक ओर, राजनतिक दासता का भारत रहा है और, दूसरी ओर विजेता सभ्यताओं का सघन तथा उमम उत्पन्न होने वाले सांस्कृतिक और बौद्धिक कालाहल का भारत। इस्लाम और इसाई मजहब सहिष्णुता, स्याद्वाद और अनेकतवाद के आधारभूत विचारों पर सीधे-सीधे घात करते रहे हैं क्योंकि ये मजहब मिश्रणरी मजहब हैं। इनका उद्देश्य रहा उन आध्यात्मिक तथा सामाजिक विस्वासा-तत्काचारा और परम्पराओं का प्रसार जिन्हें इनमें अन्तिम सत्य के रूप में प्रतिपादित किया गया है। पश्चिमी पूँजीवादी व्यवस्था जो अजन भावना (The Idea of Acquisition) पर आधारित है, पारलौकिकता, त्याग दान अस्तय आत्मनिग्रह और लानमग्रहण कम के विचारों के विरोध में आती है। यह पाल भारत के राजनतिक साम्प्रतिक तथा सामाजिक पराजय और पुनरुत्थान का काल रहा है। पराजय से पाप पान की भाँसा एक शब्दा ने अलौकिकता और प्रपत्ति के भाव का प्रोत्साहित किया जिस, जगत्कि राम और कृष्ण के इस युग में प्रतिपादित स्वप्ना से स्पष्ट है, उत्तमपुरुष की धारणा में आत्म सात किया गया। इस युग का उत्तमपुरुष जहाँ अलौकिक है वहाँ उह निष्काम कमठ भी है। वह कम में इसलिये लीन होता है कि धर्म की रक्षा हा सबे और सत्य मस्थापित हो मके। वह अधम और अगत्य का विरोधी है। वह अधम और दासत्य के प्रतीक रावण और कम का वधक है। वह एक दिव्य पद्यप्रणय है, जिगवा उद्देश्य है निगमागम सम्मत आत्माओं की प्रतिस्थापना करना। यहाँ पूणतर वह अलौकिक है, जाणतिहामिक परिस्थितियों की आवश्यकताओं के अनुसार, मानव क्रिया कताप में पूणत्व लाने के लिए हस्तगोप किया करता है।

पुनरुत्थान के इस काल में बुद्धवादी, जैनवादी और गीता तथा वनात में प्रतिपादित उत्तमपुरुष की धारणाओं में, उत्तमपुरुष के विचारों को प्रभावित किया है। राजनतिक तथा सांस्कृतिक स्वातन्त्र्य के लिए अहंता सधम और युग की आवश्यकता नुसार समाजनुषार, इस युग की दो आधारभूत आवश्यकताएँ रही हैं जिनमें इस युग की उत्तमपुरुष की धारणाएँ प्रभावित हुई हैं। स्वातन्त्र्य-मग्राह में निष्काम कमठता की माँग का, जिन जैनवादी, बुद्धवादी और गीता के विचारों में प्रेरणा मिली। आवश्यक समाजनुषार में उत्तम परिस्थितियों का ध्यान रख करन हुए, सामाजिक

1 रामायण के विषय में मुसतादात ने कहा है नाना पुराण निगमागम सम्मत मत्त रामायणे निगमित कश्चिदप्यतोपि

संगठन के पुनरुत्थान के विचार तथा आवश्यकता को आयसमाज तथा वेदा त से प्रेरणा मिली । सामाजिक सुधार और स्वातन्त्र्य संग्राम की आवश्यकता ने पूजीवाद के समक्ष भी लोकसंग्रह के विचार को सर्वोपरि रखा । साथ ही साथ, पश्चिमी विज्ञान से प्रकीर्ण होती हुई लौकिकता (Secularism) की विचारधारा से अलौकिकता की विचारधारा यदि खण्डित नहीं हुई तो, कूठित होकर, मद अवश्य पड़ी । इन विभिन्न प्रभावों के परिणामस्वरूप, इस युग में उत्तमपुरुष की कई धारणायें प्रतिपादित हुईं, जो नई परिस्थितियों में, पुरानी धारणाओं का पुनरुत्थान हैं । तिलक ने गीता के निवचन के आधार पर उस उत्तमपुरुष का रूप जनमानस के सम्मुख प्रस्तुत किया जो निष्काम कमयोगी है और स्वतन्त्रता जिसका जन्मसिद्ध अधिकार है । रामकृष्ण परमहंस के नायों और विचारों से जिस उत्तमपुरुष का रूप उभरता है वह सभी में एक ही सत्ता देखता है, उसमें ऊँच-नीच का भेद भाव नहीं है वह दोनों के प्रति द्रवित है और प्रत्येक व्यक्ति के लिए वही धर्म उचित मानता है, जिससे कि प्रत्येक व्यक्ति जन्म दीक्षित है । स्वामी विवेकानन्द का उत्तमपुरुष स्वतन्त्रता प्राप्ति, सामाजिक दीनता और कुरीतियों को नष्ट करने तथा पश्चिमी विज्ञान और भारतीय आध्यात्मिकता के समन्वय के लिए अग्र और कम-गोल है । वह सयासी है, जीवमुक्त है किन्तु वह राजनैतिक आन्दोलन का प्रणेता तथा समाजसेवी है । लोकसंग्रह उसका मुख्य ध्येय है । वह ब्रह्मनिष्ठ है, वह 'आत्मवत्सवभूतेषु' की भावना से विभोर है । वह अपने प्रति निष्पक्ष है न कि लोकसंग्रह के प्रति । आयसमाजी विचारधारा का उत्तमपुरुष वेदों के प्रति कँठे हुए अज्ञान को नष्ट करने तथा वेदविहित आदर्शों के आधार पर समाज के पुनसंगठन के प्रति वैसे ही तत्पर है जैसा कि युद्ध के लिए प्रेरित सनानी । उसके लिए वही हिंदू है जो आर्यों को देन है और वेदविहित है ।

गांधी की विचारधारा में उत्तमपुरुष की धारणा सत्याग्रही की धारणा के रूप में अवतरित हुई है । गांधी की विचारधारा पर पारलौकिकता का प्रभाव है । राम से उन्हें प्रेरणा मिलती है । लेकिन गांधी की विचारधारा में प्रतिपादित उत्तमपुरुष अलौकिक नहीं है वह पूणतया लौकिक और इस सत्ता का पुरुष है । गांधी की विचारधारा अहिंसा, अपरिग्रह और निरन्तर सत्यशील के विचारों से प्रभावित है । लेकिन, गांधी का उत्तमपुरुष अलौकिक से उतना प्रेरित नहीं है जितना कि लोककल्याण की भावना से । सत्याग्रह का अर्थ है सत्य के लिए अहिंसात्मक आग्रह और अक्षय्य से निरन्तर अहिंसात्मक असहयोग । ईश्वरनिष्ठा सत्यनिष्ठा अहिंसा अपरिग्रह और मन, वचन तथा कर्म से सर्वात्म प्रेम सत्याग्रह के मूल आधार हैं । सत्याग्रह वस्तुतः जीवनदर्शन है, जिसमें सत्यनिष्ठ हुआ व्यक्ति ईश्वरेच्छा की पूर्ति करता है । सत्याग्रह, सत्यनिष्ठा, सत्यशोध, प्रपत्ति और गीता के निष्काम कमयोग पर आधारित है । सत्याग्रह शोधकारी अनुशासन पर आधारित है क्योंकि, गांधी के अनुसार,

कम को असह तथा द्वेषरहित कर लिया है, जिसमें सत्मानुभूति के द्वारा सत्यनिष्ठा आ गई है, जो दृढ़ निश्चय से उत्पन्न होने वाले साहस तथा उत्साह से प्रेरित है और जिम्मे अपरिग्रह, अस्तम्य तथा अहिंसा को हृदयगत कर लिया है। सत्याग्रही में चार गुण आवश्यक हैं—पहला, ब्रह्मचर्य जिसका अर्थ अविवाहित जीवन नहीं करना मन, वचन तथा काम से इंद्रियों पर पूर्ण नियंत्रण है, दूसरा सत्यनिष्ठा सर्वोत्तमप्रेम और अहिंसा, तीसरा निडरता दृढ़ निश्चय और यह भाव की उससे (सत्याग्रही के) सारे कार्य सत्य और ईश्वर-च्छा से प्रेरित हैं और चौथा अपरिग्रही जीवन जो दरिद्रनारायण का प्रतीक है।

अपरिग्रह का तात्पर्य दीनता या गरीबी से नहीं है। अपरिग्रह का तात्पर्य है कम से कम भौतिक वस्तुओं का प्रयोग क्योंकि स्वच्छिन्न त्याग से सम्यक् दृष्टि का अभ्युदय होता है। सत्याग्रही में लाजमग्रह की प्रेरणा है। इसीलिए, जलम दया, करणा और प्रेम के साथ-साथ काम टठा भी है। सत्याग्रही में लाजमग्रह की प्रेरणा इतनी प्रबल है कि वह ससार का बंधन टगम मात्र नहीं है। ममार में सत्य की स्थापना के लिए वह निरन्तर विद्यार्थी रहता है क्योंकि अहिंसा के द्वारा असत्य का विनाश उसका धर्म है और वह उसके लिए सत्य तत्पर रहता है। वह सत्य की स्थापना के लिए तब तक निरन्तर प्रयत्नशील और कष्ट झेलता रहता है जबतक कि समाज का वांछित रूपान्तरण न हो जाय। सत्याग्रही का आदर्श उस समाज की स्थापना करना है जिसमें सदस्य आध्यात्मिकता में प्रबुद्ध हो गये हों और इसकारण अहिंसक अपरिग्रही, सरल, गूढ़ और तपस्वी जीवन की ओर स्वतः प्रेरित हों। सत्याग्रही, इग्नप्रकार, एक आत्मा तथा समाज-मूल्य उत्तमपुरुष है जो, एक आदर्श समाज की स्थापना के विचार से प्रेरित होकर लोचनग्रह के कार्य में लगा हुआ है। गांधी का आत्मा समाज अस्तित्व और अपरिग्रह पर आधारित वह समाज है जो मसीह, ओद्योगिकता पूनीवाद और सहरीकरण के दायों से मुक्त है।

अज्ञान वेदान्त की विचारधारा में प्रभावित होने के कारण, राष्ट्रावृत्तन के पूरा तब सम्बन्धी विचारों पर जीव-मुक्ति की धारणा का प्रभाव स्पष्ट है। राष्ट्रावृत्तन में पूरापुरुष की मुक्तताया कहा है। वहीं व्यक्ति मुक्ततात्मा है जिसने आत्मसर्व के अनुभव के द्वारा अपने व्यक्तिता का पूरातया एकीकृत कर लिया है, जिसका तब प्रकाश में परिणत हो गया है तथा हृदय प्रेम में और इच्छा सत्ता में, जिसके प्रयत्न अनुशासित हैं जिसमें आत्मा के एकत्व की भावना निश्चित रूप से सुधी है और जिसमें अविद्या एषणा, अहं, द्वेष तथा सिद्धा वचन का नाश हो गया है। मुक्ततात्मा शारदक के प्रति सदैव जागरूक रहता है और इच्छा जागरूकता के साथ ममार के कर्मों का सम्पादन करता है। साधुतात्मा उसका सहजगुण है जिसके समान बौद्धिकता का उद्गम पीकी लगती है। मुक्ततात्मा विनम्र धरमान तथा कष्टसाध्य होता है। यह दूसरे के दाय का नहीं दायता क्योंकि वह दूसरों को सम

संगठन के पुनरुत्थान के विचार तथा आवश्यकता को आयसमाज तथा वदात्त से प्रेरणा मिली। सामाजिक सुधार और स्वातंत्र्य संग्राम की आवश्यकता ने पूजिवाद के समक्ष भी लोकसंग्रह के विचार को सर्वोपरि रखा। साथ ही साथ, पश्चिमी विज्ञान से प्रकीर्ण हाती हुई लौकिकता (Secularism) की विचारधारा से अलौकिकता की विचारधारा यदि खण्डित नहीं हुई तो, कुठित होकर, मद अवश्य पड़ी। इन विभिन्न प्रभावों के परिणामस्वरूप, इस युग में उत्तमपुरुष की कई धारणायें प्रतिपादित हुईं, जो नई परिस्थितियों में, पुरानी धारणाओं का पुनरुत्थान हैं। तिलक ने गीता के निवचन के आधार पर उस उत्तमपुरुष का रूप जनमानस के सम्मुख प्रस्तुत किया जो निष्काम कामयागी है और स्वतंत्रता जिसका जन्मसिद्ध अधिकार है। रामकृष्ण परमहंस के वायों और विचारों से जिस उत्तमपुरुष का रूप उभरता है वह सभी में एक ही सत्ता देखता है, उसमें ऊँच नीच का भेद भाव नहीं है वह दोनों के प्रति द्रवित है और प्रत्येक व्यक्ति के लिए वही धर्म उचित मानता है, जिससे कि प्रत्येक व्यक्ति जन्म दीक्षित है। स्वामी विवेकानन्द का उत्तमपुरुष स्वतंत्रता प्राप्ति, सामाजिक दीनता और कुरीतियों को नष्ट करने तथा पश्चिमी विज्ञान और भारतीय आध्यात्मिकता के समन्वय के लिए व्यग्र और कमशील है। वह सयासी है, जीवमुक्त है किन्तु वह राजनैतिक आन्दोलन का प्रणेता तथा समाजसेवी है। लोकसंग्रह उसका मुख्य ध्येय है। वह ब्रह्मनिष्ठ है, वह 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की भावना से विभोर है। वह अपने प्रति निष्पक्ष है नकि लोकसंग्रह के प्रति। आयसमाजी विचारधारा का उत्तमपुरुष वेदों के प्रति फल हुए अज्ञान को नष्ट करने तथा वेदविहित आदर्शों के आधार पर समाज के पुनर्संगठन के प्रति वैसे ही तत्पर है जसाकि युद्ध के लिए प्रेरित सनानी। उसके लिए वही हिन्दू है जो आयों की देन है और वेदविहित है।

गांधी की विचारधारा में उत्तमपुरुष की धारणा सत्याग्रही की धारणा के रूप में अवतरित हुई है। गांधी की विचारधारा पर पारलौकिकता का प्रभाव है। राम से उन्हें प्रेरणा मिलती है। लेकिन, गांधी की विचारधारा में प्रतिपादित उत्तमपुरुष अलौकिक नहीं है, वह पूणतया लौकिक और इस ससार का पुरुष है। गांधी की विचारधारा अहिंसा, अपरिग्रह और निरन्तर सत्यशील के विचारों से प्रभावित है। लेकिन, गांधी का उत्तमपुरुष अलौकिक से उतना प्रेरित नहीं है जितना कि लोककल्याण की भावना से। सत्याग्रह का अर्थ है सत्य के लिए अहिंसात्मक आग्रह और असत्य से निरन्तर अहिंसात्मक असहयोग। ईश्वरनिष्ठा, सत्यनिष्ठा, अहिंसा, अपरिग्रह और मन, वचन तथा काम से सर्वात्म प्रेम सत्याग्रह के मूल आधार हैं। सत्याग्रह वस्तुतः जीवनदर्शन है जिसमें सत्यनिष्ठ हुआ व्यक्ति ईश्वर्रेच्छा की पूर्ति करता है। सत्याग्रह, सत्यनिष्ठा, सत्यशोध, प्रपत्ति और गीता के निष्काम कामयोग पर आधारित है। सत्याग्रह शोषकारी अनुशासन पर आधारित है क्योंकि, गांधी के अनुसार, वही सत्याग्रह का अधिकारी है जिसने आत्मशुद्धि के द्वारा अपने मन, वचन तथा

कम को असग तथा द्वेषरहित कर लिया है, जिसमें सत्यानुभूति के द्वारा सत्यनिष्ठा आ गई है, जो दृढ़ निश्चय से उत्पन्न होने वाले साहस तथा उत्साह से प्रेरित है और जिसने अपरिग्रह, अस्तेय तथा अहिंसा का हृदयगम कर लिया है। सत्याग्रही में चार गुण आवश्यक हैं—पहला, ब्रह्मचर्य जिसका अर्थ अविवाहित जीवन नहीं बरन मन, वचन तथा कम से इंद्रियों पर पूर्ण नियन्त्रण है, दूसरा सत्यनिष्ठा सर्वात्मप्रेम और अहिंसा तीसरा 'निडरता' दृढ़ निश्चय और यह भाव की उसके (सत्याग्रही के) मारे काय सत्य और ईश्वरच्छा से प्रेरित है, और चौथा, अपरिग्रही जीवन जो दरिद्रनारायण का प्रतीक है।

अपरिग्रह का तात्पर्य दीनता या गरीबी से नहीं है। अपरिग्रह का तात्पर्य है कम से कम भौतिक वस्तुओं का प्रयोग, क्योंकि स्वच्छिन्न त्याग से सम्यक् दृष्टि का अभ्युदय होता है। सत्याग्रही में लोभमग्रह की प्रेरणा है। इसीलिए, उसमें दया, क्षमा

रूपेण जानने का दावा नहीं करता है। मुक्तात्मा के एगणारहित प्रेम से दुखी हृदयों को सात्वना मिलती है। मुक्तात्मा, वस्तुतः, रचनात्मक जीवन का बलाकार है। मुक्तात्मा, इस प्रकार, एक भ्रोर, शाश्वत के प्रति जागरूक है और, दूसरी ओर अपने सत्व के प्रति असंग रहित होकर, लोकसंग्रह के लिए कायशील है। मुक्तात्मा स्वपरक न होकर, शाश्वतपरक तथा समाजपरक होता है।

हिन्दुत्व के वचारिक आधार तथा आदाग नियम, जैसाकि पिछले वणन से स्पष्ट है, धम पुरपाथधम, वर्णाश्रमधम, कमधम, राजधम, कुलधम तथा उत्तमपुग्ग की धारणाओं से प्रेरित हैं। हिन्दू विचार लौकिकता और अलौकिकता से एक साथ प्रेरित है। हिन्दू सामाजिक विचार वस्तुतः दार्शनिक विचार है। हिन्दुत्व में व्यक्ति तथा समाजसम्बन्धी विचारों को दर्शन के आधार पर प्रतिपादित किया गया है। यहाँ दर्शन का अर्थ केवल तर्कान्वित आदर्श विचार से नहीं है। यहाँ दर्शन ज्ञान है और ज्ञान पारलौकिक सत्य की वह अनुभूति है जो ज्ञान से पर है। पारलौकिक सत्य की अनुभूति से मोक्ष प्राप्ति जीवन का उच्चतम उद्देश्य है। जीवन के दो पहलू हैं—व्यक्तिक और सामाजिक। व्यक्तिक और सामाजिक एक दूसरे के विराधी नहीं बरन पूरक है क्योंकि पारलौकिक सत्य की अनुभूति और मोक्ष के लिए व्यक्ति का सामाजीकरण आवश्यक है। समाज बंधन नहीं बरन सर्वोत्तम उद्देश्य की पूर्ति का साधन है। इसीलिए, व्यक्तिक स्वायत्त नहीं बरन लोकसंग्रह महत्वपूर्ण है। पूर्णपुरष का उदभव-स्थान और क्रिया क्षेत्र समाज है। लेकिन, समाज लौकिक है, वह पारलौकिक की छाया मान है। पूणत्व पारलौकिक की प्राप्ति में है। समाज पारलौकिक की प्राप्ति का साधन बना रहे, इसलिए, समय समय पर समाज को सुधारने के लिए मानवरूप में स्वयं पारलौकिक अवतरित हाता है। इस प्रकार, रहस्यविचार और पारलौकिकता, हिन्दू सामाजिक तथा व्यक्तिक जीवन के आधार हैं। प्रवृत्ति अवश्यम्भावी है निवृत्ति सर्वोत्तम आवश्यक साधन और दोनों का आधार तथा माध्यम समाज है। हिन्दुत्व में समाज को साधन और माध्यम माना गया है—वह साधन जिससे जीवन के सर्वोत्तम उद्देश्य की प्राप्ति होती है। समाज, एक साधन के रूप में, सामाजिक आदर्श नियमों (Social Norms) या लोकाचारों से बंधा है। आदर्श नियमों की सामाजिक अभिव्यक्ति संस्थाओं में होती है। संस्थाययंक्ति के सामाजीकरण का माध्यम होती हैं और संस्थाओं के द्वारा व्यक्ति अपने समाज के सांस्कृतिक आदर्श के समीप पहुँचता है। हिन्दू संस्थाओं और हिन्दू सांस्कृतिक आदर्श पारलौकिकता के विचार से प्रेरित हैं।

भारतीय संस्कृति में इस्लाम

भारत में इस्लाम

हिन्दुत्व और इस्लाम

भारत के सांस्कृतिक उद्विकास में गणक का अभ्युदय और इस्लामी सांस्कृतिक धारा का प्रवाह साथ साथ प्रारम्भ हुआ है। आठवीं शताब्दी से गणक अठारहवीं शताब्दी तक का काल एक अर, हिन्दुओं और मुसलमानों में चलने वाले राजनतिक सघष का काल है तो दूसरी ओर दार्शनिक उद्घावाह सामाजिक सुधारों और विपत्तियों का। इसी काल को एक ओर मध्ययुग कहा जाता है तो दूसरी ओर मुस्लिम काल। सांस्कृतिक उद्विकास व इतिहास के दृष्टिकोण से मुस्लिम काल ही सना निरर्थक है क्योंकि इस काल में मुसलमानों को भारत पर पूर्ण राजनतिक प्रभुत्व कभी नहीं मिला। सात सौ बारह इसवी में मुहम्मद बिन-कासिम के द्वारा सिंध के कुद्ध शहर जीत लेने का अर्थ भारत में मुस्लिम काल का प्रारम्भ होना नहीं है और न उस समय से हिन्दू सस्कृति के उत्तरोत्तर उद्विकास की प्रक्रिया में कोई व्यवधान ही आया है। सारे मुस्लिम काल के जान बाल काल में भारत के किसी न किसी भाग में, हिन्दू राज्य रहे हैं जिनके अधिष्ठाता हिन्दू मायता के अनुसार धर्म राज्य स्थापित करने का प्रयत्न करते रहे हैं। काबुल लाहौर दिल्ली अजमेर कानौज, मालवा और गुजरात के राजपूत शासक जाक्रमणकारी इस्लाम को राक कर हिन्दू मायता के अनुसार धर्म राज्य की स्थापना करते हुए समाप्त हुए हैं। चौदहवीं शताब्दी में

तुगलक के पतन के बाद, राजपूता ने अपने पुनरुत्थान का प्रयत्न किया और छठारहवीं शताब्दी के राजनैतिक भारत पर वस्तुतः हिंदुआ का प्रभुत्व था¹। राजनैतिक सर्वोपरिता व दृष्टिकोण से केवल तरहवीं शताब्दी के अंत या चौदहवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक का काल ही मुस्लिम-काल कहा जा सकता है। किन्तु, सांस्कृतिक विकास का तारतम्य में जहां आधारभूत धारा प्रवाहित होती रहती है इन कालों में अधिक महत्वपूर्ण हैं व परिवर्तन प्रतियोगों, जिनमें मुख्य साम्प्रतिक धारा के विचार बटत-छटत तो हैं, उसकी गति भी बदलती है पर उसकी दिशा में परिवर्तन नहीं आता है।

भारत की हिंदू-संस्कृति में इस्लामी धारा के मिलन के बाद से ही भारतीय संस्कृति का रूप आता है। इस्लाम की उत्पत्ति ऐतिहासिक प्रक्रिया में हुई है। इस्लाम इतिहास में समाया हुआ है और इस्लाम में इतिहास। इस्लाम एक और एक मजहबी आस्था है ता दूसरी ओर, एक सामाजिक ऐतिहासिक प्रवाह। हिंदुत्व और इस्लाम का मिलन वस्तुतः उन दो ऐतिहासिक प्रवाहों का मिलन है जिनमें मानव-जीवन के सभी पक्ष निहित हैं जिनका उत्पन्न और विरास अल्प अल्प स्थानों में हुआ और अपना ऐतिहासिक परिस्थितियों के कारण जो एक दूसरे के विभेदक सिद्ध हुए। मध्ययुगान् भारत के ऐतिहासिक चरित्र हिंदुत्व पर इस्लाम के समागम की बात करता है क्योंकि उनकी यह मान्यता है कि इस काल में हीन काल सामाजिक साम्प्रतिक परिवर्तन इस्लाम के समागम के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष परिणाम हैं²। समाज शास्त्राय नद। में यह दृष्टिकोण एकांगी है क्योंकि यहाँ यदि इस्लाम का सम्पर्क हिंदुत्व में हुआ तो हिंदुत्व का इस्लाम में। दाना इतिहास की आग अल्प प्रतियोगों थी और नाना का राजनैतिक मरणात् प्राण थी। अपनी अपनी समस्यकारों समताओं के कारण यदि इस्लाम ने हिंदुत्व के संस्करण उपस्थित किए तो हिंदुत्व न इस्लाम के और इस्लाम संस्करण के माध्यम से दाना का भारतीयकरण हुआ। फिर भी, इस्लाम और हिंदुत्व के भारतीयकरण की प्रक्रियाओं के बीच, इस्लाम न इस्लाम बने रहने का प्रयत्न किया और हिंदुत्व न हिंदुत्व। इस्लाम न औरगज्ज का जन्म लिया तो हिंदुत्व न गिवात्री और मुग्गाविर्गित्त का और कालान्तर में, एक ओर, परिवर्तन बना ता, दूसरी ओर, इस्लाम अथवा भारत।

- 1 सरकार, धिनचतुमार दि पौगित्तिक बक्ष्य उअ आक हिंदू शासितपण्योत्रो प्रथम त्रिद, पृष्ठ ९०-१००
- 2 उदाहरण के लिए इतिहास डॉ० ताराचंद वृत्त इन्समुबेस आक इस्लाम आन इस्लाम।

इस्लाम

भारत में इस्लाम के प्रवेश से उत्पन्न परिवर्तन प्रक्रियाओं का समन्वय करके इस्लाम के स्वरूप और उसकी इतिहास जनित विशेषताओं की व्याख्या आवश्यक है। रहस्यवादी अनुभूति में अग्रगणित, इस्लाम इस प्रकार के मजहबी विचारों का अभिव्यक्ति है, जिसका बीजारोपण उम्र समय हुआ था जब अरब में मक्का निवासी हजरत मुहम्मद (570-610) का इस बात का दिव्य ज्ञान हुआ था कि वे ईश्वर के दूत हैं और उनके माध्यम से मानव मांस के कल्याण के लिए ईश्वर के आदेश अवतरित हो रहे हैं। इस्लाम उस समय प्रकृतित हुआ था जब अरब रहस्यवादी सृष्टि ज्ञान का प्रचार करने के कारण हजरत मुहम्मद का मक्का में विरोध हुआ और उन्हें भागकर मदीना में गिरफ्तारी पड़ी जहाँ मुहम्मद के नेतृत्व में, इस्लाम पलायित हुआ एक छोटे से मजहबी राष्ट्रवादी समुदाय के रूप में, जो निरंतर बढ़ता ही रहा है। इस्लाम की स्थापना के लिए इसी समुदाय ने अरब मक्का विजय की ता इस्लाम का राजनतिक रूप उभरा। हजरत मुहम्मद के जीवन काल ही में पश्चिमी अरब पर इस्लाम का झंडा गड़ गया था। हजरत मुहम्मद की मृत्यु के बाद एक शताब्दी बीतते बीतते सिंधु से लेकर भारत तक इस्लाम का झंडा लहराने लगा था। ईसा की तेरहवीं शताब्दी के आस पास इस्लामी विचारों और अनुभूतियों ने एक सभ्यता विरोध का रूप ले लिया था। पिछले तरह ही वर्षों के निरंतर प्रसार का परिणाम है कि आज इस्लाम उस बड़े भूभाग का प्रधान मजहब है जो उत्तरी अफ्रीका और पश्चिमी एशिया के आस पास होता हुआ पामीर तक आता है और वहाँ से, पूर में मध्य एशिया तथा चीन और दक्षिण में पाकिस्तान में विलीन हो जाता है¹। अपने इस व्यापक प्रसार में, एक ओर इस्लाम ने अनेक प्रजातियों (Races) गणजातियों (Tribes) और राष्ट्रों (Nations) को एक सामाजिक धार्मिक सूत्र में बांधने का प्रयास किया तो, दूसरी ओर वह एक प्रबल राष्ट्रनिर्मात्री शक्ति सिद्ध हुआ। इस्लाम कहीं मघात से अरबी बर ईरानी, तुर्कानी अफगानी और अल्बानिया आदि क निवासियों का अलग अलग राष्ट्रीय पुनर्जन्म हुआ।

1 इस्लाम के अनुयाइयों का प्रसार क्षेत्र इतना ही नहीं है, यद्यपि यह एक प्रमुख क्षेत्र है। भारत में इस्लाम प्रमुख मजहब नहीं है। किंतु मलाया प्रायद्वीप तथा पूर्वी द्वीप समूह से लेकर फिलिप्पाइस तक इस्लाम एक प्रमुख मजहब है। टगानिका और जर्जीबार वाले अफ्रीकी क्षेत्र में भी इस्लाम प्रधान मजहब है किंतु दक्षिणी अफ्रीका के राज्य सघ में मुसलमानों की संख्या छुटपुट है। उत्तरी तथा दक्षिणी अफ्रीका में पाए जाने वाले मुसलमान मध्य एशिया से स्थानांतरित हुए हैं — गिब, मोहम्मद इतिहास पृष्ठ 3

होना है और न मोक्ष^१। प्रलय (क्यामत) के द्वारा एक दिन इस ससार का नाश होना है और जब तक प्रलय नहीं आती है, प्रत्येक मत मनुष्य का कर्म पडा रहना पड़ेगा। क्यामत के बाद हर एक को, ईश्वर के निणय के अनुसार स्वर्ग या नर्क में जाना होगा। चूँकि ससार का जन्म है और मरणा का पुनर्जन्म नहीं है मनुष्य का केवल एक ही धर्म है और वह है हजरत मुहम्मद द्वारा बनाए हुए ईश्वरीय आदेशों के अनुसार चलकर ईश्वरीय कृपा पान का निरन्तर प्रयास करना क्योंकि एहिक तथा पारलौकिक सुख के लिए ईश्वरीय कृपा आवश्यक है। नमाज (प्राथना), रोजा (रत उपास) जहात (भिक्षा दान) हज (तीर्थ यात्रा) और जिहाद^३ के माध्यम से मनुष्य ईश्वर की कृपा पा सकता है।

इस प्रकार इतिहास के क्रम से उत्पन्न, इस्लाम एक दृढ़, आत्म विश्वासी और विजयाकांक्षी मजहबी आस्था है। यह आस्था केवल मानसिक (Psychical) नहीं है क्योंकि यह मरणा के समष्टि में सभटे हुये है और धर्म को राष्ट्र अनुगामन तथा सम्यता में। इस्लामी आस्था का प्रथम प्रस्फुटन हुआ था एक समुदाय में जिसने अपने शासक और धर्मगुरु (हजरत मुहम्मद) को स्वयं चुना था। इसीलिए, इस्लाम में मिल्लत (समुदाय) अधिक महत्वपूर्ण है न कि मलिक (शासक) या व्यक्ति। इस्लाम का जन्म हुआ था एक धार्मिक राष्ट्रीय चेतना के रूप में। इसीलिये इस्लाम में शासक और धर्म गुरु एक में मिल गये। इस्लाम ने सदैव राष्ट्र और मजहब को

१ जीव, आत्मा माया मोक्ष या निर्वाण जसी मायतारों इस्लाम में नहीं है। सूफीवाद में एसी मायतारों अवश्य मिलती है पर वास्तव में सूफीवाद मुहम्मद द्वारा प्रतिपादित इस्लाम का एक विभेद है। सूफीवाद की आत्मा इस्लाम की जयेश्वा वेदा न के अधिक समीप है। इस्लाम में जीव अविनाशी और ईश्वर का अंश नहीं है। ईश्वर के समक्ष मनुष्य केवल दया की भिक्षा माग सकता है। हिन्दुत्व में, ईश्वर की दया के बावजूद भी, धर्म की छाया अमिट रहती है। सम्भवतः इसी कारण हिन्दुत्व की प्राथना (इबादत) में आराध्य में लीन हो जाने की प्रेरणा है और इस्लाम में कृपा भिक्षा मागने की सोझ (अनलहक) या 'खुदी की कर बल व इतना कि हर तकदीर से पहले, खुदा बन्दे से फिर पूछे कि बता तेरी रजा क्या है जसी कल्पनाएँ इस्लाम की आत्मा के विरुद्ध हैं।

२ इस्लाम में हज का अर्थ है मक्का मदीना को यात्रा करना।

३ जिहाद का मूल अर्थ है हजरत मुहम्मद द्वारा मिले ईश्वरीय ज्ञान का प्रसार करना। किन्तु इस्लाम के प्रसार के लिए स्वयं हजरत मुहम्मद ने तलवार उठाई थी। बाद में इस्लामी साम्राज्य के फलने के साथ जिहाद का अर्थ हो गया धर्मयुद्ध और आज जिहाद इमो अर्थ में प्रयुक्त होता है।

एक म मिश्रित का प्रथम किया है और इसी कारण इतिहास में इस्लाम एक प्रबल राष्ट्रनिमात्रा गति रहा है। भारत में पाकिस्तान का निर्माण इसा ऐतिहासिक प्रक्रिया में सम्बन्धित है। इस्लाम, व्यक्ति का एक राष्ट्रीय और सामाजिक अनुष्ठान में वाचन का प्रथम है। मुसलमानों के मन का यह है कि यह ज्ञान में सीधा लाना जा अद्वितीय, अनिम रक्ष्यात्मक और निरन्तर उन मानव और राष्ट्र का उत्थान बनना जा इसी ज्ञान पर आधारित है तथा उन द्वारा और अनुष्ठान का अपना जा पूर्वनिर्धारित है और जा पहलू है स उचित मान लिये गए हैं। जिज्ञासा का स्थान पर, मुसलमान द्वारा मिल ईश्वरीय आदेश का पालन ही इस्लाम की अन्तर्गत धर्मशास्त्री से मुख्य मांग है और मुसलमान का उत्तम वर्ण उमर है। ईश्वर का ज्ञान का प्रचार (जिहाद) मुसलमान का कर्तव्य है। इसी कारण इस्लाम एक अनुष्ठानिक आस्था है और प्रत्येक मुसलमान एक महज सिद्ध मिश्रित (सम प्रचारक)। अपने ऐतिहासिक संदर्भ में, इस्लाम एक सामाजिक आस्था का स्थापित करने का प्रथम है जिसका एक आधार है इस्लामा निरन्तर ज्ञान और दूसरा ऐतिहासिक प्रथम सामाजिक विराजण जो मनुस्मिन्सक न होकर जयनामूक है।

इस्लाम का आविर्भाव और जन्म हुआ है एक मुसुविज्ञान (Rationalized) सामाजिक, राजनितिक, धार्मिक और निरन्तर आस्था का रूप में ज्ञानमय का धार्मिक ऐतिहासिक विकास का एक पूर्वनिर्धारित भाव यकता और ऐतिहासिक मानी गयी है। इस्लाम का प्रतिष्ठा पायका न इस आस्था का निरन्तर मुसुविज्ञान (Rationalization) किया है। यह मुसुविज्ञान ज्ञान निरन्तर बुद्धि, मुना, इस्लाम

1. इस्लाम का अनुयायी की पारसी में मुसलमान और अरबों में मुस्लिम की सजा दी जाती है। गिब न इस्लाम के लिये महम्मदवाद (Mohammadism) की सजा का प्रयोग किया है जिसका आधार पर मुसलमान का मुहम्मदवादी (Mohammadan) भी कहा जाता है। किन्तु इस पर यह आपत्ति का जा सकती है कि महम्मदवाद या महम्मदवाद में यह ध्येय होता है कि जमे मुहम्मद की ईश्वरता हो और इस्लाम महम्मद का धर्म हो। इस्लाम ईश्वर का धर्म है न कि महम्मद का। इस्लाम का विचारधर्मों की यह आपत्ति है कि महम्मदवाद इस्लाम के बस एक अंग को ध्येय करता है—यह अंग जो मुहम्मद का प्रतिपादनों से है सम्बन्धित है। गिब और सूफी सम्प्रदाय जो इस्लाम का अंग है यद्यपि वे मुहम्मदवाद का धर्म में नहीं मानते हैं। इस्लाम ईश्वर, मुहम्मदवाद का स्थान पर, धार्मिक उपयुक्त और धारण है।

2. उदाहरण के लिये बतिये गिब द्वारा रचित 'मोहम्मदनिष्ठ आर अन्तर्गत' इतिहासिक विवरण का इस्लाम। अन्तर्गत न इस्लाम का आविर्भाव की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का जा विवरण प्रस्तुत किया है जमे यह ध्येय होता

और गरिजन में, जिनका अन्वेषण पातन ही नहीं करन जिहाद (प्रसार) भी आवश्यक है। इस्लाम की उत्पत्ति ही उस स्थिति में हुई थी जिसमें राजा, राज्य, विधिसंहिता, समाज और संस्कृति सभी कुछ मजहब के आधीन हो गये थे। राजा (नबीफा), जो धर्म गुरु भी है जिहाद का प्रतिष्ठापोषण बना और इन्हें जानने वाले (उम्मा घमदिद) मजहब के रक्षक। कुरान मुना, हदीस और शरिअत की आत्मा अरबी है जिसके कारण इस्लाम का मूल आधार अरबीवादी है। इस्लाम का ग्रहण करने वाला से इस्लाम की अरबीपन में रहने की मांग करना रहा है। इस पश्ची पर ईश्वर का अनिम और सबथच्छ दिव्यमान हान के कारण, सिद्धान्त, इस्लाम परिवर्तन नहीं स्वीकार करता। समाज के मुस्लिम समाज का एकसूत्र में बाँधने तथा प्रथम महायुद्ध के बाद चित्तफतन का यत्न करने के प्रयास और अठारहवीं शताब्दी से तेर अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के बाद तक, जलिल मुस्लिम समाज में, इस्लाम की शुद्धता बनाये रखने के लिये चलन वाला बहावी जादोजन इस इतिहासजनित अरबी कटकरना के प्रतीक हैं। आठवीं शताब्दी से तेर अठारहवीं शताब्दी तक, इस्लाम जिन राजनतिक परिस्थितियाँ में रहा, उनसे अरबीपन को प्राप्ताह्न मिला, जिसके कारण इस्लाम में अरबीपन की लहर बराबर उद्विग्न होती रही है। इस्लाम का जहाँ भी प्रसार हुआ वहाँ वह राज्य में के रूप में रहा और मुसलमान शासक के रूप में जिसका परिणाम यह हुआ कि जिस समाज में इस्लाम का प्रवेश हुआ इस्लाम उस समाज में अरबीपन के लिये प्रेरित रहा। इस्लाम का उत्पन्न अम्युदय और प्रसार अरबीपन (Arabism) की प्रचण्ड लहर में बहता रहा है जिसके लिये न इस्लाम उत्तरदायी है न उसके प्रणेता और न मुसलमान। इस्लाम में अरबीपन के लिये उत्तरदायी है व ऐतिहासिक परिस्थितियाँ जिनमें इस्लाम का जन्म, वृद्धि और प्रसार हुआ है।

इस्लाम की अरबीवादी पवति का जन्म इतिहास में हुआ और इतिहास ही उसका विरोधी रहा है। इसी अरबीवादी प्रवृत्ति और उसमें उत्पन्न सामन्तव्यवहारी सामाजिक शक्ति के कारण अपन वृद्धि और विकास के दौरान में इस्लामनयी शक्ति का ग्रहण और एकीकरण करना रहा। यह एकीकरण इस्लाम के बौद्धिक जीवन (कला और विज्ञान) में प्रस्फुटित हुआ जिसमें मानव इतिहास में इस्लाम का अमूल्य योगदान आया है। किन्तु इस्लामी एकीकरण पर अरबीवादी का इतना प्रबल प्रभाव रहा है कि उसका विरोध भी हुआ रहा है और उसके कारण इस्लाम में विषम

है कि इस्लाम का आविर्भाव मानव इतिहास की उस अवस्था में हुआ है जहाँ तत्कालीन कोई भी धर्म मानव की जाध्यात्मिक जिज्ञासा का तट करने में समर्थ न था। अमीरअली जैसे समीक्षकों ने इस्लाम के उदभव और प्रसार की मानव विकास की ऐतिहासिक आवश्यकता का परिणाम माना है।

भारत में इस्लाम का प्रवेश

भारतीय सभ्यता में इस्लाम का प्रवेश, प्रसार वृद्धि और अस्तित्व इस्लामी इतिहास के अपवाद रह हैं क्योंकि लगभग तरह से वर्षों के सम्पर्क के बाद भी, अय स्थानों के विपरीत, भारत इस्लामी राष्ट्र न हो सका, भारत में मुसलमान अल्प-संख्यक ही रहे और यहाँ इस्लाम का अरबों फारसीयन सबस अधिक बदला ही नहीं वरन् उस जपन अस्तित्व के लिये सबसे अधिक संघर्ष भी करना पड़ा। भारत में इस्लाम और हिंदुत्व का भिन्न-दा ऐस ऐतिहासिक प्रवाहों का मिलन था जिनमें विजातीय तत्वों को आत्मसात करने का विलक्षण क्षमता थी। किन्तु इस्लाम और हिंदुत्व की इन क्षमताओं की प्रकृति में एक आधारभूत अंतर था जिसके कारण भारत में हिंदुत्व और इस्लाम के सम्पर्क से जो ऐतिहासिक स्थिति अस्तित्व में आई, वह इस्लाम के इतिहास में अपना ढंग की अनाखी थी। अपने प्रसार में, इस्लाम ज्यों-ज्यों जनक प्रजातियों, गणजातियों और राष्ट्रों को आत्मसात करता रहा त्यों-त्यों इस्लाम में सात्मीकरण का प्रवाह बढ़ता रहा क्योंकि स्वभावतः इस्लाम एक मिशनरी आस्था है¹। इस्लामी सात्मीकरण एक प्रवाह है जो अपने ससग में आने वाले को बहा ले जाता है। इस्लामी सात्मीकरण की एक ही दिशा है और वह है, उस इस्लामी आस्था में वक्षित होना जो हजरत मुहम्मद ने प्रतिपादित किया है और उस आस्था पर आधारित समुदाय का सदस्य बनना तथा उसका प्रसार करना। इस्लामी सात्मीकरण में रही है प्रसार की भावना और राजनैतिक प्रभुत्व की महत्वाकांक्षा। यही कारण है कि इस्लामी समाज अनेक प्रजातियों गणजातियों और राष्ट्रों का आत्मसात करते हुए और विजातीयतात्मक तथा मिश्रित होने पर भी एकीकृत रहा। सात्मीकृत यवित या समूह से इस्लामी सात्मीकरण की मांग है मौलिकता का परित्याग या इस्लाम की आत्मा के अनुरूप अपनी मौलिकता में आमूल चूल परिवर्तन।

इसके विपरीत हिंदू सात्मीकरण वह प्रक्रिया रही है जो एकमुखी न होकर बहुमुखी है और जिसमें बाहर से आया हुआ समूह, आवश्यकतानुसार परिवर्तित होकर अपनी मान्यता बनाय रहता है तथा एक संस्कृति संधान (Federation of Culture) से उसी प्रकार बंधा रहता है जिस प्रकार इस ब्रह्मांड के अनेक ग्रह

1 इस्लाम में मंगोलों का प्रवेश (1220-25) एक विजातीय और विरोधी शक्ति के रूप में हुआ, किन्तु कालांतर में चौदहवीं-पंद्रहवीं शताब्दी के आसपास भारत से लेकर अरब तक मंगोल ही इस्लाम के प्रबल प्रतिष्ठापोषक और प्रसारक सिद्ध हुए। भारत में जिन हिंदुओं ने इस्लाम को स्वीकार किया उ होने इस्लाम के प्रसार का भरसक प्रयत्न किया। उदाहरण के लिये देखिये दिनकर कृत संस्कृति के चार अध्याय पृष्ठ 270

और उपग्रह हैं। अन्यायवादी समुदाय की भावना हिंदू साम्राज्यवाद की मूल प्रेरणा रही है। इन्हीं विभेदी प्रवृत्तियों का यह परिणाम हुआ कि हिंदुत्व और इस्लाम परस्पर विभेदी हो गए और उनका सम्बन्ध सम्पन्न हो गया। यद्यपि तो हिंदुत्व इस्लाम को आममान कर सका और न इस्लाम हिंदुत्व को यद्यपि भारत के बाहर इस्लाम न अन्य समुदाय को आममान कर लिया था और इस्लाम सम्बन्ध स्थापित होने के पहले हिंदुत्व न अन्य समुदाय का अपन सामुदायिक गठन में मिला लिया था। हिंदुत्व और इस्लाम का विच्छेद लगभग तरह ही वर्षों में, सम्बन्ध, सम्मिलन एकीकरण तथा विच्छेद और परिवर्तन का वह ऐतिहासिक प्रक्रिया है जिसमें हिंदू मुस्लिम सम्बन्धों का वर्तमान अर्थ में भारतीयकरण हुआ है। इसी भारतीयकरण का अन्यायकारी भारतीय समाज का हिंदुस्तानी प्रचार (The Hindustani War) बहुत है यद्यपि समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण में यह कहना कठिन है कि वर्तमान हिंदुस्तानी प्रचार क्या है।

भारतीय समाज में इस्लाम का प्रवेश और प्रभाव कई भागों में था और अवस्थाओं में हुआ है। भारत में हिंदुत्व और इस्लाम का प्रथम सम्बन्ध हुआ था दक्षिण में और उन अरब निवासियों के द्वारा जो अत्यन्त प्राचीनकाल में भारत तथा योरोप के बीच एक व्यापारिक माध्यम थे। ईसा की सातवीं शताब्दी में जिन समय, अरब में इस्लाम का अभ्युदय हुआ था या मालाबार-रज पर अरब निवासियों की बस्तियाँ अस्तित्व में आ चुकी थीं। जिजरी मन (इस्लामी गद्दत) के ११६

भारतीयों को इस्लाम में लीकित किया उनमें राजा जीर प्रजा तथा उच्च और निम्न वर्ण का गण सम्मिलित थे। दक्षिण में इस्लाम की जापटली सामाजिक धार्मिक लहर फैली वह हिन्दुत्व और इस्लाम के गति सद्दय सम्पर्क का परिणाम थी जीर उमरा उदगम या इस्लाम की सुधुक्लिपूषता (Rationalization) अरबी मुसलमानों की शान्तिपिय मिगनरी भावना जीर उनके उत्साह तथा प्रगत्न में।

जाठों गतात्नी में उत्तर पश्चिम में इस्लाम का आश्रमक साम्राज्यवादी और विवसपारी रूप प्रकट हुआ जीर हिन्दुत्व तथा इस्लाम का गतिमय सम्पर्क मधपमय हुआ गया। सातवीं बारह में जय खलीफा की अनुमति से, मुहम्मद बिन कासिम ने सिंध पर आक्रमण किया था और सिंध अरबी खलीफाई साम्राज्य का एक अंग हो गया था तबसे लंबे समय आठारहवीं सतावन तक, हिन्दू और हिन्दुत्व इस्लाम के आनामक रूप में लहा रहत रहे। दक्षिण भारत में अरबों के बतत हुए सामाजिक तथा राजनतिक प्रभाव के कारण ही खलीफा ने भारत पर चलाई करने की अनुमति दी थी और उसी प्रभाव के ही कारण सिंध विजय भी सम्भव हुयी। किन्तु उत्तरी भारत में, इस्लामी प्रभाव सिंध के आगे तब तक न बढ़ सका तब तक पहले गजनी में तुर्कों का और बाद में दिल्ली में गल मवशी शासकों का राजनतिक पभुत्व न स्थापित हुआ। गुलामगरी राज्य की स्थापना के समय (1210 ई०) से लेकर लादीवश के राज्य का अन्त तक (1520 ई०) मुसलमानों का एक रूप साम्राज्य स्थापना लुटेरी जीर जयरास्नी मुसलमान बनाने वाला का है तो दूसरा रूप अहमदशाह माडू जौनपुर और लखनौटी के शासना का है जिन्होंने इस्लाम का समवतकारी तथा रचनात्मक प्रेरणा दी। मुगलकाल में भी यह सघपात्मक तथा सम उदगारी प्रक्रिया चलती रही। मुगलकाल में यदि, एक जार अकबर और दारा शिकोह की परम्परा से तो दूसरी जार जहागीर, गतिज्जत और औरगजेब की। यही न, भारतीय रनिगम में हिन्दुत्व का दानाम के उस रूप का भी परिचय मिला जा महमूद गजनी महम्मदगारी तमूरलग नादिरशाह और अहमदशाह अप्पली की जानामक परम्पराओं में विद्यमान है।

जादों की भांति मुसलमानों का भारत में स्थानांतरण और इस्लाम का प्रसार का गतात्थिया तब चलता रहा जिसका प्रभाव, एक जार भारत के इस्लामी सामाजिक गठन पर पडा तो दूसरी जार हिन्दुत्व और भारत पर पडने वाले इस्लामी मघात का प्रकृति पर। भारतीय इस्लामी समाज में दो स्पष्ट वर्ग रहते हैं—एक शहर, विगपतया अरब ईरान जीर मध्यगनिया से आने वाले अभिजात्या (Nobles) का, और दूसरा उन भारतीयों का जिन्होंने इस्लाम को स्वीकार कर लिया था। पहले वर्ग में विजना, सनानी प्रशासक और सामंत हुआ करते थे और दूसरे में कुशल

बागीगर, वृषक और सबहारा वग क लाग । गजनी और बगनाद क मुस्लिम शासकों न, भारत क दादा निको, निपुण प्रशासका, सनातिया और ज्ञान विधान के गताभा को वि-वासनात्र पद प्रदान किये । किंतु भारत म मुसलमाना राज्य की स्थापना के बाट से, राज्य क वि-वासनात्र पद बहधा विदेश स प्राये या आमंत्रित मुसलमाना का ही मिलत थ । जो मुसलमान यहा बस जात थ उनकी अपना विदेशी आग तुकों की अधिक वि-वसनीय समया जाता था वथाकि यहा बस जोर पर हूय मुसलमानो की अपेक्षा, विदेश स आय हूय मुसलमाना से पढयत्र की कम सम्भायना रहनी थी । कुछ अपवादो का छाटकर मुसलमाना राज्य काल म, दिल्ली की बादशाहत विदेश से आयें हूयें अमीरा (उमरा) क ही नाय से रही है । गुलामबगी बागगांग का पुनाव दिल्ली क जमीर ही करत थ । जोरगजन का मृत्यु क बाट मुगल बादशाहत वस्तुत समद भाइया क ही हाथ म रही । जबकि क राज्य काल म नी राज्य की नीवरियो म हिन्दुआ की मरना विदेशी मसलमाना की कपना कम था । प्रत्येक मुगलमान बादशाह पर विदेश स आय हूय उन माधु सता का अप्रत्येक प्रभाव अत्यय रहा । जो इस्लाम क अरबीकृत रूप क हामी थ और जो हिन्दुआ की भागा मुगलमानों की बढावा दन क पण म थ । इसका परिणाम यह हुआ कि मुस्लिम राज्य काल म राज्य क उच्च पदा पर विदेश स आय हूय मुसलमाना का ही रमन की प्रथा सी चल पड़ी थी, जिसक फलस्वरूप भारत क इस्लामा समाज म एक एका वग उत्पन्न हा गया जिनके मध्य सनातनीयदा राजनतिक साहसिका (Military and Political Adventurers) के रूप म भारत म आयें और भारत म उनकी यही लक्ष्मिलक्ष्मी रही जहा तक कि जीविका कमाने का प्रश्न था । पर वग वस्तुत उच्च नीवरगाही अभिजात्या का था जिनका राज्य की नीवरिया पर एकाधिकार था हा गया था । हिन्दू अभिजात और सामन्तगाी वग स इस वग की कभी नी बनी कयाकि दाना क सार्थो म मघप था । इस वग क सोगा न भारत का विदेश समशा और मदक ईरान या अरब स प्रेरणा ग्रहण की । एस ही सोगा क लिये मुहम्मद तुगलक न यह आगा निकाली था कि थ भारत की अज्ञा दन समझें और विदेश काग जान वाले मुसलमाना क लिये दण्ड का विधान किया था । यही व वग था जिनक भारतीय-करण का अकबर ने प्रयाग किया था । भारत म बसन और भारतीयकरण हान क बावजूद नी इस वग का इस्लाम क अरबीयन स राजात्मक लयाव बना ही रहा ।

उपर जगा कि बड़ा क भागदा गुजरात क बीहुरा मरगादर क भागदा

- 1 रामगोपाल ही इयन मुस्लिम—ए पोलीटिकल हिस्ट्री पृष्ठ 13-14
 - 2 वालाक, माहम्मद ए सोगल हिस्ट्री आफ इस्लामिक इण्डिया पृष्ठ 44
- राज गोगल बही अध्याय 2 और 3

घोर भारत की मुसलमान जातियो स स्पष्ट है, इस्लाम का स्वीकार करने वाले भारतीय समूह ने अपनी पुरातन परम्परा का न छोडा । इसका परिणाम यह हुआ कि भारत के इस्लामी समाज म एक वह वग आया जिस पर अरबीपन की अधिक छाप थी और दूसरा वह जिसके हिंदू आधार पर अरबीपन की छाप पडी । भारत का इस्लामी समाज, एक घोर एक विशिष्ट सामाजिक इकाई पर, एक मिश्रित तथा विजातीय समाज रहा । भारत के मुसलमानो मे ही देशी विदेशी की भावना घर कर गयी । नौकरशाही तथा विदेशी साम ती वग ने दशज मुसलमानों के प्रति उपेक्षा और उच्चता का भाव ग्रहण किया । आगे चलकर, जब अंग्रेजों न राज्य की उच्च नौकरिया को हथिया लिया तो यही नौकरशाही वग विक्षिप्त हा उठा और अपनी जडो का भारतीय भूमि स उखडा हुआ पाकर इस्लाम खतरे म है का नारा बुलंद किया । बंगाल म ही सवप्रथम अंग्रेजी राज्य का जन्मुदय और विकास हुआ और बंगाल म ही सवप्रथम उद् और मुस्लिम का नारा उठना एक महत्वपूर्ण तथ्य है । इस्लाम हिंदुत्व स अलग एक राष्ट्र ह और भारत मे इस्लाम खतरे मे है यह नारा नया नही प्राचीन है और इस्लामी समाज के नौकरशाही तथा अभिजात वग के मस्तिष्क की उपज है¹ ।

यह कहना कि भारत म इस्लाम का प्रचार मुसलमाना की तलवार और राज नैतिक प्रभुत्व के ही बल पर हुआ है इतिहास के गभ मे छिपे समाजशास्त्रीय तथ्यो की अवहेतना करना है । इसम कोई सन्देह नही कि मुस्लिम आत्ममग्नकारी विजया-काक्षा, धन लिप्सा और जिहाद (धम प्रचार) की भावना से अधिक प्रेरित थे, जिसके कारण उ हाने तलवार का जविक आश्रय लिया² । रामगोपाल के मत मे पञ्जाव

¹ रामगोपाल वही

² इस्लाम तलवार के बल पर फला है या नहीं इस पर विरोधी मत पवत किए गए ह । कि तु इसे सहसा अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि इस्लाम के प्रचार और प्रसार में तलवार का प्रयोग नहा हुआ है । हुमाऊ खबीर ने इस बात पर जोर दिया है कि इस्लाम के नाम पर जिहोंने तलवार उठाई, वे सच्चे मुगलमान होने की अपेक्षा राजनतिक लुटेरे अधिक थे, उहाने हाल ही में इस्लाम की टोपी पहनी थी और अपनी बुराइयों को उ होने इस्लाम की आड में छिपाने का प्रयत्न किया था । जकर इलाहाबादी केवल इतना ही कह सके कि लोग यह कहते ह कि तलवार से फला इस्लाम, लोग यह नहीं कहते कि तोप से क्या फला है' । इस्लाम के प्रसार में तलवार का जो प्रयोग हुआ है इसके लिए ऐतिहासिक परिस्थितिया अधिक उत्तरदायी ह न कि इस्लाम । फिर भी किसी ने इसे उचित और सुयुक्तिपूर्ण बतान की कोशिश की है, तो किसी न अनुचित । गिव के अनुसार, इस्लाम का जो प्रारम्भिक विरोध हुआ, उसी कारण इस्लाम में उग्र, आश्रमक प्रसार भावना आयी । इकबाल के

और सिद्ध म, बल प्रयोग से ही इस्लाम के प्रचार में प्रारम्भिक सफलता मिली ।³ यह मुसलमानों के राजनैतिक प्रभुत्व का ही परिणाम था कि अनेक व्यक्तियों तथा ताकतियों ने नौकरी धन, ऐश्वर्य और राज्य हृषा पान के लालच में इस्लाम को स्वीकार किया । फिर भी, ये कारण उतने महत्वपूर्ण नहीं हैं जितने कि तत्कालीन हिन्दू सामाजिक व्यवस्था, उसकी कमजोरियाँ तथा दाप । इस्लाम का सुयुक्तिपूर्ण ताकिक आधार, इस्लाम में निहित समता की भावना उसका सरलता और इहलौकिकता तथा इस्लाम और मुसलमानों का सहजसिद्ध मिश्रणरूपन का कारण है । जिस समय भारत में इस्लाम का प्रवेश हुआ उस समय बौद्ध-ब्राह्मण मध्य समाप्त नहीं हुआ था यद्यपि वह अनेक अंतिम रूप में था और धीरे धीरे ब्राह्मण विजयी हो रहे थे । इस पराजय में, बौद्ध विक्षिप्त हताश और त्राघामत हो रहे थे और जा कोई भी ब्राह्मणों का विरोधी था, उसका स्वागत करने के लिए तत्पर थे । उधर हिन्दू समाज उच्च तथा निम्नवर्णों जनता में विभाजित था । बौद्धों ने इस विभाजन का विरोध किया था । जन, विजयोन्त ब्राह्मण इस और भी दृष्टर बनाने में लगे हुए थे । उच्चवर्णों हिन्दू जनता की धार्मिक चेतना निरिचत थी । वह हिन्दुत्व का गहराई से परिचित थी । उम पर हिन्दू दान का वह रग चडा था जिम पर न कोई और रग चड सकता था और न उमके आगे कोई अर रग टिक ही सकता था । इसका विपरीत निम्नवर्णों जनता में न कोई निरिचत धार्मिक चेतना ही थी और न उन उच्चवर्णों जनता के समान सामाजिक धार्मिक अधिकार ही प्राप्त थे । जिम सामाजिक धार्मिक की ज्वाला बौद्धों ने भटकाई थी उसकी लपटें बिना स्वाह गण ही बुन गयी थी । जन वर अन्तर ही अन्तर मुनग रही थी और निम्नवर्णों जनता उसकी मुनगन में लप रही थी । निम्नवर्णों जनता हिन्दुत्व और हिन्दू समाज में उमी मयुक्तिवरण की माग कर रही थी जा इस्लाम के आदर्शों में समाया हुआ था ।

आज और डाविड मन्त्रियों के सम्मिलन में हिन्दूकरण की जा प्रथिया प्रारम्भ हुयी थी वर अभी पूरी न हापायी थी कि बुद्धबा न उन नितर बितर कर दिया और इसी कारण निम स्तर पर हिन्दूकरण पूरा हो सका था वर एक नर निश्चिन धार्मिक चेतना प्रगुटिन हा गयी थी और जहा हिन्दूकरण की प्रथिया अधूरी थी वर एक निश्चित धार्मिक चेतना का अभाव था । उच्चवर्णों हिन्दू विगपनवा ब्राह्मण, और आदिवासी भारतीय सामाजिक धार्मिक मगटन के न बिनार रर है । हिन्दूकरण की प्रथिया के द्वारा, धारे धीरे, आदिक, मी गणजातियाँ हिन्दुत्व के प्रभाव में म घायी

मतानुसार, सभी धर्मोपदेशियों में ईश्वर का नाम पर कलशार चलाने और दण प्रसार बिगरी हुयी मान बनाने का अर्थ इस्लाम के अनुयायी गुदा के अर्थ है, मुसलमान को ही है ।

१ रामगोपाल यही पृष्ठ ४

रही हैं। इसी कारण, हिंदू और आदिवासी के बीच में प्रारम्भ से ही एक सन्नमण सामाजिक क्षेत्र रहा है जहाँ की जनता न तो पूणतया हिंदू होती है और न आदिवासी। इसी सन्नमण-क्षेत्र की जनता पर किसी धर्म विशेष का लेबल नहीं रहता है। इस्लाम के प्रवेश के समय और उसके बाद भी इसी सन्नमण सामाजिक क्षेत्र में इस्लाम को स्थान मिलता रहा है। कालांतर में इसी सामाजिक क्षेत्र में साइयत की भी सर्वाधिक स्थान मिला है। इस सामाजिक क्षेत्र में इस्लाम का प्रवेश मिलन के दो कारण हैं—एक इस सामाजिक क्षेत्र की जनता का निम्न सामाजिक स्तर और दूसरा इसकी धार्मिक अनिश्चितता। इस्लाम के प्रवेश के समय हिंदू समाज में, बहुदेववाद का बाल बाल था, पथ की भरमार थी जिससे धार्मिक दार्शनिक जिज्ञासयों तो उठनी थी और बादबिावद भी हाना था पर उसमें न तो धार्मिक गमयों का त होती थी और न धर्मसम्बन्धी मानसिक आवश्यकता हो। शकर के रूप में हिंदूत्व ने जो उत्तर प्रस्तुत किया उसमें तक और दार्शनिकता का इतना ऊँचा पुट था कि वह इस क्षेत्र के जन-स्तर तक पहुँचा ही नहीं। इस्लाम एक सुयुक्तिवृत एवंस्वरवाणी, सरल पर रहस्यवादी और इहलौकिकता पर जार देने वाला मिशनरी तथा मजहबी धर्म था। मिशनरी काय उसी सामाजिक स्थिति में सफल होता है जहाँ उस सुयुक्तिपूण ढंग से पेश किया जा सक। हिंदू समाज के निम्न स्तरों में ही यह सम्भव था और वही इस्लाम का प्रसार हुआ।

भारत में एक ओर, इस्लाम का सामना हुआ उच्च तथा मध्यवर्गी हिंदुओं से जो हिंदुत्व की एक निश्चित धार्मिक चेतना में इतना रगे हुए थे कि उनका यह विश्वास था कि हिंदुत्व से उच्चतर तथा श्रेष्ठतर कोई अन्य धर्म ही नहीं है। हिंदुत्व के समक्ष इस्लाम उह फीका लगा। इस्लाम के आत्रामक रूप से सम्पक हान पर उहोने हिंदुत्व का पुनमून्याकन करके उसके उन सामाजिक तथा दार्शनिक पक्षा को उभारा जिनसे इस्लाम की खूनीती निरथक हो जाय। दूसरी ओर इस्लाम का सामना हुआ उस निम्नवर्गी जनता से जो न हिंदू थी और न बौद्ध किंतु जिसकी आत्मा बौद्धा के सम्यक भाग के अधिक निकट थी, जिसकी धार्मिक चेतना अस्पष्ट थी किंतु जो उस जनप्रिय धर्म की तलाश में थी जो उसे एक आदरपूण सामाजिक स्थिति प्रदान कर सके। संक्षेप में, निम्नवर्गी जनता उस सुयुक्तिकरण (Rationalization) के लिए पहले ही में लालायित थी जो इस्लाम में निहित थी। समाज के जिन स्तरों पर हिंदूकरण पूण हा चुका था वहाँ इस्लाम का विरोध हुआ और जहाँ हिंदूकरण की प्रक्रिया अपूण थी वहाँ इस्लाम को निविराध प्रवेश मिला।

भारत में इस्लाम और साइयत का सर्वाधिक प्रसार उही क्षेत्रों में हुआ है जहाँ आदिवासीयों और अछूत कहे जाने वाले लोगों की अधिकतम संख्या रही है, जहाँ बुद्धवाद को सबसे अधिक जनप्रियता मिली है और जहाँ उच्च तथा निम्नवर्गीय जातियों में ऊँच नीच का भेदभाव रहा है। मुसलमानों का राजनतिक गठ रहा है

दिल्ली किन्तु उनकी जन संख्या बढ़ी है बिहार बंगाल, पूर्वी तथा पश्चिमी समुद्रतट
वर्ती प्रदेश, सिन्ध, बिलाचिस्तान और पंजाब में। धार्मिकता बड़े जाने वाले प्रदेश में
इस्लाम की जनता प्रवृत्ति नहीं मिली जिनका कि धार्मिकता के तत्त्वर्ती प्रदेश में। इस
का सबसे बड़ा कारण यही है कि धार्मिकता के तटवर्ती प्रदेश में हिन्दूकरण की प्रक्रिया
अपूर्ण रही है, जिसके कारण इस प्रदेश में एक अनाम अक्षरित जनसमूह (Anony-
mous Floating Mass) रहा है जिस पर इस्लाम और इसाहयन का लेबल चढ़ाने
में कठिनाई नहीं हुयी है। यहाँ की सामाजिक परिस्थिति से इस्लाम का वस्तुतः
स्वागत हुआ है क्योंकि इस प्रदेश का बौद्ध प्रभाव के अन्तर्गत होने के कारण ब्राह्मण
अग्रुह समझने थे। अग बग बल्लि, सोराष्ट्र और मगध में जान की, धार्मिकता
पर मनाही थी^१। बौद्ध और ब्राह्मण एक दूसरे का नष्ट करने के लिए मुसलमानों
की सहायता के पीछे दौड़ते थे। कुछ विद्वानों का मत है कि नालन्दा के कुछ बौद्धों
पञ्चम की सहायता में अस्तिथार पित्तजी ने बिहार पर आक्रमण किया था। नालन्दा
बंगाल के सन राजाओं के अधीन था। बौद्धधर्म का कटकर विरोधी होने के कारण,
सन राजाओं ने नालन्दा के बचाने का कोई भी उपाय नहीं किया। बंगाल में ही
रघुपति पंडित ने श्री मुसलमानों को राना की थी (१६वीं सदी) जिसमें उन्होंने लिखा था
कि ब्राह्मणों के धर्मोपदेशों का अंत करने के लिए देवता पाजामा पहन कर, मुसल-
मानों के रूप में, अवतरित हुए हैं। सिय के हिन्दू राजा बाहिर के समक्ष वहाँ के धर्मियों
ने मुहम्मद बिन कासिम का साथ दिया था। इस प्रकार, मुसलमानों की सहायता में
धर्मण और बौद्ध एक दूसरे का सहायता करना चाहते थे, किन्तु मुसलमानों तत्वार
शेनों की गरदा पर पड़ी। धर्मणों पर तो वह स्तन जोर में पड़ी कि उनका सहायता
ही हो गया^२।

इस प्रकार हिन्दू समाज में इस्लाम का प्रवेश भिन्ना उम्र सामाजिक स्तर में
जहाँ उच्चवर्णों हिन्दू तथा आदिवासी के मध्य एक अतिरिक्त, प्रवाहक और अन्तर्गतों
सामाजिक श्रेणी अस्तित्व में आ गया था। इस्लाम के सामक होने के समय, इस स्तर
की जनता ने तो बौद्ध धर्म और १ हिन्दू धर्म पर यह बौद्धधर्म के धार्मिक समीप थी।
इसी कारण, उम्र इस्लाम धार्मिक प्रगतिशीलता जान पड़ा। धार्मिक धर्मों के समक्ष
तो यहाँ बाद उनीसवा सतालीस में इस स्तर की जनता अपने व्यावहारिक रूप में न
छा निर्दिष्ट रूप में हिन्दू धर्म और न मुस्लिम। उम्र हिन्दू और इस्लाम दोनों
की मांगताये पाये जाते थे। उनीसवीं सतालीस में जब बहामा आगलाप पेश
और अरबों की उपस्थिति में जानि तथा धर्म के आधार पर जनसंख्या की जान लगी

१ अग बग बल्लि, सोराष्ट्र मगध में।

तोपमाना बिनागला पुन सत्कारमूर्ति। सिद्धान्त बौद्धी

२ हिमकर रामपारीसिंह सत्कृति के चार अध्याय पृष्ठ २६-३१

ता मुसलमानों ने अजुमाना को मगठित करके वर्तनिक धर्म प्रचारक रखे, जिन्होंने उही प्रदेशों में काम किया जहाँ निम्नस्तरीय जनसंख्या का बाहुल्य था और साधारण जनता हिन्दू समाज के अन्तर्वर्ती क्षेत्र में थी, यद्यपि अपने "यावहारिक स्तर में वह हिन्दू भी थी और मुसलमान भी क्योंकि उमम हिन्दुत्व और इस्लाम दोनों की मायतायें विद्यमान थीं। बंगाल और पंजाब की कृषक जातियाँ ऐसे ही अन्तर्वर्ती समूह थे जिन्हें उन्नीसवीं शताब्दी के आस पास जनगणनाओं में मुसलमान घोषित किया गया और इस्लाम के धर्म प्रचारकों ने उन्हें इस्लामी रंग में रंगने का प्रयास किया। सन अठारह सौ इक्कीस की जनगणना विवरण में लिखा है कि अठारह सौ बहत्तर के बाद से, प्रति एक लाख व्यक्ति के पीछे उत्तरी बंगाल में सौ व्यक्ति मुसलमान हुये हैं पूर्वी बंगाल में दो सौ बासठ, पश्चिमी बंगाल में एक सौ दस और सम्पूर्ण बंगाल में एक सौ सत्तावन। उसी विवरण के अनुसार उन्नीस साल पहले, बंगाल में हिन्दुओं की संख्या मुसलमानों से डेढ़ लाख अधिक थी किन्तु दो दशकों के दौरान में मुसलमानों ने हिन्दुओं को पीछे ही नहीं छोड़ा वरन् उनसे डेढ़ लाख अधिक हो गये।¹

इस्लाम का सर्वाधिक प्रसार उही क्षत्रों में हुआ जहाँ उच्च और निम्न वर्ण का अन्तर काफी प्रबल था जहाँ उच्चवर्णियों की अपेक्षा निम्नवर्णों और मज्रमण जनसंख्या अधिक थी तथा जहाँ जाति व्यवस्था के प्रति विद्रोह की आग पहले ही से भड़क रही थी। ये भारत के वे प्रदेश हैं जहाँ उस समय क्षत्रिय वर्णों जाति या जातियों का मज्जुदय नहीं हो पाया था। पंजाब सिंधु केरल, तामिलनाडु और बंगाल ऐसे प्रदेश हैं जहाँ की सामाजिक संरचना में ब्राह्मण वर्णों जातियाँ तो रही हैं किन्तु क्षत्रिय वर्णों जातियाँ अनुपस्थित रही हैं। महाराष्ट्र में शिवाजी मुस्लिम काल में ही क्षत्रिय बने। क्षत्रिय जातियाँ हिन्दू सामाजिक मगठन में एक ओर ब्राह्मणों के आदेश को लिये रही हैं ता दूसरी ओर निम्नवर्णों जातियों के सम्पर्क में रही हैं और इस कारण क्षत्रिय वर्णों जातियाँ ब्राह्मणों और गैर-ब्राह्मणों के बीच मध्यस्थ के रूप में रहकर हिन्दू समाज में उत्पन्न प्रवाहों को आत्मसात करती रही हैं। क्षत्रिय जातियों की अनुपस्थिति में इन प्रदेशों में ब्राह्मण और गैर ब्राह्मण का मध्य बना रहा जिसमें इस्लाम को आसानी से प्रवेश मिला।

इतिहासकारों ने बहुधा इस बात पर जोर दिया है कि हिन्दू सामाजिक व्यवस्था और उसके नाशनिष्ठ आधार इतने दोषपूर्ण हो गये थे कि वे इस्लाम के आगे नहीं टिक पाये। किसी ने हिन्दुत्व को दोषी ठहराया है तो किसी ने इस्लाम के आक्रामक रूप को। किन्तु ऐसी मायतायें न तो इतिहासपरक हैं और न तर्कसंगत। इन मायताओं के पीछे जो तर्क है उमम धार्मिक विरोध है। उदाहरण के लिये यदि इस्लाम अपेक्षाकृत अधिक आक्रामक और प्रगतिवादी होने के कारण भारतीय

समृद्धि में प्रविष्ट होकर फलाती सम्पूर्ण भारत क्या न इस्लामी राष्ट्र हो गया ? यदि जाति प्रथा न इस्लाम का मार्ग प्रशस्त किया तो जैसाकि इतिहासकार बहुधा कहा करते हैं जाति प्रथा इस्लाम के समक्ष हिन्दुत्व के लिये रक्षा-बन्धक बने सिद्ध हुई ? किसी भी प्रमेय के काय कारण परम्पर विरोधी नही हुआ करते हैं । किन्तु, यदि जाति प्रथा को ही इस्लाम के प्रसार में महाघर और व्यवधान मान लिया जाय तो यह मान्यता तर्कमय नहीं रहती है क्योंकि इसमें काय-कारण में, विरोध आ जाता है ।

भारत में इस्लाम और हिन्दुत्व साधारणतया परस्पर अलग-अलग रह जितने लिये न तो हिन्दुत्व ही धर्म का भागी है और न इस्लाम ही धर्म न उनमें में किसी का श्रेष्ठतर या परम्पर अधिक दावी कहा जा सकता है । ऐतिहासिक दृष्टिकोण में, हिन्दुत्व और इस्लाम को प्रतियोग्य है जो अलग-अलग देग-काल में उत्पन्न होकर एक देग-काल की स्थिति विषय में परस्पर मिलती है—वह स्थिति जो अपने तत्कालीन रूप में न अच्छी है और न बुरी क्योंकि वह स्वयं एक प्रतियोग्य है और प्रतियोग्य ही जमी है । हिन्दुत्व में बहुदेवता तथा बहुपथवाद विषय दार्शनिक आधारा तथा विरोधी आदेश नियमों जाति प्रथा के उच्च तथा निम्न स्तरों और मन्त्रमय सामाजिक क्षेत्र (Buffer Zone) का पालना जाना हिन्दुत्व का जन्म देने वाली, एक विशेष देग-काल-गत प्रतियोग्य की देन है । उसी प्रकार, जिसे इतिहासकार इस्लाम की प्रगतिवादिता कहते हैं वह भी एक ऐतिहासिक प्रतियोग्य की देन है । हाँ, इतिहासकारों ने यह भूल अवश्य की है कि उन्होंने हिन्दुत्व की अपेक्षा, इस्लाम का अधिक गण्यमान रूप में देखा और उसका विनाश करने का प्रयत्न किया है । साधारणतया, इतिहासकार यह भूलते रहते हैं कि एक समृद्धि का रूप में हिन्दुत्व भी एक सचयी प्रतियोग्य है जिसके आधारभूत तत्व, समयानुसार नियमित होकर बार-बार अवतरित होते रहते हैं । एक घम के रूप में नहीं बरत एक समृद्धि के रूप में हिन्दुत्व उतना ही प्रसारवादी रहा है जितने कि इस्लाम और इसाइयत । समृद्धिपूर्ण होने का कारण हिन्दुत्व का अधिक व्यापक प्रभाव पडा है । हिन्दुत्व का संचयीयन (Cumulative) और प्रोचलन (Prochization) और मिश्रणशील वस्तु निम्न हैं उनका इतिहासकृतित उम समयव्यवहारी प्रतियोग्य में जिसकी अभिव्यक्ति है जाति प्रथा उच्च निम्न तथा मन्त्रमय सामाजिक स्तर और हिन्दुत्व के विषय आदेश नियमों तथा शान्ति का आधार । हिन्दुत्व का मन्त्रमय सामाजिक क्षेत्र में इस्लाम का प्रवेश एक भार निभार है हिन्दुत्व का जन्म देने वाली ऐतिहासिक प्रतियोग्य पर और दूसरी भार निभार तैरते तौ बरों में उत्पन्न होने वाली ऐतिहासिक परिस्थितियों पर । जहाँ सन्तो कुछ एक घटना ऐतिहासिक प्रवाह का स्तरों का घर्षण को उत्पन्न-मुपलब्ध में समायोजित हुआ प्रवाहित हो रहा है वहाँ यह कहना कठिन ही नहीं बरन् असम्भव है कि कौन किसके लिये दोषी है । क्या बरत जाना ही कहना सम्भव होगा, कि किस घर्षण का प्रतियोग्य बनी है और क्या उसकी विना का मफलन पडा वहाँ कौन प्रतियोग्य हूँ ।

भारत के बाहर इस्लाम और हिन्दुत्व का सम्पर्क

केवल यह मानकर चलना कि भारत में ही हिन्दुत्व और इस्लाम का सम्पर्क तथा सम्मिलन हुआ ऐतिहासिक गति विधि की अवहेलना करना है। हिन्दुत्व एक वह धर्मांतरक (Proselytising) संस्कृति तथा धर्म है जिसमें एतरेय ब्राह्मण की आत्मा चरंचति (निरंतर घागे बढ़ो) समाई हुई है। प्रारम्भ से लेकर आज तक हिन्दुत्व नये क्षेत्रों और जातियों को प्रभावित तथा अपने में समाहित करता हुआ सदैव आगे बढ़ता रहा है। मुसलमानों को हिन्दुत्व में औपचारिक रूप से उस प्रकार नहीं दीक्षित किया गया जिस प्रकार हिन्दुओं का इस्लाम में किया गया। किंतु हिन्दू संस्कृति के आध्यात्मिक योगदान का इस्लाम में समावेश हुआ है, यद्यपि इस समावेश पर इस्लाम के अरबीपन की छाप है। विनयकुमार सरकार के अनुसार सातवीं और तेरहवीं शताब्दियों के बीच, हिन्दू संस्कृति महाद्वीपीय भारत में ही अहिन्दुओं का हिन्दूकरण नहीं कर रही थी वरन् बहतर भारत के विजातीय जनों (Heterogeneous Peoples) पर भी अपना प्रभाव डाल रही थी¹। इस्लाम पर हिन्दुत्व का एक प्रभाव पड़ा भारत के बाहर इस्लामी एशिया के माध्यम से और दूसरा भारत में एक ओर, मुसलमान बनने वालों के द्वारा और दूसरी ओर अलबकूनी खुसरा अब्बस अबुल फजल रहीम खानखाना और मलिक मुहम्मद जायसी जैसे उन मुसलमानों के द्वारा जो हिन्दुत्व की आध्यात्मिक दासनिक्ता से प्रभावित थे। इस्लाम की आध्यात्मिकता, सामाजिक संगठन, प्रथाओं, आचार विचारों, रीति रिवाजों और तरीकों भावनाओं और ज्ञान विज्ञान पर हिन्दुत्व के प्रभाव के बिना काफी स्पष्ट हैं।

ऐतिहासिक उद्विकास के सन्दर्भ में इस्लामी एशिया अस्तित्व बहतर भारत का ही एक भाग है। इस्लाम के लगभग सभी समीपका ने यह स्वीकार किया है कि इस्लाम के आधारभूत स्वरूप पर यूनानी दशन का प्रभाव पड़ा है। इस्लाम के जन्म के बहुत पहले यूनान में भारतीय दशन और ज्ञान विज्ञान का समावेश हो गया था। अतः इस्लाम पर प्रथम हिन्दू प्रभाव अप्रत्यक्ष रूप में पड़ा। इस्लामी एशिया की संस्कृति बहुत कुछ हिन्दुत्व (Hinduised) थी और उसका कारण भी वे संस्कृत पुस्तकें जिनको अरबी फारसी में अनुदित किया गया जिनके द्वारा हिन्दू ज्ञान विज्ञान का प्रसार किया गया। पंचतंत्र और चरक महिता का अनुवाद पहले फारसी में हुआ और बाद में फारसी के अनुवाद से उनका अनुवाद अरबी में हुआ। अथ हिन्दू पुस्तकों के अरबी अनुवाद सीधे संस्कृत पाठ से किये गये हैं। खलीफा ममूर (753-774) के राज्यकाल में ब्रह्मगुप्त के ज्यामिति और गणित सम्बन्धी ग्रन्थों, ब्रह्मसिद्धान्त और खण्डखाड्यक का अरबी अनुवाद सिद्धान्त और अरकन्द नामक पुस्तकों

के रूप में हुआ। लगीफा हास अल रगी" (780 808 ई०) के मंत्री बरमक परिवार के भारतीय थे। उन्होंने इस्लाम स्वीकार कर लिया था पर मूल्य य बौद्ध थे। इन्हीं मंत्रियों की दमरुम में अनक हिंदू विद्वान बगदाद बुलाये गये और उनका द्वारा मस्जुद के आयुर्वेद (Medicine) भषयशास्त्र (Pharmacology) विषशास्त्र (Toxicology) दान (Philosophy) और ज्योतिषशास्त्र (Astology) सम्बन्धी ग्रन्थ अरबी में अनुवादित कराये गये। इसी काल में हिंदू वच बगदाद बुलाये गये और उनकी दर दर में वहाँ औपचार्य गाल गये¹। यही वह काल है जब बगदाद की दान सम्बन्धी वृत्ति के द्वारा इस्लामी मसार में बगदाद दान का प्रचार हुआ जा बन्त सम्भव है आगे चलकर सूफाशा की उत्पत्ति का एक कारण रहा है। जैसा कि अलबख्नी (970 1019) की वृत्तियाँ से स्पष्ट है मुगलमान लखना न मस्जुद के प्रथा का अनुवाद किया उन पर टीकायें और भाष्य लिख तथा उनका मक्षिण और स्वतंत्र अरबी फारसी मस्करण प्रस्तुत किया। जिस समय मजनी का नामक मस्मूद भारत के मंदिरों को नाइकर उनका धन चूटन में स्थान था उस समय उनकी धन छाया में चलने वाला एक दानिक, विचारक एलबख्नी जिसे ग्यारहवीं शताब्दी का मुस्लिम इंडोलॉजिस्ट (Indologist) कहा जा सकता है हिंदू धान विधान का मनन करके और उस की विचारधारा में सपट कर इस्लामी मसार के सम्मुख रत रहा था। ग्यारहवीं शताब्दी में एलबख्नी ने वही काय किया जा आगे चलकर उन्नीसवीं शताब्दी में सर विलियम जॉन्स और मकगमूनर ने किया। इनके आना गत्वा उद्देश्य एक ही रहे हैं, यद्यपि तरीक अनक अलग²।

1 किंतु इस्लामी चिन्तना-पद्धति पर मूलभूत प्रभाव मुगलान का पड़ा और इसी कारण, मुगलमानों ने जो चिन्तना पद्धति भारत में खताई उसका नाम मुगलानी हिजमत पड़ा।

2 सरदार, विनयकुमार वही पृष्ठ 1 9-16.

हिन्दू-सम्पर्क में इस्लामी सस्कृतिकरण

इस्लाम पर हिन्दू वैचारिक प्रभाव

हिन्दू नान विमान को अरबी फारसी में अनूदित करने की जो परम्परा बगदाद के खलीफाओ और अरबरूनी जैसे विचारको न डाली थी वह सार मध्य युगीन भारत में भी कायम रही और उसके द्वारा हिन्दू विचार और नान विमान का इस्लाम में प्रवेश हुआ। विनयकुमार सरकार ने इसे इस्लाम का हिन्दूकरण कहा है। किन्तु इस तथ्य को अस्वाकार नहीं किया जा सकता कि भारत में अनेक हिन्दू बौद्ध तथा आदिवासी विचारों और प्रभावों का समावेश इस्लाम में हुआ है और जिनके द्वारा इस्लाम का भारतीयकरण हुआ है। भारत में इस प्रक्रिया का श्रीगणेश सस्कृत ग्रन्थों के अरबी फारसी अनुवाद से होता है। सस्कृत ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद फीरोजशाह तुगलक (1351-1388) के समय से प्रारम्भ हुआ गया था। दलेल ए फौरोजशाही नामक कविता में हिन्दू भौतिकशास्त्रों का अनुवाद है। अकबर की प्रेरणा में महाभारत, रामायण, गीता अथर्ववेद, योगवाङ्मिष्ठ, हरिवंश और महेश महानन्द इत्यादि ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद हुआ। दारा शिकोह (1614-1650) की प्रेरणा से वदाके फारसी अनुवाद का प्रयास किया गया। सर उल-असराफ (1657) नामक शीपक के अंतर्गत, दारा शिकोह ने उपनिषदों का उर्दू में किया

और मजीम-उल-यहरीन (१६१४) नामक पुस्तक में सूफीवाद और हिन्दुत्व में बहुत देववाद को एक में मिलान का प्रयास किया। औरगज़ब (१६५४-१७०३) ने अपने पौत्र जहादारग़ाह के लिए हिंदू विद्याशास्त्र का एक फारसी मसूदा तुज़फ़ातुलहिन्द नामक पुस्तक में अंतर्गत करवाया था।

अबुलफज़ल (१५५१-१६०२) जिसे जहांगीर ने हिन्दुस्तानी ग़लब कहा था, नीतिशास्त्र रचयिताओं की श्रृंखला में आता है। उसका पुस्तक आइन-ए-अकबरी में लिखन की गैली नौतिगाम्ना की गली में इतनी मिश्रित होती है कि उस सरसतापूर्वक अकबर-नीति कहकर नीतिशास्त्र की श्रृंखला में रकमा जा सकता है। आइन ए अकबरी की परम्परा अगले हिंदू और अगले मुस्लिम विस्तृत वह हिंदू परम्परा के अधिक समीप है क्योंकि अबुलफज़ल के लिए अकबर इतिहास, राजनीति और राज्य प्रबंध कबल नतिक और सामाजिक दान व नियंत्रण का माध्यम है। आइन ए अकबरी का मुख्य विषय न तो अकबर है न उनका इतिहास और न राज्य। इसका मुख्य विषय है सम्राट के गुणों तथा कार्यो का निरूपण और हिंदू राजनीतिशास्त्र की प्रधान समस्या राजपिबलम अथवा राजपि (क्रिये सम्राट) के व्यवहार के निर्धारण की समस्या। इस रूप में अबुलफज़ल की रचना कौटिल्य की परम्परा में आती है। जसा कि दक्षिण और उत्तर बर्दिक माहित्य के रचयिताओं की परम्परा रही है, अबुलफज़ल के लिए, इतिहास अथवा शास्त्र, साहित्य, जीवनोत्पत्ति और अकबर (सम्राट) का व्यक्तिगत नतिक जातिगत और भाष्यात्मिक प्रचार के सम्बन्ध मान है। आइन ए अकबरी की परम्परा मुसलमानी और शरिअत की परम्परा नहीं है। आइन ए अकबरी के अन्त में मन्तव्य में लिख जाने वाले हिंदू नीतिशास्त्रों का फारसी मन्वरण है और इस बात का प्रमाण है कि किस प्रकार सामन्ती गतान्ती के धारणाम हिंदू विचारों का इस्लाम में समावेश हो रहा था। अबुलफज़ल के अनुसार राजनतिक सगठन तभी स्याया रह सकता है जब समाज का ठीक-ठीक धोनी विभाजन हो। उसके अनुसार भी समाज में चार धणियाँ हैं—दादा, व्यापारी, विद्वान और श्रमिक जिन्हें उचित स्याना में रखकर उनका ठीक ठीक सम्बन्ध करता सम्राट का कर्तव्य है। अबुलफज़ल के इस निर्धारण में उमी धारणा और समस्या की शल्लक है जिन हिंदू नीतिशास्त्रों के रचयिताओं ने सम्राट और समाज के सम्बन्धों को पानुव्यवस्था के धारा हल करने का प्रयास किया है। गंगा में यदि आइन ए अकबरी कौटिल्य के अथवा अथवा राजनीति की परम्परा में है तो दान, भाव और उद्देश्य के दृष्टिकोण में उसकी भाषा मनुस्मृति की भाषा के अधिक समीप है।

इस्लामी समाज और सस्कृति पर हिंदू प्रभाव

इस प्रकार, एक ओर, फारसी तथा अरबी में अनुदित मस्कृत साहित्य के द्वारा तथा, दूसरी ओर, इस्लाम में दीक्षा लेने वाले हिंदुओं के द्वारा, भारत में इस्लामी दशन समाज और रीति रिवाज पर हिंदुत्व का प्रभाव पड़ा। भारत में, एक बड़ी सीमा तक इस्लाम ने हिंदू प्रथाओं और मान्यताओं को आत्मसात किया। इस हिंदूकरण का मुख्य माध्यम रहे हैं—मध्य युग के वे मुसलमान जो भारत में जन्मे थे, जिन्होंने इस्लाम को स्वीकार कर लिया था और जिनके लिए, 'हिंदुस्तानी मुसलमान' की उपधापूर्ण सना का प्रयोग किया जाता था। वे भारतीय मुसलमान जो मूलतः हिंदू थे अपना मौलिक दृष्टिकोण, जीवन दान और सामाजिक स्तर लेकर इस्लाम में प्रवृत्त हुए। भारत में इस्लामी समाज के हिंदूकरण का सबसे प्रबल प्रमाण है मुसलमानों में पायी जाने वाली जाति व्यवस्था। पेशा, अंतर्वेवाहिकी, उच्चाच्च परम्परा (Hierarchy) और कल्प शुद्धता (Ritual Purity) की भावना पर आधारित जाति प्रथा भारत के इस्लामी समाज में भी पायी जाती है। मुसलमानों के त्योहारों, रीति रिवाजों, विचारों, विश्वासों और धार्मिक जादुओं (Magico-Religious) अनुष्ठानों में हिंदू प्रभाव के अनेक प्रमाण उपस्थित किये गये हैं। पीरो की कल्पना और उनमें विश्वास, दरगाह पर मर्त्या टेकना 'जय महावीर' या हर हर महादेव की तरह 'या जली का नारा लगाना, सगुण विचारना, विषवा की अपक्षा सधवा या सुहागिन को शुभ मानना सुहागिनो द्वारा सिन्दूर का प्रयोग, वैवाहिक अनुष्ठानों में साहागपूरा का प्रयोग हिंदू धर्म के ही अनुरूप मत व्यक्तियों के नाम पर सीजा भोज और खरात का आयोजन करना छठका व्रत (सूय पूजा), चैचक का प्रकोप गान करने के लिए शीतला माता में विश्वास और शीतला माता के सबके समझे जाने वाले माली जाति के सदस्यों द्वारा शीतला माता की पूजा करवाना, दीवाली और हाली जैसे त्योहारों का मनाना और बगाल में सत्यनारायण की कथा के अनुकरण के आधार पर सत्यापीर की पूजा हिंदू प्रभाव के ही परिणाम हैं। मुसलमानों में पगड़ी का प्रयोग हिंदुओं से आया है। दिनकर का ऐसा विचार है कि सम्भवतः मुसलमानों का त्योहार शनिवारा हिंदुओं के त्योहार शिवरात्रि से प्रभावित है¹ ?

मोहम्मद यासीन के अनुसार, भारत में ताजिया का गानना और उन पर नाटकीय आक्रमण करना हिंदुओं की रामलीला का इस्लामी अनुकरण है। ग्रहण (सूय या चंद्र) के अवसर पर उपवास करने तथा प्रार्थना में लीन रहने और ग्रहण के उपरान्त शुद्धि के लिए स्नान करने की प्रथा मुसलमानों में हिंदुओं से ही आयी है।

अभिवादन के लिए, हिन्दुओं की भांति, मुसलमान भी 'राम राम' शब्द का उच्चारण करते हुए पाये गये हैं। सुल्तान मोहम्मद तुगलक की बहिन की विवाह का हवाला दत्त हुए, मोहम्मद यासौन ने यह प्रतिपादित करने का प्रयास किया है कि सम्भवतः तत्कालीन समाज में राजस विवाह प्रचलित था जो एक गैर इस्लामी प्रथा है^१। भारत में आज भी ऐसी जातिघात मिलता है जो न तापूणत हिन्दू है और न मुसलमान और, मुसलमान होने पर भी उनके सदस्य हिन्दुओं के समान रहते हैं। बंगाल के बाउल और अजमर के हुमनी ब्राह्मण न ता पूणत हिन्दू ही कहे जा सकते हैं और न पूणत मुसलमान। राजपूताना और जागरा जिले के मल्वाना राजपूत मुसलमान हात हुए भी 'राम नाम' जपते हैं और दरगाहों पर जाते हैं। गुजरात के ग्याजा सम्प्रदाय के लोग पर वैष्णव धर्म की स्पष्ट छाप हैं^२।

गिब के अनुसार मुगल काल में मुसलमानों में सती प्रथा का प्रमाण पाये गये हैं। मध्ययुगीन भारत में मुसलमान योद्धाओं ने जोहर प्रथा का उभरी प्रकार अपनाया जिस प्रकार हिन्दुओं ने। किसी समापत्य सम्बन्धी के मरण पर तिर, दाढ़ी और मूँछ मूँछान की प्रथा अबबर ने चगाई थी और किसी हद तक मुसलमानों ने उा अपनाया भी था। मरणासन्न व्यक्ति का छाट से उतार कर जमीन पर लिटान और विधवाओं द्वारा कुछ आभूषण और रंगीन वस्त्रों का त्यागने की प्रथाओं भी मुसलमानों में पायी गयी है। बाल विवाह और स्त्री पर पुरुष के स्वामित्व का भाव यासौन के अनुसार मुसलमानों में हिन्दुओं से आया है। फलित ज्योतिष, साधु-मन्त्रों का श्रद्धा विव शक्ति जादू टाना और तावीज में विद्या, नीय-यात्रा मूर्ति-पूजा की भावना और मादक द्रव्यों का सेवन मुसलमानों में हिन्दुओं और आश्विनियों के सम्पर्क से आया है। मध्ययुगीन भारत में मुसलमानों का जीवन के आदर्श रहे हैं रज्ज (मुँछ), बाम (भाज और दरवार) और इबादन (प्रायश्चित्त)। इन आदर्शों पर इस्लाम की अपना हिन्दुओं के राजपूनीकरण की अधिक छाप है। सिद्धान्त इस्लाम में पुराहितवाद का कोई स्थान नहीं है। किन्तु भारत में काजियों और मुत्लाओं ने पुराहित की पत्थी धारण की।

३

सूफीवाद में हिन्दू प्रभाव

इस्लामी भाव भूमि में सूफीवाद की उत्पत्ति भारत में इस्लाम के हिन्दूकरण का एक अन्य माध्यम बनी। भारत के सूफियों की टीका करते हुए गिब ने लिखा है

१. यासौन, मोहम्मद ए तागल हिन्दुओं का इस्लामिक इतिहास पृष्ठ 49-50
२. दिनकर शर्मा पृष्ठ 397

कि भारत के सूफी पंथा का इस्लाम से नाममात्र का सम्बन्ध है, क्योंकि इन पंथों में हिन्दू और प्राकृष्ट हिन्दू प्रथाओं तथा सिद्धांतों की भरमार है। वास्तव में ही ऐसा ही क्योंकि इस्लाम का लोकप्रिय और रहस्यवादी रूप होने के कारण, भारत में, अरबीवादी इस्लाम की जपना, सूफीवाद ही अधिक जनप्रिय रहा। अरबीवादी इस्लाम की अपेक्षा अधिक सहिष्णु होने के कारण, सूफीवाद अपेक्षाकृत अधिक समन्वयकारी भी रहा है। अपनी कट्टरवादिता के कारण, अरबीवादी इस्लाम ने जिन प्रतिक्रियाओं को जन्म दिया उनका निराकरण सूफीवाद के ही द्वारा हुआ। इसी कारण, सूफीवाद और सूफियों के माध्यम से इस्लाम का अधिक प्रभावपूर्ण प्रचार भी हुआ। अपनी सहिष्णुता और समन्वयकारिता के कारण अरबीवादी इस्लाम की अपेक्षा, सूफीवाद हिन्दुत्व की आत्मा के अधिक समीप रहा है और यह उस सामीप्य का ही परिणाम है कि भारत के अधिकांश और अधिकांश मुस्लिम ग्रामीण मुसलमानों के धार्मिक जीवन में हिन्दू प्रभावों का प्राधान्य है।

गिब के अनुसार, यह मानना कि सूफी शब्द यूनानी भाषा के साफिया (Sophia) या साफोस (Sophos) शब्द से निकला है एक निगधार अतिरिक्त कल्पना के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, क्योंकि सूफी शब्द का लाक्षणिक या व्यञ्जनात्मक अर्थ वह नहीं है जो साफोस या सोफिया का है। साधारणतः, यह माना जाता है कि सूफी शब्द 'सूफ' शब्द से निकला है। इस्लाम के अम्युदय के प्रारम्भ में सूफ शब्द का अर्थ लिया जाता था, बिना रंग हुए ऊन के उस लबादे से जो ईराक के बरागी, साधक या तपस्वी धारण किया करते थे। किन्तु उस समय सूफ वस्तुतः प्रतीक था सत्सत्त्वात्मा और पश्चात्तापी ग्लानि का जिसके कारण सूफ धारण की भक्तना भी की गई है और सूफ धारण को ईसाई धर्म के प्रवर्तक ईसा की नकल कहकर उसकी उपेक्षा भी की गयी है। फिर भी यह निश्चित है कि इस्लामी सम्बन्ध का दूसरी शताब्दी में क़ुफ़ा के साधक और तपस्वी सूफ धारण करते थे और उन्हें अल-सूफिया कहा जाता था और चौथी शताब्दी के आस पास ईराक के साधकों में सूफ धारण करना एक साधारण प्रथा सी बन गयी थी। सूफी शब्द के इस ऐतिहासिक विवेचन से दो तथ्य स्पष्ट हाथ हैं। एक सूफीवाद की जड़ें रहस्यवादी सहजगान (तसवुफ) में गड़ी है और दूसरा सूफीवाद की उत्पत्ति अरब में न होकर ईराक में हुयी है। अरब का सूफीवाद में केवल इतना ही योग है कि हजरत मुहम्मद का ऐतिहासिक अस्तित्व अरब में था और वही से वह अरबीकृत इस्लामी नान फला जिस सूफिया में एक रहस्यवादी मनुष्यता के रंग में रंगा।

'सूफी शब्द वस्तुतः प्रतीक है, रहस्यवादी साधक का और सूफीवाद (तसवुफ) उस तरीके या जीवन-यापन के ढंग का जिसमें बाह्य कल्पाचार को त्याग कर आंतरिक शुद्धता पर जोर दिया जाता है ताकि स्थायी आध्यात्मिक सुखानन्द प्राप्त हो सके। सूफीवाद के मुख्य साधारण हैं—इन्द्रिया को पवित्र करना इच्छाओं का नियंत्रण में

रखकर उन्हें ईश्वरच्छा के अधीन रखना और बाह्य तथा आन्तरिक जीवन का इस प्रकार समन्वय करना कि शाश्वत आनन्द की प्राप्ति हो। सूफीवाद वैयक्तिक तथा सांसारिक सुखा का परित्याग करके एक (सत्य) में लीन हो जाने का प्रयास है। खल्क (गमाल) निस्सार है और एक (सत्य) का ज्ञान ही सूफी का ईश्वर का इस प्रकार आभास देता है कि अपने स्वत्व के आभास का ज्ञान छाड़कर सूफी अपने का ईश्वर के स्वत्व में खोया हुआ पाता है। अपने अंदर भी और बाहर भी, सूफी ईश्वर का अनुभव करता है। सूफी अपने स्वत्व में मग्न होकर रहकर ईश्वर के स्वत्व में जीवित रहता है। इस प्रकार, सूफीवाद ईश्वर का गमन की एक रहस्यात्मक अनुभूति का माग है। मुहम्मद द्वारा प्रवर्तित मत में ईश्वर और व्यक्ति दो अलग अलग विरोधी शक्तियाँ हैं। किंतु सूफीवाद में दोनों एक दूसरे से भिन्न नहीं हैं। ईश्वर और जीव मौलिक रूप में एक हैं। अतः, जीव ईश्वर में मिलने के लिए बचने है। जीव ईश्वर का दास नहीं है बरन उसका सखा है। त्याग, तपस्या और ध्यान से जीव ईश्वर में लीन हो सकता है। फना (समाप्त) होकर वका (निर्वाण) प्राप्त करता ही जीव का अंतिम लक्ष्य है। ईश्वर में ज्ञान हान के लिये डर नहीं, दया की भीषणता, प्रेम की आवश्यकता है। प्रेम की ही अभिव्यक्ति के लिए सूफीवाद ईश्वर की सौंदर्य के रूप में बल्बना की है जोर जीव की प्रेम के उपासक के रूप में। सूफीवाद के लिए इहलौकिक प्रेम ही पारलौकिक प्रेम की सीढ़ी है। इसावाराण, सूफीवाद की साधना में ध्यान स्मरण (मात्ता फेरना) और रति तथा गान का भाव आया।

इस प्रकार, सूफीवाद का मुख्य आधार है व्यक्तिगत तथा समाजिक रहस्यवादी अनुभूति और उसका द्वारा ईश्वरत्व (हक) का सहज ज्ञान प्राप्त करना। अरबीयत इस्लाम की जगह सूफीवाद अधिक व्यक्तिक और आनुभूतिक है। अरबीयत इस्लाम इहलौकिकता और सुयुक्तिकरण पर ज्यादा जोर देता है जबकि सूफीवाद त्याग, तपस्या और रहस्यवादिता पर। अरबीयत इस्लाम में शल्क (गमाल) त्याग नहीं है बरन ईश्वरीय भय के साथ प्राप्त है। जैसा कि पदल कहा जा चुका है अरबीयत इस्लाम एक इहलौकिक ज्ञान है जिस बिना किसी गवा के अपनाता मानव धर्म है। इसी कारण, इस्लाम के समर्थकों का कहना है कि सूफीवाद इस्लाम की इहलौकिकता तथा कट्टरता के विरुद्ध प्रतिद्वन्द्वी के रूप में उठा हुआ एक धर्म है। इस्लाम का आधार है मिस्लत, उसका सामाजिक पामिक संगठन पर सूफीवाद का उद्देश्य है व्यक्ति तथा समाज का आध्यात्मिक पुनर्जागरण। इस्लाम का जोर है ईश्वरत्व की गुणात्मक अनुभूति पर जबकि सूफीवाद का जोर है प्रत्यक्ष और व्यक्तिगत ज्ञान पर। इस्लाम के मुख्य गुणात्मक ज्ञान के प्रति सूफीवाद एक प्रबल प्रतिक्रिया देता है। शल्क बल्बनापार और कट्टरवादिता से मुक्त ज्ञान के कारण, सूफीवाद अधिक महिष्णु देता है।

सूफीवाद ज्ञान प्रपंच का मुलभ है बरन कि उस उस ज्ञान माग पर चलन

जहाँ है। कुरान में खुदा का वजूद (प्रेमी) कहा गया है। मुहम्मद साहब के मरने के बाद ही, गुलूब और तक्सीर की धारणायें अस्तित्व में आ गयी थी। गुलूब की धारणा के अनुसार मनुष्य ईश्वर की काँटि तक पहुँच सकता है और तक्सीर की धारणा के अनुसार यदि ईश्वर चाहे तो वह मनुष्य के रूप में प्रगट हो सकता है। आगे चलकर, जब अल हल्लोज ने अनलहक का नारा लगाया तो उसने गुलूब की धारणा को और भी दृढ़तर कर दिया। मोतजली सम्प्रदाय के लोगो ने इस मत का खण्डन किया कि कुरान अपौरुषेय और अंतिम सत्य का एकमात्र आख्यान है। अलगजाली (1051-1112) ने यह कहकर कि नानातीत निरपेक्ष सत्य को जानने का एकमात्र साधन सबुद्धि है, रहस्यवादिता की नींव डाली। इस प्रकार सूफीवाद इस्लाम के घेरे में ही पनपता रहा। इस्लामी पठभूमि से अलग सूफीवाद वस्तुतः एक क्षेत्र रहित परिधि है। किंतु सूफीवाद का उदगम इस्लाम में ही नहीं है।

कुरान और मुहम्मद साहब के जीवन के अनावा, सूफीवाद के निर्माण में जिन कारकों का योग रहा है वे हैं इसाई धर्म, जो सीरिया में तटवर्ती श्रेणियों में प्रचलित था अभिनव अफलातूनी (Neo Platonic) विचार धारा, हिंदुत्व, बुद्धवाद तथा ईरान में प्रचलित जर्मुस्त धर्म। सूफियों में मिशनरीपन की भावना तथा महेशी और ईश्वर को प्रेम से पाने की धारणायें गिब के अनुसार इसाई धर्म से आई हैं। ईश्वर के प्रति मादन और रीति का भाव अभिनव अफलातूनी विचारों की देन है। इस्लाम के उदभव के पहले ही अभिनव अफलातूनी विचारों पर भारत का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ चुका था। इसी कारण यह कहा जा सकता है कि सूफी मत के विकास में योग देने वाले प्रभावों में हिंदू-बौद्ध दर्शन का ही अधिक प्रभाव है। जीव और ईश्वर (जयवा ब्रह्म) मौलिक रूप से एक है जीव ब्रह्म की कोटि तक (अनलहक की अवस्था तक) पहुँच सकता है और जीव ब्रह्म का मिलन फना बका की अवस्था है सौत्य से प्रेम उत्पन्न होता है और प्रेम से मुक्ति और इन दोनों का सम्बन्ध करने के लिए यतीवृत्ति, वैराग्य साधन योग और मयम की आवश्यकता है इन माध्यमों की जहाँ भारत की वदाती और योगिक परम्पराओं में हैं। सूफिया में भारत के योगियों जैसी निर्भङ्गता रही है। साधना के लिए मगीन और माला का आश्रय लेना भारतीय सतीतन का माग है।

सूफी सम्प्रदायों का मठों में मगठन बौद्ध मठों से प्रेरित है क्योंकि मानव चित्त हाम में, सध, मठों और भिक्षुओं की परम्परा सबप्रथम बौद्धों ने ही डाली थी। गुप्त शिष्य परम्परा के पीछे यदि एक ओर हजरत मुहम्मद द्वारा निर्धारित पगम्बरी परम्परा में उत्पन्न प्रेरणा थी तो दूसरी ओर भारत में पनपने वाली योगी परम्परा। दिनकर के अनुसार वेदान्तियों के मोक्ष और बौद्धों के निर्वाण के बजन पर ही सूफियों ने 'फना की बल्पना की और बुद्ध का अष्टांगिक माग ही उनका 'तरीका या सलूब' हुआ। इसी प्रकार, सूफियों ने भारतीय योग को मराकबा कह कर अपनाया। भारतीय योगियों के चमत्कार ही सूफियों के यहाँ बरामात या मौजजा कहलान लगे।

सूफिया व बीच स्वच्छता पवित्रता सत्य, अपरिग्रह पर जाइतना जाय है तथा माला जपन की जो प्रथा है, उन सबके पीछे गुढ भारतीय मन्वार का ही प्रभाव माना जा सकता है। सर चाल्म इलियट का इवाला देवर निनवर ने यह प्रतिपादन करने का प्रयत्न किया है कि सूफावाद में पाये जाने वाले जीव ब्रह्म सम्बन्धी विचारों और तमन्बुष (रहस्यवाद) का उत्पन्न मुख्यतः भारत में ही है। पानिबर न सूफीवाद का वदात का इस्लामी मन्वरण करता है। इस्लाम का उद्भव क पहर तथा प्रारम्भिक विवाह व आस पास अरब और यानन तक बौद्ध तथा ब्राह्मण धर्म का प्रभाव रहा है। इसी प्रभाव न अन्य प्रभावा व साथ इस्लाम में सूफीवाद का जन्म दिया है।

अनुशास इन्द्रिय निग्रह, विरक्ति, अपरिग्रह गन्ताय, धैर्य ईश्वर और जोर की मौलिक समानता ईश्वर का प्रति जीव का स्वाभाविक प्रेम प्रेम द्वारा ईश्वर की व मिलन (पना) तथा मगीत-अधीतन द्वारा ईश्वर का प्रति प्रेम का साधना में विश्वास और मसार का आध्यात्मिक ज्ञान द्वारा समझन का प्रयास सूफियाना जीवन के मुख्य मंडात्मिक आधार रह हैं। यही मिथ्यात सूफियाना तरीका है जिह प्रत्येक सूफी पीर न अपने ढंग में अपनाया है। सूफीवाद का उत्पन्न एक अविश्व-आध्यात्मिक तरीका का रूप में हुआ था। कागतर में इस्लामी रसाई और बौद्ध परम्पराओं का प्रभाव न सूफीवाद में मठापी परम्परा का जन्म दिया जिसकी अभिव्यक्ति इस्लामी मसार में पल हुए सूफी सम्प्रदाया (पया) का रूप में हुई। प्रत्येक सम्प्रदाय किसी न किसी सूफी साधक की परम्पराभा पर आधारित है। कई सम्प्रदायों ने विभक्त होकर उपसम्प्रदायों का जन्म लिया। प्रत्येक सम्प्रदाय या उप सम्प्रदाय अपने मूल मन्थापक की परम्परा में, आध्यात्मिक साधना का एक तरीका विशेष बन गया और प्रत्येक तरीका का प्रसार गुप्त गिप्त परम्परा में हुआ। उरबाहुत इस्लाम की अवस्था, सूफीवाद देग का ही परिष्कृतिता का अनुसार अधिक टमना रहा जिसका परिणाम यह हुआ कि सूफीवाद अनेक पथा में वृत्त निकला। उत्तरी अधीका मलकर इराक़िना तक पाये जाने वाले सूफी पथा में बरत आपान्मून मंडात्मिक समानता है क्योंकि उनके मामाजिद मगठन और बलाकाय परम्पर भिन्न हैं। यह सूफीवादी इस्लामी विचारधारा का स्वागत का ही परिणाम है कि कुछ सूफी पथा भारत में ही जन्म और भारत में उन समूहों तक ही सीमित रह जिनमें उनका जन्म हुआ था। जिसप्रकार हम काग में भारत का अनेक सम्प्रदायों और प्रदयना जानीय समूह सुधारवादी पथा का माध्यम महिष्य में प्रविष्ट हुए उसी प्रकार प्रनक ऐसे समूह, सूफीवाद का द्वारा, इस्लाम में प्रविष्ट रहकर इस्लाम में जन्म प्रथा का सपना का कारण बने।

इस्लामी धार्मिक पथो मे भारतीयकरण¹

इस्लामी दशन और आध्यात्मिकता मे अतनिहित आत्म विच्छेद स उत्पन्न, सूफीयाना इस्लाम के लिए भारत का समन्वयकारी सांस्कृतिक वातावरण बडा ही अनुकूल रहा। इन पथा के माध्यम स अनेक देशज समूहो ने, एक ओर अपनी गर इस्लामी परम्पराओ का इस्लामीकरण किया और, दूसरी ओर, उस इस्लामीकरण का भारतीयकरण। भारत की सामाजिक पृष्ठभूमि, इस्लाम म पथ परम्परा की उत्प्रेरक सिद्ध हुई, जिसके कारण यहा अनेक पथो का आविर्भाव हुआ, जिनम कुछ सूफी थे और कुछ गर-सूफी। इन पथो की विशेषता यह है कि इनके द्वारा गर इस्लामी प्रथाओ का इस्लाम म समावेश हुआ।

गुल्तान मल्लाउद्दीन तिलजी के जमाने मे एमे पथ थे जा गर इस्लामी परम्पराओ को मानत थे। अशाव ए इबाहत पथ के लोगो के बारे म अमीर खुसरो ने ने लिखा है कि उनम सभीपथ सम्बन्धियो (भाई बहिन, पिता पुत्री माता पुत्र) में भी यीन सम्बन्ध पाये जाते हैं। सत्रहवीं शताब्दी के मध्य म अबिस्ता जल मजाहिब के लखक न ऐसे ही पथा के बारे म लिखा है कि उनमे अनेक गर इस्लामी प्रथाये पायी जाती हैं। परम्परावादी दृष्टिकान स ये प्रथाये भारत मे इस्लाम के अध पतन का प्रतीक सो लगती है ? इस्माइली एक शिया पथ है जिसके बारे म अबिस्ता मे लिखा हुआ है कि इस पथ के लोग गरिमत क अनुसार व्यवहार नहीं करते है और व इस उद्घापोह म नहीं पडते है कि ईश्वर है या नहीं, ससार वास्तविक है या नहीं। उनकी यह मा यता है कि ईश्वर सबशक्तिमान है और उन पर यह आराप लगाया जाता है कि अपनी गुप्त सभाओ म वे अमम्यगमन यीन सम्बन्ध (Incestuous Sex Relations) स्थापित करते है। भारत म खोजा और बाहरा जो काठियावाड और गुजरात म पाये जाय हैं, इस्माइली पथ के दो उपपथ हैं। खोजा हिंदू थे, जिनको सयत इमामुद्दीन नामक एक सूफी मत ने इस्लाम मे परिवर्तित किया था। जहमदाबाद स नौ मील की दूरी पर स्थित इमामुद्दीन की दरगाह खोजा लागो का एक धार्मिक स्थान है। ऐसा कहा जाना है कि इन लोगो म पायी जाने वाली गुरुपूजा म मूर्ति-पूजा का भाव है, क्योंकि इनका गुरु एक सम्राट की भाति पदों की पीछ बठता है और ये लाग उसके पर के अगूठे का चूम कर, उसके चरणो म सोने और चादी की भेंट चढात हैं। खोजाओ की भाति गुजरात के बोहरो ने भी शिया-पथ को स्वीकार किया और अपने विवाह उत्तराधिकार तथा तलाक के नियमो म अनेक गर सुनी प्रथाओ को स्थान दिया है।

1 यहा जिन सूफी पथा का सन्दर्भ दिया गया है उनका वजन यासीन के अध्ययन ए सोगल हिस्ट्री आफ इस्लामिक इण्डिया पर आधारित है।

दक्षिणता का हवाग देत हुए, मामीन ने लिखा है कि सन् सोलह मी पाच और सत्रह मी अठतालीस के बीच हिन्दुओं में एक ऐसा वन अस्तित्व में आ गया था, जिसके सम्बन्ध अपने परम्परागत विद्वानों और व्यवहारों के साथ, सूफी मुसलमानों का भावित रहने थे। अपने विचारों और व्यवहारों में, इन्होंने सूफीवादी सिद्धांतों का आत्ममान प्रदर्शन कर लिया था, पर मूलतः ये लोग हिन्दू ही थे। इस वन के लोगों का यही तब दावा था कि उनकी भाषनाशा, विचारों और व्यवहारों का पैगम्बर के उपदेशों से कोई सम्बन्ध नहीं था। यह तथ्य हम बात का प्रतीक है कि भारत के समकालीन सांस्कृतिक वातावरण में सूफीवाद को वह नयी दिशा मिली जिसके कारण वह इस्लाम के उत्तरात्तर भारतीयकरण का माध्यम बना। यह भारत के समकालीन सांस्कृतिक वातावरण का प्रभाव था कि भारत में कुछ ऐसे सूफीपथ उत्पन्न हुए जो भारत के बाहर अज्ञान नहीं पाए जाते हैं और अपनी विचारधारा तथा कल्याणकारिण, अथवा स्थानों के सूफीपथों में भिन्न हैं। भारत के मुख्य सूफीपथ हैं—रीगनिया दीन ए दलाहा या तोहीद-ए दलाही मन्त्रिया जलालिया के बाद या उनका, काकबी या काकनी और पियारापथी। ये पथ गिया भी थे और सुन्नी भी और भारतीय देश-काल के समकालीन परिधि में घिर रहने के कारण इस्लाम आत्मविच्छेद के अधिवर्ग में पड़े।

रीगनिया पथ के प्रणेता थे गिया बयाजिद अगारा जो गाल्हावा शान्ति के मध्य में पञ्जाब में पैदा हुए थे। अठारहवीं शताब्दी के कल्याणकारिण के स्थान पर इन्होंने तब साधारण विचारों की शुद्धता और ईश्वरच्छा में कट्टर विश्वास पर अधिक जोर दिया। इनका मन मन्त्रों की शक्तों तक चलना रक्ता। अपने मन का प्रसार करने के लिए, इन्होंने अरबी, फारसी और पञ्जाब के भाषा-भाषा में दा (मन्त्रों) का भी आश्रय लिया। शीत ए दलाही के प्रणेता थे सल्लाह अकबर जो इस्लाम और भारत के अन्य धर्मों के बीच सम्बन्ध स्थापना के लिए प्रेरित थे। दास ए दलाही के मुख्य पाठ आध्यात्म हैं—सत्तापान वल अन्ताह का प्रयोग करना, सभी धर्मों पर विचार विमर्श एवं विचार (पञ्चि ज्ञानिय में विश्वास) और ज्ञान आगियाना जगद्गुरु महुम्मद अकबर के गमना पर एक जातार-निर्दिष्टा का निरूपण। इन पथों और शब्दों के समग्र तक चलना रहा और इन्होंने मुख्य रूप से भारतीय सांस्कृतिक वातावरण के अनुसार एक ऐसी शक्ति प्राप्त करती जो सभी धर्मावलम्बियों का मान्यता है। इन पथों का अन्त आरंभ और इस्लाम के समीप में हुआ, भारत की शक्तियों का परंपरा के ही अधिक समीप है। इन पथों के प्रणेता हैं शीत ए की दानियल पण्डित और इस्लाम के समकालीन ज्ञान के प्रयोग के और, इलाहाबाद और भारत के इस्लाम के

1) सलीमगढ़ उल अन्ताह का अर्थ है अन्ताह (ईश्वर) के सत्तापान का अवतारण।

भावना अधिक थी यद्यपि, जकबर के बाद, इस भावना का उत्तरोत्तर ह्यम हाता गया।

मदरिया पथ के अनुयायी अपने को सुनी कहते थे और शेष बहयुगीन आ साहमदार के नाम से प्रसिद्ध है, के अनुयायी थे। आज भी साहमदार का हिंदू और मुसलमान दोनों पूजते हैं। आज भी मकनपुर (जिला कानपुर) में प्रतिवर्ष हाकी मजार पर भेगा लगता है। इन्होंने 'मदार की दबी महिमा स्थापित की। इस पथ के अनुयाइयाँ के अनुसार जब पैगम्बर स्वर्ग द्वार पर पहुँचे तो उन्हें वहाँ द्वार मुई के द्वार के जानार का मिला। दबदूत निवरील ने उनसे मजार की सहायता का आवाहन करने के लिए कहा और उस ही उ होने दम मजार' शब्द का उच्चारण किया, स्वर्ग द्वार चौड़ा था गया और तब पैगम्बर स्वर्ग में प्रवेश पा सके। इसी म म जित उपवासों और प्राथनाओं पर जोर दिया गया है उनका मदरिया लोग न पालन नहीं किया। ये गल में हसली और गिर पर बाला साफ धारण करते थे और काग पड़ा लकर चलन थे। जटा रखना नगे बन्धन रहना दूर पर भरस मलना धुनी रमाना और भाग का अत्यधिक प्रयोग उनकी साधना चर्या में शामिल थे। सूफीवाद के रूप में मदरिया एक प्रकार का वाममार्गी पथ का प्रतीक होता है।

जलालियान सयद जलालुद्दीन बुयारी (1307-1374 ई०) के अनुयायी थे और अपने को शिया मानते थे। जलालुद्दीन मुल्तान के सु रावर्दी सत बनावल हक के शिष्य थे। जलालियान शिष्यों ने न ता उपवास और प्राथना की परबाह की और न सूफिया की आधारभूत मान्यताओं की ही। इस पथ के अनुयायी भाग का अत्यधिक प्रयोग करते थे और ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने साप बिच्छू और कीड़े मकान का भोज्य पदार्थों की श्रेणी में रखवा। मदरियों की भांति जलालियान भी नगे बदन रहते थे और धुनी रमाते थे लेकिन जटाध नहीं रखते थे। विभिन्न प्रमाणों के आधार पर, यासीन ने जलालियान का आचरण किया है, वह इस प्रकार है— जलालियान गल में गुनूबन्ध बाधते हैं पदम (ऊन) या बहुरगी धागा का हार तथा लगाटी धारण करते हैं और साप लेकर चलन है। पथ में दीक्षा लेने समय, उनकी दाहिनी बाह के ऊपरी हिस्से में दाग दिया जाता है। वे बाजारा में भिक्षा मागत रहते हैं और यदि उन्हें भिक्षा नहीं मिलती है तो वे कपड़ा ची हुयी ताँहे की गरम सलाख में जपन का दाग लेते हैं। पजाव उनका मुख्य गढ़ है जहाँ वे प्राथना पर बहुत ही कम ध्यान दते हैं गाजा पीते हैं बिच्छू और साप खाते हैं और सिर मछ तथा भौंहा को मुडते हैं किन्तु सिर पर, दाहिनी और चोटी भी रखते हैं। वे सिर पर पट्टी बांधे रहते हैं गले में उनी धाया पहनते हैं और मुनदड पर शीत के सदीक बांधे रहते हैं। उनका बाईं निश्चित निवास स्थान नहीं होता है—वे सलानी जाते हैं।

दक्खिना के अनुसार जलालियान का 'गुरु (पीर) प्रतिदिन एक नय स्त्री प्रमग की टोह में रहता है। जब अपने किसी शिष्य के घर में उस विसा मुदर तरणी का

पता चलता है ना व नरसिंह यजान नी जाता दाता > पाठ पर सार हाकर गिद्य
 के घर जाता है और नी ग मननाता धरार करता > । तमी का यह कनी
 कभी अपन घर भी > धाना > पर उसा विवाह नही करता > । इस प्रया का
 स्पष्ट करत ह्ये दक्षिणा व नवक न गिया है नि गम्भवत हमका गम्भव अली ग
 है कयाकि अला प्रतिनि न ह्या का हूंग वात्थ । दक्षिणा व नवक द्वारा प्रस्न
 विय जान पर एक जनाला न उम बनाया कि गर वा गृह कृप्य जगवी प्रुता का
 प्रतीन > धोर वगम्वर क परिहार का एक विगपाधियार है । गर जनी का प्रतीन
 है । जत व जना द्वारा प्रदान गिपाधि सारा का प्रयाग कर गकता है ।

बकद वा मतव > स्वतय जोर नैका वा निराह । पना दाता पय
 एक धे पर वात् म जग्य अग्य ह्य । वदना का कटना > ति गरा (पनाचारी रिडि
 Ritual Law) जम जाता क तिय है ग ति उनक गिय ज। माग्कन (स्तर का
 गान) प्रा न रर रर > । वनशा ग्य कता म गर गियागुता (अगर) वा धनी
 म धाना > । इन गाना प धो व जनुमयी मि ता माग्कनमय गिग मि ता माग्कन >
 उसक गिय गाता मिग्कन तापा और अपन ग का प्रया करत थ । व मि ता म कव
 उतना ही लन थ जिगा ति उनक पान पान वा काम वा गय । उनका वात्थ धा
 तिरका अर्था गणी वा कचला जा व इगर उपर म इकटा तिय ह्ये धीयग ग
 बनान थ । ग पय क अनयाया क अनगार माग्कन दह > स्तर आना जोर
 मगार उग धात्मा क प्रा । ये गानी वगुना का प्रयाग करत थ । एा वरका वा
 मानत थ और काम म कुछ धन का गार्किक तपस्वराक्षा म नी लगान थ ।

मनुषी (Manu) क अनुसार मग्य रायम जतर प्रसार क पबीर गद
 जाने वाग गरीव लाग थ किनु उनम दा प्रहार क फीर मयथ—एक द्ये क अग्य
 आजा धोर दूगरे बेगम अपशा निडर । पदर प्रकार क पकी व हा किय थ ।
 सबक गिय गालिदा अगिष्ट भापा का प्रयाग सबक परा गिपाया अमीग क
 परा म धुगपय पता (भिगा) मागना धोर ग मिला पर गालिदा दना, उनक गिय
 छाधारण बात थी । द्वाउ कभा मी स्तर क नाम पर मि ता नही माता क गालि
 उलग स्तर साराय हाता > । बेना गगा छरा हाय म लका मि ता गालि थ और
 ग मितन पर धानी वाह गिर वा वेट म सुग्य मार ल थ तथा भिगा ग ल ल
 पर बतीर थय क आग गून ठिइक था ये । ये वग्य गाराग म बनिदा की दूगता
 पर मि ता माग्कन थ । द्वाय अपरा निडर प्रकार क पयाग था भा बागारो गदा
 मला म मिला जाा है । इनथ म विगपनया गगाऊ क नाम लम क मरगिरो मा
 मूठगिरो (अर्था मूठ वा गिर धारा काउ क) गगा था जानी ।

कतागभा गतागोर क समसमान बहु जत पान कताग नियोगी इका ग
 कक क अनुपाधी थ । एगा कहा जाता है कि इका म कक और उनक गिय
 कनीकरा म गिग्कय धे और किगी पर नकर दामन माय क ही उगका व म कद

लेते थे। इब्राहीम के शिष्य मुसलमान भी थे और हिंदू भी। इब्राहीम ने कभी भी जपन गिप्पा से धर्म परिवर्तन की मांग नहीं की। अल्लाह और राम का छाडकर वे न ता किसी पगम्बर का नाम लते थे और न किसी अवतार का। वे और उनक शिष्य रात में कभी नहीं साते थे बल्कि पीठ से पीठ जोड़े हुये रात भर बैठे रहते थे। वे सर्वोच्च देवी मत्ता का एक माते थे, भाग का अत्यधिक प्रयोग करत थे और ब्रह्मचय का नियमित रूप से पालन करत थे। पियारा प थी, बाबा पियारा जो बगाल के निवासी थे और सम्भवत दोख सलीम चिश्ती के गिध्य थे, से सम्बन्धित हैं। भिक्षा मागत समय ये किसी के घर या दूकान के सामने खड हा जाते थे और न ता किसी वस्तु की ओर देखते थे, न कुछ कहते थे और न किसी वस्तु की याचना ही करत थे। जो कुछ मिल जाता था वे स्वीकार कर लते थे और यदि कुछ नहीं मिलता था तो चुपचाप चले जात थे। अपने का मुसलमान कहत थे पर मुसलमानों की तरफ ज्यादा ध्यान नहीं दत थे।

भारत में उत्पन्न होने वाले तथा भारत में ही सीमित रहने वाले इन सूफी पंथा के माध्यम से इस्लाम पर हिंदू धर्म, हिंदुत्व की आगम परम्पराओं बौद्ध तांत्रिका और जादिवानिया का प्रभाव पडा। यह पन्थ ही कहा जा चुका है कि जहा हिंदूकरण की प्रक्रिया अपूर्ण थी, वही इस्लाम का प्रवेश हुआ। एसा क्षेत्र था भारत का जादिवामी समाज। एसा लगता है कि जलज अलग गणजातिया अलग अलग स्थानों में सूफी पंथों के रूप में इस्लाम में प्रवेश कर गयी और अपनी परम्परागत प्रथाओं का इस्लाम के रंग में रंगा। अकबरनामा के आधार पर, माहम्मद यामीन ने लिखा है कि काफरी पंथ का मस्थापक सम्भवत कश्मीर की काक गणजाति का था। वास्तव में भारतीय सामाजिक संरचना के निम्नतर स्तरों पर हिंदूकरण और इस्लामीकरण का साथ-साथ समावेश हुआ है और चूंकि हिंदूकरण की प्रक्रिया में हिंदू और जादिवामी प्रथाओं का पहला ही से सम्बन्ध हा रहा था इस्लाम के प्रभावा का एक और हिंदूकरण हुआ ता दूमरी और जादिवामीकरण। पियारा पंथिया का भिक्षाटन का तरीका वास्तव में बौद्ध भिक्षुओं और दंडियों का तरीका है। मदरिया और जलालियात पंथा के अनुयायियों में यदि एक जगह भारत के नागा साधुओं और सयामिया की सी विनोदताय मिलती है तो दूमरी और औषधों और बासमार्गी बौद्ध तांत्रिका की सी परम्पराय। भारत में सयामिया की न तो कोई जाति है और न कोई जाति। सम्भवत इसी प्रभाव के अंतर्गत बक्या की स्वतंत्र (आजाद) शाखा ने यह निर्धारित किया कि मारिफत की अवस्था में पहुंच जाने वाले पर गरा (रक्षणी कल्पाचारी विधि) नहीं लागू होती है। मगर उसी दबी शक्ति की धारणा और मगर का बडा टाटमवादिता (Lotemism) के अधिक निरुद्ध है न कि हिंदुत्व या इस्लाम का।

दक्खिना के ग्रन्थों के अनुसार जलालियात के गुरु का अपने गिप्पो के घर की

हिन्दुओं के साथ संघर्ष, मोन-सम्व्य व स्थापित करना मम्ब बन जाके जाध्यापिन् नगरी 'अंगी' के जीवन का प्रभाव है। उमा लम्ब के अनपार हिन्दुओं के अन्तर्भाव मम्बप्रदाय के चर्चों में भी विदातापरात मवप्रदम दध गुन का अहित करके, बाद में पति द्वारा प्रगत व फल म लण को जानी था। याराप म मध्यमगीन बघातिक हसाण्या म भी लता प्रयाजा का उल्लेख है। वनी गुन का स्वात पात्रो के पास था। चमारा म पास जान व ल ए दी का बलन करत डूम रिग्ग (1920) ने गतनामी पय म लता ही प्रया का उल्लेख किया है। भारत के सामाजिकीय विषय जोर नैरवी की धारणा तथा अन्त मम्बेहित योनि व कलाचा मन्मामला के पान म नी ली लय म था। एनी लय म ये कल मन्माकठिन है कि जलापिदान म ये प्रया म। एस्ताम म आया ल या भारत के जाध्यापिया या सामाजिकीय म। भारत म एनी प्रयाजा का वास्तविक रूप क्या था या क्या है जोर उनन वास्तविक उन्ममम्यान वरा है? यप्रन्त भारत के सामाजिक अन्वित का अहित मी प्रया है।

अन्तरर द्वारा स्थापित लीन ए दलाता वस्तुतः बहू प्रयाग है रिग्ग द्वारा इस्लाम जोर हिन्दु के लाननिष्ठ तथा ध्यावहारिच यथा का मन्त्रय करन की वाणिज्य का गयी था। स्मनिर्वो ओर पुराणा म वीरिच धय गम्ब की धारणा म मन्त्राट म दवत्व का प्रतिराण करके उन धमरण माना गया है। इमाकारण भारत के राजाओं ने मभी धर्मों का प्रारुान लिया है और वेन तथा जादि-रबम्या के लिये नियमा का निवारण किया है। सभाया ने आचार सुहितान्क का मन्त्रय वगया है। अन्तरर का धार्मिक मामला म उच्चतम मता मानवर दीन ए दलाही द्वारा गहा एक बार, एन्तामा कट्टरता पर गह लमान का प्रयाग किया गया था मन्त दूमरा धार उन हिन्दू परम्पराओं के अधिक मधीय लान का प्रयाग भी किया गया था। अन्तरर के राज, दीन ए एन्तही ता रिग्ग गहा पर उमरी आत्मावर्ण मगी कराकि जलागीर के ममय से एन्तमी कट्टरता ने एक नया रूप ल लिया था 'अधी' धीर वन्ती रती। इम एन्तम म मन्त्र वरी अन्तिता तो यही है कि जया एक धार गुरी पदा के द्वारा इस्लाम एगार ओर मन्त्रयवरागी दया मन्त दूमरा धार एनी पया के प्रभाव म उनम कट्टरता का भी मन्त्रय जया। दक्षिणा के अनुसार, गुरी-पय साम्प्रदायिकाता से पूजनया मबन न द। दक्षिणा म यन्ति एह पन्ता के अनुसार, एक हीपस्थान पर म विद्या तन्त्रिया जोर मन्त्रिया के उन्मव म, एम म विद्या जोर जलापिन् न ही बार एह कानना काता ता दाना व र एन्तानिदा न करन काता एह का मन्त्रय किया। इत्तम प्रा-निति ल कर म विद्या ओर तन्त्रियात एह लामरा मन्त्रय का विद्वेक परिणाम यह हुआ कि मन्त्रिया न उन पर आदमन कर लिया।

य एन्तम मन्त्रय का एन्तम मन्त्रीयवरा एन्तम है कि प्रारम्भ म ही एन्तम का मन्त्रयन धार एह धर्मवीरक एन्तम के अनुमन्त्रयन का प्रयाग का मन्त्रय एह है। एन्तम के कट्टर म भाव दूमरे गुरी-पदा ओर उनन मन्त्रय, वीरि

इस प्रयाम में काफी योग दिया है। सार इस्लामी भारत में मुजहिद आ दालना की अगुमार रही है। यथायुक्त अनुसार, जहाँ स भारत में इस्लाम का प्रवेश हुआ है उन्वर न देश में उस बड़े बड़े शायों का उत्पन्न किया है जो धर्म निरपेक्ष सम्राटों के विरुद्ध रहे हैं। उन्वर न पतिनिया की इम तहर का दवाय रक्खा किन्तु उसकी मृत्यु के बाद वह और भी प्रबल हो गयी। मुजहिद अफगानी गल अहमद सरहिदी, जो पंद्रह सौ निरमठ ईसवी में पण्डितों और चिदिशिया बदरिया और नरशरिदिशा पण्डितों से प्रभावित थे, ने इस्लाम की रक्षा के लिए सम्राट को मुधारन का प्रयत्न किया और दरबार के अमरार स लिगा पत्नी की। जहागीर का भारत सम्राट की गद्दी पर विठान में इनका बड़ा हाथ था। बहुत सम्भव है कि भारत के सिंहासन के बदले में इस्लाम की रक्षा की प्रतिज्ञा जहागीर न शेर अहमद सरहिदी और उनके अनुयायियों का बतौर मूल्य के ली हो¹।

सरहिदी ने सदैव इस बात पर जोर दिया कि गरिजत तलवार की ही छत्र छाया में सुरक्षित है। उन्वर की मृत्यु के बाद उन्होंने इस्लाम सतत में ही का नारा लगाया और बट्टरवादिता का प्रोत्साहित किया, जिसका प्रारम्भ जहागीर में होता है। तानजहा का लिख हुआ एक पत्र में उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि बालशाह के सम्मुख अय धर्मा की निन्दा की जाय। सरहिदी ने धर्मांतरण (Proselytization) के कार्य के लिए लोगों को तयार किया। जहागीर के कार्यों और नीति में हिन्दू विरोधी तत्वात्ता उत्पन्न जहागीर पर सरहिदी के प्रभाव में है। ऐसा कहा जाता है कि बालशाह का जहागीर इस्लाम के लिए लाभ समवता था। यासीन के अनुसार, सरहिदी ने सागरणाया शिया और मुन्सिमी में जोर बिगपतया मुसलमानों और गर मुन्सिमी में उत्तरात्तर घणा का प्रचार किया, जिसके कारण प्रतिनिधियाँ असहिष्णुता और शास्त्रवादिता सघन बनी। शाहजहा पर बट्टरता का प्रभाव था पर उगा मातृका का श्रद्धा के समस्त सिंहासन को अधिक महत्व दिया। औरंगजेब, शाह बड़ीउल्लाह, जिन्होंने इस्लाम के पुनसंस्थापन के लिए अभ्यास जगला का भारत बुलाया था भारत में बहादी आन्दोलन के प्रणेता सय्यद अमद बरतवी (1770-1831) अन्वाल्दार मुहम्मदशाह त्रिपाठी, उत्तम अय्य आरम्भिक घटनाओं ने हाकर एक उत्तरात्तर विनामनीय ऐतिहासिक शृंखला की र्णिया है। अय्य कोई अतिशयावित न हागी यन्नि यह कहा जाय कि भारतीय सभ्यति में, इस्लाम उतात्तरणा में फँस हुए एक जहाज के समान रहा है। इस्लाम का आत्मविच्छेद (Schism) इस्लाम के प्रान्त का सत्तर, भारतीय सभ्यति का आत्मविच्छेद (Schism) बन गया।

नौकरशाही के निम्न स्तर पर हिन्दुओं को रखने के सिवा मुसलमानों के पास और कोई चारा ही नहीं था। मुसलमानों के भारत में आने के पहले ही भारत में मुनिश्चित नौकरशाही की परम्परा अस्तित्व में आ गयी थी। नौकरशाही के उच्च पदा को तो मुसलमानों ने हाथिया लिया किन्तु निम्न पदों पर हिन्दुओं का रखना आवश्यक था, क्योंकि पटवारी, मुनीम और खजांची का काम यहाँ की परम्परागत सामाजिक आर्थिक व्यवस्था में अनुसार हिन्दू ही कर सकते थे। मुसलमान अपने साधन के अतिरिक्त केवल इस्लाम लाय थे। उनके पास न तो कोई आर्थिक पद्धति थी न कोई आर्थिक तथा भूमि व्यवस्था। मुसलमानों के पास धर्म प्रपना था—पर सामाजिक आर्थिक व्यवस्था थी भारत का जिसके चलाने वाले थे हिन्दू। इसी कारण जिले के स्तर पर प्रशासन हुआ करते थे मुसलमान किन्तु प्रशासन को चलायें वाले हिन्दू। इसी मुनिश्चित भारतीय नौकरशाही पर मुस्लिम सम्राट अपने साम्राज्य को खड़ा कर सके और इसी के आधार पर प्रांतीय राज्यपाल मौका पाते ही राज्यों की नाव डाल देते थे। आगे चल कर इसी नौकरशाही के बल पर अंग्रेजों ने भारतीय साम्राज्य सड़ा किया। हाँ, यह अवश्य है कि आर्थिक प्रशासन का मुसलमानों ने अपने आधिपत्य में रखा।

इस प्रकार भारत में इस्लाम के प्रवेश करने पर भी भारत की आर्थिक संरचना वही रही जिसका निर्माण हिन्दुओं ने किया था। यहाँ की भूमि व्यवस्था का वही रूप रहा जो पहले से चला आया था¹। हाँ यह अवश्य था कि मुस्लिम सम्राट यदा कदा लगान की दर में परिवर्तन कर दिया करते थे। भारत की इस परम्परागत आर्थिक संरचना और भूमि व्यवस्था पर मुसलमानों ने जागीरदारी की सामंती व्यवस्था कायम की क्योंकि स्वयं मुस्लिम सम्राट एक बड़ा सामंत था जिसकी रक्षा के लिए अनेक सामंतों की आवश्यकता थी। जागीरदार भूमि का मालिक न था बल्कि सम्राट की दया पर निर्भर, भूमि कर वसूल करने वाला एक अधिकारी था। भूमि का व्यक्तिगत तथा सामूहिक आधिपत्य वस्तुतः निहित था सामंती समाज में जो सामंतवादी व्यवस्था का गणतंत्रिय घरातल था। मुस्लिम आक्रमण के काल में लिखा गया शुभनोतिसार से यह पता चलता है कि तत्कालीन भारत की सामाजिक

1 भूमि व्यवस्था को निश्चित आधार पर लाने के लिए अकबर को भी टोडरमल की जरूरत पड़ी। किन्तु जब अकबर ने राजा टोडरमल को नियुक्त किया तो मुसलमानों ने इसका विरोध किया और अकबर के पास एक प्रतिनिधि मंडल भेजा। इस प्रतिनिधि मंडल से अकबर ने पूछा, “तुम्हारी भूमि और राजस्व का प्रबंध कौन करता है?” उसका उत्तर था हिन्दू पदाधिकारी। इस पर अकबर ने कहा, ‘तो मुझे भी अपनी भूमि के प्रबंध के लिए हिन्दू को नियुक्त करने की अनुमति दो’—देखिय, रामगोपाल वही पृष्ठ 14

आधिक व्यवस्था में शामिल एक अन्तर्गामी इकाई था। इसी अन्तर्गामी धारा पर
 मुख्यमाना न मान्य पर जाधारित एक सामग्री व्यवस्था लड़ी गी। नुस्खाधी गौर
 हृषिक ध शिखू नूमि व्यवस्था का चलाव था ध शिखू पर उन मनी का निदवा
 करन बाए धे मुख्यम मान्य। शिखू व्यवस्था में मुख्यमानों न प्रवर्ण शिखा धा व
 नी सामग्री व्यवस्था थी। या यह उवाच है कि उन्मान व प्रवर्ण व ना-नाथ शिखू
 सम्राट का स्थान न विना मस्लिम सम्राट न और शिखू मानता का मस्लिम मानता
 न। उन् भारत की सामन्तवादी व्यवस्था न मान तब एन व नाम पर या नमूनों में
 बट गया। मान्य शिखास में समन्वय और की एसा नही हुआ नी एसी कारण
 भारत व सामन्त-यग का एक जग पूजावाी व्यवस्था न लहता एसा ना,
 दूसरी जग स्वय एपन न शिखू जी मन्लनान न। मस्लिम सामन्तवा न शिखू
 सामन्त-यग का हटाया था। इसकारण जना म पारस्परि व जमताय और सधय की
 जग मुख्य लड़ी और तब तब मुख्यता एसा जब तक कि जमनों द्वारा जगो हृषी
 साम्राजवादी-पूजावाी व्यवस्था न मुख्यमान मानता का अग्रत प्रगापना न ली
 हटाया। एम परिस्थिति में उन् जमुरगा का भावना व कारण मस्लिम सामग्री में
 जा जमताय फला वह एसा ही स मुख्यता हुआ जा व कना स सामन्तवादिज उवाच
 के रूप में घटक उठा।

भारत और उमक बाहर अरबी प्रतीक रही है जरबीटत इस्लाम का। धार्मिक कल्पाचार म, मुसलमाना क लिए अरबी का वही मटत्व रहा ह जा हिंदुआ के लिए ससृृत का है।

उत्तरी भारत मे तुर्कों क प्रवेश के साथ साथ, फारसी का राज्य त्रपाप्राप्त हा गयी। मुगल काठ म जब दरवार म ईरानिया का प्रभाव बण गया तत्र यह वृपा और भी बसवता हा गयी। अत फारसी एक जार, राज्य भाषा रही ता, दूसरी और, काय और साहित्य की भाषा। भारतीय ससृृृति और समाज म ज्या ज्या इस्लाम का प्रवेश हाता गया त्या त्यो फारसी का विद्वता और पाठित्य की भाषा का स्तर मिलता गया। सम्भवत यही कारण है कि अरबी की अपक्षा हिंदुओ न फारसी अधिक सीखी और जिम अनुपात म हिंदुआ न फारसी और अरबी सीखी उस अनुपात मे मुसलमानो न ससृृत नही सीखी। इसका परिणाम यह हुआ कि हिंदू इस्लाम की भाषताआ न जितना परिचित हुए उतना मुसलमान हिंदुत्व की भाषताआ से परिचित न हा सक। इसीकारण दशन और भाषताओ के स्तर पर, इस्लाम का जितना हिंदूकरण हुआ उतना हिंदुत्व का इस्लामीकरण गही हुआ। भाषा सम्प्रथा इस स्थिति का एक यह भी परिणाम हुआ कि अरबी का अधिकतर पठन पाठन और प्रचार हुआ इस्लाम का भाषा क रूप म और बण अधिक तर मौखियो और मुलाया तक सीमित रहा। फारसी का प्रचार हुआ राज्य तथा साहित्य की भाषा क रूप म जिम हिंदुओ और मुसलमाना न बसगा सीखा। अरबी फारसी क साथ साथ ससृृत का भी पठन पाठन चानू था पर हिंदुओ की धार्मिक भाषा तथा हिंदू दशन और ज्ञान विज्ञान की भाषा क रूप म और इस रूप म ससृृत केवल वसाचाया और दार्शनिका तक ही सीमित थी। इस प्रकार इस्लाम के प्रवेश के साथ साथ अरबी फारसी और ससृृत भाषाओ के रूप म भारत म तीन साहित्यिक धाराय वह निकली जा यदा कदा मिनी किंतु अधिकतर समाना तर हा बहती री।

अरबी फारसी और ससृृत वास्तव म भारत क साम ती और अभिजात वर्ग की भाषाय ती कदाकि जिम काल म इस्लाम का प्रवेश हा रणा था भारत म प्रादेशिक भाषाय भी अस्तित्व हो रही थी। य प्रादेशिक भाषाय भारत के जनसाधारण की भाषाय थी और इनके ज्ञान से ससृृत तथा द्राविड भाषाओ म। मुसलमानो को, विषयतया मुस्लिम वादशाहो और प्रशासका का इन भाषाओ की जानकारी आवश्यक थी। इसीकारण मुसलमान वादशाहो न प्रादेशिक भाषाओ को सरभण और प्रा नाहन लिया। ससृृत क प्र थी वा यदि एक थार अरबी फारसी म अनुवाद कराया गया तो दूसरी ओर प्रादेशिक भाषाओ म। प्रादेशिक भाषाओ का साहित्य

1 पढे लिले व्यक्तियो के बेकार रहने पर आज भी अवध में यह कहावत कही जाती है—पढे फारसी बेच बेर। ई देशो कुदरत के सोल।

वे स्तर पर लाने के लिए मुसलमान ही प्रेरित हुए और इसी कारण भारत की प्रादेशिक भाषाओं में इस्लाम और हिन्दुत्व का जो सम्बन्ध हुआ वह अरबी फारसी और संस्कृत के स्तर पर नहीं हुआ¹ । और ऐसा होना स्वाभाविक भी था क्योंकि हिन्दुत्व और इस्लाम का जो सम्बन्ध जनसाधारण के स्तर पर हो रहा था वह अभिजात वर्ग के स्तर पर नहीं था । अभिजात वर्ग के स्तर पर चल रहा था सभ्य—वह सभ्य जिसमें हिन्दुत्व और इस्लाम की आड़ ली जा रही थी । कोई आश्चर्य नहीं, यदि प्रादेशिक भाषाओं में मानवतावादी विचारों की धाराएँ एक साथ फूट निकलीं ।

मुस्लिम प्रशासन का स्थायी बनाने के लिए यह आवश्यक था कि मुसलमान भारत का अपना देश समझें और प्रशासिता से भाषा के उस स्तर पर मिल जायें जहाँ वे एक दूसरे का समझ सकें । इसमें कोई शक नहीं कि मुस्लिम वादगान् विद्वान् से मुसलमानों का आकर्षित करते रहे उनका उच्चपद प्रदान करते रहे और भारत के मुसलमानों में इस्लाम के अरबीपन के प्रति एक रागात्मक भुकाव रहा । फिर भी, मुसलमान बादशाह इस बात का भी प्रयास करते रहे कि भारत के मुसलमान भारत का अपना देश समझें । सुल्तान मुहम्मद तुगलक इस बात के लिए प्रयत्नशील रहा कि मुसलमान भारत का अपना देश समझें । उसने विदेशी मुसलमानों को काफी संरक्षण प्रदान किया उन्हीं भारत में ही बसने के लिए उत्साहित किया और इस बात पर जोर दिया कि विदेशी मुसलमानों को गरीब (अगुनबी) न समझकर, अग्रज (मन्त्रिणी) समझा जाय² । इसी आवश्यकता के कारण जनसाधारण की भाषा का समझना उतना ही आवश्यक था जितना कि भारत को अपना पतन या देश समझना । समाज परिग्राम यह हुआ कि मुसलमान जनसाधारण की भाषाओं की ओर झुकें ।

बंगाल में हुमनाह (1493-1518) की शासन मालाधार वसु न भागवत पुराण का उल्लेख मनुवा किया और हुमनाह के एक सनानायक परागल खान का प्रेरणा से कबीर परमेश्वर और श्रीकृष्ण नाम ने महाभारत के कुछ अंशों का बंगाल में अनुवाद किया । तुमरा ने दिल्ली के आम पास और राज्या में बोला जाने वाली लोरी वागी का रमवान और रहीम खानखाना न बज्ज का, मलिक मुहम्मद जायसी न अक्बी को जोर कबीर न भोजपुरी की एक गाथा मगही का अपनी काव्याभिव्यक्ति का माध्यम बनाया । यह अनुमान किया जा सकता है कि जिस प्रकार अग्रजों का म अग्रज प्रशासन और अग्रज भाषा भाषी लोग अग्रजों की सभाओं और विद्वानों के साथ हिन्दी अथवा प्रादेशिक भाषाओं की प्रियाओं का प्रयोग करते रहते थे जोर अंग भी दैनिक बाल बाल की भाषा में अग्रजों पढ़ें

1 दिनकर यही

2 चागीन यही पृष्ठ 88

लिख लाग बसा करत है उसी प्रकार मुसलमान प्रशासक और अरबी फारसी भाषा भाषी लाग अरबी फारसी की सजाओ और विशेषणो के साथ साथ स्थानीय भाषाओ की क्रियाओ का प्रयोग करत रहें होंगे। सम्भवत, ऐसे ही प्रयोगो से प्रभावित हाकर अण्डहीन खिलजी ने दिन प्रति दिन प्रयोग में आने वाले खड़ी बोली के शब्दों के अरबी फारसी पर्यायों का संग्रह कराया था जिसका प्रयोग दिल्ली के शाही महल के बाहर लगने वाले उदू ए मुअत्ला (शाही सैनिक बाजार) में होता था। इसी उदू-ए मुअत्ला की भाषा को शाहजहाँ के समय में उदू की संज्ञा प्रदान की गयी और मुगल बादशाह जहाँ के राज्यकाल में इसे, फारसी के साथ, राज्य भाषा मान लिया गया। इसी लिपि अरबी थी सजायें और विशेषण अरबी फारसी के और क्रियायें खड़ी बोली की।

इस प्रकार, भारतीय सस्कृत में इस्लाम के प्रवेश से भाषा सम्बन्धी दो विकास प्रक्रियाएँ उत्पन्न हुयीं। एक विकास प्रक्रिया में खड़ी बोली के आधार में, ब्रज, अवधी और भोजपुरी के मिश्रण से हिन्दी का विकास हुआ जिसकी लिपि देवनागरी थी और जिसमें सस्कृत के उत्तम शब्दों की अधिकता थी क्योंकि जिन भाषाओं के मिश्रण से उसका जन्म हुआ था उनके उदगम स्रोत सस्कृत में थे। दूसरी विकास प्रक्रिया में जन्म हुआ उदू का जिसमें अरबी फारसी के उत्तम शब्दों का अधिकता से प्रयोग होता था और जिसका भुकाव अरबी फारसीपन की ओर अधिक था। खड़ी बोली के आधार पर एक शैली ने हिन्दी का रूप लिया और दूसरी ने उर्दू का। हिन्दी की अरबी फारसीकृत शैली हान के कारण, उदू वस्तुतः प्रतीक है अरबी फारसी के भारतीयकरण का यद्यपि इस भारतीयकरण पर अरबी फारसीपन का एक जबर-दस्त आवरण चढ़ा रहा है। कुछ भी हाँ हिन्दी उदू के विकास का श्रीगणेश मुसलमानों के ही हाथों हुआ। उदू का जन्म उत्तर में उदू ए मुअत्ला की भाषा तथा जुवान ए-देहली के जिसमें खड़ी बोली पन्जाबी मारवाडी और फारसी के शब्द थे, के रूप में हुआ, किन्तु उसका पालन पोषण दक्षिण में हुआ। दिनकर का ऐसा मत है कि उत्तर से गये मुसलमानों के साथ खड़ी बोली दक्षिण गयी और उमने बड़ा उदू का रूप लिया। उनकी यह मान्यता है कि उदू का जन्म उत्तर में न होकर दक्षिण में हुआ है। दक्षिण में उदू को प्रोत्साहन एक उस मुस्लिम भाषा के रूप में मिला जो उत्तर से गयी थी और जिसके माध्यम से उत्तर तथा दक्षिण के मुसलमान विचारों का आदान प्रदान कर सकत थे। दक्षिण में विदेशी मुसलमान उस सत्य में नहीं जाते थे जिस सत्य में वे उत्तर में जाते थे। दक्षिण में, उत्तर की अपेक्षा इस्लामी कट्टरता कम थी। इस कारण, दक्षिण में उदू में वह अरबी फारसीपन नहीं था जो उत्तर में था। दक्षिण की उदू में सस्कृत शब्दों की अपेक्षाकृत अधिकता थी। यह कम ही हुआ जब बंगाल में भाषा के माध्यम से मुसलमान सस्कृत भाषा के अधिक समीप रहे।

एक मत यह भी है कि उर्दू का जन्म खड़ी बोली में ससृष्ट और हिंदी के शब्दों को निकाल कर हुआ है। प्रारम्भिक उर्दू में जब तक ससृष्ट शब्दों का प्रयोग होता रहा, तब तक उसका नाम हिंदवी, हिंदी या खता रहा। यह कहना कि उर्दू का जन्म खड़ी बोली में ससृष्ट शब्दों का निकाल कर हुआ या हिंदी का जन्म उर्दू की देवनागरी लिपि में लिखकर और उसमें ठस ठूस कर ससृष्ट व तत्सम शब्दों को भरने से हुआ है, भारत की ऐतिहासिक प्रक्रिया की सामाजिक पृष्ठभूमि की अवहलना करना है। वास्तविकता यह है कि जहाँ जसा कि रसखान और रहीम खानखाना की कविता में मिलता है, भारतीय भावों का आरपान करना कवियों का ध्येय रहा, व और उनका भाषा ससृष्ट और हिंदी के अधिक समीप रहे ही जहाँ जहाँ ध्येय यह था कि भाषा भारत की हो और भाव अरब या फारसी के वहाँ कवि चाहे वह हिंदू हो या मुसलमान भाव भाषा प्रतीक लक्षणा और व्यंजना अरबी फारसी के अधिक निकट रहे है। इस परिस्थिति के लिये उत्तरदायी हैं व परिस्थितियाँ जिनमें उर्दू हिंदी का जन्म हुआ।

उर्दू का जन्म देने वाली परिस्थितियाँ कुछ इस प्रकार थीं भारत में, विनाश तथा उत्तरी भारत में विदेशी मुसलमानों का आना जारी था। ये मुसलमान अधिकतर फारसी से आने थे और इस कारण अरबी लिपि तथा अरबी-फारसी भाषाओं से वे अधिक परिचित थे। अरबी इस्लाम की भाषा थी अतः उनका हटने का मतलब था इस्लाम में हटना। फारसी उस समूह की भाषा थी जो जपान का भारतीय नहीं मानता था और, अथ मुस्लिम समूहों की जपान अथवा अथक मुसलमान मानता था। अतः, उसका अपनी भाषा फारसी में अधिक लगाव था। दूसरी ओर, राज भाषा होने के कारण फारसी अधिक माय थी और सूफीवादी विचारों से आत-प्रान्त होने के कारण इसका साहित्य, विज्ञान तथा वाय साहित्य अथवा अथक अधिक आकर्षण था। अतः, अरबी-फारसी भारत में इस्लाम का प्रतीक बन गयी और अरबी तथा फारसीपन इस्लाम की आत्मा। उधर तत्कालीन ऐतिहासिक परिस्थितियों में अरबी फारसी विज्ञान तथा फारसी के भारतीयकरण की आवश्यकता थी। अतः, भारत में उर्दू का जन्म हुआ अरबी फारसी के भारतीयकरण के प्रयास और भारत के मुसलमानों की ही भाषा के रूप में, किन्तु उर्दू मुसलमानों की उसी प्रकार भाषा न रही जिन प्रकार फारसी भारत में मुसलमानों की ही भाषा थी। उस हिंदुओं ने भी उतना समझा, जितना कि मुसलमानों ने। फिर भी अपने भाषा भाषा प्रतीक तथा साहित्यिक दृष्टियों के प्रयोग में उर्दू अरबी-फारसी, विनाश तथा फारसी के अथक सवाटन के निरन्तर पाया। इसी कारण, यह कहा गया है कि उर्दू वस्तुतः भारतीयकरण फारसी या फारसीपन हिंदी है।

उत्तर में भी, एक बात है जिसमें अरबी-फारसीपन का पुनः उदय हुआ और जो यहाँ की सामाजिक-ऐतिहासिक परिस्थितियों में दृढ़तर होता रहा है। यह

पहले ही कहा जा चुका है कि हिंदी उर्दू का जन्म लगभग एक साथ हुआ और उनका प्रारम्भिक पालन पोषण मुसलमानों के ही हाथों हुआ। अरबी फारसी के भारतीयकरण की आवश्यकता के कारण ही उर्दू का जन्म हुआ। इसका सबसे बड़ा प्रमाण है प्रारम्भिक उर्दू में सस्कृत शब्दों का अपभ्रंशित अधिक होना। अकबर के दौरे में ज्यों-ज्यों इस्लामी कठोरता बढ़ती गयी उर्दू में अरबी फारसीपन बढ़ता गया। शाहजहाँ के ही राज्यकाल में अरबी लिपि में लिखी जाने वाली भाषा पैली का उर्दू की मूल प्रदान का गया। औरंगजेब के राज्यकाल में, इस्लामी कठोरता के प्रभाव में अरबी-फारसी भाषायें इस्लाम का प्रतीक बन गईं और उर्दू पर उनका प्रभाव पड़ा। सम्भवतः, इसी कठोरता के निरुद्ध होने वाली प्रतिनिधियाँ के कारण, शिवाजी ने तत्कालीन प्रशासन में प्रयुक्त होने वाले फारसी के शब्दों के सस्कृत पर्यायों का संग्रह करवाया था¹। एक समय वह था जब अलाउद्दीन खिलजी ने सड़ी बोली के, दैनिक प्रयोग में आने वाले शब्दों के अरबी फारसी पर्यायों का संग्रह करवाया था और उसका लगभग पाच सौ वर्षों बाद शिवाजी ने दैनिक प्रशासन में प्रयोग करने वाले फारसी के शब्दों के सस्कृत पर्यायों का संग्रह करवाया था। अलाउद्दीन खिलजी और शिवाजी के कार्य परस्पर विरोधी थे जान पड़ते हैं यद्यपि दोनों के प्रयासों का उत्पन्न है अरबी-फारसी का भारतीयकरण करने की प्रेरणा में। अलाउद्दीन खिलजी और शिवाजी के प्रयासों से बात का भी प्रतीक है कि अरबी फारसी और सस्कृत का प्रास्ताविक देने वाले थे अभिजात वर्ग के लोग जा, एक ओर हिंदू थे और, दूसरी ओर मुसलमान। सारे मध्ययुग में हिंदू और मुस्लिम अभिजात वर्गों में कभी नहीं बनी यद्यपि ये राजनतिक सत्ता के लिए बराबर संघर्ष करते रहे। इनमें से एक का प्रेरणाश्रोत था इस्लाम और उसका प्रतीक अरबी फारसीपन और दूसरे का हिंदुत्व तथा सस्कृत। एक की प्रेरणाओं का उदगम था अरब और ईरान में और दूसरे का भारत की भूमि से उत्पन्न हिंदू सस्कृति में। ऐसी दशा में उर्दू को मुस्लिम तथा इस्लाम से सम्बंधित किया गया और हिंदी का हिंदू तथा हिंदुत्व से।

उर्दू को इस्लामी कठोरता तथा फारसीपन में रगने का श्रेय मुस्लिम अभिजात वर्ग का ही है। प्रारम्भ में ही मुस्लिम अभिजात वर्ग को अपना अस्तित्व के लिये लड़ना पड़ा है। भारतीय सामाजिक संगठन में मुस्लिम अभिजात वर्ग का विरोध करते हुए हिंदू अभिजात वर्ग का भी अपने अस्तित्व और संरक्षण के लिये संघर्ष करना पड़ा है। मुस्लिम राज्यकाल में यह संरक्षण राज्य से प्राप्त था और राज्य संरक्षण प्राप्त करने का मुख्य माध्यम था सनातनी साहित्यिकता। किंतु भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना के बाद साथ, भारत में अंग्रेज अभिजात तथा प्रणामवर्ग का जन्मुदय

1 सरकार, विनयकुमार दि पाजिटिव बकप्राउंड आफ हिंदू सोसियोलोजी

हुआ। मुस्लिम अभिजात तथा प्रतामक वर्ग के हाथ में राजनतिक प्रशासन की जा सता थी उस अंग्रेज अभिजात तथा प्रतामक वर्ग ने हथिया लिया। गामन के विरोधी वृत्त काय गोर देश का व्यापार हिंदू अभिजात वर्ग के हाथ में रहा। अतएव, अंग्रेजों के राजनतिक प्रभुत्व की स्थापना होने के साथ साथ, हिंदू अभिजात वर्ग का आगे बढ़ने का मौका मिला, क्योंकि गामन के जिन पदों पर हिंदू थे वे हिंदुओं के ही पास रहे और जिन पदों पर मुसलमान थे वे अंग्रेजों के हाथ में चले गए। इसका परिणाम यह हुआ कि मुस्लिम अभिजात वर्ग को अपना अस्तित्व खतरा में लिया पड़ा और इस भय तथा नरादय से वे गामनिकता उभारी वह मजहूरी बढ़रता और भाषा के अरबी फारसीपन पर टिक गयी। सरकारी नौकरियाँ को पाने के लिये उठी हुयी प्रतिदिदिना, इस्लाम और हिंदुत्व तथा हिंदी और उर्दू के संघर्ष तथा घाट विवाद में प्रस्फुटित हो उठी। अंग्रेजों राज्य-काल का गामनिक काल जाना जाता है हिंदू सरकारी नौकरियाँ में जागे बनें गये, शिक्षा में वे मुसलमानों का पीछे छोड़े गये और व्यापार तो पहले ही उनके हाथ में था। वसत मुसलमानों में अंग्रेजों के प्रति बहिष्कार तथा हिंदुओं के प्रति विद्वेष का भाव जाया जा हिंदू तथा हिंदी विरोधी विचारों और नीतियों में बदल गया।

इस बात के अनेक प्रमाण मिलते हैं कि किस प्रकार अंग्रेजों शासन काल में मुस्लिम अभिजात वर्ग ने अपने लिए विभागाधिकारों की माँग की तथा का अलग रखने का प्रयत्न किया और इनमें सफलता न मिलने पर हिंदू तथा हिंदी विरोधी नागा का बुद्ध किया। अंग्रेजी राज्य की स्थापना के पहले अरबी फारसी और संस्कृत स्कूल अलग अलग थे जिनमें उच्च तथा मध्य वर्ग के लोग ही शिक्षा पाते थे। हिंदू संस्कृत तथा अरबी फारसी पढ़ते थे और मुसलमान अधिकतर अरबी फारसी। संस्कृत की शिक्षा हिंदू पंडितों द्वारा दी जाती थी और अरबी फारसी की शिक्षा मोलवियों या अरबी फारसी जानने वाले हिंदुओं के द्वारा। जब अंग्रेजों ने जन-साधारण के लिए स्कूल खोले तो उनका अधिक विरोध उच्च वर्गों मुसलमानों के लिए एक अलग शिक्षा पद्धति की आवश्यकता है क्योंकि इन वर्गों के मुसलमानों के बाहर से आये हुए अभिजात वर्ग के मुसलमानों ने। इन अंग्रेजों से एवधान में सर सैयद अहमद ने इन बातों पर जोर दिया कि सरकारी नौकरियाँ में जनसाधारण को चाहे वे हिंदू हों या मुसलमान, न लिया जाय। सर सैयद ने कांग्रेस का विरोध किया और इस विचार का विरोध किया कि भारत एक राष्ट्र है। बंगाल के मामूलाउन एमासिमान न मुसलमानों के लिए सरकारी नौकरियाँ को आरक्षण रखने की माँग की और प्रतिपादित के आधार पर नौकरियाँ देने का विरोध किया। मुस्लिम अभिजात वर्ग का इसी माँग के प्रवाह में हिंदू मुस्लिम तथा हिंदी उर्दू की

समस्या का जन्म हुआ और इस्लाम तथा उर्दू पर अरबी फारसी की कटटरता का और भी गहरा रंग चढ़ गया ।

जब अंग्रेजी राज्य की स्थापना हुई तो सारे उत्तरी भारत में उर्दू राज्य भाषा थी जिसे अंग्रेजी ने बनाए रक्खा । सन अठारह सौ तिहत्तर में, बिहार में हिंदी को भी राज्य भाषा मान लिया गया किन्तु उसका हिंदू तथा मुसलमान दोनों न विरोध किया । सन अठारह सौ अठत्तर में जब यू०पी० में उर्दू को अनिवाय द्वितीय भाषा का रूप लिया गया तो हिंदुओं ने इसका विरोध किया । उधर, बंगाल में अंग्रेजी राज्य का प्रारम्भ होने के बाद से ही, बंगाल का मुस्लिम अभिजात वर्ग अपने लिए विशेष अधिकारों की मांग कर रहा था जिसके फलस्वरूप यह प्रश्न उठ खड़ा हुआ कि बंगाल में संस्कृत के शब्दों का प्रयोग हो या फारसी के शब्दों का । सन अठारह सौ तिरासी में जब यह राजाना निकली कि देवनागरी लिपि का ही प्रयोग किया जाय तो मुसलमानों ने इसका विरोध किया और, इस प्रकार अन्तीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से हिंदी उर्दू की समस्यां जार पकड़ गयी । जाय समाज के अम्युदय के साथ साथ, हिंदी उर्दू की समस्यां पजाव में भी उठ खड़ी हुयी । मुसलमान राजनतिक विरोधाधिकार के दत्तन पीछे थे कि उन्होंने अपने का धर्म और भाषा के नाम पर एक अलग राष्ट्र समझा । ज्या ज्या हिंदू मुस्लिम समस्यां जार पकड़ती गयी उर्दू पर इस्लामी कटटरता का प्रभाव बढ़ता गया और उर्दू को हिंदी से अलग एक भाषा माना जाने लगा । इस सामंती सपने में एक आर भारतीय समाज धर्म के नाम पर सम्भवत विभाजित हो गया तो दूसरी जार हिंदी के ही एक रूप पर अरबी फारसी का जामा चढ़ता गया¹ ।

७

मुस्लिम कला और साहित्य का भारतीयकरण

मध्य यगीन भारत के कला और साहित्य में भी भाषा की भाँति, एव चोर, अरबी फारसीपन का प्रभाव रहा ता दूसरी जार, अरबी फारसीपन के भारतीयकरण की प्रक्रिया भी चलता रही । मुगल राज्य की स्थापना के पहले के मुस्लिम काल में

- 1 स्वयं मुसलमानों में ही अरबी फारसीकरण तथा भारतीयकरण की लेकर एक नया आत्मविच्छेद उत्पन्न हो गया । कहा रहीम का यह कहना कि 'चित्रकूट में रहि रहे रहिमत अवधनरेश, जा पर विषदा पडत है सो आवत यदि देश' या हाफिज नालधरी का यह कहना कि 'भारत माता है दुलियारी, दुलियारे ह सय नर नारी, तू ही उठले मुरली सुंदर, तू ही बन जा श्याम मुरारी और कहा सौदा का यह कहना कि 'गर हो कशिशां गाहे खुरासान तो मौदा, सितदा न कल हिंद की भाषाक जर्मो पर' ।

हिन्दू-वास्तुकला पर इस्लामी प्रभाव के प्रमाण नहीं मिलते हैं। इस काल के हिन्दू मन्दिर और इमारतें हिन्दू शिल्पशास्त्र की परम्पराओं के ही अनुसार बनते रह। सन बारह सौ पचासी में बने हुए कौणाक के सूर्य मन्दिर और उज्जैनपुर के चित्तौरगड पर नाममात्र भी इस्लामी प्रभाव नहीं है। के० एम० पानिकर की मायता में, इस काल में, भारतीय मुस्लिम तथा हिन्दू गलिमा अलग-अलग विकसित होती रही¹। आगे चलकर, मुगलकाल में, भारत की वास्तुकला पर मुस्लिम ईरानी प्रभाव बढ़ा। किंतु, इसका यह तात्पर्य नहीं कि भारत में हिन्दू वास्तुविद्या का लोप हो गया। विनयकुमार सरकार के अनुसार, अधिकतर शिल्पशास्त्रों की रचना सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दियों में हुई है। मुसलमानों ने भारत में जिस वास्तुकला का निर्माण किया उसका मुख्य आधार भारतीय या किंतु उसकी सजावट ईरानी थी।

चित्रकला में भी अधिकतर धारणायें परम्परागत थीं यद्यपि उनके चित्रित करने के तरीके ईरानी थे। भारतीय और ईरानी चित्रकलाओं के समावेग से, अनेक सम्प्रदाय अस्तित्व में आए। संगीत में एक ओर शास्त्रीय संगीत की प्रणाली चलती रही और दूसरी ओर, ईरानी तथा भारतीय संगीत के समावेग से कई राग रागिनियों का अभ्युदय हुआ। इस्लाम में संगीत का निषेध है किन्तु सूफियों ने उस साधना का एक माध्यम माना। संगीत का धार्मिक निषेध हान पर भी इस काल में, मुसलमानों ने संगीत साधना में कुशलता प्राप्त की और उसके कलात्मक काय को अक्षुण्ण बनाए रखा। मुसलमानों ने भी शास्त्रीय संगीत की शास्त्रीयता और उसके भाव तथा भाषा का बस ही अपनाया जस के उन्हें हिन्दुओं में मिले थे। दूसरी ओर ईरानी और भारतीय संगीत के समावेग से, ख्याल, कौवाली और गजल इत्यादि राग और छन्द निकले। कौवाली और गजल में फारसी भाषा की रागबद्ध करने की परम्परा बनी और शास्त्रीय संगीत में परम्परागत हिन्दू-भाषा को। एक ओर, रबाब, सरोद, दिलरबा और ताउस जैसे बाद्ययंत्र मुसलमानों से आए तो दूसरी ओर, बीणा और मृग भी चलने लगे। मुसलमानों ने बीणा और मृग का भी बसे ही अपनाया जस उन्हें हिन्दुओं ने अपनाया था। बीणा के आधार पर, मुसलमानों ने सितार का आविष्कार किया और मदग के आधार पर तबले का। एक ओर, शास्त्रीय नृत्य और उसके प्रकारों की परम्परा चलती रही तो दूसरी ओर, महकिर्नों में होने वाले नय की परम्परा अस्तित्व में आई। कलाओं के क्षेत्र में, एक ओर, शास्त्रीय परम्परा चल रही थी तो, दूसरी ओर, शास्त्रीयता पर आधारित भारतीय मुस्लिम परम्परा जन्म लेती हिन्दू प्रभाव अधिक था और वही अरबा अथवा ईरानीपन का। जैसा कि विनय कुमार सरकार ने वास्तुकला तथा हस्तकला के बारे में कहा है साधारणतया सम्पूर्ण कलाओं के विषय में यह कहा जा सकता है कि अरबी और ईरानी प्रभावों का आत्मसात करती हुई कला विषयक हिन्दू विचारधारा, मायतायें और परम्परायें धतमानयुग तक चली आयी हैं²।

1 पानिकर के० एम० सर्वे आफ इण्डिया रिपोर्ट पृष्ठ 124

2 सरकार, विनयकुमार वहाँ पृष्ठ 47-77

इस्लामी सघात से हिन्दू-संस्कृतिफरणा

भारत में इस्लाम और हिन्दुत्व का सम्पर्क का प्रबल ऐतिहासिक, सम्यता सम्पन्न सांस्कृतिक धाराओं का सम्पर्क है—वे धाराएँ जिनमें सात्मीकरण की क्षमता रही है। अपने ऐतिहासिक विकास में, दोनों, जलग ध्रुवण सामंती संरचनाओं से सन्निहित होने के कारण एक ओर, समानांतर रही और, दूसरी ओर, परस्पर संपर्क में आने पर भी, अपना-अपना संस्कृतिकरण करती रही। जसा कि पिछले बर्णन और विश्लेषण से स्पष्ट है भारतीय इस्लाम में हिन्दुत्व के सम्पर्क से संस्कृतिकरण की दो प्रक्रियाओं का साथ साथ जन्म हुआ—एक, अरबीवादी तथा पुनरुत्थानवादी सांस्कृतिक कटटरता की और दूसरी इस्लाम के भारतीयकरण का जिस पर हिन्दुत्व (आगम निगम) की छाप है। इस्लाम में भारतीयता का प्रस्फुटन धरातल में हुआ है। इसी प्रकार हिन्दुत्व में भी दो प्रक्रियाएँ चली हैं—एक सांस्कृतिक कटटरता और पुनरुत्थान की और दूसरी, इस्लामी प्रभावा का जालसात करत हुए हिन्दुत्व में इस्लामी संस्करणों को जन्म देने की। हिन्दुत्व में भी इस्लामी संस्करणों का प्रस्फुटन धरातल से ही हुआ है। हिन्दुत्व और इस्लाम के सम्पर्क से भारत में संस्कृतिकरण की दो प्रक्रियाएँ उत्पन्न हुईं उसकी चार धाराएँ हैं—एक, इस्लामी अरबीवादी, पुनरुत्थान और कटटरता की,

दूसरी, इस्लाम के भारतीयकरण की, तीसरी, हिंदू पुनरुत्थान और वन्द्यता की, और, चौथा, हिंदुत्व में उन्नत होने वाले इस्लामी सांस्कृतिक संस्करण की।

दूसरी और चौथी प्रक्रिया का केंद्र पर, हिंदुत्व और इस्लाम का सम्बन्ध हुआ है, जिसका एक रूप है "इस्लाम में हिंदुत्व के सम्बन्ध का, और दूसरा, हिंदुत्व में इस्लाम के सम्बन्ध का। अतः, दस सम्बन्ध में कोई एक भारतीय सांस्कृतिक-संस्करण न निकल सका क्योंकि हिंदुत्व और इस्लाम साथ ही साथ वन्द्य पुनरुत्थानवादी भी रहे हैं। राजनतिक प्रभुता से सम्पन्न इस्लाम में शासन के लिए हिंदुत्व ने उन्-विकासी पुनरुत्थान का आश्रय लिया जिसमें हिंदुत्व के ऐतिहासिक उन्-विकास की श्रृंखला में गहरी दशन, नवीन आन्दोलन और पञ्च-संस्कार के रूप में अनेक कठियां नूतनी चली गई। इस्लाम की उत्प्रेरणा से मध्ययुगीन भारत में हिंदुत्व का पुनरुत्थानवादी विकास हुआ। ताराचन्द्र जम दत्तिसकार इस पुनरुत्थान का हिंदुत्व में इस्लाम की प्रतिवृत्ति मानते हैं और विनयकुमार सरकार इस विद्वान हिंदुत्व का सतत उन्-विकास। किंतु ये दोनों दृष्टिकोण एकांगी हैं। उत्प्रेरक की प्रतिवृत्ति नहीं है मन्तो विपत्तया बहो जहा पराजित संस्कृतिक अपने में अतन्निहित छातो के पुनरुत्थान का आश्रय लेता है। पुनरुत्थानवादी उन्-विकास बिना पराजित अवस्था और उत्प्रेरणा के नहीं हो सकता। यह भी नष्ट हो जा सकता कि मध्ययुगीन हिंदुत्व का सारा विकास पुनरुत्थानवादी ही है क्योंकि ऐसी मायता का अर्थ होगा कि इस काल का हिंदुत्व एक अन्तर्गत संस्कृति रहा है। सारी समस्या तब हल होता है जब सांस्कृतिक सम्पत्तियों की परिस्थिति, गत्यात्मकता, पुनरुत्थान और उन्-विकास पर एक साथ ध्यान दिया जाय। सारा प्रश्न इस्लाम बनाम हिंदुत्व का नहीं है। प्रश्न है हिंदुत्व और इस्लाम के सम्पत्तियों में उत्पन्न परिस्थिति में, हिंदुत्व में आविर्भूत सांस्कृतिकरण की प्रक्रिया के योगदान के विश्लेषण का।

२

हिंदू-संस्कृति में कुछ इस्लामी योगदान

केतुभूषा में अच्युत और पात्रामा अमराणा में अक्ष और मुत्सा, हिंदू धर्म के मध्य एशिया के सुलाब और विदियाना और मंगोलार व्यक्तियों की बला का हिंदू संस्कृति में समावेश हुआ। मुस्लिम वाग्मियों का केतुभूषा पर आधुनिक योगदान का हिंदू में आनुष्ठीयिक समावेश मिला। अक्ष के वर के पात्रामा (कामदार जून के साथ आमा और मोर) मुगल वाग्मियों की पात्रामा की नकल की लगती है। उन्-वर्तमान मनारजन के प्रशासन के शतरज, योगान और गत्रामा मुगल माना के योगदान हैं। हिंदुत्व का चीन का मूल मुगलमाना में अन्वेषण हो गया।

अक्षास तथा देशांतर की धारणाएँ, जमपत्री बनाने की ताजक पद्धति, ताजक और रमलशास्त्र भारतीय ज्योतिष में मुसलमानों के योगदान हैं। जरबी-पद्धति के जाघार पेर, महाराजा जयसिंह ने हिंदू पंचांग का सुधार करके दिल्ली तथा जयपुर की बंध शालाओं का निर्माण कराया।

हिंदुओं में परदे की प्रथा का श्रीगणेश पठानों के प्रभाव के कारण हुआ। इस विषय में दो सम्भावनाएँ हैं। या तो हिंदुओं ने परदा प्रथा को मुसलमानों से यथावत लिया है, या मुसलमानों से हिंदू नारियाँ की रक्षा करने के लिए परदा प्रथा को अपनाया। यासौन के अनुसार तत्कालीन मुसलमानों में नारी अपहरण एक उच्च प्रकार का जिहाद माना जाता था और इस अपराध में दण्डित व्यक्ति को प्रेम का शहीद समझा जाता था¹। हो सकता है कि इस जिहाद से ब्राह्मण पाने के लिए ही हिंदुओं में परदा प्रथा का श्रीगणेश हुआ हो। इस सन्दर्भ में एक विचारणीय तथ्य यह है कि परदा प्रथा उच्चवर्णी हिंदुओं में ही पायी जाती है और वह भी उत्तर में। परदा प्रथा इस कारण हिंदुओं में सामाजिक प्रतिष्ठा की प्रतीक मानी जाती है। जो जातियाँ उच्च सामाजिक स्तर पाने का प्रयास करती हैं, वे ब्राह्मणवादी कर्मकाण्ड के साथ परदा प्रथा को भी अपनाती हैं। अतः, हो सकता है कि उच्चवर्णी हिंदुओं ने, सामाजिक प्रतिष्ठा के प्रतीक के रूप में परदा प्रथा को अपनाया हो।

३

साहित्य में इस्लामी उत्प्रेरणा

मध्ययुगीन भारत के साहित्य में अनेक विशेषताएँ एक साथ उमड़ पड़ी जिन्हें साधारणतया इस्लाम की उत्प्रेरणा का परिणाम माना जाता है, यद्यपि इन विशेषताओं में शायद ही कोई ऐसी विशेषता हो जाय पहल से विद्यमान न हो या जिसे इस्लाम के हिंदूकरण करके न अपनाया गया हो। इस्लामी उत्प्रेरणा के प्रभाव में, भारतीय साहित्य की अनेक सुप्त या गौण विशेषताएँ पुनः जाग्रत हुयीं या प्राधायक प्रागर्थाँ। सूफी विचारधारा की उत्प्रेरणा से विरहानुभूति की अभिव्यक्ति तीव्रतर हो गयी और इहलोकिता की प्रधानता मिली। यह सूफीवाद का ही प्रभाव है कि हिंदी साहित्य की एक परम्परा में जिसके प्रणेतार सत महात्मा हैं मृत्यु को काम्य और विकास की सीढ़ी माना जाने लगा। सूफीयों की 'इश्क मजाजी' की धारणा ने पारिविक प्रेम की अभिव्यक्तियों को प्रात्माहन दिया ता इश्क हकीकी की धारणा ने सगुण के प्रति रहस्यवादी अनुभूति की अभिव्यक्ति को। पारिविक तथा रहस्यवादी

प्रेम, जिमका मूल स्रोत योग है की अभिव्यक्ति की इही परम्पराओं न, जागे चलकर, अंग्रेजी काल में पलायनवादी मनावृत्ति के प्रभाव में, छायावादी और रहस्यवादी अभिव्यक्ति की परम्परामें को जन्म दिया। किन्तु, जसा कि कबीर की अभिव्यक्तिया स स्पष्ट है, सूफावादी अभिव्यक्तिया का बदाँत, याग और अज्ञान भारतीय अभिव्यक्तियों में लपट कर प्रस्तुत किया गया। कबीर न ईश्वर का पति और अपन को बहुरिया माना है क्योंकि भारतीय परम्परा में, प्रेम की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति नारी का माना गया है¹। कबीर न सूफाया की 'पना की अनुभूति का योगियों की अनुभूति में व्यक्त किया है क्योंकि उनके लिए पना की स्थिति वह स्थिति है जहाँ न व्यक्ति है, न ईश्वर, न आत्मा और न परमात्मा—वहाँ केवल आग के अंगारों के समान ज्ञान पुजा की गुणवत्ता है² जिसमें केवल 'साहम' रह जाता है वस ही जैसा तपन से ज्ञान का विकार नष्ट हो जाता है और केवल खरा साना ही शेष जाता है। यह हठयोग का सूफीवाद पर अभय आवरण है जिसके प्रभाव में सूफीवाद न रहकर, हठयोग और देहात्त हो गया है।

मध्ययुगान भारतीय साहित्य, विशेषतया हिन्दी और बंगला साहित्य, में शृंगार की जा अतिशयता बनी उसे जिया भी दशा में इस्लामी प्रभाव का एकमात्र परिणाम नहीं माना जा सकता है। भारत के साहित्य में, इस्लाम के प्रभावों के प्रवेश के पहले, शृंगारिक अभिव्यक्तिया की परम्परायें थी जो कालिदास जयदेव और पंडितराज जगन्नाथ की रचनाओं में विद्यमान हैं। शृंगारिक अभिव्यक्ति की ये परम्परायें इहलौकिक भी हैं और पारलौकिक भी। वास्तव में, इनकी इहलौकिकता पर पारलौकिकता का आवरण चला हुआ है। कुछ लोगों की यह भी मान्यता है कि शृंगारिक अभिव्यक्ति की ये परम्परायें संस्कृत-साहित्य से पंडितराज जगन्नाथ की रचनाओं के माध्यम से हिन्दी के ऐतिहासिक साहित्य में आ गयीं। इस कथन की पुष्टि इस तथ्य में होती है कि हिन्दी के ऐतिहासिक साहित्य में शृंगारिक अभिव्यक्ति का जिन स्त्रियों का प्रयोग किया गया है वे जिनमें भी दशा में न ता अरबी बही जा सकती हैं और न इरानी। वे विगुड भारतीय हैं और उनमें काव्य शास्त्र

1 यह परम्परा अतन्ना काल तक चलती रही है। पत ने अपनी कविताओं में अपने को स्त्रा मानकर ही उस विगट की प्रकृति में अनुभूति की है (देविए पल्लव में मौननिमग्न)। अपनी रहस्यवादी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति में प्रसाद ने भी इसी परम्परा को अपनाया है जस 'गि मूल पर घुघट डाले अचल में दीप टिपाए, जीवन की गायली में कोनूहल से तुम आए, (आमू)।

2 आगिलगो आकाश में हरि हरि परत अगार।
कविरा जरि कचन भया कौच भया सतार।

मे निर्धारित रुढ़िया के साथ साथ लाक रुढ़िया का प्रयोग हुआ है^१ । इस काल में हिंदी जोर बगला में प्रस्फुटित होने वाली श्रु गारिक अतिशयता के तीन खात हैं— भागवत पुराण, सिद्धा का वामाचार तथा वनवाद जोर सूफीवाद । हिंदी और बगला साहित्य में अतिशय श्रु गारिकता लान में इस्लाम का वही तक प्रभाव है जहां तक सूफीवाद के माध्यम से उसने एक उत्प्रेरणा का काम किया और जिसके फलस्वरूप सनातनीय भारतीय साहित्य में श्रु गारिक अभिव्यक्ति की परम्परा सहसा निखर आयी । इस्लामीय जोर प्रवृत्तिवादी हान के कारण, इस्लाम ने मुसलमानों में इहनीयिक जोर प्रवृत्तिवादी मनोवृत्ति को प्रात्साहित किया जिसके फलस्वरूप पारलौकिकता में परिणत भारत की पारलौकिक श्रु गारिक अभिव्यक्ति की परम्परा का मुसलमानों ने इस्लामीयता की जोर मोड़ लिया और उस इस्वमाजी (इहलीयिक प्रेम) के अतिशय पुट में भर लिया । हिंदी भाषा की भांति हिंदी साहित्य की प्रारम्भिक श्रु गारिक अभिव्यक्ति का तालन पालन मुसलमानों के ही द्वारा हुआ । नायिका भेद पर प्रथम पुस्तक रहीम ने लिखी और सबसे अधिक नायिका भेद सयद गुलामनवी रमला ने ही बताया है ।

यह इस्लाम के उत्प्रेरक प्रभाव का ही परिणाम है कि हिंदी साहित्य में एक साथ अनेक भाव धारों फट निकलीं । एक धारा है पारलौकिक जानना के अभिव्यक्ति की जिसके प्रतिनिधि उमरा जोर रमलीन हैं^२ दूसरी धारा है रहाम आलम

१ उदाहरण के लिए देखिए जिहारी के ये दोहे —

जाऊ मिले तो जली करी, भले मन ही ताल ।

पलन पीक अजन अघर धर महाउर भाल ॥

और

नाहि पराग नाहि मधर रम नाहि जिकार यहि काल ।

अली पली ही सा अघ्यी आग दीन हवाल ।

पहले दोहे में लान सम्बोधन है श्री वृष्ण के लिए और उनके पलने पर पीक अपनों पर जान और भाल पर महाउर होने की अभिव्यक्ति भारतीय श्रु गारिक साहित्य की रुढ़ि है । उमी प्रहार हमारे दाहे में जली और कली का सम्बन्ध भी भारतीय साहित्य की रुढ़ि है । भारतीय साहित्य में पुष्प जोर भौरे के प्रेम की एक गालम्बन रुढ़ि के रूप में प्रयोग किया गया है । ईरानी साहित्य में यही अभिव्यक्ति बलमुत्त जोर शूनाय के आलम्बन से व्यक्त की गयी है जिसका हिंदी की अपेक्षा उन्नी में अधिक प्रयोग किया गया है—दिनकर

२ गोरी सोन सेज पर, मुल पर डार पेस ।

चल ससरो घर जपना रन भई सज देस । ससरो

अमी हलाहल मद भरे श्वन श्याम रतनार ।

जिपत भरत शक्ति शक्ति परत जिहि चितवत इक्बार । रसलान

और रमयान के विरहानुभूति की^१, तीसरी है मानवतावादी निगुनिया सत्ता की धारा जिसके प्रतिनिधि हैं कबीर, दादू और नानक और चौथी है प्रमाख्यान पर प्रवृत्त काव्य लिखने वाल जायसी जस कविया की। इन कविया में अरबी फारसी के भाषा की अभिव्यक्ति नहीं हुयी है। इनका कविरूप और कवित्व अरबी फारसी के भाषा में नहीं है। इनके द्वारा प्रयोग म लाय जान वाल छंटा, जाल्म्वना, उद्दीपना और विषय वस्तु की अभिव्यजना के मोत भारतीय परम्पराओं में है। जायसी सूफी कवि पर उनका प्रेमाख्यान भारतीय है और उद्दान चौपाई और दाह का उसी प्रकार प्रयोग किया है जिस प्रकार तुलसादास ने किया है। मत प्रचार के लिये प्रमाख्यानक लिखन की परिपाटी जायसी से पहले जन कविया में मिलती है। रसखान का श्रीकृष्ण प्रेम प्रसिद्ध है और श्रीकृष्ण को उद्दीपने विरह और शृंगार की अभिव्यक्ति का आलम्बन बनाया है। रहीम ने हिन्दुओं की पौराणिक कथाओं के माध्यम से अपने विचारों की अभिव्यक्ति की है^२। निगुनिया सत्ता पर, सूफीवाद के साथ साथ, भारतीय परम्पराओं की जबरदस्त छाप है। इस लिये में विशेष विचारणीय तथ्य यह है कि ये सभी कवि प्रेम और विरह की अनुभूति से सराबोर हैं जो सूफीवाद के उत्प्रेरक प्रभाव का परिणाम है। सम्भवत, यह इसी प्रभाव का परिणाम है कि मध्ययुगान भारत के साहित्य में उपेतया हिन्दी में, एक सतत अभिलाषा के रूप में, अतप्त प्रमानुभूति से उत्पन्न विरहानुभूति का प्राधा यहां गया। अतप्त प्रमानुभूति से उत्पन्न विरहानुभूति और उससे उत्पन्न एक सतत अभिलाषा की कवित्वमय अभिव्यक्ति ही रोमांटिक काव्य परम्परा है जिसका हिन्दी में श्रीगणेश सूफीवाद के प्रभाव से हुआ और जो आगे चलकर, वर्तमान काल में, छायावादी, रूस्यवादी और प्रयोगवादी अभिव्यक्तियां में प्रस्फुटित हुयी।

हिन्दी तथा बंगला में जहां, एक ओर शृंगारिकता बढी वहां, दूसरी ओर, उनमें तथा भारत का जय वर्तमान भाषाओं में मानवतावादी अभिव्यक्तियां की ब्राह्मणों जा गयी। इन मानवतावादी अभिव्यक्तियां में, जाति-पाति का खंडन किया गया, हिन्दुत्व और इस्लाम की कट्टरवादिता की भत्सना की गयी एकद्वन्द्व की

- 1 मनसिज माली को उपज कहि रहोम नहि जाय ।
फल ह्यामा के उर लगे फूल ह्याम उर आय ॥ रहीम
जा चल कोहँ विहार लोक न ता थल पाकरी बठि चुयो कर ।
जा रसना सो परो बहु वातन ता रसना सोँ चरित्र गुयो कर ।
आलम जौन सी कुजम में करि बेलि तहाँ अब सोस घुयो कर ।
नमन में जे सदा बसते निनकी अय कान कहानी सुयो कर । आलम
- 2 कमला फिर न रहीम कहि, यह जानत सब कोय ।
पुरप पुरातन की वधू क्यों न चचला होय ॥

विचारधारा का पुनर्स्थापन किया गया जोर भक्ति मार्ग से ईश्वर तक पहुँचने पर जोर दिया गया। इन मानवतावादी अभिव्यक्तियों में उसी आन्दोलन की लहरें उद्बलित हो उठी, जिसका श्रीगणेश वदिककाल में ही हो गया था, किन्तु जिसे महात्मा बुद्ध ने प्रखरता प्रदान की थी। इन मानवतावादी अभिव्यक्तियों के प्रणेता थे सत कवि जिनका जन्म जाति संरचना के निम्नतम स्तरों में हुआ था। तेलगू में वामन, मराठी में चानेश्वर, नामदेव और तुकाराम बंगाल में चतुर्थ, पंजाब में नानक और हिन्दी में कबीर, दादू और रत्नास व्यादि सत कवि इन अभिव्यक्तियों के प्रणेता हैं। इन्होंने मानव मात्र की समता पर जोर दिया। ईश्वर की दया का आगार माना और इस बात पर जोर दिया कि ईश्वर तक सभी पहुँच सकते हैं। उपनिषदों में प्रतिपादित मानवता के स्थान पर, उन्होंने भक्ति मार्ग पर जोर दिया है। मानवतावादी अभिव्यक्तियों के प्रणेता सत कवियों ने जाति तथा वर्ण व्यवस्था के विरुद्ध आतिकारी विचारों पर जोर दिया और हिन्दू समाज का वह रूप देने की माँग की जो इस्लाम में मिलती है। इस काल के निम्नोक्त सत कवियों द्वारा पंथा का संगठन इस तथ्य का प्रमाण है।

ये मानवतावादी कवि वस्तुतः उस सामाजिक क्रांति के प्रणेता थे जिसके तत्त्व हिन्दुत्व में विद्यमान थे, किन्तु उन तत्त्वों को एक साथ उभारने वाली उत्प्रेरणायें इस्लाम में थीं। जैसा कि पहले कहा जा चुका है इस्लाम के सम्पर्क में हिन्दुत्व में दो प्रकार की प्रतिक्रियाओं का जन्म दिया—एक, समवेत की और दूसरी समवेत के साथ साथ पुनः संगठन, पुनः स्थापन और सुधार की। इस्लाम एक ऐतिहासिक प्रवाह था, किन्तु हिन्दुत्व एक समवेतकारी और बार बार पुनः संगठित और स्थापित होने वाले ऐतिहासिक सामाजिक सांस्कृतिक प्रणियाँ। इस्लाम का प्रगतिवादी प्रवाह निहित था उसकी समता की भावना निराकार एकेश्वरवादिता और सरलता में। इस्लाम की मानववादिता ही उसकी शक्ति थी। यह भी कहा जा चुका है कि इस्लाम का मूल अधिक प्रसार हो रहा था हिन्दू समाज के निम्नस्तरों में। सम्भवतः यही कारण है कि हिन्दू समाज के निम्न स्तरों में ही समता निराकार एकेश्वरवादिता भक्ति मार्ग और मानववादिता का मार्ग आयी। इसी स्तर पर यह विचार पनपा कि न कोई उच्च है न निम्न न कोई आराध्य है न गुरु न कोई हिन्द है न मुसलमान (यदि हैं तो वे एक हैं) और जल्हा तथा राम एक हैं—य निराकार में समाय हुय है। प्रेम ही मानव का मार्ग है।

भक्ति-आन्दोलन सामाजिक-सांस्कृतिक आधार

भक्ति तथा प्रपत्ति की धारणा हिन्दूत्व में पहले से विद्यमान थी। गीताकार ने कर्म, ज्ञान और भक्ति का समाहार स्मृत्य, नित्यकामता और अविभक्त विभक्त्येवम करके, जिस जीवन-दर्शन का प्रतिपादन किया है उसमें भक्ति का पपत्ति के सहज भाग के रूप में प्रस्तुत किया गया है। किन्तु, इस्लाम की उत्प्रेरणा से भक्ति भाग का प्रस्फुटन एक सामाजिक आन्दोलन के रूप में हुआ, जिसका एक रूप प्रातिविकारी और सुधारवादी है और दूसरा कट्टर पुनरन्वयनवादी तथा परम्परावादी। पहले के प्रणेता हैं निगुनिया से त जिहोन पथो के रूप में मजहबी संगठन के सिद्धांत का हिन्दूकरण किया और दूसरे के सगुण भक्ति के प्रणेता जिहोन आगम निगम परम्पराओं को यथावत् पुनः स्थापित करने पर जोर दिया। किन्तु भक्ति आन्दोलन के इन दोनों रूपों का आधार हिन्दू परम्परा है। प्रातिविकारी सुधारों की मांग का देव काल के अनुसार कार्यान्वित करने तथा वैदिक परम्पराओं का समयानुसार निवचन करके और आगम को उसमें आत्मसात करके, वैदिक परम्पराओं के पुनः स्थापन की परम्परामें हिन्दुत्व में पहले ही आ चुका था। बुद्धवाद यदि एक ओर सुधारवादी आन्दोलन है तो दूसरी ओर, वैदिक परम्पराओं के व्यापक और सुसूचितकृत नव-निवचन का प्रयास भी। हिन्दुत्व में लौकिक अलौकिक का विभक्त नहीं है। हिन्दू परम्परायें शास्त्रावन हैं और शास्त्र अनिवचनीय नहीं है। वण और जाति समानान्तर हैं परस्पर विभेदी भी हैं और एक दूसरे के पूरक भी क्योंकि जहाँ वण कर्म पर आधारित है और जाति जन्म पर, वहाँ वण जाति की कठोरता का समुन्वयन भी है। स्मृति परम्परा के पीछे, समयानुसार हिन्दू परम्पराओं के सुधार और पुनः स्थापन की ही परम्परा है। हिन्दुत्व एक साथ कट्टरवादी भी है और सुधारवादी भी। इस्लाम की उत्प्रेरणा से, हिन्दुत्व में भक्ति आन्दोलन का जो प्रस्फुटन हुआ, वह कट्टरवादिता पुनरन्वयन तथा पुनः स्थापन की ओर भी उन्मुख है और समाज सुधार आन्दोलन की ओर भी।

सम्भवतः, इसी कारण भक्ति आन्दोलन के माध्यम से यदि, एक ओर, प्रातिविकारी सामाजिक विचारों की अभिव्यक्ति का प्रस्फुटन हुआ तो दूसरी ओर, हिन्दू सामाजिक परम्पराओं का पुननिवचन करके और उन्हें समयानुकूल शास्त्रावत प्रामाणिकता प्रदान करके उनके पुनः स्थापन का प्रयास हुआ। प्रातिविकारी सामाजिक सुधारों की मांग के पीछे बौद्ध और सिद्धन्तता की परम्परा थी तो हिन्दू समाज के पुनः स्थापन के पीछे 'सम्भवामि युगे युगे और स्मृतिमा तथा पुराणा की परम्परा।

1 विनायक अन्वयन के लिए देखिये श्रीधर जी० केतकर द्वारा रचित एन एम्. ए. मान हिन्दुधर्म।

देवल स्मृति (ग्यारहवीं सदी) में यह विधान किया गया कि जातिच्युत व्यक्ति पुनः जाति में आ सकता है। वास्तव में इस परम्परा का इस्लाम का प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं कहा जा सकता है। हिन्दू समाज में जाति जन्म से मानी गयी है और जातिच्युत व्यक्ति के लिये शुद्धि का भी विधान रहा है और आज भी है। यहाँ, यह अवश्य कहा जा सकता है कि इस्लाम में मिलने वाली उत्प्रेरणा के कारण इस विधान को सभी स्तरों के लिये ग्राह्योक्त कर दिया गया। किन्तु इस काल में, इससे भी महत्वपूर्ण विकास हुआ समुण नवित्वारा का जिसमें राम तथा कृष्ण के आश्रयार्थियों का इन प्रकार निवचन और वध किया गया कि उनके माध्यम से आश्रयार्थियोंनुसार, प्राचीन हिन्दू परम्परामा और जादों की शास्त्रमगत प्रामाणिकता दूर उह पुनः मस्थापित किया जा सके और तत्कालीन अतिवृत्त को एकीकृत करके उमकी रक्षा की जा सके। राधा, गापी और कृष्ण के माध्यम से तत्कालीन जनता की आकुलता विरहानुभूति की अभिव्यक्तियों में परिणत हो गयी। राधा गापी और कृष्ण तत्कालीन जन नराशय से उत्पन्न एक प्रकार के सामूहिक उत्पत्तीकरण के प्रतीक हो गये। यही से राधा की मूर्त्तिमा उठी—प्रम की एक उत्पत्त चित्र अभिव्यक्ति के प्रतीक के रूप में। यही कारण है कि कृष्ण नायक के मय कर देन वाले गीता की प्रधानता बनी, क्योंकि उनका उद्देश्य मत प्रचार न करने, सामाजिक आकुलता को तत्कालीन प्रम के माध्यम से पारलौकिकता की ओर ले जाना है। अपने सामाजिक सांस्कृतिक सम्भ्रम में राधा और गापियों का विरहानुभूतिमय कृष्ण काय केवल 'वश मजाजी से इरेक हवीकी की ओर वाली' धारणा की प्रतिवृत्ति नहीं है—वह तत्कालीन हिन्दू समाज के मानसिक जगत से उत्पन्न प्रपत्ति की भावना का एक वह रूप है जिसमें सामूहिक निरराता उत्पन्न होता है। निराकार नानानुभूति का वस्तु है कि तु साकार ननोल्पास से उत्पन्न हृदयानुभूति की वस्तु है। जन नायक बनने का श्रमता साकार में है न कि निराकार में। इस काल की साकारा मुक्त प्रवृत्ति एक नाजनायक

- 1] सामाजिक असुरक्षा और व्याकुलता की स्थिति में ऐसी अभिव्यक्तियों को प्रोत्साहन मिला रहा है। अग्रजो साहित्य में रोमांटिक अभिव्यक्तियों को सभी प्रोत्साहन मिला जब औद्योगिक शक्ति और तर्जनिज आर्थिक प्रति योगिता और व्यक्तिवादी प्रयाहों के कारण सामाजिक मानसिक असुरक्षा बढी। अग्रजो राज्यपाल में जब ऐसी स्थिति आयी तो पुनः इसी प्रकार की अभिव्यक्तियों को प्रोत्साहन मिला। वर्तमान हिन्दी साहित्य की छायावादी तथा रहस्यवादी अभिव्यक्तियाँ भी ऐसे विचारों से जोत प्राप्त हैं। निराला न लिखा है, 'हमें जाना है जग के पार', प्रताप ने 'ले चर मुझे नुलावा देकर मेरे नायिक धीरे धीरे'। यह पलायनवाद नहीं है बल्कि मानसिक अनिश्चितता और धकान पर विजय पाने का एक जन माध्यम है।

जननायक पर निर्भर रहकर मानसिक सुरक्षा प्राप्त करने का एक माध्यम है।

तुलसीदास ने रामायण के प्रबंध काव्य द्वारा राम के जिस रूप का आख्यान किया है वह जननायक और जननायक का ही रूप है। तुलसी के गीये सभी राममय हैं। चाहे कादम्बरि या शबत, अन्तोगत्वा उम राम तक ही पहुँचता है। गीताकार ने यह प्रतिपादित किया था कि 'सर्व धर्मान परि त्यज मामकं परमं वज्रं'। गीताकार ने सभी कुछ कृष्णमय मान लिया, जो साकार का एक रूप है। गाता, एक और, निरानन्द तथा ज्ञानयोग का दान है तो दूसरी ओर साकार भक्तिभाग तथा कर्मयोग का। गीता एक प्रयोग है साकार तथा निरानन्द ज्ञान तथा भक्ति और कर्म तथा सामाजिक व्यवस्था में समन्वय लाने का और हिन्दू समाज का ज्ञान तथा कर्म के स्तरों पर एकीकृत करने का। गीताकार ने ज्ञान, भक्ति और कर्म मार्गों का एक समन्वय में लाकर हिन्दू समाज के आधार को विस्तृत कर दिया था। समयानुकूल तुलसीदास ने इसी परम्परा का पालन किया। ऊँचे केवल इतना है कि उन्होंने गीता के कृष्ण के स्थान पर राम का प्रतिपादन किया और ज्ञानमार्गी ज्ञान पर भी उन्होंने भक्तिभाग को ही अधिक महत्ता दी, क्योंकि भक्तिभाग जनमुक्त है। तुलसीदास ने पापपुत्र विवाद और साम्प्रदायिकता को भस्म कर दिया। सभी कुछ राममय मानकर एक जाग, हिन्दू समाज के एकिकरण पर चार दिया ता, दूसरी ओर राम के माध्यम से, उन्होंने आत्म-परिवार आत्म पारिवारिक सम्बन्धों, आत्म राज्य और राजा तथा वंश व्यवस्था की मर्यादा के रूपों और पत्नी का प्रतिपादन किया जा सकता है।

तुलसीदास उस समय हुये थे जब, एक और शरदर के समन्वयकारी प्रयासों की उन्नत उन्नति हो रही थी तो दूसरी ओर अदर ही जन्म इस्लामी कट्टरवादिता की लड़ाई भी गुँग रही थी। किन्तु उन्होंने ने तो समन्वय पर ध्यान दिया और न कट्टरवादिता पर। तुलसीदास ने तो इस्लामी विभागी का ध्वस्त किया है न इस्लामी की प्रगति की है और न उन्नत भक्तता। ऐसा लगता है जैसे कि उन युग में पैदा ही नहीं हुए थे जिसमें भारत में इस्लाम का प्रसार हो रहा था। ज्ञान केवल स्मृतिभागी परम्परा पक्की और समयानुकूल आदर्शों का प्रतिपादित करने, भक्ति के माध्यम से, उन्होंने हिन्दू मान्यताओं के पुनर्स्थापन की आवश्यकता और आदर्शों के जननायक तक पहुँचाया। परम पर उन्होंने गाथा बदा स्मृतिभागी और पुराणों का उद्धार ही है। रामायण में निहित आदर्श 'नाना पुराणनिगमागम सम्मत' है। और, जगत् कारण रामायण हिन्दू-समाज की परम्पराओं का दूर काल की आवश्यकतानुसार लागू करने का एक प्रयास है। तुलसीदास और उनकी रामायण प्रतिपादन में प्रयाहित हिन्दुत्व के उत्तरात्तर उद्विक्रम को एक अवस्था निगम की उत्पत्ति है।

आठवीं गतान्त्री के उत्तरात्तर में शरदर के अम्युदय में शरदर उत्तीतवी गतान्त्री

के उस समय तक, जब तक आयसमाज ब्रह्मसमाज और प्राथनासमाज के रूप में हिन्दुत्व की निराकारवादी ज्ञानमार्गी शाखा का पुन प्रतिरोपण नहीं हुआ भारत में भक्ति-माग की ही प्रधानता रही है। इस काल में भक्ति-माग की तीन परम्परायें रही हैं। एक आयसो की परम्परा जिसमें सूफीवाद का प्रबल किन्तु अप्रयत्न प्रभाव है और जो रहस्यायुक्त है। दूसरी, निगुनिया सत्ता की परम्परा जिसमें एक शर, निराकार और ज्ञान का भक्ति-कर्म रग दिया गया और, दूसरा और सभा कुछ निराकारमय मानकर और हिन्दुत्व तथा इस्लाम के वधना की भक्तना करके, मानवतावादी विचारों का प्रचार किया गया और मजहबी सिद्धान्तों को हिन्दुत्व में अत्यन्त करत हुए पथों का संगठन किया गया। तीसरी सगुणापासना की परम्परा है जिसके माध्यम से हिन्दू समाज की परम्पराओं का पुनर्निवचन करके उन्हें पुनः स्थापित किया गया और वर्णाश्रमधर्म के द्वारा मानवतावादी विचारों का प्रतिपादन किया गया। पहली परम्परा सूफीवाद के हिन्दूकरण की प्रक्रिया की उत्पत्ति है और दूसरी तत्कालीन आवश्यकतानुसार हिन्दुत्व में सुधार और परिवर्तन लाने का आवश्यकता की। पहली और दूसरी परम्परायें इस्लाम के हिन्दूकरण तथा हिन्दुत्व के इस्लामीकरण के बीच की उत्पत्ति हैं और तीसरी हिन्दुत्व के पुनः स्थापन की। एक और इस बात का प्रयत्न किया जा रहा था कि हिन्दुत्व के प्रतिद्वन्द्वी इस्लाम की विघ्नताओं को हिन्दुत्व के अनुसार दाल लिया जाय और दूसरी और हिन्दुत्व के आधारों को आवश्यकतानुसार बल करके उन्हें दन्तर बनाने का प्रयास किया जा रहा था। यही कारण है कि तत्कालीन हिन्दू समाज तथा संस्कृति में विराधी तत्वा और प्रक्रियाओं का समावेश हुआ। एक और निराकार और ज्ञान का माग लिया गया ता दूसरी और साकार और भक्ति का। एक और धर्म की निन्दा की गयी तो दूसरी और वर्णाश्रम धर्म का प्रतिस्थापित करने का प्रयास किया गया। एक और वर्णों की निन्दा की गयी तो दूसरी और, उन्हें सामाजिक जीवन के अंग का प्रमाण माना गया। एक और जाति पति की भक्तना की गयी तो दूसरी और जाति प्रथा के नियम जोर भी बढाए जाये और इस्लाम के समान जाति व्यवस्था एक प्रकार का सामाजिक प्रतिरक्षा कवच सिद्ध हुआ।

इस्लाम की उप्ररणा से भक्ति-आन्दोलन की उत्पत्ति हिन्दुत्व की उन परम्पराओं में से हुई है जो धार्मिक काल से चली आ रही थीं। हिन्दुत्व में एक और ज्ञानमाग की परम्परा है और दूसरी और भक्तिमाग की। ज्ञानमाग का आधार है तर्क और विवेक और भक्तिमाग का सच्चिदरहस्यवादिता कमराड और कर्पाचार। ये परम्परायें ममानातर चलती रही हैं, यद्यपि किसी काल में ज्ञानमाग का प्रधानता ली गई है ता किसी काल में भक्तिमाग का। गीता में धर्म का माध्यम न, ज्ञान और भक्ति का एक दूसरे का पूरक माना गया है। वर्णों की कमराडटी परम्परा के समान उपनिषद् में ज्ञानमाग को प्रधानता मिली। महात्मा

बुद्ध ने नानमाय म सबुद्धि का फुट दिया जो आगे चलकर रहस्यवादी सबुद्धि म बदल गया । मीमांसकों ने कमकाण्ड, कल्पाचार, बहुदेववाद और साम्प्रदायिक मतमता तरो को प्रधानता दी । किन्तु, शंकर ने उमे निरथक बलाकर अद्वैतवाद का समर्थन किया—वह अद्वैतवाद जिसम व्यष्टि और समष्टि, ज्ञान और भय, जाति और वण, ऊच और नीच शव, वैष्णव और शक्तसभी ब्रह्ममय हाकर ब्रह्म म एकाकार हो जाते हैं । शंकर के अद्वैतवादी दर्शन की आलोचना करने रामानुज ने भक्तिमाय का प्रतिपादन किया । गीता की 'अनासक्ति', 'ज्ञान और भक्ति' की धारणाओ का भागवत मे 'भक्ति' और 'प्रपत्ति' का रूप मिला । भागवत से भक्ति और प्रपत्ति की धारणाओ की अवतारणा, रामानुज के दर्शन म होकर, सारे भारत म फैली । इस्लाम की उत्प्रेरणा का यह प्रभाव अवश्य हुआ कि ज्ञानमाय की निगकारवाणी परम्परा मे भी भक्ति का फुट निखरा मद्यपि इस विकास का बीजारोपण गीता म हो चुका था । इस्लाम की उत्प्रेरणा म निराकारवादी तथा साकारवादी भक्ति मार्गों का एक साथ प्रस्फुटन और समन्वय हुआ ।

षडमपुराण म आए एक श्लोक म भक्ति के मुख से यह कहलाया गया है कि 'मै द्राविड दग मे जभी कर्णाटक मे बड़ी हुई, महाराष्ट्र मे कुछ दिन ठर्री गकर और और गुजरात मे जाकर बूढी हो गड' । भक्ति क विषय म यह रामानुज उक्ति प्रचलित है कि 'भक्ति द्राविड उपजी लाए रामानन्द' जिनका अर्थ यह निकलता है कि भक्ति की उत्पत्ति ता दक्षिण (द्राविड) म हुई है और उत्तर मे उसके प्रवतक रामानन्द ह । रामानन्द रामानुज की शिष्य-परम्परा म आते हैं और उनके द्वारा उत्तर मे भक्ति का प्रचार एक एति हासिक तथ्य है । कबीर और नैदास रामानन्द के शिष्यो म हैं । रामानुज का जन्म मारहवी गतावनी मे दक्षिण मे हुआ था । रामानुज ने शंकर के अद्वैतवादी दर्शन का गहन तथा विशिष्टाद्वैती दर्शन का प्रतिपादन करके, भक्तिवाद की दार्शनिक आधार प्रदान किया । मध्यकालीन भारत म, शंकर और रामानुज एक दूसरे स चार सौ वर्ष दूर हात हुए भी, हिन्दू सामाजिक-दार्शनिक उत्पिकास म दो बडे मुग प्रयत्न हैं । शंकर नान भयी दास्ता के दार्शनिक मे और रामानुज भक्तिमार्गी परम्परा के । किन्तु, शासनव म यदि देखा जाय ता रामानुज के प्रपत्तिवाणी विशिष्टाद्वैती दर्शन का आधार शंकर का दर्शन है । दोनों का जन्म दक्षिण म हुआ । अपन मत का प्रतिपादन करने के लिए शंकर और रामानुज दोनों ने शीता पर भाष्य लिखे हैं । कुछ इतिहासकारो के मत म, शंकर का अद्वैतवाद और रामानुज का प्रपत्तिवाणी विशिष्टाद्वैतवाद प्रत्यक्ष इस्लाम से प्रेरित हैं और शंकर तथा रामानुज के समय म पहन वाल इस्लामो सघात

1 उत्पत्ता द्राविडो घाहें कणाटे बुद्धिमायना । सिधता विधि-महाराष्ट्रे गुजरे जोणता गता ।

ने भक्ति आन्दोलन को प्रेरित किया है। इसके विपरीत, दूसरा मत यह है कि शंकर और रामानुज हिंदुत्व के उद्विकास के दो विश्रामस्थल हैं और भक्ति आन्दोलन का जन्म इन दोनों विश्रामस्थलों के बीच में चलने वाली दार्शनिक तथा जन परम्पराओं में है। रामानुज ने गीता के आधार पर, दक्षिण में चलने वाली जन परम्पराओं को समयानुकूल व्यावहारिक दार्शनिक स्तर प्रदान किया है। भक्ति आन्दोलन के सामाजिक सांस्कृतिक आधारों का समझने के लिए इन विकास कड़ियों की व्याख्या अपेक्षित है।

शंकर का दार्शनिक परम्परा भक्तिमार्गी न होकर ज्ञानमार्गी है। किन्तु ज्ञानमार्गी हान पर भी शंकर ने विष्णु शिव शक्ति और सूर्य पर स्तान लिखे हैं और शक्ति के मंदिरों में बलि प्रथा का अवरोध किया है। शंकर के दान का खंडन करके रामानुज ने भक्तिमार्ग की नींव डाली और, इसी कारण शंकर का मध्ययुगीन भक्ति-आन्दोलन का उप्रेरक माना जा सकता है। जिस दान के आधार पर रामानुज ने भक्ति आन्दोलन की नींव डाली उसकी परम्परा निश्चय ही शंकर से भी प्राचीन है यद्यपि उनके प्रेरणा स्रोत शंकर दान में है। एक दार्शनिक रूप में, शंकर वस्तुतः समाज सुधारक हैं। उनका उद्देश्य था साम्प्रदायिकता (अर्थात् मतमतांतरों) के भवर में पड़ गए हिंदू समाज को निकाल कर उस एक एकीकृत दार्शनिक तथा सांस्कृतिक आधार प्रदान करना। शंकर के दान का यदि उनके कार्यों के सन्दर्भ में देखा जाय तो यह तथ्य और भी स्पष्ट हो उठता है। शंकर ने अद्वैतवादी दान का प्रतिपादन किया और सम्बुद्धि, तर्क तथा शास्त्र को ज्ञानान्त के तीन प्रामाणिक आधार माने। शंकर के लिए सत्ता निराकारमय है। उन्होंने निराकार की कल्पना ब्रह्म के रूप में की है। शंकर के ब्रह्म में ईश्वरत्व नहीं है। वह शुद्ध, बुद्ध, चतुर्थ निराकार और निर्विकार है। उस न तो भक्ता की चिन्ता है और न दुष्टों को दंड देने की। सत्ता मायामय ब्रह्म है। निराकार ब्रह्म और सत्ता के सम्बन्ध की स्पष्ट करने के लिए शंकर ने मायावाद का मत प्रतिपादित किया। शंकर का मायावाद वस्तुतः नागाजुन द्वारा प्रतिपादित बौद्धा का सूत्रवाद है। इस प्रकार, बुद्धवाद पर ब्रह्मवादी दान की स्थापना करके, शंकर ने बुद्धवाद का हिंदुत्व में समेट लिया और ब्रह्म के धारणा के द्वारा मत मत्तांतरों की साम्प्रदायिकता को निमूट कर दिया। इसका साथ-साथ भारत के चार कोना पर चार मठों की स्थापना करके उन्होंने हिंदू समाज को व्यावहारिक तथा दार्शनिक पक्षों का एकरा प्रदान करने का प्रयत्न किया। शंकर के प्रयासों में सुधार का अर्थ था समन्वय और उनके लिये समय का अर्थ था परम्परा का व्यापक निवृत्त और सम्स्थापन।

शंकर का दक्षिण में आविर्भूत हुआ एक ऐतिहासिक मयाग है। किन्तु शंकर-दान का विकास ऐतिहासिक मयाग नहीं है। शंकर के अनुसार शंकर दान की विकास रेखा शंकर के नासदीय सूत्र तक पहुँचती है। नासदीय सूत्र ने जीवन और

सष्टि के विषय में जो मौलिक प्रश्न उठाए थे, उन्हीं प्रश्नों का समाधान साजत सोजते पहले उपनिषद् का जाविर्भाव हुआ, फिर बौद्ध दर्शन का और फिर शंकर ज्ञान का। गणक का तटस्थ ब्रह्म बौद्धों से आगे बढ़ा हुआ एक ब्रह्म अवश्य है लेकिन तटस्थ ब्रह्म की धारणा की जड़ें वस्तुतः प्रौपनिषादिक दर्शन में हैं। जहाँ तक गणक के बौद्धिक पूजना का सम्बन्ध है वे दक्षिण में नहीं उत्पन्न हुए थे। सूयवादी दर्शन के प्रतिपादक नागाजुन का जन्म ईसा के जन्म के सौ वर्ष बाद विदम्भ में हुआ था और दासनिक् वसुबन्धु, जो शंकर के दूसरे बौद्धिक पूजक हैं का चौथी शताब्दी में पण्डित म। शंकर के शारीरिक भाष्य पर भामती व्याख्या लिखकर दसम शताब्दी में उम प्रसिद्ध करने वाला विद्वान्, बाचस्पति मिथ्र मिथिला में जन्मे। शंकर, भारतीय सत्त्वृति की उन समस्याओं का दासनिक् उत्तर थे जिन्हें शंकर ब्राह्मण और बौद्ध जूझ रहे थे।

गणक ने वेदान्त की ब्रह्मवादी व्याख्या की थी किन्तु रामानुज न वेदान्त की ईश्वरवादी व्याख्या करके गणक के तटस्थ ब्रह्म में ईश्वरत्व का प्रतिपादन किया— उस ईश्वरत्व का जो गुड बुद्ध निराकार और निविकार नहीं है जा विष्णु के रूप में साकार है, नवता पर दयालु है और विश्व प्रपंच का प्रहरी तथा कर्ता है। गणक ने केवल ब्रह्म का ही सर्वोपरि और अनादि माना किन्तु रामानुज ने ईश्वर के साथ-साथ, जीव और प्रवृत्ति का भी अनादि माना यद्यपि शब्द और अर्थ तथा जल और लहर के समान वे अलग अलग नहीं किए जा सकते। रामानुज ने अद्वैत में द्वैत और द्वैत में त्रिष्टयाद्वैत का प्रतिरोध किया क्योंकि, उनके अनुसार ईश्वर साकार भी है और केवल ईश्वर ही अनादि नहा है। गणक की परम्परा में वेदान्त के इस वाक्य 'तत्त्वमसि' की यह व्याख्या हुयी कि जीव भी ब्रह्म है किन्तु रामानुज की व्याख्या में यह प्रतिपादित किया गया कि 'तत्' अर्थात् सष्टि का कारण स्वरूप ईश्वर 'त्वम्' है अर्थात् जीव में छिपी हुयी आत्मा से एकाकार है। इसी कारण रामानुज की वेदान्त पद्धति त्रिष्टयाद्वैत की पद्धति कही जाती है।

अद्वैत में द्वैत का प्रतिपादन करने रामानुज ने कम और ज्ञान के समक्ष भक्ति की महत्ता का श्रेष्ठतर बताया। रामानुज के अनुसार, ज्ञानयोग से आत्मा केवल इतना ही जान सकना है कि वह परमात्मा का भाग है। किन्तु भक्ति की अनुभूति में आत्मा-परमात्मा के सम्बन्ध का ज्ञान अधिक प्रसरता उठता है। जीव भी अनादि है, उमरी भी एक सत्ता है अतः न तो ईश्वर में विलीन शक्य उसने लिए स्वाभाविक है और न उमकी आवश्यकता है। भवन का न तो स्वयं चाहिए न लय और न मुक्ति। उत्तम मुक्ति तो जीवन पयत्त और जायनापरात धाराध्य

- 1 दिनकर रानधारी तिरु घरी पृष्ठ 281
- 2 घरी पृष्ठ 300

की विह्वलता में लान हो जान में है। मृत्यु के बाद एक अर्ध शरीर प्राप्त करके और बँकुण्ठ में आराध्य का सामीप्य लाभ करके अनन्त भक्ति-साधना में ही भक्त की मुक्ति है। शंकर-दर्शन में भक्ति आत्मा ईश्वर का सायुज्य है किन्तु रामानुजी दर्शन में ईश्वर आत्मा का सानिध्य भक्ति है। भक्ति में भी सबसे सुलभ माग प्रपत्ति (शरणापत्ति) का है। रामानुज के अनुसार प्रपत्ति का माग सबके लिए है यद्यपि ज्ञान, व्रत और भक्ति केवल द्विजों के लिए है। वर्णाश्रम परम्परा और जन-स्तर उठती हुयी सामाजिक न्याय, ब्राह्मणवाद और बौद्धवाद का यह एक अपूर्व समन्वय था। रामानुज के शिष्य इस सन्तुलन तथा समन्वय की रक्षा न कर सकें। उनके वेदमार्गी शिष्यों ने वर्णाश्रम का ही पल्ला पकड़ा और अपेक्षाकृत अधिक कट्टर हो गए। यही वेदमार्गी परम्परा, रामानन्द के माध्यम से, उत्तर भारत में पहुँची और सूर तथा तुलसी में प्रस्फुटित हुयी।

शंकर ने भीमासकी के कारे कल्पाचार को अद्वैतवाद के पुट से दार्शनिक साधकता प्रदान की। शंकर के गुणक अद्वैत और ज्ञानाचार में विनिष्ठाद्वैत तथा भक्ति का पुट दवर, रामानुज ने उसे अधिक सरस सुगम और जनोन्मुख बना दिया। किन्तु शंकर की भाँति, रामानुज की कोई आकस्मिक घटना नहीं थी। रामानुज ने जिस भक्ति-माग का प्रतिपादन किया उसकी परम्परा एक जन-परम्परा थी, जो रामानुज के बहुत पहले ही से चली आ रही थी। रामानुज और उनके बौद्धिक पूर्वजा के द्वारा यही परम्परा एक दार्शनिक धरातल पर लायी गयी थी। तब भारत में भक्तिमार्गी परम्परा का आविर्भाव क्या है ?

इसका उत्तर इस्लाम नहीं है यद्यपि भारत के इतिहासकार बहुधा इस्लाम पर ही रुक जाते हैं। जिस प्रकार, ज्ञानमार्गी शाखा का आदि सात वेदों तक पहुँचता है, उसी प्रकार, भक्तिमार्गी शाखा की विकास रेखा यदि वेदों से नहीं प्रारम्भ होती है तो बरिष्क कालीन समाज तक अवश्य पहुँचती है। धर्म में वर्णित विचारों के आधार पर भक्ति का एक आयेतर प्रमय माना जाता है और यह कहा जाता है कि आयेतर सत्त्वृति (द्राविड) से आकर यह प्रमय आय द्राविड सत्त्वृतियों की सामासिकता में विलीन हो जाता है। यह पहल ही लिखा जा चुका है कि पूजा एक द्राविड साम्बृतिक प्रमय है जो आगम की श्रेणी में आता है। पूजा भक्तिमाग का आविर्भाव है। बरिष्क वक्ताण्ड के प्रति हानि वाली प्रतिश्रिया से उत्पन्न दार्शनिक उदात्ताओं ने ज्ञानमार्गी शाखा का जन्म लिया और पूजा की सरलता तथा तत्त्वमयता में भक्तिमार्गी शाखा को। गीताकार ने निगम आगम और ज्ञानमार्गी तथा भक्तिमार्गी पद्धतियों का समन्वय का किया और सम्भवतः सभी से भक्तिमार्गी पद्धति का शास्त्रीय मान्यता मिलान लगी क्योंकि गीता के बाद ही भक्ति का आस्थापन के रूप में रामायण और महाभारत के वर्तमान संस्करण पूरे हुए। भक्ति का प्रधान आधार ग्रन्थ भागवत नौ सौ इन्द्रों के आमन्त्रण लिखा गया और रामानुज का आविर्भाव हुआ

वारहकी शताब्दी के प्रारम्भ में। गीता और भागवत तथा भागवत और रामानुज के बीच पढ़ने वाले काल में भक्ति कहा थी ?

गीता और रामानुज के बीच में पढ़ने वाले काल में भक्ति के उद्विकास की शृंखला बढ़िया है दक्षिण के नायनार और आलवार सत्ता की पद्धतियों आलवार और और उनके द्वारा रचे हुए भक्ति पदा में। उनमें भारत में भक्तिमाग नायनार का प्रसार होने के पहले, जब सिद्ध सत्त बंद की निंदा कर रहे थे, परम्पराओं लोगों को यह पाग, मूर्तिपूजा तीर्थ, जल और वर्णाश्रम धर्म से विमुख बना रहे थे, तब दक्षिण की भक्ति विभार जनता का आलवार सत्त विष्णु और नायनार सत्त गिब की भक्ति तथा प्रेम का संदेश सुना रहे थे¹। दक्षिण में, इस काल में, भक्ति के केंद्र हैं गिब और विष्णु का आर्येतर देवता है। तुलसीदास ने भी राम को विष्णु का अवतार माना है और रामचरितमानस की कथा गिब के मुख से कहलायी है। तुलसी व राम ने भी गिब द्राही का अपना द्रोही माना है और तब पर चलाई करने के पहले गिब की कृपा का आवाहन किया है। रावण का प्रताप गिब के प्रति अनन्य भक्ति कवच में मिला बरदान है। भागवत में भक्ति के केंद्र भगवान् कृष्ण को भी अनार्यों के देवता के रूप में माना जाता है। कृष्ण का इन्द्र के बंद में गोवधन की पूजा पर जार देना आगम-पद्धति में ही आता है। जयद्रथ का मारने के लिये, यथायाग्य भक्ति-सचय के लिये श्रीकृष्ण ने अर्जुन को गिब की उपामना करने के लिये कहा था और गिब के द्वारा मित्र हुये बरदान तथा वाणों की सहायता में अर्जुन जयद्रथ का वध कर सके थे। इन पौराणिक कथाओं में यह सिद्ध होता है कि भक्ति आर्येतर प्रभय होने के साथ-साथ, द्राविड जनता की एक परम्परा रही है। निगम और आगम के रूप में भारत में दो परम्पराएँ रहीं हैं—एक, कथवाण्ड ज्ञान और सत्यास की, जो द्विजा के लिये हैं और दूसरी, श्रवण सकतीता और बंद तथा पुराणों में बताया हुये उपाया से पवित्र जावन व्यतीत करने की। दूसरी परम्परा गस्था, विगपसपा गूद्रा, के लिये रही है। भक्ति इसी दूसरी परम्परा की उपज है। कोई आश्चय नहीं, यदि भक्तिमाग के अधिपतर प्रणता गूद्र वण के हैं।

निम्नर द्वारा उच्चत कृष्णस्वामी आपनर के मतानुसार, आलवार सत्ता की परम्परा ईस्वी सन की दूसरी शताब्दी तक पहुंचती है, और नवी शताब्दी तक चर्चती रहती है। आलवार सत्ता के पदा में प्रपत्ति (गणनागति) के भाव की प्रधानता है, जो बहुत कुछ इस प्रकार है 'मरा जम द्विजाति कु' में नहीं हुआ, न मैं चारा वेग का जानने वाला हूँ। मैं अपनी ईश्वरता का भी नहीं जीत पाया हूँ। इस कारण, हे भगवान् ! मुझे तुम्हारे प्रकाशमय चरणों के अनिर्विकृत अथ विषी भी भक्ति का भरासा नहीं है'। आलवार सत्ता में प्रपत्ति का भाव इतना प्रबल है कि

वे व्रत, उपवास, तीर्थ यात्रा और कभी कभी मूर्ति-पूजा आदि प्रचलित आचारों की निंदा करते हैं। आलवार सत्ता की परम्परा गुरु से प्राचीन है और कुछ कुछ गुरु के समानांतर भी। गुरु में भारत की बौद्धिकता और तत्कालीन दंगन का विकास हुआ है और आलवार सत्ता का अभिव्यक्तियाँ में रहस्यवादिता, नमता, बंधुता और प्रपत्तिमय भक्ति की भावना का। जिस समय, उत्तर में सिद्ध सत्त बुद्धवाद का प्रभाव में, कल्पाचार और जानिभद की निस्सारता बताकर, उनकी सिन्धी उदा रह थ, उस समय आलवार सत्त प्रेम और भक्ति के माध्यम में जाति की निस्मारता बता रहे थे और भगवान की गुरुण में ग्रान बाल भक्ता का बीच में समता का भाव लाने का प्रयत्न कर रहे थ। आलवार सत्त न तो जाति पाति मानते थे और न ब वणाश्रम के विधि निषेध के काय थ। आलवार सत्ता की भक्तिमय प्रेमापामना का प्रचलन भाव था भक्ति न छाड़ों मुक्ति न मागों तब जस मुनों मुनावों। जसा कि त्तिनकर का मत है नवी गता-दी तक प्रपत्ति (गुरुणागति) आत्म समपण और एवात्तनिष्ठा से विभूयित भक्ति का सम्यक विकास और प्रचार दर्शन की तामिन भाषा भाषी जनता में हुआ चुका था।

नवी गता-दी के उत्तराध में जन नाथ मुनि ने आलवार सत्ता का चार हजार पदा का संग्रह प्रबन्धम नामक चार ग्रन्थों में करवाया तब भक्ति का दंगन का स्तर पर लान और भक्ति का दानिक प्रणाली में बाधन का प्रयास प्रारम्भ हुय। नाथमुनि के बाद बण्णव विद्वानों ने इही ग्रन्थों पर भाष्य और टीकाएँ लिखी। यही ग्रन्थ 'तानिल प्रबन्धम' के नाम से विख्यात है और गीता का बाद तथा भागवत के समकालीन भक्ति का आदियथ है। प्रबन्धम और भागवत में अन्तर है ता कबू इनका कि प्रबन्धम में भक्तिपदा का संग्रह है जबकि भागवत में भक्ति का पाण्डित्य और दंगन के आवरण में प्रस्तुत किया गया है। चूँकि भागवत में इस बात का संकत है कि भक्ति द्राविड देश में उत्पन्न हुयी यह माना जा सकता है कि भागवत का प्रेरणा स्रोत प्रबन्धम में है और गीता तथा रामानुज का बीच की कड़ी प्रबन्धम और भागवत हैं। रामानुज के विगिष्टताद्वयवात्ता दंगन की जड़ें भा प्रबन्धम में ही हैं क्योंकि विगिष्टताद्वय का प्रथम विवचन यामुनाचाय (०१६ ई० में १०४० ई०) ने किया है जो प्रबन्धम के सम्पाक श्री नाथमुनि की दूसरी या तीसरी पीढ़ी में हुये हैं। इसके बाद रामानुजाचाय (१०२७-११२७ ई०) ने विगिष्टताद्वय की व्याख्या की और यह मत प्रतिपादित किया कि गीता और पानजल याग के अनिर्विकल भक्ति का मूल स्रोत आलवार सत्ता की परम्परा में है। रामानुज इही आचार्यों की बौद्धिक सत्तान थे।

आलवार सत्तों की बण्णवी परम्परा का साथ साथ, दक्षिण में नाथनार सत्ता की वैव परम्परा भी चली। आलवार सत्ता की परम्परा विष्णु में बद्धीभूत थी और नाथनार सत्तों की परम्परा शिव में। आलवार परम्परा का आचार्य बण्णवाचाय कहलाये और वैव परम्परा के गवाचाय। नाथनार सत्तों

के एता में शिव के प्रति प्रपत्ति की अभिव्यक्ति थी। जिस प्रकार, प्रबोधम् के माध्यम में वैष्णवीजन परम्परा ज्ञानोन्मुख हुई, उसी प्रकार, तिमुरई नामक स्मारक भागों में सप्रहीत ग्रंथ के माध्यम में, शैव जन परम्परा भी ज्ञानोन्मुख हुई। जिस समय वैष्णवाचार्य नाथमुनि ने आलवारों के एता का सग्रह प्रबोधम में करवाया था, उसी समय शैवाचार्य नाथि आचार-नम्बी ने तिमुरई (पावन पुस्तक) नामक ग्रंथ में शैव एता का सग्रह करवाया। दक्षिण की भक्ति धारा में प्रबोध का जो महत्व है वही तिमुरई का भी है। वैष्णवी परम्परा में सृष्टि के परम अध्यात्म है विष्णु किन्तु शैव परम्परा में वह स्थान शिव का है। जड़, प्रकृति और चेतन जीव सभी शिवमय है और शिव ही चेतना का आगार और ब्रह्मांड में व्याप्त अनादि सत्य है।

शक्ति, शिव के काय व्यापार का माध्यम है। अतः, शक्ति शिव की पूरक है। सृष्टि शिव की कृति है और उसकी पांच प्रक्रियाएँ (रचना, पालन, विनाश, जीव की मोक्षान्तरता और भक्ति) शिव की कृपा और शक्ति के सहयोग से सम्पन्न होती है। फिर भी, शिव के साथ साथ, सृष्टि भी अनादि है और उसका विकास जीवा के बलयाण के लिये होता है। शैव पद्धति में, शिव और सृष्टि के साथ साथ, आत्मा भी स्वभावतया जनादि, जात और चेतन है किन्तु बंध में पड़ जाने का कारण, आत्मा अपने का सात छगिन और अनानी मानती है। अपने पूर्वजनों से मुक्त होकर तथा जड़ की अधीनता से बाहर आकर ही, आत्मा का अपनी अनादिना अन्तता और चेतनता का ज्ञान हो सकता है। आत्मा की मुक्ति मिथ्यातविहित साधना-पद्धति का पालन तथा विधारण और गुरु ज्ञान तथा शिव की कृपा से ही हो सकती है। शैव परम्परा, इस प्रकार, शक्ति का अग्रज और रामानुज का विधिग्राहक का बीच की परम्परा है। शैव तथा वैष्णवी परम्पराएँ जन और ज्ञान के स्वरों पर, एक साथ, तथा दो अलग-अलग भक्ति सम्प्रदायों के रूप में अवतरित हुई। शैव और वैष्णवी परम्पराओं का सम्बन्ध तुलसीदास के हाथ हुआ क्या कि उन्होंने इन दोनों के माध्यम से तथा इनसे धर्म राम परम्परा की स्थापना की। प्रपत्ति, गुरु महिमा द्रव्य द्वैताद्वय और विशिष्टाद्वैत की जा महत्ता इन परम्पराओं में है, उन्हें तुलसीदास ने ज्यो का ज्यो धपना लिया।

भारतीय मन्त्रि में प्रवाहित इस भक्ति धारा में किन्तना भाग इस्लामी है और किन्तना भारतीय यह एक विचार का विषय है। समोश। हम धियम पर उपलब्ध ऐतिहासिक साहित्य में जितन मत प्रतिपादित किये गये हैं वे उसी प्रकार लम्बवत विभाजित हैं जैसे हिन्दुओं और इस्लाम। एक आर है ताराचन्द, हुमाज कबीर और यूसुफ हुमन के मत

जिनमें यह प्रतिपादित किया गया है कि शंकर की अद्वैतवादी परम्परा और उनके बाद से प्रवाहित होने वाली भक्ति धारा हिन्दुत्व पर इस्लाम के प्रत्यक्ष प्रभाव का परिणाम है। दूसरी आर है दिनकर तथा विनयकुमार सरकार के मत जो इस बात पर जोर देते हैं कि आठवीं शताब्दी से लेकर अठारहवीं शताब्दी तक प्रवाहित होने वाली मानवतावादी विचारधारायें सुधारवाद आदानन तथा भक्तिमार्गी परम्परायें, वास्तव में हिन्दुत्व के उत्तरोत्तर उद्विकास का परिणाम हैं न कि इस्लाम के सघात का। विनयकुमार सरकार के अनुसार चौदहवीं तथा अठारहवीं शताब्दियों के बीच में, हिन्दुत्व में चलने वाले मानवतावादी तथा एकेश्वरवादी सुधार आन्दोलनों को इस्लाम के सघात का परिणाम मानने की एक प्रथा सी रही है। किंतु समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से यह आवश्यक है कि इस परम्परा के आवरण को उठाकर इतिहास का और भी गहराई से देखा जाय क्योंकि एकेश्वरवादी तथा मानवतावादी विचारधारायें प्रारम्भ से हिन्दू सामाजिक धार्मिक और सामाजिक धार्मिक परम्पराओं में विद्यमान रही हैं। इन दोनों विभेदी मतों के बीच में सम्यक्मार्गी तथा सामासिकतावादी इतिहासकार हैं जो मध्ययुगीन भारत की भक्तिमार्गी गान्धा को हिन्दुत्व का इस्लामीकरण या इस्लाम का हिन्दूकरण मानकर उसे हिन्दू मुस्लिम समाज का प्रतीक मानते हैं।

शंकर और रामानुज पर इस्लाम के प्रभाव की बात सर्वप्रथम सर चार्ल्स इलियट ने अपनी पुस्तक हिन्दुजन्म और बुद्धिजन्म (1921) में कही थी और तभी से इतिहासकारों का एक सम्प्रदाय इस बात का सिद्ध करने में लग गया। डा० ताराचन्द इस सम्प्रदाय के प्रमुख इतिहासकार हैं। उनके अनुसार शंकर के अम्युदय के पहले ही से इस्लाम का प्रभाव मालाबार क्षेत्र पर फल गया था। डा० ताराचन्द ने शंकर को इस्लाम का अनुकर्ता माना है और अपनी इस मान्यता की पुष्टि के लिये वे तीन-तीन बातों पर जोर दिया है—एक, शंकर द्वारा अद्वैतवाद के माध्यम से एकेश्वरवाद का प्रतिपादन और दूसरा शंकर का दर्शन में ही उत्पन्न होना। किंतु शंकर का अद्वैतवादी और इस्लाम का एकेश्वरवाद मूलतः भिन्न हैं। इस्लामी एकेश्वरवाद में ईश्वरवादिता है। इस्लाम में जिस ईश्वर की कल्पना की गई है वह दया और कृपा दोनों देता है और वंश अर्थात् व्यक्ति उसका दास है तथा उसकी दया पर निर्भर है। किंतु शंकर का ब्रह्म तटस्थ निराकार और निर्विकार है। इस्लाम में माया का वही स्थान नहीं है। शंकर ने जीव और ब्रह्म को मूलतः एक माना है। उनमें यदि अंतर है तो माया के कारण। शंकर वैदिक परम्परा में हैं न कि इस्लामी परम्परा में। शंकर का दर्शन में उत्पन्न होना इस्लाम का प्रभाव नहीं है बरन् उस ऐतिहासिक परिस्थिति का परिणाम है जिसमें हिन्दुत्व सिमटकर दक्षिण में केंद्रीभूत हो गया था और वहाँ उस प्राण मिल रहा था। शंकर में बुद्धवाद और वेदान्त का समावेश है न कि इस्लाम और हिन्दुत्व का। यदि शंकर इस्लाम के अर्थ में एकेश्वरवादी होते तो शिव, सूर्य और शक्ति पर स्तोत्र न रचते और न भारत

के चार बीनों पर मठा की ही स्थापना करने। शाकरीय दगन म सृष्टि के स्वरूप और उद्गम का जो दणन है वह इस्लाम की मायताभा क प्रतिकूल ही पढता है।

बष्णव धम और भक्ति-आन्दोलनकी आमा डा० ताराचंद और उनक समान मत वाले अय इतिहासकारों क अनुसार इस्लामी है जबकि उसका कन्वेवर हिन्दू। इम मत क मुख्य आधार है—भक्ति का तथा भक्ति क प्रणेता वैष्णवाचार्यों तथा गवाचार्यों का दक्षिण म ही उत्पन्न होना, भक्तिवादी विचारधारा म प्रपत्ति (परिणागति) एकांत निष्ठा और व्यक्तिवादी भावना का पाया जाना जातिप्रथा तथा वण व्यवस्था का विरोध तथा पडन-मडन, गुरु नियम-परम्परा तथा चान प्रपत्ति क लिए गुरु को ईश्वर स भी बडा स्थान देना^१ और भक्ति जादालन के माध्यम से फगन वाला मानवतावादी दृष्टिकान। किन्तु यह सिद्ध करना बडा कठिन है कि ये विचार और मायतामें हिन्दुत्व म इस्लाम स सम्भव होने क पहल नही थी। भक्ति की परम्परा हिन्दुत्व की आगम परम्परा म एक जन परम्परा क रूप म उतना ही प्राचीन है जितना की स्वयं हिन्दुत्व और सम्भवतः उससे भी अधिन। प्रपत्ति का भाव भी हिन्दुत्व के लिए नथा नही है। भक्ति का और भक्ति मार्गी आचार्यों का दक्षिण म उत्पन्न होना उन प्रक्रिया का परिणाम है, जिनके कारण हिन्दुत्व दक्षिण म कद्रीभूत हो गया था। इस्लाम म गुरु शिष्य परम्परा का मूलस्रोत वह आयत है जिसमे यह कहा गया है कि मुहम्मद मनुष्य तथा ईश्वर क बीच की एक कडी हैं^२। किन्तु गीता क एक श्लोक म यह कहा गया है कि ओम का जाप और उसके अक्षरूप म भगवान कृष्ण का ध्यान करता हुआ जो व्यक्ति गरीर छोडता है वह परमगति का प्राप्त होता है^३। यहाँ मनुष्य तथा ईश्वर क बीच म कृष्ण का वस्तुतः कुछ वही स्थान है जो मुहम्मद का है। "वतादवतरापलिपद के अन्तिम मन्त्र म यह कह कर कि यस्य दवे परा भक्तिवधा दव तथा गुरो गुरु म दवत्व की भावना का प्रतिरापण कर दिया गया है। कबीर, दाद और नानक क बौद्धिक पूवज मिड कवियों न गुरु क उपदेश

१ कबीर ने कहा है—गुरु गोविन्द दोना लड़े काके लागू पाय

बलिहारी गुरु आपने जिन गोविन्द दिया बनाय।

अर्थात् गुरु को बलिहारी है जिन्होंने गोविन्द की पट्टदान कराया। तुलसीदास ने भी मानस का प्रारम्भ गुरु-वन्दना स किया है। सिक्ख सम्प्रदाय में नानक के माध्यम से गुरु की महिमा आई और यहाँ तक बढ़ी कि यहाँ 'याह गुरु का सान्ता प य का नारा हो गया। दक्षिण के बीर गवों ने भी गुरु को ज्ञान का माध्यम माना है। सूक्तियों मे विना पीर के ज्ञान मिल ही नहीं सकता।

२ साईसाह इलिस्लाह मुहम्मदुरसूलिस्लाह।

३ ओमित्येकाग्र ब्रह्म ध्याहर मासनुस्मरन।

य प्रयाति त्यजदह स दानि परमां गतिम। गोना

को अमर रस के समान मानने तथा गुरु वचन में दृढ़ भक्ति रखने पर जोर दिया है क्योंकि शास्त्राथ क मरस्थल में केवल गुरु के अमररूपी उपदेश से ही तथा गात होती है⁴। उत्तरी भारत में सिद्धों की परम्परा इस्लाम के पहले की है।

वर्णव्यवस्था के विरुद्ध प्रतिन्याय इस्लाम के पहले ही से भारत में विद्यमान है। 'आत्मवत् सब भूतेषु (सभी प्राणियों का अपन समान समानो), 'पंडिता सम दक्षिणा' (जानी समदर्शी हात हैं) और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' (वसुधा कुटुम्ब के समान है) की भावनायें वैदिक काल से ही हिंदू चिंतन का अंग रही हैं। इन्हीं का प्रस्फुटन, बुद्धवाद, मध्ययुगीन भक्त कवियाँ और स्वाामी दयानंद, राममोहनराय और महात्मा गांधी जैसे समाज सुधारकों के चिंतन तथा कार्यों में हुआ है। भारत की सामाजिक परिस्थितियों में, प्रारम्भ से ही मानवतावादी विचार और काय यहाँ के चिंतन का एक जग बन गये थे और आज भी हैं। शंकर का अद्वैतवाद और तुलसी के राम सम्भवतः इसी मानवतावाद की दार्शनिक तथा काव्यात्मक अभिव्यक्ति है। विनय कुमार सरकार के अनुसार भारत में विशेषतया हिन्दुत्व में एक आर वर्णाश्रम रहा है ता दूसरी आर, वर्णाश्रम के विरुद्ध उठन वाली प्रतिन्याय। एक ओर कानून और व्यवस्था पर जोर दिया गया है ता, दूसरी ओर कानून और व्यवस्था के प्रति विद्रोह किया गया है। एक ओर जाति शुद्धता की भावना रही है ता दूसरी ओर, वर्णसंकर की। इस प्रकार हिन्दुत्व में दो विराधी शक्तियाँ प्रवाहित हाती रही हैं और इन्हीं विराधी शक्तियों का प्रवाह में हिंदू सांस्कृतिक उद्विकास के आदर्श नियम निहित हैं। इस्लामी वातावरण के हिंदू भारत में प्रवाहित होने वाली समाजवादी तथा प्रजातन्त्रीय विचारधाराओं में इन्हीं परम्परागत समाज निर्मात्री प्रतिन्यायों का प्रवाह है जिनके माध्यम से निम्नस्तरीय समूहों का उच्च स्तर की ओर सामाजिक आरोहण हाता है। हिंदू संस्कृति का प्रसार—इन में से केवल एक ही अथ ध्वनित होता है और वह है हिंदू समाज का उत्तरात्तर प्रजातन्त्राकरण या हिंदू संस्थाओं और प्रथाओं पर जनता का उत्तरात्तर सघात और उससे उत्पन्न होने वाले परिवर्तनों के मध्य वृद्धि तथा उत्प्रेरणा। मुस्लिम वातावरण में इस परम्परागत हिंदू प्रवृत्ति का किसी भी प्रकार हनन नहीं हुआ। अतः जिस डा० ताराचंद इस्लाम का प्रभाव का परिणाम मानते हैं उस विनयकुमार सरकार हिन्दुत्व का स्वाभाविक विकास मानते हैं।

ताराचंद के तर्कों में विरोध है और उनकी अध्ययन रीति दोषपूर्ण। एक ओर, वे शंकर का इस्लाम का अनुकर्ता और शंकर द्वारा प्रतिपादित अद्वैतवाद का लार्डलाह इलिस्ट्राह की प्रतिवृत्ति मानते हैं ता, दूसरी ओर मानते हैं कि इस्लाम ने चौदहवीं तथा पंद्रहवीं शताब्दियों में बौद्धिक उत्प्रेरक का ही काम किया होगा। उत्प्रेरणा और प्रतिवृत्ति के पीछे जो धारणाएँ हैं वे परस्पर विरोधी हैं क्योंकि जो

उत्प्रेरक है उसकी प्रतिकृति नहीं आ सकती। ताराचन्द भक्ति और रहस्यवाद को मानव की मादभौमिक और मवकालीन धार्मिक प्रवृत्ति मानते हैं और यह भी मानते हैं कि भारत में भक्ति और रहस्यवाद के उत्पन्न होने से विद्यमान थे। फिर भी, व भारत में भक्ति और रहस्यवाद के उदयविकास का विश्लेषण छाड़ दत्त हैं और भक्ति तथा रहस्यवाद को इस्लाम में आया हुआ मान लेते हैं। जैसाकि डा० ताराचन्द की पुस्तक के शीर्षक 'दुःखानुभव आफ इस्लाम ध्यान इण्डिया' से स्पष्ट है उनकी अध्ययन रीति का सबसे बड़ा दाव यह है कि उनके अध्ययन का विषय है भारत पर इस्लाम का प्रभाव न कि भारतीय सस्कृति में इस्लाम। उनकी दृष्टि केवल इस्लाम पर है और मध्ययुगीन भारतीय सस्कृति के उन्ही अंग पर पड़ता है जहाँ उन्हें इस्लाम की प्रतिकृति नजर आती है। यदि ऐसा न होता तो उन्हें विष्णुस्वामी, निम्बाक और मध्व का चिन्तन न-ग्राम, अंगरारी और गजाली की प्रतिकृति क्या लगता? इस्लाम में प्रपत्ति है एक निराकार ईश्वर के प्रति जो दया का आगार है और शोध का भी किन्तु राष्ट्रीय भक्ति विचार में प्रपत्ति है साकार के प्रति जिसमें भक्तत्वनही होना चाहता। इस्लाम में प्रपत्ति का कुछ और रूप है और हिन्दुत्व में कुछ और। डा० ताराचन्द की दृष्टि केवल प्रपत्ति पर है न कि इस्लाम तथा हिन्दुत्व में पायी जाने वाली प्रपत्ति विषयक सादृश्यों के अन्तर पर। यदि व इस आधारभूत अन्तर पर ध्यान दत्त और उन हिन्दुत्व की स्वाभाविक उदविकासी प्रक्रिया के म-दम में ममयन का प्रयत्न करते तो व वक्षणी और शक परम्पराओं को इस्लाम का प्रत्यक्ष प्रभाव न मानते। किन्तु, ताराचन्द की अध्ययन रीति में समानांतर उत्पत्तिकामी वृद्धि का कोई स्थान ही नहीं है।

ताराचन्द के मत में, मध्ययुगीन रहस्यवादी अभिव्यक्तियों का रूप, प्रतीक, प्रचार और परिवर्तन को दिगार्थे जातिरिक्त वृद्धि का प्रतीक न हाकर बह्य प्रभावों का प्रतीक है। दार्शनिक इस्लाम में पहले इसाइयत का प्रवेश हुआ था। पर, डा० ताराचन्द इसाइयत को रहस्यवादी परम्पराओं का कारण नहीं मानते क्योंकि हिन्दुत्व और इसाइयत का सम्पर्क होने वाला आवश्यक ऐतिहासिक परिस्थितियाँ दार्शनिक मनही थीं। 'आवश्यक ऐतिहासिक परिस्थितियाँ का क्या अर्थ है, दत्त ताराचन्द ने स्पष्ट नहीं किया है। ताराचन्द इस हकीकत करते हैं कि प्राचीन तथा मध्ययुगीन भारत के सांस्कृतिक धर्म मन्व धी विचारों तथा परम्पराओं में जो अन्तर है, उसका बहुत बड़ा अंग तत्कालीन सामाजिक, अर्थ, धार्मिक मयों, राजनैतिक आगालना आर हिन्दुत्व के सामाजिक, धार्मिक तथा बौद्धिक विकास का स्वाभाविक परिणाम है। फिर भी, ताराचन्द के मत में इन पर इस्लाम का प्रभाव है क्योंकि धार्मिक आस्था का उत्तरो-

1. नज्जाम, अंगरारी और गजाली प्रसिद्ध सूफी चिन्तक हुए हैं और विष्णुस्वामी, निम्बाक और मध्व वक्षणी दर्शन के प्रणेता हैं।

त्तर सरलीकरण और उसमें बढ़ती हुई भावुकता का पुट इस्लामी प्रभावों का ही परिणाम है। जसाकि ताराचंद न लिखा है, 'एसा लगता है कि जब उत्तरोत्तर सरलीकरण और बढ़ती हुई भावुकता के पीछे एक निश्चित शक्ति और प्रवृत्ति काम कर रही हो। किंतु यह 'निश्चित शक्ति और प्रवृत्ति हिन्दुत्व का आंतरिक विकास नहीं है—वह इस्लाम से आयी है। महात्मा बुद्ध द्वारा सरलीकरण की मांग और वेदा की रहस्यवादी अभिव्यक्तियाँ जैसे अस्तित्व में आकर समाप्त हो गयीं हैं ? यह मानते हुए भी कि रहस्यवादी धार्मिक अनुभव का रूप में मुसलमानों ने हिन्दुओं को जो कुछ अपित किया वह हिन्दुओं के लिए नया नहीं था और हिन्दू मस्तिष्क में सात्मीकरण तथा समन्वय की अपूर्व क्षमता है, वे रहस्यवाद को इस्लाम का ही योगदान मानते हैं क्योंकि उनका तर्क आधारित है परिस्थिति प्रमाण (Circumstantial Evidence) पर—वह प्रमाण जिसमें अनुमान का अधिक पुट रहता है। दक्षिण में, भक्ति तथा रहस्यवाद के अधिकतर तत्व, अपने यथितगत रूप में हिन्दुत्व का स्वाभाविक विकास का अलग अलग परिणाम थे। यह स्वीकार करते हुए भी ताराचंद यह प्रतिपादित करते हैं कि ये सारे तत्व अपने सम्मिलित रूप में और अपने एक विशेष युग्म के कारण मुस्लिम आस्था (Muslim Faith) का जन्म देते हैं और हिन्दुत्व पर मुस्लिम प्रभाव की सम्भावना के तर्क का और भी दृढ़ता प्रदान करते हैं। हिन्दुत्व में इस्लाम की प्रतिष्ठित और प्रभाव ही दृढ़ करने वाला विद्वान विरोधी तर्कों की इस भ्रांति में पड़ सकता है और एकतरफा मायताओं को प्रतिपादित कर सकता है।

यह दोष नहीं ता डा० ताराचंद का है आरन उनके जैसे अत्यन्त इतिहासकारों का। वास्तव में, यह दोष है ऐतिहासिक विवेचन की उस पुरानी परम्परा का जिसमें इतिहासकार किसी प्रमथ विषय पर ही अपना ध्यान केन्द्रित रखता है और उस ही प्रधान मानकर, और सभी कुछ गौण मानता है। डा० ताराचंद के लिए भारत पर इस्लाम का प्रभाव प्रथम प्रमथ है और इस्लाम का पहला तथा बाद का हिन्दुत्व गौण। किंतु जहाँ सतत अभ्युदय वृद्धि और उत्थान है वहाँ इस्लाम वह प्रवाह है जो एक बड़े प्रवाह से मिलता है। हिन्दुत्व पर इस्लाम का क्या प्रभाव पड़ा यह एक विषयान्तरक प्रश्न है ? इस से दृढ़ प्रश्न यह है कि भारत में इस्लाम का प्रवेश में हिन्दू सभ्यता की उत्थान प्रक्रिया में क्या परिवर्तन लहरें उठी और, उनका मध्य में, हिन्दुत्व, या धार्मिक अर्थ में भारतीय सभ्यता का किस प्रकार उत्थान हुआ। सांस्कृतिक उत्थान सत्त्व सम्बन्धीकारी होना है जिसमें प्रत्येक परिवर्तन एक उत्थानकारी परिवर्तन श्रृंखला से सम्बद्ध रहता है। जहाँ परिवर्तन में स्थायित्व नहीं है और स्थायित्व में आधारभूत तत्व नहीं बने रहे वहाँ केवल परिवर्तन ही है, उत्थान नहीं। इस्लाम के प्रवेश में हिन्दुत्व का परिवर्तन ही नहीं, उत्थान भी हुआ।

इस्लाम और हिन्दुत्व की तुलना करते समय अधिकतर लोग का ध्यान, एक ओर, अरबीकृत इस्लाम पर रहता है तो, दूसरी ओर, हिन्दुत्व का उस रूप पर जो निगम जयवा वैदिक है। किंतु वास्तव में, आगम (अवदिव) भी हिन्दुत्व का उतना ही अंग है जितना कि निगम। आगम में निगम और आगम तथा निगम का उत्तरात्तर समन्वय हिन्दुत्व की उद्विकासी प्रक्रिया की मूलप्रवृत्ति रही है। जन सृष्टि के लक्ष्य तथा परम्परायें, आगम का माध्यम हैं, समानानुसार निगम में समन्वित होती रही हैं और, इसी कारण, समय समय पर मिलन वाली उत्प्रेरणाओं के कारण, हिन्दुत्व में आगम का उभार होता रहा है। भारत में इस्लाम तथा पश्चिमी सम्यता का प्रबल उत्प्रेरणायें रही हैं, जिनके प्रभाव में आगम का उभार मिला तथा निगम में उसका समन्वय हुआ। मध्ययुग में रहस्यवाद, भक्ति तथा मानवतावादी विचारों का उभार इसी उद्विकासी प्रक्रिया का परिणाम है। भक्ति का एक ओर जन-आन्दोलन के रूप में उभरना तथा दूसरी ओर, उसका भारतीय धर्म की परम्परा में समन्वित होना इसी तथ्य का प्रमाण है।

सात्मीकरण, समन्वय, पुनरुत्थान, सुधार और सघर्ष

पथ परम्परा

इस्लामी सम्पत् के वातावरण में भक्ति जा दालन ने यदि एक बार हिंदू ईश्वरवादिता के दार्शनिक निवचन तथा पुनरुत्थान का रूप लिया तो दूसरी ओर, पथ परम्परा का, जिसके माध्यम से हिंदुत्व में निगमागम का व्यापक समन्वय हुआ पुनरुत्थानवादी सुधारवाद का आन्दोलन बन जनक इस्लामी विशेषताओं का हिंदुत्व में सात्मीकभर और समन्वय हुआ जीवनिपदिक बौद्धिकता के पुनरुत्थान के द्वारा एकेश्वरवाद के मत का प्रतिपादन करके धर्म और जाति के अंतर को निस्यार बताया गया ज्ञानमय भक्ति को सर्वोपरि माना गया तथा इस्लाम के प्रति विद्रोह का बीजारोपण हुआ। ये सारी प्रक्रियाएँ एक साथ चली और उनके माध्यम में भक्त-सत्ता द्वारा संगठित पथ जिनका आविर्भाव इन काल के सार भारत में हुआ। ये पथ हिंदुओं में मजहबी जास्या लेकर प्रस्फुटित हुए। प्रत्येक पथ के प्रणेताने भक्तिमार्गी परम्परा में हिंदुत्व का निवचन करके, अपने पथ का संगठन किया। पथ निगुनवादी, भक्तिमार्गी जाति पाति निराधी और सहजज्ञानवादी थे। इनके प्रणेताने ने मूर्तिपूजा का सण्डन किया, सयास का निरथक माना, गृहस्थ शाधु के आदम का प्रतिपादन किया और भगवत भजन का माध प्राप्त का

साधन माना। जिस प्रकार, इस्लाम में सूफी पंथों का निम्न स्तर की जनता में सगठन हो रहा था, उसी प्रकार, निम्नस्तर की हिन्दू-जनता में भक्तिवादी पंथों का सगठन हो रहा था। पंथों की भक्तिवादी परम्परा पारलौकिकता की ओर उन्मुख थी यद्यपि इस्लाम का भुक्त्वाव इहलौकिकता की धारण थी। हिन्दू मुस्लिम संघर्ष बादशाहत के बढ़ते हुए कर्षण और निरन्तर होन वाले युद्धों के कारण जनता पर पड़ने वाले भार और उससे उत्पन्न होन वाली गरीबी ने सम्भवतः पारलौकिकता के भाव को सामाजिक मानसिक जीवन का एक अंग बना दिया। अनेक विद्वशी सूफी सम्प्रदायों तथा मुगल राज की बढ़ती हुई कट्टरता ने अनेक पंथों (सिक्ख सतनामी वैरागी) को उतना ही कट्टर बना दिया जितना कि इस्लाम था। इस कट्टरता ने संघर्ष का जन्म दिया।

इस काल में जिन पंथों का अस्तित्व हुआ है उनमें से मुख्य हैं—कबीर सिक्ख बण्णवी, राधास्वामी, वीर शैव तथा सिंगायत इत्यादि। गुरु परम्परा में पंथ मठायी सगठनों के रूप में विकसित हुए। प्रत्येक पंथ का एक महत्त्व हुआ और कई पंथ कालांतर में कई महत्त्वों में बंट गए। ये पंथ परम्परा उन्नीसवीं शताब्दी तक चलती हुई वर्तमान तक आती है। राधास्वामी सम्प्रदाय की स्थापना उन्नीसवीं शताब्दी में हुई थी और प्रह्लादकुमारी तथा महर बाबा के पंथों के रूप में यह परम्परा आज भी विद्यमान है। एक ओर, पुराने पंथ (जैसे कबीर, रदास और निवनरायणों) स्थायी रह गए हैं और, दूसरी ओर, नए पंथों की स्थापना हुई। पारंपरिक सम्प्रदायों तथा इत्यादिक के सम्पर्क में, इस परम्परा ने समाजों की परम्परा का रूप लेकर वर्तमान समाज सुधार-आन्दोलन का रूप ले लिया है। इसी परम्परा में भोला में भगत आन्दोलन जन्म हिन्दुत्व की ओर उन्मुख सुधारवादी आन्दोलन का रूप लिया है।

निगुण पंथों का आविर्भाव उन आदर्शों व भावनाओं के समावेश से हुआ है जिनके मूल स्रोत बौद्धधर्म वैष्णव सम्प्रदाय, कर्णाट दशन तथा यागमार्गी गोरखनाथी पंथ जैसे धर्मों, दशनों व रहस्यवादी पंथों में हैं। सभी निगुण पंथों पर अशत उपनिषद तथा वेदांत का, बौद्ध धर्म का, अशत भारत की योग-परम्परा का, और अशत इस्लाम के सूफीवाद और भक्तिमार्ग का प्रभाव है। इनके आविर्भाव का कारण है व परिस्थितियाँ जो इस्लाम के संघर्ष के कारण भारत में उत्पन्न हुई थीं। ये पंथ वे सुधारवादी आन्दोलन हैं जिनमें बौद्ध तथा इस्लामी मजहबों का परम्परा व आधार पर, अलग-अलग सुधारवादी सम्प्रदायों का सगठित करने का प्रयास किया है। अलग-अलग सम्प्रदाय होने पर भी ये पंथ साधारणतया सम्प्रदायवादी नहीं रहते हैं, क्योंकि इनमें से अधिकतर पंथों व प्रणेताओं ने हिन्दुत्व और इस्लाम के बीच में एक अलग सामाजिक धार्मिक दशन प्रतिपादित करने का प्रयास किया है। इन सुधारवादी आन्दोलनों के सम्बन्ध में 'पंथ' और 'सम्प्रदाय' का अर्थ है उस आध्यात्मिक याग (अथवा मार्ग) से जिसके आधार पर प्रत्येक पंथ अथवा सम्प्रदाय सगठित हुआ है। निगुण पंथों में प्रत्येक पंथ इसलिए सम्प्रदाय कहा जा सकता है कि

पथ परम्परा के कुछ उदाहरण

इस्लाम की उत्प्रेरणा से आगम का उभार और नियम से उसका समन्वय न
 ता रहस्यवाद में उतना स्पष्ट है और न मानवतावादी
 वीर शव समाज भक्तिवादी आन्दोलन में, जितना कि वह वीरगव समाज,
 सिवन्व सम्प्रदाय राधास्वामी सम्प्रदाय और महाराष्ट्र धर्म की
 धारणा में निहित हिंदू राष्ट्रवादिता के जन्मुदय में स्पष्ट है। इनमें यदि,
 एक ओर जनवादी परम्पराओं का उभारने का प्रयास है तो, दूसरी ओर इस्लाम से
 लिये तत्वा को जनवादी परम्पराओं के साथ मिलाकर उनका निगमसम्मत निवचन
 करके हिंदुत्व के पुनःस्थापन का प्रयास है। वीरगव समाज गव भक्तिधारा का
 सामाजिक संस्करण है। इसका स्थापना कालाचुरि वग के राजा विज्जल (1156-67)
 के मंत्री वासव ने की थी। वीरगवों की प्रधानता वेल्गाव बीजापुर, धारवार जिला
 तथा मसूर और काल्हापुर राज्यों में है। वासव के समकालीन अल्लम प्रभु इस
 सम्प्रदाय का सबसे बड़ा सतथे और वे ही, वास्तव में, इस सम्प्रदाय के प्रणेता थे।
 कन्नड भाषा में वीरगव साहित्य की परम्परा ग्यारहवीं सदी तक पहुँचती है। गव
 होने के नाते, इस सम्प्रदाय का लग 'परशिव का ईश्वर मानते हैं और अल्लम प्रभु
 को उनका अवतार। कन्नड भाषा में अल्लम का अर्थ जल्ला का अनुचर नहीं है।
 उसका अर्थ है लिंगायत भक्त। वीरगव लिंगायत सम्प्रदाय का है और लघुलिंग की
 मूर्ति अपने साथ यथापचीन की भाँति रखते हैं। ये लोग मंदिरों में भी पूजा करते
 हैं। इनका अंतिम उद्देश्य है 'परशिव के साथ आनंद मिलन। इस मिलन के
 लिये गंगा नदी का पुत्रत्व नहीं होता है। वीरगव सम्प्रदाय के अनुसार
 पुत्रत्व उहाँ का हाता है जो भाँती है जघात जो भाव जयवा सत्कार में फल हुय
 हैं। दिनकर का अनुसार वीरगव सम्प्रदाय शक्ति विशिष्ट अद्वैतवादी सम्प्रदाय है¹।
 डॉ० ताराचंद के अनुसार, वीरगव अपने शवों का गाँड़ते हैं। श्राद्ध में उनका विश्वास
 नहीं है। वीरगव भक्त स्यासी तथा युद्धप्रिय होते हैं। इनमें बाल विवाह का निषेध
 है और तलाक तथा विधवा विवाह जायज है। इनमें जाति का महत्त्व नहीं है क्योंकि
 इनका यहाँ जन्म भी दीर्घाकार ब्राह्मण के समान हो जाता है। इनमें या,
 उपवास और तीर्थयात्रा का महत्त्व नहीं है। वीरगवों में मंदिरों और आमिष का
 निषेध है। वीरगव समाज इस्लाम का अनुकरणमात्र नहीं है। वीरगव एक उग्र
 गव सम्प्रदाय है जिसमें स्यास और रहस्य धर्म की परम्पराओं का समन्वय किया
 गया है।

सिक्ख पंथ के प्रणेता ये नानक जिहाने, जसा कि 'रहटनामा' से स्पष्ट है, खालसा धर्म (गुद्ध धर्म) की, इस्लाम और हिन्दुत्व में अलग स्थापना की। सिक्ख पंथ कबीर की तरह वन, एक और, हिन्दुत्व से अमन्युष्ट थे और दूसरी ओर, इस्लाम से। जिस प्रकार, आलवार सत्ता क पदा के सग्रह में कणवी पद्धति का निवार हुआ और नानक सत्ता के पदा में शिव-पद्धति का, वस ही नानक के पन्थे के सग्रह में सिक्ख सम्प्रदाय की नींव पड़ी। यह सग्रह सिक्ख सम्प्रदाय के पाचवें गुरु अजुनदेव ने मन माला में चार ईसवी में ग्रंथ साहिब के नाम से करवाया¹। गुरु नानक वदान की निराकारी परम्परा के मानने वाले थे। नानक का सूफी सत्ता में सम्बन्ध था। गस फरीद और गुरु नानक की गान्धी मंत्री के भी पमाण मिलते हैं। गुरु नानक बगना गये थे और बड़ा उनरी बादगार में जो मंदिर बनाया गया था, वन आज भी उनके मयदेवकी चेली की मरशता में है²। विद्वानों का एसा मत है कि उन पर सूफावाद का विगपतया ईरानी तमन्नुफ का प्रभाव है। किन्तु इतना हान पर भा उहान जिस पंथ की स्थापना का वह निराकार-वादो है और उमम ईश्वर की कल्पना इस्लाम की इश्वर की कल्पना से भिन्न है। गुरु नानक का ईश्वर निराकार पुण्य है, परमात्मा है और त्रिग के कण कण में यान्त है। मट्टि इश्वर का प्रतीक है वन ब्रह्ममय है। व ब्रह्मा, त्रिगु, महान, त्रिदश के मानत है। कम पुनजम, निवाण और माया में उनका विश्वास है। बराय साधना में उनकी आस्था थी जिस पौराणिक प्रभाव कण जा सकता है और सूफी प्रभाव भी। नानक गुरु गिण्य परम्परा के मानने वाले थे। अतः, वे सिक्ख पंथ के अन्तिम गुरु दूये हैं³। यह नानक के द्वारा चत्ताई हुई परम्परा का परिणाम है कि

- 1 यह सग्रह गुरुमुखी लिपि में किया गया था और तभी से गुरुमुखी और सिक्ख सम्प्रदाय का गद्य धन हो गया। उसे नानक और अन्य गुरुओं ने अधिकतर हिन्दी के ही शब्दों का प्रयोग किया है। उदाहरण के लिये सिक्ख धर्म-ग्रंथ में लिखा हुआ दोहा देखिये

राम कथा जग जग अटल, जो कोई गावे नैत ।

स्वगवास रघुवर कियो सगली पूरी समेत ।

- 2 सेन, भित्तिमोहन दि मैडिकल मिस्ट्रिज्म आफ इण्डिया (दिनकर से उद्धृत पृष्ठ 319)
- 3 सिक्ख पंथ में कुल मिलाकर दस गुरु हुए हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं — नानक, अंगद, अमरदास, रामदास, अजुनदेव, हरगोविन्द, हरराय, हरकृष्णराय सगवहादुर और गोविन्दसिंह। प्रत्येक गुरु अपने जीवनकाल में ही अपने गिण्य की धुनकर मनोनीत करता था। किन्तु, गोविन्दसिंह की जय सोते समय

पथ परम्परा के कुछ उदाहरण

इस्लाम की उत्प्रेरणा से आगम का उभार और निगम से उमका समन्वय न
ता रहस्यवाद में उतना स्पष्ट है और न मानवतावादी
वीर शव समाज भक्तिवादी आन्दोलन में, जितना कि वह वीरगव समाज,
सिक्ख सम्प्रदाय राधास्वामी सम्प्रदाय और महाराष्ट्र धर्म की
धारणा में निहित हिंदू राष्ट्रवादिता के अभ्युदय में स्पष्ट है। इनमें यदि,
एक ओर, जनवादी परम्पराओं का उभारन का प्रयास है तो, दूसरी ओर इस्लाम से
निये तत्वा का जनवादी परम्पराओं के साथ मिलाकर, उनका निगमसम्मत निवचन
करके, हिन्दुत्व के पुनःस्थापन का प्रयास है। वीरगव समाज, गव भक्तिधारा का
सामाजिक संस्करण है। इसकी स्थापना कालाचुरि वग के राजा बिज्जत (1106-67)
के मंत्री वासव ने की थी। वीरगवों की प्रधानता बेलगाव, बीजापुर, धारवार जिला
तथा ममूर जोर कोल्हापुर राज्या में है। वासव के समकालीन अल्लम प्रभु इस
सम्प्रदाय के सबसे बड़े मंत थे और वे ही वास्तव में इस सम्प्रदाय के प्रणेता थे।
कनड भाषा में वीरगव साहित्य का परम्परा ग्यारहवीं सदी तक पहुँचती है। गव
हान के नाते, इस सम्प्रदाय के लोग परगव का ईश्वर मानते हैं और अल्लम प्रभु
को उनका अवतार। कनड भाषा में अल्लम का अर्थ अल्ला का अनुचर नहीं है।
उसका अर्थ है लिंगायत भक्त। वीरगव लिंगायत सम्प्रदाय के हैं और लघुलिंग की
मूर्ति अपने साथ दण्डोपवीत की भाँति रखते हैं। ये लोग मन्दिरों में भी पूजा करते
हैं। इनका जन्म उद्देश्य है 'परगव के साथ 'आनन्द मिलन। इस मिलन के
त्रिय मी सा जन बाल का पुनर्जन्म नहीं होता है। वीरगव सम्प्रदाय के अनुसार
पुनर्जन्म उही का हीना है जो भाँपी है अर्थात् जा भाव जयवा ससार में फसे हुये
हैं। दिनकर के अनुसार वीरशव सम्प्रदाय शक्ति विधिष्ट जड़ तवादी सम्प्रदाय है¹।
डा० ताराच के अनुसार, वीरगव अपने गवा का गाढते हैं। श्राद्ध में उनका विश्वास
नहीं है। वीरगव भक्त स्यासी तथा युद्धप्रिय होते हैं। इनमें बाल विवाह का निषेध
है और तगव तथा त्रिषवा विवाह जायज है। इनमें जाति का महत्व नहीं है क्योंकि
इनमें यहाँ अत्यन्त भी दीक्षित हाकर ब्राह्मण के समान हो जाता है। इनमें या
उपवास और तीर्थयात्रा का महत्व नहीं है। वीरगवों में मन्दिरों जोर आश्रम का
निषेध है। वीरगव समाज इस्लाम का अनुकरणमात्र नहीं है। वीरशव एक उग्र
गव सम्प्रदाय है जिनमें स्यास और गहस्थ धर्म की परम्पराओं का समन्वय किया
गया है।

सिक्ख पंथ के प्रणेता थे नानक जिहाने, जसा कि 'रहटनामा' से स्पष्ट है, खालसा धर्म (गुद्ध धर्म) की, इस्लाम और हिन्दुत्व से अलग स्थापना की। कबीर की तरह वह एक और, हिन्दुत्व से असंतुष्ट थे और दूसरी ओर, इस्लाम से। जिस प्रकार, छालवार सत्ता के पदों से शायद पद्धति का, वैसे

सिक्ख पंथ

वर्णवी पद्धति का निखार हुआ और नायनार सत्ता के पदों से शायद पद्धति का, वैसे ही, नानक के पदों के सग्रह से सिक्ख सम्प्रदाय की नींव पड़ी। यह सग्रह सिक्ख सम्प्रदाय के पाचवें गुरु अजुनदेव ने सन सोलह सौ चार ईसवी में ग्रंथ साहिब के नाम से करवाया¹। गुरु नानक वंदात की निराकारी परम्परा के मानने वाल थे। नानक का सूफी सत्तो से सम्पर्क था। गुरु परीद और गुरु नानक की गादी मन्त्री के भी प्रमाण मिलते हैं। गुरु नानक बगदाद गये थे और वहाँ उनकी यादगार म जो मंदिर बनाया गया था, वह आज भी उनके मयदवशी चला की मरक्षता में है²। विद्वाना का ऐसा मत है कि उन पर सूफीवाण का विशपतया ईरानी तसध्नुफ का प्रभाव है। किन्तु इतना हान पर भी उन्होंने जिस पंथ की स्थापना की वह निराकार-वादी है और उसमें ईश्वर की कल्पना इस्लाम की ईश्वर की कल्पना से भिन्न है। गुरु नानक का ईश्वर निराकार गुरुप है, परमात्मा है और विन्व के कण कण में व्याप्त है। सृष्टि ईश्वर का प्रतीक है वह ब्रह्ममय है। व ब्रह्मा, त्रिप्यु महेश, त्रिदेव को मानते हैं। कम, पुनजम निर्वाण और माया में उनका विश्वास है। वराण्य साधना में उनकी आस्था थी जिसे पौराणिक प्रभाव कहा जा सकता है और सूफी प्रभाव भी। नानक गुरु शिष्य परम्परा के मानने वाले थे। अतः, व सिक्ख पंथ के प्रादि गुरु हुये हैं³। यह नानक के द्वारा चलाई हुई परम्परा का परिणाम है कि

1 यह सग्रह गुरुमुखी लिपि में किया गया था और तभी से गुरुमुखी और सिक्ख सम्प्रदाय का गठन घन हो गया। वैसे नानक और अन्य गुरुओं ने अधिकतर हिन्दी के ही शब्दों का प्रयोग किया है। उदाहरण के लिय सिक्ख धर्म-ग्रंथ में लिखा हुआ दोहा देखिये

राम कथा जुग जुग अटल, जो कोई गावे नत।
स्वगघात रघुवर कियो सगली पुरी समत।

2 सेन, क्षितिमोहन दि मेडिकल मिस्टिज्म आफ इण्डिया (दिनकर स उदघत पृष्ठ 319)

3 सिक्ख पंथ में कुल मिलाकर दस गुरु हुए हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं —
नानक, अंगद, अमरदास, रामदास, अर्जुनदेव, हरगोविन्द, हरराय, हरकृष्णराय
तगवहाबुर और गोविन्दसिंह। प्रत्येक गुरु अपने जीवनकाल में ही अपने शिष्य को धुनकर मनोमोत करता था। किन्तु, गोविन्दसिंह को जब मान मया

सिक्ख पंथ में 'बाह गुरु' का धार्मिक नारा प्रचलित है¹। यह सूफीवाद की उत्प्रेरण का प्रभाव भी हो सकता है? नाम (मकीतन) ध्यान, समाधि और योग को मानक ने महत्ता दी है। इस पंथ में जाति पाति, मूर्तिपूजा तीर्थ यात्रा, सती प्रथा गाराब और तम्बाकू का निषेध है। सिक्ख पंथ में पत्ने का भी अज्ञातमयीय समझा गया। इस प्रकार, जसा कि इस काण्ड के अन्य पंथों में है, सिक्ख पंथ में भी वराह्य साधना और गृहस्थ धर्म में समन्वय करके, एक मुलभ न्यायव्यवहारिक और जन प्रिय पंथ की स्थापना की गई। खालसा धर्म खानपान की कट्टरता का विरोधी रहा है। किन्तु सिक्ख सम्प्रदाय अपने उस सांसारिक आधार से दूर न जा सका जिस पर उसकी स्थापना हुई थी। सिक्ख सम्प्रदाय में उन्नी प्रकार से जाति पाति का प्रवेश हुआ जम हिन्दू समाज में है। निराकार के साथ साथ सारार भी जुड़ गया। गुरु गाविन्दसिंह ने किसुन विमुक्त के अस्तित्व का अस्वीकार किया पर चण्डी की स्तुति करना न भूले। उन्होंने रामकथा पर खण्ड काय लिखा है जो गाविन्द रामायण' के नाम से प्रकाशित किया गया है। मादक द्रव्यों के निषेध का भी यह रूप नहीं रखा जिस पर जार दिया गया था। सिक्ख पंथ हिन्दुत्व के ही दायरे में उपन हुआ था और उसी में रहा। हा, यह अवश्य है कि यह एक गात त्रिनम्र भावुक और निराकारी तथा भक्तिवादी पंथ के रूप में विकसित होकर सामरिकता की जार जग्रमर हुआ। इस विकास का कारण इस्लाम नहीं, धरम इस्लामी कट्टरवादिता थी। पहले सिक्ख विवाह भी सनातन ब्रह्मिक रीति में होता था। किन्तु, बाद में जग्रमो न जानक विवाह अधिनियम (Anand Marriage Act) बनाकर सिक्खों की विवाह पद्धति का अग्र्य किया। कुछ भी हा, जाज सिक्खों में जो विवाह पद्धति प्रचलित है वह सनातन पद्धति से वहा अधिक सरल है और बहुत सम्भव है वह स्लामी या इमाइ पद्धति के नमूने पर बनायी गयी हो। सिक्ख पंथ हिन्दुत्व का अंग है और वह हिन्दुत्व के ही दायरे में है। फिर भी उसमें कुछ एम तत्व हैं जो इस्लाम से लिय गये हैं और निराकार पद्धति में उनका समन्वय कर लिया गया है।

गोदावरी के किनारे एक पठान ने छुरे से घायल किया तो उन्होंने ग्रंथ साह्य को गुरु घोषित कर दिया और तभी से सिक्ख पंथ में धर्मग्रंथ को गुरु का रूप दिया जाता है। सिक्ख पंथ में ग्रंथ साहित्य की महिमा और पवित्रता तथा इस्लाम में कुरान की पवित्रता और महिमा में समानता डूढ़ना अनावश्यक ही नहीं भावक भी है।

1. बाह गुरु का नारा मध्ययुगीन भारत के अन्य पंथों में भी है। बखीर पंथों में बाह गुरु कहकर गुरु की महिमा का बखान करते हैं। किन्तु, एक व्याख्या के अनुसार 'बा' का सकेत है, वामुदेव, 'हा' का 'हरि', 'गु' का 'गोविन्द' और '३' का 'राम'।

गुरद्वारों की बनावट पर ईरानी वास्तुकला का प्रभाव है। गुम्बदों और मीनारों के कारण, गुरद्वार मस्जिद की नहीं बल्कि मस्जिद की परम्परा में आते हैं। मत्था टेकने की प्रथा इस्लामी पूजा पद्धति में अपनाई जाने वाली मत्था टेकने की प्रथा से मिलनी जुलती है।

किन्तु, सिक्ख पंथ पर पड़ने वाले मुस्लिम प्रभावों का मोद्देय विदलेयण के लिये, यह ध्यान में रखना अधिक आवश्यक है कि, एक ओर, सिक्ख पंथ की रचना भारतीय वेदांत और ईरानी तमब्युव के मिलन से उत्पन्न धार्मिक जाग्रति में हुई है तो, दूसरी ओर, इस्लामी कट्टरवादिता और तत्कालीन राजनतिक परिस्थितियां ने भी उसके विकास को प्रभावित किया है। सम्भवतः, इसी कारण सिक्ख पंथ में इस्लामी तत्वों का समावेश इस्लाम के प्रति प्रतिद्विधा और इस्लाम से रक्षा करने के कारण हुआ है। गुरु अर्जुनदेव ने जहागीर क भाई खुसरो को आर्थिक सहायता दी थी जिसके कारण जहागीर ने उह कद करके उन पर अत्याचार किये और उनके परिणामस्वरूप उनका दहान्त हुआ गया। छठे गुरु हरगोविंदसिंह ने पंथ की रक्षा के लिये सत्वार, सामरिकता और राज्यव्यवस्था का आधम लिया। औरंगजेब के राज्यकाल में, गुरु गोविंदसिंह ने इस आश्रय का पंथ का आधार बना दिया। जिस परमात्मा को गुरु नानक 'निरकार पुरुष' कहते थे गुरु गोविंदसिंह ने उनके नाम रख कर 'असिध्वज', 'महाकाल' और 'महालौह'। यही से पंथ के दो रूप 'गुरु हान' हैं— एक, सामरिकता वाला और दूसरा, सत तथा भक्तो वाला। छठ गुरु के समय से, सिक्ख पंथ में, इस्लाम की भांति, राजा और धर्मगुरु एक ही व्यक्ति में समा गये और सिक्ख पंथ खिगाफत जैसे मगठन का एक भारतीय मस्वरण-सा हो गया। यही से, विशेषतया गुरु गोविंदसिंह के समय में, कपी, कछा, कडा और कृपाण सिक्खों की वगभूषा में आ गये। 'अल्ला हा कबवर' का स्थान मत्थी अवाग ने ले लिया, हुजाल का स्थान छठके ने धीरे सम्भवतः मुसलमानों से बदला लेने के लिये ही, गुरु का नाम भक्षण, गोमास भक्षण की वृत्ति के उत्तर के रूप में निबाना गया। इस ऐतिहासिक सन्दर्भ में सिक्ख-सम्प्रदाय को न ता इस्लाम का हि दुव में प्रसार कहा जा सकता है और न मनातन धर्म की धरवी टीका ही। सिक्ख-सम्प्रदाय वेदांत तथा बुद्धवाणी सुधार-आंदोलन के आधार पर रचा हुआ इस्लाम कट्टरवादिता और

१. सेवक सिक्ख हमारे तारिख, छुनि छुनि शत्रु हमारे मारिय।
जो ही सदा हमारे पच्छा, श्री असिध्वज जी करियहु रच्छा।
म न मनेसहि प्रथम मनाऊ, किगत विगत कबहु नहि प्याऊ।
महाकाल रत्नवार हमारे, महालौह में विकरयारे।
अपना जान मुझे प्रतिपारिय, छुनि छुनि शत्रु हमारे मारिय।
गुरु गोविंदसिंह की एक कविता दिनकर से उद्धृत

सामरिकता का हिन्दूत्व रूप है। सिक्ख पंथ हिन्दू सस्कृतिकरण की प्रक्रिया का एक वह रूप है जिसमें सात्मीकरण, पुनरन्वयन, प्रतिन्या और सघप एक साथ समा गये।

उनीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जब भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना हो चुकी थी, भारत पर योरोपीय प्रौद्योगिकी तथा पूँजीवाद राधास्वामी पंथ का सघात दृढतर होता जा रहा था, बंगाल में ब्रह्मसमाज का दोलन के रूप में आधुनिक भारत का प्रस्फुटन हो रहा था एक अभिनव मार्ग की तलाश में स्वामी दयानन्द अपने गुप्त विरिजानन्द के पास निगम परम्पराओं का नव नियोजन सीख रहे थे इसाइयत का हिन्दूत्व पर आक्रमण हो रहा था और शिक्षित वर्ग में योरोपवादिता बढ़ रही थी, उस समय, आगरे में राधास्वामी सम्प्रदाय के रूप में, मध्यकालीन भारत की निगुण पंथ परम्परा का अम्युत्थान पंथ-परम्परा का विकास की एक चरम परिणति है। राधास्वामी पंथ के बाद भी पंथों का संगठन हुआ है किन्तु उनमें पंथ परम्परा के उद्विकास का वह रूप नहीं है जो राधास्वामी सम्प्रदाय में है। जिस सामाजिक आध्यात्मिक दान को लेकर पंथों के प्रणेता चल थे उसका गहनतम रहस्यवादी विकास राधास्वामी सम्प्रदाय में हुआ। कबीर की आनुभूतिक सरलता यहाँ जटिल हो गई है। राधास्वामी सम्प्रदाय, पंथ परम्परा में विकसित सम्प्रदायों में, दो रूपों में भिन्न है— एक, मध्ययुगीन आध्यात्मिक दान की पृष्ठभूमि में यह सम्प्रदाय आधुनिकता की भार उन्मुख हुआ है और दूसरा राधास्वामी सम्प्रदाय का अधिकतम प्रभाव मध्यवर्गीय जनता पर हुआ है—वह जनता जो मध्यवर्गीय है और जिसने, अंग्रेजी राज्यकाल में, सामाजिक सांस्कृतिक आन्दोलन का आगे बढ़ाया है। अंग्रेजी राज के माध्यम से पूँजीवादी प्रभावों ने यदि एक ओर मध्यवर्गीय का सामाजिक निखार दिया तो दूसरी ओर, मध्यवर्गीय के लिये सामाजिक आर्थिक विपन्नता की स्थिति भी उत्पन्न की। राधास्वामी सम्प्रदाय भी उतना ही परलोकवादी है जितना कि अन्य निगुण पंथ। किन्तु यहाँ परलोकवादिता का अर्थ सत्सार-त्याग और विज्ञान की अवहलना नहीं है। जहागीर के समय से ही आगरे में इसाइयत का प्रभाव पड़ने लगा था। समाजों (ब्रह्मसमाज, आधसमाज इत्यादि) की परम्परा इसाइयत तथा योरोपवादिता से हिन्दूत्व की रक्षा करने के प्रयत्न में विकसित हुई जिसके प्रणेता मध्यवर्गीय से भाये हैं। ऐसी परिस्थिति में, राधास्वामी सम्प्रदाय मध्यवर्गीय जनता में, मध्ययुगीन पंथ परम्परा का पुनरन्वयन के रूप में आया। राधास्वामी सम्प्रदाय का शहरो में ही केंद्रित रहना इस तथ्य का कारण भी पुष्टि करता है। अन्य पंथों के धर्मगुरु अधिकतर भाग्यशायत वर्ग से आये हैं जबकि इस पंथ के गुरु शिक्षित वर्ग से।

राधास्वामी सम्प्रदाय के घादि प्रवक्ता हजूर राधास्वामी दयालु उर्फ स्वामीजी महाराज, जिनका जन्म का नाम गिबर्न्यालसिंह था आगरे के एक क्षत्री परिवार

म गन् अठारह सौ अठारह म जमे थे । श्री गिबदयालसिंह उग्रभग पद्वह मात् तक 'मुरत शब्द योग' की साधना करत रह और सन अठारह सौ साठ विनमी सम्पत उनीस सौ सत्रह म, वस त पचमी व दिन उहोने एक सावजनिक सभा म भाषण करके अपने सम्प्रदाय वा प्रतिपादन किया । सन् अठारह सौ अठत्तर म श्री गिबदयालसिंह की मृत्यु के बाद से इस सम्प्रदाय की उत्तरी भारत म अलग अलग गढ़िया स्थापित हुानी रही । सन् अठारह सौ अठानव म जब इस सम्प्रदाय के दूसर गुरु राम गालिग्राम बहादुर की मृत्यु हुई तब इस सम्प्रदाय की ध्यास, तरनतारत और दिल्ली म तीन अलग-अलग गढ़िया स्थापित हा चुकी थी । सन उनीस सौ सात म, जागर म ही दयालबाग की एक जलग गद्दी स्थापित हुई । उमी साल बगाल के पबना जिले म ठाकुर अनुकूलचन्द्र चक्रवर्ती ने एक अलग गद्दी की स्थापना की और सन उनीस सौ तेरह म मैयाजी पंडित योगेशचन्द्र मिश्र तिवारी ने बनारस म एक अलग राधास्वामी सम्प्रदाय की गद्दी की स्थापना की । इस समय इस सम्प्रदाय की असरी गद्दी के सिवा, मान अलग-अलग गढ़िया हैं ।¹

राधास्वामी सम्प्रदाय एक सामाजिक-आध्यात्मिक मम है, जिसका विकास मध्यकालीन भारत की निगुण भक्ति परम्परा की विचारधारा की पृष्ठभूमि म हुआ है । राधास्वामी सम्प्रदाय का एक आधार मध्यकालीन भारत के सामाजिक सुधार आंदोलन की विचार प्रणिया है और दूसरा वह आध्यात्मिक दान प्रणाली, जिसका प्रणयन इस सम्प्रदाय के प्रणता श्री गिबदयालसिंह न किया है । जैसाकि सभी निगुण सम्प्रदाय म पामा गया है, राधास्वामी सम्प्रदाय म भी जाति पाति के सामाजिक बंधना की निरसार बनाया गया है और तीर्थाटन, व्रत, मंदिर मूर्ति पूजा और जप वा निषेध किया गया है । राधास्वामी सम्प्रदाय के सामाजिक मंगटन वा मूलाधार गुरु परम्परा है । आध्यात्मिक ज्ञान गुरु के द्वारा ही प्राप्ति जाता है । "सीलम

1 गोड, रामदास हिंदुव

बदखाल, पीताम्बर दत्त हिंदी काय में निगुण सम्प्रदाय पृष्ठ 102

- 2 राधास्वामी मत के प्रणता गिबदयाल का कहना है कि 'गिब्य की चाहिये कि गुरु के चरणों को दबावे, उसे पक्षा करे, उसका आटा पीने, पानी भरे, नाबदान साफ करे, घोड़े के लिये मिटटी लाये उसे दातून करावे, हाथ घुलावे, उसका पनाब के पात्र को घोड़े, नहलावे, गरीर पोछे, पाती पहनावे, घोना-अगोला साफ करे, बाल झाड़ दे, कपड़े पहना दे, ललाट पर टीका कर दे, रसोई बनाकर परस दे, टूटका भर दे, तेज लगा दे, पीरदान लेकर उसे पीक करावे, उसका किया हुआ पीक म्यय पी जाय, सक्षेप में, उसे चाहिये कि अपने गुरु की सेवा सभी प्रकार से करे । अपने गुरु के लिये नीच से नीच काम भी बिना किल्मस करे और उसकी आज्ञाओं का पालन करे' । तन, मन और धन से गुरु की सेवा, गिब्य का परम कतम्य है—बदखाल कहा पृष्ठ 210

इसम सत्सग पर जोर दिया गया है। सत्सग दो प्रकार का माना गया है—एक, बाह्य और दूसरा अतमस्वी। बाह्य सत्सग म गुरु के साथ सत्सग और निगुण के नाम सकीतन पर जोर दिया गया है और अतमस्वी सत्सग म जम्यास (योगाम्यास) तथा ध्यान द्वारा परमात्मा मे समाधिस्थ होने पर।

निगुण पथियो ने निर्गुण परमात्मा की कल्पना पुरष के रूप मे की है और उसी क प्रति भक्ति की प्रेरणा दी है। निगुण पथ सहज ज्ञान की परम्परा के आधार पर विकसित हुए हैं। सहज ज्ञान की परम्परा दगन से परे अनुभव और साधना द्वारा ब्रह्म तक पहुचने की परम्परा है। अनुभव के द्वारा ब्रह्म अथवा पुरष तक पहुचने के विचार ने भक्ति ध्यात और नाम सकीतन की परम्पराका जो जन्म दिया और साधना के विचार ने यागिक विचारो तथा अभ्यासो का। सहज ज्ञान की परम्परा पर आधारित, राधास्वामी सम्प्रदाय, एक बार गृद्ध भक्ति माग है और, दूसरी ओर एक प्रकार का सुधारवादी पथ जिसम मध्यकालीन भारत की समाज सुधार परम्परा क साथ साथ प्राचीन यागमत का सुधार तथा सरलीकरण हुआ है। परमात्मा (पुरष) की भक्ति और उसमे लय हाने की तालसा राधास्वामी मत के आध्यात्मिक दशन का निचोड है।

बडधवाल के अनुसार, निगुण पथ म पहले परमात्मा को कल्पना पुरष के रूप म की गई और उस निरजन की धारणा प्रदान की गई, किन्तु कालांतर म, परमात्मा को निरजन स ऊपर समझा जाने लगा और परमात्मा को बाल पुत्र्य की सत्ता दी गई। शिवनारायणी सम्प्रदाय (जिसका प्रभाव पूर्वी उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जिले के भास पास अधिक है) के प्रणेता शिवनारायण के अनुसार शब्द से निरकार का जन्म हुआ जिसने त्रहाड और जोवा की रचना की और उह मोह की फास स बाधा^१। राधास्वामी सम्प्रदाय म भी निरजन का सृष्टि का कर्ता माना गया है लेकिन स्वयं निरजन ही सृष्टि का कारक नहीं है। यहाँ सर्वोत्तम सत्ता राधास्वामी दयालु की है जिनकी मौज के कारण और माया क सत्सग से सृष्टि का निर्माण निरजन करता है। बडधवाल के मत मे, निगुण सम्प्रदायो म परमात्मा की पर से पर ले जाकर रखन की प्रवृत्ति रही है। राधास्वामी सम्प्रदाय क प्रणेता शिवदयाल ने परमात्मा को राधास्वामी क नाम स अभिहित किया किन्तु उनके अनुयाइयो ने उस काफी ऊपर पहुचा दिया और उसके नीचे अनक पुरषो को कल्पना की। निरजन और राधास्वामी क बीच क्रमश ब्रह्म, परब्रह्म, सोहम (सोहम), पुरष सत्य पुरष, अलख पुरष और अज्ञम पुरष (अनामी पुरष) हैं^२। निरजन इस लाक का सृष्टिकर्ता और मालिक है तथा उसके ऊपर के अज्ञम पुरष क्रमग अलग

१ बडधवाल यही पृष्ठ 102

२ यही पृष्ठ 143

अलग लोको के मालिक है। राधास्वामी का लोक परमधाम है और राधास्वामी सबका मालिक है। शिवदयाल ने एक स्थान पर राधास्वामी दयाल से कहलाया भी है कि 'अगम, अलख और सत्य पुरुष मेरा ही पूण रूप है'। यह विचारधारा परमतत्व की कल्पना का प्रयास है जो निर्गुण पंथियों की एक विशेषता रही है और जिसका राधास्वामी सम्प्रदाय में चरम विकास हुआ है।

राधास्वामी सम्प्रदाय में, 'राधास्वामी' शब्द निर्गुण परमात्मा का प्रतीक है और परमात्मा के नामस्मरण का माध्यम है। इस मत में नामस्मरण की जावन में प्राणा के समान महत्ता है। अधिकतर निर्गुणियों ने स्मरण के लिये राम शब्द को पसन्द किया किन्तु शिवदयाल ने राधास्वामी शब्द को पसन्द किया। राधास्वामिया के अनुसार, राधास्वामी शब्द कबीर से ग्रहण किया गया है। उसके प्रमाण में कबीर की वह साखी¹ उद्धृत की जाती है जिसका अर्थ यह किया जाता है कि सतगुरु ने अगम से आती हुई धारा का प्रत्यक्ष कर दिया, उसे उलटकर स्वामी के साथ मिला दो और उसी का मुमिरन करो। जसाकि राधास्वामिया का मत है, धारा को उलट देने से 'राधा' शब्द बना उसको 'स्वामी' के साथ जाड़ दन से 'राधास्वामी' शब्द बना जिसका मुमिरन की प्रेरणा कबीर की साखी में की गई है।

राधास्वामी सम्प्रदाय की आध्यात्मिक दृष्टान परम्परा में जिसमें सहज योग का भी पुट है 'राधास्वामी' शब्द और उससे सम्बन्धित धारणा का और भी महत्व है। इस सम्प्रदाय के प्रणेता शिवदयाल के मत में शब्द ही सबका आदि और अन्त है। जहाँ परमात्मा सगुण नहीं निर्गुण है वहाँ शब्द से ही परमात्मा का आभास होता है और इसी कारण, सभी निर्गुण पंथियों ने 'ग' की महिमा पर जोर दिया है। राधास्वामी सम्प्रदाय में 'राधास्वामी' शब्द ही परमात्मा और उसके विभिन्न रूपों का प्रतीक है। राधास्वामी का निवास 'अगमपुरण' में भी ऊपर है। अतः, राधास्वामी कुल का मालिक वा है किन्तु वहाँ शब्द निहायत गुप्त है। इसी आदि शब्द से 'सत्य पुरुष तथा साहम' के शब्द प्रगट हुए। इससे त्रिलोक्य सृष्टि का आधार परब्रह्म 'ग' की उत्पत्ति हुई। उसी से उत्पन्न होने वाला चौथा शब्द ब्रह्म शब्द है जिससे सूक्ष्म ब्रह्माण्ड और ईश्वरी माया प्रगट हुई। उसी आदि ब्रह्म 'ग' से त्रयस्र माया, विराट पुरुष, जीव और मन का शब्द प्रगट हुए। इस प्रकार, राधास्वामी विचारधारा में आदिसत्ता अगम से भी पर है और 'ग' ही उसका प्रतीक है। आत्मिता और आत्मी शब्द 'राधास्वामी' है। सृष्टि की रचना में प्रवाह म्यूंस से सूक्ष्म की धार हुआ है। इसी धारा का उलटकर जब साधक स्वामी तक पहुँच जाता है तब वह राधास्वामी का प्राप्त होता है।

1 कबीर धारा अगम की, सतगुरु हुई लखाय।
उलटि ताहि मुमिरन करो, स्वामी सग लगाय ॥

रामदास गौड़¹ ने राधास्वामी सम्प्रदाय की आध्यात्मिक दार्शनिक विचार धारा का जो निबचन प्रस्तुत किया है उससे राधास्वामी शक्ति का एक और जटिल स्पष्ट होता है। राधास्वामी सम्प्रदाय में राधास्वामी परमात्मा का प्रतीक है और शक्ति राधास्वामी का प्रतीक। जीवात्मा के लिये राधास्वामी साहित्य में मुरत शक्ति का प्रयोग हुआ है। मुरत (जीवात्मा) और राधास्वामी (परमात्मा) मूलरूप में अवश्य एक हैं किन्तु विस्तार अथवा महत्ता में नहीं। 'मुरत' प्रमस्वरूप है किन्तु 'राधास्वामी' प्रेम का भण्डार है। राधास्वामी (परमात्मा) 'मुरत' (जीवात्मा) का जपन से वियुक्त कर 'कालपुरूप' (यम) का सीप देता है ताकि राधास्वामी दयालुता की दयालुता का उसे पता चल जाय। प्रमस्वरूप होने के कारण, मुरत (जीवात्मा) प्रमत्तया दयालुता के भण्डार राधास्वामी, जिनका प्रतीक केवल शब्द है, की ओर उन्मुख है। 'मुरत' का शब्द की ओर प्रवृत्त करने में साधक का कल्याण है। रामदास गौड़ के अनुसार, आदि 'शक्ति' कुल का कर्ता और स्वामी है और आदि 'मुरत' वा जीव का नाम राधा है। इन्हीं का नाम मुरत और शक्ति है और जब इनकी धारा नीचे आई तब इसी आदि शक्ति में और शक्ति, तथा आदि मुरत से और 'मुरत' और शक्ति से 'मुरत' तथा 'मुरत' से 'शक्ति' बराबर प्रगट होत जाये और अपनी अपनी जगह पर स्थिर हुए। इस दृष्टिकोण से राधास्वामी उस अवस्था का प्रतीक है जिसमें राधा (जो मुरत) और स्वामी (परमात्मा आदि शक्ति) एक में मिल जाते हैं।

राधास्वामी शक्ति का कुछ भी प्रतीकात्मक अर्थ किया जाय यह निर्विवाद है कि राधास्वामी सम्प्रदाय की आध्यात्मिक दार्शनिक विचारधारा में एक और मुरत-शक्ति योग का पट्ट है और दूसरी ओर विशिष्टाद्वैत का। वह याग जिसके द्वारा 'मुरत' एवं शक्ति का संयोग सिद्ध होता है और उक्त सीमाय शक्ति में फिर लीन हो जाती है। यह याग अथवा मुरत शक्ति योग कहलाता है और वह शक्ति सब प्रथम भगवत् नाम के रूप में मुह से निकलता है और शक्ति में स्वयं शक्ति प्रकट हो जाता है। इसे सहजयाग भी कहा जाता है क्योंकि इसकी सहायता से भी प्रत्यभिज्ञान का उदय होता है। राधास्वामिया की साधना में हठयागिया की सी आध्यात्मिक आरोहण की प्रवृत्ति पाई जाती है। राधास्वामी साहित्य में 'गूय' और 'महागूय' शक्ति के प्रयाग आये हैं। बडध्वज के अनुसार इन शक्तियों का प्रयाग उन स्थानों के लिये किया गया है जहाँ किसी का निवास स्थान नहीं है और जिनमें प्रत्येक साधक का जपना याना में अग्रसर होना पड़ता है। ये विचार, जमी कि सम्भावना है पश्चात्तिक धर्म और बौद्ध धर्म से जाय हैं।

1 गौड़, रामदास हिन्दुत्व पृष्ठ 717

2 बडध्वज वही पृष्ठ 229

राधास्वामी सम्प्रदाय का दार्शनिक आधार विशिष्टाद्वैती है¹। इस दर्शन में, जगत के उपादान स परमात्मा (राधास्वामी) का अलग रक्खा गया है और 'राधास्वामी', 'सुरत' और सृष्टि की मूल आधार 'माया', तीना को अनादि माना गया है। राधास्वामी की भोज स उत्पन्न तथा काल क वशीभूत हाकर 'सुरत' (जीवात्मा) राधास्वामी से भिन्न हाता है और 'राधास्वामी' को दयालुता का भान होत हो, 'सुरत' परमात्मा के सानिध्य में पहुच जाता है। शिवदयाल इस बात का मानते हैं कि जीवात्मा का अन्तत परमात्मा में निवास है लेकिन वह यह नहीं मानते कि जीवात्मा पूण ब्रह्म है। उनके अनुसार, जीवात्मा भी परमात्मा है भ्रवश्य किन्तु पूण नहीं। जीवात्मा भ्रशी है और परमात्मा भ्रश, ब्रह्म ही जैसे बूद और समुद्र। शिवदयाल के अनुसार, बूद (आत्मा, सुरत), समुद्र (परमात्मा राधास्वामी) में समाकर एक नहीं हो जाती। सागर में जलराशि का वह परिमाण, जो भाप होकर कभी नहीं उडता, राधास्वामी है और जो बूद प्रतिफल उसमें उडती तथा उसमें मिश्रता रहती है, वे 'सुरत' है। सुरत हपी बूदें देवन में तो अवश्य सागर की जल राशि (राधास्वामी) से मिल जाती है किन्तु वे रहती वहा ही हैं चाहे हम उह दख पावें या न देख पावें। मुक्त सुरत (जीवात्मा) की अलग सत्ता विलुक्त नष्ट नहीं होनी। शिवदयाल के अनुसार, सुरत भी अनादि है और इसीकारण मुक्त सुरत राधास्वामी के साथ सायुज्य मुख भोगा बरत है और अनन्तकाल तक उनकी धरण में विधाम पात है²। इसीप्रकार राधास्वामी विचार में माया भी अनादि है। राधास्वामी लोक से ऊपर अलख लोक तक माया का निवास नहीं है। माया के दो रूप है—एक 'गुड' अथवा सूक्ष्म और दूसरा, प्रबल अथवा स्थूल। माया क गुड रूप की मालिक की गनित उस इतना सूक्ष्म तथा 'गुड' बना दती है कि वह भी सत्य लोक में निवास करती है वहा प्रलय³ की पहुच नहीं है। सत्य लोक में प्रमदा नीचे आत-आते, निरजन लोक में पहुच कर, माया अत्यन्त स्थूल हो जाती है और नीचे के लोकों में उसका स्थूलता बढ़ती जाती है। नीचे के लोक प्रमदा ऊपर के लोकों में घरे में है क्योंकि बिना सूक्ष्म चेतन-तत्व क माया भी नहीं रह सकती⁴।

1 जीव और परमात्मा की अलग अलग सत्ता का प्रतिपादन और भोज की सायुज्य न मान करके सानिध्य की अवस्था मानना विशिष्टाद्वैती दर्शन का मूलधार है। विशिष्टाद्वैत के आधार हिन्दुत्व में है किन्तु उसका उद्भव इस्लामी उत्प्रेरणा में है।

2 शिवदयाल, पीताम्बरदत्त वही पृष्ठ 123

3 राधास्वामी सम्प्रदाय के विचार में प्रलय स्थूल का सूक्ष्म में प्रविष्ट होता है।

4 वही पृष्ठ 140

राधास्वामियो का आध्यात्मिक उद्देश्य है परमपद की प्राप्ति । जहाँ केवल सत्यनाम है, वहाँ विचार का कोई काम नहीं । शिवदयाल के अनुसार जिन लोग ने विचार किया उहाने बाखा खाया और सागर को छोडकर बूद म समा गये¹ । यहाँ विचार और तब नहीं वरन् प्रपत्तिमयो जास्था की आवश्यकता है जिमकी ली को निरतर प्रज्वलित रखन क लिय सत्यनाम के निरतर स्मरण की आवश्यकता है । यहाँ स्मरण जब नहीं वरन सुरत द्वारा राधास्वामी की आर प्रवन् हाने का निरतर ध्यान है जिसके लिए सुरत शब्द याग सवसुल्भ सट्टज माग है । यही से राधास्वामिया म कीतन की महत्ता का अम्पुदय होता है । निगुण एवेररवादी हाने के कारण, राधास्वामी सम्प्रदाय अवतार विरोधी है और जसाकि सभी निगुण सम्प्रदायवादियो ने माना है, शिवदयाल भी मनुष्य को परमात्मा मानने के पक्ष म नहीं है । बडध्याल के अनुसार, राधास्वामी सम्प्रदाय मध्यममार्गी सम्प्रदाय है । यहाँ जगत का अस्तित्व केवल सापेक्षिक दष्टि से है और यह सापेक्षिक अस्तित्व तब नष्ट हो जाता है, जब अन्तिम सत्य का आभास हो जाता है । सभी निगुण सम्प्रदायो की भाति, राधास्वामी सम्प्रदाय की आध्यात्मिक आशक्ति विचारद्वारा म ससार से उपर उठने की भावना की अभिव्यक्ति मिलती है और सामाजिक एकता एव वग तथा जातिगत समानता का विचार पाया जाता है । कबीर की भाति शिवदयाल भी सत्यास तथा ससार त्याग के विरोधी है । जसाकि बडध्याल ने लिखा है 'शिवदयाल आधुनिक साधुओ की उनके परिवार, उद्याग धधादि त्याग करन तथा व्यय घुमक्कड़ जीवन पत्तीत करने के कारण भक्तना बिया करने थे । शिवदयाल के अनुसार श्रम के साथ नीचता का कोई सम्बन्ध नहीं और उद्योग मे कोई दोष नहीं यदि उमे कोई करना जान जाय । उम श्रम म उल्लास भरा रहता है जा ईश्वर के लिए बिया जाता है² । व्यक्तिगत तथा सामाजिक नतिक नियमो क प्रतिपादन तथा उनक आधार पर मघ सगठन की प्रवृत्ति राधास्वामी सम्प्रदाय म ही नहीं वरन् सभी निगुण सम्प्रदायो म पाई जाती है जिसके प्रेरणाग्रान सम्भवत बुद्धवाद तथा इस्लाम मे है ।

1 बडध्याल वही पृष्ठ 154

2 यही पृष्ठ 207

महाराष्ट्र धर्म

महाराष्ट्र धर्म के प्रणेता थे गुरु रामदास जीर उसका व्यावहारिक रूप देने वाले थे शिवाजी जिहान, शास्त्रों की मायताओं के अनुसार, हिंदू स्वराज्य स्थापित करने का प्रयास किया। महाराष्ट्र में गुरु रामदास और शिवाजी का अभ्युदय उस सामाजिक सांस्कृतिक प्रक्रिया की परिणति है जो भारत में मुसलमानों के राजनतिक उत्थान और प्रसार के साथ साथ चली रही। भारत में ज्यों ज्यों मुसलमानों का राजनतिक प्रसार हुआ, त्यों त्यों मुसलमानों का विरोध और हिंदुत्व के पुनरुत्थान का प्रयास करने हुए हिंदुत्व के प्रतिष्ठापाक पूरव ओर दक्षिण की ओर सिमटत गए। पञ्चराज चौहान की हार के बाद, देवगिरि के यादवों और बंगाल के मेन राजाओं ने इस्लाम के प्रसार का रोकने का प्रयास किया। उसके बाद विजयनगर के रायो (1340-1640) ने इस्लाम के प्रसार को रोकत हुए, हिंदू राज्य के पुनरुद्धार का प्रयास किया। माता की ओर से देवगिरि के यादवों और पिना की ओर से विजयनगर के हिंदू शासकों की परम्परायें शिवाजी में सन्निहित हो गई थी। ज्यों ज्यों इस्लामी कठोरता बढ़ी त्यों त्यों हिंदुत्व के भी आन्तमक संस्करण प्रादुर्भूत होते गए। पञ्जाब में सिक्ख पंथ का अभ्युदय हुआ जिसमें इस्लामी कठोरता के प्रति प्रतिक्रिया थी। इसी प्रतिक्रिया ने, आगे चलकर, पञ्जाब में आय समाज को जन प्रियता दी। बंगाल में भक्ति आन्दोलन शक्ति की उपासना में लीन हो गया, जिसका पृष्ठभूमि ने आगे चलकर बंकिम में 'वन्दे मातरम्' का रूप लिया तथा रामकृष्ण परमहंस और रवीन्द्र ने मानवतावादी हिंदू पुनरुत्थान का। ज्यों ज्यों भारत में इस्लाम का प्रसार बढ़ा, मुसलमानों की राजनतिक प्रभुता और कठोरता बढ़ी, भारत में प्रियेपनया हिंदुओं में गीता के संदेश सभवाभि युगे युगे और 'अभ्युत्थान अधमस्य तदात्मान मजाम्यह' में विश्वास बढ़ा। तुलसीदास ने इस विश्वास को काव्य प्रबन्ध के रूप में व्यक्त किया। रामायण में यह आस्था बनी कि जब-जब धर्म का ह्रास होता है, धर्म की संस्थापना के लिए अवतार आता है और अवतार के द्वारा निगमागम सम्मत हिंदू धर्म की पुनः स्थापना होती है। राम तथा कृष्ण की भक्ति से ओत प्रात, इस काल की कविता युगावतार के माध्यम से उद्धार पाने की जन भागा का प्रतिबिम्ब है। निगुण भक्ति धारा की कविता में ईश्वर की शृपा से कष्ट से प्राण पान का विश्वास है। इस्लाम से लड़ा लने वाले राजाओं में इस काल की हिंदू जनता ने, दण्ड और युगावतार का आभास देता। विजयनगर राज्य के संस्थापक युवरा प्रथम का वधन एक उस दिव्य पुरुष के रूप में किया गया है जिसने, मसार का म्लच्छ से उद्धार करने के लिए, ईश्वर अवतरित हुआ है। विजयनगर राज्य का संकालीन जनकाय युगावतार की कल्पनाओं और अभिव्यक्तियों से ओतप्रोत है। गुरु रामदास ने भी युगावतार की कल्पना की थीर

उसे शिवाजी म मयादित किया¹ । अततोगत्वा युगावतार के द्वारा धम (हिंदू धम) की विजय होती है हिंदू जनता इस विश्वास स चिपटी रही ।

चाणक्य तथा मीर्यों के समय से चली आने वाली धम विजय की यह भावना जिसस हिंदुत्व सराबोर है और जा हिंदुत्व म निहित समाज तथा ससृति को अपने मे समेटे हुए है इस्लाम के विरुद्ध उठने वाली प्रतिश्रिया न कारण, शिवाजी के माध्यम से, महाराष्ट्र मे हिंदू राष्ट्रवादिता क रूप म प्रस्फुटित हुई । जिस ऐतिहासिक प्रश्रिया न सिक्ख सम्प्रदाय का जन्म दिया उसी ने महाराष्ट्र धम को भी जन्म दिया । सिक्ख धम क प्रणेता य गुरु नानक और महाराष्ट्र धम के प्रणेता ये गुरु रामदास । सिक्ख धम के क्रियात्मक रूप य गुरु गाविर्दसिंह और महाराष्ट्रधम के छत्रपति शिवाजी । दोनों हिंदुत्व की प्रेरक 'चरखेति की धारणा स प्रेरित ये । सिक्ख सम्प्रदाय का आधार या हिंदुत्व म इस्लाम का समन्वय और लोहे स लोहा काटने तथा विष स विष दूर करने का प्रयत्न । किंतु महाराष्ट्र धम हिंदुत्व के सनातन पराक्रमी और दिग्विजयी रूप का एक विकास था । शिवाजी इस्लाम की कटकरता के विरुद्ध उठने वाली किसी प्रतिश्रियात्मक प्रश्रिया की उत्पत्ति ही नहीं हैं । शिवाजी का उद्देश्य था 'धम राज्य तथा हिंदवी स्वराज्य की स्थापना—वह धम तथा स्वराज्य जा येर्ण, स्मृतियों और नीति शास्त्रा म प्रतिपादित है, जिससे ब्राह्मण, वेदो तथा गऊ की रक्षा हो जो पराक्रम और दिग्विजय की भावना पर आधारित है, जिसके लिए चद्रगुप्त तथा स्कन्दगुप्त ने प्रयत्न किया तथा जो सनातन हिंदुत्व की आत्मा है । शिवाजी उस परम्परागत सनातन धम के पुनसंस्थापक ये जो बाह्य प्रभावा म पराजित नहीं होता है वरन् उह आत्मसात करता है या उनके समन्वय अपने 'बड़े चला बने चला के रूप को लवर समयानुकूल पुन अवतरित होता है ।

मुगल कालीन भारत की परिस्थितियों मे शिवाजी हिंदुत्व के सनातन विकास का एक माध्यम थ । इस्लाम के प्रवेश के समय से हिंदुत्व न प्रयत्न विकास का जो प्रश्रियायें प्रारम्भ हुई थी व नकर, रामानुज और तुलसी म हाती हुई गुरु रामदास म केन्द्रित हाकर शिवाजी के कार्यों म प्रस्फुटित हुई । शिवाजी ने जो लडाइयाँ लड़ीं उनका उद्देश्य था धम विजय । व इस्लाम और मुसलमाना के वही तक विरोधी थे जहाँ तक व धम विजय और धम राज्य की स्थापना म बाधक ये । शिवाजी की धम विजय वही धम विजय है जिसका वणन नीतिशास्त्रो म है । शिवाजी मानवतावादी तथा हिंदूराष्ट्रवादी थ । उनकी भाषा मनुस्मृति और नीतिशास्त्र की भाषा थी । वे हिंदूकरण के हामी थ पर साम्प्रदायिक नहीं थे जाति तथा वर्णाश्रम धमों के प्रतिष्ठा पापक ये ममदानी का भावना स प्रेरित ये तथा सामाजिक चलिप्युता (Social Mobility) के हामी थे । शिवाजी ने गौवध का विरोध किया, राजव्यवहारकोश—

जिसमें प्रशासन के काम आने वाले फारसी के शब्दों के संस्कृत पर्याय हैं—का मग्रह करवाया पुरान किला के संस्कृत नाम रक्व^१, मराठी से फारसी के प्रभाव का दूर करने का प्रयत्न किया, प्राचीन हिंदू-परम्पराओं को प्रोत्साहित किया और वण व्यवस्था के सिद्धान्तों के आधार पर सामाजिक चलिष्णुता का प्रात्साहित किया। महात्मा बुद्ध ने जिस परम्परा को चलाया था वह शिवाजी के समय में भी चलती रही। सनातन माध्यम से अनेक निम्नस्तरिय जातियों का उच्चतर सामाजिक स्तर प्राप्त हुआ गया। राज्याभिषेक के समय स्वयं शिवाजी का क्षत्रिय घोषित किया गया यद्यपि वे क्षत्रिय नहीं थे।

जिस सामाजिक पृष्ठभूमि में शिवाजी जन्मे थे उसका प्रणेता था गुरु रामदास और महाराष्ट्र के अग्रमंत कवि जिहान जनभाषा में धर्मोद्धान के लिए जन जागृत्त किया। उन्होंने पहल जनता का मन इस विश्वास से भर लिया कि तत्कालीन समाज धर्म से दूर था उसे धर्मोन्मुख बनाने के लिए युगावतार हाने वाला था और बाद में शिवाजी में तत्कालीन युगावतार का प्रतिराषण किया। इस दिशा में गुरु रामदास अग्रणी हैं। उन्हें शिवाजी का प्रेरक माना जाता है। गुरु रामदास ने, एक आर, दाम बाप (1608-1681) का रचना की ता, दूसरी ओर, अपनी रचनाओं में जान-द-वन भुवन की कल्पना के द्वारा एक भावी आदम-समाज की धारणा रखी। जान-द-वन भुवन रामदास का एक स्वप्निल मसार है, जहाँ जनता म्लच्छ दैत्य से पाठित है। इस दैत्य का संहार करने के लिए मुग्धा का अवतार हाता है। म्लच्छ दैत्य के मृत्यु हा जान पर, जान-द-वन भुवन में पापिया और नास्तिका का नी नाग हा जाता है और स्नान सध्या जप-तप स्वधर्म प्रम और जान-द की गौरवमयी प्रवानता स्थापित हाती है। जान-द-वन भुवन हिंदुत्व के पुर्ननिर्माण के आवाहन में रचा गया एक ऐसा रूपक है जिसके द्वारा शिवाजी के उत्था के लिए एक सामाजिक मानसिक पृष्ठभूमि तयार का गई थी। जान-द-वन भुवन भविष्यत पुराण का तत्कालीन संस्करण है और शिवाजी को युगावतार मनवान का एक प्रयास।

गुरुरामदास ने बार-बार इस बात पर जार दिया है कि म्लच्छ राज्य की प्रबलता के कारण द्विजकुल का पीडा हा रही है^२। अतः, उमका अत हाता चाहिए। अधम के प्रतीक म्लच्छ राज्य के विनाश और धर्म के उद्धान पर उद्धाने जार दिया है। उनके अनुसार, शिवाजी अधम का विनाश तथा धर्म का उद्धान करने के लिए उत्पन्न एक अवतार है^३। गुरु रामदास और महाराष्ट्र के अग्र सन्ता ने तत्कालीन

१ सरवार, विनयकुमार वही पृष्ठ 508-509

२ म्लच्छ राज्य ह्य लो प्रबल, पीडा पावनी द्विजकुल।

३ यह गुरु रामदास का ही प्रभाव था कि शिवाजी की बार-बार अवतार कहा गया है। शचात्र प्रमान-द ने अपने 'शिव भारत' नामक महाकाव्य में शिवाजी

समाज को कलियुग कहा है और औरंगजेब के राज्य को पाप तथा अधर्म का प्रतीक माना है। सम्भवतः, यही कारण है कि अपनी का-याभि यावित्तयो म गुरु रामदास न औरंगजेब को 'औरंग्यापापी' कहकर सम्बाधित किया है। यहा पर यह ध्यान देने योग्य है कि उनका विद्वेष औरंगजेब, उसके राज्य और उसके द्वारा चलाए हुए अरबी फारसीकृत इस्लाम के प्रति है न कि इस्लाम के आधारभूत सिद्धांतों के प्रति। गोबध, वण व्यवस्था तथा जाति व्यवस्था के परित्याग को उन्होंने कलियुगी प्रभाव माना और उनके पुन संस्थापन की आवश्यकता की जोर लगा का ध्यान आकर्षित किया। गुरु रामदास ने एक बार, हिंदू राज्य के शत्रुओं को नष्ट करने का आवाहू किया तो दूसरी बार, हिंदू सभ्यता की दिग्विजय पर जोर दिया। किंतु, तत्कालीन परिस्थितियां में, इन दो उद्देश्यों की पूर्ति का जय था हिंदू राज्य का प्रसार क्योंकि उस काल की विचारधारा में, धर्म, सभ्यता और राज्य एक ही में समाए हुए थे। आनंदवन भुवन और सुरेशावतार की कथा इसी उद्देश्य की पूर्ति की का-यात्मक तथा प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति थी। शिवाजी में मुगावतार की धारणा के प्रतिरोपण के पीछे इसी उद्देश्य की पूर्ति का प्रयास है। गुरु रामदास ने जिस पुनजागरण का शब्द फूका उसका एक रूप है आनंदवन भुवन में और दूसरा गुरु रामदास के दूसरे प्रथम दास बोध में जिसमें भक्ति राजयोग, तमोगुण, दुख मृत्यु ब्रह्म, माक्ष, आत्मा, अनात्मा और युगधर्म का वर्णन है। दास बोध वस्तुतः पान भक्ति कमयाग का उपदेग है। यदि आनंदवन भुवन भविष्यत पुराण का एक संस्करण है तो दास बोध गीता का एक मराठी संस्करण। ऐसा कहा जाता है कि दास बोध उस उग्र हिंदू राष्ट्रवादिता का दान है जिसका उपदेग गुरु रामदास ने दिया है और शिवाजी के कृत्य जिसके व्यवहारिक रूप हैं। गुरु रामदास और शिवाजी ने हिंदुत्व को पुन सांस्थागत पुन संगठन की ओर मोड़ा।

को विष्णुपुत्र कहकर उनका देव, ब्राह्मण तथा गोरक्षक और यवनो का भक्त करने वाले (देवद्विजगवामगोप्ता, दुरदा यवना त्क) के रूप में उनका वर्णन किया है। शिवाजी को क्षणिक वर्ण में लाने वाले और उनका राज्याभिवेक धराने वाले गंगा भट्ट के अनुसार, शिवाजी यवनाधिपति औरंगजेब से प्रस्त विप्रों का उपार करने वाले, एक नए अवतार (औरंगजेब यवनाधिपतिभीता विप्रतारण्य के परिग्रहीत नवावतार)। उन्होंने शिवाजी को विष्णु का अवतार कहा और यह प्रतिपादित किया कि जिस प्रकार विष्णु ने कूर्मवतार में वेदों की रक्षा की थी, उसी प्रकार शिवाजी के रूप में विष्णु ने ब्राह्मणों और वेदों की रक्षा की। यह निश्चित है कि ये मत शिवाजी की छत्रछाया में पलने वाले विद्वानों के हैं। पर, साथ ही साथ, यह भी निश्चित है कि इनके द्वारा रचित साहित्य तत्कालीन समाज का प्रतिबिम्ब है—धिनयकुमार सरकार के आधार पर।

अठारहवीं शताब्दी के बाद

अठारहवीं शताब्दी में, हिन्दुत्व का उग्र राष्ट्रवादी विकास हो रहा था, मुस्लिम साम्राज्य के पर लड़खड़ा रहे थे और भारत में यूरोपीय राजनैतिक सत्ताओं का धीरे धीरे प्रसार हो रहा था। एक ओर हिन्दुत्व में इस्लाम के प्रति प्रतिनियावादी विकास हो रहे थे और हिन्दुत्व में इस्लाम के कुछ संस्करण उत्पन्न हो रहे थे तो, दूसरी ओर, शुद्ध हिन्दुत्व के पुनर्स्थापन पर जोर दिया जा रहा था। उसी प्रकार, इस्लाम में, एक ओर, अरबीपन की विचारधारा चल रही थी और, दूसरी ओर, हिन्दुत्व के समीप आकर उसमें मिलने की विचारधारा। भारत की सामाजिक संरचना का उच्च स्तर पर, इस्लाम और हिन्दुत्व लम्बवत (Vertical) विभाजित थे किन्तु निम्न स्तरों पर वही इस्लाम में हिन्दुत्व के संस्करण विद्यमान थे तो वही हिन्दुत्व में इस्लाम के संस्करण। तत्कालीन परिस्थितियों में, धर्म समाज संस्कृति और राज्य एक में मिले हुए थे और इसी कारण, हिन्दुत्व और इस्लाम का सम्पर्क मुख्यतया राजनैतिक सम्पर्क था। तत्कालीन राजनैतिक परम्परा सामंतवादी थी जिसमें हिन्दुत्व और इस्लाम, राजनैतिक प्रभुता के लिए लड़ने वाले, सामंतों के लिए अलग अलग सामाजिक टट्टियाँ थी जिनकी ओट से हिन्दू मुसलमान सामंत एक दूसरे पर प्रहार कर रहे थे। यह अवश्य है कि कुछ पूर्वनिर्धारित नियमों पर आधारित होने के कारण इस्लाम में कट्टरवादिता अपेक्षाकृत अधिक थी। फ्रांसीसी दार्शनिक रनान का कहना है कि इस्लाम में सुधार का स्थान नहीं है क्योंकि सुधार हुआ इस्लाम वस्तुतः इस्लाम नहीं रह जाता है। वह कुछ और हो जाता है। अठारहवीं शताब्दी में हिन्दुत्व में पायी जाने वाली कट्टरवादिता इस्लाम की इसी कट्टरवादी विगणता के प्रति प्रतिनिया है।

अठारहवीं शताब्दी में भारत और उसके बाहर यूरोपीय शक्तियों का अल्पव्यय हुआ। अठारहवीं शताब्दी में यूरोप का राजनैतिक प्रसार, वहाँ विकसित होने वाली पूँजीवादी तथा औद्योगिक व्यवस्था पर आधारित है। विज्ञान के विकास ने यूरोप में धर्मनिरपेक्षता का जन्म दिया और पूँजीवादी व्यवस्था ने व्यक्तिवाद का। पूर्वी द्वीप समूह से लेकर यूराल तक मुसलमानों का प्रभुत्व छाया हुआ था। यूरोप और अफ्रीका के बीच मुसलमान ही सामुद्रिक व्यापार का मुख्य माध्यम थे। यूरोप के आयातक अमुद्यय के साथ साथ, यूरोप की राज्य शक्तियों और मुस्लिम राज्यों का संघर्ष बढ़ा। पूँजीवादी व्यवस्था का आधार है बाजार। यूरोप निवासियों ने, मुसलमानों को हटाकर बाजार का बाजार पर अधिकार करने का प्रयत्न प्रारम्भ किया। भारत में पुर्तगाल का सतानाटक अल्बुकर्क मुसलमानों के हाथ से मसालों का व्यापार छीनने के लिए ही ज्यादा उत्तुंग था और इसी कारण मुसलमान ही उसके बोप के शिकार

१९^१। अंग्रेजों ने भी भारत में मुसलमानों के हाथ से राजनतिक प्रभुत्व छीनने के लिए हिन्दुओं से शाजिस की। उधर मध्य एशिया में टर्की साम्राज्य का योरोप के राज्यों से सघब चलना गुरु हुआ। उनकी अकरीबा, भारत और पूर्वी द्वीप समूह में मारोपीय गवियनो ने धीरे धीरे मुसलमानों के राजनतिक प्रभुत्व को समाप्त कर दिया। प्रथम महायुद्ध के बाद टर्की का राजनतिक अस्तित्व ही समाप्त हो गया और मध्य एशिया का शायद ही कोई देश हो जा योरोप की किसी न किसी राजनतिक गवियन के प्रभाव में न आया हो। उधर, विज्ञान के बढ़ते हुए प्रभाव ने मुहम्मद द्वारा प्रतिपादित अरबीकृत इस्लाम में परिवर्तन की मांग की जिसके प्रति इस्लाम में परम्परावाद प्रतिनिया हुई। जब टर्की के मुस्तफा कमात्पाशा ने खिलाफत समाप्त कर दी और योरोपीय जीवन-यापन के तराका को अपनाते पर जोर दिया तो यह प्रतिनिया और भी बढ़ी। भारत में लकर टर्की तक का मुस्लिम प्रदेश, अठारवी शता दी से लेकर आज तक इस प्रतिनिया का गिवार रहा है। एक ओर, अरबीकृत इस्लाम का ज्या का त्याग बनाए रखन की मांग रही है और दूसरी ओर, सममानुसार उसमें परिवर्तन करन की मांग। इसी परिस्थिति में, सन सत्रह सौ इसवी के लगभग अरब में (नज्द में) बहाबी आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। यह आन्दोलन अरबीकृत इस्लाम के पुनर्स्थापन का आन्दोलन था। यह आन्दोलन बस्तुतः पुनर्हनयवादी था क्योंकि इस आन्दोलन के प्रणेताओं ने इस्लाम की अरबी परम्पराओं के पुनरथान पर जोर दिया, मुनती परम्परा में कुरान का अर्थ लगान का प्रयास किया, मगीत का बहिष्कार किया राम साना, चाँदा और हीरे के प्रयाग पर रोक लगायी और सूद लन का निषेध किया। बहाबी इतने उग्र थे कि उहान मुहम्मद साहब की कब्र ताड़ डाली क्योंकि लीगा में कब्र की पूजा को भावना आ गयी थी, कावे के जरी बालीन का लूट लिया और हज के लिए जाने वाले यात्रियों का रोकन के लिए उह भी लूट लिया। जब नज्द के शासन, सऊद खादान के सरदार माहम्मद ने बहाबी पथ में दीक्षा ली तो बहाबी आन्दोलन एक राजनतिक आन्दोलन बन गया। सरदार मोहम्मद का खलीफा बनाकर सारे मुस्लिम सत्तार पर पुन खिलाफत के पुनरथान का प्रयास किया गया। उस समय, खिलाफत का आहदा टर्की के सुन्नान के पास था। अत उसन बहाबियों का विरोध किया जिसका परिणाम यह हुआ कि बहाबी आन्दोलन और भी उग्र अरबी बाने हो गया। इसी उग्रता का परिणामस्वरूप सारे मुस्लिम सत्तार में बहाबी आन्दोलन की लहरे प्रवाहित हुयीं। बहाबी आन्दोलन के कारण, इस्लाम में निहित आत्मविन्देद और भी प्रसर हुआ।

भारत में मुसलमानों का राजनतिक पतन, अंग्रेजी राज्य का प्रसार और बहाबी आन्दोलन का प्रचार एन साथ हुआ। मक्का मत्तार के मुसलमानों का तीथ

खिलाफत-आन्दोलन में जितना प्रभावित थे उतना भारतीय राष्ट्रवादिता से नहीं। सर सयद के समकालीन थे स्वामी दयानंद सरस्वती जिन्होंने आय-समाज की स्थापना करके वदिक धर्म का सर्वश्रेष्ठ बनाया और हिंदुत्व में उसके पुनरुत्थान का प्रयत्न किया। जिस प्रकार वहाबी-आन्दोलन अरबीवाद की ओर उभरता था उसी प्रकार आय-समाज वगैरे की ओर उभरता था। वहाबी आन्दोलन में अरबी कट्टरता थी और आय-समाज आन्दोलन में विगुण वदिक हिंदुत्व के पुनरुत्थान की कट्टरता थी। जिस प्रकार अमोर अती जम लेखक पश्चिमी विचारधारा के सद्भ्रम, इस्लाम को सुयुक्तिपूर्ण और सर्वश्रेष्ठ बता रहे थे उसी प्रकार, आय-समाज के प्रणेता पश्चिम की विचारधारा के सन्तुष्ट में वदिक हिंदुत्व (निगम) का सर्वश्रेष्ठ बता कर उसके पुनरुत्थान का प्रयत्न कर रहे थे। पञ्जाब में वहाबी-आन्दोलन और आय-समाज को सर्वाधिक जनप्रियता मिली क्योंकि वहाँ सघन भी सबसे अधिक था। यही वह काल है जब भारत का पुनर्जागरण (Rediscovery) हुआ। विलियम जॉन्स और मक्समूलर ने जिस भारत का लूट निकाला था और जिसके बड़े गुण गाँ रहे थे, वह वदिक तथा उत्तर वदिक काल का हिंदू भारत था। उसमें मुसलमानों का नामानिर्णय तक नहीं था। दूसरी ओर भारत में पूँजीवाद का प्रचार हुआ। धीरे-धीरे सामन्तवादी व्यवस्था ढहने लगी। मुस्लिम सामन्त-वर्ग का आर्थिक ह्रास होने लगा जिसमें वह विनिष्ट हुआ। भारत में पूँजीवादी प्रभावाँ के कारण, जिमें जाधुनिक राष्ट्रीयता और स्वदेशी की माँग का शीर्षण हुआ उसकी प्रणता हिंदू थे क्योंकि व्यापार में तथा तत्कालीन अग्रणी शिक्षा में आगे हान के कारण, उनका अधिकतर लाभ भाँ हिंदुओं का ही मिलने वाला था। अतः मुसलमानों में मानसिक-असुरता की भावना का उत्पन्न हुआ और उन्हें भारत में इस्लाम खतरा मँ दिया। इमका परिणाम यह हुआ कि एक ओर भारत में राष्ट्रीयता का विकास हुआ तो दूसरी ओर इस्लामी राष्ट्रवादिता का। दोनों का विकास के पाछे नवोन्मित पूँजीवादी सामन्तवर्ग का जाधम के नाम पर विभाजित था। हिंदू पूँजीवादी वर्ग ने स्वराज्य तथा राष्ट्रवादिता का नारा लगाया तो मुस्लिम सामन्तवादी वर्ग ने इस्लामी राष्ट्रवादिता तथा धर्मसाधन राष्ट्र का। यही प्रक्रिया आगे चल कर, एक ओर हिंदी हिंदू और हिंदुस्तान के नार में प्रस्फुटित हुई तो, दूसरी ओर उर्दू मुस्लिम और पाकिस्तान के नार में।

हिंदुत्व और इस्लाम का अलग-अलग समानान्तर विकास सारे मुस्लिम काल में चलता रहा। किंतु भारत में अग्रणी शक्त का प्रवर्ण में इस विकास का और भी प्रात्माहन मिला। अठारह सौ सत्तावन के धाम पास हाँ वहाबी आन्दोलन का प्रखरता फैली और उस आन्दोलन के पीछे राष्ट्रीय भावना कम थी। किन्तु काँ लिए अठारह सौ सत्तावन की शान्ति हिंदुत्व के पुनर्स्थापन का माध्यम थी और मुगलमानों काँ लिए इस्लाम की सुष्ण गरिमा स्थापित करन का माध्यम। इनके बाँ में ही एक ओर सर सयद महमूँद काँ परम्परा छाँई तो दूसरी ओर उस्ताँ में मिलनी-जुलती

मौलाना शिवली, हाली और इकबाल की परम्परा। सर सयद व लिए दास्त इस्लाम अंग्रेजी राज्य या न कि स्वतंत्र भारत। शिवली सर सयद के विरोधी थे। हाली भारत में इस्लाम व हिंदूकरण से उदना ही विनिप्त थे जितना कि वहाबी आंदोलन के प्रणेता थे। हाली के अनुसार, जिम इस्लाम का बेडा सातो समुद्र पारकर गया, वह गंगा के दहाने में आकर डूब गया और जिस मजद्व का रूप मारममार में एक है, वह भारत में आकर बदल गया¹। इकबाल का अन्मुदय भारतीय राष्ट्रवादिता में हुआ। विन्तु बाद में उन्होंने हाली और शिवली की परम्परा पकड़ी और भारतीय राष्ट्रवादिता के कवि हान के स्थान पर, इस्लामी राष्ट्रवादिता के प्रबल कवि-ममयक हा गये। हाली तरह उहाने भी इस्लाम व भारतीयकरण पर शोभ प्रगट किया² और उग्र अरबी वादी इस्लाम के कवि हो गये। जिस इस्लाम का सरसयद और अमीरगली ने बौद्धिक्ता का जामा पहाने का प्रयत्न किया था उसे इकबाल ने मुयुक्तिपूण पर उग्र तर्कों से भरना प्रारम्भ किया। अपनी कवित्वमय अभिव्यक्तियां में इकबाल ने इस्लाम को वह शाही (वाज) माना जिसका वाम उडाना (परवाज) है जिसके सामने धनक जहाँ (समार) है, इस्क की कई परीक्षाये (इम्तिहान) हैं और जिसके सामने एक आम मान नहीं बन्कि वद आस्मा है³। इकबाल के मत में इस्लाम एक प्रबड ल्टर है, जिसको सम्बाधित करने व बहुत है कि 'तू समुद्र गाकर भी तडप कर बदल जा और सभल जा। तरी किस्मत में किनारा नहीं है तू जिस तरफ चाहे निकल जा'। इकबाल ने इस्लाम को इत्सोकिक्ता का आर मोहा और उम दप उग्रता और वमठना के आवरण से लपट लिया। एक धौर, उहान पश्चिमी सभ्यता का विराप किया ना, दूसरी आर सूफीवाद को अकमण्य बताया। इस्लाम का उहाने सागरा में भर दिया क्योंकि उनके अनुसार खतर पसल तनीग्रन की सौजगार नहीं, वा गुलिस्ता कि जहा घात में न हा मयाद। इकबाल के लिए तलवार तीहीद का प्रतीक है। उनके लिए

- 1 उदाहरण के लिए देखिये हाली की ये कवितयाँ
 धो दोने हेजाजी का येबाक येडा, निगा जिसका अबसाय आलम में पहुचा
 मजाहिम हुआ कोई खतरा न जिसका, न अस्मा में ठिठका, न कुसजम में सिसका।
 किये प सियर जिसने मातो सम-दर, धो दूबा दहाने में गंगा के आकर।
 धो दो जिंसते तीहीद फना जहाँ में, हुआ जलवागर हक जमों-आसमा में
 रहा गिक याकी न यहमो-जमा में, धो बदला गया आके हि-नोस्ता में—मुकद्दस
- 2 प मुसलमा ह, जिहें देल के गरमाये यद ।
 बुते हि-दी की मुहस्यत में विरहमन भी हुये। (जवाब गिफथा)
- 3 सितारों व आगे जहाँ और भी ह, अभी इस्क के इम्तिहाँ और भी ह।
 कनाअन न कर आलमे रगों मू पर, धमन और भी, आगियाँ और भी ह।
 तू गार्ही है, परवाज है वाम तेरा, तेर सामने आसमा और भी ह।

खिलाफत आन्दोलन में जितना प्रभावित थे उतना भारतीय राष्ट्रवादिता से नहीं। सर सैयद के समकालीन थे स्वामी दयानंद सरस्वती जिन्होंने आय समाज की स्थापना करके वैदिक धर्म को सर्वश्रेष्ठ बताया और हिंदुत्व में उसके पुनरुत्थान का प्रयत्न किया। जिस प्रकार वहाबी-आन्दोलन अरबीवाद की ओर उन्मुख था उसी प्रकार आय समाज वेदों की ओर उन्मुख था। वहाबी आन्दोलन में अरबी कटकरता थी और आय समाज आन्दोलन में विन्दु वैदिक हिंदुत्व के पुनरुत्थान की कटकरता थी। जिस प्रकार अमीर जली जैसे लेखक पश्चिमी विचारधारा के सादर में, इस्लाम को सुयुक्तिपूर्ण और सर्वश्रेष्ठ बता रहे थे उसी प्रकार, आय समाज के प्रणेता पश्चिम की विचारधारा के सादर में वैदिक हिंदुत्व (निगम) का सर्वश्रेष्ठ बता कर उसके पुनरुत्थान का प्रयत्न कर रहे थे। पंजाब में वहाबी-आन्दोलन और आय समाज को सर्वाधिक जनप्रियता मिली, क्योंकि वहा सघप भी सबसे अधिक था। यही वह काल है जब भारत का पुन आविष्कार (Rediscovery) हुआ। विलियम जोन्स और मक्समूलर ने जिस भारत को ढूँढ निकाला था और जिसके व गुण गा रहे थे, वह वैदिक तथा उत्तर वैदिक काल का हिंदू भारत था। उसमें मुसलमानों का नामानिधान तक नहीं था। दूसरी ओर, भारत में पूजावाद का प्रचार हुआ। धीरे धीरे सामंतवादी व्यवस्था ढहने लगी। मुस्लिम सामंत-वर्ग का आर्थिक ह्रास होने लगा जिससे वह विनिष्ट हुआ। भारत में पूजावादी प्रभावों के कारण, जिस जाधुनिक राष्ट्रीयता और स्वदेशी की भावना का श्रीगणेश हुआ, उसके प्रणता हिंदू थे क्योंकि व्यापार में तथा तत्कालीन अग्रजी गिना में आगे हान के कारण, उसका अधिकतर लाभ भी हिंदुओं का ही मिलने वाला था। अतः मुसलमानों में मानसिक असुरक्षा की भावना का उदय हुआ और उन्हें भारत में इस्लाम खतरे में लिखा। इसका परिणाम यह हुआ कि एक ओर, भारत में राष्ट्रीयता का विकास हुआ तो, दूसरी ओर इस्लामी राष्ट्रवादिता का। दोनों के विकास के पीछे नवोदित पूजावादी सामंतवर्ग था जो धर्म के नाम पर विभाजित था। हिंदू पूजावादी वर्ग ने स्वराज्य तथा राष्ट्रवादिता का नारा लगाया तो मुस्लिम सामंतवर्गीय वर्ग ने इस्लामी राष्ट्रवादिता तथा धर्मसापेक्ष राष्ट्र का। यही प्रतिष्ठा, आगे चल कर एक ओर हिंदी हिंदू और हिंदुस्तान के नारों में प्रस्फुटित हुई तो दूसरी ओर, उन्हें मुस्लिम और पाकिस्तान के नारों में।

हिंदुत्व और इस्लाम का अलग अलग समानान्तर विकास सारे मुस्लिम काल में चलता रहा। किंतु भारत में अग्रजी सत्ता के प्रयोग में इस विकास का और भी प्रात्माह्वन मिला। अठारहवीं सदी सत्तावन के घास पाम ही वहाबी आन्दोलन की प्रसरता फैली और उस आन्दोलन के पीछे राष्ट्रीय भावना कम थी। हिंदुओं के लिए अठारहवीं सदी सत्तावन की श्रांति हिंदुत्व के पुनरुत्थापन का माध्यम थी और मुसलमानों के लिए इस्लाम की लुप्त गरिमा स्थापित करने का माध्यम। इसका वास्तव में ही, एक ओर सर सैयद महमूद खा की परम्परा साक्ष्य तो दूसरी ओर, उन्नीसवीं में मिलती जुलती

इस्लामी समाज की स्थापना करना। इकबाल पाकिस्तान बनाने की भावना के मुख्य प्रणेता बन^१।

जसा कि अब्बर इलाहाबादी, जाग मल्लिवादी, जमील मजहरी, सागर निजामी और भीमाब अब्बाराबादी की कविताओं में स्पष्ट है इस काल में, इकबाल के विरुद्ध, इस्लाम का भारतीयता के रंग में रंगन का भी प्रयत्न किया गया। इकबाल मुसलमानों का ध्यान सबके की आर ल गद्य ता जाग न भारत को ही मुसलमानों का आराध्य बताया और इस बात पर जार दिया कि अगर धर्म राष्ट्रीयता के मांग में बाधक है तो धर्म का छोड़ दो^२। उन्होंने इस्लाम की मान्यवाद का आर ल जान का प्रयत्न किया। अथ कविया न भारतीय राष्ट्रवाद से प्रेरणा ली और इस्लाम का राष्ट्रवाद की आर उमुख करने का प्रयत्न किया^३। बगाल के कवि श्री नज्जल इस्लाम न भी इस्लाम का राष्ट्रीयता की आर उमुख करने का प्रयत्न किया। वास्तव में, इस्लाम के नवाद्यान में इस्लाम के दो रूप विकसित हुए—एक इस्लामी राष्ट्रवादिता का, और दूसरा भारतीय राष्ट्रवादिता का। भारतीय राष्ट्रवादिता का रूप कुछ कमजोर ही रहा क्योंकि इस्लाम की आत्मा वस्तुतः मजहबी राष्ट्रवादिता की आत्मा थी। इसका परिणाम यह हुआ कि इस्लाम मजहबी राष्ट्रवादिता की आर उमुख हुआ और उत्तम एक प्रकार का द्वन्द्व भी आ गया। ठीक यही दगा हि दुब की हुई। इस्लाम की भाँति हिन्दुत्व में भी राष्ट्र और धर्म स्पष्ट अलग न थे। यदि ऐसा न होता तो गिवाजी की महाराष्ट्र धर्म के लिये मान्यत्व का आश्रय न लेना पड़ता। राष्ट्रवादिता का अलग रूप क्या होगा इसका निष्पत्ति हिन्दुत्व भी न कर सका। राष्ट्रवादी मुसलमानों या तो कौरा राष्ट्रवादी हुआ या उनका अपन राष्ट्रवाद

१ गिव, एच० ए० आर० मोहम्मदनिज्म पृष्ठ 161

२ तरे झूठ कुफ़री ईमा की मिटा डालूंगा मैं
हिंडिया इस कुफ़री ईमा की चया डालूंगा मैं।
डालूंगा तने नौ अजमेर और प्रयाग में,
शोक डूंगा कुफ़री ईमा को दहकनी आग में।

३ उदाहरण के लिये इतिये जमील मजहरी का यह गीत
मिरादरान मोजवा बढ़े चला, बढ़े चलो।
मुके न हिन्द का निर्गाँ, बढ़े चलो, बढ़े चलो।
जो अकल राह राक दे तो दामन उतका छोड़ दो,
जो मजहब आक टाक दे तो उतकी बंद तोड़ दो।
जवा हा दर स जग लो सलामे मौने चग लो,
नजर फिग लो तूर से, बुला रही हूँ दूर से,
हिंदालया की छोड़ियाँ, बढ़े चलो, बढ़े चलो।

कबूतर पर झपटने में जा मजा है वह शायद कबूतर के खून में नहीं है और झपटना, पलटना और पलट कर झपटना लड़गम रखन का एक बहाना है। इकबाल की तमना इस्लाम में एक आतंकित, आश्रामक भावना को जगाना था और सम्भवतः इसी कारण उन्होंने इस्लाम को सम्बोधित करके लिखा है, कि 'खुदा तुझे किसी तूफान से आसिनों कर दे' क्योंकि 'तरे बहर की मौजो में इज्तराय नहीं।

इकबाल ने इस्लाम के प्रति अधी भवित की मांग की। उनका आग्रहण था 'जो अकल का गुलाम हो वो दिल न कर कधूल। प्रजातन्त्र के वे विरोधी थे¹। इसी कारण विद्वानों का मत है कि इकबाल ने जमन दार्शनिक नीतियों के तानाशाहवाद (फासिज्म) का प्रचार किया है। किन्तु, जब हम उनके मत का उनके कथन में बहते हुये खुदी को बुलन्द करने के विचारों के सन्दर्भ में देखते हैं तो यह स्पष्ट हो जाता है कि वे इस्लाम में राष्ट्र और धर्म को एकाकार करने के पक्ष में और यह चाहते थे कि इस्लामी समाज की सामूहिक खुदी का विकास हो क्योंकि, उनके अनुसार, 'मुसलमान सबसे विरत होकर ईश्वर में अनुरक्त रहता है और एलान करता है कि मनुष्य जाति में हमसे आगे और कोई नहीं है। वे भारत के इस्लामी समाज का ही नहीं वरन ससार-यापी इस्लामी समाज को एकाकार देखना चाहते हैं। उन्होंने लिखा है हमारा अस्तित्व किसी एक स्थान के घेरे में नहीं है। हमारी शराब की तेजी किसी एक प्याल में महदू² नहीं है। हमारी सुराही की मिट्टी चीनी भी है और हि दुस्तानी भी। हमारे शरीर की घूल टर्की की भी है और सीरिया की भी। मगर हमारा दिल न तो हि-दुस्तान में है, न सीरिया और न रुम में। इस्लाम का छोड़कर हम किसी भी पितृदेश में विश्वास नहीं करते जैसाकि उनका मत है हिजरत³ मुसलमान का ईमान है। हिजरत उसके जीवन में स्थायित्व भरती है। इसका अर्थ है सकीणता का छोड़ कर विनाशिता में पहुँचना। शवनम का छोड़कर समुद्र पर विजय पाना। अतः, इकबाल ने भारतीय मुसलमानों का हिजरत का आवाहन दिया जिससे उन्हें भारत से बाहर अलग जान की प्रेरणा मिली। इस्लाम का भारतीयकरण उन्हें वह गान्त प्रक्रिया लगी जिसके माध्यम से पराजित राष्ट्र विजितों से बचला लेता है। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि भारतीय इस्लाम में एकता (Organic Unity) की कमी है क्योंकि इस्लाम जातियाँ और सम्प्रदायों में बटा हुआ है। जाति प्रथा में उनके अनुसार, भारत में इस्लाम हिन्दुओं से भी भागे बचा हुआ है और उसका एक ही इलाज है और वह है, इस्लाम को भारत से बाहर लाना और वहाँ इस्लामी भाष्यता का अनुसार

1 जमहूरियत इक तज हकूमन है कि जिसमें, यहाँ को गिना करते ह तोला नहीं करते।

2 दिनकर, रामधारीसिंह सस्कृति के चार अध्याय पृष्ठ 621-622

3 हजरत मुहम्मद का मक्का से भागकर मदीने जाने की हिजरत कर्ते ह।

भारतीय संस्कृति में योरोपीय सभ्यता

को मान्यता मिली। राष्ट्रवादी हिंदू राष्ट्रवादी भी हुआ और साथ ही साथ सनातनी या आयसमाजी भी। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि बीसवीं शताब्दी में राष्ट्रवादिता की जो लहर दौड़ी उसने एक ओर हिंदुत्व तथा इस्लाम में अतद्ध उत्पन्न किया तो दूसरी ओर हिंदुत्व और इस्लाम का समानांतर विकसित होने के लिये प्रेरित किया। इसका सबसे बड़ा प्रमाण है कविवर रवींद्र जो, इक्बाल के विपरीत नवादित हिंदुत्व के कवि है यद्यपि उनकी चेतना की अभिव्यक्ति पर मान्यतावादी विचारों का आवरण चढ़ा हुआ है। इक्बाल और रवींद्र भारतीय सस्कृति के अद्वितीय हैं। भारत और पाकिस्तान का अलग अलग हाना भी इसी समानांतर विकास का परिचायक है। खिलाफत आंदोलन के साथ स्वदेशी आंदोलन का जोड़ना ही इस बात का प्रतीक है कि भारतीय राष्ट्रवादिता का इस्लामी राष्ट्रवादिता से जोड़ने का प्रयत्न किया गया था। उन दोनों का सम्बन्ध न हो सका। हिंदुत्व और इस्लाम के समानांतर विकास को गांधी भी न रोक सके। वे केवल इतना ही कह सब 'ईश्वर अल्ला तेर नाम सबको सम्मति द भगवान।

भारत में पाकिस्तान का निर्माण भारत में इस्लाम के समानांतर विकास उनके अरबीपन और उसकी कठोरता का प्रतीक है। पाकिस्तान के बनने से इस्लाम और राष्ट्र एक में समा गया। किन्तु भारत में जब भी दस करोड़ मुसलमान हैं जिनके सामने इस्लाम है और पीछे पिछले तेरह सौ वर्षों का इस्लामी इतिहास। उनकी धार्मिक सस्कृति उन्हें भारत के आर पार की सस्कृतियों के पास ला बिठाती है और भारतीय राष्ट्रवादिता की भांग उन्हें भारत में ही सीमित करती है। उधर, भारत में अठारहवीं शताब्दी में जो प्रश्न उठे उनका अभी तक सतोपजनक उत्तर नहीं मिला है क्योंकि हिंदुत्व भी, एक आर नरोत्ति राष्ट्रवादिता से सम्बंधित है तो दूसरी ओर अपनी इतिहासिकता से। अंतर है तो केवल इतना कि हिंदुत्व में उद्विग्नता समन्वय की प्रक्रिया है जबकि इस्लाम में पुनरुत्थान की प्रेरणा। आज भारतीय सस्कृति में इस्लाम तथा हिंदुत्व को लेकर जाड़ चल रहा है क्या कोरा राष्ट्रवाद उसका निराकरण करसकगा? जीवन दशन में परे राष्ट्रवाद निरर्थक है क्योंकि गायद ही कही कारा राष्ट्रवाद सामाजिक और राष्ट्रीय एकीकरण का कारक बना है। योरोप में विकसित होने वाला राष्ट्रवाद पूजोवादी साम्राज्यवाद में उत्पन्न एक शक्ति थी। ऐसी शक्ति भारत में नहीं है और न उसके पुन उत्पन्न होने के लिये अब अवसर ही है। और फिर आज का भारत उतना प्रबल राष्ट्रवादी है भी नहीं सकता है जितना कि याराप के देग थे या रहे हैं। आज मान्यतावाद का युग है जो राष्ट्रवाद का स्वतन्त्र निषेध है। सारा इतिहास इस बात का साक्षी है कि हिंदुत्व और इस्लाम का सम्पर्क दो सस्कृतियों के रूप में, दो राजनीतिक शक्तियों के रूप में ही अधिक हुआ है और इसी कारण उनमें परस्पर द्वन्द्व और टकराव रहा है। जब तक उन पर राजनीति का दबाव रहेगा तब तक उनका द्वन्द्व बना रहेगा।

भारतीय संस्कृति में योरोपीय सभ्यता

भारत और योरोपीय सभ्यता

योरोपीय सभ्यता कुछ पहलू

भारत के सांस्कृतिक उत्थिविरास में एक ओर, मुगल और मराठा का अध्यान और पतन, भारत भूमि पर ग्रेट ब्रिटेन फ्रांस, हालैण्ड और पुर्तगाल इत्यादि योरोपीय देशों के बीच भारत की राजनतिक सत्ता हथियाने के लिये चलने वाला सघप और उमम ग्रेट ब्रिटेन की विजय, भारत में अंग्रेजी राज की स्थापना भारत का स्वातन्त्र्य सप्राम छेड़ना और धीरे धीरे उसमें विजयी होकर स्वतन्त्र होना तथा दूसरा और, भारतीय ससृति में पश्चिमी सभ्यता का धीरे धीरे समावेश भारतीय ससृति में सभ्यता-ससृति-सघात की अवस्था का उत्पन हाना और उससे ससृनिकरण की बहुमुखी प्रक्रिया-का प्रादुभूत होना एक साथ हुआ है। वतमान भारतीय ससृति निम्नचय हा वेदो तथा उपनिषदा में निरूपित हिन्दुत्व बुद्धवाद इस्लाम और पश्चिमी सभ्यता के समन्वय से उत्पन एक प्रक्रिया है यद्यपि उस प्रक्रिया का वतमान स्वरूप योरोपीय सभ्यता से अधिक प्रभावित है। भारत में परम्परा तथा आधुनिकता साम्यवाद तथा ससदीय प्रजातन्त्रवाद, नियोजित और नियन्त्रित तथा स्वतन्त्र प्रतियोगी सामाजिक आर्थिक व्यवस्था सम्बन्धी वाद विवाद तथा मत मतान्तरों का सघप, पश्चिमी सभ्यता के ही योगदान हैं। भारतीय ससृति में, पश्चिमी सभ्यता के

प्रवेश ने, जहाँ मस्यारो में परिवर्तन उत्पन्न किया, भारत के राजनतिक एकीकरण और राष्ट्रीयता को जन्म दिया, सुधारवादी तथा पुनर्जननवादी आन्दोलनों को उभारा, वहाँ उन परस्पर विरोधी विचारधाराओं का भी जन्म दिया जिनका कि वह स्वयं गिकार रही है और आज भी है। भारत में समय-समय पर उठने वाला धर्मसापक्षिता तथा धर्मनिषेधिता का प्रश्न पश्चिमी मघात में उत्पन्न परिस्थितियों की ही उपज है।

भारत में ही नहीं किंतु सम्पूर्ण मसार में पश्चिमी मस्कृति के प्रभुत्वमय प्रसार ने एसी विरोधात्मक सांस्कृतिक परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दी हैं। पिछले चार सौ वर्षों में, मानव-मस्कृति के ऐतिहासिक उद्विकासी प्रवाह न, याराप में जिन सम्प्रदायों तथा और तत्व मकुला का जन्म दिया, उह याराप निवासा ममार के वान कोने में ले गये हैं। आज गायद ही कोई ऐसा महाद्वीप या सांस्कृतिक समूह हो जो पश्चिमी सम्प्रदाय के प्रभुत्वमय मघात से अछूता हो। प्रौद्योगिक विनाम के जिस स्तर न वर्तमान याराप का जन्म दिया है और जो योराप तथा मसार का परिवर्तन कर रहा है उसका केंद्रीकरण याराप में ही है। औद्योगिक क्रांति (Industrial Revolution) से उत्पन्न, ममार-भाषा सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था का गढ़ याराप ही है। वर्तमान मसार की अर्थव्यवस्था पर याराप का ही प्रभुत्व है और अन्तर्राष्ट्रीय यातायात के अधिकतर भाग और साधन योरोपीय राष्ट्रों के नियंत्रण में हैं। पश्चिमी दगा के उच्च अधिजनन माल टाले हैं और अधिजनन अन्तर्राष्ट्रीय यात्रियाँ का ल जाते हैं। याराप के हवाई जहाज समुद्रा और मग्नीषा का लाघन हुए मसार के ओर पार उड़ते हैं और याराप का अर्थ दगा से सम्पन्न स्थापित करने हैं। रेल, तार, टेलीफोन रिजली, मगीन द्वारा सेतो, रेडियो निनमा, मोटर, टाइप करन तथा सीन की मगीन कर्मरा, पाउटेनपेन और अग्नेयी चिकित्सा-मस्कृति याराप के ही योगदान हैं और ममार के सभी उगा में इनका प्रयोग हाता है।

याराप का यह मसारव्यापी, प्रभुत्वमय प्रसार वस्तुतः उन एतिहासिक परिस्थितियों की दन है जो पिछले चार सौ माला में उत्पन्न हुई है। योराप का यह प्रसार वस्तुतः निम्न रहा है उस प्रौद्योगिकी (Technology) पर जो पिछले चार सौ सालों में योराप में विनमित हुई है। इसी प्रौद्योगिकी की दन, यातायात के साधन, यारापियता का अर्थ महाद्वीपों के निवासियों के सम्पर्क में लाए। औद्योगिक क्रांति में उत्पन्न पूजावादी व्यवस्था न विश्वव्यापी व्यापार के लिए प्रगति किया। यारापीय सम्प्रदाय से पहले पहले वहाँ के व्यापारी और जहाँ-जहाँ ये व्यापार गण वहाँ वहाँ उठान पहले भारतान किल और नौ-मना की चौकियों का वायम किया और, इस प्रकार, मार में, आर्थिक प्रभुत्व के साथ-साथ राजनतिक प्रभुत्व का वायम किया। वही उठाने अपना राज्य स्थापित किया और वही उठाने। अपना प्रभुत्व स्थापित करने के साथ-साथ, एक ओर, उठाने यारापीय सामाजिक मस्यारों

की स्थापना की तो दूसरी ओर, ईसाई धर्म का प्रचार किया। जब स योरोपियनो ने अमरीकी महाद्वीप और गुडहोप अंतरीप के माग स भारत के सामुद्रिक माग का आविष्कार किया है, व ससार पर राजनतिक-आर्थिक प्रभत्व कायम करने के लिये परस्पर लडते रहे हैं। उनीम सौ चौदह म यारोप ने जो विन्वयापी महायुद्ध शुरू किया था वह सम्भवत आज भी समाप्त नही नही हुआ है। एक ज्वालामुखी की भाँति वह रह रह कर भडक उठता है।

पिछे चाग सौ वर्षों के ससार-यापी यारोप के राजनतिक आर्थिक प्रभुत्व ने ससार की अ य प्राचीन ससृष्टियो म उनकी सोयी हुयी आत्मशक्ति को जाग्रत किया है जिनके माध्यम से उनम राष्ट्रीयता जगी है और उनम उन कौगला तथा सस्थाओ का प्रादुर्भाव हुआ है जिहोने उनम एग ओर, आत्मसजगता की भावना जगायी है ता, दूसरी ओर उहे पश्चिमी सभ्यता के विरोध मे ला सडा किया है। इगलण्ड म मगना कार्टा की घटना अमरीका का स्वातन्त्र्य सप्राप्त और वहा की स्वातन्त्र्य घोषणा (Declaration of Independence), फ्रांस तथा रूस की राज्य शक्तियाँ और उनके पीछे पनपने वाली अर्हियों (Values) अटलांटिक चाटर (The Atlantic Charter) और सयुक्त राष्ट्रसंघ के चाटर की प्रस्तावना ने कराडो व्यक्तियों का सामाजिक आर्थिक और राजनतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिये प्रेरित किया है और आज भी कर रहे है। अमेरिका मिश्र पाकिस्तान, भारत लका, बर्मा और जापान का राष्ट्रीय शक्तियाँ के रूप मे निपरना बहुत कुछ पश्चिमी सभ्यता क प्रभाव का ही परिणाम है।

इस्लाम की भाँति पश्चिमी सभ्यता भी एक प्रबल राष्ट्रनिर्मात्री शक्ति रही है। आधुनिक जापान का अम्युन्म और त्रिकास, वस्तुतः पश्चिमीकरण (Westernization) का एक एगियापी राष्ट्रीय रूप है। किन्तु साथ ही साथ पश्चिमी सभ्यता के ससग स प्राचीन ससृष्टियो म उसका विरोध करने वाली शक्तियों का भी प्रस्फुटन हुआ। साम्यवादी और उत्तार तथा ससदीय प्रजातन्त्रवादी विचारधाराओ के कारण दो गुटा म बटा हुआ वनमान ससार, यारोपीय सभ्यता क ससार-यापी प्रभुत्व का ही परिणाम है यथाकि साम्यवाद तथा उत्तार ससदीय प्रजातन्त्रवाद और राष्ट्रवादिता तथा अन्तर्राष्ट्रीयता योरोप की ही देन हैं। राधाकृष्णन ने ठीक ही कहा है कि योरोपीय प्रभुत्व से ही, योरोपीय सभ्यता के विश्व खलन की शक्तियाँ उत्पन्न हुयी हैं^१। साधारणतया, सयजी भाषा भाषी ससार म पश्चिम (The West) और पश्चिमी (Western) प्रथवा यारोपीय सभ्यता (European Civilization) एक दूसर के पर्याय क रूप म प्रयुक्त किये जाते हैं। आमतौर पर, पश्चिमी सभ्यता, यारोप और यारोपीय ससृष्टियाँ एक दूसर के प्रतीक माने जाते हैं और एगिया तथा

एशियायी सभ्यतियों को पूव का प्रतीक माना जाता है। इसकारण, पूव (The East) और पश्चिम (The West) में जो अंतर किया जाता है वह यारोप तथा एशिया में पाये जाने वाले विभेदों के आधार पर किया जाता है। किंतु यारोप और एशिया राजनतिक द्वाइया हैं और न ता यारोप में कोई प्रधान सजातीय सभ्यति है और न एशिया में। और फिर, भौगोलिक क्षेत्र और सांस्कृतिक इकाई परस्पर समानांतर नहीं हान हैं। यारोप और एशिया वस्तुतः एक ही भूभाग के अंग हैं। दुनिया के नक्का में, यारोप एशिया कह जाने वाले भूभाग का एक अनुबद्ध अंग सा लगता है, जिनका उत्तरी समुद्रतट एशिया में समाया हुआ है। गगा के तट से लेकर स्काटलण्ड (Scotland) तथा आयरलण्ड तक फैली हुयी भारोपीय (Indo-European) परिवार की भाषाएँ, एक आर, यारोप और एशिया की समान ऐतिहासिक पठभूमि की प्रतीक हैं और, दूसरी ओर, 'पूव और पश्चिम' म किय जाने वाले अंतर की नगण्यता की सातक है। इतिहास के दीपकालीन सभ्यता में, 'पूव और पश्चिम' का भेद स्वतः समाप्त हो जाता है क्योंकि मानव सभ्यति के उपाकाल में दाना एक समान हैं और वस्तुतः समान आधारों पर विकसित हुये हैं। मानव-सभ्यति की ऐतिहासिक प्रक्रिया में एशिया ने यारोप को प्रभावित किया है और यारोप ने एशिया को। इसादयत जा यारोप का प्रधान महत्व है एशिया की यारोप का एक भेद है यद्यपि आज वही भेद यारोप एशिया का द रहा है।

जिन पश्चिमी सभ्यता कहा जाता है उसका केन्द्रिकरण आज यारोप में ही नहीं है यद्यपि उसका उत्थन और विकास यारोप में ही हुआ है। आज अमरीका में पश्चिमी सभ्यति उत्तनी ही केन्द्रित है, जितनी कि यारोप में। इसीकारण, अमरीकी मानवशास्त्री, पश्चिम या 'पश्चिमी के स्थान पर, अधिकतर 'यारोप-अमरीकी (Euro-American) शब्द का प्रयोग करते हैं। और वास्तव में यह है भी सही क्योंकि वर्तमान सत्ता में जिसे हम पश्चिमी सभ्यता कहते हैं, उसका विकास और प्रसरण यारोप तथा अमरीका दानो सहा रहा है। लकिन, अगर ऐतिहासिक प्रक्रिया के मद्दम में देखा जाय तो अमरीका यारोप का एक विस्तार और प्रतिरूप मात्र लगता है यद्यपि, उस प्रतिरूप में, यहाँ वहाँ कुछ बदला अवश्य नजर आता है। अमरीका का सांस्कृतिक तथा बौद्धिक गठन वस्तुतः यारोपीय है।

जिस प्रमेय का 'पश्चिम' (The West) अथवा 'पश्चिमी सभ्यता' कहा जाता है वह मानव-सभ्यति की उदविकासी प्रक्रिया का वह रूप और स्तर है जो यारोप की ऐतिहासिक प्रक्रिया में विकसित हुआ है यद्यपि न ता वह एकमात्र यारोप की ही उपज है और न वह यारोप तक ही सीमित है। उसका इतिहास समाया है यूनान और रोम की विचारधाराओं में। इसादयत, यारोप में इस्लामिक प्रवेग और प्रसार के चार चलन वाले धर्मयुद्ध (Crusades), यारोप का पुनर्जागरण यारोप के ज्ञान विज्ञान तथा वैज्ञानिक प्रौद्योगिकी का विकास, औद्योगिक क्रांति (Industrial Revolution),

की स्थापना की तो, दूसरी ओर ईसाई धर्म का प्रचार किया। जब से योरोपियनो ने अमरीकी महाद्वीप और गुडहोप अन्तरीप के माग से भारत के सामुद्रिक माग का आविष्कार किया है, व सत्सार पर राजनतिक-आर्थिक प्रभत्व कायम करने के लिये परस्पर लडते रह हैं। उनीस सौ चौदह म यारोप ने जो विश्व यापी महायुद्ध गुरु किया था वह सम्भवत आज भी समाप्त नही नही हुआ है। एक ज्वालामुखी की भांति वह रह रह कर भडक उठता है।

पिछले चार सौ वर्षों के सत्सार-यापी योराप के राजनतिक आर्थिक प्रभुत्व ने सत्सार की अय प्राचीन सत्सृतियों मे उनकी सोयी हुयी आत्मशक्ति का जाग्रत किया है, जिनक माध्यम से उनम राष्ट्रीयता जगी है और उनमे उन कौशलता तथा सत्स्याजा का प्रादुर्भाव हुआ है जिन्होने उनम एक जोर, आत्मसजगता की भविना जगायी है तो दूसरी ओर उहं पश्चिमी सभ्यता के विरोध मे ला खडा किया है। इंग्लण्ड म माना कार्टा की घटना, अमराका का स्वातन्त्र्य सग्राम और वहा की स्वातन्त्र्य घोषणा (Declaration of Independence), फ्रांस तथा रूस की राज्य क्रांतिया जोर उनक पीछे पनपने वाली अर्हाय (Values) अटलांटिक चाटर (The Atlantic Charter) और संयुक्त राष्ट्रसंघ के चाटर की प्रस्तावना न कराडा व्यक्तियों को सामाजिक आर्थिक और राजनतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिये प्रेरित किया है जोर आज भी कर रहे है। अमेरिका, मिश्र पाकिस्तान, भारत लका, बर्मा और जावान का राष्ट्रीय शक्तियों के रूप मे निलरना बहुत कुछ पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव का ही परिणाम है।

इस्लाम की भांति पश्चिमी सभ्यता भी एक प्रबल राष्ट्रनिर्मात्री शक्ति रही है। आधुनिक जापान का अम्युन्त्र और विकास, वस्तुतः, पश्चिमीकरण (Westernization) का एक एगियायी राष्ट्रीय रूप है। किन्तु, साथ ही साथ पश्चिमी सभ्यता के ससग स प्राचीन सत्सृतियों मे उसका विरोध करने वाली शक्तियों का भी प्रस्फुटन हुआ। साम्यवादी और उन्तर तथा समदीय प्रजातन्त्रवादी विचारधाराओं के कारण दो गुटो म बटा हुआ वनमान सत्सार, यारोपीय सभ्यता के सत्सारव्यापी प्रभुत्व का ही परिणाम है क्याकि साम्यवाद तथा उन्तर समदीय प्रजातन्त्रवाद और राष्ट्रवादिता तथा अन्तर्राष्ट्रीयता योराप की ही दन हैं। राधाकृष्णन ने ठीक ही कहा है कि योरापीय प्रभुत्व स ही योरोपीय सभ्यता के विश्व चलन की शक्तियाँ उत्पन्न हुयी हैं²। साधारणतया अग्रजी भाषा भाषी सत्सार म पश्चिम (The West) और पश्चिमी (Western) अथवा यारोपीय सभ्यता (European Civilization) एक दूसर क पर्याय के रूप म प्रयुक्त किये जाते हैं। आमतौर पर, पश्चिमी सभ्यता, योराप और यारोपीय सत्सृतियाँ एक दूसर के प्रतीक माने जाते हैं और एशिया तथा

एशियायी सभ्यतियों को पूव का प्रतीक माना जाता है। इसकारण, पूव (The East) और पश्चिम (The West) में जा अंतर किया जाता है वह यारोप तथा एशिया में पाये जाने वाले विभेदों के आधार पर किया जाता है। किंतु, योग्य और एशिया राजनैतिक इकाईयाँ हैं और न तो योरोप में कोई प्रधान सजातीय सभ्यति है और न एशिया में। और फिर, भौगोलिक क्षेत्र और सांस्कृतिक इकाई परस्पर समानांतर नहीं होते हैं। यारोप और एशिया वस्तुतः एक ही भूभाग के अंग हैं। दुनिया के नक्शे में, योरोप एशिया के जाने वाले भूभाग का एक अनुबद्ध अंग सा लगता है, जिसका उत्तरी समुद्रतट एशिया में समाया हुआ है। गंगा के तट से लेकर स्कॉटलैंड (Scotland) तथा आयरलैंड तक फैली हुई भारतीय (Indo-European) परिवार का भाषाएँ, एक आर, यारोप और एशिया की समान ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की प्रताक हैं और, दूसरी आर, 'पूव और 'पश्चिम' में किये जाने वाले अन्तर की नगण्यता का द्योतक है। इतिहास के दीर्घकालीन सन्दर्भ में, 'पूव और 'पश्चिम' का भेद स्वयं समाप्त हो जाता है क्योंकि मानव सभ्यति के उपाकाल में दोनों एक समान हैं और वस्तुतः समान आधारों पर विकसित हुये हैं। मानव-सभ्यति की ऐतिहासिक प्रक्रिया में एशिया ने यारोप का प्रभावित किया है और यारोप न एशिया का। इसी प्रकार का यारोप का प्रधान मजहज है एशिया की यारोप का एक भेद है यद्यपि आज वही भेद यारोप एशिया को न रहता है।

फ्रांस और रूस की राज्य शक्तियाँ और इन सबके सम्मिलित प्रभाव से अवतरित होने वाले सामाजिक मासकृतिक रूपांतरण पश्चिमी सभ्यता के अर्थ आधार है। पश्चिमी सभ्यता, वस्तुतः योरोप में होने वाले मासकृतिक सामाजिक रूपांतरण की विशेषताओं के उस सकुल में समायी है जो योरोपीय सस्कृतिया में समायी होने पर भी उनसभिन है और जो आज विश्व-यापी हो रहा है। यह सकुल कोरा पार्थिव नहीं है। एक सामाजिक-आर्थिक प्रौद्योगिक सकुल के रूप में पश्चिमी सभ्यता पार्थिव भी है और अपार्थिव भी क्योंकि उस उन आदर्शों और जर्हाओं से अलग नहीं किया जा सकता जो उसको अर्थ प्रदान करती है। अतः पश्चिमी सभ्यता के सकुल की विवेचना के पहले उन पार्थिव तथा अपार्थिव ऐतिहासिक प्रवाहों का विश्लेषण आवश्यक है जिन्होंने पश्चिमी सभ्यता को जन्म दिया है।

२

योरोपीय सभ्यता के आधार ऐतिहासिक विवेचन

राधाकृष्णन के अनुसार, मानव सस्कृति के प्रारम्भिक विकास काल में पश्चिम तथा पूव के विकास स्तरों में काफी समानता है। वास्तव में वर्तमान योरोप का आधार है यूनान, फिलिस्तीन और रोम की बौद्धिक तथा सामाजिक सासकृतिक परम्पराएँ। वर्तमान योरोप की आधारभूत 'मर्त्य (Values) और ससथाय यूनान फिलिस्तीन और रोम की दन है। यूनान में योरोप को आलाचनात्मक श्रष्टिकोग निरीक्षण-रीतियाँ और राजनितिक धारणाय प्रणाली को रोम ने धर्मनिरपेक्ष विधि प्रणाली और सामाजिक संगठन के सिद्धांत और फिलिस्तीन में एकेश्वरवादी तथा मनुष्य के नतिक अस्तित्व की यह धारणा प्रदान की जिसमें व्यक्तित्व का अस्तित्व बवल एक नतिन अस्तित्व (Moral Being) है वह अस्तित्व जो ईश्वर के आत्मा के अधीन है। ईश्वर और व्यक्तित्व एक दूसरे में पर हैं। ईश्वर अवतार नहीं लता है बरन इच्छा होने पर किसी चुा हुए व्यक्ति के समक्ष प्रगट होकर, उनके द्वारा नतिकता के आत्मा का मनुष्य तक पहुँचता है जिसका उदाहरण ईसा द्वारा किया हुआ मदेश है। इगीकारण, मनन (Thought) कर्म (Action) और निष्ठा (Faith) पश्चिमी परम्परा के तीन तत्त्व हैं। किन्तु योरोपीय ऐतिहासिक विकास में ये तत्त्व सभी भी एक सामञ्जस्य में नहीं आय हैं—वे सब परस्पर अलग ही रहें हैं। सम्भवतः, इसी कारण, योरोपीय विचारधारा में विरोधी तथा विजातीय तत्त्वों का समावेश हुआ है।

यूरोपीय बौद्धिकता मूलतः यूनानी बौद्धिक परम्पराओं से प्रभावित है। यूनानी बौद्धिकता की एक धारा थैल्स से प्रवाहित हुई है, और दूसरी यूनान तथा रोम पैथागोरस से। युक्तियुक्त विज्ञान पर आधारित प्रोर थैल्स द्वारा के योगदान प्रतिपादित बौद्धिक परम्परा, प्रकृतिवादिता (Naturalism) में विकसित हानी हुई एक ओर, डेमोक्रीटस की परमाणुवादी (Atomism) बौद्धिक परम्परा में विकसित हुई और, दूसरी ओर इपीकुरस की, सुखदुःखवादी विचारधारा में जो, आगे चलकर, मनाविज्ञान में सुखदुःखवादी सम्प्रदाय (Hedonistic School) के सिद्धान्तों में प्रसफुटित हुई। पैथागोरस की बौद्धिक परम्परा, मुक्तात, अरस्तू और प्लेटो की बौद्धिक परम्पराओं में विकसित होता हुई, एक ओर इसाइयत की विचारधारा में लीन हो जाती है और दूसरी ओर, यूरोपीय सामाजिक दशान और विज्ञानवादिता में—बहु विज्ञानवादिता जिसमें याराप के वर्तमान भौतिक तथा सामाजिक शास्त्रों का जन्म मिया है। इन्हीं बौद्धिक परम्पराओं के फल-स्वरूप, याराप की वह बौद्धिक परम्परा विकसित हुई है जो, एक ओर, विज्ञानवादी है और दूसरी ओर युक्तियुक्तवादी या एक ओर मानव विवेक में आस्था के विचार पर आधारित है और, दूसरी ओर, वास्तविक का युक्तियुक्त मानन पर, जो एक ओर, प्रत्यक्षवादी तथा वैज्ञानिक है और, दूसरी ओर, दार्शनिक आध्यात्मिक। मुक्तात ने युक्तियुक्तवादी बौद्धिक परम्परा में आस्था की धारणा प्रतिपादित की। प्लेटो ने आदर्शवादी प्रत्यक्षवादी विच्छेपण पद्धति का और अरस्तू ने प्रकृतिवादी प्रत्यक्षवादी बौद्धिक परम्पराओं को जन्म दिया। याराप में अरस्तू को सभी विज्ञानों का जनक माना जाता है। किन्तु यूनानी बौद्धिक परम्परा की एक और विशेषता है जो याराप की बौद्धिक परम्परा में लीन हो गई है और वह है, विज्ञान तथा दशान का एकाकार करने की, जिसकी आधारशिला प्लेटो ने रखी थी। प्लेटो की प्रत्यक्षवादी विज्ञानवादिता आदर्शवादिता तथा आध्यात्मिकता को धार उन्मुख है और मुक्तात की प्रत्यक्षवादी प्रकृतिवादिता आनुभूतिकता की ओर। ज्ञान की विज्ञान में सामिल रखने की यूरोपीय परम्परा का आधार यूनानी है जिसके कारण यूरोपीय बौद्धिक परम्परा, एक ओर, युक्तियुक्त की ओर उन्मुख है और, दूसरी ओर, द्वन्द्वमयता की ओर। द्वन्द्वमयता ही आगे चलकर ऐतिहासिक कारणवादिता तथा ऐतिहासिक दशान की बौद्धिक परम्पराओं में प्रसफुटित हुई।

विवेक का सर्वोपरि मानकर, युक्तियुक्त विचार तथा विज्ञानवादी दशान के समन्वय से, मानव मस्तिष्क का विच्छेपण करते हुए यूनानी इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि मानव मस्तिष्क की गति वस्तुतः निहित है व्यक्ति में—वह व्यक्ति जो ममष्टि का अग्रभाग नहीं है वरन् जो युक्तियुक्त है। इसके फलस्वरूप पहले यूनान में और बाद में यूरोप में व्यक्तिवादिता को प्राप्ताहून मिला। यूनानी अपनी ही विचारधारा के अनुसार यूनानियों को ही सम्य माना और शय संसार

को असम्भ्य । यही वह विचारधारा है, जो प्रागे चलकर आधुनिक योरोप के उदयकाल में, इस विचार में परिवर्तित हुयी कि योरोप ही विश्व में सम्भ्यता और प्रगति का प्रतीक है । जागे चलकर, जब योरोप का सत्तार के अन्तर्गत क्षेत्रों से सम्पक हुआ तो यही विचारधारा मानवशास्त्र तथा समाजशास्त्र के उद्विकासी सिद्धांतों में प्रस्फुटित हुई । इन सिद्धांतों के अनुसार, योरोप विकास की चरम सीमा और इतिहास का गंतय है । उन्नीसवीं शताब्दी में योरोपियनों में जो वर्ण भेद और उच्चता का भाव आया और जिसके रूप में अफ्रीका और अमरीका में देखने को मिलते हैं, उनका एक न्यात यूनान की सम्भ्यत सम्बंधी वह विचारधारा भी है जो योरोपीय विचार में व्याप्त है । यूनानियों ने सत्तार को सम्भ्यत सम्भ्यत में बाटा तो इसाइयों ने धार्मिक-अधार्मिक तथा इसाई और गर-इसाई में । योरोपीय विचारधारा, इसकारण द्विद्वारमक भी है और विभदात्मक भी ।

यूनानी विचारधारा और यूनानी समाज संगठन परस्पर विराधी से रहे । मानवतावादी और व्यक्तिवादी होने पर भी यूनानियों ने अपन आर्थिक संगठन का आधार गुलामी प्रथा को ही रक्खा । व्यक्तिवाद को वे इतनी पराकाष्ठा तक ले गये कि उन्होंने उन सभी सत्ताओं का विरोध किया जो व्यक्तिवाद के विरोध में आती हैं और । राजनतिक संगठन में उस सहवासी समुदाय (Community) का ही वाञ्छित ठहराया गया जो अपनी विधि प्रणाली का निर्माण करने में स्वतंत्र हो । इसका परिणाम यह हुआ कि यूनानी समाज का धार्मिक और राजनतिक संगठन पालिस (polis नगर अथवा शहर) में ही केन्द्रित रहा । यूनान सदैव शहर राज्यों (City States) में बँटा रहा और ये शहर राज्य तब तक परस्पर युद्धरत रहे जब तक कि यूनान रोम साम्राज्य का एक भाग नहीं हो गया । इन्हीं राज्यों के परस्पर संघर्ष से उग्र तथा आशात्मक राष्ट्रवादिता का जन्म हुआ जो, आगे चलकर योरोप के राजनतिक जीवन का अंग बन गई । योरोप में छिन्ने वाले दो विश्व-यापी महायुद्धों का एक महत्वपूर्ण कारण उग्र राष्ट्रवादिता भी है, यद्यपि यहाँ वह पूँजीवाणी साम्राज्यवादिता में अवगुठित है ।

यूनान की धार्मिक परम्पराओं में इहलौकिकता और पारलौकिकता का वह मिश्रण मिलता है जिसमें एक ओर भारतीय परम्पराओं का आभास मिलता है और दूसरी ओर इसाइयत की पूर्ववर्ती परम्पराओं का । राष्ट्रावृष्टण के अनुसार, यूनान के प्रारम्भिक धार्मिक विचारों में वेदा की सी परम्पराओं मिलती हैं । प्लेटो ने पुनर्जन्म को स्वीकार किया है और तपस्वी जीवन को मायता दी है । प्लेटो में अदृश्य सत्ता में लीन ज्ञान तथा उमकी उपासना का रहस्यवादी विचार मिलता है जो जौपनिपदिक विचारधारा के समान है । माय ही माय यूनान में कई पूजा पद्धतियाँ (Cults) भी मिलती हैं जिनमें कुछ यूनानी हैं और कुछ यूनान के बाहर की बयाकि यूनान पर भारत में भी और फिलिस्तीन की परम्पराओं का प्रभाव पड़ा है । मंगल, मदिरा,

नृत्य और सगात के वातावरण में, अपने में दिव्य की अनुभूति करने की परम्परा डायनैस्टिक पद्धति (Dionysiac Cult) में मिलती है, ज्ञान और वाक् में ही ईश्वरत्व का दर्शन करने की लागस पद्धति (The Cult of the Logos) में और पगम्बरी परम्परा ऑरफिक पद्धति (Orphic Cult) में। ऑरफिक पद्धति का परम्परा में आरम्भ्युज को पगम्बर माना गया है और तापस नियाभा निरामिपता तथा दीक्षा (Initiation) द्वारा मुक्ति प्राप्त करने पर जोर देकर इस तथ्य पर जोर दिया गया है कि 'यायी तथा नतिक को ही आनन्द का दान मिलता है और अयाइयो तथा अनैतिको को दण्ड'। इसाइयत में निहित ईश्वरी 'याय का विचार रहस्यवादिता, आध्यात्मिकता और पैगम्बरी धारणा इस प्रकार, इनाइमत में पहले यूनान में विकसित हो चुके थे।

रोम केवल एक साम्राज्य रहा। रोम न तो किसी विशिष्ट सृष्टि का रूप धारण किया, न किसी समाज का और न राष्ट्र का। यूनान की विशिष्टता थी बहूत की दार्शनिक परम्परा और रोम की धर्मनिर्पेक्ष विधि प्रणाली शासन प्रणाली तथा सामाजिक राजनतिक सगठन के सिद्धान्त और विधि (Law) की सर्वोपरिता के विचार। रोम की परम्परा में इस बात पर जोर दिया गया कि विधि निर्माण में समुदाय के सभी सदस्यों का बराबर सहयोग होना चाहिये और एक बार जब विधि का निर्माण हो गया तो विधि ही सर्वोच्च है। विधि के समस्त समुदाय के सभी सदस्य समान हैं किन्तु व्यक्ति की तुलना में विधि ही प्रधान और सर्वोपरि है। यूनानियों ने जोर दिया विचार की स्वतंत्रता पर जब कि रोम में जोर दिया गया 'विल्लो (Will to Action) का सम्बन्धन पर। रोम में प्रचलित नैतिकता की माँग थी सामाजिक क्रिया (Social Action) का सचेष्ट नियंत्रण और व्यक्ति द्वारा समुदाय की आवश्यकताओं का प्रति एच्छिक नमन। रोम वस्तुतः, वकीलों का साम्राज्य था जबकि यूनान दार्शनिकों का देश। रूमी सत्तार में, यूनानों रूमी और इमाई परम्परायें एक साथ प्रवाहित हो रही थीं। रोम और यूनान ने योरोप का विज्ञानवादी दार्शनिकता, मानवतावाद, यक्तिवाद, युक्तियुक्तवाद (Rationalism) नगराय जीवन के सदगुण (Virtues of Civic Life), उग्र राष्ट्रवादिता, रहस्यवादी तथा पैगम्बरी मजहब, धर्मनिर्पेक्ष विधि प्रणाली सामाजिक राजनतिक सगठन के सिद्धान्त, साम्राज्यवादिता विधि की सर्वोपरिता और विधि का समस्त व्यक्ति-व्यक्ति की समानता सम्बन्धी विचार और सिद्धान्त प्रदान किये हैं। मध्यकालीन योरोप में यूनान को बँटे ही पुनः सौज निकाला गया था जिसे प्रकार उन्नोसकी गताती में प्राचीन भारत को। वर्तमान योरोप के निर्माण में इसाइयत का लगभग उतना ही हाथ है जितना कि यूनान और रोम का। इसाइयत का जन्म हुआ था फिलिस्तीन में। अतः, इनाइमत एशिया का याराप की एक भेंट है। अपने आधारभूत रूप में, इनाइमत, वस्तुतः एक ऐसा मजहब है जिसकी आत्मा योरोपीय न होकर एशियाई है। इसाइयत इस्लाम में प्राचीन है।

वास्तव में, इस्लाम के मुख्य प्रणाल्यात इसाइयत में ही है। यद्यपि दोनों मजहब एक दूसरे से भिन्न हैं। इसाइयत जोर इस्लाम दोनों ऐतिहासिक मजहब हैं क्योंकि दोनों मजहबों का ऐतिहासिक पुरुषों और घटनाओं से सम्बन्ध है। जिस प्रकार इस्लाम में ईश्वर ने मुहम्मद साहब के समक्ष अपने को प्रगट किया उसी प्रकार, इसाइयत में भी ईश्वर ने अपने को ईसा के समक्ष प्रगट किया। अंतर केवल एक है। इस्लाम की मायताओं के अनुसार, ईश्वर मनुष्य रूप में आ ही नहीं सकता है और न किसी का जन्म ही दसकता है। किन्तु, इसाइयत में ईश्वर मनुष्य से भिन्न और परे है अवश्य, फिर भी, अपने पुत्र के माध्यम से वह स्वयं इस ससार में आ सकता है। इसी मजहब के प्रवक्ता, ईसा मसीह (Jesus), जसा कि इसाइयत की मायता है कुमारी कया मरी (Mary) की ईश्वरीय सन्तान हैं। ईसा ने ईश्वरत्व की अनुभूति पर जोर दिया और यह कहा कि भरी शिक्षाओं उस ईश्वर की शिक्षाओं हैं जो मनुष्य और सभी में है। इस प्रकार इसाइयत में ईश्वर और मनुष्य दो अलग अलग इकाइयों हैं। मनुष्य में ईश्वरत्व के गुण हैं। मनुष्य जोर ईश्वर मनुष्य में ही मिल सकता है क्योंकि स्वयं ईसा ईश्वर की भी सन्तान है और मनुष्य की भी। यह सार ईश्वर का वंश है अतः ईश्वर इस ससार से परे है। फिर भी, मनुष्य के समक्ष, अपने को प्रगट कर सकता है, वगैरे कि मनुष्य की उमम आस्था हो। आस्था के द्वारा ही मनुष्य ईश्वरीय जीवन में प्रवेश कर सकता है और दिव्य जीवन की प्राप्ति में ईश्वर का सहयोगी बन सकता है। ईसा के लिये ईश्वर विचारमान नहीं है। ईश्वर एक अनुभवगम्य सत्ता है। जिस यहुदी धर्म की पृष्ठभूमि में इसाइयत की अवतारणा हुई उमम ईश्वर पैगम्बर द्वारा अपने को प्रगट करता है। किन्तु इसाइयत में, स्वयं ईश्वर वाक ही सदेह मनुष्य बन गया। इसाइयत इस प्रकार एक आध्यात्मिक रहस्यवादी मजहब है।

इसाइयत में ईसा के उपदेशों और निर्देशों की, ईश्वर-च्छा के रूप में ग्रहण किया जाता है। इसाइयत एक अलौकिक रहस्यवादी, दिव्य ज्ञान है¹। इसाइयत

- 1 ईसा के जन्म में सम्बन्धित अलौकिक घटनाओं को ईसा की दिव्यता और ईसा के उपदेशों को ईश्वरीय निर्देशों के प्रमाण के रूप में ग्रहण किया गया है। ईसा का कुवारी कया से उत्पन्न होना, सम्राट हेरोड के प्राणघातक प्रयासों से ईसा का बचने ही धरना जैसे कस के प्रयासों से कृष्ण बचने से, ईसा को फाँसी देने के समय सहसा आधी तूफान का आना और उसमें क्रास पर से ईसा की लाश का लापता होकर, दिव्य आत्मा के रूप में पुनः अवतरित होना, ये अलौकिक घटनाएँ हैं जिनसे ईसा की दिव्यता को प्रमाणित किया गया। इसाइयत की रहस्यवादिता दिव्य पिता (Holy God), दिव्य पुत्र (ईसा) और दिव्य आत्मा (Holy Ghost) के विचार पर आधारित है। ईसा की दिव्य आत्मा

ईश्वरेच्छा के अनुसार प्रतिपादित एक दिव्य विधान (Divine Law) है, जिसके अनुसार जीवन गालन के लिए ईसा ने जनसाधारण का आह्वान किया। मनुष्य, ईसा के अनुसार प्रकृति तथा आत्मा लौकिक तथा अलौकिक और ईश्वरीय तथा मानवीय गुणा का मिलन स्थल है। मानव का कल्याण है इस पृथ्वी पर स्वर्ग साम्राज्य (Kingdom of Heaven) की स्थापना में। स्वर्ग-साम्राज्य स्वयं मनुष्य के अन्तराल में है जिसे धार्मिक निकालना उमका कर्तव्य है। स्वर्ग-साम्राज्य वस्तुतः मस्तिष्क की वह अवस्था है जहाँ मनुष्य को मृत्यु ज्ञान का आभास हो। ईश्वरत्व और सत्य एक ही मिति रूप है और ईश्वर का अनुभव उसे ही हो सकता है जो अपने विवेक को जाग्रत कर सके और इन्द्रिय जगत से ऊपर उठ सके। विवेक का मोड़ने का प्रण परचाताप (Repentance) है। स्वर्ग-साम्राज्य में प्रवेश पुनर्जन्म (Rebirth) है। पुनर्जन्म उसका नया हीता है जो निरा प्रार्थना है। पुनर्जन्म ज्ञान है गूढ़, आंतरिक और आध्यात्मिक का। अब इसाइयत आइस्ट का माध्यम में, ईश्वरेच्छा प्राप्ति करने के लिए विधान की प्राप्ति करने की एक आस्था है। इसी आस्था में, एक और इसाइयत की रहस्यवादिता विधीयता होती है और दूसरी ओर उमका मजहबीयन जो रामन प्रभाव के अंतर्गत चर्च (Church) के रूप में संगठित हुआ।

ईसा ने वही प्रवचन दिया जो बौद्धत्व प्राप्त महात्मा बुद्ध ने। महात्मा बुद्ध की भांति इसा ने भी बौद्धत्व प्राप्ति के लिए आह्वान दिया जिसका प्रमाण ईसा के प्रवचन हैं। बौद्धत्व प्राप्ति के लिए इसा ने गहन त्याग किया जोर बाद में जन साधारण को त्यागमय तपस्वी जीवन वितान की प्रेरणा दी। मरणात्पश्चात् समान माना क्योंकि सभी एक ही पिता की सन्तान हैं। अहिंसा ईश्वरीय जीवन का मन्त्र है। शत्रु और मित्र सभी समान हैं। ईसा के प्रवचन, एक धार, आध्यात्मिक और पार लौकिक जीवन के लिए प्रेरणा है जो दूसरी ओर, वस्तुतः प्रकृत ममता और वधुता की भावना के प्रवर्धक हैं। ईसा के लिए राजा और दाम समान हैं। दिव्य जीवन का अनुभव मनुष्य को मृत्यु मुलभ है। अब मानव-कल्याण की आशा भी मनुष्य मुलभ है। ईश्वरेच्छा का अनुभव और उमका अनुसार जीवन दान में ही मनुष्य का कल्याण है। इस प्रकार ईसा ने सांस्कृतिक नैतिकता का उपान किया। सम्भवतः शरीरारण, उद्धान ईश्वरेच्छा का उन्मत्त प्रसार करने के लिए कृपा। रहस्यवादी आस्था पर आधारित होने के कारण ही इसाइयत में दीर्घा जन की प्रथा चली चली किन्तु

में विश्वास इसाइयत का मुख्य आधार है क्योंकि वही मनुष्य और ईसा के बीच की कड़ी है। ईसा के उपदेशों, ईश्वर, ईसा और उनकी दिव्य आत्मा में विश्वास, इसाइयत का मूलधार है। इसाइयत में निहित विश्वास के अनुसार, ईसा मर नहीं सके सदेह आत्माओं के समार में चले गए हैं। अतः, अज्ञित ईसा में विश्वास इसाइयत का एक मुख्य आधार है।

दीक्षा लिए रहस्यवादी आस्था से मिलने वाली इच्छा का ज्ञान नहीं है। सक्ता । यही से इसाइयत में बपतिस्मा (Baptism) की प्रथा प्रारम्भ होती है और यही से इसाइयत का प्रसार और प्रचार करने का आन्दोलन (Pro elytization) । स्वयं ईसा ने ईश्वरीय ज्ञान के प्रचार के लिए जपन गिप्सा का आदेश दिया । कोई आश्चर्य नहीं यदि इसाइयत में ईसा द्वारा दिए गए दिव्य ज्ञान का निश्चित, विगुद्ध और अनिम (Infallible) माना जाता है । इसी का परिणाम है कि इसाइयत एक जबरदस्त राद्धान्त (Dogma) बन गया जबकि स्वयं ईसा राद्धान्त विरोधी थे ।

इसाइयत, इस्लाम और बुद्धवाद की भाँति एक अतिराष्ट्रीय (Supernational) मजहब है जिसका उदगम और विकास अनेक प्रभावाँ से अतन्त्र हुआ है । यह पहले ही कहा जा चुका है कि इसाइयत का आधारभूत रूप यूनानी है और इस कारण, इसका आधार ईसा के पहले प्रचलित यहूदी धर्म में है । यद्यपि उस पर दयावान् 'दायी, साधु और विधानकर्ता' स्वर्ग की कल्पना समार में नतिक जहाजी (Values) और नियमों की सर्वोच्चता तथा एकेश्वरवाद इसाइयत में यहूदी धर्म से आये हैं । ईसा से दस हजार वर्ष पहले पाँच सौ वर्ष तक बबीलोन (Babylon) और एशिया माइनर (Asia Minor) के माध्यम से भारतीय प्रभाव यहूदियों पर पड़ चुका था । मिस्र भी इस प्रभाव का माध्यम था । राधाकृष्णन के अनुसार ईसा के पूर्व फिलिस्तीन पर बुद्धवाद का प्रभाव पड़ चुका था और यही कारण है कि इसाइयत की आत्मा बुद्धवाद के अधिक समीप है । बौद्धों का मध-मगठन ही राम के प्रभाव में चंच-मगठन के प्रभाव में अवतरित हुआ । इसाइयत में गतान की कल्पना इसाइयत का जड़धर्म धर्म की दत्त है । यहूदियों ने यूनानी विचारधारा का प्रभावित किया और बाद में यूनानी विचार और दान ने इसाइयत का । यहूदियों के एकेश्वरवाद का यूनानियों ने अन्तर्गत दार्शनिक और अन्तर्गत रहस्यवादी जामा पहनाया और बाद में यहूदी प्रदत्त में उत्पन्न होने वाले इसाई मजहब का अर्पित कर दिया । इसाइयत का उनके बौद्धिक आधार यूनान में ही मिला—यह बौद्धिक आधार जिनकी महायत्ना से इसाइयत यारोपीय सामाजिक विरासत का एक अंग बन गयी । व्यक्ति की गरिमा युक्तियुक्त विचारधारा पर जोर मानवतावादी और स्वतन्त्रता, समता तथा बहुता के विचार इसाइयत का यूनान के ही योगदान हैं । इस योगदान ने कालान्तर में फ्रांस का राज्यशास्त्र का प्रेरणा देकर व्यक्ति-स्वातन्त्र्य के लिए एक अभिनव मार्ग खोला दिया । राधाकृष्णन के अनुसार इसाइयत का हृदय एशियाई है, उगना मस्तिष्क (धर्म विद्या) यूनानी और उमकी दत्त (चंच मगठन) रोमन है ।

इसाई की प्रथम गत गतानियाँ में यारोप में इसाइयत का प्रचार हुआ जिससे यारोप के विकास में एक निश्चित परिवर्तन हुआ । इसाइयत में निहित रहस्यवाद तथा अनिम आगा के सिद्धान्त (Eschatology) और मोहात् समता और मानवता की भावनाएँ इसाइयत के प्रचार में सहायक बन । यूनान में मिला हुआ बौद्धिक आधार

न विचारका का आकर्षित किया ता उमम निहित चमत्कारी तत्वों न जघञ्चिश्चामिया को । यूनानिया के सम्य असम्य विषयक विचारा के प्रभाव म और वपनिष्मा की प्रथा के कारण इसाइयत ने ससार को ईसाई (Christian) और गैर ईसाई (Heathen) म बाट दिया और गरइसाई क प्रति वही रख आस्त्यार किया जो यूनानिया ने गरयूनानियों क प्रति आस्त्यार किया था । इस्लाम के उन्भव का इसाइयत एक मुख्य प्रेरणास्रात था किन्तु, बाद म जब इस्लाम का प्रचार योरोप म हुआ ता दाना परस्पर प्रतिद्वन्द्वी हो गए । इमान्या के तीयस्थान मस्लम पर मुसलमाना का अधिकार हात ही योरोप का इसाई समाज राप से उबल पडा । ग्यारह सौ सत्ताब स लेकर बारह सौ मनर तक योरोप म धम युद्धा की आग सुलगती रही । इसके परिणामस्वरूप, इस्लाम और इमान्यत, दाना म धर्माघता, अमहिष्णुता और आनामकता की भावना बढी । आग चलकर औद्योगिक प्रगति क बाद, जब योरोप का ससार म राजनतिक आधिक प्रभुत्व बडा और यनान की सम्य-असम्य विषयक भावना क फलस्वरूप योरोप क लग योरोप का ही मानव-सम्मता तथा प्रगति का चरमतम प्रतीक मानने लग ता इसाइयत ससार का सम्य बनान का एक मिश नरी माध्यम बनो । आत्यत का लग पहल ही स अमाघ (Infallible) मानत जाए थ किन्तु अब और भी मानन लग । इसाइयत के समम अय धर्मों का तुच्छ मनवा जान लगा । और, इन सबका परिणाम यह हुआ कि योरोप न इसाइयत का साम्राज्य बाद का एक साधन बनाया । योरोपीय साम्राज्यवाद व्यापारिया और धम प्रचारका क ही माध्यम से पनपा और प्रसारित हुआ ।

योरोप म रसायन क प्रवेग म एक ओर, धर्माघता और धमयुद्धा का जम हुआ तो, दूसरी ओर अरब की कग और विज्ञान का योरोप म प्रचार घनानिकता हुआ । अरब न गणित (Mathematics) ज्यातिष (Astronomy) औषधिशास्त्र (medicine), रसायनशास्त्र (Chemistry), प्राणि शास्त्र (Zoology) और वही-मता पद्धति सम्बन्धा अपना ज्ञान योरोप का अर्पित किया । अपने ज्ञान विज्ञान का एर बला अग अरब न भारत स लिया था । सिक्न्दर के बाद और अरब के उथान क पहल, भारतीय ज्ञान विज्ञान की छाप यूनान पर पड चुकी थी । अत, योरोप म अरब और यनानियों क माध्यम म ज्ञान वाली ज्ञान विज्ञान की धाराधा का मिलन वस्तुत उन दा धाराधा का मिलन था जो एक ही उन्गम म निकलकर और अलग अलग मार्गों म बहकर पुन एक स्थान पर आकर मिलती हैं । किन्तु, दसवी और बारहवी शताब्दिया क बीच योरोप म अरब म मिल ज्ञान विज्ञान की, अरस्तू की परम्परा और इसाइयत क सिद्धान्तों के साथ मिलान का प्रयत्न किया गया जिसक कारण हम आज क ज्ञान विज्ञान के प्रवाह म धर्मशास्त्र (Theology) का स्थान प्रघात हो गया । इहा परिस्थितिया म, चच अधिराष्ट्रीय (Supernatural) हो गया और विगत योरोप का मुख्य प्रेरणास्रात हा

गया। इसी काल में, योरोप में वह विचारधारा चली जिसके कारण सदियों तक लागू का यह विश्वास रहा कि ज्ञान की खान वस्तुतः विगत में है। इसी युग में, योरोप के बौद्धिक जीवन में एक ओर, पाणिद्वयपन (Scholasticism) की परम्परा उत्पन्न होती है तो, दूसरी ओर, उसमें इतिहास-मुखता (Historicity) का समावेश होता है। आगे चलकर, यही इतिहास-मुखता सेंट आगस्टाइन (St. Augustine) कोम्टे (Comte), हेरबर्ट स्पेंसर (Herbert Spencer) हीगल (Hegel) और मार्क्स (Marx) में एक ऐतिहासिक नियतिवादी विचारधारा (Historical Deterministic Thought) में अवतरित होती है। सम्भवतः यही कारण है कि योरोप में जन्मने वाले सभी सामाजिक शास्त्रों का उदगम दार्शनिक धर्मशास्त्र (Philosophical Theology) में हुआ, इतिहास-मुख हो गया है। ऐतिहासिक नियतिवाद (Historical Determinism) की विचारधारा आज भी योरोप के बौद्धिक जीवन में विद्यमान है और उसके प्रमाण हैं, एक ओर, टोयनबी (Toynbee) और सारोकिन (Sarokin) की कृति में तथा, दूसरी ओर, रूस में चलने वाली साम्यवादी विचारधारा में। इस ऐतिहासिक नियतिवादी विचारधारा की सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि इसमें सत्ता की भूत और वर्तमान गतिविधियों का निर्वाचन योरोपीय इतिहास की गतिविधियों के आधार पर दिया गया है। मार्क्स (Marx) में यह एक एकांगी दृष्टिकोण अपनी परीक्षा पर पहुँचा हुआ है।

बारहवीं शताब्दी के बाद, योरोप में उस नवजागरण की लहर दौड़ी जिसे वर्तमान बौद्धिक युग के लिए माँग प्रगस्त किया। पुनर्जागरण में, एक ओर, बौद्धिकता बढ़ी तो दूसरी ओर ग्रीको-रोमन (Graeco Roman) ज्ञान का प्रत्यक्ष प्राप्त करने की प्रबल लालसा। इस लालसा का प्रज्वलित करने का श्रेय अरबी और बयजान्टिन (Byzantine) साम्राज्य के विद्वानों को है। इसका परिणाम यह हुआ कि योरोप में ग्रीकियों की बौद्धिक साहित्यिकता और समीक्षण (Exploration) की भावना का प्रभाव बढ़ा। चर्च इस नवजागरण का प्रणेता था। अतएव 'सबसे प्रारम्भिक रूप में चर्च और धार्मिकता की छाप है। किन्तु जब योरोप में धर्मविदों ने इल्लहामी भ्रम (Revealed Religion) और प्रकृति (Nature) को अलग अलग प्रमाण मानकर प्रकृति के अध्ययन में युक्तियुक्त कार्य कारण विचार को स्थान दे दिया तो अप्रत्याश रूप में उठने वाला वर्तमान बौद्धिक विचारधारा के विकास के लिए माँग उत्पन्न कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि योरोपीय विचार में एक आर, सद्धाता (Dogmas) के प्रति सतत और विरोध का दृष्टिकोण अपना कर उन्होंने विरोध और उनकी अवहत्या करनी प्रारम्भ कर दी ता, दूसरी ओर प्रकृति को स्वचलित मान कर उमम पाई जाने वाली अनुभवगत व्यवस्था में निहित कार्य-कारणों के सम्बन्ध आधार पर उन गतिविधियों की व्याख्या करनी प्रारम्भ की जो सभी स्थान और कालों में एक जैसे हैं। न्यूटन (Newton) के मिश्रित दृष्टिकोण

प्रमाण है। न्यूटन (Newton) ने अपन गुरु-वाक्यण के सिद्धांत का प्रतिपादन पेट से गिरते हुए फल का देखकर किया था। यही संयारापममजहबी रूढ़ता (Religious Dogmas) और कल्पवादिता (Ritualism) के विरुद्ध प्रतिक्रिया प्रारम्भ होती है और आगे चलकर जिम्का परिणाम हुआ इसाइयत का कथालिक (Catholic) तथा प्रोटस्टेंट (Protestant) सम्प्रदायो म विभाजन। चौदहवीं शताब्दी के सातवें दशक म, इसी प्रक्रिया के फलस्वरूप, सुधारवादी आन्दोलन की लहर दौड़ी। सुधारवादी आन्दोलन के प्रभाव म प्राचीन चर्च संगठन की तीव्र आलाचना तथा राष्ट्रीय चर्चों (National Churches) की स्थापना की गयी और मानव के सम्पूर्ण विकास के लिए युक्तियुक्त आदर्शों की तलाश की गयी। योरोप म विश्वविद्यालयों की स्थापना इसी काल म हुयी। विश्वविद्यालयों के माध्यम स उस ज्ञान विज्ञान का प्रसार किया गया जा पुनर्जागरण का प्रेरणास्रोत था।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण के प्रादुर्भाव के साथ-साथ, योरोप म वैज्ञानिक युग का प्रारम्भ हुआ। योरोप की वैज्ञानिक विचारधारा, जसा कि पहले कहा जा चुका है, उस दृष्टिकोण और मायता से उत्पन्न हुयी जिसम क्लहामी ज्ञान और प्रकृति को अलग अलग मान लिया था। प्रकृति को स्वामाविक मानकर, उसके अनुभवगम्य प्रमेयों का निर्माण करने वाले नियमों के बाय कारण निर्धारित करने के प्रयास म ही उस परम्परा का प्रारम्भ हुआ जिस अनुभूतिवाद (Empiricism) की मना दी गयी है और जिसका ज्ञात आरस्तू (Aristotle) ही परम्पराजाम है। यही सं विज्ञान की वह परिभाषा प्रारम्भ हुयी जिसम निरीक्षण और वर्गीकरण तथा आगमन और निगमन की अध्ययन रीतियों द्वारा शाश्वत नियमों को ढूँढ निकालने का भाव निहित है। योरोप म ज म और विकसित सार भौतिक विज्ञान (Physical Sciences) इसी प्रयास म जम हैं और लगभग सभी का इतिहास आरस्तू (Aristotle) तक जोड़ा जाता है। इस दृष्टिकोण म विज्ञान के क्षेत्र म वही विषय आ सकता है जो अनुभवगम्य है और जिन पर उपरोक्त अध्ययन रीतियों का प्रयोग करके बाय कारण मबधी सावकालिक तथा सावभौमिक नियमों का निर्धारण किया जा सकता है। यही परम्परा वह परम्परा है जिस विज्ञान की प्रकृतिकोण परम्परा (Naturalism) कहत हैं। भौतिक-मसार मे इस परम्परा की सफलता देखकर, इसका प्रयोग समाज और उसके विभिन्न पहलुओं का अध्ययन पर किया गया और जित दिन म यह मायता घर कर गयी कि सामाजिक प्रमेयों का उसीप्रकार म अध्ययन किया जा सकता है जिस प्रकार भौतिक प्रमेयों का, उसी दिन म योरोप के सामाजिक शास्त्र, धर्मविद्या, मनन और ऐतिहासिक नियतिवाद के प्रभाव से निश्चल कर अनुभूतिवाद के प्रभाव म आ गए। योरोप के विद्वानों ने सामाजिक प्रमेयों को भी उसी प्रकार स सावकालिक तथा सावभौमिक नियमों के आधार पर स्वकालिक माना है जिस प्रकार स प्राकृतिक प्रमेय हैं। भौतिक और सामाजिक प्रमेय का समान मानन ही, सावययी (Organismic) और

मशीनवादी (Mechanistic) सिद्धांता के लिए माग प्रशस्त हो गया और इन सिद्धांता का आधार पर यह प्रतिपादित किया गया कि सामाजिक वास्तविकता वस्तुतः समष्टि में समायी है न कि व्यक्ति में और व्यक्ति समष्टि में उसी प्रकार रहते हैं जिस प्रकार प्राणियों में कोष्ठ या मशीन में पुर्जें। व्यक्ति और समष्टि को लेकर योरोप में जो समस्या है उसका स्त्रात इसी परम्परा में है।

इस विकास का परिणाम यह हुआ कि योरोप एक ऐसे यूटन (Newton) के लिए लालायित हो उठा जो समाज विषयक मात्रकालिक तथा सावभौमिक नियमों का ढूँढ निकाले। किंतु यह लालसा केवल लालसा मात्र रही क्योंकि सामाजिक और भौतिक प्रमेय वस्तु ही भिन्न हैं जैसे चीनी और गन्ना। योरोप में इस विकास के दो परिणाम हुए—एक ओर, इससे बचानिक और युक्तियुक्त (Rational) बौद्धिकता का जन्म हुआ जिससे यारोपीय विचार सिद्धांतों (Logmas) के प्रभाव से मुक्त हो गया और, दूसरी ओर, इससे आध्यात्मिकता का प्रभाव कम हुआ विज्ञान और धर्म में विरोधाभास उत्पन्न हुआ। दसन का स्थान गीण हो गया और मानव जीवन की जासाओं के प्रति एक अतिक्रमिक दृष्टिकोण का अभ्युदय हुआ। सामाजिक नियोजन और नियंत्रण का विचार और भी प्रबल हो गया। इसाइयत द्वारा जिस स्वर्ग साम्राज्य की कल्पना की गयी थी वह समाज कल्याण समाज सेवा और कल्याणकारी राज्य में बदल गया। सामाजिक और भौतिक विज्ञानों का एक स्तर पर लान के प्रयास तथा उनमें निहित विरोधाभास ने योरोप के मानव विषयक चिन्तन में विरोध उत्पन्न किया। इसमें यारोपीय चिन्तन में उस नराइय का समावेश हुआ जिसे यारोपीय सभ्यता की गीम (Schism) कहा जाता है। सामाजिक विज्ञानों में तरगत भौतिक विज्ञानों की परम्परा में मनुष्य केवल भौतिक या प्राकृतिक माना गया जिसका परिणाम यह हुआ कि बचानिक स्पष्टीकरण में मानव की भौतिक प्रवृत्तियों पर ही जोर दिया गया। इसाई यारोप यह भूल गया कि मानव में भौतिक तथा आध्यात्मिक और पारिविक तथा अपारिविक का मगम है।

सुधारवादी जाणाला विज्ञानज्ञानिता और समाज पर योरोप का आधिक राजनतिक प्रभुत्व बचानिक प्रौद्योगिकी के मोगणन है। बचानिक प्रौद्योगिकी का प्रारम्भ उस समय से होता है जब से योरोप में बिजली, भाप प्रौद्योगिकी और तेल जसा प्राकृतिक वस्तुओं से शक्ति उत्पन्न करके मनुष्य ने उसका प्रयोग प्रौद्योगिकी के रूप में करना प्रारम्भ किया। बचानिक युग के पहल की प्रौद्योगिकी धर्म सापक्ष थी और उसके विकास की गति धीमी था। जो हवी गतांनी के पहल मनुष्य प्रौद्योगिकी में या तो अपने शरीर की शक्ति का प्रयोग करता था या पालतू जानवरों की शारीरिक शक्ति का। हवा का प्रयोग वह करता था किंतु केवल जहाज चलाने में या हवा चक्की चलाने में। चौदहवां शताब्दी के बाद से भाप, बिजली, आसल द्रव्य और परमाणु शक्ति के आविष्कार

के साथ साथ योरोप में हान वाले प्रौद्योगिक विकास के द्वारा धीरे धीरे, योरोप का रूपांतरण होता रहा है। छापेखाने का आविष्कार और प्रयाग इसका उदाहरण है। छापेखाने से जनसाधारण में ज्ञान का प्रसार और सद्भाववाहकता बढ़ी। योरोप में बाइबिल का अनुवाद कई भाषाओं के माध्यम से जनमुलभ हुआ। मुद्रित पुस्तकों से ही योरोप में उस जिज्ञासावादी तथा विवेकी भावना का प्रसार हुआ जो सोलहवीं शताब्दी में प्रोटस्टेंट सुधार के लिए उत्तरदायी हुई। समाचार पत्र, आधुनिक प्रौद्योगिकी का दिया हुआ एक सबल सद्भाववादी उपकरण, छापेखाने पर ही निर्भर है।

भौतिक प्रमत्त के कार्य-कारण का पता लगाने के प्रयास में भाप, बिजली और परमाणु जसी भौतिक शक्तियों को समझ करने से प्रौद्योगिकी के प्रयोग के वे साधन निकले जिनसे योरोप में प्रौद्योगिकी और उसके प्रयोग में अमूल्य चूल परिवर्तन ही नहीं हुए बरन योरोप में प्रौद्योगिकी का प्रभाव सर्वोपरि हो गया। भाप और बिजली के प्रयोग से यातायात और उत्पादन के साधनों का मशीनीकरण हुआ जिससे उनकी गति और भी बढ़ गयी। यातायात के द्रुतगामी साधनों के कारण, योरोप का सत्कार के अर्थ भागों से सम्बन्ध स्थापित हुआ। उत्पादन के साधनों की गति बढ़ने से उत्पादन बढ़ा जिसके लिए बाजार और खरीदारों की आवश्यकता हुयी। मशीनों से बने माल के अत्यधिक अधिक सस्ता होने के कारण, बाजार और खरीदार मिलने में सुविधा हुयी। उत्पादन, उपभोग के लिए न होकर लाभ के लिए होना लगा। बाजार, खरीदार और बच्चे माल की तलाश में योरोपियना न अपना उपनिवेश और साम्राज्य स्थापित किए। इस विकास का परिणाम यह हुआ कि योरोप एक कारखाना बन गया और सत्कार के अर्थ देश एक बड़े बाजार का अंग। कारखाना में मजदूरों की आवश्यकता हुयी जिसके परिणामस्वरूप प्रजातंत्र और व्यक्ति-स्वातंत्र्य के नाम पर सामंतवाद के विरुद्ध आंदोलन चला। जहाँ कारखाने थे, वहाँ की महत्ता बढ़ने लगी और वर्तमान शहर का जन्म हुआ। इस प्रकार, प्रौद्योगिकी के विकास के साथ साथ योरोप में औद्योगिकीकरण, शहरीकरण और पूँजीवाद का विकास हुआ।

पूँजीवाद विकास की वह अवस्था है जिनमें उत्पादन लाभ और विश्व के लिए किया जाता है और जिसमें श्रम का श्रेय विश्व पारिवर्तन वस्तु के समान होता है। प्रौद्योगिकी के प्रभाव के कारण स्त्री स्वातंत्र्य का आंदोलन छिटा क्योंकि, एक आर, गम निराश्रित तरीका न स्त्री का प्रजनन के भार से मुक्ति दी ता, दूसरी आर, प्रौद्योगिकी के प्रयोग के कारण ऐसे पण अस्तित्व में आए जिन्हें बरके स्त्रियाँ आर्थिक स्वातंत्र्य भी पा सकती थीं। योरोप की वर्तमान वर्ग प्रथा प्रौद्योगिकी और पूँजीवाद की ही देन है। प्रौद्योगिकी ने, एक आर, विप्लोचक तथा धर्मनिर्पणिता को प्रोत्साहित किया ता, दूसरी आर सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन पर व्यापारीकरण के प्रभाव का।

मिनमा, टेलीविजन रेडियो, टेलीफोन और तार बिजली की देन हैं। प्रौद्योगिकी के ये उपकरण व सद्भाववादी साधन हैं जिनमें, एक और, योरोपीय साम्राज्य

मशीनवादी (Mechanistic) सिद्धांतों के लिए मांग प्रशस्त हो गया और इन सिद्धांतों का आधार पर यह प्रतिपादित किया गया कि सामाजिक वास्तविकता वस्तुतः समष्टि में समायी है न कि व्यक्ति में और "व्यक्ति समष्टि में उसी प्रकार रहता है जिस प्रकार प्राणियों में कोष्ठ या मशीन में पुर्जें।" व्यक्ति और समष्टि को लेकर योरोप में जो समस्या है उसका स्रोत इसी परम्परा में है।

इस विकास का परिणाम यह हुआ कि याराप एक ऐसे यूटन (Newton) के लिए लालायित हो उठा जो समाज विषयक सांस्कृतिक तथा सांभौतिक नियमों का ढूँढ निकाल। किंतु यह लालसा केवल लालसामान रही क्योंकि सामाजिक और भौतिक प्रमेय धर्म ही भिन्न हैं जोस चीनी और गना। यारोप में इस विकास के दो परिणाम हुए—एक अर, इससे वनानिक और युक्तियुक्त (Rational) बौद्धिकता का जन्म हुआ जिससे यारापीय विचार सिद्धांतों (Logmas) के प्रभाव में मुक्त हो गया और दूसरी ओर इससे आध्यात्मिकता का प्रभाव कम हुआ, विज्ञान और धर्म में विरोधाभास उत्पन्न हुआ। दग्न का स्थान गौण हो गया और मानव जीवन की जागृताओं के प्रति एक अधिक गत्यात्मक दृष्टिकोण का अभ्युदय हुआ। सामाजिक नियोजन और नियंत्रण का विचार और भी प्रबल हो गया। इसाइयत द्वारा जिस स्वयं साम्राज्य की कल्पना की गयी थी वह समाज-कल्याण समाज सेवा और कल्याणकारी राज्य में बदल गया। सामाजिक और भौतिक विज्ञानों का एक स्तर पर लाने का प्रयास तथा उनमें निहित विरोधाभास ने याराप के मानव विषयक चिंतन में विरोध उत्पन्न किया। इसमें यारोपीय चिंतन में उस नराशय का समावेश हुआ जिस यारापीय सभ्यता की क्षीम (Schism) कहा जाता है। सामाजिक विज्ञानों में तरंगित भौतिक विज्ञानों की परम्परा में मनुष्य केवल भौतिक या प्राकृतिक माना गया जिसका परिणाम यह हुआ कि वनानिक स्पष्टीकरण में मानव की भौतिक प्रवृत्तियों पर ही जोर दिया गया। इसाई यारोप यह भूल गया कि मानव में भौतिक तथा आध्यात्मिक और पार्थिव तथा अपार्थिव का संगम है।

गुधारवादी या दार्लन विज्ञानवादिता और संसार पर याराप का आधिकारिक राजनतिक प्रभुत्व वनानिक प्रौद्योगिकी के योगदान है। वनानिक प्रौद्योगिकी वनानिक का प्रारम्भ उस समय से होता है जब से यारोप में विजली, भाप प्रौद्योगिकी और तल जसी प्राकृतिक वस्तुओं से शक्ति उत्पन्न करके मनुष्य ने उगका प्रयाग प्रौद्योगिकी के रूप में करना प्रारम्भ किया। वैज्ञानिक युग के पहले की प्रौद्योगिकी धर्म सापण थी और उसके विकास की गति धीमी थी। चौदहवीं शताब्दी के पहले मनुष्य प्रौद्योगिकी में या तो अपने शरीर की शक्ति का प्रयाग करता था या पालतू जानवरों की पारारिक शक्ति का। हवा का प्रयोग वह करता था किंतु केवल जगज चलाने में या हवा चक्की चलाने में। चौदहवीं शताब्दी के बाद से भाप, विजली, आयत इजिन और परमाणु शक्ति के आविष्कार

के साथ साथ योरोप में होने वाले प्रौद्योगिक विकास के द्वारा, धीरे धीरे, योरोप का रूपांतरण होता रहा है। छापेखाने का आविष्कार और प्रयोग इसका उदाहरण है। छापेखाने से जनसाधारण में ज्ञान का प्रसार और सद्भाववाहकता बढ़ी। योरोप में बाइबिल का अनुवाद कई भाषाओं में माध्यम से जनमुलभ हुआ। मुद्रित पुस्तकों से ही योरोप में उस जिनासावादी तथा विवेकी भावना का प्रसार हुआ जो सोलहवीं शताब्दी में प्रोटस्टेंट सुधार के लिए उत्तरदायी हुई। समाचार पत्र, आधुनिक प्रौद्योगिकी का दिया हुआ एक सबल सन्देशवादी उपकरण, छापेखाने पर ही निर्भर है।

भौतिक प्रमेया के कार्य-कारण का पता लगाने के प्रयास में, भाप बिजली और परमाणु जसी भौतिक शक्तियों का सन्तुष्ट करने से प्रौद्योगिकी के प्रयोग के वे साधन निकले जिनसे योरोप में प्रौद्योगिकी और उसने प्रयोग में आमूल बूल परिवर्तन ही नहीं हुए बल्कि योरोप में प्रौद्योगिकी का प्रभाव सर्वोपरि हो गया। भाप और बिजली के प्रयोग ने, यातायात और उत्पादन के साधनों का मशीनीकरण हुआ जिससे उनकी गति और भी बढ़ गयी। यातायात के द्रुतगामी साधनों के कारण, यातायात, संचार के अनेक भागों से सम्बन्ध स्थापित हुआ। उत्पादन के साधनों की गति बढ़ने से उत्पादन बढ़ा जिसके लिए बाजार और खरीदारा की आवश्यकता हुयी। मशीनों के बने माल के अपेक्षाकृत अधिक सस्ता होने के कारण, बाजार और खरीदारा निम्न

वाद को प्रोत्साहन और बल मिला, राष्ट्र राज्य (Nation State) का सर्वोच्च प्रभुता का उत्पन्न हुआ तथा उग्र राष्ट्रवादिता का प्रेरणा मिली और दूसरी ओर, ज्ञान विज्ञान व विकास और प्रसार में सहायता मिली। दूरबीन, सुन्दीन, एक्सरे और सिनेमा के प्रयोग से औपधिशास्त्र (Science of Medicine) जीव विज्ञान (Biology) और ज्योतिषशास्त्र (Astronomy) का आगातीत विकास हुआ। शहरीकरण और पूँजीवाद के प्रभाव के अंतर्गत, सिनमा रडियो और टेलीविजन के माध्यम से, परम्परागत मनोरंजना का व्यापारीकरण हुआ। शहरीकरण, व्यापारीकरण औद्योगिकरण तथा यातायात के साधनों ने जहाँ एक ओर, यकितवाद को प्रोत्साहित करके सामाजिक अधिक सगठन में प्रतियोगिता का समावेश किया वहाँ दूसरी ओर, सामाजिक सगठन में द्वितीयक समूहों को प्रधानता देकर तथा राष्ट्र राज्य (Nation State) का सर्वोच्च प्रधानता प्रदान करके, उस समष्टिवादी समाज का जन्म दिया जिस काल में वहीँ ने पुँज समाज (Mass Society) कहा है—वह समाज जो सेना की भाँति सत्ताग्रस्त वर्गीकृत समाज है जिसमें यकित की भूमिका सक्रिय न होकर निष्क्रिय रहती है।

इस विकास प्रक्रिया में समस्याओं का भी रूपांतरण कर दिया। परिवार का उपयोग की इकाई बनाकर तथा उसके अनेक काया का राज्य समाज के कार्य क्षेत्र में लाकर, एक ओर उसके जाकार का स्त्री पुत्र और बच्चा में निहित कर दिया तो दूसरी ओर, परिवार में यकितवादिता का समावेश किया। विवाह का धार्मिक प्रभाव से निकाल कर उसे एक सविदा (Contract) का रूप प्रदान किया गया। जायिक समस्याओं में औद्योगिकरण तथा व्यापारीकरण का समावेश हुआ। जायिक समस्याएँ पूँजीवादी तथा साम्यवादी प्रकारों में बँट गयीं। धर्म आस्थामात्र रह गया—वह आस्था जो केवल यकितगत मायता की वस्तु है। अलौकिक में विश्वास को अधिक युक्तियुक्त बनाने का परिणाम यह हुआ कि धर्म केवल धर्मविद्या (Theology) मात्र रह गया। सम्प्रदाय (Kins) के स्थान में, यकित पर औपचारिक (Formal) तथा अनौपचारिक (Informal) समूहों का नियंत्रण अधिक व्यापक हो गया। कला धर्म के प्रभाव से निकल कर व्यापारिकता के प्रभाव में आ गयी। प्रकृतिवादिता के प्रभाव में कला केवल कला के लिये रह गया जबकि युक्तियुक्त विचारधारा के प्रभाव ने कला में उपादयता के विचार का प्रोत्साहित किया।

प्रौद्योगिकी के उत्तरात्तर विकास से याराप का सामाजिक-जायिक रूपांतरण हुआ उससे वर्तमान आगों का अभ्युदय हुआ और उसके ससारव्यापी विकास के साथ साथ, उनमें सम्यतायी तत्वा का विकास हुआ। पूँजीवादी तथा साम्यवादी जाद। और इगल०, फ्रांस तथा रूस की जनता तथा प्रौद्योगिकी के सतत विकास की पृष्ठभूमि में सम्भव हुई है। फ्रांस का राज्यवादिता (1789) का समता (Equality) स्वतंत्रता (Liberty) और बंधुता (Fraternity) का नारा यदि, एक

आर दगलण्ड की मंगला कार्टा तथा रक्तहीन राज्यप्राप्ति वाली घटनाओं से प्रभावित है ना, दूसरी ओर इसाइयत व सुधारवादी आन्दोलन और पूँजीवादी सामाजिक आदर्शों से। याराप म तथा योरोप के बाहर निरन्तर बढती हुई जनतन्त्र की माग और उसकी पूर्ति म प्रौद्योगिकी एक बडा हाथ है। समता, स्वतन्त्रता और बहुता क आदेश इसाइयत के योगदान हैं किन्तु उनकी प्राप्ति, धीरे धीरे प्रौद्योगिकी की सहायता से सम्भव हुई है। व्यक्तिवाद पर आधारित जनसत्तात्मक जनतन्त्र पूँजीवाणी विचार धारा की दन है। किन्तु पूँजीवाद स ही एक आर योरोपीय साम्राज्यवादिता का विकास हुआ और दूसरी ओर जनतन्त्रीय राष्ट्रवादिता का। योरोपीय साम्राज्य वादिता न योरोपीय साम्राज्यवाद का जन्म दिया और लोकतन्त्रीय राष्ट्रवादिता ने याराप के दगा तथा योरोपीय साम्राज्यवाद क प्रभाव मे आये दगा म राष्ट्रवादिता का जन्म दिया जिसके परिणामस्वरूप योरोप म ही याराप का विभद उत्पन्न हुआ और यारापाय सम्यता का प्रसार मधुपमय हो गया। जनतन्त्र क आदेश और पूँजी वादी साम्राज्यवाद स्वतः विरोधी हा गण जिसके परिणामस्वरूप योरोपीय सम्यता वतमान मसारा म बमे ही सघष का कारण बनी जन्म कि मध्ययुग म इस्लाम का प्रचार। इसी विनाम की पृष्ठभूमि म साम्यवाद का जन्म हुआ जा यारापीय सम्यता की एक बमे ही विगोपता है जस पूँजीवाद।

साम्यवाद (Communism) यारापीय सम्यता की दन है। साम्यवाद जठारहवी और उन्नीसवी शताब्दी क प्रारम्भ म याराप म चलन वाली विचार साम्यवाद धाराणा की एक उत्पत्ति है। साम्यवाद याराप के बौद्धिक विकास की एक स्वाभाविक उपज है। साम्यवाद क प्रणेता हैं कार्ल मार्क्स (Karl Marks 1818-1883) जिनका जन्म जमनी म हुआ था। साम्यवाद वस्तुतः एक दगन है और इसकारण साम्यवाद का मार्क्सवाद (Marxism) भी कहा जाता है। मार्क्सवादी दगन क आधार हैं समाज और मानव-व्यवहार का ऐतिहासिक-आर्थिक विवेचन मार्क्सवाद और समाजवाद। मार्क्स के अनुसार, मानव-व्यवहार और समाज क बारीक तत्व अपाथिव न हाकर पाथिव और भौतिक हैं। आगिक उत्पत्तिका की प्रक्रिया म जब मानव नाम क जीवधारी ने पाथिव पदार्थों स जीवन निर्वाह की वस्तुआ का उत्पादन करना प्रारम्भ किया तभी म वह अथ प्राणियों स भिन्न हाकर मनुष्य बहलाया। जन, माग म जा चेतना स बह आध्यात्मिक (Spiritual) न हाकर पाथिव (Material) है क्यकि मानव धनन पाथिव परिस्थि तिधा म ही उत्पन्न हाता है। प्रत्येक परिस्थिति (Thesis) अपनी विरुद्ध परिस्थिति (Anti Thesis) का जन्म देती है और दाना क सघष स एक नया सन्तुलित और गमन्वित परिस्थिति उत्पन्न हाती है जा, बागानर म, एक नयी परिस्थिति बनकर और पुन विरुद्ध परिस्थिति का जन्म दकर, एक नई परिस्थिति का जन्म देती है। इस प्रकार, गतार की रिवाज प्रक्रिया चला करता है। मानव व्यवहार और समाज इसी

द्वन्द्वात्मक विकास प्रक्रिया की उत्पत्ति है। इस विकास प्रक्रिया का कारण प्रौद्योगिकी है क्योंकि प्रौद्योगिकी के परिवर्तित होने से एक परिस्थिति की विराधी परिस्थिति उत्पन्न होती है। अतः, मार्क्स ने अपने ऐतिहासिक निबन्धन का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद (Dialectical Materialism) की सत्ता देखकर बर्नानिक हाने का दावा किया है। मार्क्स की इस बर्नानिकता के दावे का तात्पर्य यह निर्धारित करना है कि उसका ऐतिहासिक निबन्धन एक गाम्भवत सिद्धांत पर आधारित है। वह सिद्धांत है द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद जो सभी स्थान और कालों में वैसे ही लागू होता है जैसा भौतिक विज्ञान के नियम।

मार्क्स का ऐतिहासिक निबन्धन उद्विकासी (Evolutionary) है क्योंकि मार्क्स की अध्ययन रीति में यह मान्यता स्वयंसिद्ध मान ली गयी है कि मानव इतिहास जादि स अन्त की ओर उद्विकसित (Evolving) हो रहा है। मानव इतिहास का आदि समाय है उस अवस्था में जब मानव ने पारिष्व उपकरणों के द्वारा जीवन निर्वाह की वस्तुओं का उत्पादन करना सीखा। उस अवस्था से सामंतवादी और पूँजीवादी अवस्थाओं विकसित हुयी हैं। पूँजीवाद केवल एक सन्नमण-काल है क्योंकि इतिहास की निर्दिष्ट अवस्था है समाजवादी सम्यवाद। समाजवाद मानव इतिहास के विकास की वह सामाजिक स्थिति है जिसमें व्यक्ति का विकास पूर्णत्व को पहुँच जाहगा क्योंकि उस समाज में सभी व्यक्ति और सभी पेशे समान होंगे, विभिन्न सामाजिक कार्य (Social Functions) सामाजिक क्रिया के विभिन्न बर्तृत्पक रूप (Alternative Forms) होंगे, जिनमें से व्यक्ति अपनी योग्यता और आवश्यकतानुसार अपने कार्य का चुनाव करेगा। उत्पादन के सभी साधन समाज के नियंत्रण में होंगे। व्यक्ति के पूर्ण विकास और योग्यता तथा आवश्यकतानुसार जीवन मापन करने का स्वाभाविक परिणाम होगा राज्य (State) की अनावश्यकता। अंत धीरे धीरे राज्य (State) नुप्त हो जायगा। दूसरे शासन में तथा याराप की मार्क्स की पूर्ववर्ती विचार के सन्दर्भ में कहा जायता इसका निष्कर्ष यह होगा कि मार्क्स द्वारा प्रतिपादित वास्तविक समाजवादी अवस्था इस पथ पर स्वर्ग साम्राज्य (Kingdom of Heaven) की स्वतः भवतारण होगी। उसका बाद इतिहास की गतिविधि क्या होगी? मार्क्स ने इस प्रश्न को उठाया ही नहीं। यही उसकी बर्नानिकता का दावा समाप्त हो जाता है। यही उसका दान का आदर्श (Utopia) मात्र रह जाता है - वसा ही आत्म जसा कि इसाई मत में प्रतिपादित किया गया था। इसी कारण, मार्टिंडेल ने मार्क्स की विचारधारा का रहस्यवादी कहा है और राधाकृष्णन ने मार्क्स द्वारा प्ररित गाम्भवत का एक प्रकार की धमनिरपेक्ष इसाईयत कहा है।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद (Dialectical Materialism) की अध्ययन रीति द्वारा मार्क्स ने यह दिग्गान का प्रदास किया कि प्रत्येक उद्विकासी अवस्था में उसके प्रति द्वन्द्वी कारकों की उत्पत्ति होती है जिससे उस अवस्था में व उद्विकासी परिवर्तन होत

हैं जो इतिहास का उसकी पूर्वनिर्धारित दिशा की धार ले जाते हैं। चूँकि जीवन निर्वाह का आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये मनुष्य ही पार्थिव उपकरणों का प्रयोग करता है अतः, उत्पादन के पार्थिव उपकरण ही सस्याओं के कारण हैं। उत्पादन के पार्थिव उपकरणों में परिवर्तन आते ही सामाजिक सम्बन्धों और सस्याओं में परिवर्तन आता है। जिस जीवन निर्वाह की अवस्था में मनुष्य जाखेट और कठमूल पर ही निर्भर था, उस अवस्था में मनुष्य ममानये जीव समाज तथा सस्याओं का संगठन व्यक्तिवादी न होकर समाष्टिवादी था। कृषि के अनुसंधान में सामंतवाद का जन्म लिया और वर्तमान प्रौद्योगिकी में पूजावाद का। इस परिवर्तन का परिणाम यह हुआ कि मानव समाज निरंतर वर्गों में बंटता गया और पूजावादी अवस्था में आकर तीन वर्ग हो गये—पूजापति, मध्यमवर्ग और सर्वहारा वर्ग। प्रत्येक अवस्था के पार्थिव उपकरणों और उनके परस्पर सम्बन्धों में उस अवस्था के पार्थिव व्यवस्था उत्पन्न होती है जो अपने में सम्बन्धित सामाजिक व्यवस्था तथा सामाजिक चेतना का जन्म देती है। सामाजिक व्यवस्था का उत्थित विकास, वर्गव्यवस्था के उत्तरोत्तर विकास और समाप्ति की धार रहा है। सामंतवादी व्यवस्था में दास वर्ग—मालिक और गुलाम। किन्तु जब वर्तमान प्रौद्योगिकी का विकास हुआ तो उत्पादन के पार्थिव उपकरणों पर पूजापतियों का आधिपत्य हुआ और ऐसे वर्गों अस्तित्व में आये जिनके कारण मध्यवर्ग का विकास हुआ। समाज की वर्गव्यवस्था के विभिन्न वर्गों में परस्पर सहयोगी नहीं रहे। उनमें निरंतर मध्य चलता रहता है और जब एक अवस्था विपन्न की प्रतिद्वंद्वी अवस्था आता है तो यह वर्गमध्य तीव्रतम हो जाता है। वर्तमान प्रौद्योगिकी के विकास के साथ साथ, पूजावादी प्रजातन्त्रीय आन्दोलन का बढ़ना तथा सफल होना इसका उत्पहरण है।

मानव के अनुसार पूजावादी व्यवस्था में ही उसकी प्रतिद्वंद्वी तत्त्व निहित हैं। इसका प्रतिपादित करने के लिये मार्क्स ने राजनैतिक अर्थ व्यवस्था (Political Economy) के प्रतिष्ठित सिद्धांतों (Classical Theories) का आश्रय लेकर, प्रतिरिक्त मूल्य (Surplus Value) का सिद्धांत प्रतिपादित किया। इस आर्थिक सिद्धांत के अनुसार श्रमिक का जो धन मजदूरी के रूप में मिलता है वह उस धन से कम होता है जो वह अपने श्रम के द्वारा उत्पादित करता है। यही प्रतिरिक्त मूल्य पूजापति का मुनाफा है और वह उतना ही बढ़ता जाता है जितना कि उत्पादन बढ़ता जाता है। इसका एक परिणाम यह होता है कि श्रमिक वर्ग दिन पर दिन निधन होता जाता है और पूजापति वर्ग धनवान्। निम्न पूजापति और श्रमिक के बीच मध्य बढ़ता जाता है। इस मध्य में मध्यम वर्ग के लिए पूजापति के साथ रहने का प्रयास करते हैं किन्तु जसा कि इतिहास का पूर्वनिर्धारित विधान है वह रह नहीं सकते हैं क्योंकि, एक ओर, वह स्वयं निधन होकर सर्वहारा वर्ग में मिलते जाते हैं और, दूसरी ओर उनका वर्ग शतता विनाशोन्मुख होता है कि उगना उत्तरोत्तर विशुद्ध अर्थ व्यवस्था में अवश्यमायी हो जाता है। अतः समाज

द्वद्वात्मक विकास प्रक्रिया की उत्पत्ति है। इस विकास प्रक्रिया का कारण प्रौद्योगिकी है क्योंकि प्रौद्योगिकी के परिवर्तित होन से एक परिस्थिति की विरोधी परिस्थिति उत्पन्न होती है। अतः माक्स ने अपने ऐतिहासिक निवचन की द्वद्वात्मक भौतिकवाद (Dialectical Materialism) की सच्चा देकर, वचानिक होने का दावा किया है। माक्स की इस वचानिकता के दावे का तात्पर्य यह निर्धारित करना है कि उसका ऐतिहासिक निवचन एक शाश्वत सिद्धांत पर आधारित है। वह सिद्धांत है द्वद्वात्मक भौतिकवाद जो सभी स्थान और कालों में वैसे ही लागू होता है जैसे भौतिक विज्ञान के नियम।

माक्स का ऐतिहासिक निवचन उदविकासी (Evolutionary) है क्योंकि माक्स की अध्ययन रीति में यह भाव्यता स्वयंसिद्ध मान ली गयी है कि मानव इतिहास जादि स अत की ओर उदविकसित (Evolved) हो रहा है। मानव इतिहास का आदि समाया है उस अवस्था में जब मानव न पार्थिव उपकरणों के द्वारा जीवन निर्वाह की वस्तुओं का उत्पादन करना सीखा। उस अवस्था से सामंतवादी और पूँजीवादी अवस्थाएँ विकसित हुयी हैं। पूँजीवाद केवल एक सत्रमण काल है क्योंकि इतिहास की निर्दिष्ट अवस्था है समाजवादी साम्यवाद। समाजवाद मानव इतिहास के विकास की वह सामाजिक स्थिति है जिसमें व्यक्ति का विकास पूँखत्व का पहुँच जाहगा क्योंकि उस समाज में सभी व्यक्ति और सभी पेशे समान होंगे, विभिन्न सामाजिक कार्य (Social Functions) सामाजिक क्रिया के विभिन्न वकल्पिक रूप (Alternative Forms) होंगे जिनमें से व्यक्ति अपनी योग्यता और आवश्यकतानुसार अपने कार्य का चुनाव करेगा। उत्पादन के सभी साधन समाज के नियंत्रण में होंगे। व्यक्ति के पूँख विकास और योग्यता तथा आवश्यकतानुसार जीवन यापन करने का स्वाभाविक परिणाम होगा राज्य (State) का अनावश्यकता। अतः, धीरे धीरे राज्य (State) नुस्त हो जायगा। दूसरे शब्दों में तथा यारोप की माक्स की पूर्ववर्ती विचार के सन्दर्भ में कहा जायता इसका निश्चय यह होगा कि माक्स द्वारा प्रतिपादित काल्पनिक समाजवादी अवस्था इस पृथ्वी पर स्वयं साम्राज्य (Kingdom of Heaven) की स्वतः प्रवृत्त प्रवृत्तारण होगी। उससे बाद इतिहास की गतिविधि क्या होगी? माक्स ने इस प्रश्न को उठाया ही नहीं। यही उसकी वचानिकता का दावा समाप्त हो जाता है। यही उसका दान कोरा आदण (Utopia) मात्र रह जाता है—वसा हो जाण्य जसा कि इसाइ मत में प्रतिपादित किया गया था। इसी कारण, मार्टिंडेल ने माक्स की विचारधारा का रहस्यवादी कहा है और राधाकृष्णन ने माक्स द्वारा प्ररित साम्यवाद का एक प्रकार की धमनिरपेक्ष इसाइयत कहा है।

द्वद्वात्मक भौतिकवाद (Dialectical Materialism) की अध्ययन रीति द्वारा माक्स ने यह दिखाने का प्रयास किया कि प्रत्येक उदविकासी अवस्था में उसके प्रति द्वन्द्वी कारणों की उत्पत्ति होती है जिससे उस अवस्था में व उदविकासी परिवर्तन हात

है जो इतिहास का उसकी पूर्वनिर्धारित दिशा की ओर ल जाता है। चूँकि जीवन निर्वाह की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये मनुष्य ही पार्थिव उपकरणों का प्रयोग करता है, अतः, उत्पादन के पार्थिव उपकरण ही सस्थाओं के कारक हैं। उत्पादन के पार्थिव उपकरणों में परिवर्तन आते ही सामाजिक सम्बन्धों और सस्थाओं में परिवर्तन आता है। जिस जीवन निवाह की अवस्था में मनुष्य आखेट और कर्म पर ही निर्भर था, उस अवस्था में सभी मनुष्य समान थे और समाज तथा सस्थाओं का संगठन व्यक्तिवादी न होकर समष्टिवादी था। कृषि के अनुसंधान ने सामंतवाद को जन्म दिया और वर्तमान प्रौद्योगिकी ने पूँजीवाद को। इस परिवर्तन का परिणाम यह हुआ कि मानव समाज निरंतर वर्गों में बँटता गया और पूँजीवादी अवस्था में आकर तीन वर्ग हो गये—पूँजीपति, मध्यमवर्ग और सर्वहारा वर्ग। प्रत्येक अवस्था के पार्थिव उपकरणों और उनके परस्पर सम्बन्धों में उस अवस्था की जायिक व्यवस्था उत्पन्न होती है जो अपने से सम्बन्धित सामाजिक व्यवस्था तथा सामाजिक चेतना को जन्म देती है। सामाजिक व्यवस्था का उत्थित विकास, वर्ग-व्यवस्था के उत्तरोत्तर विकास और समाप्ति की ओर रहा है। सामंतवादी व्यवस्था में दास वर्ग—मालिक और गुलाम। किन्तु जब वर्तमान प्रौद्योगिकी का विकास हुआ तो उत्पादन के पार्थिव उपकरणों पर पूँजीपतियों का आधिपत्य हुआ और ऐसे पणों अस्तित्व में आये जिन्हें कारण मध्य-वर्ग का विनाश हुआ। समाज की वर्गव्यवस्था के विभिन्न वर्गों के परस्पर सहयोगी नहीं रहे। उनमें निरंतर संघर्ष चलता रहता है और अब इस अवस्था विशेष की प्रतिद्वंद्वी अवस्था आता है ता यह वर्गसंघर्ष तात्कालिक न हो सके। वर्तमान प्रौद्योगिकी के विकास के माध्यम से, पूँजीवादी प्रजातन्त्रवाद के

उच्च मध्य वर्ग के लोग पूजीपतियों में मिल जायेंगे और निम्न मध्यमवर्ग के लोग सवहारा वर्ग में। और इसका परिणाम यह होगा कि पूजीवादी व्यवस्था के जन्म में केवल दो ही वर्ग रह जायेंगे और उनमें सघष इतना तीव्र होगा कि पूजीवादी व्यवस्था समाप्त हो जायगी और समाज पर सवहारा वर्ग की तानाशाही स्थापित होगी। इस तानाशाही की स्थापना ही समाजवादी व्यवस्था का प्रारम्भ है। इसीलिए, मार्क्सवाद का नारा है 'सत्तार के श्रमिकों संगठित हो। इस प्रकार मार्क्सवाद एक आर एक पगम्बरी भविष्यवाणी और आवाहन है तो, दूसरी ओर, ऐतिहासिक प्रक्रिया में सघष की अवश्यभावी मानन वाला एक आदर्श। मार्क्सवादी विचारधारा के अनुसार इतिहास समाजवाद की ओर जायगा ही कि तु यदि उस व्यवस्था को जल्दी लाना है तो ऐतिहासिक प्रक्रिया का द्रुतगामी बनाना होगा और उसका सबसे सरल उपाय है पूजीपति और सवहारा वर्ग के सघष का प्रोत्साहित करना। अर्थात् समाजवाद का अग्रद्वार है। समाजवाद से पहले अभीसिप्त है अर्थात्। युद्ध सघष और विनाश पुनर्निर्माण के प्रथम चरण है।

मार्क्सवाद का जन्म हुआ था जर्मनी में किंतु उसको कार्यान्वित किया गया उन्नीस सौ सत्रह के जारशाही रूस में। लेनिन के नेतृत्व में अबदूबर सन् उन्नीस सौ सत्रह में रूस में राज्यत्राति हुयी जिसमें जारशाही को हटाकर साम्यवादी समाज की स्थापना की गयी और मार्क्सवाद के सिद्धांतों को त्रियात्मक रूप देने का प्रयास किया गया है। उस त्राति की सफलता के बाद से मास्को (Moscow) मार्क्सवाद और साम्यवाद का उसी प्रकार स गढ़ हो गया है जिस प्रकार स रोम पोप की छत्रछाया में इसाईयत का गढ़ रहा है। रूस में कहीं तक मार्क्सवादी सिद्धांतों का व्यावहारिक रूप दिया गया है यह एक विवादग्रस्त विषय है। किंतु यह अवश्य है कि इस राज्यत्राति की सफलता ने अनेक दशों के मार्क्सवादियों को यह प्रेरणा अवश्य दी है कि सत्तार में एकछत्र साम्यवादी राज्य का स्थापना हो सकती है और वे इसी दिशा में प्रयत्नशील भी हैं। उनकी यह भी मान्यता है कि त्राति ही इसका एकमात्र आधार है। रूस में साम्यवादी सरकार की स्थापना के बाद से साम्यवादी आन्दोलन दो सम्प्रदायों में बंट गया - एक सम्प्रदाय के लोगो का यह विचार था कि सत्तार में त्राति का प्रास्तावित दिया जाय और दूसरे सम्प्रदाय के लोगो का यह विचार था कि पहले साम्यवादी संगठित किया जाय और बाद में त्राति के लिये प्रयत्न। साम्यवाद का संगठित और मजबूत करके, उसका सवहारा वर्ग की तानाशाही का रूप देने के प्रयास में ही साम्यवादी अधिकारग्रस्त समाज और तानाशाही का समावेश हुआ। साम्यवादी सत्तार में साम्यवाद के प्रसार में बस ही लगे हुये हैं जस इसाई इसाईयत के प्रचार में। तीसरी महायुद्ध के बाद तुर्की और यूगोस्लाविया को छोड़कर, आज पूर्वी जर्मनी बड़े जान वाले प्रदेश तक रूसी साम्यवाद का आधिपत्य है। रूस की ही मान्यता से चीन में साम्यवादी सरकार की स्थापना हुई। इस सरकार ने उत्तरी

कारिया, वियतनाम, लाओस और तिब्बत तब अपने अधिकारक्षेत्र का बढ़ाया है। भारत पर चीन का आक्रमण भी इसी आदसवादी प्रसार का परिणाम है। मानसवादी आदस म दूसरे देशों पर साम्यवादी देश का आक्रमण जैसा प्रसार पूजीवाद के विरुद्ध युद्ध है, एक प्रकार का जिहाद है और सत्तार के पुनर्निर्माण का यह आधार प्रयास है।

इसमें कोई मद्दह नहीं कि सवहारा बग के लिये भाक्सवाद एक उत्तजक आवाहन है किन्तु साथ ही साथ, मवहारा बग को एक अधिकारग्रन्त तत्र म बाधन का यह एक माध्यम भी है। प्राक्सर हूलेकी (Prof Halecki) ने अपनी पुस्तक, दि निमितम एण्ड डिक्लीजन्स आफ पारापियन हिस्टी म रूस का पश्चिम का अगन मानकर, पूव का अग माना है। अत उनकी मान्यता म साम्यवाद पूव की दन है न कि पश्चिम की। कि तु राधाकृष्णन के अनुसार, साम्यवाद का वगानुक्रम वस्तुतः प्लेटो इसाइयत के यू टेस्टामेंट, साल्ट सो सैनारीस के इगलैंड की मसदीय सना के लेवलर (Leveller) कह जान वाले लागे के बायीं ओर विचार धारा, रिवाडों और आडम स्मिथ जैसे प्रतिष्ठित (Classical) अर्थशास्त्रियों, डाविन द्वारा प्रतिपादित सामाजिक डाविनवाद, हागल, मार्क्स एजेन्स और लेनिन के विचारों म हैं और उभरके बहुत सी विगपतायें निरचय हा पारोप की हैं। अधिकारतंत्री आदस समाज की धारणा प्लेटो की दन है और द्वैतात्मक विचार यूनान के माध्यम से हीगल (Hegel) का। जिस प्रकार यूनानियों ने सत्तार का सभ्य तथा असभ्य म बाग का और बाद में इसाइयत ने इसाइयत तथा गर इसाइयत (Heathens) म उसी प्रकार साम्यवादियों ने सत्तार का मसलीय प्रजातंत्र (Parliamentary Democracy) तथा लोकतंत्रीय प्रजातंत्र (People's Democracy) के बाँट दिया है। सत्तार को दा गुटो म बाँटने वाले दन आदसों का वतमान सभ्य वसे ही है जैसे एथेन और स्पार्टा, राम और कारथेज, यहूदी और गर यहूदी यूनान और बबर इसाई और गर इसाई प्राक्सटेंट और कथालिक के सभ्य। दि भाजन (Dichotomy) पश्चिमी मस्तिष्क की एक विगपता रहा है और वतमान समाज के साम्यवाद तथा पूजीवादी आदस उगों विगपता का एक स्वाभाविक उत्पत्ति है।

साम्यवाद का विद्वान इसाइयत की पच्छमूमि म नुआ है और इस कारण साम्यवाद म इसाइयत की कई विगपताओं का समावग हा गया है। जिस प्रकार इसाइयत म ईसा द्वारा प्रतिपादित धर्म सिद्धांतों का प्रतिम और अमाध माना गया है उगों प्रकार साम्यवाद म मार्क्स के सिद्धांतों का वगानिक समाजवाद की परा बाँटा माना जाता है। मार्क्स द्वारा प्रस्तुत इतिहास का निवचन धार्मिक अनिवायता और अतत्तीयत्वा समाजवाद की स्थापना उगों प्रकार की भविष्यवाणी है जम इसाइयत म कथामत और तिण्य दिव्य (Day of Judgement) के अवयमन आन

की कल्पना है। इसाइयत के विनाम न पोप सगठा का जन्म लिया और साम्यवाद ने कम्युनिस्ट इंटरनेशनल का। जिस प्रकार, इसाइयत के सिद्धांतों के अंतिम निवचन का अधिकार पाप और उसकी परिपद का रहा है उसी प्रकार मार्क्सवादी सिद्धांतों के अंतिम निवचन का विशेषाधिकार कम्युनिस्ट इंटरनेशनल के अधिनामको का रहा है। साम्यवाद का सत्सारयापी प्रसार करने के पीछे वही भावना है जो मिशनरियों के द्वारा सत्सार म इसाइयत का प्रसार करने के पीछे रही है। जिस प्रकार अठारहवीं और उनीसवीं शताब्दी में इसाइयत के प्रचार और प्रसार ने साम्राज्यवाद को प्रोत्साहन दिया उसी प्रकार आज साम्यवाद साम्राज्यवाद का धारण कर रहा है। साम्यवाद वस्तुतः इसाइयत का बड़े रूप लगता है जिसमें ईसा का स्थान मार्क्स ने लिया है पादरियों का साम्यवादी देशों के तानाशाही अधिनायकों ने मिशनरियों का साम्यवाद का दम भरने वाले आन्दोलनकारी कम्युनिस्ट राजनीतियों ने आध्यात्मिकता (Spiritualism) का पार्थिवता (Materialism) ने और स्वर्ग साम्राज्य (Kingdom of Heaven) का आदेश समाजवाद ने।

यह समझना भूल होगी कि केवल इसाइयत ने ही साम्यवाद का जन्म दिया है। साम्यवाद यारोप के बौद्धिक चिंतन और अठारहवीं शताब्दी तथा उनीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ चलने वाले विचारधाराओं का एक सहज परिणाम है। मार्क्सवाद का सन्धिता और व्यावहारिकता का जन्म पहचानने वाले लेनिन (Lenin) के मत में मार्क्स की प्रतिभा में उनीसवीं शताब्दी की विचारपद्धति की तीन मुख्य धाराओं का प्रसार और पूरा सम्मिलन है। वे धाराएँ हैं—प्रतिष्ठित जर्मन दार्शनिक (Classical German Philosophy) प्रतिष्ठित अंग्रेजी राज्याध्यवस्था (Classical English Political Economy) और फ्रांसीसी क्रांति के सिद्धांतों से मिश्रित फ्रांसीसी समाजवाद। अठारहवीं शताब्दी के उदारवादी और आर्थिककारी आन्दोलनों ने एक ओर, सामाजिक सुधारवाद का रूप लिया था, दूसरी ओर उनीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में काल्पनिक अध्यवस्था, आदर्श निर्माण (Utopia Building) का रूप लिया। मार्क्सवाद एक काल्पनिक अध्यवस्था आदेश है। अठारहवीं शताब्दी में भौतिक विज्ञानों के विकास द्वारा विज्ञानवादिता (Positivism) और वैज्ञानिक अध्ययन रीति (Scientific Method) का विकास हो चुका था। अठारहवीं शताब्दी के समाजवाद में विज्ञानवादिता वैज्ञानिक अध्ययन रीति और समाज सुधारवाद का एक विशिष्ट मिश्रण हो चुका था जिस जागे चलकर मार्क्स ने अपनाया। मार्क्स का निवचन इतिहास का एकतत्वीय (Monistic) निवचन है। एकतत्वीय निवचन अर्थात् एक ही कारण के आधार पर किसी प्रमेय का निवचन तत्कालीन तन्त्रशास्त्र और विज्ञानवादी दृष्टिकोण की ओर है। एकतत्वीयता के कारण ही मार्क्सवाद पर नियतिवाद (Determinism) की जबरदस्त छाप है।

मार्क्सवाद के अन्वय में यह धाराएँ म तीन मुख्य विचारधाराएँ चल रही

थी। वेह विज्ञानवाद (Positivism), युनियुक्तवाद (Rationalism) और रोमांसवाद (Romanticism)। मानववाद का उदभव निश्चय ही जर्मन रोमांसवाद (German Romanticism) की पृष्ठभूमि में हुआ है। रोमांसवाद युनियुक्तवाद का विरोध है क्योंकि युनियुक्तवादियों ने जो कुछ भी कहा रोमांसवादियों ने उसके विरोध में दूढ़ निकाला। उदाहरणार्थ, युनियुक्तवादियों का मानव प्रकृति (Human Nature) का आधार मिला भीमासा (Peason) में तो रोमांसवादियों का आत्मा (Spirit) में। युनियुक्तवादियों के लिये इतिहास भूल और गलतियों का एक रेखा है जब कि रोमांसवादियों के लिये इतिहास की गहराई में गान्धर्व मिथ्यात और तत्र स्थित हैं। यही रोमांसवाद मानववाद की आत्मा है। किन्तु मानववाद के वास्तविक बौद्धिक आधार निहित है डार्विन द्वारा प्रतिपादित सामाजिक डार्विनवाद और हीगल द्वारा प्रतिपादित द्वैतात्मक (Dialectical) निवचन पद्धति में। हीगल की द्वैतात्मकता पर हमानी आदर्शवादिता की छाप है जर्मन मानववाद में अपनायी गया द्वैतात्मकता पर पारिवक्ता (Materialism) की। आगिक उन्विकास (Organic Evolution) के सिद्धान्त के माध्यम में डार्विन ने यह प्रतिपादित किया है कि मत्सर के सभी प्राणियों का उन्विकास आधारभूत आगिक तत्व (Organic Matter) से हुआ है। इस उदविक्रम में विचरणशीलता (Variation) और प्राकृतिक प्रवर्ण (Natural Selection) का मुख्य हाथ है। डार्विन के अनुसार इस मत्सर में बड़ी जीवित रत्न में सफल होता है जो जीवित रहने के लिये सबसे अधिक फिट है। अतः सारी प्रकृति एक निरीह मध्यम रत्न है और उसी मध्यम से प्रकृति सर्वोत्तम का चुनाव करती है। मानव-समाज, आगिक तत्व की भाँति उन्विक्रमोन्मुख है और उसका भी उन्विक्रम मध्यम और प्रतियोगिता के माध्यम में हाँ रत्न है। मानव का वय-मध्यम का सिद्धान्त इसी विचारधारा की दन है। मानववाद वस्तुतः एक वैज्ञानिक सिद्धान्त न हाँकर एक समाजवादी मध्यम विचार पद्धति (Conflict Ideology) है।¹

३

योगोपीय सन्ध्या के तत्व

इस प्रकार, योरोप का ऐतिहासिक विवचन करने पर योरोपीय सन्ध्या-सकृल के विभिन्न पहलू स्पष्ट हो जाते हैं। योगोपीय सन्ध्या-सकृल के मुख्य आधार हैं वैज्ञानिक प्रौद्योगिकी (Scientific Technology) औद्योगिकरण (Industrializa-

1 मारटिंडेल, ज्ञान विनकर एण्ड टाइम्स आफ सोसियोलॉजिकल थ्योरी

tion) और शहरीकरण (Organization)। ये योरोपाय सभ्यता के पार्थिव पहलू हैं। केवल इन्हीं तक योरोपीय सभ्यता को समिति रखा योरोपीय सभ्यता की धारणा को सक्ती करना है क्याकि जहा जहा ये तत्व गये हैं वहा वहाँ के विचार पद्धतिया भी गयी हैं जिन्होंने इस सभ्यता को जन्म दिया है या जो इसकी उपाधि हैं। योरोपीय सभ्यता, वस्तुतः, जसा कि पहले कहा जा चुका है, मानव सभ्यति की एक विशेष विकास अवस्था है। अतः, उस विकास अवस्था के सामाजिक मानसिक पहलुका के साथ ही उसके पार्थिव तत्व अर्थात् सायक लगते हैं। इस दृष्टिकोण से योरोपीय सभ्यता की अन्य विशेषतायें हैं वैज्ञानिक विचार पद्धति, धर्मनिरपेक्षता इमाइयत, पूजीवाद, राष्ट्रवादिता समदीय प्रजातन्त्र तथा साम्यवादी प्रजातन्त्र जार शहरी सामाजिक मण्डल जिसके आधार उद्योग, पूजी प्रतियोगिता और व्यक्ति है। यह अवश्य है कि इन सभी विशेषताओं से मिश्रित जा सजुल बनता है उसका मूल में पार्थिवता की मात्रा ही अधिक है। यह विकास अवस्था वस्तुतः शहरी सभ्यति है। इसकी विकास प्रक्रिया के आधार द्वितीय (Secondary) हैं न कि प्राथमिक।

४

भारत और योरोप

ऐतिहासिकता में भारतीय सभ्यति योरोप से प्राचीन है। जब वर्तमान राजनतिक योरोप का जन्म भी नहीं हुआ था भारत एक सांस्कृतिक राजनतिक इकाई का रूप ले चुका था और भारतीय सभ्यति उन सभ्यतिया को प्रभावित कर रही थी जिन्होंने वर्तमान योरोपीय सभ्यता के निर्माण में सहायता दिया है। मिस्र, यूनान, फिलिस्तीन और इस्राइल पर पड़ने वाले भारतीय प्रभावों का पहले ही वर्णन किया जा चुका है। सिकन्दर की विजय के पश्चात्, भारत और यूनान का प्रत्यक्ष राजनतिक, सांस्कृतिक तथा बौद्धिक सम्बन्ध स्थापित हुआ और यह सम्बन्ध तब तक बना रहा जब तक, एक ओर यूनान रोम साम्राज्य का घग नहीं हो गया और दूसरी ओर, यूनान तथा भारत के बीच में अरबी इस्लामी साम्राज्य का अस्तित्व नहीं हुआ। सिकन्दर द्वारा स्थापित अिय द्वेष बिकटमा-साम्राज्य के पतन और भारत के मौर्य-मगधाटो के माध्यम से भारत और यूनान में सांस्कृतिक आदान प्रदान लगभग तीन सौ साल तक चलत रहे। मगस्यनीय जस राजदूता ने भारतीय सामाजिक जीवन और ज्ञान विज्ञान को यूनानियों के सामने रक्खा। तत्पश्चात् एक विश्वविद्यालय में, एक ओर यूनानी पठन-पाठन करत थे ता, दूसरी ओर वहाँ रोम भारतीय भी थे जा यूनानी भाषा बोलत थे और यूनानी साहित्य का अध्ययन करत थे¹।

बेरल और नासिक की बौद्ध-गुफाओं में मिलने वाले यूनानी नामों से पता चलता है कि कनेक यवनो (यूनानिया) ने बौद्धधर्म स्वीकार कर लिया था। ससृष्ट और हिन्दी में प्रयुक्त होन वाला यवन शब्द ही यूनानी भाषा से आया है। विद्वानों का ऐसा मत है कि भारतीय रंगमंच में यवनिका (Drop Curtion) का प्रयोग भारत का यूनानी नाट्यशास्त्र की भेंट है? सिकन्दर के धात्रमण के लगभग एक सौ साठ साल बाद, जब सम्राट मेनांडर (Menander) गया की घाटी वाले प्रदेश में आया ता उसने बौद्ध दार्शनिकों के साथ द्वैतवादी (Dialectical) शास्त्राध्यय में भाग लिया। इस शास्त्राध्यय पर आधारित मिलिन्द-पथ नामक ग्रन्थ बौद्धशास्त्रों में एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। जो मन (O Malley) के अनुसार प्राचीन भारत के ज्योतिष और शीघ्रि शास्त्रों पर यूनानी प्रभाव पाया गया है। भारत की गांधार मूर्तिकला यूनानी और भारतीय कला परम्पराओं का एक समन्वित मगम है। गांधार कला की मूर्तिकला में एक बार यूनानी परम्परा के अनुसार बाह्याकार का विराट रूप देने की प्रवृत्ति है तो, दूसरी बार उभय भारतीय परम्परा के अनुसार विराट में एक आंतरिक आध्यात्मिक गति की अभिव्यक्ति लान की परम्परा भी विद्यमान है। गांधार मूर्तिकला वस्तुतः विराट और आध्यात्मिकता का मिलन है। महात्मा बुद्ध की प्रतिष्ठित प्रतिमा इसी समन्वित कला का एक पुष्प है¹।

दक्षिणी भारत में पश्चिमी घाट में स्थित आदित्यनगूर नामक स्वयं की मुर्ती में से प्राप्त रोमन सिक्का में यह पता चलता है इसी की पहली शताब्दी के आरम्भ-वाक्य दक्षिणी भारत और राम साम्राज्य का व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हो चुका था। ईसा की दूसरी या तीसरी शताब्दी में दक्षिणी भारत में इसाईयत का प्रवेश हुआ था। किन्तु योराप और भारत के सम्पर्क उतने प्राणिकारी नहीं थे जितने कि बाण के सम्पर्क क्योंकि ये सम्पर्क उच्च उन्विकासी पट्टभूमि में स्थापित हुए थे जिनमें भारत तथा योराप के प्रौद्योगिक विकास-स्तर समान थे। इसनाम का सम्बन्ध और प्रसार होने के समय तक यूनान, राम और इसाईयत तथा भारत और हिन्दुत्व एक दूसरे का सस ही प्रभावित करन रहे जैसा साधारणतया सम्पर्क से आने वाली ससृष्टियाँ, आन्त प्रान्त के माध्यम में, एक दूसरे का प्रभावित करती हैं।

पौरुषीय सम्पत्ता के सपाठ से भारतीय ससृष्टि में हान बाण प्राणिकारी परिवर्तन का सिलसिला उक्त समय से प्रारम्भ होता है जब सन चौदह सौ अठ्ठानवे के मई महीने की छत्तीस या सत्ताईस तारीख का किसी अरब नाविक के पथ प्रदान में, एक सांस्कृतिक पुनर्गामी नाविक, वास्कोडिगामा, का जहाजी बेडा, पश्चिमी घाट के स्थित कालीकट नामक स्थान पर था लगा था और वहाँ के राजा जनीरिन ने

उसे भारत व साथ व्यापार करने की अनुमति दे दी थी। सन चौदह सौ अठ्ठाठ्ठा नवे का योरोप वह यारोप था जिसमे घम-युद्धो की ज्वाला शांत होकर सुलग रही थी, इसाइयत और इस्लाम का द्वेष योरोपियनो के मस्तिष्क से निकला नहीं था, विज्ञान की फूटती हुयी किरण के साथ, धूप के समान, औद्योगिक क्रांति (Industrial Revolution) का प्रसार बढ़ रहा था तथा उससे उत्पन्न पूजीवाणी समाज व प्रभाव मे आक्रामक राष्ट्रवादिना बढ़ रही थी और जिसके दानिक तथा विचारक योरोप को ही प्राचीनतम तथा मानव की आधुनिकतम प्रगति का प्रतीक मानते थे। यह इही परिस्थितियो व प्रभाव था कि तत्कालीन पुनगाली सम्राट ने भारत का अपना उपनिवेश मान लिया और व्यापार के साथ साथ वहा इसाइयत के प्रचार की आना दी।

तत्कालीन भारत म, एक ओर, इस्लाम का प्रसार बढ़ रहा था, दिल्ली म मुसलमान शासका के वशो का उत्थान और पतन हो रहा था और, दूसरी ओर, भारत म सामंतवादी समाज का एक नये सिरे से निर्माण हो रहा था और हिंदुत्व इस्लाम के प्रसार के कारण मिमट सिमट कर, दक्षिण म कद्रीभूत हो रहा था। यह वह भारत था जिसका सामंत वग घम क आधार पर विभाजित था और, इस कारण, घम की आड लकर अपने स्वत्व के लिये आपस में लड़ रहा था। पुनगाली भारत मे आये थे ममान का व्यापार करने के लिये और मोहम्मद के अनुयाइयो अर्थात् मुसलमानों के हाथ से ममान का व्यापार और सामुद्रिक सैनिक शक्ति छीन लेने के लिये। इस्लाम विरोधी होने व कारण, दक्षिण के हिंदू सम्राटो ने उनका स्वागत किया। किंतु यास्तव मे, इस स्वागत के पीछे वही भावना थी जा इस्लाम के अभ्युदय और प्रसार के पटल अरबों का स्वागत करने के पीछे थी। यह भावना थी विदेशी व्यापार को बढाकर राजस्व बढाने की।

भारत म पुनगालियो का प्रभाव समुद्र तट पर ही सीमित रहा यद्यपि लगभग डेढ सौ साल तक अतलांतिक तथा हिन्द महासागर पर पुनगालियो का एकछत्र राजनतिक प्रभाव रहा। पुनगाली सत्त्व बन्दरगाहो मे ही रहे और उहाने हमगा समुद्र तथा समुद्रतट पर अपना प्रभाव जमाये रखने का प्रयत्न किया। सन पन्द्रह सौ दस म गुजरात के सुल्तान महमूद बगडा का हराकर पुनगालियो ने गावा का किला पापम किया और कालांतर म बम्बई और हुगला म भी अपने किले बनाये। भारत तथा अंगिखी-पूर्वी अंगिया म पुनगालियो की नीति थी गावा म पुनगाल का प्रत्यक्ष सामन स्थापित करना, गावा का वणजारा का उपनिवेश बनाना समुद्रतट पर युद्धावश्यक (Strategic) स्थानो म सैनिक अड्डे कायम करना और जहाँ सैनिक अड्डे न कायम हो सकें वहा पुनगाल का राजनतिक प्रभाव बढाना। भारत के राजाओं पर राजनतिक प्रभाव बढाकर व्यापार सुरक्षित करने की नीति की नीव पुनगालियो ने डाली थी जिसका, आगे चलकर, अग्य यारोपीय राष्ट्रा ने भी अनुसरण

किया। अपनी इस नीति से पुनगाली भारत के समुद्र तट पर व्यापारिक साम्राज्य कायम कर सके। उस समय इससे अधिक सम्भव भी न था क्योंकि तत्कालीन भारत में केन्द्रीय शक्ति संगठित थी।

वास्कोडिगामा द्वारा भारत और योरोप के बीच समुद्री मार्ग को ढूँढ निकालने के बाद, योरोप के राजनतिक जीवन में जो परिस्थितियाँ उत्पन्न होती रहीं हैं उनका प्रसार और प्रभाव हिन्द महासागर भारत और दक्षिणी पूर्वी एशिया पर पड़ता रहा है। योरोप में श्रौचोगिक क्रांति के प्रस्फुटन के बाद, अतन्त्रातिक महासागर पर जब जिस राष्ट्र अथवा सैनिकशक्ति का अधिकार रहा है, तब उस राष्ट्र का अधिकार हिन्द महासागर पर भी रहा है। जब तक अतन्त्रातिक महासागर पर पुनगालियों का एकछत्र राज्य रहा हिन्द महासागर पर भी उनकी प्रभुता कायम रही और भारत से लेकर दक्षिणी-पूर्वी एशिया तक उनका एकमात्र व्यापारी साम्राज्य कायम रहा। किन्तु योरोप में स्पेन और इंग्लैण्ड के युद्ध में, स्पेनिश आरमडा (Spanish Armada) की पराजय (15७8) के पश्चात्, अन्य देशों ने भी पुनगाल की प्रतियोगिता में अपने अपने व्यापारिक क्षेत्र बढ़ाने का प्रयास किया। इसके परिणामस्वरूप, सोलहवीं शताब्दी के अन्त में (सन १५७१ सौ पञ्चानव के बाद से) इंग्लैण्ड निवासियों, डचों ने हिन्द महासागर में पदापण किया और धीरे धीरे पुनगालिया से नाविक सत्ता छीन ली। सन १६०० सौ चौवन में कोल्म्बो पर अधिकार करके, सन् १६०२ सौ तिरसठ के आस पास उन्होंने मलाबार के तट पर अपने बन्दे कायम किये। डचों और पुनगालिया के बीच हुयी एक संधि (१६१९) के अनुसार पुनगालिया का सैनिक तथा राजनतिक प्रभाव गोवा के अग्रे पास एक हजार तीन सौ बर्गमील के क्षेत्र में ही सीमित हो गया और दिसम्बर सन १६०३ सौ एकसठ तक वहाँ उनका राज्य रहा। डच भारत में कोई साम्राज्य स्थापित न कर सके जिसके सम्भवतः दो कारण हैं—पहला, व्यापार में अधिक दिलचस्पी रखने के कारण उनका ध्यान इण्डोनेशिया की ओर अधिक था और वही उन्होंने अपना साम्राज्य भी कायम किया और दूसरे अतन्त्रातिक महासागर पर बढ़ती हुयी अंग्रेजों की सैनिकशक्ति के कारण उन्हें हिन्द महासागर में उतरना पड़ा।

सत्रहवीं शताब्दी में, अंग्रेजों ने हिन्द महासागर में पदापण किया और फ्रांसियों ने अठारहवीं शताब्दी में। अंग्रेजों की सबसे पहली व्यापारी वाठी मूरत में सुली और इसी कोठी के आधार पर भारत में तम्बाकू का एक नाम गुरती भी पड़ा। फ्रांसियों ने अपना सबसे पहला बन्दे पाण्डेचराम कायम किया। भारत की एक राजनतिक दुकान का रूप देने के प्रयास में निरन्तर लड़ने लगे, सन १६०३ सौ सात में जब औरंगजेब का मृत्यु हुयी तो उस समय, एक आर, भारत का एक राजनतिक दुकान का रूप देने की अवसर की कल्पना सम्पन्न हुयी तो, दूगरी आर, मराठा, विजया और सैनिकशक्ति से सम्पन्न मराठियों का रूप में हिन्दू राष्ट्रनातिका

प्रबल वेग से फूट निकली और भारत के समुद्रतटों पर योरोपीय राष्ट्रों के सैनिक अड्डे मजबूत होने लगे। सन सत्रह सौ पन्चीस में, औरंगजेब के मरने के अठारह साल बाद, सूरत, बम्बई, मद्रास, मछलीपट्टम और कलकत्त फोर्टविलियम में अंग्रेजों के सैनिक व्यापारी अड्डे में पाण्डुचरी और चन्द्रनगर में फ्रांसीसियों के और कोचीन, ट्रेवुवार और मछलीपट्टम में डचा के। ये व्यापारी अड्डे बस्तुतः सैनिक बिलों के समान थे और उनमें रहने वाले विदेशी व्यापारी केवल अपने व्यापार में ही सरोकार रखते थे। भारत के राजनतिक जीवन से उनका वही तक सम्बन्ध था जहाँ तक उनके व्यापार की सुरक्षा का प्रश्न था। उनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध भारत के उस धनी, व्यापारी मध्यम वर्ग से था जिसके माध्यम से वे भारत में व्यापार करते थे। यह मध्यम-वर्ग भारत में योरोप के बढ़ते हुए व्यापार की उपज था। यह वर्ग भारत के वर्तमान पूँजीवादी वर्ग का अग्रिम रूप था। यह वर्ग भी योरोपीय व्यापार की सुरक्षा का उतना ही हामी था जितने कि योरोपीय व्यापारी। तत्कालीन भारत की छिन हाती हुयी केन्द्रीय राजनतिक सत्ता में प्रादेशिक सत्तायें उभर रही थीं और समुद्र तटवर्ती प्रदेशों में उभरने वाली स्थानीय सत्ताओं पर इस धनी वर्ग का प्रभाव बढ़ रहा था। यह वर्ग अधिकतर हिन्दू वर्ग था। कलकत्त का यह वर्ग मारवाड़ी था, सूरत का गुजराती और मद्रास का चेटी। अतः तत्कालीन परिस्थितियों में हिन्दूजाति और योरोपीय प्रभावा में उत्पन्न हाती हुयी पूँजीवादिता का गठबन्धन हा गया। इसी हिन्दू-राष्ट्रवादी तथा पूँजीवादी वर्ग से इंग्लण्ड के पूँजीवादी वर्ग ने बंधे से बंधा मिला कर भारत में अपने व्यापार का सुरक्षित रखने के लिये धीरे धीरे अपना राजनतिक प्रभुत्व कायम किया¹।

भारत में अंग्रेजी राज की स्थापना का ऐतिहासिक वर्णन विषयान्तरिक होगा। हाँ, उसकी मुख्य मुख्य ऐतिहासिक अवस्थाओं का वर्णन ऐसा सन्दर्भ है जिसमें प्रस्तुत विषय अधिक स्पष्ट हो उठता है। सन सालह सौ उन्त्तर में मुगल बादशाह से कलकत्त की किल्लेबंदी करने की अनुमति तथा एक छाटी सौ जमींदारी लेकर अंग्रेजों की व्यापारिक सहाय ईस्ट इण्डिया कम्पनी एक साथ ग्रासक व्यापारी और जमींदार हो गयी। योरोप में चलने वाले अंग्रेज और फ्रांसीसी सघष के कारण जब अंग्रेज और फ्रांसीसियों ने अरबान्त के युद्ध में अग्रत्यक्ष भाग लिया और उसमें अंग्रेज विजयी हुए तो यह स्पष्ट हो गया कि व्यापार की सुरक्षा के लिये भारत के राज-

1 प्लासी के युद्ध में जगत सेठ और अमीचन्द ने अंग्रेजों की जी महायता की थी, यह इतिहास प्रसिद्ध है। अफगान युद्ध में विजयी होने पर जब अंग्रेजी सेना गजनी से सोमनाथ के मन्दिर का द्वार थापस साई तो तत्कालीन गवर्नर जनरल ने यह गर्योक्ति की थी कि अंग्रेजों ने मुसलमानों से सोमनाथ की चढ़ाई का बदला लिया है—पनिक्कर

नतिक जीवन में देखल देकर राजनतिक प्रभुत्व बढ़ाना आवश्यक है। प्लासी (1757) और बक्सर (1757) के युद्धों के द्वारा बंगाल बिहार आर उड़ीसा की दीवानी प्राप्त करना इसी प्रयास की आर उठा हुआ बंदम है। भारत में अंग्रेजी राज का प्रारम्भिक रूप बनिया राज था और यह इसी का परिणाम है कि भारत में अंग्रेजी न धीरे धीरे परिवर्तन किये और वही परिवर्तन किये जो आवश्यक थे। कानवालिस के समय से बनिया राज समाप्त होना लगा। सन अठारह सौ बारह में, ईस्ट इण्डिया कम्पनी भारत और इंग्लण्ड के बीच प्रशासन का एक माध्यम थी। यही वह समय है जब इंग्लण्ड की पार्लियामेंट ने भारत में एक सम्य सरकार (Civilized Govt) स्थापित करने का भार अपने ऊपर लिया और इंग्लैण्ड को भारत का ट्रस्टी (Trustee प्रयासी) करार किया। सम्भवत इसी मायता का यह परिणाम है कि अंग्रेजी न भारत को एक राजनतिक सत्ता में बाधन का प्रवास किया। अठारह सौ सत्तावन की राज्यशाक्ति के पहले, जब तक भारत अंग्रेजी साम्राज्य का एक अंग नही हो गया था और पार्लियामेंट से उम्मा प्रत्यक्ष सम्बन्ध नही था ईस्ट इण्डिया कम्पनी की राजनतिक शक्ति मुगल वाग्दाल के परमान पर आधारित थी और कम्पनी कम्पनी न कहला कर कम्पनी वहादुर कहलाती थी। मुगल बादशाह से राजनतिक शक्ति ग्रहण करने के कारण, मुगल न मिले हुये दंग के ट्रस्टी के लिये यह आवश्यक था कि वह उम राजनीतिक दुर्दाई को बनाये रखे जिसकी कल्पना हिंदू शास्त्रों में की गयी थी जिस सभ्यता अंग्रेजी और अक्बर ने कायम करने का प्रयास किया था जिसके लिये औरगजब बराबर लड़ता रहा और जो अत्यन्त रूप में मराठा उत्थान को प्रेरक थी।

कुछ भी हा अठारह सौ सत्तावन का राज्य शाक्ति के समय ब्रह्मपुत्र से लेकर सिंध तक और हिमाचल से लेकर कन्याकुमारी तक अंग्रेजी का झंडा सहता रहा था। जिस काय का अंग्रेजी और अक्बर न कर पाये थे, वह अंग्रेजी के शासकों की महायता में उनीसवीं शताब्दी में पूरा हुआ। भारत के इतिहास में प्रवाहित उन्विनामी सांस्कृतिक एकता न प्रथम बार राजनतिक एकता का रूप ग्रहण किया और भारत ने एक राष्ट्र राज्य (Nation State) का रूप ग्रहण किया। देशी राज्यों का रूप नर, अंग्रेजी भा उम राष्ट्र राज्य का जन्म न द मक जो भारत के सांस्कृतिक इतिहास की मांग थी। देशी राज्यों में अंग्रेजी का प्रभाव अत्यन्त था और इस कारण, भारत के सभी भागों में पारोपीय प्रभाव समान मात्रा में नही पया। कहीं वह पहले घाया और कहीं बाद में, कहीं वह कम हुआ, कहीं ज्यादा। इसी कारण, भारत के विभिन्न सांस्कृतिक स्तरों में विभिन्न प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न हुयी। फिर भी, सार प्रभाव राष्ट्र

राज्य की जोर ही प्रवाहित होते रहे। सन उन्नीस सौ सतालीस में भारत की स्वतंत्रता उही प्रवाहों के सम्मिलित प्रभावा का परिणाम है। स्वतंत्रता के बाद स, योरोप और भारत प्रत्यक्ष सम्बन्ध में आये हैं और इन सभी सचयी प्रक्रियाओं का एक परिणाम है भारत का उत्तरोत्तर पश्चिमीकरण और दूसरा राष्ट्र-राज्य का उत्तरोत्तर एकीकरण।

५

पुतगाली प्रभाव

भारतीय संस्कृति में योरोप के साम्यतायी प्रभावों का प्रवेश पुतगालिया प्राचीनमिया और अग्नेजा के माध्यम से हुआ है। इनमें अग्नेजा का प्रभाव सर्वाधिक है किन्तु पुतगालिया और प्राचीनमिया के प्रभाव को उतना नगण्य नहीं कहा जा सकता है जितना कि अग्नेजाके के इतिहासकारों ने उस दिखाने का प्रयास किया है। यह अवश्य है कि अग्नेजा के माध्यम में ही भारत का अधिकतम पश्चिमीकरण हुआ है किन्तु साथ ही साथ यह भी सही है कि इस पश्चिमीकरण का प्रारम्भ पुतगालियों से हुआ था। सात सार सौ साल से अधिक समय तक पुतगालियों के प्रभाव में रहने वाला गांधा वस्तुतः पुतगाली भारत का एक रूप है। पुतगाल के माध्यम में गांधा में क्या सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन हुये हैं उनको समाजशास्त्रीय विवेचना होना अभी बाकी है।

पुतगाली, पंद्रहवीं शताब्दी के बाद में भारत और योरोप के बीच बन्दे हुये सम्बन्ध को पुनः कड़ी ध। पुतगालियों ने ही भारत और योरोप के बीच बन्दे वाले सम्बन्ध का माग प्रस्तुत किया। अपने व्यापार की सुगमता के लिये पुतगालियों ने जिन शक्ति तथा राजनितिक उपायों का काम में लिया, आज चलकर योरोप के अन्य राष्ट्रों ने उही का अनुसरण किया। भारत में पुतगाली प्रभाव ने एक मिद्ध कर दिया था कि भारत के व्यापार पर उमी योरोपीय राष्ट्र का अधिकार रहेगा जिसके हाथ में हिन्दमहासागर की राजनितिक प्रभुता होगी। पुतगालियों ने समुद्र के माग से भारत के बंदरगाहों का व्यापार का बड़ावा किया और इस बन्धन का परिणाम यह हुआ कि योरोप में भारत की वस्तुओं का, विशेषतया मसाला और मलमल का उनका प्रचार हुआ जितना पहले कभी भी नहीं हुआ था। दूसरी ओर पुतगालियों ने भारत में योरोप तथा चीन की बनी वस्तुओं का व्यापारिक प्रचार किया। वर्तमान भारत को वर्तमान योरोप ही नहीं बरन वर्तमान मसाल के सम्पत्क में लाने वाले पुतगाली ही थे।

पुतगाली संस्कृति तन्वागीन योरोपीय साम्यता के उपकरणों से मिश्रित एक

जटिल मकुल थी जिममे पूँजीवाद, साम्राज्यवाद, प्रजातिवाद, जाति अहम-यता (Ethnocentrism) और इसाई धर्मो-मत्तता का प्रचुर समावेश था। पूँजीवाद तथा साम्राज्यवाद ने उ-ह-यापारी साम्राज्य स्थापित करने के लिये प्रेरित किया यद्यपि उनका साम्राज्य गोवा व-भाग न बढ़ सका। यह पुतगालिया की जाति-अहम-यता और प्रजातिवादी मनोवृत्ति का प्रतीक है कि, एक बार उ-होने गाआ को पुतगाली वणमकरा का उपनिवेश बनाने का प्रयत्न किया, भारत की जनसंख्या में यूरोशियन (European) बढ़ जाने वाला का योगदान दिया और, दूसरी ओर, भारतीयों को गुलाम बनाकर बेचा और भारत में जबरदस्ती इसाईयत का प्रचार किया। पुतगालियो ने इसाई धर्म के प्रसार का जितना प्रयास किया, सम्भवतः, अन्य किसी योरोपीय राष्ट्र न उतना नहीं किया। पुतगाली मिशनरिया में फ्रांसिस जेवियर (Francis Xavier) और अलेक्सिस डी मंजीत्र (Alexis de Menzes) के प्रयत्न इस दिशा में उल्लेखनीय हैं। जेवियर ने भारतीयों को इसाई धर्म में दीक्षित करने का अवश्यनीय प्रयास किया और इसमें उसे सफलता भी मिली। मंजीत्र ने दक्षिण भारत के सीरियाई (Syrian) इसाईयत का सामाजिक सांस्कृतिक व्यवहार में से हिन्दू परम्पराओं को निकालने का प्रयास किया। यह बहुत कुछ पुतगाली मिशनरिया के प्रयत्न का परिणाम है कि वर्तमान भारत की उ-ह-जाई जनसंख्या में ईसाईयत सम्प्रदाय के अनुयाइयों की संख्या सबसे अधिक है। भारत में अंग्रेजी राज की स्थापना के बाद से, लगभग पिछले सौ वर्षों में प्रोटेस्टेंट (Protestant) सम्प्रदाय का इसाईयत के प्रचार की तुलना छूट रही है और उ-ह-अपने प्रचार के लिये राज्य कृपा भी प्राप्त नहीं, फिर भी, भारत में ईसाईयत सम्प्रदाय की ही प्रधानता बनी रही। हाँ सक्ता है कि यह भारतीयों की परम्परावादी प्रवृत्ति का परिणाम हो। पुतगाली साम्राज्य के प्रारम्भिक काल में पुतगालिया ने इसाई धर्म का प्रचार एक हाथ में क्रॉस (Cross इसाई धर्मचिह्न) और दूसरे हाथ में तलवार लेकर किया। इस प्रकार धर्म प्रसार में उ-होने हिन्दुओं का छोड़ा और न मुगलमाना का। इसी का परिणाम है कि वर्तमान युग में प्रारम्भ से ही इसाईयत और हिन्दुत्व इसाईयत के प्रति संघर्षित रह रहे हैं और उनके आस-पास से बचने के लिए उ-होने भी धर्म-धर्म बटोरवालों का आश्रय लिया है। भारत में आधुनिक चर्च के संस्थापक पुतगाली ही थे। किन्तु उसके साथ ही साथ, पुतगालिया ने भारतीय पालरियों की प्रतिभा के लिये धर्मविद्या-केन्द्र गाल जिममें भारत में उ-हो यूनियन-विचारधारा का प्रसार होने प्रारम्भ हुआ जिसका प्रसार योरोप में पड़ते ही हुआ था।

भारत में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर पुतगालिया के सौ साल से भी अधिक एकछत्र अधिकार के कारण तत्कालीन भारत की समुद्र-तटवर्ती मण्डियों में अन्तर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में पुतगाली भाषा का प्रचार हुआ और यह प्रचार यहाँ तक बढ़ा कि

प्रारम्भमे मग्रेजो को भी पुतगाली का ही आश्रय लेना पड़ता था¹ । इसका परिणाम यह हुआ कि हिंदी और भारत की जय प्रादेशिक भाषाओं में कमरा, नीलाम, पादरी, मारतोल मेज कुजी कमीज और तम्बाकू असे पुतगाली भाषा क शब्दों का प्रवेश हुआ । भारत की पार्थिव सस्कृति में पुतगालियों के अनेक योगदान हैं । भारत में हुक्का और तम्बाकू का प्रचार पुतगालियों से ही हुआ है और यह प्रचार भारतीय सांस्कृतिक जीवन में इतना प्रविष्ट हो गया कि, एक ओर हुक्का पिलाना आधित्य सत्कार का प्रतीक हो गया तो, दूसरी ओर, जाति एकीकरण का माध्यम । जिन जातियाँ में हुक्का पीने की प्रथा है उनमें एक जाति के सभी सदस्य एक ही हुक्के से धूम्रपान करते हैं और जिस व्यक्ति को जाति से निकाल दिया जाता है उसको सम्मिलित हुक्का पीने की मनाही रहती है । पचायती हुक्का पिलाकर ही जाति अलग सदस्य को पुनः जाति में दाखिल किया जाता है । आज हिंदी भाषा भाषी प्रदेशों में हुक्का पानी बन्द करना एक मुहाबिरे के रूप में प्रयुक्त होता है जिसका व्यञ्जनात्मक अर्थ है विरादरी से निकालना ।

अन नास, पपीता अमरूद, कल्मी आम, गाभी और आलू भी पुतगालियों के लाये हुये हैं । कहा जाता है कि बम्बई का प्रसिद्ध आम अल्फांजो पुतगालियों का ही विक्सित किया हुआ है । योरापीय सभ्यता के उपकरणों में से पुतगालियों ने भारत को मुद्रण यंत्र और छापाखाना प्रदान किया है । भारत का पश्चिमी समुद्रतट पर पायी जाने वाली गोथिक (Gothic) शैली की इमारतें और बगला शैली के भवन पुतगाली प्रभाव के प्रतीक हैं । पानिकर के अनुसार दक्षिणी भारत के गिरजाघरों का निर्माण निरन्तर ही पुतगाली गिल्डों पर आधारित है और मड्लापुर का चच इसका प्रमाण है² । गोवा के गवर्नर अल्बुकुक ने जब से सती प्रथा का निरोध किया तब से यह विचार पनपा कि सामाजिक कानून द्वारा सामाजिक सुधार हो सकता है ।

यह पहल ही कहा जा चुका है कि पुतगालियों का माध्यम से भारत का सम्पर्क सत्कार के अर्थ दशा से बढ़ा । वास्तव में योराप का भारत का प्रथम प्रत्यक्ष परिचय पुतगालियों का ही माध्यम से मिला । जाधुनिक योरापीय भाषाओं में भारतीय शब्दों का सबसे पहला वणन पुतगाली भाषा में ही मिलता है । जेबियर ने गोवा की भाषाओं और वहाँ के निवासियों का वणन पुतगाली भाषा में प्रकाशित किया । गारमिया डे ओरटा (Garcia da Orta) ने भारत की जड़ी-बूटियों का एक व्याख्यान अध्ययन प्रस्तुत किया । किन्तु इतना सब कुछ होने पर भी, पुतगालियों का प्रभाव सीमित रहा । हाँ, यह अवश्य है कि वर्तमान भारत के अर्थोदय का प्रारम्भ भारत और पुतगाल के सम्बन्धों के साथ-साथ प्रारम्भ होता है ।

1 दिनकर, रामधारीसिंह सस्कृति के चार अध्याय ।

2 पानिकर के० एम० ए सर्वे आफ इण्डियन हिस्ट्री ।

फ्रांसीसी प्रभाव

पुनर्गालिया ने यारोप को भारत से परिचित कराया¹, फ्रांसीसियों ने उस परिचय को प्रगाढ़ बनाया और अंग्रेजों ने भारत में यारोपीय सभ्यता का प्रवेश करके सभ्यता-मस्त्रुति मघात की वह स्थिति उत्पन्न की जिससे भारत की मस्त्रुति में सर्वांगीण श्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। भारत में फ्रांसीसियों का यागदान साम्प्रुतिक न होकर राजनतिक अधिक था जिसका लाभ, आगे चलकर, अंग्रेजों ने उठाया। पुनर्गालियों की नीति का अनुसरण करके, फ्रांसीसी पहले यारोपीय थे जिन्होंने भारत के तत्कालीन राजनतिक जीवन में हस्तक्षेप करके भारत में राजनतिक प्रभाव जमाने की नीति का श्रीगणेश किया। फ्रांसीसी गवर्नर डूप्ले ने ही सबसे प्रथम पाण्डचरी में जागीर कायम की थी। डूप्ले ने ही सबसे प्रथम भारतीयों का यारोपीय ढंग की मनुष्य शिक्षा देकर, भारत में यारोपीय ढंग में सना-मगठन प्रारम्भ किया। भारत में काफी दिना तक फ्रांसीसी सैन्य विशेषण का नियुक्त करन की प्रथा रही। अरकाट के युद्ध के बाद फ्रांसीसियों का प्रभाव बहुत कुछ कम हो गया था किन्तु, फिर भी, देशी राज्यों में सैन्य विनियमों के रूप में फ्रांसीसियों का नियुक्त किया जाता रहा। अंग्रेजों के बल्ले हुए प्रभाव ने फ्रांसीसियों के राजनतिक महत्व का भी बर्नास दिया क्योंकि यारोप तथा भारत में फ्रांसीसी ही अंग्रेजों के राजनतिक प्रतिद्वन्द्वी थे। फ्रांसीसी साम्प्रुतिक जोर अंग्रेजों के विरुद्ध नेपोलियन के अभ्युदय में फ्रांसीसियों का राजनतिक स्वतन्त्रता का प्रेरक बना दिया। टीपू सुल्तान ने, इसी प्रेरणा में फ्रांसीसियों से अंग्रेजों के विरुद्ध सहायता मागी थी। फ्रांसीसी राज्यश्रान्ति के आदर्श स्वतन्त्रता (Liberty) समता (Equality) और ब्राच्युता (Fraternity) प्रारम्भ में ही भारतीय स्वतन्त्रता-मगठन का प्रभावित करत रहे हैं।

भारतीय विचारधारा में यारोप को परिचित कराने में फ्रांसीसियों का यागदान काफी महत्वपूर्ण है। मरक्समूलर (Max Muller) के बहुत पहले फ्रांसीसियों ने भारत के दार्शनिक विचारों का प्रचार यारोप में कर दिया था। यारोप के नव-जागरण काल के जमाने दार्शनिकों में भारतीय दार्शनिक विचारधारा की जा शलक मिलती है वह फ्रांस के ही माध्यम से जमाने पहुँची। पाण्डचरी के मिगनरिया ने एडजुर्वेडम (L. Etzardam) के नाम में फ्रांसीसी भाषा में एडजुर्वेड पर जो

1 भारत में आने वाला पहला अंग्रेज जमुवाइट निगनरी थामस स्टीवेंस सन १७६६ ही उनासी में गोवा में ही आकर ठहरा था। उसने अपने पिता को जो पत्र लिखा था, उससे प्रकटान से ही ईस्ट इंडिया कम्पनी के स्थापित करने की प्रेरणा मिली थी' मेले

पुस्तक प्रकाशित की थी उसका फ्रांसीसी बिचारक वोल्तेयर (Voltaire) पर काफी प्रभाव पड़ा। सन अठारह सौ सत्रह में फ्रांसीसी मिशनरी एबे डुबाय (Abbe Dubois) की हिंदू मैनस, कस्टम्स और सेरीमनीज नामक पुस्तक प्रकाशित हुयी जिसमें तत्कालीन भारत के रीति रिवाजों का विशद वर्णन है। किंतु इन सभी प्रकाशना में सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रकाशन है दुप्रो (Duperron) नामक फ्रांसीसी द्वारा एक साथ फ्रांसीसी तथा लेटिन भाषाओं में प्रकाशित ओपनिखत (Oupnekhath) नामक ग्रंथ। यह ग्रंथ सन अठारह सौ एक और दो में प्रकाशित हुआ था। दुप्रो (Duperron) पारसियों के जरथुस्त्र धर्म का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने की प्रेरणा से फारसी सीखने तथा पारसियों के मूल ग्रंथों का अध्ययन करने के लिए भारत आया था। उस यही वह हस्तलिखित फारसी ग्रंथ मिला जिसे दारा शिकोह ने आपनिखत के नाम से लिखवाया था और जिसमें उपनिषदों का निचोड़ था। दुप्रो (Duperron) द्वारा प्रकाशित ग्रंथ ओपनिखत के ही माध्यम से जर्मनी के दार्शनिक शोपेनहार् (Schopenhaur) का भारतीय दर्शन का परिचय हुआ। इस प्रचार का परिणाम यह हुआ कि जर्मनी में भारतीय दर्शन के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न हुयी जिसकी अभिव्यक्ति का चरमोत्कर्ष मक्समूलर द्वारा वर्णन के अद्ययन और नव संकलन में हुआ। मक्समूलर का पुस्तिका संस्करण 'दुसरे एंड दि ईस्ट' व द्वारा यथापन्न भारतीय दर्शन का प्रचार हुआ।

७

अंग्रेजी राज का प्रभाव

यह निर्विवाद है कि भारतीय सभ्यता में योरोपीय सभ्यता का व्यापक प्रभाव अंग्रेज राज की आवश्यकताओं की पूर्ति के प्रयत्न में हुआ है और अंग्रेज भारतीयों के उक्त प्रयत्न से हुआ है जिसमें द्वारा उन्होंने योरोपीय सभ्यता के उपकरणों का आवश्यकतानुसार अपना कर अंग्रेजी राज इसाईयत तथा योरोपीय प्रौद्योगिकी द्वारा प्रस्तुत चुनौती में लड़ाई लड़ने का प्रयास किया है¹। भारत में अंग्रेजी राज के

1 भारत में अंग्रेजी राज की स्थापना के पहले ही भारत का पश्चिमीकरण होना प्रारम्भ हो चुका था। योरोपीय शक्ति संगठन और शस्त्रों का प्रयोग कालों में योरोपीय ढंग के भवनों का निर्माण यहाँ के नवाबों और राजाओं द्वारा योरोपीय ढंग की घोड़ा गाड़ियों सजावट के उपकरणों और फर्नीचर (Furniture) का प्रयोग इसके प्रमाण हैं। लखनऊ के आसफ़ुद्दौला ने योरोपीय

प्रशासक को तीन श्रेणियों में रखा जा सकता है—पहली श्रेणी में प्रांति हैं बलाइव (Clive) जम प्रशासक जिन्होंने घोषाघड़ी का आधय लिया, भारत में लूट-भाट का राज्य स्थापित किया और भारत में घोषाघड़ी से कमाम हुए घन को इंगलण्ड में वाबो की भांति खच करके तथा भारतीय नवाबा का सा विलामी जीवन बिताकर इंगलण्ड के नागरिक जीवन को दूषित किया, दूसरी श्रेणी में आते हैं कानवालिम, वारेन हेस्टिंज, विलियम बेंटिक वलेजली, डलहौजी और वजन जम प्रशासक जिन्होंने भारत में अंग्रेजी साम्राज्य को बढ़ाने के साथ-साथ भारत को, रेल-तार और डाक जैसे सम्यतायी उपकरण प्रदान किए, भारत में घमनिरपेक्ष ठोस प्रशासन की नींव डाली और विधिवत शासन (Rule of Law) की स्थापना की, और तीसरी श्रेणी में आते हैं एडमण्ड बक, विलियम जान्स मेकाने, कोल्ब्रुक और चार्ल्स विल्किंस जम लागू जिनके सहानुभूतिक प्रयत्नों से भारत में एक आर, उदारवाणी परम्पराओं का श्रीगणेश हुआ तो, दूसरी आर, भारत की पुनर्खोज (Rediscovery) प्रारम्भ हुई और भारत ने अपने व्यापक स्वत्व को पुनः प्राप्त करके अपने का पुनः जागृत और सस्थापित किया ।

इन प्रशासकों के प्रयत्नों का धाडा व्यौरवार बणन वनमान भारत की सांस्कृतिक प्रक्रियाओं का समझन में बाकी महापता प्रदान करता है । कानवालिम ने ही भारत में उम जमीनार वगैरे का जम लिया जिसने पहले अंग्रेजी राज की जड़ें मजबूत बनायीं किन्तु वाग्न में पूँजीवादिता की आर मुडकर, अंग्रेजी राज का विरागी किया । वाग्न हेस्टिंस ने ही मह नीति निर्धारित की थी कि भारत का शासन भारत के घमशासना अनुसार हागा और एमी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उनमें पहले घमशासना का अनयाग फारसी में करवाया और बाद में अंग्रेजी में । एमी नीति का परिणाम था कि पहले भारत के जजा का मन्तून और फारमी सीधनी पडती थी और इसके लिए कर्कश में मन्तरसा और बनारस में गस्टुत फाज की स्थापना की गयी थी । किन्तु विलियम बेंटिक के समय में यह पता चला कि घमशासना में बिमी भी विषय का कर्क एकमतना नहीं है । अतः मेराले के प्रयत्नों में भारतीय दण महिता (Indian Penal Code) का सपह करवाया गया । इसी समय में भारत में, अंग्रेजी का उच्च शिक्षा का माध्यम बनाया गया । विलियम बेंटिक के समय में मामाजिक

गली में इमारतें बनवाईं, पारशीय भाषा फानूस और गिटकी तथा दरवाजों में लगने वाले गीनों और फर्नीचर (Furniture) को एकत्र किया । पनाय के राजा रणजीतसिंह ने स्टीमर बनवाने का असफल प्रयत्न किया । भारत में, अंग्रेजी राज की स्थापना के बाद से, विधेयनया सन अठारह सौ अठारह के बाद से भारतीयों ने घोरोपीय विज्ञान, प्रौद्योगिकी और गिना की उत्तरोत्तर मांग की है और वह मांग आज भी जारी है—ओमेले ।

विधान (Social Legislation) के द्वारा सामाजिक समस्याओं के निराकरण का सिलसिला प्रारम्भ हुआ। वेलेजली ने बनिया राज के स्थान पर, अंग्रेजी ढंग के प्रशासन को लाने का प्रयास किया। डलहौजी के समय में रेल, तार और डाक का संगठन किया गया। वजन पहलू प्रयासक थे जिन्होंने भारत के पुरावनों की सुरक्षा का प्रबंध करके भारतीय इतिहास के सुनियोजित अध्ययन की ओर विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया।

बक भारत नहीं आया थे और न वे भारत के प्रशासक ही रहे थे। वे इंग्लैंड में उदारवादी राजनैतिक विचारों के प्रणेता थे। इंग्लैंड की पार्लियामेंट में भारत के अंग्रेज प्रशासकों के अष्टाचार के वे तीव्र आलोचक थे। यह उन्हीं के विचारों के प्रभाव का परिणाम है कि इंग्लैंड की पार्लियामेंट ने भारत में, धीरे धीरे, सम्य सरकार स्थापित करने के प्रयास को अपने अधिकार-क्षेत्र में लिया। इसी प्रयास का परिणाम है कि धीरे धीरे भारत में एक संविधान का विकास हुआ। बक भारत के राजनैतिक जीवन में उदार परम्पराओं के जनक हैं। धर्मशास्त्रों में निरूपित विधि प्रणाली के अनुसार शासन कायम करने की जिस नीति का निर्धारण वारेन हेस्टिंग्स ने किया था उसका रचनात्मक प्रतिफलन हुआ विलियम जोस वॉलब्रुक और चार्ल्स विलियम बं कायों और कृतियों तथा उनसे उत्पन्न प्रभावशाली परिणामों में। जोस वॉलब्रुक हाईकोर्ट के जज होकर आए थे किन्तु वे वस्तुतः भारत के पुनर्जागी सिद्ध हुए। उन्हीं के प्रयत्न से, सन सत्रह सौ चौरासी में बंगाल एजियाटिक सोसायटी की स्थापना हुई जिसमें भारतीय सभ्यता की नवुलशास्त्रीय (Ethnological) विवेचना प्रारम्भ हुई। यही स इण्डोलॉजी (Indology) का विधिवत अध्ययन प्रारम्भ होता है। जोस ही पहले व्यक्ति थे जिन्होंने उत्तरी भारत में लकर आयरलैंड तक फैली हुयी भाषाओं की समान आनुवंशिकता की ओर विद्वत समाज का ध्यान आकर्षित करके, एक ओर, भारतीय सभ्यता की प्राचीनता की ओर ध्यान दिलाया तो दूसरी ओर तुलनात्मक भाषा विज्ञान के लिए माग प्रशस्त किया। जोस द्वारा किए हुए 'गुजराती' के अंग्रेजी अनुवाद का अध्ययन करके ही गेटे ने 'गुजराती' पर अपना प्रसिद्ध कविता लिखी थी। यह जोस के ही प्रयत्नों का परिणाम था कि चार्ल्स विल्किंस ने गीता का अंग्रेजी में अनुवाद किया, सत्रह सौ चौरासों में मनुस्मृति का अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित हुआ और सन अठारह सौ पाँच में वॉलब्रुक ने 'बं' का अंग्रेजी में प्रामाणिक विवरण प्रकाशित किया। मन्समूलर इन सारे अंग्रेज विद्वानों की बौद्धिक परम्परा के चर्मोत्पन्न कल्प में आये।

भारत में अंग्रेजों का राज लगभग डेढ़ सौ वर्षों तक रहा। इस राज्य-काल में अंग्रेजों और भारतीयों का पारस्परिक सम्बन्ध, वस्तुतः, नहीं बन-बराबर रहा। भारत में अंग्रेजों का जज मिश्रितरी शासन और व्यापारों के रूप में रहा और जहाँ भी वे रहे उन्होंने अपने सामाजिक जीवन को बनाये रखा। मुसलमानों की भाँति वे

भारतीय सामाजिक जीवन के पारस्परिक स्तर पर कभी भी नहीं आय। जिन भारतीयों ने इस ईश्वर का स्वीकार भी किया, वे भी अंग्रेजी मिशनरियाँ से चर्चों और समाजों में ही मिलते थे। एंग्लो इण्डियनों को अंग्रेजों ने कभी भी अपने सामाजिक जीवन का अंग नहीं माना। इंग्लैंड का बौद्धिक प्रभाव भी प्रत्यक्ष न पड़ कर अप्रत्यक्ष रूप में पड़ा। इसी कारण, अंग्रेजों और भारतीयों में पारस्परिक सांस्कृतिक आदान प्रदान बहुत ही कम हुआ। भारत में जो कुछ भी यारोपीय प्रभाव अंग्रेजों के माध्यम से आया वह, भारत में अंग्रेजों राज को बनाए रखने की आवश्यकताओं की पूर्ति के प्रयास में आया। यही कारण है कि अंग्रेजों के राज्यकाल में भारत का पश्चिमोत्कर्ष धीरे-धीरे हुआ। फिर भी, अंग्रेजी राज्यकाल में, भारत के सामाजिक सांस्कृतिक जीवन में आधारभूत परिवर्तन हुए। इस्लाम के सघात से भारत के सामाजिक आर्थिक ढाँचे में कोई परिवर्तन नहीं आया था और, इस कारण मुसलमानों के प्रभाव में भारत के धार्मिक तथा दार्शनिक विचारों में अधिकतर परिवर्तन हुये। किन्तु अंग्रेजी राज के माध्यम से भारतीय समाज और संस्कृति पर जो सम्प्रदायी सघात पड़ा उसमें भारत के सामाजिक आर्थिक जीवन में आधारभूत परिवर्तन हुए और उन परिवर्तनों ने समाज और संस्कृति के अंग अंगों का परिवर्तित किया।

अंग्रेजी राज के माध्यम से भारतीय समाज और संस्कृति पर यारोपीय सम्प्रदायी का जो सघात पड़ा उसके स्वरूप का मूल्यांकन करते हुए गोपालकृष्ण गाखल ने कहा था कि भारत के बाहर के देशों और पश्चिम में जो सम्प्रदायी स्थापित हुआ है वह बवल ऊँची सम्प्रदायी है किन्तु भारत में पश्चिम (The West) का प्रभाव भारत के इण्डियनों की मना तक में धस गया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अंग्रेजी राज के माध्यम से भारत की संस्कृति तथा पश्चिम, एक बाह्य तथा प्रगतिशील सम्प्रदायी के सघात में आयी। अंग्रेजी राज के ही माध्यम से भारत में पश्चिमी प्रणाली पर विधि और राज्य का सगठन किया गया, अंग्रेजी भाषा के माध्यम से उच्च शिक्षा प्रणाली का सगठन किया गया जिसके आदेश और अर्थों (Values) एकत्रित भिन्न थे, राजनीतिक जीवन की यारोपीय धारणाओं का भारतीय जीवन में प्रवेश हुआ यारोपीय दार्शनिक तथा पान विज्ञान का प्रचार हुआ, यातायात और उत्पादन के नये माधमों से आर्थिक जीवन का एक नया रूपांतरण हुआ और नये तथा द्रुतगामी संचारण के साधनों से नये विचारों का संचार हुआ और इन सबका सम्मिश्रित प्रभाव हुआ सामाजिक परिवर्तन की उस गति और दिशा का जन्म जो भारत के लिए एकदम नई थी।

प्रारम्भ में ही अंग्रेज प्रशासक दो मतों के रहें हैं। एक श्रेणी में वे लागू आते हैं जो भारतीय पान विज्ञान और दान से इतने प्रभावित थे कि वे भारत के

की भाषाओं दशन, गणित मजहब और प्रजातंत्र की वास्तविक जननी भारत ही है¹ ।

इसप्रकार यारोप की द्विभाजित विचारधारा में भारत का वास्तविक मूल्यांकन न हो सका। इसकारण भारत के अग्रेज प्रशासक भी यह निगमन कर पाये कि भारत और योरोप का क्या सम्बन्ध है। दूसरी ओर, इसका परिणाम यह हुआ कि स्वयं भारत की विचारधारा में, यारोप की लेकर द्विभाजिता का समावेश हुआ और परम्परा बनाम आधुनिकता का विवाद चल पड़ा। इसमें कोई शक नहीं कि योरोप का प्रभाव एक झन्झावात के समान आया जिसके झरोके में भारतीय बौद्धिकता बसे सचेष्ट हुयी जस गम्भीर निद्रा में खोया हुआ व्यक्ति सहसा उठ कर और खतरे का अनुभव कर सचेष्ट हो उठता है। भारत ने अपनी बौद्धिक परम्पराओं में यारोपीय सम्प्रदाय का मूल्यांकन करके उसे अपने सम्बन्ध में लाभ का प्रयास किया। इसके दो परिणाम हुए—एक ओर, भारत ने अपने को दूढ़ निकला² और दूसरी ओर योरोप के प्रभाव से उत्पन्न पुनर्जागरण की रोगनी में अपनी सस्कृति को पुनः स्थापित करने का प्रयास किया। यारोप से आने वाले इसास्यत के आनामक प्रहारा, योरोप की गिरीहपायिवता और उससे उत्पन्न समस्याओं तथा योरोप में छिड़ने वाले दो महायुद्धों की भीषणता का देख कर, भारतीय विचार यारोपीय सम्प्रदाय के प्रति मग्नित हो उठा। पर, साथ ही साथ, योरोपीय सम्प्रदाय के लाभदायक और मानवीय उपान्त्यों का हृदयगत करने का लोभ भी भारत ने त्याग सका। जिस प्रकार, भारत का लेकर यारोपीय विचारधारा में द्विभाजिता का समावेश हुआ उसी प्रकार यारोपीय सस्कृति का लेकर भारत में द्विभाजित विचारधारा का जन्म हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि, एक ओर भारतीय सस्कृति का पुनर्मूल्यांकन शुरू हुआ तो, दूसरी ओर भारतीय सस्कृति में यारोपीय सम्प्रदाय का समावेश करके उसमें पुनःस्थापन का प्रयास शुरू हुआ। इसी द्विभाजिता का एक अन्य परिणाम हुआ भारत में बट्टर पुरातन पथी विचारधारा का अस्त्युत्थ। पश्चिमी सम्प्रदाय के मघात में भारतीय सस्कृति का भङ्गमार दिया भारत में एक नए बौद्धिक कोलाहल का जन्म दिया और भारतीय समाज तथा सस्कृति सम्बन्धी अनेक बेकार प्रश्नों का जन्म दिया, किन्तु फिर भी, यह मघात भारतीय सस्कृति को परम्परात्मक अभिरुचि को न बदल सका। यह मघात, वस्तुतः, समुद्र की उन्नाल तरंगों के समान रहा है जिसमें भारतीय सस्कृति उस चट्टान के समान सिद्ध हुयी जिसमें समुद्र की लहरें टकतारी ही रही और उसे हिला न सकी³ ।

1 राधाकृष्णन एम० ईस्ट एण्ड वेस्ट सम रेफ्लेक्शन्स पृष्ठ 70

2 पानिकर, के० एम० ए सर्वे आफ इण्डियन हिस्ट्री अध्याय 20 और 21

3 ध्यास, के० सी० दि सोनल टिनासा इन इण्डिया पृष्ठ 9

ए० आर० देसाई¹ के अनुसार, जिस समय भारत में अंग्रेजी राज की जड़ें जमनी प्रारम्भ हुयी थी उस समय इङ्गलैंड की सामन्तवादी व्यवस्था पृथिव्यादी व्यवस्था में बदल चुकी थी। वहाँ एक ओर, मुद्रा, बाजार और मशीनीकृत औद्योगीकरण पर आधारित आर्थिक व्यवस्था तथा, दूसरी ओर, इस अव्यवस्था पर आधारित प्रतिस्पर्धी (Competitive), व्यक्तिवादी, चलिष्णु (Mobile) और वग वद सामाजिक व्यवस्थाएँ अस्तित्व में आ चुकी थी। इङ्गलैंड की सामाजिक आर्थिक व्यवस्था के आधार से धमनिरपक्षिता, प्रतिस्पर्धा (Competition) और उपार्जित सामाजिक प्रतिष्ठा (Achieved Social Status)। इन विशेषताओं के कारण अंग्रेजी सामाजिक आर्थिक व्यवस्था भारत की अपेक्षा कहीं अधिक गत्यात्मक थी। इस गत्यात्मकता का एक अ्य कारण था अंग्रेजी व्यवस्था पर वनानिक प्रौद्योगिकी का प्रभुत्वमय प्रभाव। भारत की अपेक्षा इङ्गलैंड का प्रौद्योगिक स्तर अधिक विकसित था और पूँजीवादी प्रवाह में पूणतया निमज्जित होने के कारण इङ्गलैंड की राष्ट्रवादी भावना अधिक स्पष्ट गत्यात्मक और पुष्ट थी।

इसके विपरीत भारत एक खतिहर देश था। यहाँ की आर्थिक व्यवस्था उस कृषि पर आधारित थी जिसमें उत्पादन का प्रत्यक्ष सम्बन्ध था जीवन निर्वाह से न कि मुनाफा और बाजार से। प्रौद्योगिकी का स्तर इङ्गलैंड की अपेक्षा निम्न था। कृषि पर आधारित भारतीय आर्थिक-व्यवस्था का सामाजिक पहलू एक जार भारतीय सामन्तवादी में निहित था ता दूसरी ओर, मयुक्त परिवार जाति ग्राम संगठन और उन धार्मिक धारणाओं में जो अपरिवर्तनशीलता तथा समष्टिवादिता की प्रकृति थी। भारतीय सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था समष्टिवादी थी और अभिराजित सामाजिक प्रतिष्ठा (Ascribed Social Status) पर आधारित थी। भारत का औद्योगीकरण उस प्रौद्योगिकी पर आधारित था जिसमें प्राणिक शक्ति (Organic Power) का प्रयोग होता था। औद्योगीकरण सीधे निभर था कृषि पर न कि लाभ और बाजार पर। विभिन्न उद्योगों में लगे हुए कारीगर उत्पादन करते थे केवल स्थानीय उपभोग के लिए और यही कारण है कि जाति-व्यवस्था के रूप में श्रमिकों और कारीगरों का पारिभ्रमिक मुद्रा में न मिल कर धान्य (Kurd) के रूप में मिलता था। मुद्रा का स्थान पर बदलौअल का प्राणय था। सारी सामाजिक आर्थिक और राजनतिक व्यवस्था की घुरी या प्रयुक्त ग्राम (Isolated Village) और, इसकारण भारत का राष्ट्रवादी भावना इङ्गलैंड की अपेक्षा अपेक्षित शीघ्र थी। भारत उग समय एक सदृष्टि राष्ट्र था न कि राज्य राष्ट्र (Nation State) जो पूँजीवादी व्यवस्था की उत्पत्ति है और सदृष्टि निरपेक्ष तथा धम निरपेक्ष राष्ट्रवादिता की जननी है। सोंप में भारतीय सामाजिक आर्थिक व्यवस्था अनाम्य (Rigid) अगत्यात्मक और मशीनीकृत थी।

¹ देसाई, ए० आर० सोशल चक्राउण्ड आफ इण्डियन नेशनलिज्म।

इस प्रकार, भारत में, अंग्रेजी राज की स्थापना से सम्बन्धिता मस्कृति सघात की जा गत्यात्मक परिस्थिति उत्पन्न हुई उसमें, वस्तुतः, इङ्ग्लैंड का पूजावादी व्यवस्था का भारत का सामंतवादी व्यवस्था पर सघात पड़ा। इस सघात में एक चार थी अपेक्षाकृत कम परिवर्तनशील और स्थायी सामाजिक सांस्कृतिक व्यवस्था और, दूसरी चार, थी एक व्यापारी, साम्राज्यवादी गत्यात्मक, चलिष्णु और सैनिक व्यवस्था, एक चार थी जाविकसित तथा मन्द प्रौद्योगिकी और दूसरी चार थी एक उत्तरोत्तर विकसित प्रौद्योगिकी। भारतीय व्यवस्था समष्टिवादी अभिराषित, अनाम्य, अप्रतियोगी और घर्मो-मुक्त थी जबकि अंग्रेजी व्यवस्था यवितवादी प्रतियोगी और घर्मनिरपेक्ष थी। भारतीय व्यवस्था मस्कृतिमूलक, रहस्यवादी और आध्यात्मिक थी जबकि अंग्रेजी व्यवस्था सम्बन्धितामूलक पाश्चिमी दृष्टिकोण और नितान्त प्रौद्योगिकी थी। दोनों व्यवस्थाओं अलग अलग ऐतिहासिक परिस्थितियों की उपज थी। अंग्रेजी व्यवस्था उपज थी वनानिक प्रौद्योगिकी और पूजावाद की—वह पूजावाद जा वैज्ञानिक प्रौद्योगिकी के प्रभावा के कारण इङ्ग्लैंड के सामंतवाद का एक सामाजिक-आर्थिक स्तर पर था और जिसकी आधारभूत भावश्यकताय थी यन्त्रवाद, राष्ट्रवादिता और साम्राज्यवाद। भारत में अंग्रेजी राज की स्थापना इसी पूजावाद की एक आवश्यकता मान थी और इसी कारण, अंग्रेजी राज के माध्यम से भारत में वही परिवर्तन हुए जो अंग्रेजी पूजावाद के अस्तित्व के लिए आवश्यक थे।

अंग्रेजी राज की स्थापना के बाद, भारत में सम्बन्धिता मस्कृति सघात की परिस्थिति में उत्पन्न परिवर्तना का निवचन मुख्यतया तीन दृष्टिकोणों से किया गया है। एक वह दृष्टिकोण है जा मार्क्सवाद पर नहीं बल्कि मार्क्सवादी अध्ययन रीति पर आधारित है। इस दृष्टिकोण से, आधुनिक भारत के सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तना को आर्थिक सामाजिक परिवर्तन श्रृंखला के एक सिलसिले में घ्रावन का प्रयत्न किया गया है। इस दृष्टिकोण का मानन वाल यह मायता लेकर चले हैं कि भारत के सामाजिक इतिहास में अंग्रेजी राज का काल वह काल है जब भारत की आर्थिक व्यवस्था में आधारभूत परिवर्तन हुए और आर्थिक परिवर्तनों ने सामाजिक सांस्कृतिक परिवर्तना का जन्म दिया। इस मायता के मानने वाला के मन में अंग्रेजी के अधीन भारत का इतिहास वस्तुतः एक सामंतवादी व्यवस्था का धीरे धीरे एक अपूर्ण पूजावादी व्यवस्था में परिवर्तन होना का इतिहास है¹।

दूसरा दृष्टिकोण उन अध्ययनकर्ताओं का है जिनके अध्ययन भारत के आविष्कार (Discovery of India) या भारतय मस्कृति का एक महान समुदाय

1 विषय अध्ययन के लिए देखिये सद्यधी ए० आर० देसाई कृत सोमल वक्रपाठण्ड आफ इण्डियन नेशनलिज्म नग्मूल करीम कृत चेंजिंग सोसायटी आफ इण्डिया एण्ड पाकिस्तान, डॉ० पी० मुखर्जी कृत माडर्न इण्डियन कल्चर, और एच० डी० मालविया कृत बिल्डिंग पचायत।

(A Great Recovery) की भावना से आत प्राप्त है। यह दृष्टिकोण इस मायता पर आधारित है कि अंग्रेजी राज के माध्यम से पहले दान सघात के प्रभाव में, भारत तथा भारतीय सभ्यता ने, वस्तुतः, अपने को पुनः दूब निकाला है। इसी का नेहरू ने भारत का आविष्कार कहा है और पात्रिकर ने एक महान समुत्थान। पात्रिकर के अनुसार, अंग्रेजी राज का काल ही बुरा काल है जब भारत की प्राचीन नौकरशाही की परम्पराओं का आधार पर एक नयी प्रशासन-व्यवस्था कायम की गयी। जब महापात के साधनों के विकास के कारण भारत का सर्वोत्तम एकीकरण हुआ जब भारत में राष्ट्रीयता का विकास हुआ तथा हिन्दुत्व सभ्यता के अध्ययन और भारतीय कला का पुनरुत्थान हुआ, जब भारत के प्राचीन इतिहास के नवनिर्घटन के प्रयत्न प्रारम्भ हुए और इतिहास के नए अर्थ तथा बुद्धवाद का निराला रूप समार के समक्ष रखा गया और जब इन सभी विकासों के सम्मिलित प्रभाव के कारण धीरे धीरे भारत में एक सामूहिक रूप की चेतना जगी। यही विकास पात्रिकर के अनुसार वह महान समुत्थान है जिससे आधुनिक भारत का सांस्कृतिक इतिहास आत प्राप्त है।

जिस प्रकार इस्लामी सभ्यता के सघात में भारत के सामाजिक विचार में कालाहल हुआ था और उसने सामाजिक नवजागृति (Social Renaissance) का सिलसिला प्रारम्भ हुआ था—वही सिलसिला जिनके शेर रामानुज, रामानन्द, बबीर तुल्सा और रामदास का उत्पन्न किया था और भारत में उन मुधारवादी पथों को जन्म दिया था जिनकी परम्परा वर्तमान समय तक आता है—उसी प्रकार पश्चिमी सभ्यता के सघात में भी एक बार फिर एक नए बौद्धिक कागज का जन्म दिया। इसी बौद्धिक कालाहल में एक नयी सामाजिक नवजागृति उत्पन्न हुई जिसने अनेक मुधारवादी आन्दोलनों का जन्म दिया। यह समाजमुधारवादी सामाजिक नवजागृति, वस्तुतः, भारतीय सामाजिक विचार का गत्यात्मक विकास है। अतः, अध्ययन का एक तीसरा दृष्टिकोण है आधुनिक भारत के सामाजिक विचार का गया एक निवचन। यह अध्ययन रीति दान की परम्परा में है और इसके अग्रणी हैं रामानुज।

इस प्रकार जसा कि पिछले मण्डल परिचयामन सर्वेक्षण में स्पष्ट है भारतीय सभ्यता पर पश्चिमी सभ्यता के सघात का विद्वानों ने कई पहलुओं में देखा है। एक सर्वोत्तम निवचन के लिए यह बातों की आवश्यकता है। एक और इस बात का आवश्यकता है कि पहले पश्चिमी सभ्यता के सघात के विभिन्न पहलुओं और उनके उत्पन्न होने वाले सस्यामिक आन्दोलनों का और, फिर इस सघात में उत्पन्न होने वाली सामाजिक नवजागृति तथा सामाजिक विचार का निवचन किया जाय। मध्याह्न में परिवर्तन, मुधार की आवश्यकता और मुधारवादी आन्दोलन एक दूसरे में सम्बन्धित हैं। जब अंग्रेजी सघात दो भागों में विभाजित है—एक मध्याह्न में परिवर्तन और दूसरा सामाजिक नवजागृति का आन्दोलन।

1. दलिय जवाहरलाल नेहरू द्वारा रचित इस्लामी आदि इतिहास और के० एम० पात्रिकर द्वारा ए० सवे आफ इन्डियन हिस्ट्री।

सामाजिक-सांस्कृतिक रूपांतरण

आर्थिक व्यवस्था

जमा वि पहन कहा जा चुका है योरोपाम सभ्यता का सबसे बड़ा और आधारभूत परिवर्तनकारी प्रभाव पड़ा भारत की परम्परागत आर्थिक-व्यवस्था पर । इस्लाम के सघात में भारत की आर्थिक व्यवस्था में कोई आधारभूत परिवर्तन नहीं आया था । मुस्लिम विजेता भारत के सामाजिक आर्थिक जीवन का एक अंग बन कर रहे और उन्हांन यहाँ का परम्परागत आर्थिक व्यवस्था का ही अपना लिया था । लेकिन भारत में अंग्रेजी राज की स्थापना ने एक नयी परिस्थिति का जन्म दिया । यह वह परिस्थिति थी जिसमें भारत में स्थापित अंग्रेजी राज्य इंग्लैंड का बन्ती हुयी पूँजीवादी व्यवस्था का एक आधारभूत था । यही कारण है कि अंग्रेजी राज के सघात से एक ओर पूँजीवादी व्यवस्था का भारत में आगमन और जन जन विवास हुआ तो दूसरी ओर पूँजीवाद की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए इंग्लैंड के पूँजीवादी वर्ग ने भारत के प्राचीन सामन्तवादी वर्ग का नष्ट करके, एक नये सामन्तवादी वर्ग को जन्म दिया । १० घण्टे दमाई के अनुसार अंग्रेजी के राज्य काट में भारत का इतिहास घट्नुत, यहाँ की सामन्तवादी व्यवस्था के एक अग्रणी पूँजीवादी-व्यवस्था

में बदलन का इतिहास है। किन्तु वास्तविकता कुछ और है। अंग्रेजी राज्य-पालक भारत में अंग्रेजी पूँजीवाद सर्वत्र यहाँ के सामन्तवाणी वगैरे की स्थायी रखने की ओर उन्मुख रहा जबकि भारत का पूँजीवाणी वगैरे जो स्वयं पारंपरिक मघात की उन्नत या एक ओर भारतीय सामन्तव्य का मिटान का और उन्मुख हुआ तो, दूसरी ओर, अंग्रेजी पूँजीवाद के विरुद्ध संघर्ष करने लगा। वीर्यम व नवम् में चलन वाला स्वतंत्रता-संग्राम, उमड़ा मिलन वाला जादिक सहायता व सात जीर स्वदेशी आन्दोलन - म तथ्य के प्रमाण हैं। आज भारत में पूँजीवाद अपने पुराने प्रतिद्वन्दी अंग्रेजी अमरीकी पूँजीवाद से पुनः आश्रय पान के लिए उन्मुख है क्योंकि आज उमड़ा ही स्वयं स्वतंत्र म है।

भारत की एक सामाजिक-आर्थिक गणना-संरचना का सम्बन्ध व लिय भारत की परम्परागत जादिक व्यवस्था में होने वाले उन परिवर्तना व सम्बन्ध की आवश्यक्ता हुआ जहाँ जो राज व सामन्त से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में घटित हुआ। भारत का परम्परागत जादिक व्यवस्था व मध्य आधार व कृषि की प्रभावता, तत्कालीन कृषि प्रौद्योगिकी कृषि पर आधारित जादिक व्यवस्था जीर इन सम्बन्धित तथा इनका स्थायित्व प्रदान करने वाली सामाजिक व्यवस्था। धाराप से सम्बन्ध स्थापित पान पर पहले भारत के उद्योग का प्रभावना मिला क्योंकि धारापय सम्बन्ध की प्रथम व्यवस्था में, भारत विन्ना व्यापारिक का एक बड़ा बाजार हा गया। विन्ना व्यापारी भारत की बनी वस्तुओं की तरफ से जीर विन्ना से लक्ष्यी हुई वस्तुओं का यहाँ बिकन व। वही बाजार न भारत के उन मध्यम उद्योग का सम्बन्धित जिसमें अस्तित्व का मुख्य आधार था विन्ना व्यापार और व्याप म पनपन वाला पूँजीवाद।

भारत में अंग्रेजी राज का स्थापना हा व मध्य मध्य, एक ओर भारत का बाजार में भारतीय माल की विधी वगैरे हाता प्रारम्भ हुआ क्योंकि मगाना का बनी माल भारत के इन माल की व्यवस्था रखना पटना था जीर दूसरी ओर विन्ना माल की मघात बन गयी। मनी व विन्ना मालिकों का अंग्रेजी पूँजीवाद व बनाव रखने का प्रयत्न किया। इनके लिए अंग्रेजी राज का मध्यम अंग्रेजी यथा जीर उमड़े द्वारा माल की परम्परागत जादिक व्यवस्था में काल की परिवर्तन किया गया था मध्यम म। अंग्रेजी राज में भारत की सामन्तवाणी व्यवस्था छाई पूँजीवाद व व्याप व्यवस्था में न मगाना। भारत में पूँजीवाद की वृद्ध व्यवस्था ही ननी जा अंग्रेजी और उन्ना मगाना की वृद्ध जीर धाराप म थी। वतमान भारत का आर्थिक व्यवस्था व मगाना-संरचना पूँजीवाद का धाराप मगाना की ओर प्रवर्तित ग रही है। यह धाराप व मघात वाली प्रभाव है कि वतमान भारत पूँजीवाद तथा मगाना-संरचना के घटका म है। इन घटकों में उन्ना हुआ भारत पूँजीवाद तथा मगाना-संरचना का वहा ही सम्बन्ध करने में प्रयत्नशील है जहाँ कि उमन

इसका जोर हिंदुत्व का तथा भाय जोर द्राविड का सम्प्रय किया है¹ ।

इसलए की जायिक व्यवस्था औद्योगिकृत पूजीवाणी व्यवस्था थी और इन कारण उसका प्रत्यक्ष प्रभाव भारत की कृषि व्यवस्था पर पडा । यारोप से सम्पक स्थापित जाने ही भारतीय कृषि व्यवस्था का जायिक मन्व व आधुनिक मशीनाकृत और पूजीवाणी औद्योगिकरण से हा गया था क्योंकि यारोप के लोगो ने भारत में उही वस्तुओ का अधिकतर खरीदा या प्राप्त करने पर जोर दिया जिनका उपयोग कच्चे माल की तरह विभिन्न उद्योगो में हा सकता था । पहले यारोप के लोगो की दिलचस्पी भारत में बनी उपभाग की वस्तुओ में थी किंतु जब यारोप में मशीनीकरण चला ता उनकी दिलचस्पी उपभाग की वस्तुओ में न रह कर कच्चे माल में अधिक हो गयी । अंग्रेजी राज के स्थापित होते होते, यह दिलचस्पी और भी बढ़ गयी । अतः भारत के किसान न उही वस्तुओ का उत्पादन करना प्रारम्भ किया जिनकी विभिन्न उद्योगो में आवश्यकता थी और जिनसे फौरन ही नकद रुपया मिल सकता था । पहले किसान अपनी भूमि से अपने लिए आवश्यक वस्तुओ को पैदा करता था और कृषि उसके लिये जीवन निर्वाह का एक साधनमात्र थी । किंतु यारोप से सम्पक स्थापित होने पर भारतीय किसान ने कपास गन्ना तिलहन जूट और तम्बाकू इसलिये बोना शुरू किया कि उनकी बाजार में माग थी और उनका ज्यादा लाभ जाता था । फलतः, भारतीय कृषि में गन्ना-तम्बाकू (Cash Crops) का समावेश हुआ । भारत के जिन क्षेत्रों में जिन वस्तु के उत्पादन के अनुकूल साधन थे उस क्षेत्र में उसी वस्तु का उत्पादन चला और उसी उद्योग का प्रासादन किया । बंगाल में जूट की रोनी बढ़ी, उत्तर प्रदेश और बिहार में गन्ना की पैदावार और विन्ध्य पर्वत के दक्षिण में कपास की और जाजर प्रदेश तथा मद्रास में तम्बाकू की । यही नहीं भारत के विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में अलग अलग जन्तु-पशु-पक्षी-मत्स्य-उत्पादन चला । इसप्रकार कृषि में एक तरह का विशेषीकरण (Specialisation) चला ता दूसरी छोर कृषि का

-
- 1 यारोप के प्रभाव से भारत में जो सामाजिक नवजागृति फली उसकी विचारधारा समाजवादी रही है । स्वतंत्र भारत का आदर्श समाजवादी समाज की स्थापना है—यह समाज जिसमें राज्य जनकल्याण का मुख्य साधन है किंतु उस अधिनायकत्व नहीं धारण है । उत्पादन के साधनों पर समाज का अधिकार होगा किंतु यहाँ तक जहाँ तक इतिहासिक परिस्थिति की आवश्यकता है । समाजवादी समाज व्यवस्था साम्प्रतिक अधिपार तथा मित्त्रियत और सामूहिक मित्रियत का सम्प्रय है जो न यारोप के पूजीवाणी शासकों से ही प्रभावित है और न साम्यवादी भाषणों से ही । समाजवादी समाज पूजीवाद और साम्यवाद का सम्प्रय है—द्वितीय पक्ष वर्गों को समाज की भूमिकाएँ ।

व्यापारीकरण (Commercialization)

भारतीय कृषि का उत्तरोत्तर विपरीकरण और व्यापारीकरण उम सम्पत् की परिस्थिति का परिणाम है जिसमें धीरे धीरे उसका सम्बन्ध अंतरराष्ट्रीय बाजार और औद्योगिककरण से स्थापित हुआ। यह इसी प्रक्रिया का परिणाम है कि भारत में, अंग्रेजी राज की स्थापना होने वाले होते, भारतीय किसान का अन्तर्राष्ट्रीय-आर्थिक-सम्बन्ध स्थापित हुआ। इसी प्रक्रिया का एक अन्य परिणाम यह हुआ कि अंतरराष्ट्रीय बाजार के उतार चढ़ाव का प्रत्यक्ष प्रभाव भारतीय किसान की आर्थिक परिस्थिति पर पड़ने लगा। अंग्रेजी के पहल की आर्थिक व्यवस्था में भारतीय किसान का सम्बन्ध बबल अपने गाँव और उम क्षेत्र तक सीमित था जहाँ से उमके जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति होती थी। किन्तु अंग्रेजी राज भारतीय कृषि और किसान का राष्ट्र और अन्तर्गत के मध्य में ले आया। यह इसी प्रभाव का परिणाम है कि वर्तमान भारत में कृषि और किसान की समस्याएँ राष्ट्रीय महत्व की हैं।

भारत की भूमि-व्यवस्था में परिवर्तन एक अन्य महत्वपूर्ण परिवर्तन है। अंग्रेजी के पहल की भूमि-व्यवस्था में भू-स्वामित्व व्यक्तिगत भी था और सामूहिक भी। ग्राम परिवार की अपनी भूमि होती थी और परिवार के विभाजित होने पर, परम्परागत उत्तराधिकार के नियमों के अनुसार भूमि का बंटवारा भी होता था। किन्तु जहाँ जहाँ भूमि ही जीवन निर्वाह का प्रधान साधन थी, भूमि विभाजन की प्रवृत्ति ने अव्यवस्थित काम था। गाँव के जगल और चरागाहों पर गाँव का सम्मिलित अधिकार रहता था जो वह अधिकार गाँव-पञ्चायत में निहित रहता था। राज्य के नए धन में नए नए धन के रूप में पदाधार के उम अंग में लिया जाता था ता राज्य समग्र समग्र पर विचारित करता था। राज्य के पञ्चायत के अनुपात में लिया जाता था। पञ्चायत के घटने के साथ साथ किसान का राजस्व भी घटने-बढ़ने रहता था। राज्य का राजस्व देने का प्रथम उपाय पञ्चायत पर था कि किसान पर। किसान राज्य के प्रति उत्तरदायी था पर बंधन प्रथम रूप में।

अंग्रेजी राज के मध्य स्थिति बने गयी। पञ्चायत पर निम्न राजस्व परिवर्तनमान है क्योंकि वह पञ्चायत के साथ बंधन बंधन रहता रहता है। भारत में एक व्यापारी कम्पनी द्वारा स्थापित राज्य के मन्त्रियों के लिये राज्य का अति विक्रम का दूर करने का प्रयत्न स्वभाविक है। कम्पनी राज का प्रथम आर्थिक कार्य लगाने के लिये करों के प्रयोग का आगाव बनाना और नी स्थापित था। दूसरा कार, जिस नामाने नया नव विकसित मध्यम वर्ग के आधार पर कम्पनी के राज्य के उम किया था उसका नी प्राप्ताह देन की आवश्यकता थी ताकि अंग्रेजी राज के मन्त्रियों को एक नया कार्यक्रम दिया जा सके। इनमें अन्तर्गत अंग्रेजी की आर्थिक उपाय स्थापित पद्धति की धारणाएँ भारत की परम्परागत धारणाओं के अन्तर्गत

थी। इन सबका सम्मिलित परिणाम हुआ भूमि व्यवस्था सम्बन्धी के सुधार जिनका प्रारम्भ सन सत्रह सौ तिरानवे में लाड कानवालिस के द्वारा सम्पन्न हुआ। लाड कानवालिस ने ही सबसे पहले स्थायी बंदोबस्त करके, एक ओर, सम्मिलित भूस्वामित्व के स्थान पर व्यक्तिगत भूस्वामित्व स्थापित किया, लगान की दर नवदसपयो में निश्चित की और जमींदारी को लगान वसूल करने का ठका दिया। जहाँ जहाँ रयतवारी प्रथा लागू की गयी वहाँ वहाँ भी लगान की दर निश्चित की गयी। समय समय पर भूमि का बंदोबस्त करके, लगान की दर को घटाने बढ़ाने का अधिकार सरकार ने अपने हाथ में रखा।

इस व्यवस्था के कई सामाजिक जाद्विक परिणाम हुए। व्यक्तिगत भूस्वामित्व के कानूनी सिद्धांत को मान लें तो परिवार तथा भूमि विभाजन अधिक बढ़ गया। बढ़ते हुए औद्योगिक नयी औद्योगिक पेशा संरचना (New Industrial Occupational Structure) गहरीकरण और यातायात के साधनों ने व्यक्तिगत का प्रोत्साहित किया और उसने व्यक्तिगत भूस्वामित्व की प्रवृत्ति का। इसका परिणाम हुआ भूमि का छोट छोट जलम टुकड़ा बनना। दूसरा परिणाम यह हुआ कि भूस्वामित्व और कृषि कार्य अलग अलग हो गये और कृषक तथा भूस्वामी अलग अलग व्यक्ति हो गये। इसी विभाजन से भारतीय समाज में जमींदार और तालुकदार नामक एक विशिष्ट सामंतवर्ग की उत्पत्ति हुयी—वह वर्ग जो वास्तव में भूस्वामी नहीं था किन्तु जिसे लगान वसूल करने का अधिकार प्राप्त था। भारतीय विद्वानों के लिखने से यह वर्ग अंग्रेजों की कृति था किन्तु अंग्रेज विद्वानों के मत में यह वर्ग अंग्रेजों के पहुँचे में चला आ रहा था और भारतीय सामाजिक जाद्विक व्यवस्था का पक्ष ही में एक जगह¹। किन्तु वास्तविकता यह है कि यह वर्ग अंग्रेजों की ही कृति था यद्यपि यह भारतीय परम्परा पर आधारित था। मुगलों के समय में जागीरदारी प्रथा थी और जागीरदारों का यादगाह की छार में लगान वसूल करने का उत्तरदायित्व मिला रहता था। सभी परम्परा का अनुसरण करते हुए अंग्रेजों ने भी जमादारों का लगान वसूल करने का ठका मीपा था। किन्तु यहाँ अंतर था ता बस एक। जागीरदारी प्रथा में भूमि पर गाँव का सम्मिलित स्वामित्व रहता था जबकि जमींदारी प्रथा में भूमि पर न तो गाँव का सम्मिलित स्वामित्व रहा और न कृषक का। गिरी प्रकार सरकार जमींदार का एक निश्चित रकम के आधार पर लगान वसूल करने का ठका देती थी उसी प्रकार जमींदार किसान को भूमि का एक निश्चित रकम एक निश्चित लगान की दर पर एक निश्चित अंश के लिए देता था। परती भूमि, चरागाह, बागा, तालाबों और जंगल पर जमींदार का अधिकार रहता था कि गाँव का। इस प्रकार, जमादारों का

वग वस्तुतः उन ठेकदारों का वग था जो सरकार का एक निश्चित वापिस रकम लगान के रूप में दान के उत्तरदायी थे। उनका जीवन निर्वाह का आधार था वह कमीशन जो वह कृषक मालक थे और जिमके लिये सरकार की आर स उन्हें वानुवी अधिकार दिला हुआ था। इस प्रथा से कृषक और भूमि का सम्बन्ध विच्छिन्न हो गया क्योंकि बाद भी कृषक किसी समय अपनी भूमि से वचित किया जा सकता था। साथ ही साथ इस प्रथा से गांव का समष्टिवादी जीवन भी समाप्त हो गया क्योंकि भूमि और लगान के लिये, गांव पचासत के स्थान पर विमान उत्तरदायी हो गया जमादार और सरकारी अफसरों के प्रति।

इसका बाद सब नहीं कि अंग्रेजी राज में मिचाइ के साथ ही तथा कृषि के प्राचीन तरीकों का सुधार करके, कृषि का अधिक लाभकारी बनाने का प्रयास किया गया। किंतु साथ ही साथ यह भी सही है कि जितनी सवाम सरकार ने अपित्त की उतनी लिये सरकार ने किसान से एक निश्चित रकम भी ली। इसका परिणाम यह हुआ कि कृषि पर नकल गच्च बढ़ता गया। लगान और मिचाइ की वापिस रकम रिमात का दना आवश्यक हो गया और इन रकमों का पैसावार की माश्रा से कोड सम्भार न था। उदाहरण के लिये यदि एक सत म दस मन पदा होया एक मन लगान और मिचाइ का रकम उननी हो गेगा जितनी कि व पदा से निश्चित है। इसका परिणाम यह हुआ कि फसल तैयार होत ही उस वचना रिमात के लिये जायस्यक हो गया तबकि रिमात फसल के विमान के लिये लगान चुकाना सम्भार न था। इस कारण अरबों की सामाजिक जाति व्यवस्था में मध्यजना (Middlemen) के रूप में उन वग का अस्तित्व हुआ जो उपार हान ही फसल तरात न। विमान के लिये तारा मतलब हुआ फसल का सतता वचना क्योंकि फसल तरात होत ही बाजार में मात की अतिवता का भाव गिर जाता है।

तब ही धार बाल दुस ओझागोरण के पभात के कारण विमान जत के अन्तर्गत, जीरा रिमात का जय वस्तुता के लिये बाजार और उन उद्योग, पर निहार होता गया किन्तु कति विधि पर उसका निदरण न था। जमींदारों प्रया के कारण रिमात का आविन स्थिति अनिश्चित हुआ क्योंकि भूमि उमर हास न कभी ली जा सकता थी। उद्योग घषा के द्वारा के कारण भूमि पर जनमस्या का त्वाव भी साथ ही साथ घषा। इस गभा कारण का सम्मिलित प्रभाव हुआ विमान का उतनी न्या गरीबी और भूमि के लिये एक तीव्रतम प्रतिवागिता। विमान की दन्ती ह्यी परावी के ही कारण, भारत की सामाजिक जाति व्यवस्था में अचिन्त वताम मगजन वग का अस्तित्व हुआ। वतनी ह्यी गरीबी के कारण रिमात का उधार लेन की आवश्यकता हुआ और उत उधार मिता महानता न। याराय में सम्भार स्थानित हान पर, अंश ही गज के माध्यम में जिन सामाजिक जाति व्यवस्था का अस्तित्व हुआ उसमें महाजन और मध्यजन, वस्तुतः एक दूसरे के पूरक हानर, एक

ऐसा मध्यम वर्ग बन गये जिसका सामाजिक आर्थिक अस्तित्व व्याप्त मुनाफा और कमीशन पर निर्भर है। योराप के सघात से वृषि का ही नहीं बल्कि सामाजिक व्यवस्था का ही व्यापारीकरण हुआ गया।

योराप के सघात से भारत की परम्परागत औद्योगिक व्यवस्था का एक ओर, ह्रास हुआ और दूसरी ओर, एक नयी औद्योगिक व्यवस्था का अम्युदय हुआ। योरापीय पूँजीवादी व्यवस्था के पहले की भारतीय औद्योगिक व्यवस्था, एक ओर, भारत की वृषि व्यवस्था पर आधारित थी और, दूसरी ओर भारत की सामाजिक संरचना पर। उपक का पेशा प्रधान पेशा था और सभी जातियों के सदस्य खेती को बतौर पेशे के ग्रहण कर सकते थे। फिर भी, भारत की संरचना में गिल्पी जातियों (Artisan Castes) के रूप में विशेषीकृत अंतर्विवाही समूह (Specialized Endogamous Groups) भी थे जो भारत के विभिन्न उद्योगों में लगे हुए थे और खेती जिनके लिये प्रधान नहीं बल्कि गौण पेशा था। इस प्रकार भारत की संरचना यद्यपि वृषि व्यवस्था पर आधारित थी फिर भी, उच्च जातियों के लोग वृषक नहीं थे। वे वस्तुतः सामान्य वर्ग के थे जो खेती नहीं करते थे बल्कि खेती से मिलने वाली आय निर्भर थे। जाति संरचना की मध्यम श्रेणी में कुछ जातियाँ उस श्रेणी की थी जिन्हें 'शुद्ध जातियाँ' (Clean Castes) कहा गया है जो जिनके सदस्य वृषक का ही कार्य करते थे। इसी श्रेणी में लोहार, सानार, कुम्हार, बटन नाई इत्यादि एसी जातियाँ भी थी जिनके सदस्य कारीगर भी थे और वृषक भी। किंतु वे कारीगर पट्टे थे जो कृषक बाद में। निम्न स्तर की जातियाँ में जानियाँ थीं जिनके सदस्य अपवित्र बन जाने वाले पेशों को करने थे और साथ ही साथ खेतिहर मजदूर का काम भी करते थे। इस प्रकार भारत के उद्योग जैसे वृषि व्यवस्था से संबंधित थे और उत्पादन का भीमा वृषि और वृषक की सामाजिक आर्थिक आवश्यकताओं तक ही सीमित था। ये कारीगर उन्हीं वस्तुओं का उत्पादन करते थे जिनकी खपत उस क्षेत्र में ही जाती थी जिनके कि वे निवास थे।

इस संरचना में सामाजिक आर्थिक व्यवस्था का आधार थी यामानी प्रधानता परम्परागत विधि प्रणाली द्वारा मान्य था। प्रत्येक गाँव में या बर्ष गाँवों का मिलाकर एक कारीगर परिवार का कुछ परिवारों का सेवा करने का अधिकार प्राप्त था। दूसरे गाँव में प्रत्येक कारीगर का कुछ यजमान परम्परा मिलने रहते थे जो कारीगर का मूल्य आधिकारिक रूप से साथ साथ सामाजिक भी था। जमा कि पतन गाँव व्यवस्था में जात भी हाता है जमा विवाह और मनु तथा धार्मिक उपासना के अंगरेजों पर इन कारीगर जातियों का कामकाजी (Pituhistic) महत्व भी था। एका रूप में उद्योगों का उत्पादन वहीं तक सीमित था जहाँ तक उनकी स्थानात्मक खपत थी। इन कारीगर जातियों के सदस्यों द्वारा अधिकतर उत्पादन स्थानात्मक खपत के ही लिये होता था। पारिश्रमिक रूप में दो बार धार्य के

रूप में ही लिया जाता था और वह भी परम्परा से निर्धारित था। इस प्रथा के अवशेष आज भी ग्रामीण समाज में पाये जाते हैं।

मुगलमानों के राज्यकाल में भारत का व्यापार बढ़ने के साथ साथ भारत का औद्योगीकरण भी बढ़ा और उसके फलस्वरूप व्यापारी गहरो में व्यापारी मण्डियाँ भी अस्तित्व में आईं जिनमें उम अतिरिक्त माल की खपत होती थी जो कारीगर जातियों के सन्तुष्ट करने अतिरिक्त समय में स्थानीय खपत के अतिरिक्त बाताये। भारत के आर्थिक संगठन में धार्मिक मेले साप्ताहिक पैठे और व्यापारी मण्डियाँ ऐसे ही अतिरिक्त माल के आदान प्रदान के साधन रहते हैं और आज भी हैं। हर धार्मिक मेले का एक व्यापारी पक्ष भी है जो यातायात के साधनों के विनाम के साथ साथ और भी विस्तृत हुआ है। मुगलमानों के राज्यकाल में बन्दे हुए औद्योगीकरण के कारण, भारत के विभिन्न भागों में औद्योगिक क्षेत्र भी अस्तित्व में आ गये थे जहाँ निरक्षर ही उत्पादन बाजार के लिये होता था। मन्मथ के लिये प्रसिद्ध ढाका एक ऐसा ही क्षेत्र था। किन्तु इस औद्योगिक व्यवस्था में कारीगर का घर ही कारखाना था और कारीगर स्वयं अपना मालिक भी था। वह पूँजीपति भी था और मजदूर भी।

याराप के सम्पर्क से यह व्यवस्था उम समय से बदलती प्रारम्भ हुयी जबसे योराप में प्राकृतिक शक्तियों से चलने वाली मशीनों का आविष्कार हुआ और मुनाफे के लिये बड़े पैमाने पर, कारखानों का संगठन हुआ जिसका परिणाम हुआ अपना-पूना अधिक सत्ता उपभावता वस्तुओं का उत्पादन। बड़े पैमाने पर उत्पादन का परिणाम हुआ याराप के विषय बाजार का प्रसरण जो अंग्रेजी राज के माध्यम से भारत तक आ पहुँचा। मशीनी उपभावता वस्तुओं की मांग बढ़ी जिसका परिणाम स्वयं भारत में परम्परागत औद्योगीकरण का ह्रास होना प्रारम्भ हुआ। कृषि तथा उपभावता वस्तुओं के व्यापारीकरण का व्यापारिक परिणाम हुआ परम्परागत यजमानों प्रथा के आधार का हिलना। योगेश के सम्पर्क में और अंग्रेजी राज के माध्यम से फलदाता व्यापारीकरण मुगलों की व्यवस्था (Monetary Economy) पर आधारित था। धन आर्थिक ज्ञान प्रदान (Economic) में मुद्रा का महत्व पक्ष की अंग्रेजी और भी बढ़ गया। निम्न की भाँति कारागर भी जीवन निर्वाह की वस्तुओं के लिये मुगल और बाजार पर निर्भर हो गये। इन परिस्थितियों का परिणाम यह हुआ कि एक बार कारागरों के उद्योग पक्ष का उत्तरदाता दायर हुआ। उनकी मशीनी बनी के कृषि पर ही निर्भर हो गये जिनके कृषि पर जनमन्त्रों का प्रभाव बढ़ा और दायरों की धार के स्थापना पर वे मुद्रा के रूप में पारिधमिक रूप के लिये बाध्य हुए। वास्तव में भारत की ग्रामीण सामाजिक आर्थिक व्यवस्था में धार के स्थापना पर मुद्रा के रूप में पारिधमिक धार की प्रवृत्ति बढ़ रही है। भारत की परम्परागत सामाजिक आर्थिक व्यवस्था का कारीगरत्व धारता भूति उमान वाला (Wage Farmer) हुआ कारीगर हो गया या छोटे पैमाने का मध्यमवर्गीय व्यापारी।

भारत में पारंपरिक ढंग के जाधुनिक औद्योगिकीकरण का श्रीगणेश मुख्यतया अग्रजी पूजा से हुआ। इस औद्योगिकीकरण की प्रथम अवस्था थी भारत के कच्चे माल को उत्पादन के योग्य बना कर पारंपरिक विशेषतया इंग्लैंड भेजना। किंतु धीरे-धीरे, विदेशी पूजा के ही द्वारा उपभावता वस्तुओं के बनाने के कारखाने मुलने लगे। बगडा गन्ध और जूट उद्योग एक प्रमाण हैं। विदेशी पूजापतिया के सम्पर्क से धीरे-धीरे भारत के पूजापतिया ने इस ओर कदम उठाया। अग्रजी साम्राज्य में उन्मुख व्यापार की भांति अपना कर अग्रजी ने भारतीय औद्योगिकीकरण को रोकने का प्रयास किया क्योंकि इंग्लैंड की प्रतिस्पर्धिता में भारतीय औद्योगिकीकरण को प्रगल्भी सुरक्षा (Tariff Protection) की आवश्यकता थी। प्रथम महायुद्ध में भारत की इस आवश्यकता का पूरा किया गया कि इस महायुद्ध में अग्रजी का यह महसूस हुआ कि जाधुनिक ढंग में औद्योगिकीकरण भारत अग्रजी साम्राज्य के लिये लाभदायक ही होगा। प्रथम महायुद्ध में जिस भारतीय पूजापतियों की जन्म पड़ी थी उसमें युद्ध समाप्ति के बाद स्वदेशी जा दालन का आशय लेकर अपने का जीर जाग बढ़ाया। प्रथम और द्वितीय महायुद्धों के बीच का ही समय वह समय था जब भारत का औद्योगिकीकरण जाग गया। द्वितीय महायुद्ध की आवश्यकताओं ने भारतीय औद्योगिकीकरण का और भा जागे बनाया और मजबूत किया। स्वतंत्रता के बाद से पारंपरिक ढंग के औद्योगिकीकरण की महत्ता और भी बढ़ गयी है। वर्तमान भारत पूजावादी तथा समाजवादी ढंग में अपना औद्योगिकीकरण कर रहा है।

भारत में बनने हुए औद्योगिकीकरण के कई सामाजिक जाधुनिक परिणाम निकले। पहला गांधी का परम्परागत सामाजिक आर्थिक महत्व समाप्त हो गया और कृषि के स्थान पर औद्योगिकीकरण सामाजिक जाधुनिक व्यवस्था का मुख्य आधार बन गया। कृषि का सम्पूर्ण जीवन निर्वाह का आश्रय यथाप्रायः सत रहकर उत्तरात्तर विनिमित औद्योगिकीकरण में हो गया। औद्योगिकीकरण तथा यथाप्रायः के सामानों ने भारत में सहकारीकरण का जन्म दिया और प्राचीन मन्थनी राजनतिक व्यापार और धार्मिक शहरों के स्थान पर बड़े बड़े औद्योगिक शहरों का विकास हुआ। वर्गवर्ष के अन्त में महान शक्ति का नगर जन्म पाया और गमगणपुर जन्म शहरों का विकास पिछले दशकों में हो रहा है। भारत का नये औद्योगिक आर्थिक व्यवस्था का आधार का वर्गीकरण है। शहरों में हुआ। भारत का अर्थव्यवस्था का चलाने वाला संस्थाएँ (बैंक पूजापतिया व्यापारिका और मजदूरों के संगठन स्टार एमचज और मन्थनी) ने ही शहरों में बसि हैं। भारत की राजनतिक गति का व द्र भी यही स्तर है। अर्थव्यवस्था के विकास के लिए भारत के सामाजिक आर्थिक जीवन में परिवर्तन ला रहा है। शहरों में हो रहा है। भारत के नये सामाजिक-सांस्कृतिक मान्यता का निर्धारण भी शहरों में होता है। शहरों के द्रुतगामी जीवन में धीरे-धीरे सामाजिक व्यवस्था में व्याप्त अनामकता (Anonymity)

और द्वितीयक समूह संगठन (Secondary Group Organization) से, किसी सीमा तक, सयुक्त परिवार तथा जाति जसी समष्टिवादी संस्थाओं में लचीलापन आ रहा है और व्यक्तिवाद का प्रोत्साहन मिल रहा है।

यागोपीय पूँजीवादी औद्योगीकरण का भारत में लाने के लिये योरोपीय प्रौद्योगिकी, योरोपीय औद्योगिक संगठन और आर्थिक संस्थाओं का अनुकरण किया गया। यारोप की ही भाँति भारत में भी उत्पादन का उत्तरात्तर व्यापारीकरण किया गया और यारोप की ही भाँति, भारत में प्रौद्योगिक विशेषीकरण (Technological Specialization) को प्रोत्साहन दिया गया। भारत की परम्परागत आर्थिक व्यवस्था में पगागत विभेदीकरण (Occupational Specialization) जाति प्रथा के रूप में सामाजिक विरासत पर आधारित था। किंतु इस नया व्यवस्था में पगागत विभेदीकरण का आधार बना व्यक्ति और उसके द्वारा प्राप्त किया जाने वाला विशेष ज्ञान। औद्योगीकरण के क्षेत्र में औद्योगिक गृह इकायों में गाँव में बढ़ती हुई आर्थिक बकारी १ कृषक और कारीगरों का गृह में आकर जीवना कमाने के लिये प्रेरित किया। इसका परिणाम हुआ भारत की सामाजिक आर्थिक व्यवस्था में औद्योगिक सवहारा वष का अम्युन्य और उसकी उत्तरात्तर वद्धि। जिनान की नीति, मजदूरों को राष्ट्र की आर्थिक समस्या का एक अंग बन गया। यारोप की भाँति भारत में भी श्रमिका तथा वनतभागी वर्गों ने टूट यूनियन आन्दोलन को अपनाया प्रारम्भ किया। जिन प्रकार यारोप में औद्योगीकरण तथा उमम उत्पादन वष व्यवस्था न राजनतिक गति विधि और विचारधारा का प्रभावित किया वसे ही, भारत में भी औद्योगीकरण का प्रभाव न उत्पन्न होने वाली वष-व्यवस्था न राजनीति का प्रभावित करना प्रारम्भ किया। भारत की राजनतिक पार्टियाँ पर यारोप व ही राजनतिक धारित आगों की छाप है यद्यपि उन आगों का भारतीय मासृतिर इति हाम का गम्भ म गान का प्रयास भी सभी दला में विद्यमान है।

इस प्रकार अंग्रेजी राज में भारत की अग्रगणिता परम्परावादी और स्वैतिक आर्थिक व्यवस्था पर यारोप की प्रगतिशील और गत्यात्मक व्यवस्था का प्रभाव पडा और उसका परिणाम हुआ भारत की परम्परागत आर्थिक व्यवस्था का अधिक आधुनिक आर्थिक व्यवस्था में धीरे धीरे हलात्तरण, जिनकी विगततायें हैं पूँजीवादी उत्पादन और मगन्न, मुद्रा अष-व्यवस्था की प्रमुचता भारत का आर्थिक एकीकरण और आर्थिक जीवन का उत्तरात्तर व्यापारीकरण। यह हलात्तरण वम्युन एक गगत प्राति है जिनम सामाजिक प्रतिश और प्रथा पर आधारित आर्थिक व्यवस्था, धीरधार, मरिण (Contract), उत्तरात्तर विभेदीकरण और बडे पमान का उत्पादन पर आधारित एक गतिशील और गत्यात्मक आर्थिक व्यवस्था में बदल गया। वरा

आस्टे (Vera Anstay) के मत में भारत की अधिक व्यवस्था का यह रूपान्तरण एक आर्थिक व्यवस्था का दूसरी आर्थिक अवस्था में वह रूपांतरण नहीं है जिसका वणन यारोप के आर्थिक विनास के इतिहासकार पूजीवादी व्यवस्था के विकास के वणन में करते हैं क्योंकि अंग्रेजों के आने के पहले ही भारत में आधुनिक आर्थिक व्यवस्था की विपत्ताय आ चुकी थी। यह रूपांतरण वस्तुतः वह रूपांतर है जिसमें प्रथमकृत और आत्मनिर्भर गाँव पर आधारित आर्थिक व्यवस्था (जिसमें उच्चतर उत्पादन और संगठन केवल कुछ विशेष वर्गों और क्षेत्रों में निहित था) धीरे धीरे उस आर्थिक व्यवस्था में परिणत होती है जिसमें अधिकतर उत्पादन का व्यापारीकरण हुआ है, मुद्रा की प्रधानता बढ़ी है और जिसमें आर्थिक व्यवस्था का लगभग एकीकरण हो गया है। यह रूपांतरण अब भी जारी है और ज्यों ज्यों यह रूपांतरण बढ़ता जाता है परम्परा का स्थान विधि (Law) लेता जाती है। जसा कि अंग्रेजी राज में था वैसे ही आज भी इस रूपांतरण का ध्येय है पार्थिक विकास (Material Development), आर्थिक एकीकरण (Economic Unification) को बढ़ाना तथा आवश्यक व्यापारीकरण और देश के आधुनिककरण की अवधि को जहाँ तक हो सके कम करना। इसका परिणाम हुआ है नयी और पुरानी व्यवस्थाओं में विरोधात्मक सघर्ष और वह मानसिक असुरक्षा जो आर्थिक व्यवस्था के सहसा परिवर्तन से होती है। मन्दाता गांधी के नेतृत्व में चलने वाला स्वदेशी आन्दोलन और परम्परागत कुटीर उद्योगों पर जोर इसका प्रमाण है। वर्तमान भारत में एक आर योरोपीय ढंग के औद्योगिककरण पर और, दूसरी ओर, प्राचीन ढंग के कुटीर उद्योगों पर जोर सम्भवतः इसी परिस्थिति का दान है।

यारोपीय तथा अंग्रेजी राज के सघात से उत्पन्न होने वाला सामाजिक आर्थिक रूपांतरण धीरे धीरे हुआ है। अतः वह भारत की परम्परागत सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था का वह रूपांतरित उत्विकाम है जिसमें योरोप, विशेषतया इंग्लैंड और भारत का समय इस प्रकार हुआ है कि आधारभूत देशज तत्व एक नयी व्यवस्था में प्रतिनिहित हो गये हैं। भारत की भूमि व्यवस्था में परिवर्तन आवश्यक किया गया किन्तु उसका आधार वही व्यवस्था रही जो मुगलों के पहले से चली जा रही थी। भूमि का पमाहण व वही तरीके का म लिये गये और स्वीकार किए गए जिनका प्रयोग टाडरमल ने किया था। भूमि अभिलेखों की पुस्तकें (Books of Land Records), सगरा और गतीनी वमें ही अपना लिए गए जैसे कि पहल से चल आ रहे थे। अंग्रेजों ने पट्टवारियों की काय विधि लगभग वही ही रखी जमी कि वह पहल से चला आ रही था और पट्टवारियों का बहुधा उसी जाति व सत्स्या में से भरती किया गया कि म से वे मुगलकाल में भरता किए जाते थे। जाति प्रथा व गाव

साथ, जसा कि पिछल बरान म स्पष्ट है, एक नयी बग-व्यवस्था का आस्थुदय हुआ किन्तु नयी आर्थिक व्यवस्था से उत्पन्न बग व्यवस्था का आधार भारत की परम्परागत जाति-व्यवस्था ही बनी। भारत का बढता हुआ व्यापारीकरण, एक आर, यारापीय आधार पर विकसित हुआ ता दूसरी आर, परम्परागत आधार पर। अंग्रेजों ने नाप-सील के पुरान तरीकी को जम का तैमा चलन लिया और उसका साथ साथ योगपीय तरीका भी लागू किया। ब्रजजी शासन ने अपनी मुद्रा चलाई अवश्य किन्तु पहल म चउ आते हुए छपिया आना पाई का जैसे का तमा अपना लिया। हा, यह अवश्य है कि सोन के सिक्के के रूप म यदि एक ओर गिनी चली ता दूसरी ओर अक्षरपी भी चलती रही। इसी प्रकार आधुनिक भारत म शहरीकरण का प्रो माहन उही यास्ता से मिला जिहाने आधुनिक याराप क गहरीकरण का जम दिया। किन्तु, भारत का गहरीकरण भारत की सामाजिक व्यवस्था म उत्पन्न आतिवारी परिवर्तन न कर सका जितन कि यारापीय सामाजिक व्यवस्था म बढा के गहरीकरण ने किया है। भारत क गहरे मे यारापीय प्रौद्योगिकी और गाव व्यवस्था का एक ऐसा सम्बन्ध हुआ है जा भारत की ही विशेषता है। भारत के अधिकांश शहर प्रौद्योगिकी क दृष्टि बाण से ता शहर लात हैं कि तु सामाजिक व्यवस्था के दृष्टिकाल से गाव। भारत मे स्थायी गहरी जनसंख्या का अनुपात यारापीय देगो की अपक्षा नगण्य सा है और गाव तथा शहर की जनसंख्याओ म निरंतर चलन वाला दुतरफा स्थानांतरण गहर के ग्रामीण प्रभाया का संस्थापित किया करता है। गहर म समुबन परिवार और जाति क बंधन गोल अवश्य हुए हैं पर व टूटे नहीं है। शहर क अनामक और गत्यात्मक आतावरण म आज भी ब्यवित का सर्वाधिक मुरसा परिवार और जाति से ही मिलती है और इसीलिए शहर क अनामक आतावरण म जो गत्यात्मक और द्वितीयक समूहो की प्रधानता से उत्पन्न होता है, जाति, एक विशेष प्रकार क प्राथमिक समूह के रूप म रूपान्तरित हाकर, ओर भी मजबूत हो गयी है।

२

प्रौद्योगिकी और विज्ञान,

यारापीय प्रौद्योगिकी और विज्ञान एक दूसरे से बाली शान की तरह मबधित हैं क्योंकि बतमान याराप का जम देने वाली प्रौद्योगिकी का विभाग, विज्ञान के सिद्धांत का मानन जीवन के लिए उपयोगी बनान क प्रयास म हुआ है। याराप मे

1 भट्ट गीरीशकर ट्रेण्डम एण्ड सेजस आफ स्टेटस मोबिलिटी एमांग दि समास आफ दहरादून इस्टन एषापालोजिस्ट वास्तुन 14 न० 3

भौतिक विज्ञानवादी विचारधारा का प्रसार पहले हुआ और प्रौद्योगिकी का विकास और प्रसार उसके बाद। भारत में अंग्रेजी राज की स्थापना होते होते, योरोप में प्रौद्योगिकी का विकास काफी आगे बढ़ चुका था और भारत को, अंग्रेजों के माध्यम से, प्रौद्योगिकी के प्रयाग का वह अनुभव मिला जो योरोप तथा इंग्लैंड में प्रौद्योगिकी के सफल प्रयाग पर आधाग्रित था। भारत में योरोप की सैनिक प्रौद्योगिकी का प्रसार अंग्रेजों के पहले ही स प्रारम्भ हो गया था। अंग्रेजी राज के फैलते फैलते उसका प्रयोग सम्पूर्ण भारत में फैल गया। दो विश्व व्यापी महायुद्धों ने, भारत में योरोप की समुन्नत सैनिक प्रौद्योगिकी की महत्ता को और भी बड़ा दिया क्योंकि, अंग्रेजी साम्राज्य का एक प्रधान अंग हाने के कारण भारत पर उन युद्धों का प्रभाव पड़ा और भारत की मनाआ को इनमें युद्धरत होना पड़ा। भारत को योरोपीय ढंग की सैनिक व्यवस्था अंग्रेजों की ही देनी है। भारत पर चीन के आक्रमण ने योरोपीय सैनिक प्रौद्योगिकी की महत्ता की आवश्यकता और भी बढ़ा दिया है और आज का भारत उसे अपनाते के लिए जागू बढ़ रहा है। भारत ही नहीं सारा एशिया इस ओर बढ़ रहा है। भारत तथा एशिया में इसके व्यापक परिणाम होंगे यह अभी कहना कठिन है।

सना का भाति, कृषि चिकित्सा उद्योग उत्पादन और यातायात के साधनों में योरोपीय प्रौद्योगिकी का प्रयोग निरन्तर बढ़ता ही रहा है। किन्तु इन सभी में सबसे महत्त्वपूर्ण रहे हैं यातायात के साधन, मुद्रण-यंत्र और भाप तथा बिजली से चलने वाली मशीनें। भारत में यातायात के आधुनिक साधनों का प्रयोग सबसे प्रथम उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में किया गया और इनके प्रयोग का प्रारम्भिक प्रयाग था भारत में यन्त्र हूए अंग्रेजी साम्राज्य का मगटा और सुरक्षा। इंग्लैंड के समय में एक साथ डाक, तार और रेल का प्रयोग भारतीय इतिहास की कोई अनजानी घटना नहीं है—यह उम्र ऐतिहासिक आवश्यकता का परिणाम है जो उन्नीसवीं शताब्दी के भारत पर एक तत्कालीन योरोपीय साम्राज्य के स्थापित होने के साथ साथ अस्तित्व में आयी थी। मुद्रणयंत्र का सबसे प्रथम प्रयाग गाँवा में साठवीं शताब्दी के मध्य में हुआ था और भारत की सबसे प्रथम मुद्रित पुस्तक गंगा में ही प्रकाशित हुई थी। भारत में मुद्रण यंत्र का सबसे प्रथम प्रयाग मिशनरियों ने किया था क्योंकि इसका इतना प्रसार के लिए प्रचार साहित्य का एक बड़े पैमाने पर उत्पादन उनकी मुख्य आवश्यकता थी। भारत का समाचार पत्र और उद्योग योरोपीय परम्परा तथा मुद्रणयंत्र के ही योगदान है। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में रेल के साथ साथ, भारत में भाप से चलने वाली मशीनों का प्रयाग प्रारम्भ हुआ और कालांतर में भाप, बिजली और तेल से चलने वाली मशीनों का, उत्पादन के लिए, उत्तरोत्तर प्रयाग बढ़ा जिसमें भारतीय औद्योगीकरण को प्रोत्साहन मिला।

भारत की परम्परागत आर्थिक व्यवस्था के जिस रूपांतरण का वर्णन किया जा चुका है उसका प्रथम कारण प्रौद्योगिकी ही रही है। इस रूपांतरण में प्रौद्योगिकी

दो प्रकार से सहायक हमी है—एक, भाप, बिजली तथा तेल द्वारा चलने वाली मशीनों के रूप में और दूसरे, यातायात के मशीनीकृत साधनों के रूप में जिसमें रेल, मोटर और हवाई जहाज का प्रभाव मुख्य है। भाप, बिजली और तेल द्वारा चलने वाली मशीनों की सहायता से बड़े-बड़े कारखाने खुले और बड़े पैमाने पर मशीनीकृत उत्पादन का प्रचार बढ़ा। यातायात के साधनों में जिसमें सड़क, मोटर, रेल और हवाई जहाज मुख्य हैं गांव का आर्थिक सामाजिक पृथक्करण समाप्त हुआ, आधुनिक बाजार का क्षेत्र अधिक व्यापक होकर और सार दस में फैलकर अंतर्राष्ट्रीय बाजार से मिला गया, कच्चे माल और उत्पन्नित उपभोग वस्तुओं को जल्दी-जल्दी दाने की सुविधा से औद्योगीकरण तथा गृहीकरण को प्राप्ताह्न मिला और सारे भारत का आर्थिक, राजनयिक और सामाजिक सांस्कृतिक एकीकरण बना। यातायात के साधनों की सुविधा के ही कारण अंग्रेज सेना का व्यापक प्रभाव स्थापित करके, भारत का एक राज्य राष्ट्र (Nation State) का रूप देने में सफल हुए। डाक, तार, बेल्टार का तार, समाचार पत्र और सिनेमा जैसे साधनों के साधनों ने यातायात के प्रभावों का और भी प्रभावपूर्ण बना दिया क्योंकि यातायात के साधनों के परिणामों का वास्तविक, स्थायी रूप में देखा जा सकता है। डाक और तार न, एव और, व्यापारीकरण को प्रोत्साहित किया, बाजार का व्यापक बनाया, पत्र-पत्रिकाओं का राष्ट्रीय विचार विमर्श का माध्यम बनाया स्थानों के प्राप्ताहित करके औद्योगीकरण तथा गृहीकरण को प्राप्ताहित किया और, दूसरी ओर, यातायात के साधनों के माध्यम में भारत के राष्ट्रीय आर्थिक और सामाजिक एकीकरण में योगदान दिया। भारत का एक एकीकृत राजनयिक इकाई बनाने के लिए ही अंग्रेजों ने डाक तार रेल और रेलियों की सेवाओं का केंद्रीकरण किया।

यातायात तथा साधनों के साधनों के साथ ही अनेक सामाजिक आर्थिक परिवर्तन निवृत्त। इंग्लैण्ड में बढ़ते हुए औद्योगीकरण के कारण, यातायात के साधनों का विकास हुआ किंतु भारत में बढ़ते हुए यातायात के साधनों के कारण औद्योगीकरण का विकास हुआ। यह मुख्यतया रेल रोड के प्रसार का ही परिणाम है कि भारत कृषि पर आधारित एक सरल आर्थिक व्यवस्था के स्तर से उठकर, आज आर्थिक विकास को उस अवस्था में पहुँच गया है जिसमें भारत का आर्थिक जीवन मजदूर उद्योग पर निर्भर है न कि कृषि पर। भारत में खेती का प्रसार, विविध फसलों का बोया जाना कृषि में रोम-सम्प (Cash Crops) का समावेश कृषि का उत्तरोत्तर व्यापारीकरण तथा उमना सपत के क्षेत्र का प्रसार और कृषि में उत्पन्न माल के भावों में गतिशील हाने वाली फसल-बन्दी के स्तर पर अन्वेषण अधिक स्थापित्व का आता रेल के उत्तरात्तर प्रभाव के ही कारण सम्भव हुआ है। भारत का सामाजिक आर्थिक मजदूर में गांव के परम्परागत मनुलन का अगुलित हाना गांव का बाह्य सभार से सम्पर्क बढ़ना गृही का वृद्धि और गांव के सामाजिक आर्थिक

जीवन पर बन्ता हुआ शहरी प्रभाव भी रेल और राड के कारण हुआ है। रेलों के सम्मिलित प्रभाव के ही कारण समुक्त परिवार के आकार और सरचना में परिवर्तन आय तथा जाति के परम्परागत बंधन में क्षिणिलता आयी। भारत में राजनतिक आधिक एकीकरण में रेल का योगदान प्रमुख है। रेल के कारण भारत में तीथ यात्रा पट्टे की अपेक्षा अधिक सरल और सुविधाजनक हा गयी, जिससे हिन्दु के पुनरुत्थान को एक नयी प्रेरणा मिली।

रेडियो और सिनेमा, योरापीय प्रौद्योगिकी में उत्पन्न दो प्रभावपूर्ण सभ्यतावाहक साधन हैं। भारत में रेडियो का प्रवेश अंग्रेज सरकार के प्रयत्नों द्वारा हुआ और उसका उद्देश्य था मनोरंजन के साथ साथ जनसम्पर्क बढ़ाकर, अंग्रेज सरकार के पक्ष में व्यापक प्रचार करना। किन्तु रेडियो जन शिक्षा का एक महत्वपूर्ण साधन सिद्ध हुआ। स्वतंत्र भारत में रेडियो का प्रयोग मनोरंजन और जन शिक्षा के ही लिये हो रहा है। किन्तु रेडियो के सामाजिक सांस्कृतिक परिणाम इससे कहीं अधिक व्यापक रहे हैं। रेडियो के माध्यम से भारत में अंतर्राष्ट्रीय सम्पर्क में आया। इसके अतिरिक्त रेडियो के माध्यम से भारत के विभिन्न प्रदेशों में सम्पर्क स्थापित हुआ जिससे भारत के एकीकरण का प्रात्माहन मिला। वर्तमान भारत में रेडियो भारत के एकीकरण का प्रोत्साहित करने का एक मुख्य माध्यम बन गया है। भारत की प्रादेशिक भाषाओं की प्रगति तथा भारत में अग्रजी भाषा के प्रसार में रेडियो भी एक मुख्य माध्यम रहा है। अग्रजी राज काल में और आज भी अंग्रेजी रेडियो की मुख्य भाषा रही है। किन्तु, साथ ही साथ भारत की जनता से सम्पर्क बनाने के लिये तथा अधिकाधिक जनता के लिये रेडियो को उपयोगी बनाने के लिये प्रादेशिक भाषाओं तथा क्षेत्रीय बोलियों को भी रेडियो की भाषा बनाने की आवश्यकता रही है। यह इसी आवश्यकता का परिणाम है कि भारत के प्रादेशिक भाषा-क्षेत्रों में रेडियो स्टेशन खोले गये और प्रत्येक भाषा क्षेत्र में बोलने वाली बोलियाँ में भी कायत्रम प्रसारित होना प्रारम्भ हुए। इसका दो परिणाम निकले। एक ओर प्रादेशिक भाषाओं को उत्तरोत्तर साहित्यिक रूप मिला और, दूसरी ओर स्थानीय बालियाँ प्रादेशिक भाषाओं के साहित्यिक प्रवाह में आयी और उनका शब्द भण्डार बढ़ा। अग्रजी के मुख्य भाषा होने के कारण और अंग्रेजी से ही प्रगति भारत का कायत्रम का अनुवाद हाने के कारण प्रादेशिक भाषाओं और बालियाँ पर अग्रजी भाषा के व्याकरण प्रवाह और अभिप्रेषित का प्रभाव बना। इससे भारत की विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं और बालियों में आत्मान प्रदान भी बढ़ा। आज रेडियो में प्रयुक्त होने वाली पत्रावी अधिक संस्कृत गभित है अतः वह हिन्दी के अधिक समीप है। लखनऊ से प्रसारित हाने वाला अवधी और भाजपुरी का मिश्रित कायत्रम और लिली से प्रसारित हाने वाला

वज्रभाषा, सही बाला और हरियाणो का मिश्रित वायुक्रम इन बालिया का अधिक समीप लग रहा है। अंग्रेजी और हिन्दी के माध्यम से भारत के भाषाकार एकीकरण में रडिया का योगदान रहा है।

रडिया के माध्यम से पन्न बाल मघात के और दो परिणाम निकले हैं। आज रडिया के माध्यम से भारतीय मस्तिष्क के प्रतिष्ठित (Classical) और लोक तत्वों का एक आर एकीकरण हो रहा है और, दूसरी ओर इस एकीकरण का याराप से प्रसारित होने वाले विचारों के साथ समग्र हो रहा है। रडिया से प्रसारित होने वाले समीप और नाटका पर इन द्वायत्म एनिगमिन् परिस्थिति का प्रभाव स्पष्ट है। बटन द्वये पूजोराणी ओचागीकरण, जिन्का मुख्य आधार है उत्तरात्तर व्यापक व्यापारीकरण तथा गरीकरण के प्रभावों के अतगत रडियो भारतीय समीप नाटक, कविता और कहाना-साहित्य के व्यापारीकरण का माध्यम रहा है। कवि सम्मेलन और मुगामरा की साहित्यिक परम्पराओं का रडियो ने आज एक नया रूप दे दिया है। इसमें काइ सन्देह नहीं कि भारतीय बला ओ साहित्य के इन पक्षों का रडियो ने जन मुलभ बना दिया है किन्तु साथ ही-साथ प्रचार का माध्यम हान के कारण रडियो ने बला और साहित्य में प्रयोजनवादिता को भी जन्म दिया है। भारत में रूपक तथा शृंग-नाटका की परम्परा रडियो की ही दत्त है। रडियो बलाकार तथा साहित्यकार की आज एक अलग श्रेणी ही बन गयी है।

भारत में ही नहीं बरन सारे ससार में रडियो जनमत के निर्माण का एक प्रभावपूर्ण साधन है। भारत में भी रडियो का प्रयोग जनमत के निर्माण के लिए किया गया है। इस कारण यदि एक आर रडियो प्रचार का माध्यम रहा है तो दूसरी ओर, सामाजिक राजनतिक जागृति के प्रसार का माध्यम भी। पत्र पत्रिकाओं की भांति रडियो भी सामाजिक सांस्कृतिक विचार विमर्श का एक आधुनिक मंच रहा है यद्यपि उसका प्रभाव उतना व्यापक नहीं रहा है जितना कि पत्र पत्रिकाओं का। यह पहल ही कहा जा चुका है कि भारत में अंग्रेजी राज की स्थापना के साथ साथ कृषि एक राष्ट्रीय समस्या बन गयी और जब से भारत में रडियो का प्रयोग हुआ है रडियो का कृषि-मुननिर्माण के लिये जनमत तयार करने का एक माध्यम बनाया गया है। आज रडियो वह मंच बन गया है जहाँ सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनतिक समस्याओं का एक नया मूल्यांकन हो रहा है और भारतीय जन इस मूल्यांकन के पक्ष विपक्ष में झगड़ते हुए रहें हैं।

रडियो की भांति सिनेमा भी एक सांस्कृतिक साधन है जिसका प्रयोग मनोरंजन के लिये होता है और जननिष्ठा तथा जनमत के निर्माण के लिये भी। वास्तव में रडियो की भांति, सिनेमा भी प्रचार का एक सबल प्रोत्साहित साधन है। पश्चिम में औद्योगीकरण तथा गरीकरण के प्रभाव में सिनेमा प्रचार और व्यापारिक उद्देश्यजनक का एक प्रधान आधुनिक साधन है। भारत में सिनेमा का प्रयोग

व्यापारीकृत मनोरंजन के लिये ही हुआ था और आज भी उसका प्रयाग उसी के लिये हो रहा है। रेडियो की भाँति सिनेमा से भी नय, मंगीत और नाटक जनसुलभ हो गये हैं किन्तु व्यापारीकरण के माध्यम से। रेडियो, सिनेमा और प्रेस के प्रभाव के कारण कला की 'स्वात सुखाय' सेवा करने की भारतीय परम्परा आज व्यापारिक प्रयोजनवादिता में बदल रही है। पारलौकिकता के स्थान पर, आज उसमें पार्थिव इहलौकिकता का प्राधान्य बढ़ रहा है। रेडियो की भाँति, सिनेमा से भी, भारतीय कला के सिनेमा से सम्बन्धित पत्रों के प्रतिष्ठित (Classical) तथा लोकतत्व साथ साथ निम्बरकर एकीकृत हुये हैं और पश्चिमी विचारधारा से समन्वित हुये हैं। सामाजिक विवृतीकरण (Social Sophistication) का प्रसार, रेडियो की अपेक्षा, सिनेमा से अधिक हुआ है। योरोप के सघात से भारतीय समाज तथा संस्कृति में जिन समस्यात्मक परिस्थितियों का जन्म हुआ उनको सिनेमा ने अधिक उभार कर भारतीयों के समक्ष रक्खा और भारत की विचारधारा उस ओर आकर्षित की। जस्पदयता विवाह दहज, जाति और अपराध में सम्बद्धित सामाजिक समस्याओं पर बनने वाले चित्रों की अधिकता उसका प्रमाण है। जसा कि पश्चिम में हुआ है एक ओर सिनेमा जनता के घन मन की भावनाओं और प्रतिक्रियाओं की प्रतिच्छाया रहा है और, दूसरी ओर, सामाजिक मूल्यांकन का एक व्यापारीकृत माधन जिसका मुख्य उद्देश्य है मनोरंजन। इसी कारण, सिनेमा का सामाजिक प्रभाव सीमित ही रहा है यद्यपि उसका मानसिक प्रभाव काफी प्रबल रहा है। दूसरी ओर, योरोप की भाँति भारत में भी सिनेमा का व्यापारिक प्रचार का साधन बनाया गया है और सरकार ने सिनेमा को राजनैतिक तथा सामाजिक शिक्षा का साधन बनाया है। सिनेमा का सबसे अधिक महत्वपूर्ण परिणाम है भारत की अपन प्रति जागरूकता।

डाक तार व्यवस्था भी सदेशवाहक साधनों की श्रेणी में आता है और भारत में उसका प्रयोग योरोपीय प्रौद्योगिकी के प्रवेश के साथ-साथ हुआ है। राट माटर रल और हवाई जहाज ने डाक व्यवस्था का उत्तरात्तर व्यापक तथा द्रुतगामी बनाया है। डाक तार व्यवस्था ने, अथवा यातायात तथा सदेशवाहन के साधनों के साथ साथ, एक ओर भारत के एकीकरण में सहायता दी है तो दूसरी ओर, भारत को अंतर्राष्ट्रीय सम्पर्क में आने में सहायता दी है। अंतर्राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय डाक व्यवस्थाओं के ही माध्यम से आज अनेक भारतीय विदेशियों के सम्पर्क में हैं और भारत के बाहर बसने वाले भारतीयों का भारत से सम्पर्क बना हुआ है। लखवा, विचारवा, अध्यापका तथा यनानिना का यह सम्पर्क विचार आदान प्रदान का एक माध्यम होने के साथ साथ, भारत में आधुनिक विचारधारा फैलाने का भी माध्यम है। डाक तार व्यवस्था के माध्यम से भारत में अंतर्राष्ट्रीय यातायात बढ़ा है और इसी माध्यम से योरोप तथा अमरीका का घनक पत्र पत्रिकाएँ और पुस्तकें भारत में योरोपीय विचार और मान्यताओं के प्रचार और प्रसार का माध्यम बन रही हैं।

भारत के राष्ट्रीय जीवन में डाक-तार व्यवस्था के अनक व्यापक योगदान हैं। भारत में सुन्दर अंग्रेजी राज की स्थापना और उसके माध्यम से भारत के राज-नैतिक सामाजिक तथा आर्थिक एकीकरण में डाक-तार का भी महत्वपूर्ण हाथ है। रेल रोड के अभाव में डाक-तार एक मात्र माध्यम था, वरुण साधन है जिसमें अंग्रेजी राज में भारत की आर्थिक व्यवस्था के उत्तरागत व्यापारीकरण तथा औद्योगिकरण में सहायता मिली है। डाक-तार के साथ साथ यातायात के अन्य माध्यमों के सम्मिलित प्रभाव ने भारत की सामाजिक व्यवस्था के दायित्वपूर्ण आधारों समुन्नत परिवार तथा जाति के प्रभावित किया है। यातायात के साधनों तथा बल्लती हथी आर्थिक व्यवस्था में स्थानांतरण को प्रोत्साहन मिला। किन्तु, साथ ही साथ डाक-तार के माध्यम से परम्परागत सामाजिक सम्बन्ध भी बन रहे। परिवार से उत्पन्न रहकर भी व्यक्ति परम्परागत समुन्नत परिवार का अंग बना रहा। प्राक्मर श्रीनिवास के शोध में सड़क और रेल के निर्माण तक तार प्रादेशिक भाषाओं में छायेवाने की सुविधाओं और मसल कागज की उपलब्धि ने जातियों के स्तर पर समृद्धि होने के लिए प्रेरित किया जिस स्तर पर वे कभी भी समृद्धि नहीं हुयी थी। डाक की सुविधा के कारण जाति सभा की बंटक की सूचना पोस्टकार्ड द्वारा जान लगी और रेल दूर दूर तक फैल हुये जाति सदस्यों को एक निश्चित स्थान में कम समय में पहुँचाने में सहायता करने लगी। डाक की सुविधा ने कुछ जातियों के परम्परागत कार्यों का निष्कर्ष कर दिया। गाँव तथा जाति के सूचनावाहक का स्थान पोस्टकार्ड ने ले लिया और विवाह की सूचना से जाने वाले नाइ के स्थान डाक द्वारा भेज जाने वाले निमन्त्रण पत्र में।

अपने सार्वभौमिक साधनों की भाँति, छावखाने का प्रभाव भी काफी व्यापक हुआ है। यह पत्र ही कहा जा चुका है कि सबसे प्रथम छावखाने का प्रयोग गाँव में दूरदूरी पर प्रचार करने के लिए किया गया था क्योंकि साइड में प्रचार के लिए दूरदूरी पर प्रचार माहिल्य का प्रादेशिक भाषाओं में एक बड़े पत्राने पर उत्पादन, इसाई मिशनरियों की एक साधारणतः आवश्यकता थी। किन्तु कालांतर में, छावखाने का प्रयोग इनमें से अधिक लाभदायक सिद्ध हुआ। योरात की भाँति भारत में भी छावखाने सामाजिक नवजागृति का एक माध्यम बन गया। छावखाने के माध्यम से, भारत की धार्मिक पुस्तकों का एक बड़े पत्राने पर उत्पादन आरम्भ हुआ और वे जन-साधारण का काम ही सुलभ हुआ जो माहिल्यी गताओं के कारण में अंग्रेजी में अनुचित बाधित। इसमें धार्मिक पुस्तकों के पत्राने तथा उनके निबन्धन पर में साहित्य का एकाधिकार समाप्त हो गया जिसके कारण यदि उत्तर में नही, तो कम

1 श्रीनिवास, एम०एन० इण्डियन साइडम काँग्रस (बल्लारुता 1907) के अध्यात्मिक सम्मेलन में एंग्लोपार्लोकी तथा आरबवालोकी विभाग के अध्यक्ष पद से दिया गया भाषण।

से कम दक्षिण में, परम्परागत ब्राह्मणविरोधी सामाजिक आन्दोलन को, बौद्धिक गलतरता मिली और, बदलती हुई आर्थिक राजनैतिक व्यवस्था में, उच्च राजनैतिक आर्थिक आधार प्राप्त हुए¹। भारत के परम्परागत साहित्य की एक बड़े पमाने पर उपलब्धि न, जसा कि माता प्रेस, गोरखपुर के प्रयत्ना से स्पष्ट है एक आर, परम्परावादी साहित्य के प्रचार में सहायता केर परम्परावादी (सनातन) हिन्दुत्व का प्रामाह्न दिया और, दूसरी आर धार्मिक पुस्तकों की जनमुलभता ने हिन्दुत्व के पुनर्मूल्यांकन की प्रेरणा दी। इस पुनर्मूल्यांकन का एक मुख्य कारण रही है निम्न स्तर की जातियों के सन्स्था में आर्थिक सामाजिक चलिष्णुता के लिए उत्पन्न हान वाली प्रेरणा जिसके लिए अग्रजो राज में उत्पन्न परिवर्तनाने अग्रसर प्रदान किये। अग्रजो राज ही वह बाल है जब निम्नस्तर की जातियों ने धर्म प्रथा के आधार पर अपने सामाजिक स्तर के उच्च हान का दावा किया और पौराणिक कथाओं का आश्रय लेकर अपने मर्कों का पुस्तक के रूप में प्रकाशित करवाया। प्राफसर घुरे के आधार पर, प्राफेसर थानिबास ने यह प्रतिपादित किया है कि छापेखाने भी जातियों का सगठित हान में महायता दी। सन्ने कागज की उपलब्धि से जाति के नियमों को लेख्यरूप में प्रकाशित करवाया गया और जानीय सगठना के मविधान प्रकाशित करवाये गये। जाति सगठना ने अग्रजो राज में अग्र पत्रिकाय निहाली जिनमें, एक आर मुआरवादी विचारों का प्रचार हुआ ता दूसरी आर, जाति के सामाजिक आधारों का और भी दृष्टा मिली कथानि गायद हा काइ ऐसी जातीय पथिका अथवा पुस्तक ही जिनमें उस जाति के जिनमें कि वह सम्बन्धित है एनिहामिक शौर्य का वर्णन न हो।

1. भारत में ब्राह्मण विरोधी आन्दोलन पस्तुत उस समय से चला आ रहा है जब स हिन्दू समाज में जाति प्रथा का सगठन हुआ। बद्धवाद इसकी प्रथम सगठित, सामाजिक अभिव्यक्ति थी। इस्लाम के सघान में जाति प्रथा विरोधी आन्दोलना को निवारण कर ब्राह्मण विगदाधिकारों के प्रति एक प्रकार के बौद्धिक विरोध का जन्म दिया। भारत में अग्रजो राज की स्थापना के पहले यह विरोध केवल मौखिक तथा बौद्धिक था। केवल निम्न स्तर की जातियाँ ही, निम्न प्रथा के माध्यम से जाति प्रथा का मौखिक विरोध करती थी। किन्तु अग्रजो राज की स्थापना से एक ओर, नये आर्थिक अग्रसर आय तो, दूसरी ओर, मतदान के अधिकार के माध्यम से नये राजनैतिक अवसर मिले। इसके परिणाम स्वरूप, ब्राह्मण विरोधी आन्दोलन में एक नयी सामाजिक राजनैतिक सश्रियता का जन्म हुआ। इस नये आन्दोलन का शीर्षक उस समय हुआ जब 1873 में पूना के ज्योतिराज फुले ने सत्य गोधक समाज की स्थापना की थी और इस बात पर जोर दिया था कि सभी जातियाँ के सदस्य परम्पर समान ह। फुले

छापखाने के ही माध्यम से भारत में सस्ती पुस्तक का उत्पादन सम्भव हुआ जिसमें शिक्षा का प्रोत्साहन मिला और, अंग्रेजी राज के माध्यम से स्थापित नयी सामाजिक राजनैतिक व्यवस्था में शिक्षा का जन-मुलभ बनाने का आन्दोलन चला। छापखाने के ही माध्यम में भारत में पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ जिससे भारत में नये विचार फैले और सामाजिक नव जागृति का प्रोत्साहन मिला। चित्र कला और साहित्य के उत्तरात्तर व्यापारीकरण का एक महत्वपूर्ण कारण छापखाना भी है। आधुनिक पत्र-पत्रिकाओं के साथ-साथ आधुनिक भारतीय समाचार पत्र भी छापखाने की ही श्रेणी हैं। भारत में आधुनिक पत्रकारिता के जन्मदाता अंग्रेज और यारापियन ही थे। भारत में आधुनिक समाचार पत्र का जन्म ग्रेटब्रिटेन तथा भारत और पूरब (The East) तथा पश्चिम (The West) को सम्पर्क मलान वाली शृंखला की एक कड़ा के रूप में हुआ। कम्पनी के राज्यकाल में सम्पादक का सत्त्व और अनुशासन की शक्ति में देखा जाता था। भारतीय पत्रकारिता का जन्म ही स्वातंत्र्य (Freedom) और नियंत्रण (Control) के सिद्धांतों के संघर्ष में हुआ, जिसका प्रभाव आज भी बना हुआ है किन्तु प्रेस (Press) की स्वतंत्रता और उस पर नियंत्रण की समस्या भारत की ही समस्या नहीं है।

भारत के सामाजिक संरचना में सम्पादकीय नेतृत्व का अन्वुदय पत्रकारिता की मुख्य देन है। सम्पादकीय नेतृत्व राजनैतिक नेतृत्व तथा परम्परागत जाति-नेतृत्व, धाना में भिन्न रहा है। सम्पादकीय नेतृत्व जाति पर निर्भर न होकर योग्यता पर

न अग्रगण्यताओं की शिक्षा पर जोर दिया और अग्रगण्यता से इस बात का अनुरोध किया कि वे अग्रगण्य पुरोहितों की सेवाओं की स्वीकार न करें। फूल ने सरकारी नौकरियों तथा स्वायत्त शासन के सगठनों में सभी जातियों के समान प्रतिनिधित्व की मांग की। महाराष्ट्र में थी अन्वुदय फूल की ही परम्परा में आय। मद्रास का अग्रगण्य विरोधी आन्दोलन तथा आंध्र में दो पुरानी प्रति-इन्दो जातियों, एम्मा और रेड्डी, का अग्रगण्य के विरुद्ध सगठित होना, पूना में फुले द्वारा चलाय हुए आन्दोलन के प्रसार मात्र ही थीनियास एम० एन० यही।

1 अंग्रेजी राज की स्थापना पहले भारत में सदागवहन के मुख्य साधन थे शिक्षा, चित्र और घटनाओं की लेखन करने की मुगलकालीन परम्परा। औरगाव के राज्यकाल में प्रादेशिक राजधानियों में वाक्या नवीन रूप जाते थे वहाँ-वहाँ व्यापारी समाचार-पत्रों (News Letters) के लिखने के लिए समाचार-लेखकों की नौकर रखते थे—ओ मले इण्डिया एण्ड दि वर्ल्ड पृष्ठ 189।

निभर रहा है। यही कारण है कि सम्पादकीय नेतृत्व, एक ओर, भारत की सामाजिक नवजागृति की द्वन्द्वत्मकता की उत्पत्ति रहा है ता, दूसरी ओर, उसकी द्वन्द्वत्मक गत्यात्मकता को प्रभावित करने वाला महत्वपूर्ण कारक भी है। सम्भवतः, यह इसी परिस्थिति का प्रभाव है कि भारतीय समाज, जहाँ शिक्षण और सुधारक रहा है वहाँ वह राजनैतिक आन्दोलक, (Political Agitator) भी रहा है। भारतीय पत्रकारिता के जन्मदूत य आधुनिक सामाजिक नवजागृति के प्रणता राजा राम मोहनराय जिन्होंने पत्रकारिता को धार्मिक सामाजिक नवजागृति का माध्यम बनाया। किन्तु, बाद में काग्रस आन्दोलन के साथ साथ भारतीय पत्रकारिता राजनैतिक आन्दोलन का माध्यम बन गई। इसीलिए एक ओर, यह कहा जाता है कि आन्दोलनता (Agitation) भारतीय पत्रकारिता की विशेषता रही है और दूसरी ओर यह कहा जाता है कि भारतीय पत्रकार, एक ही साथ, भाषा विद्वान, दार्शनिक, धर्म सुधारक, सामाजिक बुराईयों को दूर करने के लिए आन्दोलनकर्ता, लेखक और शिक्षक भी रहा है। भारत के मुख्य मुख्य आधुनिक आन्दोलनों की आधारशिकायें भारतीय पत्रकारिता ने ही रखी हैं¹।

भारत के सामाजिक सांस्कृतिक जीवन में पत्रकारिता के इस व्यापक प्रभाव के कई परिणाम निकले। पत्रकारिता, अंग्रेजी भाषा के प्रचार और प्रसार का प्रादेशिक भाषाओं के विकास का माध्यम बनी। बंगला, हिन्दी और मराठी के आधुनिक विकास का सूत्रपात पत्रकारिता के माध्यम से हुआ। आधुनिक हिन्दी के जनक, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एक ओर, कवि और नाटककार थे तो दूसरी ओर पत्रकार भी। जैसे रेडियो के माध्यम से अंग्रेजी का प्रभाव प्रादेशिक भाषाओं पर पड़ा वैसे ही पत्रकारिता के माध्यम से, प्रादेशिक भाषाओं पर अंग्रेजी का और भी व्यापक प्रभाव पड़ा। भारतीय पत्रकारिता की आन्दोलनता ने अंग्रेजी और प्रादेशिक भाषाओं में आन्दोलक शैली को जन्म दिया। भारत में प्रवाहित ज्ञान वाले तथा भारत में बाहर से आने वाले पत्रकारों ने भारतीय तथा योरोपीय ज्ञान विज्ञान के प्रसार का माध्यम बनी। अथ सदेववाहक साधना की भाँति, समाचार पत्र भी भारत के एकीकरण, और व्यापारीकरण में सहायक हुआ। समाचार पत्र वह मंच बन गया है जहाँ सामाजिक सांस्कृतिक समस्याओं का मूल्यांकन होता रहता है—वह मूल्यांकन जो सामाजिकनात्मक दृष्टिकोण से विकास में सहायक है। प्रारम्भ से ही भारतीय पत्रकारिता का दृष्टिकोण राष्ट्रीय होने के साथ साथ, अंतर्राष्ट्रीय रहा है। पत्रकारिता के माध्यम से, आधुनिक भारत का सामाजिक दृष्टिकोण विस्तृत और व्यापक हुआ है जिसकी उत्पत्ति सामाजिक नवजागृति के आधुनिक आन्दोलन में मिलती है।

यूरोपीय प्रौद्योगिकी के प्रयोग के साथ-साथ भारत की परम्परागत प्रौद्योगिकी

का भी प्रयोग चलता रहा। एक ओर, रेल, मोटर और वायुयान का प्रयोग बढ़ा तो, दूसरी ओर, बल्गाडी का भी प्रयोग चलता रहा। वड़े उड़े शहर योरोपीय प्रौद्योगिकी के आधार पर बने, किन्तु उम भी वतमान यारोपीय प्रौद्योगिकी के साथ साथ, परम्परागत जीवन चलता रहा। एक ओर, उत्पादन में मशीनों का प्रयोग बढ़ा तो, दूसरी ओर परम्परागत कुटीर उद्योग भी चलत रहा। वास्तव में स्वदेशी-आ दोलन के माध्यम से, भारत ने यारोपीय प्रौद्योगिकी और भारत की परम्परागत प्रौद्योगिकी के समन्वय का प्रयास किया। एक ओर यारोपीय प्रौद्योगिकी के प्रभाव के कारण मशीनीकरण बढ़ा तो दूसरी ओर जसा कि बुनियादी शिक्षा, खादी उद्योग और अन्य कुटीर उद्योगों का विकास के साथ-साथ स्पष्ट है, भारत की परम्परागत प्रौद्योगिकी को भी बचाये रखने का प्रयास किया गया है। यह प्रयास आज भी चल रहा है और भारतीय नियाजन के आधारभूत सिद्धान्तों में यह प्रयास शामिल है। यारोपीय औद्योगिकीकरण में भारत के परम्परागत कुटीर उद्योगों का क्या स्थान हो सकता है और किस प्रकार उसका समन्वय हो सकता है इसका स्थायी मूल्यांकन उत्तर भारत के वतमान नियोजन कार्यक्रम की सफलता और असफलता पर निर्भर है।

प्रौद्योगिकी के साथ-साथ, भारत में वह योरोपीय मान विज्ञान भी फला जिसने यारोपीय प्रौद्योगिकी का जन्म दिया था। भारत में खगोल विज्ञान के साथ-साथ, एक ओर, भौतिक विज्ञानों के पठन पाठन का प्रसार हुआ तो, दूसरी ओर, सामाजिक शास्त्रों का। योरोप के भौतिक तथा सामाजिक विज्ञान विज्ञानवादी और प्रकृतिवादी विचारधारा पर आधारित थे। अतः, भारत में प्रकृतिवादी और विज्ञानवादी विचारधारा का समावेश हुआ। इससे विपरीत, भारत की विचारधारा रहस्यवादी और आध्यात्मिक थी। भारत के भौतिक विज्ञान भी इस विचारधारा से आनपान थे। भारतीय सामाजिक शास्त्रों का प्राण था भारत का रहस्यवादी दृष्टान्त। योरोपीय भौतिक विज्ञान के परिणाम प्रत्यक्ष उपयोगी थे। अतः भारत में उनकी आरंभ नाम बना। यारोपीय सामाजिक शास्त्रों और मानववादी विचारों के प्रसार के कारण प्रकृतिवादी विज्ञानवादिता का प्रसार बढ़ा, जिसका परिणाम हुआ नूतन और प्राचीन का संघर्ष। योरोपीय प्रौद्योगिकी और मान विज्ञान के संघर्ष से भारतीय समाज तथा संस्कृति में भारतीय तथा यारोपीय को प्रवरणात्मक समन्वय प्रदिशा चल रही है और नूतन तथा प्राचीन के संघर्ष के रूप में यारोपीय बनाम भारत का संघर्ष भी चल रहा है।

प्रशासन तथा विधि-प्रणाली

भारत में अंग्रेजी राज की मुख्य घुरी थी वह प्रशासन जिसका निर्माण अंग्रेजों ने किया था और जो अंग्रेजी राज के साथ साथ बढ़ता और विकसित होता रहा था। वर्तमान भारत की राज्य व्यवस्था भी उसी प्रशासकीय आधार पर बनी हुयी है। भारत में अंग्रेजी राज और उसके प्रशासन के दो मुख्य ऐतिहासिक काल हैं—एक, अठारहवीं सतावन की राजप्रभुता के पहले का काल और दूसरा उसका बाद जब तक का काल। अठारहवीं सतावन के पहले का काल कम्पनी का राज्यकाल था जिसमें प्रारम्भ में प्रशासक व्यापारी भी हुआ करते थे। भारत में स्थायी प्रशासन की समस्या वस्तुतः लॉर्ड क्लाइव के समय से प्रारम्भ हुयी और तभी से ही वर्तमान प्रशासन का प्रारम्भ भी होता है। भारत में अंग्रेजी प्रशासन का जनक क्लाइव को ही कहा जाता है। यह पहला ही कहा जा चुका है कि भारत में उच्च अंग्रेज प्रशासन का विचारो के रहे हैं—एक श्रेणी में वे लोग हैं जिन्होंने भारत को भारतीय परम्पराओं के अनुसार प्रशासित करने का प्रयत्न किया और दूसरी श्रेणी में वे जाते हैं जिन्होंने भारत में योरोपीय विधायकता इंग्लैण्ड की परम्पराओं का प्रयोग किया। क्लाइव दूसरी श्रेणी के प्रशासक थे और उन्होंने भारत की नौकरशाही का इंग्लैण्ड की नौकरशाही के आधार पर संगठित करने का प्रयत्न किया। राजकीय प्रशासन के साथ साथ सना का प्रशासन भी इंग्लैण्ड का परम्पराओं और नियमों के आधार पर संगठित किया गया।

क्लाइव ने जिस प्रशासन की आधारशिला रखी थी उसका मुख्य आधार था तत्कालीन व्यापार की आवश्यकताएँ क्योंकि उस काल में अंग्रेज प्रशासकों के सामने बस दो आशय थे—एक भारत में अंग्रेजों का राज का बसाना और दूसरे अंग्रेजी व्यापार का सुरक्षित रखकर उसे अधिकधिक लाभदायक बनाना। उस समय का अंग्रेजी राज एक बह्यात्मकारी राज्य न था। यही कारण है कि अंग्रेजी प्रशासन का जन्म एक व्यापारी प्रशासन का परम्पराओं में हुआ। जमा कि बंगाली का उचित सा रूप में भारत का अंग्रेज प्रशासन वर्तमान राज की दृष्टि है। कम्पनी का प्रधान अधिकारी प्रेजिडेंट (President) कहलाता था जो इंग्लैण्ड के बंगाल मन्त्रालय और बंगाल के प्रांत में रहता था प्रसाइन्स (Providence) कहलाये। व्यापारी

- 1 साइडवेल्लेजी (1799-1800) ने इस बात की निश्चयता की थी कि भारत पर राज्य राजधानी से नहीं बल्कि, पसाइन्स मन्त्रालय से चलाया जा रहा है। यहाँ राज्य राज नहीं बल्कि, वे लोग चला रहे हैं जो मलमल और नील की सुदरा बिभी का काम करते हैं—दिनकर पृष्ठ 412

सगटन में किरानी (Writer) का प्रधान स्थान होता है। इसी आधार पर बंगाल के सचिवालय का नाम राइटर बिल्डिंग (Writer Building) पड़ा। इंडियन सिविल सर्विस का विकास ईस्ट इंडिया कम्पनी की नौकरशाही में हुआ है। अंग्रेजों का व्यापारिक साठन में उच्च अधिकारी व्यापारों में होता था और साथ ही साथ राजनैतिक प्रशासन भी। इस परम्परा का परिणाम है कि इंडियन सिविल सर्विस के अधिकारी सभी विषयों और मामलों के विवेचन माने जाने लगे और आज भी माने जाते हैं¹। इसी कारण इंडियन सिविल सर्विस के अधिकारी उस साधारण ज्ञान के आधार पर कार्य करते हैं जो उच्च प्रशिक्षण और अनुभव से मिलता है। किसी भी विभाग के विवेचन ज्ञान से उनका कोई सरोकार नहीं है क्योंकि किसी विभाग में उनको स्थाई रूप से नहीं रखा जाता है।

कम्पनी के प्रधान कार्यालय में और भारतीय कार्यालय में काफी दूरी थी। अब सारा प्रशासन विवरण (Report) वक्त (Minutes) और टिप्पणियों (Notes) के आधार पर चलाया था। इसका परिणाम यह हुआ कि विवरण वक्त और टिप्पणियों ही प्रशासन की मुख्य घुंटी बन गये। इसमें एक धार, बराबरी का प्रशासन में महत्व मिला और दूसरी ओर सबके योग्य अफसर वह समझा जाने लगा जो विवरण वक्त और टिप्पणियों लिखने में कुशल था। प्रशासन का सारी कुशलता, मिश्रित कर कलम में समा गयी। बाद आरम्भ नहीं यदि इंडियन सिविल सर्विस के संस्था के चुनाव का आधार बनी वह परोक्ष पद्धति जिसका प्रयोग स्कूल और कॉलेजों में किया जाता है और जिसमें उम्मीदवार की लेखन-कुशलता का ही अधिक पता चलता है। साहित्यिक कुशलता ही इंडियन सिविल सर्विस में स्थान ज्ञान का मुख्य आधार बन गयी। भारत में नौकरशाही की परम्परा मीयादाल से चली आ रही थी और आगाह तथा अवसर जिस प्रशासन के आधार पर अपने साम्राज्यों का खड़ा किया था उनका आधार जातिगत नौकरशाही थी। किन्तु, ज्ञान पर आधारित ज्ञान के कारण वह नौकरशाही का साम्य विवेकीकरण (Functional Specialization) पर आधारित थी। प्रशासन के एक विभाग, विषय का कार्य करने वाले व्यक्ति उस विभाग विशेषज्ञता के लिए आवश्यक विवेचन ज्ञान, अपनी ज्ञान परम्परा के अनुसार प्राप्त करते थे। अंग्रेजों ने ही इस परम्परा का उखाड़ा किया। अंग्रेजों ने भारत में

- 1 प्रांतीय सेवाओं और असिल भारतीय सेवाओं में यह परम्परा आज भी विद्यमान है। कुछ विभागों को छोड़कर अन्य विभागों में विवेकीकरण की आवश्यकता को महत्व नहीं दिया जाता है। इसी कारण यह दृश्यमें आता है कि जो अधिकारी आज निटी मजिस्ट्रेट है, वह कल की नियोजन अधिकारी हो जाता है। जो अधिकारी आज जिलाधीन है वह कल की उद्योग विभाग का संचालक हो जाता है।

जिस नौकरशाही को संगठित किया उसके सदस्यों को उ होने ब्राह्मण, खनी जीर कायस्था स ही लिया क्योंकि इ ी वर्गों के सदस्य भौयकाल स भारत का प्रशासन चलाने आये थे । किंतु इा जातियों क विशेष ज्ञान का उपयोग अग्र जा न नौकरशाही के निम्नस्तर पर किया । उच्चस्तर क अग्रज अधिकारी इनकी सलाह स, वह प्रशासन करत थे जिसस अग्रजी राज जीर व्यापार का लाभ हा । इसीकारण अग्र जी शासन, एक और, प्रचारात्मक हाकर दपतर और पाइल म समा गया और, दूसरी ओर, अग्रजी प्रशासन का अधिकारी उस निष्क्रियता का गिकार हा गया जा अधीनस्थ या उच्च अधिकारी पर उत्तरदायित्व टाल कर जाती है । करा की बमूली और व्यापार बडि अग्रजी प्रशासन क दा मुख्य प्रारम्भिक उद्देश्य थे । इसी कारण, अग्रजी प्रशासन के सबसे मुख्य अधिकारी का नाम पडा कलक्टर (Collector) जिसका शाब्दिक अर्थ है एकत्र करने वाला^१ ।

बनिया राज की पृष्ठभूमि स अग्रजी प्रशासन का मुख्य विकास हुआ के० एम० पन्निकर क शब्दा म, राज्यशांति (1857) क बाद, भारत मे जिस प्रशासकीय व्यवस्था का विकास हुआ, उसका जवाब ससार के इतिहास म नहीं है । इसीकाल म एक आर प्रात की सवाओ का, जिनम यायिक और राजस्व की सवाय मुख्य हैं विकास हुआ और दूसरी ओर इन्डियन सिविल सर्विस (Indian Civil Service) भारतीय पुलिस सर्विस (Indian Police Service) और इन्डियन ऑडिट एण्ड अकाउण्ट सर्विस (Indian Audit and Account Service) जमी अखिल भारतीय सेवाओं का विकास हुआ । अग्रजी राज काल म भारत म जा प्रशासकीय व्यवस्था संगठित हुयी उसका जाह ससार क उन साम्राज्या बजे-टाइन और चीन म भी रही है जा नितान्त नौकरशाही पर आधारित थे । भारत म इतना बडा संगठन इसीलिये सम्भव हो सका क्योंकि भारत म, अग्रजी के पहले ही स, नौकरशाही की प्रशासकीय परम्परायें विद्यमान थी । अपनी कमियों क बावजूद भी भारत म अग्रजी प्रशासन उस उद्देश्य मे सफल और बुगल रहा है जिसके लिये उसका निमाण किया गया था । इसी प्रशासन मे, भारत का अपन इतिहास म सबसे अधिक शांति और सुरक्षा मिली जिससे भारत का सामाजिक आर्थिक विकास हुआ । अखिल भारतीय सवाओं ने अराण्ड भारत की राजनैतिक कल्पना को और भी वास्तविक बना लिया । भारत क इतिहास अग्रजी प्रशासन ही पहला प्रशासन था जिसके अधिकारियों का चुनाव जाति के आधार पर न करके मायता के आधार पर किया गया जिनम जाति क परम्परागत कल्पना म दीलापन आया । किंतु अग्रजी प्रशासन की सबसे

1 पान्निकर, के० एम० ए सर्वे आफ इन्डियन हिस्ट्री पृष्ठ 200

2 दिनकर वही पृष्ठ 414

बड़ी कमी थी अप्रत्यक्ष शासन (Indirect Rule) और इसी कारण, भारत में, सबके समान प्रशासकीय विकास न हो सका। एक बार, अंग्रेजी राज का शासन चला रहा था, दूसरी ओर, देशी रियासतों का। इसी अप्रत्यक्ष शासन के सिद्धांत का परिणाम है कि भारतीय प्रशासन में प्रत्यक्ष उत्तरदायित्व न ग्रहण करने की परम्परा चल पड़ी है। शिक्षा, सहकारिता, और सामुदायिक विकास योजना के कार्यक्रम अप्रत्यक्ष शासन के सिद्धांत पर आधारित हैं।

भारत का वर्तमान विधि प्रणाली पर इंग्लैण्ड की विधि-प्रणाली की जितनी छाप है सम्भवतः इंग्लैण्ड की उतनी छाप भारतीय संस्कृति के किसी विधि प्रणाली पहलू पर नहीं है। वर्तमान विधि प्रणाली का अंग्रेजी विधि-प्रणाली के आधार पर, धीरे धीरे विकास हुआ है। वर्तमान विधि-प्रणाली की जड़ें अंग्रेजी हैं किन्तु उसका कलेवर भारतीय। शासक हान पर अंग्रेज व्यापारियों का जो विधि प्रणाली और 'यापिक' व्यवस्था मुसलमानों और मराठों से प्राप्त हुआ थी वह न तो सारे भारतवर्ष में समान ही थी और न वह इस योग्य ही थी कि उसके आधार पर हम भारत का प्रशासन किया जा सके जितने व्यक्तिगत संधिदा (Individualistic Contract) के सिद्धांतों के आधार पर योग्यीय दण्ड की सामाजिक यापिक व्यवस्था जन्म ले रही थी। अंग्रेजी राज के मघात से उत्पन्न हान बाने नयी व्यवस्था के बंधानिक तथा 'यापिक' प्रशासन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भारत में अंग्रेजी विधि प्रणाली और उसके सिद्धांतों का समावेश किया गया और वह स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार बदल लिया गया। अंग्रेजी राज के माध्यम से भारत में बंधानिक शासन (Rule of Law) की स्थापना समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से अंग्रेजी शिक्षा से भी अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि अंग्रेजों ने जिन व्यक्तिगत तथा 'यापिक' व्यवस्था का संचालन किया उसके दो परिणाम निकले—एक, समता सिद्धान्त (Principle of Equality) की स्थापना और दूसरा, विधि (Law) द्वारा मिलने वाले निश्चित अधिकारों के प्रति सचेष्ट भावना का जन्म। विधि के समान व्यक्तियों की समानता और उसके मिलने वाले बंधानिक अधिकारों के प्रति सचेष्टता से भारत की समष्टिवादी सामाजिक व्यवस्था में, बंधानिक व्यक्तिवादिता का जन्म हुआ और, प्रशासन के स्थान पर, लिखित विधि तथा 'यापालय' द्वारा विधि-निर्देशन का अधिक महत्व मिला।

अंग्रेज प्रशासकों का भारतीय बंधानिक तथा 'यापिक' व्यवस्था से उस समय सामना पड़ा जब मन गणहूँ सो पसल में कम्पनी का बगाल विहार और उड़ीसा की दीवाना मिली था और कम्पनी का दीवाना के मुकदमा में 'याप' करने का अधिकार मिला। मनु संहिता से निहृतर के एक के द्वारा कम्पनी का 'यापालय' स्थापित करने का अधिकार भी मिला गया था। किन्तु, दीवानों के मुकदमों स्वीय विधि (Personal Law) के अन्तर्गत जाते थे। सम्भवतः, 'दीवाना', वारन हेल्थिज न यह

सिद्धांत निर्धारित किया था कि उन मुकदमों में जिनमें पारिवारिक सम्बन्धों और धार्मिक सस्थाओं का मामला है, पायालय, आवश्यकतानुसार हिंदू और इस्लामी स्वीय विधि को लागू करेंगे। वारेन हेस्टिंग्स द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत के दा आधार थे—पहला, हिंदू और मुसलमानों में स्वीय विधि पहले ही से विद्यमान थी और दूसरा, वारेन हेस्टिंग्स का यह मत था कि भारत में अंग्रेजी सत्ता निश्चय ही एक भारतीय सत्ता होगी—वह सत्ता जो भारत की प्रचलित प्रथाओं में उतना ही फेर बदल करेगी जितना नितान्त आवश्यक होगा और जिसका आधार देश की प्राचीन विधि प्रणाली होगी।

भारतीय विधि प्रणाली के विद्यार्थियों के मत में वस्तुस्थिति इतनी सरल नहीं जितनी कि हेस्टिंग्स ने कल्पना की थी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारत में स्वीय विधि पहले ही से विद्यमान थी किन्तु उसके बर्धनिक तथा व्यावहारिक स्तरों में इतना असामञ्जस्य था कि दोनों परस्पर निमूल लगते थे। हिंदू स्वीय विधि के स्वरूप और उसके निबन्धना पर मतभेद न था जिसके परिणामस्वरूप हिंदू धर्मशास्त्रों से स्वीय विधि का जो रूप निस्सरता था वह नितान्त अनिश्चित था। दूसरी ओर हिंदू सामाजिक तथा व्यक्तिगत व्यवहार में प्रथाओं का प्रभाव था—उन प्रथाओं का जो स्थान-स्थान पर भिन्न थी और जो बहुधा शास्त्रप्रणीत सिद्धांतों के प्रतिकूल पड़ती थी। हिंदू दण्ड तथा याचिक विधान भी एक ओर अनिश्चित था और, दूसरी ओर उस प्रकार के व्यक्तिवादी समता सिद्धांत पर आधारित नहीं था जो नयी व्यवस्था की आवश्यकता थी। परम्परागत दण्ड विधान में जहाँ एक ओर यह विधान था कि गुद के साक्ष्य के आधार पर ब्राह्मण का दण्ड नहीं दिया जाना चाहिये वहाँ दूसरी ओर अलग-अलग अपराधों के लिये अलग-अलग जातियों का अलग-अलग दण्ड देने का विधान था। नयी पूजोत्तरी सामाजिक जायिक व्यवस्था के लिये आवश्यक सविदा विधि का हिंदू विधि प्रणाली में पूर्णतया अभाव था¹। जिनका पालन उचित माना गया है किन्तु जिनका दाम्बविक विधिगत प्रशासन कभी नहीं किया गया है।

इसी प्रकार मुस्लिम विधि प्रणाली में भी सविदा विधि का अभाव था। इस्लामी स्वीय विधि (Personal Law) हिंदू स्वीय विधि की अपेक्षा अधिक निश्चित थी किन्तु योरोपीय मापदण्डों के अनुसार वह अधुनिक नहीं थी। दूसरी ओर हिंदुओं की भाँति मुसलमानों पर प्रथाओं का अधिक प्रभाव था और उनकी प्रथाओं

1 सर जेजमिन लिंडन के अनुसार हिंदू विधि प्रणाली का ज्ञान कुछ उन धार्मिक पुस्तकों से होता है जिनको ईश्वरीय मान कर उन पर लम्बे-लम्बे काल्पनिक भाष्य लिखे गये हैं। हिंदू विधि प्रणाली वस्तुतः धार्मिक नगरीय और औपचारिक आदेशों का संग्रह है और भेले।

हिंदुआ व ही जबिक समीप थी। मुसलमानों से मिलन वाली व्यवस्था में इस्लामी दण्ड विधान का प्रचलन था किन्तु वह दण्ड विधान बर और पक्षपात पूर्ण था, क्योंकि जिस प्रकार हिंदू विधान में दण्ड के माध्य पर ब्राह्मण के दण्ड न दण्ड का विधान था, उसी प्रकार इस्लामी दण्ड विधान में मुसलमानों का विद्वेष्टण मुसलमानों का अभिसाहय (Testimony) न स्वीकार करन का विधान था। इन परिस्थितियों में जसा कि पतिवर का मत है, यह सिद्धान्त लागू करना कि विधि के समान सभी समान हैं वास्तव में, एक वैधानिक क्रांति (Legal Revolution) में कम नहीं है।

अप्रजा के पहले का वैधानिक व्यवस्था में वैधानिक प्रणाली के तीन स्तर थे—एक, बाणशाह या समक प्रतिनिधि और राजा का दूसरा, गाव पचायत का और तीसरा जाति पचायत का। इन तीनों स्तरों में दूसरे और तीसरे ही प्रधान थे और इन स्तरों पर पाठ जानने वाले सगठनों (गाव-पचायत तथा जाति-पचायत) में बायपालक (Executive) वैधानिक (Judicial) और वैधानिकी (Legislative) कार्य तथा अधिकार निहित थे। किन्तु इन सगठनों में, भी जाति पचायत का स्थान मुख्य था क्योंकि व्यक्ति पर परिवार व बाण प्रणाली नियंत्रण जाति-पचायत का ही था। इन सगठनों द्वारा लागू की जाने वाली सारी विधि प्रणाली प्रथाओं पर आधारित थी और वह बाइबिल वाले उम मिश्रित पर आधारित थी जिसमें यह बना गया है कि दांत व लिए दात और आँसु के लिए आँसु। सारा दण्ड विधान निदग्नात्मक और प्रतिरोधक (Exemplary & Deterent) था। हमें बाद में यह नहीं कि राज्य और उसके प्रतिनिधि, सम्राट् प्रथम बाणशाह का धर्मनिष्ठा अधिकार प्राप्त थे और वह जाति पचायत अथवा गाव-पचायत के विधि विधान का आवश्यकतानुसार बन सकता था क्योंकि वही राज्य का सर्वोच्च पुनर्विचार-व्यायालय हुआ करता था। किन्तु, भारतीय वैधानिक प्रणाली की परम्परा का आधारभूत सिद्धान्त यह था कि प्रजा पर समूची प्रथाओं व अनुसार शासन करना राजा का कर्तव्य है और सम्भवतः सभी कारणों जहाँ एक ओर स्मृतिकारों ने समय-समय पर विधि विधान का निर्माण किया और पहले से निरूपित विधि विधान पर नाट्य रूप में सुधार करने का प्रयास किया वह दूसरी ओर, राज्य ने स्मृतिकारों का वैधानिक सम्बन्धों का ना माना किन्तु वैधानिक तथा वैधानिक प्रणाली में जहाँ तक हा मत्ता प्रथाओं को ही सर्वोपरि रखा। दूसरी परम्परा का परिणाम यह हुआ कि एक ओर, धर्मशास्त्रीय विधि प्रणाली चलती रही तो दूसरी ओर प्रथा पर आधारित व्यापक विधि-प्रणाली। जहाँ शास्त्रीय विधि तथा प्रथाओं की विधि में अन्तर्ग्रहण है वही स्मृतिकारों ने भी प्रथा का ही महत्त्व देने की संज्ञा दी है।

अंग्रेजी राज की स्थापना के पहले, अखिल भारतीय विधि प्रणाली के निरूपण की आवश्यकता नहीं पड़ी थी क्योंकि उसके पहले ग्राम पंचायत तथा जाति-पंचायत का ही राजनैतिक तथा न्यायिक प्रशासन का आधार माना जाता था। किन्तु, जसा कि पहले कहा जा चुका है, अंग्रेजी राज के सघात से जा व्यवस्था उत्पन्न हो रही थी उसमें गाँव तथा जाति का परम्परागत महत्त्व समाप्त हो रहा था। दूसरा और अंग्रेजी की 'सम्बन्धित सरकार' की कल्पना भिन्न थी। अंग्रेजी राज के द्वैतीय सत्तावादी राजनैतिक विधान था जोर जिस समय भारत में अंग्रेजी राज की स्थापना हुई थी उस समय नव इंग्लैंड में पार्लियामेंट इतनी सबल हो चुकी थी कि उसकी अनुमति से सरकार सामाजिक सुधारों के लिए भी विधि का निर्माण कर सकती थी। भारत में विधि का ईश्वरीय सम्झौता माना जाता था जबकि इंग्लैंड में विधि को मनुष्य की अजिम्हाई के लिए मनुष्य द्वारा बनाया हुआ एक ऐसा साधन माना जाता था जो आवश्यकता अनुसार बदला जा सकता था। यद्यपि सन् १७७१ में स्थापित हान पर मना बाँध विवाह और बन्धुविवाह जैसी प्रथाएँ जसामाजिक प्रतीक हान थीं जोर उनको विधि द्वारा दूर करने की माँग भारतवासियों की। इस माँग पर दो प्रकार की विचारधाराएँ चली— एक, नवजागृतिवादी और दूसरी परम्परावादी। जिन नवजागृतिवादियों ने धनात्मक विचारों को स्वीकार करने की माँग की उस परम्परावादियों ने शास्त्रप्रणीत सिद्ध किया। वास्तव में दोनों मतों का मानन वाला न अपना-अपने तर्कों का, शास्त्र प्रणीत सिद्ध करने का प्रयाग किया और एनी ही शास्त्रों में स्पष्ट हान लगा कि परम्परागत विधि प्रणाली विराधात्मक तथा अनिश्चित है। साथ ही साथ, अंग्रेजी राज के माध्यम से जिस सामाजिक प्रायिक व्यवस्था का जन्म हो रहा था उसमें सवित्वात्मक सम्बंधों (Contractual Relations) का नियमित करने का कार्य भी वैध विधान न था। अतः सन् १७७१ में तर्क के आसपास की परिस्थितियों में भारत में अंग्रेज प्रशासकों का, भारत की परम्परागत विधि प्रणाली असमान अस्पष्ट और अनिश्चित लगी।

भारत की आधुनिक विधि प्रणाली के इतिहास के दृष्टिकोण से सन् १७७१ ही सौ तर्क का सार एक महत्वपूर्ण सार है क्योंकि इसी साल में गवर्नर जनरल की परिषद में विधि-सदस्य (Law Member) को नियुक्त किया गया, विनियमन (Regulation) द्वारा विधि निर्माण करना की शक्ति का समाप्त कर दिया गया और उस साल के गवर्नर-मेंट ऑफ इण्डिया एक्ट (Govt of India Act of 1833) के द्वारा यह निर्धारित किया गया कि जो विधियाँ भारत के सभी वर्गों पर लागू हो व अधिनियमों की जायें। इसी साल से अखिल भारतीय विधि का अधिनियमित करने

१. यू. एम. एम. सहाय द्वारा संपादित पुस्तक एन. आउटलाइन ऑफ दि इन्डियन हिस्ट्री ऑफ इण्डिया पृष्ठ २०४-२०९

का प्रयास प्रारम्भ होता है और वर्तमान भारत की विधि प्रणाली इसी प्रयास का परिणाम है। गवर्नर जनरल की परिपद क प्रथम विधि-सदस्य न विधि निरूपण के लिए यह सिद्धांत प्रतिपादित किया कि जहाँ हो सके समानता लाई जाय जहाँ अत्यंत आवश्यक हो और कोई चारा न हो वहाँ विभिन्नता बनी रहने दी जाय किंतु प्रत्येक दशा में, निश्चितता अवश्य लायी जाय। निश्चितता लाने के लिए विधि क संहिताकरण (Codification of Law) की आवश्यकता पड़ी जिसके लिए समय-समय पर विधि जायागा (Law Commissions) के संगठन का विधान किया गया। सन अठारह सौ चालीस में प्रथम विधि-आयोग ने यह सिफारिश की कि हिन्दू और मुसलमानों की स्वाय विधि (Personal Law) को ज्यों का त्यों रहने दिया जाय और अन्य अखिल भारतीय विधि की रचना अग्र जो विधि क आधार पर हो। दूसरे विधि आयोग ने भी उसी प्रकार हिन्दू तथा मुस्लिम विधिया का छोट कर सम्पूर्ण भारत के लिए मौलिक विधि (Substantive Law) की रचना करने की सिफारिश की। तीसरे विधि आयोग (1861) ने इसी दिशा में प्रयास प्रारम्भ किया। इन्हीं प्रयत्नों का परिणाम है दि कोड आफ सिविल प्रोसीजर (The Code of Civil Procedure 1859) दि पिनल कोड (The Penal Code 1860) दि क्रिमिनल प्रोसीजर कोड (The Criminal Procedure Code 1861) दि इण्डियन सबसिशन एक्ट (The Indian Succession Act 1865) दि इविडेंस एक्ट (The Evidence Act of 1872) और दि इण्डियन कंट्रैक्ट एक्ट (The Indian Contract Act 1872)।

कहा था, 'मेरे विचार में भारत के अलावा शायद ही कोई ऐसा देश हो जिसे विधि संहिता (Code of Laws) की इतनी आवश्यकता हो जितनी कि भारत की है और भारत के अलावा शायद ही कोई ऐसा देश हो जहाँ यह आवश्यकता इतनी आसान हो सकेगी। किन्तु, साथ ही साथ, उसने यह भी कहा था "भारत में समान विधि प्रणाली का उद्देश्य वास्तव में आवश्यक है किन्तु वह अप्रत्याशित है।' अठारहवीं शताब्दी के पहले के विधि आयागों में भी इसी बात पर जोर दिया था कि हिन्दू और मुस्लिम स्वीय विधियों के अधिनियमन (Enactment) की आवश्यकता नहीं है क्योंकि, एक ओर, ये समाज ही विषय और विजातीय हैं और दूसरी ओर हिन्दू और मुस्लिम स्वीय विधियाँ का आधार धर्म है और चूँकि अंग्रेजी विधान सभा हिन्दू और मुस्लिम धर्मों का निर्माण नहीं कर सकती है, वह हिन्दू और मुस्लिम विधियों का अधिनियमन नहीं कर सकती है। इसका परिणाम यह हुआ कि सन अठारह सौ अठ्ठावन के घोषणापत्र में क्वीन विक्टोरिया ने यह नीति निर्धारित की कि विधियों के अधिनियमन और प्रशासन में हिन्दुओं की प्राचीन रूढ़ियों, रीति-रिवाजों और प्रथाओं का ध्यान रखा जायगा। इसका परिणाम यह हुआ कि स्वीय विधि का अधिनियमन तो किया गया किन्तु उसमें स्थानीय प्रथाओं को अपवाद माना गया। उन्नीसवीं शताब्दी के हिन्दू विवाह अधिनियम (The Hindu Marriage Act) ऐसे उदाहरणों में से एक है। हिन्दू विवाह के आधारों का निर्धारित करते हुए सपिण्ड विवाह का निषेध किया गया है किन्तु जहाँ प्रथा से सपिण्ड विवाह जायज है वहाँ उसको अनुमति दी गयी है। सपिण्ड की परिभाषा भी हिन्दू प्रथा पर आधारित है न कि शास्त्र पर। इसी प्रकार, विवाह-कर्मकाण्ड के विषय में यह निर्धारित किया गया है कि वर या यशु में से किसी को यहाँ प्रचलित कर्मकाण्ड के आधार पर विवाह सम्पन्न हो सकता है और यदि अपनाने वाले कर्मकाण्ड में सप्तपदी का विधान है तो अधिक रूप से विवाह तभी सम्पन्न माना जायगा जब सप्तपदी का कर्मकाण्ड पूरा हो जायगा²।

अंग्रेजों द्वारा अपनायी जाने वाली इस विधि प्रणाली के दो परिणाम निकले। एक, भारत में अंग्रेजी विधि प्रणाली को लागू करने पर भी भारतीय संस्कृति का ऊर्ध्वगामी विवाह होता रहा। सर बेंजमिन लिंडस ने यह स्वीकार किया है कि भारत में हिन्दू और मुस्लिम विधियों का संहिताकरण एक दुःखकर कार्य रहा है और इस कारण भारत में अंग्रेजी विधि प्रणाली का उस रूप में स्वीकार किया गया है जिस रूप में वह भारत में लागू की जा सके। किन्तु वास्तविकता यह है कि भारत की स्वीय विधियों

1 भारत सरकार द्वारा प्रकाशित सोशल लेजिस्लेशन पृष्ठ 18

2 सभसेना बानी प्रसाद रि कमेंटरीज ऑन हिन्दू मरिज एक्ट 19५5 पृष्ठ 67

क मूह्तिताकरण (Codification) म प्रयाभा बा, अग्रजेी विधि प्रणाली के अनुसार, अधिनियमन किया गया है। इसका परिणाम हुआ है भारतीय विधि का ऊध्वगमन और भारतीय संस्कृति म अग्रजेी विधि प्रणाली का समन्वय। इसका दूसरा परिणाम हुआ है भारतीय विधि प्रणाली की विपमता। अपन वतमान रूप और आकार म भारतीय विधि प्रणाली उस मकान की तरह है जिसकी यहाँ-वहाँ मरम्मत कर दी गयी है और, यहाँ वहाँ इतनी मरम्मत के बाद भी, जिसम सुरासत बाकी है¹। वनमान भारत की स्वीय विधि प्रणाला पूर्वोत्तरण (Precedent) रूढ़ि (Custom) और परम्परा (Tradition) का एक वह विचित्र जमघट है जा पिछले सौ वर्षों स अनिर्ममित रूप स एकत्र होना रहा है, जा हमारा वतमान प्रयाभा के अनुरूप भी नहीं पडता है और समता (Equality), सामाजिक भाष (Social Justice) या समानता (Uniformity) के सिद्धांत पर सग ही उतरता है²। इसी विवास्त परम्परा का परिणाम है कि विराधी प्रयाषों नी चाली रहती हैं वयादि जिस प्रया पर विधि आधारित है उसका अपवा भी उतना ही वैध है जितनी कि प्रयायी विधि। जौनसार क निवासी अपना परम्पराओं और प्रयाभा म हिंदू हैं निन्तु उनम बहुपतित्व वैध है जबकि हिंदू मरिज एक्ट (1955) के अनुसार हिंदुओं म बहुपतित्व अवध है।

अग्रजेी राज के माध्यम से यारोप के सम्पक म भाजन पर, भारत म भी यारोप की सी राजनतिक जागति फली। यारोप का भाति भारत म भी कल्याणकारी राज्य की स्थापना की भावना का प्रचार हुआ। इसके परिणामस्वरूप भारत म भी सामाजिक विधान द्वारा सामाजिक सुधार की माग बढी। उधर अग्रजेी सरकार ने अनेक सुधारों के लिए सामाजिक विधान का आश्रय लिया। इनका परिणाम हुआ भारत म सामाजिक विधान की उत्तरात्तर रचना। स्वीय विधि के समान सामाजिक विधान का निर्माण भी धीरे धीर और अलग-अलग हुआ है और, इसाकारण, भारत का सामाजिक विधान भी समय-समय पर पात विण गए अधिनियमों का एक जमघट है। सामाजिक विधान भी सामाजिक समस्याओं का दूर करने के लिए बनाया गया है न कि भारतीयों की उस सामूहिक चेतना की माग क रूप म जिसका उद्देश्य है सामाजिक समस्याओं के निवारण व्यक्तियों का उचित और वांछित जीवन क योग्य बनाना। अग्रजेी राज म सामाजिक विधान का उद्देश्य है सामाजिक समस्याओं स पारित व्यक्तियों म समाज की रक्षा करना न कि सामाजिक समस्याओं का निराकरण। इनीकारण, अग्रजेी विधि प्रणाली पर आधारित सामाजिक विधान और प्रयाभा म बड़ी-बड़ी विराध भी पैदा हुआ और उसका कारण परम्परागत प्रयाषों सामाजिक अपराध का कारण

1 अनुस, एम० सलगहरीन यही

2 विरवास्त, सी०सी० भारत सरकार द्वारा प्रकाशित सोशल सेजिस्ट्रेशन में पृष्ठ १

धनी¹। भारत का अधिकतर सामाजिक विधान मुख्यतया दण्डक (Punitive) रहा है और, इसकारण, पुत्रीस-व्यवस्था ही समाज सुधार का मुख्य माध्यम रही है क्योंकि दण्डक विधान के अनुसार काय न करने वाले का पुत्रीस ही दण्ड दिलवानी है फिर भी अंग्रेजी राज-काल में जो भी सामाजिक विधान बना उसमें उन समस्याओं के प्रति जागरूकता फूटी जिनके लिए सामाजिक विधान का निर्माण किया गया। नारिया के सम्पत्ति अधिकार बाल विवाह, अन्तर्जातीय विवाह विधवा विवाह अस्पृश्यता और व्यवसायिक तथा प्रथायुक्त धार्मिक देशवादि ऐसी समस्याएँ हैं जिनका सामाजिक विधान से निराकरण तो नहीं हो सका किन्तु उनके प्रति सामाजिक विधान के कारण सामाजिक चेतना जवशर फूटी। सामाजिक विधान रचने के सरकारी तथा गैर-सरकारी प्रयत्नों के कारण भारत में कल्याणकारी राज्य और सामाजिक कल्याण सम्बंधी आधुनिक विचारों का प्रसार हुआ और उनका परिणाम हुआ स्वतंत्र भारत के संविधान में बुनियादी अधिकारों और कल्याणकारी राज्य की स्थापना के लिए राज्य नीति के नैतिक सिद्धांतों का निरूपण।

भारत में सावधानिक विधि (Constitutional Law) का विकास इंग्लैंड तथा यूरोप की सावधानिक विधियों और प्रथाओं से प्रेरित रहा है। भारत की सावधानिक विधि पर इंग्लैंड का प्रत्यक्षतम प्रभाव है क्योंकि भारत में सावधानिक विधि की रचना का श्रोतगण ही अंग्रेजों के हाथों हुआ है। भारत में सावधानिक विधि का प्रवर्ग उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम भागों के सावधानिक सुधारों के साथ-साथ प्रारम्भ हुआ है और उसकी पराकाष्ठा उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में हुई। अंग्रेजी राज में चलने वाला स्वतंत्रता-संग्राम वस्तुतः सावधानिक सुधारों और माँगों का इतिहास है और वह इंग्लैंड के राजनैतिक दार्शनिकों और कर्तव्य की सावधानिक प्रथाओं से प्रेरित रहा है। भारत की आधुनिक सामाजिक नवजागृति के प्रणेता राजा राममोहन राय ने यही माँग की थी कि जैसा राजनैतिक विधान इंग्लैंड में है वसा ही भारत में हो।

वर्तमान भारत का संविधान अंग्रेजों द्वारा निर्मित उन्नीसवीं शताब्दी के

1 (अ) हैकरबाल विजय गकर सोनिया-कनामिक आस्पक्टस आफ श्राद्ध इन इण्डिया

(ब) इसका सबसे उदाहरण है सन उन्नीसवीं शताब्दी का चाइल्ड मरिज रेस्ट्रेंट एक्ट जो जनसाधारण में गारदा एक्ट के नाम से प्रसिद्ध है। यह एक्ट बाल दण्डक (Punitive) है। यहाँ इसमें बाल विवाह करने वालों के लिए दण्ड का तो विधान है पर बाल विवाह की प्रथा का रोकने का कोई विधान नहीं है। ऐसी ही अधिक परिस्थितियों में प्रथा अपराध का कारण बन जाती है।

गवर्नमन्ट आफ इण्डिया एक्ट की वस्तुतः एक प्रतिवृत्ति है। इंग्लैंड का संविधान अलिखित है किन्तु अंग्रेजों ने भारत में लिखित संविधान बनाने की प्रथा डाली। वर्तमान भारत का संविधान लिखित बनाने की प्रेरणा अंग्रेजों के संविधान की प्रेरणा से आया है और अंग्रेजों के संविधान में मिलने वाली प्रेरणा की। भारतीय संविधान में निहित बुनियादी अधिकार और संधीयता (Federalism) अमेरिकी संविधान से लिए गए हैं और राज्य-नीति के निर्देशात्मक नियम (Directive Principles of State Policy) अंग्लैंड के संविधान में। भारतीय संविधान एक आर, व्यक्तिवादी है और दूसरी आर, समष्टिवादी। यह पश्चिम के ही प्रभाव का परिणाम है कि भारत का संविधान में पारस्परिक विरोधी व्यक्तिवादी तथा समष्टिवादी धारणाओं का समावेश हुआ है। व्यक्तिवाद और समष्टिवाद दोनों धारणों को देने हैं। सर आइवर जेनिंग्स का उद्धरण देने हुए, सलाहगोत्रिय युक्त ने लिखा है कि भारतीय संविधान वस्तुतः एक व्यक्तिवादी प्रलेख (Individualistic Document) है जिसमें प्रेरक हैं बर्क (Burke), मिल (Mill) और डीसै (Dicey) जैम अंग्रेज विचारक। किन्तु साथ ही साथ, जहाँ उमम, एक आर, उनीमधी गताणी की व्यक्तिवादी धारणा के प्रभाव में और स्वतंत्रता (Liberty) व स्वतंत्र के हित में, राज्य के अधिकारों का सीमित करने का विधान किया गया है वहाँ, दूसरी आर, बीसवीं सदी की समष्टिवादी विचारधारा का प्रभाव में राज्य के अधिकारों का यथा अधिक विस्तृत करने का प्रयास किया गया है ताकि राज्य आर्थिक जीवन का नियमन कर सके। भारतीय संविधान जिस स्वतंत्रता का प्रतिपादन करता है, उसे सीमित भी करता है। भारतीय संविधान में चलकनी हुयी यह द्विभाजिता वस्तुतः, वर्तमान धारणीय जीवन की द्विभाजिता (Dichotomy) है¹।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि अंग्रेजों के राज की स्थापना के पूर्व भारत की विधि प्रणाली का वास्तविक रूप प्रथाओं या और उमका एक बहुत बड़ा अंग गाव और जाति में निहित था। भारत के परम्परागत सामाजिक आर्थिक संगठन में, गाव (ग्राम) और जाति दो एसी इकाइयाँ रनी हैं जिनमें सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनतिक तथा अधिक (Legal) तत्वा का समावेश हुआ है। ग्राम का आधार सहवामी-समुदायिक हान का साथ-साथ, राजनतिक भी या कयोकि ग्राम-संगठन, ग्राम पंचायत, में निष्पादन (Executive), आर्थिक (Judicial) और विधायी (Legislative) अधिकार और साथ निहित थे। इसी प्रकार, जाति भी अंग्रेज आर्थिक, अंग्रेज सामाजिक, अंग्रेज सांस्कृतिक, अंग्रेज आर्थिक, अंग्रेज राजनतिक और अधिक आधारों में निहित थी और ग्राम पंचायत या जाति जाति-पंचायत में भी आर्थिक (Judicial) निष्पादन (Executive) और विधायी (Legislative) अधिकार और

काय निहित थे। ग्राम जीर जाति दोनों परम्परागत राजनतिक मगठन के दो मुख्य अंग थे और प्रशासन के मुख्य माध्यम भी।

अग्रजी राज में, भारत में जिस विधि प्रणाली की रचना की गयी उससे ग्राम तथा जाति से उनके विधायी तथा 'यायिक अधिकार जीर काय ले लिए गये जिससे उनके सामाजिक आधार हिले और, उनका व्यक्ति पर से प्रभाव कम होने लगा। अग्रजी राज में विधि रचना का अधिकार जीर काय राज्य के हाथ में चला गया निष्पादक काय सरकार के हाथ में और 'याय प्रशासन का काय 'यायालयों के हाथ में। इण्डियन पेनल कोड (Indian Penal Code), कांडस आफ सिविल एण्ड क्रिमिनल प्रोसीजर (Codes of Civil and Criminal Procedure) और जठारह सौ बहतर के इवीडेंस एक्ट (Evidence Act 1872) के द्वारा ग्राम पचायत तथा जाति पचायत के 'यायिक और विधायी काय ग्राम तथा जाति पचायतों से लेकर, राज्य के विभिन्न विभागों का सौंप दिया गये। नयी आर्थिक व्यवस्था ने ग्राम के आर्थिक महत्व को पहले ही समाप्त कर दिया था। नयी विधि प्रणाली ने ग्राम के राजनतिक 'यायिक तथा विधायी महत्व को समाप्त कर दिया। इसका परिणाम हुआ ग्राम पचायत का स्वतः विच्छेद। जाति पचायत का महत्व कम अवश्य हुआ किंतु उसका विच्छेद नहीं हो सका और उसका सभ्य महत्वपूर्ण कारण है कि जाति के मुख्य आधार अर्थात् विवाह का बना रहना। हा यह अवश्य हुआ कि नयी वधिक और यायिक व्यवस्था में जाति-पचायत का ही निम्न अंतिम न रहा। जाति के व सभी वधिक और दण्डिक नियम समाप्त हो गये जो राज्य द्वारा निमित्त विधि प्रणाली के विरोध में आते हैं।

- 1 दण्ड के रूप में अपराधी को सिर मुड़ा देना उसे जतों से पिटवाना या सारे पक्षों के जतों को कपड़ों में बांध कर अपराधी को सिर पर रखवा कर उसे अपमानित करना एक साधारण बात थी। किंतु, आज ये दण्ड कम हो गये हैं और अधिकतर दण्ड जर्मनी के रूप में दिया जाता है। पहले अपनी सत्यता सिद्ध करने के लिए तयावधित अपराधी को उबलते हुए तेल या घी में हाथ डालने की बात भी सुनी जाती है। यह भी सुना जाना है कि अपने को निर्दोष सिद्ध करने के लिए अपराधी हाथ में जलता हुआ अगारा रख लेता था। इससे पीछे यह भावना थी कि निर्दोष न तो अगारा लेकर जलगा और न उबलते हुए तेल या घी में हाथ डाल कर। अठारह सौ बहतर के इवीडेंस एक्ट में ऐसे साक्ष्यों का कोई महत्व नहीं है। और फिर, आज जाति पचायतों के निम्न के विरुद्ध 'यायालय में अपील हो सकती है। नयी विधि प्रणाली पर आधारित दण्ड विधान के समस्त परम्परागत दण्ड विधान कि हों किहीं अवस्थाओं में अर्राध हो गया है। मध्यप्रदेश की कलवलिया नामक गणजाति में बलात्कार के अपराध के लिए डाम लगान की प्रथा सुनी जाती है। डाम लगान का अर्थ है सात गम साह में अपराधी पुरुष के मस्तक या गुफ्तों पर निम्न लगाना। किंतु यत्मान इण्डियन पेनल कोड के अनुसार ऐसे दण्ड का देने वाला ही दण्ड का भागी होगा।

शिक्षा

अंग्रेजी राज काल में भारत की परम्परागत शिक्षा पद्धति का भी योरोपीय रूपांतरण हुआ। भारत की वर्तमान शिक्षा पद्धति इसी रूपांतरण की देन है। भारतीय शिक्षा पद्धति का योरोपीय रूपांतरण, भारतीय विधि प्रणाली और आर्थिक व्यवस्था के रूपांतरण की भांति, एक मुख्य समाजशास्त्रीय तथ्य माना जाता है क्योंकि इस रूपांतरण में अनेक प्राथमिक सामाजिक परिवर्तन और प्रक्रियाओं को जन्म दिया। अंग्रेजी राज काल में ही सर्वप्रथम यह सिद्धांत निश्चित किया गया कि शिक्षा के संगठन का उत्तरदायित्व राज्य पर है और शिक्षा जन साधारण के लिये सुलभ होनी चाहिए। स्वतंत्र भारत के संविधान में, राज्य को शिक्षा का जो उत्तरदायित्व सौंपा गया है उसका सैद्धांतिक बीज-बपन अंग्रेजी राज्य काल में हुआ था। अंग्रेजी न भारत में जो शिक्षा प्रणाली संगठित की उसके द्वारा भारत में योरोपीय दान, विज्ञान साहित्य और प्रौद्योगिकी का प्रसार हुआ। वास्तव में, अंग्रेजी राज्य काल में शिक्षा योरोपीय सभ्यता के सघात का एक मुख्य माध्यम रही है और आज भी है। इसी शिक्षा के माध्यम से, एक ओर भारत में अंग्रेजी भाषा का प्रचार हुआ, उसकी गरिमा बढ़ी तथा अंग्रेजी भाषा का भारतीय भाषाओं पर प्रभाव पड़ा और दूसरी ओर योरोपीय ज्ञान विज्ञान के प्रसार के साथ-साथ, भारत की परम्परावादिता धीरे धीरे कम हुई।

अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम से, भारत में योरोप के व्यक्ति-मर्यादात्म्य, प्रजातन्त्र, समता और साम्यवाद सम्बंधी राजनैतिक-सामाजिक विचारों का समावेश हुआ और उनके फलस्वरूप भारत की परम्परागत सामाजिक व्यवस्था के मुख्य आधारों, समुक्त परिवार और जाति, में परिवर्तन आया। भारत में, अंग्रेजी शिक्षा का वह माध्यम समझ कर लागू किया गया था जिसके द्वारा भारतीयों को योरोपीय विचारों के एक नये सगर में प्रवेश करने का अवसर मिलेगा और भारतीयों का सांस्कृतिक जीवन उन्नत बनगा? इसमें कोई सन्देह नहीं कि अंग्रेजी द्वारा लागू की हुयी शिक्षा में भारत योरोपीय ज्ञान विज्ञान के सघात में आया और उसमें, कुछ समय के लिए भारत की शैक्षिक चिंतन में एक कोलाहल और क्षुब्धता का प्रवेश हुआ। किंतु, इस नभावात का समाप्त हात ही, एक ओर, सांस्कृतिक राष्ट्रवादिता और भारतवाद की विचारधारा बननी और, दूसरी ओर, योरोपवाद की। भारत में अंग्रेजी शिक्षा का जन्म और संगठन ही भारतवाद बनाम योरोपवाद की सर्वात्मिक विचारधाराओं में हुआ है। भारतीय शिक्षा में व्याप्त यह द्विभाजिता अर्थात् योरोपीय विचारधारा की देन है और अगत योरोप के सघात में भारतीय संस्कृति में उत्पन्न होने वाला द्विभाजिता और आत्मविच्छेद की। यह अंग्रेजी शिक्षा का प्रभाव है कि एक ओर भारत योरोप में परिचित हुआ और दूसरी ओर, अपने से, एक ओर, भारत न योरोप का

अपनान की कोशिश की ता, दूसरी ओर, अपने पुनरुत्थान की। इन्हीं द्विभाजक प्रवृत्तियों ने उत्तरीय शताब्दी में उस सामाजिक नवजागृति की गत्यात्मकता को जन्म दिया, जो एक ओर धारापवादी रही है और दूसरी ओर भारतवादी, तथा जिसके मघात से भारत में उन अभिनवमार्गी महापुरुषों की अवतारणा हुयी है जिन्होंने योरोपीय सामाजिक संगठन और भारतीय आध्यात्मिकता के सम्बन्ध का प्रयास किया है।

अंग्रेजी शिक्षा पद्धति का संगठन उतना प्रातिकारी नहीं रहा है जितना कि उसका मघात और उससे उत्पन्न होने वाला प्रभाव। भारत में अंग्रेजी शिक्षा का विकास एक ऐसा उपरोपित (Grafted) विकास है जिसमें योरोपीय-अंग्रेजी शिक्षा पद्धति का भारत की परम्परागत शिक्षा पद्धति पर उपरोपण किया गया है। जिस आधार पर उपरोपण किया जाता है उसके तत्त्व उपरोपित विकास में जा जाते हैं। यही कारण है कि भारत की शिक्षा पद्धति के योरोपीय रूपांतरण में उसके मुख्य परम्परागत आधार बने रहे और अंग्रेजी प्रशासन के कारण बदली हुई परिस्थितियों में उन्हें नये ढंग में लागू किया गया। भारत में जिस हद अंग्रेजी या योरोपीय शिक्षा पद्धति बढ़ते हैं उसके तत्त्व और उपकरण तो योरोपीय-अंग्रेजी रहे हैं किन्तु उसका संगठन और कलेवर परम्परागत भारतीय। शिक्षा की जात्ता न तो भारतीय रही है और न योरोपीय—वह भारतवाद और योरोपवाद के मध्य में उत्पन्न आत्मविच्छेद से ओत प्रोत रही है। प्रारम्भ से ही, भारत में एक ओर, शिक्षा के योरोपीयकरण की भांग रही है और, दूसरी ओर उत्तरोत्तर योरोपीयकरण के भारतीयकरण की। भारत में योरोपीय शिक्षा का श्रीगणेश अशत मिशनरियों अशत भारतीयों और अशत भारत में योरोपीयकरण को प्रास्ताहित करके अंग्रेजी राज को मजबूत करने वाले अंग्रेज प्रशासकों की भांग के कारण हुआ। इसी कारण भारतीय शिक्षा न तो योरोपीय हो सकी और न भारतीय और न वह कोई सुसंगठित रूप ही ले सकी। शिक्षा के विकास में परम्परागत शिक्षा पद्धति के संगठन के आधारों का नये ढंग से समावेश हुआ।

भारतीयों ने एक ओर, अंग्रेजी शिक्षा को आभार और अनुग्रह के साथ ग्रहण किया ता दूसरी ओर व उसके तीव्र आलोचक भी रहे हैं। हिन्दुओं और मुसलमानों ने अलग अलग इस शिक्षा की आलोचना की किन्तु व उन त्याग न सके। भारतीय सामाजिक नवजागृति के नेताओं ने इस शिक्षा की तीव्र आलोचना की है। धर्म समाज के मस्थापक स्वामी दयानन्द ने इन अभास्तीय कृता और वेद तथा सस्कृत भाषा के अध्ययन और गुरुकुल पद्धति के पुनरुत्थान पर जोर दिया। किन्तु जायसमाज के तत्त्वान्धान में भी यदि एक ओर गुरुकुल की परम्परा क्षतायी गयी ता, दूसरी ओर एक वैदिक कालजा की परम्परा जहाँ वैदिक की अपणा एगला प्रभाव ही अधिक रहा है। राष्ट्रवांत्ता के प्रचार के साथ-साथ इस शिक्षा का विमोघ बढ़ा और इस कर्कों तथा गुणम मनावलि का जन्म देने वाली शिक्षा कहा गया। इसका परिणाम यह

हुआ कि एक आर, हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना हुयी और दूसरी आर, मुस्लिम विश्वविद्यालय की एक आर कागी विद्यापीठ जसी सम्भाय संगठित की गयी ता, दूसरी आर जामिया मिलिया जेमी सस्थाप । इन सस्थापना म एक आर यारोपीय शिक्षा पद्धति का धम स गठबंधन किया गया ना, दूसरी आर राष्ट्रवादिता स । जिस भारतीय शिक्षा का प्रातिकारी स्थापना कहा जाता है वह वस्तुतः भारत की परम्परागत शिक्षा पद्धति का अक्षत यारोपीय स्थापना है । अंग्रेजी राज्य काल म शिक्षा-पद्धति का स्थापना भारतीय ससृति की शिक्षा-सम्बन्धी परम्पराओं क उच्चगाणी स्थापना से प्रभावित हुआ है ।

भारत मे अंग्रेजी शासन की स्थापना के पहल जा शिक्षा-पद्धति चलती थी उत्तम, राज्य शिक्षा के प्रास्ताविक के लिए उत्तरदायी अवश्य समझा जाता था किन्तु, राज्य न कभी भी जनसाधारण की शिक्षा का उत्तरदायित्व नहीं लिया था । शिक्षा प्राप्त करना उत्तम धवश्य समझा जाता था किन्तु जनसाधारण क लिए शिक्षा का कोई प्रबंध न था । शिक्षा, हिंदू और मुसलमान दोनों समाजा म केवल एक बग विशेष क लिए ही थी । इस बग म परम्परा से पठन-पाठन के काम म लग तथा समाज क धनीमानी बग के लाग आत थ । शिक्षा कोई सामाजिक-आर्थिक आवश्यकता न थी— वह एक बग विशेष का विलासमाय समझी जाती थी । नारिया के लिए शिक्षा अना-वश्यक समझी जाती थी । हिंदुओं म केवल ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य बग के लाग शिक्षा के अधिकारी समझे जाते थे । गूढ़, अपनी परम्परागत आर्थिक स्थिति के कारण, न ता कभी शिक्षा पान का प्रयास ही करते थे और न वे शिक्षा के अधिकारी ही समझे जात थ ।

अंग्रेजी शासन क पूर्व चलने वाली शिक्षा प्रणाली म जसा कि पहल कहा गया है राज्य शिक्षा संस्था की भूमिका अदा करती थी और स्थापना, राज्य की ओर स यहाँ-वहाँ और वहाँ भी उच्च शिक्षा क लिए, आदग विद्यालय स्थापित जात थ । भारतीय इतिहास म, हिंदू तथा मुस्लिम दोनों काल म, धर्म, व्याकरण दान साहित्य और आयुर्वेद की उच्च शिक्षा देने के लिए विद्यापीठा के स्थापित किए जान की परम्परा मिलती है । किन्तु मुगलमाना क राज्य काल म इस परम्परा क दायित्व मिलत है—एक हिंदू परम्परा और दूसरी इस्लामी परम्परा । हिंदू परम्परा मे पठन-पाठन की भाषा थी संस्कृत और शिक्षा के विषयवस्तु थ वेद, पुराण व्याकरण धर्म दान और साहित्य । इस्लामी परम्परा म शिक्षा का माध्यम अरबी-फारसी था और पठन-पाठन क मुख्य विषय थे इस्लामी धर्म विद्या (Islamic Theology) और अरबी-फारसी साहित्य । दोनों परम्पराओं म शिक्षा वृति म न तो नोकरगारी संगठन का समावेश था और न स्वायत्तायिकता का । शिक्षण-काय का आधार व्यक्तिगत स्वाय-

अपनान की काशिश की ता दूसरी आर, अपने पुनरुत्थान की । इही द्विभाजक प्रवृत्तिया ने उसीसवीं शताब्दी में उस सामाजिक नवजागति की गत्यात्मकता को जन्म दिया, जो एक ओर योरोपवादी रही है और दूसरी ओर भारतवादी, तथा जिसके सघात से भारत में उन अभिनवमार्गी महापुरुषों की अवतारणा हुयी है जिन्होंने योरोपीय सामाजिक सगठन और भारतीय आध्यात्मिकता के सम्बन्ध का प्रयास किया है ।

अंग्रेजी शिक्षा पद्धति का सगठन उतना क्रांतिकारी नहीं रहा है जितना कि उसका सघात और उससे उत्पन्न होने वाले प्रभाव । भारत में अंग्रेजी शिक्षा का विकास एक ऐसा उपरोपित (Grafted) विकास है जिसमें योरोपीय अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति का भारत की परम्परागत शिक्षा पद्धति पर उपरोपण किया गया है । जिस आधार पर उपरोपण किया जाता है उसके तत्व उपरोपित विकास में आ जाते हैं । यही कारण है कि भारत की शिक्षा पद्धति के योरोपीय रूपांतरण में उसके मुख्य परम्परागत आधार बने रहें और अंग्रेजी प्रशासन के कारण बदली हुई परिस्थितियों में उन्हें नये ढंग से लागू किया गया । भारत में जिस हम अंग्रेजी या योरोपीय शिक्षा पद्धति कहते हैं उसके तत्व और उपकरण तो योरोपीय-अंग्रेजी रहें हैं किन्तु उसका सगठन और कलेवर परम्परागत भारतीय । शिक्षा की आत्मा न तो भारतीय रही है और न योरोपीय—वह भारतवाद और योरोपवाद के मध्य से उत्पन्न आत्मविच्छेद से ओत प्रोत रही है । प्रारम्भ से ही, भारत में एक ओर, शिक्षा के योरोपीयकरण की भांग रही है और, दूसरी ओर उत्तरोत्तर योरोपीयकरण के भारतीयकरण की । भारत में योरोपीय शिक्षा का श्रीगणेश अशत मिशनरियाँ अगत भारतीयों और अगत भारत में योरोपीयकरण को प्रोत्साहित करके अंग्रेजी राज को मजबूत करने वाले अंग्रेज प्रशासकों की भांग के कारण हुआ । इसी कारण भारतीय शिक्षा न तो योरोपीय हो सकी और न भारतीय और न वह कोई सुसंगठित रूप ही ले सकी । शिक्षा के विकास में परम्परागत शिक्षा पद्धति के सगठन के आधारों का नये ढंग से समावेश हुआ ।

भारतीयों ने एक ओर अंग्रेजी शिक्षा को आभार और अनुग्रह के साथ ग्रहण किया तो, दूसरी ओर व उसके तीव्र आलाचक भी रहें हैं । हिन्दुओं और मुसलमानों ने अलग-अलग इस शिक्षा की आलाचना की किन्तु व उन त्याग न सके । भारतीय सामाजिक नवजागति के नेताओं ने इस शिक्षा की तीव्र आलाचना की है । प्रायः समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द ने इस अन्धभारतीय बन्ध और वेद तथा संस्कृत भाषा के अध्ययन और गुग्गुलु पद्धति के पुनरुत्थान पर जोर दिया । किन्तु जायसमाज के तत्पुनरुत्थान में भी वही एक ओर गुग्गुलु की परम्परा चलायी गयी तो दूसरी ओर एंग्लो-वैदिक बाल्या की परम्परा जहाँ वही की अपेक्षा एंग्लो प्रभाव ही अधिक रहा है । राष्ट्रमन्त्रिता के प्रचार के साथ-साथ, इस शिक्षा का विरोध बन्ध और इस बन्धों तथा गुलाम मनावति का जन्म देने वाली शिक्षा कहा गया । इसका परिणाम यह

हुआ कि, एक ओर हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना हुयी और दूसरी ओर, मुस्लिम विश्वविद्यालय की, एक ओर काशी विद्यापीठ जसी सस्थाय सगटित की गयी ता, दूसरी ओर, जामिया मिलिया जमी सस्थाय । इन सस्थाओ म, एक ओर, यारायाय गिणा पद्धति का धम से गठबन्धन किया गया ना, दूसरी ओर, राष्ट्रवादिता म । जिस भारतीय शिक्षा का प्रातिकारा रूपांतरण कहा जाता है वह वस्तुतः भारत की परम्परागत शिक्षा पद्धति का अगत घोरापीय रूपांतरण ह । अग्र जी राय-काल म, गिणा पद्धति का रूपांतरण, भारतीय सस्कृति की गिणा-मध्यधी परम्पराओ के ऊच्चगागा रूपांतरण स प्रभावित हुआ है ।

भारत म अंग्रेजी शासन की स्थापना के पहले जो गिणा-पद्धति चली थी उसम, राज्य शिक्षा के प्रोत्साहन के लिए उत्तरदायी अवश्य समझा जाता था किन्तु राज्य ने कभी भी जनसाधारण की शिक्षा का उत्तरदायित्व नहीं लिया था । गिणाप्राप्त करना उत्तम अवश्य समझा जाता था किन्तु जनसाधारण के लिए गिणा का कार्य प्रबन्ध न था । शिक्षा, हिंदू और मुसलमान दोनों समाजा म, केवल एक वर्ग-विशेष के लिए ही थी । इस वर्ग म परम्परा से पठन पाठन के बाय म रण तथा ग्यात्र के धनीमानो वर्ग के लोग आत थ । शिक्षा काई सामाजिक-आर्थिक आवश्यकता न थी— वह एक वर्ग विशेष का विलासमात्र समझी जाती थी । शारिया के लिए गिणा उच्च-वश्यक समझी जाती थी । हिंदुओ म केवल ब्राह्मण, क्षत्रिय और क्षत्रिय वर्ग के लोग शिक्षा के अधिकारी समझे जाते थे । गूढ़, अपनी परम्परागत आर्थिक स्थिति के कारण, न ता कभी शिक्षा पाने का प्रयास ही करते थे और न व गिणा के अधिकारी ही समझे जात थ ।

साधना न थी। शिक्षण काय के पीछे विद्या-ज्ञान की भावना थी और विद्यार्थी द्वारा विद्या-ज्ञान के पीछे शिक्षक द्वारा मिले हुए दान का ग्रहण करने की भावना। इस कारण, शिक्षण काय एक सामाजिक उत्तरदायित्व था और, राज्य की अनेका, समाज उस उत्तरदायित्व का निभाने वाले की अधिक चिन्ता करता था। चूँकि शिक्षण काय विद्या-ज्ञान था, शिक्षण सस्थायों भी दान की भाव से चलती थी। किन्तु उम व्यवस्था में संगठित शिक्षण सस्थाओं की अधिकता न थी। सारा पठन पाठन गुरु शिष्य की परम्परा में चलता था - उस परम्परा में जिसमें केवल जीवन यापन और व्ययित्त-सफलता के लिए अध्यापन करने का बंधन न था जिसमें शिक्षण-काय और विद्यार्थी जीवन स्वातन्त्र्यपूर्ण ग्रहण किये जाते थे और शिक्षक का यह विशेषाधिकार मिला हुआ था कि वह चाहे तो केवल उम ही विद्यालयां दे जिसे वह योग्य पात्र समझता थे।

अब सामाजिक आर्थिक पहलुओं की भाँति शिक्षा-संगठन भी विवेकीकृत था और शिक्षा का आचार ये साहित्य भाषा और धर्म। इसकारण, विद्यालयों का संगठन और नियंत्रण जनता के हाथ में था और जहाँ की जसी जनता होती थी, वहाँ का विद्यालय भी उसी ढंग से संगठित किया जाता था। ऐसी दशा में शिक्षा का विषयवस्तु अध्यापक के दृष्टिकोण धर्म और सम्प्रदाय पर अधिक निर्भर था। पठन पाठन की भाषा बाल-बाल की भाषा न थी। अर्द्धी फारसी आरसकृत भाषायें बोल-बाल की भाषायें न थीं। अतः, उनके माध्यम में दिया जाना वाला ज्ञान, अनुचित ज्ञान के साथ साथ परम्परावादी और अधविश्वासी भी था। जनसाधारण की बोल-बाल की भाषा में शिक्षा न मिलने के कारण और पुस्तकों का अभाव होने के कारण शिक्षा वस्तुतः एक रहस्य थी जिसका ज्ञान गुरु की श्रुति ही से मिल सकता था। बाल-बाल की भाषा में शिक्षा न होने के कारण शिक्षा के द्वारा पूर्ण मानविक विकास न हो पाता था और शिक्षा जिनके जीवन में उपयोगी न होकर केवल दार्शनिक तथा वैचारिक विद्वानों का एक माध्यम मात्र थी। कठस्थता (Cramming) शिक्षा पद्धति का मुख्य आधार थी। प्रौद्योगिक शिक्षा का कोई संगठन न था। एक अलग धर्म वेदा का बरतन भी ज्ञातियाँ के सम्बन्धों के अपने-अपने पना सम्बन्धी ज्ञान के रूप में विकेंद्रीकृत थी और व्यक्ति का एक सामाजिक विरासत के रूप में मिलती थी। प्रौद्योगिक शिक्षा अज्ञान और अनुभव से मिलती थी न कि पठन-पाठन के माध्यम से।

अब जो प्रमाणों में जा शिक्षा पद्धति विरहित नयी उमकी दो अवस्थाएँ हैं— एक ज्ञान मात्र सन धारण भी पत्नीस के पदों की जीव दूमरी उमक बाप की कबालि मात माच मनु धारण से पत्नीस ही चरतिथि है जिन जिन अग्र जी पागत में भारत में योग्याय ढंग की शिक्षण-संस्थाओं और धर्मजी भाषा के माध्यम में आर्यावीय विज्ञान और साहित्य के शिक्षण को संगठित करने का निश्चय किया था।

पहली अवस्था अंग्रेजी राज के प्रशासकों की शिक्षा-सम्बन्धी दृष्टमूल और अति-रिक्त नीति का कारण है जिसमें परम्परागत शिक्षा पद्धति का एक राजकीय प्रशासकीय स्तर में लाने का ज-बोधा विभ्रम प्रयास (Trial and Error Attempt) है। इस प्रयास का प्रारम्भ वारेन हेस्टिंज के शासन-काल में उस समय से होता है जब मनु सत्रह सौ दशवासी में मुसलमानों को धार्मिक शिक्षा देने के लिये एक मस्जिद खोलना गया था और दूसरी प्रशासकीय परम्परा में सन सत्रह सौ दशवासी में ज्ञानवालिम के शासनकाल में बनारस में हिन्दुओं के लिये मस्जिद कालेज की स्थापना की गई थी। भारतीय शिक्षा को राजकीय स्तर पर संगठित करने के प्रयास में पहले अंग्रेजों ने अरबी, फारसी और संस्कृत के पठन-पाठन के साथ साथ, धार्मिक शिक्षा को उसी प्रकार संगठित करने का प्रयास किया जमी भारतीय शिक्षा-पद्धति की प्राचीन परम्परा थी। हिन्दू, अरबी, फारसी और संस्कृत उन भाषाएँ न थीं—वे केवल विद्वता ग्रहण करने की भाषाएँ थीं। मुसलमानों के राज्यकाल में प्राथमिक भाषाओं में साहित्यिक अभिव्यक्ति की सामग्री विकसित हो चुकी थी और जन-साधारण में प्राथमिक भाषाओं का प्रसार भी हो रहा था। जिस प्रकार, जन सम्पर्क बनाम रखने के लिये मुसलमान-शासक प्राथमिक भाषाओं की अवलम्बना न कर पाये थे उसी प्रकार अंग्रेजों के लिये भी प्राथमिक भाषाओं की अवलम्बना करना कठिन हो गया। अतः सन अठारह सौ एक में, फोर्ट विलियम में अंग्रेज अफसरों को दूसरी भाषाओं की शिक्षा देने के लिये एक कालेज की स्थापना की गयी। इस कालेज की स्थापना में भारत में दृष्ट भाषा-शिक्षा पद्धति की परम्परा (The System of Vernacular Education) का जन्म हुआ।

मनु अठारह सौ तरह में लेकर सन् अठारह सौ पत्तीस तक एक ओर भारत की प्राचीन शिक्षा प्रणाली का राजकीय प्रशासकीय आधार पर संगठित करने का प्रयास किया गया तो दूसरी ओर, उस समस्या पर विवाद चलता रहा कि भारत में योरोपीय शिक्षा को संगठित किया जाय या नह। भारतीय साहित्य के सुधार और पुनरुत्थान, भारतीयों में शिक्षा का प्राप्ताहन देन तथा भारत में योरोपीय विज्ञान के प्रसार और प्रवर्धन के लिये, मनु अठारह सौ तरह में अंग्रेजी सरकार ने पहली बार एक लाख रुपये का अनुदान निर्धारित किया। सन अठारह सौ तरह और पत्तीस के बीच में, सरकार ने एक ओर, प्राथमिक भाषाओं के माध्यम में शिक्षा देने के लिये ग्राम-पाठशालाओं और दूसरी ओर, बलवत्ता तथा शिक्षा में उच्च शिक्षा के लिये अरबी, फारसी और संस्कृत के कालेजों की स्थापना की। अंग्रेजी सरकार का समग्रतः, पन्ना प्रयोग पद्धतों और मौखिकता द्वारा ही जाने वाली परम्परागत शिक्षा प्रणाली को संगठित करना था। भारत में योरोपीय शिक्षा के संगठन के प्रयत्न का लक्ष्य अंग्रेज प्रशासकों में ही प्रसार के लक्ष्य था। तथापि ज० आर० कनिंघम ने शिक्षा ही उस काल के अंग्रेज

प्रशासक भारत की परम्परागत शिक्षा पद्धति को सगठित करके, उस पर योरोपीय विज्ञानी ज्ञान के उपरोपण के हामी थे। लेकिन, इसका बावजूद, सन १८५७ से १८५८ में नियुक्त शिक्षा समिति ने लगातार दस वर्षों तक, भारत में यारोपीय शिक्षा को लागू करने का विरोध किया। योरोपीय शिक्षा को लागू करने का विरोधी मत लार्ड म्वैरा के निरीक्षणों से स्पष्ट है। लार्ड म्वैरा ने लिखा था 'भारत में यारोपीय विज्ञानों की शिक्षा देना बुद्धिमत्ता नहीं है क्योंकि भारतीयों को उसकी चाह नहीं है। दूसरी ओर, प्राचीन शिक्षा प्रणाली को सगठित करने के लिये पुस्तकों, अध्यापकों और धन की कमी है।

इसी बीच में कई और विकास हुए जिनके कारण सन १८५७ से १८५८ में भारत में योरोपीय शिक्षा के सगठन का निणय किया गया। लार्ड म्वैरा के भारत में योरोपीय शिक्षा का जनक माना जाता है किन्तु वास्तविकता यह है कि मेकाले उन नई सामाजिक सांस्कृतिक शक्तियों के अधिवक्ता थे जो भारत और इंग्लैण्ड में उत्पन्न हो रही थी। भारत में अंग्रेजी शिक्षा लाने में मेकाले के दो उद्देश्य थे—एक, मेकाले के ही शब्दों में 'यह सम्भव है कि एक उत्तम सरकार द्वारा हम अपने शासितों का उत्तमतर सरकार के लिये प्रशिक्षित कर सकें। यह भी सम्भव है कि यारोपीय ज्ञान में दीक्षित होने पर, भविष्य में हमारे शासित यारोपीय संस्थाओं की भाग करें जब कभी ऐसा दिन आयगा, वह इंग्लैण्ड के इतिहास में सर्वोत्तम दिन होगा और उस दिन की सम्भावना को रोकने का प्रयास मैं नहीं करूंगा^१ और दूसरे, यद्यपि सी पारिचायिक शिक्षा से बगल में मूर्ति पूजन वाला नहीं रह जायगा^२। इस प्रकार, मेकाले का उद्देश्य था यारोपीय शिक्षा के द्वारा भारत का उत्तरोत्तर योरोपीयकरण जिसके पीछे भारतीयों को यारोपीय ढंग से सम्य बनाने की प्रेरणा थी। इस विचार के पीछे जहाँ इंग्लैण्ड की उदारवादी विचारधारा है वहीं इसमें तत्कालीन साम्राज्यवादी मनोवृत्ति का भी पुट है। उधर विलियम बेंटिन, तत्कालीन गवर्नर जनरल, ने शिक्षा-समिति से यह सिफारिश की कि राज्य-भाषा अंग्रेजी को सब प्रकार से प्रोत्साहन देना आवश्यक था। अंग्रेजी भाषा के द्वारा राज काज चलाने की आवश्यकता के कारण अंग्रेज प्रशासक वर्ग में यह विचार पनपने लगा था कि जिस बग का प्रशासन से प्रत्यक्ष सम्बन्ध था उसको अरबी पारसी और संस्कृत की अपेक्षा, अंग्रेजी के माध्यम से योरोपीय ज्ञान की शिक्षा देना अधिक श्रेयस्कर होगा^३।

- १ मेकाले द्वारा इंग्लैण्ड की पार्लियामेंट के समक्ष दिए गए भाषण का एक अंग—
देविसे ओ मेल इण्डिया एण्ड दि वेस्ट
- २ दिनकर वही पृष्ठ ४३१
- ३ बनिपम जे० आर०, ओ मेले की पुस्तक इण्डिया एण्ड दि वेस्ट में

भारत में ऐसा बग उत्पन्न भी हो रहा था—वह बग जो सामान्यतः हिंदू या और सरकारी नीतियों तथा योरोपीय व्यापार से लाभ उठा रहा था। यह बग एक आर, योरोपीय शिक्षा तथा योरोपीयकरण की ओर उन्मुख था तो, दूसरी ओर भारत के नवपुनरुत्थान की प्रेरणा से भी प्रेरित था। यह बग योरोप और भारत के सम्बन्ध से नये भारत के नव निर्माण का हामी था। सांस्कृतिक पुनरुत्थान के लिये विजिता को उन्ही के तक से काटना तब तक भारत की विप्रेयता बन चुकी थी। जिस बग ने मुगलमानों के राज्यकाल में, अरबी फारसी सीख कर इस्लाम का सैद्धांतिक विरोध किया था वही बग अंग्रेजों के माध्यम से इसाइयत और अंग्रेजी भाषा जिक-सांस्कृतिक जीवन का प्रणयन करके और इसाइयत तथा योरोपीयता के तत्त्वों का आत्ममात करके राजनीतिक तथा सांस्कृतिक पुनरुत्थान की आरंभ प्रकृति हुआ। राजा राममाहनाराय इस बग के अगुवा थे। उन्होंने अरबी, फारसी, संस्कृत, हिन्दू और अंग्रेजी सीखी ईसा के उपदेशों की सराहना की किन्तु इसाई मिशनरियों और ईसा के जीवन से सम्बन्धित चमत्कारों की आलोचना की अंग्रेजों की उदारवादिता तथा साधुप्रियता की दुहाई देकर भारतीयों के लिये अधिनाधिक अधिकारों की मांग की और सामाजिक विधान द्वारा समाज-मुषार के लिये आशयन किया। राजा राममाहनाराय योरोपीयकरण नहीं नवजागृति और पुनरुत्थान चाहते थे, जिसके लिये उन्होंने अंग्रेजी भाषा के माध्यम से योरोपीय शिक्षा की मांग की। राजा राममाहनाराय के साथ-साथ, इसाई मिशनरी, जिनमें डफ और बरी मुख्य हैं, भी अंग्रेजी भाषा के माध्यम से योरोपीय शिक्षा की मांग कर रहे थे। किन्तु, उनके उद्देश्य भिन्न थे। डफ के गन्तव्यों में, जिस जिन दंगा में पाश्चात्य शिक्षा प्रकृति करगी, उस-उस दंगा में हिन्दुत्व के अंग टूटते जायेंगे। और अन्त में जाकर ऐसा हागा कि हिन्दुत्व का कोई भी अंग साबित नहीं रहेगा¹। मिशनरियों के दृष्टिकोण में, इस प्रकार अंग्रेजी भाषा के माध्यम से योरोपीय शिक्षा इसाइयत के लिये मांग प्रकृति करने का एक माध्यम थी।

सरकार द्वारा अंग्रेजी शिक्षा को सगठित करने की नीति अपनाने के बहुत पहले से ही अंग्रेजी भाषा के माध्यम से योरोपीय शिक्षा देने का प्रयास चलन लगे थे। इन प्रयोगों के पीछे भारत में योरोपीय शिक्षा के समर्थक अल्प प्रयासका, मध्यवर्गीय हिन्दुओं और इसाई मिशनरियों के प्रयास थे। इसाई मिशनरी इसाई विद्यालयों में इसाई धर्मविद्या की शिक्षा में अंग्रेजी भाषा और योरोपीय शिक्षा प्रकृति का प्रयोग करते थे। बम्बई के तत्कालीन गवर्नर माउण्ट स्ट्यूवर्ट एन्विस्टान ने भी अंग्रेजी भाषा के माध्यम से योरोपीय शिक्षा देने के प्रयास का प्रारम्भ किया और इस निष्कर्ष पर पहुँच कि भारत में जिस बग के पास पठन पाठन का समय है,

उसका यदि अंग्रेजी के माध्यम से योरोपीय शिक्षा दी जाय तो भारत में ज्ञान का प्रसार दस गुना बढ़ सकता है। राजा राममोहनराय ने डफ और अय लोगों की सहायता से कल्कत्ता में हिंदू कालेज (1816) की स्थापना की जो प्रागे चलकर प्रेसीडेंसी कालेज कहलाया।

इस विकास क्रम का परिणाम हुआ सन अठारह सौ पत्तीस का वह ऐतिहासिक निणय जिसके आधार पर अंग्रेजी सरकार ने यह तय किया कि भारत के सभी वर्गों में योरोपीय ज्ञान का प्रसार करना भारतीय शिक्षा का उद्देश्य होगा और इस उद्देश्य का पूरा करने के लिये उच्चस्तरीय शिक्षा का पाठ्यक्रम योरोपीय और माध्यम अंग्रेजी भाषा होगी और जन साधारण की शिक्षा का माध्यम होगी स्थानीय भाषाएँ। इसप्रकार, अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली के दो स्तर विकसित हुए— एक उच्चस्तरीय (विश्वविद्यालयी) का पूणतया अंग्रेजी योरोपीय या और दूसरा प्राथमिक-माध्यमिक जो अंगत अंग्रेजी योरोपीय और अशत योरोपीय भारतीय या। केम्ब्रिज स्कूल पद्धति के माध्यम से प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा को अंग्रेजी योरोपीय ढंग पर संगठित किया गया और ग्राम पाठशालाओं तथा वाक्पूलर माध्यमिक पाठशालाओं द्वारा योरोपीय और भारतीय विषय वस्तु के पठन पाठन में स्थानीय भाषाओं का प्रयोग गुरू किया गया। हाई स्कूलों और इंटरमिडियट कालेजों में स्थानीय भाषाओं का भी स्थान दिया गया और अंग्रेजी का भी यद्यपि यहाँ अंग्रेजी भाषा और योरोपीय पाठ्यक्रम की ही प्रधानता रही। उच्चस्तरीय शिक्षा उस वग विशेष के लिए थी जिसके पास उस शिक्षा को प्राप्त करने का साधन थे। यह योजना इस मायता पर आधारित थी कि उच्च वग को मिला हुआ योरोपीय ज्ञान, क्षत्रीय भाषाओं के माध्यम से जनता में प्रसारित होगा।

अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली के विकास में, इसप्रकार, भारतीय शिक्षा प्रणाली की अनेक परम्पराएँ सन्निकृष्ट हो गईं। भारत में उच्च शिक्षा का बोलचाल की भाषा में न देने की परम्परा बन गई थी। संस्कृत, अरबी और फारसी सभी बोलचाल की जन भाषाएँ नहीं रही हैं। उन्हें राज्य भाषा और पाण्डित्य की भाषा के रूप में अपनाने की परम्परा थी। इसी परम्परा में अंग्रेजी राज्य भाषा और पाण्डित्य की भाषा के रूप में आई। इसका परिणाम यह हुआ है कि भारतीय विद्वान और प्रशासनिक जन साधारण से अलग एक विशेष वग रह गए हैं। अंग्रेजी भाषा और योरोपीय विद्या न इसी वग को एक नये विन्यासधारी वग के रूप में जन्म दिया क्योंकि अंग्रेजी बाल में भी उच्च ज्ञान केवल एक वग विशेष तक ही सीमित रहा। मुसलमान शासन भी प्रादेशिक भाषाओं की अवहेलना नहीं कर पाय और अंग्रेज भी ऐसा न कर सके। फलतः एक ओर, अंग्रेजों ने भी अपनी भाषा और योरोपीय पाठ्यक्रम पर जोर दिया और दूसरी ओर प्रादेशिक भाषाओं के माध्यम से विद्या देने पर। परम्परानुसार, अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली में जहाँ

राष्ट्रीय उद्देश्य का अभाव था, वहाँ उच्चमन्त्रीय शिक्षा और प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा में असामञ्जस्य था। राष्ट्रीय आन्दोलन और सांस्कृतिक पुनरुत्थान की प्रक्रिया में, जब सम्प्रदायी (जन्म आधारित समाज) और जातियाँ व अंग प्रलय स्कूल खुलें तो यह असामञ्जस्य और राष्ट्रीय निरहस्यता और बढ़े। भारतीय शिक्षा प्रणाली में न तो पहले से एकस्यता थी और न वह अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली में ही आद। लाखों स्वराज न इस बात पर जोर दिया था कि भारत में शिक्षा के लिये धन की कमी है। यह कमी पहले भी महसूस की जाती थी। अंग्रेजों के पहले के शासकों ने शिक्षा का प्रासाहन अवश्य किया था किन्तु एक जन-आवश्यकता के रूप में नहीं। अधिकतर शिक्षा दान में चलती थी। शिक्षा का उत्तरदायित्व नहीं था। अंग्रेजों ने भी इसी परम्परा का अनुसरण किया। अंग्रेजों राजन शिक्षा के उत्तरदायित्व का अंगत ग्रहण किया जिसका परिणाम निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण अनुदान-पद्धति (Grants in aid system) की नीति का अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली का सबसे बड़ा दाप है।

ब्रिटीश के अनुसार, भारतीय आर्थिक साधनों का आधार पर शिक्षा सम्बन्धी मांगों को स्वयंसेवा का साकार करने का प्रयत्न अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली की एक आधारभूत कमजोरी रही है। किन्तु वास्तविकता कुछ और है। पूँजीवादी साम्राज्यवादियों से प्रेरित अंग्रेजी सरकार ने शिक्षा पर विशेष ध्यान देने का नहीं तक लाभप्रद समझा जहाँ तक प्रासाहन चलाने की समस्या का हल निकालना था। मुगल की परम्परा का अनुसरण करते हुए, अंग्रेजी सरकार ने शिक्षा का उत्तरदायित्व वहीं तक लिया जहाँ तक आवश्यक था। भारत में जसा कि भारतीय शासन की परम्परा थी, राज्य ने व्यापक जन शिक्षा के उत्तरदायित्व का लिया ही नहीं था। परम्परानुसार, राज्य तो केवल शिक्षा का सहायक था और, मांग निर्देशन के लिये, यहाँ-वहाँ आदर्श विद्यालयों का स्थापना करता था। अपनी शिक्षा का प्रवर्धन अपने आप करती आई थी। जसा कि राजा राममाहेश्वराम के प्रयत्नों से स्पष्ट है अंग्रेजी शासनकाल में भी भारतीय जनता ने अपने प्रयत्नों से नई शिक्षा-प्रणाली का संकल्प प्रारम्भ कर दिया था, जिस, आगे चलकर अंग्रेजी सरकार ने अपनाया। भारतीय परम्परा का अनुसरण करते हुए अंग्रेजी सरकार ने भी यहाँ-वहाँ आदर्श विद्यालयों की स्थापना करना शुरू किया—एक आदर्श विद्यालय जो जनता के लिये नमूने बन सके। उपर, सरकारी नौकरियों में प्रवर्धन के लिये जनता में शिक्षा की मांग बढ़ रही थी। इस परिस्थिति के कारण परिणाम निकले—एक ओर अंग्रेजी सरकार ने महत्त्वपूर्ण अनुदान प्रणाली का आश्रय लेकर, शिक्षण संस्थाओं का आर्थिक भार उठाया शुरू किया और, इस प्रकार, सरकारी शिक्षण संस्थाओं के

अलावा प्राइवेट विद्यालयों के संगठन को प्रोत्साहित किया और दूसरी ओर शिक्षा के सरलक तथा अविभाजन के रूप में शिक्षा संगठन को नियमित करने के लिए शिक्षा विभाग और उसकी नौकरशाही को संगठित किया जिसके फलस्वरूप शिक्षा पर अप्रत्यक्ष प्रशासन की जो परम्परा विकसित हुई वही वर्तमान शिक्षा पद्धति का सबसे बड़ा अभिन्नान बन गई।

अंग्रेजी राज्य काल में, एक ओर, यारानीय आदेश के अनुसार शिक्षा को अधिकाधिक राज्य के नियंत्रण और नियमन में लाने का प्रयत्न किया गया और, दूसरी ओर भारत में अपनाये गये अप्रत्यक्ष प्रशासन की परम्परा में उस सरकार के प्रत्यक्ष नियंत्रण से दूर भी रखा गया। यह इसी परम्परा का परिणाम है कि आज तक उसी दृष्टिकोण से शिक्षा को प्रादेशिक सरकारों के उत्तरदायित्व में रखा गया किन्तु यहाँ जहाँ जहाँ दिल्ली, अलीगढ़ और बनारस के विश्वविद्यालयों के संगठन में हुआ केन्द्रीय सरकार ने उच्च शिक्षा के संगठन को सहायता भी दी। आज भारतीय शिक्षा इसी अप्रत्यक्ष प्रशासन चक्र में है। प्राथमिक शिक्षा संस्थाओं को स्थापित और संगठित करने का उत्तरदायित्व अंतर्गम जिला परिषदों और म्यूनिसिपलिटियों पर है किन्तु उस स्तर के पाठ्यक्रम का उत्तरदायित्व सरकार के शिक्षा विभाग पर है। प्राइमरी पाठशालाओं के जायिक पक्ष और अध्यापक की नौकरी का नियंत्रण होना है जिला अंतर्गम परिषदों और म्यूनिसिपलिटियों द्वारा और उनकी योग्यता तथा अध्यापन काम की देखभाल की जाता है शिक्षा विभाग द्वारा। प्रादेशिक भाषाओं में चलन वाले अध सरकारी प्राइमरी पाठशालाओं के माध्य-साध का वेदस के रूप में इंग्लैण्ड की कमिन्स पद्धति की प्राइमरी शिक्षा को भी रखा गया और साथ ही साथ मौलवियों के इस्लामिया प्राइमरी स्कूलों और पण्डितों की महत्त्व पाठशालाओं भी चलती रही जिनका सरकार का उत्तम ही संरक्षण प्राप्त था जितना कि अब पाठशालाओं को।

यही हाल माध्यमिक स्तर के विद्यालयों का हुआ। एक ओर, सरकार ने अपने विद्यालयों में किन्तु उनकी संख्या पर्याप्त नहीं थी। अतः, जनता को अपने विद्यालयों संगठित करने की अनुमति दे दी गया। सामाजिक नवजागृति के साथ-साथ, उदात्त राष्ट्रीय आन्दोलन से जन चेतना बढ़ी तथा तथा अंग्रेजी शिक्षा की तीव्र आलोचना की गयी और गैर सरकारी विद्यालयों का संगठित करने का प्रयास किया गया। भारत की सामाजिक नवजागृति में एक साथ कई धाराएँ प्रवाहित हो रही थी—एक ओर धायममाजी धारा थी दूसरी ओर सनातनी हिन्दू धारा, तीसरी ओर इस्लामी धारा और चौथी ओर धर्म निरपेक्ष धारा। उधर जहाँ कि पहले कहा जा चुका है अंग्रेजी राज्य के प्रधान ने अंग्रेज भारतीय जाति संगठनों का प्रेरण मिली और तात्तिल चेतना जाग्रत हुई। इस परिणाम यह हुआ कि शासनेतर विद्यालयों की भरमार हो गयी। अंग्रेजी सरकार पहले ही से इंग्लैण्ड का

शामनतर विद्यालय संगठित करने की अनुमति दे चुकी थी। अतः, जनता की हम
 भाग का रास्ता बंठित था। शासनतर विद्यालयों में एकरूपता लाने के लिये, सर-
 कार ने विश्वविद्यालयों और माध्यमिक शिक्षा परिषदों द्वारा पाठ्यक्रम में तथा
 परीक्षा प्रणाली में एकरूपता लाने का तथा सरकारी और गैर-सरकारी विद्यालयों के
 लिये समान वनतम पाठ्यक्रम रखने का अग्रणी सरकार ने प्रयास किया। किन्तु,
 विभिन्न जातियों, सम्प्रदायों और धर्म-संगठनों के तत्वावधान में चलने वाले विद्या-
 लयों में यह वनतम पाठ्यक्रम धर्मभावणी और सम्प्रदायवादी विचारधाराओं के साथ
 मिला दिया गया। अतः, एक ओर सरकारी शिक्षा धर्मनिरपेक्ष हुयी तो गैर-सरकारी
 शिक्षा सम्प्रदायवादी। अतः ही पतीस के निर्णयानुसार, यह निर्धारित किया गया
 था कि प्रादेशिक भाषाओं में जनशिक्षा दी जायगी और वह राष्ट्रीय शिक्षा होगी।
 किन्तु वास्तव में राष्ट्रीय शिक्षा का वास्तविक रूप न निकल सका और अग्रणी सरकार
 की शिक्षा प्रणाली में उसी प्रकार जातीय और धार्मिक साम्प्रदायिकता घुम गयी जैसी
 कि वह पहले से चली जा रही थी।

विश्वविद्यालयों शिक्षा का भी यही हाल हुआ। वसन्तता, मद्रास और बम्बई
 के जिन विश्वविद्यालयों की सरकार ने सन अठारह सौ चौवन में स्थापना की थी
 वे सघानाय (Federal) विश्वविद्यालयों की संरचना विश्वविद्यालय के प्रतिरूप
 (Pattern) पर आधारित थे। बाद में अधिकतर विश्वविद्यालयों को इसी प्रतिरूप
 पर संगठित हुआ। ये विश्वविद्यालयों केवल परीक्षण-नियमों की जिनका उच्च शिक्षा
 में वही तक सम्बन्ध था और रहा है जहाँ तक पाठ्यक्रम के निर्धारण और परीक्षा
 स्तर दिनों दिन का सम्बन्ध है। इन विश्वविद्यालयों के अलग-अलग जिन कालों में
 उच्च शिक्षा दी जाती रही है उनका प्रबंध तथा उनमें काम करने वाले अध्यापकों
 की सेवा परिस्थिति पर इन विश्वविद्यालयों का अत्यन्त नियन्त्रण रहा है। उच्च शिक्षा
 देने वाले कालों में सरकारी अनुदान पर निर्भर रहते हैं किन्तु उनका प्रबंध पर सरकार
 का अत्यन्त नियन्त्रण रहा है। ये कालों को उमा प्रकार जातीय और साम्प्रदायिक
 रूप हैं जिस प्रकार माध्यमिक शिक्षा देने वाले कालों। इन कालों में दी जाने
 वाली शिक्षा के मापदण्ड पर विश्वविद्यालयों का नियन्त्रण केवल पाठ्यक्रम और
 परीक्षा प्रणाली के ही माध्यम में रहा है। इनके माध्यम-मात्र, कुछ निवाम विश्वविद्यालय
 (Residential Universities) भी गाने गये जिनका शिक्षा-स्तर निश्चय ही अत्यन्त उच्च
 अच्छा रहा है। ऐसी परिस्थिति में सघानाय विश्वविद्यालयों के अलग-अलग उच्च शिक्षा देने
 वाले कालों का स्तर निम्न समाना जान ल्या और उच्च स्तरीय शिक्षा के पश्चाल
 (Back Waters) मात्र रह गये और आज भी है। उधर, बनारस और अलीगढ़ के
 विश्वविद्यालयों में उच्च शिक्षा के यारतीय स्वरूप में यह ही साम्प्रदायिकता का
 समाना हुआ जस उसका प्रकाश माध्यमिक शिक्षा में हुआ था।

अग्रणी राज्यपाल की शक्तिवादी शही जाने वाला शिक्षा का

मगठन वही तक श्रातिकारी था जहाँ तक योरापीय पाठ्यक्रम के उपरापण का सम्बन्ध है। अंग्रेजी राज में विकसित होने वाले शिक्षा प्रबन्ध का मगठन वही तक श्रातिकारी था नहीं तब उसका पहलू से अधिक मिश्रण वाले सरकारी मरक्षण और आर्थिक सहायता का सम्बन्ध है। अथ मासगो म, अंग्रेजा द्वारा लागू की हुयी शिक्षा पद्धति वस्तुतः भारत की परम्परागत शिक्षा पद्धति की मुख्य-मुख्य विषयताओं का एक बड़ा पैमाने पर स्थापनाप्रमाण थी। अंग्रेज राज के पहलू का शिक्षा एक ओर, धर्मसाधना थी और दूसरी ओर साम्प्रदायिक। अंग्रेजी शिक्षा भी धर्मसाधना और साम्प्रदायिक रही। वास्तव में, अंग्रेजों द्वारा लागू की हुई शिक्षा पद्धति में साम्प्रदायिकता का मगठित सामाजिककरण हा गया। अंग्रेजों के पठन की शिक्षा जनता के प्रयत्न से पहलू चलती थी। अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली भी अधिकतर शासनतर मस्थाओं द्वारा चलती रही। अंग्रेजों के पहलू की सामाजिक व्यवस्था में, राज्य और शिक्षक का प्रत्यक्ष सम्बन्ध न था। अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली में राज्य और आध्यापक का कभी भी प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित नहीं हुआ और न आज है। अंग्रेजी राज्यकाल में, राष्ट्रीयता के प्रभाव में, आध्यापक राज्य तथा समाज का प्रबल जालाचक बना।

जब से मस्जुत भाषा बालबाल की भाषा न रह कर केवल विद्वत्ता और पाण्डित्य का भाषा रह गयी थी तब से मस्जुत द्वारा मिलने वाले शिक्षा का आधार या कटस्थ वर्ग का परम्परा। उस परम्परा के कारण भारत में जन-यापी मौलिकता और रचनात्मकता का अभाव रहा है। इस्लामी परम्परा में शिक्षा का माध्यम बालबाल की भाषा न थी। अतः उसमें भाषा वही दीप था जो मस्जुत द्वारा ही जान वाली हिन्दू शिक्षा में था। भारत में अंग्रेजी भाषा के द्वारा योरापीय शिक्षा की जनप्रियता का एक यह भी कारण हा सकता है कि भारत में बालबाल की भाषा में शिक्षा न देने की परम्परा ही बन गयी थी और आज भी अंग्रेजी से चिपटे रहने के पीछे सम्भवतः उसी परम्परा का प्रभाव है। कुछ भी हो, विद्वत्ता भाषा और विषयवस्तु में शिक्षा न होने के कारण पठन ही पठन पाठन का मूलमार्ग रहा। जिस प्रकार मस्जुत, फारसी और अरबी के माध्यम से मिलने वाली शिक्षा अमौलिकता का जन्म देती रही थी उसी प्रकार अंग्रेजी भाषा के माध्यम में मिलने वाली शिक्षा न भी अमौलिकता का ही प्रतिकरिण। भारत का मारी शिक्षा योरापीय विद्वानों का जूठन मात्र रहा है। जिस प्रकार, अंग्रेजों के पठन शिक्षा के मुख्य विषय वस्तु थे गार्हित्य और दर्शन। उसी प्रकार, अंग्रेजी शिक्षा के मुख्य विषय वस्तु बन अंग्रेजी साहित्य, योरापीय दर्शन और ये विषय शिक्षण के विषय बन जाया है। अंग्रेजी शिक्षा उतनी ही व्यापकधारित रहा जितनी कि पठन की शिक्षा थी। विद्वत्ता प्राप्ति और अंग्रेजी भाषा के पठन-पाठन का जन्म अंग्रेजी शिक्षा के मुख्य उद्देश्य था।

मारी शिक्षा पद्धति पर सरकार के अत्यन्त नियन्त्रण न, शिक्षा और शिक्षक का सामाजिककरण हा दिया किन्तु मारी व्यवस्था का उस सामाजिक परिस्थिति में

दाल दिया जहाँ शिक्षा की सांस्कृतिक प्रभाव प्रवणता समाप्त हो गयी। अथवा द्वारा लागू की दूरी शिक्षा पद्धति में शिक्षा और शिक्षक पर एक प्रकार का तिरस्कार नियंत्रण प्रारम्भ हुआ—एक ओर सरकार का नियंत्रण दूसरी ओर विद्यालय के संस्थापक अथवा संस्थापक सभ का नियंत्रण और तीसरा ओर पाठ्यक्रम और परीक्षा का नियंत्रित करने वाला संगठन का नियंत्रण। सामाजिक विस्तारविद्यालयों का नवायोजन में अनेक वारम्भ-महाविद्यालय (Affiliated Colleges) समका प्रमाण है। इन महाविद्यालयों पर सरकार का वही तब नियंत्रण है जहाँ तब सम्बन्धित अविनियम सरकार को नियंत्रण का अधिकार प्राप्त है। किन्तु जहाँ परम्परा होती है वह नियंत्रण केवल नियमन का नियंत्रण है। सरकार के नियमन नियंत्रण का अन्त विस्तारविद्यालय लागू करता है और अन्त महाविद्यालय का प्रबन्धक। इस परिस्थिति में प्रबन्धक की ही प्रभुता बढ़ जाती है। सरकार द्वारा लागू किए जाने वाले नियमन नियंत्रण की विधियाँ जितनी अस्पष्ट और अप्रत्यक्ष होंगी उतना ही प्रबन्धक की स्वतंत्रता बढ़ जाती है और एसी दशा में कालज सरकार के नियंत्रण में एक प्रकार की जमीनसिमा प्राप्त रह जाती है। अतः सामान्यतर विद्यालय न तो सरकारी रूप और न सार्वजनिक। उनमें दो जान बानी धारापीय शिक्षा न एक ओर समोच्चिता और सामान्य बौद्धिक विकास का प्रात्याहित विद्यालय तो दूसरी ओर जातीय धार्मिक तथा राजनतिक साम्प्रदायिकता की। इसका परिणाम यह हुआ कि शिक्षा में न तो काद धार्मिक उद्देश्य विकसित हुआ और न राष्ट्रीय। शिक्षा केवल परीक्षा की तयारी का माध्यम मात्र रह गयी और अध्यापक एक उद्देश्य विद्वान मध्यजन्त—के मध्यजन्त जिनका एक मात्र उद्देश्य था धारापीय शिक्षा का प्रचार।

सहायक अनुदान-पद्धति के अन्तर्ही शिक्षण परिणाम निकले। सहायक अनुदान-पद्धति (Grants-in-aid System) स्व-सहाय (Self Help) के सिद्धान्त पर आधारित है। सामान्यतर विद्यालयों का संगठित करने वालों का सभी सरकारी अनुदान मिलता है जब कि कुछ धन अपनी ओर से स्वयं संस्क विद्यालय का संगठन करें। विद्यालय के चलने के लिये, एक ओर आमन्त्री जानी है विद्यालयों से मिलने वाले शिक्षा शुल्क में और दूसरी ओर विद्यालयों की संस्था के अनुदान से मिलने वाले सरकारी अनुदान में। इस परिस्थिति में शिक्षा के स्थापनाकरण का अन्त्य हुआ क्योंकि जिन विद्यालय में जितने विद्यार्थी होंगे उतना ही अधिक धन मिलेगा और जिन कारणों में जितने अधिक विद्यार्थी होंगे सरकार में उतना ही अधिक अनुदान मिलेगा। केवल परीक्षा के लिये ही संगठित विस्तारविद्यालयों का शायद ही ही समस्या न शिक्षा का बड़े पैमाने पर प्रचारित करने के लिये प्रेरित किया। सामान्यतर महाविद्यालयों (Degree Colleges) और माध्यमिक कारणों में उद्योगों में परिणाम हुआ कि विद्यालयों का संस्था के अन्त पर ही जोर दिया जाना लगा। अतः एक ओर शिक्षा का स्तर गिरा तथा दूसरी ओर शिक्षा में, शिक्षा के प्रतिरिक्त, अन्त

स्वार्थों का अभ्युदय हुआ। अंग्रेजों द्वारा लागू की हुयी शिक्षा पद्धति व्यापारीकरण का दुष्परिणामो से पीडित रहा है। शिक्षा विद्यादान न हाकर लाभ का माध्यम हो गयी। हाइ आश्चर्य नहीं यदि शासनतंत्र सस्थाओं के प्रवचकों को उसी प्रकार से शिक्षा मस्याओं का मोलन की प्रेरणा मिली जिस प्रकार व्यापारी का दूकान या मिल खाल कर अपना व्यापार बढ़ाने की प्रेरणा मिली है।

अंग्रेजों द्वारा लागू की हुयी शिक्षा पद्धति के मघात से शिक्षण कम और शिक्षक तथा विद्यार्थी के सम्बन्ध में भ्रातृकारी परिवर्तन हुए हैं। शिक्षण-वाय स्वातन्त्र्य सुनाय न होकर एक वेतनभुक्त नौकरगण्टी सवावृत्ति हा गयी। शिक्षण का मुख्य ध्येय हो गया शिक्षार्थी का परी नार्थी बनाना बधाकि शिक्षार्थी की सफलता का मापदण्ड परीक्षा में मिलने वाली सफलता हा गयी। शिक्षा का उमी प्रकार ढाला गया जसी सरकारी नौकरियों की आवश्यकता थी। सरकारी नौकरियों के चुनाव के लिए लिखित परीक्षाओं का मगठन किया गया। अतः शिक्षा में भाषा (उह भी अंग्रेजी भाषा) और साहित्यिकता के प्रवीणता पान पर अग्रद्वय जोर दिया जान लगा। शिक्षा की विषय वस्तु यारोपीय हा गयी जिसका भारतीय जीवन से सम्बन्ध न था। दूरगरी आर शिक्षा का माध्यम विदेशी भाषा थी। इन दानों विकास का परिणाम यह हुआ कि शिक्षालया का वातावरण एक शुष्क एव नीरम विदगी वातावरण से भर गया। ऐसा जग म शिक्षार्थी न शिक्षार्थी रहा और न विद्यार्थी—बह एक तम परीक्षार्थी हा गया। विषय वस्तु और शिक्षा माध्यम के विदगी हान के कारण शिक्षा ग्रहण करने में कठस्थता ही प्रधान हा गयी। शिक्षाविद्या की शिक्षा में वही तक लिचस्पी बढा जग तक परीक्षा पास करने का सम्प्र व था। एमा परिस्थिति के दा परिणाम निकल—एक, शिक्षा के माध्यम में विद्यार्थी का कुछ नीरम तथ्यों के अलावा और कुछ नहीं मित्र और इनकारण उमम रचनात्मक विचारों का प्रवाह न फल सता। रचनात्मक विचारों की कमी के कारण मस्तिष्क की उच्छ ललता का आना स्वाभाविक ही था। दूरगरी शिक्षा माघना तथा प्रयागों में धय (Wastage) की मात्रा बढी। शिक्षा में दिलचस्पी न लेना या कुछ दिन तक शिक्षा ग्रहण करके उग छाड देना या जिस विषय की शिक्षा ग्रहण की जाय, वात् में उम विषय को छोड काई अन्य काय करना ये शिक्षा और शिक्षा माघना के धय और अपव्यय के ही परिणामक हैं। शिक्षार्थी न शिक्षा से कसल उतन ही की मांग की जा परीक्षा और पाठ्य क्रम का पूर्ति के लिए आवश्यक था और शिक्षा में भी शिक्षार्थी का कसल जाना ही देने के लिए विवग हा गया। इस परिस्थिति में एक आर शिक्षा की बौद्धिक रचनात्मकता धीण हुयी ता दूरगरी आर शिक्षाविद्या के लिए शिक्षा बौद्धिक प्रेरणा का प्रताकन गवर केवल एक धनभाग मयक हा गया।

एमी दगा में शिक्षा के स्तर का गिरना स्वाभाविक ही था। शिक्षालयों का पतने के लिए अधिक्त शिक्षा में शिक्षाविद्या की बढ़ती हुयी मस्या आवश्यक

हा गया और सभी स्तरों पर उस बातों दृष्टी सदा का प्रास्तावित करने के लिए विद्यार्थियों के अधिकाधिक पास होने की आवश्यकता पड़ी। गिराव की सततता का भी यही मापदण्ड हा गया कि उसके द्वारा गिराव विद्यार्थी परीक्षा में सफलता प्राप्त करे। परीक्षण मस्थाओं के द्वारा परीक्षा का नियमित तथा संचालित करने के कारण गिराव का न ता गिरावियों पर नियंत्रण रहा और न उनका पास अपने गिरावियों की योग्यता मापने का कोई मापन। शिक्षा और गिराव पद्धति एक प्रकार के द्वन्द्व-वित्तक वातावरण में भर गए जिसमें हम बात पर जार किया गया कि परीक्षा का मापदण्ड जोमत विद्यार्थी की योग्यता पर निर्धारित होना चाहिए और जहाँ तक हो सके अधिकाधिक विद्यार्थी पास हों। ऐसी रीति में शिक्षक भी अधिकाधिक विद्यार्थियों का पास करने के लिए प्रयत्न हुआ। जामत पर आधारित परीक्षा माप दण्ड में पास होने वाले विद्यार्थियों में अधिकाधिक योग्यता प्रोगत थी और जब उन्होंने शिक्षण कार्य समाप्त किया तो जिस प्रोगत के आधार पर उन्होंने पास किया था उनका औसत और भा गिराव। इस प्रकार एक ओर, गिराव की सफलता का मापदण्ड सहायक हा गया और दूसरी ओर, प्रोगत मापदण्ड गिराव ही रहा और आज भी गिराव रहा है। हमका प्रमाण है कि प्रगति प्रणाली में अध्यापन कार्य के द्वारा और अध्यापन-कार्य के मापन पर उतना जार नहीं दिया जाता है जितना कि उस विषय वस्तु को पढ़ाने पर जो प्रगति प्रणाली में वातावरण पर कर पाए हैं। सारा ध्यान प्रगति प्रणाली में वातावरण के सामान्य जान का बचाने की ओर रहता है। यह हम बात का प्रतीक है कि हम यह मानते हैं कि गिराव का स्तर गिराव रहा है—हम उन रास्ते नहीं मकते हैं, यहाँ जहाँ उनका सुधार अवश्य कर सका है।

अमेरिकी राज वातावरण में विभिन्न वेतन और सहायकता की जो उच्चानुच परम्परा विकसित हुई उसमें गिराव कार्य का एक निम्न अप्रतिष्ठित स्तर मिला क्योंकि गिरावकारी नौकरों और व्यापारियों की अपेक्षा, गिराव का जाधिक स्तर निम्न रहा है। जिस प्रकार प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च गिराव में अंतर रहा है। इसी प्रकार इन स्तरों में कार्य करने वाले अध्यापकों की योग्यता और बचन में भी जमीन प्राप्तमान का अंतर रहा है। हमका दो परिणाम निकलता है—एक सरकारी नौकरियों व्यापार और वकालत जैसे, उन वेतन का कारण, जहाँ पनापाजन की अधिक गुणवत्ता थी, वेतन का ध्यान आकर्षित हुआ। अध्यापन कार्य का कारण यही प्रकृत हुआ जो पनापाजन के अर्थ मापने का अपनापन में समझा हुआ। दूसरे, अध्यापन-कार्य के लिए जान बान योग्यता का प्रवृत्ति उन स्तरों में प्रवृत्त का रही है जहाँ अधिक धन प्राप्त हो सके। ऐसी रीति में यह स्वाभाविक ही था कि प्राथमिक तथा माध्यमिक गिराव के लिए योग्य व्यक्तियों में मिल सकें। अमेरिका द्वारा लागू की दृष्टी गिराव-पद्धति में प्राथमिक तथा माध्यमिक गिराव स्वतः वर्धित हुआ गया।

अंग्रेजी राज का माध्यम स पडन वाले यारोपीय सघात के कारण भारतीय ज्ञान में सामूहिक पुनरुत्थन की जा पत्रिया जाई उसका भारतीय सभृति पर यापक प्रभाव पडा और शिक्षा भी उससे मुक्त न रह सकी। शिक्षा का, एक ओर, पुनरुत्थन का माध्यम बनाया गया और, दूसरी ओर, भारतीय शिक्षा का पुनरुत्थन का प्रयास किया गया। भारत में अंग्रेजी राज की स्थापना के बाद से भारतीय शिक्षा का विकास में दो विचार प्रवाह अस्तित्व में आए—एक भारतीय शिक्षा का योरोपीय बनाया जाए और दूसरा भारतीय शिक्षा को भारतीय पद्धति के अनुसार ढालकर, उसमें भारतीय तथा यारोपीय विषय उन्मु का समन्वय किया जाए। दूसरे विचार प्रवाह का ही प्रधानता मिली और वर्तमान भारत में शिक्षा प्रयास इसी शिक्षा में प्रवाहित हो रहे हैं यद्यपि इन समन्वय के स्थायी आधार नहीं तयार हो पाये हैं और सम्भवतः वे तब तक नहीं तयार हों पायें जब तक भारत में शिक्षा का माध्यम भाषा अंग्रेजी है और भारतीय ज्ञान विज्ञान के प्ररणास्रोत अंग्रेजी भाषा भाषा सत्तार में है। किन्तु साथ ही साथ भारत की प्राचीन शिक्षा पद्धति का पुनरुत्थन का प्रयास भी चलता रहा है। शिक्षा पुनरुत्थन का यह प्रयास स्वामी दयानन्द के समय से प्रारम्भ होता है। आयममाज के तत्वाधान में गुरुकुल की स्थापना इसी दिशा में एक प्रयास है। मुसलमानों में इस प्रयास में अन्दीम धर्म में दी जाने वाली धार्मिक शिक्षा का रूप लिया। जिस प्रकार आयममाज के तत्वाधान में चरने वाले एल्गे-वर्क वालेजों में योरोपीय शिक्षा का बर्क हिन्दुत्व के साथ मिश्रित किया गया उसी प्रकार इस्लामिया कालजों और अलाग मुस्लिम यूनीवर्सिटी में यारोपीय शिक्षा का इस्लाम के साथ मिलाया गया।

महात्मागांधी की प्ररणा में चरने वाले स्वामी आशुतोष में उन्मु पुनरुत्थन में एक नयी शिक्षा ग्रहण की। भारत में विज्ञान का विकास के स्थान पर बुद्धि उद्योग को प्राथमिक और शिक्षा का मिश्रित हिन्दुस्तानी को राष्ट्रीय भाषा बनाने का प्रयास इस नए पुनरुत्थन के ही परिचायक है। शिक्षा के क्षेत्र में इस पुनरुत्थन में बुनियादी शिक्षा का रूप ग्रहण किया। बुनियादी शिक्षा का उद्देश्य भारत में उन्मु शिक्षा का स्थापित करना था जिसमें साक्षरता के स्थान पर कला कौशल का भी प्रयोग हो ताकि शिक्षा आर्थिक परिवर्तन में भी उपयोगी हो सके। किन्तु इस प्रयास में एक विविध विभाजितता का जन्म किया। प्रौद्योगिकी के वर्तमान प्रयासों में मशीनीकरण औद्योगिकरण और आर्थिक क्रांति का प्रोत्साहित किया। बुद्धि उद्योगों पर आधुनिक उन्मु विकेंद्रित आर्थिक समाज का अभ्यन्तरी हा पाया जिसमें कौशल की गयी थी। उन्मु बुनियादी शिक्षा भी अन्वयार्थिक हो गयी। बुनियादी शिक्षा का अन्वयार्थिक का वह वाय करना पडा जिसमें उन्मुका आन्वय विश्वास का विकास हो सका। उन्मुका परिणाम यह हुआ कि कला-कौशल का शिक्षा केवल एक मनोरजनमात्र रह गयी।

यह निर्विवाद है कि भारत में अंग्रेजी शिक्षा का आधार मुख्यतः साहित्यिक रहा न कि व्याप्तिक। प्रौद्योगिकी बहुत दृढ़ प्रयाग और याराप में मिश्रित वाली प्रेरणा में भारत में विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी की शिक्षा को मांग बढ़ती रही है। घनाभाव और योग्य शिक्षा का कमी के कारण उच्चका आवांमक संगठन न हो सका। सरकार ने उत्पादक तथा प्रगतिशील क्षेत्रों के रूप में, प्रौद्योगिक शिक्षा का समर्थित करने का प्रयास किया। किन्तु, ऐसी शिक्षा भी व्यावहारिक न हो पायी क्योंकि प्रगतिशील पाठ्यक्रम लागू करने का न तो व माधुन उपलब्ध हो सक जिसके माध्यम में उच्च शिक्षा पायी थी न उनका प्रामाण्य काय ही मिल सका और यदि किसी ने प्रयास भी किया तो उसके उपदान का विघ्नो का प्रबन्ध न हो सका। प्रौद्योगिक शिक्षा का मोटा मन्वन्ध ममाज के आर्थिक-औद्योगिक संगठन में है। जहाँ जहाँ हम मन्वन्ध विषय में स्पष्ट ज्ञान जायेग कि भारत का आर्थिक प्रौद्योगिक संगठन क्या है प्रौद्योगिक शिक्षा की रूप-रत्ता भी स्पष्ट होती जायगी। कुछ भी हो अंग्रेजों राज के सघात में यह त्रिचार धर करता गया है कि यदि भारतीय ममाज का यारापीय औद्योगिक णके में लाना है तो प्रौद्योगिक शिक्षा के एक व्यापक संगठन की आवश्यकता है। साथ ही साथ यह भी स्पष्ट होता जा रहा है कि शिक्षा के गिरत हुए स्तर का प्रधान कारण यह है कि समघातुमान शिक्षा का बहुमुखीकरण (Diversification) न होने के कारण शिक्षात्म्य में उन लोगों की भीड़ बढ़ती जाती है जो उच्च शिक्षा के योग्य नहीं हैं किन्तु उच्चशिक्षा के लिए इमलिए जात है कि वह सरकारी नौकरी में जान का एक साधन है और उच्चशिक्षा में जान के अन्वा उनके पास कोई चारा नहीं है।

भारत में यारापीय शिक्षा का स्वागत भी हुआ और विराध भी। स्वागत के दा प्रेरणा म्यात थे—एक भारत के पश्चिमीकरण की भावना और दूसरे सरकारी नौकरियों में प्रवेश पाने की प्रेरणा। यही कारण है कि अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार गहरा में और उन जातियों में अधिक हुआ जो परंपरा में बुद्धिजीवी थी और जिनके मन्वन्ध भारत की नौकरशाही-परंपरा की राइध में जित जातियाँ घयवा बर्गों के मन्वन्ध के पास में पतित आर्थिक साधन थे, वे इस शिक्षा का भार कम धारण हुए। मन्वन्ध यही कारण है कि अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार नारियों में कम हुआ क्योंकि भारतीय परंपरा में नारियों द्वारा नौकरी करने की परंपरा नहीं रती है। नारा अन्ति-ज्ञान के धारणा याराप की रन है और आधुनिक प्रौद्योगिकी तथा औद्योगिक करण की उत्पत्ति है। नारीगत-जातिवा के मन्वन्ध में भी हम शिक्षा का घनपाठन कम प्रसार हुआ क्योंकि पढ़ा लिखा व्यक्ति जातिगत पणा का अघनान में घममय रहा है। मन्वन्ध यही कारण है कि गावों में मात्र नारा एग उत्पत्तन मिल

जाते हैं जहाँ परिवार के एक ही व्यक्ति की शिक्षा प्राप्त करने की अनुमति मिली है। इन बंधन में काइ अतिशयोक्ति नहीं होगी कि भारत के परम्परागत सामाजिक-आर्थिक मगठन न अंग्रेजी शिक्षा पद्धति को प्रोत्साहित भी किया है और उसके व्यापक प्रसार का विरोध भी। इसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण प्राइमरी शिक्षा की अवस्था है। जहाँ अनिवार्य शिक्षा है वहाँ भी फसल की कटाई और बुवाई के दिनों में पाठशालाओं में बालकों की उपस्थिति कम हो जाती है क्योंकि उन दिनों खेतों में बालकों की उपस्थिति अधिक लाभदायक होती है और जब जनक महीन में ग्रोप्स अनजान रहता है तब बालका का न ता खेती का काम करना पड़ता है और न पढ़ने का ही। निम्न स्तर की जातियाँ के बालक इसीलिए स्कूल नहीं गये कि वे उच्चस्तर की जाति के बालका के साथ बैठने के अयोग्य थे और उनका अभिभावकों का यही विचार रहा है कि यदि खेती, मजदूरी और घर का ही काम करना है तो शिक्षा की क्या आवश्यकता ?

यूरोपीय सघात के भारतीय सामाजिक सांस्कृतिक सन्तुलन में, अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति वरदान भी सिद्ध हुयी। अंग्रेजी भाषा और यूरोपीय शिक्षा के कारण, उच्चशिक्षा प्राप्त लोगो में यदि पश्चिमीकरण बढ़ता तो उनमें भारत के प्रति जागरूकता भी विकसित हुयी। अंग्रेजी शिक्षा के ही माध्यम से भारत में यूरोपीय विचार का सघात बना जिसमें भारतीय सामाजिक विचार में एक तीव्र गत्यात्मकता आयी जिसने भारत की आधुनिक सामाजिक नवजागृति का जन्म दिया। भारत की आधुनिक सामाजिक नवजागृति के नेता अंग्रेजी शिक्षा पद्धति की उपज थे। इसी शिक्षा के माध्यम से भारत में उस ज्ञान विज्ञान का विकास हुआ है जिसकी उत्पत्ति जास का भारत है। इसी शिक्षा के माध्यम से भारत में प्रगत-समाजवाद, पूँजीवादी साम्यवादी सम्यकी विचारों का समावेश हुआ और भारत में एक साथ राष्ट्रियता और अंतर्राष्ट्रियता की लहर दौड़ी। इसी शिक्षा के माध्यम से व्यक्तिवादी विचारों का प्रसार हुआ और सामाजिक मगठन के अज्ञातार्थिक आधारों के प्रति विद्रोही विचार पड़े। इसी शिक्षा के माध्यम से प्राथमिक भाषाओं के विकास के अवसर अस्तित्व में आए और उनके साहित्य पर यूरोप तथा अंग्रेजी साहित्य का प्रभाव पड़ा। इसी शिक्षा के माध्यम से भारत के पुनरुत्थान का और भारत तथा यूरोप के सम्बन्ध का विचार पनपा। किन्तु यह सम्बन्ध किस प्रकार है यही वर्तमान भारत और शिक्षा की समस्या है।

कला, साहित्य और भाषा

मस्वृति के अर्थ पद्या की नीति भारतीय सस्कृति के कला पत्र पर भी याराप का सधान पडा । इस सधान से, किन्ही किन्ही क्षेत्रों में कला का पुनरनयन हुआ और कि ही किन्ही में भारतीय कला का यारापीयकरण और किन्ही में यारापीय टकनाम, प्रतीक और प्रवाह का भारतीयकरण हुआ । संगीत में एक ओर गान्धीय संगीत का पुनरनयन हुआ और दूसरा ओर यारापीय प्रभाव तथा गान्धितिक पुनरनयन के प्रवाह में सुगम संगीत की उत्पत्ति हुयी और उनमें लानतवा का समावेश हुआ । बंगाल में टेमार मयीत एक ठमा ही विकास है । यारापीय संगीत के प्रभाव में मगात के छल्ल बध और काय-नय भी बदल और गिनमा के माध्यम से एक ऐम मगात का जम्पुय हुआ जिसकी आत्मा और कवर गाना ही यारापीय हैं । इसाद मिगनरियो ने बचों में यारापीय आघार पर भारतीय भाषा में ब-दगान (Chorus) का समावेश किया । वातक में, ब-दगान और ब-दवाछ-मगात (Archestra) याराप की ही दन है और आत्र इन दाना का भारतीय मगात और वाद्य में समावेश हुआ है । एक ओर गान्धीय संगीत के व घरान और गलियाँ चलती रही जा मुक्तिम वात में अस्तित्व में आयी थी और दूसरी ओर यारापीय, सास्त्राय और लान-मगीत के समावेश से एक नयी सबगुण, मगात परम्परा का प्रारम्भ हुआ । यारापीय प्रभाव ने गान्धीय और लोक-नतकी का परम्पर मभीय कर दिया है । नय कला का भी यही हाल हुआ है । एक ओर प्रतिष्ठित गान्धीय शलियाँ (कथक कथकी भरत-नाटयम और मल्लिपुरी) चलती रही है ता दूसरी ओर इन शलियाँ का लोक शलियाँ में समावेश किया गया है और उनमें यारापीय शैली का पुन दिया गया है । गिनमा में वन गला के नय इमा नवान परम्परा के प्रतीक हैं ।

चित्रकला पर यारापीय प्रभाव का विन्यण करन टुल बालरुण राव ने लिखा है अथ जो गिगा के पन्स्वरूप चित्रकला की राजपूत और मुगल शलियाँ समाप्त हो गयीं । भारतीय चित्रकला के आधुनिक युग का प्रारम्भ उन समय में होता है जब भारतीय चित्रकारों ने (जगत कि राजा रवि वर्मा ने किया) यारापीय शैली का अगत अनुकरण करना प्रारम्भ किया और (जगत कि आग चतकर अथनी-दनाथ टगार न-लाल बाम, सुर-दनाथ शंगुा, अनितकुमार हलधर और मगूर के ब-द-पिया ने किया) यारापीय प्रभावा का अजता मुगल और राजपूत शलियाँ के साथ सम-वय करना प्रारम्भ किया । कलकता, बम्बल और आ-प के आधुनिक शैली के सम्प्रदाय इमों सम वय प्रवाह का उत्पत्ति हैं । चित्रकारों द्वारा प्रदुक्त विषय जान काल रगों और अर्थ उत्तरण का निर्माण आत्र यारापीय प्रोत्साहिकी का ही सहायता से होना है जिसे कारण चित्रकला की विषय बस्तु का अर्थ ता

उपकरणों का अधिक योरोपीयकरण हुआ है। एक समय था जब चित्रकार स्वयं अपने रंगों का उत्पादन करता था किन्तु आज उनका उत्पादन कारखाना में होता है। यह योरोपीय प्रभाव का ही परिणाम है कि चित्रकला में अमूर्त और अपरम्परावादी प्रतीकात्मकता का अभ्युदय हुआ। चित्रकला के विषय-वस्तु में निम्न उच्च और अमाधारण के स्थान पर, साधारण सामान्य, इहलौकिक और वास्तविक का समावेश हुआ। याराप की सामाजिक नवजागृति (Social Renaissance) और प्रकृतिवादी तथा विज्ञानवादी दार्शनिक प्रभाव से उत्पन्न यथायथादिता का सबसे अधिक प्रभाव, साहित्य के अलावा, चित्रकला पर ही पड़ा। यह यथायथादिता का ही प्रभाव है कि चित्रकार एक ओर नग्न शरीरी चित्रण की ओर उन्मुख हुआ और दूसरी ओर इहलौकिक मानवी जीवा और उसके प्रकारों के चित्रण की ओर। द्वाघुनिक भारतीय चित्रकला में एक ओर उद्देश्यरहित यथायथादिता का प्रभाव है और, दूसरी ओर यथायथा मानवतावाद के अङ्गुठन में लिपटा हुआ है। ये दोनों प्रभाव योरोपीय हैं— प्रथम, उस वास्तव की उत्पत्ति है जिसमें कला का कला के लिए ही माना जाता है और दूसरा उस वाद की जिसमें कला को वह उपाय माध्यम माना जाता है जिसका प्रयोग जीवन के अभिन्न मार्गों का सजन करने के लिए किया जाता है।

नाट्यकला जिसमें अभिनय और रगमच दोनों शामिल हैं भी उसी प्रकार योरोपीय प्रभाव में आय। नाट्यकला के दो पक्ष हैं—एक अभिनय और रगमच का और दूसरा साहित्यिक का। नाट्यकला के साहित्यिक पक्ष का वर्णन प्रायः किया जायेगा। यहाँ इतना जान लेना आवश्यक है कि संगीत की भाँति भारतीय नाट्यकला में भी दो स्तर रहें हैं—एक शास्त्रीय और दूसरा लाकृतत्वोय। रामलीला रासलीला स्वायंजीर नौशकी नाटक परम्परा की श्रेणी में आते हैं। शास्त्रीय नाट्यकला जीर रगमच प्राचीन तथा मध्यकालीन योरोपीय नाटक की भाँति भारत में भी राजमहल के मनोरंजन का साधन रहें हैं। सम्भवतः यही कारण है कि मसूत के नाटक मुवात हैं जीर उनका कथानक या तो राजपुत्रों से सम्बंधित है या निम्न पुत्रों से और पदों के माध्यम में भारतीय नाटकों में भय तथा पारलौकिक शक्तों की प्रधानता रही है तथा हास्य दरवारी हास के कारण बनावटी है। ऐसी परिस्थिति में अभिनय मनाटकीयता का अधिक होना स्वाभाविक है और अभिनय में जितनी ही नाटकीयता हागी यथायथा वह उतना ही दूर हागा। मुस्लिम काल में भारतीय रगमच में कोई खास परिवर्तन नहीं आया क्योंकि इस काल में, जैसा कि लखनऊ के नवाब शाजिदअली शाह के समय में रचित इन्टरमिडियट स्पष्ट है नाट्यकला का प्रवाह मंगोल-नाटिका (Opera) का ओर रहा है।

नाटकी संगीत-नाटिका की एक निम्न लाकप्रिय परम्परा है। याराप के प्रभाव में नाट्यकला और रगमच का पुनरुत्थान हुआ। भारत का अमापारीकृत पारसी रगमच इस पुनरुत्थान की प्रथम अभिव्यक्ति था। पारसी रगमच में भारतीय और

यारापीय प्रभाव का सम्मिलन है यद्यपि इस सम्मिलन में भारतीय प्रभाव और परम्पराय ही प्रधान हैं। भारत की अभिनय और नाट्य कलाओं पर यारापीय प्रभाव तिनमा और कला सम्बन्धी बातों (Issues) की विचारधाराओं के प्रभाव के माध्यम से आया है। जैसा कि कला के अन्य क्षेत्रों में हुआ है अभिनय और नाट्यकला के क्षेत्र में भी यथाय की मांग बढ़ी और व्यस्त जीवन के कारण, मरत और छात्र छात्रे कथानकों की मांग बढ़ा। एकांकी नाटक रमो मांग की उत्पत्ति है। यथायवानी प्रभाव की मांग के कारण, इस बात की आवश्यकता बढ़ी कि कथानक में जितने ही कम दृश्य हों उतना ही अच्छा। नाटक का गमगीत निकालन की मांग यारापीय प्रभाव की ही दन है। पाया द्वारा गाय जान बाग मगीन की जय ता, पात्र बाद्य-संगीत का सन्तानवाहक और भाव संचारों माध्यम के रूप में अधिक प्रधानता मिली। विजली तथा माइक्रोफोन के प्रयोग से रंगमंच तथा अभिनय में प्रपञ्चकृत अधिक यथायता आयी। श्रव्य नाटक का दृश्य प्रधान न होकर ध्वनि प्रधान है, याराप में आइ दृश्य रडिवा प्रौद्योगिकी की दन है।

कला की भाँति साहित्य भी यारापीय परम्पराओं में प्रभावित हुआ है। अंग्रेजी भाषा और अंग्रेजी गिनत इस प्रभाव का मुख्य माध्यम है। काव्य में दा परम्पराओं का अम्पुत्य हुआ—एक, प्रपत्तिमय निराकारों और रत्स्यवादी परम्परा का जा मध्यकालीन सूचीवानी पुट के साथ एक आर, राधास्वामी पथों जन निगु निया पथा में घपने प्राचीन रूप में चलती रही और दूसरी आर, टैगोर, पन प्रगत निराला और मगदवी की कविताओं के रूप में बह एक मधीन रूप सवर प्रवृत्तित हुई जा ममयानुसार प्राचीन की अपथा अधिक सापिस्टीकेट था। टिरी और वगला की आधुनिक रत्स्यवादी काव्य गैली को अंग्रेजी साहित्य का प्रयोग प्रभाव मानना वस्तुतः इतिहास की अवहान्ता करता है। इस प्रकार, इस्लाम के प्रभाव में रत्स्यवादी काव्यानिध्यकितियों में आवृत्ता का पुट निया दा। उभी प्रगत यारापीय प्रभाव न उसमें सोपिस्टीकेशन का एक गहरा पुट निया। तिमकी अभिनयनत हुयी टगोर की गीताओं में। टिरी में एक अन्य गैली उपपन्न हुयी तिम छायावादी की मना दी गई है जा अपनी भागानुभूति में रत्स्यवादी का का निरन्तरान इटलीकिक, ऐटिकिकिनु पादा उदानी रूप है और अपनी अधिधकिक गैला में अपरम्परागत छादों और प्रतीका मानी विचार घोर प्रवृत्ति के काव्या उद्योग प्रयोग में बधी हुयी है। छायावादी का वास्तविक आधार रूमानान (I amantics) है तिम पश्चिम के समाजशास्त्रों यासाजिक व्यवस्था के औद्योगिकरण और गहरीकरण की उत्पत्ति मानते हैं।

1. जोगी निवलाल रीतिवालीन साहित्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

2. राहमर माहन तिरी

यदि प्रायः के मनाविज्ञापन के सिद्धांतों के सन्दर्भ से विचार किया जाय तो यह स्पष्ट ही जाता है कि एक, अतन्त्र, सतत अभिलाषा के रूप में, ह्मानी विचार सभी समाजों में स्वाभाविक रूप में उत्पन्न हुए हैं और उसकी अभिव्यक्ति विभिन्न समाजों की सांस्कृतिक मायताओं और अर्थों के अनुसार होती है¹। भारत की राज-वाच्य परम्परा में ह्मानी विचार थे और यहाँ की रीतिरिवाजों की प्रकृति का आलम्बन उद्दीपन के रूप में प्रयोग करने की परम्परा भी थी। वास्तव में रहस्यवाद और छायावाद के विकास के दो मुख्य आधार रहे हैं एक भारत की मध्य कालीन रहस्यवादी परम्परा और दूसरा वह हतोत्साह मनावृत्ति जो योरोप के प्रभुत्वपूर्ण सघात के कारण भारतीय समाज में उत्पन्न हुयी थी। छायावाद का मानसिक प्रेरणा स्रोत पलायनवाद है न कि अंग्रेजी साहित्य की ह्मानी परम्परा। हाँ यह जरूर है कि योरोप के प्रभाव ने उसे निखरने की परिस्थिति प्रदान की। साम्यवादी विचारधारा के प्रभाव में जिस प्रयोजनवादी साहित्य का सजन हुआ उस प्रगतिवाद की मंजा दी जाती है। प्रगतिवादी रचना को माध्यम बनाया जाता है उस बौद्धिक उत्बोधन का जिसके माध्यम से वर्तमान की मायताय नष्ट होकर एक नये समाज की मायताओं में विवसित होगी। वर्तमान भारतीय काव्य साहित्य के मुख्य आधार रहे हैं राष्ट्रवाद सांस्कृतिक पुनरुत्थान पलायनवाद प्रायःवाद और साम्यवाद। ये आधार योरोप की दन हैं और योरोप के सघात से उत्पन्न हुए हैं।

गद्य और गद्य साहित्य का विकास निश्चय ही अंग्रेजी भाषा का प्रत्यक्ष प्रभाव है। भारत में गद्य की परम्परा वाच्य शैली में निहित थी। अंग्रेजी राज की स्थापना के समय जसा कि टिनकर का मत है हिन्दी गद्य अस्तित्व में जा चुका था किन्तु वह इतना सुगठित और विवसित नहीं था जितना कि वर्तमान गद्य है। गद्य साहित्य में कहानी, उपन्यास और नाट्य का विकास मुख्य है। कहानी और उपन्यास की परम्परा भारत में थी। बाणभट्ट का कालम्बरी भारत का पहला उपन्यास है। सिंहासन बत्तीगी और बतल पच्चासी जसी कहानियाँ भी भारत में थी। किन्तु यहाँ के उपन्यास और कहानी में यथाय जीवन का चित्रण और भाव प्रवणता उस योरोपीय परम्परा से बाग हैं जो यथायवादी परम्परा के रूप में सामाजिक नये जागृति के प्रभाव में योरोप में जन्म ले चुकी थीं। यह योरोपीय प्रभाव का परिणाम कहा जा सकता है कि बनगन भारत के उपन्यास और कहानी वास्तविक जीवन के अधिक समीप जा गये। नाटक सघात और देवताओं के सत्सर से निबल कर इतनीक सामाजिक जीवन के अधिक समीप आ गया। राष्ट्रीयता, पुनरुत्थान और सामाजिक समस्याओं का निराकरण और नये निर्माण कहानी और उपन्यास के मुख्य प्रेरक हों

गये। प्रेमचन्द के उपन्यास राष्ट्रीयता, पुनरुत्थान और सामाजिक नवनिर्माण की भावनाओं में प्रेरित हैं, जबकि द्विजेंद्रलाल राय और प्रसाद के नाटक राष्ट्रीयता की भावना को उद्वेगित करने की प्रेरणा से। उनके नाटकों के कथानक भारतीय इतिहास की उदात्त परिस्थितियों और घटनाओं में सम्बन्धित हैं जिनमें राष्ट्र भङ्ग तथा और राष्ट्रीय भावना तथा ग़म को जगान की आवश्यकता थी। द्विजेंद्रलाल राय तथा प्रसाद के नाटकों में पारंपरिक रंगमंच की परम्पराओं के प्रभाव का भारतीय रंगमंच की परम्पराओं से समन्वित भारतीय रूप देन का मिश्रण है। इस प्रकार योराण में फायद के विद्वानों की बढ़ती हुई लोकप्रियता के प्रभाव के कारण, उपन्यासकारों तथा नाटककारों को अपने पात्रों के मानसतल में बैठ कर उनमें अंतर्निहित मानसिक दृढ़ तथा मधुर का चित्रित करने की प्रेरणा मिली उसी प्रकार भारत में भी ऐसे चित्रण की प्रेरणा मिली। किंतु, जिस प्रकार लड़का के फायद के विद्वानों और उनकी कमियों में परिवर्तित न होने के कारण योराण के साहित्य मञ्च में यथावतता के नाम पर एडिबलता का समावेश हुआ वसा ही भारत में भी हुआ। जिस प्रकार, चित्रण के क्षेत्र में लड़के के लिए बला बाल योराण में सम्प्रदाय का प्रभाव पड़ा, वन ही नाटक उपन्यास और कहानी पर इस सम्प्रदाय का प्रभाव पड़ा किंतु, जैसा कि भारत में आया हुआ मानवतावादी विचारधारा की भाँति थी, नाटक उपन्यास और कहानी प्रयागनवादिता से अछूते न रहे सके। योराण की भाँति भारत में भी लड़का और साहित्य का सत्रन वाग्नी (Jams) के चन्द्रभूषण में समा गया।

यद्यपि काल में सबसे शान्तिकारी प्रभाव पड़ा, उपन्यास उपन्यास के प्रतीका और अभिव्यक्ति की भाँति पर। हिन्दी-काल्य के इतिहास में प्राच्यनिक काल के विकास के पक्ष की अवस्था का रीतिकाल की सत्ता टो जाती है और उन रीतिकाल दर्शन के आशा है कि उस काल में काव्यभिव्यक्ति के माध्यम प्रतीक उपन्यास उपन्यास और विषय-वस्तु परम्परागत थे और जहाँ व नहीं थे वहाँ उनका किमी-न-किमी रीति में बोधन का प्रभाव किया जाता था। उपन्यास, उस काल का सारा भक्ति और श्रु गारिक काल्य राधा और कृष्ण के माध्यम में बर्णित होता था। नादिक-भेद और नादिका के नग गिरी का वन भी इसी माध्यम में जाना था। कर्म, पेट, पुत्र धार चमर ही सोच के मुख्य उपमान थे। सारी काव्यभिव्यक्ति, श्रद्धिगत हानि के कारण पक्षी-भी था और पक्षकारण, उनमें प्रसाद गुण और स्वाभाविकता (Spontaneity) और जन-मुल्लभता का अभाव था। योराण में यथावत का मुख्य प्रभाव यह हुआ कि साहित्य के श्रद्धियों के प्रति एक प्रकार का विवाह सा उठ गया हुआ। जिस प्रकार, त कालीन समाज में श्रद्धि के प्रति विद्रोह की भावना पनपी उस प्रकार काल्य में भी हुआ। छायावादी कविता का जन्म भी विद्रोह में हुआ था और छायावादी कवि न प्रतीक छंद उपन्यासों और उपन्यास का नय गिर न

गदा¹। किंतु, छायावादी कविता स्वयं अपने द्वारा निर्मित रूढियों में प्रसिद्ध हो गयी। दूसरी ओर, यदि परम्परागत काव्य आलम्बनों का प्रयोग भी किया गया तो उह नये सामाजिक सदर्भों में ढाला गया। उदाहरणार्थ, मैथिलीशरण गुप्त ने साकंत प्रबंध-वाच्य में, परम्परागत रामकथा के आधार पर नयी मानवतावादी सामयिक अर्थात् वा प्रतिपादित करने का प्रयास किया। भाव प्रवण छोटे छोटे गीत और अनुकूल छंद लिखने की परम्परा इसी काल में विकसित हुयी है और वह अग्रजी भाषा की रूमानी परम्परा की लिटिकल प्वटरी (Lyrical Poetry) और ब्लैंक वर्स (Blank Verse) से प्रेरित है। काव्याभिव्यक्ति में व्यक्तिवादिता और परम्परा के प्रतिग्रमण की भावना का चरम विकास उस शाली में हुआ है जिसे प्रयोगवाद कहा जाता है।

यह पहल ही लिखा जा चुका है कि अग्रजी राजकाल में शिक्षा का माध्यम अग्रजी भाषा हो गयी थी। अग्रजी भाषा के माध्यम से, यारोपीय ज्ञान विज्ञान का भारत में प्रसार करने का प्रयास किया गया। किंतु साथ ही साथ, ज्ञान विज्ञान को जनमुलभ बनाने की समस्या बना रही। यह अवश्य है कि सस्कृत ग्रंथों का अग्रजी में अनुवाद होने के कारण अग्रजी भाषा भाषी लोगो को भारत का प्राचीन ज्ञान विज्ञान सुलभ हो गया। किंतु फिर भी समस्या बनी ही रही। उधर, इसाई मिशनरियो के सामने बोलचाल की भाषा में इसाई धर्म का प्रसार करने की समस्या थी। अतः, जिस प्रकार मुसलमानों ने (बोलचाल की भाषा को साहित्यिक अभिव्यक्ति के स्तर पर लाने का प्रयास किया था उसी प्रकार इसाई मिशनरियो ने बालचाल की प्रादेशिक भाषाओं को साहित्यिक अभिव्यक्ति का माध्यम बनाने के लिये प्रयत्न प्रारम्भ किये। सन् १८३० में उरुदू में टाममस्टीफेंस नामक मिशनरी ने बाकणी में ईसा-भुराण लिखा। मद्रास मिशन का वेदकी नामक मिशनरी तामिल का पण्डित था। बिशप काटवेल को द्राविड भाषाओं का उद्धारक माना जाता है। मिटासपुर (रंगाल) के मिशनरी हिन्दी, उर्दू और बंगला में इसाई धर्म का प्रचार करते थे। मिशनरियो ने प्रादेशिक भाषाओं के व्याकरण लिखे उनकी लिपियां को निर्धारित किया, टाइप बनाकर प्रसन्न सोले और अखबार निकाल कर गद्य का विकसित किया। इनका परिणाम यह हुआ कि प्रादेशिक भाषाओं का गद्य और व्याकरण अग्रजी के गद्य और व्याकरण से प्रभावित हुआ। भारत में यारोपीय ज्ञान-विज्ञान अग्रजी भाषा के माध्यम से आया और जब उस ज्ञान विज्ञान का प्रादेशिक भाषाओं में लाने का प्रयास किया गया तो अग्रजी भाषा के गद्य और वाच्य विद्या का प्रभाव और भी बढ़ा। दूसरी ओर, अग्रजी भाषा के मुन्शवरों का प्रादेशिक

1. देसिय मुनिग्रान्दन पत्र द्वारा रचित पल्लव की भूमिका और प्रसाद की कविता विनायत उनका अंतिम नामक लण्ड काव्य।

2. दिनकर रामधारीसिंह सस्कृति के चार अध्याय पृष्ठ 410

भाषाओं में भारतीयकरण हुआ है। भारत में अंग्रेजी, विद्वता और पाण्डित्य की भाषा रही है जिसके कारण, भारत में अंग्रेजी की अलवारिक और बाबिल गैली का विकास हुआ। अंग्रेजी की इस शैली के प्रवाह ने भारतीय भाषाओं, विशेषतया हिन्दी, में अलवारिक और बाबिल गैली का जन्म दिया। अंग्रेजी में बाबिल शैली के विकास का एक अन्य कारण भी है। आज हिन्दी का प्रयोग यारोपीय विषय वस्तु का अभिव्यक्त करने के लिये किया जा रहा है—वह विषय वस्तु जो अंग्रेजी में है और जिसके लिये हिन्दी में शब्द नहीं है। ऐसा दंगा में सारा अभिव्यक्ति विधान अंग्रेजी के पतितरप के अनुसार ढलकर गैली का अभिव्यक्त बना देता है। यारोपीय विषय-वस्तु को अंग्रेजी से हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओं में लाकर जनमुक्त बनाने का समस्या यारोपीय मघात से जन्मी है और इसी मघात ने अंग्रेजी बनाम हिन्दी के प्रश्न का जन्म दिया है। यारोपीय मघात के कारण आज यह समस्या उठ खड़ी हुई है कि हिन्दी का कितना अंग्रेजीकरण हो और कितना स्वयंभवाय बानी या बोलिया के समीप लाया जाय तथा कितना संस्कृत के समीप।

६

धर्म हिन्दुत्व और इमाइयत

जिस प्रकार, भारत में मुसलमानों के श्रवण और उनकी राजनतिक सत्ता स्थापित होने के साथ-साथ, हिन्दुत्व पर इस्लाम का मघात पड़ा उसी प्रकार, ज्यो-ज्यो भारत का भूरोप से सम्पर्क बढ़ा और ज्यो-ज्यो भारत पर याराप का राजनतिक-आधिक प्रभुत्व बढ़ता गया, त्यों-त्यों भारत में इमाइयत का प्रकार बिधा गया और, उसका फलस्वरूप, भारत इमाइयत के मघात में धाया। इस्लाम की भांति, इमाइयत भी मिशनरी मजहब का और उन लोगों का मजहब का जिनका भाग्य पर राजनतिक प्रभुत्व था। जिस प्रकार, मुसलमानों के राज्य काल में इस्लाम का राजनतिक सरलण मिला हुआ था, उसी प्रकार पुनर्गालियों और यजज का सामन में इमाइयत का भी राजनतिक सरलण मिला हुआ था। जिस प्रकार मुसलमानों का राजनतिक प्रभुत्व स्थापित होने के पक्ष में भारत का इस्लाम से सम्पर्क स्थापित हो चुका था उसी प्रकार भारत पर यारोपीय राष्ट्रों का राजनतिक प्रभुत्व स्थापित होने के पक्ष में इमाइयत का आगमन हो चुका था। जिस प्रकार, मुसलमानों की राजनतिक सत्ता स्थापित होने के पक्ष में इस्लाम एक शान्तिप्रिय, रहस्यवादी, मजहबी आस्था के रूप में भारत आया था उसी प्रकार इमाइयत भी एक शान्तिप्रिय रहस्यवादी अहिंसक किन्तु मजहबी तथा मठापी आस्था के रूप में भारत आया था। जिस प्रकार मुसलमानों की राजनतिक सत्ता स्थापित होने के बाद, इस्लाम ने एक धार्मिक

परिवर्तक के आन्दोलन का रूप ग्रहण किया उसी प्रकार ज्यों ज्यों भारत में योरोपीय सत्ताओं का राजनिति प्रभुत्व बढ़ा इसाइयत ने भी एक आक्रामक धर्म परिवर्तक आन्दोलन का रूप ग्रहण किया। शासका का धर्म हान के कारण इसाइयत ने भारतीय धर्मों, जिनमें हिन्दुत्व, इस्लाम और आदिवासो धर्म मुख्य हैं, के प्रति जनादर और तिरस्कार का रूप जन्मपात्र किया जिसका परिणाम हुआ वह बौद्धिक कोलाहल जिनमें हिन्दु धर्म के आलोचना पुनर्निवचन पुनर्नयन और मुधार की उम प्रक्रिया का जन्म दिया जिसे आधुनिक भारत की सामाजिक नवजागृति की प्रक्रिया का सगर्भ दी जाती है।

यह कहना कि आधुनिक भारत की सामाजिक नवजागृति का एकमात्र कारण इसाइयत ही है यस्तुत, एक जटिल बहुकारकी प्रभय के प्रति एकांगी दृष्टि-काण भ्रमनाता है। वास्तविकता यह है कि जमाकि इस अध्याय के प्रारम्भ में कहा जा चुका है, योरोपीय सभ्यता का बौद्धिक पक्ष इसाइयत के ही पलन में पला है और इसकारण, जहाँ जहाँ योरोपीय सभ्यता का सघातकारी प्रभाव पडा है इसाइयत का भी प्रभाव पडा है। इसाइयत योरोपीय सभ्यता के प्रसार का एक मुख्य माध्यम और अपद्रुत रती है। इसीकारण ज्यों ज्यों भारत में योरोपीय सभ्यता का सघातकारी प्रभाव बढ़ा इसाइयत का भी सघात बढ़ता गया। भारत के वर्तमान मुधारवादी आन्दोलन एकमात्र इसाइयत के प्रभाव का ही उत्पत्ति नहीं है। इसाइयत ने अपने युक्तियुक्त और मानवतावादी विचारों के कारण मुधार के लिए बौद्धिक प्रेरणा दी और पूजावाद तथा प्रौद्योगिकी के प्रभाव ने इसाइयत द्वारा प्ररित मुधारों के लिए माग प्रस्तुत किये। भारतीय समाज और सस्कृति के जिन उपान्तरणों का वर्णन किया जा चुका है वे भी उनमें सगर्भ परिवर्तनकारी कारक थे जितना कि इसाइयत थी।

इसाइयत के सघात में धर्म में उत्पन्न होने वाले परिवर्तनों की व्याख्या के लिए भारत में इसाइयत के सन्निहित इतिहास और सघात का विश्लेषण आवश्यक है। भारत में इसाइयत के दो रूप रहते हैं—एक ईसा मसीह द्वारा प्रतिपादित और उनके जीवन में निहित श्रिस्तावादी सभ्यतायुक्त पारलौकिक मनुष्य में देवत्व का दर्शन करने वाला भक्ति मार्ग रूप जिस एशियायी इसाइयत कहा जाता है। यह रूप भारत में ईसा की पन्ती गताती में आ गया था और इसके लाने वाले थे सीरिया के इसाई जावरल में आये थे। भारत के लिए यह एक शक्तिप्रिय मजहबी माग था उसी

1. ईसा की पहली गताती में इसाइयत का जो रूप भारत में आया था, उसके प्रणेता सेंट टामस थे और यह सेंट पीटर तथा सेंट पाल द्वारा प्रतिपादित रूपों से भिन्न था। योरोप वालों का भारत में प्रतिपादित इसाई धर्म का पता था। यह है इंग्लैंड वालों की मद्रास के मल्यापूर के सेंट टामस के गिरजाघर का पता था और वहाँ के राजा थलकड ने इस गिरजाघर में उपहार चढ़ाने के लिए अपना दूत भी भेजा था—दिनकर

प्रकार से जैसे हिन्दुओं के धर्म भाग में। यही कारण है भारत में उस स्वीकार किया गया और उसके प्रति आदरपूर्ण महत्त्वपूर्ण दृष्टिकोण अपनाया गया। जैसा कि केरल के सीरियाई ईसाई (Syrian Christian) कह जाते हैं इसाईयों के सामाजिक-सांस्कृतिक संगठन से स्पष्ट है, उनमें इसाइयत का काफी भारतीयकरण हुआ है। इन इसाइयों में पान्थ सम्प्रदाय हैं जो उनी प्रकार के अंतर्विवाही समूह हैं जिनमें हिंदू जातियों¹।

इसाइयत का दूसरा वह रूप है जो आचार धर्मविज्ञान (Ethical-Theological) इटलीक और मिशनरी है और जो यूनानी और रोमन प्रभावों के अंतर्गत पश्चिम में विकसित हुआ है। यही वह रूप है जिस पर रोमन सामाजिक संगठन और साम्राज्यवादिता का प्रभाव रहा है जिसका प्रतीक है पोप अथवा महान धर्माधिकारी। इसी रूप पर उन यूनानी विचारधारा का प्रभाव पड़ा है जो ससार को सम्य असम्य (इसाइयत व सन्त में इसाई और गट एसाइ) की द्विभाजिता में बांटती रही है। यूनानी, योरोपीय सम्प्रदाय सम्बद्ध इसाइयत का यह रूप उसी प्रकार से मात्रामक रहा है जिस प्रकार से योरोपीय सम्प्रदाय। इसाइयत का यही वह रूप है जिसमें इसका प्रतिष्ठा पोपों ने ममार में फलाने का प्रयाग किया है। जिस मध्यकालीन तथा अर्वाचीन योरोप में इसका जन्म हुआ है, वह अपने को ससार में सर्वश्रेष्ठ मानता रहा है क्योंकि ममार पर उसका राजनतिक आधिक प्रभुत्व रहा है और आज भी है। इसाइयत का यह रूप मुख्यत योरोपवादी रहा है और इस कारण सम्प्रदाय संहति के सधप का कारण भी। भारत में इसाइयत का इस रूप का प्रवेश पुनर्जातियों के साथ-साथ होता है। भारत में सोलहवीं सदी में पुनर्जाती मिशन आया। मद्रास में स्थापित और मद्रास मिशन के नाम से विख्यात इटली का मिशन सत्रहवीं सताली में और टेनाक का मिशन अठारवीं सताली में।

पुनर्जाती मिशनरियों के धर्मों और प्रभावा का वजन पहल ही किया जा चुका है। यहां पर यही कहना सम्यष्ट होगा कि पुनर्जाती मिशनरियों ने, एक ओर, केरल के इसाइयों में भारतीय विचारों और प्रभावा का हटाने तथा दूसरी ओर जबर-दस्ती धर्म परिवर्तन करने का प्रयाग किया। इनमें उनका सफलता किसी किन्तु भारत में इसाई धर्म तथा मिशनरी बन्नाम भी हुआ²। जेमुवाइट

1. ओवर, ए० एल० एन्थोपॉलोजी पृष्ठ 433

2. ओ मेले के अनुसार, सन सोलह सौ सोलह में एक अंग्रेज पादरी श्री टरी को यह बताया गया था कि इसाई धर्म ज्ञान का धर्म है, इसाई अर्थधिक गराव पीते हैं, बुरे काम करते हैं दूसरों को सताने हैं और बुरा प्रता कहते हैं। उसी पादरी के अनुसार, भाव-साध करते समय इकानदार अपने दाहक से अक्सर यह कह देता था कि 'मैं इसाई नहीं हूँ जो तुम्हें धोखा देगा'।

पादरियों को अकबर और जहांगीर से सरक्षण मिला और इस कारण उनका प्रचार अधिक प्रभावपूर्ण रहा। जहांगीर के राज्य काठ म जेमुवाइट पादरियों ने आगरे में एक कालज और गिरजाघर की स्थापना की थी। जेमुवाइट मिशनरियों के प्रभाव का एक कारण यह भी है कि उन्होंने धर्म को छोड़ कर, अथवा बातों में भारतीय बाने को अपना लिया था। यह जेमुवाइट पादरियों की ही धारणा थी कि जब तक किसी देश में वही के पादरी इसाइयत का प्रचार नहीं करेंगे तब तक वहाँ इसाइयत का प्रचार नहीं होगा। मद्रास मिशन के लगे न, भारतीय जाति प्रथा के आधार पर, अलग-अलग जातियों के लिए अलग-अलग चर्चों को संगठित करने का प्रयास किया। इन लोगों ने इसाई धर्म में दीया लेने वालों को अपनी अपनी जाति की प्रथाओं को बनाये रखने के लिए प्रोत्साहित किया। इस मिशन के मिशनरियों ने अपने को दो श्रेणियों में बाटा—एक ओर वे मिशनरी थे जो ब्राह्मणों में इसाइयत का प्रचार करते थे, ब्राह्मणों की भाँति जनक धारण करते थे, ब्राह्मणों के अलावा किसी अन्य का अभिवादन नहीं करते थे और न तो किसी को छूत थे और न किसी का छुआ हुआ भाजन करते थे। दूसरी ओर, वे मिशनरी थे जो निम्न जातियों में धर्म प्रचार करते थे उन्हीं की भाँति फटे कपड़े पहनते थे और उन्हीं जसा सादा भोजन करते थे। ब्राह्मणों में धर्म प्रचार करने वाला मिशनरी निम्न जातियों में काम करने वाले मिशनरी से थोड़े ही दूर रहता था जैसे ब्राह्मण निम्न जाति के लोगों से दूर रहता था। डेमाक के मिशन के मिशनरियों ने भी मद्रास मिशन के मिशनरियों की भाँति इसाइयत का परम्परावादी हिन्दू-मामाजिक संरचना के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास किया किन्तु उसमें उन्हीं सफलता नहीं मिली। इसाई सिद्धांतों के विरुद्ध होने के कारण आगे चलकर, पोप ने एसी क्रियाओं को गव किया।

ज्या-यो योरोप का सत्तार पर प्रभुत्व बढा और योरोप में मिशनरीवादा, यूनियन और प्रसारवादी इसाइयत के रूप में विभिन्न राष्ट्रवादी प्रोटेस्टेंट सम्प्रदायों का अन्वेषण हुआ इसाइयत का मिशनरीवादी रूप भी फलता रहा। लॉड विलियम ब्रिक् के समय के भारत में अनेक कथोलिक (Catholic) और प्रोटेस्टेंट चर्च संगठित होकर इसाई धर्म का प्रचार कर रहे थे। यह इसाइयत का आश्रमिक रूप था और भारत में उसके प्रचारार्थक और मिशनरी आश्रमण का मुख्य निगाना था हिन्दुत्व। यह प्रचारार्थक आश्रमण इतना उग्र हा रहा था कि लॉड मिंटो को विवश हाकर हिन्दुत्व के विरुद्ध मिशनरी प्रचार पर रोक लगानी पड़ी। किन्तु मनु अठारह सौ तेरह में इसाइयत का धर्म प्रचार की पुन फूट मिल गयी क्योंकि इस काळ में अंग्रेज गवर्नर और मिशनरियों का यह विस्वासा था कि सध्वनी निगाना और इसाइयत के माध्यम में भारत का साम्प्रतिक योरोपीकरण हागा और उसमें योरोप का राजनतिक, साहित्यिक और आर्थिक प्रभाव भी स्थायी रहेगा।

भारत को प्रकार से इसाइयत के सम्पर्क में आया—एक इसाई मिशनरों (Christian Missions) के सम्पर्क से और दूसरे अंग्रेजी गामन, अंग्रेजी शिक्षा, यारोपीय साहित्य और यारोपीय जीवन मापन के तरीका के बढत हुए प्रभाव से। यारोपीय मन्थना का एक बड़ा अंश इसाई विचार और सिद्धांतों से प्रेरित रहा है और उन्हीं के आधार पर निर्मित भी हुआ है। पहले प्रकार का सम्पर्क प्रत्यक्ष रहा है जबकि दूसरे प्रकार का अप्रत्यक्ष। भारत में इसाई मजहबी आस्था के दा पहनू रहे हैं—एक गतानुगतिक और मिशनरी और दूसरा विवकी, उत्तरवाणी और मानवतावाणी। इसाइयत के गतानुगतिक और मिशनरी रूप न बभी भी हिन्दुत्व का उग उदार दृष्टि में नहीं देखा जिस रूप से हिन्दुत्व ने अंग्रेजों को देखा। यह इसाइयत के गतानुगतिक और मिशनरी रूप का परिणाम था कि सन अठारह सौ तेरह के बाद से, इसाई मिशनरियों ने गली गली में हिन्दू समाज और सभ्यता के व्यावहारिक पक्ष की एक तीव्र, अनुत्तर आलोचना प्रारम्भ कर दी। बहुदेववाद, अवतारवाद, कमवाद और अनेक रीति रिवाजों की इसाईयों ने निरीह आलोचना प्रारम्भ की और यह दिखाने का प्रयत्न किया कि इसाइयत हिन्दुत्व से व्युत्पन्न है और हिन्दुत्व की अपना अधिक सुनिश्चित है। यारोप के सुधारवादी आन्दोलन के प्रभाव में, इसाइयत में उदार मानवतावादी दृष्टिकोण का भी समावेश हुआ था। इस दृष्टिकोण के आधार पर, इसाइयत ने, एक बार, समतावादी विचारों का प्रचार किया और दूसरी ओर, उन

- 1 महेज, ए० आई० ओमेले द्वारा सम्पादित माइन इण्डिया एण्ड दि वेस्ट में
पृष्ठ 305
- 2 श्री लक्ष्मी सागर यार्षेय ने अपनी पुस्तक आधुनिक साहित्य में इसाई मिशनरियों द्वारा की जाने वाली ऐसी आलोचना के कुछ उदाहरण दिये हैं जो इस प्रकार हैं —
“यह (ईसा मसीह) तुम्हारे देवताओं के समान नहीं हैं जो मरमिट हैं। रामचन्द्र लक्ष्मण के गोक में सरयू नदी में डूब मरा। कृष्ण प्रभास-तोष के घन में भील के गर से मारा गया। ब्रह्मा का सिर गिब ने काटा। विष्णु को गिब, जो उसके काले बाल का अवतार था, निगल गया। गिब ने भीमसेन के डर के घारे हिमालय में प्राण सजा। इस रीति में सब देवता जिन पर तुम सृष्टि की आशा रखते हो मरमिट पड़ चुके हैं, परन्तु देवताओं से बुरा नहीं हैं। वरन उनसे बुरी भला हैं। गिब के समान जाति से अनादरित और अप्रतिष्ठित नहीं हुआ और ब्रह्मा की नाई कामानुर होकर अपनी कामा से बुरा नहीं किया और विष्णु की नाई पराई स्त्री को नहीं टगा और उनके अवतारों की भाँति रीति प्रविता भजन और निर्दोषियों का ध्यान और नास्तिक मत और अयम का उपजायक नहीं हुआ और इन्द्र के समान गुह का पानी को मूँट नहीं किया”— विनवर से उद्धृत पृष्ठ 430

धार्मिक मायताओं की आलोचना करना प्रारम्भ कर दी जा बाल विवाह, विधवा-विवाह निषेध, स्त्री अधिकार निषेध और जाति प्रथा की सम्यक समझी जाती थी। यह आलोचना बसी ही थी जैसी कि बुद्ध और मध्यकालीन भारत के सुधारक सत्त कर चुके थे और जा हिन्दुत्व की उस गत्यात्मकता में निहित थी जिसका जन्म बहिक काल में हो चुका था और जिसके आधार पर हिन्दुत्व में पुनर्परीक्षण, पुनर्निबन्धन, सुधार और गत्यात्मक सम्भव की प्रक्रिया का अन्वय हुआ था। राजाराम मोहन राय ने प्रारम्भ होने वाली सामाजिक नवजागृति की प्रकृति हिन्दुत्व में निहित इसी प्रक्रिया का आधुनिक ऊर्ध्वगामी विकास है। किन्तु, इस प्रकार की आलोचना ने पहले प्रतिक्रिया, विधुब्धता, बट्टरवादिता और गतानुगतिकता का उसी प्रकार जन्म दिया जैसा कि इस्लाम के सघात में हुआ था। हिन्दुत्व इसाइयत की ओर आकर्षित हुआ और उसके प्रति धुब्ध भी। राधाकृष्णन ने ठीक ही कहा है कि हिन्दुत्व में धार्मिक राष्ट्रीयता के प्रति जितना असंतोष और विद्रोह है उतना किसी अन्य धर्म के प्रति नहीं। धर्म के रूप में, हिन्दुत्व जीवन को एक स्वस्थ सामञ्जस्य में लाने का प्रयास जबकि इसाइयत और इस्लाम जीवन को अलग अलग पूर्वनिर्धारित, अटल और पारवत सम्भे जाने वाले सत्य में डालने के प्रयास। एक स्वस्थ सामञ्जस्य के लिए हिन्दुत्व ने इसाइयत का अपनाया किन्तु यही तब जहाँ तब सामञ्जस्य सम्भव था²।

इसाइयत का जितना प्रभाव हिन्दुत्व पर पड़ा, उतना किसी अन्य धर्म पर नहीं पड़ा। हिन्दुत्व में इसाइयत की जितनी उदार समालोचना हुई तथा हिन्दुत्व में

- 1 एक बार कलकत्ते के एक मिशनरी सम्मेलन में जब महात्मा गांधी से कहा गया कि ईसा की शिक्षाओं का कोई कितनी ही तत्परता से पालन क्यों न करे किन्तु वह तब तक इसाई नहीं है जब तक वह ईसा के अमरत्य का अनुभव न करे, तो, महात्मा गांधी का उत्तर था, "म नहीं कह सकता कि ईसा से आपका क्या तात्पर्य है। यदि आपका तात्पर्य ऐतिहासिक पुर्य ईसा से है, तो मुझे उसके अस्तित्व का अनुभव नहीं होता है। यदि आपका तात्पर्य एक ऐसी सत्ता से है जो मूकन भाग दान करती है, जिसका अस्तित्व मेरे हाथ, पर और श्वास की अपेक्षा मेरे अधिक समीप है तो, मैं उसका अस्तित्व का अनुभव अनुभव करता हूँ। अगर उसके अस्तित्व का मुझे अभाव न होता तो सम्भवत बहुत पहले ही मेरा इच्छस्थान गगनजल में होता। आप चाहें उसे ईसा कहें या कृष्ण मुझे कोई सरोकार नहीं"। राधाकृष्णन के अनुसार महात्मा गांधी का उत्तर वही उत्तर है जिसकी एक हिन्दू से आशा की जा सकती है (राधाकृष्णन ओ मेने द्वारा सम्पादित माइन इण्डिया एण्ड दि वेस्ट में पृष्ठ 318)।

इसाइयत के सिद्धांतों का प्रथम अथवा अप्रथम रूप से जितना समावेश किया गया, उतना किसी अन्य धर्म में नहीं हुआ। महेठ के अनुसार ईसा की शिक्षाओं का जितना हिन्दूशा न सराहा उतना मुसलमानों ने नहीं सराहा¹। किन्तु, हिन्दुत्व में इसाई राक्षता (Christian Dogmas) को निषेधित करके अपनाया गया। हिन्दुत्व एक सतत रूपांतरण प्रक्रिया रहा है। इसाइयत के प्रभाव ने इसी रूपांतरण प्रक्रिया का प्रात्नाहित किया। पश्चिम के साथ साथ, इसाइयत के मघात के फलस्वरूप, हिन्दुत्व में नारा गि रा पर जार दिया गया, जाति प्रथा के विरुद्ध आंदोलन चला, युक्तियुक्त विचारधारा फली, अस्पृश्य और आश्रितियों की आदरपूर्ण सामाजिक प्रतिष्ठा प्रदान करने के आंदोलन और प्रयाग हुए तथा हिन्दुत्व का उसी प्रकार का सामाजिक मजहबी सम्प्रदाय में साधन का प्रयास किया गया जसा कि इसाइयत में है। इसाइयत के मघात से निराकारी एकेस्वरवाद का एक बार फिर प्रात्नाहन मिला। ब्रह्मसमाज प्राथमिक समाज और आयसमाज उसी प्रकार से निराकार एकेस्वरवादी सम्प्रदाय का रूप में आये जिस प्रकार इसाइयत के सम्प्रदाय है। इन सम्प्रदायों को, मध्यकालीन भारत की परम्परा में, 'धर्म' न कह कर 'समाज' की संज्ञा दी गई जो इसाइयत के मजहबी संगठन का प्रभाव है। आयसमाज मंदिर और ब्रह्मसमाज के प्राथमिक मंदिर हिन्दुत्व के आन्दोलन में प्रोटेस्टेंट धर्म की प्रतिवृत्ति सी लगते हैं। इसाइयत में धर्मनिरपेक्ष और धर्मसापेक्ष में अंतर किया जाता है। इस कारण, इसाइयत के प्रभाव से हिन्दुत्व में भी धर्मनिरपेक्षता तथा धर्मसापेक्षता की समस्या उत्पन्न हुई। इसाइयत और इसाइयत के सम्मिलित मघात ने हिन्दू राष्ट्रवादिता का जन्म लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि हिन्दू समाज धर्मनिरपेक्ष तथा धर्मसापेक्ष राष्ट्रवादिता के प्रवाह में बंट गया। इसाई मिशनरियों ने हिन्दुत्व के दार्शनिक आधारों को विरुद्ध ही आलोचना की है। उनकी आलोचना के मुख्य विषय रहे हैं हिन्दू कथाकार, ब्राह्मणवाद, अन्तारवाद और हिन्दुत्व की बहुमुखापेक्षता। इस आलोचना के फलस्वरूप हिन्दुत्व में कथाकार का सरल बनान पर जार किया गया, ब्राह्मण विरोधी आन्दोलन चला और पुरोहितवाद की आलोचना में जाने लगी। ब्रह्मसमाज और आयसमाज में बन्धों (Pitfalls) को सरल और गतिष्ठ बनान पर जार दिया गया और एक हीमा नक जन्म सफलता भी मिली। आयसमाज के द्वारा पत्रों धार पर कायों बत किया गया कि पौराहित्य काय किसी भी जाति के मनुष्य द्वारा मान्य किया जा सकता है क्योंकि कि उा पौराहित्य काय की विधि आती हो।

राधाकृष्णन ने कहा है कि पश्चिम के प्रभाव से हिन्दुत्व में अतिनव विचार धारा का एक माग प्रदान हुए उक्त मानविक गतिष्ठ का क्षेत्र और भी बड़ा और हिन्दुत्व में सांख्यिक विचारों सुलता बड़ी। राधाकृष्णन से विहीन हान से, हिन्दुत्व

अपनी शक्ति सम्पन्नता और सुरक्षा के लिए, अपने भे निहित सत्य तथा सनातन सामाजिक संरचना पर आधारित होना पड़ा। असाकि इस्लाम के सघात से हुआ था, पश्चिम के सघात से भी, हिन्दुत्व में जाति प्रथा को सुरक्षावादी ऋच के रूप में अपनाया गया। हिन्दुत्व में, प्राचीन क प्रति शकालु दृष्टिकोण विकसित हुआ तो अर्वाचीन क प्रति निवचनात्मक और रागात्मक दृष्टिकोण। इसी कारण, पश्चिम के सघात में, हिन्दुत्व की गत्यात्मकता प्राचीन और अर्वाचीन क समन्वय की गत्यात्मकता है। पश्चिम के सघात के प्रभाव में हिन्दुत्व के आधारभूत तत्वों को मायभौमिक विचार के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया जिसका प्रमाण है गुण कर्म के आधार पर वर्ण व्यवस्था के रूप में, जाति व्यवस्था को सुयुक्तिवृत्त सिद्ध करके, उसे नसारख्यापी स्वाभाविक व्यवस्था के रूप में प्रतिपादित करना।

जसाकि ब्रह्मसमाज आर्यसमाज और प्रायनाममाज के विकास से स्पष्ट है पश्चिम के सघात के प्रभाव में, हिन्दुत्व का एक एस मजहब का रूप देने का प्रयास किया गया जिसका आधार, इसाइयत की भाँति कुछ आचार नियमों के साथ, एक सामाजिक धार्मिक सिद्धांत हो। किंतु ये प्रयास सफल न सके। हिन्दुत्व का सामाजिक धार्मिक सिद्धांत म लागू के साथ-साथ एक आचारी मजहब (Ethical Religion) बनाने की मांग और प्रयास अब भी जारी हैं। हिन्दुत्व किसी एक एस मजहब का रूप ले सकेगा या नहीं, यह कहना कठिन है। हाँ इतना अवश्य है कि किसी एक गाँवत समझे जाने वाले सत्य के आधार पर, एक आचारी मजहब का रूप लेना हिन्दुत्व के स्वभाव के प्रतिकूल है। पर साथ ही साथ, हिन्दुत्व के आदेश और व्यवहार में अंतर रहा है। हिन्दुत्व में एक आर समदर्शी का आदेश रहा है तो, दूसरी आर, जातिगत उच्च-नीच के भेदभाव पर आधारित व्यवहार। जसाकि राधाकृष्णन ने लिखा है हिन्दुत्व राष्ट्र राज्य पर आधारित, एक स्वस्थ नागरिक जीवा यापन का ढाँचे में अरापल रहा है। हिन्दुत्व की यही कमजोरियाँ इस्लाम, इसाइयत और पश्चिमी सभ्यता से मिलने वाली चुनौतियों का आधार रही हैं। हिन्दुत्व की ये कमजोरियाँ अर्वाचीन नहीं प्राचीन हैं। हिन्दुत्व की वृद्धि और विकास में इन्हीं कमजोरियों को समयानुसार दूर करने का प्रयास है। यही कारण है कि इसाइयत और पश्चिम के सघात से, हिन्दुत्व में नवनिर्माण की जिन समस्याओं और प्रतियोगों का जन्म हुआ है, हिन्दुत्व उनसे प्रति सजग हुआ किम्व फलस्वरूप हिन्दुत्व में परिवर्तन के स्थान पर पुनर्जापन का अधिक हुआ है।

इसाइयत के सघात से हिन्दुत्व का इस प्रश्न का सामना करना पड़ा कि आधुनिक हिन्दुत्व का स्वरूप क्या है? न ता हिन्दुत्व के दार्शनिक स्तर समाप्त रहे हैं और न व्यावहारिक स्तर। हिन्दुत्व के सामाजिक अधिकांश आधारों का निरूपित करने का प्रयास भी एकमत नहीं है। दार्शनिक हिन्दुत्व पर आधारित व्यवहार तथा प्रथाओं और आदिवासी प्रथाओं भारतीय समाज की दो सीमाएँ रही हैं और उनका

बीच में चलने वाली उत्तरोत्तर हिंदूकरण की प्रक्रिया के कारण जातियों और गण जातियों के रूप में अनेक समूह हैं जिनमें हिन्दू विद्वानों और प्रयासों का सम्बन्ध हुआ है और हा रहा है जिसके कारण ये सभी एक ऊर्ध्वगामी सामाजिक सांस्कृतिक विकास प्रक्रिया में रहे हैं। हिंदूकरण की यह प्रक्रिया अभी सुगठित नहीं पायी थी कि बुद्धवादी सुधार आन्दोलन ने उस एक द्विभाजक विचार में बाध दिया। इस द्विभाजक विचार का जो सम्बन्ध हो रहा था कि उस इस्लाम नशकवार किया और इस्लाम के धर्मों से हिंदुत्व धर्मों में मिला न पाया था कि इग्राइयत के सम्भावित न उस जन्म लिया। इन सभी सघाता का परिणाम यह हुआ कि यह प्रश्न किया जाने लगा कि हिंदुत्व है क्या? इग्राई मिशनरियां न सर्व हिंदू समाज की निम्नवर्गी सघात उच्चवर्गी हिंदुओं में विभाजित किया और निम्नवर्गी हिंदुओं का एक अलग सामाजिक समूह माना। उसी प्रकार हिंदू-समाज के सीमावर्ती समाज, आश्रित समाज का भी उद्देश्य हिंदू समाज से अलग करने की कोशिश की। अतः इग्राइयत के सघात से हिंदुत्व के सामान्य एकीकरण की समस्या आया। धार्मिक स्तर पर इसी समस्या ने हिंदुत्व का पुनः परिभाषित करने की समस्या का रूप लिया। यह इसी प्रभाव का परिणाम है कि आपसमाज के रूप में हिंदुत्व ने इस्लाम और इग्राइयत के मिशनरीयन का अपनाई की कोशिश की। दूसरी ओर हिंदुत्व क्या है यह एक समाजशास्त्रीय प्रश्न बन गया। इस प्रश्न के उत्तर दो रूपा में दिए जा रहे हैं—एक, धर्मशास्त्रों में निहित हिंदुत्व का निश्चय करके और, दूसरा सामाजिक मानवशास्त्र की परम्परा में हिंदू प्रथाओं का निरीक्षण-आत्मिक विवेचन करके।

इस्लाम की भांति, भारत में इग्राइयत का प्रभाव भी उन्हीं सामाजिक स्तरों और प्रथाओं में हुआ जहाँ हिंदूकरण की प्रक्रिया अपूर्ण रही है। उच्चवर्गी जातियों के सामाजिक स्तरों अथवा निम्नवर्गी जातियों के सामाजिक स्तर में ही इग्राइयत का अधिक प्रभाव हुआ है। जिन प्रदेशों और स्थानों में निम्नवर्गी जातियाँ और आदिवासियों की समस्या अधिक रहा है उन्हीं प्रथाओं और स्थानों में इग्राइयत का अधिकतम प्रभाव हुआ है। सामान्य विचार उहीसा, मध्यप्रदेश जाधर प्रदेश और बरत में

- 1) पहला अध्यायन प्रणाली में किए गए अध्ययनों में प्रमुख है के० एम० कपा-दिया द्वारा रचित हिंदू विनियम सङ्ग्रह, मजिस्ट्रेट एण्ड कमिटी इन इण्डिया, पी० एच० प्र० द्वारा रचित हिंदू सोशल आरगनाइजेशन और हरीशचंद्र वेदालकार द्वारा रचित हिंदू परिवार मामला। दूसरी परम्परा के प्रमुख अध्ययन हैं एम० एन० धानियान द्वारा रचित रिजिजन एण्ड सोसाइटी इन इण्डिया, कल्लिता प्रगाद शिवायों द्वारा रचित सकरह कम्प्लेक्स ऑफ हिंदू गया। इरावती कर्षे में इन दोनों प्रणालियों का सम्बन्ध हुआ है जो उनकी मूलक हिंदू सोसाइटी से स्पष्ट है।

का एक ही भाग है, वहाँ तक ठहर सकता है ? सम्भवतः इसी परम्परा से प्रेरित होकर स्वामी विवेकानन्द ने कहा था कि सगार की धार्मिक एवता, धार्मिक सिद्धांता के आधार पर हा सकती है न कि किसी व्यक्ति विशेष द्वारा किसी विशेष स्थान और काल में निर्दिष्ट जीवन-यापन के नियमों से। हिन्दुत्व में अलौकिक सत्य के अनुभव का माध्यम है विचार और ज्ञान। अतः जहाँ मानव मस्तिष्क ने ज्ञान के आधार पर अलौकिक सत्य के अनुभव का प्रयास किया है वहाँ उस धर्म प्रणाली का महत्व स्वतः समाप्त हो जाता है जिसमें किसी व्यक्ति विशेष के अलौकिक अनुभव की ही अंतिम मान्यता के दूसरों को उसका अनुभव कराने का प्रयास निहित है।

महूड (Mayhew) के अनुसार, हिन्दू मस्तिष्क की परम्परानिष्ठा सहिष्णु दृष्टिकोण जिसमें सिद्धांता (Dogmas) के विरुद्ध सामाजिक प्रसंगिताय निहित है, हिन्दू सिद्धांता की अस्पष्टता और हिन्दू सस्थाओं की स्पष्ट मुनिचितता के कारण, हिन्दू विचार आक्रमण के परे हैं। समयानुसार जो आवश्यक हो उस आत्मसात कर लेने की हिन्दू मस्तिष्क की क्षमता के कारण, वह किसी भी विरोधी अथवा अत्यधिक मुनिचित विचार अथवा सिद्धांत से अपनी रक्षा करने में सफल होता है। हिन्दुत्व की गति किसी एक विचार में केंद्रित नहीं है और न उसमें कोई विचारों की पूर्व-निर्धारित उच्चतम परम्परा है—हिन्दू विचार गत्यात्मक और लचीला है और इस कारण आगत प्रविष्टियों को सहज रूप से हिन्दू विचार मरचना अनुभव करती है। अपनी इसी विशेषता के कारण, हिन्दूत्व ने तो अपने देश के इसाइयत का धरण किया किन्तु इसाइयत भारतीयता का धरण न कर सकी। महूड (Mayhew) के ही अनुसार, अभी तक भारत में अत्यधिक इसाइयत का कोई ऐसा भारतीय निवचन उस प्रकार नहीं कर सका है जिस प्रकार यूनानी, लटिन, पारसी और अथवा जैनों ने इसाइयत का अलग अलग निवचन करके, इसाइयत का प्रभावित किया है। हिन्दू और मस्तिष्क विचार पर भारतीय इसाइयत का प्रभाव बहुत ही कम पड़ा है।

महूड (Mayhew) के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि हिन्दूत्व की कमशरिया की इसाइयत के सघात में उसकी सहनशीलता गिर गई। हिन्दू विचार का बहुमुखीपन यदि एक ओर उसकी आत्मरक्षा का आधार बना तो, दूसरी ओर, उसकी महत्ता का कारण नहीं। जिस जाति प्रथा के आधार पर इसाइयत ने हिन्दूत्व की आत्मरक्षा की उसी जाति प्रथा ने इसाइयत को भी अपने पक्ष में जकड़ लिया। अतः निम्न-जातियों इसाइयत की ओर आसक्त हुए। उच्च जाति के लोग इसाइयत में विमग्न हो गए। हा यह धर्म निम्नजातियों का हिन्दूकरण करके उनमें जाति-मग्नता का स्वरूप प्रकट बना दिया कि इसाइयत उनमें भी प्रवेश न कर पाई¹। इसाइयत की भाँति, इसाइयत का भी

1 आयतमात्र आबोलन के द्वारा उच्चवर्णों हिन्दुओं ने निम्नवर्णों हिन्दुओं में धार्मिक चेतना जगाई और उन्हें हिन्दुत्व के समीप लाए तथा उनमें यह

भारत में बदलना पड़ा और किसी सीमा तक उसके मिशनरीपन का चुनौती भी मिली। पुनर्गामी मिशन के प्रसिद्ध मिशनरी फ्रांसिज जेवियर ने, जिसने पुनर्गाल के राजा का यह सलाह दी थी कि वह भारत में पुनर्गाल के शासक की योग्यता इस आधार पर निर्धारित करे कि किस शासक ने कितने इसाई बनाए हैं, अतः में यह कहा कि इस दंग में तो ईसा की शरण में जान के उपदेश को लोग मृत्यु का शरण में जान का उपदेश मानते हैं। प्रसिद्ध फ्रांसीसी मिशनरी एबे डुवाय ने लिखा है, मैं मन आसू तो बहुत बहाए, किंतु वे नगे पत्थरों पर गिरे हैं। जब लोग इसाई हुए थे, उनमें से दो तिहाई धर्म को छाड़ कर अपने मूलवत्त में वापस चल गये हैं। उच्चवर्णी हिंदुओं पर हमारा कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। हिंदुओं का धर्म बदलना जामान नहीं है। इनके बीच में प्रचलित किसी भी रिवाज को छूते ही सारी जनता विराध में खड़ी हो जाती है¹।

इसाइयत के प्रभाव से हिंदू धर्म बदला तो नहीं, हा उसमें परिवर्तन अवश्य हुए। पश्चिम और इसाइयत के सम्मिलित सघात से ही हिंदुत्व में पहला धार्मिक-सामाजिक और बाद में, सामाजिक धार्मिक नवजागृति की वह प्रक्रिया प्रारम्भ हुई है जो आज भी चल रही है। इस्लाम इसाइयत के प्रभाव और पृष्ठभूमि में उत्पन्न हुआ था और योरोपीय परिस्थितियों में दोनों परस्पर विरोधी भी हो गए थे। अतः, इस्लाम भी इसाइयत से दूर ही रहा। हा पश्चिम के प्रभाव को इस्लाम न रोक सका। जिस प्रकार हिंदुत्व में पश्चिम के प्रभाव ने परम्परा और पश्चिम के समकाल के प्रश्नों को जन्म दिया उसी प्रकार इस्लाम में भी हुआ। इस्लाम में विनाशकारी भारतीय इस्लाम में, अरबीवादी और धर्मनिरपेक्ष भारतीय राष्ट्रवाद की द्विभाजिता पश्चिम के सघात से ही निखरी थी। आदिवासी संस्कृति में इसाइयत का प्रवेश सबसे अधिक हुआ है। इससे आदिवासी संस्कृति में परिवर्तन भी आए हैं और समरयाय भी उठ खड़ी हुयी हैं। इन परिवर्तनों और समस्याओं का वर्णन यथास्थान आगे दिया जायगा।

भारत में इसाइयत केवल धर्मपरिवर्तन का ही माध्यम नहीं रही है। एक ओर इसाइयत भारत के योरोपीयकरण का माध्यम रही है तो, दूसरी ओर भारत के पुरुनयन, पुनर्जागृति (The Discovery) और ऊर्ध्वगामी सांस्कृतिक विकास में भी सहायक रही है। इसाई मिशनरियां ने धर्मप्रचार के साथ साथ समाज-सुधार काय का भी अग्रणनाया। शिक्षा का प्रसार शिक्षा के माध्यम से योरोपीय ज्ञान विज्ञान का प्रसार, अस्पताल के माध्यम से योरोपीय चिकित्सापद्धति का विकास और ग्राम

भावना भर दी कि यदि वे साफ रहें, मांस मंदिरा का सेवन त्याग दें और शिक्षा ग्रहण करें तो वे भी उतने उच्च और माय हो सकते हैं, जितने कि उच्चवर्णी हिंदू हैं।

समाज सेवा इनके मुख्य सेवा काय रहें हैं। आदिमजाति सेवक-सघ और हरीजन-सेवक-सघ की स्थापना मिग्नरी काय के ही आधार पर की गयी थी। इन समाज-सेवा कार्यो के साथ-साथ, मिग्नरिया ने भारत की प्रादेशिक भाषाओं के व्याकरण तैयार किए उनको लिपियो का निर्धारित करने छापखाने के योग्य बनाया और भारत के धर्मग्रन्थों का अनुवाद अंग्रेजी तथा अन्य यूरोपीय भाषाओं में किया। यह इस्लाम के ही बुनोतीमम सघात का प्रभाव था कि हिन्दुत्व की सामाजिक कमियाँ और गकितया निखर कर सतह पर आ गई और हिन्दुत्व में उनका पुनपरीक्षण किया गया। यह पहल ही कहा जा चुका है कि इसाई मिग्नरी अंग्रेजी प्रगामका की अपेक्षा योरोपीय गिना और अंग्रेजी भाषा के अधिक पक्ष में थे और उनका लान में सहायक भी हुए। इस्लाम की अपेक्षा, भारतीय इसाइयत अधिक राष्ट्रवादी रती है कयाकि भारतीय राष्ट्रियता को लेकर इस्लाम में जा द्विभाजिता उठ सडी हुयी थी वट भारतीय इसाइयत में नही आया किंतु फिर भी इसाइयत का लेकर भारत के सामने एक आधारभूत प्रश्न है और वह यह है कि एक धर्मनिरपक्ष राज्य में जहाँ का मुख्य धर्म मिग्नरी धर्म नही है उस मिग्नरी धर्म को क्या और कहीं तक अनुमति दी जाए जो विदगी पक्ष में और मुस्लिम विदक्षियों द्वारा गवाहित होता है ? कवल धर्म प्रचार के लिए धर्म-प्रचार कहा तक जायज है ?

७

राष्ट्रवादिता

राष्ट्रवादिता कवल राष्ट्रनिष्ठा का दगमकिन नहीं है। राष्ट्रवादिता वह राष्ट्रनिष्ठा या दगम्रेम है जिसकी अभिव्यक्ति उग्र अंतर्राष्ट्रीय प्रतिद्धिता में हाती है। राष्ट्रवादिता एक मामुखि जाशामक सामाजिक मानसिक प्रमद है जिसका आधार राष्ट्र और राष्ट्र साम में है। ज्या ज्या राष्ट्र का एकीकृत तथा राष्ट्र राज्य का गणत बनान के उपकरण तथा गकितया अस्तित्व में घाता रही हैं राष्ट्रवादिता का प्रात्माहन मिग्नरा रहा है। मजदबी गम्यतामें (जग बुद्धवा और इस्लाम) मानव गतिहास में राष्ट्र-निमात्रा ऐतिहासिक गकितया रही है। अरब इराक, ईरान और पाकिस्तान के राष्ट्र हैं जिसका निर्माण इस्लामी सयता के प्रभाव के कारण हुआ है। योरोप को यनमान प्रोद्योगिकीय सयता, जिसका विकास और प्रसार पट्टवा गनाली के बाद हाता प्रारम्भ हुआ, इस्लाम से अधिक गकितयाली राष्ट्र निर्माती गकित रही है। राष्ट्रवादिता का इस्लाम ने उनका प्रात्माहित नही किया जिसका कि पागानीय सयता में। रब, तार, टाक रडिया, गिनमा, टैंगविजन और छापागाना जग यन्त्राया और गणतवहन के प्रोद्योगिक उपकरणों में, एक धार, राष्ट्र का गउन निगरा और,

दूसरी आर, राष्ट्र राज्य अधिक संगठित और शक्तिशाली हुआ। योरोपीय सम्यता में जिस धार्मिक व्यवस्था का विकास हुआ उसने राष्ट्रवादिता को प्रोत्साहित किया। योरोपीय धार्मिक व्यवस्था बड़े पैमाने के उत्पादन, लाभ और बित्री पर आधारित है। यही कारण है कि योरोप में, जब वर्तमान सम्यता के प्रभाव के कारण, राष्ट्र राज्य सबल होने लगे तब धार्मिक प्रतिद्वन्द्विता ने राजनतिक प्रतिद्वन्द्विता का रूप ले लिया। राजनतिक धार्मिक प्रतिद्वन्द्विता ने एक ओर योरोपीय साम्राज्यवादिता को जन्म दिया और, दूसरी ओर राष्ट्रवादिता को प्रोत्साहित किया। योरोपीय सम्यता के गभ से उत्पन्न पूजावाद तथा साम्यवाद ने, एक साथ साम्राज्यवादिता तथा राष्ट्रवादिता को प्रोत्साहित किया। योरोपीय साम्राज्यवादिता चाहे वह पूजावादी हो या साम्यवादी, एक ओर, शापणकारी तथा परिजीवी रही है और दूसरी ओर, अनेक राष्ट्रों को संगठित करने वाली तथा राष्ट्रवादिता का जन्म देने वाली। वर्तमान अफ्रीका में जन्म लेने वाले राष्ट्र इसी परिस्थितियों की उत्पत्ति है। पाकिस्तान, लंबा भारत चीन, जापान मलेगिया इण्डोनेगिया, बर्मा और मिस्र जैसे अनेक राष्ट्र योरोपीय सम्यता के सघात के प्रभाव से ही जन्मे हैं।

इसका यह तात्पर्य नहीं कि भारत पहले राष्ट्र नहीं था और न यहाँ राष्ट्रीय भावना पैदा जाती थी। भारत का उम समय एक स्वाभाविक भौगोलिक इकाई का रूप ले चुका था जब आज से लगभग सान करोड़ वर्ष पूर्व टेथीज नामक समुद्र के स्थान पर हिमालय अस्तित्व में आया था और दक्षिणी भारत अफ्रीका तथा आस्ट्रेलिया के महाद्वीपों से अलग हो गया था। जाम द्राविड सभृतियों के समय में भारत विभिन्न जनपदों में बँटा हुआ था। लेकिन 'यो ज्या आर्यों का भारत में प्रसार हुआ, यहाँ का आदिवासी समाज विभूतलित होता गया और 'आति धो सिधुपयता' का शिवाय भी उत्तर होता गया। आय द्राविड सभृतियों के सम वय से उत्पन्न सभृति (हिन्दुत्व) ने भारत की भौगोलिक एकता में साभृतिक एकता का पुट दिया। एक ओर हिन्दूकरण की प्रक्रिया के द्वारा आधारभूत साभृतिक एकता का प्रोत्साहन मिला रहा और दूसरी ओर उत्तरोत्तर बढ़ती टुथी साभृतिक एकता का एक राष्ट्र राज्य में संगठित करने का प्रयास भी चलत रह। आर्यों के उत्तरोत्तर प्रसार और प्रभाव से विभूतलित आदिवासी सभृति की पट्ट भूमि से बुद्धवा का विकास हुआ। बुद्धवाद यि एक ओर, महान पुनरुत्थानवादी आन्दोलन था ता दूसरी ओर वह हिन्दुत्व की भांति भारत के विजातीय समाज में एकता लाने का प्रयास भी था। बुद्धवाद और चन्द्रवर्ती समाज की धारणा का अग्युदय भारत में लगभग साथ साथ होता है। प्रत्येक सम्राट ने विजय और अश्वमेध यन द्वारा सम्पूर्ण भारत पर एक राष्ट्र राज्य का स्थापित करने का प्रयास किया है। चन्द्रगुप्त मौर्य, अशोक चन्द्रगुप्त विशमदित्य, अलाउद्दीन खिलजी अकबर और औरंगजेब जैसे सम्राटों ने सम्पूर्ण भारत का एक राष्ट्र राज्य में बाधने

का प्रयास किया है। यद्यपि वे अपने प्रयासों में सफल न रह सके क्योंकि उस
 काल की परिस्थितियाँ ऐसी नहीं थीं कि सम्पूर्ण भारत पर एक दीर्घकालिक, सबस
 केन्द्रीय सत्ता स्थापित की जा सकती।

असौकर न बुद्धवाद को राज्य धर्म घोषित करके, अपने साम्राज्य का भाव-
 नात्मक एकता प्रदान करने की काशिस अवश्य की लेकिन बौद्ध-शासन सफल में
 यह प्रयास सफल न हो सका। अकबर ने दीन ए इलाही के द्वारा भारत के राज्य-
 राष्ट्र का सुदृढ़ आधार प्रदान करने की कल्पना की। औरंगजेब के राज्यकाल में,
 मराठा अशुभवादी के साथ-साथ, राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत महाराष्ट्र धर्म की
 धारणा अस्तित्व में आई। सारे मुस्लिम काल में एक बार इस्लाम का अरबीवादी
 विचारधारा प्रवाहित हुनी रही और, दूसरी ओर, हिन्दू पुनरुत्थान में आतप्रोत
 राष्ट्रीय विचारधारा। भारत में एक राष्ट्र राज्य का संगठन न ता हिन्दू-काल में
 हुआ और न मुस्लिम-काल में क्योंकि वहाँ भी हिन्दू सम्राट या मुस्लिम गहशाह
 सभी भी सम्पूर्ण भारत पर अधिकार न कर पाया। भारत में जो भी केन्द्रीय सत्ता
 विकसित हुई वह विभिन्न शासक राज्यों को मिटाकर नहीं बरन उनको अपन अधीन
 करके विकसित हुई जिसका परिणाम यह हुआ कि सभी कालों में केन्द्रीय सत्ता के होते
 हुए भी क्षेत्रीय शासक बने रहते थे जो मोका पाते ही स्वतंत्र हो जाते थे। यही कारण
 है कि भारत के विभिन्न सांस्कृतिक समूहों में भाषा, धर्म, विचार, आत्म अर्थात् तथा
 सामाजिक संगठन के आधार पर ही आत्म प्रदान और समन्वय अधिक हुआ है। राष्ट्रीय
 भावना के आधार पर, विभिन्न सांस्कृतिक समूहों का आत्म प्रदान तब तक नहीं के
 बराबर हुआ जब तक कि अंग्रेजों राज और पारंपरिक सम्प्रदाय के संपात के फलस्वरूप
 भारत में राष्ट्र निर्माणकारी तथा राष्ट्रवादिता को जन्म देने वाली ऐतिहासिक परिस्थि-
 तियों उत्पन्न नहीं हुई। अंग्रेजों राज की स्थापना के बाद ही, हिन्दुओं और मुसलमानों
 को राष्ट्रियता के आधार पर संगठित होने की आवश्यकता का अनुभव हुआ जो भारत
 की सामाजिक ऐतिहासिक परिस्थितियों में केवल अद्यत ही पूर्ण हो पाई।

उपरोक्त विवेचन से यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि भारत को
 एक राष्ट्र राज्य का रूप देने तथा भारत में राष्ट्रवादिता के प्रादुर्भाव का एकमात्र
 श्रेय अंग्रेजों तथा अंग्रेजों राज्य का है। वास्तविकता यह है कि भारत में अंग्रेजों
 राज की स्थापना के साथ-साथ, उन अनेक ऐतिहासिक परिस्थितियों तथा घटितियों
 का प्रदूटन हुआ जिससे, एक ऐतिहासिक प्रक्रिया के रूप में, भारत एक राष्ट्र राज्य
 में हुआ और यहाँ एक जन-दोलन तथा जन विचार के रूप में राष्ट्रवादिता का
 विकास हुआ। यह प्रक्रिया अभी भी समाप्त नहीं हुई है और न पूर्ण हो गई है।
 भारत में राष्ट्रवादिता का सम्पूर्ण और विकास ता युग-युग में चल रहा है, एक
 ऐतिहासिक प्रक्रिया है जिसका पूर्ण समाहार होना अभी भी बाकी है। यह प्रक्रिया
 ही सत्तालय से, अब से भारत स्वतंत्र हुआ है, इस प्रक्रिया के एक नए

गत्यात्मकता धारण कर ली है। भारत पर चीन के आक्रमण तथा भारत के प्रति पाकिस्तान की स्पर्धा ने इस प्रक्रिया की महत्ता और गत्यात्मकता को और भी तीव्र कर दिया है। भावनात्मक एकीकरण भारत का आदर्श रहा है और आज भी उसी पर जोर दिया जाता है। अंग्रेजी राज की स्थापना के माध्यम से, भारत तथा योरोपीय सभ्यता में जो सघातिक सम्बन्ध स्थापित हुआ और उससे जो ऐतिहासिक परिस्थितियाँ तथा शक्तियाँ अस्तित्व में आई, उनसे भारत के भावनात्मक एकीकरण के विचार की सम्भावना और भी बलवती होकर, एक सामाजिक शक्ति के रूप में प्रस्फुटित हुई।

एक मानसिक प्रमेय के रूप में, राष्ट्रवादिता एक भार, राष्ट्र चेतना में निहित है और, दूसरी ओर, राष्ट्रीय गव (National Pride) में जिसका एक स्रोत स्वयं राष्ट्र चेतना है और दूसरा अन्तर्राष्ट्रीय स्पर्धा। राष्ट्र एक वह स्वाभाविक सिलमिलेवार तथा सस्पर्शी भौगोलिक क्षेत्र माना गया है जिसके निवासियों में अपने प्रकार के प्रति चेतना (Consciousness of Kind) की भावना पाई जाती है, जिनका एक समान सांस्कृतिक जीवन यापन होता है और जो एक राष्ट्र राज्य में संगठित रहते हैं। नये राष्ट्रों में पाकिस्तान और मलेशिया स्वाभाविक सस्पर्शी भौगोलिक क्षेत्र नहीं हैं जो इस बात का प्रमाण है कि राष्ट्र के निर्माण में सस्पर्शी भौगोलिक क्षेत्र उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि राष्ट्र राज्य राष्ट्र चेतना और समान सांस्कृतिक जीवन-यापन। अमरीका जैसा राष्ट्र जहाँ सांस्कृतिक विजातीयता (Cultural Heterogeneity) पाई जाती है इस तथ्य का प्रमाण है कि राष्ट्र के निर्माण में राष्ट्र राज्य तथा राष्ट्र चेतना का अस्तित्व ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। वर्तमान परिस्थितियों में, राष्ट्र राज्य ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण कारक माना जा सकता है क्योंकि राष्ट्र चेतना को विकसित करने में राष्ट्र राज्य एक महत्वपूर्ण कारक रहा है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है वर्तमान परिस्थितियों में, राष्ट्र राज्य का सबल तथा स्थायी अस्तित्व उन अनेक सदेशवाहक तथा यातायात के उपकरणों पर निर्भर है जो योरोपीय सभ्यता की देन है। अन्तर्राष्ट्रीय स्पर्धा योरोपीय सभ्यता की आर्थिक व्यवस्था की देन है। अन्तर्राष्ट्रीय स्पर्धा की परिस्थितियों में, राष्ट्र चेतना राष्ट्रीय गव का रूप ले लेती है जिस, एक ओर, विभिन्न राष्ट्रों की सांस्कृतिक ऐतिहासिकता से प्रेरणा मिलती रही है और, दूसरी ओर, साम्राज्यवादी परिस्थितियों में साम्राज्यवादिता के प्रति होने वाली प्रति क्रिया और उनसे उत्पन्न होने वाली सामाजिक सांस्कृतिक पुनर्रचना की प्रक्रिया से। भारत के एक राष्ट्र में ढलने तथा भारत में राष्ट्र चेतना और राष्ट्रीय गव के विकास में इन्हीं ऐतिहासिक तथ्यों तथा प्रक्रियाओं का समावेश हुआ है। भारत में राष्ट्रीयता का विकास पूँजीवादी साम्राज्यवादिता की परिस्थितियों में हुआ है जिसके फलस्वरूप, भारत की राष्ट्रवादिता में अन्तर्राष्ट्रीय पूँजीवादी आर्थिक शोषण, साम्राज्य-

वादिता और योरोप की मशीनीकृत सामाजिक आर्थिक व्यवस्था व विरुद्ध प्रतिक्रिया और भारतीय सांस्कृतिक पुनरन्वयन की भावना का समावेश हुआ है।

जिस ऐतिहासिक प्रक्रिया से भारतीय राष्ट्रवादिता का उदभव हुआ है, उसे पानिकर^१ ने महान पुनरन्वयन (The Great Recovery) की प्रक्रिया कहा है। राष्ट्रीय गव का जन्म देने वाली, पुनरन्वयन की यह महान प्रक्रिया धीरे धीरे चलती रही है। सन अठारह सौ अठतीस में सी० ई० टिबलिन ने यह लिखा था— हमारा साहित्य से परिचित होने व कारण, भारतीय नौजवान हमको विदेशी नहीं समझते। वे हमारे महान् पुरुषों की उतने ही उत्साह से चर्चा करते हैं जितने उत्साह से हम लोग करते हैं। हमारे ही ढंग की शिक्षा पाय हुए, उही विषयों में रुचि रखते हुए जिनमें कि हम रखते हैं और उही उदाग्रा का अनुसरण करते हुए जिनका कि हम करते हैं हिंदू नौजवान हिंदू होने की अडेगा उसी प्रकार अधिक अभोज हो गए हैं, जिस प्रकार राम साम्राज्य के प्रभाव से, इटली के निवासी इटलियन कम किन्तु रोमन अधिब हो गए थे। किन्तु, सन् अठारह सौ ब्यासी में जसा कि सर रिचर्ड टेम्पल व एक उद्धारण से स्पष्ट है स्थिति कुछ और ही हो गई थी। टेम्पल के अनुसार वे (भारतीय) किसी मजहबो या धर्म-निस्पेश सिद्धांत का बबल इसीलिये नहीं स्वीकार करते कि वह योरोपीय सभ्यता की देन है। वे योरोपीय तरीकों और योरोप से अलग, जीवन के नये मापदण्डों की खोज में लगे हुए हैं। पश्चिम से प्रभावित होने पर भी उनकी दृष्टि उनकी देशज परम्पराओं की ओर है। शेक्सपियर, मिस्टन, बेनन और साक व अध्ययनों के बावजूद भी, एंगियार्ड नामकी, कवियों, महात्माओं और प्राचीन धर्मग्रन्थों के रचयिताओं के प्रति उनके आदरपूर्ण स्थाव मे कमी नहीं आती।

ज्यो ज्यो भारत पर अंग्रेजी राज और योरोप का सघात बढ़ा, त्यो-त्यो यह विचार जोर पकड़ता गया कि भारत को योरोप की प्रतिवृत्ति नहीं होना है, बल्कि उसे अपनी आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक विरासत में प्रेरणा लेते हुए आगे बढ़ना है। इसी विचारधारा का परिणाम यह हुआ कि भारतीय राष्ट्रवादिता, एक ओर, राष्ट्रीय गव में तथा सांस्कृतिक पुनरन्वयन में परिणत हुई तो, दूसरी ओर, जो कुछ योरोपीय था, उसका विरुद्ध प्रतिक्रिया में। योरोप के प्रजातन्त्रवादी विचारों व आधार पर, भारत ने योरोप की साम्राज्यवादी लिप्सा को चुनौती दी और अपने राष्ट्रीय गव तथा राष्ट्रवादिता में मानवतावादी विचारों तथा अन्तर्राष्ट्रीयता का समावेश किया। इसी तथा इसनामा मजहबों के मिशनरीपन से आक्रान्त होने पर, भारत ने सभी धर्मों की समानता तथा अनेकान्तवादी विचारधारा का अपनाया जिसका प्रमाण भारत में ब्रह्ममात्री विचारधारा का अम्युदय है। जिनका नाम ही साय, जसा

कि आयसमाज के धर्म्युद्यम, विकास और प्रसार से स्पष्ट है, भारत ने इसाई और इस्लामी मजहबों के मिशनरीपन तथा उनको प्रसारवादी बट्टरता को अपनाकर, अपने उस रूप का पुनरुत्थान किया जो इन मजहबों से टक्कर से सक्ता था। सत्याग्रहप्रवास सम्भवतः पहला प्रयत्न है जिसमें अथ मजहबों का क्षण्डन मण्डन करके अथिष धर्म की सर्वोपरिता को स्थापित करने का प्रयास किया गया है। आयसमाज का गृद्धि-आन्दोलन उसी राष्ट्रीय गव से प्रेरित रहा है जो इसाई और इस्लामी मजहबों के आक्रान्त मिशनरीपन के कारण अस्तित्व में आया। योरोपीय व्यवस्था पूजीवादी, साम्य और साम्यवादी थी। भारत ने स्वदेशी आंदोलन को अपनाया और योरोपीय वस्तुओं का बहिष्कार किया तथा पूजीवाद और साम्यवाद का एक साथ विरोध किया¹। गांधीवादी विचारधारा में उस आर्थिक व्यवस्था का निरूपण किया गया जो, एक ओर भारत की प्राचीन ग्रामीण आर्थिक व्यवस्था का पुनरुत्थान थी और, दूसरी ओर, पूजीवादी व्यवस्था का एक उत्तर थी। योरोपीय सम्प्रदाय भौतिकतावादी थी। भारत ने आध्यात्मिकतावादी विचारों को बलुद्द किया। योरोप की सत्तार-विजय भौतिकतावादी थी। भारत ने अपनी राष्ट्रवादिता में आध्यात्मिक सत्तार-विजय का मारा लगाया²। आध्यात्मिकता से सत्तार विजय के विचार का उदभव राजा राममोहन के काल में ही हो चुका था, लेकिन उसका चर्मोत्पन्न स्वामी विवेकानन्द में हुआ। भारतीय विचार से सत्तार विजय की बल्पना को स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय राष्ट्रीय जीवन का एक आधार बनाने का प्रयास किया। इसप्रकार, भारतीय राष्ट्रवादिता यदि एक ओर पुनरुत्थानवादी रही तो, दूसरी ओर, उसमें निहित राष्ट्रीय गव इस भावना से आतप्रोत रहा है कि भारत को योरोप से नहीं बनाने, योरोप को भारत से बहुत कुछ सीखना है।

अंग्रेजी राज्यपाल में भारत का धीरे धीरे राजनतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक एकीकरण और पुनरुत्थान में ऐसी ऐतिहासिक प्रक्रियायें हैं जिनसे राजनतिक भारतीय राष्ट्रवादिता की भावना निर्मित हुई है। भारत को एक एकीकरण राजनतिक सगठन में लाने का विचार मुगलों के पहले से ही चला आ रहा था और मुगल काल में, जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, इस विचार को वास्तविक रूप देने का भरसक प्रयास होता रहा। लेकिन, भारत की राजनतिक एकीता में बाधने का श्रेय अंग्रेजों का ही है। यह श्रेय वस्तुतः अंग्रेजों

1 सम्भवतः, भारत ही एक ऐसा देश है जो साम्यवाद तथा पूजीवाद से एक साथ संधय और सहयोग कर रहा है। भारत में समाजवादी समाज की स्थापना का आदेश इसी प्रक्रिया की उत्पत्ति है। भारत की योजनायें न तो साम्यवादी हैं और न पूजीवादी यद्यपि उनमें पूजीवादी तथा साम्यवादी विचारों और सिद्धांतों का समावेश और समन्वय अवश्य है।

2 देखिये विवेकानन्द के भाषण

का नहीं बरन् मारोपीय प्रौद्योगिकी को है जिसकी सहायता से अंग्रेज भारत को एक राजनतिक सूत्र में बाधने में सफल हुए। सन् अठारह सौ सत्तावन के बाद, जब इंग्लैण्ड की सम्राज्ञी ने भारत के सम्राटत्व को ग्रहण किया तो यह सत्ता और भी दृढतर हुई और उसके बाद में दिल्ली में होने वाले तीन दरबारों में भारत की राजनतिक एजता को एक दृढतर अभिव्यक्ति और प्रोत्साहन मिल। इंग्लैण्ड के एकछत्र सम्राट की प्रजा होने की भावना ने, भारतवासियों में एक राष्ट्र और एक राज्य के विचार का और भी दृढतर किया जा, अंग्रेज चलकर, राजनतिक स्वतन्त्रता संग्राम के जनआन्दोलन के रूप में फूट निकला।

अपनी राजसत्ता को दृढतर बनाने के लिये अंग्रेजों ने जिन प्रौद्योगिक उपकरणों का प्रयोग किया उनसे भारत में अंग्रेजों की राजनतिक सत्ता दृढतर बनकर हुई लेकिन, साथ ही साथ, उनसे भारत की राष्ट्रीय एकता भी बढ़ी। अंग्रेजों द्वारा लागू की हुई प्रशासन प्रणाली, रेल, तार, सड़क, डाक-व्यवस्था और रेडियो में यदि, एक आद, अंग्रेजों की केंद्रीय राजनतिक सत्ता को दृढतर हान में सहायता मिली तो, दूसरी ओर, उनसे भारत की एकता को प्रोत्साहन मिला। यातायात के साधनों से भारतीयों में सम्पर्क बढ़ा और सन्देशरहण के साधनों में विचार विमर्श के लिये अवसर। छापाखाना और अखबार से भारतीयों में वचारिक सम्पर्क बना जिसमें एकता की भावना का बराबर बल मिलता रहा। अंग्रेजों ने भारत का एक राज्य-सूत्र में बाधने के लिये मुगलों की ही परम्परा का अनुसरण किया जिसका प्रमाण है दोगी रियासतों जिनका अंग्रेजों ने मुगलों की भाँति कायम रखा। अंग्रेजों कायम काल में, भारत का लगभग एक तिहाई भाग दोगी रियासतों और नरेशों के अधिकांश में रहा है। जिस प्रकार मुगलों के अधीनस्थ राजे मुगल सम्राट की अधीनता में राज्य करते थे उसी प्रकार अंग्रेजों कायम काल में दोगी नरेश अंग्रेजों की अधीनता में राज्य करते रहे और अंग्रेज सम्राट उनका उसी प्रकार पदों से मुनामित करता तथा छत्रछाया प्रदान करता रहा जिस प्रकार मुगल सम्राट् करता था। लेकिन मुगलों और अंग्रेजों की राजनतिक परम्पराओं में एक अन्तर था। अंग्रेजों कायम काल में यातायात, रेल, तार, और मुद्रा प्रणाली की व्यवस्था केंद्रीय सत्ता के हाथ में थी जिससे दोगी नरेशों का स्वतन्त्रता केवल अर्थात् प्रशासन की ही स्वतन्त्रता रही। भारत को एक राजनतिक सक्ति में बाध रखने की प्रयत्ना की भावना और अंग्रेजों की सबल सक्ति सक्ति के कारण दोगी नरेशों पर अंग्रेजों का अधिक व्यापक प्रभाव था। दोगी नरेशों के द्वारा दोगी रियासतों में अच्छा प्रशासन होने का उन्तरराष्ट्रिय अंग्रेजों सम्राट तथा उसका सरकार का था। अंग्रेजों सरकार द्वारा कई दोगी नरेशों का गद्दी से उतार देने के कारण जनता पर दोगी नरेशों का अपना, अंग्रेजों सरकार की प्रयत्ना के विचार का प्रभाव रहा।

प्रथम महायुद्ध के बाद, जब राजनतिक स्वतन्त्रता का आन्दोलन अंग्रेजों

भारत और देशी रियासतों में एक साथ फलने लगा, तब अंग्रेज प्रशासकों का अनुभव हुआ कि भारत का एक दृढ़ राजनतिक एकता में बाधना भूल थी। भारत की बढ़ती हुई राजनतिक एकता को रोकने के लिए यह सिद्धांत प्रतिपादित किया गया कि देशी नरेशों का प्रत्यक्ष सम्बन्ध अंग्रेजी सम्राट से है न कि भारत की अंग्रेजी सरकार से। इसी अवस्था में अंग्रेज मानवशास्त्री, एक ओर, अछूतों को हिंदू समाज से अलग एक सामाजिक इकाई सिद्ध करने की ओर प्रयत्नशील हुए और, दूसरी ओर यह सिद्ध करने में कि भारत के आदिवासी हिन्दुओं से भिन्न हैं उनकी एक अलग सत्ता है और उनकी समस्याएँ सारे भारत से अलग विशिष्ट समस्याएँ हैं जिसके लिये आदिवासी प्रयत्नकरण (Tribal Isolation) की नीति को शास्त्रीय तथा सद्भावितक जामा पहनाने का प्रयास किया गया। भारत के बढ़ते हुए एकीकरण को रोकने के लिये ही, सन १९०३ सी पतीम के सविधान में आदिवासियों तथा अछूतों के कल्याण का उत्तरदायित्व सीधे गवर्नर और गवर्नर जनरल के अधिकार में रखा गया। लेकिन यह अधिक (Legal) तथा मानवशास्त्रीय सिद्धांत भारत के उस एकीकरण को न रोक सके जो अंग्रेजी राज की केंद्रीय सत्ता की स्थापना के बाद से, भारत में उत्पन्न हुआ था। अंग्रेजों द्वारा स्थापित केंद्रीय सत्ता का प्रशासकीय, भाषिक और मुद्राई (Fiscal) जाल इतना विस्तृत हो चुका था, और यातायात तथा सदेशबहन के साधनों से भारतीय एकता इतनी बढ़ गई थी, कि प्रयत्न करने पर भी अंग्रेज भारत को एक राष्ट्र में ढलने और उसकी स्वदेशी, स्वतंत्र राष्ट्र राज्य की स्थापना का न रोक सके।

अंग्रेजों द्वारा स्थापित राजनतिक एकता से ही भारत के राजनतिक पुनरुत्थान के आन्दोलन की प्रेरणा मिली। भारत एक राष्ट्र राज्य है इस विचार की व्यावहारिक अभिव्यक्ति सबसे पहले अंग्रेजों द्वारा स्थापित सबल केंद्रीय राजसत्ता तथा राजनतिक एकता के रूप में ही प्रत्यक्ष हुई। इसी राजसत्ता तथा राजनतिक एकता का, एक स्वदेशी प्रजातन्त्रीय व्यवस्था में धीरे धीरे बदल कर भारत में भारतीय राष्ट्रराज्य की स्थापना की मांग और उसकी पूर्ति के लिए आन्दोलन ही भारत के राजनतिक पुनरुत्थान की कहानी है। अंग्रेजों के आगमन के बाद, राष्ट्रवादिता की भावना से प्रेरित जिस स्वतंत्रता आन्दोलन का भारत में जन्म हुआ है उसके दो पहलू हैं—एक अठारह सौ सत्तावन के पहले का और दूसरा, उसके बाद का। अठारह सौ सत्तावन के पहले का आन्दोलन सैनिक आन्दोलन था और अठारह सौ सत्तावन के बाद का सवधानिक सुधारों की मांग का आन्दोलन। भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन में सदैव इस बात का ध्यान रखा गया है कि भारत की केंद्रीय राजनतिक सत्ता छिन भिन न होने पाय। भारत के राजनतिक पुनरुत्थान के पीछे जा राष्ट्रवादिता की भावना थी वह एक भार योराप के राजनतिक तथा राष्ट्रवादी विचारों से प्रेरित थी और, दूसरी ओर अंग्रेजों की दासता से मुक्ति पान की प्रेरणा से।

इस काल के यारोप के राजनतिक विचार प्रजातन्त्रवादी तथा राष्ट्रवादी रह हैं। भारत में भी उही विचारों को अपनाया गया और उही यारोपीय सस्थाओं की माग की गई जिनसे भारत में प्रजातन्त्र की स्थापना हो सक। भारत में यारोपीय, विशेषतया अंग्रेजी ढंग की, राजनतिक सस्थाओं, विधि प्रणाली, राजनतिक दलों का संगठन और सविधान, भारत के राजनतिक एकीकरण से उत्पन्न राष्ट्रवादिता से प्रेरित राजनतिक पुनर्रनयन की प्रक्रिया के परिणाम हैं।

राजनतिक एकीकरण तथा पुनर्रनयन की भांति, अंग्रेजी राज्यकाल में, भारत के आर्थिक एकीकरण तथा पुनर्रनयन से भी राष्ट्रवादिता को प्रोत्साहन मिला है। भारत में ज्यो-ज्यो अंग्रेजी राज और उसकी केन्द्रीय एकीकरण सत्ता का विकास हुआ, भारत इंग्लैंड के पूँजीवादी उद्योग तथा व्यापार का एक बड़ा बाजार बनता गया। मग्नह सी सत्तर से लकर सन अठारह सी आठ के बीच में भारत की प्रोद्योगिकी तथा यहाँ के उद्योग धंधा का ह्रास हुआ। भारत में अंग्रेजी राज की स्थापना होने के साथ-साथ भारत यारोप की पूँजीवादी औद्योगिक व्यवस्था का एक भाग हो गया जिसमें, भारत की औद्योगिक तथा आर्थिक व्यवस्था की आधार, ग्राम प्रणाली का आर्थिक महत्व समाप्त हो गया। भारत की परम्परागत आर्थिक व्यवस्था के दो आधार थे—एक ग्राम और दूसरा, जाति। ग्राम की आर्थिक महत्ता समाप्त होने के बाद जाति-व्यवस्था में निहित अचलित्पुता के कारण, भारत की औद्योगिक व्यवस्था का नई परिस्थितिमा से सन्तुलन न स्थापित हो पाया जिससे एक आग, भारत के उद्योग धंधा का ह्रास हुआ और, दूसरी ओर भारत की निधनता बढ़ी। उपर, यातायात तथा सन्देशहन के साधन से भारत के विभिन्न भागों में व्यापारिक सम्पर्क बढ़ा जिससे, भारत की आर्थिक समस्याओं के प्रति भारत के व्यापारी वर्ग में चेतना तथा विचार विमंग बढ़ा। इसका परिणाम यह हुआ कि भारत की बढ़ती हुई निधनता के प्रति ध्यान आकषित हुआ, उसके कारणों का विश्लेषण किया जाने लगा। दादा भाई नोरोजी पहले व्यक्ति थे जिन्होंने भारत की निधनता के लिए अंग्रेजी की पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था को दायी ठहराया।

आधुनिक भारत के अध-शास्त्रियों की पहली पीढ़ी के लोग ने इसी बात पर जोर दिया कि भारत की गरीबी का प्रधान कारण यह है भारत में औद्योगीकरण का ह्रास तथा भारत से सस्ता कच्चा माल लेकर और उसमें बने हुए उपभोग की वस्तुओं का भारत ही में बेच कर मुनाफा कमाने की अग्रजा की नीति। भारत का औद्योगीकरण इन दशाओं में, एक राष्ट्रीय समस्या बन गई। भारत के अध-शास्त्रियों ने इस बात पर जोर दिया कि भारत के पास यारोपीय ढंग के औद्योगीकरण के आधार उपलब्ध हैं जिनका उपयोग करके भारत के औद्योगिक स्तर को बढ़ाया जा सकता है और निधनता दूर की जा सकती है। लेकिन, यह तब तक

सम्भव नहीं है जब तक भारत में अग्रजों की पूँजीवादी व्यवस्था है और भारत में विदेशी माल आता है। विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार और स्वदेशी आंदोलन, इस दृष्टि में, राष्ट्रीय आंदोलन के मुख्य आधार हो गये जिनमें राष्ट्रवादिता को प्रेरणा और प्रोत्साहन मिले। महात्मा गांधी के नेतृत्व में इस आंदोलन को और भी व्यापकता मिली और वह स्वराज्य आंदोलन का एक अंग बन गया। प्रथम महायुद्ध के बाद जब जापान का योरोपीय ढंग से औद्योगीकरण हुआ तो भारत की आर्थिक राष्ट्रवादिता का और भी प्रेरणा मिली। विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार और स्वदेशी वस्तुओं के ही उपयोग का आंदोलन उस समय प्रस्फुटित हुआ था जब लार्ड कर्जन ने बंगाल के दो हिस्से कर दिये थे। कर्जन ने बंगाल का विभाजन प्रशासन की सुविधा के दृष्टिकोण से किया था लेकिन इससे भारत के राष्ट्रवादी आंदोलन को तीन सम्मिलित धारों में— 'बहिष्कार (Boycott) स्वदेशी' और 'स्वराज्य—फूट निकली। विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार और स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग राष्ट्रीय गव का प्रतीक बन गया जिससे, धीरे धीरे भारत के मशीनीकृत तथा घरेलू उद्योगों का प्रोत्साहन मिला और भारत का आर्थिक पुनरुत्थान प्रारम्भ हुआ।

पूँजीवादी औद्योगिक व्यवस्था के प्रभाव से कृषि का क्षेत्रीय विशेषीकरण (Regional Specialization) बना जिससे अलग-अलग विशेषीकृत क्षेत्रों में विशेषीकृत उद्योगों का विकास होने से भारत के विभिन्न क्षेत्रों में आर्थिक अन्तर्निभरता बढ़ी, जिसे यथायात के साधनों ने आर्थिक एकीकरण का रूप दिया। भारत के शहरी औद्योगिक क्षेत्र इस सन्तुलन की एकता के माध्यम बन गये। भारतीय शहर प्रारम्भ से भारतीय परम्परा के प्रसार के क्षेत्र रहे हैं। लेकिन योरोपीय औद्योगीकरण के सघात से विकसित औद्योगीकृत शहर भारत की आर्थिक एकता का माध्यम बन। नयी औद्योगिक व्यवस्था में गाँव का परम्परागत आर्थिक अस्तित्व समाप्त हो गया और आर्थिक दृष्टिकोण से, गाँव एक ओर, शहर तथा दूसरी ओर राष्ट्र का अंग हो गया। आर्थिक पुनरुत्थान के अन्तर्निभरता के रूप में राष्ट्रवादी आंदोलन का शीर्षक पहले औद्योगिक शहरों में ही हुआ और, बाद में, उसका प्रसार गाँवों में हुआ।

पूँजीवादी व्यवस्था के सघात से जब भारत के परम्परागत औद्योगीकरण का ह्रास हुआ तो एक ओर भूमि पर जनसंख्या का दबाव बना और, दूसरी ओर नयी लगान व्यवस्था तथा इन्फ्लेक्शन की पूँजीवादी आर्थिक नीति के कारण, कृषक की निधनता बढ़ी। जमींदारी व्यवस्था के कारण यह निधनता और भी बढ़ी। सिंचाई की व्यवस्था न होने के कारण अकाल पर अकाल पड़। इसका परिणाम यह हुआ कि कृषि और कृषक की समस्याएँ राष्ट्रीय समस्याएँ बन गईं। स्वदेशी के साथ साथ, कृषि और कृषक की समस्याएँ भी राष्ट्रीय आंदोलन का अंग बन गईं। योरोप की बढ़ती हुई आर्थिक समृद्धि से मिलने वाली प्रेरणा तथा भारत में योरोपीय सघात से उत्पन्न

पूजीवादी षण के स्वार्थों की रक्षा के लिये भारतीय कृषि तथा उद्योग का पुनरुत्थान राष्ट्रवादी आन्दोलन के दो मुख्य आधार बन गये। भारत के आर्थिक पुनरुत्थान की समस्या जो याराप, विगपनया इलै, की औद्योगिक पूजीवादी व्यवस्था के सघात और भारत के नये आर्थिक एकीकरण से उत्पन्न हुई थी, राष्ट्रीय पुनरुत्थान का आधार बन गई। राष्ट्रवादी आर्थिक पुनरुत्थान की प्रक्रिया जो जयजय राज्यकाल में प्रारम्भ हुई थी, आज भी चल रही है। यह रही प्रक्रिया का प्रभाव है कि भारत का औद्योगिकरण और कृषि का नई व्यवस्था के अनुसार आर्थिक उद्धार राष्ट्रीय समस्याओं माना जाता है और आज भी राष्ट्रीय स्तर पर उच्च सम्पादन का प्रयत्न किया जा रहा है। भारत में निम्नलिखित प्रयोग राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान के लिए किया जा रहा है।

भारत के राष्ट्रवादी आर्थिक पुनरुत्थान के दो मुख्य प्रेरणा स्रोत रहे हैं— एक, याराप की औद्योगिक तथा पूजीवादी या साम्यवादी आर्थिक प्रणाली और दूसरी, भारत में याराप के प्रति होने वाली प्रतिक्रिया से उत्पन्न पुनरुत्थानवादी विचार धारा। भारत के पूजीवादी षण के प्रभाव के अन्तर्गत राष्ट्रवादी आन्दोलन में जहाँ, एक आर स्वदेशी आन्दोलन का समावेश हुआ वहाँ दूसरी धार, भारत में योरोपीय षण के उद्योग के लिए आर्थिक गन्तव्य (Economic Protection) की भी मांग हुई। दो महायुद्धों के बीच में, विदेशी सरकार का भी औद्योगिक भारत की सैनिक महत्ता का अनुभव हुआ जिसमें भारत का औद्योगिकरण बना और भारत के आर्थिक पुनरुत्थान का समुधान हुआ। सत उन्नास सौ सत्रह का साम्यवादी राज्य पानि की सफलता और उससे प्रतिफलित होने वाले कम के आर्थिक तथा राजनितिक समुत्पान से, जहाँ भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन का जिम्मा और मजदूरों का आन्दोलन बनाने की प्रेरणा मिली वहाँ, भारत के राष्ट्रवादी आन्दोलन में साम्यवादी विचारों का समावेश भी हुआ। लेकिन, जयजय राज्यकाल में, भारत का राष्ट्रवादी आन्दोलन पनावात तथा साम्यवाद के उग्र पारस्परिक विरोध से बचा रहा क्योंकि भारत की ऐतिहासिक परिस्थिति, उस ऐतिहासिक परिस्थिति में भिन्न थी जिसमें साम्यवाद का समा राष्ट्रीय आन्दोलन का रूप मिला था। भारत में स्वदेशी आन्दोलन के प्रसार के साथ साथ, इलै के अर्थ साक्षियता ने इस बात पर जोर देना प्रारम्भ किया कि भारत एक खेतिहर प्रामीण देश है। अतः, भारत का पनावात राष्ट्रीय और ग्राम व्यवस्था के पुनर्निर्माण में है। उपर, इमाद धम तथा पूजीवादी आर्थिक व्यवस्था के आनामक प्रभावों तथा इलै की राजनैतिक दामना के कारण भारत में योरोपीय सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था के प्रति प्रतिक्रिया प्रारम्भ हुई जिसे दो महायुद्धों की विभीषिका ने और भी तीव्र कर दिया।

धरा भारत में यह विचार पनपा कि योरोपीय-व्यवस्था मानव के लिए हत्याणकारी नहीं है जिसके पन्थकूर, भारत में सांस्कृतिक-आर्थिक पुनरुत्थान की यह

प्रक्रिया प्रारम्भ हुई जिसका चर्मोत्पन्न महात्मा गांधी के विचारों और कार्यों में हुआ। गांधी ने योरोपीय व्यवस्था का विरोध किया और भारत की परम्परागत सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था के पुनरुत्थान को राष्ट्रीय आंदोलन तथा भारत के आर्थिक पुनरुत्थान का आधार बनाया। गांधी के आंदोलनकारी कार्यक्रम से, ग्राम तथा कृषक की समस्याओं की ओर राष्ट्र का ध्यान आकर्षित हुआ, राष्ट्रीय आंदोलन को दश यापी जनतादोलन का रूप मिला और राष्ट्रीय गव की भावना को प्रोत्साहन मिला लेकिन उससे भारत के आर्थिक पुनरुत्थान की वह ऐतिहासिक प्रक्रिया न रुक सकी जिसका श्रीगणेश अंग्रेजी राज और योरोपीय सघात से हा चुका था। यही कारण है कि भारत के स्वतंत्र होते ही गांधीवादी आर्थिक कार्यक्रम में शिथिलता आ गई। योगोप में जमीनदातनिक प्रौद्योगिकी से उत्पन्न औद्योगिकीकरण की आवश्यकताओं ही कुछ और और है। लेकिन अंग्रेजी राज्यकाल में समन्वयकारी पुनरुत्थान की जो प्रक्रिया प्रारम्भ हो गयी थी उसका प्रभाव भारत की राष्ट्रवादिता पर बना रहा। घरेलू उद्योग धंधों और योरोपीय ढंग के औद्योगिकीकरण तथा पूँजीवादी और साम्यवादी सामाजिक आर्थिक व्यवस्थाओं के आधारभूत सिद्धांतों का समाजवादी समाज की धारणा के द्वारा समन्वय करने की प्रवृत्ति और प्रेरणा स्वतंत्र भारत की आर्थिक राष्ट्रवादिता का आधारभूत लक्षण है जिनका उद्गम उसी समन्वयकारी पुनरुत्थान की राष्ट्रवादी प्रक्रिया में है जो अंग्रेजी राज्यकाल में अस्तित्व में आ गई थी। योरोप में घटत हुए सघात के कारण जहाँ, एक प्रकार समन्वयवादी विचार पनप रहा है वहाँ दूसरी ओर आर्थिक पुनरुत्थान की राष्ट्रवादी विचारधारा में पूँजीवादी तथा साम्यवादी विभेद का बहु वचारिक सघप भी पनप रहा है जिसका प्रसरण योरोप से हुआ है।

अंग्रेजी राज्यकाल में भारत का सांस्कृतिक एकीकरण तथा पुनरुत्थान भारतीय राष्ट्रवादिता का तीसरा आधार रहा है। हिन्दुत्व के आधारभूत वचारिक आधार जिनका कि पहले बर्णन किया जा चुका है सांस्कृतिक एकीकरण हिन्दुत्व के प्रसार के साथ साथ, भारत के विजातीय समाज को सांस्कृतिक एकीकरण प्रदान करते रहें हैं। हिन्दू मस्कृति में बनारस घोर गया जस तीर्थस्थान व शहरी केन्द्र रहे हैं जहाँ से हिन्दुत्व की आधारभूत सांस्कृतिक अर्थात्ता का प्रसरण होता रहा है। लेकिन हिन्दुत्व में इतने विजातीय तत्वों का समन्वय होता रहा है कि भारत में हिन्दुत्व के चतुमुखी प्रसार का बाजजूद भी क्षेत्रीय, जातीय तथा गणजातीय भिन्नताएँ बनी ही रहीं। अंग्रेजी राज की स्थापना के पहले, प्रत्येक काल में विभिन्न राज्या में घट रहने के कारण भारत को सांस्कृतिक भिन्नता पनी रही। जन तथा बौद्धधर्म हिन्दुत्व से प्रेरणा ग्रहण करत हुए भी एकीकरण के स्थान पर सांस्कृतिक भिन्नता का ही कारण बन। इस्लाम और हिन्दुत्व के बीच में चलने वाली समन्वयकारी प्रक्रिया का बाजजूद भी इस्लाम और उसके प्रभाव से उत्पन्न हानि वाल पण्यों का कारण भी सांस्कृतिक भिन्नता को प्रोत्साहन

मिला। जसा कि पहले लिखा जा चुका है, इसाई मिशनरियो ने सांस्कृतिक भिन्नता को ही अधिक प्रथय दिया। फ्रांसिस जेवियर ने दक्षिण के इसाइयो को प्रयासा म से हिंदू प्रभाव को हटाने का काम अग्रजी राज की स्थापना के बहुत पहले प्रारम्भ कर दिया था। इस प्रकार, भारत में अग्रजो के राज्य की स्थापना के पहले, यहाँ की ऐतिहासिक परिस्थितिया ही कुछ ऐसी रही थी कि जनवाद बुद्धवाद, इस्लाम और इसाई धर्मों द्वारा उस सांस्कृतिक एकीकरण का बराबर धक्का पहुँचता रहा जिसका श्रीगणेश आय द्राविड संस्कृतियों के सम्बन्ध में उत्पन्न उत्तरोत्तर विनष्टित हिंदूकरण की प्रक्रिया में हुआ था।

अग्रजी राज की स्थापना के समय भारत की सांस्कृतिक भिन्नता में अन्तर्गत भूत एकता अवश्य थी, लेकिन उस एकता की चेतना अस्पष्ट तथा विकीण थी। मुस्लिम राज्यकाल में हिंदूकरण की प्रक्रिया लुप्त नहीं हुई थी हा, मंद अवश्य पड़ी थी। इस्लामी राज्यकाल में इस्लाम के साथ सम बंध होने तथा इस्लाम के आक्रामक सघात के कारण, सांस्कृतिक एकीकरण की प्रक्रिया एक बार कई धाराओं में प्रवाहित हो उठी और दूसरी बार सांस्कृतिक एकता की चेतना निरास्पष्ट होने के साथ साथ धीरे धीरे जाठवी गताशून्य में भारत के चार कोना में चार मठा की स्थापना तथा अद्वैतवादी दंगल या प्रतिपादन करने, शहरों में सांस्कृतिक एकता का संचय करने का प्रयास किया। यह प्रयास सफल भी हुआ किन्तु इस्लामी सघात के सामने टिक न सका। मराठा अख्युत्थान के साथ साथ महाराष्ट्र घम की धारणा के रूप में, एक राष्ट्र, एक राज्य और एक संस्कृति की धारणा का अख्युत्थय अवश्य हुआ लेकिन, योराप के राजनतिक तथा आर्थिक सघात के कारण यह धारणा वास्तविक रूप में ल नहीं। जिस समय, भारत में, अग्रजो का राजनतिक प्रभुत्व बढ़ रहा था, उस समय, एक बार हिन्दुत्व की 'अविभक्त विभक्त्येषु' एको अह बहुत्या, 'आत्मवत् सबभूतेषु' और 'पद्धिता समन्विता जसो धारणामै धी जो अप्रमत्त रूप से भावनात्मक एकता की प्रतीक थी तथा उस पर जोर भी देना था और, दूसरी ओर भारतीय समाज हिंदू मुसलमान और आर्यामी समाजों में बँटा हुआ था। स्वयं हिंदू-समाज मायाधार प्रान्ता की उपसंस्कृतियाँ और उपसंस्कृतियाँ विभिन्न जातियों में बँटी हुई थी। हिंदुत्व के वचारिक आधार ही सांस्कृतिक एकता के एकमात्र आधार थे किन्तु उनके प्रति जनमानस की चेतना अस्पष्ट, विकीण और निरक्षेप थी।

अग्रजी राज की स्थापना में एक नए ऐतिहासिक परिस्थिति अस्मिन् में आई। भारत के राजनतिक तथा आर्थिक एकीकरण में सामाजिक सांस्कृतिक तरी करण के विचार का बल मिलना प्रारम्भ हुआ। यातायात के साधनों के विकास तथा शांति और सुरक्षा का स्थापना में हिंदुओं का उन तगराय तीर्थयात्रियों में सम्पन्न बढ़ा उठास अत्यन्त प्राचीन काल में, हिंदू सांस्कृतिक अर्थात् वा प्रमरण हाता आया

था। छापाखाना तथा प्रादेशिक भाषाओं के विकास के कारण, जनसाधारण उन धर्म ग्रन्थों से परिचित होने लगे जो एक वग विषय तक ही सीमित थे। अंग्रेजी भाषा के अध्ययन से यहाँ, एक ओर, योरापीय विचारों का प्रसार हुआ तो, दूसरी ओर, अंग्रेजी में अनुवादित प्राचीन ग्रन्थों से अंग्रेजी पढ़े लिखे लोगों का भारत, विशेषतया हिन्दुत्व की प्राचीनता, उसके ज्ञान भण्डार और उसकी गरिमा का परिचय मिला। सर विलियम जोन मोरियर विलियम्स और मक्समूलर जैसे विद्वानों के प्रयत्नों से सस्कृत भाषा प्राचीन साहित्य और सस्कृति का पुनरुद्धार हुआ। इसी काल में अंग्रेज, योरापीय तथा भारतीय विद्वानों के प्रयत्नों से भारत के इतिहास का अध्ययन प्रारम्भ हुआ जिससे एक ओर भारत की ऐतिहासिकता प्रकाश में आई और, दूसरी ओर, भारत ने अपने का पुनरुद्धार का प्रारम्भ किया। ऐसी परिस्थिति में निष्प्राण हिन्दुत्व में एक नयी चेतना और जागृता का किरण पड़ी। धर्मग्रन्थों में निहित ज्ञान के प्रसार भारत की ऐतिहासिक प्राचीनता और यहाँ के प्राचीन साहित्य तथा कला की गरिमा के प्रकाश में ज्ञान के कारण, हिन्दुओं में राष्ट्रीय गौरव तथा सांस्कृतिक चेतना की भावना पैदा हुई। अंग्रेजी राज्य की स्थापना के कारण एक नया परिस्थिति उत्पन्न हुई जिसमें हिन्दुओं के राष्ट्रीय गौरव और सांस्कृतिक चेतना की भावना को प्रोत्साहन मिला। अंग्रेजी राज्य की स्थापना से मुसलमानों में अपने राजनतिक प्रभुत्व से अपरस्थ हुए जिसके कारण इस्लाम की प्रभुता का विचार भी अपरस्थ हुआ। अंग्रेजों केवल राजनतिक प्रभुता और आर्थिक गणना के इच्छुक थे। उनका कोई राजधर्म नहीं था। दूसरे, प्रारम्भ में वे मुसलमानों को अपना शत्रु समझते थे, जिसके दो कारण थे—एक, याराप में इस्लाम तथा ईसाईयत का स्थापण सम्पन्न और सघन तथा दूसरा यह विचार कि मुसलमान अंग्रेजों के स्वाभाविक दुश्मन थे क्योंकि अंग्रेजों ने मुसलमानों का अपरस्थ करके, उनसे भारत का राज छीना था। एसी दशा में लगभग पाँच सौ वर्षों के बाद अंग्रेजों का राज, हिन्दुत्व का पुनरुद्धार स्वतन्त्रता प्राप्त हुई जिसके फलस्वरूप हिन्दुत्व को नया धर्मों के समान समानता का अनुभव हुआ।

अंग्रेजी राज्यकाल में, एक ओर हिन्दुत्व का स्वतन्त्रता मिली तो, दूसरी ओर उस पर इस्लाम तथा अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम से योरापीय सघन के प्रहार भी होने लगे। एक ओर विलियम जोन और मक्समूलर जैसे विद्वानों से जो हिन्दु साहित्य और ज्ञान की गरिमा के गुण गा रहे थे तो दूसरी ओर इसाई मिशनरी हिन्दुत्व की चिल्ली उड़ा रहे थे। भयतारवाद, पूजा पाठ मूर्ति पूजा, धर्मकाण्ड छुनाछन और जातिभेद इनके आश्रमण के मुख्य केन्द्र थे। याराप की व्यक्तिवादी प्रजातन्त्रता तथा धर्मनिरपेक्ष व्यवस्था के समान, संपूर्ण परिवार तथा जाति जमी समष्टिवादी संस्थाओं का विनाश (Primitiveness) का प्रतीक की जाती थी। इसाई

मिशनरिया तथा रायसेवा मे लगे अंग्रेज मानवशास्त्रिया^१ न प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इस बात पर जार दना प्रारम्भ किया कि भारत न ता एक संस्कृति है, न एक राष्ट्र और न एक समाज। आदिवासियों को एक अलग विजातीय सांस्कृतिक समूह माना गया, मुसलमानों को एक अलग सांस्कृतिक राष्ट्र समूह और हिंदुओं का एक ऐसा समूह जिसमें न तो सांस्कृतिक एकीकरण था, न सामाजिक। भारत में आदिवासी अलग अलग विभिन्न सांस्कृतिक समूहों में बंटे हुए हैं। इस सद्धार्तिक मायता के आधार पर, आदिवासियों के लिए व्यवस्था की नीति अपनाई गई। इसी मिशनरियों तथा अंग्रेज प्रशासकों ने अछूत जातियों को एक अलग सामाजिक इकाई माना। मुसलमानों का विभिन्न राजनैतिक अधिकार प्रदान किए गए।

अंग्रेजी राज के माध्यम से, योरोपीय सभ्यता तथा हिंदूत्व में सम्पर्क की जा स्थिति आई, वह इस प्रकार थी। एक धार, हिंदुत्व की सांस्कृतिक सांस्कृतिक पराधीनता से मुक्ति हुई थी और, दूसरी ओर, उस पर मजहबी राष्ट्रवादिता (इसाइया के), सांस्कृतिक तथा राजनैतिक प्रहार हो रहे थे। जैसा कि बलवत्ता के हिंदू-मालेज के प्रारम्भिक इतिहास में स्पष्ट है अंग्रेजों द्वारा जहां, एक ओर योरोपीय विचार फैल रहे थे वहां दूसरी ओर, नवनिर्दिष्ट योग्यता की हिंदूत्व पर स आस्था भी उठती जा रही थी। इसी मिशनरी गुठ जाम हिंदू देवताओं, प्रथाओं, विधानों और पूजा पद्धतियों को आत्मचर्या किया करते थे। भारत राजनैतिक तथा आर्थिक एकता का रूप तो ले चुका था किन्तु उनकी सामाजिक विजातीयता की तह में छिपी सांस्कृतिक एकता अब भी प्रच्छन्न थी। ऐसी दशा में, भारत में संस्कृतिकरण की अनेक प्रक्रियाएँ फूट निकलीं। इनमें सबसे प्रधान है हिंदूत्व के पुनरुत्थान की प्रक्रिया। यह पहल ही कहा जा चुका है कि अंग्रेजी राज्य की स्थापना से हिंदुओं का धार्मिक स्वतंत्रता मिली और इतिहास की खाती से उनमें राष्ट्रीय गठन का अम्पुष हुआ। सरकारी नौकरियाँ व्यापार तथा राजनीति के क्षेत्र में हिंदुओं को आग बरान का मौका मिला जिससे उनकी राष्ट्रीय चेतना का और भी प्रोत्साहन मिला। भारत में राजनैतिक एकीकरण से हिंदुओं में राष्ट्रप्रेम की भावना का अम्पुष हुआ। किन्तु योरोपीय सभ्यता तथा इसाईयत का प्रत्यक्ष प्रहार परम्परागत हिंदू ममान, धर्म और संस्कृति पर था। इन प्रहारों के विपरीत में जाति प्रथा में निहित ऊँच नीच की भावना मति-पूजा, गरीबी, अंगिया और कमबालों की रक्षा बढित हो रही थी। ऐसी दशा में राष्ट्रवादिता समन्वय, सुधार और पुनरुत्थान के रूप में प्राप्ति हुई।

सांस्कृतिक पुनरुत्थान की एक प्रक्रिया सुधारकों तथा समन्वयकारी रही

१. दलिये जे० एच० हटन द्वारा रचित कास्ट इन इण्डिया में परिनिष्ठ की, हिंदुधर्म इन इट्स रिलेशन टु प्रिप्रिटिव रिस्तिजस इन इण्डिया।

है और दूसरी आक्रामक तथा प्राचीनतावादी। मिशनरी मजहबों ने समष्टिवादिता और सामाजिक नतिकता प्रधान रही है। इस्लाम के मिशनरी तथा मजहबी सघात के उत्तर में हिन्दूत्व में पथ-भंगठन की परम्पराओं का विकास हुआ और इसाईयत के सघात में समाज सगठना की प्रक्रिया का। समाज सगठना की प्रक्रिया पर, एक ओर, सुधारवादी तथा सम वयकारी प्रक्रिया का प्रभाव रहा है और, दूसरी ओर, आक्रामक तथा प्राचीनतावादी सांस्कृतिक पुनरुत्थान की प्रक्रिया का। ब्रह्मसमाज, प्रायना समाज और गांधीवाद सुधारवादी तथा समन्वयकारी सांस्कृतिक पुनरुत्थान की प्रक्रिया की उत्पत्ति है और रामकृष्ण मिशन आर्यसमाज, हिंदू महासभा, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ तथा जनसंघ आक्रामक तथा प्राचीनतावादी सांस्कृतिक पुनरुत्थान की प्रक्रिया का। लेकिन, इन दोनों प्रक्रियाओं का प्रेरणास्त्रोत भारतीय सामाजिक विचार तथा सृष्टि ही रहे हैं। ब्रह्मसमाज तथा रामकृष्ण मिशन का प्रेरणास्त्रोत वेदान्त है गांधीवाद का गीता जनवाद तथा बौद्धवाद और आर्यसमाज का वेद। इन दोनों प्रक्रियाओं से जो आन्दोलन उत्पन्न हुए, उनमें उस सांस्कृतिक पुनरुत्थान पर जोर दिया गया है जिसमें योरोपीय विज्ञानवाद, नतिकता प्रजातंत्र और सामाजिक सगठन का जीवन सौष्ठव का सिद्धांतों के भारतीय संस्करणों का समावेश हो। सांस्कृतिक पुनरुत्थान की इन प्रक्रियाओं का एक अन्य पहलू भी है। यह इन्हीं प्रक्रियाओं के प्रभाव का परिणाम है कि भारत के इतिहासकारों तथा समाजशास्त्रियों का ध्यान भारतीय सृष्टि की आधारभूत एकता को स्पष्ट करने की ओर गया। हिन्दूत्व तथा इस्लाम के सम्पर्क से बनी सामाजिक सृष्टि को इतिहासकारों ने पुनः खोज निकाला। भारत का मानवशास्त्रियों तथा समाजशास्त्रियों ने, हिंदू समाज के बहुमुखी सांस्कृतिक आधारों को स्पष्ट करने के लिए भारतीय समाज का बहुमुखी समाज (Plural Society) की और सांस्कृतिक विजातीयता को, सृष्टि-संघान (Federation of Cultures) की धारणाओं में बाधा। अस्पृश्य जातियों तथा आश्रितियों को हिंदू समाज तथा सृष्टि का अभिन्न अंग माना।

इन्हीं प्रक्रियाओं के फलस्वरूप, इतिहास में एक ओर हिन्दूत्व का सतत विकास की शृंखला कड़ियों को जोड़ने का प्रयास किया गया और दूसरी ओर, यह दिखाने का कि किस प्रकार विभिन्न ऐतिहासिक युगों में भारतीय विशेषतया हिंदू सृष्टि का, भारत में तथा भारत के बाहर की अन्य सृष्टियों तथा सभ्यताओं पर प्रभाव पड़ा है। इन्हीं प्रक्रियाओं के फलस्वरूप वेद, उपनिषद्, वेदान्त और गीता के माध्यम से हिंदू आध्यात्मिक तथा सामाजिक विचार को इस ढंग से प्रस्तुत किया गया कि हिन्दूत्व स्थायी तथा यारूप का सघातिक प्रहारों से लोहा ल सके। दूसरी ओर इसी प्रभाव का अंतगत हिंदू विवासा प्रथाओं और सत्प्राजा का युक्तियुक्त आधार प्रदान करने का प्रयास किया गया। इसका प्रारम्भ रामकृष्ण परमहंस ने द्वारा हुआ था। स्वामी विवेकानन्द दयानन्द, गांधी, अरविन्द और रामकृष्ण ने

अलग अलग ढंग से इसी आन्दोलन में योगदान दिया है। जहाँ सृष्टि-सम्पर्क में विजय और पराजय का सम्पर्क होता है वहाँ पराजित में विजयी के प्रति प्रतिक्रिया, पराजित में पुनरुत्थान तथा अततो गत्वा उद्धार के लिए मसीहा के अवतार की कल्पना का अम्युदय होता है। हिन्दू पुनरुत्थान की प्रक्रिया में, एक ओर, यारोप के प्रति प्रतिक्रिया रही है और दूसरी ओर, अवतारी पुरुष के द्वारा अततो गत्वा उद्धार पाने की कल्पना। अंग्रेजी राज्य काल की परिस्थितियों में बल्कि अवतार के विचार का प्रसार हुआ। गांधी का वस ही युगावतार माना गया जैसे गिवाजी का माना गया था।

भारत के राष्ट्रवादी सांस्कृतिक पुनरुत्थान में दो विनासी प्रक्रियाओं का अम्युदय और समावेश हुआ। इस काल में एक ओर भारत की सामाजिक सृष्टि और उनमें निहित राष्ट्रीय एकीकरण के पुनरुत्थान का प्रयत्न किया गया है ता, दूसरी ओर, हिन्दू मुस्लिम तथा आदिवासी सृष्टियों को अलग अलग एकीकृत तथा संगठित होने का अवसर भी मिला है। प्रादेशिक भाषाओं के विकास के कारण, भाषावार क्षेत्रों की सृष्टियों का भी एकीकरण हुआ और प्रत्येक भाषावार प्रांत एक अलग विविष्ट सांस्कृतिक क्षेत्र बन गया। अंग्रेजी भाषा तथा शिक्षा ने भारत का एकता प्रदान की ता प्रादेशिक भाषाओं में विभिन्नता तथा क्षेत्रीय पथकरण की भावना का प्रात्याहित किया। अंग्रेजी राज्य की स्थापना से इस्लाम को उसी प्रकार पुनरुत्थान की प्रणाम मिली जिम प्रकार हिन्दुत्व को। इनका परिणाम यह हुआ कि यदि, एक ओर राज-नैतिक तथा सांस्कृतिक एकीकरण की प्रक्रिया उत्पन्न हुई ता दूसरी ओर पथकरण का प्रक्रिया भी अस्तित्व में आया। इस्लाम का द्विराष्ट्रीय सिद्धान्त और पाकिस्तान का निर्माण, बिहार के आदिवासियों द्वारा पारसण्ड प्रांत, नागालैंड द्वारा नागालण्ड और बस्तर के आदिवासियों द्वारा एक अलग राज्य की मांग तथा तामिलनाडु का हो० एम० ए० आन्दोलन इस तथ्य की पुष्टि करते हैं।

भारत की राष्ट्रवादिता में मन्निहित इन दो प्रक्रियाओं का अन्तर्गत भारत की सामाजिक ऐतिहासिक परिस्थितियों में ही पनप है। भारतीय समाज में दो प्रकार की परम्पराएँ पाई जाती हैं—एक, महान परम्परा (Great Tradition) और दूसरी, लघु परम्परा (Little Tradition)। महान परम्पराएँ अतिल भारतीय परम्पराएँ हैं। उनमें सावभौमिकता (Universalization) की प्रक्रियात्मक प्रवृत्ति पाई जाती है। सावभौमिकता का सम्बन्ध अतिल भारतीय प्रमण की प्रवृत्ति से है। लघु परम्परा प्रादेशिक तथा स्थानीय स्तर पर पाई जाती है और उसका सम्बन्ध उस प्रक्रिया से है जिम मरियट (Marriot) ने प्रादेशीकरण (Ethnicization) की परम्परा कहा है। महान परम्परा का उद्गम हिन्दू-परम्परा का वैचारिक निरूपण की परम्परा में रहा है। धर्म पुण्याय, कर्माभ्रम, मस्तरार, बट-बट हिन्दू देवी-देवताओं की पूजा महान् परम्पराओं का कुछ रूप है। इनका प्रसरण एक ओर, भारत

की साहित्य परम्पराओं के माध्यम से जाता रहा है और, दूसरी ओर, भारत के पवित्र तीर्थों से। लघु परम्पराय महान के स्तर पर आती रही है और महान लघु के स्तर पर। इस्लाम और इसाइयत तथा पारावीय सम्मता के सघात से लघु और महान परम्पराओं का सामञ्जस्य और आदान प्रदान अनतुलित हो गया। अंग्रेजी राज्य काल में हिन्दुत्व और इस्लाम का तथा हिन्दुत्व और आदिवासी सभ्यतियों का सम्पर्क बढ़ा लेकिन, साथ ही साथ स्थानीय बालियों और प्रादेशिक भाषाओं के विकास के कारण प्रादेशीकरण की प्रक्रिया को भी प्रोत्साहन मिला। इसाइयत तथा अंग्रेजी काल की राजनतिक परिस्थितियों के प्रभाव से भारत के आदिवासियों में उसी प्रकार से आदिवासीकरण की प्रतिवृत्तिका प्रवृत्ति पायी जा सकती है जिस प्रकार हिन्दुत्व में हिन्दूकरण का और इस्लाम में इस्लामीकरण का। भारत में अंग्रेजी राज की स्थापना के बाद से एक ओर, राष्ट्रीयकरण की राजनतिक, आर्थिक तथा सामाजिक सांस्कृतिक गतियों का प्रभाव बढ़ा और दूसरी ओर, भाषा, सभ्यता तथा मजहब के आधार पर प्रादेशीकरण की शक्तियों का। एक ओर, राष्ट्रवादिता में समकालीन दृष्टिकोण का समावेश हुआ तो, दूसरी ओर, प्रादेशिक तथा साम्प्रदायिक दृष्टिकोणों का। भारतीय राष्ट्रवादिता, एक ओर प्रादेशिक तथा साम्प्रदायिक सभ्यतायुक्त पुनरुत्थान और सुधार में समतुल्य रही है तो दूसरी ओर धर्म निरपेक्ष राष्ट्रवादी राजनतिक आन्दोलन में—वह आन्दोलन जिसका उद्देश्य रहा है भारत का राजनतिक तथा भावात्मक एकीकरण।

जयपुर राजा राम माहनराय, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द सरस्वती और गोपालकृष्ण गोकुले के साथ ही उनके द्वारा चलाए हुए आन्दोलनों से स्पष्ट है भारतीय राष्ट्रवादिता का उत्थान हिन्दुत्व के पुनरुत्थान तथा सुधार आन्दोलन में हुआ था। इसाइयत के विरुद्ध हिन्दुत्व की प्रतिवृत्ति से ही भारतीय राष्ट्रवादिता की प्रथम चरण फूटी थी। ब्रह्ममज्जिमा ने हिन्दू समाज, सभ्यता तथा धर्म में उन सुधारों की मांग की जिससे हिन्दुत्व इसाइयत के सघात को आत्मसात करके अपने अस्तित्व का बचाव कर सके और हिन्दू समाज एकीकृत हो सके। ब्रह्मसमाज तथा प्रायणमाज सुधारवादी हिन्दू पुनरुत्थान के राजनीतिक आन्दोलन थे। स्वामी विवेकानन्द ने वेदों का सावधानीपूर्वक धर्म और समाजीकरण ने वैदिक धर्म का ही मूलभूत आधुनिक प्रतिपादन करने का उद्योग किया। ब्रह्मसमाज तथा प्रायणमाज ने वेदों के आधुनिक धर्म के अस्तित्व की इच्छा रखी। वेदों के आधुनिक धर्म के अस्तित्व का ही मूलभूत आधुनिक प्रतिपादन करने का उद्योग किया। ब्रह्मसमाज तथा प्रायणमाज ने वेदों के आधुनिक धर्म के अस्तित्व की इच्छा रखी। वेदों के आधुनिक धर्म के अस्तित्व का ही मूलभूत आधुनिक प्रतिपादन करने का उद्योग किया।

हिन्दु पुनरुत्थान के अतिरिक्त, भारतीय राष्ट्रवादिता के अग्र प्रेरणास्रोत ही है। इनमें सबसे प्रमुख है अंग्रेजी शिक्षा। अंग्रेजी भाषा के द्वारा राष्ट्रवादिता के अखिल भारतीय सदेशबहन तथा विचार विमर्श का एक प्रभावपूर्ण साधन अस्तित्व में आया। अंग्रेजी शिक्षा से योरोप के राष्ट्रवादी तथा उदार प्रजातन्त्रवादी विचारों का भारत में शिक्षित वर्ग में प्रसार हुआ। अंग्रेजी शिक्षा तथा अंग्रेजी भाषा के प्रभाव के फलस्वरूप भारतीय समाज में समान भाषा तथा विचारों वाले एक वर्ग का अभ्युदय हुआ। यारापीय सभ्यता के सघात में भारत का जो आर्थिक रूपांतरण हुआ उसमें वह मध्य वर्गीय व्यापारी वर्ग अस्तित्व में आया जो आधुनिक भारत के पूँजीपति वर्ग का अग्रज था और जिसने भारत के आर्थिक स्वातंत्र्य, औद्योगिकरण तथा आर्थिक पुनरुत्थान के आन्दोलन को जन्म दिया। शिक्षा के माध्यम से जिन वर्ग का अभ्युदय हुआ वह भी एक मध्य वर्ग ही था जिसकी उत्पत्ति ब्राह्मण, कायस्थ और सत्री इत्यादि उन जातियों में से हुई थी जो परम्परानुसार भारत में नौकरशाही वर्ग में आती थी। प्राचीन तथा मध्यकालीन भारत में यह वर्ग सामन्त-सेनानी वर्ग के अधीन रहता था। अंग्रेजी राज की स्थापना से, सत्ता के उच्चपद अंग्रेजों के हाथ में चले गए जिससे सामन्त-सेनानी वर्ग की सामाजिक राजनतिक प्रभुता का ह्रास हुआ। अंग्रेजी राज में नौकरशाही के सन्मुख उद्देश्य उद्दी जातियाँ से लिए गए जो परम्परानुसार राज्य-नौकरशाही के पेशों में लगा हुई थी। ऐसी दशा में, अंग्रेजों के अधीन भारतीय समाज का राजनतिक सत्ता वस्तुतः उन जातियों के हाथ में चली गई जिनके सदस्यों में से नौकरशाही के अफसरों का चुनाव होता था। अंग्रेजी भाषा और अंग्रेजी शिक्षा की ओर भी उद्दी जातियों के सदस्य सबसे अधिक भूके क्योंकि बुद्धिजीवी जातियों के सन्मुख के लिए सरकारी नौकरी ही एकमात्र अवसर रह गया था। अंग्रेजी राज की स्थापना के साथ-साथ, भारत में वकालत डाक्टरी शिक्षा और पत्रकारिता जैसे बुद्धिजीवी पेशों भी अस्तित्व में आये जिनकी ओर अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त बुद्धिजीवी वर्ग के लोग अग्रसर हुए। ज्यों-ज्यों अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार हुआ, प्रणामको, बकीलो, डाक्टरो, शिक्षक और पत्रकारों से बना बुद्धिजीवी मध्य वर्ग भी बढ़ता गया।

अंग्रेजी शिक्षा तथा अंग्रेजी राज के द्वारा पठन-वाचन यारापीय सघात से प्रादुर्भूत सामाजिक-आर्थिक रूपांतरण की प्रक्रिया में उत्पन्न यह मध्य वर्ग उस नई रोगनी, नयी सतना तथा नवजागृति का प्रतीक था जो योरोपीय सघात में भारत में उत्पन्न हुई थी। अन्तर्गतों की अग्रणी अधिक शिक्षित और अधिक जाग्रत, इस वर्ग के समाज को देश की तत्कालीन आवश्यकताओं की अधिक अनुभूति थी। इस वर्ग के समाज में देश की एकता के प्रति अधिक चेतना थी। यह एक और, योरोपीय आधुनिकता विज्ञानवाद तथा उदारवादी सामाजिक दृष्टिकोण से प्रभावित थे तो, दूसरी ओर, देश की राजनतिक पराधीनता की कठिनाइयों और सर्वांगीण सामाजिक सुधार

की आवश्यकताओं के प्रति सजग थे। यही वह वग है जिसके लोग आधुनिकता के अग्रज थे और जिन्होंने राजनतिक राष्ट्रवादिता तथा सुधार-आन्दोलन को जन्म दिया। राजा राममोहन राय, केशव चन्द्रसन, विवेकानन्द, दयानन्द ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, गोपालकृष्ण गाखले बाल गंगाधर तिलक लाला लाजपत राय, मदन मोहन मालवीय, मोहनदास कमचन्द गांधी और जवाहरलाल नेहरू इसी मध्य वग से उत्पन्न हुए हैं। इस युग के लगभग सभी ऐम्बक पत्रकार, सुधारक और राजनतिक राष्ट्रीय आन्दोलन के कायकर्ता इसी मध्य वग से आय हैं। यह मध्यवग ज्यो-ज्यो स्वतंत्रता का हामी होता गया, त्यो-त्यो अग्रजी सरकार ने निरंतर विभू खलित हाते हुए सामंत वग का आगे बढ़ाने का प्रयास किया। यही प्रयास, आगे चल कर, भारत में अग्रजी राज के पतन का एक मुख्य कारण बना। प्राचीन अभिजात तथा सामंतवग के लोग अग्रजी साम्राज्यवादिता तथा प्राचीनता के हामी हुए और नव विकसित मध्य वग के लोग राष्ट्रवादिता तथा स्वतंत्रता के हामी। नव विकसित मध्य वग में भी दो प्रकार के लोग थे—एक श्रेणी में वे लोग थे जो उदारवाद तथा धर्मनिरपेक्षता से प्रेरित थे और दूसरी श्रेणी में वे लोग जिनका प्रेरणास्रोत हिन्दू पुनरुत्थान में था। इस्लाम भी इसी प्रकार प्राचीन सामंत वग और नव विकसित मध्यवग में विभाजित था। सरकारी नौकरियाँ के लिए चलन वाली होड़ के कारण मुस्लिम समाज का एक वग जिसमें प्राचीन सामन्त तथा नव-मध्य वग के लोग थे, साम्प्रदायिकता की ओर उन्मुख हुआ और दूसरा वग धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवादिता तथा साम्राज्य विरोध की ओर। इन परिस्थितियों में, भारत के पुनरुत्थान में हिन्दू राष्ट्रवादिता तथा मुस्लिम राष्ट्रवादिता का समावेश हुआ।

आधुनिक भारत की राष्ट्रवादिता का अम्युदय इस प्रकार, एक साथ कई प्रेरणास्रोतों से हुआ। राष्ट्रवादिता का एक प्रेरणास्रोत था हिन्दू-पुनरुत्थान तथा हिन्दू राष्ट्रवादिता का विचार जिसका प्रभाव सन अठारह सौ पचहत्तर के आस पास भारत की राजनतिक गतिविधियों पर पड़ने लगा था। दूसरा प्रेरणास्रोत था योरोप का उदारवादी तथा राष्ट्रवादी पूँजीवादी दृष्टिकोण जिसकी अभिव्यक्ति सन अठारह सौ पचासों में इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना के द्वारा हुई। इस्लाम के पुनरुत्थान और इस्लामी राष्ट्रवादिता के अग्रदूत सर सयद अहमद खा थे। पहली पीढ़ी के कांग्रेसी अग्रजी सरकार के प्रशंसक और उत्तरोत्तर मवधानिक सुधारों के पक्षपाती थे। पहली पीढ़ी के कांग्रेसी उदारवादी विचारों के पक्षपाती थे और वे इस तथ्य के प्रति सजग न थे कि वे हिन्दू विचार के प्रतिनिधि थे। किन्तु, कांग्रेस के तीसरे अधिवेशन के बाद से, जब में मदनमोहन मालवीय का प्रभाव बढ़ा और बंगाल तथा महाराष्ट्र में हिन्दू पुनरुत्थान का आन्दोलन बना, कांग्रेस द्वारा प्रेरित राष्ट्रवादी आन्दोलन हिन्दू राष्ट्रवादिता और हिन्दू पुनरुत्थान से प्रेरित होने लगा और बराबर उभरे प्रेरित होता रहा। महाराष्ट्र का हिन्दू पुनरुत्थानवादी तथा

राष्ट्रवादी आन्दोलन एक ओर, सिवाजी के आंदोलन से प्रेरित था और दूसरी ओर, सुधारवाद से। पहले प्रकार के प्रणेता ये लोकमाय बालगंगाधर तिलक और दूसरे के गापालकृष्ण गाखले तथा महादेव गोविन्द रानाडे। तिलक ने, एक ओर, 'जन्मदिन स्वराज्य-अधिकार की धारणा रखी और, दूसरी ओर 'गीता रहस्य' नामक गीता पर भाष्य लिख कर उस कमयोगी की धारणा भारतीयों विशेषतया हिन्दुओं के सम्मुख रखी, जिसका कर्तव्य था निस्पृह कम करना। तिलक के लिए निस्पृह कम का अर्थ था स्वतन्त्रता के लिए निरन्तर निस्पृह युद्ध। राष्ट्रवादी आंदोलन को व्यापक जनान्दोलन बनाने के लिए, तिलक ने एक ओर, सिवाजी के आंदोलन का आदर्श सामने रखा और दूसरी ओर गणस पूजा का प्रचार किया। जब महाराष्ट्र में गणस पूजा का प्रचार बढ रहा था तब बंगाल में दुर्गा (गक्ति)-पूजा का राष्ट्रवादी प्रचार बढ रहा था। महाराष्ट्र में सिवाजी राष्ट्रीय उदबोधन का प्रेरक बने और बंगाल में अमुर सहारिणी दुर्गा राष्ट्रीय उदबोधन की प्रक। राष्ट्रीय उदबोधन का बकिम चन्द्र चटर्जी का प्रसिद्ध गीत 'बद मातरम इसी आंदोलन से प्रेरित है। लाल (लाला लाजपत राय) बाल (बाल गंगाधर तिलक) और पाल (विनोद चन्द्र पाल) के प्रभाव में कांग्रेस का राष्ट्रवादी आंदोलन, अप्रत्यक्ष रूप से, हिन्दू पुनरुत्थान तथा हिन्दू राष्ट्रवादिता से प्रेरित था^१।

बीसवीं शताब्दी की अनेक राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं ने भारतीय राष्ट्रवादिता के विचार तथा आंदोलन को सबल बनाया। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में, एक ओर पुनरुत्थानवादिता का जार था और दूसरी ओर, उग्र, हिंसावादी प्रातिकारी आन्दोलन का। उस समय कांग्रेस का राष्ट्रवादी आंदोलन छिन्न भिन्न और निष्प्राण था। सन् उन्नीस सौ में, लाह्वं कन्न ने इम्फैट को भेजी गई अपनी रिपोर्ट में यह लिखा था कि उनकी सबसे बड़ी महत्वाकांक्षा कांग्रेस और उसके आंदोलन का साविपूर्ण दाह-मस्कार करने की थी। किन्तु जब लाह्वं कन्न ने बंगाल के दो हिस्से

१. एम० पानिकर के मत में, कांग्रेस के तत्वाधान में चलने वाले, राष्ट्रीय आंदोलन का दूसरा दौर निश्चय ही हिन्दू राष्ट्रवादिता तथा पुनरुत्थान से प्रेरित था। तिलक कट्टर परम्परावादी थे और उन्होंने राजनैतिक आंदोलन को गीता के दान की पृष्ठभूमि प्रदान की थी। लाला लाजपत राय, एक ओर, कट्टर आयसमाजी थे और दूसरी ओर, राष्ट्रवादी कांग्रेसी नेता। लाजपतराय, तिलक और मोतीलाल पोष को अपनी रुढ़िवादिता पर गर्व था। नयी पीढ़ी के उग्र विचार वाले लोगों ने, जिनमें अरविन्द का स्थान मुख्य है राष्ट्रवादिता को धार्मिक तथा रहस्यवादी रंग में रंग दिया और इस विकास का परिणाम यह हुआ कि, बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में, भारतीय राष्ट्रवादिता विभिन्न रूप से हिन्दूवादी हो गई—पानिकर वही पृष्ठ 218

कर दिये ता राष्ट्रवादिता की आग प्रज्वलित् हो उठी । बंगाल के विभिन्न वर्गों तथा धर्मों के लोग राष्ट्रवादी विचारों से प्रेरित हो उठ और उसके फलस्वरूप विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार, स्वदेशी तथा स्वराज्य आंदोलन का जन्म हुआ । सन उन्नीस सौ पाँच में जब जापान ने रूस को तुशीमा (Tushima) के युद्ध में पराजित किया तो भारतीय राष्ट्रवादिता के आंदोलन को एक नई प्रेरणा मिली । जापान की विजय से यह विचार जार पकड़ने लगा कि कोई भी एशियाई देश अपनी प्राचीन सभ्यता को अक्षुण्ण बनाये रख कर भी, राजनतिक तथा सामरिक दृष्टि से किसी भी योरोपीय राष्ट्र से अधिक सशक्त हो सकता है वशत कि वह योरोपीय तौर तरीकों का अपनाये । इससे यह भी निष्कर्ष निकाला गया कि स्वतंत्रता के लिए भारत को योरोपीय राजनैतिक, व्यापारिक तथा शिक्षण पद्धतियों को अपनाने की आवश्यकता है न कि अपनी प्राचीन सभ्यति और सामाजिक तथा धार्मिक आदर्शों का छोड़ने की ।

बीसवीं शताब्दी के द्वितीय दशक के मध्य में जब प्रथम महायुद्ध छिड़ा तो भारत के सिपाहियों का अय देगों में सम्पक बढ़ा और भारत की आर अय देशों का ध्यान आकृष्ट हुआ, क्योंकि इस युद्ध में सबसे बड़ा योगदान भारतीयों का था । इस युद्ध के पश्चात्, कांग्रेस का नतत्व महात्मा गांधी के हाथ में आया । महात्मागांधी ने नमक सत्याग्रह, दाही यात्रा चम्पारन के किसान तथा अहमदाबाद के मजदूर आंदोलनों विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार तथा खादी, चरखा और ग्रामोद्योग के विकास व आन्दोलनों के द्वारा राष्ट्रीय आंदोलन का, एक नयवर्गी आंदोलन के स्थान पर, एक जन आंदोलन बना दिया ।

महात्मा गांधी के नतवकाल में भारतीय राष्ट्रवादिता में जनवादी तथा समव्यकारी प्रवाह चले ता, साथ ही साथ, हिंदू तथा मुस्लिम राष्ट्रवादी विचारों का समानांतर विकास भी हुआ । प्रथम तथा द्वितीय महायुद्धों के बीच में, भारतीय राष्ट्रवादिता का चरम विकास हुआ और अन्तर्राष्ट्रीय जनमत उसके पक्ष में आया । इसकाल में, भारत ने एक आर, राष्ट्रवादिता के नारे को बुलन्द किया तो, दूसरी आर, साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद के विरुद्ध आवाज उठाकर अन्तर्राष्ट्रीय भाई चारे के विचार का प्रोत्साहित किया । इसकाल में 'वसुधैव कुटुम्बकम् आत्मवत् सर्वभूतेषु' 'अविभक्त विभक्तेषु' पंडिता समदर्शिता, 'जनेकांतवान्' तथा श्यामाद जसो भारतीय धारणाओं न भारत के राष्ट्रवादी विचारों का इतना प्रभावित किया कि भारतीय राष्ट्रवादिता में अन्तर्राष्ट्रीयता का वह पुट आया जा आज भी विद्यमान है । उष मुस्लिम राष्ट्रवादिता से निरन्तर समझौता करने की ऐतिहासिक प्रक्रिया इसी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की उत्पत्ति है । इस्लाम का जन्म और प्रसार ही उष राष्ट्रतर (Supernational) मजहबी राष्ट्रवादिता में हुआ था । इस्लाम के अन्तर्राष्ट्रीय संगठन में खिलाफत का महत्वपूर्ण स्थान इसका एक ऐतिहासिक प्रमाण रहा है । खिलाफत के ही प्रश्न को लेकर, कुछ काल के लिए हिंदुओं तथा मुसल-

मानो का राष्ट्रीय आन्दोलन में सहयोग भी हुआ। लेकिन यह सहयोग स्थायी न रह सका। हिन्दुत्व और इस्लाम ने राष्ट्रवादिता को अलग अलग प्रेरित किया जिसका परिणाम हुआ भारत का हिन्दुस्तान तथा पाकिस्तान नामक दो राष्ट्रीय विभाजन।

भारतीय राष्ट्रवादिता के कुछ सांस्कृतिक ऐतिहासिक सद्बन्ध रहे हैं जिन पर यहाँ विचार करना आवश्यक है क्योंकि बिना उनके विश्लेषण के भारतीय राष्ट्रवादिता के सामाजिक स्वरूप को नहीं समझा जा सकता है। अंग्रेजी राज में, भारत के राजनैतिक एकीकरण तथा औद्योगिक पजीवादी सामाजिक रूपांतरण से जो एकीकरण तथा मध्यवर्गीय आन्दोलन उत्पन्न हुआ था उससे राष्ट्रवादिता के उन्नयन को प्रेरणा मिली। लेकिन, यह सामाजिक ऐतिहासिक प्रक्रिया वस्तुतः उस प्रक्रिया से उत्पन्न हुई थी जो अंग्रेजी राज के पहले ही भारत में उत्पन्न हो चुकी थी। हिन्दुत्व की उत्पत्ति ही इस राष्ट्रवादी ऐतिहासिक प्रक्रिया में हुई थी जिसका अन्ततोगत्वा उद्देश्य था भारत का एक राजनैतिक संगठन, एक संस्कृति और एक समाज। यह पहल ही कहा जा चुका है कि, अपने सांस्कृतिक ऐतिहासिक सद्बन्ध में, हिन्दुत्व वस्तुतः यह सामाजिक सांस्कृतिक आन्दोलन रहा है जिसका उद्देश्य रहा है भारत के विजातीय समाज को सामाजिक सांस्कृतिक एकता प्रदान करना। अंग्रेजों द्वारा बुद्धवाद को राजघम के रूप में अपनाए जाने पर जो हिन्दू-बौद्ध संघर्ष उठ खड़ा हुआ वह वस्तुतः दो विभिन्न राष्ट्रवादी तरीकों का मध्यम था। बौद्धों ने, पराजित होने पर, इस्लाम का स्वागत किया जिसके फलस्वरूप हिन्दुत्व, एक ओर प्रबल बौद्ध विरोधी हुआ और, दूसरी ओर, इस्लाम विरोधी। इस्लाम के बटूर अरबीपन से हिन्दुत्व में बटूर राष्ट्रवादिता आई जिसकी परिणति, शिवाजी के तथा गुरु गोविन्द सिंह के आन्दोलन में हुई।

अंग्रेजी राज की स्थापना से हिन्दू राष्ट्रवादिता को पनपने का अवसर मिला और वह पनपी भी। अंग्रेजी राज की स्थापना के बाद, राष्ट्रवादिता की पहली लहर हिन्दुओं में ही आई और हिन्दू ही राष्ट्रवादिता के अप्रदूत हुए। खिन्नाफत आन्दोलन के कुछ वर्षों को छोड़ कर, कांग्रेस के तत्वावधान में चलने वाले राष्ट्रीय आन्दोलन की सजीवनी शक्ति मुख्यतः हिन्दू जनता तथा हिन्दू पुनर्जनन के आन्दोलन में रही है और भारतीय राष्ट्रवादिता का हिन्दू-संस्कृति से प्रेरणा मिलती रही है। शिवाजी और गुरु गोविन्द सिंह दोनों ने शक्ति (दवी) से प्रेरणा ली थी। भारत के इतिहास में जब-जब राष्ट्रीय संकट का काल आया है तब-तब रणचण्डी, भवानी और दुर्गा से प्रेरणा ली गई है। चीन के शापमण से जा राष्ट्रीय संकट की स्थिति आई है, वह भी हमना प्रपञ्च नहीं है। अरबिन् न इसी दशक परम्परा का प्रातिकारी राष्ट्रवादी आन्दोलन में समाया गया। प्रातिकारी दल के लिए देवी भगवती की प्रतिमा के सामने दण्ड का आजाद करने का व्रत लिया करते थे। प्रातिकारी आन्दोलन का प्रचार बंगाल, महाराष्ट्र

और पंजाब में ही अधिक हुआ क्योंकि वहाँ हिंदू राष्ट्रवादी आन्दोलन पहले ही से विद्यमान था। तिलक और गांधी दोनों न गीता की कमयोगी की धारणा से प्रेरणा ली है। गांधी को स्वराज्य की कल्पना रामराज्य में प्रेरित थी और मुस्लिम राष्ट्रवादिता के प्रति उनका दृष्टिकोण अनेकान्तवादी भावना से प्रेरित था। महात्मा गांधी के राष्ट्रवाद का एक प्रेरणास्रोत हिंदू जाध्यात्मिकता थी और दूसरा, वर्णाश्रम व्यवस्था जो गांधी के आदर्श समाज का आधार है। यदि तिलक ने गणेशपूजा को अपने राजनतिक आन्दोलन का आधार बताया तो महात्मा गांधी ने वीतन, भजन और प्राथनासभा को अपने राष्ट्रवादी विचारों को व्यक्त करने का माध्यम बनाया।

जयजी राज्यकाल में प्रादेशिक भाषाओं का विकास हुआ और प्रादेशिक भाषाओं में प्रकाशित साहित्य तथा समाचारपत्रों से राष्ट्रवादी विचारों का काफी प्रचार हुआ। प्रादेशिक भाषाओं के साहित्य पर भी भारतीय राष्ट्रवादिता के विभिन्न प्रवाहों का प्रभाव पड़ा। इसकाल में ऐसे कवि और लेखक उत्पन्न हुए जिन्होंने राष्ट्रवादी विचारों को व्यक्त करने के लिए हिंदू जीवन तथा हिंदू काल की ऐतिहासिक घटनाओं से प्रेरणा ली। बंगाल में द्विजेन्द्रलाल राय और हिंदी में जयशंकर प्रसाद जैसे नाटककारों ने मुख्यतः हिंदूकाल के राष्ट्रीय सकट की उड़ी विपन्न परिस्थितियों को अपने कथानकों का विषय चुना जिनमें भारतीयों ने अपनी राष्ट्रीय एकता को प्रोत्साहित करके किसी बाह्य शत्रु का सामना किया है। जयशंकर प्रसाद के चंद्रगुप्त और स्कंदगुप्त नामक नाटकों में ऐसी ही सकटकालीन परिस्थितियों का चित्रण किया गया है। चंद्रगुप्त का काल यूनानियों के साथ सघष का काल है और स्कंदगुप्त का काल हूणों से सघष का। यह सतत विकसित हिंदू राष्ट्रवादिता का ही प्रभाव कहा जा सकता है कि जयशंकर प्रसाद तथा द्विजेन्द्रलाल राय ने अलग अलग चंद्रगुप्त मीथ पर नाटक लिखे और उसके द्वारा राष्ट्रवादिता के विचारों के प्रवाह का भाग बढ़ाया। द्विजेन्द्रलाल राय में एक और विकास मिला है। एक ओर उन्होंने चंद्रगुप्त पर नाटक लिखा तो, दूसरी ओर मेवाड़ पतन पर। सम्राट चंद्रगुप्त जो चंद्रगुप्त नाटक का नायक है सम्पूर्ण देश को एक साम्राज्य में बांधने का इच्छुक और यूनानियों की पराजय का प्रतीक है। चंद्रगुप्त प्रेरणा है उस राष्ट्रवादिता की जो यूनानियों की भाँति अग्नि को हरा कर, भारत को एकसूत्र में बांधने की प्रेरणा देती है। किंतु मेवाड़ पतन का नायक राणा अमरसिंह मुगलों से युद्ध करने में रत है और मुगल मेवाड़ का तहम नहस करने के लिए तत्पर है। मेवाड़ पतन हिंदू मुस्लिम सघष का प्रतीक है। इसकाल में अकबर को हिंदू मुस्लिम एकता का राष्ट्रीय आदर्श माना गया तो अकबर के विरोधी महाराणा प्रताप को देश के लिए मर मिटने वालों का आदर्श माना गया। एक ओर हिंदू मुस्लिम एकता का प्रयास किया गया और दूसरी ओर मुगल-साम्राज्य के विरुद्ध लड़ने वाले गिवाजी को राष्ट्रनायक के रूप में प्रस्तुत किया गया। जय सोमनाथ में कहेयालाल

मानिकलाल मुन्शी ने, एक ओर, यह चित्रित किया कि हिन्दुओं में एकता की कमी के कारण महमूद के आक्रमणों के समक्ष उनकी हार होती रही और दूसरी ओर, उन्होंने मुस्लिम आक्रमणकारियों को नगसता तथा हिन्दू शीय को चित्रित किया। उन् साहित्य भी हिन्दू राष्ट्रवादी तथा मुस्लिम राष्ट्रवादी अभिव्यक्ति में भर गया। हिन्दू राष्ट्रवादिता न टगौर को जन्म दिया और मुस्लिम राष्ट्रवादिता न इकबाल का। इकबाल का, एक ओर, यह लिखना कि 'मजहब नहीं सिखाता घ्रापस में वर रखना, हिन्दी हैं हम बतन है हिन्दी शम्ता हमारा' और, दूसरी ओर, भारतीयतावादी मुसलमानों का यह कह कर उताड़ना कि 'बुने हिन्दी कि मजहबत में बिरहमन भी हुए तुम' उस सधपात्मक राष्ट्रवादी विभेद का परिचायक है जो भारतीय समाज में ममा चुका था।

प्रादिक भाषाओं में लिखा जाने वाला साहित्य, एक ओर भारतीय राष्ट्रवादिता का प्रतिबिम्ब और प्रेरक बना तथा दूसरी ओर, हिन्दू राष्ट्रवादिता तथा मुस्लिम राष्ट्रवादिता का प्ररक। इमीके फलस्वरूप एक ओर सरकार द्वारा स्थापित धननिरपण स्कूल तथा कालेजा का सगटन हुआ और, दूसरी ओर, आमसमाजी, सनातनधर्मी तथा इस्लामिया स्कूला और कालेजा के सगटन की प्राप्ताहन मिला। साम्प्रदायिक गिशा-सम्थाओं ने साम्प्रदायिक राष्ट्रवादिता का ही बढावा दिया। साम्प्रदायिक राष्ट्रवादिता ने, एक ओर, हिन्दू कट्टरता तथा पुनरन्वयन को जन्म दिया तथा, दूसरी ओर, इस्लामी कट्टरता तथा पुनरन्वयन का। राजनैतिक राष्ट्रवादी आन्दोलन में एक ओर इण्डियन नेशनल काग्रेस का अगत उदारवादी और अगत हिन्दूवादी आन्दोलन उप्पन हुआ ता, दूसरी ओर, हिन्दू महासमा, राष्ट्रीय स्वयसेवक सध, जनसध तथा मुस्लिम लीग जसी राष्ट्रवादी साम्प्रदायिक म्थायें अस्तित्व में आईं। अग्रजी राज्यकाल में ये म्थायें कमी भी कबल राजनैतिक सस्यायें नहीं रही हैं। राजनैतिक तथा सांख्यिक साम्प्रदायिक राष्ट्रवादिता न उन्हें एक साथ प्ररणा दी है। इसीकारण, भारतीय राष्ट्रवादिता, प्रगतिवादी रही है और, साम्प्रदायिक प्रतिप्रियावादी भी।

विवाह, परिवार और जाति

यूरोपीय सभ्यता और जर्मनी राज के सघात से जो परिस्थितियाँ उत्पन्न हुईं, उनका परिवर्तनकारी प्रभाव विवाह, परिवार और जाति पर पड़ा और उसका फलस्वरूप उनमें परिवर्तन आया। धार्मिक रूपांतरण ने उन नई परिस्थितियों को जन्म दिया जिनसे पहले विवाह परिवार और जाति के परम्परागत धार्मिक आधार झटके और फिर उन आधारों के बदलने से, विवाह परिवार और जाति में परिवर्तन आया। सहरीकरण और औद्योगीकरण ने नए व्यक्तिवादी सामाजिक आदर्शों को जन्म दिया। अंग्रेजी शिक्षा तथा इसाइया के प्रचार के द्वारा नई यूरोपीय सभ्यताओं का प्रचार हुआ जिनका प्रभाव में विवाह परिवार और जाति से सम्बंधित आधारभूत सभ्यताओं और आदर्शों की समालोचना और पुनर्परीक्षण किया गया। हमानो प्रेम, विवाह में व्यक्तिगत स्वच्छता यौन-सन्तुष्टि के प्रति प्रकृतिकारी दृष्टिकोण नारी अधिकार, पारिवारिक सम्बन्धों में प्रजातन्त्रवादी विचारों की मांग के विचार इसी काल में पड़े। इन विचारों का प्रसारण यूरोप से हुआ है—उस यूरोप से जिसमें धार्मिक प्रौद्योगिकी, सहरीकरण औद्योगीकरण, पूँजीवाद, उत्तरवाद, साम्यवाद, इसाइयत और रोमन विधिप्रणाली हैं, इन विचारों को जन्म दिया था। यह पहले

बना जा चुका है कि अंग्रेजी राज में, गैर-विधि प्रणाली के मूल सिद्धांतों का अनुसरण करते हुए, इस काल के भारत में, हिंदू और मुस्लिम स्वीय विधि प्रणालियों का सहित्वाबद्ध करने तथा उन्हें निश्चित ढंग से निवृत्त करने का प्रयत्न किया गया। अतएव स्थापित होने ही यह प्रश्न उठा कि वैदिक दृष्टिकोण से हिंदू कानून है, मुसलमान कौन है और विभिन्न हिंदू मुस्लिम-परम्पराओं के अधिक आधार क्या है ?

अतएव क कारण इस्लामी परम्पराओं में, हिंदू परम्पराओं की अवस्था, अधिक निश्चितता थी। उधर, नई मायताओं के कारण, अनेक सुधारों की आवश्यकता बनने तथा उनका वैध आधार प्रदान करने की समस्या उठ खड़ी हुई जिसके कारण नये अधिनियमों की आवश्यकता पड़ी। उदाहरणार्थ, जब ब्रह्मसमाजियों ने वैवाहिक समझौते को सम्पन्न करने के लिए, एक अलग अनुष्ठान-पद्धति की रचना की तब यह प्रश्न उठा कि अनुष्ठान पद्धति के आधार पर सम्पन्न विवाह वैध है या नहीं। सरकार की ओर से यह कहे जाने पर कि हिंदू विधि प्रणाली के अनुसार, ब्रह्मसमाजी अनुष्ठान-पद्धति का आधार पर किया हुआ विवाह वैध नहीं है, ब्रह्मविवाह का वैधता प्रदान करने के लिए एक नए कानून की आवश्यकता पड़ी। किंतु जब सरकार ने ब्रह्म विवाह अधिनियम पारित किया, तो उसका विरोध किया गया और उसका फलस्वरूप स्पेशल मैरिज एक्ट (1872) का जन्म हुआ, जिसमें अंतर्जातीय तथा अंतर्सांस्कृतिक विवाहों को मायता देकर, बालिग नवयुवक और नवयुविका का अपना जीवन साथी चुनने का अधिकार देकर और तत्पश्चात् के लिए विधान बनाकर विवाह का जाति परिवार, सम्प्रदाय और सम्बन्धों के अधिकार से मुक्त करके, सरकार के स्थान पर समझौता बना दिया गया। यही एक नए समाजों तथा मिश्र समाजों विवाहों का वैधता प्रदान करने के लिए उठाया गया।

परम्परागत हिंदू विधि प्रणाली में, नारी को सम्पत्ति तलाक और विधवा हान पर पुनर्विवाह करने का अधिकार न था। विधवा-पुनर्विवाह और तलाक के स्थान पर हिंदू शास्त्रकारों ने नियोग का विधान रक्खा था, जो वास्तविक काम पर आदेश अधिक था। उसी प्रकार निम्नस्तर की जाति के सम्बन्ध में सामाजिक आर्थिक नियंत्रणों का विकास था। अंग्रेजी राज के मध्य में जब नई सामाजिक आर्थिक परिस्थितियाँ अस्तित्व में आईं और समतावादी, व्यक्तिवादी, स्वतंत्रतावादी और राष्ट्रवादी आशाएँ भारत में फैलीं, तब सामाजिक आर्थिक मायताओं सामाजिक समस्याओं को हल करने में सहायक बन गईं। ईसाई मिशनरियों ने एसी ही समस्याओं का लक्ष्य हिंदूत्व को आलाचना करने का था। परन्तु, हिंदूओं ने अपना पुनर्जागरण प्रारम्भ किया। धर्मशास्त्रों का मथन और निवृत्तन शुरू किया गया और इस निवृत्तन के द्वारा धर्म सिद्ध किया जाना लगा कि शास्त्रों में सती, विधवा-पुनर्विवाह

नारी को सम्पत्ति और तलाक का अधिकार न देने, बाल विवाह, स्त्री शिक्षा को न अपनाने तथा अस्पश्यता और ऊच-नीच के भेदभाव का अनुमोदन नहीं है। एक नये प्रगतिशील तथा नई परिस्थितियों के अनुसार सुयुक्तपूण समाज की स्थापना के लिये स्वयं हिन्दुओं ने सुधारों की माग की और सामाजिक विधान द्वारा, समाज और सस्थाओं के सुधार के लिए आन्दोलन किया। इसका परिणाम यह हुआ कि धीरे धीरे उन अनेक अविनि यमा¹ को पास किया गया जिनसे विवाह परिवार और जाति में परिवर्तन आए।

विवाह, परिवार और जाति में परिवर्तन लाने वाले कारकों को तीन श्रेणियों में रखा जा सकता है—पहली श्रेणी में आर्थिक सामाजिक कारक आते हैं दूसरी में वैधिक-धार्मिक कारक और तीसरी में नई सामाजिक सांस्कृतिक मर्यादाएँ जादस, अर्थात् और उत्प्ररणायें, जिनका अन्मुदय पश्चिम के सघात से हुआ। किंतु इन सभी कारकों का अन्मुदय धीरे धीरे हुआ है जिसके कारण विवाह, परिवार और जाति में होने वाले परिवर्तन विशृंखलक न होकर उदविकासी रह है। योरोप के सघात से भारतीय सामाजिक सांस्कृतिक परिवर्तन पुनरन्वयनवादी रहा है। विवाह परिवार और जाति में होने वाले परिवर्तन भी पुनरन्वयनवादी विचारधारा से प्रभावित रहे हैं और, इसकारण अंग्रेजी राजकाल में विवाह, परिवार और जाति में सम्बन्धित अनेक परम्पराओं और परम्परागत विचारों को, अस्पष्ट धार्मिक वधता के स्थान पर, निश्चित सामाजिक वधता मिली है।

विवाह का मूल अर्थ कपाडिया के अनुसार, वर द्वारा वधू का अपने घर ले जाने से है किंतु अपने दृष्टिकोण में विवाह प्रतीक है उन सभी समागहों और कर्मकाण्डों का जो बरीच्छा से लकर सोहागरात जोर गौने तक किए जाने हैं और जिनके द्वारा नर-नारी समाज द्वारा माय पति पत्नी के सम्बन्धों में बंधकर माता पिता की भूमिका ग्रहण करत हैं और परस्पर सामाजिक आभारा तथा अधिकारों को निभाने हैं। विवाह का यह मूलरूप, भारत की विभिन्न जातियाँ गणजातियों, सामाजिक सांस्कृतिक समूहों (हिन्दू मुस्लिम आदिवासी) और क्षत्रा (जसे जौनसार बाबर नीलगिरि, वरज और पामी प्रदेश) में विभिन्न रूपों में पाया जाता है।

- 1 हिन्दू सस्थाओं में परिवर्तन और स्थायित्व लाने वाले मुख्य अधिनियम ये हैं - दि कास्ट डिजेबिलिटीज रिमूवल एक्ट (18५0), हिन्दू विडोज रिमरिज एक्ट (18५6), हिन्दू डिस्पोजीशन ऑफ प्रापर्टी एक्ट (1916), हिन्दू गे स ऑफ लनिंग एक्ट (1930), दि हिन्दू ला ऑफ इनहरिटेस एक्ट (1929), हिन्दू वम स राइट्स टु प्रापर्टी एक्ट (1937) दि स्पगल मरिज एक्ट (19५1) दि हिन्दू मरिज एक्ट (1955), दि हिन्दू सबसेशन एक्ट (19५6), दि हिन्दू मईनारिटी एण्ड गार्जियनशिप एक्ट (1956) दि हिन्दू एडवोकेट एण्ड मेटर्नेस एक्ट (19५6)—देविण शायबाला एन० एच० कृत प्रिन्सिपल्स ऑफ हिन्दू ला।

सामाजिक-सांस्कृतिक समूहों के सद्बन्ध में विवाह के तीन मुख्य प्रकार—हिंदू, मुस्लिम और आदिवासी—पाए जाते हैं। पश्चिमी सभ्यता के सघात से इन तीनों प्रकारों में परिवर्तन आया है। आदिवासी विवाह का वर्णन आदिवासी संस्कृति के सद्बन्ध में किया जायगा। यहाँ हिंदू और मुस्लिम विवाहों पर यूरोपीय सभ्यता का सघात और उससे उत्पन्न परिवर्तन का वर्णन किया जाता है।

२

हिन्दू-विवाह

हिंदू विवाह का दो रूप रहते हैं—एक शास्त्रीय, जिसका प्रतिपादन शास्त्रों में किया गया है और दूसरा, व्यावहारिक अर्थात् जो विभिन्न जातियों और क्षेत्रों में मिलता है। हिन्दू विवाह का व्यावहारिक रूप विचरणशील रहा है और विवाह का शास्त्रीय प्रतिपादन में एकमतता नहीं रही है। उदाहरणार्थ शास्त्रों में विधवा विवाह का अनुमोदन नहीं है किन्तु हिंदू सामाजिक संरचना के मध्य तथा निम्नस्तरों में पाइ जाने वाली अनेक जातियों में विधवा विवाह होता रहा है। शास्त्रों में सामाजिक विवाह-विच्छेद का अनुमोदन नहीं है किन्तु मध्य तथा निम्नस्तर की जातियों में विवाह विच्छेद का विधान रहा है। जिन कमकाण्डों का शास्त्रों में वर्णन है उनका प्रयोग उन्हीं जातियों में होता रहा है जिनमें प्राज्ञान-शुद्धि विवाह सम्पन्न करवाता रहा है। कन्यादान की धारणा ने विवाह में कन्यादान करने वाले का दक्षिणा देने की आवश्यकता का जन्म दिया जिसने, मद्रास आदिबन्ध व्यवस्था में दहज का रूप लिया। किन्तु, दहज केवल उच्चवर्णी जातियों में ही सीमित रहा। मध्य तथा निम्नवर्णी जातियों में वधु धन की प्रथा चलती रही। अथवा की उच्च जातियों में वर की वारात जाती है किन्तु निम्न स्तर की जातियों में वधु की वारात (पगल-जी) जाती है। यूरोपीय सभ्यता के सघात से चलती हुई आदिबन्ध परिवर्तितियों में जब निम्नस्तर की जातियों की आर्थिक स्थिति सभली और नये आर्थिक कारणों से निम्नस्तर की जातियों में अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा का उद्धार का प्रयास किया, तो उन्होंने शास्त्रीय विधि विधान, दायित्व द्वारा सम्पन्न कमकाण्ड, कन्यादान वारात दहज विधवा पुनर्विवाह—तथा तत्काल निषेध अथवा प्रारम्भ किया। पश्चिमी सभ्यता के सघात में उच्च परिस्थितियों में उच्चवर्णीय जातियों में विवाह-संस्कारों का कमकाण्ड का संरक्षण तथा पश्चिमीकरण की ओर अग्रसर हुई और निम्नवर्णी जातियों में शास्त्रीय कमकाण्ड की जटिलता का अन्त।

पश्चिमी सभ्यता के सघात से दसदशक हिंदू समाज के एक स्तर पर विवाह सम्बन्धी शास्त्रीय विधि विधान और कमकाण्डों को अन्त पर आरंभ दिया

गया तो दूसरे स्तर पर शास्त्रीय विधि विधान के पुनर्परीक्षण, पुनर्निवचन, सरलीकरण, सुधार और उम वधिक बनाने पर जोर दिया गया। इसके फलस्वरूप, परम्परा के पुनरुत्थान और सुधार पर एक साथ जोर दिया गया। योरोपीय मापदण्डों और नई परिस्थितियों की आवश्यकतानुसार ज्यों ज्यों प्रचलित विवाह परम्पराओं की आलोचना की गई तथा शास्त्रों द्वारा प्रतिपादित वैवाहिक मर्यादाओं और परम्पराओं के सुधार और पुनरुत्थान पर जोर दिया गया और शास्त्रों के ही प्रमाणों पर नये सुधारों और पुनरुत्थान की मांग की गई। सुधारवादी पुनरुत्थान प्रगतिवादी विचार बना और यथावत पुनरुत्थान सनातनी विचार। इसी कारण एक ओर ब्रह्मममाजी तथा जायसमाजी विवाह पद्धतियों का अस्तित्व हुआ और दूसरी ओर, परम्परागत सनातनी पद्धति का। किंतु साथ ही साथ विवाह का अधिक आधार प्रदान करने का विचार भी चलता रहा जिसका परिणामस्वरूप सिविल मरिज (सनातनी विवाह) के रूप में एक तीसरी पद्धति अस्तित्व में आई। यह पद्धति अशत हिंदू है और अशत अनादी। हिंदू मरिज एक्ट (1905) उन विवाहों पर लागू होता है जो सजातीय हैं और परम्परानुसार सगात्र सप्रवर और सपिण्ड नहीं हैं। यदि परम्परा सगात्र, सप्रवर और सपिण्ड विवाह की अनुमति देती है तो हिंदू मरिज एक्ट के अनुसार ऐसा विवाह वैध है। विवाह संस्कार और वरकाण्ड वर या वध या दोनों वरों की सम्मिलित प्रथाओं के अनुसार सम्पन्न किए जा सकते हैं किंतु जहाँ परम्परानुसार सप्तपदी वैवाहिक वरकाण्ड का एक भाग है वहाँ बिना सप्तपदी के विवाह वैध नहीं समझा जायगा। साधारणतः हिंदू मरिज एक्ट के अनुसार विवाह शाम और सप्तपदी हिंदू विवाह की वैधता के दो वरकाण्डों का आधार हैं। किंतु स्पेशल मरिज एक्ट (1954) में जिसका उद्देश्य अंतरजातीय और अंतःसम्प्रदाय विवाहों का वैधता प्रदान करना है विवाह शाम सप्तपदी और श्राद्धग पुर्णित वरकाण्ड पर तीन गवाहों और विवाह अफसर की उपस्थिति में वधु स एव दूसरे की पति पत्नी बनने की प्रतिज्ञा करवाने तथा विवाह के निबन्धन (Co-nsentration) का विधान है। पति पत्नी विवाह अपसर स अपने विवाह का सर्टीफिकेट दे सकते हैं। यह विवाह-पद्धति उस विवाह पद्धति की प्रतिवृत्ति है जो इमाइयत के प्रभाव से यारोप में विकसित हुई है।

हिंदू विवाह का विक्रमण और उसमें उत्पन्न होने वाले परिवर्तन, योरोपीय संभ्रान्तों के मघात के मुख्य योगदान हैं। किंतु इन योगदानों को समझने परम्परागत वरकाण्ड हिंदू विवाह की शास्त्र प्रतिपादित सामाजिक साम्प्रतिक विरासतों का समझना आवश्यक है। हिंदू विवाह नर नारी के लिए गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने अथवा आराम की साधना का मुख्य माध्यम है। विवाह के बिना पुरुषाथ की साधना सम्भव नहीं है। अतः, विवाह धर्म-साधना आत्मानर्ति और देव, पितृ ऋषि तथा समाज के ऋणात्तों का चुकाने का

एक आवश्यक माध्यम है, जिसकी अवहेलना व्यक्ति नहीं कर सकता है। विवाह एक संस्कार है जिससे धर्म, प्रजा (संतान) और रति (आनंद) की साधना होती है। विवाह के उद्देश्य में रति का स्थान निम्नतम है। हिंदू के लिए पत्नी पुरुषाण और गृहस्थाश्रम का मूलाधार है। विवाह से पितृकरण में उद्कृष्टता मिलती है नर-नारी के सम्बंध नियमित होते हैं, अत्येष्टि क्रिया सम्पन्न करने के लिए पुनः की प्राप्ति होती है समाज में व्यवस्था आती है और व्यक्ति का धर्म तथा मान्य की साधना में सहायता मिलती है। पुत्र प्राप्ति और प्रजनन क्रिया हिंदू के लिए धार्मिक क्रियाएँ हैं। विवाह शरीर-संस्कार भी है और धार्मिक संस्कार भी। केवल शूद्र विवाह में ही इन्द्रिय-मुख की प्रधानता दी जाती है। नर-नारी का पति पत्नी के रूप में मिलन आदि पुरुष और आदि प्रवृत्ति के दो इहलौकिक प्रतीका का मिलन है और इसलिए यह मिलन शरीरी भी है और रहस्यात्मक भी। यह मिलन, समकारण अविच्छेद्य है, शाश्वत है जिसे कमवाटा द्वारा सम्पन्न करके, पति पत्नी के रूप में मिलन वाले नर-नारी को उच्च अविच्छेद्य और शाश्वत मिलन की गरिमा का अनुभव कराया जाता है। विवाह अलौकिक बंधन है जिस कमवाटा के द्वारा धर्म भी अलौकिक रूप देने का प्रयास किया गया है। वैवाहिक कमवाटा में देव पिता का आवाहन, न्यायदान, विवाह होम के द्वारा अग्नि को साक्षी बनाना और सप्तपदी विवाह में अलौकिक पुट रत्न हैं। विवाह पति-पत्नी के बीच एक अलौकिक, अविच्छेद्य और शाश्वत गठबंधन है। पत्नी सहस्रमिणी है क्योंकि बिना पत्नी के गृहस्थ का कोई भी धार्मिक कृत्य सम्पन्न नहीं हो सकता है। धर्म, अर्थ, काम और गृहस्थाश्रम के आधारों का निगमन के लिए पत्नी आवश्यक है। पुरुष गृहपति है तो नारी गृहस्थि और गणनी।

संस्कार के रूप में विवाह एक सामाजिक धार्मिक कृत्य है। समकारण, विवाह मूल में बंधन मात्र नर-नारी नहीं करन विवाह के सामाजिक पटन महत्वपूर्ण है। व्यक्ति पितृ का ऋणी है, इसलिए विवाह में पितृ का और पितृ के माध्यम से परिवार का महत्त्व बढ़ जाता है। विवाह, पति-पत्नी के मध्य में बंधन मात्र नर-नारी में, समन्वयतामय नहीं है करन उनकी आत्मोन्नति अभ्युत्थ और निश्चय के लिए एक विधान है। अतः, विवाह में नर-नारी के अभिभावक का महत्त्व बढ़ जाता है। सभी दशा में व्यक्ति के स्थान पर कुल और परिवार की मत्ता बढ़ जाती है। विवाह केवल मंगल नहीं करन सामाजिक बंधन है। व्यक्ति में अधिक महत्त्वपूर्ण है मंगल की सामाजिक बंधन जो संवेगन नियमों के द्वारा प्रतिपादित पत्नी है। हिंदू श्रमणात्मन की धारणा में सपिण्ड, सप्रवर और सगान विवाह अवयव हैं। गण-वत्स्य के अनुसार सपुत्र तो घर की सपिण्ड हानी चाहिए और सप्रवर के गान और सप्रवर की हानी चाहिए। सपुत्र की घर की माता की पांच पीढ़ियों और पिता की सात

पीढ़ियों के उस पार की होना चाहिए¹। मिताक्षरा के अनुसार, जिन व्यक्तियों में एक ही पूज्य का रक्त है, वे सपिंड हैं। दायभाग के अनुसार, जो पिंडदान की अन्वष्टि त्रिया सबध हैं वे सपिंड हैं। एक ही पूज्य की सत्तान पिंडदान की अन्वष्टि त्रिया सबधत है। मिताक्षरा विधान के अनुसार, वे सपिंड जो एक ही पूज्य की सत्तान है और माता की ओर से पाच पीढ़ी तथा पिता की ओर से सात पीढ़ी में आते हैं, विवाह के अधिकारी नहीं हैं। साधारण नियम यह है कि वर और वधू एक ही कुल के न हों, क्योंकि कुल एक विस्तृत परिवार है जिसकी एकता बनाए रखने के लिए सपिंड, सगोन और सप्रवर विवाह का निषेध बाह्यनीय है।

सपिंड सप्रवर और सगोन विवाह निषेध एक ऐसा आदर्श शास्त्र नियम है जो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वश्य जातियों में सामान्यतः पाया जाता रहा है यद्यपि इन जातियों में भी इसके अपवाद मिल जाते हैं। हटन के अनुसार बिहार के साकल्यपी ब्राह्मणों में सगोन विवाह का नहीं बल्कि 'सुपुर विवाह का निषेध है। उच्चवर्णी जातियों में साधारणतः सपिंड सवेतन और मा की पाच पीढ़ियों और पिता की सात पीढ़ियों में सबधान निषेध का व्यावहारिक विधान मिलता है। सपिंड, सप्रवर और सगोन तथा मा की ओर पाच पीढ़ियों तथा पिता की ओर सात पीढ़ियों में विवाह निषेध करने के कारण भाई-बहिन और पिता के भाई-बहिन मा के भाई-बहिन और सौतेली माताओं के लड़के लड़कियों में विवाह स्वतः जगमगमन की धृष्टि में आ जाता है यद्यपि भाई-बहिन के विवाह निषेध को छोड़कर सबध इस आदर्श विधान को नहीं अपनाया गया है। मा के भाई और पिता की बहिन के लड़के या लड़की से विवाह दक्षिण के द्विदुजो में उत्तम माना जाता है। शास्त्र की मान्यताओं के अनुसार विवाह सपिंड के सबधन तथा एकीकरण का आधार है। अतः, तलाक नती नियोग

- 1 गोत्र का तात्पर्य उस समूह से है जिसके व्यक्ति अठारह गोत्रकार ऋषियों में से किसी एक को अपना पूज्य मानकर, आपस में विवाह नहीं करते हैं। यदि परम्परा के अनुसार गोत्र अठारह है किंतु, वास्तविक व्यवहार में गोत्रों की संख्या अठारह से अधिक है। सभी गोत्र बन्धु ऋषियों पर ही आधारित नहीं हैं—कुछ स्थानवासी हैं और कुछ टोटमवादी। यदि गोत्र बहुधा उच्चवर्णी जातियों में पाये जाते हैं और स्थानवासी तथा टोटमवादी गोत्र निम्नवर्णी जातियों में। सगोन विवाह का आदर्श केवल उच्चवर्णी जातियों ही मानती हैं क्योंकि निम्नवर्णी जातियों में इसके अपवाद भी पाये जाते हैं। बंगाल के राजवंशी सगोन विवाह करते हैं। एक गोत्र कई जातियों में पाया जाता है। प्रवर का तात्पर्य उन ऋषियों से है जो विभिन्न गोत्रों में उत्पन्न हुए हैं और उनसे प्रत्येक गोत्र की गरिमा बढ़ी है। हर गोत्र के अलग-अलग प्रवर हैं।

महत्वपूर्ण है क्योंकि तलाक से सपिंड खंडित होता है जबकि नियाग से बढ़ता है । इसी दृष्टिकोण से देवर और साली के साथ विवाह वाछनीय माना गया है ।

सपिण्ड, सगोत्र और सप्रवर विवाह अवाछनीय हैं किंतु सवण विवाह वाछनीय और उत्तम । अंतवण का भी विधान है पर एक गत वं साथ । पुरुष अपने वं निम्न वण की नारी से विवाह कर सकता है किंतु नारी अपने वं निम्न वण वं पुरुष वं साथ विवाह नहीं कर सकती है । इसी आधार पर अनुलाम और प्रतिलाम विवाहों में अंतर करके अनुलोम को वाछनीय और प्रतिलाम का अवाछनीय माना गया है । किसी भी पुरुष का अपने या अपने वं निम्नवण की नारी या नारिका से विवाह करना अनुलोम विवाह है और किसी नारी का अपने वं निम्नवण वं पुरुष वं साथ विवाह करना प्रतिलाम विवाह । अनुलाम विवाह के निम्नाट्टकार, ब्राह्मण, अपत वण के भगवा क्षत्रिय, वश्य और शूद्र वर्णों, पश्चिम अरब वं

समाज वण सगठन के आदर्श सिद्धांत पर सगठित जानियो मे विभक्त रहा है। हिंदू समाज ब्राह्मण जातिया क्षत्रिय जातियो वश्य जातियो तथा गूद्र जातियो म सगठित रहा है। एक वण म कई अतिवाही समूह रह है और प्रत्येक अतिवाही समूह बहिर्वाही गोत्रो और कुलो म बटा रहा है। कुला म सामाजिक प्रतिष्ठा की उच्चा-च परम्परा पाई गई है। उदाहरणार्थ, ब्राह्मणो म सारम्भत, कायकुज गौड उत्कल, मथिल (पचगोड) तथा वर्णाटक, महाराष्ट्र तलग द्रविड और गुजर (पच द्राविड) समूह है जिनम से अधिकतर अतिवाही है। कायकुज गोत्रो म बट है और प्रत्येक गोत्र कमकाण्ड पर आधारित समूह (मिथ गुप्त वाजपेई उपाध्याय इत्यादि) और प्रत्येक समूह अलग अलग सामाजिक प्रतिष्ठा वाले कुलो म¹। प्रत्येक कायकुज अपने समान या उच्च कुल म लडकी देता है और अपने से नीचे कुल की लडकी ले रता है। इसप्रकार, वास्तविक यवहार म सबण विवाह सजाति विवाह के रूप म रहा है और अनुलोम प्रतिलोम विवाह जाति अतिवाहिकी के अन्त अतिकुल विवाहो के रूप म। शास्त्रीय प्रतिपादन कुछ और रहा है और वास्तविकता कुछ और।

वरण की भिन्नता के आधार पर हिंदू शास्त्रकारो न आठ प्रकार के विवाह मान हैं—ब्राह्म दव आप प्राजापात्य अनु गंधव, राक्षस और पगच। इनमे पहले चार प्रकार वाछनीय है और दूसरे चार प्रकार अवाछनीय। इन प्रकारो की वाछनीयता और अवाछनीयता का आधार बधिक भी है। शास्त्रकारों के अनुसार पहले चार प्रकारो म नारी को पति का गोन मिलता है अत नारी के स्वीपन का अधिकारी पति होता है। किंतु दूसरे चार प्रकारो म चूकि नारी को पति का गोन नहीं मिलता है अत उसका स्वीपन उसके माता पिता के परिवार का जाता है। इस परम्परामत बधिक अन्तर का यायालयो न नारी स्वीकार विधा है। किंतु फिर भी यह अन्तर चल रहा है। वास्तविक यवहार म हिंदुओ म ब्राह्म और आमुर प्रकार ही प्रचलित हैं। ब्राह्म का मुख्य आधार वर का चुनाव करके व यादान करना है और आमुर का बध घन। बध इन प्रथा पर आधारित है न कि किसी बध सविदा पर। इन आठ प्रकार के विवाहो का शास्त्रीय मायता दान का उद्देश्य सभी प्रकार के विवाहो से उपाय सतान को सामाजिक बधता प्रदान करना है।

वर और नया का शास्त्री द्वारा निर्धारित मर्यादो के अनुसार ब्रह्मचारी होना अनिवार्य है। वर को अविलुप्त ब्रह्मचारी भ्रुतवान (व। का ताता) बधक और पुनव होना चाहिए। नया राणी न हो उसका बाल और आंगो का रंग रचना न हो उसके शरीर पर बालो की अधिकता न हो और उसकी चाल-ढाल

1. विनोय विवरण के लिये देखिये मिश्र म नीलाल की पुस्तक कायकुज यगावली।

तथा रूप रंग पुरुषा का सा न हो। जिस प्रकार वर के लिये अविलुप्त ब्रह्मचारी होना आवश्यक है उसी प्रकार कन्या के लिये यह आवश्यक है कि वह परपरिग्रहीता न हो। जिस परिवार में शास्त्र और वदा का निरादर हो, जिसमें कन्याएँ ही हों, जिसके सदस्या के शरीर पर अत्यधिक बाल हो तथा जिसके सन्त्य स्वतन्त्र, तपेदिव, अपाचन मिरगी और सपेद या काला काठ इत्यादि बीमारियों के शिकार हो, वहाँ विवाह नहीं करना चाहिये।

संस्कार गणपति के अनुसार ब्राह्मविवाह पचाग होता है। वाग्दान वरण-प्रदान (कन्यादान), पाणिग्रहण और सप्तपदी उसके पाच भ्रग हैं। वाग्दान और वरण अभिभावकों और गुरुजनों द्वारा सम्पन्न होता है। कन्यादान भी अभिभावक द्वारा सम्पन्न किया जाता है। कन्यादान का अर्थ यह नहीं है कि कन्या पर उसके पिता माता या किसी अभिभावक का वसा ही अधिकार है जिस कि किसी चल या अचल सम्पत्ति पर। कन्यादान स न किसी स्वत्व का सजन होता है, न विसजन और न हस्तांतरण का। यह अवश्य है कि कन्यादान में कन्या वर को सौंपी जाती है। कन्या का पिता दाता होता है और उसके न होने पर कन्या वर को सौंपी जाती है। श्रमण पितामह बड़ा भाई, माता या जसा कि याज्ञवल्क्य ने विधान किया है, श्रमण पितामह बड़ा भाई, माता या कोई बड़ा सम्बन्धी कन्या वर को सौंपने का काम सम्पन्न कर सकता है। दाता कोई हो सकता है पर आदाता हर दगा में वर ही होता है। गीता में निष्काम दान का सात्विक माना गया है। इस दृष्टिकोण से कन्यादान दान का प्रयोग उचित ठहराया जा सकता है। किंतु, दान की यह परिभाषा बधानिक नहीं है। दानत्रिया कौमुदी में गाविर्दान न यह कहा है कि दान वह त्याग है जो युगपत् उद्दिष्ट (नामाङ्कित) व्यक्ति में स्वामित्व उत्पन्न करता है जिसका तात्पर्य यह हुआ कि स्वामित्व दाता से आगता में चला जाता है। ता फिर क्या जामाता दान में ली हुई पत्नी का दान कर सकता है? स्मृतिकारों का उत्तर है नहीं। तब कन्या में पिता का स्वामित्व नही ठहरता है। वसिष्ठ स्मृति में माता पिता की सन्तान बेचन, दान करने और त्यागने का अधिकार है किन्तु मनु क अनुसार विद्वान पिता कन्या के लिये पाठा-मा भी सुत्व न लें। लोभवसा सुत्व लने से मनुष्य अपत्य त्रिपथी—सन्तान बेचने वाला—हो जाता है। कन्यादान विवाह का एक भग है अवश्य पर कन्यादान उतना बधानिक नहीं है जितना सप्तपदी है। कन्यादान क द्वारा पति स्वत्व नहीं बनव्य प्राप्त करता है। फिर कन्या का वर को सौंपने की त्रिया क लिये दान शब्द क्या प्रयुक्त हुआ? यह सम्भवत भाषा की सौंपने की त्रिया क लिये दान शब्द या हुआ है वा अभिव्यक्ति में व्याप्त है।

- 1 विवाह घनन के लिये श्रेष्ठिय—पी० एच० प्रभू दत्त हिन्दू सोशल आगनाइजेशन
- 2 भी सम्पूर्णानन्द हिन्दू विवाह में कन्यादान का स्थान।

तब, प्रश्न उठता है कि क्या परम्परा के रूप में कयादान एक वधानिक कालीक (Legal Fiction) मात्र है? इस प्रश्न पर दो मत हो सकते हैं। किंतु, यह एक प्रकार से निश्चित है कि वाग्दान, वरण और प्रदान (कयादान) से सम्बंधित कमकाण्ड और मयादायें विवाह में कया व अभिभावक की अनुमति को वधानिकता प्रदान करती हैं और पाणिग्रहण तथा सप्तपदी से सम्बंधित कमकाण्ड कया की अनुमति को। किंतु किस आयु में कया को यह अधिकार मिलता है और कया विवाह के योग्य होती है, इस पर शास्त्रकारों में मत विषय है। संस्कारण, जब भारत पर योरोप का सघात हुआ और भारत में व्यक्तिवादी तथा समतावादी वधानिक विचारधारा का प्रसार हुआ तो इस प्रश्न को लेकर दो मत अस्तित्व में आए— एक, उन परम्परावादियों का जिन्होंने 'दशवर्षा भवेत् भार्या' वाले स्मृति के वचन को लेकर दस वर्ष की आयु को विवाह की आयु मानकर बाल विवाह का पक्ष लिया और दूसरा उन लोगों का जिन्होंने शास्त्रों के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि शास्त्रों में बाल विवाह का अनुमोदन नहीं है और इस बात पर जोर दिया कि आक्रमणकारियों से लड़कियाँ की रक्षा करने के लिये ईसवी सन की पहली पाँच या छह सतायियों में स्मृतिकारों में कया की विवाह आयु को कम से कम करने की प्रवृत्ति रही है। स्मृतिकारों का यह मत है कि रजोत्थान के बाद यदि कया पिता के घर रहती है तो वह विश्रुता व दशा हो जाती है और ऐसी कया का विवाह न करने वाला पिता को भ्रूण हत्या का पाप लगता है। मनु ने यह विधान किया है कि ऋतुमती होने के बाद, कया के अभिभावक यदि उसका तीन साल तक विवाह नहीं करते हैं तो उस स्वयं अपना पति चुनने का अधिकार है। मनु ने वर की आयु तीस वर्ष और कया की आयु बारह वर्ष रखी है। विवाह योग्य कया के लिये 'नग्निक और 'प्राप्तयोवना' विशेषणों का भी प्रयोग किया गया है जिनका अर्थ पाठशी लगाया गया है अर्थात् वह आयु जब कया शरीर से पत्नीत्व और मातृत्व का भार उठाने योग्य हो। वर की आयु के विषय में शास्त्रकार चुप हैं। हाँ, एक यह साधारण नियम अवश्य पाया जाता है कि पुरुष का विवाह समाप्तन संस्कार के बाद होना चाहिये जो पचीस वर्ष के करीब आता है। हर दशा में इस बात का विधान अवश्य है कि वर की आयु कया से अधिक होनी चाहिये।

योरोप के सम्पर्क में आने के बाद जब बाल विवाह और बाल विधवाओं को लेकर हिंदुओं की योरोपियनों ने आलाचना शुरू की तब एक ओर इस बात पर जोर दिया गया कि सामाजिक विधान द्वारा विवाह की आयु निर्धारित कर दी जाय और, दूसरी ओर यह सिद्ध करने पर कि शास्त्रों में वयस्क विवाह का पहले ही से विधान है। डाक्टरों की राय के आधार पर कैंग्रव चन्द्र सन ने कया की विवाह-आयु चौदह साल और वर की आयु अठारह साल निर्धारित की जिसे सन् अठारह सौ बहतर में, स्पेशल मरिज एक्ट द्वारा, वधता प्रदान की गई। दयानंद ने सुश्रुत के

आधार पर यह निर्धारित किया कि क्या की आयु कम से कम सालह और अधिक-से अधिक चौबीस वर्ष और वर की कम-से-कम पचास और अधिक से अधिक जड़तालीस वर्ष होनी चाहिये। स्पेशल मैरिज एक्ट (1872) का सम्बन्ध हिन्दू विवाह से न था—उसका उद्देश्य ब्रह्म समाजी विवाह को वैधता प्रदान करना था। अतः इस काल में, हिन्दू विवाह में आयु को कानूनन निर्धारित करके बाल विवाह का रोकने का प्रयास किया गया। यह प्रयास ईश्वरचन्द विद्यासागर वं प्रयत्न से गुरु हुआ। अठारह सौ साठ में विवाह की आयु दस साल रखी गई अठारह सौ इक्कीसवें में क्या की तरह साल और वर की चौदह साल और अठारह सौ उतीस में शारदा एक्ट द्वारा क्या की चौदह साल और वर की अठारह साल। इस एक्ट में बाल विवाह को रोकने का कोई विधान न था। अतः, यह एक्ट पुलिस एक्ट ही रहा। ग्रामों में बाल विवाह चलते रहे और शहरों में जहाँ जहाँ शिक्षा का प्रसार हुआ विवाह की आयु बढ़ती रही। अतर्जनीय विवाहों में क्या की अठारह और वर को इक्कीस साल का होना आवश्यक है क्योंकि इस आयु में अभिभावक की अनुमति की आवश्यकता नहीं है। कृषि पर आधारित ग्रामीण व्यवस्था में बाल विवाहों को प्रोत्साहन मिला है तो शहरों, औद्योगिक व्यवस्था से वयस्क विवाह को जो धीरे-धीरे लेट विवाह का रूप ले रहा है। आज, एक ओर यदि बाल विवाह की समस्या है तो, दूसरी ओर, लेट विवाह और चिरकुमारित्व की।

पुनर्विवाह सम्बन्धी मायताओं में भी एकमतता नहीं है, जिसके कारण, अंग्रेजी राजकाल में, एक ओर, यह निश्चित करने का प्रयास किया गया कि शास्त्रों में पुनर्विवाह का विधान है और, दूसरी ओर, पुनर्विवाह सम्बन्धी शास्त्रीय और प्रणामी मायताओं का वैधता प्रदान की गई। पुनर्विवाह के कई रूप हैं—एक, जब एक पत्नी के रहते हुए पुरुष दूसरा विवाह करता है। ऐसा विवाह पहलपत्नीत्व का अन्त देता है जिसे शास्त्रकारों ने मायता प्रदान की है। दूसरा, विधुर पुनर्विवाह जो शास्त्रों द्वारा मान्य है। तीसरा, पति को तलाक देकर पुनर्विवाह और चौथा विधुर-पुनर्विवाह। इन दोनों विवाहों को लेकर शास्त्रकारों में मतभेद है। शास्त्रकार

- 1 उदाहरणार्थ, कौटिल्य के अनुसार पुत्र की कामना करने वाला एक पुरुष दूसरा विवाह कर सकता है यदि पहले विवाह के आठ से लेकर बारह सालों के बीच में उसकी पत्नी से पुत्र न हुआ है। मनु ने यह विधान किया है कि यदि किसी की पत्नी रोगी है तो वह उसका त्याग न करे वरन उसकी इच्छा से दूसरा विवाह करे—क्यादिया, मैरिज एक्ट एमिली इन इण्डिया, पृष्ठ 172 और मनुस्मृति (082)। स्त्री के गलाबो, बदचलन, रोगी, हागडान, लचौली और बाग होने पर भी पुरुष दूसरा विवाह कर सकता है (मनु० १५0, 81)।

यदि एक मत है तो इस बात पर कि एक पति के रहते हुए, कोई भी स्त्री विसा भी दगा में, दूसरा विवाह नहीं कर सकती है। साधारणतः, यह माना जाता है कि शास्त्रों में तलाक का विधान नहीं है। किन्तु, यह मायता निमूल है। वास्तव में, शास्त्रों में तलाक पर कम-कम परिस्थितियों पर अधिक ध्यान दिया गया है जिनमें स्त्री को दूसरा विवाह करने की आवश्यकता उत्पन्न हो सकती है और इसकारण पुनर्विवाह की वधता का प्रश्न उठ सकता है। अपहरण की हुई ऐसी स्त्री जिसका विवाह बर्दिक मन्त्रा द्वारा न सम्पन्न हुआ हो पुनः विवाह कर सकती है। कौटिल्य ने ऐसी स्त्रियों को पुनर्विवाह का अधिकार दिया है जिनका पति काफी भ्रष्ट से बाहर चला गया हो या सप्ताह त्यागकर स यात्री हो गया हो। धर्मसूत्रों में भी दीर्घकाल से बाहर गए हुए पुरुष की पत्नी का दूसरा विवाह करने का अधिकार है। नारद और पाराशर ने खोये हुए (नास्त) प्रव्रजित, बन्धुव (नपुंसक) और पतित (जातिच्युत) पुरुष की पत्नी का पुनर्विवाह का अधिकार दिया है। नारद के अनुसार, इन अवस्थाओं में, नारी के सम्बन्धों से पुनर्विवाह के लिये जोर दें चाहे नारी इसके लिये अनिच्छुक ही क्यों न हो। पाराशर स्मृति पर किये भाष्य में, मनु का हवाला देते हुए माध्वाचार्य ने यह विधान किया है कि पति के नास्त (खो जाने) होने पर, निस्तान ब्राह्मण स्त्री को पति के वापस आने का चार साल क्षत्रिय-स्त्री को तीन साल और वश्य स्त्री को दो साल तक इतजार करके पुनर्विवाह करना चाहिये। सत्तानवती नारी को इतजार की अवधि दोहरी कर देनी चाहिये। गौतम ने इतजार अवधि छ साल रखी है¹। इस प्रकार, जिन अवस्थाओं में पुनर्विवाह का विधान किया गया है, उनमें इतजार अवधि (Waiting Period) भी रखी गई है, जिसे अंग्रेजी राज में वधता मिली।

किन्हीं किन्हीं अवस्थाओं में विवाह विच्छेद का भी विधान मिलता है। यदि विवाह के समय पुरुष अपने शारीरिक तथा नतिक दोषों को छिपाता है और यदि पुरुष बन्धुव है तो स्त्री को विवाह विच्छेद का अधिकार है (नारद पुराण)। कौटिल्य के अनुसार धर्मन शारीरिक तथा नतिक दोषों को छिपा कर विवाह करने वाला पुरुष दण्ड का भागी है—वह शूलक और स्त्रीधन का अधिकारी नहीं रहता है और उसी अपराध के लिए नारी और उसके अभिभावक पर जो जुर्माना लगता उससे दुगुने जुर्माने का भागी हो जाता है। इसीप्रकार, यदि स्त्री में कामुकता और सम्पत्तता है और उसमें ऐम नतिक या शारीरिक दोष हैं जो विवाह के पहले छिपाये गये थे तो पुरुष का विवाह विच्छेद करने का अधिकार है। बन्धुव के शारीरिक तथा नतिक दोषों को छिपाने वाला अभिभावक दण्ड के भागी हो जाने है। लेकिन यदि अभिभावक विवाह से पहले, बन्धुव के दोषों को स्पष्ट कर देने हैं तो कोई ऐसी

बीमारियों और कौमार्यभंग जम गम्भीर दापाके लिए भी न ता व उत्तरदायी हैं और न दण्ड के भागी ही हैं। स्पशल मैरिज एक्ट और हिंदू मैरिज एक्ट में, चाहे परिवर्तन के साथ आज इन मायताओं का बंधता मिल् गई है।

मनु के अनुसार घमघत्या में जहा कहीं भी विवाह का प्रसंग आया है वहा, न ता विधवा पुनर्विवाह के नियमों का निरूपण हुआ है और न विधवा का नियाग के लिए नियुक्त करन का उल्लेख है (मनु० १०६४ ६५)। किंतु मनु के द्वारा प्रतिपादित मत में विरोध है। एक धार व विधवा नियाग की अनुमति दत है (१०८०) और, दूसरी धार यह प्रतिपादित करत है कि द्विजा में विधवा में नियाग नहीं करवाना चाहिए (१०६४)। सधवा का नतानात्पत्ति के लिए मनु नियाग का अनुमति दत है (१०९१) किंतु विधवा के प्रश्न पर व अपन ही मत का खण्डन करत हैं। मानवल्क्य भी विधवा पुनर्विवाह के पक्ष में नहीं है। कौटिल्य पारंगार और नारद विधवा-पुनर्विवाह का अनुमोदन करत हैं^१। दयानन्द न भी शतयानि तथा शतवीथ द्विज स्त्री

इस प्रकार विधवा पुनर्विवाह का लकर दा प्रचार के मायता प्रदान की है। अनुसार साधारणत विधवा पुनर्विवाह का पक्ष नहीं लिया गया है। विवाहित विधवा के लिए 'पुनभू' की मर्मा का प्रयोग किया गया है। किंतु विधवा पुनर्विवाह को सस्कार नहीं माना गया है। सच्चा स्त्री का पति की मर्त्य के बाल वस ही अपने सतीत्व का सजाये रखना चाहिए जम कि वह पति के जीवनकाल में करती है। मनु और मानवल्क्य के अनुसार विधवा का दूसर पति का नाम तक नहीं लना चाहिए। वात्स्यायन पुनर्विवाहित विधवा को कामामुष्ण कहत हैं और यह मानत हैं कि 'पुनभू' धीर वेदया से स्थापित किए गए योन सम्बन्धों में बाध जतर नहीं है बल्कि दोनों का जट्टेय बवल विषय-वामना की तुष्टि है। ब्रह्मचारिणी विधवा का निस्तान हान पर भी स्वग मिलता है। जा विधवा अपन पति के प्रतिवन्द्यता नहीं रखती है वह पति की मर्त्यता का अधिकारिणी नहीं है और न वह अपन पति के परिवार में भरण पापण की ही अधिकारिणी है। जिस स्त्री का पति बिना योन सम्बन्ध स्थापित किए ही मर जाता है वह विवाह मस्कार की अधिकारिणी है। एन विचार 'सती' और 'पतिव्रता' की धारणाओं के स्वाभाविक परिणाम हैं। सती की धारणा दूसरी-तीसरी गताली से मिलता है। पुराणों के बाल में पतिव्रता की धारणा का प्रतिपादन जारा स मिलता है—व धारणा ज धनुमुदया के माध्यम में तुलसीदास ने रखना है। पारंगार म्मनि (छा-मातवी गताली) में विधवा-पुनर्विवाह का विधान है। धरक-पठाना के आत्रमण के बाल की स्मृतियों में नारी पुनर्विवाह का निषेध मिलता है और ताप ही-नाथ बाल विवाह का प्रतिपादन। कथादिया के मत में गतवी गताली

१ प्रभू और कथादिया के धारणा पर।

के पास पास विधवा पुनर्विवाह के पक्ष का सामान्यतः लोप साहा गया क्योंकि उस काल में वधु-य को अपनाते तथा सती होने पर जात है न कि विधवा पुनर्विवाह पर। कपाडिया के अनुसार, यह अवस्था, एक और पतिव्रता की धारणा के प्रति और, दूसरी ओर तांत्रिक प्रथाओं में पाई जाने वाली यौन-उच्छ खलना के प्रति होने वाली प्रतिश्रियाओं का स्वाभाविक परिणाम सा लगती है¹।

विधवा को पुनर्विवाह की यदि अनुमति मिली भी है तो सीमित अर्थ में। जसा कि कौटिल्य पाराशर और नारद की मायताओं में मिलता है यदि विधवा-पुनर्विवाह की अनुमति दी भी गई है तो साथ ही साथ इस बात का भी विधान किया गया है कि विधवा का मत पति के छोटे भाई (देवर) या किसी सपिण्ड के साथ पुनर्भू बनना वाछनीय है। वास्तव में जिस अवस्था में भी स्मृतिकारों ने नारी को पुनर्विवाह की अनुमति दी है, उसमें उन्होंने देवर या पति के किसी सपिण्ड के साथ पुनर्विवाह करने पर जोर दिया है। पुनर्विवाह और तलाक के स्थान पर अधिकतर नियोग का ही पक्ष लिया गया है। नियोग का उद्देश्य काम सुख नहीं है। नियोग का उद्देश्य है प्रजा अथवा सन्तान की प्राप्ति। मनु ने नियोग के द्वारा दो से अधिक सन्तान उत्पन्न करने की आज्ञा नहीं दी है। नियोग या पुनर्विवाह उसी के साथ हो सकता है जो सपिण्ड है और जिसका पद देवर का है। तलाक और पुनर्विवाह यदि स्त्री को सपिण्ड के बाहर ले जाते हैं तो स्त्री को अपने पति के कुल से विच्छेद करना पड़ता है जो स्मृतिकारों का मान्य नहीं है क्योंकि इससे जहाँ पति के परिवार में स्त्री के अधिकार समाप्त हो जाते हैं वहाँ कुल के नरतय में बाधा पड़ती है। कृषि पर आधारित सामाजिक आर्थिक व्यवस्था में परिवार से बाहर न तो पुरुष का आर्थिक स्वत्व रहता है और न नारी का और, इसी कारण सम्भवतः पुनर्विवाह की समस्या पर कुल की समष्टिवादिता के दृष्टिकोण से विचार करने पर जोर दिया गया है। धारणीय सामाजिक आर्थिक व्यवस्था में सघात ने इस स्थिति को बदल दिया जिसके कारण विवाह, तलाक और पुनर्विवाह पर व्यवहित दृष्टिकोण में विचार करने पर जोर दिया जाना लगा, जिसका परिणाम हुआ बहुपत्नीत्व को अवैध करार देना और तलाक तथा विधवा-पुनर्विवाह को वधुता प्रदान करना।

द्वि-ववाहिक प्रथाओं और उनमें समयानुसार आवश्यक सुधारों को वधु बनाने के प्रयत्न में, अंग्रेजी राज के तत्वावधान में विधि निर्माण की जो प्रथाओं का प्रश्रिया प्रारम्भ हुई थी उसका वर्तमान समाहार एक ओर विधिकरण स्पेसल मरिज एक्ट (1954) और दूसरी ओर हिन्दू मरिज एक्ट (1955) में हुआ है। यह पत्र ही कहा जा चुका है कि उनीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जब ब्रह्मसमाज में वैवाहिक कर्मकाण्ड के लिए एक ऐसी

अनुष्ठान पद्धति रची गई जिसमें उन सनातनी ब्राह्मण वर्मकाण्डा को निकाल दिया गया जिनमें मनुष्य का मूर्तिपूजा का आभास मिलता था और अन्तर्जातीय विवाह को प्रास्तावित दिया गया ता ब्रह्मसमाजी अनुष्ठानपद्धति के आधार पर सम्पन्न और ब्रह्मसमाज के तत्वावधान में होने वाले अन्तर्जातीय विवाहों का बधता प्रदान करने के लिए सन १८५७ से बहतर में स्पेशल मरिज एक्ट पास किया गया था। यह एक्ट उन्हीं पर लागू होता था जो ब्रह्मसमाजी थे या जा हिन्दू नहीं थे। ऐसी दशा में, इस एक्ट के तत्वावधान में विवाह करने वालों का हिन्दुत्व से बाहर जाना आवश्यक था। किन्तु, वर्तमान एक्ट में ऐसा नहीं है। इसी प्रकार, आय सभा के तत्वावधान में होने वाले अन्तर्जातीय विवाहों का बधता प्रदान करने के लिए आय मरिज एक्ट (१९३७) पास किया गया था, जिसके अनुसार दो निम्न जातियों के स्त्री-पुरुषों का विवाह तभी वैध होता था जब पहले वे आय सभाजी हों। इस प्रकार, अंग्रेजी राज में, एक ओर, सार्वभौम विचारधारा और दूसरी ओर हिन्दू-समाज में चलने वाली सुधारवादी विचारधारा के फलस्वरूप अन्तर्जातीय विवाहों का बधता प्रदान करने का प्रश्न उठ खड़ा हुआ। यह नहीं माना जा सकता कि अंग्रेजी राज की स्थापना के पहले अन्तर्जातीय विवाह हाथ ही नहीं थे। हा, यह अवश्य है कि पहले स्त्री-पुरुषों का इतनी वैयक्तिक स्वतंत्रता नहीं थी, जितनी की अंग्रेजी राज्य-काल में मिली और, इस कारण यदि अन्तर्जातीय विवाह होने भी थे तो उनकी संख्या कम होती थी। यदि ऐसा विवाह हाथ भी था तो उनका नियम जाति-पंचायतों द्वारा होता था। जाति-अन्तर्विवाहिकी के नियमों की व्यवस्था करने वाले जाति पंचायतों द्वारा लगाया हुआ दण्ड देकर पुनः अपनी जाति में शामिल हो जाते थे। जाति के नियमों को भंग करने वालों को जाति से हमेशा के लिए निकाल देने की प्रथा नहीं रही है। एक ही जाति के दो अन्तर्विवाही समूहों (उपजाति) के स्त्री-पुरुषों के विवाहों का भी अधिकतर अन्तर्जातीय विवाह मानकर, जाति पंचायतों उनका नियम भी बना करती थीं जैसा कि अन्तर्जातीय विवाहों के लिए। यह प्रथा आज भी विद्यमान है यद्यपि धीरे-धीरे यह टूट रहा है। उदाहरणार्थ, लखनऊ के चमारों में यदि कुरील चमार, जसवारा चमारों में विवाह करता है तो वह अपनी पंचायत के समस्त दण्ड का भागी होता है। पंचायत का नियम दोनों ओर लागू होता रहा है। यदि कोई व्यक्ति अपने अन्तर्विवाही समूह के बाहर की ओर से विवाह करता है तो वह पंचायत के समस्त दण्ड का भागी है और यदि कोई व्यक्ति अपनी लड़की को अपने अन्तर्विवाही समूह के बाहर के व्यक्ति का देना है या उसकी संख्या किसी अपने ही जाति के सम्प्रदाय या दूसरी जाति के सम्प्रदाय में साप भाग जाती है तो वह पंचायत के समस्त दण्ड का भागी है। किन्तु, अंग्रेजी राज-काल के सार्वभौमिकता में एक ही जाति के अन्तर्विवाही समूहों का, एक ही जाति का उपजातियों मानकर, उनका स्त्री-पुरुषों के विवाहों का बधता प्रदान करने और अन्तर्जातीय विवाहों में अनुष्ठान तथा प्रतिष्ठान विवाह गिजातों के

आधार पर, उन विवाहो को बध माना जाने लगा जिनमे वर उच्च जाति का जीरक या निम्न जाति की थी और उन विवाहो को अवध माना जान लगा जिनमे वर निम्न जाति का जीरक या उच्च जाति की थी ।

इसमे कोई शक नहीं कि हिंदू विधान मे अतउ पञ्जातीय विवाहो का नियम नहीं है किन्तु हिंदू सामाजिक व्यवस्था मे उपजाति के नाम की कोई चीज भी तो नहीं है । हिंदू सामाजिक व्यवस्था मे प्रत्येक अतउविवाही समूह जाति है । उपजाति की अवधारणा विद्वानों का प्रतिरापण है । अनुलोम प्रतिलोम का सम्बन्ध वण्यवस्था से रहा है न कि जाति व्यवस्था से । हिंदू शास्त्रकारो ने प्रतिलोम का दापी माना है न कि अवध । अनुलोम भी हिंदू शास्त्रकारो के अनुसार मातृदाय को जम दता है । हिंदू शास्त्रकारो की मायता मे प्रतिलोम अवाछनीय रहा है न कि अवध । किन्तु अग्रजी विधिप्रणाली के आधार पर सगठित यायालयो ने इस नियम को दूसरे ढंग से लागू किया । यायालयो ने एक बार यह नियम प्रतिपादित किया कि ब्राह्मण कन्या और राजपूत (क्षत्रिय) वर का विवाह अवध है (देविमे लक्ष्मी बनाम कल्याणसिंह 2 बम्बई एल० आर० 128) और दूसरी ओर यह कि एक ब्राह्मण स्त्री शूद्र पुरुष से बध विवाह नहीं कर सकती है (दक्षिण बार्ड कागा बनाम जमनालाल 14 बम्बई एल० आर० 547) । इसप्रकार अतउजातीय विवाहो की बधता के प्रश्न का लेकर विवाह सम्प्रदायी हिंदू विधि का जा निवचन यायालयो मे प्रस्तुत किया गया उसमे विरोध जा गया जिसका फलस्वरूप अतउजातीय तथा अन्तसम्प्रदाय विवाहा को बधता प्रदान करने के लिए एक जखिल भारतीय अधिनियम की आवश्यकता उत्पन्न हुई । उधर योरोपीय शिक्षा नई व्यक्तिवादी आर्थिक-व्यवस्था और गहरो मे बढ़ती हुई व्यक्तिवादिता ने अतउजातीय विवाहा का प्रोत्साहित किया जिनसे अतउजातीय विवाहो का बधता प्रदान करने की आवश्यकता और भी बढ़ी । स्पेशल मरिज एक्ट (19५4) इसी सामाजिक आवश्यकता का प्रतिफल है । स्पेशल मरिज एक्ट की प्रस्तावना मे यह कहा गया है कि इस एक्ट का उद्देश्य विनाय अवस्थाओ मे, विशेष विवाह प्रकार उसके निबन्धन और तलाक को अधिक मायता प्रदान करना है । ये विशेष अवस्थाओ उसा समय उत्पन्न होती हैं जब दो जातिया सम्प्रदाया और धर्मों के व्यक्ति विवाह बधन मे बधत हैं । इस एक्ट द्वारा माय विवाह प्रकार संस्कार नहीं समझीता है । उसमे कमकाठ का कोई स्थान नहीं है । यह योरोपीय सघात से उत्पन्न सामाजिक आवश्यकता का प्रतिफल है ।

हिंदू मरिज एक्ट (19५५) इसका विपरीत हिंदू विवाह परम्पराओ का सामाजिक परिवर्तन से उत्पन्न मर्यादाओ के अनुसार विधिभूत करने की आवश्यकता का प्रतिफल है । इससे जहा इस काल के हिंदू सांस्कृतिक पुनरुत्थान तथा सामाजिक नवजागृति की आकांक्षाओ की तुष्टि हाती है वहा इससे शास्त्रीय तथा लोक परम्पराओ का बधता मिलती है । यह एक्ट शास्त्रीय तथा लोक-परम्पराओ के

वधिक समन्वय का प्रयास सा लगता है। ऐसा लगता है कि मानो यह ब्रह्मसमाज तथा आयसमाज द्वारा चलाये गए उन आन्दोलन की भाग का प्रतिफल हो जिसका उद्देश्य रहा है हिन्दू समाज का उत्तरोत्तर निश्चित एकीकरण। यह एकट भी एक वैधानिक विकास प्रक्रिया का परिणाम है जिसका प्रारम्भ उस समय हुआ था जब अग्रजी प्रणामकों ने हिन्दू स्वीय विधि प्रणाली का लक्ष्यबद्ध करन के लिए यह मित्रात निर्धारित किया था कि जहाँ साम्प्रदायिक मान्यताओं में विरोध हो वहाँ प्रणाम का शिथिल माना जाय और हर दशा में वैधानिक निश्चितता लान का प्रयास किया जाय किन्तु उन साम्प्रदायिक मान्यता या प्रणाम को वैध न माना जाय तो राज्य-नीति (Public Policy) के विरुद्ध है। यह पहला अखिल भारतीय एकट है जिसके पीछे एक वैधानिक विकास प्रयत्न है। इसका पहला चरण दो अधिनियम पास किए गए थे—एक, दि हिन्दू मरिज डिजबिलिटीज रिमूव एक्ट (1916) जिसमें सगोत्र सप्रवर और अन्त उपजातीय विवाहों का वैधता प्रदान की गई थी और दूसरा, दि हिन्दू मरिजज डिजबिलिटीज एक्ट (1919) जिसमें हिन्दुओं, जना और सिक्खों तथा उनकी उपजातियों में होने वाले विवाहों को वैध मान लिया गया था। पहला एकट साम्प्रदायिक मान्यताओं के विरोध में पड़ता था और दूसरा नई सामाजिक मान्यताओं के अनुकूल था। वास्तव में, आवश्यकता एक विधान की थी जो साम्प्रदायिक मान्यताओं को भी वैधता प्रदान कर और उन परम्पराओं को भी जो हिन्दू तो हैं किन्तु साम्प्रदायिक नहीं हैं। हिन्दू मरिज एक्ट इसी दिशा में उठा हुआ एक कदम है।

हिन्दू मरिज एक्ट (1916) और स्पेणल मरिज एक्ट (1924) की उत्पत्ति भारतीय समाज का गत्यात्मकता से हुई है। हिन्दू मरिज एक्ट का उद्देश्य परम्परागत हिन्दू विवाह प्रणामों का तथा हिन्दू-नारी को नई परिस्थितियों में उच्चतर वैध सामाजिक स्तर प्रदान करना है जबकि स्पेणल मरिज एक्ट का उद्देश्य उन विवाहों को वैधता प्रदान करना है जहाँ विधवायुगी व्यक्ति धर्म और जाति से परे स्वतंत्र रूप से स्थापित करते हैं। स्पेणल मरिज एक्ट के रूप में, भारत के नर-नारियों को विवाह में पहल की अपाता अधिक वैयक्तिक स्वतंत्रता मिल गई है, जो लाभप्रद भी हो सकती है और हानिकारक भी। स्पेणल मरिज एक्ट उन नई सामाजिक परिस्थितियों में उत्पन्न हुआ है जो पारंपरिक सम्प्रदाय के सघात में उत्पन्न हुई हैं और जिनके कारण व्यक्ति का धार्मिक, जातीय और साम्प्रदायिक परम्परावादिता से स्वतंत्रता देने का विचार अस्मिन्मुख में आया है। स्पेणल मरिज एक्ट उन सभी भारतीय नर-नारियों पर लागू होता है जो इस एकट के तत्काल प्रदान में विवाह करते हैं। हिन्दू मरिज एक्ट हिन्दू विवाह पर लागू होता है। इस कारण, हिन्दू मरिज एक्ट में सबसे पहला हिन्दू की परिभाषा की गई है। यह परिभाषा, एक दृष्टिकोण से स्थापक है और दूसरे दृष्टिकोण से सामिल। उदाहरणार्थ, इस एकट के अनुसार, हिन्दू यह है जो धर्म में हिन्दू है या किसी भी हिन्दू-सम्प्रदाय (जिसकी धर्म

लिंगायत, ब्रह्मसमाज, प्रायतसमाज, आयसमाज, बौद्ध, जन और सिक्ख) का मानने वाला ही। दूसरे शब्दां में, जो भी अपने को हिंदू कहता है या हिंदुत्व में विकसित किसी भी सम्प्रदाय का अनुयायी है, वह हिंदू है। इस एक्ट के अनुसार वह सत्तान हिंदू है जिसके माता पिता हिंदू बौद्ध, जन या सिक्ख हैं चाहे वह सत्तान बंध या भ्रमण। यदि माता पिता में से कोई भी हिंदू हो तो उनकी बंध या अवध सत्तान हिंदू है बगैरे कि सत्तान का पालन पोषण उस गणजाति (Tribe), समुदाय (Community) समूह (Group) या परिवार में हुआ हो, जिसके हिंदू माता या पिता सदस्य हैं। हिंदू धर्म में दीक्षित होने वाले और हिंदू धर्म का त्यागकर पुनः उसमें दीक्षा देने वाले भी हिंदू हैं। किंतु, साथ ही साथ यह एक्ट उन पर लागू नहीं होता है जो धर्म से मुसलमान इसाई पारसी और यहूदी हैं या जो यह सिद्ध कर दें कि हिंदू विधि या परम्परा या इस एक्ट की कोई भी धारा उन पर लागू नहीं होती है। यह एक्ट अनुमूचित गणजातियों पर भी लागू होता है। इस प्रकार इस एक्ट में हिंदू और आदिवासी में अंतर किया गया है। यह अंतर वर्तमान युग की उपज है। शास्त्रकारों ने ऐसा अंतर नहीं किया है। शास्त्रकारों ने समय समय पर हिंदू प्रथाओं का इस ढंग से निबन्धन किया है कि स्थानीय प्रथाओं का राष्ट्रीय प्रथाओं के साथ समन्वय हो सके। यही कारण है कि शास्त्रकारों ने प्रथाओं को महत्व दिया है। इन मायताओं के बावजूद भी इस एक्ट में यह कहा गया है कि इसके क्षेत्र में वे व्यक्ति या समूह भी आते हैं जो चाहे धर्म से हिंदू न हों, किन्तु जिनपर इस एक्ट की धाराएँ स्वतः लागू होती हैं। यहाँ विचारणीय यह है कि जहाँ एक ओर यह निश्चित करने का प्रयास किया गया है कि हिंदू कौन हैं वहाँ दूसरी ओर इस बात पर भी जोर दिया गया है कि हिंदू समाज के सीमावर्ती क्षेत्र के लोग भी हिंदू हैं। अनेक ऐसे समूह जो अनुसूचित गणजाति नहीं हैं और न पूज्यता हैं हिंदू ही हैं भी इस एक्ट के अन्तर्गत आते हैं। यह वैधानिक व्यवस्था हिंदू समाज के विनाश का स्वाभाविक परिणाम सा लगती है।

हिंदू भरिज एक्ट का अभिभूतक वैधानिक प्रभाव पड़ा है क्योंकि इस एक्ट में कहा गया है कि इस एक्ट में जिन नियमों का विधान किया गया है उनसे सम्बंधित हिंदू विधि के मूलपाठ, नियम और निबन्धन, जो इस एक्ट के पहले लागू थे, की बंधता समाप्त हो जायगी और जो विधि इस एक्ट के पहले लागू थी और जो इस एक्ट में प्रतिपादित मायताओं के विरोध में है, बंध नहीं रहेगी। इस प्रकार हिंदू भरिज एक्ट में जिन नियमों का प्रतिपादित किया गया है, उनसे विरोध में आने वाली पूज्य विधियों को समाप्त कर दिया गया है। किन्तु साथ ही साथ यह स्पष्ट भा निर्णय निबन्धित है कि इस एक्ट में, हिंदू विवाह सम्बंधी जिन परम्पराओं का समावेश नहीं है और जो इस एक्ट की धाराओं के विरोध में नहीं है, वे परम्परागत हिंदू विधि के अनुसार चलती रहेंगी, बगैरे कि वे राज्यनीति के विरोध

मे न हा । इस प्रकार, इस एकट के द्वारा हिंदू विवाह-सम्बन्धी उन धनक परम्पराओं का बंध मान लिया गया है जो अनेक जातियों के स्तर पर पाई जाती हैं और जो इस एकट की धाराओं के विरोध में नहीं हैं । यह पहले ही कहा गया है कि हिंदू मैरिज एकट, एक लिखित अधिनियम होने के बावजूद भी अनेक शास्त्राय तथा जन परम्पराओं को एक साथ मायता देता है । उदाहरणार्थ, इस एकट के अनुसार, जसा कि शास्त्रकारों की मायता है, सगायत सप्रवर और माता की ओर से पाँच पीढ़ियों तथा पिता की सात पीढ़ियों के व्यक्तियों में होने वाले विवाह अवैध हैं किन्तु जहा परम्परानुसार ऐसे विवाह माय हैं वे अवैध नहीं हैं । इस एकट में केवल विवाह-हानि और सप्तपदी को बंध कमकाण्ड माना गया है किन्तु साथ ही साथ परम्परागत कमकाण्ड की भी अनुमति दी गई है । सप्तपदी वही बंध है जहा परम्परानुसार उमका हाना आवश्यक है । इस प्रकार कर्णाटान परम्परानुसार किया जा सकता है किन्तु, उसकी बधानिक महत्ता कुछ भी नहीं है । इस एकट के उत्तीसवें संशोधन की दूसरी धारा में यह विधान किया गया है कि हिंदू-समाज में जहा प्रथा के द्वारा या किसी विधि अधिनियम द्वारा तलाक का अधिकार मिला हुआ है, वह इस एकट द्वारा प्रभावित नहीं होगा । इसका तात्पर्य यह हुआ कि जहा जातीय प्रथाओं में पारस्परिक अनुमति द्वारा पति पत्नी का एक दूसरे का तलाक देने का अधिकार है वहा यह अधिकार वसा ही बना रहगा यद्यपि इस एकट में पारस्परिक अनुमति (Mutual Consent) द्वारा पति पत्नी को तलाक देने का अधिकार नहीं है ।

हिंदू विवाह सम्बन्धी सभी प्रथाओं का इस एकट के अधिकार क्षेत्र में लाने के लिये प्रथा की व्यापक परिभाषा की गई है । प्रथा इस एकट के अनुसार, वह नियम है जो समान रूप में लगातार काफी दिना तक व्यवहार में आने के कारण, किसी धर्म, गणजाति, समुदाय, समूह या परिवार के हिन्दुओं में विधि की मत्ता प्रदृष्ट कर लता है । किन्तु इस एकट के अनुसार बड़ी प्रथा बंध है जो राज्य नीति के विरोध में न हो और जिस प्रथा का सम्बन्ध केवल परिवार से है तथा परिवार के सदस्यों द्वारा वह बनी जाती न गई हो । यहा प्रथा का बड़ी परिभाषा अपनाई गई है जो परम्परानुगत हिन्दू विधि में माय रहता है । प्रथा का ही बंधना प्रदान करने के दृष्टिकोण में दोना एका में व धनक परिभाषाओं दी गई हैं । हिन्दू शास्त्रकारों ने पूज्य की शर्तों में पिता और उमक बगल का ही स्वीकार किया है किन्तु, इन नये विधानों में माता और पिता शर्तों पर बराबर ध्यान दिया गया है । नये विधान के अनुसार, व दा धनक पूज्य रखन सम्बन्धी हैं जो एक ही पुत्र्य और स्त्रियों के सम्बन्ध में हैं किन्तु, जो एक पुत्र्य और उमकी भिन्न भिन्न स्त्रियों की सम्बन्ध हैं व अद्वय रखन सम्बन्धी हैं । जो अल्प-वयस पतिव्रता से उत्पन्न एक स्त्री की सम्बन्ध हैं व मातृ-रक्षन-सम्बन्धी हैं । इस प्रकार इन एकटों में तीन प्रकार के रखन-सम्बन्धी मान गये हैं । माँ की ओर से तीन पीढ़ी और पिता की ओर से पाँच पीढ़ी का सम्बन्ध

व्यक्ति सपिण्ड सम्बन्धी मान गये हैं। जा स्त्री पुरुष एक दूसरे की पूज्य शाखा में जात है जो स्त्री और पुरुष एक दूसरे की ऊपर या नीचे की पूज्य शाखा में किसी क पति या पत्नी रहें जो स्त्री किसी पुरुष के भाई, पिता माता पितामह या दादी के भाई की पत्नी रही हो भाई बहन, चाचा और भतीजी, चाची और भतीजा तथा भाइयों की सन्तान प्रतिषेधी सम्बन्धी श्रेणी (Prohibited Degrees of Relationship) में आत है।

हिन्दू मरिज एक्ट क अनुसार एक पुरुष और एक नारी का विवाह तभी सम्पन्न हो सकता है जब विवाह के समय पुरुष की कोई जीवित पत्नी न हो और नारी का कोई जीवित पति न हो दोनों में से कोई भी हतबुद्धि (Idiot) या पागल (Lunatic) न हो, वर की आयु अठारह साल की हो गई हो और ब्या की पन्द्रह साल की (जहां ब्या की आयु अठारह साल की न हुई हो, वहां उसके अभिभावक की अनुमति ली गई हो) और दोनों प्रतिषेधी तथा सपिण्ड सम्बन्धी श्रेणी में न आने हो या जब तक कि प्रचलित प्रथा द्वारा प्रतिषेधी तथा सपिण्ड सम्बन्धी श्रेणी के व्यक्तियों में विवाह मायन हो। इस प्रकार इस एक्ट क अनुसार, वर ब्या कुवार भी हो सकते हैं विधुर और विधवा भी तथा तलाक दिये हुए भी। इस एक्ट से बहुपत्नीत्व तथा बहुपतित्व जमाय हैं। एक पुरुष अपने दूसरे विवाह तभी कर सकता है जब उसकी पत्नी मर जाय या वह अपनी पत्नी का तलाक दे दे या उसकी पत्नी उस तलाक दे दे। स्त्री भी इसी प्रकार अपने पति क जीवित रहते दूसरे विवाह नहीं कर सकती है। विवाह में वर ब्या की अनुमति और उनमें यौन सम्बन्ध की क्षमता का होना आवश्यक है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि शास्त्रकारों ने वर ब्या का अनुमति की आवश्यकता पर प्रत्यक्ष जार नहीं दिया है। शास्त्रों में ब्या की अनुमति की आवश्यकता का प्रश्न ही नहीं उठाया गया है यद्यपि शास्त्रकारों की मान्यताओं से यह अर्थ ध्वनित होता है कि ब्या पर उमर पिता या अभिभावक का वसा स्वत्व नहीं है जसा कि किसी व्यक्ति का उसकी भौतिक वस्तुओं पर होता है। एका सर्वम बड़ा प्रमाण यह है कि ब्यादान से ही हिन्दू विवाह सम्पन्न और बध नहीं होना है¹। अभिभावक ब्या का सरलक है और जहां ब्या वालिग नहीं है अभिभावक की अनुमति की आवश्यकता आती है। हिन्दू मरिज एक्ट में दानों प्रकार का विधान किया गया है। जहां ब्या अठारह वर्ष की है उमर अभिभावक की अनुमति की आवश्यकता नहीं है किन्तु जहां उमर की आयु अठारह वर्ष में कम है अभिभावक की अनुमति की आवश्यकता है। यह नई परिस्थितियों और परम्परा का सम्बन्ध है²।

1 धी सम्पूर्णान्त में हिन्दू विवाह में ब्यादान

2 ब्या का मूल अभिभावक पिता है। उसके बाद क्रम में पितामह भाई, चाचा

स्पेशल मैरिज एक्ट में विवाह के बंध आधारी को धारा बदलकर रखा गया है, क्योंकि इसका उद्देश्य धर्मनिरपेक्ष विवाह का बंधन प्रदान करना है। इस एक्ट के अनुसार, उम्र बर और ब्या का विवाह बंध है जिनके, विवाह के समय, प्रमाण भाया या भर्ता जीवित न हों, जिनमें से कोई भी हतबुद्धि या पागल न हो, दोनों परस्पर प्रतिपक्षी सम्बन्धी श्रेणी में न आते हों और विवाह के समय बर ब्या प्रमाण इक्कीस और अठारह साल की आयु के हों गये हों। भारत के बाहर जहाँ यह एक लागू होता है, वहाँ इस एक्ट के अंतर्गत तभी विवाह हो सकता है, जब बर और ब्या दोनों भारतीय नागरिक हों। इस एक्ट का उद्देश्य धर्मनिरपेक्ष, धर्मप्रद और अतन्मप्रदाय विवाहों को बंधानिव मायता देना है जिसके कारण इसमें अग्निभावक की अनुमति आवश्यक नहीं है। इस एक्ट के अनुसार विवाह की बंधनिक स्वतंत्रता तभी मिल सकती है जब बर और ब्या बंधन हों। महा प्रमाण का बंध अपवाद के रूप में नहीं रखा गया है। इस एक्ट के अनुसार विवाह में अग्निभावक की अनुमति नहीं बरन विवाह-अधिकारी की अनुमति आवश्यक है। विवाह-सम्बन्ध में बंधने के इच्छुक बर और ब्या के लिये यह आवश्यक है कि वे उम्र धर्म के विवाह अधिकारी के पास अनुमति प्राप्त करने के लिये प्रायना पत्र भेजें, जिसमें बर या ब्या प्रायना पत्र देने के तीस दिन पहले तक निवास कर चुका हो। प्रायना-पत्र विवाह का नाटिक है, जिस विवाह अधिकारी मैरिज नाटिक बुक में दर्ज करके अपने दफ्तर में लगी जगह टांगने के लिये बाध्य है, जहाँ सबसाधारण की पहुँच हो। प्रस्तावित विवाह की नाटिक मिलन के तीस दिन बाद विवाह हो सकता है, उसके पहले नहीं। प्रस्तावित विवाह के प्रति कोई भी उम्र बात पर एतराज कर सकता है कि प्रस्तावित विवाह से एक या कई बंध आधारी भंग होत हैं। किसी के एतराज उद्घाटन पर, विवाह-अधिकारी के लिये जांच करना आवश्यक हो जाता है और जबतक कि यह उम्र बात में सन्तुष्ट न हो जाय कि एतराज निराधार है या जब तक कि एतराज वापस न लिया जाय यह एक्ट विवाह-अधिकारी का विवाह की अनुमति देने का अधिकार नष्ट करता है। विवाह-अधिकारी का निश्चित काट के अधिकार दिये गये हैं। विवाह अधिकारी के अनुमति न देने पर, जिस धर्म में विवाह अधिकारी आता है उम्र धर्म के लिये अधिकारी के न्यायालय में विवाह अधिकारी के नियम के प्रति अपील की जा सकती है। विवाह-अधिकारी का नियम अन्तिम माना गया है। यदि एतराज निराधार साबित होता है तो एतराज करने वाला हर्ज-सर्जों के लिये बंधन में आता है। इस प्रकार, विवाह विवाह प्रायनियम से एक विवाह प्रकार का विवाह

और मामा इत्यादि आते हैं। यह तालिका लगभग यही है जो शास्त्रकारों ने दी है। इसमें एक अंतर है। इस एक्ट में माँ की भी विवाह में ब्या देने का अधिकार है।

स्तित्व में आया है, जिसमें विवाह की वैयक्तिक स्वतन्त्रता तो है किन्तु, अभिभावक का स्थान अदालत ने ले लिया है।

हिंदू मरिज एक्ट (1955) से हिंदू विवाह को वधता प्रदान की गई है और इस कारण उसमें वैवाहिक कमकाण्ड को भी वध स्तर प्रदान किया गया है। हिंदू मरिज एक्ट के अनुसार वर या ब्याह म से किसी भी एक पक्ष की वैवाहिक प्रथाओं के अनुसार विवाह सम्पन्न किया जा सकता है। किन्तु, जहाँ वैवाहिक प्रथा के कमकाण्ड में सप्तपदी का विधान है, वहाँ विवाह तभी वैध समझा जायगा जब सप्तपदी का कमकाण्ड पूरा हो जाय। साथ ही साथ, इस एक्ट में यह भी विधान है कि जहाँ कोई जातीय कमकाण्ड, जाति के अनुसार, विवाह के लिये आवश्यक हो वहाँ वही कमकाण्ड विवाह का वध बनाने के लिये काफी है बशर्ते कि अग्रे बताएँ एक्ट के अनुसार हो। इस एक्ट में विवाह के बाद यौन सम्बंधों के आधार पर विवाह को वधता प्रदान करने के स्थान पर सप्तपदी को अधिक महत्ता दी गई है। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि इस एक्ट में विवाहापरात यौन सम्बंध आवश्यक नहीं माने गए हैं। वास्तविकता यह है कि हिंदू विधिप्रणाली की परम्पराओं के अनुसार सप्तपदी से ही विवाह पूर्ण समझा जाता रहा है¹ और इसी परम्परा को इस एक्ट के द्वारा वधता मिली है।

जमा कि हिंदू विवाह विधान की परम्परा रही है नये विधान में भी विधवा-पुनर्विवाह के लिये किसी कमकाण्ड का विधान नहीं किया गया है। स्पष्ट मरिज एक्ट का अंतर्गत हान वाला विवाह धार्मिक नहीं अदालती विवाह है। अतः उसमें कमकाण्ड का स्थान ही नहीं है यद्यपि एक्ट में इस बात का विधान किया गया है कि वर ब्याह अपनी मर्जी से किसी भी प्रकार के कमकाण्ड से अपना विवाह सम्पन्न कर सकते हैं। किन्तु स्पेशल मरिज एक्ट के अनुसार, विवाह तभी वध होगा जब विवाह अधिकारी और तीन गवाहों की उपस्थिति में वर और ब्याह लिखित रूप से एक दूसरे के पति पत्नी बनने की घोषणा कर² और उस घोषणापत्र पर गवाहों के साथ साथ विवाह-अधिकारी का भी हस्ताक्षर हो। विवाह-अधिकारी द्वारा मिलने वाला सर्टीफिकेट जिसे पर वर ब्याह और गवाहों के हस्ताक्षर हो और जिसकी नकल मरिज सर्टीफिकेट बुक में नथी कर दी गई हो विवाह का प्रमाण है। हिंदू मरिज एक्ट के अनुसार होने वाला विवाह के लिये सर्टीफिकेट (प्रमाणपत्र) की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार, हिंदू विवाह अधिनियम के अनुसार हान वाला विवाह समझीता मस्कार है जबकि विशेष विवाह अधिनियम के अनुसार हान वाला विवाह ब्याह एव समझीता है। किन्तु नये विधान के अनुसार जसा कि

1 सम्पूर्णानंद यही।

2 घोषणापत्र का नाम भी एक्ट द्वारा निर्धारित है।

“यायालयों के निष्पत्ति म स्पष्ट है हिन्दू विवाह मूलतः समझौता माना जाता है।
वैधानिक दृष्टिकोण से “यायालयों में यह माना गया है कि हिन्दू विवाह, मस्कार
और मर्यादा होने के साथ साथ, एक मविदा भी है जो पति पत्नी सम मविदा में
मम्बन्धित अधिकार और बन्धनों के दृष्टिकोण से निर्धारित करत है। मस्कार होने
के साथ साथ हिन्दू विवाह एक व्यावहारिक कानूनी समझौता भी है। एक कानूनी
संविदा के रूप में विवाह की धारणा का म्भ्युदय यागपीय विधि प्रणाली के प्रभाव
का परिणाम है। हिन्दू सामाजिक आदर्शों में विवाह आज भी एक अविच्छेद्य मस्कार
है किन्तु हिन्दू विधान में विवाह एक मविदा पद है मस्कार बाद में।

दाना एकटा में विवाह के निबन्धन (Registration) का विधान है। किन्तु,
हिन्दू विवाह बिना निबन्धन के भी बध है। विशेष विवाह (Special Marriage)
भी, जो स्पेशल मरिज एक्ट के अनुसार होता है निबन्धित करवाया जा सक्ता है।
दोनों एक्टों में इस बात का भी विधान है कि यदि विवाह के बाद म्सा पाया जाय
कि विवाह से बंध वैवाहिक म्सापारों की अवहलना हुई है तो अन्ततः द्वारा विवाह
अवध करवाया जा सक्ता है। यदि पति पत्नी के सहवास में या पत्नी पति के म्त्वास
से अकारण अलग हो जात हैं तो परिवर्तित पति मा पत्नी का इस बात का अधिकार
है कि वह अन्ततः द्वारा अपने सहवासी अधिकारों की माग करें और यदि अदालत
इस बात में सन्तुष्ट है कि परिवर्तित व्यक्ति (पति या पत्नी) अकारण ही अपने
सहवासी अधिकारों से वञ्चित है, तो अदालत का सहवासी अधिकारों का पुनः म्सापित
करने की आज्ञा देने का अधिकार है। सहवासी अधिकारों की माग करने वाले प्राथमिक-
पत्र के उत्तर में, विरामा पार्टी का व्यक्ति केवल उन्हीं म्सा का महार लेकर सहवास
से अलग रहने की माग कर सकता है, जो इन दाना अधिनियमों में साधिक पधकरण
(Judicial Separation) और तलाक के आधार के रूप में स्वीकार किए गए हैं।

दाना अधिनियमों में तलाक का भी विधान किया गया है और साथ ही साथ,
इस बात की भी वाणि की गई है कि जहाँ तक हो सके तलाक का हकी म्सा की
वस्तु चयन में रोक कर विवाह की पवित्रता का बनेर रखा जाय। दाना अधि-
नियमों में एकल तलाक मागने का विधान नहीं है। सहवासी अधिकारों की
पुनः म्सापना के विधान के आधार पर, परिवर्तित पति मा पत्नी अपने सहवासी
अधिकारों की माग कर सक्ता है और उगम अमलान्तान पर, साधिक पधकरण की
माग कर सकता है। दाना अधिनियमों के अनुसार, साधिक पधकरण तलाक की
भूमिका है। साधिक पधकरण तलाक के पद का यह बाल है किम पति पत्नी
का तलाक नहीं होता है किन्तु अन्ततः की अनुमति लेकर दाना एक दूग के सहवास
में अलग रहते हैं। यह वह बाल है किम पति पत्नी का अपनी म्सा पर मागने
का और दलिय साहें ता परस्पर म्सापना करने का मारा भी म्सापता है। साधि-
पधकरणों में भी एक ही विधम का अनुमरण किया जाता रहा है क्साकि साधि पधकरणों

मे एकदम तलाक नहीं मिलता है। पहले पति पत्नी एक दूसरे से अलग हो जाते हैं और बाद में प्रायतः द्वारा तलाक का फमला चलता रहता है। कभी कभी इसी बीच में पति पत्नी में समझौता भी हो जाता है। यायिक पृथक्करण का विधान भारतीय परम्परा की देन है।

हिन्दू विवाह अधिनियम के अनुसार पति पत्नी में से काद भी तब यायिक पृथक्करण की माग करन का अधिकारी है जब प्रार्थी व जीवन साथी ने प्राथनापत्र देने के समय तक लगातार दो वर्षों से उसका परित्याग किया हो जब प्रार्थी के साथ उसने इस प्रकार निदयता से व्यवहार किया हो कि प्रार्थी के मन में यह भावना उत्पन्न हो गई हो कि प्रार्थी का अपने जीवन साथी के साथ जोर भी अधिक रहना, प्रार्थी के लिए नुकसानदेह या खतरनाक है, जब प्रार्थी का जीवन साथी प्राथनापत्र देने के समय तक एक साल से सघातिक बाढ की बीमारी का शिकार रहा हो, जब प्रार्थी का जीवन साथी गुप्त सन्नामक योनिक रोग का शिकार रहा है और वह रोग उस प्रार्थी से न लगा हो जब प्रार्थी का जीवन साथी, प्राथनापत्र देने के समय तक, कम-से कम दो साल तक पागल रहा है और जब प्रार्थी के जीवन साथी ने विवाह के बाद प्रार्थी के जलावा किसी अन्य से यौन सम्बन्ध स्थापित किया है। हिन्दू मरिज एक्ट के अनुसार इसप्रकार विवाह के कम-से-कम एक साल बाद ही यायिक पृथक्करण की माग की जा सकती है।

स्पेशल मरिज एक्ट के अन्तर्गत, पति या पत्नी द्वारा सहवासी अधिकारों के पुनः स्थापन की माग तभी की जा सकती है जब उनका विवाह इस एक्ट के ही अन्तर्गत हुआ हो और प्रार्थी के जीवन-साथी ने बिना किसी सग्त कारण के उसके सहवासका त्याग दिया हो। स्पेशल मरिज एक्ट में यायिक पृथक्करण के आधार पर हिन्दू मरिज एक्ट की अपेक्षा अधिक ज्यादा जोर बटित है। इस एक्ट के अन्तर्गत पति या पत्नी के द्वारा सहवासी अधिकारों के पुनः स्थापन की अवहलना करन विवाह के बाद परसम्बन्ध स्थापित करन प्राथनापत्र देने के पहले तीन साल तक जीवन साथी का परित्याग करन किमा जवराध में सात साल की सजा हो जान पर जिसमें प्राथनापत्र देने के समय तीन साल की सजा भुगती जा चुकी हो निदय व्यवहार करन प्राथनापत्र देने के समय तीन साल तक पागल रहन या कोल या गुप्त सन्नामक योनिक रोगों का शिकार होने पर तथा सात साल तक गुपना रहने पर यायिक पृथक्करण की माग की जा सकती है। ये नियम पति पर भी लागू होते हैं और पत्नी पर भी। यदि यायिक पृथक्करण की माग का आधार काड या सन्नामक गुप्त योनिक रोग हैं तो वे तभी यायिक पृथक्करण का आधार बन सकते हैं जब वे प्रतिवादी को प्रार्थी से न लगे हो। इसप्रकार स्पेशल मरिज एक्ट में विवाह के तीन साल के बाद ही यायिक पृथक्करण की माग की जा सकती है। इसमें अतिरिक्त, यदि विवाह के बाद पति में बलाकार गुप्ता मद्युन या पुमद्युन का जवराध हो गया

हो ता पत्नी को यायिक पयक्करण की माग करने का अधिकार है ।
 दानो अधिनियमो म तलाक का वेंच कर दिया गया है किन्तु तलाक के लिए

प्राथनापत्र विवाह क तीन साल बाद ही दिया जा सकता है । हिन्दू मरिज एक्ट के अनुसार तलाक के आधार हैं परसम्बन्ध घम परिवतन तलाक के लिए प्रायनापत्र देने के समय तन कम स कम तीन साल तक पति या पत्नी का पागल रहना सघातिक तथा दुस्साध्य काठया गुप्त योन रोगो से पीडित रहना विरवत होकर सयासी हाना सात साल तक लापता रहना यायिक पयक्करण की डिगरी के बाद दो साल तक योन सम्बन्ध न रखना और दा आधार पर पत्नी को तलाक मागने का अधिकार मिना हुआ है—एक, विवाह क पहल या बाद म यदि पति न दूसरा विवाह किया हा और तलाक के लिए प्रायनापत्र देने के समय यदि दूसरी पत्नी जीवत हा और दूसरा यदि विवाह के बाद पति बलात्कार गुनामयुन या पुर्मयुन का अपराधी हुआ हा । स्पेसल मरिज एक्ट म इन आधारो क अलावा दा और आधारो का विधान किया गया है—एक, क्रूरता और दूसरा आपसी समझौता (Mutual Consent) द्वारा तलाक की माग । क्रूरता कया है ? इसकी विवचना स्पेसल मरिज एक्ट म नही की गई है जो इस एक्ट की कयजोरी है । इस एक्ट से विवाह म ब्यक्तिक स्वतंत्रता लट विवाह और म्मानी विवाहा को प्रोत्साहन मिलन की सम्भावना है । एस ही विवाहा म विवाह विच्छेद की भी सम्भावना अधिक है । एकी दगा म केवल क्रूरता शब्द को लिखकर उसका निवचन गायाल्या और वकीलो पर छोडना एक ऐसी बधानिक कमी है जिसस हानि ही अधिक हा सकती है ।

घापसी समझौते द्वारा विवाह विच्छेद का अधिकार देने के कारण स्पेसल मरिज एक्ट की घालाचना भी की गई है । इस विधान का दुग्पयाग न हा, इसकारण, हमपर कुछ बंधानिक राकें भी लगाई गई हैं । पति-पत्नी घापसी समझौते द्वारा तभी तलाक की माग कर सकत हैं जब उनका विवाह इस एक्ट क अंतगत हुआ हा, जब विवाह गम्पन या निर्वाघत होन के तीन साल बाद तलाक क लिए प्रायनापत्र दिया गया हा, जब प्रायनापत्र दन क समय पति पत्नी एक साल स अलग अलग रहत आए हा और प्रायनापत्र दन क समय स त्तर उसका निणय होने तक अलग अलग रहें । इस अधिनियम म लिए गए विधान क अनुसार आपसी समझौते क आधार पर मागे गए तलाक के कस की मुनवादी प्रायनापत्र देने की तारास क एक साल वाट होगी और इस बीच म आपसी फल द्वारा तलाक सन का निणय पति-पत्नी क बीच म बना रहना चाहिए । अधिनियम क अनुसार अलात्त तभी तलाक की अनुमति दगा जब घालत को यह निचय हा जाय कि घापसी समझौते द्वारा तलाक लेने का निणय पति-पत्नी न अपनी अपनी सही राय स किया है ।

परम्परागत हिन्दू विधि प्रखाली में, पति या पत्नी म स किसी एक के

धमपरिवर्तन करने से उनके विवाह का म्वत वध विच्छेद नहीं हो जाता है। यदि पति या पत्नी में से कोई भी धम परिवर्तन कर ले तो नये विधान के अनुसार, हिंदू विवाह अधिनियम के आधार पर, विवाह विच्छेद की मांग की जा सकती है। उनमें से यदि कोई भी दूसरी ही जाति है और दूसरा हिंदू रहता है, तो इसी धम ग्रहण करने वाला नटिव कंवर्ट्स मैरिज डिशाल्यूशन एक्ट के आधार पर अपने जीवनसाथी का तलाक दे सकता है क्योंकि इस एक्ट का उद्देश्य उसी अवस्था में तलाक का विधान करना है जहाँ पति या पत्नी में से कोई भी इसी जाति हो जाए। अदालत से तलाक की डिग्री मिलने के बाद, धादी प्रतिवादी का पुनर्विवाह करने का अधिकार मिल जाता है।

विधवा विवाह का वधता मिलना योरोपीय सघात से उत्पन्न एक विशेष प्रातिकारी सांस्कृतिक विकास है। यह पहले ही कहा चुका है कि हिंदू शास्त्रकारहर दशा में विधवा पुनर्विवाह के विरोधी नहीं रहे हैं यद्यपि उन्होंने इसका खुला छूट नहीं दी है। गाम्भिर्यपूर्ण नियोग के पक्ष में रहे हैं और नियोग के लिए उन्होंने दवर और सपिण्ड को उत्तम माना है। गाम्भिर्यपूर्ण मायताओं में दवर में नियोग उत्तम माना गया है और निम्नवर्णी जातियों में विधवा का देवर से पुनर्विवाह अधिमान्य माना गया है। दाना दशाओं का आधार एक ही मान्यता रही है और वह यह है कि विधवा और उसके पहले पति से उत्पन्न वच्चे पति के परिवार में ही रहें और विधवा का अपने पति के परिवार से भरणपोषण चलता रहे। पुनर्विवाह करने पर विधवा का अपने मृत पति के परिवार से भरणपोषण का अधिकार समाप्त हो जाता है। किन्तु, यद्यपि सम्पत्ति स्थापित होने के समय उच्चवर्णी जातियों में विधवा पुनर्विवाह अमान्य हो गया था। भारत के समाज सुधारकों ने शास्त्रों का हवाला देकर यह साबित किया कि शास्त्रों में विधवा-पुनर्विवाह का एकदम निषेध नहीं है और सामाजिक विधान द्वारा विधवा पुनर्विवाह का वध बनाने की मांग की। इसके फलस्वरूप हिंदू विवाह रिमरिज एक्ट (1856) पास हुआ जिसमें विधवा-पुनर्विवाह और उससे उत्पन्न से तान को वध करार दिया गया।

हिंदू विवाह रिमरिज एक्ट (1856) के द्वारा बालिग हिंदू विधवा को पुनर्विवाह का अधिकार दिया गया है। यदि विधवा बालिग नहीं है तो पुनर्विवाह के लिए उसके अभिभावक की अनुमति आवश्यक है। अभिभावक वही सम्बन्धी हैं जिनका उत्तरव हिंदू मैरिज एक्ट में हुआ है। विवाह की इच्छुक विधवा ने मांग में स्थापित होने वाले के लिए इस एक्ट में दण्ड का विधान किया गया है। विधवा के पहले विवाह में किए गए बमहाण्डों को फिर से किया जा सकता है या बिना उनके ही विवाह का सम्पन्न किया जा सकता है। यदि विधवा बालिग है तो उसकी अनुमति ही विवाह का वध बनाने के लिए काफी है। इस एक्ट से जहाँ विधवा को पुनर्विवाह का अधिकार मिलना है वहाँ, जहाँ कि हिंदू परम्परा रहा है पुनर्विवाह से विधवा

के कुछ अधिकार समाप्त भी हो जाते हैं। उदाहरणार्थ पुनर्विवाह करन पर मृत पति की सम्पत्ति में विधवा का उत्तराधिकार या मृत पति के परिवार में विधवा का भरण-पोषण अधिकार समाप्त हो जाता है। पुनर्विवाहित विधवा अपने मृत पति के नाम पर दत्तक पुत्र नहीं ले सकती है हा, यह अवश्य है कि पुनर्विवाह के बाद, विधवा का जो अधिकार बनते हैं, वे इस एक्ट से प्रभावित नहीं हैं। पुनर्विवाहित विधवा अपने पहले पति के पुत्र की सम्पत्ति की तब उत्तराधिकारिणी है जब उसका पुत्र उसके पुनर्विवाह के बाद लावारिस मर जाता है। इस विषय पर अध्यात्मिक मतवय नहीं है कि यदि पुनर्विवाह से पहले विधवा धर्म-परिवर्तन कर और बाद में पुनर्विवाह कर तो वह मृत पति की सम्पत्ति की अधिकारिणी रहती है या नहीं। इलाहाबाद हाई-कोर्ट के अनुमार धर्म-परिवर्तन के बाद यदि विधवा पुनर्विवाह करती है तब मृत पति की सम्पत्ति में उसका जो भी अधिकार था वह अशुभ्य रहता है क्योंकि धर्म परिवर्तन के बाद पुनर्विवाह इस एक्ट के अंतर्गत, पुनर्विवाह नहीं है। किन्तु अन्य हाई कोर्टों के अनुमार धर्म परिवर्तन करके पुनर्विवाह करन वाली विधवा का अपने मृत पति की सम्पत्ति पर जो वैसे ही अधिकार समाप्त हो जाता है जम कि पुनर्विवाह में होता है।

नए विधान में बहुपत्नीत्व तो समाप्त हो गया है किन्तु अशुभता का निषेधों में अवरुद्ध स्त्री को भरण-पोषण का वैसे ही अधिकार दिया गया जम कि विधवा का है। अवरुद्ध स्त्री दासी है जो रखैल के स्तर पर आती है। रजवाडा में एमी स्त्रियों की मर्यादा अधिक रही है। अवरुद्ध स्त्री वह स्त्री है जो हिन्दू हो जा अपने हिन्दू प्रेमी के जीवन पयन लगातार उसके साथ रहे और उसके तथा उसके प्रेमी के धर्म-सम्बन्ध में ता पर-सम्बन्धों की श्रेणी में आते हैं और न अगम्यगमन की श्रेणी में। इगना तादर्थ्य यह हुआ कि रखैल और उसका स्वामी दाना हिन्दू है और स्वामी के मरने तक दाना का सम्बन्ध बना रहा हो तथा रखैल कभी भी किसी दूसरे के पास न रहा हो। रखैल विवाहित भी हो सकती है और धर्मवाहित भी। उसकी मन्तान का दासी पुत्र की मना दी गई है। रखैल, अपने स्वामी के जीवन-काल में भरण-पोषण की मांग के लिए धर्म अधिकार का प्रदान नहीं करता सकती है। स्वामी की मृत्यु के बाद ही उस भरण पोषण का अधिकार मिलता है क्योंकि उससे वह धर्म आधार है जिन का ऊपर बणन किया गया है। दासी-पुत्रों का भी अपनी माता के स्वामी की सम्पत्ति से भरण-पोषण का अधिकार मिलता है। किन्तु यदि स्वामी गूढ़ है तो रखैल और उसके पुत्रों का स्वामी के मरने के बाद उसकी सम्पत्ति में उत्तराधिकार का अधिकार मिलता है। इस प्रकार इस काल में, दासी रखैल को हिन्दू-परम्पराओं को धर्म माना गया है। उत्तराधिकार की स्थापित विधि से यदि मृत्युत गुग्गुओं का उस पक्षी है तो अवरुद्ध स्त्री की वैधता ने सयुक्त पृष्ठस्थी को प्रथम दिया है। हा, यह अवश्य है कि इन एक्ट द्वारा रखैल की परिभाषा अग्रकार में की गई है कि रखैल के लिए सामाजिक स्थान कम हो गया है। इस एक्ट के अनुसार, रखैल वह है जिसके माय

यौनिक सम्बन्ध व पर सम्बन्ध की श्रेणी में न आते हैं। जहाँ विवाह म दासी देने की प्रथा रही है वही दासी और स्वामी के सम्बन्ध पर सम्बन्धों की श्रेणी में नहीं आते हैं। इस एक म, जहाँ रखल दासी या अवरुद्ध स्त्री की परम्परागत मायता को बंध माना गया है वहाँ दूसरी ओर दासी की बंध परिभाषा इसप्रकार से की गई है कि दासी का स्थान वस्तुतः समाप्त हो गया है।

इस प्रकार, अंग्रेजी राजकाल में और उसके बाद, हिन्दू विवाह परम्पराओं का जा विविकरण हुआ है उसमें एक ओर, अनेक हिन्दू वैवाहिक परम्पराओं का परिवर्तित उद्विकास हुआ है और, दूसरी ओर, उस उद्विकास पर अनेक उन योरोपीय मायताओं का प्रतिरोध हुआ है जिनके अनुरूप सांस्कृतिक स्तर पहले ही स भारत में विद्यमान थे। यह इसी विकास का परिणाम है कि आज हिन्दू विवाह संस्कार भी हैं और सविदा भी। यह नहीं कहा जा सकता कि हिन्दू विवाह केवल संस्कार ही रहा है। यदि ऐसा होता तो शास्त्रकार उन परिस्थितियों का प्रतिपादन न करत जिनमें पत्नी पुनर्विवाह की अधिकारिणी मानी गई है। वास्तव में हिन्दू समाज में विवाह के संस्कारों और सविदाओं पर साथ साथ रहे हैं और आज दोनों एक में मिल गए हैं। सिविल मरिज की धारणा योरोप की देन है। बयिन दृष्टिकोण से विवाह कमकांडों में केवल विवाह होम और सप्तपदी ही महत्वपूर्ण हैं। कयादान व कमकांड का व्यावहारिक महत्व अवश्य है किन्तु आज उसका कोई वैधानिक महत्व नहीं है। हिन्दू परम्परा के अनुसार, अभिभावक की अनुमति बंध है पर केवल एक सीमा तक। आज बालिक हिन्दू कया को अपना जीवन साथी चुनने का बंध अधिकार मिला हुआ है। परम्परागत हिन्दू विधि प्रणाली में यह पहले ही विद्यमान था। योरोप के प्रभाव में उनका निम्नार हुआ है। वैसे ही, विधवा विवाह की अप्रत्यक्ष सीमित अनुमति थी यद्यपि हिन्दू समाज के एक बड़े भाग में विधवा विवाह हेतु नहीं समझा जाता था। आज विधवा पुनर्विवाह को बंध अनुमति मिली हुई है यद्यपि उसकी व्यावहारिक समस्या बहुत कुछ पहले जसी है। योरोप के प्रभाव से जो सामाजिक सांस्कृतिक परिवर्तन हुए हैं उनमें विवाह-आयु बढ़ी है किन्तु केवल शहरी और शिक्षित तबक में। ग्रामीण समाज में जहाँ आज भी कृषि-व्यवस्था का बहुत कुछ पहल जैसा प्राधान्य है अब भी बाल विवाह हाते हैं।

विधवा पुनर्विवाह की भाँति तलाक का भी हिन्दू समाज के एक बड़े तबके में प्रचलन रहा है। शास्त्रकारों ने मत इस विषय में विरोधी हैं। यह नहीं कहा जा सकता है कि सभी शास्त्रकार एक मत से तलाक के विरोधी हैं। तलाक विवाह-विच्छेद और पुनर्विवाह को शास्त्रकारों ने एक अवाञ्छनीय आवश्यकता के रूप में देखा है। भारत के नय विधान में भी तलाक को इसी दृष्टिकोण से देखा गया है क्योंकि इसमें, एक ओर तलाक का बंध माना गया है, उसकी अनुमति दी गई है और, दूसरी ओर, तलाक को ऐसे विधान से बाधने का प्रयास किया गया है कि

तलाक इतना आसान न हो जाय कि उसमें विवाह और ववाहिक जीवन की गतिमा ही सुप्त हो जाय। जीवन के प्रति प्रकृतिवादी दृष्टिकोण बाराण की दृष्टि है और उसके अनुसार यह माना जाता है कि जहाँ पति-पत्नी में मानसिक अन्तर इतना बढ़ जाय कि वे परस्पर पति-पत्नी की भूमिका निभान में असमर्थ हो जाय, वहाँ तलाक आवश्यक है क्योंकि उसमें व्यक्तिक गुण तथा सामाजिक व्यवस्था का प्रथम मिलता है। पर, साथ ही साथ बाराण में हम स्वच्छन्द प्रेम, मानसिक निराश्रय उपकरण यौन-आनन्दयुक्तता की पूर्ति के प्रति प्रकृतिवादी मान्यताओं मिश्रण की आधुनिक स्वतन्त्रता जसो चीजें भी मिली हैं जिनके कारण यौन-स्वच्छन्दता की प्रकृति को प्रोत्साहन मिला है। इन परिस्थितियों में तलाक एक एगो सामाजिक समस्या का रूप ले रहा है जिसके कारण अनेक नये विधान में हैं और अनेक उन नये सामाजिक-न्यायिक परिस्थितियों में जो बाराण के सभ्यता से उन्मूलन हुई हैं। किन्तु हमारा यह तात्पर्य नहीं कि तलाक की ब्यापक अनुमति ही अनादानीय है और वही तलाक के लिए उत्तरदायी है। बाराण के सभ्यता से जो सामाजिक न्यायिक परिस्थितियाँ और मानदण्ड उभरे हैं उनमें यदि तलाक का बंध बनाने के लिए प्रयत्न किया जाता है तो उन्होंने ही तलाक को सामाजिक समस्या भी बनाया है। तलाक पति-पत्नी के बीच सामंजस्य की समस्या में सम्मिलित है और इस रूप में तलाक एक आधुनिक सामाजिक समस्या है। इन समस्या का निराकरण बहुत कुछ नर-नारियाँ की तलाक और विवाह विषयगत मनोवृत्ति और तलाक के विधान के उपयोग पर निर्भर है। कुछ भी हो, प्रस्तुत विषय के सम्बन्ध में विचारणीय तथ्य यह है कि आज हिन्दू समाज के सभी वर्गों के लिए तलाक बंध है, विवाह अविच्छेद्य संस्कार नहीं है और विवाह तथा तलाक के प्रमाण परिष्कार और जानि के परिष्कार में निरन्तर अक्षर

1. दिल्ली के हिन्दुस्तान टाइम्स (नवम्बर 10, 1967) अक्टूबर में प्रकाशित एक विवरण के अनुसार, दिल्ली में पिछले छ सालों में होने वाले तलाकों के कारणों में यौन (५५) तलाक का मुख्य कारण रहा है। आमतोरी शैलिप्ता पढ़ाया, जो तलाक तथा बाल अपराधों के पक्षों का निष्पन्न करने के लिए मजिस्ट्रेट के अनुसार, नर नारियाँ में, परसम्बन्धों को बढ़ती हुई संख्या तलाक का मुख्य कारण बन रही है। अहमदाबाद की कोई मुहल्ला परसम्बन्धों की समस्या से मुक्त है। उन्हीं के अनुसार गाँवनास से उच्चार्ग में दिल्ली में तलाकों को बढ़ाया पाच-छ तलाक प्रतिमास भी किन्तु, आज तलाकों की संख्या पचास से तेज़र पाठ प्रतिमास तक है। अदालत के मामलों जितने तलाक के बेश मान ह उनमें से आधास प्रतिशत पक्षों में तलाक के लिए अदालती अनुमति मिल जाती है। आमतोरी पढ़ाये के अनुसार परसम्बन्धों के अलावा अनेक व्यवहार मानसिक दृष्टि और आर्थिक तथा मानसिक साधनों तलाक के अन्य मुख्य कारण ह।

अधिकार में आ गए हैं। विवाह धीरे धीरे धीरे व्यक्ति बनते जा रहे हैं।

यारानीय सघात के कारण हिंदू विवाह परम्पराओं का जो विधिकरण हुआ है उसमें अनेक परंपराओं अपने परम्परागत रूप में या परिवर्तित रूप में बंध मान ली गई हैं और जोक परम्पराय अवध हो गई है। इन परम्पराओं में शास्त्रीय, जातीय तथा स्थानीय परम्पराओं शामिल हैं। शास्त्रीय परम्पराओं के साथ साथ, अनेक प्रचलित परम्पराओं का बंधता मिलना इस काल का एक प्रमुख सांस्कृतिक विकास है। हिंदू मरिज एक्ट से अनेक प्रचलित जातीय और स्थानीय परम्पराओं बंध अपवाद के रूप में स्वीकार कर ली गई हैं बशर्ते कि वे राज्य नीति के विरोध में न हों। इस दृष्टिकोण से यह विधान हिंदू समाज के एकीकरण के विरुद्ध पड़ता है। लेकिन, साथ ही साथ इससे किसी दशा तक हिंदू समाज के एकीकरण का प्रोत्साहन भी मिलता है। नये विधान में सभी वर्गों और सभी जातियों के लिए बहुविवाह अवध है। नये विधान के दृष्टिकोण से जोनसार बाबर की बहुपतित्व की प्रथा एक बंधानिक अपवाद ही नहीं बरन एक बंधानिक पहली बन गई है। एक स्त्री के रहन हुए दूसरा विवाह करन वाला, हिंदू मरिज एक्ट के अनुसार, दण्ड का भागी है। हिंदू विवाह के आठ प्रकारों में, हिंदू मरिज एक्ट केवल ब्राह्म विवाह का मायता प्रदान करता है। इस एक्ट की मायता में सभी हिंदू विवाह ब्राह्म हैं जब तक कि यह प्रमाणित न किया जाय कि अमुक विवाह ब्राह्म नहीं है। जामुर विवाह माय है पर एक बंध प्रथायी अपवाद के रूप में। बंधू धन दिया जा सकता है पर वह विवाह सविदा का बंध अग नही है। उसी प्रकार से दहेज भी विवाह सविदा का बंध अग नही है। इस एक्ट से विवाह बंधनिक हो गया है किंतु, व्यवहार में विवाह बंध भी बर जोर कया के परिवारों के बीच में एक समझौता है। दहेज और बंधूधन अवध हाते हुए भी तब तक चलत रहेंगे जब तक विवाह पूणतया बर और कया के बीच में स्वतंत्र समझौता नही बन जाता है। ब्राह्म और दख विवाह बस्तुत एक ही हैं। आय और प्राजापात्य समयातिरेक हाकर त्रिलीन हो गए हैं तथा गांधव राक्षस और पनाच आज सामाजिक अपराध बन गए हैं और भारतीय दण्ड संहिता के नियमानुसार दण्डनीय हो गए हैं।

स्पेशल मरिज एक्ट के द्वारा गांधव विवाहों को बंधानिक आधार प्रदान किया गया है। गांधव विवाह बंध अपराध है जहा कया नाबालिग है कयाकि नाबालिग कया ग विवाह करन वाल बर पर कया अपहरण का अपराध लगाया जा सकता है। नये विधान के अनुसार अठारह बष की कया और द्बकीम बष का बर ही गांधव विवाह कर सकते हैं। किंतु स्पेशल मरिज एक्ट ने गांधव विवाह के परम्परागत रूप का बदल दिया है। परम्परागत गांधव विवाह में बर और कया परम्पर सम्मति से बंधानिक बंधन में बंधकर बाद में अभिभावकों या समाज का अनुमति प्राप्त करत थे। किंतु स्पेशल मरिज एक्ट में बालिग बर और कया को

विवाह से पहले अदालत की अनुमति लेना आवश्यक है। हिन्दू-परम्परा के अनुसार माघ व विवाह वैयक्तिक रहा है। स्पेशल मरिज एक्ट के अनुसार भी वह व्यक्ति है किन्तु, वस्तुतः, वह एक विधायक विवाह बन गया है—वह विवाह जिसमें विवाह के लिए कमकाबो का विधान नहीं है, वर-कन्या के अभिभावकों की अनुमति की आवश्यकता नहीं है जो पूर्णतया वैयक्तिक है दो परिवारों के बीच में समझौता नहीं है और जाति धर्म तथा सम्प्रदाय के प्रभावों से मुक्त है। यह विवाह वर-कन्या के बीच में वैवाहिक बंधन में बंधन का समझौता है। इसीलिए विशेष विवाह प्रम-विवाह होता है और वर तथा कन्या के बीच में वैयक्तिक समझौता होने के कारण दहेज और वधुधन की समस्याओं से मुक्त होता है। अतः, स्पेशल मरिज एक्ट को नये भारत में नये समाज का वैवाहिक विधान कहा जा सकता है। किन्तु नये पुराने के संघर्ष के कारण वही-वही विशेष विवाह व्यक्ति और परिवार तथा जाति और सम्प्रदाय के संघर्ष का कारण बन जाता है। यदि वर और कन्या बालिग हैं और एक ही जाति के हैं तो वह हिन्दू वैवाहिक अधिनियम के अंतर्गत विवाह सम्पन्न कर सकते हैं यदि वे भिन्न भिन्न जातियों के हैं तो उन्हें इस बात की छूट है कि चाहे वे हिन्दू मरिज एक्ट के अंतर्गत अपना विवाह सम्पन्न करें या स्पेशल मरिज एक्ट के अंतर्गत। यदि वे भिन्न धर्मों या सम्प्रदायों के हैं तो स्पेशल मरिज एक्ट का आश्रय लेना आवश्यक है। धर्मगत विधि प्रणाली (जिस हिन्दू या मुस्लिम या ईसाई) का तभी आश्रय लिया जा सकता है जब वर और कन्या जन्मत या धर्मपरिवर्तन से एक ही धर्म के हों। जिस प्रकार स्पेशल मरिज एक्ट वर-कन्या का वैवाहिक बंधन में बंधन का वैयक्तिक अधिकार प्रदान करता है, उसी प्रकार यह एक्ट पति-पत्नी को पारस्परिक स्व-रक्षा में विवाह विच्छेद का भी अवसर प्रदान करता है बशर्ते कि उनका विवाह इसी एक्ट के आधार पर हुआ हो। यह विधान वर्तमान भारत में एक विशेष विधायक है।

स्पेशल मरिज एक्ट के चौथे अध्याय की उन्नीस से लेकर इक्कीस धाराओं का परिवार के परम्परागत गठन पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है। इन धाराओं के अनुसार जब कोई हिन्दू, बौद्ध, सिक्ख और जन, जो अपने समुक्त परिवार का सन्ध्य है, इस एक्ट के अंतर्गत विवाह सम्पन्न करके अपने विवाह का निबन्धन करता है तो उसका अपने परिवार से सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है किन्तु परिवार में उसका उत्तराधिकार ज्यादा का स्यों बना रहता है। हाँ, यह अवश्य है कि उसका तथा उसकी सातार का उत्तराधिकार हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम से नियंत्रित न होकर, भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम से नियंत्रित होगा है।

मुस्लिम विवाह

जिस प्रकार हिंदू ब्रह्महिक परम्पराओं के निश्चित विधिवरण और उनके अदालती निवचनों से हिंदू ब्रह्महिक परम्पराओं में परिवर्तन भी जाया और उनका पुनर्नयन भी हुआ, उसी प्रकार मुस्लिम विवाह परम्पराओं का, इस काल में सहिताकरण हुआ उह वधता मिली अन्तर्गण परम्परायें वध मानकर निश्चित बनाई गई (जैसे डिस्टाल्यूशन आफ मुस्लिम मरिजज एक्ट 19०9 के द्वारा स्त्री को तलाक दान के वध अधिकारों का मिलना) और अदालती निवचनों के द्वारा अन्तर्गण मुस्लिम परम्पराओं में परिवर्तन आया। अंग्रेजी राजकाल में जसा कि पहले कहा जा चुका है, हिन्दू और मुस्लिम स्त्रीय विधियों को ऐसबद्ध करके सहितावद्ध किया गया जिसके कारण हिंदू मुस्लिम विधि परम्पराओं का समयानुसार परिवर्तन पुनर्नयन हुआ। उदाहरणार्थ सिन्डिकेट ऑफ मुस्लिम मरिजज एक्ट (1939) का उद्देश्य मुस्लिम विधि के अन्तर्गत विवाहित पत्नी द्वारा विवाह विच्छेद करन तथा पत्नी द्वारा इस्लाम के परित्याग करने पर उत्तर ब्रह्महिक सम्बन्धों पर पड़ने वाले प्रभावों से सम्बन्धित मुस्लिम विधि परम्पराओं को एकत्र तथा स्पष्ट करना है। इस एक्ट की भूमिका में कहा गया है कि यह एक्ट एम्बरु होने के साथ-साथ धोषणात्मक है। किन्तु इस पर, मुल्ला की यह टिप्पणी है कि इससे मुस्लिम विवाह सम्बन्धी विधि में सारगर्भित परिवर्तन हाता है¹। अतः इस एक्ट का केवल धोषणात्मक ही नहीं कहा जा सकता है। यह नहीं कहा जा सकता कि इस्लाम की परम्परागत विधि प्रणाली में स्त्री को तलाक दान का अधिकार नहीं है। हताफी विधि सम्प्रदाय में नहीं किन्तु मालिकी विधि सम्प्रदाय में स्त्री को यह अधिकार है। ऐसी दशा में यह एक्ट तलाक सम्बन्धी गौण विधि परम्परा का प्रधान बनाता है और परम्परा के एक नये निवचन के लिए अवसर प्रदान करता है। अतः साथ ही साथ यह अवश्य है कि हिंदू ब्रह्महिक विधि प्रणाली की अपेक्षा मुस्लिम ब्रह्महिक विधि प्रणाली में परिवर्तन कम पुनर्नयन अर्थक हुआ है क्योंकि मुस्लिम ब्रह्महिक प्रणाली घमगत और हिंदू विधि प्रणाली की अपेक्षा अधिक निश्चित रहा है। इसका परिणाम यह हुआ है कि यारापीय सघान के अन्तर्गत इस्लामाइन दण्ड परम्पराओं के विधिकरण के स्थान पर अरबी इस्लामी परम्पराओं का ही विधिकरण हुआ है। यारापीय सघान में मुस्लिम विवाह परम्पराओं में जो परिवर्तन आए हैं वे इस्लामी विवाह विधि के अदालती निवचना में आय हैं क्योंकि इस्लामी विधि में स्वतंत्र विधान की रचना नहीं के बराबर हुई²।

1 मुल्ला डी० एफ० प्रिंसिपल्स आफ मोहम्मडन ला पृष्ठ 269

2 सक्सेना, बागीप्रसाद आपरेणन आफ मुस्लिम ला इन इंडिया एण्ड पाकिस्तान पृष्ठ 72

के आधार पर विकसित हुई हैं। इस्लाम के द्वारा अनेक अरबी परम्पराओं का हास हुआ और अनेक परम्पराओं का इस्लामीकृत उद्विकास¹।

लेवी की यह मायता है कि शरिअत में प्रतिपादित परम्पराओं और विभिन्न देशों के मुसलमानों की स्थानीय परम्पराओं में अंतर रहा है। यह अंतर किसी न किसी रूप में सभी देशों में पाया गया है। विवाह तलाक और उत्तराधिकार में कहीं-कहीं गरा की परम्पराओं की अवहेलना सी प्रतीत होती है। हिमालय के स्थानों में बैसन वाल मुसलमान (इसमें लेवी का तात्पर्य भारत के मुसलमानों से है, पृष्ठ 244) इस्लाम के अनुयायी होते हुए भी उन अनेक परम्पराओं को अपनाये हुये हैं जो वहाँ के गैर मुसलमानों से भिन्न नहीं है। इस्लाम में मृतपूजक स्त्री से विवाह करने का विधान नहीं है फिर भी मुस्लिम पुरुषों और हिन्दू स्त्रियों का विवाह होना है जिसमें स्त्री विवाह के पहले इस्लाम स्वीकार करती है। मुसलमान स्त्रियाँ मक्खों से विवाह कर लेती हैं जो शरा के विषय में बयोजि इस्लाम के नियमानुसार मुस्लिम स्त्री को मुसलमान में ही विवाह करना चाहिये। इस्लाम में विधवा विवाह आज्ञा है किन्तु, उन मुस्लिम सम्प्रदायों में जिनकी उत्पत्ति हिन्दुत्व में हुई है विधवा विवाह शराहनीय नहीं माना जाता है। उसी प्रकार हिन्दू प्रभाव के कारण कुछ मुस्लिम सम्प्रदायों में तलाक विरल ही होता है। लेवी के इस वर्णन का आधार वे विवरण हैं जो उनीसवीं शताब्दी के अंत या बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में लिखे गये थे। इस बीच में मुस्लिम स्वीय विधि का जो सहिताकरण हुआ है उसमें दंगल परम्पराओं के समक्ष अरबी परम्पराओं का प्रधानता दी गई है जिसके फलस्वरूप दंगल परम्पराओं पर धीरे धीरे शरिअत की परम्पराओं का प्रतिरोध हुआ है और उससे मुस्लिम विवाह का जो रूप उभरा है वह अरबी परम्पराओं में ही निहित है। मुस्लिम वैवाहिक परम्पराओं का विकास विवाह सम्बन्धी उन अरबी परम्पराओं के आधार पर हुआ है जो इस्लाम के अभ्युदय के पहले अरब में पूव इस्लामी प्रचलित थी। उस काल में अरबी सामाजिक गठन गणजातीय अरबी परम्पराओं का। गणजातियों में परम्परागत कुल वर और सघय पूव इस्लामी अरबी समाज की विशेषता थी। इन गणजातियों में मातृमत्तात्मकता की प्रधानता थी। गुनरी के अनुसार पितृवशीयता की भी प्रथाएँ थी यद्यपि मातृमत्तात्मकता और मातृवशीयता का पाया जाना अधिक निश्चित है। मातृमत्तात्मकता

1. देखिए के० एम० कपाडिया कृत मरिज एण्ड फमिली इन इण्डिया अध्याय 9, गाडोप्रियाय डिमार्चोस कृत मुस्लिम इस्टीट्यूट्स, अध्याय 8, रिचर्ड लेवी कृत दि सोशल स्ट्रक्चर आफ इस्लाम अध्याय 2, गुनरी ए० एम० ए० कृत आउट लाइंस आफ इस्लामिक कल्चर अध्याय 14 और अली कृत दि स्प्रिट आफ इस्लाम, भाग 2 अध्याय 5

तथा मातृवशीयता के साथ-साथ बहुविवाह के दोनों रूप, बहुपत्नीत्व तथा बहुपतित्व, पाये जाते थे। इस्लाम के पहले के अरबी समाज में, एक भोर, नारियाँ जैसे मातृसत्तात्मकता बहुपतित्व की प्रथा थीं, दूसरी ओर भ्रातृक बहुपतित्व की परम्परा^१। नारी का अपना पति चुनने की स्वतन्त्रता थी। वह या तो स्वयं या अपने पिता, भाई या अन्य सम्बन्धियों द्वारा अपना पति चुनती थी। पति और पत्नी दोनों को विवाह विच्छेद करने का अधिकार था। नारी अपनी इच्छानुसार जब चाह तब पति का परित्याग कर सकती थी। किन्तु एक एण्ड मरिज इन अर्थों अरबिया के लेखक डब्ल्यू० राबर्टसन स्मिथ के आधार पर कफाडिया ने यह लिखा है कि अपने तम्बू का एक बदलकर पत्नी पति से विवाह विच्छेद करती थी और पति के पुत्र मात्र से ही पत्नी का सम्बन्ध विच्छेद हो जाता था। विवाह धार्मिक संस्कार न होकर सत्रिप्तमान था जिसका प्रमाण है महर की प्रथा जो इस्लामी वैवाहिक परम्पराओं में प्रधान थी। महर का रूप वध धन का रूप था—वह धन जो बरक़ा या पिता का दत्त था। विवाह विच्छेद के समय पति को यह धन पत्नी के पिता या सम्बन्धियों को वापस करना पड़ता था। स्त्री के अनुसार वध धन का दावतू ये—एक वह धन (महर) जो बरक़ा या पिता या उसके अभिभावक का दत्त था और दूसरा वह धन (सिताक) जो बरक़ा या पिता का दत्त था और जिसके बिना वह पत्नी में यौन सम्बन्ध नहीं स्थापित कर सकती थी। आगे चलकर, महर की ही प्रथा रह गई और इस्लाम में वध विवाह का एक आधार बन गई।

इस्लाम के पहले के अरबी समाज में अनेक प्रकार के विवाहों का वर्णन मिलता है। तत्कालीन महर की प्रथा का विद्वानों ने पत्नी के बहकर यह प्रतिपादित किया है कि प्रथम विवाह तत्कालीन समाज की प्रधान वैवाहिक परम्परा थी। इसके साथ-साथ अपहरण विवाह की भी परम्परा थी जिसका कारण था तत्कालीन धरत की गणजातियाँ में चलने वाला कुल-धर। महर अपहरण की हुई नारी का दासी के रूप में रहने तथा उस रक्षक वतान की प्रथाओं के कारण, यह कहा गया है कि तत्कालीन अरबी समाज में नारी सम्पत्ति समझी जाती थी। कोई भी अरब निवामा अपनी दासी का बचकवता था या तमर का दत्तता था। स्त्री अतिरिक्त, बहुपतित्व और बहुपत्नीत्व की आम प्रथा थी। मौतली मा पिता के मरने पर, पुत्र का उत्तराधिकार में मिलती थी। कोई भी व्यक्ति अपनी मौतली मा से विवाह कर सकता था या मेरर स्वर किमी तमरे के साथ उमवा विवाह कर सकता था।

१. यूनानी लेखक स्ट्रुबो का ह्याला दत्त हुए गुन्तरी ने यह लिखा है कि समोयड पुरुष परिवार का मृगिया होता था और कई भाइयों की एक ही सम्मिलित पत्नी होती थी। जब एक भाई पत्नी के पास होता था तो वह दरवाजे पर अपनी छाया गिरा देता था ताकि दूसरा न आ सके।

इस परम्परा का भी नारी को सम्पत्ति मानने के विचार का प्रमाण माना गया है। निदाग उसी प्रथा की तत्कालीन अरबी समाज में पाई जाती थी। जब कोई व्यक्ति बुद्धिमान तथा गौरवान् या साहसवान पुत्र का कामना करता था तो वह अपनी पत्नी का बहिष्कार और माहम के लिये प्रसिद्ध व्यक्ति के साथ सहवास करने के लिये भ्रष्ट नेता या और महवाम में उत्पन्न सन्तान पति की वंशसन्तान समझी जाती थी। मिनाता के नाम मित्र का पत्नी से सहवास करने का अधिकार देना भी एक आम प्रथा थी¹। विद्वान् जान वाला व्यक्ति अपनी पत्नी का अपने मित्र या किसी अन्य व्यक्ति का साथ जाता था और वापस आकर पुनः अपनी पत्नी को वापस ले लेता था। जन्मदायक विवाहों का भी वर्णन मिलता है। विधेय में जाकर जल्दवाले के लिये विवाह करना (बहु विवाह जा केवल यौन-भुज के लिये सविदामात्र होना था) एक साधारण अरबी रिवाज था। इस्लाम में मुना विवाह की धारणा और परम्परा अभी अरबी आधार पर विकसित हुई है।

रायट मन समय के अनुसार² इस्लाम के अन्वय के पहले अरब में जो बहुविवाह प्रथा प्रचलित थी उसका तीन विधायक थी—एक नारी को अपना पति चुनने की स्वतन्त्रता थी जो पति अपनी पत्नी के सम्बन्ध में रक्ता या और पत्नी अपना मर्जी के अनुसार कभी भी पति परित्याग कर सकती थी और तीन सन्तान पर तीनों के सम्बन्धियों का अधिकार रहना था और बच्चे उन्हीं के संरक्षण में पलते थे। रायट मन ने इन विवाह प्रकार का तत्कालीन अरबी परम्परा के आधार पर बीना विवाह कहा है। इस्लाम के अन्वय के प्रारम्भिक काल में इसी विवाह परम्परा के आधार पर जो पितृसत्तात्मक तथा पितृवर्गीय परम्परा विकसित हुई उस समय ने वह अल्प विवाह भी मना ही है। बाल विवाह में पत्नी के स्थान पर पति का प्रभुत्व बढ़ गया और मातृवर्गीय के स्थान पर पितृवर्गीयता का अन्वय हुआ जिसने कल्हनात्मक मानने पर माना और उसके सम्बन्धियों के स्थान पर पिता और उसके सम्बन्धियों के अधिकार और प्रभुता की स्थापना हुई। बाल विवाह में अपनी मर्जी के अनुसार जब चाहे तब पति को तलाक देने के नारी के अधिकार का गन्तव्य हुआ और तलाक में पति का स्वच्छाचारिता का अधिकार मिगा। बाल विवाह में

- 1 अरबी में यह अल्प अल्प पति का पर्याय है किन्तु पिता का पर्याय है अब (ab) जिसका अर्थ संरक्षण या जनक न होकर पालक होता है। यह इस बात का प्रमाण माना जा सकता है कि इस्लाम के पहले के अरब समाज में पिता की जनक की भूमिका पर उतना जोर नहीं था जितना कि उसकी पालन पोषण कर्ता की भूमिका पर—अन्तरी वही पृष्ठ 112
- 2 कपाटिया की पस्तल मरिज एण्ड फमिली इन इंडिया में उद्यत रायट मन के मत के आधार पर पृष्ठ 185

मेहर की प्रथा का समावेश हुआ और मेहर नारी के पिता की सम्पत्ति हो गई। नारी का परसम्बन्धों से बचाव रखना पति का उत्तरदायित्व हो गया। परसम्बन्धों से अपन का बचाना नारी का अपना उत्तरदायित्व न था। गणराज्य में ही परसम्बन्ध समाप्त हो किन्तु गणराज्य के बाहर जाने वाले परसम्बन्ध समाप्त का कारण। नारी, एक बार पिता की सम्पत्ति हो गई और, दूसरी बार पति की। विवाह में बतौ (अभिमात्र) की महत्ता का अन्वय हुआ जो मानसतात्मकता पर पितृसत्तात्मकता के प्रतिरोध का प्रतीक है। विवाह होने पर अपना पति स्वयं चुनने की प्रथा के रूप में नारी का प्राचीन अधिकार बना रहा। नारायण विवाह का अधिकार छिन गया किन्तु मानसतात्मकता परम्परा के अन्वय के रूप में नारी का पति सम्भरण गणराज्य का अधिकार मिला। मेहर इस्लाम में स्थापित हो गया। पुत्रात्मकता की प्रथा का निषेध हुआ किन्तु पुत्री पर पिता का बतौ का अधिकार मिला। अजन्म विवाह में नारी की यौन-स्वच्छन्दता का निषेध हुआ किन्तु मायवी साय नारी सम्भरण और मातृत्व-हरण भी चलता रहा। सतीत्वहर्ता आदर का पाप बन गया। कपाडिया और एबी के अनुसार मुस्लिम के समय में यति, एक बार के अजन्म विवाह के रूप में पितृसत्तात्मक परम्पराएँ जमर रही थीं ता दूसरी ओर शुभ विवाह के रूप में प्राचीन परम्पराएँ चल रही थीं।

मुस्लिम विवाह परम्पराओं का उत्पन्न और विकास की पितृसत्तात्मक तथा मानसतात्मक परम्पराओं के समय और मानसतात्मक परम्पराओं के पितृसत्तात्मक परम्पराओं के सम्भरण में हुआ है। इस्लाम का अन्वय एक मुफारवाती, राजनैतिक मन्त्राधी आत्मान्त के रूप में हुआ—उम आत्मान्त के रूप में जिम्मे पति का पत्नी पर प्रभुत्व मिला किन्तु पति पर भद्र का बचन लगा जिम्मे विवाह एक यति बना नारी के स्वतन्त्र पर पति का विवाह विवाह में अधिक अधिकार मिले लयाक को धेय माना गया पर अनेक बचनों के साथ, रमेश की परम्परा का निषेध किया गया बहुपत्नीत्व का एक सीमा प्रशा की गई और कुवारी अतीव न विवाह उत्तम माना गया। एबी के अनुसार, मुस्लिम में मुस्लिम मानव न त्रिन धरातिक परम्पराओं का प्रतिरोध किया है उनमें एक प्रतीक होता है कि मुस्लिम

साहब ने इस्लामी धार्मिक परम्पराओं को वहाँ तक इसाई परम्पराओं के अनुसार ढालने का प्रयास किया, जहाँ तक वे स्वयं इसाई परम्पराओं से परिचित थे¹। किंतु, लेखी के ही अनुसार जहाँ इसाई विवाह एक धार्मिक कृत्य है, वहाँ मुस्लिम विवाह एक कानूनी सविदा है। यह अन्तर एक महत्वपूर्ण अन्तर है जो यह एकतरफा राय कायम करने के विरोध में पड़ता है कि मुहम्मद द्वारा प्रतिपादित विवाह तथा स्त्री-प्रतिष्ठा सम्बन्धी मान्यतायें इसाइयत से प्रेरित हैं। यह हो सकता है कि मुहम्मद साहब पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष इसाई-प्रभाव रहा हो। मुहम्मद साहब द्वारा प्रतिपादित धार्मिक मान्यताओं और परम्पराओं पर तत्कालीन अरबी परम्पराओं के प्रति होने वाली उनकी प्रतिक्रिया का अधिक प्रभाव है। यही कारण है कि, जसा कि कपाडिया ने प्रतिपादित करने का प्रयास किया है मुस्लिम वैवाहिक परम्पराओं का विकास उन विवाह-परम्पराओं और मान्यताओं के आधार पर हुआ है, जो मुहम्मद साहब के पहले अरबों उनके जीवन-काल में अरब में प्रचलित थीं और जिनको उन्होंने सुधारने का प्रयत्न किया। मुहम्मद साहब के बाद मुहम्मद साहब के कृत्यों और कथना के आधार पर मुस्लिम विधि प्रणाली के निबन्धनों ने उन परम्पराओं को निश्चित रूप देने का प्रयास किया। मुस्लिम विवाह मातृसत्तात्मक तथा पितृसत्तात्मक परम्पराओं के सम्मेलन से उत्पन्न हुआ है। जब सुधार की आवश्यकता पड़ी, मुहम्मद साहब के कथनों को निबन्धित करके ही सुधार का आशय लिया गया—वस ही जैसे हिन्दू विवाह में सुधार का पक्ष शास्त्रीय मान्यताओं का निबन्धन करके लिया गया। हिन्दू विवाह की भाँति मुस्लिम विवाह भी एक सतत सांस्कृतिक विकास का परिणाम है—वह विकास जो एक साथ पुनर्नयनवादी और सुधारवादी रहता है।

मुसलमानों में अरबी भाषा का शब्द 'निकाह' विवाह के पर्याय के रूप में प्रयुक्त होता है। मुस्लिम विधि प्रणाली में निकाह से विवाह का अर्थ निकाह लिया जाता है। बसे, निकाह का शाब्दिक अर्थ है नर-नारी का विषयी समागम। निकाह के शाब्दिक और वैधिक अर्थों में जो अन्तर है उससे यह स्पष्ट होता है कि एक वैध विवाह की अवधारणा के रूप में, निकाह का वर्तमान रूप इस्लाम के प्रभाव में उन परम्पराओं से उत्पन्न हुआ है, जो इस्लाम के पहले अरब में विद्यमान थीं। निकाह के तीन उद्देश्य माने गये हैं— एक यौनिक सामुदाय की बंधनता दूरकर, सत्तानोत्पत्ति और सत्तान की वैधता, तीसरा, पति-पत्नी के रूप में नर-नारी तथा उनकी सत्तान के मध्य अधिभार और कर्तव्य का निश्चिन करके समाज के हित में सामाजिक जीवन का नियमित करना। इस दृष्टिकोण से, निकाह एक प्रकार का सविदा है जिससे दोगे नर-नारी पति-

पत्नी के सम्बन्ध में बचन का प्रस्ताव करके, उस स्वाकार करत ही, परस्पर अनेक अधिकारों और कतव्यों में बंध जाते हैं। इस्लामी वैधानिक भाष्यताओं के अनुसार निकाह एक कानूनी सविदा है जिसका उद्देश्य पति पत्नी के सम्बन्ध में बंधे नर-नारी के यौन-सम्बन्धों, उनके सत्तानों, उनके तथा उनकी सत्तानों के सम्बन्धों और उनके पारस्परिक अधिकारों तथा कतव्यों को वैधता प्रदान करना है। विषयानन्द और सत्तानोत्पत्ति निकाह सविदा के दो आधारभूत उद्देश्य हैं। निकाह के बाहर यौन-सम्बन्ध परसम्बन्धों की श्रेणी में आते हैं जिन्हें इस्लाम में जिना कहा गया है। जिना अवध है। धर्म जिना से उत्पन्न सत्तान भी अवध है।

मुस्ला¹ के अनुसार निकाह की परिभाषा एक सविदा के रूप में की जाती है जिसका उद्देश्य सत्तानोत्पत्ति और सत्तानों को वैधता प्रदान करना है। अमीरअली के अनुसार, मुस्लिम विवाह एक कानूनी सविदा है, जिसके अन्तर्गत किसी पुराहित (मुस्ला) का आवश्यकता है और न किसी धार्मिक समुदाय की²। निकाह सविदा में पुरुष को नारी की प्रतिष्ठा और सम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं मिलता है। इस सविदा में पुरुष को नारी पर अधिकार अवश्य मिलता है किन्तु वहीं तक जहाँ तक मुस्लिम विधि में एक अधिकार की परिभाषा की गई है। सविदा हान के नाम निकाह अविच्छेद नहीं है। विवाह विच्छेद के लिये अरबी में तलाक शब्द आता है जिसका अर्थ है जिसमिल करना या निकाह दना। निकाह सम्बन्ध स्थापित करने की क्षमता प्रत्येक उस मुगलमान का है जिसका दिमाग सही है और जो वयस की अवस्था पार कर चुका है क्योंकि इस्लामी विधि प्रणाली में निकाह तभी वैध माना जाता है जब वर-कन्या ने उमक लिये अनुमति दी है। जिसका दिमाग सही न हो और जिसमें वयस की पार किया है वह निकाह के लिये अक्षम है³।

निकाह में निकाह प्रस्ताव और उमकी स्वीकृति वाली अल निकाह की

- 1 मुस्ला, डी० एफ० प्रिंसिपल्स आफ मुस्लिम ला पृष्ठ 223
- 2 अमीर अली दि स्प्रिट आफ इस्लाम (पृष्ठ 207) में और अब्दुल नबी बरनाम सम्पद अजमत हुसन (1935, नागपुर 121) नामक मुकदमे के फसल में।
- 3 फतवा-ए ब्राहमणोरी के अनुसार निकाह सविदा के बचन में बचन वाला वयसक होने चाहिये, उन्हें निकाह सविदा स्थापित करने की स्वतन्त्रता होनी चाहिये, उन पर किसी प्रकार का जोर दयाव नहीं होना चाहिये और उनके इतनी बोद्धिक स्वतन्त्रता तथा क्षमता होनी चाहिये कि वे निकाह-सविदा के ठीक-ठीक स्वरूप और उसमें निहित उत्तरदायित्व को समझ सकें। अगर किसी व्यक्ति में ये क्षमताएँ हों तो वह बिना किसी दूमेर की सलाह या स्वीकृति के स्वयं निकाह-सविदा को तय कर सकता है—सबमेना, कांगी प्रवाद वही - पृष्ठ 151

साहब ने इस्लामी बवाहिक परम्पराओं को वहाँ तक इसाई परम्पराओं के अनुसार ढालने का प्रयास किया, जहाँ तक वे स्वयं इसाई परम्पराओं से परिचित थे¹। किंतु, लेवा के ही अनुसार, जहाँ इसाई विवाह एक धार्मिक कृत्य है, वहाँ मुस्लिम विवाह एक कानूनी सविदा है। यह अंतर एक महत्वपूर्ण अंतर है जो यह एकतरफा राय कायम करने के विरोध में पड़ता है कि मुहम्मद द्वारा प्रतिपादित विवाह तथा स्त्री-प्रतिष्ठा सम्बन्धी मायतायें इसाइयत से प्रेरित हैं। यह हो सकता है कि मुहम्मद साहब पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष इसाई-प्रभाव रहा हो। मुहम्मद साहब द्वारा प्रतिपादित बवाहिक मायताओं और परम्पराओं पर तत्कालीन अरबी परम्पराओं के प्रति होने वाली उनकी प्रतिनिद्या का अधिक प्रभाव है। यही कारण है कि, जैसा कि कपाडिया ने प्रतिपादित करने का प्रयास किया है, मुस्लिम बवाहिक परम्पराओं का विकास उन विवाह-परम्पराओं और मायताओं के आधार पर हुआ है, जो मुहम्मद साहब के पहले अरबों उनके जीवन-काल में अरब में प्रचलित थीं और जिनको उठाने सुधारने का प्रयत्न किया। मुहम्मद साहब के बाद मुहम्मद साहब के बुर्या और कथना के आधार पर, मुस्लिम विधि प्रणाली के निवचकों ने उन परम्पराओं को निश्चित रूप देने का प्रयास किया। मुस्लिम विवाह मातसत्तात्मक तथा पितसत्तात्मक परम्पराओं के समन्वय से उत्पन्न हुआ है। जब सुधार की आवश्यकता पड़ी, मुहम्मद साहब के कथनों का निवचित करके ही सुधार का आश्रय लिया गया—बस ही जैसे हिन्दू विवाह में सुधार का पशु शास्त्रीय मायताओं का निवचन करके लिया गया। हिन्दू विवाह की भाँति मुस्लिम विवाह भी एक सतत सांस्कृतिक विकास का परिणाम है—वह विकास जो एक साथ पुनः नयनवादी और सुधारवादी रहा है।

मुसलमानों में धरबी भाषा का शब्द 'निकाह' विवाह के पर्याय के रूप में प्रयुक्त होता है। मुस्लिम विधि-प्रणाली में निकाह से विवाह का अर्थ निकाह लिया जाता है। बस, निकाह का शाब्दिक अर्थ है नर-नारी का विषयी समागम। निकाह के शाब्दिक और धार्मिक अर्थों में जो अंतर है उसमें यह स्पष्ट होता है कि एक वैध विवाह की अवधारणा के रूप में निकाह का वर्तमान रूप इस्लाम के प्रभाव में उन परम्पराओं से उत्पन्न हुआ है जो इस्लाम के पहले अरबों में विद्यमान थीं। निकाह के तीन उद्देश्य माने गये हैं—एक यौनिक मायुग्य की वधता दूसरा, सत्तानोत्पत्ति और सत्तान की वधता तीसरा पति पत्नी के रूप में नर-नारी तथा उनकी सत्तान के मध्य अधिकार और वतव्या का निश्चिन करके समाज के हित में सामाजिक जीवन का नियमित करना। इस दृष्टिकोण में, निकाह एक प्रकार का सविदा है जिसके द्वारा नर नारी पति-

पत्नी के सम्बन्ध में वधन का प्रस्ताव करके, उस स्वीकार करते ही, परम्पर अनेक अधिकारों और कृतव्या में बँध जाते हैं। इस्लामी वैधानिक मायताओं के अनुसार निकाह एक कानूनी सविदा है जिसका उद्देश्य पति पत्नी के सम्बन्ध में बंधे नर-नारी के यौन-सम्बन्धों, उनकी सत्तानों, उनके तथा उनकी सत्तानों के सम्बन्धों और उनके आरस्परिक अधिकारों तथा कृतव्या का बँधता प्रदान करना है। विषयानुसृत और सत्तानात्मक निकाह सविदा के दो आधारभूत उद्देश्य हैं। निकाह के बाहर यौन-सम्बन्ध पर सम्बन्धों की श्रेणी में आते हैं जिन्हें इस्लाम में जिना कहा गया है। जिना अवध है। अतः, जिना से उत्पन्न सत्तान भी अवध है।

मुल्ता¹ के अनुसार निकाह की परिभाषा एक सविदा के रूप में की जाती है जिसका उद्देश्य सत्तानों पति और सत्तान का बंधता प्रदान करना है। अमीरउमीर के अनुसार, मुस्लिम विवाह एक कानूनी सविदा है, जिसके लिये न ता किसी पुस्तक (मुल्ता) की आवश्यकता है और न किसी धार्मिक समकण्ड की²। निकाह-विधि स पुत्र को नारी की प्रतिष्ठा और सम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं मिलता है। यह सविदा स पुत्र को नारी पर अधिकार अवश्य मिलता है किन्तु वहीं तक नहीं कि मुस्लिम विधि में एम अधिकार की परिभाषा की गई है। सविदा हान क नालिम्बु अविच्छेद्य नहीं है। विवाह विच्छेद के लिये अरबी में तलाक़ पाद आता है जिसे तलाक़ ही इसमिस करना या निकाह दना। निकाह सम्बन्ध स्थापित करने की शक्ति केवल उस मुगलमान का है जिसका शिमाग सही है और जो वय मरिध की अवस्था में न पुका है क्योंकि इस्लामी विधि प्रणाली में निकाह तभी बंध माना जाता है जो वय मरिध न उमक लिये अनुमति दी है। जिसका शिमाग सही न है उसे तलाक़ वय मरिध न पार किया है, वह निकाह के लिये अयोग्य है।

ह प्रस्ताव और उसकी स्वाहति बनाये जाये

अनुमति, निकाह के इकरारनाम पर या गवाहा के हस्ताक्षरों की आवश्यकता, मेहर, और तलाक़ हान पर फारसती लिखन की आवश्यकता की मता पर सामाजिक वैधानिक जागृकता से निकाह का जो रूप निखरा है उसमें वैधानिक सविदा का ही अधिक पुनः है। मुस्लिम परम्परा में निकाह तभी बरतता है जब एक पक्ष की ओर से प्रस्ताव किया जाता है और दूसरे पक्ष उस स्वीकार करके उसकी अनुमति ही नहीं देता है वरन् स्वीकृति की इस प्रकार से घोषणा करता है कि दूसरे विधायक निकाह का माधी उस मुन ले। प्रस्ताव, स्वीकृति और उसका घोषणा एक ही साथ एक मीठिंग में होना आवश्यक है। वयस्क के लिये प्रस्ताव स्वीकृति और स्वीकृति की घोषणा निम्नलिखित आवश्यक है। इस्लामी विधि इतनी छूट अवश्य देती है कि वयस्क व्यक्ति निकाह के प्रस्ताव स्वीकृति और स्वीकृति की घोषणा के लिये एजेंट नियुक्त कर सकता है। निकाह का प्रस्ताव स्वीकृति और घोषणा का न तो उसमें बदलने की आवश्यकता है और न उसके लिये किसी कमवाण और समारोह की। यदि निकाह का प्रस्ताव और उसकी स्वीकृति एक साथ और एक ही मांठिंग में नहीं किये जाते हैं तो निकाह अवध है। शरीफ़ी विधि सम्प्रदाय के प्रतिपादकों के अनुसार यदि निकाह का प्रस्ताव और दवाव के कारण किया गया हो और बिना निकाह के इरादे के भी प्रस्ताव की स्वीकृति दे दी गई हो तो भी निकाह मबिना जायज है। यह मायता मुस्लिम शाह के इस कथन पर आधारित है कि विवाह तलाक़ और तलाक़ की हुई स्त्री का वापस लेना हर दशा में बंध है चाहे यह हसी मजाक में किया जाय या गाली समझ कर। किन्तु योरोपीय पभाव में मुस्लिम विधि का भारतीय जनता में जो निखल हुआ है उसमें इस बात पर जोर दिया गया है कि जालगीरी और अवांछनीय श्राव में किया निकाह अवध है। किन्तु हम निकाह में भी यदि निकाह के वास्तविक सम्बन्ध स्थापित हो गए हों तो निकाह बंध है और पत्नी ग़रर का अधिकारिणी है।

यह अवश्य है कि मुस्लिम कानून में निकाह का एक सविदा का रूप देना का प्रयत्न किया गया है। भारत के अंग्रेज़ी मुस्लिम कानून में भी विवाह को मबिना के ही रूप में स्वीकार किया गया है। निकाह मस्कार नया है। विवाह में विवाह में सम्बंधित कमवाणों के कारण आधिकारिक का भाव निहित रहता है जो निकाह में नहीं है। निकाह यदि मस्कार नहीं है तो वह एक सामान्य कानूनी सविदा भी नहीं है। निकाह में श्राद्ध का भी पुनः है और भुवामलात (मानव सम्बन्ध) का भी। मद्रसस गारुब का एक कथनागुमार किया निकाह मरी मुन्नत है और जो उसकी आजा का पालन नहीं करत है व मर अतुगारी नहीं है किसी भी गरी या विवाह उसकी चार विधायकता का कारण होता है—एक उसकी गमति का उगम का भी

उच्चता, तीन, उसका सी दय और चार उसकी धमनिष्ठा। तुम धमनिष्ठा से विवाह करा। मत, निवाह एक एसी सविता है जो एक सामाजिक मर्यागत धार्मिक कृत्य है। साधारण सविदा काइ भी दा वयस्क व्यक्ति कर सकते हैं। किन्तु निवाह एसा सविदा है जिसक साक्षी दा मुस्लिम (वयस्क मुस्लिम) ही हो सकत ह, जिनम वली बल निवाह और मुला का परम्परागत महत्व है और जिनके द्वारा नर-नारी पनि पत्नी तथा माता पिता की वध सामाजिक भूमिका म प्रवण करत हैं। 'निकाह' कानन क दल्लिकान म एक विनाय सविदा है मजल्ल क दल्लिकोग म एक मजल्लबी (मुनता) कृत्य है और समाजशास्त्रीय दल्लिकान म एग मजल्ल जो परिवार का आधार है।

हिमाश्रीम क अनुसार निवाह के लिय पनि परना ही मनुमति आवश्यक है। यदि पनि वयस्क है ता उग स्वय या किसी अपन प्रतिनिधि द्वारा अनुमति दन का अधिकार है। हिमाश्रीम का यह मत है कि इस्लाम म नारा हमारा अपन निवाह का अनुमति दन क लिये अगम मानो यइ है। इस्लामी कानन की परम्परा क अनुसार, नारी वली नर निवाह¹ द्वारा ही अपनी अनुमति द करती है²। वली अनुमति दता है और कया मौन स्वीकृति दती है। वला का कया का जरा निवाह करन का अधिकार है अर्थात् वला कया की अनुमति लिय रिना ही उगका विवाह कर सकता है लेकिन तभी तक जब तक कया वयस्क नही है। हतनुद्धि (Lunatic) पुरप हाग जान पर निवाह क लिय माता स्वय अनुमति द सकता है या किसी अपन प्रतिनिधि द्वारा किन्तु अयस्क कया का निवाह की अनुमति दा क लिय अपना प्रतिनिधि या वकील नियुक्त करन की आज्ञा नही है। कया ही बार म वध अभिभावक ही अनुमति द सकता है। किन्तु यदि कया वयस्क या विधवा या तलाक दी दृष्ट है ता वली की अनुमति ही वध नही है। जहा पर कया वयस्क है वहा निवाह की वधता के लिये उनकी स्वतन्त्र अनुमति आवश्यक ही नहीं करन नितात् आवश्यक है। वहा वला की अनुमति कया की अनुमति का स्थान गहा ल सकती है³। कया का अपने निवाह की अनुमति दन का अधिकार है या नही, इस्लाम मे इस प्रश्न पर मतभेद है। भारत क इस्लामी कानून म वली की भूमिका का दा पहचाना न दया गया है—¹क यदि वली ने अल्पवयस्क का निवाह कर लिया है तो

- 1 वली का अर्थ है अभिभावक या सरसक। पिता, पितामह, भाई, पिता की ओर क अर्थ सम्बन्धी, माता, मातुल और माता की ओर क अर्थ प्रपिता सम्बन्धी अथवा अभिभावक की श्रेणी में आते हैं। यदि किसी कया का कोई भी अभिभावक न हो तो गानक उसका अभिभावक हो सकता है।
- 2 हिमाश्रीम, गाड़ीप्रकाश पृष्ठ 120
- 3 सखसेना, बागाप्रसाद पृष्ठ 151

वयस्क होने पर कया उस निकाह को अस्वीकार नहीं कर सकती। दो, जहा बली न छल स निकाह किया हा, या जो निकाह कया क लिये स्पष्टत असुविधाजनक हो या निकाह किसी पागल (हतबुद्धि) स हा गया हो वहा वयस्क होने पर कया को बली द्वारा किया हुआ निकाह अस्वीकार करने का अधिकार है। किन्तु, जहा निकाह क बाद वर कया क यौन सम्बन्ध स्थापित हा जात हैं वहा कया का यह अधिकार समाप्त हा जाता है। दि डिसेन्यूनान आफ मुस्लिम मैरिज एक्ट के अंतगत, वयस्क होने पर कया को बली द्वारा किए हुए निकाह को समाप्त करने का अधिकार दिया गया है यदि कया यह सिद्ध कर सके कि (अ) निकाह के बाद वर कया म यौन-सम्बन्ध नहीं हुए है, (ब) यदि निकाह कया की पंद्रह साल की आयु पूण होने के पहले हुआ है (स) यदि कया अठारह साल की आयु पूण होने के पहले बली द्वारा सम्पन्न निकाह को अस्वीकार करती है। कुछ अदालतों की राय है कि ऐसे निकाह का अस्वीकार करने के लिये अदालत की अनुमति लेने की आवश्यकता नहीं है और कुछ की राय है कि अदालत की अनुमति लेने की आवश्यकता है। किन्तु विषय ध्यान देने की बात यह है कि इस एक्ट द्वारा अवयस्क कया का वयस्क होने पर बली द्वारा सम्पन्न अपने निकाह का अस्वीकार करने का अधिकार दिया गया है और इस अधिकार पर जा रोक थी, उस दूर कर दिया गया है¹। अब इस्लामी दंगा म भी इस प्रकार के बर्तानिक परिवर्तन किये गए हैं जिनका उदगम यारोप के प्रभाव म है।

निकाह एक सविदा है जिसकी बर्तता के लिये वर-कया की स्वीकृति आवश्यक है यदि दोनों वयस्क हैं। वर्ना बध बली की अनुमति से किया हुआ निकाह बध है। इंडियन मेजोरिटी एक्ट के अनुसार अठारह वष की आयु पूण हो जाने पर ही कोई व्यक्ति किसी सविदा म पार्टी बन सकता है। किन्तु निकाह-सविदा पर यह नियम नहीं लागू होता है। निकाह के साथ मेहर और तलाक म निहित सविदा पर भी यह एक्ट लागू नहीं होता है। इस विषय पर इस्लामी विधि के अपने नियम हैं जिन्हें अंग्रेजी राज म वर्तमान कानूनी स्तर मिला है। इस्लामी विधि के अनुसार वयस्क वर-कया सभी निकाह के बर्तन म बध सकते हैं जबकि उनमें निणय बुद्धि का बिकाम हो चुका हो और वे निकाह प्रस्ताव को स्पष्टतया स्वीकार करने म समर्थ हा। जिम स्त्री का एक बार विवाह हा चुका है, उसक लिये यह आवश्यक है कि वह निकाह प्रस्ताव का स्पष्ट गत्ये म स्वीकार करे किन्तु जिसका निकाह पहली बार हा रहा है निकाह प्रस्ताव पर उसका हसना, मुस्काना या चुप रहना स्वीकृति

प्रतीक माना जायगा^१। किन्तु, यहाँ प्रश्न उठता है कि किस आयु में बर-कन्या
निकाह की स्वीकृति दान के बंध अधिकारी हैं। मुस्लिम-विधि के अनुसार, वय संधि
की आयु प्राप्त होने पर, बर और कन्या निकाह के बंध अधिकारी हो जाते हैं।
पंद्रह वय की आयु के पूरा होने पर, साधारणतः, वय संधि की आयु की पूर्णता
माननी जाती है।

पंद्रह वय की आयु वय संधि की अधिकतम सीमा मानी गई है। सुन्नी विधि-
प्रणाली में यह माना गया है कि बर बारह साल के बाद और
कन्या नौ साल के बाद वय संधि का प्राप्त होना है। शिया विधि-
प्रणाली में बर पंद्रह वय की आयु में और कन्या नौ वय की आयु
में वय संधि को प्राप्त हुये माने जाते हैं। इस प्रकार, मुस्लिम विधि प्रणाली के
दृष्टिकोण से वय संधि की आयु प्राप्त होने पर बर कन्या निकाह-सविदा में बंधने
के अधिकारी हो जाते हैं। जहाँ अब कोई प्रमाण नहीं है वहाँ वय संधि पंद्रह वय
पर मानी जाती है। इस दृष्टिकोण से यदि कोई लड़की वय संधि को प्राप्त कर
चुकी है और उसकी आयु पंद्रह वय से कम है वह निकाह करने के लिये मनाम है।
आगे चलकर, यदि यह पता जाय कि कन्या में वय संधि की आयु की न होने के
कारण उसे निकाह करने की क्षमता नहीं तो ऐसा विवाह अनिश्चित माना जायगा
न कि अवैध। लेकिन निकाह की वैधता के लिये वय संधि की आयु ही एकमात्र
आवश्यकता नहीं है। निकाह की वैधता के लिये निकाह प्रस्ताव और निकाह-स्वीकृति
देने के अर्थ का समझने की मानसिक क्षमता भी आवश्यक है। यदि बर और कन्या
वय संधि का प्राप्त हो गए हों और उनमें निपट बुद्धि की क्षमता न हो या निपट
बुद्धि की क्षमता हो और वय संधि की आयु पूरा न हुई हो तो दोनों अवस्थाओं में,
निकाह तभी वैध है जब बंध बली की स्वीकृति से निकाह सम्पन्न हुआ हो। इस
प्रकार जहाँ हिन्दू विवाह में बर-कन्या का समान इकरार और अठारह वय की
आयु पूरा करने पर विवाह-सविदा करने का अधिकार है वहाँ निकाह में उसका पहल

१ इस्लामी विधि के एक सम्प्रदाय (गफ्फ़ी, मालिकी) के अनुसार निकाह-सविदा
की पूर्ति के लिये बर-कन्या की स्वीकृति ही काफी नहीं है। शिया और
सुन्नी विधि-सम्प्रदायों के अनुसार स्वस्फुल्ल और बर-कन्या तथा बर-कन्या या
बिधवा नारी को बंध निकाह-सविदा करने का अधिकार है। किन्तु साथ ही
साथ बर-कन्या की निकाह में उसकी स्वीकृति तथा उसके बली की
स्वीकृति पर एक साथ जोर दिया गया है जिसका तात्पर्य यह है कि बर-कन्या
के निकाह में बली की स्वीकृति एक आवश्यक आधार है। कानून के दृष्टि-
कोण से बर-कन्या के बलिदान का निकाह सम्पन्न हुआ है वह कन्या भी बर-कन्या
की है।

बगते कि जिम आयु म निकाह किया जाय, उसमे वर-क्या वय नचि का प्राप्त होने क साथ-साथ निषय बुद्धि की क्षमता का भी प्राप्त हो गए हो ।

मुस्लिम विधि परम्परा क अनुसार निकाह दो गवाहो की उपस्थिति म तथा उनको सुनाई देत हुए प्रस्ताव और स्वीकृति के रूप मे होना चाहिये ।

निकाह साक्षी बिना साक्षी के किया हुआ निकाह अवध है । जा निकाह अभि-भावक द्वारा सम्पन्न हाता है उसके लिए भी दो गवाहो की आवश्यकता है । गवाहो का स्मिन्चित्त वयस्क और मुसलमान होना आवश्यक है ।

गैर मुसलमान निकाह का साक्षी नहीं हो सकता है । हुनाकी विधि सम्पन्न के अनुसार, दो गवाहो म एक क पुरुष होना आवश्यक है । गवाहो क मामले म,

इस्लाम म दो स्त्रिया एक पुरुष क बराबर मानी गई हैं । अत जहा दाना गवाह पुरुष नना हैं वहा गवाहो म एक पुरुष और दो स्त्रियो का होना आवश्यक है । शफी

विधि सम्प्रदाय म स्त्रिया को निकाह की साक्षी बनने की अधिकारिणी नहीं माना गया है । शिया सम्प्रदाय म निकाह सविना की वैधता के लिये साक्षियो का होना

आवश्यक नहीं है । अमीर खली ने यह मन प्रतिपादित किया है कि निकाह क अव-सर पर मुल्ला या काजी की उपस्थिति आवश्यक नहीं है क्योंकि निकाह न ता गस्फार

है और न धार्मिक कर्मकाण्ड । किन्तु, भारत के मुसलमानो की ब्राह्मिक परम्पराओं म मुल्ला या काजी ने पुराहित का रूप ल लिया है । ऐसी दशा म मुल्ला अपने

आप विवाह का साक्षी बन जाता है । उनीसवीं शताब्दी मे, भारत क विभिन्न भागो म मुल्ला की स्थिति का अधिक नियमित और नियन्त्रित बनान के लिय अनेक

अधिनियमों¹ का पान किया गया किन्तु उनम भी इस प्रश्न पर एकमतता नहीं है । बहुमत दमी पों म है कि निकाह सम्पन्न करने के लिये काजी या मुल्ला की

आवश्यकता नहीं है । मेहर की परम्परा निकाह का आवश्यक अंग है । मेहर वह निश्चित रकम है जो

निकाह और उसके बाद पति का सम्भोग का अधिकार देने के कारण पत्नी का पति से मिलती है । मेहर पति गया बली के

बीच समझौता है क्योंकि पति और बली ही मेहर की रकम निश्चित करत हैं । मेहर की रकम निकाह के पटले या निकाह क समय या निकाह

क बाद निश्चित की जा सकती है । निकाह के बाद, यदि पति पत्नी म तलाक न हुआ हो तो पत्नी म निश्चित की हुई मेहर की रकम बढ़ाई भी जा सकती है ।

मेहर निकाह का एक आधारभूत अंग है क्योंकि मेहर निकाह म निहित है । मुस्लिम कानून म बिना मेहर क निकाह की सम्भावना ही नहीं है । निकाह के बाद कोई

स्त्री मेहर की रकम अपने पति का द सकती है या मेहर की सारी रकम उस अपित

कर सक्ती है किन्तु निवाह व पहन या निवाह व समय नहीं क्योंकि उम ममन वह
 महर की अधिकारिणी नहीं है। महर निवाह मविना म उदान पति का उतरनापित्व
 है जिम निवाह मविना की रखा व लिए निभाता पति के लिए आवश्यक है। यदि
 निवाह के समय महर तय न की गई हो तो इस्लामी दानून व अनुमार काजी या
 यायाधाग का, पति पत्नी की अनियत व अनुमार महर की रजम तय करने का
 अधिकार है। महर व बिना निवाह अवय नष्टो अनियमित है क्योंकि इस्लामी दानून
 म तहाँ निवाह है यहा महर व चाह वत निवाह के समय निश्चित की जाय या
 बाद म।

मुस्लिम नारी का मर या अधिकार निवाह म निश्चित है। किन्तु महर पान
 का अधिकार कवल निवाह पर ही निभर नी है। पति का सम्भागनी अनुमति देन के
 बा ही नारी महर की अधिकारिणी होती है। तुमरी आर बिना मर के अधिकार
 के पत्नी पति का सम्भाग म वचित रन तकती है। महर का अधिकार पान व बाद
 पति का सम्भाग व अनुमति दे की प्रया वस्तुन नारी व उस अधिकार की स्वीकृति
 है जिसका सम्बन्ध नारी की नामावित्त प्राविक सुरक्षा म है। पत्नी व लिए दानव्य
 के रूप म पति द्वारा स्वीकृति घन राशि (महर) उन परिस्थितिया म नारी का
 सुरक्षा प्रया बनन का प्रयास है जा पति द्वारा पत्नी का अस्वीकृत करन, तलाक देा,
 एक से अधिक विवाह करन और पति व मरने की समस्याया म उत्पन्न हो सकती
 है। इस्लाम म पुत्य का मित एतदथा अधिकार और उमग उत्पन्न हान वाली
 सम्भन विपन्नताया व प्रति मर एन प्रया ता सुरक्षा माधन है। मर की
 परम्परा इस्लाम व पार व अरबी समाज म प्राद है। इस्लाम व पार
 अरबी समाज म रर करा का ही घन देना या जोर उमर विवा का नी वर जा
 पा देा या वह उा घन का एक अग दूभा करता था ता वह नरिय म अपा।
 पत्नी व तगन करन पर एा का याग विवा करता था। पति पत्नी वभा नी
 एक दूसर का तगन व तकत व। यदि पति तगन देना या ता तत प्रणिा की
 हुई घन राशि ता पन पत्नी व सम्बन्धिया की देना या जोर पति पत्नी विवाह
 विच्छेद की थी ता उा सम्बन्धी पति व प्राण का पति ता नापन विवा करत
 थे। मर का कुछ एा निवाह व जतर पर निया जाता था जो कुछ पत्नी का
 तलाक करन का अवस्था व या उा विपया ता की जन्मा म। इस्लाम म महर
 की परम्परा ही जरवा परतारा व जाइ है।

इस्लाम व एक वय परम्परा का म। कुरान (2:291) म एा देता गया है कि यदि
 तुम अपनी पत्नी व निया विच्छेद करन नी हा ता एा करता प्रयय परा। तुमरी ज
 कुछ उहूँ निया है उा दाना हा व। तुम आना नहीं है। वगमर की एम अनुया
 का परिपाम यत हुआ कि महर नारी व सम्बन्धिया की सम्पत्ति न दू कर, नारी का

सम्पत्ति हो गई। पैगम्बर ने यदि पति का विवाह विच्छेद का असीमित अधिकार दिया तो पत्नी को मेहर की धन राशि पर एकमात्र अधिकार दिया। इस्लाम के प्रभाव से, मेहर निकाह की वधानिकता का एक आवश्यक अंग बन गई। कुरान में निहित धनराशि के द्वारा मेहर स्त्री की सम्पत्ति बनी किन्तु वास्तविक व्यवहार में जसा कि इस्लाम के पहले मेहर सम्बन्धी अरबी प्रथा थी, मेहर पर वली का अधिकार बना रहा। यह प्राचीन अरबी परम्परा का ही परिणाम है कि निकाह में वली कन्या की अनुमति का माध्यम बना। मेहर पर अधिकार होने के साथ-साथ, वली ने कुछ विशेषाधिकार भी बने रहे। मेहर की धन राशि तय करने में वली का महत्वपूर्ण हाथ रहता है। वली का यह विशेषाधिकार है कि वह यह देखे कि निकाह में दाना पक्षा की समानता बनी रहे और कन्या अपने लिए अनुपयुक्त या अवाञ्छनीय पति का चुनाव न करे। निश्चिन्त मेहर की धनराशि में से कुछ अक्ष के मिलने पर ही वली कन्या घर को सौंपता है। इसी परम्परा से जन्म निकाह की धारणा का विकास हुआ है। इसप्रकार, मेहर पर वली का अधिकार उन विशेषाधिकारों के कारण मिला है जो प्राचीन अरबी समाज में इस्लाम में आकर बच हुए हैं। मेहर पर वली का अधिकार प्रत्यक्ष नहीं है। प्रत्यक्ष अधिकार कन्या का है। मेहर पर वली का अधिकार उसके सरक्षक अधिकार से सम्बन्धित है¹।

मेहर के भुगतान के प्रकारों का आधार पर मेहर के कई रूप पाये जाते हैं। भुगतान की अग्रिम आधार पर दो प्रकार की मेहर पाई जाती है—एक, तत्कालीन और दूसरी स्थगित। तत्कालीन मेहर निकाह मविदा के बाद मांग किया जाने पर फौरन भुगतान की जाती है। सम्भाग के बाद भी तत्काल मेहर को स्थगित नहीं किया जा सकता है जब तक कि इकरारनामा में तत्काल मेहर का स्थगित करने का विधान न हो। स्थगित मेहर, मेहर की वह धनराशि है जिसका भुगतान तलाक या पति पत्नी की मृत्यु के बाद होता है। मेहर की धनराशि का निष्पत्ति

- 1 निकाह में वली का क्या स्थान है इस पर इस्लाम में मतभेद है। वली की अनुमति के बिना निकाह बध है या नहीं इस पर दो मत हैं—एक मत यह है कि अवश्य कन्या के लिए ही वली की अनुमति की आवश्यकता है और दूसरा यह कि बिना वली की अनुमति के निकाह बध ही नहीं है। आधुनिक ईरान के नियमानुसार प्रथम विवाह बिना वली की अनुमति के नहीं हो सकता है चाहे कन्या बचस्क ही क्यों न हो। हाँ, यदि उसे अनुमति नहीं मिलती है तो वह उस सगठन के माध्यम से विवाह कर सकती है जो इसके लिए राज्य द्वारा सगठित किया गया है। हर दशा में यह अवश्य है कि निकाह के बाद वली की आवश्यकता तथा पड़ती है जब निकाह की पुनर्विवाह का प्रश्न आता है—लेखी पृष्ठ 111

बहुधा मौखिक समझौते द्वारा होता है। कुरान और हदीस में इस तथ्य का उल्लेख नहीं है कि मेट्र की घनराशि का भुगतान कब हो। अतः मेहर के कुछ अंश को सत्काल और कुछ का स्थगित करने की परम्परा चल पड़ी है। मेहर की घन राशि का निश्चय करने के आधार पर मेहर को दो श्रेणियों में बाँटा गया है—एक, निश्चित जा पारस्परिक समझौते द्वारा पहले ही से निश्चित कर दी जाती है और दूसरी उचित या परम्परागत (मेहर उल मिस्ल) जो पहले से निश्चित नहीं रहती है किन्तु मौका पड़ने पर, पति-पत्नी की याग्यता या सामाजिक प्रतिष्ठा के अनुसार निर्धारित की जाती है। मेहर उल मिस्ल का बड़ा भाग्य जेना पढ़ता है जहा निवाह में मेट्र पूर्वनिर्धारित नहीं रहती है। परम्परानुसार, कम-से-कम, दस दीनार की मेट्र होना चाहिए। किन्तु शिया सम्प्रदाय में इस परम्परा को नहीं माना जाता है।

मुनी सम्प्रदाय की विधि प्रणाली में पत्नी को मेहर का अधिकार तीन भव स्याभा में मिलता है—एक निवाह के बाद सम्भोग होने पर, या दा, वध एवान्त सवन (Valid Retirement) से अर्थात् पति पत्नी के इसप्रकार एकान्त सेवन से जिनसे सम्भोग की सम्भावना की पुष्टि होती हो और तीसरे पति पत्नी में से किसी की भी मृत्यु होने पर। शिया विधि प्रणाली में वध एकांत सवन से मेहर अधिकार मिलने का विधान नहीं है। शिया विधि प्रणाली में पाँच प्रकार की मेहर मिलती है—एक परम्परागत (मेहर ए-मुनत) जो पगम्बर की परम्परानुसार पाँच सौ दिरम आती है दूसरी उचित या बाजिब (मेहर उल मिस्ल) जो पत्नी को हैसियत के अनुसार निर्धारित की जाय तीसरी पूर्वनिर्धारित (मेहर ए मुग्ग्मा) चौथी जो पति-पत्नी के द्वारा निवाह के बाद तय की जाय (मेहर ए-तफ्वोज) और पाँचवीं जो जज द्वारा निर्धारित की जाय (मेहर ए-तखीम)। मुनी विधि प्रणाली में कम-से-कम घनराशि का विधान किया गया है और शिया प्रणाली में अधिक-से-अधिक का (पाँच सौ दिरम)। किन्तु एत भा उगाहरण आते हैं जहा पति अपनी आर्थिक हैसियत से अधिक मेहर देने का वादा करता है। यह वादा वध है और पत्नी को मेट्र की घनराशि पाने का अधिकार है चाहे वह पति की धर्मता से बाहर ही क्या न हो। किन्तु इस्लामी विधि-परम्परा में जहा मेहर की घनराशि अत्यधिक है और पति के हैसियत के बाहर है, वहा काजी को उमे पटाने का अधिकार है। अश्रेणी राजकाल में अवध और भजमर-मरवाहा की दीवानी अगलता का यह अधिकार मिला था।

मेहर की घनराशि का आधार क्या है ? एक आधार है परम्परा का जिनमें दस दिरम में लेकर पाँच सौ दिरम की घनराशि का उचित मेट्र माना गया है और दूसरा पत्नी का कुवारापन या विधवापन, उमकी मुत्तरता, उमकी याग्यता और पत्नी के निवाह की सामाजिक तथा आर्थिक प्रतिष्ठा। तैबी के अनुसार, मापारणतया,

कुंवारी का मिलावट वाली मेहर की धनराशि विधवा और तलाक़ दी हुई स्त्री की अपेक्षा अधिक होता है। मित्तु साथ ही साथ, चाहे मक्का हा या चीनी तुर्किस्तान, मभा जगह उस औरत का अधिक पसन्द किया जाता है जिसे निवाह का अनुभव रहा है और जो सु दरता और चतुर्गुह्य म साधारण गारी से बढ कर हा। अतः, ऐसी औरत के लिए मेहर की धनराशि निश्चय ही अधिक होती है। कुंवारेपन को, यह कहा जा सकता है, अधिक पसन्द किया जा सकता है। निवाह सविदा म बहुधा यह घोषणा की जाती है कि बधू कुंवारी है या नहीं। माग्वशा म, यदि घर काया को कुंवारी नहीं पाता है तो यह उसे उसके पिता के घर वापस भज देता है। किंतु यह तभी होता है जब निवाह सविदा म यह कहा गया हो कि काया कुंवारी है और पति को वह कुंवारी न लय¹। कांति प्रसाद सपना का अनुसार मेहर की धनराशि क्या हा तथा कोई निश्चय नियम नहीं है यद्यपि इस्लामी विधि के निवचनाने मेहर की निम्नतम राशि (दस रिम) निर्धारित करने की कांशिश की है क्याकि मुहम्मद साहब न अपनी पत्नियों म से प्रत्येक का अतनी ही धनराशि वतोर मेहर के दी थी। किंतु, आज मेहर की धनराशि अथ विचारों और तथ्यों पर निर्भर करती है। ये विचार और तथ्य हैं पति पत्नी की परिस्थितिया, तलाक़ विषयक मित्तु हुए पति के विगया धितारों पर राक गगाने की जावश्यकता, पत्नी के पितृ परिवार की सामाजिक स्थिति, उसकी सुदरता और धौद्विक तथा चवविगव योग्यताय पति की आर्थिक दगा पत्नी की सामाजिक परिस्थितिया और उसके पितृ सम्प्रधियों म ऐश्वर्य प्रशान की भावना की मात्रा।

मेहर का धनराशि की मात्रा वर की स्थिति और काया की माग पर निर्भर करती है। वही वही यह धनराशि साधारण होती है और कहा वही हिन्दू ऋज की भांति तेन वाक की सामध्य के बाहर और एतय तथा बभव के दित्यावे का प्रतीक होती है। जित्ना अरया सत्ता अपन अरम विवाय पर थी उस समय मेहर की धनराशि की मात्रा काफी बढ गई था। मुगल सत्ताओं और जभिगत वर्गों म मेहर का धनराशि काफी बढी चडी थी। आज भी ऐश्वर्या और उत्तरी भारत के मुस्लिम वर्गों म मेहर की धनराशि की मात्रा तिस्तावटी उपनाम (Conspicuous Consumption) का प्रतीक है। ईराक के गावा म मेहर के अलावा घर का काया की मात्रा एक निश्चित धनराशि दनी पटोती है जिस गौर बहा (मा क दध का माल) कहा जाता है²। ईराक म गिना (जन्म मुता) विनाय म मट्टी भर मवना म ही मेहर का नाम चलता है³। भारत के अलावा मन्माना म जा तरीया पाया

1 लया दरी पृष्ठ 111-15

2 तबसेना दगो प्रसाद वही पृष्ठ 22

3 गारी आउटलाइ त जाइ इस्लामिक कलचर पृष्ठ 518

4 लयो दरी पृष्ठ 117

जाता है यह प्रतिष्ठित इस्लामी परम्परा मन्दिन है। महर वर का पिता ब्या क पिता का पाच रुपये और चार आन (Rs 5 25) दता ह जा ब्या का पिता एक सन्मि लिप्त पण (जमाअत राग) म जमा वर दता है¹।

मुस्लिम समाज और मस्जुति क अधिपतर दिद्वानो क अनुमार निवाह म महर का जा स्थान है उसस ऐसा प्रतीत होता ह नि माना निवाह पत्नी क पत्नी स पत्नी वर सम्भोग अधिकारी का प्रथ विधय हा जोर पत्नी सम्पत्ति हा। मुस्लिम म्नाय विधि का निवचन करने का अनर जा न, महर के कारण निवाह का एक ऐसा मरिग माना है निमम प्रथ विधय का भाव जाता है। उदाहरणार्थ, जस्टिस महरूम क अनुमार, विधय-मरिग की उपाय क जाघार पर, महर का दाम्पतिक सम्भोग क लिय दिया हुआ धन माना जा सकता है²। निवाह, एक दृष्टिकोण स, एक प्रकार का विवाह सन्धि है जिसम पत्नी सम्पत्ति ह, महर उपाय मूल्य है और मूल्य महर पत्नी का हस्तांतरण किया जाता है। तब ब्या महर को वधुधन माना जा सकता ह। प्राचीन अरब की ब्याहिक परम्पराओ म प्रथ विधय का भाव था जो निवाह म केवल अप्रत्यक्ष विद्यमान है। महर, पत्नी की गहो पत्नी की सम्पत्ति है। निवाह म ब्या की अनुमति आवश्यक ह। जत महर ब्या मूल्य नहीं ह और न ब्या सम्पत्ति। जिन साथ ी साथ महर म पति का अपनी पत्नी पर सम्भोग अधिकार मिलता है जोर महर वापस करके पत्नी अपन का पति स अलग कर सकती है। इन परम्पराओ म यह प्रतिभासित हाता है कि मानो पत्नी पति की सम्पत्ति हो।

महर का वधुधन या ब्यामूल्य मानना अनुपयुक्त है क्योंकि महर ब्या क ब्या म दिया हुआ मुजायजा नहीं है। निवाह विधय जो नहीं है क्योंकि महर निवाह का प्रतिदय नहीं है। महर का सम्बन्ध, निवाह मे प्रतिपत्ति हात जाने, पति क पत्नी पर सम्भोग अधिकार म है—वे अधिकार जा पत्नी नहीं जात है परत निवाह म उत्पन्न हुन हैं। महर क बिना निवाह का व्यवय न हाता और, बिना महर क निवाह म, महर का निर्धारित करने की वध मुजायजा का हाता इस बात का प्रतीक है कि महर केवल सम्भोग अधिकार का मूल्य नहीं है। इस्लामा परम्परा म सम्भोग और महर परस्पर कई प्रकार म सम्बन्धित हैं। सम्भोग की अनुमति दन म पत्नी पत्नी महर का अण माग सकती है किन्तु उपाय अधिकारिणी वह सम्भोग क हो बा न होती है। यदि स्त्री क किसी तरह क कारण निवाह नि इ न होता ह और उपाय पति पत्नी म सम्भोग (दुष्ट) कर लग है ना पत्नी महर की अधि कारिणी हो जाती है। किन्तु यदि पति क किसी दाय के कारण निवा सम्भोग हुये है। महर हा जाता न हा पत्नी निर्दिष्ट महर का धारणा क जाये की अनिवारिणी

1 गतरा घटी पृष्ठ 10
2 शाना प्रवाद पत्नी से उदघा पृष्ठ 219

हो जाती है¹। इसप्रकार, जैसा कि कपाडिया का मत है मेहर मूलतः पत्नी पर सम्भोग-अधिकारी से सम्बंधित रहा है और व्याधन के काफी समीप रहा है। किंतु इस्लाम के प्रभाव के साथ-साथ मेहर गिदाक (पत्नी धन) में मिल गया जिसके परिणामस्वरूप निकाह के समय मेहर की धन राशि निश्चित न करने से भी निकाह भव्य नहीं होता है। इस दृष्टिकोण से मेहर बुजा (रति) का प्रतिदेय है— वह प्रतिदेय जा न तो निकाह सविदा का मुआवजा है जो न पति से उत्पन्न होता है और न बुजा का प्रतिदान है। मेहर निकाह के बदले में प्रतिदेय नहीं वरन् निकाह से उत्पन्न एक उत्तरदायित्व है जो नारी सम्मान की रक्षा के प्रतीक के रूप में मुस्लिम विधि प्रणाली में स्वीकार किया गया है²।

निकाह एक ऐसा सविदा है जिसमें निर्धारित मेहर की प्रदायगी हो जाने के बाद, पति पत्नी को अनेक वध अधिकार और कृत्य मिलते हैं। पति को पत्नी पर सम्भाग अधिकार मिलता है। स्वास्थ्य शारीरिक दशा, नैतिकता और मर्यादा का ध्यान रखते हुए पति को उसकी इच्छानुसार सम्भोग का अवसर देना पत्नी का धर्म है। बिना पति की आज्ञा के अजनबिया से न मिलना, बच्चा का लालन पालन और गृहस्थी की देखभाल पत्नी का कर्तव्य है। पत्नी को आवश्यकता पड़ने पर, मेहर की धनराशि देना पत्नी की देखभाल करना यदि एक से अधिक पत्नियाँ हों तो प्रत्येक पत्नी का अलग अलग रहने का स्थान देकर सबका समान आदर करना, पत्नी के चालचलन पर नियंत्रण रखना यदि पत्नी पति की आज्ञा का उल्लंघन करे तो उस शारीरिक दंड देना और पत्नी से दाम्पतिक सेवाओं का पाना पति का अधिकारी और कर्तव्य में आते हैं। इस्लामी विधि के अनुसार पति पत्नी का जीविका बसाने बच्चा के पालन पोषण के साधन जुटाने तथा गृहस्थी के लिये स्थान बनाने के लिये बाध्य नहीं कर सकता है। इस्लामी विधि में बच्चा की देखभाल तथा उनके पालन पोषण के लिये धाय या आया रखना और गृहस्थी के मामूली काम के लिये सेवक रखना पति का कर्तव्य माना गया है। अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा के अनुसार पति से भरण पोषण का खर्चा पाना पत्नी का अधिकार है जो उसे निकाह-सविदा से प्राप्त होता है।

इस्लाम के प्रभाव से, प्राचीन अरबी परम्पराओं का जो रूपान्तरण हुआ उसमें, नारी का जहाँ अनेक अधिकार मिले वहाँ उस अनेक सामाजिक निकाह और निर्धोग्यताओं का भी गिना होना पड़ा। इस्लाम में नारी को पति और पति दोनों की सम्पत्ति में उत्तराधिकार मिला। मेहर की धनराशि उसका विश्व उपहारों और उसके द्वारा अर्जित सम्पत्ति पर उसे एकाधिकार मिला। मेहर की धनराशि के अलावा पत्नी का पति

1 कपाडिया व० एम० वही पृष्ठ 193

2 सक्सेना, बागो प्रसाद वही पृष्ठ 219

से भरण-पापण का अधिकार भी मिला। यदि पति एक से अधिक विवाह करता है तो प्रत्येक नारी को पति से उचित भरण-पापण पाने का अधिकार है। इस्लाम न, यदि सीमित बहुपत्नीत्व का जायज माना जा, साथ ही साथ, प्रत्येक पत्नी के लिये महर और भरण-पापण का विधान करके, बहुपत्नीत्व पर रोक भी लगाई। इस्लाम न नारी को बहू जाधिक सुरक्षा दी जा प्राचीन अरब म न थी। कि तु साथ ही साथ, इस्लामी परम्पराजा न पुरुष के प्रभत्व को भी सर्वोपरिता दी। बली का कुमारी का मरक्षक बनाना। पत्नी को उचित भरण-पापण देना यदि पति का कृतव्य निर्धारित किया जा, साथ ही साथ, पति को पत्नी पर लसीमित अधिकार भी दिये। पत्नी पर सम्भाग-अधिकारों की धारणा आवश्यकता पडन पर पत्नी का पीटन का अधिकार, पत्नी को पदों म रखन की प्रथा, बिना पति की आज्ञा के पत्नी का किसी अन्य से सम्भाषण न करन का विचार इच्छानुसार विवाह विच्छेद करन तथा एक से अधिक विवाह करन का पति का अधिकार और नारी क पारपर पति के एकछत्र अधिकार की धारणा, जसा कि विद्वाना का मत ह, नारी पर पुष्प की प्रभुता क परिचायक है। सतोषी श्री-न, पति का निरपण अनुसरण, पति भक्ति और गुड जीवन, इस्लामी परम्परा क अनुसार, गृहिणी क आज्ञा है। अपन अधिकारों के ताय पति क निरपण अधिकारों क प्रति समपण पत्नी का कृतव्य है।

निवाह पत्नी पर पति का निरपण अधिकार प्रदान करता है। महर, नारी के भाविक स्वार्थों की रक्षा करत हुए पति के अधिकारों की निरपेक्षता का और भी बसावा देता ह। विवाह विच्छेद का निरकुण अधिकार वैवाहिक जीवन म पत्नी को गौरव स्वाने प्रदान करता है। कपाहिया¹ क अनुसार, इस्लामी समाज म तलाक का कानून नारी पर पुदप की प्रभुता को प्रतिपादित करता है। कपाहिया का मत भी मत ह कि पुष्प का पत्नी का व्यवहार ही तलाक देन का अधिकार मुस्लिम नारी का प्रतिष्ठा का नगरात्मक दम से प्रभावित करता ह क्योंकि जहा नारी को जनक अधिकार मि-है, वहा उसे तलाक की निरंतर आज्ञा भा मिली है। मुहम्मद क बाद न जायाधीन पुष्प क न निर्णोपाधिकार का सम करन क पण म रह है किन्तु असम सारजा नही मिया। कुरान म नारी का पुदप क आधार के बराबर माना गया है। इस्लाम म पति पत्नी दम्पति नही करन कर नारी की दा अलग अलग शवास्या है जा पति पत्नी के रूप म समन समन अपिपारों और कृतव्यों का पालन करन क लिये जविगबद्ध है। हम दृष्टिकान म, मुस्लिम नारी का पति की दाया सम्पति और पुष्प तक बसा गया है। किन्तु मुस्लिम नारी का अणगाह्य उच्चार सामाजिक प्रतिष्ठा मिद्ध करन याला न नारी क महर अधिकार करण पापण क अधिकार और उत्तराधिकार पर जार मिया है। इस्लाम न मजहबी

सामल। म नारी जार पप को समान माना किन्तु बर्माहिक तथा पारिवारिक सामान्य म अनमान। इसम इस्लाम का पप गही है क्योंकि इस्लाम का विवास ही इस्लामतर प्राचीन अरबी परम्पराआ व प्रति सुधारवादी लटकोण लेकर हुआ था। इस्लाम म नारी को बहुत म त अधिकार पहुँच ही से मिले हुए है जिनको तारम न लान व शिष्टाचार विधि का निमाग करता पडा। इस्लाम म नारी की प्रतिष्ठा उच्च है या हिन्दू या सिद्धू जाती की प्रतिष्ठा उच्च है या मुस्लिम नारी की ये प्रश्न अममाजगत्तरीय है यथाकि नर नारी की भूमिशास्य उक्त पारस्परिक अधिकार श्रौत वक्त ये भिन्न भिन्न समाजा म भिन्न है और प्रत्येक समाज व सांस्कृतिक परिपक्वता तथा विज्ञान का परिणाम है। इन वय अधिकारो क वाइजुत भी पत्नी की प्रतिष्ठा उग सामान्य पर निर्भर करता है जा व पुरुष के साथ स्थापित करती है। इस्लाम व इतिहास म अनक एमी गाम्या व उदाहरण मिलते है जिहान सामाजिक राजनितिक जीवन का प्रभावित किया है। इस्लाम ने यदि नारी को आर्थिक अधिकार दिय और पुरुष को नारी पर निरनुश प्रभुता प्रदान की तो इस्लाम म यह भी कहा गया है कि समार जार इसके आन्त मूयमान है किन्तु पतिप्रता पती इन सबम कही अधिक मयवान है। सून्या की निगाह म नही सर्वोत्तम है जा अपना पत्नी क साथ उत्तम व्यवहार करता है।

इस्लामी परम्परा म दा भाइया की सत्तान म विवाह अधिक पगत किया जाता है। पिता व भाई का क्या प्रत्येक गीजवान की प्रथम भारी निरुद्ध नियम पती मा ता जाती है यद्यपि ये आवश्यक नहीं कि विवाह उगी व साथ ही। नम प्रथा का उन्भव इस्लामतर शरय म हुआ था और आज भी इस्लाम म पिता व भाई का क्या व साथ विवाह प्रथा व ही रूप म विद्यमान है। नम प्रथा क पीछे जिने जाता व गविन गी है। प्राचीन अरब की परम्परा म, यदि किसी स्त्री का उसका पिता के भाग क कुछ से प्रथम विवाह होता था तो वह अपने पति के घर की नव भी सम्भितो उनी करता थी जय उसका पति दूगग विवाह करता था। पिता व भाइ की क्या व साथ विवाह के दो कारण थे—प्रथम नारी का पति उसकी गणजाति (Tribe) म म जाता था और प्रथम नारी के उच्च उमकी गणजाति के हा सम्भ्य गी के जिनसे कारण गणजाति की एता का प्रागान्न मिलता था। जत दो भाइय वा मत्तानो म विवाह की परम्परा इस्लामतर अरबी समाज का गणजाति प्रणाली की देन जा इस्लाम म प्रथा क रूप म स्थाई ता म और कालांतर म उम प्रथाई विधि का सुमोन्नत मिल गया। इस्लामी काल म नारी म परंपरा व अनमार यदि पार उचित आती अथवा नारी का विवाह अपने भाई व साथ व साथ करता तो वस्त्र हान पर

वह बन्दा उम बिगाह को अस्वीकार नहीं कर सकती है। बिना कानून की सहायता के साथ बिगाह करने की प्रथा चीन के मुसलमानों में छापी कर सार मुस्लिम समाज में पाई जाती है। चीनी मुसलमानों की स्थानीय प्रथा नहीं इस प्रथा का निषेध हुआ है।

सामान्यतः, मुसलमान पुरुष या मुसलमान नारी में ही बिगाह करने की अनुमति दी गई है। बिना पुराने की एक परम्परा में दिनबिना (अर्थात् बिना मजहब इस्लाम की भाँति नितायी है) नारी में बिगाह करने की अनुमति हान के कारण बढ़ा जा रहा है स्त्रियों में बिगाह जाया माना गया है। बौद्ध स्त्री विनयिया है या नहीं इस प्रश्न अनिश्चित है। मुनिपूजा तथा अनिपूजक स्त्री का साथ मुसलमान का बिगाह इस्लामी विधि में अवैध नहीं बल्कि निषेधाविरुद्ध है क्योंकि मुनि या अग्निपूजक स्त्री को मुसलमान बनाकर बिगाह का अनुमति देना सवता है। स्त्रियों के एक वय में यह निषेध किया गया था कि एक किया बिना बौद्ध वर्गों स्त्री के तभी यह बिगाह कर सकता है तब तक स्त्री का इस्लाम में दीक्षित किया जाय। मुस्लिम पुरुष गर मुस्लिम स्त्री के बिगाह कर सकता है या नहीं इस पर मतभेद है—हजारों बान्नी सम्प्रदाय में विनयिया के साथ बिगाह की अनुमति है बिना किसी सम्प्रदाय में गर मुस्लिम स्त्री के बिगाह करने की अनुमति नहीं है क्योंकि उनका अनुसार मुस्लिम न ग मुस्लिम पर अधिकार रखने की निषेध किया है। बिना मुहम्मद न मुस्लिम और ग मुस्लिम दोनों प्रकार की स्त्रियाँ के बिगाह किया है। बास्तबिक व्यवहार में गर मुस्लिम स्त्री में बिगाह की वधता की समस्या तभी तब बनो रहती है जब तब कि गर मुस्लिम स्त्री इस्लाम की स्वीकार नहीं करती।

मुस्लिम समाज को हर देश में मुस्लिम पुरुष में ही बिगाह करने का अधिकार है। पुराना (120) में इस बात का विधान भी है कि मुस्लिम नारी का मुनिपूजक में बिगाह की करना चाहिये। यह विधान यहाँ तक की गई है कि उन मुस्लिम स्त्रियों का भी विधान नहीं करना चाहिये जो गर मुस्लिम पति का नाम कर आई है। यह उन पतियों के पास बापग कर देना चाहिये। यह परम्परा समग्र गर मुस्लिम समाज में है। तुर्की के जिकिल काउंस में मुस्लिम नारी को गर मुस्लिम के साथ बिगाह करने का अधिकार दिया गया है बिना कानून की सहायता के बिना प्रथा में बिगाह के बिना कानून में दीक्षित करने पर जारी किया जाना है। समाज में भी स्त्री

1 कानून प्रथा सारतना के अनुसार स्त्री को पाठित में यह प्रथा उठाया गया था
2 बिना अनिर्णय ही रहा यही पृष्ठ 100
3 कानून बान्नी प्रथा के यही पृष्ठ 100

परम्परागत अधिक प्रणाली का माना जाता है। भारतीय मुसलमान परम्परागत मुस्लिम प्रणाली के ही अंतर्गत विवाह कर सकते हैं। स्पेशल मरिज एक्ट (1954) मुसलमानों पर नहीं लागू होता है।

प्राचीन अरब की अनेक वैवाहिक परम्परायें या तो इस्लाम के प्रभाव में अबध हो गईं या अग्रगण्यगमन की श्रेणी में आ गईं। प्राचीन अरब में पिता के मरने पर पुत्र का अपनी सौतेली माँ से विवाह करने या उसका किसी दूसरे के साथ विवाह कर देने का अधिकार था किन्तु कुरान ने इस प्रथा को अनियमित घोषित कर दिया। इसी नियम के अनुसार इस्लाम में पिता द्वारा तलाक दी हुई या पिता की विधवा से विवाह करना भी अग्रगण्यगमन माना गया। किन्तु, जहाँ ऐसे विवाह हो जाय और विवाह के बाद सम्भोग भी हो जाय कुरान की एक परम्परा के आधार पर ऐसे विवाहों को जायज मानने का भी विधान है यद्यपि इस नियम को साधारणतया, पालन करने का विधान नहीं है। इस्लाम में, ऐसे विवाहों को अपवाद के ही रूप में जायज मानने की अनुमति दी गई है। दो बहनों से एक ही साथ विवाह (Sororal Polygamy) का इस्लाम में निषेध है यद्यपि इस्लामेतर अरब में ऐसे विवाहों का प्रचलन था। पुत्री, भगिनो मा की तथा पिताकी बहिन भाई तथा बहिन की पुत्री, पुत्र की पत्नी दादी (Grand Mother) और प्रपौत्री के साथ यौन सम्बन्ध अग्रगण्यगमन मान गए हैं। अतः इन सर्वाधिकारों के साथ विवाह वर्जित है। सौतेली मा का सबंध भी इस्लाम में रक्त सम्बन्ध माना गया है और, इसकारण जिन व्यक्तियों में एक ही सौतेली माँ के स्तन से दुग्धपान किया है उनमें विवाह वर्जित है। जिस स्त्री का बचपन में स्तन पान किया गया है वह माँ के समान है इसकारण, वह पत्नी नहीं बनाई जा सकती चाहे स्तनपान करने वाला व्यक्ति उस स्त्री के पति का किसी अन्य स्त्री से ही सत्तान क्या न हो।

जिसप्रकार दा बहना में एक ही साथ विवाह करने का निषेध है उसीप्रकार एक स्त्री और उसकी भतीजी से भी एक साथ विवाह करने का निषेध है। इस्लामी विधि प्रणाली में विनिमय विवाह (शिगार) का निषेध है यद्यपि इस्लामेतर अरब में इसका प्रचलन था। शिगार विवाह वह विवाह है जिसमें एक व्यक्ति एक दूसरे की शिगारों से विवाह करते हैं और महर का विधान नहीं करते हैं क्योंकि यहाँ क्या क्या बदले में दी हुई क्या महर समझी जाती है। इस्लामी परम्परा में ऐसा विवाह तब तक नाजायज है जब तक कि प्रत्येक क्या के लिए अलग अलग महर नहीं निश्चित की जाती है। दूसरे शब्दों में यद्यपि महर को तब तक बिना दा व्यक्ति एक दूसरे की शिगारों का विनिमय करके उनसे विवाह कर लेते हैं तो उनका विवाह अनियमित है। इसप्रकार, किसी अन्य व्यक्ति की बचपनी से विवाह करना भी इस्लाम में वर्जित है। तलाक दी हुई स्त्री और विधवा से विवाह किया जा सकता है किन्तु तलाक हान या विधवा हान के पौरन बाद नहीं। पुरुष विधुर हान और तलाक देने

बाल पौरन विवाह कर सकता है किन्तु स्त्री नहीं। इस्लामतर अरब में पति के मरने या तलाक के बाद स्त्री पौरन दूसरा विवाह कर सकती थी जिस पर इस्लाम ने रोक लगाई। इस्लाम में विधवा हान जाती या तलाक दी हुई स्त्री पर इहत की कंड लगाई गई। इहत वह निर्धारित बाल है जिसमें विधवा हुई या तलाक दी हुई स्त्री का दूसरा विवाह के लिए इंतजार करना पड़ता है। तलाक दी हुई स्त्री के लिए दूसरा विवाह करने के पहले, तीन मासिकधर्मों तक इंतजार करने का विधान है और विधवा हुई स्त्री को चार महीने दस दिन तक। इस्लाम में गुलाम-स्त्री में सम्भोग करने की अनुमति है किन्तु साय-हो-माय, इस बात का भी विधान है कि किसी गुलाम स्त्री पर अधिकार पान पर पुरुष का यह कतब्य है कि सम्भोग में पहले वह यह निश्चिन करले कि गुलाम स्त्री गभवती तो नहीं है और यदि वह गभवती है तो पुग्प का तब तक इंतजार करना चाहिए जब तक कि उस मन्तान न हा आय। इहत के दौरान में, इहतो स्त्री से विवाह प्रस्ताव लिया जा सकता है किन्तु गुप्त रूप से। विवाह इहत के समाप्त हान पर ही हा सकता है। तलाक दी हुई परतो से पति तब तक पुन विवाह नहीं कर सकता है जब तक कि कोई नया पुग्प उसने विवाह और सम्भोग करके पुन उस तलाक न दे और वह पुन इहत का समय बाट न ले।

कुरान में मुसलमान का गुलाम स्त्रियों से विवाह करने का अधिकार लिया गया है किन्तु बाद के विधिवत्ताओं (Legists) ने उस पर नियंत्रण लगाने का प्रयास किया है। इस परम्परा का अन्तगम इस्लामतर अरबी समाज की गुलामी प्रथा से हुआ है। इस्लाम के नियमानुसार अविवाहित स्त्रियाँ का बाल व मुसलमान हा या यद्गी या हाई गुलाम रखलिया की भाँति रखा जा सकता है। गुलाम रखलिया के साथ सम्भोग तो अनुमति है। स्त्री भी पुग्प गुलामा का रख सकती है। गुलाम का सम्पत्ति माना गया है। किन्तु इनकी विधि परम्परा में अपनी गुलाम स्त्री या अपने पुत्र की गुलाम-स्था या अपने गुलाम पुत्र में विवाह करने की आज्ञा नहीं है। गुलाम के साथ निकाह तभी ही सकता है जब वह स्वतन्त्र कर दिया जाय। अधिकतर विधि शास्त्रियों के अनुसार एक पुग्प दूसरी गुलाम स्त्री में नभी विवाह कर सकता है जब (अ) वह अविवाहित हा और उसका पाग कोई गुलाम रखल न हा, (ब) मुस्लिम स्त्री से विवाह करने के लिए उसका पाग मेहर न हा (ग) यदि अविवाहित रूने से उस पर-नाशय के साथ में फरने की आज्ञा हा और (घ) यदि गुलाम-स्त्री मुसलमान हा। गुलामी प्रथा का दूर करने के सलाहव्यापी आन्दोलन का इस्लाम पर भी प्रभाव पड़ा है। गुलामा अधिनियम (Slavery Act 1813) ने मुस्लिम विधि के उक्त अंग का प्रभावित किया है जिससे गुलाम स्त्री का रखी बना कर रखने का समय जारी करने का विधान है।

इस प्रकार निकाह पर इनके प्रतिबंध लगे हुए हैं जिनकी अकारणता में निकाह में यथ निर्मोषता (अस्बाब उन्-तहरीम) उत्पन्न होती है। इन प्रतिबंधों का धार

श्रिया मन्वन्ता ता सकृत्ता है एक निरपक्ष प्रतिपक्ष का मापेय प्रतिपेय तीन निरपेयमन् प्रतिपेय और चार जातेगामन् प्रतिपेय। निरपेय प्रतिपेय अन्तमन्वन्ता (Co isang unity) को परिवार म विवाह म उपान सम्बन्धिया म विवाह नियम के नियमा (Affix) आर धात्रयपालन (Intorlage) क विद्वानो से उरान हों हैं क्याकि स्वन सम्बन्धिया पत्नी क स्वन सम्बन्धिया तथा धात्रय म सम्बन्धन सम्बन्धित 1¹ म विवाह का नियम है। सापक्ष प्रतिपेय एउ माय दा बहना बहुती स्त्री तथा दूमर मजद्व की स्त्री क साथ श्रिवाण करन और वन्पनिव तथा निवाण म साक्षा ५ नियमा म सम्बन्धित है। बहुपनिव और गर मुस्लिम क साथ विवाह करने के नियम नियम नियमा मक प्रतिपेया का जन्म त्त है। दूसरे से गभवती स्त्री से विवाह न करन का जाण तथा तणाक दी ई स्त्री से तत्र तव विवाह न करन का आदण जब तक कि त्सरा उमम विवाह करके उम तलाक न दे ले तिसा विधि क अनुमार मवसा की ताथगाना के दौरान म मुता विवाह करने वाता का स्वाइ निवाह न करने का आदेण तथा तहा पति पनी म धात्रय सम्प्र व स्थापित किए जाय या उनम से वाण धमपरिवनन करके बहा विवाह के नियोग्य हो जाने का आदेश—य आदण जादगामन् प्रनियवा की श्रणी म घाने हैं। स्वन प्रतिपेया के कारण मुस्लिम विधिगास्त्रिया न तीन प्रकार क विवाण विनागित किए हैं—एक वैध (महीह) दूमरा अनियमित (फासि) और तीसरा अवध (बातिल)। ता निवा कथ नो ह वह या ता अनियमित है या अवध। तनी निरपेय प्रतिपेय या प्रतिपेयो का उलघन गना है यह निवाह अवध है और जहा सापदा नियमा मवसाण अण मक प्रतिपेयोका उलघा जाता है वह निवाह अनियमित है क्याकि उमम एम नियम का उलघन किया गया है जा अस्वाण और घटनावा ज्ञान क कारण मुसारा जा मक्ता है उदाहरणाय यदि कोई पविन चार पनिमा क रहने दूण पाचवी पनी म निवाण करता न ता उमका पाचवा निवाण अवध न। वरन अनियमित है क्याकि तिसी भी एउ पनी का तणाक

1 इस्लाम म माँ और धात्रय माँ को समा माना गया है। स्तन पान कराकर पालन करना तथा गन्धारण करके नाम देना एउ समान माना गया है। तितु साथ हा साथ अनक धात्रय सम्बन्धों को अपवा ज्ञान कर उनके साथ विवाह की अनुमति भी दी गई है। एसे धात्रय सम्बन्ध या की नालिया के लिए देखिय दागो प्रसाद सक्सना कृत मुस्लिम ला प्ब्ल 100

2 इस्लामी विधि क अनुसार तनी पति पनी धात्रय सम्प्र व स्थापित करके या उनमें से दाइ धमपरिवनन करले घहाँ विवाह अवध हो जाता है। इस नियम पर नारा क वास्ट रिजब्रिन्टिटी रिमवण एम् (18 0) का प्रभाव पन्ता है क्योंकि इस एक्ट क अनुसार स्वधम त्याग रचण से निवृत्तान या धम परिवनन के बिना नो पविन क पयविनक साम्पति तथा उत्तराधिकार नियम जवा क रना का रहते ह।

द्वय वत् अपन पानवें निवाह का वय वर मन्ता है । अनियमित विवाह में प्रनिषेध या प्रनिषेधा का अन्वयन महागवय जाता है । मुल्का ने अनियमित निवाह के पाच प्रकार बताया हैं—पहला बहू निवाह जिसमें माथी न हो दो चार पत्नियां बहूत हुए पांचवा पत्नी में विवाह, तीन, चतुर्थी स्त्री के साथ विवाह, चार स्त्री मन्तव को स्त्री में निवाह और पाच, बहू विवाह जिसमें अवैध मयोग (Unlawful Conjunction) का अन्वयन हो अथवा पत्नी में माथी घन किमी पत्नी स्त्री से विवाह जिसमें और पत्नी में वय विवाह न हो करता यदि उन पाता में न होत हो मुल्का हाथ है । बहूपत्नी और मुला विवाह इस्लाम में अस्माभर प्राचीन जगत् समाज में आया है ।

यह कहना मुलत पाता कि इस्लाम में बहूपत्नी के प्रयोग में अस्माद

बहुपत्नीय

के द्वारा हुआ है । जो लोग मुल्कमान का अन्वयन न करे व नीति

यान का उतरलापा मान्य है व उन जो अन्वयन न करे अन्वयन

पर चार दन है जिसमें यह कहा गया है कि मुसलमान चार पत्नियां रख सकता है और दूसरी चार अस्माद सात्व के इस कथन पर कि जो मन्तव स्त्री अपन का पैगम्बर का सोपना है वह पैगम्बर के लिए स्वीकृत है । स्वयं महम्मद साहब ने चार व अधिक विवाह किए थे और अकारण, एक मन पत्नी है कि पैगम्बर के उदाहरण में बहूपत्नीय का प्रास्तावन किया । लेकिन, साथ ही साथ यह भी कहा जा सकता है कि मुल्कमान साहब के अधिकतर विवाह अज्ञानिय थे और बहुत सम्भव है कि युव की प्राप्ति के लिए पैगम्बर ने एक से अधिक विवाह किए थे । तभी का यह मत है कि इस समय का अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि मुल्कमान स्वयं अपने द्वारा निषादिन बकाहिन अथवा अना का अन्वयन किया और अपने उदाहरणों का उपयोग करता है । अमोरअली के अनुसार, इसका अन्वयन का यह मत कि मुल्कमान ने बहूपत्नीय को स्वीकार करके उन बकानिय अनाया गलत है क्योंकि मुल्कमान साहब ने यदि एक बार यह कहा कि मुल्कमान चार पत्नियां तक रख सकता है तो दूसरी बार, इस पर भी चार दिया कि यदि मुसलमान एक से अधिक स्त्री का अन्वयन करे तो ग नहीं रख सकता है तो अन्वयन एक ही स्त्री में विवाह करता अन्वयन ।

इस्लाम में बहूपत्नीय के प्रयोग का विधान अस्माभर धर्मो पनाज के अन्वयन में निहित हुआ है । अन्वयन युवा व युवाओं को अन्वयन का अन्वयन होत व कारण, मुल्कमान किताब का अन्वयन करके उनमें विवाह करने में उन्हें दोष बताया गया है प्रयोग के अन्वयन और अन्वयन का अन्वयन की अन्वयन अन्वयन के कारण, अन्वयन प्राधान्य अन्वयन अन्वयन में बहूपत्नीय का अन्वयन हुआ था । अन्वयन और अन्वयन का अन्वयन अन्वयन अन्वयन थी । अन्वयन का अन्वयन

1 मुल्कमान हो० ५६० पृष्ठ २३

2 अन्वयन पृष्ठ 109

की सभ्या पुरुष की आर्थिक दया पर निर्भर करती थी। इसी परिस्थिति का सुधार करने के प्रयास में, इस्लाम में बहुपत्नीत्व की प्रथा का समावेश हुआ जिस, मुहम्मद के बाद, वधानिक आधार प्रदान किया गया। अमीरअली न ठीक ही कहा है कि इस्लाम में बहुपत्नीत्व का अनुमोदन उन आत्मि परिस्थितियों की देन है जिनमें इस्लाम का अम्युदय हुआ है।

मुहम्मद ने बहुपत्नीत्व का निषेध किया और बहुपत्नीत्व को सीमित किया। कुरान की एक आयत में अनुमार, तुम उन दो, तीन या चार स्त्रियों से विवाह करो, जो तुम्हें अच्छी लगें किंतु यदि तुम्हें यह लगे कि तुम उनके साथ साथ नहीं कर सकोगे तो केवल एक ही पत्नी से विवाह करो या उससे जा तुम्हारे दाहिने हाथ के अधिकार में है (यहां युद्ध में अपहृत स्त्रियों की ओर संकेत है)। इसप्रकार मुहम्मद ने अरब की बहुपत्नीत्व परम्परा का स्वीकार तो किया किंतु उस सीमित भी किया। स्त्री को मेहर का अधिकार दिया और, साथ ही साथ, इस बात का भी विधान किया कि जहां एक से अधिक पत्नी में विवाह हागा वहां पहली पत्नी का दर्जा बड़ा हागा और प्रत्येक के लिए अलग निवास स्थान तथा भरण-पोषण का प्रबंध करना हागा। प्रत्येक पत्नी का समान समझना और प्रत्येक के साथ समानता का व्यवहार करना मुसलमान का पत्र निर्धारित किया। मुहम्मद ने, इस्लामेतर प्राचीन अरबी समाज की मानसत्तात्मक प्रथा में स्थान पर पितृसत्तात्मक प्रथा का प्रतिरोध किया और संभवतः यही कारण है कि इस्लाम में, एक और पुरुष को प्रभुत्वपूर्ण स्थान देने का प्रयास है और, दूसरी ओर, नारी का बड़ा तब अधिकार देने का प्रयास जहां तब पितृसत्तात्मकता की मर्यादा बनी रहे। इस्लाम में सीमित बहुपत्नीत्व का अनुमान और बहुपत्नीत्व का निषेध, मानसत्तात्मकता के स्थान पर पितृसत्तात्मकता का प्रतिरोध करने से उत्पन्न संघर्ष का दूर करने के प्रयास में मुहम्मद द्वारा प्रतिपात एक समझौता या लगता है।

मुहम्मद साहब के रचना के आधार पर यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि इस्लाम में बहुपत्नीत्व का भी अनुमोदन है और एकपत्नीत्व का भी। लबी के अनुसार, कुछ हदों का आधार पर यह कहा जा सकता है कि मुहम्मद ने एक से अधिक युवारी मुस्लिम स्त्रियों से विवाह करने का अनुमान किया है। लबी का यह भी मत है कि कुरान में जहां एक से अधिक पत्नियों से विवाह करने का पक्ष लिया गया है वहां, संभवतः, पत्नियों का मात्र मुस्लिम स्त्रियों से है क्योंकि वहां यह भी कहा गया है कि जहां एक से अधिक मुस्लिम स्त्री से विवाह करने में कठिनाई हो वहां या तो एक स्थायी विवाह करना चाहिए या गुलाम स्त्रियों को रखली बनाने पर तैयारी चाहिए। मुस्लिम पत्नियों में अगुवा गुलाम स्त्रियों का भरण-पोषण और मेहर पर अपेक्षाकृत कम खर्चा हाता है। दूसरी ओर, कुरान की एक आयत (43/128), अंतिम में कहा गया है कि एक से अधिक पत्नियों के होने में साथ ही साथ निष्पत्ति

व्यवहार सम्भव नहीं है, के आधार पर यह प्रतिपादित करने का प्रयास किया गया है कि स्वयं पैगम्बर एक पत्नीत्व के पक्ष में थे¹। इस्लाम में यदि एक आर, बहु पत्नीत्व के आर प्रतिपादन की परम्परा मिलती है तो दूसरी ओर एकपत्नीत्व के आदेश प्रतिपादन की। मुताजिला-सम्प्रदाय में एक पत्नीत्व का आदेश का सर्वोत्तम मानकर, यह प्रतिपादित किया गया है कि एक पत्नी के जीवित रहते हुए दूसरी से विवाह करना अवध है। अमीरअली का यह मत है कि बहुपत्नीत्व की वधता के प्रश्न पर इस्लाम के अनुयाइयों में काफी मतभेद है किन्तु एक बड़े प्रभावशाली सबके की यह धारणा है कि बहुपत्नीत्व एकलम अवध है। इस्लाम के आदिमकाल में, जिन परिस्थितियों से बहुपत्नीत्व को प्रथम मिला था वे या तो समाप्त हो गई हैं या वनमान समय में उनका अस्तित्व ही नहीं है²। कुरान में सभी पत्नियों के साथ समता का व्यवहार करने के सन्दर्भ में 'अदल' शब्द का प्रयोग हुआ है। अमीरअली के अनुसार अदल से तात्पर्य मजान, कपड़ा और भरण पापण की समानता नहीं करने सभी पत्नियों के प्रति प्रेम की भावजातमक समानता है जिसका वास्तविक व्यवहार में लाना सम्भव नहीं है। अतः, कुरान अप्रत्यक्षत एकपत्नीत्व के पक्ष में है। इस्लामी सम्बन्ध की तीसरी शताब्दी में इस विचार का अन्वयण हुआ था कि मुस्लिम के उपदेशों में बहुपत्नीत्व का स्थान नहीं है, यद्यपि इस विचार का प्रचार न हो सका। अमीरअली के मत में बहुपत्नीत्व मुहम्मद के उपदेशों के उतना ही विरोध में पड़ता है जितना कि वह सम्य समाज तथा सर्वोत्तम गृहस्थि की सामान्य प्रगति के मार्ग में रुकावट है³।

इस्लामी समाज में, बहुपत्नीत्व बनाम एकपत्नीत्व के विचार आज भी चल रहे हैं। इस्लामी समाज में एकपत्नीत्व का आदेश पूर्णरूपेण नहीं स्वीकृत हो पाया है यद्यपि उनका प्रतिष्ठापापको की संख्या बढ़ती रही है। यदि इस्लाम ने बहुपत्नीत्व का प्रतिरोध किया तो इस्लाम ने ही उस पर रुकावटें भी लगाईं। यद्यपि प्रथम प्रथम पत्नी का अलग अलग मजानों में रहकर भरण पोषण प्राप्त करने के आदेश में उत्तम आर्थिक समस्याओं के कारण, समाज द्वारा स्वीकृत होने पर भी, बहुपत्नीत्व एक सामान्य प्रथा बनने से बचा रहा। बड़ी गृहस्थि के आर्थिक बाधों के कारण बहुपत्नीत्व एक ऐसा भोग रहा है जिसका उन्मूलन पत्नी और अभिजातवर्ग के ही लोभ बन्त रहे हैं। वनमान आर्थिक परिस्थितियों और प्रथाओं ने एकपत्नीत्व का आदेश उन पर प्रतिरोधित किया है जो स्याई जीवन व्यतीत करने हैं और शिरोतथा पट्टों के निवासो हैं। मोरोनीय शिवा तथा यारफान आर्यों ने एकपत्नीत्व के

1 केषो पृष्ठ 100-101

2 बाग्यप्रसाद सङ्गोना की पुस्तक मुस्लिम समाज से उद्धृत पृष्ठ 162

3 अमीर अली पृष्ठ 230

आत्म्य का जागे बनाया। यारोपाय सभ्यता व सघात से, जसा सबन हुआ "स्लाम मे भी एकपत्नीत्व व आदश की प्रतिस्थापना की माग की गई। समारजली के विचार, जिनका पहल उल्लेख किया जा चुका है, यारोपीय विचारधारा से प्रभावित हैं। मुस्लिम स्त्रियो मे शिक्षा का जितना प्रसार हागा, नयी विचारधारा जोर नये ससार व सम्पक मे यह जितना जायगी और एकपत्नीत्व व जादश की वह जितनी माग करेगी इस्लाम मे बहुपत्नीत्व के प्रति उतना ही विरोध बढ़गा। मुस्लिम नारी को सीमित बहुपत्नीत्व मुहम्मद साहब की देन है। उस सीमित बहुपत्नीत्व का समाप्त करना अब मुस्लिम नारी का उत्तरदायित्व और कर्तव्य है।

मुस्लिम दगा मे, उनीसवीं शताब्दी से बहुपत्नीत्व का दरकरन या उस जोर भी सीमित करने के कदम उठाए गए हैं। सा उनीस सौ छठीस मे स्पिस सिविल कोड (Swiss Civil Code) लागू करके, तुर्की मे बहुपत्नीत्व की प्रथा का कानूनन बन्द कर दिया गया। मिस्र सीरिया और ईरान मे ऐसा विधान बनाया गया जिसमे बहुपत्नीत्व और भा सम्मिलित हा गया। इस और चीन मे बहुपत्नीत्व अब है यद्यपि जैसा कि लडी का मत है, मध्य एशिया के इस्लामी राज्या मे इस कानून की बहुधा अवहेलना हाती रहती है। जिन देशा मे इस्लामी मजहबी कानून का परम्परागत पालन किया जाता है वहा बहुपत्नीत्व वैध है। भारत और पाकिस्तान मे मुसलमानो मे बहुपत्नीत्व वैध है क्याकि जहा पाकिस्तान मे मजहबी शाय की स्थापना करके परम्परागत इस्लाम को बनाए रखने का प्रयास किया गया है, व भारत मे मुस्लिम कानून को इसलिए यथावत रहने दिया गया है कि मुस्लिम कानून इस्लामी आदेश है और जग बदलना मनुष्य के अधिकार व बाहर है। भारत मे यह मान लिया गया कि बहुपत्नीत्व सार्वनीति (Public Policy) के विरुद्ध है किन्तु, इस दृष्टिकोण से, कानून भी बेस अभी तब भारतीय अल्पता के सामने नहीं आया है। दूसरी ओर इंडियन कानून कड लयट की छठीसवीं धारा मे यह कहा गया है कि अवयस्क व जल्बा किसी अन्य व साथ किया हुआ ऐसा समझौता जिसमे समझौता करने वाले यकित्या मे से, कितना न के कितनाह का प्रतिरोध होता हा, अवध है। इस आधार पर यदि पति व दूसरा विवाह करने पर पत्नी पति या तलाक़ देती है तो वह अवध नहीं है क्याकि पति का कानून पत्नी मे विधान करना एन ऐसा सविधा है जिससे पहला पत्नी के विवाह मे प्रतिरोध उठाने हाता है¹। इस प्रकार इंडियन कड कड एन अप्रत्यक्षत इस्लामा बहुपत्नीत्व का और भा गामिन करता है²।

1 मन्मथा, दगा प्रकाश वटी पण्ड 162 163

2 समारजली के अनुसार, बहुपत्नीत्व के विरुद्ध विचार धीरे धीरे एक सामाजिक आस्था बनता ग रहा है और अनेक बाह्य परिस्थितियों के साथ मित्र कर, भारतीय मुसलमानो के बीच से इस प्रथा को दूर कर रहा है। भारतीय

मुता विवाह परम्परा, इस्लाम में, इस्लामेतर प्राचीन अरबी समाज की परम्पराओं से आई है। इस्लाम के प्रारम्भिक काल में, जसा कि राबट सन का मुता निकाह मत है, एक जोर, पितृसत्तात्मक व अल विवाह की प्रथा थी और, दूसरी ओर बीना विवाह प्रथा, जिसमें विवाह अस्थाई होता था, जिसमें स्त्री पति के पास केवल उतने समय के लिए रहती थी जितनी श्रवण के के लिए पति पत्नी साथ रहने का वादा करते थे। मुता विवाह परम्परा अस्थाई विवाह परम्परा के रूप में विकसित हुई और पैगम्बर के समय में प्रचलित थी। मुता विवाह अस्थाई विवाह होता था जिसका उद्देश्य केवल रति का आनन्द लेना था। व अल विवाह का उद्देश्य परिवार की स्थापना था किंतु मुता का ध्येय काम सुख प्राप्ति। मुता विवाह का उद्देश्य उस अवस्था में कामसुख प्रदान करता था जब पुत्र्य सन्धिक मवाआ के लिए या अन्य किसी उद्देश्य के लिए घर से बाहर रहता था। मुता विवाह केवल एक अवधि विषय के लिए समझौतामान होता था। इसमें भी मेहर का समझौता होता था। मुता विवाह केवल कथितक समझौता होता था— उसमें बली की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। निश्चित अवधि के समाप्त होने पर, पति-पत्नी अलग हो जाते थे और पत्नी को ठहराई हुई मेहर की धनराशि मिल जाती थी। इस विवाह से उत्पन्न सन्तान वैध होती थी और बहुधा अपनी मा के सम्बन्धियों के पास रहती थी। इसी अरबी प्रथा की पृष्ठभूमि में इस्लाम में मुता विवाह की वैध परम्परा का विकास हुआ है¹।

मुसलमानों में यह प्रथा उत्पन्न हुई है कि निकाह सविदा में पति इस बात का वादा करता है कि वह, पहली पत्नी के जीवित रहते, दूसरा निकाह नहीं करेगा। भारतीय मुसलमानों में पचास फीसदी, या तो एकपत्नीत्व में आस्था रखने के कारण या परिस्थितियोग एकविधाही है। भारतीय मुसलमानों के शिक्षित वर्ग में जो अपने पूर्वजों के इतिहास से परिचित हैं और जो अन्य राष्ट्रों से अपनी तुलना करते हैं वे बहुपत्नीत्व के पक्ष में नहीं हैं। अमीर अली को यह आगा है कि वह समय दूर नहीं है जब इस्लाम के विधिशास्त्री, गुलामी प्रथा की भांति, बहुपत्नीत्व की प्रथा को अवाञ्छनीय घोषित करेंगे (यही पृष्ठ 232)। भारतीय अदालतों के सामने ऐसे केस आये हैं जिनमें पति ने दूसरा विवाह न करने के समझौते को तोड़ा है। भारतीय अदालतों ने कुछ केसों में इस समझौते को कि पहली पत्नी के रहते हुए पति दूसरा विवाह नहीं करेगा इस्लामी विधि के अनुसार अनुपयुक्त माना है और कुछ में उस उचित मानकर पत्नी को तलाक की इजाजत दी है। इन केसों के लिए देखिये पापीप्रसाद सक्सेना शृत मुस्लिम ला, पृष्ठ 208-209।

1 देखो यही पृष्ठ 115

वर्तमान भारत की मुस्लिम विधि प्रणाली में मुता विवाह वैध भी है और अवध भी। सुनी विधि प्रणाली में मुता विवाह अवध है किन्तु, शिया विधि प्रणाली में वैध है। शिया विधि प्रणाली के आधार पर काशी प्रसाद सबसेना ने मुता विवाह के आधारों को इस प्रकार निर्धारित किया है इसमें अवधि (कुछ घंटा से लेकर जीवनपथ तक^१) और मेहर का निश्चय आवश्यक है। जहां अवधि का निश्चय नहीं है वहां मुता विवाह स्थायी निकाह माना जाता है। निकाह में मेहर की धनराशि का निर्धारण आवश्यक नहीं है क्योंकि निकाह में, इस्लामी प्रथा के अनुसार मेहर का निश्चय बाद में भी किया जा सकता है। किन्तु, मुता सविदा में मेहर का निश्चित निर्धारण आवश्यक है क्योंकि उसका बिना मुता सविदा वैध नहीं है। निश्चित मेहर की धनराशि और विवाह की निश्चित अवधि मुता सविदा के दो वैध आधार हैं गिनकर बिना मुता विवाह अवध है। बिना निश्चित अवधि का मुता और स्याई निकाह में कोई अंतर नहीं है। मुता विवाह में पत्नियों की संख्या निर्धारित नहीं है। जहां मुता में पत्निया की संख्या पुरुष की जाधिक दशा पर निर्भर है। स्त्री पुरुष का मजहबी अंतर मुता विवाह के भाग में वैध है। गिया यहूदी इमाई तथा जग्निपूजन पारमिया का कितबिया मानने है। जहां भारत में, गिया पुरुष पारमी स्त्री के साथ मुता विवाह कर सकता है। मुता सविदा में तलाक का स्थान नहीं है क्योंकि मुता की अवधि समाप्त होने ही मुता विवाह अपने आप समाप्त हो जाता है। यदि कोई पति चाह तो अवधि की समाप्ति के पहले ही पत्नी को छोड़ सकता है। पारस्परिक समझौते से पति पत्नी मुता विवाह की अवधि को बतान सकते हैं। मुता विवाह की अवधि के समाप्त होने के बाद भी यदि दा स्त्री पुरुष पति पत्नी की तरह रहते हैं और इस बात में यदि पति की मृत्यु हो जाती है तो यह समझा जायगा कि मुता की अवधि बतान दी गई थी। लेकिन यह तभी माना

1. ईरान में मुता विवाह कुछ घंटों से लेकर कई सालों तक का किया जाता है। इज्जतदार व्यक्ति नि नानवे वर्षों तक का मुता विवाह करत हुए पाए जाते हैं। इतनी अवधि का मुता विवाह अस्याई न होकर स्याई विवाह हो जाता है। ईरान में मुता विवाह में स्त्री कई घोबी को गिया कहते हैं यद्यपि जसा कि लेवी का मत है गिया वस्तुतः प्रतीक है मुता-सविदा का जिसे मुल्ला तयार करता है। ईरानी मुता में मेहर का निर्धारण आवश्यक है किन्तु सविदा में वहाँ भी इस बात का ध्यान नहीं होना चाहिए कि स्त्री किसी धन या भेंट के बदले में पुरुष को दी गई है। किसी ऐसी अभिव्यक्ति के आजाने से मुता सविदा अनियमित हो जाता है और उससे पति की पत्नी को इच्छानुसार तलाक देने की स्वतंत्रता समाप्त हो जाती है क्योंकि ऐसी अभिव्यक्ति के आजाने से इरानी प्रथा के अनुसार, तलाक पारस्परिक अनुमति से होना चाहिये—लेवी पृष्ठ 117

जायगा जब उपरान्त प्रमाणों से यह न सिद्ध हो कि निश्चित अवधि के बाद मुत्ता समाप्त कर दिया गया था।

निकाह की भांति मुत्ता भी एक वैध मविदा है जिसमें पति पत्नी का अनवरत वचनपूर्ण और अनिश्चित मिश्रण है। मुत्ता विवाह स्त्री का बच्चा मरने की संरक्षण का अधिकार देता है। मुत्ता विवाह में पत्नी का पति की सम्पत्ति में उत्तराधिकार का अधिकार नहीं मिलता है। जहाँ जहाँ विवाह में सम्भाग नहीं जाता है वहाँ पत्नी केवल आधी महर की अधिकारिणी है। मुत्ता विवाह में सम्भाग या ज्ञान व वाप पत्नी मरने की पूर्ण संरक्षण की उत्तराधिकारिणी है चाहे अवधि की समाप्ति के बाद भी, पति मुत्ता विवाह का समाप्त नहीं कर सकता है। मुत्ता-विवाह में, न्यायान्त, पत्नी का पति का छानने का अधिकार नहीं है किन्तु यदि वह एक काल है तो पति का महर की संरक्षण कम करने का अधिकार है। निश्चित अवधि के समाप्त होते ही मुत्ता विवाह स्वयं समाप्त हो जाता है लेकिन यदि पति चाहे तो निश्चित अवधि के बीच में ही यह अवधि का, वह पत्नी का बच्चा उन्हा (हिदायत-मुत्ता) के बच्चा, मुत्ता विवाह का समाप्त कर सकता है। एसा जहाँ में पत्नी का पूर्ण महर का अधिकार है। मुत्ता विवाह स्याद विवाह (निकाह) में बच्चा या बच्चा है किन्तु तभी जब या तो अवधि समाप्त हो गई हो या तो अवधि पत्नी का उपचार में देकर नद सिर से निकाह-मविदा किया जान। विवाहित नारी के साथ किया हुआ मुत्ता-विवाह अवध है। निकाह में पत्नी का मरने भी मिलता है, मरण-वाप का अधिकार भी और पति की सम्पत्ति में उत्तराधिकार भी। किन्तु, मुत्ता विवाह में स्त्री का बच्चा महर का ही अधिकार मिलता है। मुत्ता विवाह से उत्पन्न सम्मान वध है। सम्मान की मात्रा पिता दानों का सम्पत्ति में उत्तराधिकार का अधिकार मिलता है। सम्मान की वंशता ही मुत्ता विवाह का बेदावति से भिन्न करता है वना मुत्ता-विवाह और वंशवृत्ति एक दूसरे की भिन्नो के समान लगती हैं। इस्लामी प्रथा के अनुसार मुत्ता-विवाह में पत्नी का मरण-वाप का अधिकार नहीं है किन्तु विभिन्न प्रायोजक कोड (The Criminal Procedure Code) की चार से अठारहवीं प्रायोजक के अनुसार, कलकत्ता के हाईकोर्ट ने एक केस में मुत्ता पत्नी का मरण-वाप का अधिकार दिया है।

बुरानोत्र की भांति मुत्ता विवाह का लकर, इस्लाम में विवाही विवाह का समावण हुआ है। बुरान की परम्परा के आधार पर मुत्ता का वैध माना गया है और बुरान का ही परम्परा के आधार पर मुत्ता का अवध और अवाधोप माना गया है। मुत्ता प्राचीन अरबी समाज की एक परम्परा के रूप में आया जिसे उप परम्पराओं की भांति, इस्लाम सहसा अस्वाकार न कर सका बरन उस उस मुत्ता-वादी दृष्टिकोण के साथ, अन्यान्य का प्रयास किया जिसका लकर इस्लाम का ध्युद्ध हुआ था। जहाँ सम्प्रदाय मुत्ता का समर्थन रहा है उसने बुरान की उस परम्परा पर

जार दिया है जिसमें यह कहा गया है कि जिन स्त्रियों के साथ तुमने सम्भोग किया है उन्हें उनका वध पुरस्कार दो क्योंकि पारस्परिक सलाह से पुरस्कार तय करके निश्चित सम्भोग करने में कोई अपराध नहीं है¹। किन्तु इस प्रथा की इतनी बुराईया थी कि मुहम्मद ने इस अवैध भी घोषित किया। एक अथ परम्परा के अनुसार, इस्लाम में मुता को वेश्यावृत्ति की भगिनी कहा गया है। सम्भावना इस बात की है कि यदि मुहम्मद ने इसकी आना दी भी है तो अनिच्छा से। हो सकता है कि इसकी अनुमति वेश्याओं के साथ सम्भोग करने के लिए दी गई हो क्योंकि वेश्याओं का वग सबत्र और सब कालों में पाया गया है। मुता से वेश्या की भी प्रतिष्ठा बढ़ जाती है। प्रत्येक वग की नारी की दशा सुधारने के लिए हो सकता है कि तत्कालीन परिस्थितियों में मुहम्मद ने, एक जोर मुता विवाह का अप्रत्यक्ष पक्ष लिया किन्तु दूसरी ओर, उसे प्रत्यक्षतः अवध घोषित किया। मुहम्मद के बाद शिया सम्प्रदाय में मुता को वध माना गया और सुन्नियों में अवध। खलीफा मामून ने इसे वध घोषित किया किन्तु जनविरोध के कारण उन्हें अपने हुक्म का वापस लेना पड़ा। खलीफा उमर ने मुता विवाह को समाप्त किया और तभी से यह सुन्नियों में अवध है²।

यहां यह प्रश्न उठता है कि इस्लाम में एक बड़ तबक में मुता का विरोध क्या किया गया? कपाडिया के अनुसार इसके कई कारण हैं। एक इस्लाम तत्कालीन अरबी समाज में विकसित पितृसत्तात्मक तथा पितृवर्गी परिवार का प्रतिष्ठापोषक था जिसमें मुता विवाह असामयिक प्रतीत हुआ। दो, इस्लाम ने पत्नीत्व का जो आदर्श प्रतिपादित किया, मुता विवाह उस आदर्श के विरोध में पड़ा क्योंकि मुता में नारी को यौनिक स्वतंत्रता अधिक थी। तीसरा पगम्बर विवाह को स्याई बनाने के पक्ष में थे जिसके कारण उन्होंने मुता विवाह की भस्मना की। चौथा मुता मिल्लत की धारणा से मेल न खाता था क्योंकि मुता एक वधवृत्त समझीता था और गैर मुस्लिम पुरुष के साथ भी स्थापित किया जा सकता था। पाचवा मुता विवाह में पति पत्नी का आदर्श उस आदर्श से मेल न खाता था जिसका प्रतिपादन इस्लाम में हुआ था। इस प्रकार जहां कि कपाडिया का मत है तत्कालीन अरबी समाज की परिस्थितियों में, इस्लाम में मुता के प्रति जो दृष्टिकोण विकसित हुआ, उसमें इस्लाम के हिता की रक्षा का भाव अधिक प्रधान था।

डिमाम्बाग के अनुसार इस्लाम में आध्यात्मिकता और सामाजिकता के एक में मिल जाने के कारण मुसलमानों में विवाह सविदा का कोई विशेष धार्मिक सांस्कृतिक महत्त्व नहीं है। अमीर अली ने भी इस बात पर जार दिया है कि निवाह एक कानूनी समझौता है जिसमें धार्मिक कर्मकाण्ड का कोई विशेष महत्त्व नहीं है। फिर भी निवाह का सम्बन्ध मिल्लत से है। जहाँ सभी समाजों में है मुसलमानों में

किसी न किसी रूप में विवाह आज सर्वत्र पाया जाता है। मुस्लिम विवाह में स्नान की रस्म का महत्वपूर्ण हाथ है। निकाह के पहले वर और कन्या अपने अपने घरों में स्नान करते हैं और उसके बाद मङ्गी रचान की रस्म होती है।

निकाह के बाद दूसरे दिन जिल्वा (अरबी में ज्यादातर अल अरूम) की रस्म होती है जिसमें नव विवाहित पति पत्नी का परिचय कराकर, कन्या की विदाई होती है। इस रस्म की अगुआई के लिये वर कन्या के घर जाता है जहाँ पहले वर कन्या का गीश में दस्ताना और बाल में दानों का परिचय कराया जाता है। कन्या की सुन्दरता के बारे में पूछे जाने पर वर का यह फज्र होता है कि वह कन्या की सुन्दरता का स्वीकार करे और उस रस्म की यात्रा में उस काई भेंट दे। उसके बाद, कन्या अपने सम्बन्धियों में विदा लेकर वर के साथ विदा हो जाती है। शुशेरी के अनुसार भारत के मुसलमानों में कन्या के विदा होने के बाद वर का कन्या को अपनी गोश में उठाकर सवारी तैयार करना आवश्यक है जबकि अन्य देशों में वर कन्या का कजल पाय का गहारा देकर ले जाता है। डिमाम्बीस के अनुसार निकाह की सारी रस्मों में दुहल (माहगरात) की रस्म सबसे अधिक महत्वपूर्ण है¹। दुहल के बाद प्रीतिभाज दान की प्रथा पाई गई है। निकाह के बाद के सात दिन शुभ दिन समझे जाते हैं और उन दिनों वर वधू पर अनेक प्रतिभय लगे रहते हैं। विधवा या तलाक की हुई स्त्री का निकाह सादा होता है। उसमें ये रस्में नहीं मनाई जाती हैं।

इस्लामेतर प्राचीन अरबी ममाज में निकाह अविच्छेद्य संस्कार न था। पति को अपनी इच्छानुसार निकाह-संसभिता समाप्त करने का अधिकार तलाक था। अरबी में तलाक का अर्थ है विवाह विच्छेद करना। किन्तु विवाह विच्छेद का अधिकार पति का था न कि पत्नी का। पति को तलाक का एतदर्थ अधिकार मिला हुआ था। हा यह आश्चर्य था कि विवाह-विच्छेद करने पर पति को मंगर की रूप रकम पत्नी का दानी पडनी थी। पति स एतदर्थ पान के लिये पत्नी अपने सम्बन्धियों की तरफ से आसक्त होती थी और पति से मिली हुई दूध महर को वापस करने का वातावरण, पति में अपने उद्धार की

1. ईरानी प्रथा के अनुसार कन्या की माया अथवा कोई नजदीकी स्त्री कन्या के साथ उसकी समुदाय जाती है। यह उस कमरे के पड़ोस में सोती है जिसमें वर वधू सोते हैं। वर वधू के पलंग पर एक सफ़्त चान्दर बिछा दी जाती है जिसके आधार पर वह दूसरे दिन वधू को कुवारेयन का सबूत देती है। वर को इस बात की सतुष्टि होना आवश्यक है कि वधू कुवारी है या नहीं क्योंकि वर या उसके घर के लोग यदि यह पाते हैं कि वधू कुवारी नहीं है तो वे उसे वापस कर देते हैं—शुशेरी यही पृष्ठ 522

अनुमति प्राप्त कर सकती थी। किन्तु पत्नी को पति की प्रभुता में तभी उद्धार मिल सकता था जब पत्नी का दो हूद महर वापस लेकर पति पत्नी का छुटकारा दान के त्रये राजी था। अतः एक ओर, विवाह विच्छेद का तरीका था 'तलाक' और दूसरी ओर, 'मुग़ल प्रथा' पति से मिली हूद महर पति का वापस करके पति की अनुमति से पत्नी द्वारा पति से उद्धार पान का तरीका। निकाह में निहित नारी के त्रय त्रय का भाव विवाह विच्छेद में भी निहित था। इस्लाम में यही आधारभूत अरबी-परम्परा अपनाई गई किन्तु तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार, सुधारवादी परिवर्तन का माध्यम।

पगम्बर ने निकाह का सम्झौता तो माना किन्तु उतना उद्दय केवल यौनसुख ही नहीं माना। निकाह का उद्देश्य मिल्लत का एक आवश्यकता माना। कुरान में जाहद तक जायत के अनुसार मुकून प्रेम (या जहत) रहमत और सनाता नापति निषात के उद्देश्य हैं¹। निकाह का स्थाई बनाने के लिये तथा पति की निरकुशता पर राक लगाने के लिये पगम्बर ने यह भी आजा दी कि 'या तो उह (पत्निया का) दयालुता के साथ अपनाया या सहृदयता के साथ उह तलाक दे दा'²। किन्तु, साथ ही साथ, पगम्बर ने यह भी माना कि एक वह वस्तु जो वैध है किन्तु अल्लाह का नापनाह है, तलाक है³। इस प्रकार पगम्बर ने तलाक की परम्परा का बंध तो माता किन्तु साथ ही साथ उसकी अवाछनीयता का भी स्वीकार किया। सम्भवतः यह अरबी-परम्परा के विरुद्ध उठने वाली प्रतिधिया का परिणाम है क्योंकि इस्लाम का उद्देश्य निकाह का स्थाई बनाना था और नारी को उस स्थिति में प्राण तिलाना था त्रिमम तनवा वैवाहिक जीवन केवल पति की दया पर निर्भर था। अतः जैसा कि अमीर अली का मत है, कुरान में निहित तलाक की अनुमति का पगम्बर के उद्देश्य का सद्बन्ध में सम्पन्न का आवश्यकता है। इस्लाम में, तलाक का प्रति जिग दस्तिका का विकास हुआ वह प्राचीन अरबी प्रथाओं तथा इस्लाम के उद्देश्य में एक सम्बन्धपूर्ण सम्झौता है। इस तलाक की मुष्टि अमीर अली के इस कथन में होती है कि पगम्बर ने पति के तलाक देने के अधिकार को कायम रक्खा, कुछ उचित आधारों पर पत्नी का पति से छलन हान की अनुमति का और अपने जीवन के अन्तिम क्षण में पति की तलाक दान की निरकुशता पर पाबंदी लगाने के यहाँ तक हमी हो गए कि उद्देश्य विना काजा का बीच में डाल, तलाक न दान तक का भी विधान किया³।

नबी के अनुगार तलाक के बारे में, कुरान में साम्प्रदायिक काही कुछ कहा

1 सप्ततना, काशीप्रसाद यही पृष्ठ 281

2 यही

3 यही पृष्ठ 260

गया है किंतु कुरान में जो कुछ कहा गया है उसका अधिकांश तलाक देने के तरीके और पत्नी तथा बच्चों के प्रति पति के आर्थिक तथा अन्य उत्तरदायित्वों से सम्बंधित है¹। तलाक के क्या आधार हैं इस पर बहुत कम ध्यान दिया गया है। इसी कारण, इस्लाम में प्राचीन अरबी प्रथा का समावेश हो गया है और पति का तलाक सम्बन्धी एक्तरफा अधिकार बना रहा है। यही कारण है कि विवाह विच्छेद में, मायाधीन के स्थान विवाह विच्छेद के तरीकों की कानूनी महत्ता तथा गवाहों के स्थान के बारे में मतभेद है। शिया विधि प्रणाली में विवाह विच्छेद का भी गवाह होने चाहिए जबकि सुन्नी विधि प्रणाली में विवाह विच्छेद में गवाहों का आवश्यकता नहीं है। भारत में, अंग्रेजी राज की स्थापना होने के बाद कहीं अवस्थाओं में तलाक देने के पति के परम्परागत अधिकार को कायम रखा गया, किन्तु अवस्थाओं में पत्नी का विवाह विच्छेद का अधिकार मिला और किन्हीं-किन्हीं अवस्थाओं में विवाह विच्छेद का नियंत्रण करने में अदालतों को अधिकार मिला। सबसे मुख्य विकास यह हुआ कि विवाह विच्छेद सम्बन्धी इस्लामी कानून अंग्रेजों इस्लामी हो गया और विवाह विच्छेद सम्बन्धी सारे कानून के निवचन का अधिकार अंग्रेजों का मिला। आज बाकी के बहुत कुछ अधिकार भारतीय अदालतों के पास हैं।

इस्लाम के प्रभाव में विवाह विच्छेद सम्बन्धी प्राचीन अरबी परम्पराओं में तलाक का सीमित करने पत्नी का आर्थिक आश्रय सुरक्षा प्रदान करने का प्रयास किया गया ताकि इस्लाम द्वारा प्रतिपादित पितृसत्तात्मक परिवार की संरचनात्मक एकता और उसकी मर्यादाएं सुरक्षित रह सकें। तलाक के साथ साथ, बच्चों का पितृसत्तात्मक परिवार का सम्पूर्ण मानकर उन्हें द्विपक्षी उत्तराधिकार का अधिकार दिया गया। तलाक के साथ दूत को जोड़ दिया गया। दूत में तात्पर्य है तीन मासिक धर्मों की अवधि से। तलाक के बाद दूत का मानना आवश्यक कर दिया गया ताकि यह निश्चित हो सके कि तलाक दी जाने वाली पत्नी को पहली व्यक्ति से कोई गर्भ तो नहीं है। दूत वह अवस्था है जिसमें नारी न तो किसी की पत्नी है और न वह तलाक दी हुई स्त्री है। दूत में नारी परित्यक्ता भी नहीं है क्योंकि इस्लामी विधान के अनुसार दूत के दौरान में नारी को अपने पति से भरण पोषण मिलना है। दूत में नारी दूसरा विवाह नहीं कर सकती है यद्यपि गुप्त रूप से वह किसी अन्य पुरुष से विवाह का प्रस्ताव कर सकती है या दूसरे का विवाह प्रस्ताव स्वीकार कर सकती है। दूत के दौरान में पति पत्नी में सम्भोग अवधि है बशर्ते कि पत्नी पति के लिये हराम न बन गई हो। पत्नी पति के लिये तब हराम बनती है जब तलाक पूर्ण हो जाता है और उस हटाने के लिये पुनर्विचार का गुणात्मक नहीं बन जाता है। इस्लामी परम्परा में तलाक तब पूर्ण होता है जब या तो पति पत्नी

स तीन बार यह कह दे कि उसने उसे तलाक दिया या अदालत तलाक की शिष्टी दे दी। इस्लाम में यह विधान किया गया है कि पति या तो एक ही साथ तीन बार तलाक कहकर तलाक को पूरा कर सकता है या वह अपनी इच्छानुसार, कुछ समय का अंतर देकर अलग अलग समय पर तीन बार तलाक देने को कह सकता है। तीसरी बार तलाक कहने पर विवाह विच्छेद पूरा होता है। एक सामान्य नियम यह है कि पति पत्नी का तलाक देने के लिये उस समय कहे जब वह मासिक धर्म से मुक्त हो अथवा दो मासिक धर्मों के बीच में हो। दो बार तलाक देने से पत्नी हुराम नहीं होती है। अतः उस पुनः वापस लिया जा सकता है। तलाक के एक बार पूरा हो जाने पर पत्नी का इहत म रहना आवश्यक हो जाता है और एक बार तलाक दी हुई पत्नी में पति रूच्छा रहत हुए भी, तब तक पुनर्विवाह नहीं कर सकता है जब तक कि काइ दूसरा पुरुष उससे विवाह करके पुनः उसे तलाक न दे और वह पुनः इहत की अवधि को काट न ले। इसप्रकार इहत तलाक के पहलू, तलाक की आवश्यकता पर पुनः विचार करने का अवसर प्रदान करता है। यदि पत्नी पहल पति से गमवती है तो उस गम में छुटकारा पाने तर इतजार करना पटना है। तलाक के पूरा होने पर पत्नी अपनी महर की अधिकारिणी हो जाती है। जैसा कि प्राचीन अरब परम्परा था, पत्नी का तलाक देने समय पति का न तो तलाक का कारण बताने की आवश्यकता है और न अपने इरादे का ही स्पष्ट करने का। किन्तु पति का यह अधिकार निरकुण भी नहीं है। इहत के काल में वह पत्नी का खाना, कपड़ा देने का उत्तरदायी है।

इस्लामी कानून के अनुसार, काइ भी वह मुसलमान, जिनका हिमाग सही है जिनमें बयर्मा घ की आयु प्राप्त कर ली है, अपनी इच्छानुसार जब भी चाह बिना काइ कारण बनाव हुए अपनी पत्नी का तलाक दे सकता है। भारतीय मुसलमानों में, विवाह विच्छेद करने के तीन तराक पाये जाते हैं—पहले, बिना अदालत की तरण लिये पति द्वारा विवाह विच्छेद (तलाक), दो, बिना अदालत का बीच में गये पति पत्नी की पारस्परिक अनुमति द्वारा विवाह विच्छेद (मुला और मुबरत) और तीसरा, अदालत का शिष्टी द्वारा। इस्लामी कानून में लिखित और मौखिक दोनों प्रकार के तलाक का विधान है। मौखिक तलाक में पति उन शर्तों का प्रयोग करता है जिनमें पत्नी को यह स्पष्ट हो जाय कि उस तलाक दिया गया है तब में (पति) तुम्हे (पत्नी का) तलाक देता है। जहां तलाक की जापना में के वहां पति का अपने इरादे का प्रमाण देना आवश्यक नहीं किन्तु जहां जापना स्पष्ट है वहां पति का अपने इरादे का प्रमाण देना आवश्यक हो जाता है। तुरन्त (या अल्पकाल) धर्मों के बीच का समय) में तलाक की एकबार घोषणा करके दो ही बार तलाक देना बाद किया जा सकता है (तलाक अघत) या तीन तुरन्त में ही दो बार तलाक देना घोषणा की जा सकता है (तलाक हया) या एक ही तुरन्त में तीन बार तलाक देना

घोषणा की जा सकती है या एक ही तुहर में एक ही बार पूरा तलाक की घोषणा की जा सकती है (तलाक उल मुद्दत या तलाक ए बती) यह आवश्यक नहीं कि तलाक की घोषणा पत्नी की उपस्थिति में की जाय। शिया विधि प्रणाली के अनुसार, तलाक की घोषणा के समय दो गवाहों का होना आवश्यक है। आवश्यक यह है कि तलाक की घोषणा पत्नी के प्रति सम्बोधित हो। पत्नी के महर के अधिकार के दृष्टि कारण से तलाक की घोषणा का समाचार पत्नी तक पहुँचाना जरूरी है। जब तक पत्नी का तलाक की सूचना नहीं मिलती है उसका निवाह-प्रय का अधिकार बना रहता है। महर के स्वयंज-अप को पान का अधिकार पत्नी का तभी से मिलता है जब उस तलाक की सूचना मिलती है। तलाकनामा लिखित तलाक का प्रतीक है। तलाकनाम में मौखिक तलाक का लक्षण दिया जा सकता है या उस दस्तावेज के रूप में लिखा जा सकता है। दस्तावेज काजी या पत्नी के पिता की या दा गवाहों की उपस्थिति में लिखा जा सकता है। यदि दस्तावेज पत्नी के नाम सम्बोधित होता है, उसकी भाषा स्पष्ट होती है और दस्तावेज लेखन के उस पर दस्तखत हात है तो पति के लिये तलाक का मगाना स्पष्ट करना आवश्यक नहीं होता है और तलाकनामा वह फौरन लागू हो जाता है। जहाँ तलाकनामा केवल तलाक का घोषणापत्र होता है, वहाँ पति के लिये तलाक की मगाना स्पष्ट करना जरूरी है और मगाना स्पष्ट करने पर ही वह लागू होता है। स्पष्ट तलाकनामा तयार हात ही लागू हो जाता है चाहे पत्नी का उसकी सूचना न हो या बाद में मिले।

तलाक मुला मुबरत इला, जहर लिमान और फिस्य—ये सात प्रकार के निवाह विच्छेद इस्लामी विधि प्रणाली में मान्य हैं। साधारणतया तलाक निवाह विच्छेद का पर्याय माना जाता है किन्तु इस्लामी विधि प्रणाली में तलाक एक विशेष प्रकार के निवाह विच्छेद का प्रतीक है—वह निवाह विच्छेद जिसमें पति का निवाह-साधन का और पत्नी को इसमें करने का एकतरफा यथानिवेक अधिकार मिला हुआ है। इस्लामी समाज में पति का यह अधिकार इस्लामनर प्राचीन अरबी समाज से आया है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है तलाक मौखिक भी हो सकता है और लिखित भी। तलाक के मुख्य तराक हैं तलाक अमन तलाक तमन तलाक-उल मुद्दत तलाक ए नफवीज और तलाक ए तालीक। पाँच प्रकार के तलाक मौखिक हैं यद्यपि उन्हें लिखित में बदला जा सकता है। इन तलाकों में पति का स्पष्ट रूप में पत्नी से यह कहना पड़ता है कि पति ने पत्नी का तलाक दे दिया है। तलाक ए अमन में जब पत्नी तुहर में होती है तो पति तलाक की घोषणा करके पत्नी से सम्भाग बंद कर देता है और उमक वाग एद्दू या अशवि समाप्त होने पर तलाक पूरा हो जाता है। जिस मासिक धर्म के बाद पति तलाक की घोषणा करता

है, उसका बाद स सम्भोग नहीं होना चाहिये क्योंकि सम्भोग होने के तलाक पूरा हुआ नहीं माना जाता है। किन्तु, यदि निकाह के बाद सम्भोग ही नहीं हुआ है तो तलाक अहसन की घोषणा किसी भी समय, यहाँ तक कि मासिक घब के दिना में भी की जा सकती है। यदि पत्नी तुरन्त में न है तो सम्भोग के बाद भी तलाक अहसन की घोषणा की जा सकती है। तलाक-अहसन के बाद पुन निकाह का विधान है किन्तु गिया विधि में तलाक-अहसन का नहीं ताड़ा जा सकता है यदि तलाक अहसन की घोषणा एसी पत्नी के विच्छेद की गई है जिसके साथ निकाह के बाद यदि न सम्भोग न किया है या जिसकी प्रजनन की क्षमता समाप्त हो गई है या जिसके उभय पति को प्राप्त न किया है।

तलाक हमन में तीन तुरन्त में तलाक की तीन बार घोषणा करनी पड़ती है। तीसरी घोषणा के बाद तलाक पूरा हो जाता है यहाँ कि पत्नी तुरन्त के समय से जब तक तलाक की घोषणा की गई है और तीसरी तुरन्त तक पति न पत्नी के साथ सम्भोग न किया है। तलाक-उल बिद्दत में तलाक की घोषणा के बाद स ही तलाक पूरा हो जाता है और प्रत्यावतनीय (Revocable) नहीं रहता है। तलाक अहसन में जब तक तीसरी घोषणा नहीं हो जाती तलाक पूरा नहीं होता है जिसके कारण तीसरी घोषणा के करने तक पति का अपने तलाक के इरादे पर पुन विचार करने और पत्नी का पुन वापस लेने का अधिकार रहता है। किन्तु तलाक उल बिद्दत में तलाक की घोषणा के बाद ही पत्नी इराद हो जाती है चाहे घोषणा तलाक के इरादे का स्पष्ट व्यक्त करती है एक बार या एक ही मास तीन बार की जाय या एक ही वाक्य में तीन बार की जाय। तलाक-उल बिद्दत का, उर्मेयद मघ्रातों न हिजरी सन की दूसरी गनाबनी में लागू किया था। तलाक उल बिद्दत का ही भारत में मद्रास अधिनियम प्रयोग हुआ है। काशीप्रसाद सक्सेना के अनुसार, तलाक उल बिद्दत, कानून के अन्वय में तलाक का सर्वोत्तम तरीका है किन्तु हमारी व्यवस्था में निश्चित माना जाता है क्योंकि इसमें तलाक के प्रत्यावतन का विधान नहीं है। तलाक अहसन में घोषणा के बाद भी और तलाक अहसन में दो घोषणाओं तथा तीसरी घोषणा के पत्नी तक पति का तलाक प्रत्यावतन का अधिकार है। किन्तु, तलाक उल बिद्दत में पति का यह अधिकार नहीं है क्योंकि घोषणा के तुरन्त बाद ही तलाक पूरा हो जाता है। तलाक अहसन में तीसरी घोषणा के बाद तलाक अप्रत्यावतित होता है किन्तु तलाक

1. तानों प्रकार की घोषणाओं को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है — एक, बल्बत्ता के एक क्षण में इस लिखित बयान को रंध मान लिया गया था— मैं तुम्हें तीन बार तलाक देकर निकाह बंधन में मुक्त करता हूँ। दो, जैसे मैं तुम्हें तलाक देता हूँ मैं तुम्हें तलाक देता हूँ, मैं तुम्हें तलाक देता हूँ। तीन, जब मैं तुम्हें तीन बार तलाक देता हूँ।

उल विद्वान् म तलाक की घोषणा के साथ-साथ, तलाक अप्रत्यावर्तित हो जाता है । तलाक उल विद्वान्, हर दशा म अप्रत्यावर्तनीय है चाहे उसकी घोषणा उस समय की गई हो जब पत्नी मासिक धर्म म हो या चाहे पति ने जोर दबाव स या मजाक से ही तलाक की घोषणा क्या न की हो । इरादे की स्पष्ट अभिव्यक्ति ही तलाक उल विद्वान् की वैधता के लिए काफी है ।

गिया विधि म तलाक उल विद्वान् का स्थान नहीं है । मुनियो म यह बंध है कि तु मजहबी दष्टिकाण स इम हीन माना जाता है । मजहबी दष्टिकोण स, तलाक-उल विद्वान् पक्षभ्रष्टता का प्रतीक माना गया है । इसीलिए तलाक म, एक ओर, तलाक उल विद्वान् है तो, दूसरी ओर तलाक उस् मुनत । तलाक उम मुनत व तलाक हैं जो मुना के अनुसार हैं । तलाक प्रहसन और तलाक हसन तलाक उम मुनत की श्रेणी म आते हैं । तलाक प्रत्यावर्तन और अप्रत्यावर्तन के दष्टिकाण स तलाक को दो श्रेणियां में बाटा गया है—एक, तलाक उल रजाई और दूसरी तलाक उल-बेन । तलाक उल रजाई की श्रेणी म व तलाक आते हैं जिनम प्रत्यावर्तन के लिए स्थान रहता है जैसे तलाक प्रहसा और तलाक हसन । तलाक उल बेन वह तलाक है जो अप्रत्यावर्तनीय है । जहां तलाक पूरा और अप्रत्यावर्तनीय हो जाता है, वहां प्रत्येक तलाक तलाक उल बेन है ।

तलाक ए-तफवीज म पति अपना तलाक का अधिकार किसी तामर पक्ष को द सकता है । तीसरा पक्ष पत्नी का पिता या भाई या स्वयं पत्नी ही हो सकती है । तलाक ए-तफवीज म अधिकृत व्यक्ति तलाक के अधिकार का उपयोग करता है न कि पति । एक बार लिया हुआ अधिकार पुनः वापस नहीं हो सकता । मुस्लिम विधि शास्त्रियां ने इस बंध परम्परा का उपयोग पत्नी के अधिकार का रक्षा के लिये किया है । विवाह के समय समझौते के रूप में तलाक का अधिकार पत्नी का दान की आम प्रथा रही है । एक बार तलाक का अधिकार मिल जाने म पत्नी अपनी इच्छानुसार उमदा प्रयोग कर सकती है । जहां तलाक ए-तफवीज म पत्नी का तलाक का अधिकार मिल जाता है वहां पत्नी स्वयं अपने को तलाक देने की अधिकारिणी हो जाती है । पत्नी का यह अधिकार सम्भाव्य घटनाओं (Contingencies) की शर्त पर मिलता है । वही सम्भाव्य घटनाएँ बंध हैं जो मुस्लिम विधि और राज्यनीति के विरुद्ध न हों । तलाक ए-तफवीज में न्यायालय की अनुमति की आवश्यकता नहीं है । तलाक ए-तफवीज का इस्तेमाल विवाह के पहले भी किया जा सकता है और बाद म भी । तलाक ए-तफवीज म जगह कि हनाफी विधि म माय है तलाक की घोषणा फौरन लागू हो सकती है या किसी भावी तारीख या घटना से जो तलाक की शर्त के रूप म स्वीकार की गई हो । तलाक ए-तफवीज का इस्तेमाल विवाह के पहले भी हो सकता है और बाद म भी । तब, गिया विधि प्रणाली में तलाक को न तो किसी शर्त पर आधारित किया जा सकता है और न उसे सम्मान्य ही बताया जा सकता है ।

तलाक़ का अधिकार पति का है पत्नी का नहीं। इस्लामेतर प्राचीन अरबी समाज में पत्नी को तलाक़ का अधिकार नहीं था। इस्लाम ने पति व इस अधिकार का बनाए रखा किन्तु, साथ ही साथ, आवश्यकता पड़ने पर, पत्नी का पति से उद्धार पाने के उपायों का भी बंधन कर दिया। खुला और मुबरत विवाह विच्छेद का दावा ऐसे तरीके हैं जिनसे पत्नी, आवश्यकता पड़ने पर, पति से छुटकारा पा सकती है। किन्तु तलाक़ में मिले पति के अधिकार की भाँति, पत्नी का यह अधिकार एकरूप नहीं है। पत्नी को तभी उद्धार मिल सकता है अर्थात् वह तभी विवाह विच्छेद कर सकती है जब पति की अनुमति हो। खुला का अर्थ है त्यागना। विवाह विच्छेद के सन्दर्भ में, खुला का अर्थ है उस विवाह विच्छेद से जिसमें पत्नी के अनुमति से और पत्नी में महर की धनराशि वापस लेकर, पति पत्नी को निकाह-बंधन से मुक्त करता है। खुला में पत्नी अपने अधिकारों को त्यागती है और पति उस त्याग के बदले, पत्नी का निकाह-बंधन से मुक्त करता है। खुला का सूत्रपात पत्नी से हाता है और अपने अंतिम रूप में वह तलाक़ का रूप ले लेता है। परन्तु तलाक़ के उपलक्ष्य में पति का क्या देगी यह पति पत्नी के बीच में हुए समझौते पर निर्भर करता है। यदि पत्नी, अपने समझौते के अनुसार, पति का स्वीकृत धनराशि न देता तलाक़ अवध नहीं हाता है यद्यपि पति को यह अधिकार है कि पहल से निश्चित धनराशि पाने के लिये वह पत्नी पर दावा करे। यदि पत्नी यह कहें कि उसने अपना महर का अधिकार नहीं छोड़ा है और पत्नी के इस कथन के विरुद्ध कोई प्रमाण न हो तो पतनवा ए-काजी सा और फनवा ए आलमगोरी के अनुसार पत्नी का कथन बंध है और इद्दत के काल में पत्नी निर्वाह-व्यय की अधिकारिणी नहीं है। इद्दत के बाद खुला तलाक़ में प्रत्यावर्तन नहीं हो सकता है और न इद्दत के बाद पति पत्नी एक-दूसरे से मिलने वाला प्रतिशेष का ही दावा कर सकते हैं। पति पत्नी को पारस्परिक अनुमति और खुला का 'एवज' या सामान्यतः पति को पत्नी से मिलना है खुला तलाक़ के मुख्य आधार हैं।

इस प्रकार खुला वह विवाह विच्छेद है जिसमें पत्नी निकाह से अपनी स्वतंत्रता खरीदती है। पत्नी खरीदार है और पति बेचने वाला। खरीद और परोस्त एवज (प्रतिदेय) के आधार पर होती है। किन्तु खुला में अंतिम नियम पति व ही हाथ में रहता है। खुला में विवाह विच्छेद का आधार तलाक़ ही है यद्यपि उसका स्वरूप बदल जाता है। मुबरत में विवाह विच्छेद पति पत्नी दोनों की सहमति से होता है अर्थात् दोनों साथ-साथ विवाह विच्छेद करना तय करते हैं। मुबरत का अर्थ है छुटकारा। इसमें पति पत्नी अपनी सहमति से निकाह से छुटकारा लेता है। धन मुबरत में 'एवज' (प्रतिदेय) का प्रश्न नहीं उठता है। जब पत्नी के अनुरोध से, पति प्रतिशेष लेकर विवाह विच्छेद करता है तो विवाह विच्छेद खुला प्रकार का होता है। किन्तु जब दोनों अपनी सहमति से विवाह विच्छेद करना तय करते हैं

और पति तलाक़ देता है तो विवाह विच्छेद का प्रकार मुबरत होता है। खुला और मुबरत दोनों तलाक़ के साथ पूरा होकर अप्रत्यावतनीय हो जाते हैं। दोनों में इह्त का पालन आवश्यक है और दोनों में काजी या मदालत की आवश्यकता नहीं है। खुला और मुबरत याता पति द्वारा घोषित किए जाते हैं या पति द्वारा अधिकृत पत्नी के द्वारा। सुनी विधि प्रणाली में खुला और मुबरत में, तलाक़ की घोषणा की आवश्यकता नहीं है। विवाह विच्छेद का प्रस्ताव और स्वीकृति तलाक़ इकरारनामा ही विवाह विच्छेद के लिए पर्याप्त हैं। शिया विधि प्रणाली के अनुसार, खुला प्रकार के विवाह विच्छेद में पत्नी तुहर में हानी चाहिए और खुला की साथी का गवाहों द्वारा हानी चाहिए। यदि पति पत्नी में सम्भाग नहीं हुआ है तो तुहर की कद की आवश्यकता नहीं है। खुला का प्रस्ताव जरूरी भाषा में होना चाहिए। किन्तु मुबरत में तलाक़ की घोषणाएँ सही काम चल जाता है। अवयस्क और असतुलित मस्तिष्क के व्यक्ति खुला सम्झौता नहीं कर सकते हैं। हनाफी विधि प्रणाली में दवाब और अपने हाथों द्वारा की हुई नग की हालत में भी किया हुआ खुला-सम्झौता वैध है। किन्तु शिया विधि प्रणाली में यह अमान्य है। सुनी विधि प्रणाली में अवयस्क के जविभावक द्वारा किया हुआ खुला-सम्झौता वैध है बग़ैर कि वह प्रतिदेय का उत्तरदायी है। जविभावक के बस अधिकार और उत्तरदायित्व पर शिया विधि प्रणाली में एकमतता नहीं है।

इला प्रकार का तलाक़ तब हाता है जब कोई वयस्क और सहाय्य दिमाग़ का व्यक्ति पत्नी में सम्भाग न करने का द्रत लेकर, लगातार चार मास तक उसके साथ सम्भाग नहीं करता है। इला तलाक़ उल्लिखित के प्रकार का सा अप्रत्यावतनीय तलाक़ होता है। इला के प्रकार के तलाक़ का आदेश कुरान में है। यदि कोई पति निकाह के बाद क़या की रस्सती के समय यह प्रतिज्ञा करे कि उसकी पत्नी केवल नाममात्र की ही पत्नी होगी, तो उसकी प्रतिज्ञा इला का आधार नहीं बनती है। इला-तलाक़ को सिद्ध करने का कानूनी भार पति के ऊपर होता है।

जेहर पति द्वारा उपान की हुई वह परिस्थिति है जो विवाह विच्छेद का आधार बन जाती है। यदि कोई पति अपनी पत्नी को उम्र सम्बन्धी व तुल्य मान के तलाक़ के साथ सम्भाग अग्रम्यमन है और निकाह अवध है तो पति का यह काम जेहर कहलाता है। जेहर की परिस्थिति में मुस्लिम विधि में पत्नी का यह अधिकार है कि वह पति की सम्भोग की माग़ को तब तक अस्वीकार करे जब तक कि पति त्रिभिन्न द्वारा निर्धारित प्रायश्चित्तों में से एक को पूरा न करे। जेहर से हुए पान के लिए तीन प्रायश्चित्तों का इस्लामी विधि में रक्का गया है— एक एक गुटाम का स्वतंत्र बनना दो दो मास तक उपवास रखना, और तीन साठ दोहा का खाना खिलाना। पति द्वारा जेहर की परिस्थिति उत्पन्न कर देने पर पत्नी याता पति से कोई एक प्रायश्चित्त करवा कर उसे सम्भाग की अनुमति दे

सकती है या अदालत से पति को प्रायश्चित्त करवाने की या नियमित विवाह विच्छेद की मांग कर सकती है। शिया विधि प्रणाली में जहर के समय दा गवाहा का हिना आवश्यक माना गया है। पति तभी जहर कर सकता है जब पत्नी तुहर में हो या पति घर से बाहर हो और जहर के पहले के मासिक घम के बाद में पत्नी के साथ सहवास न किया हो। मुना विवाह का विच्छेद जेहर द्वारा हो सकता है। जेहर के बाद का सम्भोग मुस्लिम विधि में अवध है।

जब पति मौग़्घ खाकर ईश्वर के अभिशाप का जावाहन करता हुआ पत्नी पर परपुष्पगमन का अपराध लगाता है तो पति का यह उद्योग लि-आन उन्नाना है। इस्लामी परम्परा के अनुसार पत्नी पर परपुष्पगमन का अपराध तभी मानित होगा जब पति चार गवाह प्रस्तुत करे। चार गवाहा का मिलना कठिन है। इसलिए, इस्लाम में यह भी विधान है कि यदि पति चार बार ईश्वर का सागी करे, पत्नी पर परपुष्पगमन का अपराध लगाता है और पत्नी चुप रहती है तो उस पर परपुष्पगमन का अपराध सिद्ध हो जाता है। लि-आन की वैधानिकता का आधार यही परम्परा है। इस्लामी परम्परा के अनुसार परपुष्पगमन के अपराध के सिद्ध होने पर पत्नी सौ कोड़ा के दंड की भांगी है और न सिद्ध होने पर पति अस्मी बाहों के दंड का। किंतु, वर्तमान 'यावहारिक विधि से, बाहों की मार के दंड का विधान निकाल दिया गया है जो यारामीय 'यावहारिक विधि' का प्रभाव है। अपराध के सिद्ध होने पर वर्तमान भारत में पत्नी का कोई दंड नहीं मिलता है और अपराध के न सिद्ध होने पर पत्नी को पति पर मानहानि का दावा करने का अधिकार मिलता है। जहां पति मौग़्घ खाकर पत्नी पर परपुष्पगमन का अपराध लगाता है और पत्नी मौग़्घ खाकर इस अपराध का उन्मीकार करती है, बड़ा पति-पत्नी में विवाह विच्छेद आवश्यक हो जाता है चाहे विच्छेद के प्रति उनमें अनिच्छा ही क्यों न हो। किन्तु विवाह विच्छेद तभी संभव होता है जब मौग़्घ की रजम पूरी हो जाय। ऐसी स्थिति में, विच्छेद हो जाने से, पति पत्नी दोनों निर्धारित दंड में बच जाते हैं और उनमें सहवाम अवध हो जाता है। लि-आन, इस प्रकार विवाह विच्छेद का आधार है न कि तलाक़ है।

'लि-आन' सही निकाहा पर लागू होता है न कि फासिद निकाहों पर। लि-आन का उपयोग तभी हो सकता है जब पति पत्नी वय संधि, पार कर चुके हो और उनका रिवाज सही हो। लि-आन के अधिकार के उपयोग में प्रतिनिधि का कोई स्थान नहीं है। लि-आन के प्रयोग के लिये, कानून के दृष्टिकोण से, पत्नी के अच्छे चाल चलन की गारंटी आवश्यक है। लि-आन के कारण होने वाला विवाह-विच्छेद अप्रत्याशनीय है। जब तक कि पति पत्नी एक दूसरे से अलग नहीं होते हैं, उनका यावहारिक अधिकार तथा उत्तराधिकार के अधिकार बच रहते हैं। लि-आन के आधार पर होने वाले विवाह विच्छेद में न तो यावहारिक समझौते का भाग

और न क्षमा का। शिया कानून में 'लि-आन' में जिनका विच्छेद होता है, वे पुनः आपस में विवाह नहीं कर सकते। किंतु मुनी-कानून के अनुसार, यदि बाद में कोई ऐसा तथ्य नजर आए जिसके कारण 'लि-आन' रद्द सकता था तो 'लि-आन' के कारण अलग हुए पति-पत्नी के पुनः आपस में विवाह करने में कोई बधानिक रूकावट नहीं है। जहां पत्नी श्रव्यस्क कितबिया या पागल है वहां लि-आन नहीं लागू होता।

विवाह का यायिक निराकरण (Judicial Rescission) फिख्र है। इस्लामी विधि प्रणाली में तलाक पति का एकमात्र अधिकार है। खुला, मुबरात, जैत और लि-आन वह परिस्थितियाँ अवश्य उत्पन्न करते हैं जिसमें पत्नी विवाह विच्छेद की मांग कर सकती है। पति-पत्नी में स्वभाव की प्रतिकूलता एक दूसरे का न चाहना और एक दूसरे के प्रति घणा इस्लामी विधि प्रणाली में विवाह विच्छेद के आधार नहीं बन सकती है। काशीप्रसाद सक्सेना के अनुसार भारत में विकसित एंग्लो-मुस्लिम विधि में लि-आन और नपुसकता (पति की नपुसकता) ही दो एम आधार हैं जिन पर पत्नी पति से विवाह विच्छेद का मुकदमा चला सकता है। पति की नपुसकता होने पर, पत्नी तभी यायिक निराकरण की मांग कर सकती है जब पति की नपुसकता आज्ञायक हो और विवाह के पहले ही से विद्यमान हो। विवाह के समय पत्नी को यह मालूम न हो कि उसका पति नपुसक है और विवाह के बाद पति ने पत्नी से सम्भोग न किया हो। इस्लामी विधि के अनुसार, यदि पत्नी पति के नपुसक होने पर विवाह विच्छेद की मांग करती है तो पति का एक साल का समय यह सिद्ध करने के लिए मिलता है कि वह नपुसक नहीं है। पति नपुसक नहीं है, यह सिद्ध करने का उत्तरदायित्व पति का है।

इस्लामी विधि में यदि पत्नी को तलाक का अधिकार नहीं है तो किसी विनियम परिस्थितियों में उसे विवाह के यायिक निराकरण के लिए अनुरोध करने का अधिकार अवश्य है¹। खुला, मुबरात, लि-आन पति की नपुसकता तलाक ए

1 कुरान के पाचवें भाग, चौथे अध्याय, छठे सेवशन की पत्नीसर्वी आयत में मनमुटाव पदा होन पर पति-पत्नी में पुनः मन्त्री करवाने की काययाही का उल्लेख है। इस आयत में काजी को आज्ञा दी गई है कि जब कभी पति-पत्नी के बीच में बमनस्य की सम्भावना हो तो वह दो मध्यस्थों को नियुक्त करे—एक, पति के सम्बन्धियों में से और दूसरा पत्नी के सम्बन्धियों में से। यदि ये मध्यस्थ पति-पत्नी में पुनः मन्त्री न करवा सकें तो क्या यह विवाह विच्छेद करवा सकता है? यदि व मान भी लें कि विवाह विच्छेद होना चाहिए तो क्या बिना पति की अनुमति लिखे वे विवाह विच्छेद करवा सकते हैं? इन प्रश्नों का उत्तर कुरान में नहीं है। यदि काजी इस बात से निश्चित है कि

तपबीज और तलाक़-ए-तानीक़ तथा निवाह-सविदा में पत्नी को पति द्वारा दिया हुआ विवाह विच्छेद का अधिकार, पत्नी को विवाह विच्छेद के लिए अनुरोध करने का अवसर प्रदान करते हैं। निवाह-सविदा में यदि पति विवाह विच्छेद की कोई ऐसी भावी बात रख देता है जिसका टूटना पत्नी को तलाक़ का अवसर प्रदान करता है तो वह यथामय तलाक़ के लिए अनुरोध कर सकती है। दि. दिसाल्पूदान आफ मुस्लिम मरिजज एक्ट (1939) में मुस्लिम-नारी का जिन आधारों पर विवाह विच्छेद का मुकद्दमा करने का अधिकार लिया गया है, वे हैं पति का इसप्रकार लापता होना कि उस बूढ़ निवासना मुश्किल हो, पति का पागल होना या भयकर काठ से पाड़ित होना, पति का पत्नी के भरण-पोषण की अवहलता करना या भरण-पोषण अस्वीकार करना, पति का पत्नी के प्रति दुर्व्यवहार करना, पति के दीर्घकाल तक बाहर रहना या कारावास में रहने के कारण पत्नी के सतीत्व को खतरा उत्पन्न होना वगैरह जिन पर पत्नी द्वारा निवाह का अस्वीकार करना, किसी घटना के कारण निवाह का अवधि होना पति की नपुंसकता, पति द्वारा पत्नी पर परपुरुषगमन का अनुचित न्येय लगाना, और अन्य कोई कारण जो मुस्लिम विधि के अन्तर्गत विवाह विच्छेद का आधार बन सकता हो।

इस एक्ट के अन्तर्गत अदालत का वही स्थान है जो इस्लाम की याय-प्रशान्त शकिया में काजी का है। अपना यह अधिकार अदालत किसी दूसरे को नहीं दे सकती है। अदालत का जिन आधारों पर विवाह-विच्छेद की डिग्री देने का अधिकार है, वे हैं पति का चार साल तक लापता रहना, पति का दो साल तक पत्नी के भरण-पोषण में असफल होना, पति को सात साल या उससे अधिक की कारावास की सजा होना अकारण ही पति का, तीन मास तक, अपने बवाहिक उत्तरदायित्व को निभाने में असफल होना पति का विवाह के पक्ष ही से नपुंसक होना और बाद

पति-पत्नी में मनमुटाव नहीं हुआ है यदि वह मध्यस्थ न नियुक्त करे और यदि उसके द्वारा नियुक्त मध्यस्थ एक राय न हों तो विवाह विच्छेद नहीं हो सकता है। कुछ यायशास्त्रियों का मत है कि यदि मध्यस्थ विवाह विच्छेद के लिए एकमत भी हों तो भी, बिना पति की अनुमति के, विवाह विच्छेद नहीं हो सकता है (फागीप्रसाद सम्मेलन बही पृष्ठ 282)। यह तथ्य इस बात का प्रमाण है कि इस्लामी विधि में विवाह विच्छेद के मुकद्दमे में यायिक मध्यस्थता का स्थान है। यदि पति का तलाक़ का अधिकार निरकुण है तो पत्नी को इस्लामी विधि के अन्तर्गत यायिक मध्यस्थता का सहारा लेने का अधिकार है। दि. दिसाल्पूदान आफ मुस्लिम मरिजज एक्ट में, इस्लामी विधि की धारणा को धराया रखते हुए, नारी को इसी अधिकार को और भी अधिक संपादित बनाया गया है।

मे भी नपुंसक बना रहना, पति का दो साल तक पागल रहना या काढ़ या गुप्त रोग (गर्मी मूजार्क) से पीड़ित रहना पंद्रह साल की आयु के पहले विवाह हो जाने पर वयस्क हान पर पत्नी द्वारा अपन विवाह को अस्वीकार करना¹, पति का पत्नी के साथ नशसता का व्यवहार करना² और अन्य कारण जो इस्लामी विधि के अंतर्गत विवाह विच्छेद का आधार बन सकते हैं। यदि पत्नी को इस आधार पर विवाह-विच्छेद करने की अनुमति मिलती है कि उसके पति का सात साल या उससे अधिक की कारावास की सजा हुई है तो अदालत की डिगरी इस आधार पर होगी कि पति का कारावास की सजा अंतिम रूप से हुई है और उसके बचने की सम्भावना नहीं है। यदि पति के लापता हान पर अदालत विवाह विच्छेद की डिगरी देती है तो वह डिगरी पास होने या तारीख में छ महीने बाद लागू होगी और यदि पति इस बीच मर जाता है तो डिगरी रद्द समझी जायगी। पति स्वयं जा सकता है या किसी अपन अधिकृत व्यक्ति का भ्रज सकता है। अदालत तभी डिगरी का रद्द करेगी जब उस पति की तीव्र ठीक पहचान का सत्यापन हो जाय। यदि पति की नपुंसकता का आधार पर पत्नी विवाह विच्छेद की मांग करती है और यदि पति पत्नी के दाव का झूठा साक्षित करने की माहत्त चाहता है तो अदालत उस एक सात का समय देगी और इस बीच में यदि पति अदालत का मतुष्ट कर देता है कि पत्नी का दावा झूठा है तो विवाह विच्छेद की डिगरी नहीं दी जायगी।

दि डिसान्यूशन आफ मुस्लिम मरिजेशन एक्ट से मुस्लिम विवाह में दो मुख्य परिवर्तन हुए हैं। इस एक्ट के पहले विवाहित पत्नियाँ के धर्म परिवर्तन करने से स्वतः विवाह विच्छेद हो जाता था। किन्तु आज धर्म परिवर्तन से विवाह विच्छेद नहीं होता है बरन विवाह विच्छेद का आधार उत्पन्न होता है। पति, ऐसी दशा में, पत्नी का आश्रय ले सकता है। इस एक्ट के पहले जवयस्क वया का वयस्क हान

- 1 इस आधार पर विवाह विच्छेद की तभी डिगरी मिल सकती है जब विवाह के बाद सम्भोग न हुआ हो।
- 2 पति की पत्नी को पीटन की आदत पति का निन्दय आचरण, पति का बदनाम नारियों के साथ सहवास या बदनामी का जीवन व्यतीत करना पति का पत्नी को अनतिक जीवन अपनाने के लिये बाध्य करना, पति का अपनी जायदाद बचना या अपनी जायदाद पर पत्नी के वय अधिकारों का हनन करना, पति का पत्नी की मजहबी आस्थाओं और त्रियाओं में खलल डालना और एक से अधिक पत्नियाँ होने पर, कुरान का आज्ञा के अनुसार, पति का पत्नी से समानता का व्यवहार न करना, इस एक्ट के अनुसार, नशसत व्यवहार की शर्तों में जात है और पत्नी के अनुरोध पर, यदि अदालत से तुष्ट हो तो, विवाह विच्छेद का आधार बन सकते हैं।

पर अपा अभिभावक द्वारा सम्पन्न किए हुए विवाह में तलाक का अधिकार न था। किंतु, इस एक्ट के अंतर्गत अवयस्क बच्चा वधुत्वक हान पर तलाक द सकती है बगले कि वह यह सिद्ध कर सक कि उसक साथ पति ने सम्भोग नहीं किया है उसका विवाह अभिभावक न पढ़े साए क पढ़े ही कर दिया था और अठारह वष की आयु पूरा हान क पढ़े ही उसन विवाह का अस्वीकार कर दिया था। इस प्रकार मारोपीय प्रभाव म मुस्लिम नारी का तलाक का सीमित अधिकार निम्न ह।

४

संयुक्त परिवार

समाजशास्त्रिया और मानवशास्त्रिया न इस संसार म पाए जात बाल पति वारो का वर्गीकरण करत हुए मुख्यत दो प्रकार की परिवार-श्रेणिया निर्धारित की है यद्यपि उनक लिए अलग अलग नामों का प्रयोग किया गया ह। बर्गोन (Burgess) के वर्गीकरण क अनुसार परिवार क दो प्रकार ह—एक संस्थापिक प्रकार (The Institutional Type) और दूसरा, साहचर्य प्रकार (The Companionship Type)। पहला प्रकार वह प्रकार है जो प्राचीन समाज म पाया जाता था और अबाचीन समय में उन समाज म पाया जाता है जा पारंपरिक औद्योगिक सभ्यता के व्यापक प्रभाव के बाहर ह। यह वह प्रकार है जिसम बड़े पौन्धिया क परिवार एक साथ रहत है, जिनम विवाह का आधार घम है, जिनम तलाक का अनुचित माना जाता है, जिनम परिवार क व्यावहिक व्यवसाय व्यावहिक पुरुषा का प्रभुत्व रहता है, जिनम व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा परिवार की ही सामाजिक प्रतिष्ठा पर निर्भर करती है जिसम सम्मिलित सम्पत्ति, सम्मिलित आय सम्मिलित वामस्थान और सम्मिलित उत्साहन की भावना का प्राधान्य रहता है और जा अपन सामाजिक आर्थिक पक्ष म उत्पादन उपभाग की एक सुगठित स्वाद होता है। साहचर्य प्रकार म परिवार का संस्थापक संगठन (Kin Organization) का व्यापक प्रभाव पति-पत्नी और उनकी सन्तान तक ही सीमित रहता है जिनम पति-पत्नी क सम्बन्ध म, पति पत्नी की प्रभुता के स्थान पर, साहचर्य का भाव अधिक रहता है, जिनम विवाह पर धार्मिक अवशुद्धन नहीं रहता है और जा अपन आर्थिक सामाजिक पक्ष म केवल उपभाग की ही स्वाद है। बर्गोन क अनुसार, औद्योगिक और शहरीकरण न संस्थापिक परिवार का साहचर्य-परिवार म परिवर्तन किया है। मानवशास्त्रियों ने भी परिवार प्रकारों का दो श्रेणिया म रचना है—एक श्रेणी म उद्योग रचना है उन परिवार का जा एक विवाह पर आधारित है जा पति-पत्नी मत्तन क कल्प (Pattern) म बनता है और जा वस्तुतः गवकतिक और सावभौमिक प्राथमिक परिवार है। दूसरी श्रेणी म उद्योग रचना है उन परिवार प्रकारों का जा प्राथमिक

परिवार के विस्तार से बन्त हैं। दूसरी श्रेणी में बहुपत्नीत्व और बहुपतित्व पर आधारित परिवारों के अतिरिक्त व अत्यंत सभी प्रकार के परिवार आते हैं जिसमें कई भाषमिक परिवार कई एकवशी पीढ़ियों के माध्यम से, एक विस्तृत परिवार में बंधे रहते हैं। इसी कारण दूसरी श्रेणी के परिवारों का विस्तृत परिवार की मना दी गयी है। समाजशास्त्रियों तथा मानवशास्त्रियों ने अलग-अलग वर्गीकरण अवश्य किए हैं किंतु उनके द्वारा निर्धारित श्रेणियां वस्तुतः समान हैं। संस्थागत प्रकार और विस्तृत प्रकार में काफी साम्य है यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि परिवार की गत्यात्मकता केवल संस्थागत प्रकार से साहचर्य प्रकार में परिणत होने की आरंभ रही है क्योंकि विभिन्न सामाजिक सदस्यों में समान परिवर्तनकारी शक्तियां परिवर्तन की एक ही गति और दिशा का जन्म नहीं देती हैं।

अपने आधारभूत तथा अखिल भारतीय रूप में भारतीय परिवार सामान्यतः समुक्त परिवार है। समुक्त परिवार के रूप में भारतीय परिवार उन परिवार प्रकारों की श्रेणी में आता है जिन्हें संस्थागत और विस्तृत परिवार कहा गया है। ग्राम जाति और गणजाति के साथ समुक्त परिवार भारतीय सामाजिक जीवन की आत्मा में ध्याप्त सा रहा है। भारतीय सामाजिक जीवन में समुक्त परिवार के प्रमाण उस समय से मिलते हैं जब से भारतीय सामाजिक इतिहास के लिखित प्रमाण मिलते हैं। महाभारत के युद्ध के समय (जिसका काल ईसा के लगभग एक हजार वर्ष पूर्व माना जाता है) समुक्त परिवार उसी प्रकार से भारतीय जीवन का एक अंग था जमाति वह आज है। भारत की इस प्राचीन संस्था की संरचना न तो मुस्लिम शासन से बदली और न अंग्रेजी शासन से। हा यह अवश्य है कि औद्योगिक ज्ञान्ति तथा वैज्ञानिक प्रौद्योगिकी के प्रभाव समुक्त परिवार की संरचना में प्रबिष्ट हुए हैं, जिनके कारण भारत में पश्चिमी प्रकार के परिवार के कुछ उत्थाहरण मिल जाते हैं। भारतीय जनता का एक बड़ा भाग अब भी समुक्त परिवार प्रणाली की परम्परा से चिपका हुआ है¹। इस कारण से यह निष्कर्ष निकलता है कि पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव में भारतीय परिवार में परिवर्तन अवश्य आए हैं किंतु उसका आधारभूत रूप अब भी बसा हुआ है। इस परिवर्तन प्रक्रिया का समझन के लिए भारत में समुक्त परिवार के प्रकारों उनके स्वरूप काय और परिवर्तित रूप के समझना आवश्यक है। भारत में समुक्त परिवार के कई रूप पाए जाते हैं जिनमें में कुछ पितृमत्तात्मक और पितृवर्गी हैं और कुछ मातृमत्तात्मक तथा मातृवर्गी। पितृ मताक्षर सत्तात्मक पितृवर्गी परिवारों में मुख्य है मताक्षर दायभाग, दायभाग सत्त परिवार पत्न्य और आका। मताक्षर और दायभाग यस्तुन व समुक्त परिवार प्रणालियां हैं जिनका निरूपण स्मृतिवारी

ने ग्यारहवीं शताब्दी से लेकर पंद्रहवीं शताब्दी के मध्य तक किया है और अंग्रेजी राज काल में जिन्हें बधानिक आचार प्रदान किया गया है। याज्ञवल्क्य स्मृति पर विनानेश्वर द्वारा लिखित टीका मिताक्षरा प्रणाली का आधार है और दायभाग आधारित है जो मृतवाहन द्वारा लिखित अनेक महिमाओं के सार सप्तह पर। दायभाग प्रणाली बंगाल और आसाम की पारिवारिक परम्पराओं में समाधी हुयी है और मिताक्षरा प्रणाली शेष भारत की पारिवारिक परम्पराओं में। किन्तु साथ ही साथ स्मृतिकारों तथा आधुनिक विधि के निर्माताओं ने स्थानीय व्यावहारिक प्रथाओं का भी वाछनीय अपवाद मान लिया है। इसी कारण इन प्रणालियों के साथ-साथ अन्य व्यावहारिक प्रणालियाँ भी पायी जाती हैं। मिताक्षरा और दायभाग व प्रणालियाँ हैं जो हिन्दू गाम्ब्यकारों के प्रतिपादनों के पत्रस्वरूप विकसित हुयी हैं।

ये दोनों प्रणालियाँ पितृसत्तात्मक और पितृवशी हैं। इनमें निहित परिवार संगठन की धारणा में कई पीढियाँ आती हैं और परिवार की धारणा द्विपक्षीय सम्बन्ध वृत्त (Bilateral Kin Group) पर आधारित है। इन दोनों प्रणालियों में परिवार के दयोबद्ध व्यक्ति का 'कर्ता' का स्थान दिया गया है। कर्ता दयोबद्ध पीढी का अधिकतम दयोबद्ध पुरुष होगा और परिवार में सबसे कम आयु वाला पीढी के सदस्यों के समूह में वह याता उनका पिता हो सकता है (यह तब होगा जब परिवार में दो ही पीढियाँ हों) या पितामह हो सकता है (यह तब होगा जब परिवार में तीन पीढियाँ हों) या यदि परिवार में केवल एक ही पीढी के व्यक्ति हैं तो वह अथवा सम्पत्ति का ज्येष्ठ भाई हो सकता है। इन दोनों प्रणालियों में कर्ता को सर्वोपरि स्थान मिला हुआ है। किन्तु मिताक्षरा प्रणाली में कर्ता उतना सबल और सक्रिय नहीं है जितना कि वह दायभाग प्रणाली में है। क्योंकि मिताक्षरा प्रणाली में कर्ता का पैनक सम्पत्ति का मनमाने ढंग में खर्च करने का अधिकार नहीं है और कर्ता के जीवन काल में ही परिवार का कोई सदस्य अपने सहभाग का लेकर परिवार से अलग हो सकता है। दायभाग प्रणाली में, कर्ता के जीवन-काल में पारिवारिक सम्पत्ति का बंटवारा नहीं हो सकता है। अतः पतक सम्पत्ति कर्ता की पारिवारिक सम्पत्ति में मिल जाती है और वह उसका उसी प्रकार में स्वामी हो जाता है जस कि वह अपनी सम्पत्ति का है। दायभाग प्रणाली में 'कर्ता' का मृत्यु के पश्चात् क्रमागताधिकार नियम के अनुसार उसके सभी पुत्र उसकी सम्पत्ति के अधिकारी होते हैं और तब वह चाहे तो सम्पत्ति का बंटवारा भी कर सकते हैं। दोनों प्रणालियों में व्यक्ति का परिवार में जन्मजात अधिकार माना गया है किन्तु अन्तर है तो बहुत बड़ा कि दायभाग प्रणाली में व्यक्ति अपने उम्र जन्मजात अधिकार की माँग कर्ता के जीवन काल में नहीं कर सकता है। मिताक्षरा प्रणाली में उत्तराधिकार चयनता है जो कि उम्र उत्तराधिकार (Survivorship Succession) के नियमानुसार जिसके आधार पर, कर्ता की मृत्यु के बाद, उसके लड़के, पात्र नहीं, भाई और भतीजे समूह, उसकी सम्पत्ति के अधिकारी होते हैं। इन दोनों प्रणालियों में, परि

वार म रहने और भरण पोषण का अधिकार जन्मजात है और कोई भी 'क्ता किसी भी सम्पत्ति के उस अधिकार का जन्मीकार नहीं कर सकता है। इन दोनों प्रणालियों में, विशेषतः मिनाथरा प्रणाली में परिवार की धारणा वस्तुतः एक निगम (Corporation) की ही धारणा है जिसमें उसका सम्पत्ति का समान अधिकार रहता है।

स्वयं परिवार से तात्पर्य है उस परिवार में जो दहराहून जिन् की चरराता तहसील के जानमरानर म रदन वार और अतक वपतित्व उस परिवार (Fraternal Polyandry) की प्रथा का पालन करने वाले स्वस राजपूता म पाया जाता है। जौनसार-वावर भारत का वह भौगोलिक मासृतिक क्षेत्र है जो दहराहून जिन् के पहाड़ी क्षेत्र में यमुना और तीस नदियों के बीच में जाता है। इस क्षेत्र में ब्राह्मण राजपूत वाजगी और काल्टा इत्यादि जातियाँ पायी जाती हैं किन्तु इनमें राजपूता की संख्या सबसे अधिक है। यहाँ के राजपूत अपने को स्वस राजपूत कहते हैं और संविकारण डा० मजूमदार और कपाडिया ने यहाँ के परिवार प्रकार को स्वस परिवार की संज्ञा दी है जो वस्तुतः भ्रामक है। यहाँ बहुपति प्रथा की अधिकतम बारम्बारता (Frequency) राजपूता और ब्राह्मण में ही पायी जाती है। फिर भी यहाँ के परिवार प्रकार को स्वस-परिवार की संज्ञा देना सावधान और तर्कमगत नहीं है। इस प्रश्न में वह संयुक्त परिवार पाया जाता है जिसका एक आराम पितृवशी पितृसत्तारम्भकता है और दूसरा अतक बहुपतित्व तथा मातृवशी मातृसत्तारम्भकता।

जौनसार-वावर के परिवार प्रकार का समझने के लिए हम प्रश्न में पायी जाने वाली अतक बहुपतित्व की प्रथा का समझना आवश्यक है। यह निश्चित है कि मध्य एशिया में बहुपति प्रथा प्राचीन काल में पायी गई है और आज भी यह प्रथा हिमाचल प्रदेश के कुछ भागों में ब्राह्मण और तिब्बत में पायी जाती है। इसी आधार पर कुछ लेखकों ने यह मत प्रतिपादित किया है कि सम्भवतः आर्यों में बहुपतित्व की प्रथा थी। एही सम्भवतः एक मत यह भी है कि प्राचीनतम आर्यों की जातीय स्थितियों में पुत्रों के विनाश के कारण इस प्रथा में वृद्धि हुई कि बहुपति प्रथा पालन करता था। महाभारत में यह पता चलता है कि पांडवान मर्मिणि रूप में द्रौपदी का विवाह किया था। जब मर्मिणि रूप में पांडवों द्वारा द्रौपदी में विवाह करने पर युधिष्ठिर का मन नहीं माना तो युधिष्ठिर ने अपने इस कर्म का जावित्य मिट्ट करने के लिए यह कर्म था कि उन जिसे मान का अनुमरण किया गया वह उनका पुत्रता का मांग था। एक और यह प्रथा दर्शाता है कि पांडवों का पुत्र और दूसरी बार नीतिगिरि की पत्नी का रहना मालापाडा मर्मिणि के नाम और माला पांडव निजामी पांडवों में बहुपतित्व पाया गया है। नीतिगिरि और मालापांडवों की जायेंतर प्रथा है। डा० मजूमदार ने अतक इस प्रथा का अतक बहुपतित्व आर्यों की

1. सप्तमेना आर० एन० सोनू इवानोवी आक ए पालिपाइस पीपुल।

पितृवशी पितृसत्तात्मक और इस क्षेत्र की दण्डमानवर्गीमान-मनात्मक परिवार प्रथाओं के पारम्परिक मंत्रान और सामन्तस्य का परिणाम है। मरु अन्तर्क प्रमाण इस प्रथा की सन्धिति में पाये जाते हैं। एक ओर इस प्रथा में, परिवार में पुरुषों का प्रभुत्व है, स्त्री का न तो पिता के घर में सम्पत्ति का अधिकार है और न पति के घर में, स्त्री का पति के घर में कठिन परिश्रम करना पड़ता है स्त्री वन की धारणा एकदम अनुपस्थित है दरनाश का पूजा अनुष्ठान भी पुरुष ही करते हैं और, दूसरी ओर यह विश्वास है कि स्त्रियाँ पति या पुत्रों का सुख से विषय होती हैं और अपने पिता के घर में नाग का रामाटिक और धार्मिक निवृत्तता का जादू अपनाएँ का विवेकाधिकार भी मिले हुआ है। नारी के दो रूप हैं—एक गण्ठी अथवा पत्नी का जा नटिया परिश्रम और पुरुष की दाम्पत्य का जीवन है और दूसरा 'दाण्टी अथवा ध्यान' का जा एक रूमाना हाम परिहास का जीवन है। पत्नी जीवन समुदाय से सम्बन्धित है और दूसरा मायके में। यहाँ के रूमाना लाकगीता में इसकी पुष्टि होती है।

इस प्रथा की बहुपति प्रथा का एक ओर पक्ष है। एक ओर यह प्रदेश पहाड़ी होने के कारण कठिन कृषि कार्य का प्रयोग है, यहाँ भूमि की कमी है, कृषि कार्य में मानव श्रम (Human Labour) की आवश्यकता रहती है और इसी कारण, जो पुरुष परिवार में अस्तित्व होता है वह आवश्यक मानव श्रम एकत्र करने के लिए, बहुपत्नित्व का आशय रखता है और दूसरी ओर इस प्रदेश में स्त्री पुरुषों के अनुपात में स्त्रियों की कमी है। ऐसा लगता है कि जोनसार-वावर का स्थानीय भौगोलिक आर्थिक परिस्थितियों में मजदूर परिवार एक आधारभूत सामाजिक आवश्यकता है जिसके एक स्वरूप, स्त्रियों की कमी के कारण इस क्षेत्र के समूह परिवार में यहाँ की ऐतिहासिक परिस्थितियों में भगत बहुपत्नित्व की प्रथा का अभ्युदय हुआ है। इस कथन का सबसे बड़ा प्रमाण यह तथ्य है कि निम्नजाति के समूहों की अपेक्षा, उच्चजाति के समूहों में, जिनमें राजपूत और ब्राह्मण आते हैं बहुपत्नित्व धारण बड़े बड़े परिवार अधिक पाये जाते हैं। यहाँ की कृषिमाय्य भूमि का अधिकतम भाग राजपूतों और ब्राह्मणों के स्वामित्व में है और उनमें परिवार विभाजन का अर्थ होगा भूमि का बंट-बाग और यदि पत्नी दर पीती परिवार बंटता चला गया तो इसका अर्थ होगा एक ऐसी स्थिति का जाना जहाँ परिवार का आर्थिक आधार ही समाप्त हो जायगा इससे विपरीत निम्नजाति का जातिव्यवस्था में, जिनमें बाल्टा मुख्य हैं न तो परिवार ही बड़े बड़े और न उनमें परिवार का समूह बनने में उत्पन्न की यह भावना है जो उच्चजाति के पास, विपत्तियों राजपूतों में पाई जाती है। यहाँ के लाकगीता में सामन्त-द्वारा नारी पत्नी, ननद बीबाई तथा भाई भाई के सपनों और तनाव से सम्बन्धित विषय वस्तु का वर्णन नारी के चरित्र है। जो स्त्री भाग्यो में वसन्तस्य या बटवाग लान का प्रयास करती है तब अन्तर तलाश दे दिया जाता है। यहाँ की नारी नाच ही नहीं सकती है कि वस एक पति उसकी सारा आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकता है।

जोनमारी परिवार पूणत पितृसत्तात्मक और पितृवादी है। कर्ता परिवार की वयावृद्ध पुरुष पीढ़ी का वयावृद्ध पुरुष होता है और बाल विवाह प्रथा के कारण एक साथ तीन पीढ़ियों का पाया जाना साधारण बात है। कर्ता का स्थान सर्वोपरि है और वही परिवार का मंचालक है। वयावृद्ध पुरुष पीढ़ी का वयावृद्ध पुरुष बहुधा उस पीढ़ी के पुरुष का ज्येष्ठ भाई होता है। यहां के परिवारों में ज्येष्ठ भाई को ही उच्चतम स्थान मिला हुआ है। परिवार के सभी विषयों में, उसका मत सर्वोच्च माना जाता है। वही एक या एक से अधिक स्त्रियों में विवाह करता है और जिस स्त्री या जिन स्त्रियों में वह विवाह करता है वही स्त्री या वे स्त्रियां उसका भाइया की पत्नी या पत्नियां हो जाती हैं। स्त्री के साथ सहवास में भी बड़े भाई का प्राथमिकता मिलती है और इस प्रथा से समस्या इसलिए नहीं उत्पन्न होती है कि यहाँ स्त्री जैसा कि पहले कहा जा चुका है नतिकता के दृष्टि से मापदण्ड (Double Standard of Morality) का पालन करती है। घ्याष्टी के रूप में अपने पिता के गांव में वह अपनी इच्छानुसार गांव के उन तरुणों के साथ जा उसकी स्थिर सम्बंधों की सीमा में नहीं रहती है। यौन-सम्बंध स्थापित कर सकती है। जो पुरुष जितना ही तरुण होता है उसके लिए सम्मानोपन के जीवन की उतनी ही गुनाइंग रहती है। यहां के सामाजिक जीवन में यौन-सम्बंध और लोचन-सम्बंध हैं जब तरुण स्त्रियां अपने मायके चली जाती हैं और वहां महीना रहती हैं। सम्मिलित स्त्रियां से उत्पन्न सन्तान भी सम्मिलित समझी जाती है। जत, सन्तान का स्वर उठने वाले वयस्क का भी यहां के पारिवारिक सम्बंधों में अभाव है। यहां की पारिवारिक अर्थशास्त्र में परिवार विभाजन अवाञ्छित समझा जाता है। भानूक वधुपतिव और उनमें निहित लेविट विवाह (Levirate Marriage) के कारण स्त्री के लिए वधु का प्रश्न ही नहीं उठता है और यदि कोई कर्ता के मरने पर उसके छोटे भाई के साथ नहीं रहना चाहती है तो वह तलाक देकर दूसरी जगह अपना विवाह कर लेती है।

कर्ता परिवार का स्वामी अवश्य है किन्तु वह निरंकुश नहीं है क्योंकि एक आर परिवार में जन्मे पुरुषों अविवाहित स्त्रियों और परिवार की विधवा भयवा पत्नियों का भरण पोषण पान का अधिकार है और दूसरी ओर यदि कर्ता की पीढ़ी के सहभागी सर्व-सम्पत्ति से चाहें तो परिवार का बटवारा हो सकता है। यहां बटवारा न तो मिताशरी प्रणाली के अनुसार होता है और न दायभाग प्रणाली के अनुसार ही। यहां बटवारा होता है मौतिया-बाट की प्रथा के अनुसार। इस प्रथा के अनुसार यदि कर्ता का पांच भाई हैं और उनमें से तीन एक मा की सन्तान हैं और दो दूसरी मा की तो परिवार की सम्पत्ति जिसमें उन पांच पुरुषों की सम्मिलित स्त्रियां भी शामिल हैं दो बराबर बराबर हिस्सा में बंट जायगी। उनमें न एक हिस्सा उन दो पुरुषों को मिलेगा जो एक स्त्री की सन्तान हैं और दूसरा उन तीन पुरुषों का जो दूसरी मा की सन्तान हैं। इस प्रकार

यहाँ एक सयुक्त परिवार बटवारा होने पर कई सयुक्त परिवारों में बट जाता है। महा जीवित गण उत्तराधिकार नियम (The Rule of Survivorship Succession) और परिवार में जन्मजात हित्ताधिकार का नियम, एक ओर, पितृवशी नभान्गताधिकार नियम और, दूसरी ओर, मातृवशी परम्पराओं में समाया हुआ है। किन्तु, फिर भी, पारिवारिक अविभाज्यता का आदर्श और आवश्यकता यहाँ के पारिवारिक जीवन का एक अभिन्न अंग है।

प्राक्मर एम० एन० श्रीनिवास के अध्ययन के अनुसार, कुग निवासियों में, जो पितृवशी (Patrilineal) और पितृस्थानी (Patrilocal) सयुक्त-ओक्का परिवार पाया जाता है उस स्थानीय भाषा में ओक्का (Okka) कहते हैं। कुग समाज में जो व्यक्ति किसी आक्का से सम्बन्धित नहीं होता है उसका कोई सामाजिक अस्तित्व ही नहीं है। अवध विवाह से सम्बन्धित सन्तान के लिए यह आवश्यक होता है और उससे यह ज्ञाता भी की जाती है, कि वह अपनी मा या पिता के ओक्का की सदस्यता प्राप्त कर ले। समाज के विशेषज्ञ पुरुष इस दिशा में उसकी सहायता भी करते हैं। पहले, एक ओक्का में एक ही पितृवशी से सम्बन्धित पुरुषों के लड़के साथ साथ जानवर चरान से चिड़िया कागिकार करते थे और खेलते थे तथा वयस्क होने पर आक्का के मुखिया के नेतृत्व में साथ-साथ पैतृक जायदान की देखभाल और उसका उपयोग करते थे क्योंकि पहले ओक्का की स्थिर पैतृक सम्पत्ति अविभाज्य समझी जाती थी। किन्तु, आज आक्का की सम्पत्ति अविभाज्य नहीं मानी जाती है। फिर भी पतक गृह और जायगद पवित्र माने जाते हैं और, आज भी विवाह और अत्यष्टि क्रिया जैसे सामाजिक कृत्या का पैतृक गृह में सम्पन्न करना शुभ माना जाता है। आज भी, कावरी स्थान जैसे वापिक स्थापना के अवसर पर, एक ओक्का के सदस्य एक साथ एकत्र होते हैं।

विवाह के बाद स्त्रियाँ अपने पैतृक आक्का को छोड़ कर, पति के ओक्का की सम्पत्ति में आ जाती हैं, किन्तु, फिर भी विधवा अथवा परित्यक्ता होने पर, उन्हें अपने पतक ओक्का में गरण मिलती है। यदि कोई स्त्री किसी निम्नजाति के सदस्य में यौन-सम्बन्ध स्थापित कर ले तो उसे पतक ओक्का में गरण नहीं मिलती है। एक ओक्का के सदस्य एक साथ रहते हैं और सहकारिता से कार्य करते हैं। आक्का, धन्तुत काल के दौरान में निहित एक सन्तति (Continuum) है और किसी भी समय विशेष में उनमें पाये जाने वाले व्यक्ति बदलते उस सन्तति पर दिशुमाय हैं। आक्का की अनेक स्थानीय कारणों से सन्तति का रूप मिलता रहा है। इनमें सवसा प्रधान कारण रहे हैं भू-सम्पत्ति और स्थानीय दाम प्रथा। प्रत्येक ओक्का का मुख्य आधार है पतक भू-सम्पत्ति और प्रत्येक आक्का में निम्नजाति के सदस्य वन ही दाम के समान काम करते रहे हैं जैसे उस परिवार में कोला। आक्का का पवित्र मान

जौनसारी परिवार पूणत पितृभक्तात्मक और पितृवशी है। कर्ता परिवार की वयावद्ध पुंय पीढी का वयोवद्ध पुरुष होता है और बाल विवाह प्रथा व कारण एक साथ तीन पीढियों का पाया जाना साधारण बात है। कर्ता का स्थान सर्वोपरि है और यही परिवार का संचालक है। वयावद्ध पुंय पीढी का वयावद्ध पुरुष बहुधा उस पीढी के पुंय का ज्येष्ठ भाई होता है। यहाँ के परिवारों में ज्येष्ठ भाई को ही उच्चतम स्थान मिला हुआ है। परिवार के सभी विषयों में, उसका मत सर्वोच्च माना जाता है। वही एक या एक से अधिक स्त्री में विवाह करता है और जिस स्त्री या जिन स्त्रियों से वह विवाह करता है वही स्त्री या वे स्त्रियाँ उसके भाइयों की पत्नी या पत्नियाँ हो जाती हैं। स्त्री के साथ सहवास में भी बड़े भाई को प्राथमिकता मिलती है और इस प्रथा से समस्या इसलिए नहीं उत्पन्न होती है कि यहाँ स्त्री जमा कि पहले कहा जा चुका है, नैतिकता के दोहरा मापदण्ड (Double Standard of Morality) का पालन करती है। ध्याष्टी के रूप में अपने पिता के गाँव में वह अपनी इच्छानुसार गाँव के उन तरुणों के साथ, जो उसकी स्थिर सम्बन्धी सीमा में नहीं आते हैं यौन सम्बन्ध स्थापित कर सकती है। जो पुरुष जितना ही तरुण होता है, उसके लिए रुमानोपन के जीवन की उत्तनी ही गुंजाइश रहती है। यहाँ के सामाजिक जीवन में अनक एम पब और त्यौहार आते हैं जब तरुण स्त्रियाँ अपने मायके चली जाती हैं और वहाँ महीना रहती हैं। सम्मिलित स्त्रियों से उत्पन्न सन्तान भी सम्मिलित सभी जाती है। जत, सन्तान को लेकर उठने वाले बहसों का भी यहाँ के पारिवारिक सम्बन्धों में अभाव है। यहाँ की पारिवारिक अर्थात् परिवार विभाजन अवाञ्छनीय समझा जाता है। भातक बहुपतित्व और उम निहित त्रिविध विवाह (Loveratic Marriage) के कारण स्त्री के लिए बधय का प्रश्न ही नहीं उठता है और यदि बाद में स्त्री बना के मरण पर उसके छोटे भाई के साथ नहीं रहना चाहती है तो वह तलाक देकर दूसरी जगह अपना विवाह कर लेता है।

कर्ता परिवार का स्थायी अवयव है कि तु वह निरकुण नहीं है क्योंकि एक आर, परिवार में जत पुंयों के अविवाहित लड़कियों और परिवार की विधवा भयवा पत्नियों का भरण पोषण पान का अधिकार है और दूसरी जगह यदि कर्ता की पीढी के सहायोगी सब सम्मति में चाहता परिवार का बटवारा हा सकता है। यहाँ बटवारा न तो मितागरी प्रणाली के अनुसार होता है और न दायभाग प्रणाली के अनुसार ही। यहाँ बटवारा होता है सीधिया बाट की प्रथा के अनुसार। इस प्रथा के अनुसार यदि कर्ता की पीढी में पाँच भाई हैं और उनमें से तीन एक मा की सन्तान हैं और दो दूसरी मा की तो परिवार की सम्मति, जिसमें उन पाँच पुंयों की सम्मिलित स्त्रियाँ भी शामिल हैं दो बराबर बराबर हिस्सा में बट जायगा। उम से एक हिस्सा उन मा पुंयों का मिलगा जो एक स्त्री की सन्तान हैं और दूसरा उन तीन पुंयों का जो दो दूसरी मा की सन्तान हैं। इस प्रकार,

यहाँ एक समुक्त परिवार बटवारा होन पर, कई समुक्त परिवारो मे बट जाता है । यहाँ जीवन श्रम उत्तराधिकार नियम (The Rule of Survivorship Succession) और परिवार मे जन्मजात हिताधिकार का नियम एक ओर पितृवशी प्रयागताधिकार नियम और दूसरी ओर मानवशी परम्पराओ मे समाया हुआ है । किन्तु फिर भी पारिवारिक अविभाज्यता का आदर्श और आवश्यकता यहाँ के पारिवारिक जीवन का एक अविनश्यमान तत्त्व है ।

प्राफेसर एम० एन० श्रीनिवास के अध्ययन के अनुसार, कुछ निवासियों मे, जो पितृणी (Patrilineal) और पितृस्थानी (Patrilocal) समुक्त-ओक्का परिवार पाया जाता है उस स्थानीय भाषा मे ओक्का (Okka) कृत है । कुछ समाज मे, जो व्यक्ति किसी ओक्का से सम्बन्धित नहीं होता है, उसका कोई सामाजिक अस्तित्व ही नहीं है । अल्प विवाह से उत्पन्न सन्तान के लिए यह आवश्यक होता है, और उमम यह आशा भी की जाती है, कि वह अपनी माँ या पिता के ओक्का की सदस्यता प्राप्त कर ल । समाज के व्यापक पुत्र्य इस दिशा मे उसकी सहायता भी कृत है । पहले, एक ओक्का मे एक ही पितृवश से सम्बन्धित पुत्र्य के लड़के साथ साथ जानकर चलाते थे, चिन्मिया का गिकार करते थे और चलते थे तथा बसके होने पर आक्का के मुखिया के नतत्व मे साथ साथ पैतृक जायदाद की देख बाल और उसका उपयोग करने मे क्योंकि पहले ओक्का की स्थिर पतक सम्पत्ति अविभाज्य समझी जाती थी । किन्तु आज ओक्का की सम्पत्ति अविभाज्य नहीं मानी जाती है । फिर भी पतक गृह और जायदाद पवित्र मान जान है और, आज भी विवाह और अल्पकिया जस सामाजिक कृत्यों को पतक गृह मे सम्पन्न करना शुभ माना जाता है । आज भी, बावरी स्नान जम बापिक त्याहारो के अवसर पर, एक ओक्का के सदस्य एक साथ एकत्र हान है ।

विवाह के बाद स्त्रियाँ अपने पतक ओक्का को छोड़ कर पति के ओक्का की सदस्य हा जाती हैं, किन्तु, फिर भी विधवा अथवा परित्यक्ता हान पर, उन्हें अपने पतक ओक्का मे शरण मिलती है । यदि कोई स्त्री किसी निम्नजाति के सदस्य से यौन-सम्बन्ध स्थापित करे तो उसे पतक ओक्का मे शरण नहीं मिलती है । एक ओक्का के सदस्य एक साथ रहते हैं और सहकारिता से कार्य करते हैं । ओक्का, वस्तुतः बाल के निरन्तर मे निहित एक सन्तति (Continuum) है और किसी भी समय विनाश मे उतम पाये जाने वाले व्यक्ति केवल उन सन्तति पर विद्यमान है । ओक्का का, अन्तः स्थानाय वारणा से सन्तति का रूप मिलता रहा है । इनमे सबसे प्रधान वारक रहे हैं नू-सम्पत्ति और स्थानीय दाम प्रया । प्रत्येक ओक्का का मुख्य आधार है पतक मे सम्पत्ति और प्रत्येक ओक्का में निम्नजाति के सम्म वन ही दास के समान काम करते रहे हैं जस सत्त परिवार मे काता । ओक्का का पवित्र मान

वर उसे जविभाज्य रखने की सामाजिक भावना दूसरा कारण है। जावका का जविभाज्य जीर स्थायी रखने के लिए दा सरचनात्मक साधना का आश्रय लिया गया है। लेविरेट विवाह (Levirate Unions) के द्वारा मातृ पुरुष की विधाता जीर उसका म तान को छावका ही म रखने का विधान किया गया है और मा क भाई की कया (मातुल कया) और बिना की बहिन की कया से विवाह का प्राथमिकता देकर, एक ओर जावका न सगठन का मजबूत बरन का विधान किया गया है और, दूसरी ओर मास बहू म स्वभावत उत्प न होने वाले तनाव को रोकने का प्रयत्न। काम कजिन भरिज क कारण पति पत्नी म सामञ्जस्य की सम्भावना बट जाती है कयाकि काम कजिन (Cross Cousins) एक दूसरे स चचपन स नी परिचित हान ह। इस विवाह प्रकार म जा आज भाई की या पति की बहिन की कया है वह एक भावी बहू भी है। अतः, इस विवाह प्रकार क द्वारा साम बहू क सम्ब धा का अधिक सामञ्जस्य मिलता है और उससे आवका को अधिक स्थायित्व और सगठन मिलता है। ओवका म व्याह कर जान वाली स्त्रिया अलग अलग घरों से आती हैं और पुरुषों की अपेक्षा स्त्रिया क सम्बन्धों म सामञ्जस्य की अधिक आवश्यकता है¹। प्रत्येक जावका म एक दवस्थान (नात) हाता है जहाँ एक छोटे म चमूतर पर नाग र्वता के प्रतीक कुछ पत्थर रखे रहते हैं। यह दवस्थान आवका की एकता का प्रतीक है²।

मालावार निवासी नम्बूद्री ब्राह्मणा म जो परिवार प्रकार पाया जाता है उमे स्थानीय भाषा मे इल्लम की सना दी जाती है। इल्लम भी एक पितृवगी इल्लम (Patrilineal) पितृसत्तात्मक (Patriarchal) जीर पितृस्थानी (Patrilocal) समुक्त परिवार है। अनेक सरचनात्मक साधना और प्रयास क माध्यम म इल्लम का समुक्त बनाये रखने की प्रवृत्ति रही है। इल्लम भी, कथानिज तथा सामाजिक ऋटिकरण स एक निःसमुक्त परिवार है किन्तु मिताभरा और दाय भाग प्रगागिया स बट दा बाता म भि न है—एक मिताभरा और दायभाग की अपेक्षा इल्लम अधिक जविभाज्य और स्वाया है और दूसरे इल्लम म स्त्री का अपभारण अधिक अधिकार भि न हुआ है। बट कारणों म एक साथ इल्लम की जविभाज्यता को प्रागाहन किया है। मिताभरा और दायभाग परिवार की भाति

1 स्त्रियों क सम्बन्धों म सामञ्जस्य ओरका की एक आधारभूत आवश्यकता है। आवका की एकता स्त्रियों क ही कारण गट्ट हासकती है। कुल की एक स्थानीय बहायत क अनुसार, 'एक हजार मछे एक साथ रह सकती ह किन्तु धार रतन (Broths) नहीं'।

2 धीनिदात ए० ए० रिलीजन एण्ड सोसायटी एमाग दि कुमस आर साउथ ऋटिया अध्याय 5

इस्लाम में भी ब्यावद्ध पुरुष पीढ़ी का बयोवद्ध यशिन परिवार का कता हाना है जिस परिवार के जय सदस्यों को भरखा पापण का अधिकार मिला हुआ है। बिना सभी सदस्यों की सबसम्मति के, कर्ता न तो परिवार की सम्पत्ति या उसके किसी अंग का बेच सकता है और न गिरवी रख सकता है। इस्लाम का किसी सदस्य को कण का भार उमकी सतान पर न पड़ कर इस्लाम पर सम्मिलित रूप से पड़ता है जिससे इस्लाम की मयुक्तता को प्रोत्साहन मिला है।

नम्बूद्री विवाह प्रणाली इस्लाम की सयुक्तता का एक मुख्य आधार रही है। नम्बूद्रीया के परिवार में एक पीढ़ी के भाइयों में बचल बड़े भाई का ही नम्बूद्री लड़की में विवाह करने की अनुमति रही है और गण भाइया का नायरा में। नायरा मातवशी (Matrimonial) मातसत्तात्मक (Matriarchal) और मातस्थानी (Matrilocal) रहे हैं। उनमें विवाह के पश्चात् स्त्री अपने पति के घर न जाकर अपनी मा के ही घर में रहती है। अतः इस्लाम में उत्तराधिकार की समस्या उनकी जटिल नहीं रही है जिनकी कि मिलागरा प्रणाली में रही है ब्याकि इस्लाम में केवल कर्ता की ही सत्तान रहती है और उसमें भी ज्येष्ठ भाई ही उत्तराधिकार का अधिकारी रहता है। अनेक भाइया की पत्निया और उनकी सत्ताना के कारण जो ब्यक्तिगत स्थाय उत्पन्न हाकर परिवार की सयुक्तता को नष्ट करत है उनका इस्लाम में कम सम्भावना रहती है। जीवनसारी परिवार में, मातवशी और पितवशी परम्परा का सम्मिलन हुआ है किन्तु इस्लाम मातवशी और मातसत्तात्मक सामाजिक पष्ठभूमि में एक विशिष्ट पितृवशी और पितसत्तात्मक परिवार प्रणाली है। जीवनसारी की परिस्थितियों में प्राप्त बहुपतित्व और स्त्री नतिकता के दोहर मापदण्ड (Double Standard of Morality for Woman) न परिवार की सयुक्तता में बाधगान दिया है ता, मालाधार में, नम्बूद्री नादर विवाह प्रणाली न इस्लाम की सयुक्त रहन में सहायता दो है।

इस्लाम में जसा पहले कहा जा चुका है कर्ता पारिवारिक सम्पत्ति को न बेच सकता है और न बंधक रख सकता है और यदि वह ऐसा करता है तो पनी उसका अंग काय को बानूनन रण कर सकती है और उन प्रबंधक के पद में भी हटावा सकती है। किन्तु यदि परिवार में विधवा के अतिरिक्त अंग काई पुष्प-सम्पत्ति आवित न बचता विधवा को परिवार की सम्पत्ति बचने या गिरवी रखने का अधिकार है। निस्सत्तान विधवा का शोध लेने का अधिकार है। सवस्वगानम की प्रथा के अंतगार, नम्बूद्री विधवा किसी भी नम्बूद्री का सम्पत्ति पर विधान सम्पत्ति करवा सकता है कि उसमें उत्पन्न पुत्र उसमें इस्लाम का अधिकारी और प्रबंधक होगा। सवस्वगानम वस्तुतः, दत्त पुत्र स्तन का एक धर्म रूप है। कुछ भी ही इस्लाम में स्त्री के अधिकारों ने इस्लाम की अविभाज्यता और सयुक्तता का प्रासाहन दिया है।

पितृवशा और पितृसत्तात्मक समुक्त परिवार प्रकारों के साथ-साथ भारत में मातृवशी और मातृसत्तात्मक समुक्त परिवार प्रकार भी पाये गये हैं। जैसा कि लगभग सारे मसालों में पाया गया है भारत में भी मातृवशी-समुक्त परिवार मातृसत्तात्मक परिवारों के साथ मातृस्थानी (Matrilocal) प्रथा पायी गयी है, जिसके अनुसार विवाह के बाद स्त्री को अपने पिता या माता के घर में रहने का अधिकार मिला जाता है और उसका पति याता उसके साथ रहता है या सहवास के लिये समय-समय पर उसके साथ आकर रहता है। भारत में तीन प्रकार के मातृवशी और मातृसत्तात्मक परिवारों का अध्ययन किया गया है—वे हैं मालावार का नायरपरिवार (धारवाद) खासी-परिवार और गारो परिवार। नायर परिवार मालावार में पाया जाता है और खासी तथा गारो परिवार आसाम में।

जिस प्रकार पितृवशी पितृसत्तात्मक और पितृस्थानी (Patrilocal) समुक्त परिवार में कर्ता के भाई, बड़े माता पिता कर्ता तथा उसके भाई के लड़के और अविवाहित कन्याएँ तथा लड़की के लड़के रहते हैं, उसी प्रकार धारवाद में कर्ता स्त्री, उसके बहिन भाई, बहिन के लड़के-लड़कियाँ, कर्ता स्त्री के लड़के लड़कियाँ, कर्ता-स्त्री तथा उसकी बहिनों की लड़कियों के लड़के-लड़कियाँ और उन लड़कियों के लड़के-लड़कियाँ रहते हैं। उत्तराधिकार कर्ता-स्त्री की ज्येष्ठ लड़की को मिला हुआ होता है। इस कारण धारवाद में उत्तराधिकार मा से लड़की को मिलता है। धारवाद में कर्ता स्त्री का ज्येष्ठ भाई या उसकी मृत्यु के बाद उसका ज्येष्ठ भाई परिवार का प्रबन्धक (कानवान) होता है। धारवाद की सम्पत्ति पर धर्म अधिकार कर्ता-स्त्री का होता है किन्तु वास्तविक अधिकार प्रबन्धक के हाथ में रहता है। यह सही है कि धारवाद के सभी सदस्य धारवाद की सम्पत्ति में भरण पोषण के अधिकारी होते हैं किन्तु यह अधिकार तभी तक रहता है जब तक कि वे धारवाद में रहते हैं। धारवाद में बाहर रहकर भरण पोषण का अधिकार तभी मिल सकता है जब यह निश्चित हो गया हो कि कानवान का व्यवहार अनुचित है। धारवाद की सम्पत्ति से धारवाद के सदस्यों का भरण पोषण करने के कर्तव्य के सम्बन्ध में, कानवान के अधिकार और स्थिति सर्वोपरि हो जाते हैं। धारवाद में कानवान की भूमिका वस्तुतः एक निरङ्कुश शासक की भूमिका रही है। जैसा कि मिताक्षरा प्रणाली में ही कोई एक सम्पूर्ण धारवाद की सम्पत्ति से अपने हिस्से को अलग करने की माग नहीं कर सकता है। धारवाद की सम्पत्ति का, सिद्धांततः बंटवारा हो सकता है किन्तु सभी सदस्यों की सम्पत्ति से। कानवान धारवाद की अविभाज्यता की ओर प्रवृत्त रहता है और अन्ततः बंटवारा धारवाद में सर्वसम्मति से विभाजन की माग नहीं आती है क्योंकि कोई भी एक सदस्य जो कानवान के पक्ष में है, विभाजन की माग को रोक सकता है। साथ ही साथ एक प्रबन्धक के रूप में बिना सभी सदस्यों की

लिखित अथवा अलिखित अनुमति के, कानूनान्तर्गत धारवाद की सम्पत्ति को बेच सकता है, न उसे गिरवी रख सकता है और न दान कर सकता है। इस नियम का उल्लंघन करने पर, कानूनान्तर्गत उसके पद से पदच्युत किया जा सकता है। अतः, यह कहा जा सकता है कि कानूनान्तर्गत के पद, उसके व्यवहार तथा अधिकारों पर कमी हुयी रकावटों ने धारवाद की समुक्तता को बनाये रखा है।

वास्तव में, धारवाद की समुक्तता को बल मिलता रहा है धारवाद की संरचना से। धारवाद की संरचना में सास बहू देवराणी जिठानी देवर भीजाई, ननद भीजाई जैसे तनावकारी और परिवार विभाजन सम्बंध और सम्बंधी नहीं पाए जाते हैं क्योंकि विवाह के पश्चात् प्रत्येक स्त्री अपने मा के ही घर में रहती है और प्रत्येक पुरुष को अपनी सत्ता के स्थान पर, अपनी बहिन अथवा बहिना की सत्ता की देखभाल करती पड़ती है। धारवाद के सदस्यों में भाईबहिन, मामा (मा का भाई) — भानजा (बहिन का लडका) — भानजी (बहिन की लडकी) मौसी (मा की बहिन) — भानजा भानजी (बहिन के लडके-लडकी), नानी (मा की मा) — नाती (लडकी का लडका) — नातिन (लडकी की लडकी) के ही सम्बंध पाए जाते हैं। इन सम्बंधों में तनाव का कम स्थान होता है। वास्तव में यदि देखा जाय तो, धारवाद का मुख्य आधार है क्रमशः बढतम पीढ़ी के जीवित भाई-बहिन जिनके सम्बंधों में अधिक सामंजस्य पाया जाता है और जिससे धारवाद की समुक्तता बनी रहती है।

धारवाद अप्रसंगिक, एक अधिक शक्तिशाली समुक्त परिवार रहा है किन्तु, फिर भी, यह नहीं कहा जा सकता कि यह 'विभाजन-प्रक्रिया' में परे रहा है। परम्परानुसार, आकार में आवश्यकता से अधिक बढकर दुर्बल होने पर धारवाद तावजी (Tavaji) कहो जाने वाली, छोटी-छोटी इकाइयों में बट जाता है। तावजी तनीस सौ बत्तीस के दि मद्रास महामन्त्र्यम एक्ट में अनुसार एक स्त्री को सम्बंधित है और, इस दृष्टिकोण से तावजी एक स्त्री, उसकी सत्ता और उसकी मातृवशी शासक के समान बन्धों से मिलकर बना हुआ एक मातृवशी परिवार है। धारवाद तावजिया में बटते रहे हैं और तावजिया बालांतर में बढकर धारवाद का रूप लेता रयी है। पहले तावजी का अपने जनक धारवाद में सम्बंध बना रहता था क्योंकि प्रत्येक तावजी अपने जनक धारवाद पर निर्भर करती थी। इधर हल में धन कानून धारवाद में तावजी की उत्पत्ति और विभाजन में सहायक हो रहे हैं। पहले धारवाद का कोई भी सदस्य अपनी स्त्रीसहित सम्पत्ति का अपने जीवनकाल में इच्छानुसार वंश कर सकता था किन्तु, उसकी मृत्यु के बाद उसकी स्त्री सम्पत्ति धारवाद में मिल जाती थी। किन्तु आज बतमान विधि के अनुसार, एक धारवाद में किसी भी सदस्य को स्वोपसहित सम्पत्ति उसके समीपस्थ बन्धों को मिलनी है, जिसके कारण तावजी की नींव दृढ़ हो गयी है और उसके गठन तथा विभाजन में सम्भावना पहले की अपेक्षा कई गुनी बढ गयी है। तावजा के

अस्तित्व में जाने पर, पतक थारवाद से उसके सदस्यों के वंशज सम्बन्ध बन रहते हैं किन्तु, साम्प्रतिक सम्बन्ध और अधिकार समाप्त हो जाते हैं। वंशज सम्बन्धों के ही कारण एन नावजी के सदस्य अपने को पतक थारवाद का सदस्य मानते हैं और उसके बाहर विवाह करते हैं। जमीन परम्परा रही है आज भी अपने पतक थारवाद के किसी सन्ध्य के निधन पर नावजी के सदस्य चौदह दिन तक अपने को अगुद्ध मानते हैं।

खासी और गारा मातवशी परिवार संगठन भारत के उत्तरी पूर्वी भाग (आसाम) में पाये जाते हैं और वे भारत के दक्षिण पश्चिम (मालाबार) में पाये जाने वाले मातवशी परिवार संगठन से भिन्न हैं। खासी परिवार तीन या चार पीढ़ी के सदस्यों का एक छोटा समुक्त परिवार होता है। खासी परिवार मातवशी और मातस्थानी (Matrilocal) है और उसमें मातवशी उत्तराधिकार के नियम का पालन होता है। खासी परिवार में मातवशी उत्तराधिकार की श्रमागतता उल्टी चलती है क्योंकि खासी परिवार में सबसे छोटी लड़की परिवार की अभिरक्षक (Custodian) समझी जाती है। इस कारण, वही प्रथम उत्तराधिकारिणी समझी जाती है। यदि कर्ता स्त्री के सन्तान न हो तो उत्तराधिकार उनसे छोटी बहिन का मिलता है और यदि वह भी निस्सन्तान मर जाय तो उत्तराधिकार उससे छोटा बहिन का मिलेगा। यदि कर्ता स्त्री की बहिन मर चुकी हो कर्ता स्त्री निस्सन्तान हो और यदि उसकी बहिन की सन्तान हो तो उत्तराधिकार कर्ता-स्त्री की बहिन की लड़की का मिलना है। बटवार की स्थिति में परिवार गृह (Family House) सबसे छोटी लड़की का मिलता है और परिवार के रत्नाभूषणों के साथ-साथ पारिवारिक सम्पत्ति का एक बड़ा अंग भी मिलता है क्योंकि खासी परिवार प्रणाली में गृह परिवार के सदस्यों का वासस्थान होना के साथ-साथ एक सम्मिलित पूजा-स्थान और परिवार के मृत सदस्यों की अस्थियाँ का गाड़न का स्थान (Common Sepulchre) भी है। वास्तव में परिवार धर्म (The Family Religion) में भाग लेना और सम्मिलित गाड़न के स्थान (Common Sepulchre) में परिवार-सदस्यों की अस्थियों का गाड़ा जाना दोनों ही परिवार की समुक्तता को बनाये रखते हैं। स्त्री-कर्ता के मरण पर उनकी सबसे छोटी पुत्री ही उसका दाह संस्कार करती है और उसका अस्थियाँ का परिवार के कब्र-स्थान (Sepulchre) में गाड़ देती है। खासी-परिवार पर मातमत्तात्मकता का महात्मक प्राधेय है कि पुरुष जो कुछ भी बनाता है वह या तो उनकी माँ का मिलना है या उसकी बहिन का या उनकी माँ के स्त्री बन्धु का।

गारा परिवार भी मातवशी (Matrilinal) है और गारा लोग भी मातस्थानीयता (Matrilocal Residence) को प्रथा है। उत्तराधिकार स्त्री से स्त्री का चलता है किन्तु, गारा परिवार खासी तथा नायर परिवार से भिन्न है।

गारो परिवार में, माता पिता अपनी पुत्रियाँ से उत्तराधिकारिणी पुत्री का चुनकर उन नामाङ्क करते हैं। यह आवश्यक नहीं कि उत्तराधिकारिणी स्त्री सबसे छोटी या सबसे बड़ा पुत्री हो। वह कोई भी हो सकती है यद्यपि, साधारणतः बड़ी पुत्री को उत्तराधिकारिणी नहीं धारित किया जाता है। उत्तराधिकारिणी घोषित की हुयी पुत्री के अलावा अन्य पुत्रियाँ तब तक परिवार में रहती हैं जब तक कि उनका विवाह नहीं हो जाता है। विवाह होने पर, अपने मायके की ही गाँव में वे माता-पिता द्वारा दी हुयी भूमि पर अलग घर बसाती हैं। उत्तराधिकारिणी पुत्री को माता पिता का दाह मस्कार का सारा भार उठाना पड़ता है। यदि किसी परिवार में पुत्रियाँ न हों तो कत्ता स्त्री अपनी बहिन की किसी लड़की का मादल होती है और यदि बहिन न हो या बहिन की कोई पुत्री न हो तो विस्तृत परिवार (Extended Family) का किसी भी सम्बन्धी की पुत्रा का मादल होती है।

जसाकि इस सर्वेक्षण में पाता जाता है भारत में परिवार की आधारभूत सामाजिक संरचना मध्यम परिवार की है यद्यपि जसाकि दायभाग और मिताधरा सामाज्य प्रणालियों में ही परिवार की समुक्तता द्विपक्षीय सम्बन्ध (Bilateral Kinship) की स्वीकृति पर आधारित है और वहीं एकपक्षीय सम्बन्ध (Unilateral Kinship) पर। अपने आधार-भूत प्रकारों में एक ओर मध्यम परिवार मातृवर्गी है और दूसरी ओर पितृवर्गी। श्रीमती कर्वे ने पितृवर्गी समुक्त परिवार को उत्तरी प्रकार (The Northern Type) कहा जाता है और मातृवर्गी परिवार का दक्षिणी-प्रकार (The Southern Type) किन्तु 'उत्तरी प्रकार तथा दक्षिणी प्रकार की मनाआ से ऐसा धरनि होता है कि माना उत्तरी भारत में पितृवर्गी प्रकार ही पाया जाता है और दक्षिणी भारत में केवल मातृवर्गी प्रकार। यह निर्विवाद है कि भारत में मध्यम परिवार का एक रूप मातृवर्गी है और दूसरा पितृवर्गी और उत्तरी भारत में केवल पितृवर्गी प्रणाली ही नहीं पायी जाती है और न दक्षिणी भारत में केवल मातृवर्गी प्रणाली।

भारत का परिवार प्रकारों के इस सर्वेक्षण से यह भी स्पष्ट होता है कि पितृवर्गी परिवार प्रणाली में परिवार का कर्ता वयावह पुत्र्य पीढ़ी का सबसे वयोवृद्ध पुरुष होता है उत्तराधिकार पुत्र्य में पुरुष को च्यता है, वयावली पिता की वयावपुत्र्य में चलती है और विवाह हो जाना के बाद स्त्री का अपने पिता का घर छोड़ कर पति के घर में जाकर रहना पड़ता है। पितृवर्गी परिवार, सामान्यतः लेविरेट-विवाह में सम्बन्धित है क्योंकि उसमें परिवार का किसी पुत्र्य-मत्स्य की मत्स्य के बाद उसकी विधवा का उसके पति-वय में ही रहने का अवसर मिलता है और उसकी सन्तान की पितृवर्गी वयावली का हास नहीं जाता है। पितृवर्गी समुक्त परिवार में

१ कपाडिया, क० एम० सरिन एण्ड फमिला इन इडिया पृष्ठ 239-243

२ कर्वे द्वारा कृत किशोर आध्यात्मिक इन इडिया पृष्ठ 12

Pattern) नहीं पाया जाता है। परिवार के सदस्यों के पालन पोषण का भार प्रबन्धक का कार्य करने वाले पुरुष के ऊपर रहता है। प्रबन्धक का पद सामायत, वर्ता स्त्री का भाई का मिलता है। उत्तराधिकार पिता से पुत्र के स्थान पर, माँ से पुत्री को चलाता है। यही कारण है कि मातवशी परिवार को सरचना सामायत मातवसत्ता-त्मक होती है। पिता पुत्र भाई भाई, सास-बहू, देवर-भौजाई नन्द भौजाई और देवराणी जिठानी जस तनावकारी और प्रतिस्पर्द्धी सम्बन्ध मातवशी परिवार में नहीं पाए जाते हैं जिसके कारण मातवशी परिवारों की सम्युक्तता अधिक स्थायी होती है। श्रीमती कर्क के अनुसार पितवशी परिवार की अपक्षा, मातवशी परिवार अधिक सुगठित और अविभाज्य रहा है क्योंकि मातवशी परिवार में वे आन्तरिक मध्य, तनाव और तनाव नहीं रहते हैं जो साधारणतः पितवशी परिवार-सरचना में पाए जाते हैं जिनके कारण पितवशी परिवार एक सतत विभाजन-मयोजन प्रक्रिया में रहा है। जहाँ मातवशी परिवार सरचना पायी जाती है वहाँ की नवावता और लाभगीतों में भाई भाई, सौत सौत सास बहू नन्द भौजाई और देवराणी जिठानी के प्रतिस्पर्द्धी व्यवहार, दृष्टिकोण और सम्बन्धों के वर्णन अनुपस्थित है जा इस बात का घातक है कि पितवशी परिवार की अपेक्षा मातवशी परिवार की सरचना अधिक युक्त तथा सुगठित रही है।

पिछले सर्वेक्षण तथा विश्लेषण से भारतीय सम्युक्त परिवार की मुख्य-मुख्य विशेषताओं भी स्पष्ट होती हैं। सम्युक्त परिवार एक विशय प्रकार का सम्बन्धी समूह (Kin Group) है जिसके सदस्य याता मातवशावली में होते हैं या पितवशावली में। सम्युक्त परिवार एक कालगत सन्तति (Continuum in Time) है। क्योंकि भारतीय परिवार सम्बन्धी अर्थात् अनुसार परिवार पित और पुत्र दोनों में मिलकर बनता है। भारतीय परम्परा में परिवार जीवन का एक साधन मात्र है। साध्य है धर्म, अप और काम के समन्वय में मिलने वाला माध्य। गृहस्थाश्रम केवल एक मध्यम अवस्था (Phase of Transition) है। व्यक्ति गृहस्थाश्रम में इसीलिए प्रवेश करता है कि वह उन सारी विधियाँ का पालन कर सके जिनके द्वारा कुल का परिवर्तन हो सके और उसका नरतय बना रहे। पंचमहायणा का सम्पन्न करना ग्रही का मुख्य धर्म है। अतः परिवार सम्बन्धी-समूह होने के साथ-साथ पंचमहायणा को सम्पन्न करने तथा कुल परिवर्तन और कुल नरतय को बनाए रखने का एक साधन है। अतः पंच महायणा की विधियों में से केवल पित-यज्ञ और देव यज्ञ की विधि ही कारण पंचमहायणा की विधियों में से केवल पित-यज्ञ और देव यज्ञ की विधि सम्युक्त परिवार का मुख्य आधार रही हैं। प्रत्येक सम्युक्त परिवार का स्थान होता है जहाँ जन्म, विवाह और मृत्यु के अवसरों पर, १

आर्थिक आदान प्रदान की परम्परा के द्वारा, उन समूहों में मिला रहा है जिन्हें ग्राम और जाति की सना दी गई है¹।

भारतीय जीवन में समुक्त परिवार एक प्रकार का विशिष्ट सहवासी समुदाय रहा है जिससे व्यक्ति की लगभग सभी शारीरी और सांस्कृतिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती रही है। समुक्त परिवार में जन्म लेने वाले व्यक्ति को अपनी ही पीढ़ी के साथी मिल जाते हैं क्योंकि समुक्त परिवार में भाइयाँ या बहिनो के बच्चे एक साथ पलते हैं। शिशु अपनी माता पर ही नहीं निर्भर रहता है। शिशु के पिता की माँ, बहिन और भाई की स्त्री भी उसकी देखभाल करती हैं। समुक्त परिवार में, शिशु बहुधा अपनी दादी (पिता की माँ) या बाबा (पिता का पिता) द्वारा पाला पोसा जाता है विशेषतया उस समय जब उसके अथ भाई या बहिन हो जाते हैं। उत्तरी भारत में परिवार में, अपने बच्चे का ही लाडल्यार करना ठीक नहीं समझा जाता है और आज भी ऐसे तरण पिताओं की कमी नहीं है जो अपने माता, पिता और बड़े भाई के सामने अपने बच्चे का लाडल्यार करते धरमाते हैं। समुक्त परिवार में शिशु या बालक अपने ही मा-बाप पर नहीं निर्भर रहता है। परिवार के अथ बच्चों के साथ उसका मुण्डन और जनेऊ होता है। समुक्त परिवार में वृद्धों को भी वृद्धा वस्था दूर नहीं लगती है।

समुक्त परिवार रूपी सहवासी समुदाय में दो अलग अलग सत्तार हैं—एक, पुरुषों का सत्तार और दूसरा नारियों का सत्तार। व्याहृत आने पर, पितृवशी समुक्त परिवार में स्त्री का एक नया सामञ्जस्य स्थापित करना पड़ता है पर वह सामञ्जस्य जसाकि आधुनिक योरोपीय परिवार में होता है पति के प्रति एक रागात्मक सामञ्जस्य मात्र नहीं है। इस सामञ्जस्य का एक रूप है सास के साथ सामञ्जस्य दूसरा नन् (पति की बहिन) के साथ सामञ्जस्य, तीसरा पति के भाइयों की स्त्रियों के साथ सामञ्जस्य चौथा पति के पिता और उसके भाइयों के साथ सामञ्जस्य और, पाचवा, पति के भाइयों के साथ सामञ्जस्य। स्त्री का अधिक्तर समय परिवार की स्त्रियों के ही साथ बीतता है। बीमारों और प्रसव के समय परिवार की स्त्रियाँ ही उसकी देखभाल करती हैं। पति पत्नी मिलते हैं पर वेकल रात्रि में थोड़े समय के लिए। पति पत्नी के सहवास पर भी परिवार का नियन्त्रण रहता है। पति का अधिक्तर समय पुरुष-सत्तार में व्यतीत होता है। पितृवशी समुक्त परिवार में पति पत्नी का सम्बन्ध ही प्राथमिक नहीं है। मातृवशी परिवार में पति-पत्नी का सम्बन्ध तो एकत्रम गौण रहता है।

समुक्त परिवार में आयु का प्राथमिकता और सत्ता मिलती है। समुक्त परिवार की मरचना प्राथिनात्मक (Authoritarian) रही है। इसकारण, समुक्त

आर्थिक जादान प्रदान की परम्परा के द्वारा, उन समूहों में मिला रहा है जिसे ग्राम और जानि की सजा दी गई है¹ ।

भारतीय जीवन में मयुक्त परिवार एक प्रकार का विशिष्ट सहवासी समुदाय रहा है जिससे व्यक्ति की लगभग सभी शारीरी और सांस्कृतिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती रही है। मयुक्त परिवार में जन्म लेने वाले व्यक्ति को अपनी ही पीढ़ी के साथी मिल जाते हैं क्योंकि मयुक्त परिवार में भाइयों या बहिनों के बच्चे एक साथ पलते हैं। शिशु अपनी माता पर ही नहीं निर्भर रहता है। शिशु का पिता की मा, बहिन और भाई की स्त्री भी उसकी देखभाल करती हैं। मयुक्त परिवार में, शिशु बहुधा अपनी दादी (पिता की मा) या बाबा (पिता का पिता) द्वारा पाला पोसा जाता है विशेषतया उस समय, जब उसके अथ भाई या बहिन हो जाते हैं। उत्तरी भारत में, परिवार में, अपने बच्चे का ही लाडल्यार करना ठीक नहीं समझा जाता है और आज भी ऐसे तर्ण पिताओं की कमी नहीं है जो अपने माता, पिता और बड़े भाई के सामने अपने बच्चे का लाडल्यार करत शरमाते हैं। मयुक्त परिवार में शिशु या बालक अपने ही मा याप पर नहीं निर्भर रहता है। परिवार के अथ बच्चों के साथ उसका मुग्ध और जनेऊ होता है। मयुक्त परिवार में बच्चा को भी बच्चा-वस्था दूबर नहीं लगती है।

मयुक्त परिवार रूपी सहवासी समुदाय में दो अलग अलग सत्तार हैं—एक पुरुषों का सत्तार और दूसरा स्त्रियों का सत्तार। ब्याह कर आने पर, पितृवशी मयुक्त परिवार में स्त्री का एक नया सामञ्जस्य स्थापित करना पड़ता है पर वह सामञ्जस्य जमानिक आधुनिक योरोपीय परिवार में हाता है पति के प्रति एक रागात्मक सामञ्जस्य मात्र नहीं है। इस सामञ्जस्य का एक रूप है सास व साथ सामञ्जस्य, दूसरा ननद (पति की बहिन) के साथ सामञ्जस्य, तीसरा पति के भाइयों की स्त्रियों व साथ सामञ्जस्य चौथा पति के पिता और उससे भाइयों के साथ सामञ्जस्य और पाचवा, पति के भाइयों के साथ सामञ्जस्य। स्त्री का अधिकतर समय परिवार की स्त्रियों व ही साथ बीतता है। बीमारी और प्रसव के समय परिवार की स्त्रियाँ ही उसकी देखभाल करती हैं। पति पत्नी मिलते हैं पर केवल रात्रि में थोड़े समय के लिए। पति पत्नी के सहवास पर भी परिवार का नियमन रहता है। पति का अधिकतर समय पुण्य-सत्तार में व्यतीत होता है। पितृवशी मयुक्त परिवार में पति पत्नी का सम्बन्ध ही प्राथमिक नहीं है। मानवशास्त्र पर पति पत्नी का सम्बन्ध तो एकात्म गीण रहता है।

मयुक्त परिवार में आयु का प्राथमिकता और सत्ता मिलती है। मयुक्त परिवार की मरचना प्राथिकारवाणी (Authoritarian) रही है। इसकारण, मयुक्त

परिवार में असंतोष जटिलता और कटुता भी रही है। किंतु साथ ही-साथ उसमें आकषक तत्व भी रहे हैं। पितृवशो संयुक्त परिवार में दबर् भाजाई, ननू भौजाई, दबराती जेठानी और साँटे बहनाई के परिहास सम्बन्ध (Joking Relationships) भी रहे हैं। संयुक्त परिवार में हमेशा कुछ न कुछ होता रहता है। आज यदि विवाह है तो बल उपनयन सम्कार। आज यदि किसी का जन्म हुआ है तो बल किसी का मृत्यु। आज यदि परिवार की स्त्रियों का भाई उन्हें उनके मायके लौ जाने के लिए भेजता है तो बल परिवार की विवाहित लड़कियाँ अपनी सुसंरक्षित सारांश आ रही हैं। आज यदि कोई पब है तो बल कोई त्योहार। संयुक्त परिवार का जीवन, एक ओर, सत्ता और अनुशासन का जीवन है तो दूसरी ओर, सुमुलता और आशाओं का। उसमें एक ओर, हास परिहास है तो, दूसरी ओर सघय, एक ओर, वाद विवाद का जीवन है तो दूसरी ओर नयी नयी योजनाओं का।

संयुक्त परिवार में व्यक्तिपरकता की समष्टि का एक जग रहा है। संयुक्त परिवार और पश्चिमी व्यक्तिवाद (Western Individualism) का विरोधी सामाजिक मानसिक प्रयोग रहा है। संयुक्त परिवार में, व्यक्ति की सत्ता, स्वतंत्रता न हाकर समष्टि का एक अंग रही है। प्राधिकारवादी (Authoritarian) होने के कारण, संयुक्त परिवार व्यक्तिगत उपनयन (Individual Initiative) का विरोधी सा रहा है। भारतीय समाज में जन्मजात सत्ता और विशेषाधिकारों का सामाजिक सुनवात संयुक्त परिवार से ही होता है और जिसका चरम विकास जाति संरचना प्रणाली में हुआ है। परिवार की संयुक्तता बनाए रखने का कारण है संयुक्त परिवार संरचना में, एक ओर सत्ता, अनुशासन और आयु का प्राथमिकता देने की प्रथा तथा विभिन्न सदस्यों के जन्मजात विशेषाधिकारों का विचार का समावेश हुआ और दूसरी ओर, एकदली उत्तराधिकार प्रणाली का। पितृवशो परिवार में समान पितृवगी पुरपा को उत्तराधिकार में प्राथमिकता मिली और मातृवशी परिवार में मातृवगी स्त्रियों को। उत्तराधिकार में भी, पितृवशी पुरुष पत्नी में ज्ञान के अनुसार ज्येष्ठ पुरुष का प्राथमिकता मिली और मातृवशी परिवार में एक पीढ़ी की स्त्रियों में ज्येष्ठ स्त्री का। पितृवशी परिवार में स्त्रियों का स्थान गौण हो गया। स्त्री का न तो पिता की सम्पत्ति में अधिक उत्तराधिकार मिला और न पति के परिवार की सम्पत्ति में—उन्हें बस भरण पोषण का अधिकार मिला। उसी प्रकार मातृवशी परिवार में, पुरुष का स्थान गौण हो गया। इस परिस्थिति का बर्दा परिणाम निकलता है। इसमें स्त्री पुरुष की सामाजिक स्थिति और प्रतिष्ठा में जन्मजात अमान्यता की भावना का अभ्युदय हुआ, समाज में जन्मजात विशेषाधिकारों के प्रति सार्वजनिक उग्रता हुई और जन्मजात विशेषाधिकार सभी का नष्टा मिल सकने के सम्कारण, मातृवशी दृष्टिकोण

का अभ्युत्थ हुआ। इसके दो परिणाम निकले। अधिकार सम्पन्न व्यक्ति की भूमिका में शासन और अधिकार लिप्सा के सामाजिक मनावृत्ति का समावेश हुआ और अधिकार विहीन व्यक्ति की भूमिका में परिजीवी (Parasitic) उत्तरदायित्वहीन और पराश्रित मनावृत्ति का। मनुष्य परिवार सामाजिक सुरक्षा का कवच रहा है उसमें सामाजिक बीमा के तत्त्व समाए रहते हैं किंतु साथ ही साथ, उसमें एकमध्यता को भी प्रोत्साहित किया है। मनुष्य परिवार से मिलने वाली सुरक्षा न यदि, असुरक्षा के भय से उत्पन्न होने वाली बिना मनुष्य की रक्षा का है तो उसमें उस सत्ताप को भी प्रोत्साहित किया है जो मनुष्य का निरन्तर बना देना है।

अंग्रेजी राज के माध्यम से पड़ने वाले योरापीय मघात के प्रभाव में जैसे अन्य संस्थाओं का रूपांतरण हुआ है वैसे ही मनुष्य परिवार का भी रूपांतरण सम्भवतः परिवर्तन के कारण एक बार मनुष्य परिवार का परम्परागत सामाजिक प्राधिकार आधार बगला और, दूसरी ओर उसके कई पहलुओं में परिवर्तन आया। मनुष्य परिवार संरचना में प्रविष्ट

हानकारी गत्यात्मकता और उमक अनेक कार्यों (Functions) में होने वाले परिवर्तन के कारण समुदाय परिवार के वर्तमान स्वरूप के विषय में दो प्रकार के मना का अभ्युत्थ हुआ है। एक ओर यह मन प्रतिपादित किया गया है कि आज मनुष्य परिवार विघटन और विभ्रंश का प्रक्रिया में है जिसके कारण एकत्री परिवारों की संख्या घट रही है और दूसरी ओर यह मन प्रतिपादित किया गया है कि समुदाय परिवार की संरचना में विभ्रंश नहीं रूपांतरण हुआ है जिसके कारण परिवर्तित होकर भी समुदाय परिवार वगैरे भारतीय सामाजिक संगठन का एक अंग है जन्म कि वह बनी था। इसका अर्थ है कि आज मनुष्य परिवार की ऐतिहासिक गत्यात्मकता में निम्नलिखित प्रक्रिया (The Process of Fusion & Formation) अधिक तीव्र हो गई है और जगत्भर जोरों में हुआ है। योरापीय संस्था के प्रभाव में परिवार के अनेक कार्य राज्य के हाथ में चले गए हैं और मनुष्य परिवार का नियंत्रण जाति तथा ग्राम के हाथ में चलाकर राज्य के हाथ में चला गया है। विवाह उत्तराधिकार और अलग-अलग सम्बन्धी अधिनियम जो भारत में राज्य द्वारा पारित किए गए हैं और राज्य द्वारा अपनाया जाने वाला परिवार-न्याय का कार्यक्रम (The Programme of Family and Child Welfare) सभी प्रमाण हैं।

अंग्रेजी राज्य काल में जिन परिवर्तनकारी कार्यों ने मनुष्य परिवार को प्रभावित किया है वे हैं भारत का वर्तमान भी जारी रखे गए जौय परिवार कार्यक्रम प्रयोगिकरी, पश्चिमी शिक्षा परिवार का प्रभावित करने वाला विभिन्न राष्ट्रीय और विदेशी व्यक्तित्व। उत्तरदायित्व विचार तथा धारणार्थ। यह

पहले ही लिखा जा चुका है कि अंग्रेजी राज का सबसे बड़ा प्रभाव भारत की परम्परागत आर्थिक व्यवस्था पर पला जिसके कारण भारत में औद्योगिक वृत्तिवादी आर्थिक व्यवस्था का विकास हुआ। पूँजीवादी व्यवस्था, जो अंग्रेजी राज के माध्यम से भारत में आई, समष्टिवादी गणेश के विरुद्ध है। उसका आधार है व्यक्तिवादी प्रतिस्पर्धा (Individualistic Competition) और वह सामाजिक प्रतिष्ठा (Social Status) जो जन्मजात न होकर अर्जित होती है। पूँजीवादी औद्योगिक व्यवस्था में भूमि के स्थान पर, मुद्रा का महत्व बढ़ा और कृषि के स्थान पर उद्योग और व्यापार का। साथ ही साथ औद्योगिकीकरण के कारण नये नये वृद्धिजीवी पण अस्तित्व में आए जिन्हें व्यक्ति अपनी सामर्थ्यानुसार अपना सकता है। कृषि-व्यवस्था में परिवार का एकमात्र आधार भूमि थी। सारी पण मरचना कृषि व्यवस्था अभिराजित सामाजिक प्रतिष्ठा प्रणाली (Ascribed Status System) और जाति मरचना की उच्चोच्च परम्परा (The Hierarchy of Caste Structure) के अधीन थी। ऐसी दशा में व्यक्ति के आर्थिक-सामाजिक अस्तित्व का एकमात्र साधन परिवार ही रह जाता था। पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था में, भूमि के आर्थिक महत्व के कम होने का तात्पर्य हुआ समुक्त परिवार के एक मुख्य आधार का कमजोर होना। अभिराजित सामाजिक प्रतिष्ठा प्रणाली के स्थान पर, अर्जित सामाजिक प्रतिष्ठा प्रणाली (Achieved Social Status System) के विकास का अर्थ हुआ व्यक्ति के सामाजिक अस्तित्व का उस नये आधार का अभ्युत्थन जिस पर समुक्त परिवार और जाति का एकाधिकार न था। परम्परागत सामाजिक व्यवस्था में व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा जाति और परिवार पर आधारित थी, किन्तु नयी सामाजिक प्रतिष्ठा प्रणाली में, व्यक्ति अपनी सामर्थ्यानुसार अपने प्रयत्नों के द्वारा अपना विनिष्ट स्थान बना सकता था। परम्परागत व्यवस्था में व्यक्ति के पेशे का चुनाव व्यक्ति के हाथ में न होकर परिवार और जाति के हाथ में था। किन्तु, पूँजीवादी औद्योगिक व्यवस्था में पेशे का चुनाव में व्यक्ति को व्यक्ति स्वतंत्रता मिल गयी। इस प्रकार, अंग्रेजी राज के मध्य में भारत की व्यवस्था हुई आर्थिक व्यवस्था में व्यक्ति का जाति और परिवार के अधिकार से अपक्षान्त अधिक स्वतंत्रता मिली जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति को अपनी इच्छा और सामर्थ्यानुसार अपना सामाजिक आर्थिक जीवन बनाने की प्रेरणा मिली।

पश्चिमी वैज्ञानिक प्रौद्योगिकी (Western Scientific Technology) ने समुक्त परिवार का कई तरह से प्रभावित किया। प्रौद्योगिकी ने ही औद्योगिकीकरण का जन्म भारत की नयी औद्योगिक पण मरचना का जन्म दिया। प्रौद्योगिकी के ही प्रभाव में भारत में, आर्थिक मरचना का विकास हुआ। औद्योगिक मरचना में सामाजिक आर्थिक जीवन का आधार कृषि न होकर व्यापार, उद्योग मरचना और वे पेशे हैं जो कृषि पर ही आधारित न होकर उद्योग, नौकरियाँ (Services) और बतिया

(Professions) पर आधारित है। यातायात के साधनों ने, एक ओर, औद्योगिक शहरों के विकास को प्रोत्साहन दिया तो, दूसरी ओर, औद्योगिक शहरों में मिलन बाल सामाजिक आर्थिक अवसरों से लाभ उठाने के लिए गांव से शहर की ओर स्थानांतरण को उत्तेजना दी। स्थानांतरण का परिणाम होता है व्यक्ति पर स परिवार का अधिकार का कम होना और व्यक्ति का परिवार के अनुशासन से अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्रता मिलना। स्थानांतरण से बहुओं को भी सत्स के अधिकारपूर्ण अनुशासन से मुक्ति मिलती है। नौकरों पेशा लाया के लिए, विनोदित जा सरकारी नौकरिया में है स्थानांतरण स्वाभाविक सा हा गया है। बढ़ते हुए व्यवसाय और औद्योगिकरण के कारण गांव में बढ़ती हुई बेरोजगारी ने भी शहर की ओर स्थानांतरण का बढ़ावा दिया है। शहरी सामाजिक आर्थिक पर्यावरण ग्रामीण पर्यावरण की अपेक्षा अधिक गतिशील है और शहरी सामाजिक आर्थिक संरचना जाति तथा परिवार की ओर उन्मुख न होकर व्यक्ति की ओर अधिक उन्मुख है। शहरी सामाजिक पर्यावरण में अनामकता (Anonymity) का व्यापक प्रभाव रहता है जिससे एक ओर प्रथाओं के बर्तन अनुशासन में ढीलापन आता है और दूसरी ओर व्यक्तिवाद को प्रोत्साहन मिलता है। शहरी पर्यावरण में व्यक्ति का अधिकतर समय पारिवारिक प्रभाव शून्य के बाहर बीतता है जिससे व्यक्ति स्वातंत्र्य की भावना का प्रोत्साहन मिलता है।

भारतीय विधि प्रणाली पर अंग्रेजी राज के सघात का वणन करते हुए हम समय का उल्लेख किया जा चुका है कि अंग्रेजी राज में एक ओर स्वीय विधि (Personal Law) को लक्ष्यबद्ध किया गया और दूसरी ओर इंग्लैंड की विधि प्रणाली के आधार पर भारत में सामान्य विधि (General Law) का निर्माण किया गया। जमाकि इंग्लैंड का डर था भारत में भी सामान्य विधि को व्यक्ति-उन्मुख बनाया गया और स्वीय विधि के निवचन में समष्टि के स्थान पर व्यक्ति और प्रथा का प्रधानता दी गई। उन्नागवीं सदी में, अंग्रेज याथाधीन न जितानेस्वर और जीमूतनाहन के परिवार सम्बन्धी विधिक निवचना का हिन्दू-परिवार का आधार मान लिया, यद्यपि यह विधिक निवचन कई सौ वर्ष पूर्व के थे। इन दोनों विधानों में दोभि न भिन्न दृष्टिकोणों से हिन्दू परिवार का विधिक निवचन किया था और दाना का उद्देश्य था पारिवारिक संयुक्तता और समष्टि के साथ व्यक्ति के मानसिक तथा सामाजिक स्वत्व का सामञ्जस्य बनाये रखना। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इन दाना विद्वानों ने पारिवारिक समष्टि में व्यक्ति के अधिकार का माना है और यह भी माना है कि व्यक्ति अपने अधिकार (भाग) का परिवार की सम्पत्ति में स ल मकता है। किन्तु यह मान्यता उम समय की थी जब तृप्ति ही जीवन का मुख्य आधार थी जब सभी पेशा संरचना (Occupational Structure) और सामाजिक चरित्रणना नहीं थी जा जानि और परिवार के स्थान पर व्यक्ति को महत्व दनी थी जब स्थानांतरण की सम्भावना बस्तुतः नहीं ब बराबर था और जब परिवार और जानि स

अलग व्यक्ति का सामाजिक आर्थिक अस्तित्व ही नहीं था और यदि कहीं था भी तो सशक्त म। व्यक्ति के अधिकारों के रहते हुए भी, व्यक्ति में परिवार से बाहर रहने की प्रेरणा की कमी थी। किन्तु, नयी परिस्थितियों में पारिवारिक सम्पत्ति में व्यक्ति के अधिकारों के व्यक्तिवादी निवृत्तियों से, एक ओर, परिवार विषयक समुचितता की भावना का हास हुआ, उसकी समष्टिवादिता क्षीण हुयी और, दूसरी ओर, सम्पत्ति स्वामित्व और उपभोग के स्थान पर पैतृक तथा पिता की सम्पत्ति में पुत्रों और वंशजों के निहित स्वार्थ (Vested Interest) की भावना का अभ्युदय हुआ। अंग्रेजी राज्य काल में, और उसके बाद भी श्रीवाणी के मुकदमों की वदती हुई संख्या इसी का परिणाम है।

कपाडिया के अनुसार, अंग्रेजों द्वारा स्थापित अदालतों में, हिंदू विधि प्रणाली का जिस रूप में प्रशासन किया गया, उसके दो परिणाम निकले—एक ओर, व्यक्ति ने समुचित परिवार में निहित अपने उत्तराधिकारों की उत्तरोत्तर मांग (Assertion) की जिसके कारण समुचित परिवार की विभाजन प्रक्रिया तीव्रतर हुयी और दूसरी ओर, अन्य परिस्थितियों के साथ साथ, ऐसी परिस्थिति अस्तित्व में आई जिसने समुचित परिवार के विभूत्तलन का प्रात्याहित किया यद्यपि, भारत की आधारभूत सामाजिक गत्यात्मकता की पृष्ठभूमि में, यह विभूत्तलन अधिक दूर न जा सका और समुचित परिवार इसके आघात का सहता हुआ, नयी परिस्थितियों के अनुसार अपने का स्वातंत्र्य कर सका। भारत में परिवार सम्बन्धी जितना विधियाँ का निर्माण अंग्रेजी राज्य काल में और उसके बाद हुआ है उनसे, एक ओर समुचित परिवार के विभूत्तलन को और दूसरी ओर उसकी अतिजीवना और स्थापना का प्रात्याहित किया है। कपाडिया के अनुसार, हिंदू-उत्तराधिकार अधिनियम (1929) और हिंदू-स्त्री के सम्पत्ति विषयक अधिनियम ने समुचित परिवार के विभूत्तलन को उस प्रक्रिया को पूरा करने में योग दिया है जो अंग्रेजों द्वारा प्रशासित और नयी परिस्थितियों में, व्यक्तिवादी भावनाओं की मांग के कारण, अस्तित्व में आई थी। हिंदू-उत्तराधिकार अधिनियम में वर्तनी सम्पत्ति में, कर्ता के पितृवगी सम्पत्तियों के अधिकार के समान उनमें पुत्र की पुत्री या उसकी पुत्री की पुत्री का अधिक प्राथमिक उत्तराधिकार मान लिया गया है। इसके अतिरिक्त यदि किसी कर्ता के पुत्र न हों तो उसकी सम्पत्ति उसकी पितृवगी सम्पत्तियों की अपेक्षा उसकी प्रपौत्र या उसकी अनुपस्थिति में उसकी प्रपौत्र (पुत्र की पुत्री) या पुत्री या उसके लड़के या लड़की को मिलती है।

हिंदू स्त्री के सम्पत्ति विषयक अधिकार अधिनियम (The Hindu Woman's Right to Property Act 1937) का मुख्य उद्देश्य है विधवा हान पर हिंदू-स्त्री का समान पति की सम्पत्ति में, अन्य उत्तराधिकारियों के समान, उत्तराधिकार का प्राथमिक अधिकार देना। सिद्धांततः, हिंदू परिवार की मुख्य विशेषता थी जाति-

जन्म दिया और जीवन के प्रति प्रकृतिवादी दृष्टिकोण ने स्वतंत्र स्वाभाविक और व्यक्तिगत प्रेम की धारणा को। इसी विचारधारा के प्रभाव में यौन-तुष्टि का नर-नारी की उसी प्रवार की स्वाभाविक आवश्यकता बताया गया जैसे भूत और प्यास। विवाह का सामाजिक बंधन न कह कर, स्त्री पुरुष के बीच में स्वाभाविक प्रेम पर आधारित सम्झौता बना गया। इन सभी विचारधाराओं का सम्मिलित प्रभाव हुआ नारी द्वारा स्वाभाविक रूप में आधारित विवाह की मांग जिनमें प्रेम विवाह और सिविल मैरिज (Civil Marriage) की धारणा को जन्म दिया। उत्तरवादी तथा प्रजातन्त्रवादी विचारों पर आधारित नर-नारी की समता और प्रेम विवाह सम्बंधी विचार जितनी तेजी से बढ़े, उतनी तेजी से परम्परागत सामाजिक मान्यताय नहीं बदली। परन्तु इस्लामी विचारधारा का जन्म हुआ जिससे उत्तीर्णता गतादी का अर्थहीन साहित्य नरा पड़ा है और जो, एक ओर सामाजिक बंधनों के प्रति विद्रोह की भावना है और दूसरी ओर, एक मूलतः अतन्त्र अभिप्राय की अभिव्यक्ति है। अथर्वी साहित्य, विगत कविता और उपन्यास से यही विचारधारा भारत में फैली। इन विचारधारा के प्रभाव में, भारत में, जिस साहित्य की रचना हुई उसमें परिवार और जाति के बंधन से मुक्त व्यक्तिगत तथा स्वाभाविक प्रेम और नारी-स्वातंत्र्य को ही मुख्य विषय बनाया गया। सम्प्रकार अथर्वी शिक्षा के प्रभाव में, भारतीय नारी ने अपने सामाजिक जीवन और उसके आचारों का पुनरीक्षण किया और नयी व्यवस्था में मिलने वाली सुविधाओं के कारण मधुवत परिवार के नारी-संसार का छान्दक उम संसार में पलायन किया जहाँ नारी और पुरुष दोनों के और जहाँ परिवार में पति पत्नी के सम्बंधों को प्राथमिकता दी गयी।

संसारवादी मतात के जनगत, सामाजिक जीवन के नियमों के पुनरीक्षण न नर-नारी के सम्बंधों को प्रभावित किया है और उससे सम्बन्धित परिवार की रचना में अंतर आया है। सामाजिक जीवन के नियमों का पुनरीक्षण, एक ओर स्वयं नारियाँ न किया है और, दूसरी ओर, सामाजिक नवजागृति के प्रेरणादायक ने। इन पुनरीक्षणों और उनमें उत्पन्न होने वाले मुद्दों का प्रारम्भ उस समय से होता है जब रामाराम माहन राय ने सती प्रथा का रोकना का आन्दोलन किया था। तब से त्रिपरा विवाह, विवाह विच्छेद, बाल विवाह निरोध, प्रेम विवाह अतन्त्रवादी विवाह और अन्य प्रतिबंध निराकरण को, एक ओर धार्मिक आधार प्रदान करने का प्रयास किया गया है और, दूसरी ओर इन समस्याओं के प्रति सखि तथा जगन्मन जनमन बनाने का प्रयत्न किया गया है। अथर्वी शिक्षा के द्वारा फैलने वाली जागरूकता और नयी व्यवस्था में मिलने वाली व्यक्तिगत स्वतंत्रता के कारण, नारियाँ न भी स्वातंत्र्य मद्राम में बस ही भाग लिया जैसे कि पुरुषों ने। इन सभी प्रभावों के अन्तर्गत नारी का सामाजिक प्रतिष्ठा बढ़ली तथा उस परम्परागत मान्यता का खण्डन हुआ जिससे अनुसार, महँगा जाता था कि बौद्धिक व्यवस्था में, नारी की रक्षा पित्त

करता है विवाहित अवस्था में पति और वधव्य की अवस्था में पुत्र। इसके फल-स्वरूप, एक आर नारी ने अपन पत्नी-अधिकारी की भाग की और, दूसरी ओर, उनका प्रयाग भी बिया। शिक्षा क प्रभाव और प्रशिक्षण की बढ़ती हुई अवधि¹ ने विवाह की आयु में वृद्धि की जिससे पति पत्नी में उन नये सम्बन्धों का अभ्युदय हुआ जिनका केन्द्रीकरण पति पत्नी और उनसे उत्पन्न सन्तान तक हा रहा।

जिन परिवर्तनकारी शक्तियों के कारण समुक्त परिवार की संरचना में रूपान्तरण हुआ है उ ह तीन श्रेणियों के अन्तगत रखला जा सकता है—प्रथम श्रेणी के अन्तगत व शक्तिया आती हैं जो औद्योगीकरण तथा पूंजीवादी सामाजिक आर्थिक व्यवस्था से उत्पन्न हुयी है, दूसरी श्रेणी के अन्तगत वे भावनात्मक शक्तिया आती हैं जो पश्चिमी पूंजीवादी व्यवस्था के सांस्कृतिक आदर्शों से उत्पन्न हुई हैं और जिन्हें भारत की परिवर्तित सामाजिक आर्थिक व्यवस्था में पनपने का अवसर मिला और तीसरी श्रेणी में वे शक्तिया आती हैं जिन्हें नई विधि प्रणाली न ज म दिया। वास्तव में, नई विधि प्रणाली न एक प्रकार से उन आवश्यकताओं की पूर्ति की है ज प्रथम और ततीय श्रेणी की शक्तियों के प्रभाव के फलस्वरूप अस्तित्व में आई हैं। प्रथम श्रेणी की परिवर्तनकारी शक्तिया कृषि पर आधारित और जाति प्रथा में निहित सामंजस्य की व्यवस्था क पूंजीवादी रूपान्तरण से उत्पन्न हुयी है और दूसरी श्रेणी की शक्तिया पश्चिम की व्यक्तिवादी उदारवादी, प्रजातन्त्रवादी तथा समानता विचार और धारणाओं का प्रभाव से अस्तित्व में आई हैं।

जिन परिवर्तनकारी शक्तियों में पितृव्यी समुक्त परिवार का समुक्त आधार का ढाला विना उाका प्रभाव मातृवशी समुक्त परिवार पर भी पडा। मातृव्यी शक्ति जिस 'याय पद्धति में उत्तरी भारत के पितृव्यी समुक्त परिवार की परम्पराओं का व्यक्तिवादी निवचन करके एक उ परिवारों में परिधत्ता की वृद्धि का प्रोत्साहित किया गया, उसी 'याय पद्धति में दक्षिण क मातृव्यी परिवारों की प्रथाओं का समष्टिवादी निवचन किया

- 1 यहाँ प्रशिक्षण की बढ़ती हुई अवधि से तात्पर्य उक्त अवधि से है जो वर्तमान समय में सामान्य शिक्षा और उक्त प्रशिक्षण (Training) में लगती है जो किसी विषय काय अथवा नौकरी की प्राप्ति करने के लिए ग्रहण की जाती है। कृषि व्यवस्था में दक्ष बढ होते ही परिवार की सहायता करने लगते हैं कि तु, औद्योगिक व्यवस्था में ऐसा नहीं है। किसी व्यक्ति में पाय करने वाले व्यक्ति का लक्ष्य उक्त काय में सहायता नहीं कर सकता है। पहले सामान्य शिक्षा लेनी पडती है और बाद में, उक्त विषय अथवा लाइन का विशेष ज्ञान प्राप्ति करना पडता है निरर कोई व्यक्ति जाना धारता है। इसमें बाइस से चौबीस साल लगना साधारण बात है।

गया और उनकी सम्युक्तता को बनाये रखने का प्रयास किया गया¹ यद्यपि यह प्रयास सफल न हो सका। नयी सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों में तावजिया की वृद्धि हुई। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में, धारवाद पर आधुनिक परिवर्तनकारी शक्तियों का प्रभाव पड़ना प्रारम्भ हो गया था और बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में धारवाद में इतनी समस्याएँ आ गईं कि उन्नीसवीं शताब्दी में जो परमेश्वरन पितृ न यह निश्चय कि विभाजन और उचित प्रकार से उत्तराधिकार के नियमन के अतिरिक्त धारवाद की समस्याओं के अंत का और कोई हल नहीं है।

वह कौन सी परिस्थितियाँ थीं जिनमें धारवाद के विभाजन को बर्धनिक मायता प्रदान करने की भाग की गई। परम्परागत व्यवस्था में, धारवाद में नारी को केवल भरण-पोषण का अधिकार था और भरण-पोषण की आवश्यकता के अतिरिक्त, सुख-सुविधा की अन्य वस्तुओं के लिए नारी को पति पर निर्भर रहना पड़ता था। योरोपीय प्रभावों और बदलती हुई आर्थिक परिस्थितियों में बढ़ते हुए जीवन (Standard of Living) के कारण, नारी की अपने पति पर निर्भरता बढ़ गई जिसके कारण पति पत्नी के सम्बन्धों में अधिक सामीप्य आया और पति पत्नी के सम्बन्ध पहले की अपेक्षा अधिक वैयक्तिक (Personal) हो गये। मातृवर्गीय परिवार में, एक ओर, व्यक्ति मातृसत्तात्मक (Matriarchal) सम्बन्धों से बंधा रहता है और, दूसरी ओर, वैवाहिक सम्बन्धों से। ये दोनों सम्बन्ध अलग-अलग बफादारी की मांग करते हैं जिसमें इन दोनों प्रकार के सम्बन्धों में स्वभावतः संघर्ष आ जाता है। पति-पत्नी के सम्बन्धों में व्यक्तिगतता और पहले की अपेक्षा अधिक पारस्परिक निर्भरता बढ़ने के कारण, व्यक्ति के मातृसत्तात्मक और वैवाहिक सम्बन्धों के प्रति निष्ठाएँ संघर्षात्मक हो गईं। परिवार प्रबंधक (कानदान) अपनी बहिन की सन्तान की अपेक्षा अपनी सन्तान की शिक्षा तथा उनकी देख-भाल की ओर अधिक उन्मुख हुआ। धारवादी स्वभावतः, एक बड़े आकार का परिवार होता है और उसमें सभी का बराबर देख-भाल न मिलना भी स्वाभाविक है। यह स्वाभाविकता उस अवस्था में और भी बढ़ जाती है जब कानदान कमजोर और स्वार्थी हो। पितृवर्गीय परिवार की भाँति धारवादी भी कवि व्यवस्था पर आधारित था जिसका पूँजीवाद तथा औद्योगिक व्यवस्था ने महत्प्रतीति कर दिया।

जनसंख्या की वृद्धि के कारण भूमि पर जनसंख्या का दबाव बढ़ा। भूमि की कमी ने नायबों को गिना तथा उन लोगों और बतनभोगी सवाआ को अपनाते कृषि प्रेरित किया जो नयी सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था के कारण अस्तित्व में आये। डाक्टर मकील, अध्यापक और कर्तव्य के रूप में तथा पुलिस और सना में भर्ती होकर, इनके नायब अपने-अपने धारवादी से अलग गहरा में जा बस जहाँ बच्चों

की देखभाल और उनकी शिक्षा जीवन की एक मुख्य आवश्यकता हो गई जिससे, धारवाद की मातृसत्तात्मक व्यवस्था के स्थान पर, पितृसत्तात्मक एकाकी परिवार की संरचना का प्राक्लान्तन मिला। नयी परिस्थितियों ने नायरो में पितृसत्तात्मकता का प्राक्लान्तन किया है। स्थानांतरण (Migration) से पितृसत्तात्मकता की वृद्धि हुई है। आज यदि कोई नायर, नौकरी के कारण किसी बड़े शहर में जाना चाहता है तो वहाँ वह अपनी स्त्री और बच्चों के साथ पितृसत्तात्मक एकाकी परिवार की स्थापना करता है और धीरे धीरे पति पत्नी दोनों अपने-अपने-अपने धारवा से दूर हो जाते हैं। आधुनिक समय में मातृसत्तात्मक परिवार इसलिये विभाजित होता है कि नायरो में पितृसत्तात्मक एकाकी परिवारों को स्थापित करने की भावना का अग्रमुद्रण हुआ है और नयी परिस्थितियाँ नई भावना की व्यावहारिक सम्भावना का बड़ा दिया हैं।

जिम प्रकार, हिन्दू परिवार तथा विवाह सम्बन्धी अधिनियमों में व्यक्ति के अधिकारों का प्राथमिकता दी, परिवार में व्यक्ति का जन्मजात अधिकार मानकर उस विभाजन द्वारा अपने-अपने-अपने अलग करने की अनुमति दी जाती कि अधिकारों पर एक लिंग और नारी को अधिक अधिकार देकर उसके पत्नीत्व को अधिक सबल और स्थायी बनाया उसी प्रकार मद्रास और मालाबार में नायर परिवार तथा विवाह सम्बन्धी अधिनियमों ने नायर-नारी के वैवाहिक अधिकारों का अधिक मान्यता प्रदान की जिससे नारी का व्यक्तिगत व्यक्तित्व उभरा और उसका पत्नीत्व अधिक वास्तविक और स्थायी हुआ, कानवान के अधिकारों का कम किया और धारवा को सिद्धांततः जयभाज्य न मानकर, उन तावजियों में विभाजित होने के लिये प्राक्लान्तन किया। तावजी के बच्चों को कानवान की तावजी में उगी प्रकार उत्तराधिकारी माना गया जिस प्रकार पितृसत्तात्मक परिवार में किमी कर्ता कि पिता की सम्पत्ति में उसका लड़का और प्रपौत्रा का अधिकार रहता है। इस प्रकार नायर परिवार में मधुवन परिवार की उम्र भावना का उदय हो रहा है जो पितृसत्तात्मक परिवार में आज भी पायी जाती है। नम्बूद्री ब्राह्मणों की विवाह पद्धति में आज वाले परिवर्तन में भी धारवाद में परिवर्तन आया है। पहले की भाँति आज एक नम्बूद्री परिवार का बड़ा भाई ही नम्बूद्री लड़की से विवाह नहीं करता है। आज अन्य भाई भी नम्बूद्री लड़की से विवाह करते हैं और यदि वे नायर नारी से विवाह भी करते हैं तो उन अपने साथ रहना पसन्द करते हैं। इस परिवर्तन में नायर-परिवार का मानवगी आधार में परिवर्तन आया है और उनमें पायी जाना वाली अभावक अनुकूलित्व की प्रथा भी समाप्त हो गया है। हाँ, नायर विवाह और परिवार में मातृस्थानीयता (Matrilocality) की प्रथा में कोई विषय परिवर्तन नहीं आया

है¹ जिसके कारण, निश्चयपूर्वक यह नती कहा जा सकता है कि, नजदीक भविष्य में, गंधर परिवार वस ही पितृमत्तात्मक हा जायगा जस कि उत्तर भारत का परिवार है² ।

वर्तमान परिस्थितियों ने सयुक्त परिवार में विंगपत पितृवगी सयुक्त परिवार में, दो प्रकार के सघर्षों का जन्म दिया है जिनके कारण सयुक्त परिवार में विभाजन और विभूत्वन की अधिकता बढ़ गयी है। इन दो प्रकार के सघर्षों में एक का आधार आर्थिक (Economic) है और दूसरे का बचारिक (Ideological)। गहरो में रहने वाले छाया क लिये गाव में रहने वाले सम्पत्ति धरा का आर्थिक आश्रयकता का पूरा करना कठिन हो गया है और यदि उन्मा करना पटना है तो यह नागरिक लगता है। लेकिन यह दशा अधिकतर उच्चवर्गीय सयुक्त के लिये है। भारत के गहरो में कार्यवाना में काम करने वाले श्रमिकों का एक बड़ा भाग परिवार की सहायता करने या पारिवारिक कृषि के आर्थिक प्रशासन के लिये ही शहर में नौकरी करने आता है। उनका शोध कामों में यह पता चला है कि आर्थिक सघर्ष ने अभी तक वह गम्भीर रूप नहीं लिया है जितना कि साधारणतः समझा जाता है। कपाटिया के शोधकाम में सतालीस प्रतिशत ऐम लाग मिल जा अपन सयुक्त परिवार का आर्थिक भार वहन करने हैं और उस सतालीस प्रतिशत में दो तिहाई लाग एक है ना इस उत्तराधिकार के प्रति निष्ठा नहीं करते हैं³। हा, यह अन्वय है कि अपनी कमाई हुयी सम्पत्ति का तत्काल अपनी इच्छानुसार खर्च करना पसन्द करता है। बचारिक सघर्ष की समस्या समयानुसार अन्वय गम्भीर हो गयी है। कपित्तक स्वातन्त्र्य विचार दृढतर होता हुआ एकाकी परिवार का आर्थिक आधार तथा पश्चिमा गिना और उसमें उत्पन्न जीवन आश्रितों ने इन सघर्ष के वचन में योग दिया है।

नयी परिस्थितियों में, तरणाई और बाधक्य का, सघर्ष गुरु प्रथा और, नयी परिस्थितियों में निहित अविनवादी प्रवाहों के कारण तरणाई का प्राथमिकता मिली है नयी पीढ़ी के गणना न पुरानी पीढ़ी के लाग से उदारवाणी व्यवहार की मांग की। गिना जीर आर्थिक स्वातन्त्र्य मित्र के कारण, नारी ने उदारवाणी व्यवहार की अधिक मांग की। पुत्र्य का दत्तिकाण पहले की अपना अधिक उदारवादी हा गया

1 कपाटिया, क० एम० भरिज एष्ट फेमिली इन इण्डिया पृष्ठ 273-275

2 जहाँ तक कि पारिवारिक सत्ता के प्रयोग और उपयोग का सम्बन्ध है, कानधान की अवधि यह प्रतिष्ठा है। पिता ने कानधान का स्थान न तो सिद्धान्ततः दिया है और न व्यवहार में—कपाटिया वही पृष्ठ 270

3 वही पृष्ठ 270

है किन्तु नारी का नहीं हो पाया जिसके कारण मास-बहू के रूप में नारियों में वैचारिक मध्यम अधिक पाया जाता है। कपाडिया द्वारा उद्धृत के० टी० मर्वेंट के अध्ययन से यह विदित होता है कि पुरुषों की अपेक्षा नारियाँ समुक्त परिवार प्रथा के अधिक विरोध में हैं।

समुक्त परिवार में होने वाले इन अनेक परिवर्तनों के कारण वर्तमान भारत के शिक्षित वर्ग में साधारणतः यह माना जाता है कि अग्रजी राज तथा विघटनवादी यारापीय प्रभाव के सघात से, भारत में समुक्त परिवार का मत की समीक्षा विघटन हुआ गया है और शीघ्र ही वह भारतीय सामाजिक संगठन से लुप्त हो जायगा। इसी वर्ग के अधिकतर लोगो को यह भी मान्यता है कि समुक्त परिवार प्रथा आयु को प्रायमिकता देने तथा व्यक्ति को व्यक्तिगत विचार तथा व्यवहार स्वातंत्र्य न देने के कारण, अप्रजातन्त्रिय है। अतः, उसकी समाप्ति ही चाहिये। पानिकर के अनुसार, नारियाँ द्वारा सामाजिक जीवन के सिद्धांतों का पुनर्गरीक्षण वर्तमान हिंदू समाज के लिये एक महानतम चुनौती है जिसका परिणाम है समुक्त परिवार, जाति और ग्राम जमी समष्टिवर्ती संस्थाओं का स्वाभाविक विघटन। समुक्त परिवार का विघटन कुछ के अनुसार, वर्तमान भारत के सामूहिक इतिहास में पश्चिम के प्रभाव से उत्पन्न गत्यात्मक परिस्थितियों की स्वाभाविक प्रारम्भ है और किसी के अनुसार भारतीय समुक्त परिवार एक चरित्रक संगठन विघटन प्रक्रिया में हाता हुआ आज पुनः विघटन की ओर उन्मुख हो रहा है¹।

उनीसवीं सदी के जनगणना विवरण में प्रस्तुत आंकड़ों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि भारत में छोटे आकार की गृहस्थियों (Households) का अधिकतम अनुपात का पाया जाना इस बात का प्रमाण है कि आज भारतीय परिवार उस रूप में समुक्त परिवार नहीं रहा जिस रूप में वह परम्परानुसार पाया जाता रहा है और आज समुक्त परिवार से अलग होकर, एक अलग गृहस्थी वर्ग की प्रवृत्ति अधिक है। जनगणना विवरण के इस निष्कर्ष का समर्थन के लिये उसमें प्रस्तुत आंकड़ों की व्याख्या आवश्यक है। जनगणना में गृह (House) और गृहस्थी (Household) को अलग अलग इकाइयाँ माना गया है। गृह से तात्पर्य है उस भवन में जिसमें लोग रहते हैं और यदि एक भवन कई भागों में बाँट दिया गया है और प्रत्येक भाग का एक अलग प्रवेश द्वार है तो एक भवन को कई स्वतंत्र गृहों में बाँटा हुआ मान लिया गया है। गृहस्थी से तात्पर्य है उस मानव समूह से जिसके सम्बन्ध एक साथ रहते हैं और एक ही रसोई में भोजन करते हैं। इस प्रकार, जनगणना के लिये गृह और गृहस्थी का अलग अलग परिभाषाओं की गई हैं। इस

दृष्टिकोण से, एक भवन में, कई गृह हो सकते हैं और एक गृह में कई गृहस्त्रियाँ बस सकती हैं। गृहस्थों का आधार रसोई (चूल्हा) और सम्मिलित वासस्थान है न कि पारिवारिक सम्बन्ध।

सदस्य-संख्या (आकार) के आधार पर गृहस्थियों का चार श्रेणियों में बाँटा गया है—लघु (Small जिनकी सदस्य संख्या तीन तक है), मध्यम (Medium जिनकी संख्या चार से लेकर छ तक है), बृहत् (Large जिनकी संख्या नौ से अधिक से लेकर नौ तक है) और अति बृहत् (Very Large जिनकी संख्या नौ से अधिक है)। जनगणना के विवरण में दिए आँकड़ों के अनुसार, एक सामान्य भारतीय ग्राम में तृतीय प्रतिशत और शहर में अड़तीस प्रतिशत गृहस्थियाँ लघु आकार की हैं जो इस बात का प्रमाण है कि भारतीय परिवार की संयुक्तता समाप्त हो रही है। किन्तु, उसी जनगणना में ही दो हज़ार एक अरब सारिणी² से इस निष्कर्ष का स्पष्टण होता है —

1 सम्पूर्ण सारिणी इस प्रकार है —

सारिणी 6

गृहस्थियों की संख्या	सामान्य ग्राम में	
	सामान्य	शहर में
लघु (Small)	33	38
मध्यम (Medium)	44	41
बृहत् (Large)	17	16
अतिबृहत् (Very Large)	6	5
	100	100

2. यह सारिणी इस प्रकार है —

सारिणी 7

गृहस्थों में पाए जाने वाले सम्बन्ध		सौ गृहस्थियों की संख्या
अ { गृहस्थियों के प्रमुख	{ पुरुष (विवाहित)	71
		19
	{ पुरुष (विधुर)	10
		{ नारी
गृहस्थियों के प्रमुखों की पत्नियाँ		171
		108
गृहस्थियों के प्रमुखों के पुत्र		81
गृहस्थियों के प्रमुखों की पुत्रियाँ		189
		48
गृहस्थियों के प्रमुखों के पुरुष सम्बन्ध (पुत्रों के अलावा)		72
गृहस्थियों के प्रमुखों के नारी-सम्बन्ध (पुत्रियों के अलावा)		100

ह। दूसरी सारिणी में सौ गृहस्थियों के कुल सदस्यों के पारिवारिक सम्बन्धों का वर्गीकरण किया गया है। सौ गृहस्थियों की कुल सप्तस्य मर्यादा है चार सौ सत्तासी जिनमें गणत एम सदस्य है जिनका गृहस्थी के प्रमुख में सम्बन्ध अज्ञात है। शेष चार सौ अस्सी में एक सौ एकहत्तर गृहस्थियों के प्रमुख (Heads) और उनकी पत्नियाँ हैं, एक सौ सप्तस्य नवासी प्रमुखों के पुत्र और पुत्रियाँ हैं और एक सौ बीस एम पुत्र तथा स्त्री हैं जो प्रमुख के सम्बन्धी हैं ता है कि तु न ता के प्रमुख की पुत्रियाँ हैं और न उनके पुत्र। इस सारिणी से यह स्पष्ट होना है कि सौ गृहस्थियों में लगभग एक चौथाई ऐसे सदस्य हैं जो गृहस्थी के प्रमुख पर निर्भर हैं कि तु व उसके पुत्र या पुत्रियाँ नहीं हैं। यह एक चौथाई सदस्य निश्चय ही के सम्बन्धी हैं जो समुक्त परिवार के क्षेत्र में जाते हैं। इस प्रकार, जनगणना विवरण (19५1) में समुक्त परिवार के वर्तमान स्वरूप के विषय में निकाले गये निष्कर्षों में विरोध है। जनगणना विवरण (19५1) में जहाँ यह निष्कर्ष का उल्लेख किया गया है कि भारत में समुक्त परिवार समाप्त हो रहा है वहीं इस बात का भी उल्लेख किया गया है कि दुर्भाग्यवश पिछली जनगणनाओं में ऐसी सूचना नहीं हुई इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता है कि लघु गृहस्थियों का अनुपात घटा है या नही। भारत के विभिन्न भागों में लघु जाकार की गृहस्थियों जिस अनुपात से वे हैं यह भी निर्धारित नहीं किया जा सकता है। इससे यह स्पष्ट है कि स्वयं जनगणना विवरण का एक जनगणना में निकाले गए निष्कर्ष के विषय में निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है। बल्कि गृहस्थियों के जाकार के आधार पर यह भी निर्धारित किया जा सकता है कि भारत में परिवार की समुक्तता समाप्त हो रही है या नहीं।

उनीस सौ इक्यावन के जनगणना विवरण में जो जाकरे दिए गए हैं उनमें कई कमियाँ हैं। उनका पहली कमी यह है कि वे परिवार की गलत परिभाषा पर आधारित हैं। परिवार केवल सम्मिलित वासस्थान और रसाई पर ही आधारित नहीं है—परिवार का मुख्य आधार है परिवार में पाए जाने वाले सम्बन्ध और उनमें निहित विभिन्न क्वितियों के अन्तर्गत और कृत्य। जनगणना में केवल जाकार पर ही ध्यान दिया गया है और जाकार परिवार की अन्य विशेषताओं में से केवल एक विशेषता है जिनमें आधार पर ही समुक्त परिवार का स्वरूप नहीं निर्धारित किया जा सकता है। जिस आधार पर जनगणना में गृहस्थी का रसाई माना गया है उस आधार पर वे मजदूर भाग के गृहस्थी में गिन जायेंगे जो एक ही

द गृहस्थियों के प्रमुखों के गैर सम्बन्धी

{ युव
नारी

4

3

7

योग

497

या अलग अलग स्थानों से आया है किन्तु एक ही वास्तविकता में रहते हैं और एक ही चीज में खाना खाने हैं यद्यपि वे एक परिवार के नहीं हैं। दूसरे जमा कि पटल से होता आया है परिवार विभाजन के कारण बढ़ चोरी के वनन का जय यह नहीं है कि समुक्त परिवार वस्तुतः टूट गया है। चूल्हा बट जान के माँ की परिवार की समुक्तता बनी रहती है क्योंकि मजबूत परिवार वस्तुतः एक व्यावहारिक सामाजिक प्रेम है। जैसा कि पहल कहा जा चुका है ज में विवाह मृत्यु पर जोर और मोहरे के अवसर पर परिवार की समुक्तता तब उभर जाती है जब विभाजित परिवार के सदस्य एकसाथ एकन हात है और अपनी पितृवगी संपन्नता का प्रयोग करते हैं। वास्तव में जसा कि पहल हुआ है आज भी जाति अंतर्वेदाहारी परिवार की समुक्तता का राते हुए है क्योंकि जाति अंतर्वेदाहारी के कारण जाति एक विस्तृत सम्बन्धवर्ग (Extended Kin Group) हो जाता है जिसमें विभिन्न मातृवगी या पितृवगी पारिवारिक समूह का स्वतः महत्ता मिल जाती है। यही कारण है कि जाति व्यवस्था में उम यमिन का विवाह एक समझा है या एकाप एक जाति और एक समुक्त परिवार का विविक्त सदस्य न हा। जिस यमिन (पुरुष अथवा स्त्री) के पारिवारिक सम्बन्धियों का विस्तार का ठीक ठीक पता न हा वह, सामाजिक मर्यादाओं के अनुसार, अवरणाय है। तीसरे इन जाका ग यह पता नहा चलता है और न जनगणना में टसक जानने का प्रयत्न ही किया गया है कि जिस आकार वाला गृहस्थी में भारतीय जनसंख्या का क्या प्रतिगत पाया जाता है। बहुत सम्भव है कि यदि आवट इन्कट किये जाय ता उनमें यह पता चर कि भारतीय जनसंख्या का अधिकतम अनुपात बडे आकार वाले गृहस्थियों में रहता हा। चौथे इन आकडा से ता वस्तु स्थिति निम्बरती है, वह वास्तविक नहीं है। उदाहरणाय जनगणना के आकडा के अनुसार भारत के एक सामाजिक गाव में प्रत्येक सामने परिवार का सम्पूर्ण संख्या तीन से अधिक नहीं है अर्थात् एक तिहाई परिवारों को सम्पूर्ण संख्या केवल एक से लकर तीन तक है। यह स्थिति असम्भव सी लगती है और इमकारण इन आकडा का प्रामाणिक नहीं माना जा सकता है।

ये आकडा वास्तव में दापपूर्ण जनगणना का परिणाम है। सम्मिलित चूल्हा और वास्तविकता के आधार पर जनगणना में जिस गमट का गम्भीर मानवर उत्सवा परिवार का प्रतीक मान लिया गया है वह समूह वस्तुतः परिवार का प्रतीक नहा है। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से परिवार न हा कवा आकार में समाया है न सम्मिलित वास्तविकता में और न सम्मिलित सम्पत्ति के सम्मिलित में। इन सभी विचारों का सार-सार, समुक्त परिवार मूलतः समाया भारत के परम्परागत पारिवारिक सम्बन्ध जाल परिवार के सम्मिलित परम्परागत पारस्परिक सामाजिक भूमिकाओं (Social Poles) उनके पारस्परिक अधिकारों (Rights) और दायित्वों (Obligations) में तथा उन मजबूत मनोवृत्तियों में, जिनके कारण, एक मानव

अथवा पितृवर्ग के सदस्य, अपने सम्बन्धी में सामाज्य का अनुभव करते हुए सुगठित सामाजिक इकाई के रूप में रहते हैं।

हाल में किए गए समाजशास्त्रियों के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि आज भी समुक्त परिवार भारतीय सामाजिक संगठन का अंग है और आज भी भारतीयों के व्यवहार तथा उनकी मनोवृत्तियाँ में समुक्त परिवार-संरचना का प्रभाव बना हुआ है। के० टी० मर्चेण्ट के तथा अपने अध्ययन का हवाला देते हुए कपाडिया¹ लिखा है कि उच्च शिक्षा से समुक्त परिवार का विघटन नहीं हुआ है। सूरत जिले के नवसारी शहर और उसके आसपास पाट्टह गाँव में पाये जाने वाले परिवारों की संरचना का विश्लेषण करते हुए कपाडिया ने लिखा है कि शहर और गाँव में समुक्त तथा एकाकी परिवारों की संख्या लगभग बराबर है किंतु यदि पारिवारिक जीवन के कलाप (Pattern) के दृष्टिकोण से जांच की जाय तो पता चलता है कि अध्ययन के लिए जिन लोगों से सम्पर्क स्थापित किया गया था, उनका अधिकांश प्रतिशत समुक्त परिवार में रहता है। कपाडिया के निष्कर्ष के अनुसार आज एकाकी परिवारों की संख्या बढ़ गई है, परिवार का आकार पहले की अपेक्षा कम हो गया है और सम्मिलित वासस्थान सम्मिलित रसोई तथा सम्मिलित सम्पत्ति वाला तीन

- 1 के० टी० मर्चेण्ट ने 1930-32 में परिवार सम्बन्धी मनोवृत्तियों में आने वाले परिवर्तनों का अध्ययन किया था। उनके अनुसार अध्ययन के लिए, जिन चार सौ छियालीस स्नातकों (Graduates) से सम्पर्क स्थापित किया गया था उनमें से दो सौ सत्तर समुक्त परिवारों में रहते थे और एक सौ पत्तीस एकाकी परिवारों में। समुक्त परिवारों में रहने वालों में से एक सौ उन्नीस इनके पक्ष में थे और एक सौ एक उससे विपक्ष में। एकाकी परिवारों में रहने वाले लोगों में सत्तालीस समुक्त परिवार के पक्ष में थे और तेईस विपक्ष में। एक सौ निरीपण गैर-स्नातकों (Non Graduates) में उ सत्त समुक्त परिवार में रहते थे और बहतर एकाकी परिवारों में और समुक्त परिवार निवासियों में सत्ताइस इससे पक्ष में थे, चौसठ विपक्ष में और दस अनिश्चित। अध्ययन के लिए जिन व्यक्तियों से सम्पर्क स्थापित किया गया था, उनका औसत प्रतिशत समुक्त परिवार में रहता है और कुल का 43.2 प्रतिशत समुक्त परिवार में रहने के पक्ष में था। गैर स्नातकों की अपेक्षा स्नातकों (Graduates) में समुक्त परिवार में रहने वालों की संख्या अधिक थी। कपाडिया के एक अध्ययन के अनुसार पाँच सौ तेरह स्नातकों में 57.3 प्रतिशत समुक्त परिवार में रहते थे और समुक्त परिवार निवासियों में 91 प्रतिशत में समुक्त परिवार का वांछित माना और 83.3 प्रतिशत ने उसे बनाए रखने की इच्छा प्रकट की—कपाडिया पृष्ठ 2960

पीढ़ों का समुक्त परिवार वृद्धतायन स नहीं मिलता है फिर भी, एक्यगी व्यक्तिता और उनके परिवारों में भावनात्मक सम्यक्ता बना हुयी है। जहाँ समुक्त परिवार के विभाजन से सम्पत्ति बंट जाती है और इसप्रकार अस्तित्व में आये हुए एकाकी परिवारों के सदस्य अलग-अलग खाने बसाते और रहते हैं, वना भी परिवार के सदस्यों में पारस्परिक सहयोग अधिभार और दायिबा (Obligations) के द्वारा सम्यक्ता बनी रहती है। जहाँ विवाह, मृत्यु आदि पक्षों और स्वाहाएँ ऐसे अवसर हैं जब एक ही बंधन में उत्पन्न परिवार के सदस्य परस्पर सहयोग करते हैं। जहाँ, एक परिवार के सदस्य बच्चे को परिवारों में बंटकर बड़े गाँवों में बंट जाते हैं वहाँ भी, जिनमें एक परिवार में ज्ञान वाले व्यक्तियों की मृत्यु के समय सभी परिवारों के लोग एकत्र हाते हैं और मृत्यु के दिन प्रत्येक परिवार का एक व्यक्ति अपना मिर मुँहवाता है। इसप्रकार समुक्त परिवार जाति की आधार प्रदान करता है और जाति समुक्त परिवार का।

आज १० वें साल के अनुसार जनगणना के आँकड़ों से निकलने वाले निष्कर्ष और वास्तविकता में अंतर है और उसका प्रधान कारण है जनगणना लक्षकों की समुक्त परिवार निषेधक मूलतः योजना। व्यक्ति का परिवार की सम्पत्ति में और परिवार से अलग ज्ञान का अधिभार अश्रेणी राज की स्वयंसेवा के बन्धन पहलू से प्राप्त है। फिर भी समुक्त परिवार टूट नहीं बल्कि निरंतर बंधन और विघटता रहा। आज भी भारतीय सामाजिक ढाँचा में, 'बुढ़ा', 'बुढ़ा' और बुढ़ाएँ जमी एकजुटी सम्पत्ति इनाया (Unilateral Kin Group) हैं जिन पर व्यक्ति निर्भर है और कठिनाइयों में उसी का आधार बना है। भारत में सामाजिक सुरक्षा का वायदा अब भी उस अवस्था में नहीं पहुँचा है कि जिन समुक्त परिवारों में पूर्णतया अन्त हो जाय। महत्त्वपूर्ण के अनुसार, आज से नए व्यक्ति जन्म पाएँगे वना समुक्त परिवार विभाजित हुआ रहा है व्यक्ति, फिर भी, उसकी समुक्तता बनी रही है।

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से यह मायना निम्नलिखित हैं कि किस प्रकार वर्तमान माराप में औद्योगीकरण और स्थानांतरण से उत्पन्न गतिविधियों ने एकाकी परिवारों का जन्म लिया है और परिवार पर व्यक्ति का निर्भरता का घन कर दिया है वना ही, भारत में मृत्यु परिद्वानकारी गतिविधियों में समुक्त परिवार का विघटन कर रही है। समाज परिवर्तनकारी गतिविधियों का विभिन्न समाजों में समान परिवर्तन का ही जन्म नहीं लेती है। योराप की प्रौद्योगिकी और औद्योगीकरण का अपना करके भी जायान माराप की प्रतिद्विष्टि नहीं बना। सामाजिक परिवर्तन परिवर्तनकारी गतिविधियों के जलाने से गति पर अन्तिम निर्भर करता है जिसे सामाजिक परिवर्तनकारी गतिविधियों का प्रभाव किसी प्रमय पर पड़ता है। यदि परिवर्तनकारी गतिविधियाँ तेजी से जाती हैं तो समाज परिवर्तन हुआ है। यदि परिवर्तनकारी गतिविधियाँ धीरे धीरे जाती हैं तो, समाज परिवर्तन के स्थान पर, धार धीरे रूपान्तरण

जाना है। भारत में मध्यम परिवार का विकास न होकर स्थापित हुआ है।

भारत में औद्योगिकीकरण, शहरीकरण और स्थानांतरण जैसी परिवर्तनकारी शक्तियाँ का प्रभाव धीरे-धीरे हुआ है। इस कारण, भारत की सामाजिक समस्याएँ एक ओर स्थापित हैं और दूसरी ओर ये परिवर्तनकारी शक्तियाँ और उनसे उत्पन्न होने वाले सामाजिक परिवर्तन भारत की मध्यम प्रभावित हुआ है। जैसा कि याराबाय प्रभाव से जाँचिक समस्याओं में होने वाले परिवर्तन का वर्णन करते समय किया गया है अर्थात् राज में भारत का औद्योगिकीकरण हुआ ता ही किन्तु धीरे-धीरे। इसी कारण, भारत में शहरीकरण की मात्रा ता कम रही है किन्तु शहरों का विकास मज्जा हुआ है जिससे ग्रामीण जीवन की जनक विपत्तय शहरी मण्डल में समा गई। कृषि जाँचिक व्यवस्था, जाति प्रथा का विकास प्रथा गिना की कमी भाषा तथा मस्तिष्क की भिन्नता और उत्तराधिकार के नियमों के कारण भारत में स्थानांतरण और आंतरिक घटिष्णुता (Internal Mobility) अप्रकृत कम रही है। फलतः भारत के कारणों में काम करने का संकट हजारों मजदूर अपने गाँव और परिवार से बंध रहे हैं। परिवार के प्रत्येक व्यक्ति का परिवार की खेती और सम्पत्ति में अधिभार रहना है। जाति अंतर्विवाहों के कारण विवाह के लिए प्रत्येक व्यक्ति का अपना गाँव और परिवार में टोटकर आना पड़ता है। भारत में गाँव से शहर की ओर जाने वाला स्थानांतरण योग्य से भिन्न रहा है। ऐसा देखा गया है कि ग्रामीण परिवार पर हाँ जाने वाले बच्चों का चुकाने के लिए या पारिवारिक कृषि की पूँजी सम्बन्धी समस्या का हल करने के लिए परिवार का एक व्यक्ति शहर जाने का तरीका या व्यवसाय करता है। ऐसा भी देखा गया है कि यदि एक परिवार में तीन भाई हैं तो सबसे बारी से शहर जाने का काम करता है जो घर पर रहने वाले व्यक्ति कृषि का काम किया करते हैं। भारत में व्यक्ति का शहरों का ओर स्थानांतरण हुआ है किन्तु व्यक्ति का साथ साथ उच्च गाँव और जाति का भी शहर में स्थानांतरण हुआ है। यही कारण है कि प्रत्येक शहर में एक श्रेणी विशेष में शामिल हुए व्यक्ति बंधा एक जाति विशेष का होने का कारण है और प्रत्येक शहर में एक जाति विशेष का एक चमार जाति (शाम) के मध्यम विज्ञानों के पास पागे में जाए हैं और दूसरी जाति (जाति) के मध्यम शक्ति के नाम-शाम में। उनका साथ साथ जाँची जाति पचायत जाति में जो शहरीकरण तथा उत्तराधिकार नियमों के साथ साथ मध्यम परिवार के आधारों में।

५

भारत में मध्यम परिवार

भारतीय मध्यम-परिवार के मण्डल में एक ओर से देश में शहरीकरण और दूसरी ओर से उन समस्याओं सामाजिक उत्तराधिकार का मण्डल हुआ है जिसका कारण और परम्परा

(Tradition) के आधार पर निरूपण हुआ है। किंतु, जसा कि डिमाम्बीन ने कहा है, यह समझना भूल हायी कि मुस्लिम-परिवार क सामाजिक तत्वों का निमाण और निरूपण मुहम्मद ने ही किया है। मुस्लिम परिवार की सामाजिक रूपरखायें, वस्तुतः, उस प्राचीन ज़रव-परिवार पर आधारित हैं जिस हज़रत मुहम्मद ने एक उच्चतर मजहबवी ढांचे में लान का प्रयास किया था। इस्लाम के अन्वय के पहले का अरबी सामाजिक संगठन गणजातिया (Tribes) में विभक्त था। ये गणजातिया निरंतर आपस में टूटती रहती थी। गणजाति (Tribe) के सामाजिक जीवन का केंद्र था परिवार। निरंतर युद्धतर सामाजिक जीवन की आवश्यकता था परिवार में पुत्रों की अधिकता क्योंकि पुत्रों की अधिकता से ही सुरक्षा और अतिजीवित (Survival) सम्भव था। इसी आवश्यकता के कारण, एक ओर, प्राचीन ज़रव परिवार में ब्याआ का जीवन गूँड देने की प्रथा का अन्वय हुआ था और दूसरी ओर परिवार की सस्या बढ़ाने के लिए बहुपत्नीत्व की प्रथा का। इस्लाम के पहले अरब में मातसत्तात्मकता और पितसत्तात्मकता की प्रणालिया पायी जाती थी यद्यपि, मुहम्मद के समय, पितसत्तात्मकता का प्रभाव प्रधान हान लगा था। हज़रत मुहम्मद ने ब्याआ की पितृ सत्तात्मकता की प्रथा की भत्सना की, बहुपत्नीत्व को चार पत्नियों तक सीमित करके बहुपत्नीत्व की प्रथा का सङ्कुचित करके एक विवाह के आदेश का प्रतिपादन किया और पारिवारिक संगठन को पितसत्तात्मक बनाया। मातसत्तात्मकता और मातवशीयता (Matriliny) के कारण, अरबों में, नायनों की भाँति, भ्रातृत्व बहुपत्नीत्व पाया जाता था जो इस्लाम के प्रभावों के अंतगत समाप्त हुआ। मुस्लिम परिवार विनापत अरबी मुस्लिम परिवार में, मातुल (मामा खाल) का जो महत्वपूर्ण स्थान मिला हुआ है वह मुस्लिम परिवार के प्रारम्भिक मातसत्तात्मक आधार का ही प्रमाण है¹।

इस्लामी प्रभाव में प्राचीन ज़रव के बन्दू परिवार के आधार पर मुस्लिम परिवार के जिन संगठन का अन्वय हुआ है, वह पितसत्तात्मक (Patriarchal) पितृवंशी (Patrilineal) और पितृस्थानीय (Patrilocal) परिवार है, यद्यपि इस्लाम के प्रसार में देखा गया की स्थानीय परिस्थितियों ने उन प्रभावित किया है। परिवार का कर्ता पुत्र होता है। परिवार का कर्ता का परिवार, उसकी सम्पत्ति, पत्नियाँ और उनकी सन्तानों तथा परिवार के गुलाम (Slaves) पर पूर्ण अधिकार होता है। यदि यह सिद्ध हो जाय कि कोई सन्तान कर्ता की सन्तान नहीं है तो उस पर उस व्यक्ति का अधिकार होता है जो उस सन्तान का वास्तविक पिता होता है। इस्लाम के सिद्धांत के अनुसार, गुलाम का भी अपन कर्ता का सम्पत्ति में स्थान

1) गाडीक्याय, डिमाम्बीन मुस्लिम इस्टीमेट्स पृष्ठ 127। गुस्तेरो, ए० एम० ए० आउटलाइस आफ इस्लामिक कल्चर पृष्ठ 510

मिलता है और यदि कोई स्त्रिय गुलाम लावारिस मर जाय तो उसकी सम्पत्ति को उमक बना को मिलने का विधान है। गुलामा के साथ-साथ, परिवार म रखली पनिया (Concubines) का भी स्थान है। रखली पत्नी को मत्तान का बर्ता की सम्पत्ति म उतना ही उत्तराधिकार है जितना कि व्याही स्त्री या स्त्रियो की सत्तान अथवा मत्ताना का। हजरत मुहम्मद के एक आदगानुसार ' सत्तान पर उमक मा वाप का अधिकार है। तुम्हारा उन पर अधिकार है और उनका तुम पर। उन्हें तुम्हारे प्रति वफादार रहना चाहिए और तुम्हें उनके साथ दयापूर्ण प्रेम का व्यवहार करना चाहिए'। बर्ता के लिए सभी सत्तानें समान हैं। पुम्प-बता इस्लाम की मायताआ के अनुसार परिवार का पापक है। अतः उमके उत्तरदायित्व क साथ साथ, उसक अधिकार भी गौरा की अपना अधिक हैं। किन्तु साथ ही साथ नारी का भी परिवार-मगठन म प्रमुख स्थान मिला आ है'। मुस्लिम परिवार की सबसे बड़ी विगपता है स्त्री का मिलन वाला द्विपत्नीय उत्तराधिकार और व्यक्तिव सम्पत्ति का अधिकार जो कपाडिया के अनुसार अरबी नारी के मातमनायो विगपा-धिकारो का इस्लाम का पितमत्तात्मक परिवार मरचना म ऊध्वगमो विकास = 3।

इस्लाम म प्रतिपादित उत्तराधिकार क नियमो के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मुस्लिम परिवार का केन्द्र बर्ता उसकी स्त्रिया (व्याही और रखली) और उनकी सत्तानें हैं। यद्यपि साथ ही-साथ गुलामा तथा सत्तान क अतिरिक्त अय वगजा (Descendants) जीवित पूजजा (Ascendants) और पितवगी सम्बन्धिया (Collaterals) का उत्तराधिकार देकर परिवार क विस्तृत रूप का भी स्वीकार किया गया है। इस विस्तार का आधार, मुख्यतः पितवगी और पितमनात्मकता है। इसका प्रमाण है पिता की सम्पत्ति म बहिन भादया का मिलन वाला उत्तराधिकार। मुस्लिम परिवार की मरचना म निहित पितसत्तात्मकता का पता हम बात म चलता है कि एक आर पिता की सम्पत्ति म भाई बहिनो का उत्तराधिकार मिला आ है किन्तु दूमरा और बहिन का भादया क विस्स का आधा भाग मिलता

1 गुस्तरो, ए० एम० ए० वही पृष्ठ 509

2 इस्लाम क विद्यायियों की यह मायता है कि इस्लामी विधि (Law) और परम्परा (Tradition) स पति को पत्नी और सत्तान पर निरपण (Absolute) अधिकार मिलता है और पति का स्तर पत्नी की अपना उच्चतर (Superior) है— डिमार्शोन वही पृष्ठ 132

3 कपाडिया, ए० एम० वही अध्याय 9

4 गाहोश्राय डिमार्शोन क अनुसार असली सत्तान वही है जो माहागरात (कुल Consumption of Marriage) क छ महीने बाद या उम विच्छद (Dissolution) क चार साल तक उत्पन्न हो वही पृष्ठ 136

है। कता का सम्पत्ति में उसके पुत्र अथवा पुत्रा को प्रत्यक्ष उत्तराधिकार है और उसकी लड़की अथवा लड़कियों को पुत्र अथवा पुत्रा के हिस्से का आधा भाग मिलता है। पुत्रा की सरया जितनी ही अधिक होता है लड़की का भाग उतना ही कम हो जाता है। यदि कता के एक ही पुत्र हो तो लड़की को कता की सम्पत्ति का एक तिहाई भाग मिलता है और यदि दो लड़कें हों तो पाचवा भाग। लड़की के हिस्से में आने वाला भाग कता की लड़कियाँ में उनकी सहयानुसार बराबर बंट जाता है।

हिंदू-संस्कृत-अनुसार इस्लामी उत्तराधिकार विधि (Law of Inheritance) कुरान द्वारा प्रतिपादित हुयी है और कुरान में प्राचीन अरब की उत्तराधिकार विधि का अपना लिया गया है। अतः इतना है कि प्राचीन अरब में पितृवर्गी उत्तराधिकार को प्राथमिकता मिलती थी जबकि कुरान में नारी का भी उत्तराधिकार दिया गया। फिर भी इस्लामी विधि (Muslim Law) में उत्तराधिकार का प्राथमिकता पितृवश (Paternal Line) में ही है। पितृवश में पुरष (पुरुष) और लड़कियाँ (अर्द्धरात) आते हैं। इस्लामी विधि के अनुसार एक आर स्वाभाविक उत्तराधिकारी आते हैं और दूसरी आर विगण उत्तराधिकारी (Privileged Inheritors) जिन्हें कता की सम्पत्ति में से एक निश्चित (Fixed) हिस्सा मिलता है। विगण उत्तराधिकारियों में लड़कियाँ पुत्र अथवा पुत्रा की लड़कियाँ (प्रपौत्रियाँ) माता पिता, दादा (Grand Father) दादी (Grand Mother) बहिन या चणरी बहिन (Sisters German) सातली बहिन (पिता की आर से) बहिन माँ (माता की आर से) विधुर (Widower) और विधवा (Widow) आते हैं। उनके अतिरिक्त पितामह (Grand Father) और अन्य जीवित पूज्य, पितृवर्गी बंधु वा धव (Collaterals of Any Degree) भी उत्तराधिकारियों में आते हैं। यदि कता व्यक्ति किसी का कभी गुलाम रहा हो किन्तु कता में स्वतन्त्र हो गया हो और यदि उसका दादा उत्तराधिकार न हो तो उसकी सम्पत्ति उसका मालिक को मिलती है। यदि किसी व्यक्ति का कोई उत्तराधिकारी न हो तो उसकी सम्पत्ति राज्य काय में चली जाती है। यदि कोई व्यक्ति चाहता है वह अपनी सारी सम्पत्ति पुण्यकाय के लिए बचप का दान कर सकता है।

परम्परा मुस्लिम परिवार में एक आर कता का निरपेक्ष अधिकार मिले हुए है और, दूसरी आर, उसकी सम्पत्ति पर, उसकी मृत्यु के बाद एक विस्तृत सम्पत्ति का उत्तराधिकार मान लिया गया है। ऐसी रीति में परिवार की सरचना में समुक्तता का बड़ा आधार नहीं रह जाता है। परम्परागत द्वि-परिवार में है। भारत में मुस्लिम विधि प्रणाली का ही लागू किया गया है। भारत के विभिन्न स्थानों की दशा परम्पराओं में और अंग्रेजी राज के मघात में मुस्लिम

1 गांधीप्रयाग, हिंदू-संस्कृत धर्मी अध्याय ७

परिवार व मगठन जोर सरचना को किस प्रकार प्रभावित किया है, इस विषय में निश्चिततुक्क बहू सकना कठिन है क्योंकि, भारत में इस अष्टिकाण में मुस्लिम परिवार का समाजास्त्रीय अध्ययन नहीं किया गया है। तुर्की जम दगा में यारोपीय प्रभाव पडा है और यारोपीय दग व परिवतन भी आण है। तुर्की में हान वाल परिवतनो का वणन मिलता अवश्य है कि तु उसस प्रतिष्ठित मुस्लिम परिवार (Classical Muslim Family) में हान वाल परिवतनो का पता चलता है न कि भारत में हाने वाल परिवतन का।

६

जाति

जाति त्रिवाह जोर परिवार की भाति यारोपीय सघात से उत्पन्न परिवतनकारी गक्तिया व प्रभाव में आई है, किन्तु जिस प्रकार यारोपीय सघात के अलग विवाह और परिवार का परिवर्तित अन्विकास हुआ है उमी प्रकार, जाति का भी परिवर्तित अन्विकास हुआ है। अग्रजी राज व मायम से पडने वाले यारोपीय सघात में जमा कि पिठल वणन से स्पष्ट है भारत की आर्थिक यवस्था बदली उत्तरवादा प्रगतिक के जादस का प्रसार हुआ बतानिक प्रौद्योगिकी का उत्तरातर अपनाया गया गहरीकरण और औद्य गीकरण बत प्रगतिक व आधार बतन भारतीय विधि प्रणाली व निवचन और प्रगतिक का यारोपीय बधानिक मा यताजा व समवय में लान का प्रयाम किया गया यतायात और सत्पेगहन व साधना का उत्तरातर विकास हुआ सामाजिक, भौमिक और जातिक चलिष्णुता पहल की जप में जोर भी जबिक प्रवर हुई तथा इगान्यत जोर इस्लाम व मम्मिलित प्रभाव न वयविद समानता व विचार का और भी व्यापक तथा व्यावहारिक बनान पर जाण किया। जाति व सभ में गग विकास व मम्मिलित प्रभाव व क परिणाम निरूप — एक जाति व परम्परागत सामाजिक जाधिर जाधार हा व दा जाति भारतय समाज की एक सामाजिक समस्या बन गई, तीन जाति सस्या का सामाजिक एतिशानिक कार्यात्मक तथा दानिक पनपरा ण प्रारम्भ हुआ, तार, समाज मुधार आ णना का विकास हुआ जिनमें एर आर जाति का सप्रगतानिक और अमानवीय कथर उम नष्ट करन पर जाण कर वण सिष्ठान का अपनापन पर जाण किया गया और दूगरी आर जाति मगठन को ही समाज मुधार जादालन का माध्यम बनान पर जोर दिया गया पाच गदवर्णी जानिया में जाति विराधी, यस्तुत श्रापण विराधी आणोलना की उत्पत्ति हुई और गदवर्णी जातिया का

अखिल भारतीय स्तर पर मगठित हान की प्रेरणा मिली जिसके फलस्वरूप गुरुवर्षी जातियों की सामाजिक समस्या राजनितिक समस्या बन गई छ आर्थिक तथा राजनितिक अधिकारों का प्राप्त करन के लिए विभिन्न जातियों में प्रतिस्पर्धा प्रारम्भ हुई जिससे अन्ताराष्ट्रीय तनाव और संघर्ष को प्रोत्साहन मिला। इन परिवर्तनों का परिणाम यह निकला कि जाति में एक ओर विघटन और दूसरी ओर संघटन का चिन्तन प्रारम्भ हुआ। विघटन और संघटन प्रक्रियाओं का प्रतिघात से उत्पन्न परिवर्तन प्रक्रिया जाति गत्यात्मकता का मूलाधार रही। अन्तर्गत है कि पारोधीय संघर्ष ने इस प्रक्रिया को और भी प्रबल बना दिया जिसके फलस्वरूप जाति में तभी से परिवर्तन भी आये और जाति की सामाजिक दृढ़ता भी मिला।

पारोधीय संघर्ष से जाति में उत्पन्न हुए परिवर्तनों की ठीक ठीक माहौल का परिभाषा और जाति क्या है? यह एक विचारप्रसन्न प्रश्न रहा है क्योंकि विशेषतायें जाति एक बहुमती जटिल सामाजिक प्रमेय है। जाति की परिभाषा करने के प्रयास में मातृशास्त्रिया तथा समाजशास्त्रिया ने जाति का अनेक विवेचन करने की विचारित किया है जिनके आधार पर जाति का परिभाषात्मक विवेचन किया जा सकता है। एक जाति भारतीय सामाजिक संरचना का एक प्रतिष्ठा समूह (Status Group) है—एक समूह का अन्तर्विवाही होता है, जो परम्परा में एक या एक से अधिक पेशों से सम्बन्धित होता है जिसके सदस्य सामाजिकता जाति पंचायत के अन्दर मगठित हान है, जिसकी सदस्यता जन्म मात्र होती है जिसके सदस्य अपने विविष्ट खान पान के नियम तथा कर्तव्य (Rituals) होते हैं और जिसका सामाजिक संरचना में एक परम्परागत पद (Status) और सामाजिक तथा आर्थिक भूमिका होती है। जाति एक नहीं अनेक हैं। भारतीय समाज जातियों में बंटा हुआ है। सभी जातियाँ भारत की परम्परागत विद्वत् चरित्रगुण सामाजिक संरचना प्रणाली में बंटे हैं। प्रत्येक जाति की एक विविष्ट सामाजिक-आर्थिक भूमिका होती है। अन्तर्गत, समाज में, परम्परा में निर्धारित एक सामाजिक आर्थिक भूमिका का निर्वाह हुए प्रत्येक जाति के जातियों पर निर्भर करती है क्योंकि प्रत्येक जाति की आर्थिक सामाजिक तथा कर्मकाण्डी आवश्यकताएँ एक जाति पर पूरी होती हैं। जाति इस अर्थिक, एक विविष्ट समूह के अन्दर भारतीय समाज में पाये जाने वाले अनेक विभाजन का आधार है।

जाति की इन बहुमती सामाजिक विवेचनाओं के कारण जाति की विभिन्न विशेषताओं से परिभाषा की गई है। इरायता क्यों के अनुसार, जाति अन्तर्गत आर्थिक मूल्य एक अन्तर्विवाही समूह है क्योंकि जाति अन्तर्विवाही ही जाति की सामाजिक सीमाएँ निर्धारित करती है। उनके अन्तर्गत से पता सामाजिक प्रतिष्ठा (Social Status) आर्थिक भूमिका कर्मकाण्डी अन्त

(Ritual Status) जाति की विशेषतायें हैं जवश्य किन्तु ये विशेषतायें उतनी प्रधान नहीं हैं जितनी कि जाति अंतर्वैवाहिकी। जाति की सामाजिक प्रतिष्ठा परिवर्तनशील है। पेशा परिवर्तन से जाति परिवर्तित नहीं होता है जबकि जाति अंतर्वैवाहिकी का नियम का उल्लंघन जाति परिवर्तन का एक उत्तरदायी रहा है। इसी दृष्टिकोण से, श्रावती के अनुसार जाति वस्तुतः एक विस्तृत सम्बन्धी-समूह (Latented Kin Group) है क्योंकि अंतर्वैवाहिकी का कारण, प्रत्येक जाति के सदस्य परस्पर सम्बन्धित रहते हैं। जाति गोत्रात्मकी रहती है। गोत्र का आधार रक्त सम्बन्ध है। अतः, गोत्रात्मक रूप में वैदिकविधानों के समूहों में विभिन्न जाति एक अंतर्वैवाहिकी समूह है। गोत्र वैदिकविधानों तथा जाति-अंतर्वैवाहिकी के सम्मिश्रण से जाति एक ऐसा समूह बन जाती है, जिसके सदस्य प्रत्यक्षतया अप्रत्यक्षतया परस्पर सम्बन्धी होते हैं। जाति की परिभाषा में अंतर्वैवाहिकी पर जोर देने का कारण, श्रावती के मत में, उपजाति नाम की वस्तु ही नहीं है। भारत की उपजाति की धारणा किशोरिया का दान है क्योंकि मरुत और पाली साहित्य में उपजाति (Sub Caste) के पयाय नहीं पाये गए हैं। उदाहरणार्थ चमारों में कुरोल भूमिया, जाटिया तसवार जस अन्नक अंतर्वैवाहिकी समूह पाये जाते हैं। श्रावती के दृष्टिकोण में ये समूह उपजातियाँ नहीं जातियाँ हैं क्योंकि इनमें से प्रत्येक अंतर्वैवाहिकी समूह। चमार जाति के स्तर पर जान का कारण यह एक विशेष सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त है। श्रावती के मत में निम्न वर्ग का अस्वीकार नहीं किया जा सकता और यदि हम मत का अनुसरण किया गया तो भारत की जातियों का चार बड़ी श्रेणियाँ में वर्गीकरण किया जा सकता है। ये समूह हैं ब्राह्मण-जातियाँ क्षत्रिय जातियाँ, वश्य जातियाँ और शूद्र जातियाँ।

भारतीय सामाजिक संरचना में जाति और वर्गों का उतना ही आधारभूत सम्बन्ध है जितना कि जाति और अंतर्वैवाहिकी का। किन्तु उतना कि हमने देखा है कि जाति और अंतर्वैवाहिकी का वास्तविक सम्बन्ध है और न जाति और वर्ग में। अधिकतर विद्वानों ने सफ़ील्ड की इस धारणा का अस्वीकार किया है कि बयल पेशा ही जाति संरचना का आधार है किन्तु वास्तव में जाति और वर्गों के सम्बन्धों को एकत्रित करने का स्वीकार किया है। इनमें किये गए भारतीय ग्रामों में अध्ययन से यह सम्बन्ध और भी स्पष्ट हुआ है। एक शहर भावरी के अनुसार, प्रत्येक जाति (अंतर्वैवाहिकी समूह) परम्परानुसार एक एक वर्ग में सम्बन्धित है। जैसा कि कुम्हार वर्ग में शूद्रों चमार, लोहार गुनार गुतार (धर) जाति धोबी और गहरिया इत्यादि जाति नामों

जि स्पष्ट है जाति और पेशे का सम्बन्ध बहुधा जाति नाम से ही निहित रहना है। किन्तु सभी जाति नामों में जाति और पेशे का सह सम्बन्ध परिलक्षित नहीं होता है। जहाँ जाति-नाम पेशे का परिलक्षित नहीं करता है वहाँ भी परम्परानुसार जाति पेशे से सम्बन्धित होती है चाहे जाति के सदस्य उस पेशे का करने का या न करने हो। उदाहरणार्थ मालवा के जिन गाँव का माथुर न अध्ययन किया है उसमें श्रीमोह ब्राह्मण, राजपूत, खाती धावा बागड़ी बरगुण्ड और भगी ऐसी जातियाँ हैं, जिनके नामों में उनके पेशों का आभास नहीं है। किन्तु परम्परानुसार उनके भी पेशे हैं—ब्राह्मण पुराहिनाई करते हैं राजपूत जोर खाती खेती, बागड़ी चटाई बनाते हैं और बरगुण्डा टोकरों बनाने तथा भगी सफाई का काम करते हैं।

जाति और पेशे का सह सम्बन्ध का एक अर्थ यह है कि जाति उच्चोच्च परम्परा (Caste Hierarchy) तथा पेशे उच्चोच्च परम्परा में वैसे ही परम्परागत सह-सम्बन्ध है जैसे जाति और पेशे में। माथुर न गाँव के सार पेशों का तीन श्रेणियों में बाँटा है—गुड अगुड और अगुडतम। पुराहिनाई अयापन, जमींदारी, बगार, दुकानदारी महाजनी कृषि और पशुपालन दर्जीधोरी, लाहारी, बढईगीरी, कुम्हारी नवाई (नाई का काम) जमश गुड पेशों की श्रेणी में बाजा बजाना, तली का काम कपडा बुनना, टोकरों तथा चटाई बुनना और धोबी का काम जमश अगुड श्रेणी में और चमड़ा तिकालना तथा पवाना, चमड़े का काम तथा धोबी का काम जमश अगुडतम श्रेणी में आते हैं। परम्परानुसार, जिस जाति को सामाजिक प्रतिष्ठा जिनकी उच्च है, उसका परम्परागत पेशा भी उतना ही उच्च है। माथुर द्वारा प्रस्तुत जाति पेशों के वर्गीकरण में ब्राह्मण और भगी तथा उनके पेशे जाति पेशों उच्चोच्च परम्परा की दो सीमायें हैं जिनके बीच में अर्थ जातियाँ और उनके पेशे आते हैं। ये सीमायें अपरिवर्तनीय नहीं हैं क्योंकि ब्राह्मण न, अपना पेशा बदलने पर भी, न तो कभी भगी के पेशे को अपनाया है और न कभी भगी न ब्राह्मण के पेशे का। पेशे परिवर्तन यदि हुए भी हैं तो जाति संरचना के मध्य स्तरों में। इसी कारण, भारत के सामाजिक इतिहास में, सामाजिक संरचना के मध्यस्तरों में जाति उच्चोच्चपरम्परा अनिश्चित और अत्यन्त चतुष्पत्नी रही है।

जाति और पेशे के सह सम्बन्ध के कुछ अर्थ यह भी हैं। जबकि वे निम्नवर्गी जातियों द्वारा अपनाये जाते रहते हैं और कुशल पेशे उच्चवर्गी जातियों द्वारा। भगी के पेशे की अपेक्षा, ब्राह्मण के पेशों में अधिक अभ्यास, प्रशिक्षण तथा कुशलता की आवश्यकता है। कारीगरी के पेशों में बहुधा गुड अगुड पेशे श्रेणियों के सीमान्त में रहते हैं जिसके कारण जाति-संरचना के मध्य स्तर की जातियाँ में, एक अर्थ, सामाजिक प्रतिष्ठा के अन्तर अस्पष्ट रहते हैं और, दूसरी ओर सामाजिक चतुष्पत्नी का प्रोत्साहन मिला है। जाति और पेशे के सह सम्बन्ध का एक अर्थ यह है कि भारत की परम्परागत सामाजिक आर्थिक व्यवस्था, या मूलतः कृषि-

व्यवस्था रही है और ग्राम सहवासी समुदाय प्रणाली को आधार प्रदान करती रही है। मजातिगत पग उस रूप में जाति-समूहों के एकमात्र स्वतंत्र पक्ष नहीं रह हैं जिस रूप में औद्योगिक सामाजिक आर्थिक व्यवस्था के विभिन्न पक्ष हैं। परम्परागत पेशा संरचना का मूल आर्थिक आधार कृषि व्यवस्था रही है क्योंकि सभी पग विभाजन कारीगर जातियाँ के पग कृषि जोर कृषक में के द्वािभूत रह ह। गव की सभी जातियाँ के पगों में मिलन वाली सामाजिक आर्थिक संवाय मूलतः स्थानीय कृषक के लिये रही है। दूसरे शब्दों में सारी पेशा संरचना कृषि आर्थिक व्यवस्था के अधीन रही है। यह ज्ञेय है कि प्रत्येक क्षेत्र में कुछ विभाजित जातियाँ कृषि को ही करती रही हैं कि तु कृषि का पग अथवा जातियाँ के लिये दान नहीं रहा है। धावी चमार नाइ तेली दरजी बहार और कुम्हार अपने-अपने जातिगत पगों को भी करत रह हैं और कृषि को भी यद्यपि इन जातियाँ के लिये बड़ बड़ कृषक नहीं रह है। इन जातियाँ के लोग अपना पग करने के अलावा याता छाट पमाने पर कृषि करत रहे ह या फिर मतिहर मजदूर रह है। भारत का कृषि आर्थिक-व्यवस्था निम्नतम उपभाग के आदान पर आधारित रही है जिसके कारण जातिगत पेशा कृषक की सीमित आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन रह है।

इस प्रकार विभिन्न जातियाँ के पक्ष और उनके कार्य परस्पर पूणत स्वतंत्र नहीं हैं। ग्रामीण भारत की आर्थिक प्रणाली मुख्यतः विभिन्न जातियाँ के कार्य विभाजन (Functional Specialization) पर जोर पारस्परिक अन्तर्निष्पत्ति पर आधारित है। प्रत्येक जाति एक पेशा विशेष में सम्बन्धित रहती है किन्तु उसका द्वारा दूसरा पेशा अपनाय जाने पर कोई रकावट नहीं है यद्यपि दूसरा पेशा अपनाय की सीमाय अवश्य निर्धारित हैं। ग्राम सहवासी समुदाय का संरचना में प्रत्येक जाति मजदूर को परम्परा में एक निश्चित पेशा मिला है और पक्ष के साथ एक निश्चित सामाजिक स्तर भी मिला है तथा स्तर और पेशा के साथ एक निश्चित कार्य और भूमिका भी मिली है। अपने पेशा के द्वारा प्रत्येक जाति की संवाय करना प्रत्येक जाति का दायित्व है। विभिन्न जातियाँ द्वारा की जान वाली दायित्व-संवाय का श्यामाचरण दुबे ने चार श्रेणियों में बाँटा है—एक, कृषि-सम्बन्धी संवायों का कृषक को ही नियंत्रित है और जिनका कृषि पर सीधा प्रभाव पड़ता है (जैसे बर्दोजार बुहार या हल और फाल बनाना) दो कृषक तथा गर कृषक के प्रति की जान वाली सामाजिक धार्मिक प्रकार की पेशागत संवाय (जैसे पुराणिक की संवायों) तान कारीगर जातियाँ में एक दूसरे की संवाय के उपरान्त की हुई पेशागत संवाय (जैसे नाना का नाना से बाल बनवाई न लना), और चार नवदे पारिधमिक लेकर की हुई पेशागत संवायों (जैसे धावी का नकल पद लेकर कपडे

धाना) । नवद पारिश्रमिक लन की परम्परा तब स अधिक चली है जब स भारत म, मुद्रा पर आधारित औद्योगिक तथा पूजीवादी आर्थिक व्यवस्था का समावग हुआ है । परम्परानुसार पारिश्रमिक नक न दवर घाय म दन की प्रया रही है । पमल तयार होन पर कृपक की सवा करने वाली जातिया की अनाज क रूप म, पारिश्रमिक दिया जाता रहा है । पारिश्रमिक भी परम्परा म निर्धारित रहा ह ।

इम प्रकार यदि दखा जाय ता प्रत्येक जाति पगा विदापाकरण पर आधारित एक समूह है । जाति का यह रूप परम्परा से निर्धारित ह । पर जाति कवल एक पेशा-समूह ही नहीं है क्याकि नातिगत पेशा का एक द्यार आर्थिक मन्व है और दूमरी आर कमकाडी महत्व । उदाहरणाय जब नाइ वा न नाउ बनाता है तथा नाई की स्त्री वर कया क परा म म्हाउर लाता है जम नाउ की स्त्री विधवा की सूडिया ताउ कर उसक माग का सिद्धु उतानी ह जम किना क मरन पर मृतक मनान वाल क नाइ वाउ बनाता है या जब अवध म बाउणा की कया के विवाह म धावी की स्त्री दिन भर उपवास रख कर क या का म ग दनी ह तब नाई और बोबी की मवायें बनल आर्थिक सवायें नहीं रहता है । उनरी तवायें वस्तुन-कमनाही मवायें हा जाती ह । इमीप्रकार, अय जातिया की मवाजा का भी कमकाडा महत्व है । जम विवाह मनु त्योहार और मल एम प्रवसर है जब विभिन्न जातियो का एक दूसर की कमकाडी सवाआ की आवश्यकता पडती ह और यी कारण है कि जाति का न तो कवल पगा समूह क रूप म परिभाषित किया जा मक्ता है और न गिल्ड (Guild) के रूप म यद्यपि जाति मपेशा समूह और गिल्ड क तब समाहित है । जाति-पगा के सह सम्बन्ध न जाति अ तनि-भरता तथा यजमानी प्रथा का ज म दिया है । प्रत्येक जाति का अपन पग पर एकाधिकार मिला है और

यजमानी प्रथा परो क साथ साथ, उन लोग पर भी जा उम जाति क मन्स्या से मवाय लन है । उदाहरणाय यदि एक गाव म नाइ के चार घर हैं ता गान क सार घर उन चार नाइया म बट जात हैं । प्रत्येक व्यक्ति जिसकी एक नाइ सवा करता है उमका यजमान है । इमीप्रकार प्रत्येक जाति क नागा क यजमान हान हैं—विशेषत उन जाति क नागा के जिन्क पगो का आर्थिक और कमकाडी महत्व है । यजमान अपन परजा' या कमीन से ही गवा पान क लिए वाध्य है । प्रत्येक किमान उसी नाई स बाल बनवायगा उनी बर्ई स अपना हल ठीक करावगा और उसी सुहार स अपन ओजारों की मरम्मत करावेगा जिसका कि वह यजमान है । यजमान और परजा का सम्बन्ध परम्परा म निर्धारित है । यजमान को अपनी 'परजा पर एकाधिकार है और परजा का अपन यजमान पर । परजा जाति क किसी व्यक्ति क घर म यदि बटवारा हाता है ता यजमान भी बट जात है । इसप्रकार जाति म पगागत विगापीकरण तो है किन्तु एक ही जाति क नागों म द्राहक के लिए प्रतिघातिता नहीं है क्याकि प्रत्येक क द्राहक परम्परा स निर्धारित है ।

जमींदारी परम्परा पर आधारित भूमि-व्यवस्था, यजमानी प्रथा का आर्थिक आधार रही है क्योंकि परजा की सेवाएँ कृषक जमींदार के लिए अधिक रही हैं। जिस जाति का स्तर जितना उच्च है, उसकी सेवा के लिए 'परजा' की उतनी सुविधा रही है। परजा जातियों का दो प्रकार का पारिश्रमिक मिलना रहा है—एक आर्थिक महत्व की सेवाओं के उपलक्ष्य में और दूसरा कमकाड़ी सेवाओं के उल्लेख में। कमकाड़ी सेवाओं के उपलक्ष्य में मिलने वाला पारिश्रमिक नेग है। विवाह के अवसर पर जब दरजी वर के कपड़े सिलता है लाहार कपण भेंट करता है, नाई बाल बनाता है घाबी की म्थ्री कन्या को साहाय्य देती है माला वर का 'मौर' देता है तब वे सब नेग के अधिकारी होते हैं। यजमानी प्रथा ने जाति का ट्रेड यूनियन का रूप दिया है क्योंकि प्रत्येक जाति अपने एकाधिकारी पेश के आर्थिक हितों की रक्षा करती है जहाँ एक ट्रेड यूनियन अपने सदस्यों के आर्थिक हितों की। आस्कर नुसक अनुसार, जब रामपुर^१ गांव के जाटों ने विवाह में नाइया का मिलने वाला 'ना' जाग को घटा दिया तो नाइयो ने अपने जाटों की हजामत बनाना बंद कर दी। जाटों ने रजर खरीद कर स्वयं हजामत बनाना शुरू कर दी^२। तब क्या जाति को ट्रेड यूनियन कहा जा सकता है। ट्रेड यूनियनवाद औद्योगिक पूंजीवादी व्यवस्था की उपज है। ट्रेड यूनियन में मालिक और मजदूर के सघर्ष तथा उनके विरोधी हितों का भाव निहित है। यजमानी प्रथा में भी मालिक और सेवक का भाव है। यजमान और परजा का सम्बन्ध परम्परा से निर्धारित है। यजमानी प्रथा जाति के निम्नस्तर पर श्रम का अचलित्त्व बनाता है ताकि प्रभु जाति (Dominant Caste) के लिए श्रमिक उपलब्ध हो सकें। यहाँ सामूहिक सौदेबाजी नहीं है। यजमानी प्रथा से केवल यजमान ही नहीं निर्धारित हात हैं वरन् प्रत्येक जाति का सामाजिक स्तर, उसकी सामाजिक आर्थिक तथा कमकाड़ी भूमिका भी निर्धारित हाती है। यजमानी प्रथा विभिन्न जातियों का सामाजिक आर्थिक समाधान तथा सामञ्जस्य है। यजमानी प्रथा की उँड़ें भारत की कृषि पर आधारित परम्परागत तथा निष्प्रवाह आर्थिक व्यवस्था से उत्पन्न ग्रामवाद में हैं। जाति के ट्रेड यूनियन के तत्वों का समावेश आज हो रहा है।

जाति अतिशय ही तथा वेग-ममूर होने के साथ-साथ भारतीय सामाजिक संरचना का आधार भी है क्योंकि जाति व्यवस्था एक सामाजिक प्रतिष्ठा उच्चोच्च प्रणाली की परम्परागत उच्चोच्चपरम्परा पर आधारित है। परम्परा जाति व्यवस्था एक स्तरीकृत प्रणाली है जिसमें विभिन्न जातियों का अलग अलग सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त है—बहु सामाजिक प्रतिष्ठा या जन्मजात है। आधुनिक पश्चिमी समाज का स्तरीकरण, अर्थात् सामा

१ रामपुर दिल्ली के पास का एक गाँव है जहाँ आस्कर लुइस ने ग्राम व्यवस्था का अध्ययन किया था। रामपुर नाम कल्पित है।

२ बाइजर, इन्सू० एच० ट्वेन दि हिंदू जजमानी सिस्टम में से उद्धृत।

जिसे आर्थिक प्रतिष्ठा पर आधारित है जबकि जाति व्यवस्थागत स्तरीकरण जन्मजान सामाजिक, आर्थिक तथा कमकाठी प्रतिष्ठा पर। जाति व्यवस्था, इस दृष्टिकोण से, बग-व्यवस्था से भिन्न है। वही भिन्नता के कारण जाति का 'आवृत्त बग' या 'अचलिष्णु बग' या 'वह बग जो अचलिष्णु (Immobile) है' के रूप में परिभाषित किया गया है। इसका यह तात्पर्य नहीं कि जाति-व्यवस्था परिवर्तनीय नहीं है—जाति व्यवस्था चलिष्णु और परिवर्तनीय रही है किन्तु उतना नहीं जितना कि बग व्यवस्था है। इसका कारण भारत की निष्प्रवाह आर्थिक-व्यवस्था रही है। जाति-व्यवस्था में बग व्यवस्था के भी तत्त्व हैं। वृषि-व्यवस्था में भूमि ही सम्पत्ति का आधार है और भूमि का वितरण इसप्रकार से रहा है कि अधिकतर भूमि पर अधिकार ब्राह्मण तथा क्षत्रियवर्णी जातियों के पास रहा है। ब्राह्मण और क्षत्रिय इसप्रकार, उच्च बग में रहे हैं, सेतितृतीय जातियाँ मध्यबग में और कारीगर तथा अल्पश्रम जातियाँ निम्न बग में। जातियों का घणनुसार वर्गीकरण और इवर्गीकरण को आधार प्रदान करने वाली सामाजिक आर्थिक पद्धति जाति-व्यवस्था में निहित बग-व्यवस्था का स्पष्ट करती है। निष्प्रवाह आर्थिक व्यवस्था में सामाजिक आर्थिक चलिष्णुता कम सम्भव रही है। इसकारण, जाति व्यवस्था में बग मिट्टा का महत्ता दी गई है और चलिष्णुता के आधार आर्थिक न होकर कमकाठी रह गई है। यही कारण है कि जातियों ने अपना स्तर उठाने के लिए कमकाठी पर अधिक जोर दिया है न कि आर्थिक स्तर को उठाने पर। वृषि पर आधारित निष्प्रवाह आर्थिक व्यवस्था में आर्थिक स्तर उठाने के लिए स्थान ही नहीं रहा है।

जाति-व्यवस्था में निहित सामाजिक प्रतिष्ठा श्रम विन्यास का आधार आर्थिक भी है और कमकाठी भी। जाति-व्यवस्था के सामाजिक प्रतिष्ठा श्रम विन्यास का आधार में पवित्रता और अपवित्रता का भाव रहा है। इसी कारण जिस जाति का सामाजिक स्तर जितना उच्च है उतना आर्थिक स्तर भी उतना ही उच्च मित्रता है और वह उतना ही पवित्र माना जाता है। जाति-निरचना के उच्चतम स्तर पर रहे हैं ब्राह्मण जो पवित्रतम माने गये हैं और निम्नतम स्तर पर रही हैं चमार और भगा जमी जातियाँ जो अपवित्र और अछूत मानी गई हैं। जाति जाति में पाई जान वाली पवित्रता तथा अपवित्रता की भावनायें, कुछ जातियों को अछूत मानने की परम्परा और स्थान पान के प्रतिबंध तथा जातिगत खाद्य अखाद्य के प्रान्त अपवित्रता और अशौच के विचारों पर आधारित हैं। जैसा कि हटन में लिखा है कि जाति-निरचना में सम्प्रदाय का विचार, अपवित्रता और अशौच के ही विचारों में सम्बन्धित है। कमकाठी पवित्रता जाति श्रम विन्यास का आधार रही है। जिस जाति का स्तर जितना उच्च है उतना ही पवित्रता के कमकाठी उतना ही प्रतिवाय और जटिल है। उदाहरणार्थ, ब्राह्मण के लिए दैनिक पवित्रता के नियम भगियों की अपेक्षा अधिक आवश्यक हैं।

जाति एक धड़ राजनतिक इकाई है—अब इसलिए कि राजनतिक सगठन होते हुए भी जाति सगठन राजनतिक दृष्टिकोण से स्वतंत्र नहीं रहा है।

जाति का भारतवर्ष की राजनतिक व्यवस्था तीन स्तरों पर सगठित रही राजनतिक पक्ष है—एक जाति के स्तर पर, दूसरी क्षेत्रीय राज्यों (Principalities) के स्तर पर और तीसरी, अखिल भारतीय राजनतिक स्तर पर। अंग्रेजी राज्य की स्थापना के पहले रियासती स्तर ही प्रधान था। एक सामाजिक राजनतिक इकाई के रूप में जाति घरातल पर काम करती रही है और प्रत्येक जाति के राजनतिक कार्य जाति तक ही सीमित रहे हैं। जाति पंचायत का सगठन जाति का राजनतिक पक्ष है। जाति पंचायत जाति व्यवस्था में एक परम्परा के रूप में रही है। प्रत्येक अतिविवाही समूह एक या कई जाति पंचायतों में सगठित रहा है। जाति पंचायत में प्रबंधक विधायिनी और याचिक अधिकार निहित रहे हैं। जाति पंचायतों ने परम्परा विधि को लागू किया है। जाति पंचायतों का मुखिया वंशानुक्रम के आधार पर चुना जाता रहा है। जाति पंचायतों के अंतर्गत जाति सम्बंधों में सभी प्रकार के नियमों का प्रतिपादन, संरक्षण और निवचन होता रहा है। अन्तर्जातीय सम्बंधों का जाति पंचायतों द्वारा ही नियमन होता रहा है। जाति पंचायतों में दबी साक्ष्य (Ordeal) शपथ और व्यावहारिकता के आधार पर काम होता रहा है। जाति के नियमों का उल्लंघन करने वाला, जाति के समक्ष, दण्ड का भागी है। जुर्माना, जाति भोज, शारीरिक प्रतारणा जन अपमान, गुद्विकरण और टुकड़ा पानी बंद करना, जाति पंचायत द्वारा दिये जाने वाले मुख्य दण्ड हैं। जाति पंचायत के दण्ड विधान में, ऐसे दण्डों का विधान रहा है जिससे अन्य व्यक्तियों को उदाहरण मिले और वे जाति नियमों का उल्लंघन से दूर रहे। अतः जैसे कातसा का सिद्धांत जाति पंचायत के नियम और दण्ड विधान का मुख्य आधार रहा है। टुकड़ा पानी बंद करने का दण्ड हर दशा में अस्वीकार्य ही रहा है क्योंकि जाति के बाहर व्यक्ति का सामाजिक स्तर शून्य है और इस कारण जाति से निकल जाने पर जाति में पुनर्गमिल होना एक आधारभूत आवश्यकता रही है। इससे जाति की स्थायित्व मिला है।

जाति संरचना के माध्यम से भारत की राजनतिक सत्ता संस्थागत रही है। राजनतिक सत्ता के उच्च स्तर पर रही हैं ग्रामीण तथा क्षत्रियवर्णी जातियाँ मध्य स्तर पर वदयवर्णी जातियाँ और निम्नस्तर पर क्षत्रवर्णी तथा अस्पृश्य जातियाँ। इसमें हाल में भारत की ग्रामीण सामाजिक-व्यवस्था के जो अध्ययन हुए हैं उनमें यह स्पष्ट हुआ है कि किस प्रकार ग्रामीण सामाजिक-आर्थिक प्रणाली में राजनतिक सत्ता और विनोपाधिकार उच्चवर्णी जातियों के हाथ में रहे हैं। राजनतिक सत्ता और विनोपाधिकार उच्च जातियों के हाथ में रहे हैं जिनके पास अधिकतम भूमि रहा है। इस परम्परागत सामाजिक आर्थिक व्यवस्था में प्रत्येक गाँव और क्षेत्र में एक प्रभुतासम्पन्न जाति (Dominant Caste) रही है। प्रभुतासम्पन्न जाति वह जाति

है जिसके पास अपने ग्राम या क्षेत्र के सामाजिक, आर्थिक तथा राजनतिक विशेषाधिकार रहे हैं और, इस कारण, अन्य जातियों के सामाजिक जीवन का वह आदेश रही हैं अर्थात् अपने सामाजिक स्तर का ऊपर उठान के लिए निम्नस्तर की जातियाँ जिसका अनुकरण करती रही हैं। उदाहरणार्थ पश्चिमी उत्तर प्रदेश में, जाटों का प्रभुत्व रहा है और उनके जीवन-यापन में उस क्षेत्र के सामाजिक जीवन के आदेश प्रतिमान रहे हैं। प्रभुत्व सम्पन्न जाति किसी भी वर्ण की हो सकती है यद्यपि मुख्यतया ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्ण की जातियाँ ही प्रभुत्व सम्पन्न जाति के रूप में पाई गई हैं। जाति-व्यवस्था के माध्यम से, राज्य सत्ता के सत्यागत हो जाने के कारण, भारतीय सामाजिक जीवन में सामाजिक-सांस्कृतिक नेतृत्व भी सत्यागत रहा है। यही कारण है कि भारतीय समाज में नेतृत्व ब्राह्मणों और क्षत्रियों के हाथ में रहा है। इस परम्परागत सामाजिक-प्रभेद से यह ऐतिहासिक तथ्य भी स्पष्ट होता है कि भारतीय इतिहास के प्रत्येक काल में ब्राह्मण और क्षत्रियों ने जाति प्रथा का विरोध किया है और उसे स्थायित्व भी प्रदान किया है।

इस प्रकार, जाति के अनेक आधार रहे हैं, जिन्हें किसी एक परिभाषा में बाधना मुश्किल रहा है। उन तर्कोंवाहिकों, पेशा, सामाजिक राजनतिक तथा कर्मकाण्डी प्रतिष्ठा में सम्बन्धित होने के कारण, जाति ने भारतीय सामाजिक संरचना को अनेक पहलुओं से प्रभावित किया है। हटन के अनुसार, जाति का प्रभाव मुख्यतया तीन स्तरों पर क्रियाशील रहा है—एक, जाति के माध्यम से व्यक्ति को जन्मजात प्रतिष्ठा मिलती रही है, जिसके कारण, जहाँ व्यक्ति को आर्थिक सुरक्षा मिली है वहाँ, जाति के द्वारा व्यक्ति का जीवन भी निर्देशित होता रहा है। जाति में व्यक्ति की सामाजिक परिधि निर्धारित होती रही है। दो, जाति-व्यवस्था के माध्यम से विभिन्न समूहों के सम्बन्ध नियमित हो गए हैं, जिसके कारण, जहाँ प्रत्येक समूह का सामाजिक स्तर निर्धारित हुआ है उस सामाजिक आर्थिक सुरक्षा मिली वहाँ, दूसरी भाग, विभिन्न जातियों के रूप में विभिन्न समूहों के अन्तर्सम्बन्धों को स्थायित्व मिला है। इस दृष्टिकोण से जाति को भारतीय, विगणित हिन्दू समाज का मूलतम आधार कहा जा सकता है। जाति-व्यवस्था वह माध्यम है, जिसके द्वारा अनेक समूह, जो प्रधानतः गणजातियों के स्तर से उठे हैं, हिन्दुत्व, इस्लाम और इसाइयत में अपनी विनिष्टता बनाये रखते हुए भी, स्थान पाने रहे हैं। इसी कारण, जाति का प्रभाव हिन्दुत्व,

- 1 जाति और गणजाति में काफी समानता है। गणजातियों जाति के रूप में परिचित होती रही हैं जिनके कारण, भारतीय समाज में, जातियों की संख्या बढ़ती गई है। जाति और गणजाति का अन्तर वर्तमान भारत में किया गया है न कि प्राचीन भारत में। अन्तर्विवाही समूह होने के कारण भारतीय परम्परा के अनुसार, प्रत्येक गणजाति जाति है। गणजाति के जाति में परिवर्तित होने की प्रक्रिया का घन अन्तिम अर्ध्याम में किया गया है।

इस्लाम और इसाईयत में हुआ है। तीसरा, जैसा कि हट्टन का मत है, जाति व्यवस्था ने भारतीय समाज को सघानीय समाज (Federal & Plural Society) का रूप दिया है। सघानीय समाज वह समाज है जिसमें प्रत्येक इकाई का अस्तित्व बना रहता है लेकिन हर इकाई एक सामाजिक सांस्कृतिक मूल से बंधी रहती है, वैसे ही जैसे अपनी कीली पर घूमती हुई पथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है। सघानीय-समाज लचीला समाज है और उसका मूल अनेकता में एकता का सिद्धांत है। जाति व्यवस्था ने, जैसा कि इरावती कर्वे का मत है, भारतीय समाज को 'एनोड्ड बहुस्याम' का आधार प्रदान किया है। जन्मजात सामाजिक प्रतिष्ठा तथा सामाजिक सांस्कृतिक भूमिका से सम्बन्धित होने के कारण, जाति ने एकता में अनेकता बनाये रखते हुए सांस्कृतिक स्थायित्व का प्राप्ति साहित्य किया है। जाति व्यवस्था में उस व्यवस्था के तथ्य निहित हैं जिसे डॉक्टर मजूमदार ने संस्कृतियों के सघान (Federation of Cultures) का माना गया है। किंतु जाति से यदि सांस्कृतिक स्थायित्व मिला है तो जाति परम्परावादिता का भी स्रोत रही है। परम्परावादिता बनाम प्रगति के सघन का मूल कारण जाति-व्यवस्था में ही रहा है।

यहां एक प्रश्न किया जा सकता है कि भारतीय समाज और संस्कृति को जाति ने स्थायित्व प्रदान किया है या उन कारकों ने जिन्होंने स्वयं जाति-व्यवस्था का स्थाई बनाया है। भारत के सामाजिक ऐतिहासिक पंचवर्षण से यह पता चलता है कि कृषि पर आधारित आर्थिक व्यवस्था और ग्रामवादिता ने जाति व्यवस्था को स्थाई आधार प्रदान किया है क्योंकि, अंग्रेजी राज्य की स्थापना के पहले तक, यह निष्प्रवाह रहे हैं। मत, यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि भारतीय समाज और संस्कृति के स्थायित्व में यहाँ की निष्प्रवाह अर्थ-व्यवस्था का बहुत कुछ योगदान है और इस योगदान ने जाति-व्यवस्था को भी स्थाई बनाया है और इसका प्रसार भी किया है। साधारणतया यह मान्यता पाई जाती है कि जाति-व्यवस्था अचलित और अपरिवर्तनीय है। किन्तु यह मत तकमगत नहीं है क्योंकि जाति-व्यवस्था पर आधारित सामाजिक प्रतिष्ठानुक्रम लचीला रहा है। हाँ यह अवश्य है कि जाति व्यवस्था में निहित चलित्पुत्र के प्रेरक आर्थिक व सामाजिक धार्मिक तथा सुधारवादी अधिब रहे हैं। बौद्धवादी जाति-व्यवस्था के विरुद्ध एक आन्दोलन है और इसका उद्देश्य विभिन्न समूहों में धार्मिक सुधार करके, उन्हें एक सम्माननीय सामाजिक स्तर पर लाना रहा है। इसी प्रकार मध्य युग के सुधारवादी निगुण पंथा ने यदि जाति प्रथा का विरोध किया तो उन्होंने निम्नस्तर की जातियों की प्रतिष्ठा का उठाने के लिए हिन्दुत्व को ही माध्यम बनाया। यही हाँ उनीसवीं शताब्दी के ब्रह्मसमाज तथा आर्यसमाज जैसे सुधारवादी आन्दोलनों का हुआ। इन सुधारवादी आन्दोलनों में हिन्दुत्व का इस प्रकार का विवेचन किया गया कि अधिक से अधिक अतिवादी समूह हिन्दुत्व के धर्म आ सकते। उपर, हिन्दुत्व में प्रवेश करने पर,

जाति के रूप में यदि गणजाति को निम्नस्तर मिलता रहा है तो, साथ ही साथ, एक पक्षा अपनाते के कारण सामाजिक सुरक्षा भी मिलती रही है। इस प्रकार प्रत्येक सुधारवादी आन्दोलन से यदि नई गणजातियाँ जाति-मरचना में प्रविष्ट हुईं तो उनसे पहले आई हुई गणजातियाँ भी पहले की अपेक्षा अधिक उच्चतर सामाजिक प्रतिष्ठा की ओर अग्रसर हुईं। किन्तु साथ ही साथ, जमा कि बीरवाँव समाज और लिंगायत-संप्रदाय के उदाहरणों से स्पष्ट है प्रत्येक सुधारवादी सभ या संप्रदाय या तो स्वयं एक जाति बन गया या उनमें जातियों का समावेश हुआ। जसा कि सिक्ख संप्रदाय से स्पष्ट है जो जातियों जिस स्तर से आई उनका वही स्तर बना रहा। इस प्रकार चलिष्णुता का प्रारंभ रहा है द्विष्टत्व का व तत्व जिन्हें श्रीनिवास ने मन्वृताइजेशन कहा है। जाति-मरचना में सामाजिक प्रतिष्ठा का उठाने के लिये मन्वृताइजेशन का इसीलिये महत्त्व मिलता रहा है कि भारतीय समाज का आर्थिक आधार निम्न रहा है। यही कारण है कि जाति-मरचना में ताद्वतर चलिष्णुता का सबसे अधिक उद्भव नहीं हुआ जबतक, अग्रणी राज्य के माध्यम से पहले वाले योरापीय सघात के कारण, भारत में पूजावादी आर्थिक-व्यवस्था का समावेश नहीं हुआ।

भारत में अग्रणी राज्य की स्थापना ने नई सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक परिस्थितियों को जन्म दिया। उत्तरात्तर बढ़ते हुये पूजावाद से परिवर्तन और सामनवादी व्यवस्था समाप्त हुई। औद्योगिक तथा मूद्राया उसका कारण आर्थिक-व्यवस्था का प्रसार हुआ। यातायात तथा सदशवहन के साधनों के उत्तरात्तर विकास के कारण, पहली बार भारत का राजनैतिक आर्थिक तथा सामूहिक एकीकरण हुआ जिसके कारण जाति का अस्तित्व भारतीय राजनैतिक एकीकरण में समायाजित हुआ। प्राचीन परम्परागत पक्षा संरचना के आधार पर, एक नई औद्योगिक पक्षा-मरचना का प्रतिरापण हुआ। भारतवर्ष में उस वैधानिक, आर्थिक तथा दल व्यवस्था का शीर्षक हुआ जिसका आधार पूजावादी प्रजातंत्र और उदारवाद था। इसाद्वय का प्रभाव से समतावादी विचारधारा का और जाति जाति का असमान अन्तर एक निराधार आधार बन गया। व्यक्ति की गरिमा और महत्ता तथा व्यक्ति-स्वातंत्र्य के आदेश का विचार का अन्वयण हुआ। भूमि ही आर्थिक संपन्नता का एकमात्र आधार न रही। सरकारों की नीकरियाँ, कारखानों की मजूरी और व्यापार में आर्थिक संपन्नता का ही आधार प्रस्तुत किये। गृहीकरण का विकास से शहरों में जो आर्थिक व्यवस्था उत्पन्न हुई वह ग्रामों से भिन्न थी। इन कारणों का परिणाम यह हुआ कि जाति-व्यवस्था का आधार प्रदान करने वाले आर्थिक, सामाजिक तथा आर्थिक आधारों में परिवर्तन आया जिसने पक्ष-स्वरूप जाति के बहुमूर्ती आधारों में धीरे धीरे परिवर्तन हुये। किन्तु साथ ही साथ अग्रणी राज्य में, जनगणना जातियों के आधार पर ही होती रही, अल्पसंख्यक जातियों का विशेषाधिकार दिये गये पक्ष में जातियों के आधार पर

यूनिटों (Units) का संगठन किया गया। बदली हुई आर्थिक तथा राजनैतिक परिस्थितियाँ म यदि निम्नस्तर की जातियाँ ने आर्थिक तथा सामाजिक अधिकारों की अधिकाधिक माँग की तो उच्च स्तर की जातियों ने अपन परम्परागत विशेषाधिकारों का बनाये रखने का प्रयास किया। इस परिस्थिति का सम्मिलित परिणाम यह हुआ कि जहाँ, एक ओर, जाति का आधार ढीले हुए वहाँ, दूसरी ओर, जाति को संगठित हान के नये आधार और नई प्रेरणा भी मिली। यारापक सघात ने जाति में एकीकरण तथा विश्रुखलन की प्रक्रियाओं को एक साथ ज म दिया।

अंग्रेजी राज्य का माध्यम से ज्यो ज्यो योरोपाय सम्भृत। का सघात बढ़ा और भारत की परम्परागत आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन आया। त्यों त्यों जाति के विभिन्न आधारों और पहलुओं में परिवर्तन उत्पन्न हुये। उदारवादी विचारधारा, इसाइया द्वारा जाति की आलोचना अंग्रेजी शिक्षा का द्वारा पलती हुई प्रजातन्त्रवादी विचारधारा तथा व्यक्तिवादी मान्यताओं के कारण, जाति तथा उसके बंधनों के प्रति एक नय सुधारवादी दृष्टिकोण का उदय हुआ जिसकी अभिव्यक्ति ब्रह्मसमाज तथा आयसमाज का आगलानो में हुई। इन आन्दोलनों से समतावादी विचारधारा का प्रसार हुआ जाति के बंधनों का निमूल निर्धारित किया गया और हिन्दू समाज की एकता पर जोर दिया गया। ब्रह्मसमाजियों ने जाति रहित हिन्दू समाज की स्थापना के लिये अतर्जातीय विवाहों पर जोर दिया। आयसमाज ने भी इसी परम्परा का अनुसरण किया। उधर, अंग्रेजी साहित्य का माध्यम से फैलनेवाली रूमानी विचारधारा से, विवाह और नर-नारी के प्रेम में व्यक्तिक स्वातन्त्र्य का विचार का प्रोत्साहन मिला। इन विकासों का परिणाम यह हुआ कि अतर्जातीय विवाहों का पक्ष लिया जाने लगा। सन अठारहसौ बहत्तर के स्पेशल मरिज एक्ट से अतर्जातीय विवाहों को बंधता प्रदान की गई। अंग्रेजी राज्यकाल में समान स्तर की जातियों के संगठन अस्तित्व में आये जिसके कारण अशत राजनैतिक और अशत सांस्कृतिक थे। किन्तु इन कारणों का मूल में थी उच्च सामाजिक स्तर प्राप्त करने की भावना। इस विकास का परिणाम यह हुआ कि एक ही स्तर की अतर्जातीय जातियों में अतर्जातीय विवाहों को प्रोत्साहन मिला। उदाहरणार्थ चमारों के जटियाँ और रविदास अतर्जातीय समूहों में अतर्जातीय विवाहों को किया जाना लगा है। किन्तु अतर्जातीय विवाह अधिकतर गहरों में और शिथिल तथा धनी वर्ग तक ही सीमित है। साधारणतया जाति अब भी मूलतः अतर्जातीय समूह है।

याराप की पूजावादी तथा औद्योगिक-आर्थिक-व्यवस्था का दबाव से बदलती हुई भारतीय आर्थिक व्यवस्था का परिवर्तनकारी प्रभाव जाति और पक्षा के सह सम्बंध पर पड़ा। औद्योगिक व्यवस्था ने गहरीकरण के, साथ-साथ उस नई पक्षा संरचना को जन्म दिया जिसमें अनेक परम्परागत पक्षा की महत्ता समाप्त हो गई (जस गाँई द्वारा गंगाधर भोजन का महत्व का कम होना), अनेक पक्षा की आर्थिक

महत्ता समाप्त हुई (जस आइल मिला की स्थापना से ठेली के पेशी की आधिक् महत्ता का नम होना) और कुछ पेशी जैसे धाबो, चमडे का काम करने वाले चमारो, बुनकरो और भगियों के पेशी की आधिक् महत्ता बढ़ गई क्योंकि शहरीकरण ने इन पेशी की आवश्यकता का और भी बढ़ा दिया। दूसरी ओर, उद्योग और व्यापार तथा मरकारी नौकरियां न सभी जातियों के लिये नये अवसर प्रदान किये जिसके परिणामस्वरूप जानि और पंगे का सह-अभ्यन्ध उतना अनुवाय नहीं रहा जितना कि वह परम्परागत सामाजिक आधिक्-व्यवस्था में था। किन्तु, उच्चवर्णी जातियों पहले ही से व्यापार शिक्षा, मना और प्रशासन के पेशी में लगे हुई थी जिसके फलस्वरूप नये अवसर का लाभ सबसे पहले और सबसे अधिक इन्हीं जातियों का मिला। अठारहवीं सतावन की राज्यशांति के बाद, निम्नस्तर की जातियों का सेना में स्थान देने की नीति अपनाई गई और उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जब दक्षिण भारत में ब्राह्मणविरोधी आंदोलन का प्रसार हुआ, तब पिछड़ी हुई जातियों के लिये सरकारी नौकरियों में प्रारंभित स्थान की मांग की गई। तबसे बराबर इसी नीति को अपनाया गया जिसके परिणामस्वरूप, एक ओर, जातिवाद को प्रोत्साहन मिला और, दूसरी ओर भारतीय राजनीति में जाति का समावेश हुआ।

सरकारी नौकरियां में भारतीय सीटा की मांग पिछड़ी जातियों के उम वग से धाती रही है जो शिक्षित हान के कारण परम्परागत पेशी को नहीं अपनाता है और सरकारी नौकरी को उच्चतर-सामाजिक प्रतिष्ठा का माध्यम मानता है। उच्च वर्णी जातियों के सामने यह समस्या नहीं क्योंकि अंग्रेजी राज्य में उन्हें वह सामाजिक-प्रतिष्ठा उत्तराधिकार के रूप में मिली थी जिसकी निम्नवर्णी-जातियां मांग कर रही थी। अंग्रेजी राज की स्थापना से उत्पन्न नई परिस्थितियों में उच्चवर्णी जातियों के परम्परागत पेशी का (जम ब्राह्मण के अध्यापन तथा प्रशासन काय को, दानिय के जमींदारी तथा प्रशासन काय का, बर्यों के उद्योग को और वायस्था के मुंछियाना पेशी को) एक नया अवसर मिला जिससे उनका, हान नहीं बल्कि, विस्तार हुआ। किन्तु निम्नवर्णी जातियां, विशेषतया कारीगर जातियों, के पेशी का पूँजीवादी-औद्योगिक व्यवस्था से ह्रास हुआ। जूना बनाने के कारखाना, कपडे की मिला कता के औजार बनाने वाले कारखानो से चमारो, कपडा बुनने वाली जातियां और साहारो के पेशी का ह्रास हुआ। किन्तु साथ ही साथ, ये सब ऐम क्षत्र थे जहाँ पूँजीवादी व्यवस्था ने नये व्यापारिक अवसर प्रदान किये जिसके कारण उच्च-जातियों ने इन पेशी में कारीगर के रूप में ही नहीं बरन व्यापारी के रूप में प्रवेश किया। आज ऐसे पेशी उन्हाट्टण मिल जाते हैं जिसमें लाली का मालिक एक उच्च-जाति का है, यद्यपि कपडा धाने का काम धाबी करते हैं। उसी प्रकार, जूता और चमडा का व्यापार अधिकतर उच्च-जातियों के हाथ में है जबकि चमडा निबालन तथा जूता बनाने का काम चमार करते हैं। इस प्रकार, नई आधिक् व्यवस्था में कारीगर

जातियों का अपने पेशा पर से एकाधिकार समाप्त हुआ, उनका अपन ग्राहक पर से भी एकाधिकार समाप्त हुआ और धीरे धीरे उनका भारत का सहारा वगैरे परिवर्तन हुआ। जिन पेशों को परम्परानुसार अविश्व मानकर अशौच का कारण माना जाता था (जैसे मत्त हूय जानवरों की खाल निकालना और भगी का काय (उन पेशा का करने वाली जातियाँ) उन पेशा के प्रति प्रतिश्रिया प्रारम्भ हुई और उहाने उम छोड़ने पर जोर दिया। इस प्रतिश्रिया का कारण बदलती हुई आर्थिक व्यवस्था से मिलने वाले नये अवसर हैं। किन्तु, इस प्रतिश्रिया के बावजूद भी अधिकतर निम्न वर्णी जातियाँ अपने परम्परागत पेशा में ही हैं।

बदलती हुई सामाजिक आर्थिक परिस्थिति न जाति और पेशों के सहसम्बन्ध का प्रभावित किया है किन्तु पेशा तथा जाति संरचनाओं की उच्चोच्चपरम्परा में जो अनुरूपता थी उम नहीं तोड़ा है। देहरादून के चमारों की पेशा संरचना के विश्लेषण से इस तथ्य का स्पष्ट किया जा सकता है। देहरादून में रविदास और जटिया दो चमार जातियाँ पाई जाती हैं। रविदास अधिकतर चूना उद्योग में लगे हुए हैं और जटिया जूता बनाने तथा चमड़े के उद्योग में। जटिया रविदासों से पहले देहरादून में स्थानांतरित हुए थे। रविदास चमारों के तीन सौ पट्टे घरा के मुखियाओं में 76.19 प्रतिशत चूना उद्योग में लग हैं 57.2% बैलगाड़ी से सामान ढाने में, 2.54% छोट छोटे व्यापारों में 3.81% दर्जी और नाई के कामों में 7.94% छोटी मोटी सरकारी नौकरियाँ में 1.27% प्राइवेट नौकरियों में और 2.6% अपने लडकों पर निर्भर हैं। जटिया चमारों में 89.3% जूता उद्योग में, 4.54% व्यापार में और 6.78% सरकारी नौकरियों में लगे हैं। किन्तु इनके पेशा का यदि अत्यन्त कुशल (Highly Skilled) कुशल (Skilled) और अर्धकुशल और अकुशल (Semi Skilled and Unskilled) श्रेणियों में वर्गीकरण किया जाय तो यह स्पष्ट होता है कि रविदास चमारों में केवल 11.11% और जटिया चमारों में केवल 1.9% अत्यन्त कुशल श्रेणी में आते हैं और प्रमाण 13.02% तथा 69.94% कुशल श्रेणी में और 73.33% तथा 27.97% अर्धकुशल या अकुशल श्रेणी में¹। त्रिग ने अपनी पुस्तक 'दि चमार (1920) और माहिन्द्र सिंह ने अपनी पुस्तक 'दि हिप्रैन्ड क्लास' (1917) में चमारों का मुख्य पेशा चमड़ा निकालना चमड़ा पकाना जूता बनाना और मजदूरी निर्धारित किया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि गहरी कारण तथा जीविकाकरण न चमारों के परम्परागत पेशों में परिवर्तन किया है यद्यपि

1. देहरादून के चमारों के पेशा सम्बन्धी यह आँकड़े सन 1958-59 में एकत्र किए गये थे। इनका विश्लेषण इस्टन एन्थ्रोपलाजिस्ट काल्पुम \IV, नं० 3 में प्रकाशित लेखक के लल ट्रेड्स एण्ड मेजस आफ स्टेटस मोबिलिटी एमांग दि चमास आफ देहरादून में किया गया है।

सभी चमार जातियों पर इसका एक सा प्रभाव नहीं हुआ है। किन्तु साथ ही साथ, शहरीकरण और औद्योगीकरण के बावजूद भी चमार अधिकतर उसी अनुपात से अकुशाङ्ग अशुभ कुशल और कुशल पेशा में हैं जिस अनुपात से वे ग्रामीण सामाजिक आर्थिक-व्यवस्था में रहे हैं और आज भी हैं। हा यह प्रबन्ध है कि बन्दगी हुई आर्थिक व्यवस्था में चमारों में एक ऐसे छोटे वर्ग का अन्वय हुआ है जो अत्यन्त कुशल पेशे में होने के कारण अपेक्षाकृत अधिक धनी है। यही वह वर्ग है जो एक बार, उच्च जातियों के सामाजिक स्तर में प्रवेश पाने के लिए इच्छुक है और, दूसरी ओर, अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा को उठाने के लिए चमारों के सामाजिक स्तर को उठाने के लिए, प्रयत्नशील है। इस प्रकार, जिस जाति में जितना अधिक पेशा वैभिय आया है उतना ही उसमें आर्थिक वैभिय और वर्ग संरचना के तत्वा का समावेश हुआ है और उतना ही उसमें पश्चिमीकरण या सभ्यताइजेशन के द्वारा अपना सामाजिक स्तर उठाने की प्रवृत्ति का अन्वय हुआ है।

ग्रामीण-सामाजिक व्यवस्था में उपरोक्त प्रक्रिया का समावेश हुआ है किन्तु उतना नहीं जितना कि शहरी सामाजिक व्यवस्था में। जैसा कि हाल के ग्रामीण अध्ययनों से स्पष्ट है, भारत के गाँवों में मुख्यतया निम्नवर्णी जातियों में जाति और पेशा का परम्परागत सह सम्बन्ध बहुत कुछ अब भी वैसा ही बना हुआ है यद्यपि वह धीरे-धीरे परिवर्तित हो रहा है। इसने फलस्वरूप, ग्रामीण सामाजिक-व्यवस्था में यजमानों प्रथा विद्यमान भी है और बदल भी रहा है। बदलती हुई ग्रामीण आर्थिक व्यवस्था तथा उस पर उत्तरातर बढ़ते हुए औद्योगीकरण तथा शहरीकरण के प्रभाव ग्राम की शहर पर बढ़ती हुई निर्भरता तथा ग्रामवासियों के शहरों में स्थानांतरित होने के कारण, यजमानों प्रथा का परम्परागत रूप बदल रहा है। उदाहरणार्थ जब गाँव के लोग शहरों में बड़े सिलाई हैं या जूताबाजी का शहरी में स्थिति अच्छा केन्द्रों में भेजते हैं या शहरों के नजदीक स्थित गाँव के लोग शहरों में बाल बटान जाते हैं तो परम्परागत यजमानों प्रथा को धक्का लगता है। परम्परागत सामाजिक आर्थिक व्यवस्था में, गाँव का व्यक्ति गाँव की ही कारीगर जातियों से सक्ता लाने के लिए बाध्य था जिसने कारण, गाँव की कारीगर जातियों का अपने ग्राहकों पर एकाधिकार था जो शहरीकरण तथा औद्योगीकरण के कारण समाप्त हुआ। फलतः, यजमानों प्रथा के मूल आधारों में परिवर्तन आया। दूसरी ओर, दैनिक आवश्यकताओं के वस्तुओं के बढ़ते हुए भावों तथा मुद्रायी आर्थिक व्यवस्था के उत्तरातर प्रभाव के कारण पारिश्रमिक की भाँय (Wage) में दान के स्थान पर मुद्रा के रूप में दान की प्रवृत्ति प्रवृत्ति। मुद्रा में पारिश्रमिक के भुगतान के कारण, यजमानों और परजा का परम्परागत सम्बन्ध समाप्त हो गया और उसमें स्थान पर व्यापार दृष्टिकोण का अन्वय हुआ। शहरों में, अधिक पारिश्रमिक मिलने के कारण, कारीगर तथा सबके जातियों ने, अपने अपने अनुसारे अपने को अपना शहरों में ग्राहक वर्गों में प्रवेश किया। शहरी

व्यवस्था में भी, यहाँ कहा, परम्परागत यजमानी प्रथा के तत्व पाए जाते हैं किन्तु उनका आधार परम्परागत नहीं है। जैसे गृह में भी विवाह में नाई की आवश्यकता पड़ती है किन्तु उसके लिए पसा दकर किसी भी नाई की सेवा ली जा सकती है। जसा कि भगिया वं पशे से स्पष्ट है शहरीकरण के बावजूद भी, उनका अपने पशे पर एकाधिकार बना रहा जिसके कारण, शहरीकरण के प्रभाव में और अपने पेशे की विनापता के कारण, भंगी जाति न टूट यूनियन का रूप ले लिया।

बदलती हुई आर्थिक व्यवस्था, पूँजीवाद तथा बढ़ते हुये औद्योगीकरण के प्रभाव के कारण तथा जमींदारी उन्मूलन और अस्पृश्यता निवारण जैसे वधानिक विकास के कारण एक आर, विभिन्न जातियाँ का परम्परागत आर्थिक ऋम विन्यास बदला है तो, दूसरी आर, समानता के विचार का प्रसार हुआ है। वयस्क मताधिकार के द्वारा सभी जाति के लोगों को राजनतिक समानता मिली। इसप्रकार योरोप के मघास में परम्परागत राजनतिक तथा आर्थिक जातिक्रम विन्यास परिवर्तित हुआ है किन्तु कमकाण्डी ऋम विन्यास बहुत कुछ वसा ही है। ग्रामीण-सामाजिक व्यवस्था में आज भी, विभिन्न जातियाँ कमकाण्डी सेवाओं को प्रदान करती हैं किन्तु नेग, धाय के स्थान पर, अधिकतर मुद्रा में दिया जाता है। कमकाण्डी ऋम विन्यास के कारण, पवित्र और अपवित्र तथा शुद्ध और अशुद्ध जातियाँ का भ्रतर आज भी बना हुआ है। भ्रछता को मिले हुए राजनतिक अधिकारों ने अछतों का एक अलग समूह बना दिया है, जिसके कारण भ्रछतों में पाये जान वाले कमकाण्डी ऋम विन्यास (Ritual Ranking) पर राजनतिक एकता का अम्मुदय हुआ है। यद्यपि गाव में अस्पृश्यता की समस्या बसी ही है गेल, मोटर, होटल सिनेमा, विद्यालयाँ और शहरी वातावरण ने विभिन्न जातियों के सम्पर्क को बढ़ावा देकर, कमकाण्डी ऋम विन्यास का बदला है जिसमें गृह में छूत अछूत की भावना कम हुई है। एक आर कमकाण्डी ऋम विन्यास तथा आर्थिक असमानताओं के बने रहने तथा, दूसरी ओर राजनतिक अधिकारों के मिलन से निम्नवर्णी तथा उच्चवर्णी जातियों में सघप उभरना हुआ है। जिसकी छाप वतमान भारतीय राजनतिक जीवन पर पड रही है।

अंग्रेजी राज्य का सबसे अधिक प्रभाव जाति के राजनतिक पहलू और जाति पचायन के अधिकारों तथा कार्यों पर पडा। अंग्रेजी राज्य के रूप में, भारत में पहली बार, राष्ट्र राज्य का अम्मुदय हुआ जिसने कारण जातियों का असिल भारतीय विस्तार का अवसर मिला। रेल, तार डाक स्यापासना और समाचार पत्र के कारण तथा बल्लनी हुई राजनतिक परिस्थितियाँ से मिलने वाली प्रेरणा के कारण, अंग्रेजी राज्यकाल में, असिल भारतीय जाति संगठना का अम्मुदय हुआ। यही वह नाम है जब विभिन्न जातियों ने अपने असिल भारतीय संगठन भी स्थापित किए और, गाव ही गाव जाति के संगठन का बनाए रखने के लिए, जाति के लिए उच्च स्तर का दावा करने के लिए तथा धान्यकृतानुसार मुधार करने के लिये समाचार

पत्रों का निकाला, जाति पर पुस्तका को प्रकाशित किया और जसा कि श्री निवास ने लिखा है अनक जातियां न अपन सगठना के सविधान को बनाकर उमे प्रकाशित कराया¹ । लेकिन य सगठन परम्परागत जाति पचायती से भिन्न थे । जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, परम्परागत सामाजिक व्यवस्था मे, राज्य की देखरख मे, जाति-पचायती मे प्रशासन, न्याय तथा दण्ड के अधिकार निहित होते थे । अंग्रेजी राज्य मे जब पुलिस और न्यायालय की स्थापना हुई और भारतीय दण्ड-संहिता का नियमन हुआ तथा आवश्यकतानुसार विधियों के निर्माण का काम राज्य के हाथ मे चला गया तो जाति पचायती के प्रशासकीय, सविधानीय तथा न्यायिक अधिकार राज्य के हाथ मे चले गए । किंतु फिर भी अतिरिक्त, खानपान और पशा-सम्बन्धी नियमों का प्रशासन और नियमन जाति पचायती के ही हाथ मे रहा । जाति-पचायती के जा दण्ड विधान, जस शारीरिक प्रतारणा देना या देवी पराशा लेना, भारतीय दण्ड-संहिता के विरोध मे पडत थे वे धीरे धीरे स्वतः समाप्त हो गये । दूसरी ओर, अंग्रेजी राज्य की स्थापना मे, जा सामाजिक, आर्थिक तथा वैधानिक परिवर्तन हुये उनमे निम्नस्तर की जातियों को अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा का उठान का अवसर भी मिला और प्रेरणा भी । अंग्रेजी शिक्षा ब्राह्मणवादी कमकाण्ड और उच्च समझे जाने वाले पेशे सामाजिक प्रतिष्ठा का उठान के वे माध्यम बन गये जिनका निम्नस्तर की जातियों ने अपनाने का प्रयास किया । एमी परिस्थिति मे, निम्नस्तर की जातियां मे जाति-पचायत एक सुधारवादी सगठन मे परिवर्तित हुई । जाति पचायती ने, निम्नस्तर की जातियां मे, मरनियेध को लागू करने का प्रयास किया, उच्च शिक्षा को और लोगों का प्राप्तसाहित किया और ब्राह्मणवादी कमकाण्ड का प्रचार किया । लखनऊ मे कुरील चमारों की जाति पचायत ने चमारों को अपन अलग मंदिर निर्मित करने के लिए प्राप्तसाहित किया । पचायती के ही प्रयत्न मे रविदास मंदिर का निर्माण हुआ जिस कुरील जाति का मंदिर समझा जाता है और पचायत की बैठका मे दाराब पीवर आने वाले पर जुमाना लगाने का विधान किया गया² । निम्नस्तर की लगभग सभी जातियां मे, जाति-पचायत समाज सुधार का माध्यम बन गई । इसके दो कारण हैं— एक प्रत्येक निम्नस्तर की जाति के निर्मित वग मे जाति का स्तर उठान के लिए समाज सुधारा को प्राथमिकता दी और, दूसरे समाज सुधार आन्दोलन के प्रणेताओं ने जाति का समाज सुधार-आन्दोलन का माध्यम बनाने पर जोर दिया जिससे जाति पचायत के सगठन को प्राप्तसाहन मिला । निम्नस्तर की जाति के शिक्षित तथा धनी वग का सामाजिक स्तर तब तक नहीं उठ सकता था जब तक कि सम्पूर्ण जाति का सामाजिक स्तर न उठे । यही कारण है कि जिन जाति का स्तर जितना निम्न रहा

1 श्रीनिवास, एम०एन० वास्ट इन माइन् इण्डिया एण्ड अदर एमेज पृष्ठ 16

2 नटट, जी० एस० चमारस आक लखनऊ (अप्रकाशित)

है और जिस जाति के सदस्यो में उच्च-सामाजिक प्रतिष्ठा पान की जितनी प्ररणा रही है, उमम जाति पचायत या जाति सगठन का प्रभाव उनना ही महत्वपूर्ण है।

यारापीय प्रभाव के अतगत, जाति सरचना में वग व्यवस्था के तत्वा का समावेश हुआ जिसके दो मुख्य परिणाम निकले। शहरी सामाजिक व्यवस्था में जाति के जायिक आधार गौण हो गए और यापार सरकारी नौकरियो तथा अग्रेजी शिक्षा के प्रभाव के अ तगत, वहा औद्योगिक समाज की वग व्यवस्था का सम्युदय हुआ। इस वग व्यवस्था में निम्न और उच्च सभी प्रकार की जातियो का सम्मिश्रण हुआ। उदाहरणार्थ शहरी में जा औद्योगिक पूजावादी सामाजिक व्यवस्था विकसित हुई उसके मध्यवर्ग में उच्चवर्णी जातियां के लाग भी हैं और निम्नवर्णी जातियो के भी, यद्यपि इसमें बहुतायत उच्चवर्णी जातियां के लागे की है। किंतु भारत की ग्रामीण सामाजिक-व्यवस्था का आर्थिक आधार वृषि ही है क्योंकि भारत में औद्योगीकरण तथा शहरीकरण का धारे धीरे विकास हुआ है। एसी दशा में ग्रामीण समाज के आर्थिक साधना पर अधिकतर उच्चवर्णी जातियां का ही अधिकार रहा है। उधर औद्योगीकरण के प्रभाव से घरेलू उद्योग धंधो के ह्रास के कारण, कारीगर जातियो के लाग भूमिहीन वृषक के रूप में सवहारा वग में बदलते गये जिससे भूमि पर जनसत्या का दबाव और भूमिहीन वृषक की सख्या बढ़ी। राजनैतिक अधिकारो के मिलन के साथ साथ निम्नवर्णी जातियां ने आर्थिक समानता तथा जायिक अधिकारा का बचाये रखन का प्रयास किया। निम्नवर्णी जातियां ने जिन लाग न सरकारी नौकरियां का अपनाया या व्यापार को अपनाया उनका आर्थिक अस्तित्व सती पर निर्भर नहीं है। अत, वे अपने अन्य भाइयो की भांति उच्च जातियो पर आश्रित नहीं हैं। उच्च जातियां पर आश्रित न हान के कारण इस वग में कमकाण्डी समानता की मांग की क्योंकि राजनैतिक समानता पहले से ही मिली हुई है। हा, यह अवश्य है कि स्वतंत्रता का गालन के आरम्भ में इस वग का राजनैतिक विरोधाधिकार नहीं मिले था। अत, जना कि ज्योतिराज कुं महाराजा कोन्हापुर (श्री साहू क्षत्रपती) और अम्बेदकर के ब्राह्मणविराधी आ दालना से स्पष्ट है इस वग में पहले राजनैतिक विरोधाधिकारा की मांग की।

राजनैतिक विरोधाधिकारो के मिल जाने पर कमकाण्डी समानता की मांग पनपी। इसका प्रभाव भारत के राजनैतिक आन्दोलन पर भी पडा जिसके फलस्वरूप निम्नवर्णी जातियां का, सविधात द्वारा राजनैतिक विरोधाधिकार और सरक्षण प्रदान किया गया। किंतु, गांधी में जमींदारी उन्मूलन के बाद भी भूमि पर उच्चवर्णी जातियां का ही अधिकार रहा। उधर ग्राम पचायतों के सगठन से निम्नवर्णी जातियां को मनगान का अधिकार और राजनैतिक समानता मिली। इस परिस्थिति में, उच्चवर्णी जातियां पचायत का अपन विरोधाधिकार बनाये रखन का माध्यम बनाया तो निम्नवर्णी जातियां ने उस नय अधिकारों के प्रयोग का माध्यम। आर्थिक असमानता

ने, इस परिस्थिति में, उच्च तथा निम्नवर्गी जातियां म मध्य को जम दिया क्योंकि निम्नवर्गी जातियां, एक ओर, अपने राजनैतिक अधिकारों के प्रति जागरूक हैं ता, दूसरी ओर, उच्चवर्गी जातियां पर अपनी आर्थिक आधिपत्या के कारण असहाय हैं। इसी परिस्थिति में, निम्नवर्गी जातियां का शिक्षित वर्ग अपनी जाति के लोगों को नये मिले हुए राजनैतिक अधिकारों के प्रयोग के लिए प्रेरित करता है जिसका परिणाम होता है गुटबन्दी और मध्य जिसस ग्राम-पंचायत प्रणाली सराबार है¹।

जैसाकि भारत के अर्थ ऐतिहासिक युगा में हुआ, अंग्रेजी राज्यकाल में भी, जाति को लेकर हिन्दू-समाज में सुधारवादी आन्दोलन का प्रादुर्भाव हुआ। ये सुधारवादी आन्दोलन दो प्रकार के हैं—एक श्रेणी में ब्रह्मसमाज, जायसमाज रामकृष्ण मिशन और विद्योमाफिजल माताइटी आने ह और दूसरी श्रेणी में महादेव गांधिद रानाड और गोपाल कृष्ण गोखले के सुधार आन्दोलन। पहली श्रेणी के आन्दोलन धार्मिक-सामाजिक है और दूसरी श्रेणी के सामाजिक धार्मिक। पहली श्रेणी के सुधारवादी आन्दोलन ने जाति का विरोध किया और शास्त्रप्रणीत वर्ण व्यवस्था का उसी प्रकार से प्रतिपादन किया जसा कि बुद्ध और रामानुज ने सुधारक कर चुके थे। सामाजिक धार्मिक सुधारवादी नेता मूलन समाजसुधारवादी और उनका दृष्टिकोण, सद्भावपूर्ण हान की अपेक्षा, व्यावहारिक अधिक था। अतः, यदि पहली श्रेणी के नेताओं ने जाति की वर्ण के संदर्भ में पारह्या की तो दूसरी श्रेणी के नेताओं ने जाति को ही समाज सुधार का माध्यम बनाने पर जोर दिया क्योंकि जाति का लाना पर व्यापक प्रभाव था। इसका परिणाम यह हुआ कि एक तरफ तो जाति की आलोचना शुरू हुई और, दूसरी ओर, जाति संगठना का प्रांगण मिले जिसके फलस्वरूप यदि एक ओर जाति विरोधी विचार फैला तो, दूसरी ओर, जाति के 'चातुर्वर्ण्य मया सृष्टम्' के आधार पर जाति का सुयुक्तिकरण किया गया। एक ओर, जाति विरोधी विचारधारा पया तो, दूसरी ओर, जनगणना में निम्नस्तर की जातियां ने अपने का उच्चस्तरीय जाति का अंकित करवाना शुरू किया। इस फलस्वरूप, जाति का लेकर भारतीय विचारधारा में द्विभाजिता का आगमन हुआ।

श्रीनिवास के अनुसार ज्या ज्या जनता के हाथ में राजनैतिक सत्ता सौंपी गई तथा-जा, जाति की राजनैतिक सत्ता और काय बने गये। मातृसू चम्पराड के राजनैतिक सुधारों के साथ साथ, भारत के राजनैतिक जीवन में जाति चेतना का

1 विधेय अध्ययन के लिये देगिये

(अ) बनड एस० कान चेंजिंग स्टेटस आफ डिपरेसेड क्लासेज, मरिम मरियट द्वारा सम्पादित विलेज इण्डिया में।

(ब) बेली, एफ० जी० एन उडिया हिल विलेज एम० एन० थोनिपास द्वारा सम्पादित इण्डियन विलेज में।

श्रीगणेश हुआ। इस चेतना का भारत की राजनतिक गतिविधिया पर प्रभाव पडा। अपन विनोपाधिकारो की रक्षा के लिये या नये विनोपाधिकारो का प्राप्त करने के लिए, जातिया न राजनैतिक दल का आश्रय लिया। उदाहरणार्थ, भाद्र म कम्मा और रड्डो जातिया की प्रतिस्पर्धा अत्यन्त प्राचीन है। बदलती हुई परिस्थिति म कम्मा जाति के लोगो न कम्प्युनिस्ट पार्टी पर अधिकार जमाया तो रेडिडयो ने कांग्रेस पर। रेडिडयो क पान आपक्षाक्त भू स्वामित्व अधिक है और यही उनकी प्रतिस्पर्धा का कारण है। वास्तव म मुह्यतया भारत के प्रधान राजनतिक दल को ही विभिन्न जातिया ने अपनी राजनैतिक स्पर्धा का मंच बनाया है। विभिन्न प्रांता म कांग्रेस पर विभिन्न जातियो ने अपना बहुमत कायम किया है। जैसाकि श्रीनिवाम का मत है पचायता के सगठन से स्थानीय प्रभूतासम्पन्न जाति का अपना राजनतिक प्रभाव बढान का एक धवसर मिला। यह सबविदित है कि चुनाव म एक क्षेत्र विनोप क उम्मीदवार का चुनाव के लिए राजनैतिक दल बहुधा उही प्रभावगाली व्यक्ति को नामजद करते हैं जिनका जाति का उम क्षेत्र विनोप म बहुमत है। इसप्रकार, प्रत्येक राजनतिक दल विनोपतया कांग्रेस एक भार प्रभूतासम्पन्न जातिया के निहित स्वार्थो म प्रसित है ता दूसरी ओर पिछडी हुद जातिया क स्वार्थो से। यही कारण है कि कांग्रेस भारतीय समाज म आमूल चूल परिवर्तन लान म अमफल रही। हिंदू मुसलमान जोर इसाइया म से अनक जातियो ने पिछडा जातियो को मिलन वाले विनोपाधिकारो को पान के लिए अपन का बैकबड जातिया का थणी मलाने का प्रयास किया। करल म बैकबड प्रिश्चियन फेडरेशन की स्थापना और उसके द्वारा पिछडो इसाई जातियो के लिए विनोपाधिकारो की माग राजनीति पर जाति क बढन हुए प्रभाव का एक उदाहरण है। मध्यकालीन भारत म लिगायता ने गववाण का आश्रय लेकर और अनक शास्त्रावन परम्पराओ को र्पनाकर अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा का ऊपर उठाने का प्रयास किया किन्तु वर्तमान समय म अपन लिए पिछडी जातिया के स्तर का माग की। इसप्रकार राजनतिक मंच पर जहाँ एक ओर जाति की नमना की गई उम दूर करन के लिए लागो का प्ररणा दी गई वहा दूसरी ओर बाटा का आकषित करन वागी वस्तु क रूप म जाति की दबे गाना म महत्ता भी म्बोदार की गई।

संस्कृताद्भजन का प्रथिया जाति-गयात्मकता का आधार रही है क्याकि धार्मिक-व्यवस्था क निष्प्रवाह हान के कारण संस्कृताद्भजन हा जातिगतयात्मकता का एकमात्र आधार रहा है। बुद्धवाद तथा मध्ययुगीन भारत क मुधारवादी निगुण सप्रणया ने यदि जाति का विरोध किया ता साथ ही साथ हिंदुत्व का इस ढग म

1 दि हिन्दुस्तान टाइम्स बीकली (4 अक्टूबर 1964) में प्रकाशित पृ० एन० आई० क एक समाचार के आधार पर।

निश्चय किया कि अधिकतर जातियाँ शास्त्राक्त परम्पराओं का अपना सब । उन सुधारवादी आन्दोलनों में अनेक गणजातियों के लिए हिन्दुत्व में आन का मांग प्रस्ताव किया । ये आन्दोलन ब्राह्मणों द्वारा (बुद्धवाद को छोड़कर) गुरू किए गए । ब्राह्मण ही जाति का विरोधी रहा और ब्राह्मण ने जाति का समर्थन भी किया । जाति विरोधी आन्दोलन में सभी जातियों के लोग आकृष्ट हुए किन्तु जाति विरोधी आन्दोलन में आकर के भी लोग अपनी पुरानी जातियों से संपर्क न छोड़ सक । यह प्रक्रिया इस तथ्य से स्पष्ट है कि कबीर पथ, नानक पथ, गिबनरायनी पथ आदि सुधारवादी पथों में सभी जातियों के लोग आए किन्तु अपनी जाति से सम्पर्क न छोड़ सके । जैन, सिक्खों में यदि खत्री एक समूह विशेष बने तो निम्नस्तर की जातियों के अनेक अतिविवाही समूह सिक्खों में प्रविष्ट हुए । इसप्रकार, संस्कृताइजेशन एक एतिहासिक प्रक्रिया है और सुधारवादी आन्दोलन उसकी अभिव्यक्ति के माध्यम । जाति का एक भाग पहले संस्कृताइजेशन की ओर उन्मुख होता है और फिर संस्कृताइजेशन का अपनाकर वह संपूर्ण जाति को संस्कृताइजेशन की प्रेरणा देता है । अतः संस्कृताइजेशन यदि जाति में, एक ओर पथकरण की प्रक्रिया को जन्म देता है तो दूसरी ओर एकीकरण की प्रक्रिया को क्योंकि निम्नस्तर की जातियों में जायवित उच्चस्तर प्राप्त करने के लिए प्रेरित हाते है उनका उच्चस्तर पर तब तक स्वीकार नहीं किया जाता जब तक कि उनकी संपूर्ण जाति उच्चस्तर पर स्वीकृत न हो जाय । संस्कृताइजेशन की प्रक्रिया जाति में विभाजन तथा एकीकरण का एक साथ जन्म देती है । पुराणों के आधार पर उच्चवर्ण का दावा, मत्स्य मंदिरा का निषेध वर्ण क्रम तथा आवागमन में विस्थापन और ब्राह्मणवादी कमकाण्ड को अपनाना संस्कृताइजेशन के मूलतत्त्व रहे हैं ।

भारत में अंग्रेजी राज की स्थापना के बाद में, धारापीय सघात के कारण, भारत की आर्थिक-व्यवस्था में जो परिवर्तन आए और अंग्रेजी शिक्षा एवं सरकारी नौकरी, व्यापार और शहरीकरण ने आर्थिक चलिष्णुता के जो अवसर प्रदान किए उनसे संस्कृताइजेशन के द्वारा सामाजिक प्रतिष्ठा का उठाने के और भी अवसर मिले । दूसरी ओर पश्चिमीकरण (Westernization) सामाजिक प्रतिष्ठा का एक नया मापदण्ड बना । इसके परिणामस्वरूप वर्तमान भारत में, संस्कृताइजेशन और पश्चिमीकरण जाति-गततात्मकता के दो आधार बन गए । जिस प्रकार, मध्य युग में, इस्लाम ने संस्कृताइजेशन का अधिक तीव्र बना लिया उसीप्रकार माराप तथा इगायत के सघात ने, अन्तर्ती हुई आर्थिक व्यवस्था में, संस्कृताइजेशन का पतल का अवकाश अधिक व्यापक सामाजिक आधार प्रदान किया । ब्रह्ममज्ज और आद्यमज्ज संस्कृताइजेशन को व्यापक बनाने के आन्दोलन के और पाना के प्रणता ब्राह्मण थे । आय समाज ने, सभी का पौराहित्य काय के स्थान देकर, संस्कृताइजेशन का और भी जनमुलभ बना दिया । यह दोनों आन्दोलन पश्चिमीकरण के विरोधी थे किन्तु, फिर भी,

पश्चिमीकरण प्रतिष्ठा का मापदण्ड बना रहा। व्यापार, सरकारी नौकरिया और राजनतिक अधिकारा न निम्नस्तर की विभिन्न जातियो मे एस बग का जन्म दिया जिसने सस्कृताइजेशन का अपनाकर उच्चस्तर प्राप्त करने की प्रेरणा दी। जम्बद्वर द्वारा ब्रह्मता का बुद्धवाद की जोर ले जाने का प्रयास इसका एक उदाहरण है। इस काल में, पाराणिक प्रमाणों के आधार पर निम्नस्तर की जातियो ने अपने लिए उच्चस्तर का दावा किया। चमारा ने अपने को चवरवर्गी राजपूत, जसवारा ने अपने को राठीर राजपूत तथा बाछियो ने अपने का कुशवाहा राजपूत कहा। अन्य जातियो ने जाति के महापुरुषों को सस्कृताइजेशन के प्रतीक के रूप में स्वीकार किया। उदाहरणार्थ चमारा ने रविदास जयन्ती मनायी शुरू की और तुतसीदास रामायण तथा सत्यनारायण कथा के स्थान पर रविदास रामायण तथा रविदाम कथा को अपनाया। भगिया ने वाल्मीकि का जाति का प्रतीक माना और उनका उपदेशों का मानने पर जार दिया। जनेर जातियो ने अपनी उन साम्राजा के बहिष्कार किया जिनके कारण उन्हें ह्य माना जाता था (जने भगिया का अपन को भगी न कहकर वाल्मीकि कहना) मास और मदिरा के त्यागन पर जार दिया और यनोपवीत के साथ-साथ ब्राह्मणों की सेवाओं को अपनायन पर जार दिया।

सस्कृताइजेशन की प्रक्रिया एकतरफा रही है क्याकि निम्नस्तर की जातियो ही सस्कृताइजेशन को अपनायन के लिए उन्मुख रही है। पश्चिमीकरण उच्चस्तर की जातियो से प्रारम्भ हुआ और, बाद में, उनका प्रचार निम्नस्तर की जातियो में हुआ। पश्चिमीकरण और सस्कृताइजेशन साधन हैं साध्य नहीं। साध्य है उच्चतर सामाजिक प्रतिष्ठा। लोगों की ऐसी धारणा रही है कि पश्चिमीकरण का प्रभाव उच्चस्तर पर रहा है और सस्कृताइजेशन का निम्नस्तर पर या जहाँ पश्चिमीकरण प्रारम्भ होता है वहाँ सस्कृताइजेशन का अंत होता है और जहाँ सस्कृताइजेशन का अंत होता है वहाँ पश्चिमीकरण का प्रारम्भ होता है। ऐसी मान्यताओं भ्रममूलक हैं क्याकि यदि बुद्धवाद मध्ययुग के सुधारवादी तथा और उन्नीसवीं शताब्दी के सुधारवादी आन्दानों के मद्दे में विचार किया जाय तो यह विदित होगा कि सस्कृताइजेशन एक गत्यात्मक विचार है—वह विचार जिसका निरवचन एक जार सभवायि युगे युग की धारणा से संबन्धित रहा है तो दूसरा जार देश काय की परिस्थितियो में। सस्कृताइजेशन के साथ पश्चिमीकरण का गगन धारापीय सघन का प्रभाव है। पश्चिमीकरण और सस्कृताइजेशन जाति परचना के विभिन्न स्तरों पर एक साथ साथ चल रहे हैं यद्यपि निम्न स्तर पर सस्कृताइजेशन का अपगाहृत अधिक प्रभाव है और विसी स्तर पर पश्चिमीकरण न। पश्चिमीकरण और सस्कृताइजेशन सामाजिक प्रतिष्ठा की चलिष्णुता के आधार पर है कि तुय, यस्तुन, निभर करते हैं जाति गत्यात्मकता को जन्म देने वाली दो प्रक्रियाओं पर। उन प्रक्रियाओं में एक है जाति के पथक होकर उच्चस्तर पाय का प्रक्रिया और दूसरी, उच्चस्तर प्राप्त करने के लिए जाति के

एकीकरण को बनाए रखने की प्रक्रिया। बदलती हुई आर्थिक परिस्थितियाँ ने तथा व्यापार सरकारी तथा फौज की नौकरी और राजनतिक अधिकारों से उत्पन्न परिस्थितियाँ ने इन प्रक्रियाओं के लिए अपेक्षाकृत अधिक व्यापक सामाजिक आधार प्रदान किया जिसके कारण, इन दोनों परिस्थितियों के माध्यम से पश्चिमीकरण और संस्कृतिज्ञान का जाति-गत्यात्मकता में अधिक प्रभावशाली स्थान मिला।

यारोपीय संघर्ष का एक महत्वपूर्ण प्रभाव यह पड़ा कि भारतीय समाज की एक आधारभूत संस्था होते हुए भी जाति एक प्रमुख सामाजिक समस्या बन गई। यारोपीय उत्तरतावाद, प्रजातन्त्रवाद व्यक्तिवाद और बर्तनिक धर्म के आदर्शों के सन्दर्भ में जाति अनुपयुक्त सामाजिक संस्था प्रतीत हुई। हिन्दू समाज के एकीकरण की समस्या में जाति का सामाजिक समस्या का रूप दिया किन्तु, साथ ही-साथ, इस बात के सांस्कृतिक, आर्थिक तथा राजनतिक जीवन में जाति की जड़ें जम गईं। फलतः जैसाकि पञ्जाब के जाति पंक्ति ताड़क मण्डल जैसे संगठना और धर्मसमाज के अदृष्टाद्वार के कापन्धियों से स्पष्ट है एक आर जाति पंक्ति के ताड़ने के विचार का अन्वय हवा तो दूसरी ओर, जाति का समाजशास्त्रीय विवेचना की प्रोत्साहन मिला। विदेशी प्रशासकों ईसाई मिशनरियाँ और मानव शास्त्रियों ने 'जाति क्या है? क्यों है?' इन प्रश्नों के समाधान का प्रयास किया। इन प्रश्नों का समाधान एक ओर ऐतिहासिक विवेचना के द्वारा किया गया और दूसरी ओर, जाति की वर्तमान व्यावहारिक विघ्नताओं के आधार पर। रिसेले ने जाति को प्रजाति सम्मिश्रण के परिणाम माना जिसे स्वीकार न किया जा सका, क्योंकि एक ही स्तर की जातियों के प्रजातिक गठन में समानता नहीं पाई जाती है। नेस्फील्ड और शेरिङ्ग ने जाति की उत्पत्ति पेटे से मानी है किन्तु जैसाकि डा० मजूमदार ने लिखा है उपलब्ध पशु की अपेक्षा, जातियाँ का अधिक होना, इस सिद्धान्त की सबसे बड़ी कमजोरी है जिसके कारण इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता। भारत का सामाजिक इतिहास के सन्दर्भ में, जाति गत्यात्मकता का विवेचन करते हुए धुर ने जाति का ब्राह्मणों की वह सामाजिक कृति कहा जिसे ब्राह्मणों ने अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा बनाए रखने के लिए, चालाकी से समाज में उत्पन्न किया। किन्तु धुर के सिद्धान्त में यह नहीं स्पष्ट होता कि ब्राह्मण ही क्यों जाति प्रथा के विरोधी रहे हैं, और, क्या कोई सामाजिक संस्था इतनी सुनियोजित और सुयुक्तिपूर्ण विचारधारा के उत्पत्ति हो सकती है जितनी कि धुर ने जाति का माना है। डा० मजूमदार ने जाति की उत्पत्ति संस्कृति-मध्य और प्रजाति-मध्य से मानी है। उनका अनुमान कार्यों और अनाथों की संस्कृति का समय और उस समय में प्रजातिक गुणवत्ता बनाए रखने की भावना में जाति की उत्पत्ति हुई है जिसका प्रमाण अनुल्लभ और प्रतिलोम की विवाह प्रथाएँ हैं। किन्तु अनुल्लभ और प्रतिलोम का सम्बन्ध यह है कि जाति से। कुछ लोग ने मनु का अनुसरण करते हुए, भाषों की वण-व्यवस्था से जाति व्यवस्था की

उत्पत्ति मानी है। इस मत के प्रतिपादक न दो दृष्टिकोण अपनाए—एक दृष्टिकोण के अनुसार वण जातियों में विभाजित हुए और, दूसरे के अनुसार वण ही जातियाँ में अध पतित हुए। किन्तु इस मत के प्रतिपादक यह मूल बात हैं कि भारतीय विचार-धारा में वण अर्द्धत सामाजिक प्रतिष्ठा पर आधारित रहा है जोर जाति जन्मजात सामाजिक प्रतिष्ठा पर। वण और जाति, वस्तुतः दो समानांतर परम्पराएँ हैं। हटन न जाति-व्यवस्था में निहित छुआछूत के विचारों पर जोर देते हुए यह मत प्रतिपादित किया कि जाति के तत्त्व सभ्यता आर्यों की सामाजिक व्यवस्था के बाहर उत्पन्न हुए हैं, क्योंकि भारत में आदिवासियों में भी छुआछूत के विचार पाए जाते हैं। जाति व्यवस्था की उत्पत्ति के प्रश्न को लेकर, जाति का विश्लेषण करने वाले विद्वान जाति और गणजाति में पाई जाने वाली असाधारण समानताओं को जाति के विश्लेषण में गौण मानते रहे हैं। यदि जाति के पेशागत विशेषीकरण की विशेषता का जाति की विशेषताओं में से निकाल लिया जाय तो जाति वस्तुतः गणजाति ही है। अंग्रेजी राज्य की स्थापना से पहले के भारतीय साहित्य में वण और जाति का अंतर तो पाया जाता है किन्तु जाति और गणजाति की द्विभाजिता नहीं पाई जाती है। जाति और गणजाति मूलतः जन्मजात अन्तर्विवाही समूह के दो पहलू हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि जाति आर्यों की वण व्यवस्था तथा भारत की गणजातीय व्यवस्था के सम्मेलन से उत्पन्न एक सामाजिक प्रभय है। गणजातियों में जातियों की महत्ता बढ़ी है और गस्तृता-जान के माध्यम से वण व्यवस्था के सिद्धांत पर जातियों की त्रम-व्यवस्था विकसित हुई है। जाति वह मरचना है जिसका एक आधार गणजाति के माध्यम से जन्म और अन्तर्विवाह-मूलक है तथा दूसरा वण सिद्धांत के आधार पर सामाजिक प्रतिष्ठामूलक।

भारत में आदिवासी संस्कृति

आदिवासी समाज-संस्कृति-सकुल

आदिवासी भारत

भारत के राजनैतिक नक्शे के साथ-साथ आदिवासी भारत का भी नक्शा बदलता रहा है। अपनी पुस्तक 'रसेज एण्ड कल्चर्स आफ इण्डिया' में मजूमदार ने भारत-पाकिस्तान उपमहाद्वीप के आदिवासियों को संस्कृति, प्रजाति तथा भाषा भिन्नता के आधार पर तीन क्षेत्रों में वर्गीकृत किया है। पहला क्षेत्र है पश्चिमोत्तर साम्राज्य प्रदेश का जो पश्चिमी पाकिस्तान में है और जिसमें अफगानी और बिलोची गणजातियाँ आती हैं। यहाँ के लोग जिरगा में बटे हुए हैं और माघारणत पखून के नाम से प्रसिद्ध हैं। अंग्रेजी सरकार ने इन्हें दबाकर अवैध रक्त्वा किन्तु इन्होंने अंग्रेजी का पूरा आधिपत्य कभी नहीं माना। आज से वस ही अपने निये स्वतंत्र पखूनिस्तान की माँग कर रहे हैं, जस कि नागा प्रान्त के निवासी। पूर्वोत्तर सीमान्त प्रदेश (उत्तरी), मजूमदार के अनुसार दूसरा आदिवासी-क्षेत्र है और क्षेत्र भारत, जिस इन्होंने आन्तरिक भारत (Interior India) कहा है तीसरा क्षेत्र है। पहल क्षेत्र की गणजातियाँ पन्ना भाषा का प्रयोग करती हैं। दूसरे क्षेत्र की गणजातियाँ मान्-समेर और आगामी मिश्रित तिब्बती चीनी परिवार की भाषाओं का तथा तीसरे क्षेत्र की

गणजातियाँ इण्डो-आर्य (Indo-Arya), द्राविड तथा आस्ट्रिक परिवार की भाषाया
 का। भाषा के आधार पर तीसरे धन की गणजातियाँ का भील कागी, गाठ-काया
 तथा मुष्ण भाषा-समूहों में बाँटा जा सकता है। भील कोही समूह में इण्डो-आर्य
 भाषा का आस्ट्रिक भाषा पर आधारित किया गया है, गाठ काया समूह में द्राविड
 भाषा की बालियाँ का प्रयोग होता है और मुष्ण समूह में जिन बालियाँ का प्रयोग
 होता है वे आस्ट्रिक परिवार की भाषा के अन्तर्गत आती हैं। पश्चिमात्तर सीमांत
 प्रदेश की गणजातियाँ में आमतौर पर काकरवायड प्रजाति के तत्त्वा का नमावण है
 पूर्वोत्तर सीमान्त प्रदेश की गणजातियाँ में एक बार मणान्वायड प्रजातिक तत्त्वा का
 समावेश मिलता है तो दूसरी बार भारतीय आस्ट्रात्वायड प्रजातिक तत्त्वा का जो
 अपन मूल रूप में सम्भवतः प्रायः मदीय-निचल (Proto Mediterranean) के
 प्रकार के रहें होंगे।

भारत के जिन भूभागों में आदिवासी पाये जाते हैं उनकी भौगोलिक विभेदताओं
 तथा आदिवासियों के प्रजातिक गठन और भाषा भिन्नताओं के
 भौगोलिक क्षेत्र आधार पर, वर्तमान आदिवासी भारत का भाँटे तौर पर तीन
 बड़े-बड़े आदिवासी क्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता है। पहला
 उत्तरी उत्तर-पूर्वी क्षेत्र, जिसका एक भाग हिमालय और हिंदूस्तान है और दूसरा सुगौरी
 पहाड़ियाँ तथा मिर्मी मदान में तथा जो लद्दाख़ से लेकर नफा तथा फना हुआ है।
 मध्य में पतला और किनारों पर चौका होता हुआ यह क्षेत्र पश्चिम में लगभग
 ३३०° ३०'—३७° ००' उ० तथा पूर्व में लगभग अक्षांश २३° ३०' उ०—२८°
 उ० तथा लगभग देशांतर ७७° ३३' पू०—९७° ०' पू० के बीच में फैला हुआ है।
 इसमें पूर्वी कश्मीर, पूर्वी पंजाब, हिमाचल प्रदेश, उत्तरी उत्तरप्रदेश, सिक्किम,
 नागालैण्ड तथा आसाम के आदिवासी क्षेत्र आते हैं। नकुलगास्त्रीय (Ethnological)
 दृष्टिकोण से दक्षिणी उत्तरप्रदेश (जिला मिर्जापुर) बिहार बंगाल और उड़ीसा,
 मध्यप्रदेश गुजरात तथा दक्षिणी राजस्थान के आदिवासी मध्यक्षेत्र (Central Zone)
 में आते हैं। उत्तरी राजस्थान बस्तर (मध्यप्रदेश) और बम्बई प्रांत के दक्षिणी
 भाग तक (लगभग अक्षांश २० ०' उ०—२५° ०' उ० तथा देशांतर ७३° ०' पू०—
 ९०° ०' पू० के बीच) फैला यह क्षेत्र, क्षेत्रफल और जनसंख्या में समान बड़ा क्षेत्र है।
 इसका दक्षिण पूर्वी भाग, आसाम, मद्रास करल और मसूर-रूपान्ति प्रांत के आदि
 वासी क्षेत्रों के साथ दक्षिणी आदिवासी-क्षेत्र (अक्षांश ८° उ०—२०° उ० तथा
 देशांतर ७५° पू०—८५° पू० के बीच) का रूप ग्रहण करता है। अबमान और
 निवायार द्वीपों में भी आदिवासी पाये जाते हैं किन्तु उनका प्रजातिक गठन भारत-
 महादेश (Main Land) के आदिवासियों से भिन्न है।

१ मजूमदार, डी० एन० रैसज एण्ड कल्चम आफ इण्डिया पृष्ठ ३७७।
 २ मजूमदार और मदन के आधार पर।

जनसंख्या और प्रसार के दृष्टिकोण में मध्य क्षेत्र अथवा क्षेत्रों की अपेक्षा जिनका क्या है उगई प्रति जनसंख्या हमारा समाजशास्त्रीय ज्ञान भी उनका ही अधिक है। यह वह क्षेत्र है जहां आदिवासियों की जनसंख्या का उत्तरात्तर के द्रीकरण भी होना रहा और गर आदिवासियों में संस्कृति सम्पन्न भी। इसी क्षेत्र में गाड़ जैसे आदिवासियों का न्याय का उत्साह जारी पतन भी हुआ है। भारत के कटि प्रदेश में स्थापित ज्ञान के कारण अंग्रेजी शासन का न्याय क्षेत्र के अन्वेषण पर भी अधिक जारी किया गया। किन्तु आज हिमालय में भारत और चीन की सीमाओं के मिश्रण तथा चीन भारत मध्य के कारण उत्तरी उत्तर-पूर्वी क्षेत्र की महत्ता सबसे अधिक बढ़ गई। नया का छाड़कर इन क्षेत्र के बारे में हमारा समाजशास्त्रीय ज्ञान अल्पतम है। भारत के आदिवासी क्षेत्र पहाड़ियों घाटियां तथा दुर्गम जगहों से घिरे उन भूभागों में आज हैं जहां यातायात की जनसंख्या कम सुविधा होने के कारण जन-जीवन एक प्रकार से अल्पविकृत अवस्था में रहा है। इसका उत्तरदायित्व जिन ऐतिहासिक परिस्थितियों पर है उनका बखाने यहाँ न करके भाग दिया जायेगा। यहाँ तो जितना कहना बाकी होगा कि अल्पविकृत अवस्था के बावजूद इन प्रदेशों का जन जीवन भारत महादेश के सामूहिक प्रवाहों में अछूता नहीं रहा है। अंग्रेजी शासन की स्थापना के बाद से जहाँ यातायात के साधन और औद्योगिकी का प्रभाव बढ़ता रहा इन प्रदेशों का पथकता भी कम होती गई। द्वितीय महायुद्ध में इस्फाल युद्ध का मांचा था और जब भारत की उत्तरी सीमा पर चीनी फौजों ने लड़ाई और नया में चलाई (1962) की तो नया से लेकर लड़ाई तक के आदिवासी क्षेत्रों की पथकता और न्यूनता कम हुई।

भारत के आदिवासी क्षेत्र पहाड़ों तथा जगहों से घिरे होने के बावजूद भी एकल आदिवासी (Excluded Tribals) क्षेत्र नहीं हैं। हाँ यह अवश्य है कि वही आदिवासी के साथ गर आदिवासियों की संख्या कम है और वहाँ ज्यादा, अल्प प्रत्येक सम्पूर्ण आदिवासी क्षेत्र में आदिवासियों का संख्या गर आदिवासियों से ज्यादा है। उदाहरण और नया का अपना दक्षिणी बिहार उत्तरांचल और मध्यप्रदेश के आदिवासी क्षेत्रों में गर आदिवासियों की संख्या अधिक है। जहाँ जमशेदपुर और भिलाई का कारणान गुण गये हैं वहाँ गर आदिवासियों का स्थायी जनसंख्या और भी कम गई है। अतएव आदिवासी क्षेत्र ही जहाँ से आदिवासी दुर्गम पहाड़ी घाटियों में रहा है किन्तु इन भौगोलिक परिस्थितियों के हाँ आधार पर, आदिवासी सामाजिक जीवन पर भौगोलिक परिस्थितियों तथा प्राकृतिक पर्यावरण का अपेक्षाकृत इतना अधिक प्रभाव पड़ता है कि प्राकृतिक पर्यावरण के विभिन्न तंत्र आदिवासी संस्कृतियों के पारिस्थितिक तंत्र बन जाते हैं और उगई कारण आदिवासी संस्कृति तथा प्राकृतिक पर्यावरण में एक प्रकार का अंतर्निहित तात्कालिक स्थापित हो जाता है। किन्तु सामाजिक में यह महत्वपूर्ण है वह आदिवासी संस्कृति का एकमात्र

काक तब नहीं है। आदिवासी ने अपने भौगोलिक परिवेश का प्रत्यक्ष उपयोग किया है। जालियों में बड़े हिल्लों और गन्गाविना में बड़े आदिवासियों में अन्तर ही यह गन्ना है कि आदिवासी अन्त प्राकृतिक पनावरण का प्रयोजन उपयोग करता रहा है। किन्तु भौगोलिक परिस्थितियों के ही आधार पर आदिवासी की परिभाषा नहीं हो सकती है। उदाहरण के लिये गणजाति के आदिवासी पहाड़ों या पहाड़ों में अन्त रहते हैं किन्तु पहाड़ों में रहने का कारण ही वे आदिवासी नहीं हैं। जसा कि बेली न बना है कि गणजाति (आदिवासी-जाति) की परिभाषा में भौगोलिक मापदण्ड इतनीजिये असम्भव है जसा है कि पहाड़ियों (उदाहरण के लिये पहाड़ियों) में यदि गण-जातियों के अलावा अन्य लोग न हों तो आदिवासी-समस्या ही नहीं रहती।

भारत के चार भाषा परिवारों इण्डो-यूरोपीय (आर्य) द्राविड, आस्ट्रिक (काल या मुण्डा) और तिब्बती चीनी में से आदिवासी मुख्यतया अणाय आदिवासी भाषा भाषाओं तथा बालियों का प्रयोग करते हैं यद्यपि आर्य भाषा के वर्गीकरण प्रभाव में वे एकदम मुक्त नहीं हैं। हाँ यह प्रत्यक्ष है कि आर्य भाषा का प्रभाव नार भारतवर्ष के आदिवासियों पर नहीं पड़ा है। उत्तरी उत्तर पूर्वी प्रदेश में चानी तिब्बती और तिब्बती बर्मी का प्रयोग होता है यद्यपि, जसा कि स्वामी प्रदेश का उदाहरण न स्पष्ट है इस प्रदेश में कहीं-कहीं मान खम्बू (आस्ट्रिक परिवार का भाषा) का प्रयोग होता है। नागा पहाड़ियों में, स्थानीय आदिवासी के अलावा सालह भाषाओं का प्रयोग होता है। मध्य प्रदेश में आस्ट्रिक परिवार की भाषा की प्रधानता तथा यहाँ-वहाँ इण्डो-आर्य भाषा के प्रभाव के साथ-साथ द्राविड भाषा परिवार की बालियों और भाषाओं का भी प्रयोग होता है। इस क्षेत्र में आर्य भाषा का नाम गाड़ और गाड़ नामक आदिवासी जिन भाषाओं का बोलते हैं, वे द्राविड परिवार की हैं और छोटा नागपुर (बिहार) के आदिवासी बोलने वाले मुण्डा भाषाएँ आस्ट्रिक परिवार की हैं। गोड़ी भाषा द्राविड और घाघ्र भाषाओं

1 बेली एक० जी० टाइप, कास्ट एण्ड नेशन पृष्ठ 264

2 मुण्डा भाषाओं में क्रिया और लिंग भेद का अभाव है। गणों के द्वारा वस्तुओं का वर्गीकरण निर्राज और सजोय के आधार पर होता है। इन भाषाओं के लिये 'मुण्डा' शब्द का प्रयोग सबसे पहले (1852 में) क्रिस्टिफ मिलर ने किया था। सन 1907 में डब्ल्यू० रिपट (W. Schmidt) ने मुण्डा तथा मान और लोमर भाषाओं को एक समूह की मानकर, उसे आस्ट्रो एशियाटिक भाषा परिवार की श्रेणी दी थी। मुण्डा भाषा परिवार तथा फिनो उरियन (Finnic-Uralian) परिवार को एक वर्ग में मिलाने के प्रयत्नों को हेमडॉर्न ने अक्षयपूर्वक नहीं माना है। सन 1928 में हन गल्डन (Hans Geldern) ने यह सुझाव रखा कि मुण्डा भाषाएँ उन प्रगोह्यायवद

के बीच की मानी जाती है। दक्षिण क्षेत्र के आदिवासी किसी न किसी रूप में द्राविड-परिवार की भाषाओं तामिल, तेलगू, मलयालम और कन्नड या उनसे सम्बंधित भाषाओं का प्रयोग करते हैं।

भारत के तीन आदिवासी क्षेत्र इस प्रकार साधारणतया तीन प्रधान भाषा-क्षेत्रों में रक्खे जा सकते हैं यद्यपि किसी भी क्षेत्र में एक ही भाषा का प्रयोग नहीं होता है। उत्तरी-उत्तर पूर्वी क्षेत्र में तिब्बती चीनी और तिब्बती बर्मी के साथ मानसमर भाषा बाली जाती है और मध्य क्षेत्र में आस्ट्रो एशियाटिक परिवार की भाषाओं के साथ द्राविड परिवार की भाषाएँ पाई जाती हैं। हा दक्षिणी क्षेत्र इसका अपवाद अवश्य लगता है। एक ही क्षेत्र में दो आदिवासी समूह सस्कृति में समान होते हुए भी अलग अलग भाषाओं का प्रयोग करते हैं। छटा नागपुर में मुण्डा बाली आस्ट्रिक परिवार में आती है और शोराओ बाली द्राविड परिवार में, जबकि आराओ जोर मुण्डा एक-दूसरे के पड़ोसी हैं और दोनों की सस्कृति समान है। आदिवासी भाषाएँ और बालियाँ निश्चय ही अनाथ भाषाओं के परिवार की हैं कि तु यह नहीं कहा जा सकता कि मूलतः भारत के आदिवासियों की एक भाषा थी या अनेक भाषाएँ, या यदि एक भाषा थी तो उसका मूल रूप क्या था। जाज कार्ड भी आदिवासी भाषा अपने मूल रूप में नहीं है। इतिहास के प्रवाह में ज्यों ज्यों और जहाँ-जहाँ आदिवासियों का घर आदिवासियों से सम्पर्क हुआ उनकी भाषा बाली या उतारन दूसरों की भाषा अपनाई, या कहीं कहीं उनकी मूल भाषा का लोप हो गया। बगल आदिवासियों ने आज अपनी मूल भाषा का छोड़कर अपने पड़ोस की छत्तीसगढ़ी

लोगों की भाषा से निकली है जो उत्तर पूर्व की ओर से, नव प्रस्तरयुगीन सस्कृति के प्रणेता के रूप में भारत में आये। यह मान्यता इस तथ्य पर आधारित है कि आर्यों के पहले उत्तर पूर्वो भारत तथा मध्य भारत में सांस्कृतिक नरतय का सम्बन्ध स्थापित हो चुका था जो उस समय अलग हुआ, जब आर्य पूर्व की ओर बढ़े। दिवगत की स्मृति में, बड़े बड़े पत्थरों का स्मारक बनाने का कल्प (Megalithic Ritual) युवागृह संगठन, जो उत्तर पूर्वो तथा मध्य क्षेत्रों में पाये जाते हैं तथा मध्यभारत की बोंडो और उत्तरी पूर्वो क्षेत्र की कोयाक आदिवासी स्त्रियों की छाल के देगों से बनी घाघरी, हैमंडाक के अनुसार, गलडन की मान्यता के नकुलगास्त्रीय प्रमाण हैं। हटन का मत है कि भारत में आस्ट्रिक परिवार की भाषा एक ओर, हिमालय के पश्चिमी किनारे से आने वाले कोल भाषा भाषियों द्वारा और, दूसरी ओर, हिमालय के पूर्व से आने वाले मानसमर भाषा भाषियों द्वारा आई है—मजूमदार एण्ड मदन एन इण्ट्रोडक्शन टू सोशल एथनोलोजी पृष्ठ 255-2, 6।

(मध्य प्रदेश) भाषा का अपना लिया है, यद्यपि बग़ा संस्कृति आज भी एक विशिष्ट संस्कृति है। मध्य क्षेत्र के अधिकतर आदिवासी द्विभाषी हो गए हैं—प्रत्येक समूह अपनी भाषा का भी प्रयोग करता है। मध्य क्षेत्र में आदिवासी भाषाओं के साथ-साथ उड़िया, बंगाली और हिंदी का भी प्रचलन मिलता है जोराओ और मुण्डा हिन्दी का प्रयोग करने लगे हैं और बंगाल में रहने वाले सचल अपना भाषा के अलावा बंगाली का प्रयोग सीख गए हैं।

करल में, ट्रावनकोर कोचीन व तिरवासी काल प्राचीनतम आदिवासी मान जाते हैं किंतु, वे मलयालम भाषा का प्रयोग करते हैं। एक आर जैसा कि गाडी के उदाहरण से स्पष्ट है भारत के आदिवासियों की भाषा का आवरण हुआ और, दूसरी ओर जहाँ द्राविड भाषा भाषियों का प्रभुत्व रहा है आदिवासियों की भाषाओं का द्राविडीकरण हुआ। एसी दृष्टि में, भाषा के आधार पर आदिवासी की परिभाषा करना दुःकर है क्योंकि आदिवासियों की कोई एक भाषा नहीं है। आदिवासी भाषा की एक सावभौम विशेषता है और वह है लिपि का अभाव। लिपि के अभाव के कारण सारा आदिवासी साहित्य मौखिक होता है। लिपि के अभाव में, आदिवासी भाषा अधिकतर बोली के ही स्तर पर रहती है और, इस कारण, लिखित भाषाओं की अपेक्षा वह परिवर्तनशील भी अधिक होती है। आदिवासियों की भाषाओं के लोप होने का एक कारण आदिवासियों में लिपि का अभाव है और जहाँ यह अभाव नहीं है, आदिवासी भाषा बाह्य प्रभाव का रोकने में सक्षम हो जाती है। जब से, ईसाई मिशनरियों ने आदिवासियों में रोमन लिपि का प्रचार करके आदिवासी भाषा में ही प्राथमिक शिक्षा का संगठन किया है तब से आदिवासी भाषाएँ संवर्धित होने लगी हैं और सांस्कृतिक पुनरुत्थान का माध्यम बनती जा रही हैं।

जिस प्रकार यह नहीं कहा जा सकता कि आदिवासियों की मूल भाषा क्या थी उसी प्रकार यह भी कहना कठिन है कि आदिवासियों का मूल प्रजातिक प्रजातिक गठन प्रकार क्या था। सिंधु नदी की घाटी का संस्कृति, जहाँ लगभग चार हजार पाँच सौ वर्ष और नर्मदा नदी की घाटी की संस्कृति, जो दो लाख पचास हजार वर्ष पुरानी हैं, की खोज में इस तथ्य के स्पष्ट प्रमाण नहीं मिले हैं कि उनके निमाणाओं का प्रजातिक प्रकार क्या था। यह अनुमान प्रकाश लगाया गया कि सिंधु नदी की घाटी में जहाँ गहरा संस्कृति उत्पन्न हुई थी उसने निर्माताओं का प्रजातिक गठन विजातीय था। भारत में, एक आर, प्रागैतिहास में काम कम हुआ है और, दूसरी ओर, यहाँ की जलवायु के कारण, प्रागैतिहासिक प्रमाणों की कमी भी रही है जिसके कारण, प्रागैतिहास काल के भारतीय मानव की प्रजातिक विशेषताओं और संस्कृति के विषय में हमारा ज्ञान आज भी कम है। विभिन्न प्रजातियाँ तथा भाषा-संस्कृति-समूहों का क्या, कहाँ और किस प्रकार स्थान-ंतरण होना रहा है, इस विषय में भी निश्चित ऐतिहासिक तथा प्रागैतिहासिक

प्रमाणा की भी कमी रही है — जिसके कारण प्राचीन पुस्तक में मिलने वाले विभिन्न समूहों की प्रजातिक विशेषताओं के वर्णन तथा इधर वीसवीं शताब्दी में की गई शरीर रचना की प्रमाणा के आधार पर आदिवासियों के प्रजातिक गठन तथा इतिहास का जानने का प्रयास किया गया है। उदाहरणार्थ वेदों में दस्यु का वर्णन मिलता है और गुप्त-काल की चित्रकला में जा नोग्रायड विशेषताओं वाली आकृतियाँ मिलती हैं उनका ज्ञान पर यह अनुमान लगाया गया है कि आदिवासियों के प्रजातिक गठन में स्वतंत्र प्रजातियों की विशेषताओं के स्थानपर, नोग्रायड तथा मगोत्वायड विशेषताओं का ही अधिक समावेश है। किंतु इस समावेश के स्वरूप और मात्रा पर मतभेद है।

सर एरबर्ट हूपर रिसले जि हानसन जठारह सौ इक्यानवे की जनगणना का पर्यवेक्षण किया था, ने यह मत प्रतिपादित किया था कि भारत में द्राविड, इण्डो आर्य और मगोत्वायड प्रजातियों के समावेश से भारत के मुख्य प्रजातिक प्रकारों का गठन हुआ है और आदिवासियों के प्रजातिक गठन द्राविड तथा मगोत्वायड के मिश्रण का परिणाम है। रिसले के सहयोगी सर विलियम टुन ने यह लिखा है कि आर्यों का पतन में मगोत्वायड प्रकार की एक नामी प्रजाति तथा बंगाल में दस्युओं का सामना करना पड़ा था। टुन ने दस्युओं का द्राविड तथा काल प्रजातियों का एक मिश्रित प्रकार माना है और द्राविडों का नीग्रिटो प्रकार की एक प्रजाति किंतु इन दोनों का समावेश नहीं मिली है क्योंकि इसमें जहाँ आर्य और द्राविड जन्म भाषा-समूहों का प्रजातिक माना गया है वहाँ दो प्रजातियों के मिश्रण से एक नई प्रजाति के बन जाने की कल्पना की गई है जो आनुवांशिकता के नियमों के विरुद्ध पड़ती है।

हैडन ने प्रजातियों के स्थानांतरण के आधार पर प्रजातिक इतिहास तथा गठन का स्पष्ट करने का प्रयास किया है। हैडन मध्य क्षेत्र के आदिवासियों का भारत का मूल निवास मानते हैं और उन्हें पूर्व द्राविड मानते हुए उन्हें भारत का प्रजातिक आधार मानते हैं। भारत के आदिवासियों का मूल प्रजातिक प्रकार क्या था यह हैडन के मत से स्पष्ट नहीं होता है क्योंकि हैडन के मत से यह विचार अवश्य पतन कि भारत के आदिवासियों तथा भारत के निवासियों के प्रजातिक गठन के विरूपण में भारत में जो प्रजातिक समूह जाये हैं उन पर ध्यान देना आवश्यक है। इस दृष्टिकोण में सरन इगॉन वान वेड्डेन ने यह मत प्रतिपादित किया है कि हिमयुग के काल में दक्षिण भारत में प्राणी नोग्रायड (Proto Negroid) प्रकार का एक प्रजातिक विद्यमान था। त्रिगुणा जाइन्स्टेन ने इण्डो नीग्रिट (Indo Negroid) की संज्ञा दी है। यह समूहों तथा वेड्डेन के प्रजातिक गठन में मिलती जुलती एक प्रजातिक का आगमन हुआ जिसको उन्होंने वेड्डेन (Veddoid) प्रकार की संज्ञा दी है। भारत में जो वर्तमान वेड्डेन प्रकार (Veddoid Type) मिलता है वह इण्डो नीग्रिट और प्राणीन वेड्डेन प्रकारों के मिश्रण का परिणाम है। एम० एम० सरदार

आइकटेड स सहमत होने हुए बड़दा प्रकार के प्रजातिक समूह में आने वाले आदिवासी समूहों का भारत का प्राचीनतम प्रजातिक प्रकार मानते हैं। हैमण्डाक भी इसी मत का प्रतिपादन करते हैं किन्तु एक दूसरे ढंग में। हैमण्डाक के मत में, सम्भवतः आर्यों और द्राविडों का भारत में एक ही समय में आगमन हुआ। अथवा हिमालय के किनारे किनारे भूभाग से आये और द्राविडों भारत के पश्चिमी समुद्रतट पर समुद्री मार्ग से। जिस समय आर्यों के प्रभुत्व का प्रसार उत्तर में हो रहा था उसी समय द्राविड दक्षिणी भारत का द्राविडीकरण कर रहे थे। उत्तर पश्चिमी भारत में आहुवी भाषा भाषी प्रवेश जा अब पाकिस्तान में है द्राविड भाषा भाषियों के एक उपनिवेश का प्रतीक है कि आर्यों के पहले, सम्पूर्ण भारत में द्राविडों का प्रसार और प्रभुत्व का। उत्तर में आर्यों और दक्षिण में द्राविडों के दबाव के कारण भारत के मूल निवासी सिमट कर मध्य क्षेत्र की पहाड़ियों और घाटियों में जा बस जीरे वहाँ आदिवासी समुदाय बन गए। किन्तु यथेष्ट प्रमाणात् और भारत के भाषा इतिहास की खोजों के जभाव में यह मत अनुमान मात्र लगता है।

गृह के अनुसार भारत के आदिवासियों के प्रजातिक गठन में तीन प्रजातिक प्रकार, नीग्रिटो, प्राटो आस्ट्रेलवायड और माल्वायड, का अलग-अलग स्थानों और मात्राओं में समावेश हुआ है। गृह के अनुसार, दक्षिणी क्षेत्र की गणजातियाँ बादर इरला और पश्चिम भारत के प्राचीनतम आदिवासी हैं और उनमें घुघराले बालों (Frizzled Hair) का पाया जाना इस बात का प्रमाण है कि वे मूलतः नीग्रिटो प्रजाति के हैं। मध्य क्षेत्र के आदिवासी गृह के अनुसार प्राटो आस्ट्रेलवायड (Proto-Australoid) प्रजाति के हैं। उत्तर पूर्वी क्षेत्र में गृह के अनुसार, माल्वायड प्रजाति के तत्त्वा की प्रधानता है और यहाँ दा प्रकार की प्रजातिक धारणाएँ पाई जाती हैं। एक, वह प्रकार जो उत्तर पूर्वी भारत में पाया जाता है तथा अथ मगोन्वायड विशेषताओं के साथ चौड़ा सिर जिसकी प्रधान विशेषता है। दूसरा प्रजातिक प्रकार घुघराले बालों की घाटों के निवासियों में पाया जाता है तथा मध्यम सिर मध्यम नाक और ऊँचा सिर (High Head) जिसकी मुख्य शारीरिक विशेषताएँ हैं। इस प्रकार गृह के अनुसार भारत के आदिवासियों के प्रजातिक गठन में नीग्रिटो, प्राटो आस्ट्रेलवायड और माल्वायड प्रजातियों के तत्त्वा का समावेश हुआ है। दक्षिणी क्षेत्र नीग्रिटो है, मध्य क्षेत्र प्राटो आस्ट्रेलवायड और उत्तरी उत्तर-पूर्वी क्षेत्र माल्वायड। इतने भी गृह के मत के मानने वाले हैं। किन्तु, मजूमदार और आम्बेडकर गृह के मत का नहीं मानते हैं। आम्बेडकर के अनुसार, घुघराले बाल बाले यहाँ-वहाँ नाममान का ही पाये जाते हैं। प्रजातिक गठन में दक्षिणी क्षेत्र के आदिवासी, अन्य भागों के आदिवासियों से, मूलतः भिन्न नहीं हैं। मजूमदार यह स्वीकार करते हैं कि उत्तर-पूर्वी क्षेत्र में माल्वायड प्रजाति के तत्त्वा का और पश्चिमी समुद्र तट के प्रदेश में बगने जाने आदिवासी समूहों में नीग्रिटो प्रजाति के तत्त्वा का समावेश अवश्य हुआ है। किन्तु

उसकी यह मान्यता है कि भारत के आदिवासी मूलतः प्रोटो आस्ट्रोल्वायड प्रजाति के हैं। उनमें पाई जाने वाली प्रजातिक भिन्नता, ऐतिहासिक परिस्थितियों के कारण होने वाले साक्ष्य का परिणाम है। भारत का प्रजातिक आदिवासी आधार प्रोटो-आस्ट्रोल्वायड है न कि नीग्रिटा। नीग्रिटो के पक्ष में मजूमदार के अनुसार, यथेष्ट प्रमाण नहीं है।

इस प्रकार, भारत में जिन्हें आदिवासी कहा जाता है उनके भौगोलिक पर्यावरणों, उनकी भाषाओं और उनके प्रजातिक गठन में सजातता नहीं है, आदिवासी जिसके कारण भौगोलिक पर्यावरण भाषा और प्रजातिकी भिन्नता कौन? के आधार पर आदिवासियों और गर-आदिवासियों में अंतर नहीं किया जा सकता। योरोप के मानवशास्त्रियों ने आदिवासियों की जो विशेषताएँ निर्धारित की हैं वे इस प्रकार हैं सामाजिक सम्बन्धों का प्राथमिक आधार, सामाजिक सम्बन्धों का स्वतन्त्र सम्बन्धों पर ही आधारित होना संस्कृति और भौगोलिक पर्यावरण में प्रत्यक्ष तादात्म्य प्रयोगिकी का निम्न स्तर और लिपि तथा लिखित इतिहास का अभाव। योरोप के मानवशास्त्रियों के अनुसार आदिवासी समाज और संस्कृति सरल (Simple) हैं जबकि योरोपीय समाज जटिल है। वास्तव में योरोप के मानवशास्त्रियों ने योरोपीय समाज और आदिवासी समाज में जो अंतर (Contrast) पाया जाता है, उसके आधार पर आदिवासी की परिभाषा की है। भारत में आदिवासी और गर-आदिवासी विशेषतः हिन्दू में इतना आदान-प्रदान हुआ है कि यहाँ के सामाजिक सांस्कृतिक अंतर नहीं मिलते हैं जो अफ्रीका, 'यजोलेन्' आस्ट्रेलिया और अमरीका के आदिवासियों और योरोपियनों में मिलते हैं। अफ्रीकी साम्राज्य में जनगणना के पर्यवसकों ने धर्म के आधार पर आदिवासियों की हिन्दुओं से अलग मान कर उनकी परिभाषा करने की कोशिश की है। उन्होंने यह माना कि आदिवासी धर्म भारत की वृद्ध अतिरिक्त विषय वस्तु हैं जिसका हिन्दुत्व के मन्दिर में अभी भी निमाण बाकी है। उन्होंने आदिवासियों का सर्वचततावादी अर्थात् सभी निर्जीव पदार्थों में चेतना की स्पर्ति का अनुभव करने वाला (Animist) मान कर उन्हें हिन्दुओं से अलग माना। इसका परिणाम यह हुआ कि मध्यप्रदेश में बजारा का एक जाति मानकर हिन्दुओं में रक्षित गया और मैसूर में उन्हें एक गण-जाति मान कर आदिवासियों में रक्षित गया। यद्यपि दोनों क्षेत्रों में वे एक ही पेशे की अपनाने हुए हैं। यह गिद्धांततः तर्कमगत नहीं है और इस कारण भारत के मानवशास्त्री तथा समाजशास्त्री इसका विरोध करते रहे हैं।

योरोप के मानवशास्त्री जिन विशेषताओं के आधार पर आदिवासी की परिभाषा करते हैं वे भारत के बाहर के आदिवासियों पर लागू हो सकती हैं किन्तु

भारत के आदिवासियों पर नहीं, क्योंकि भारत के आदिवासी क्षेत्रों के गांवों में आदिवासी और गर आदिवासी साफ-साफ रहते हैं, वहाँ वे विशेषताएँ गर आदिवासियों पर भी लागू होती हैं। सरल समाज (Simple Society) की धारणा से जो भाव व्यक्त होता है उसमें भारत का सारा ग्राम-समाज आ जाता है और ग्राम समाज में आदिवासी भी हैं और गर आदिवासी भी। भारत के ग्रामीण हिंदू भी आदिवासियों की भाँति सत्र-वतनावादी हैं। हिंदुत्व में निगम भी है और आगम भी, और आगम निदचन ही वह आदिवासी तत्व है जो हिंदुत्व में वापस आकर, समादत स्थान पाता रहा है। अन्व विश्वास और प्रथाएँ आदिवासियों तथा हिन्दुओं में समान रूप से पाई जाती हैं। इसीलिए, घुरे ने आदिवासियों को पिछड़े हुए हिंदू कहा है। इरावती कर्वे ने यह माना है कि भारत के आदिवासी हिंदुओं से कभी भी एकदम अलग नहीं रहे हैं। जिस ग्राम-तत्व कहा जाता है उसका, आदिवासी संस्कृति में एक और, उत्तरोत्तर आदिवासीकरण होता रहा है और दूसरा ओर आदिवासी तत्व का आया-करण तथा हिंदूकरण। भारत के आदिवासियों में बुद्धवाद का प्रसार एक प्रकार से आदिवासियों का आयाकरण ही था और बुद्धवाद में तत्र परम्परा का समावेश, आया तत्व का आदिवासीकरण। जाति प्रथा के माध्यम से अनेक आदिवासी समूह हिंदुत्व तथा हिन्दू-समाज में प्रवेश पाते रहे हैं। मजूमदार के अनुसार उत्तरप्रदेश के मिर्जापुर जिले में आदिवासियों तथा चमारों की गरीब और अधिर संरचना में समापन साम्य है जिससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उस क्षेत्र में आदिवासी ही चमार जाति के स्तर पर हिंदुत्व में प्रविष्ट हो गए हैं। तब यह प्रश्न उठता है कि आदिवासी कौन हैं और आदिवासी संस्कृति क्या है ?

बेली¹ ने, उड़ीसा के काठमल क्षेत्र के संदर्भ में, सारी समस्याओं को इस प्रकार रखा है। उसके अनुसार, किसी एक आधार पर आदिवासी की परिभाषा नहीं की जा सकती किंतु, फिर भी आदिवासियों और हिंदुओं में अंतर किया जा सकता है। बेली के अनुसार, आदिवासी पहाड़ों और जंगलों में रहते हैं, वे हिंदू नहीं हैं वे सब चेतनावादी हैं, धार्मिक दृष्टि में वे पिछड़े हुए हैं, वे प्राचीनतम निवासियों (Auto-*Chthonals*) हैं, आदिवासी भाषा बोलते हैं। किन्तु इन विशेषताओं में से कोई भी एक विशेषता आदिवासी की परिभाषा करने में सहायक नहीं होता है, और यदि सबको एक में पिटा कर लागू किया जाय तो बहुत से उन आदिवासी समूह हैं जो परिभाषा के क्षेत्र से बाहर हो रहे जायेंगे। भाषा का सिद्धान्त भी इसमें सहायक नहीं होता है। गोंड, सोंड और ओराजों ड्राविड परिवार में आते प्रवेश हैं किन्तु सभी ड्राविड परिवार की ही भाषा नहीं बोलते हैं। यह कहना कि आदिवासी प्राचीनतम निवासी हैं वर्तमान क्षेत्र में आदिवासी परिभाषा की समस्या हल नहीं

होती है। खोड़ों का यह विश्वास है कि व अपन क्षेत्र में कहीं बाहर से आकर बसे हैं और उहोंने वहाँ व मूल निवासिया का बाहर लदेडा है। आधिक स्तर क दृष्टिकान् से यदि दखा जाय ता आदिवासिया का आधिक स्तर उन कृपका से दुरा नही है जो आदिवासी नही हैं। प्रायद्वापीय भारत का गणजातिया व दवताओ म हि दू दवता पाये जात है जोर अनेक निम्न स्तर की जातियाँ आदिवासिया के उन अनेक विश्वासों और प्रथाआ का अपनाय हुए हैं, जिहें उच्च स्तर की जातियाँ तिरस्कार की दष्टि से देखती हैं। आज आदिवासिया का जो विश्वाधिकार मिल है उसस समस्या और भी जटिल हा गइ है और आदिवासी तथा गर आदिवासी का प्रश्न राजनतिक तथा प्रशासकीय महत्व का हो गया है - ।

आदिवासी सस्कृति को उसकी निजी तथा भारत की सामाजिक एतिहासिक पष्ठभूमि में समझन की आवश्यकता है कयाकि जिस आदिवासी सस्कृति कहा जाता है, उसका निर्माण भारत की एतिहासिक प्रक्रिया में हुआ है। 'आदिवासी सस्कृति' एक धारणा है जा एक विशेष प्रकार के सामाजिक समूहन का प्रतीक है यद्यपि वह सामाजिक समूहन निरपन्न नही है। यारोप क मानवशास्त्रियो न आदिवासी सस्कृति या यारोपीय समाज की सापेक्षता में निर्धारित करने का प्रयास किया है। भारत की आदिवासी सस्कृति को यारोपीय सापेक्षता में नहीं समझा जा सकता है कयाकि भारत की आदिवासी सस्कृति की सापेक्षता भारतीय, विपन्न हिंदू समाज में है। आदिवासी सस्कृति तथा उससे सामाजिक आधार हिंदू सस्कृति और समाज के यतिरेक नहीं है कयाकि आदिवासी सस्कृति और समाज सिद्धुत्व का एक आधार है। आदिवासी और हिंदू भारतीय सामाजिक गामाजितिक तरे तय व दो बिनार ह यद्यपि उ ह एक-दूसरे का पूरक नहीं कहा जा सकता है। यह नरतय भारत का एतिहासिक प्रक्रिया में विकसित हुआ है और आज ऐतिहासिक प्रक्रिया ने ही इसका विकास के माग में उपधान प्रस्तुत कर

- 2 अनेक समूहा त अपन लिए आदिवासी स्तर का दावा किया है ताकि व सब धार्मिक विश्वाधिकारों का प्रयोग कर सकें। जोरतार बाबर इसका उदाहरण है। चट्टपनोथ का प्रथा व कारण अद्य त्रों ने इस एक अलग बसे ही विशेष प्रशासकीय शासना के जमाकि अन्य आदिवासी क्षत्र का। चट्टपनोथ की प्रथा व कारण जीवनार बाबर व निवासियों को प्राचानतम मानन का भी धारणा रहा है। किंतु तानि प्रथा व कारण वहाँ व निवासी बसे ही हिंदू ह जसकि अन्य क्षेत्र व। एक दृष्टिकोण से ये आदिवासी ह और एक दृष्टिकोण से नहीं। किंतु सबधानिक विश्वाधिकारों व कारण वहाँ व निवासिया ने अपन लिए आदिवासी स्तर का दावा किया है।

दया है। इससे यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि आदिवासी का ऐतिहासिक अन्तव्य हिन्दुत्व में है। इसका अर्थ यह है कि भारत की ऐतिहासिक प्रक्रिया में जहाँ, एक ओर, हिन्दू मस्वृति का विकास हुआ है वहाँ दूसरी ओर, हिन्दू की पृष्ठभूमि के रूप में आदिवासी मस्वृति का विकास हुआ है। अतः, आदिवासी का हिन्दू-आदिवासी की ऐतिहासिक सापेक्षता में समथना अधिक तकमगत है। किन्तु इस ऐतिहासिक सापेक्षता की विवचना के पहले आदिवासी मस्वृति समाज-संस्कृति (Tribe Culture Society Complex) की विवचना आवश्यक है।

२

आर्थिक व्यवस्था

आदिवासी आर्थिक व्यवस्था भारत की पञ्जीवादी आर्थिक व्यवस्था में भिन्न है, जिसके कारण उनीसवीं शताब्दी के दौरान के मानवशास्त्रियों ने आदिवासी-आर्थिक व्यवस्था का उन्विकासी ऐतिहासिक दृष्टिकोण में, यारोपीय आर्थिक व्यवस्था के व्यतिरिक्त के रूप में निवारित करने का प्रयास किया है। इस प्रयास में एक ओर आदिवासी आर्थिक व्यवस्था में पाई जाने वाली भिन्नताओं के आधार पर विभिन्न आर्थिक व्यवस्थाओं के वर्गीकरण का प्रयास किया गया है, और दूसरी ओर विभिन्न आदिवासी आर्थिक व्यवस्थाओं का एकमुत्री उन्विकाम प्रथम में विधान का प्रयास किया गया है। प्रागैतिहासिक विकास का अवस्थाओं के निवारण में आदिवासी आर्थिक व्यवस्थाओं का एकमुत्री उन्विकास प्रथम में विधान के प्रयास का बल मिला है। उदाहरणार्थ, प्राचीन प्रश्न-युग में यथावत् घोर पत्त पत्त तथा कठ मुम एकत्र करने वाली आर्थिक व्यवस्था के प्रमाण मिले हैं नवप्रश्नयुग में कृषक और पशुपालक आर्थिक व्यवस्था के, कांस्य युग में मुद्रा तथा धातु मन्वन्धो उत्पादों पर आधारित आर्थिक व्यवस्था के और राष्ट्रयुग में औद्योगिकीकरण तथा जाग पर आधारित आर्थिक व्यवस्था के।

उन्विकासी विचार श्रृंखला प्रभावकारी तथा व्यापक था कि उम काल के अन्विकासी भी इसका प्रभाव में मुक्त न रहे सक। यन्मान अन्विकासी के अन्विकासी एम्प स्मिथ ने भी मानव के आर्थिक विकास का आखेटक, पशुपालक तथा कृषक-अवस्थाओं में गुजरता हुआ माना है। प्राचिन पाश्चात्य न मानव विकास का व-याचरणी

(Savagery), बबर (Barbarian) तथा सभ्य (Civilization) अवस्थाओं से गुजरता हुआ माना है। किन्तु आज यह मान्यता निराधार मानी जाती है कि मानव का सबसे एकसूत्री आधिक उद्विकास हुआ है। यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक समूह पहले आखेट, भागन एकत्र करने वाली तथा याथावर अवस्था में ही प्रायः और बाद में पशुपालक तथा कृषक अवस्थाओं में। यूजीलण्ड के मावरी कृषक अवस्था में हैं किन्तु, वे पशुपालक अवस्था में कभी भी नहीं आये। यह नहीं कहा जा सकता कि एक आदिवासी समूह, एक अवस्था विशेष में किसी एक ही उद्विकासी आधिक व्यवस्था में रहता है। उद्विकास एकसूत्री न होकर बहुसूत्री होता है और इस कारण, एक आदिवासी समूह में आखेटक, पशुपालक तथा कृषक आधिक व्यवस्थाओं के तत्व एक साथ पाये जाते हैं। सवाल और मुण्डा जहाँ सहरीकरण के सम्पर्क में प्रायः है सवहारा श्रमिक वर्ग के सदस्य हो गए हैं यद्यपि, सहरीकरण के प्रभाव से दूर घने जंगलों में रहने वाले उनके साथी कीड़े मकोड़े और छिपकलियों का खाते हैं देवी देवताओं का मुर्गी और कबूतर की भेंट चढाते हैं और यहाँ वहाँ कृषि करते तथा कन्द मूलों का एकत्र करते हैं। इसी प्रकार, उड़ीसा और बिहार के खारिया और बस्तर के गाँव आदिवासी एक ओर जगम खेती करते हैं और, दूसरी ओर कन्द मूल एकत्र करते तथा जानवरों और चिड़ियों का शिकार भी करते हैं^१।

उपरोक्त विवरण से कई तथ्य स्पष्ट होते हैं। पहला आदिवासी आधिक व्यवस्था की भिन्नताएँ, मानव आधिक विकास के किसी एकसूत्री आधिक उद्विकास का द्योतक नहीं है और न उन्हें किसी ऐसे विकासक्रम में पिट ही किया जा सकता है। दूसरा, प्रागतिहासकों ने विभिन्न मुर्गी के जिन आधिक प्रकारों का वर्णन करके, जिन आधिक प्रारूपों और सजाओ का निर्धारित किया है उनका, आदिवासी आधिक व्यवस्था की भिन्नताओं का वर्णन करने के लिए, प्रयोग किया जा सकता है क्योंकि आज भी आदिवासियों में कई समूह प्रधानतः आखेटक हैं, कई पशुपालक और कुछ कृषक^२। तीसरा प्रागतिहासकों ने आदिवासी आधिक व्यवस्था तथा भिन्नता

१ मजूमदार ३१० एन० रेसेज एण्ड क्लचर ग्राफ इण्डिया अध्याय ७

२ घुन गार्ल्ड ने, इस दृष्टिकोण से, विभिन्न आदिवासी आधिक व्यवस्थाओं का जो वर्गीकरण प्रस्तुत किया है, वह इस प्रकार है — १ वे सजातीय समुदाय जिनमें पशुध आर्षट या पाग द्वारा शिकार करते हैं और नारियाँ कन्द मूल एकत्र करती हैं। जैसे भारत के कोरिया, खारिया, खेँ और कादर इत्यादि आदिवासी समूह, २ वे सजातीय समुदाय जिनमें आखेट तथा पाग द्वारा जानवरों का शिकार और कृषि एक साथ आधिक साधन है (जैसे बमार, बगा और बिरहोर इत्यादि आदिवासी समुदाय), ३ वे सहरीकृत समाज जिनमें

का जो वणन और वर्गीकरण प्रस्तुत किया है उसका मुख्य आधार आदिवासी द्वारा खाद्य-सामग्री प्राप्त करने का प्रयास है।

आर्थिक व्यवस्था की भिन्नताओं के दृष्टिकोण से भारत की गणजातियों का क्या वर्गीकरण और वणन हो सकता है, इस पर विचार करने के पहले आदिवासी आर्थिक व्यवस्था की उन तमाम विशेषताओं पर विचार करना आवश्यक है जो सामान्य सवत्र पाई जाती हैं और आदिवासी आर्थिक व्यवस्था को विशिष्टता प्रदान करता है। आर्थिक व्यवस्था आदिवासी संस्कृति का एक अंग है और संस्कृति की भाँति वह सामान्य भी है और विषय भी। आर्थिक व्यवस्था मानव-सम्बन्धों और प्रयासों का संगठन से उत्पन्न वह व्यवस्था है, जिसके माध्यम से मनुष्य कम से कम प्रयास के द्वारा दैनिक जीवन की आवश्यकताओं की अधिकाधिक पूर्ति करने का प्रयास करता है। आर्थिक व्यवस्था वह संगठित, सामूहिक तथा व्यवस्थित प्रयास है जिसके द्वारा मनुष्य अपनी असीमित आवश्यकताओं और इच्छाओं की, सीमित साधनों के द्वारा अधिकाधिक सम्भव तुष्टि करने का प्रयास करता है। मानव का

आलेख, पाण्डु कृषि और गिल्पी आर्थिक साधन हैं (भारत की अधिकतर गण-जातियाँ इसी श्रेणी में आती हैं), 4 पशुपालक (जैसे टोडा), 5 सजातीय पशुपालक तथा आलेखक (यह प्रकार भारत में नहीं है) 6 वे पशुपालक तथा व्यापारी समुदाय, जो अपने प्रजातिक-सांस्कृतिक संगठन में विजातीय और स्तरीकृत हैं (जैसे, उत्तरप्रदेश के पहाड़ी क्षेत्र के भोटियों), 7 वे पशुपालक जिनमें कपक, आलेखक और गिल्पी भी पाए जाते हैं और अपने सामाजिक संगठन में जो विजातीय भी हैं और स्तरीकृत (Graded) भी।

मजूमदार और मदन यही पृष्ठ 119-20

खाद्य-सामग्री की प्राप्ति के प्रयास, साधन और समस्याओं को आदिवासी आर्थिक व्यवस्थाओं के वर्गीकरण का मुख्य आधार माना गया है। किसी किसी ने, जैसा कि पुनः वाल्ट ने किया है, खाद्य प्राप्ति के प्रयास और सामाजिक संगठन को मिलाकर, आदिवासी आर्थिक व्यवस्थाओं का वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। आर्थिक व्यवस्थाओं के वर्गीकरण का यही एक आधार नहीं है। हिल्डेन ग्रुप ने बदलीअल (Barter) मुद्रा (Money) और क्रेडिट (Credit) पर आधारित आर्थिक व्यवस्थाओं में विभिन्न आर्थिक प्रणालियों का वर्गीकरण किया है। प्राप्त ने, उद्विवासी दृष्टिकोण से, प्रथम पांच प्रकार की अर्थ प्रणालियाँ बताई हैं, जो इस प्रकार हैं—सांग्रहिक (Collectional), सांस्कृतिक धायावरी (Cultural Nomadic), स्थायी ग्रामिका (Settled Vulgo) नगरीय (Town) तथा महानगरीय अर्थ-व्यवस्थाएँ। फोर्ड और हसकोवित्स ने सघृहक, आलेखक मछली मारना, कृषि और पशु सवपक पांच प्रकार की अर्थ व्यवस्थाएँ निर्धारित की हैं (मजूमदार—मदन यही पृष्ठ 120)। इन सभी वर्गीकरणों पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष खाद्य-सामग्री की प्राप्ति के प्रयासों पर जोर है। मजूमदार ने भी खाद्य-सामग्री की प्राप्ति के प्रयासों की भिन्नता पर आधारित वर्गीकरण को उत्तम माना है।

यह प्रयास, एक ओर, पर्यावरण द्वारा प्रदत्त भौगोलिक साधनों, प्रौद्योगिकी के रूप में उपाजित मातृवृत्त उपकरणों तथा, दूसरी ओर मानव के आदर्शों और अर्हियों से नियंत्रित होता है। जिन्हें आर्थिक आवश्यकताएँ कहा जाता है वे इन्हीं कारकों से निर्धारित होती हैं और चूंकि स्वयं मानव उनमें एक कारक है वे निरपेक्ष न होकर सापेक्ष रहती हैं और शाश्वत न होकर परिवर्तनशील होती हैं। जीवन के लिये आर्थिक आवश्यकता क्या है, इसकी परिभाषा प्रत्येक समुदाय, उपराज्य कारकों के आधार पर अपने ढंग से करता है; आर्थिक व्यवस्था के चार आधार उपभाग (Consumption), उत्पादन (Production) विनिमय (Exchange) और वितरण (Distribution) सबत्र पाये जाते हैं। किंतु आदिवासी समाज में, उनकी व्यवस्थापन दूसरे ढंग से होता है और औद्योगिक समाज में दूसरे ढंग से।

आदिवासी आर्थिक व्यवस्था आदिवासी और उसके प्राकृतवास (Habitat) के बीच में होने वाले समायोजन का एक अंग है क्योंकि आदिवासी अपने उत्पादन प्राकृतवास पर अधिक निर्भर करता है। आदिवासी आर्थिक व्यवस्था मुख्यतया खाद्य सामग्री की प्राप्ति संरक्षण और अति-जीवित्वा के साधन जुटाने की आवश्यकताओं से सम्बंधित रहती है और इन आवश्यकताओं को जुटाने में आदिवासी अपने प्राकृतवास का अपेक्षाकृत अधिकतम आश्रय लेता है। प्राकृतवास पर आदिवासी की अधिकतम निर्भरता का कारण है आदिवासी मनुष्यत्व में प्रौद्योगिकी (Technology) का निम्न स्तर जो लगभग सभी आदिवासी समाजों की विशेषता है। मजूमदार ने बिहार उड़ीसा के खारिया आसाम के कुक्की तथा बन्तर (मध्य प्रदेश) के गोडा आदिवासियों का उदाहरण देकर इस तथ्य को स्पष्ट किया है¹। खारिया बिहार उड़ीसा के दुर्गम पहाड़ी क्षेत्रों में रहते हैं जहाँ भोजन मानव-जीवन की सबसे प्रथम समस्या है। जहाँ वे एक जोर जंगल कृषि (Shifting Cultivation) को अपनाते हैं और दूसरी ओर, जालेट तथा मछली मारने का। साथ ही साथ वे जंगल में गहद फल और वन भी एकत्र करते हैं। खारिया प्रदेश में लाहा भी पाया जाता है और इस कारण वे खनी और आलू की आश्रयताओं की पूर्ति के लिये लाह के भीतर भाग्यवान् हैं। बन्तलीअल उनकी आर्थिक व्यवस्था का आधार है। छोटे छोटे गाँवों में रहते हुए, वे मानव का जनन प्रचार में उपयोग करते हैं परन्तु उनका प्राकृतवास में माल बंटायित से पाया जाता है। इसके विपरीत आसाम के कुक्की की आर्थिक व्यवस्था में बाँस का अधिक महत्व है। कुक्की न पर और बाँस बंटोपा बाँस के ही धन होते हैं। कुक्की प्रदेश में जंगल में आच्छादि² और इसका उपयोग खारिया की भाँति कुक्की भी जंगल कृषि करते हैं। जंगल कृषि न कुक्की जीवन का आधार बना दिया है। खारिया का

पकड़ना और उनका आर्थिक उपयोग कुक्की आर्थिक व्यवस्था की एक अम विगपता है। बन्तर क गाडो म म्यापी कृषि का अधिक महत्व है जिसके कारण उनम अतिरिक्त उपज (Surplus Produce) भी अपसाकृत अधिक होनी है। अतिरिक्त उपज, समाज म विनिमय व्यापार और विगपीकरण का प्रोत्साहित करतो है। गोडा म लोहार जस विशेषीकृत समूह पाय जान हैं। इसक अतिरिक्त, गोड जगल म लकडो की कटाई का काम भी करत हैं और बन्तर प्रदग के घन जगली पहाडो इलाका म सोडीनुमा खन बनाकर जगम कृषि भी करत हैं। इसप्रकार आदिवासी आर्थिक व्यवस्था का आधार अतिजीविता की आवश्यकता है जिम आदिवासी घपन तथा अपन प्राकृतवास म समायाजन स्थापिन करके पूरा करने का प्रयास करता है। यह समा योजन चार कारका पर निर्भर करना है—(1) आदिवासी सामाजिक समूह का आकार, (2) समूह की पार्थिव (Material) आवश्यकताएँ (3) प्रकृति प्रदत्त साधन और (4) प्रौद्योगिकी क विकास का स्तर। किन्ती भी समूह की पार्थिव आवश्यकताएँ न तो समूह क आकार मे निर्धारित हाती हैं और न प्रकृति प्रदत्त साधन म। पार्थिव आवश्यकताओं का स्वल्प उनकी महत्ता की मात्रा उनकी तृष्टि क साधनों क प्रकार तथा प्राकृतवास क साथ समायाजन क ढग प्रत्येक समूह म भिन्न हात हैं।

साथ-साथ जुटान क प्रयास आदिवासी आर्थिक व्यवस्था का मुख्य आधार प्रदान करते हैं। क मूल शहद तथा फल फूल एकत्र करना जानबरा का शिकार करना मउली मारना और कृषि करना ही आदिवासी क आर्थिक जीवन क प्राथमिक आधार हैं। घर बनाना मिट्टी, लकडो या धानु क बतन बनाना चगाई और टोकरो बनाना तथा कृषि क साथ-साथ पशुपालन म द्वितीयक आर्थिक क्रियाएँ हैं। आदिवासी का अधिकतर समय साथ-साथी क जुटान या उत्पादन म ही बीतता है। प्रौद्योगिकी क निम्न स्तर क कारण आदिवासी समाज म साथ साथी

1 फ्रायड क सद्दातिक प्रभाव क अन्तगत, कुछ मानवशास्त्रियों ने यह निर्धारित करने का प्रयास किया है कि आदिवासी जीवन क निर्धारण में यौनतुष्टि की आवश्यकता (Sex Need) की अभिव्यक्तियों और उन पर लगन वाले सामाजिक नियमों का मौलिक स्थान है (विशेष अध्ययन क लिय देखिये मल्लिनास्की द्वारा रचित सेवम एण्ड रिप्रजन इन सबज सोसाइटी)। किंतु घतमान मानवशास्त्र में इस सद्दातिक दृष्टिकोण को महत्व नहीं दिया जाता है। अफ्रीका का यादू भाषा भाषी, वेम्बा गणजाति क अध्ययन से आहरे रिचर्ड ने यह मान्यता प्रतिपादित की कि आदिवासी सांस्कृतिक जीवन में भोजन का सर्वाधिक महत्व है और उमी क जुटान तथा उत्पादन में आदिवासी का अधिकतर समय व्यतीत होता है। व्यर्थित क सामाजिक आर्थिक सम्बन्ध भाष्य पदार्थों क जुटान तथा उत्पादन करने की आवश्यकताओं से व्यपन्नित हात ह (विशेष सद्भ क लिय देखिये बोन्स एण्ड ह्याजर—एन इंट्रोडक्शन टू एथनालोजी)।

के हा उत्पादन में अधिक समय लगता है। जहाँ शिकार ही भोजन का मुख्य साधन है वहाँ भोजन प्राप्ति की निश्चितता भी कम रहती है और खाद्य सामग्री जुटाने में समय भी अधिक लगता है। क्योंकि शिकार का मिलना सयाग पर अधिक निर्भर करता है। एम्कीमा का सांस्कृतिक जीवन इसका उदाहरण है। खाद्य सामग्री की पूर्ति की अनिश्चितता आर्थिक व्यवस्था में सामूहिक जीवन (Collective Life) को तरा को अधिक प्रोत्साहित करती है जिसके कारण अनेक मानवशास्त्रियों को आदिवासी आर्थिक व्यवस्था अपने मौलिक रूप में, साम्यवादी प्रतीत होती है। आदिवासी आर्थिक व्यवस्था साम्यवादी है या नहीं, इस प्रश्न पर भागे विचार किया जायगा। यहाँ इतना कहना पर्याप्त है कि आदिवासी मस्कृति में खाद्य सामग्री के जुटाने और उसके उत्पादन में जो प्रयास सम्बन्धित है, वे इस बात का प्रमाण हैं कि आदिवासी आर्थिक व्यवस्था में क्षुधा निवारण का प्रश्न सर्वोपरि है और यौन-आवश्यकता की अपेक्षा क्षुधा निवारण की आवश्यकता आदिवासी आर्थिक क्रियाओं की अधिक प्रेरक है¹।

आदिवासी आर्थिक व्यवस्था में खाद्य सामग्री का संग्रहण या उत्पादन मुख्य

- 1 खाद्य सामग्री के उत्पादन से सम्बन्धित कुछ प्रयास इसप्रकार हैं — प्राचीन प्रस्तर-युग की कदराएँ जो स्पेन और फ्रांस में मिली हैं उनमें भत जानवरों के भित्ति चित्र मिले हैं। कहीं-कहीं शिकार का दृश्य भी चित्रित है। प्रागतिहासज्ञों की यह मान्यता है कि ये चित्र जादुई विचारों के प्रतीक हैं। शिकार के चित्र इसलिये बनाये जाते हैं कि शिकार बहुतायत से मिल सके। प्रगात महासागर का मारकोसोस द्वीप के निवासी एकान्त में अनाज का भण्डार रखते हैं और वहाँ स्त्रियों को नहीं जाने देते हैं। स्त्रियों को रसोई में भी नहीं जाने देते हैं, क्योंकि उनका विश्वास है कि स्त्रियों के छूने से अनाज का भण्डार कम होता है। नीलगिरी के टोडाओं का आर्थिक जीवन का आधार भत है। जहाँ वे भत बाँधते हैं वहाँ स्त्रियों को नहीं जाने देते और स्त्रियों को दूध नहीं छूने देते। लगभग सारे आदिवासी समाज में अनाज की युवाई का काम स्त्रियाँ करती हैं। किन्तु, मासिक घम के दिनों में स्त्रियों को अनाज न देने देना और धोये हुए खेत में उन्हें न जाने देना एक आम प्रथा है क्योंकि आदिवासियों का यह विश्वास है कि मासिक घम के दिनों में स्त्री अशुद्ध होती है जिससे फसल को नुकसान होने का भय है। यस्तर के गोंड, याने का पहले भोजन को बलि दिये हुए पशु के खून से इस आंगा से भिगोते हैं कि उससे फसल अधिक अच्छी होगी। दारलग कबी, जगम कृषि के लिये, जब जंगल साफ करते हैं तो एक पेंड को इसलिये छोड़ देते हैं ताकि जंगल की आत्माएँ उस पेंड पर विधाम कर सकें और खेती को नुकसान न पहुँचायें। फसल तैयार होने पर कबी उन आत्माओं की पूजा करते हैं ताकि वे प्रसन्न रहें। कबी सीढ़ीनुमा खेत बनाकर इसलिये खेती नहीं करते कि इस प्रकार पत्ती करना उनकी प्रथा नहीं है और, इसकारण, वे यह नहीं जानते कि किन अनुष्ठानों से सीढ़ीनुमा खेती से अधिक फसल उत्पन्न होगी।

म्यान रखता है और उत्पादन का उद्देश्य है उपभोग न कि मुनाफा। मुनाफे के लिये मशीनों के द्वारा बड़े पैमाने पर उत्पादन पूँजीवादी औद्योगिक व्यवस्था की मुख्य विशेषता है जो आदिवासी आर्थिक व्यवस्था में नहीं पाई जाती है। आदिवासी आर्थिक व्यवस्था नियमित बाजार-व्यवस्था बैंक मुद्रा और साख्त नैमी आर्थिक सस्थाओं पर आधारित नहीं है। आदिवासी आर्थिक व्यवस्था में केवल मला और साप्ताहिक बाजारों का ही अधिक महत्व है जो मुद्रा पर आधारित आर्थिक व्यवस्था के प्रसार और प्रभाव के साथ-साथ और भी बढ़ता जाता है। आदिवासी आर्थिक व्यवस्था उपभोग पर आधारित हान व कारण केवल निर्वाह भय-व्यवस्था (Subsistence Economy) है। उत्पादन को उपभोग पर आधारित करके अति जीवित्ता प्राप्त करने के प्रयत्न के कारण आदिवासी उत्पादन-व्यवस्था में सहयोग की मात्रा अधिक है। किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि आदिवासी समाज में प्रतियोगिता (Competition) और संघर्ष (Conflict) का मूलतः अभाव है। मजूमदार के अनुसार, जो आदिवासी समूह घासट और बंद मूँ एकर करके साथ सामग्री जुटाते हैं उनमें सामूहिक संयोग अधिक पाया जाता है किन्तु फिर भी उनमें विभिन्न समूहों तथा व्यक्तियों के स्वार्थों में विरोध ध्यान पर संघर्ष भी पाया जाता है। आदिवासी के लिये विभिन्न आदिवासी समूह घासट-पत्र का तथा फल फूल एकर करने के लिये पहाड़ का बँटवारा करने पाये गए हैं। भारत के अनेक आदिवासी क्षेत्रों में महुआ जंगलों में उगता है और महुए से एक प्रकार की शराब बनाई जाती है। ऐसा पाया जाता है कि एक क्षेत्र के आदिवासी महुआ महुए के पेड़ों का अपने समूह के विभिन्न परिवारों में बाँट देते हैं तार्किक संघर्ष की सम्भावना कम हो जाय। आदिवासी समाज में, आर्थिक क्रिया की प्रत्येक निरीह प्रतियोगिता ही नहीं है। निरीह प्रतियोगिता पूँजीवादी व्यवस्था की विशेषता है।

प्रौद्योगिकी का स्तर निम्न होने के कारण आवश्यक उत्पादन की निश्चितता नहीं रहती है, जिसके कारण उत्पादन क्रियाओं में विभिन्न प्रकार के जादुई अनुष्ठानों से सम्बन्धित हो जाती है। इन अनुष्ठानों का पट्टा बगान किया जा चुका है। चूँकि उत्पादन उपभोग और जीवन निर्वाह में प्रत्यक्ष सम्बन्धित रहता है इस कारण प्रौद्योगिकी का स्तर भी आधारभूत निम्न ही रहता है। दूसरी ओर, उत्पादन कलात्मक तथा मनोरंजन क्रियाओं में सम्बन्धित हो जाता है। मछली मारना, भोजन उत्पादन के साथ साथ, मनोरंजन का भी साधन है। जीवनभर बाहर में मग का त्योहार एक मछली मारने का त्योहार है जिसमें एक रक्त के साथ अपने दृष्ट मित्रा सहित मछली मारने जाते हैं। किन्तु यह त्योहार तभी मनाया जाता है जब मछली अच्छी हो। उत्पादन के विभिन्न उपकरणों के बनाने में आदिवासी की कलात्मक अभिव्यक्ति का प्रथम मिलना है। मछली मारने के लिये जान टाकरी का पाण बनाना तथा तितार के लिए औजारों का बनाना इनका उदाहरण है।

आदिवासी सामाजिक आर्थिक व्यवस्था में उत्पादन काय और कला एक में मिले रहते हैं। उत्पादन क्रिया में आदिवासी मानव मशीन का एक अंग नहीं है। आदिवासी उत्पादन व्यवस्था में श्रम विभाजन, मुख्यतया आयु (Age) और लिंग (Sex) के आधार पर होता है। समाज में श्रम विभाजन श्रम विभाजन (Division of Labour) की जटिलता और उसमें पाया जाने वाला विपरीतकरण प्रौद्योगिकी के विकास के साथ साथ बढ़ते रहे हैं। प्रौद्योगिकी के विकास के साथ साथ जंग जितनी अतिरिक्त उपज उड़ती रही है, वही व्यापार और श्रम विभाजन भी उतने ही बढ रहे हैं। श्रम विभाजन प्रौद्योगिकी में उतना सम्बन्धित नहीं है जितना कि उम अतिरिक्त उपज से जिसका कि विनिमय किया जा सक। यही कारण है कि जहाँ स्थायी वृष्टि के कारण विनिमय के लिए अतिरिक्त उपज उपलब्ध है वहाँ पशुगतन विपरीतकरण के आधार पर, श्रम विभाजन भी पाया जाना है। वास्तविक श्रम विभाजन वही है जहाँ अतिरिक्त उपज का उपलब्ध पर आश्रित रह कर एक समाज के कुछ व्यक्ति किसी विशेष पेना या काय में बुगलता प्राप्त करते हैं। इस दृष्टिकोण से, किसी काय के करने का प्रौद्योगिक जटिलता भी श्रम विभाजन का प्रभावित करती है। उड़ीसा के सावरा आदिवासियों में बुनकरा का पाया जाना तथा बस्तर के माडो में लहारी में निपुणता का पाया जाना इसका उदाहरण है।

आदिवासी आर्थिक व्यवस्था में पाया जाना वाला श्रम विभाजन मुख्यतः पारंपरिक कारणों के कारण में अधिक प्रभावित रहता है। आयु और लिंग के आधार पर होने वाला श्रम विभाजन वस्तुतः, पारंपरिक भिन्नताओं पर आधारित श्रम विभाजन है। आदिवासी समाज में व्यक्ति अपने-प्रायः अपने जीवन चक्र में बढता रहता है अर्थात् बाल्य में तरुण और तरुण में बढ जाता है तथा लगे-लगे उसका सामाजिक आर्थिक नाय भी बदलते रहते हैं। आयु के आधार पर पाया जाना वाला श्रम विभाजन इस तथ्य पर आधारित है कि व्यक्ति के जीवन में बाल्य, तरुण्य तथा वृद्धता और बढता जान मुख्य व्यवस्थाएँ जाती हैं जिनमें हाने वाले पारंपरिक परिवर्तन व्यक्ति की कार्य-क्षमता का प्रभावित करते हैं। आयु पर आधारित श्रम विभाजन सामूहिक है यद्यपि आदिवासी समाज में इसका महत्व अधिक है। जिस समाज का प्रौद्योगिक स्तर जितना निम्न है उतना ही उमम आयु पर आधारित श्रम विभाजन का महत्व है। साथ सामग्री एकत्र करने का तथा जंगल पर निर्भर रहने वाले समाजों में बाल्य और बढ भारस्वरूप ही जाते हैं। रोजगार न मिलने के कारणों के कारण प्रायः रजिमान में बाल्य सामग्री एकत्र करने तथा जंगल पर निर्भर रहने वाले युवाओं में पारंपरिक अंगमय बढावा का घाटे भाजन के साथ उमम समय छान दिया जाता है जब कोई वयस्कन समाज एक स्थान में दूसरे स्थान पर जाता है। युवा और पारंपरिक श्रम विभाजन के पीछे पारंपरिक और युवा में पाये जाने वाले पारंपरिक अंतर का

आधार अवश्य है लेकिन इसका यह तात्पर्य नहीं कि पुरुष और नारी में जा श्रम-विभाजन है उसका नारी और पुरुष की शारीरिक भिन्नताओं के ही आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है। उदाहरणार्थ भारत की गणजातियाँ में नारी आगेट में भाग नहीं लेती हैं लेकिन भारत के बाहर की सभी गणजातियों में ऐसा नहीं है।

नारी शरीर से सम्बंधित स्वाभाविक दृष्टिक प्रतियाओं, जन्म मासिक धम और गभ शरण, का ठीक ठीक न समझ पाने के कारण आदिवासी समाज में नारी के आर्थिक जीवन पर अनेक निषेध लग गए हैं। मासिक धम के दिना में ब्रोज न होने का निषेध या टोटा लगाये नारी द्वारा भैंस को छूने या जहा भैंसे बांधी जाती है वहा न जाने का निषेध, इसके प्रमाण हैं। मातृत्व को जिम्मेदारियों न नारी को पुरुष से भिन्न बना दिया है और उसका फलस्वरूप नारी के सामाजिक आर्थिक कार्यों पर स्वभावतया अनेक निषेध लग गए हैं। अपनी शरीरी तथा दृष्टिक विशेषताओं के कारण नारियाँ लगभग सभी समाजों में इसके श्रम वाले कार्यों को करती हैं। आदिवासी समाज भी इस सावभौम नियम का अपवाद नहीं हैं। आदिवासी समाज में यह विचार आमतौर पर पाया जाता है कि नारियाँ उन कार्यों के अयोग्य हैं जो पुष्प करता है यद्यपि इन विश्वास का आधार वास्तविक नहीं है। वास्तविकता यह है कि पुरुष नारी के कार्यों का नहीं करते हैं, लेकिन नारियाँ पुरुषों द्वारा किए जाने वाले अधिकतर कार्यों का करती हैं। भारत के आदिवासी क्षेत्रों में जहां वृद्धि होती है वहां अधिकतर हल चलाने का काम पुरुष करते हैं और नारियाँ अधिकतर कृषि के गभ कार्यों को करती हैं। बीज बोना, धान रापना और फसल काटना अतिरिक्त स्त्रियाँ द्वारा ही किया जाता है। इनके अतिरिक्त, जंगल से खाद्य सामग्री एकत्र करना, मछली मारना टाकरी, बगडा और मिट्टी के बरतन बनाना बहुधा नारियाँ द्वारा ही किया जाता है। भारत के आदिवासी समाजों में नारियाँ गिकार के श्रम नहीं जाती हैं और न के बर्द्धिगी या तुष्टारी जन्म काम करती हैं। बच्चा का पालन पोषण और गहू काय सबके नारी के विन्यायधिकार में आते हैं। यह मत कि नारियाँ का साधारणतया बड़ी काय नौरे जाते हैं, जिनमें थोड़ी बुद्धि की आवश्यकता होती है तकथपन नहीं है। वास्तविकता यह है कि नारियाँ अधिकतर उही आर्थिक कार्यों का करती हैं जो प्रजनन और मातृत्व के स्वाभाविक भार का निचात्त हूण किये जा सकें। यह किमी नो दगा में, नारी अयोग्यता का परिचायक नहीं है। मासिक धम गभशरण, सन्तान का प्रजनन तथा पालन पोषण, घर की नेगभाल तथा नारी-शरीर की सामान्य विशेषताएँ, ऐसे कारक हैं जो आदिवासी समाज में नारी की आर्थिक भूमिका (Economic Pole) का प्रभावित करते हैं। प्रौद्योगिकी के प्रभाव में उद्योग तथा उत्तरात्तर विद्यमान हाता श्रम आयोगीकरण भारत की आदिवासी आर्थिक व्यवस्था को भी बदल रहा है जिनके कारण भारत के आदिवासी नर-नारी की आर्थिक भूमिकाएँ भी बदल रही हैं।

आदिवासी पुरुष आज लोहे के कारखानों, कोयल की खानों तथा चाय के बागों में काम करते हुए पाये जाते हैं। आदिवासी नारियाँ भी उसी प्रकार, भ्रमक जीर फायले की खानों तथा चाय के दगीचों में नारी श्रमिकों के रूप में काम करती हैं। आज, आदिवासी समाज में भी नर नारी के बीच का पुराना श्रम विभाजन धीरे-धीरे समाप्त हो रहा है। भारत की आदिवासी आर्थिक व्यवस्था में कृषक श्रमिक अवश्य पाये गए हैं किन्तु यहाँ दास प्रथा नहीं पाई गई है¹।

आदिवासी आर्थिक व्यवस्था में पाये जाने वाले विनिमय (Exchange) और वितरण (Distribution) मुद्रा और मुताफे की भावना पर आधारित न विनिमय होने के कारण औद्योगिक तथा पूँजीवादी समाज में पाये जाने वाले विनिमय और वितरण से मूलतः भिन्न होता है। विनिमय और श्रम विभाजन का महसम्बन्ध है और दानो, प्रत्यक्ष, अतिरिक्त उपज से सम्बंधित है। जहाँ जितनी मात्रा में अतिरिक्त उपज उपलब्ध होती है वहाँ, उतनी ही मात्रा में, विनिमय और श्रम विभाजन का सामाजिक मर्यादागत प्रसार होता है। विनिमय को दो रूपों में देखा जा सकता है—एक, प्रत्येक समाज विशेष में पायी जाने वाली विनिमय प्रणाली का दृष्टिकोण से और दूसरे विभिन्न समाजों में पायी जाने वाली सामान्य विनिमय प्रणाली के दृष्टिकोण से। किन्तु सिद्धांततः ऐसा कोई समाज नहीं है जहाँ विनोपेक्षण, आयु और लिंग पर आधारित श्रम विभाजन न हो और इस कारण, सिद्धांततः, किसी ऐसे आदिवासी समाज की कल्पना नहीं की जा सकती जो किसान-किसी प्रकार का विनिमय प्रणाली से पूर्णतया मुक्त हो। हाँ यह अवश्य है कि जहाँ अतिरिक्त उपज जितनी कम होगी, वहाँ विनिमय भी उतना ही सीमित होगा। जगल से खाद्य सामग्री एकत्र करने वाले तथा आशुत पर निर्भर रहने वाले आदिवासी समाजों में, अतिरिक्त उपज की मात्रा कम होने के कारण, आर्थिक विनिमय प्रणाली का निम्नतम रूप पाया जाता है क्योंकि उनमें विनिमय का साधन ही निम्नतम होता है। लेकिन, फिर भी इन समाजों में लिंग के आधार पर पाये जाने वाले श्रम विभाजन के कारण, विनिमय का क्षेत्र मुख्यतः पति पत्नी के बीच में, परिवार तक ही सीमित रहता है।

विभिन्न समाजों में पाये जाने वाले आर्थिक विनिमय के प्रमाण प्रागतिहास के प्रारम्भ से मिलते हैं। आशुत समाज भी आर्थिक विनिमय से पूर्णतया मुक्त नहीं रहें हैं। आदिवासी समाजों में पायी जाने वाली आर्थिक व्यवस्थाओं में विनिमय एक प्रकार से मर्यादागत हो जाता है कि उन आधुनिक समाजों की आर्थिक व्यवस्था में प्रचलित 'वस्तुव्यय' (Barter), क्रय विनय (Purchase Sale) या 'मजदूरी' (Wages) जैसी धारणाओं से व्यक्त नहीं किया जा सकता। आदिवासी समाजों की

आर्थिक व्यवस्था में विनिमय का आधार केवल मुद्रा बनाया या मुनाफा नहीं है। यहाँ विनिमय में इस बात की भाषा नहीं रहती है कि विनिमय करने वाले को उतनी ही आर्थिक सेवा या आर्थिक मूल्य की वस्तु मिलेगी जितनी कि वह दे रहा है। आदिवासी आर्थिक व्यवस्था में पाया जाने वाली विनिमय प्रणाली की कुछ विशेषताएँ इस प्रकार हैं। एक, विनिमय मूलतः सामाजिक परम्पराओं के आधार पर होता है न कि केवल व्यापारिक दृष्टिकोण से। दो, विनिमय साधारणतया मित्रता, रक्षक या अन्य सम्बन्धों के आधार पर होता है। तीन, विनिमय के अवसर सांस्कृतिक परम्पराओं के अनुसार पूर्वनिर्धारित हात हैं। चार, किसी भी विनिमय में जैसाकि लंबाला के उदाहरण से स्पष्ट है यह आवश्यक नहीं है कि दोनों ओर से होने वाला आदान-प्रदान तत्काल हो जाए। पाँच, विनिमय का क्षेत्र विनिमय में प्रयुक्त होने वाली वस्तुएँ तथा उनका मूल्य प्रत्येक आदिवासी समाज के सांस्कृतिक आदर्शों के अनुसार पूर्वनिर्धारित रहते हैं। छ, अधिकतर विनिमय सामूहिक स्तर पर आनुष्ठानिक (Ceremonial) ढंग से होता है जिसके कारण बहुत से विद्वानों का आदिवासी आर्थिक व्यवस्था साम्यवादी प्रतीत हुई है। यद्यपि ऐसे विनिमय किसी साम्यवादी विचारधारा पर आधारित न होकर, पारस्परिकता व सिद्धांत पर अधिक आधारित होते हैं।

1. अफ्रीका में लबोला (Labola), वधूधन (Bride Price) की प्रथा आदिवासी विनिमय प्रणाली की सांस्कृतिक परम्परागतता का एक सुप्रसिद्ध उदाहरण है। लबोला प्रथा के अनुसार, विवाह के अवसर पर, प्रत्येक घर का पिता वधू के पिता को कुछ वस्तुएँ भेंट करता है जिन्हें वधू का पिता अपने सगे सम्बन्धियों में बाँट देता है और जिन्हें घर का पिता अपने सगे सम्बन्धियों से एकत्र करता है। इस प्रकार, प्रत्येक विवाह में, घर के सगे सम्बन्धियों से लबोला एकत्र होता है और वधू के सगे सम्बन्धियों में बाँटता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने सगे सम्बन्धी के पुत्र के विवाह में लबोला एकत्र करने में सहायता देता है और उसकी लड़की के विवाह में लबोला का अंग दाय के रूप में पाना है। बिहार के मुंडा आदिवासियों में भी वधूधन एकत्र करने की ऐसी प्रथा थी, जो मुंडा अर्थ प्रणाली के सघात से समाप्त हो गई है।
2. 'युगिनी के पूर्वी किनारे के उत्तर-पूरुब की बिना में पाये जाने वाले द्वीपों (Tobriand Islands) के निवासियों में कुला रिंग (Kula Ring कुला परिधि) की प्रथा का यहाँ उदाहरण दिया जा सकता है। कुला को विनिमय परिधि व्यापारिक साहोदारी का क्षेत्र या व्यापार का आधार कहा जा सकता है। कुला रिंग (कुला परिधि) लाल रंग के हार और सफ़ेद रंग के बाजूबंद से बनती है। जब कोई व्यक्ति अपने ही समुदाय में, या जब दो समूह अपने ही समुदाय में, या जब दो द्वीपों के निवासी साधारण ढंग से या धूमधाम से आनुष्ठानिक ढंग से आर्थिक विनिमय करते हैं तो, साथ ही साथ, एक पार्टी दूसरी पार्टी को लाल रंग का हार और दूसरी पार्टी पहली पार्टी को सफ़ेद रंग का बाजूबंद देती है। बिना हार और बाजूबंद के दो व्यक्ति, दो समूहों, और दो द्वीप के निवासियों में व्यापारिक विनिमय नहीं हो सकता है। हार

आदिवासी आर्थिक व्यवस्था सामूहिकता की आरंभ अधिक उ मुख है किंतु वह साम्यवादी नहीं है। आदिवासी मानवशास्त्रियों की यह धारणा थी कि आदिवासी सामाजिक आर्थिक व्यवस्था साम्यवादी है किंतु, हाल साम्यवाद के अनेक अध्ययनों के आधार पर आज यह माना जाता है कि आदिवासी सामाजिक आर्थिक व्यवस्था की उस अर्थ में साम्यवादी नहीं बना जा सकता है जिस अर्थ में मार्क्स ने साम्यवाद का अर्थ किया है। साम्यवाद की धारणा या राय के पूरक ही समाज के एक व्यतिरिक्त (Contrast) के रूप में विकसित हुई है और उस रूप में वह आदिवासी समाज पर लागू नहीं की जा सकती है। पिंडिगटन ने 'यूगिनी के तटवर्ती प्रदेश के एक द्वीप वागियों (Pogco), और दक्षिणी टगानिका की एक बाटू गणजाति में भूमि प्रणाली (Land Tenure System) का तुलनात्मक अध्ययन करके, यह निष्कर्ष निकाला है कि जहाँ भूमि की कमी के कारण भूमि के लिए प्रतिस्पर्धा उत्पन्न होती है वही व्यक्तिगत तथा सामूहिक भूमि को नियमित करने के लिए आवश्यक नियम उत्पन्न होते हैं। आदिवासी समाज में ये नियम अलिखित होने के कारण, परम्परा के रूप में विद्यमान रहते हैं।

और बाजबंद के विनिमय में हार दाहिनी ओर से बाइ जोर और बाजबंद बाइ ओर से दाहिनी ओर चरने लगे और इस प्रकार कुला रिग बनते हैं। कुला समुदाय व्यक्तियों का वह समूह है जो आपस में विनिमय करते हैं किंतु जब विभिन्न द्वीपों के निवासियों में विनिमय होता है तो, एक सामूहिक इकाई के रूप में विनिमय में भाग लेते हैं। एक कुला रिग में एक गाँव के या कई गाँवों के या एक या कई जिलों के व्यक्तियों आते हैं। कुला विनिमय में विभिन्न द्वीपों के निवासियों में होने वाले विनिमय सबसे महत्वपूर्ण हैं जिनमें भाग लेने के लिए आवश्यक जादू (Magic) का जानना जरूरी है।

3. पिंडिगटन के अनुसार आदिवासी आर्थिक व्यवस्था में वे वस्तुएँ, जिनके उत्पादन में सामूहिक प्रयासों की आवश्यकता होती है सामूहिक स्वामित्व में रहती हैं, जिसके कारण, आदिवासी साम्यवाद की भ्रमात्मक धारणा उत्पन्न हुई। आदिवासी समाज में सम्पत्ति सामूहिक भी होती है और व्यक्तिगत भी। जिन आधारों पर लोग आदिवासी साम्यवाद की धारणा के प्रतिपादित करते हैं या प्रयास करते हैं, उन्हीं आधारों पर आदिवासी व्यक्तिवाद की भी धारणा प्रतिपादित की जा सकती है। साम्यवाद आधुनिक समाज की धारणा है जो सामाजिक प्रतिष्ठा की समानता उत्पादन के सामाजिक नियमन तथा नियोजन उत्पादन पर समाज के स्वामित्व, लगभग समान जीवन स्तर, कार्य करने की अनिवार्यता तथा एक विशेष प्रकार की सामूहिक राजनैतिक सत्ता की धारणाओं पर आधारित है और, इस कारण जो आदिवासी अर्थ व्यवस्था पर लागू नहीं होता है। आदिवासी साम्यवाद क्या है इस पर लोग एकमत भी नहीं हैं। ऐसी दशा में आदिवासी साम्यवाद की धारणा का प्रयोग ही भ्रामक है। देखिए रास्के पिंडिगटन कृत 'एन इण्टोडक्शन टु सोशल एथ्नोग्राफी वाल्यूम 1 पृष्ठ 314-17

भूस्वामित्व भूमि के प्रयोग पर नियंत्रण करता है। इस कारण आदिवासी समाज में भूमि पर किए जाने वाले उत्पादन प्रयासों तथा भूमि पर मित्रे अधिकारों में साम्य रहता है। व्यक्तिगत तथा सामूहिक अधिकारों का स्वरूप सांस्कृतिक आदर्शों पर आधारित रहता है। आदिवासी समाज में व्यक्तिगत तथा सामूहिक अधिकार और विनाशिकार साथ साथ पाये जाते हैं, जिसके कारण, पहले के अनेक मानवशास्त्रियों का आदिवासी आर्थिक व्यवस्था के साम्यवादी होने का भ्रम हुआ है। विभिन्न उपकरण (Tool), कपड़े आभूषण और जूतों का स्वामित्व बहुधा वैयक्तिक होता है। आदिवासी समाज में एक व्यक्ति किसी वस्तु का तभी अधिकार होता है जब वह उसका उत्पादन करता है या नियमित रूप से उसका प्रयोग करता है। आदिवासी समाज में धन और सम्पत्ति की धारणा, वर्तमान पूँजीवादी औद्योगिक समाज में पायी जाने वाली धन और सम्पत्ति की धारणाओं से भिन्न है। यहाँ धन और सम्पत्ति का संचय नहीं करने के व्यक्तिगत या सामूहिक उपयोग महत्वपूर्ण है। आदिवासी समाज में, विभिन्न अवसरों पर बिरादरी को दिए जाने वाले भोजन उदाहरण हैं। भारत के आदिवासी समाज में भी, व्यक्तिगत और सामूहिक सम्पत्ति तथा उत्तराधिकार के नियम पाये जाते हैं। नागा प्रदेश में ऐसे उदाहरण हैं जिनमें एक गाँव के निवासी गाँव की भूमि के सामूहिक रूप से अधिकारी हैं। वर्तमान परिस्थितियों में, वैयक्तिक सम्पत्ति की परम्परा अधिक बढ़ रही है।

भारत के आदिवासी किसी एक विशेष आर्थिक व्यवस्था में नहीं हैं। एक ओर कुछ गणजातियाँ साथ सामग्री एकत्र करने की और कृषि तथा आग्नेय भारत की व्यवस्था में हैं तो, दूसरी ओर अनेक गणजातियाँ औद्योगिक आदिवासी आर्थिक प्रणाली के प्रभाव में आ गई हैं। आर्थिक संगठन के आधार पर भारत की गणजातियों का चार श्रेणियों में वर्गीकरण किया जा सकता है—पहली श्रेणी में कादर, पलियन, पनियन, पनडही, कुम्बा विरगोर, सारिया बेंचू और मल्पत्रम जैसी गणजातियाँ आती हैं। गधन बना में रहती हैं और जंगल से साथ सामग्री एकत्र करके जीवन निर्वाह करती हैं। कादर ऐसा कहा गया है किमी भी प्रकार की कृषि नहीं करते हैं। वे जंगल में फल, बूँद और सड़क एकत्र करते हैं तथा आग्नेय पर नियंत्रण करते हैं। साथ सामग्री एकत्र करने के जीवन-न्यायन करने वाली गणजातियाँ मडली भी आती हैं और गिहार भी करती हैं। दूसरी श्रेणी में, कमार और वगा जैसी वे गणजातियाँ आती हैं जो जंगल में साथ सामग्री एकत्र करती हैं मडली और आग्नेय पर अपना जीवन निर्वाह करती हैं और, साथ ही साथ, जंगल कृषि भी करती हैं। तीसरी श्रेणी में स्वामी कृषि करने वाली भील जमा गणजातियाँ आती हैं। चित्त गणजातियाँ न स्वामी कृषि को करना लिया है, उनके लिए जंगल में पत्तों का महत्व गीला हो गया है। चौथी श्रेणी में वे गणजातियाँ आती हैं जिनके सम्पत्ति में, साथ के

बगीचो, खाना और कारखानो मे, मजदूरी करना प्रारम्भ कर दिया है। चौथी श्रेणी के लोग आदिवासी सवहारा वग मे आते हैं और वे मुख्यतया बिहार, बंगाल और आसाम मे केन्द्रित हैं। मथाल, हो, मुग्डा और भुइय्या गणजातियो के सदस्य चौथी श्रेणी म आते है। मजूमदार और मदन^१ के अनुसार भारत के तीन आदिवासी क्षेत्रों म, तीन अलग-अलग प्रकार की आर्थिक प्रणालिया पायी जाती है। उत्तरी उत्तर पूर्वी क्षेत्र मे पहाडा की ढालो पर बने, सीढीनुमा खेतो मे स्थायी कृषि प्रधान रूप स की जाती है यद्यपि आसाम म यहाँ वहाँ जगम कृषि भी होती है। मध्य क्षेत्र म जगम कृषि की प्रधानता रही है और दक्षिणी क्षेत्र की गणजातियाँ भोजन वा एवत्र करके जीवन निर्वाह करने वाली (Food Gathering) साधारण आर्थिक व्यवस्था म हैं।

उपयुक्त वर्णन के आधार पर यह निष्पत्ति निकाला जा सकता है कि जगलों से फल फूल तथा कद मूल के रूप म साध सामग्री एकत्र करना स्थायी या जगम कृषि करना, पशुपालन और कारखानो में मुख्यतया सवहारा वग के रूप मे काम करना भारत के आदिवासियो की मुख्य आर्थिक क्रियाएँ हैं। आखेट करना, मछली मारना टोकरी बनाना और कृषक मजदूरी के रूप मे काम करना तथा सड़क बनाने के लिए और वन विभाग म सरकारी नोकरी करना उनके सहायक पेशे हैं। कुछ आदिवासी समूह जिनमे पराधान मुख्य हैं गाने-बजाने का पेशा करके, अपना जीवन यापन करते है। मध्यप्रदेश बिहार उड़ीसा और बंगाल के आदिवासी क्षेत्रो मे खनिज पदार्थ बहुतायत स पाये जाते हैं जिसके कारण, योरोप के प्रभाव म जाने के बाद इन क्षेत्रो मे खनिज पदार्थों को निकालने के लिए या उनका औद्योगिक उपयोग करने के लिए, इन आदिवासी क्षेत्रो म औद्योगीकरण बढ़ता रहा है। अभ्रक कायला और लाहे की खान इ ही आदिवासी क्षेत्रो म हैं। भिलाई और जमशदपुर के कारखाने भी इही क्षेत्रो म हैं। अतः, गरीबी तथा अधिक आर्थिक लाभ के कारण आदिवासी खानो और कारखानो म काम करने की ओर आकृष्ट होत रहे है। इसके अतिरिक्त, आसाम के चाय के बगीचो म भा आदिवासी श्रमिको के रूप मे काम करते हैं। मथाल, खोड और गोड, एक बड़ी सख्या म, आसाम के चाय के बगीचा म काम करते हैं।

भारत के आदिवासियो म पशुपालको की सख्या अधिक नहीं है। पशुपालन आर्थिक व्यवस्था का प्रधान उदाहरण नीलगिरी के टोडा लोगो की आर्थिक व्यवस्था है। टोडा भसों पालते है और भस तथा दूध ही इनके जीवन के आर्थिक आधार हैं। क्योंकि दूध और दूध से बनी वस्तुओं के विनिमय से वे आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त करते है। व कृषि नहीं करते हैं। उत्तरप्रदेश की उत्तरी सीमा पर पाये जाने वाले भाटिए कृषि और पशुपालन की बीच की अवस्था म है। किन्तु जहा स्थायी कृषि आर्थिक जीवन

का आधार है वहा पशुपालन गीग पेशा बन गया है। कृषि के साथ-साथ अ्य अनक गीग पेशे भी आ जाते हैं। गीग पेशे वस्तुन सहायक पेशे हैं क्योंकि व प्रधान पेशा के साथ किये जाते हैं। शिकार करना, मछली मरना, टोकरी बनाना, सूत कातना, कपडा बुनना, रस्सी बनाना और बेंत की आवश्यक वस्तुएं बनाना एमे ही पेशे हैं। बड़ईगिरा, लाहारी तथा कुम्हारी का काम करने वाले विगोपीकृत समूह भी आदिवासिया म पाय जाते हैं। उगहरणाय, मध्यप्रदश के मगिया गाड जगल की जडी-बूटियो (Forest Produce) से एक प्रकार की गरख बनाने हैं। सावरा, खोड और गोंड आदिवासिया म गिल्पी वग के लोग गोपालक, धातुओं का काम करन वाले, दुाकर, बेंत का काम करने वाले तथा मिट्टी के बतन बनाने वाले पाय जाते हैं। कारवा और बगरिया लोहार का काम करने मे सिद्धहस्त हैं। व म्यानीय उपयोग के लिए, साधारण किम्म के औजार बनाते हैं। पासी तात बनाने के काम म निपुण हैं। थारू कृषि के साथ साथ, फर्नीचर घरेनू उपयोग के बतन, टोकरी वाद्य-यत्र हथियार, रस्सी और चटाई बनाने का काम करते हैं। मद्रास प्रात के इरला बास की चटाइया तथा टोकरिया और फान (Ploughshare) और पहिये बनान हैं।

कृषि, भारत के आदिवासियो का मुख्य आधिक आधार है। सन् 1951 की जनगणना मे दिये गए आकड़ों के अनुसार, भारत क एक सौ आदिवासियों में नब्बे लाख से कुछ अधिक आदिवासियो मे से लगभग एक सौ कृषि काय

सत्तर लाख कृषि पर निर्भर हैं। कृषि कई प्रकार की है। एक जगम

कृषि जिसमें एक स्थान पर लगातार स्थायी रूप से खेती न करके,

एक स्थान पर पेडा का गिराकर और उनम आग लगाकर तथा राख और मिट्टी को एक मे मिजाकर तबतछ खेती की जाती है जबतक कि भूमि का उवरता बनी रहती है। इस प्रकार की कृषि म न तो हल का महत्व है और न खाद का। जलामे झुए पेडों की राख खाण का काम देती है। बीज यातो छिटका कर बोया जाता है या छोटी से गड्डे करने प्रत्येक गड्डे मे एक बीज का दाना रख दिया जाता है। प्रागैतिहासका मत है कि जगम कृषि ही म बतमान कृषि का प्रारम्भ हुआ है। नव प्रस्तर युग की आर्थिक व्यवस्था, खाद्य मद्रहण और जगम कृषि पर आधारित थी। स्थायी कृषि कृषि का दूसरा प्रकार है जा पहाडा की ढलानो पर सीदानुमा खेती म भी की जा सकती है और मैदानों म भी। स्थायी कृषि, जगम कृषि से आगे बढ़ा हुआ एक कदम है। स्थायी कृषि, खाद तथा हल के प्रयाग और फसलो को बदल-बदल कर बोन (Rotation of Crops) के ज्ञान म सम्बन्धित है। मशीनों द्वारा खेती (Mechanized Agriculture), उभी प्रकार से, हल पर आधारित खेती से भाग बना हुआ एक कदम है जिस प्रकार, हल म खेती जगम कृषि से आगे उठा हुआ एक कदम है। हल द्वारा की जान वाली खेती म यदि खाण क प्रयाग का ज्ञान प्राप्तकर है ता मशीनीकृत खेती म उवरका (Fertilizer) क प्रयाग क

ज्ञान । हल जीर मशीन में की जाने वाली कृषि स्थायी कृषि में आती है । हल और मशीन से ही प्रकृष्ट खेती (Intensive Cultivation) सम्भव हुई है । प्रकृष्ट खेती बढ़ती हुई जनसंख्या की एक आवश्यकता है । जगम कृषि को आग्नि कृषि कहा गया है और वह बड़ी सम्भव है जहाँ जनसंख्या घनी नहीं है तथा जहाँ जगलो और भूमि का बाहुल्य है ।

भारत में आदिवासियों में आराओ भील सघाल, मभवार सरवार बगा, कारवा, गाड, हो और आमाम की गणजातियाँ प्रधान कृषक गणजातियाँ हैं । भारत में आदिवासी स्थायी और जगम दाना प्रकार की कृषि करते हैं । जगम कृषि पर निर्भर गणजातियों की आर्थिक व्यवस्था मूलतः बसी ही होती है जसी खाद्य-मशहक गणजातियाँ की । कमार, रडनी और बगा इत्यादि गणजातियाँ जो जगम कृषि पर निर्भर है नवप्रस्तर युग की आर्थिक व्यवस्था से आगे नहीं बढ़ पाई हैं । जहाँ-जहाँ स्थायी कृषि आ गई है वहाँ आदिवासी ग्रामीण कृषक की अवस्था में आ गए हैं, किंतु जहाँ जगम कृषि ही जीवन का आधार है, वहाँ आदिवासियों की आर्थिक दशा काफी अविकसित है ।

भारत के आदिवासियों में, जगम कृषि का व्यापक प्रभाव है । विभिन्न क्षेत्रों में उस विभिन्न नामों से पुकारा जाता है । नागा उसे 'शूम कहते हैं उडीसा के खोन् पाड बस्तर के भरिया गाड प्येण्डा और मध्यप्रदेश के वैगा लाग वेवार' । भुइयों, जत्र पहाड़ियों की तराहटी में पेडा को गिरा और जला कर, राख में बीज बोते हैं ता उन 'डाडी कहते हैं किंतु, यदि वे पेडा को न गिरा कर पेडा के चारों ओर बटी झाड़ियाँ को एकत्र कर, पेडा को जलाते हैं तो वे उन 'बोमन कहते हैं । जगम कृषि में, पेडा का जलाकर राख करन, भूमि पर जमी राख की पर्तों में बीजों को बोना और एक दो फसलों के बाद, उस भूमि को छोड़कर गई भूमि तैयार करना आधारभूत क्रियाएँ हैं । इस प्रकार की कृषि में सिंचाई वर्षा पर निर्भर रहती है । जगम कृषि में वन सम्पत्ति का नाश होता है, वनों के विनाश से भूमि का कटाव और बाढ़ों का जाना बढ़ जाता है परिश्रम के अनुसार फसल नहीं होता है तथा इसमें फसल इतनी कम होती है कि सम्पूर्ण जनसंख्या का इसमें भला नहीं होता है । इस कारण, जगम कृषि का अपर्याप्त और हानिकर कहा गया है । अथवा जी राय की स्थापना के द्वारा जत्र में सरकार ने जगलो की सुरक्षा की नीति का अपनाया है, तब में आदिवासियों और सरकार के लिये जगम कृषि एक समस्या का विषय बन गई है क्योंकि, आदिवासियों का जगला को काट गिराने में वे स्वतंत्र नहीं हैं जो पहले थी । जगम कृषि आदिवासी सभ्यता का एक अभिन्न अंग बन गई है । वैगा लागो का यह विद्वान है कि हल चलाना पथ्वी मा की छाती का फाडना है और इसलिए, भगवान न बगाओं के पूज्य नागा वैगा को, हिंदुओं और गोडों की भाँति हल चलाने से मना किया था । आदिवासियों की आर्थिक दशा में सुधार करने

बोली का प्रयोग करते हैं और युद्ध जैसे सामान्य उद्देश्य में संगठित होकर, काम करते हैं। किन्तु, युद्ध सदा दो गणजातियाँ में ही नहीं होते हैं। एक ही गणजाति के दो पक्षों में भी युद्ध हो सकते हैं। युद्ध नहीं, क्षेत्र गणजाति की आवश्यक विवेकता है यद्यपि रिवस ने क्षेत्र को महत्ता नहीं दी है। यायावर (Nomadic) गणजातियाँ भी किसी न किसी क्षेत्र से सम्बन्धित होती हैं और प्रत्येक यायावर गणजाति एक क्षेत्र विशेष में ही घूमती रहती है।

इरावती बर्वे के अनुसार गणजाति में आर्थिक विशेषीकरण (Economic Specialization) का अभाव होता है जिसका तात्पर्य यह है कि एक गणजाति के सदस्य सभी आवश्यक आर्थिक क्रियाओं को करते हैं। जाति व्यवस्था में, पेशावर विशेषीकरण (Occupational Specialization) पाया जाता है जिसके कारण, जाति व्यवस्था में जातियों की अन्तर्निभरता पाई जाती है। दूसरे शब्दों में जाति व्यवस्था पेशागत विशेषीकरण के आधार पर विभिन्न सामाजिक समूहों का ऐसा संगठन है जिसमें विभिन्न सामाजिक समूह एक सामाजिक उच्चोच्च परम्परा में बंधे रहते हैं जो अपरिवर्तनीय लगते हुए भी आर्थिक दबावों के कारण, वस्तुतः लचीली रहती है। इस प्रकार, जमा कि एक मत है, गणजातीय व्यवस्था में आर्थिक विभागीकरण नहीं होता है जिसके कारण गणजाति जाति से भिन्न हो जाती है। किन्तु, आर्थिक जीवन में आत्मनिभर तथा स्वतंत्र समूहों के रूप में, गणजाति की धारणा एक आदर्श प्ररूपमात्र है क्योंकि उसके अपवाद भी पाये जाते हैं। मजूमदार के अनुसार, जाति के आर्थिक विशेषीकरण जाति व्यवस्था में निहित जातियों की अन्तर्निभरता और उच्चोच्च परम्परा तथा गणजाति की आर्थिक स्वतंत्रता के आधार पर जाति और गणजाति का अन्तर नहीं किया जा सकता क्योंकि भारत के ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया में गणजातियों में भी अन्तर्निभर पेशागत विशेषीकरण का विकास हुआ है। नीलगिरी की गणजातियाँ इसका उदाहरण हैं। टांडा गणजाति के लोग तो खेती करते हैं और किसी शिल्प उद्योग को। उनका आर्थिक जीवन भस पालन और दूध के व्यापार पर निर्भर है। दूध और दूध की बनी वस्तुओं से वे अपनी पड़ोसी गणजातियों से आवश्यक वस्तुएँ बदलते हैं। बडगा से वे अनाज, खर्तों में उगाई जाने वाली अथ आवश्यक स्थानीय वस्तुएँ और कपड़े लेते हैं और कोटा गणजाति के लोगों से मिट्टी के बतन और लोहे के औजार लेते हैं। कोटा गणजाति के लोग टांडा त्योहार और अनुष्ठानों में गाने बजाने का भी काम करते हैं। कुम्बा गणजाति के लोग कदमूल एकत्र करके जीवन निर्वाह करते हैं। इस क्षेत्र में ऐसा माना जाता है कि मूलतः यहाँ की सारी भूमि टांडा लोगों की थी जिसके फलस्वरूप, बडगा, बतौर लगान के टांडा लोगों को अपनी पदावार का एक हिस्सा देते हैं।

इस प्रकार नीलगिरी की चारों गणजातियों का आर्थिक जीवन आत्मनिभर न होकर, परस्पर अन्तर्निभर है। टांडा पशुपालक हैं, बडगा खेतिहर, कोटा शिल्पी

और कुम्हवा कद मूल सहक । इस क्षेत्र के आधिक सगठन म प्रत्येक गणजाति दूसरी पर निर्भर है । इन चारो गणजातियो क अन्तमम्ब'धो म पाय जान वाले सामाजिक प्रतिष्ठाक्रम विन्यास म उच्चोच्च-परम्परा का भाव है । टोडा गणजाति की सामाजिक प्रतिष्ठा उच्चतम मानी जाती है । ऐसा लगता है कि मानो य चारा गणजातिया, वस्तुतः जातिया हो । दूसरी ओर, प्रत्येक गणजाति की भाषा और मस्त्रुति कलाप एक दूसरे-मे भिन्न हैं । अनेक गणजातिया ऐसी हैं जिनके सदस्य एक पगा विद्याप पर निर्भर करते हैं और इसी कारण, गणजातियो का आखेटक, पगु पातक तथा ऋपक श्रेणिमा म वर्गीकरण भी किया जाता है । भारत के जिन क्षेत्रो म जाति और गणजाति का सम्पर्क बढ़ा है, जमा कि मध्य प्रदेश क अधिकतर आदिवासी क्षेत्रो क सीमांत प्रदेश म हुआ है गणजाति का आधिक विभेपीकरण भी हुआ है । उत्तरप्रदेश के मिर्जापुर जिले म, विहार और छरवार गणजातियो क सदस्या न कत्या बनान के काम म निपुणता प्राप्त कर ली है जिसके कारण उह खेराहो की मगा से सम्बाधित किया जाता है । भारत की सामाजिक ऐतिहासिक प्रक्रिया मे गणजाति पदा विभेपीकरण की ओर उमुव रही है और, इसी कारण, गणजाति जाति म रूपांतरित होती रहा है । भागे, यथास्थान इस प्रक्रिया का अणन किया जायगा । विभेपीकरण का स्तर प्रौद्योगिकी क विकास-स्तर स सम्बन्धित है । आदिवासी आधिक व्यवस्था म प्रौद्योगिकी का स्तर निम्न है और इस कारण, अपक्षकृत, उसम विभेपीकरण को कमी है । भारत मे गणजाति का पेशागत विभेपीकरण, गणजाति का जाति म, रूपांतरित करता रहा है, जिसके कारण, यहाँ-वहाँ, अपवाद के रूप म गणजाति के पेशागत विभेपीकरण क उदाहरण भी मिल जात हैं । कम, जैसी कि अधिकतर मानवशास्त्रियों की राय है, आधिक आत्म निर्भरता, गणजाति की एक सामांय विशेषता है । आधिक विभेपीकरण जाति की विशेषता ह न कि गणजाति का । एक गणजाति क सम्म्य लगभग उन सभी आधिक प्रक्रियाओ और पगा का करत हैं जा उनके जीवन निर्वाह क लिये आवश्यक हैं । गणजाति म साधारणतया आधिक विभेपीकरण नहीं हुआ है यद्यपि, एक ही गणजाति म आधिक विभेपीता प्राप्त समूह पाये जा सकत हैं । मध्य प्रदेश क गाढा म लाहारी के काम म विभेपीता प्राप्त समूह का पाया जाता इसका उदाहरण है । जाति का आधिक विभेपीकरण, उस गणजाति स भिन्न कर दता है । इसम कोई शक न्य कि एक जाति विभेपी क सदस्य कई पेशो का कर सकत ह किन्तु हर दगा म, प्रत्येक जाति क सम्म्या क नियमि विचारित पेशो का सदस्या और सीमा परम्परानुसार निधा रित रहा है । ब्राह्मण न तो भगी का काम कर सकत है और न भगी ब्राह्मण का ।

मजूमदार के अनुसार, गणजाति एक सामाजिक राजनतिक (Social Political) सगठन है। गणजाति मूलत एव धात्मनिभर स्वतंत्र राजनतिक सामाजिक इकाई है—ऐसी राजनतिक इकाई, जिसमें विभिन्न सामाजिक प्रतिष्ठा (Social Status) वाले व्यक्ति सगठित रहते हैं। एक सस्पर्शी क्षेत्र में फणी हुई, स्वतंत्र राजनतिक इकाई हान व कारण गणजाति राष्ट्र का रूप लेती है यद्यपि भारत में राष्ट्र राज्य व विकास के साथ-साथ गणजाति का राष्ट्र रूप क्षीण होता रहा है¹। आज सभी गणजातियाँ भारत के राजनतिक सगठन का अंग हैं और उनकी राजनतिक स्वतंत्रता समाप्त हो गई है। किन्तु फिर भी गणजाति अपने मद्दसा के सामाजिक सम्बन्ध

1 आदिवासी साम्यवाद (Primitive Communism) के प्रणता मानवशास्त्रियों ने यह मत प्रतिपादित किया है कि आदिवासी समाज में राज्य-सगठन नहीं पाया जाता है और आदिवासी जीवन प्रयागों से निर्वाचित होता है। आदिवासी प्रयागों का कभी उल्लघन नहीं करता है। इसकारण, आदिवासी समाज में, कानून (विधि) की भी आवश्यकता नहीं होती है। किन्तु आज यह मत निमूल माना जाता है। आज यह माना जाता है कि राजनतिक सगठन प्रत्येक समाज में पाया जाता है यद्यपि उसके प्रकार भिन्न हैं। समाज का खण्डात्मक विभाजन (Segmentary Division) राजनतिक सगठन की आवश्यकता को जन्म देता है। रक्तसंबन्धी समूह, आर्थिक समूह, धर्म और लिंग (Sex) आदिवासी समाज को खण्डात्मक बनाते हैं, जिसके कारण, आदिवासी समाज में भी राजनतिक सगठन पाया जाता है। राजनतिक सगठन के दृष्टिकोण से, बोलस और ह्यायजर ने आदिवासी समाजों को तीन श्रेणियों में बाँटा है पहला वह समाज जिसमें राजनतिक सगठन अत्यन्त सरल होता है (जैसे छाद्य सघट्टक और आखेटक गणजातियाँ), दूसरा, वह समाज जो जत्या (Band), गणजाति या राज्यसघ (Confederacy) में सगठित होता है, और तीसरा, वह समाज जो साम्राज्य (Empire) में सगठित होता है। जिस समाज का आर्थिक स्तर जितना विकसित है, उसका राजनतिक सगठन भी उतना ही विकसित और जटिल है। हब्स बल के अनुसार, आदिवासी समाज में पांच प्रकार के राजनतिक सगठन पाये जाते हैं स्थानीय समूह (The Local Group), जत्या (The Band) राष्ट्र (The Nation) राज्यसघ (The Confederacy) और साम्राज्य (The Empire)। स्थानीय समूह और जत्या राष्ट्र में विलीन हो जाते हैं। आदिवासी समाज में गणजाति राष्ट्र का रूप ग्रहण करती है। गणजाति का विकसित राजनतिक रूप राज्यसघ और साम्राज्य का रूप ले लेता है।

का नियमन उन क्षत्रा मे करती है जा भारतीय विधि प्रणाली के अंतगत नही आ पाये हैं। प्राचीन तथा मध्यकालीन भारत म जहा राज्य का उद्देश्य भारत की विभिन्न गणजातियो पर प्रभुता स्थापित करना या गणजाति के द्रीय सत्ता के अधीन, एक स्वतंत्र राजनतिक इकाई क रूप म काय करती थी। गोडा ने मध्यभारत मे अपना राज्य स्थापित किया था इसक प्रमाण इतिहास मे मिलत हैं। सन 18७७ म स वाला ने अंग्रेजो को अपने इलाके स निकल जाने की चुनौती दी थी और सगठिन होकर अंग्र जा के विरुद्ध विद्रोह किया था।

वतमान आदिवासी भारत म पचायत प्रणाली आदिवासी राजनतिक सगठन का मुख्य रूप है। भारत म पचायत प्रणाली क तीन परम्परागत प्रकार मिल हैं एक, जाति पचायत दूसरा ग्राम पचायत और तीसरा गणजाति-पचायत। जाति पचायत क अंतगत एक जाति क सदस्य आते है। एक जाति पचायत के सस्य कई पडासी गाँवो क किन्तु एक ही जाति के सदस्य होत हैं। जाति-पचायत का उद्देश्य है जाति के नियमो को लागू करना और उनका उल्लघन करने वाल का दंड देना। य नियम मुख्यतया खान पान, विवाह तथाक और पेंग म सम्बंधित हान है। ग्राम पचायत क अंतगत एक गाँव के निवासी आत हैं जो कई जातियो क सदस्य ह। सवने है। ग्राम जावन का नियमन जाति पचायत क अंतगत आता ह। स्वतंत्र भारत म ग्राम पचायत का वधानिक आधार प्रदान किया गया है और विधान द्वारा उनक कार्यो और मगठन का नियमित किया गया है। वतमान विधान क अनुसार एक ग्राम पचायत म कई ग्राम आ सकत है ब्योकि वतमान विधान म पचायत सगठन का आधार ग्राम नही, बल्कि एक निश्चित जनमख्या है जो कई ग्रामों स मिल कर बन सकती है। गणजाति पचायत स तात्पय उस पचायत स है जा एक गणजाति म पायी जाती है। वतमान आदिवासी भारत में, गणजाति का एक कन्द्रीय राजनतिक मगठन नही मिलता है। प्रत्येक गणजाति एक सस्योक्षेत्र म पनी रहती है और उनके सदस्य क्लाना (जिनका आगे बणन किया जायगा) और ग्रामा म विभक्त रहते है। वतमान आदिवासी समाज मे परम्परागत ग्राम पचायत का ही रूप अधिन मिलता जिस कुछ उदाहरणो द्वारा हम प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है।

कमार गणजाति म कई केन्द्रीय सगठन नही है। पाम पाम स्थित कुछ गाँवो के निवासा पचायत-मगठन मे मगठित ह। जान हैं। पचायत का सामाजिक धानिक मामला म सर्वोच्चसत्ता मिला हुई हाता है। कुमार गणजाति क सस्य अपनी अपनी पचायत क अधिन हात हैं। सरिया गणजाति म एक गाँव क सरिया परिवारों क मुबिधाता म मिलकर ग्राम-पचायत मगठित होती है। रेगमा गाँवा म अंग्रेजी राज्य क पत्न प्रत्येक गाँव का एक अध्यक्ष हाता था जो प्रशासन म प्रभुता प्रममदा की महामता दिया करता था। हा गणजाति म भी पचायत व्यवस्था पायी जाता थी। किन्तु अंग्रेजो राज्य की स्थापना के बाद म वहाँ जा दोहरा प्रशासन अस्तित्व म

आया, उससे पचायत का हास हुआ है। अंग्रेजी प्रशासन ने वहाँ प्रत्येक गाँव में आदिवासी आफिसर रखे जा अपनी ही सजा म लग रहे जिसके कारण परम्परागत प्रशासन भ्रष्ट हो गया। वहाँ यह नियम है कि किसी भी मुकद्दमे की अंतिम पचायत में क्लबटर अवश्य उपस्थित हो और वह स्वयं यह देखे कि फमला ठीक दिया गया है या नहीं।

प्रत्येक पचायत का एक मुखिया होता है, जिसका पद पीढ़ी दर पीढ़ी चलता है। किंतु, इस नियम का अपवाद भी पाये जाते हैं। रेंमा नागाआम, ग्राम अध्यक्ष का पद किसी एक परिवार में नहीं बरत बलान में पीढ़ी दर पीढ़ी चलता है। आदिवासी समाज में, मुस्लिम निरकुश शासक नहीं है। मुखिया की सहायता के लिए तथा उसे सलाह देने के लिए या तो बलान के या गाँव के प्रमुख बड़ों की सभा होती है, जिसकी राय की मुखिया अवहेलना नहीं कर पाता है। मुखिया का पद वंशानुगत होता है फिर भी, यदि बहुमत उसके पक्ष में हो तो, उसे हटाया जा सकता है। आदिवासी पचायत के सामने बड़ी मुश्किल आते हैं जिनसे गणजातीय विधि (Tribal Law) भंग होती है। सिद्धांततः, पचायत के अधिकार क्षेत्र में, आदिवासी जीवन में सम्बन्धित सभी समस्याएँ आती हैं क्योंकि पचायत और उसके नेताओं का प्रधान कार्य है पचायत के सदस्यों के व्यक्तिगत तथा सामूहिक अधिकारों की रक्षा गणजाति के नियमों का लागू करना तथा आपत्तियों के समय भाग निर्देशन करना। किंतु भारत के राष्ट्र राज्य और केन्द्रीय सत्ता के संगठित होने के साथ साथ, पचायत के अधिकारों का क्षेत्र भी सीमित हो गया है। पुलिस-संगठन न्यायालयों और भारतीय दण्ड संहिता से पचायतों के अधिकार सीमित हो गए हैं।

पचायत के अंतर्गत मुख्यतया परस्नीयमन, तलाक, बधू मूल्य डाकिनी वृत्ति (Witchcraft) उत्तराधिकार के झगडा तथा खान पान के नियमों से सम्बन्धित समस्याएँ आती हैं। कमार पचायत के नियमानुसार, गोहत्या और उनके साथ खाना खाना जिन्हें कमार अपने से निम्न मानते हैं अपराध माना जाता है। अतः ब्राह्मिकी तथा बौद्धिकी के नियमों का पालन करवाना भी पचायत के अधिकार-क्षेत्र में आता है। किसी व्यक्ति की हत्या, चोरी, किसी की मानहानि और किसी की स्त्री या लड़की भगाना इत्यादि अपराध पचायत के अधिकार क्षेत्र में आते हैं, किंतु ऐसे मामलों भारतीय दण्ड संहिता के नियमानुसार न्यायालय में भी ले जाये जा सकते हैं। कमारों में, जैसा कि दुबे ने लिखा है, व्यक्ति और सम्पत्ति के विरुद्ध अपराध बहुत कम होते हैं और यदि होते भी हैं तो वे उतने गम्भीर नहीं होते हैं। कमारों जैसा हाल लगभग सभी गणजातियों का है।

पचायत में विधायी (Legislative), न्यायिक (Judiciary) तथा प्रशासकीय (Executive) कार्य और अधिकार निहित हैं। गणजाति की प्रथाओं का नियमन, प्रशासन और न्यायिक निवचन पचायत द्वारा ही होता है। पचायत उस प्रकार का

व्यायालय नहीं है जैसाकि वल्लभमान समाज में पाया जाता है। पचायत में वादी प्रतिवादी की अपने विचारों का व्यक्त करने का अवसर मिलने के साथ-साथ पचायत के प्रत्येक सदस्य का अपना मत व्यक्त करने का अधिकार होता है। पचायत द्वारा उम्मीद निराश का लागू किया जाता है जो बहुमत का नियम नहीं बरतने में बहुमत का नियम होता है। आदिवासी विधान परंपरा में अपराध को अपराध न मानकर पाप माना जाता है जिसके कारण अपराध के इरादा छोड़कर प्रकाश पर ध्यान न देकर, उसके परिणाम पर अधिक ध्यान दिया जाता है। दण्ड भी अपराध के परिणाम को ध्यान में रखकर दिया जाता है। चूंकि अपराध पाप माना जाता है, इसलिए दण्ड ऐसा दिया जाता है जिससे अपराधी का सुधार हो सके और दूसरों का उत्साह भी मिल सके। दण्ड को उदात्तरणीय बनाने के कारण आदिवासी दण्ड विधान में उसका तसा नियम भी पाया जाता है। मध्यप्रदेश की कलकलिया गणजाति में दण्डात्मक अपराधी का गुलाम गरम किए हुए पत या लहसुन दागने की प्रथा का विवरण मिलता है। किंतु आज एन एन दण्ड भारतीय दण्ड महिता के विरुद्ध पड़ने और इस कारण उनका प्रयोग कम होता है। नाकी में चरमगीत गवाह का हो अधिक महत्व दिया जाता है पर साथ ही साथ सीमा और दवापरामा (Oath) का भी महत्व दिया जाता है। कलकलिया में यदि कोई अपराधी मान पीपल के पत्तों का अपन हाथ पर रखकर और उसके ऊपर लाल तपा हुआ लाल रखकर, सात बंदम चलने पर भागने लगे तो वह निर्दोष समझा जाता है। वल्लभमान समय में पचायत मुफ्तया या तो नन्द जुमाना लगाती या विगदरी के लिए भोज देने का दण्ड देती है, या दोना का एक में मिला देती है। हुक्का-पानी बन्द करना (Procommunication) पचायत द्वारा लिया जाना या तो मुख्य दण्ड है किंतु यह शब्द समय के लिए हो गया है क्योंकि अतन्तोगतवा अपराधी का पुनः समाज में वापस ला लिया जाता है।

आदिवासी समाज में पचायत का एक एक सीमित सरकार का रूप है। पचायत जिन नियमों का लागू करती है, वे प्रथाओं के रूप में पाये जाते हैं। इस गणजातीय कारण एक मत में ही है कि आदिवासी समाज में विधि (Law) विधि का अभाव है। इस मत के प्रणेतानों का यह भावना रहा है कि आदिवासी अपनी प्रथाओं का कभी उपायत नहीं करता है। वह अपनी प्रथाओं का बस ही पचायतया पालन करता है, जग अपनी स्वाभाविक आस्था का। किंतु, यह भाव निराधार है क्योंकि आदिवासी समाज में भी, धर्म का सामाजिक नियमों का मानना पक्का है और यदि यह इन नियमों का उपायत करेगा, तो मगडित रूप में समाज उग्र दण्ड देता है। यदि विधि का सरकार अधिधान और पचायत के मध्य में ही परिभाषित किया जाए तो आदिवासी समाज में निश्चय ही विधि नहीं है क्योंकि आदिवासी समाज में सभ्यता के अंग अंग मगडित नहीं है। किंतु, विधि को ऐसा परिभाषा एकांगी है। विधि में शामिल है उस सामाजिक नियम में जा

सबमाय ह जोर जिसके पीछे समाज की वृत्ति गति है जो राजनतिक संगठन से उत्पन्न होती है और व्यक्ति का सबमाय नियम मानने के लिए बाध्य करती है। जिस सामाजिक नियम का व्यक्ति सामाजिक गति के दबाव तथा सामाजिक दण्ड के भय से मानता है वही विधि की शर्त मानता है। विधि ऐसा सामाजिक नियम है जिसका उत्पन्न व्यक्ति अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ व प्रसाम्यता हावर, व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए करता है। सामाजिक कृत्या का रोकने वाला नियम विधि की शर्त मानता है। ये व नियम है जिनके उल्लंघन से समाज की एकरा का खतरा उत्पन्न होता है। आदिवासी समाज की प्रथाओं में एक नियम अनिहित रहते है। किंतु सामाजिक कृत्या, इसकी परिभाषा अलग अलग समाजों में अलग अलग ढंग में की जाती है। कच्ची गणना बनाता भारत के जावकारी विभाग के नियमों के अनुसार अपराध है किंतु कुमार पंचायत के विधान में यह अपराध नहीं है। भोल चोरी करना अपराध नहीं मानते हैं। अन्यायी गणजातियाँ में भी चोरी और डाकैतनी का अपराध नहीं माना जाता है यद्यपि भारतीय सभ्यता के अनुसार, उनके कृत्य सामाजिक जोर दण्डनीय हैं। यही कारण है कि आज परिदृष्टित परिस्थिति में आदिवासी समाज की अनेक परम्परागत विधियाँ राष्ट्र की विधियाँ के विरोध में पडती हैं जोर उसके अस्वल्प भारतीय समाज में यहाँ वहाँ तनाव और मध्य उत्पन्न पा रहा है। आदिवासी सभ्यता में जोर आदिवासी सभ्यता से उत्पन्न इन समस्याओं का यथास्थान जागे ध्यान किया गया है।

४

कलान, टोटम और टाटमवाद

गणजाति का समर्थन के लिए गण जाति के दार्शनिक संगठन का समर्थन आवश्यक है। गणजाति संगठन की निम्नतम इकाई परिवार है। स्थानीय यत्न समूह (Local Group) कई परिवारों से मिलकर बनता है किंतु वह ग्राम नहीं होता है। परिवार का सम्बंध एक जोर, स्थानीय समूह जोर गाँव से होता है जोर दूसरी बार वग से होता है। वग में वह व्यक्ति आता है जो एक निश्चित पूजन की मतामता होता है। वही वही वग में वडा सम्बंध समझ पाया जाता है (जैसे आत्मा), जिसके सदस्य अपने का एक कल्पित पूजन की मतामता मानते हैं। कई वंश और भाला से मिलकर वग बनती है जिसके सदस्य अपने का एक कल्पित पूजन का मतामता मानने के कारण परस्पर रक्त सम्बंधी मानते हैं। एक गणजाति वैसे ही कलान (Clans) में विभक्त रहती है जब एक जाति गाँव में, कलान को वग ही गोत्र नहीं कहा जा सकता जब जानि को गणजाति कहा जा सकता। वग जाति और गोत्र हिंदू सामाजिक संगठन के

आधार है जबकि गणजाति और बला आदिवासी सामाजिक संगठन हैं। क्लान परिवार का एक विस्तृत रूप है किंतु, क्लान का परिवार नहीं माना जा सकता क्योंकि, क्लान में सदस्य एक ही घृह में नहीं रहते हैं।

गण का नामकरण वदिक ऋषियों के आधार पर किया गया है जबकि क्लान का नाम पशुओं पक्षी और पौधों के आधार पर किया जाता है। जिस पशु या पौधे के नाम पर क्लान का नामकरण किया जाता है उस मानवशास्त्र में टोटम का सना दी गई है। टोटमवाद (Totemism) आदिवासी समाज की एक विशिष्टता है जिसका आगे वर्णन किया जाएगा। यहाँ इतना कहना पर्याप्त है कि गणजाति साधारणतया क्लान (Clans) में विभक्त रहती है और एक क्लान के सदस्य अपने समूह का नामकरण किसी पशु या पौधे के नाम पर करते, उसके और अपने बीच में रहस्यमय सम्बन्ध मानते हुए, अपने का एक ही पूज्य की सतान मानते हैं और इस भावना के कारण एक बहिर्विवाही समूह का रूप ग्रहण करते हैं। क्लान, इस प्रकार, गणजाति की अतिबिवाही समूह का एक बहिर्विवाही उपसमूह है। क्लान स्वतन्त्र सम्बन्ध के सिद्धांत पर आधारित है यद्यपि स्वतन्त्र सम्बन्ध की धारणा केवल क्लानामात्र होती है। क्लान की सदस्यता सामाजिक वंशानुसूल (Social Heredity) के सिद्धांत पर पूर्वनिर्धारित रहती है। क्लान की सदस्यता, व्यक्ति की इच्छा पर नहीं निर्भर रहती है यद्यपि, एक क्लान का सदस्य, यदि वह चाहे तो दूसरे क्लान का सदस्यता ग्रहण कर सकता है। क्लान मातृसत्तात्मक भी होती है और पितृसत्तात्मक भी। क्लान के माध्यम से गणजाति की जनसंख्या क्लानों में विभाजित हो जाती है। क्लान-संगठन में निहित स्वतन्त्र सम्बन्ध की भावना के कारण क्लान का सामाजिक प्रभाव महत्वपूर्ण हो जाता है।

आदिवासी सामाजिक संगठन में क्लान संगठन प्रणाली के कई रूप मिलते हैं। कभी-कभी जमाकि टोडा गणजाति में है, गणजाति में क्लानों में विभक्त रहती है। ऐसा दगा में प्रत्येक क्लान का स्वायत्ती (Moieties) कहा जाता है। स्वायत्ती अग्रजी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है अर्धभाग। स्वायत्ती प्रणाली को दोहरा विभाजन (Dual Division) या दोहरा संगठन (Dual Organisation) कहते हैं। सामान्यतः स्वायत्ती बहिर्विवाही होती है किंतु, जमाकि टोडा दगा में है, इस नियम के अपवाद के रूप में, स्वायत्ती अतिबिवाही समूह के रूप में भी पायी जाती है। जिस गणजाति में कई क्लानों पायी जाती है, वहाँ एक स्वायत्ती कई क्लानों में मिल कर बनती है। फटरी (Phratry) प्रणाली क्लान-संगठन प्रणाली का दूसरा रूप है। जब एक गणजाति कई क्लानों में विभक्त होती है और सारी क्लानों का अधिक समूह में बंट जाता है तो प्रत्येक समूह को फटरी कहा जाता है। एक फटरी की क्लानों अपने में विशेष सम्बन्ध मानती हैं। स्वायत्ती प्रणाली विवाह का प्रभावित करती है किंतु फटरी नहीं।

आदिवासी सामाजिक संगठन में क्लान के कई सामाजिक काम (Social Functions) पाये गए हैं। एक क्लान के सदस्य एक दूसरे को सहायता और सुरक्षा प्रदान करते हैं। परिवार के बाद क्लान ही ऐसा संगठन है जो व्यक्ति के व्यवहार को नियमित करता है। गणजातीय समाज के नियमों की अवहेलना करने पर, व्यक्ति क्लान की सदस्यता से वंचित भी किया जा सकता है। वरान बहिर्विवाह (Clan Exogamy) का नियम क्लान संगठन की दृढ़ता का चिह्न है। वही वही वृषि तथा बागवानी की भूमि जमी सामूहिक सम्पत्ति क्लान के अधिकार में पायी जाती है। क्लान का मुखिया धार्मिक वृत्त में सामूहिक नतत्व करता है। एक गणजाति की क्लानों के सदस्यों या मुखियाओं में मिल कर गणजातीय परिषद (Tribal Council) संगठित होती है। अतः आदिवासी समाज में क्लान का राजनतिक महत्व भी है।

परिवार, स्थानीय समूह, ग्राम वंश और क्लान गणजाति के विभिन्न स्तर हैं, जिनमें गणजाति के राजनतिक पहलू का सामाजिक संगठन प्रभावित होता है। परिवार, वंश और क्लान रक्तसम्बन्ध के एकपक्षीय सिद्धांत पर आधारित हैं और ग्राम क्षेत्रीय समुदाय तथा स्थानीय समूह के हित के सिद्धांत पर। गणजातीय राजनतिक संगठन में क्लान का प्रमुख स्थान है और इस कारण गणजातीय राजनतिक संगठन में सविदावाणी सम्बन्धों की अपेक्षा, नातेदारी के संबंधों की अधिक प्रधानता है। किंतु गणजाति और क्लान दोनों क्षेत्रीय समूह भी हैं और, इसी कारण, गणजातीय राजनतिक सामाजिक संगठन में क्षत्र का भी प्रभाव पड़ता है। उदाहरणार्थ, उड़ीसा की खाड़ गणजाति अनेक बहिर्विवाही ग्राम इकाइयों (Village Units गोत्रिया) में बटी हुई है। कई गांवों में मिल कर, अलग अलग, छोटी बड़ी कई क्षेत्रीय इकाइयां बनती हैं और क्षेत्रीय इकाइयां अंततोगत्वा गणजाति इकाई में टिलीन हो जाती है। छाटा नागपुर और बिहार की मुण्डा गणजातियां में कई ग्रामों और क्लानों में मिल कर परहा या पीर संगठित होता है जो एक उपाध्यक्ष के अधीन होता है¹।

जो गणजाति जितनी बड़ी होती है, उसका आंतरिक संगठन उतना ही विस्तृत और जटिल होता है। मध्यप्रदेश के गाड़ इमका उदाहरण है। गाड़ा में पाई जाने वाली क्लानों का चार श्रेणियां में विभक्त किया गया है। पहली श्रेणी में व क्लानों आती हैं जो टोटेम पर आधारित हैं जैसे गाहू, टीरम (टीक या साल के पत्र पर आधारित), साह (लाहा) और निरगम (अग्नि) इत्यादि। सूत्रेदार मुजार (जिह्वा) वेठम (गांव का मुखिया) और लान चटिया (नमक चाटने वाला) इत्यादि नामों पर आधारित क्लानों विद्वेषित नामों पर आधारित हैं और दूसरी श्रेणी में आती हैं। महानदिया, जौनपुरिया सरनगनिया, सरगुजिया और रतनपुरिया इत्यादि क्लान स्थानवाची हैं और तामरी श्रेणी में आती हैं। गाड़िया तथा कदप

जस नामा पर आधारित क्लानों वैदिक ऋषियों क नाम पर आधारित हैं और गोंडों मे हि दू प्रभाव की प्रतीक हैं। गाडा मे तीन प्रकार क वग पाये जात ह जिनका डा० इद्रजीत सिंह न अभिजात्य (Aristocracy) रयत (Tenantry) और थमिक नामकरण किया है। अभिजात्य वग म राजगाड आत है जिनम मालगुजार, पटेल और अय सम्पतिधारी लाग है। रयत वग म व कृषक जात है जा भूमि क स्वामी नहीं केवल कृषक हैं। रयत वग क योग का धुरगाड कहा जाता है। राजगाड और धुरगाड एक ही सामाजिक पट्टभूमि स उठे ह। धुर का अर्थ है घूलि जिनका 'गणनामक' अर्थ सामाजिक म है और राज का लक्षणात्मक अर्थ ह जस्य जा राजतय मे सम्बन्धित हो। द्वितीय वग म परधान और घाया जैम गिन्धी समझा के गाड भी आत हैं। गाडा म परधाना का मूलत वही काम रहा है जा सामाजिक चारणा और भाटा का रहा है। खनिहर थमिक तीमरे वग म आत है¹।

टोटमवाद यह प्रथा है जिसक आधार पर आदिवासी समाज म, साधारणतया बगान का नाम किसी पद, पशु या पौधे क आधार पर रक्खा जाता है। टोटम और जिस किसी पद, पशु या पौधे क आधार पर बगान का नामकरण टोटमवाद किया जाता है उस टोटम कहत है¹। किन्तु, क्लान का किसी पद पशु या पौधे पर नामकरण ही टोटमवाद (Totemism) नहीं है और न टोटमवाद सावभौमिक ही है। जहा गणजाति क एक अंग, बगान, का नामकरण किसी पद पशु या पौधे पर करत क कारण बगान क सम्पदा तथा नामकृत पद, पशु या पौधे क बीच विद्वान और प्रथाओं इमप्रकार आ जाती हैं कि पद, पशु या पौधे का सामाजिक जीवन म एक विषय स्थान बन जाता है और बगान क सम्पदा तथा टोटम क बीच म रहस्यात्मक सम्बन्ध उत्पन्न हो जात है, र्ण टोटमवाद का प्रमेय स्मित म आ जाता है। पशु, पौधा पशुधा या भौतिक पदार्थों के आधार पर बगानों का नामकरण और टोटमवाद (Totemism) अलग अलग वस्तुएँ हैं। टोटमवाद का प्रथम सम्बन्ध उन निश्चित विद्वान और प्रथाओं म है जा टोटम स सम्बन्धित हैं। इस दृष्टिकरण म, पशु पद और पौधा की पूजा का टोटमवाद के अंतर्गत नहीं रक्खा जा सकता।

1 मजूमदार, डी० एन० रसेज एण्ड कल्चर्स आफ इण्डिया पृष्ठ १७७

2 सवप्रथम जे० लंग नामक अप्रेजने, 1701 में उत्तरी अमरीका क रेड इण्डियनों में इस प्रमेय का अवलोकन करके इमकी ओर ध्यान आकषित किया था। तब से टोटमिज्म का अवलोकन मसारा क अय भागा में किया गया है। आस्ट्रेलिया के आदिवासियों में टोटमिज्म का स्थापक प्रभाव ह। पद अमरीका की कुछ भागों उत्तरी अमरीका की कुछ गणजातियों और इण्डो अमरीका की दो गणजातियों में पाया जाता है। मानवशास्त्री इसे आदिवासी समाज की एक महत्वपूर्ण सददा मानत ह।

टोटमवाद को स्पष्ट रूप से समझने के लिए, कई बातों पर ध्यान देना आवश्यक है। टोटम के आधार पर क्लान का नामकरण सांख्यिक नहीं है। ऐसे उदाहरण भी पाए जाते हैं जहाँ क्लानों का नाम टोटम पर आधारित नहीं रहता है। मसाल के जिन जिन आदिवासी क्षेत्रों में टोटमवाद पाया जाता है यदि वहाँ में टोटमवाद का तुलनात्मक अध्ययन किया जाय तो यह स्पष्ट होता है कि टोटमवाद के अंतर्गत कई प्रकार के व विविध सामाजिक सम्बन्ध आते हैं जो एक समाज या उसका एक जग और टोटम के बीच स्थापित हो गए हैं। यूयाक के रेड इण्डियनों में, टोटमवाद का बंधन इतना ही महत्व है कि क्लानों का नामकरण टोटम के आधार पर मिलता है। अमरीका के उत्तरी पश्चिमी समुद्र तट के प्रदेश में पाए जाने वाले हैवा आदिवासियों में टोटम क्लान का प्रतीक माना जाता है। अतः उनमें टोटम का शरीर पर गुदवाने कपड़ा पर छपवाने या अन्य वस्तुओं पर खींचने या चित्रित करने की प्रथा है। होपी रेड इण्डियनों में टोटम मनुष्यों, जानवरों, पौधों, भौतिक पदार्थों और मानवनिर्मित उपकरणों (Artifacts) के वर्गीकरण का एक माध्यम है। मध्य आस्ट्रेलिया के निवासी, अर्हता आदिवासियों में, टोटमवाद एक प्रकार की पूजा पद्धति है जिसमें घनत्व प्रभार के रूप (Rituals) और कर्मकाण्ड (Rites) आते हैं। अर्हता पितृसत्तात्मक परिवार एक निश्चित क्षेत्र में फैला रहता है और इस क्षेत्र में कई पवित्रस्थान या टोटम केंद्र होते हैं—जहाँ जैसा कि अर्हता लोगों का विश्वास है पौराणिक पूर्वजों (Mythological Ancestors) की मृत्यु होने से उनकी आत्मा का वास रहता है। टोटम केंद्र में जो पेड़ या जानवर पाए जाते हैं अर्हता विश्वासों के अनुसार उनका सम्बन्ध पूर्वजों से है और चूँकि जसा कि अर्हता लोगों का विश्वास है, पूर्वजों की आत्मा के ही द्वारा दिव्यों का गर्भाधान होता है, टोटम केंद्र से सम्बन्धित पेड़ और पशुओं का उस समूह के सदस्यों से विनाय सम्बन्ध होता है जो टोटम केंद्रों के अधिकारी होते हैं। इस प्रकार आस्ट्रेलिया के अर्हताओं में टोटमवाद पूर्वज पूजा पद्धति का रूप ले लेता है। विभिन्न आदिवासी क्षेत्रों में, इस प्रकार टोटमवाद के अलग अलग रूप और विनियमनाएँ हैं।

भारतीय टोटमवादों की विशेषताओं का मजूमदार ने इस प्रकार उल्लेख किया है टोटम पशु को मारने का निषेध है। जब टोटम पशु की मृत्यु होती है तो उसकी वसे ही अत्यधिक किया जाता है जैसी कि किसी क्लान के सदस्य की की जाती है। विनियम अवसरों पर, टोटम पशु की खाल का पहनने टोटम को शरीर पर गुदवाने या टोटम चित्र का क्लान का निशान या प्रतीक मानने की प्रथा मिलती है। यदि टोटम पशु भयानक होता है तो उसको प्रसन्न रखने के लिये इस दृष्टिकोण से, पूजा की जाती है कि वह अपनी क्लान के सदस्यों पर प्रसन्न रहे और उनका नुकसान न पहुँचाय। यदि टोटम पशु या पौधा खाद्य है तो उस बंधन विशेष आनुष्ठानिक अवसरों पर ही धरना जाता है। भारत के आदिवासियों में यह विश्वास पाया जाता

है कि टाटम अपनी कला के सदस्यों का सरम्भ है। टाटम से भावी आणकाओं की सूचना भी हो सकती है जो उनमें रक्षा भी हो सकती है। इसप्रकार, टाटम के साथ अनन्य धार्मिक भावनाएँ निषेध और प्रतीक लिपट्टे हुए हैं और चूंकि एक टाटम समूह के सदस्य अपने का रक्त-सम्बन्धी मानते हैं वहिद्विवाह टाटम समूह की एक आवश्यक विनियम बन जाती है।

भारत में टाटमवाद का प्रसार आदिवासियों से लेकर हिन्दू समाज की निम्नस्तरीय जातियाँ तक है। सघाला में लगभग सौ से अधिक जनजातें हैं जिनका नामकरण पौसा, पणुओ और पार्थिव पदार्थों के आधार पर किया गया है। ता गण-जाति में पचाम से अधिक टाटमवादी जनजातें हैं। मुण्डाजा में चौसठ से अधिक टाटमवादी बहिद्विवादी जनजातें हैं। भीमा की चौबीस जनजातों में अधिकतर टाटमवादी हैं किन्तु हिन्दू प्रभावा के कारण, कुछ मानवादी अर्थात् बहिद्विवादी नामों पर आधारित मिलती हैं। छोटा नागपुर के निवासी खरिया आदिवासियों का एक समूह घेलकी खरिया आठ टाटम जनजातों में विभक्त है। इसी प्रकार मध्यप्रदेश और राजस्थान के गाँव तथा बम्बई प्रांत के कटकांगी भी टाटमवादी जनजातों में विभक्त हैं। जहाँ गणजाति फ्रैट्रिय (Phratries) में विभक्त है, वहाँ फ्रैट्रिय बहिद्विवाही समूह है और फ्रैट्रिय के अंतर्गत कलात्मक बहिद्विवाही समूह। बंगाल के बाँकुरा जिले के दाउरी जा एत अनमूर्च्छित जाति हैं माल, धाल, सहायिया और 'मान' नामक चार फ्रैट्रिया में बंट है और इनमें से प्रत्येक फ्रैट्रिय पाँच से लेकर बीस बहिद्विवाही जनजातों में विभक्त है। फ्रैट्रियों के नाम म्यानवादी हैं जम माल मालभूमि के, धाल धालभूमि के और मान मानभूमि के निवासी हैं। उड़ीसा की बुरमी कुम्हार और भूमिया जातियों के निवासी भी साँप, मियार और कटू जम टोटेमों पर आधारित समूहों में विभक्त हैं। भारत में पाए जाते टाटमों में कुछ ता म्यानवादी हैं लेकिन अधिकतर पण पडा और पौधा पर आधारित हैं। जिन पण, पट और पौधा को टाटम माना गया है वे सामान्यतः उन समूहों के प्राकृतिक नामों के अन्तर्गत हैं, जो उन्हें टाटम मानता है और उनमें से किसी न किसी रूप में उपयोगी हैं।

हिन्दुओं में जनक तेसी प्रथाएँ पायी गई हैं जिनकी उत्पत्ति भारत के आदिवासियों की टाटमवादी प्रथाओं से मानी जा सकती है किन्तु वे प्रथाएँ टाटमवाद के अंतर्गत नहीं आती हैं। हिन्दू गाय को पवित्र मानकर उसकी पूजा करते हैं। बाले कुत्ते का भी भारत क्योंकि बाँकुरा कुत्ता भैरव की सवारी है। बिल्ली का मारा अशुभ है और बिल्ली तथा गाय का मारने बाँकुरा का प्रायश्चित्त करना पड़ता है। नागरचर्मों के पंख पर नाग की पूजा की जाती है। गधे का गालादही का बहान माना जाता है और जिस घर में चैबक का प्रवास होता है उस घर में गधे का निगल

हुए चने की दाल (दाल) खिलायी जाती है। ऐसा माना जाता है कि यदि गधा चनों की भिगाई दाल खा उठा है तो चेचक से त्राण मिलेगा, बर्ना नहीं। व दर को हनुमान का रूप मानकर, उसके प्रति वही आदर का भाव रखा गया है जो कि हनुमान के प्रति वाञ्छित है। मजूमदार के अनुसार बंगाल के हिंदुओं में विली की पूजा करके नारिया की प्रजात गणित बढ़ाओ की प्रथा पाई गई है। नरसिंह देवता के रूप में बाघ की पूजा के प्रमाण मिलते हैं। बल शंकर की सवारी चूहा गरोरा की सवारी हाथा इद्र की सवारी भग्या यम की सवारी तथा उल्लू लक्ष्मी की सवारी होने के कारण, इन देवताओं के साथ, पूजनीय माने गए हैं। हिंदुओं में तुलसी के पीधे को पवित्र मानकर पूजनाय माना गया है। भारत के कुछ भागों में हिंदू नारिया वटवक्ष को दीर्घायु पति का प्रतीक मानकर, उसकी पूजा करती हैं। वीपल की पूजा इसलिए की जाती है कि वह अज्ञान का निवास स्थान है। अंधम में ब्याह के रीति रिवाजों में पलाश पूजन तथा मूसल जैसे पारिव्य पत्थरों की पूजा प्रथा पाई जाती है। किंतु ये प्रथाय टोटमवाद के अंतर्गत नहीं आती हैं क्योंकि इनसे सामाजिक संगठन का नियमन नहीं होता है। ये केवल घम और जादू के क्षेत्र में आती हैं जबकि टोटम जादू के भी क्षेत्र में आता है और सामाजिक संगठन के भी क्षेत्र में।

आदिवासी समाज में टोटमवाद क्या पाया जाता है? इस प्रश्न का सद्धातिक उत्तर एक विवाद का विषय रहा है। इसको स्पष्ट करने के लिये अनेक सिद्धांतों को प्रतिपादित किया गया है जिनमें से कोई भी सवमाय नहीं है। इसका कारण यह है कि टोटमवाद एक ऐसी सामाजिक संस्था है जिसके विभिन्न आदिवासी समाजों में, विभिन्न विचरित रूप पाये जाते हैं और जिनके स्पष्टीकरण का समाहार किसी एक सिद्धांत में नहीं हो पाया है। भारतीय टोटमवाद को स्पष्ट करने के लिये जो सद्धातिक दृष्टिकोण अपनाया गया है उसका स्पष्ट करने के पहले विभिन्न सिद्धांतों का एक संक्षिप्त पर्यवेक्षण आवश्यक है।

हैडन ने यह प्रतिपादित किया है कि, मूलतः, टोटम का सम्बन्ध जाल-सामग्री की प्राप्ति में है। प्रारम्भिक काल में एक आदिवासी समूह जिस किसी पेड़ या पशु पर निर्भर था बालांतर में उसने उसी पेड़ या पीधे के आधार पर विनिमय के द्वारा अग्रे में व्यापार प्रारम्भ किया, जिसके कारण उसने उस पेड़ या पशु का सवधन प्रारम्भ किया और उसी के आधार पर उसका नाम पड़ा। इससे यह नहीं स्पष्ट होता कि अन्ततः पशु या पेड़ का टोटम क्या बनाया गया। जेम्स फ्रेजर ने एक के बाद एक, कई सिद्धांत प्रतिपादित किये हैं। उनका एक सिद्धांत यह है कि विभिन्न टोटम समूह एक प्रकार के उत्पादन उपभोग (Production Consumption) कलब हैं। अर्थात् एक टोटम समूह अपने टोटम का इसीलिय सवधन करता है ताकि दूसरा उसका उपभोग कर सके और वह दूसरे द्वारा सवधित टोटम पशु या वनस्पति का उपभोग कर सके। पर, आदिवासी समाज इतना नियोजित नहीं है जितनी कि

इस सिद्धांत में कल्पना की गई है। आस्ट्रेलिया के आदिवासियों में आत्मा का बाहर अस्तित्व में विश्वास है। अर्थात् आत्मा शरीर के अंदर भी रह सकती है और बाहर भी। टोटम में फ्रेजर के अनुसार आदिवासी ने बाह्य आत्मा का स्थापित करने का विचार इसलिए अपनाया ताकि उसकी सुरक्षा की भावना दृढ़तर हो सके। फ्रेजर का तीसरा सिद्धांत गर्भाधारण का सिद्धांत (Conception Theory of Totemism) के नाम से प्रसिद्ध है। इस सिद्धांत के अनुसार आदिवासी इस तथ्य से अनभिज्ञ है कि नर नारी का संयोग से गर्भाधारण होता है। इस कारण, वह टोटम का गर्भाधारण का कारण मानकर उस वलान का पूज्य मानता है। फ्रेजर की यह मान्यता निराधार है कि आदिवासी को इस बात का पता नहीं है कि नर नारी का संयोग से गर्भाधारण होता है। सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि आखिर कोई पेट या पशु या पौधा टोटम क्यों चुना जाता है ?

हार्पकिंस ने यह कहा है कि जिस आदिवासी समूह की खाद्यपूर्ति का जो पशु या पेट साधन रहा है वही उस समूह का टोटम हो गया और उसके प्रति आदिवासी का समादर का भाव जगा। जैसे टाडाआ में भस्म का प्रति आदर का भाव विकसित हो गया है। टाइलर के अनुसार, आदिवासी का यह विश्वास है कि मरने के बाद आत्मा किसी न किसी पशु या पेट में निवास करती है और जिस किसी पेट या पशु में आदिवासी ने आत्मा का निवास माना, उसी का टोटम मानकर, उसकी रक्षा करना प्रारम्भ कर दिया। टाइलर के अनुसार, टोटमवाद पूज्य-पूजा का एक अंग है। दुरखेम ने अपने समष्टिवादी समाजशास्त्रीय सिद्धांत के अनुसार टोटमको सामूहिक मन की एक अभिव्यक्ति माना है। अमरीकी मानवशास्त्री बाआज और स्वाटन इत्यादि ने यह माना है कि टोटमवाद, आदिवासी समाज में, व्यक्ति तथा पशु या पेट के सम्बंध का सामाजिक विस्तार है। फ्रायड ने अपने ओडिपस कम्प्लेक्स (Oedipus Complex)¹ के सिद्धांत के आधार पर, टोटमवाद का स्पष्ट करने का प्रयास किया है। टोटम फ्रायड के अनुसार, पिता की सामाजिक भावना का प्रतीक

- 1 इस सिद्धांत का नामकरण यूनान की एक पौराणिक कथा के आधार पर किया गया है। इस कथा में ओडिपस नामक एक व्यक्ति अपने पिता का मार कर अपनी सगी माता से विवाह करता है। फ्रायड के अनुसार, माता की ओर कामुक आकर्षण प्रत्येक व्यक्ति में पाया जाता है और प्रत्येक व्यक्ति ओडिपस की भांति ही व्यवहार करना चाहता है किंतु यह व्यवहार, सामाजिक नियमों के कारण, वास्तविक रूप नहीं ले पाता है जिसके कारण, व्यक्ति के व्यक्तित्व-गठन में जो मानसिक प्रतिक्रिया बनती है, उसे फ्रायड ने ओडिपस कम्प्लेक्स की संज्ञा दी है। पिता की मारकर माता से विवाह करने की कालसा फ्रायड के ओडिपस कम्प्लेक्स सिद्धांत का मूलधार है।

हुए चने की दोल (दाल) खिलायी जाती हैं। ऐसा माना जाता है कि यदि गधा चनों की भिगाई दाल खा लता है तो चेचक से ग्रस्त मिलेगा, वर्ना नही। व दर को हनुमान का रूप मानकर, उसके प्रति वही जादर का भाव रखता गया है जो कि हनुमान के प्रति वाञ्छित है। मजूमदार के अनुसार बंगाल के हिन्दुओं में विल्ली की पूजा करने नारिया की प्रजापति गणित बढा की प्रथा पाई गई है। नरसिंह दत्ता के रूप में बाघ की पूजा के प्रमाण मिलते हैं। बेल दार की सवारी चूहा गणेश की सवारी हाथी इन्द्रकी सवारी भमा यम की सवारी तथा उल्लू लक्ष्मी की सवारी हाने के कारण, इन दत्ता के साथ, पूजनीय माने गए हैं। हिन्दुओं में तुलसी के पीधे को पवित्र मानकर पूजनीय माना गया है। भारत के कुछ भागों में हिन्दू नारिया दत्तवक्ष को दीर्घाय पति का प्रतीक मानकर, उसकी पूजा करती हैं। पीपल की पूजा इसलिये की जाती है कि वह ब्रह्मराक्षस का निवास स्थान है। अथ म व्याह के रीति रिवाजों में पलाश पूजन तथा मूसल जैसे पार्थिव पदार्थों की पूजा प्रथा पाई जाती है। किन्तु ये प्रथाय टोटेमवाद के अंतर्गत नहीं आती हैं क्योंकि इनसे सामाजिक संगठन का नियमन नहीं होता है। ये केवल धर्म और जातु के धर्म में जाती हैं जबकि टोटेम जातु के भी क्षेत्र में आता है और सामाजिक संगठन के भी क्षेत्र में।

आदिवासी समाज में टोटेमवाद क्यों पाया जाता है? इस प्रश्न का सद्धातिक उत्तर एक विवाद का विषय रहा है। इसको स्पष्ट करने के लिये अनेक सिद्धांतों को प्रतिपादित किया गया है जिनमें से कोई भी सवमाय नहीं है। इसका कारण यह है कि टोटेमवाद एक ऐसी सामाजिक संस्था है जिसके विभिन्न जातिवादी समाजों में विभिन्न विचरित रूप पाये जाते हैं जोर जिनके स्पष्टीकरण का समाहार किसी एक सिद्धांत में नहीं हो पाया है। भारतीय टोटेमवाद को स्पष्ट करने के लिये जो सद्धातिक दृष्टिकोण अपनाया गया है उसको स्पष्ट करने के पहले, विभिन्न सिद्धांतों का एक संक्षिप्त पर्यवेक्षण आवश्यक है।

हडन ने यह प्रतिपादित किया है कि, मूलतः, टोटेम का सम्बन्ध खाद्य सामग्री की प्राप्ति से है। प्रारम्भिक काल में, एक आदिवासी समूह जिस किसी पेड़ या पशु पर निर्भर था, कालांतर में उसी पेड़ या पौधे के आधार पर विनिमय के द्वारा अपना स व्यापार प्रारम्भ किया जिसके कारण उसने उस पेड़ या पशु का सवधन प्रारम्भ किया और उसी के आधार पर उसका नाम पड़ा। इससे यह नहीं स्पष्ट होता कि अखाद्य पशु या पेड़ का टोटेम क्या बनाया गया। जेम्स फ्रेजर ने एक के बाद एक, कई सिद्धांत प्रतिपादित किये हैं। उनका एक सिद्धांत यह है कि विभिन्न टोटेम-समूह एक प्रकार के उत्पादन उपभोग (Production Consumption) चल्ते हैं। अर्थात् एक टोटेम समूह अपने टोटेम का इसीलिये सवधन करता है ताकि दूसरा उसका उपभोग कर सके और वह दूसरे द्वारा सवर्धित टोटेम पशु या वनस्पति का उपभोग कर सके। पर आदिवासी समाज इतना नियोजित नहीं है जितनी कि

इस सिद्धांत में कल्पना की गई है। आस्ट्रेलिया के आदिवासियों में आत्मा के दोहरे अस्तित्व में विश्वास है। अर्थात्, आत्मा शरीर के अंदर भी रह सकता है और बाहर भी। टाटेम में, फ्रेजर के अनुसार आदिवासी न बाह्य आत्मा का स्थापित करने का विचार इसलिए अपनाया ताकि उसकी सुरक्षा की भावना दृढ़तर हो सके। फ्रेजर का सीसरा सिद्धांत गर्भाधारण के सिद्धांत (Conception Theory of Totemism) के नाम से प्रसिद्ध है। इस सिद्धांत के अनुसार, आदिवासी इस तथ्य से अनभिज्ञ है कि नर नारी के संयोग से गर्भाधारण होता है। इस कारण वह टाटेम को गर्भाधारण का कारण मानकर उसे क्लान का पूज्य मानता है। फ्रेजर की यह मान्यता निराधार है कि आदिवासी को इस बात का पता नहीं है कि नर नारी के संयोग से गर्भाधारण होता है। सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि आखिर कोई पेड़ या पशु या पौधा टोटम क्या चुना जाता है ?

हापकिंसन ने यह कहा है कि जिस आदिवासी समूह की साधुपूर्ति का जो पशु या पेड़ साधन रहा है वही उस समूह का टाटेम हो गया और उसके प्रति आदिवासी का समादर का भाव जगा। उसे टोडाओ में भक्त के प्रति आदर का भाव विकसित हो गया है। टाइलर के अनुसार, आदिवासी का यह विश्वास है कि मरने के बाद आत्मा किसी न किसी पशु या पक्ष में निवास करती है और जिसे किसी पेड़ या पशु में आदिवासी ने आत्मा का निवास माना, उसी का टाटेम मानकर, उसकी रक्षा करना प्रारम्भ कर दिया। टाइलर के अनुसार टाटेमवाद पूज्य-पूजा का एक अंग है। दुरखेम ने, अपने ममण्टिवादी समाजशास्त्रीय सिद्धांत के अनुसार, टाटेम को सामूहिक मन की एक अभिव्यक्ति माना है। अमरीकी मानवशास्त्री बाजाज और स्वाटन इत्यादि ने यह माना है कि टोटमवाद, आदिवासी समाज में, व्यक्ति तथा पशु या पेड़ के सम्बन्ध का सामाजिक विस्तार है। फ्रायड ने अपने ओडिपस कम्प्लेक्स (Oedipus Complex) के सिद्धांत के आधार पर, टाटेमवाद का स्पष्ट करने का प्रयास किया है। टाटेम, फ्रायड के अनुसार, पिता की सामाजिक आदृति का प्रतीक

1. इस सिद्धांत का नामकरण यूनान की एक पौराणिक कथा के आधार पर किया गया है। इस कथा में ओडिपस नामक एक व्यक्ति अपने पिता की मार पर अपनी सगे माता से विवाह करता है। फ्रायड के अनुसार, माता का मार कामुक आकर्षण प्रत्येक व्यक्ति में पाया जाता है और प्रत्येक व्यक्ति ओडिपस की भांति ही व्यवहार करना चाहता है किंतु, यह व्यवहार, सामाजिक नियमों के कारण, वास्तविक रूप नहीं ले पाता है जिसके कारण, व्यक्ति के व्यक्तित्व गठन में जो मानसिक घर्षण घटती है उस फ्रायड ने ओडिपस कम्प्लेक्स की संज्ञा दी है। पिता की मारकर माता से विवाह करने की खासता फ्रायड के ओडिपस कम्प्लेक्स सिद्धान्त का मूलधार है।

है, जिसके विनाश पर सामाजिक मास्कुतिक नियेध लग जाते हैं। निषेधा का अप्रजो मे टबू कहा जाता है। टाटम के साथ जा टू (Taboo) लग रहन हैं उनक कारण टोटेम जोर टबू फायड क अनुगार ओडिपस कम्पलक्स का सामूहिक प्रतीक बन जात है। किंतु जमा कि फायड के आलापका न कहा है यह मानना कि ओडिपस कम्पलक्स हर समाज म पाया जाता है, आधारहीन है।

गाडन राइजर नामक अमरीकी मानवशास्त्री न यह प्रतिपादित किया ह कि टोटेमवाद एक सामाजिक धार्मिक (Socio Religious) प्रमेय है ओर टाटमवाद को समजन के लिए उसक सामाजिक धार्मिक प ओ पर एक साथ ध्यान रना आवश्यक है। भारतीय टाटमवाद को स्पष्ट करन क लिए रिसल न यह प्रतिपादित किया था कि भारत म, टोटेमवाद के धार्मिक आधारी का ता लोप हा गया है किंतु सामाजिक आगार विद्यमान ह। रिसल न टाटम समूह के बहिर्विवाही आगार का टाटेमवाद का कारक माना है। किंतु, मजूमदार क अनुगार टोटेम और बहिर्विवाह का साथ साथ पाया जाना इस बात का प्रमाण नहीं है कि टाटेमवाद की उत्पत्ति बहिर्विवाह क ही कारण हुई ह। मजूमदार क अनुसार, दा टाटम समूहा मे अतिविवाह के उदाहरण पाये गए है। एक टाटेम समूह जोर क्लान क सदस्य, जनसख्या बढन क कारण, जब दो समूहा म बट हैं तो व अतिविवाही भा हात हुए पाय गये है। इसके अनक उदाहरण, मजूमदार ने अपनी पुस्तक रसेज एण्ड कल्चस म संकलित किय हैं। क्लान का बहिर्विवाही रूप, क्लान क सदस्यो म कल्पित रक्त सम्बन्धा की धारणा के कारण आता है न कि टोटेमवाद के कारण। टाटेमवाद और बहिर्विवाही, क्लान के साथ, अलग अलग कारणो सं सम्बन्धित हा गए हैं। हटन के अनुसार भारतीय टाटेमवाद की उत्पत्ति, मूलत, प्रजनन पूजापद्धति (Fertility Cult) स हुई है यद्यपि, कालांतर म, उसके साथ अन्य प्रथाएँ जुड गई है। आदिवासियो मे, टाटेमवाद से सम्बन्धित, जा विचार या कथाएँ मिलती हैं उनम इस मत की पुष्टि गही हाती है।

जुवाग गणजाति के टाटेमो क वार म लिखत हुए एविन न यह मत प्रतिपादित किया है कि जुवाग लोगो मे टोटेमवाद ऐतिहासिक घटनाओ और अनुकरण क कारण जाया हुआ जान पडता है। आकस्मिक या ऐतिहासिक घटना का मिद्धांतर एक काल्पनिक उदाहरण से स्पष्ट किया जा सकता है। मान लो, क्वूतर की हत्या करने के कारण, कोई व्यक्ति अंधा हो जाता है और इसकारण वह क्वूतर म डरकर उसकी पूजा आरम्भ कर देता है और उसके परिवार म यह परम्परा चल पडती है तो एक टाटेम समूह उत्पन्न हो जाता है। मुण्डा समूह क तमरिया आदिवासियो म पाण्डुभिग यज्ञन क टाटेम को स्पष्ट करन क लिमे जो कथा प्रचलित है उसस इस तथ्य की पुष्टि हाता है। पाण्डुभिग मुण्डा भाषा का शब्द है जिमना जय ह नाग। एक तमरिया स्त्री अपने बच्च का घकला छाडकर, पानी भरते गइ और जब लौटकर आई तब उमन देखा कि उसके साते हुए बच्च क ऊपर अपना फन फलामे एक नाग

बैठा हुआ है। स्त्री को देखकर नाग एक झोर को चला गया। उस बच्चे की सन्तानों और उनकी पीढ़ियाँ स मिलकर पाण्डुभिग या नागगुप्ती बलान का सगठन हुआ। इस बलान के लाग न तो साप का मारत हैं और न उसे नुकसान पहुंचात हैं और यह विश्वास करने हैं कि नाग उनका मरक्षक है। इस अर्थ अनक आधार का प्रमाणों के आधार पर, मजूमदार ने लिखा है कि भारतीय टोटमवाद की आत्मा न तो धार्मिक अभिवृत्तियाँ न है न टोटम को देवता तुल्य मानन बा न विचारों में और न साधु जानवरों तथा वनस्पतियों के सवधन की सामाजिक या जातिक आवश्यकता में। टोटमवाद का आत्मा समाधी है सामाजिक व्यवस्था का उम मामाग्य समायाज्य में जिसके द्वारा आदिवासी मानव और उनका पर्यावरण में सहानुभूति सम्बन्ध (Sympathetic Relations) स्थापित हो सकें, क्योंकि उस सम्बन्ध का आदिवासी मानव की अपने प्राकृतिकता के साथ समायोजन करने की आवश्यकता पूरी होती है और उससे उन अवस्थाओं में मानसिक सुरक्षा मिलता है जहाँ मानव सुरक्षा का कोई भी साधन उपलब्ध नहीं होता है।

पिछले बचन में बलान सगठन की अनेक विशेषताएँ स्पष्ट हाता हैं। एक, बलान अंतर्विवाही समूह, गणजाति, का एक भाग है। दो, साधारणतया, निष्कथ बलान बहिर्विवाही समूह हाता है। तीन बलान कापनिक रक्त-सम्बन्ध (Supposed Consanguineous Relations) पर आधारित होता है और, इस कारण, बलान सगठन और बहिर्विवाही एक में मिल जात हैं। चार, वंश (Lineage) भी रक्त सम्बन्ध पर आधारित हाता है किन्तु, वंश में रक्त सम्बन्ध कापनिक न होकर वास्तविक हाता हैं। पांच बलान का एक भाग हाता है। इसकारण वंश की अपेक्षा बलान का सामाजिक धर्म अधिक विस्तृत होता है। छ, साधारणतया पौराणिक पुरुष, पेट, पीछे और पशु बलान का पूर्वज माने जात हैं। सात अधिकतर बलान और टोटमवाद साथ-साथ पाय जात हैं, यद्यपि टोटमवाद को बलान की सावभौमिक विशेषता नहीं माना जा सकता है। आठ, बहुधा बलान का सदस्य एक मर्यादा क्षेत्र के निवासी हाता हैं। नौ, बलान मानसतात्मक और मातृवर्गी भी हाता है तथा पितृसत्तात्मक और पितृवर्गी भी। दस बलान और वंश रक्त-सम्बन्धों और समान पूर्वज की धारणा पर आधारित है किन्तु वे परिवार नहीं हैं क्योंकि बलान और वंश का सदस्य, परिवार का सदस्य की भाँति, एक ही गृह में नहीं रहत हैं। अतः, बलान परिवार नहीं है।

पहले के मानवशास्त्रियों ने टोटमवाद और सम्मिलित निवास-स्थान (Common Residence) का बलान की आधारभूत विशेषताएँ माना है। किन्तु, टोटमवाद सावभौमिक नहीं है। अफ्रीकी आदिवासी सगठन में बलान है किन्तु टोटमवाद नहीं। सम्मिलित निवास-स्थान नहीं करने सामूहिक पूर्वज का आधार पर, एक बलान का सदस्य सगठित रहते हैं। एक बलान के सदस्य एक क्षेत्र विषय में फँस

रहते हैं जो आदिवासी क्षेत्रों में बहुधा सस्पर्शी होता है। क्षेत्रीय सस्पर्शिता और सम्मिलित निवासस्थान अलग अलग हैं। पहले के उद्विकासवादी मानवशास्त्रियों ने, यह भी मायता प्रतिपादित की है कि क्लान संगठन की भ्रवतारणा, परिवार संगठन से पहले हुई है और, क्लान-संगठनों में मातृवशी क्लान संगठन प्राचीनतम है। इसका यह अर्थ निकलता है कि पितृवशी क्लान संगठन तथा परिवार मानव विकास प्रक्रिया में बाद में विकास हैं और मातृवशी क्लान संगठन पहले के। उद्विकासवादी मानव शास्त्रियों के अनुसार, पहले मातृवशी क्लान का विकास हुआ फिर पितृवशी क्लान का और फिर परिवार का। मातृवशी क्लान की उत्पत्ति, झुंड-संगठन (Horde) से हुई है, जिसमें एक झुंड के सभी पुरुष सभी स्त्रियाँ सहवास करते थे जिसके कारण, प्रत्येक व्यक्ति को अपने पिता की अपेक्षा माता का ही अधिक निश्चित ज्ञान रहता था। यह अवस्था साम्यवादी अवस्था थी जिसमें, वैयक्तिक सम्पत्ति न होने के कारण, मातृवशीयता प्रधान थी।

क्लान-संगठन की उत्पत्ति के बारे में उद्विकासवादी मानवशास्त्रियों के विचार आज काल्पनिक मान जाते हैं क्योंकि विभिन्न क्षेत्रों के अध्ययनों से जो तथ्य प्रकाश में आये हैं, उनमें उद्विकासी सिद्धांत की पुष्टि नहीं होती है। उदाहरणार्थ केरल की बादर गणजाति तथा अरुमान द्वीप के आदिवासियों में क्लान संगठन नहीं पाया जाता है यद्यपि उनका विकास स्तर याथावर अवस्था में ही है। उनमें परिवार-संगठन का पाया जाना इस बात का प्रमाण है कि क्लान संगठन परिवार संगठन से पहले का नहीं है। क्लान और परिवार, जहाँ क्लान संगठन है साथ साथ पाये गये हैं। आसाम के खासियों में, सम्पत्ति संस्था पाई जाती है किंतु, उनमें पाई जाने वाली मातृसत्तात्मकता पितृसत्तात्मकता में नहीं बदली है। मातृसत्तात्मक तथा पितृसत्तात्मक क्लानों की उत्पत्ति, अलग अलग स्थानों में साथ साथ हुई है ऐसा विद्वानों का मत है। वास्तव में, परिवार को जिन आवश्यकताओं ने जन्म दिया है, वे उन आवश्यकताओं से भिन्न हैं जिन्होंने क्लान संगठन को जन्म दिया है। परिवार का आधार है प्रजनन सत्ता पालन तथा आर्थिक जीवन को गृह के स्तर पर व्यवस्थित करने की आवश्यकताएँ। परिवार का आधार है विवाह, जो दो भिन्न परिवारों तथा समूहों के विपरीतलों व्यक्तिओं के बीच में होता है। परिवार द्विपक्षीय (Bilateral) सम्बन्धों से मिलकर संगठित होता है यद्यपि, साधारणतया, इसमें विवाह पर आधारित सम्बन्धों का द्वितीयक स्थान मिलता है। परिवार में निहित एकपक्षीय रक्त सम्बन्धों का सिद्धांत, जहाँ परिवार से बड़े समूह के स्तर पर लागू किया गया है वहाँ वंश और क्लान जैसे संगठन पाये जाते हैं। वंश में रक्तसम्बन्ध वास्तविक हाते हैं जब कि क्लान में काल्पनिक रक्तसम्बन्धों के एकपक्षीय संगठन ने ही क्लान में, अर्द्धविवाह का जन्म दिया है। सामाजिक संगठन के दृष्टिकोण से परिवार वंश और क्लान का आधार है न कि क्लान और वंश परिवार के आधार हैं। परिवार,

गणजाति के विकास के सभी स्तर पर पाया जाता है जबकि कलान न तो प्राचीनतम विकास के स्तर पर पाई गई है और न आधुनिकतम विकास के स्तर पर। कलान का व्यापक संगठन प्राचीनतम और आधुनिकतम विकास अवस्थाओं के बीच की अवस्था म पाया जाता है। बिहार, उड़ीसा और मध्यप्रदेश की गणजातियों में पाया जान वाला कलान-संगठन, इसका उदाहरण माना जा सकता है।

५

परिवार विवाह और युवागृह

गणजाति के आंतरिक संगठन का विश्लेषण, इस प्रकार, आदिवासी परिवार-संगठन के विश्लेषण की धार ले आता है। विवाह परिवार का आधार परिवार है। इस कारण, परिवार के साथ-साथ, विवाह का विश्लेषण भी आवश्यक हो जाता है। आदिवासी समाज में परिवार और विवाह सख्त तथा विकास की सभी अवस्थाओं में पाये जाते हैं यद्यपि उनके रूप भिन्न भिन्न हैं। उदाहरणार्थ, एक ओर, पितृसत्तात्मक परिवार पाये जाते हैं जिनमें बग पित्त का नाम पर चलता है और पारिवारिक सम्पत्ति का उत्तराधिकार पिता से पुत्र को मिलता है तो, दूसरी ओर, माता और गारा जैसे आदिवासियों में मातृसत्तात्मक परिवार पाये जाते हैं, जिसमें पारिवारिक सम्पत्ति का उत्तराधिकार माता से पुत्री को मिलता है। पितृसत्तात्मक परिवारों में बग पित्त का नाम पर चलता है और परिवार का अध्यक्ष पिता होता है तो मातृसत्तात्मक परिवारों में बग माँ के नाम से चलता है तथा परिवार की अध्यक्षता माँ के पास होती है। जहाँ पितृसत्तात्मकता है वहाँ विवाह के बाद बच्चे अपने पति के घर जाकर रहते हैं और जहाँ मातृसत्तात्मकता है वहाँ, विवाह के बाद बच्चे अपने माँ के ही घर में रहते हैं। पितृसत्तात्मक परिवारों में बच्चे, एक ही पिता को सन्तानें और सन्तानों की सन्तानों की कई पीढ़ियाँ रहती हैं और इस प्रकार परिवार में विवाह के द्वारा आई हुई स्त्रियों का छोड़कर बाकी सभी स्त्रियाँ एक ही सम्बन्धी होती हैं। किन्तु मातृसत्तात्मक परिवारों में जहाँकि नापरा के मातृसत्तात्मक परिवारों में एक गतानी पहले पाया जाता था परिवार के सदस्य एक ही सम्बन्धी नहीं होते थे क्योंकि इन परिवारों में विवाह के बाद सख्तियों पति के घर नहीं जाती थी और परिवार के विवाहित पुरुषों की पत्नियाँ अपने पित्त के ही घर रहती थीं। दहरादून जिले के जोधमार बाजार परानों में कई गणे भाई, एक या एक से अधिक स्त्रियाँ में, सम्मिलित विवाह कर लते हैं और टांग गणजाति में गणे भाई या बाई भा दा या दा में अधिक व्यक्ति, सम्मिलित विवाह करके परिवार की स्थापना करते हैं। आदिवासी समाज में बिना किसी अवस्थाओं में, विवाह से पहले और विवाह के साथ-साथ, विवाह के अतिरिक्त यौन-

सम्बन्धों को मायता प्राप्त है। अफ्रीका और दक्षिणी अमरीका के आदिवासियों में, स्त्री का अतिथि और मित्र को यौन-तुष्टि के लिये देने की प्रथाओं की रिपोर्टें मिलती हैं। भारत की कुछ अपराधी गणजातियों में पत्नी का बंधन के रूप में रखने का उल्लेख सरदार मजूमदार ने किया है¹।

आदिवासी परिवार संगठन और उससे सम्बन्धित परम्पराओं के वैज्ञानिक का उन्विकासा मानवशास्त्रियां न बड़े ही अतिरजित ढंग से स्पष्ट उद्विकासवादी किया है। उन्विकासी मानवशास्त्रियों में अमरीका के सुई मादगन दष्टिकोण प्रमुख हैं जोर सबसे पहले उन्विके ही यह विचार रक्खा था कि परिवार का उदभव और विवास उस आदिवासी अवस्था में हुआ है जिसमें मूलतः न तो विवाह था और न परिवार। यह अवस्था साम्यवादी झुंड की अवस्था थी जिसमें नर नारी के यौन सम्बन्ध उन्मुख थे यहां तक कि भाई बहिन का विवाह होता था। आदिवासी समाज में पाई जाने वाली जिन प्रथाओं का इन्होंने प्रमाण माना, वे इस प्रकार हैं— अनेक त्योहार के अवसरों पर, पति-पत्नी के यौन सम्बन्धों में छूट मिलना, मित्रों की यौन तुष्टि के लिये पत्नी दे देना, दो व्यक्तियों में स्त्रियां का बदला जाना और पिता तथा मामा के लिये एक ही सम्बन्ध शब्द (Kinship Term) का प्रयोग करना। परिवार विकास की दूसरी अवस्था है समूह विवाह की अवस्था जिसमें पुत्रों का एक समूह स्त्रियों के एक समूह से विवाह करता था। बहुपतित्व इसी अवस्था में आता है। तीसरी अवस्था में विवाह तो एक पुरुष और एक स्त्री में होता था किन्तु उनके यौन सम्बन्ध निबंध थे। चौथी अवस्था में एक पुरुष कई स्त्रियों से विवाह करता था किन्तु स्त्रियों के यौन सम्बन्धों पर पुरुष (पति) का ही अधिकार रहता था। यह पितृसत्तात्मक बहुपत्नीत्व की अवस्था है। पाचवीं या आधुनिकतम अवस्था एकविवाही परिवार की है जिसमें एक पुरुष, एक समय में, एक ही स्त्री से विवाह करता है। इसी आधार पर, मादगन ने क्लान का परिवार का प्रारम्भिक रूप माना है और क्लान से ही परिवार की उत्पत्ति मानी है जिसकी, वास्तविक तथ्यों के आधार पर सैद्धांतिक पुष्टि नहीं की जा सकती है।

वेस्टर मार्क ने यह मत प्रतिपादित किया कि परिवार की उत्पत्ति के कारण है नर में पाई जाने वाली ईर्ष्या (Jealousy) तथा अधिकारात्मकता (Possessiveness) की भावनाओं और सम्पत्ति तथा सम्पत्ति भावना का विकास। परिवार की उत्पत्ति का कारण है नर न कि नारी। चार्ल्स डार्विन ने, पशु-मनुष्य में पाये जाने वाले उदाहरणों में परिवार की उत्पत्ति का स्पष्ट किया। उनके अनुसार, कई नर,

1. दक्षिण मजूमदार द्वारा कृत फारचू से आफ प्रिनिटिव ट्राइब्स में अपराधी गण जातियों पर लिखा अध्याय।

नारा के लिये सपप करत है किन्तु उनम विजय एक ही की हाता है। एक पुरुष के लिये एक पत्नी का व्यवस्था व द्वारा, इस मध्य का दूर करत की जब सामाजिक प्रथा बनी तभी परिवार की उत्पत्ति हुई। राबट त्रिप्लेट न इस तथ्य पर जा रिया है कि परिवार की उत्पत्ति पुण्य की ईर्ष्या की भावना तथा सम्पत्ति-मस्या व कारण नही बरन् मानत्व की समस्या-या तथा मातत्व अधिकार (Mother Right) व कारण हुई है। मानव मादा का ही सबम अधिक मानत्व का भार वहन करना पडता है। मानव का मरण की आवश्यकता तथा सन्तान व सन्तान पालन की सबसे अधिक समस्या मानव-समाज म हा है। परिवार इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये उत्प न हुआ और इनकारण परिवार का मूल रूप मानवतामय ही था।

आधुनिक मानवशास्त्र में यह त्रिब्रांप्सल समस्या एक किता-छाट का गर्द ट कयाकि स्वभाव नित्य सम्भव नयी है। जसा कि मारग्रट मीड न कहा है, इन मिद्धाता व निवारण म याराप व पत्रविवाहा परिवार का आधुनिकतम माना गया है और आनि वासी परिवार का प्राचानतर या प्राचानतम। यारापीय परिवार का हा मापण्ड मानना गलत है कयाकि यारापीय परिवार का आदिवासी सञ्चति व सन्तन म समया जा सकता ह और आनिवासी परिवार का आदिवासी सञ्चतिया व सन्तन म समया कोई भा आदिवासी नस्लिन नही है जिसम परिवार मस्या न हा। आदिवासी समाज म पिता की सामाजिक भूमिका (Social Role) सभी जगह स्वाकार की गरद है। एमा दगा मे यह नही कहा जा सकता कि कभी कर्द अवस्था यी जय परिवार और विवाह नही थे। साथ ही साथ यह भी नही निर्धारित किया जा सकता कि कितनसत्तात्मकता प्राचीन है या मानसत्तात्मकता। सांस्कृतिक प्रमाण ता यह है कि मानसत्तामय परिवारो मे भी परिवार प्रबन्ध पुण्य व हाय म रूठा है जबकि सता नारी क अधिकार म। अधिक सम्भव दष्टिकान यह है कि मानव की कुछ आधारभूत आवश्यकताओं व

परिवार व कारण, परिवार की अवतारणा मानव के ही नाम साथ हुई है यद्यपि विभिन्न स्तरा और सांस्कृतिक क्षया म उमक भिन्न भिन्न रूप पाये गए हैं। प्रजनन तथा सन्तान-पालन की आव-श्यकता क कारण परिवार सावभौमिक है। यही कारण है कि माता पिता और सन्तान म मिलनर परिवार का जा प्रनार बनता है वह स्वतन्त्र पाया जाता है। आज तन यह नही सिद्ध किया जा सका कि कही भी किन्ही

1 दक्षिण भारत के नायरो में मानसत्तात्मक परिवार का जो धनन मिलता ह उससे यह स्पष्ट होता है कि परिवार की सत्ता ता परिवार की यपोबद्ध स्त्री के हाय में रहता ह किन्तु परिवार व प्रबन्ध का अधिकार उस स्त्री व यह नार्द व हाय में। विनाय विवरण के लिये दक्षिणे व० एम० कपाडिया का मरिन एण्ड कमिलो इन इटिया।

अवस्थाओं में, परिवार नहीं पाया जाता है या पाया गया है। विवाह, यौन-तुष्टि के नियमन का एक माध्यम है जिसका आधार पर परिवार सामूहिक होता है। परिवार से व्यक्ति को सुरक्षा भी मिलती है और मानसिक तुष्टि भी। इसकारण, जहाँ, एक और, परिवार का एक आधार जविक है वहाँ, दूसरी ओर, दूसरा आधार मानसिक है। परिवार सभ्यता के नरतय का माध्यम है क्योंकि सभ्यता के मापदंड, परिवार के ही द्वारा व्यक्ति तक पहुँचते हैं। इसीलिये यह कहा गया है कि परिवार का शैक्षिक महत्व भी है यद्यपि, ज्यो-ज्यो सभ्यता का विकास होता गया है, परिवार के शैक्षिक कार्य अथवा सभ्यताओं के हाथ में पहुँचते रहे हैं। परिवार को समाज का छोटा रूप माना गया है। समाज के आदर्श नियम, परिवार के ही माध्यम से व्यक्ति के व्यक्तित्व का अंग बन जाते हैं। अतः, परिवार सामाजिक नियन्त्रण का माध्यम भी है। समाज में जितने प्रकार के समूह बनते हैं उनमें परिवार-समूह का प्राथमिक स्थान है। परिवार परिवर्तन में ही स्थायी रहता है। जविक, मानसिक सांस्कृतिक तथा सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ-साथ, परिवार के द्वारा आर्थिक आवश्यकताओं की भी पूर्ति होती है। आदिवासी समाज में परिवार का आर्थिक महत्व और भी बढ़ जाता है क्योंकि परिवार के सदस्य, खाद्य सामग्री जुटाने में सामूहिक रूप से प्रयास करते हैं।

परिवार को समाजशास्त्रियों ने समिति (सघ) माना है और विवाह को सभ्यता का एक आदिवासी समाज में परिवार का जो रूप मिलता है उसमें सभ्यता के स्तर अधिक हैं। आदिवासी परिवार को, आसानी से सभ्यतायुक्त प्रकार का परिवार (Institutional Type of Family) कहा जा सकता है। इसप्रकार के परिवार की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह उत्पादन और उपभोग की इकाई है। उपभोग के लिये उत्पादन आदिवासी आर्थिक व्यवस्था की विशेषता है, जिसके कारण, यह विशेषता आदिवासी परिवार की भी विशेषता बन गई है। सभ्यतायुक्त प्रकार का परिवार एक-विवाही परिवार से बड़ा होता है और उसमें कई पीढ़ियों के लोग एक साथ रहते हैं। इस परिवार का शैक्षणिक महत्व, वर्तमान समाज में पाये जाने वाले परिवार से अपेक्षाकृत अधिक है। सभ्यतायुक्त प्रकार के परिवार का व्यक्ति पर व्यापक प्रभाव पड़ता है जिसके कारण समाज में, परिवार के सदस्यों का वही स्तर होता है जो कि परिवार का होता है। परिवार के नेतृत्व में आयु का प्रधानता मिलती है और विवाह केवल दो विपरीत लिंगों के व्यक्तियों के बीच में समझौता मात्र नहीं होता है। विवाह का सम्बन्ध परिवार के सदस्यों और सम्बन्धियों में होता है। नारियाँ का कार्य क्षेत्र मुख्यतया प्रजनन, सन्तान पालन और गृहस्थी तक सीमित रहता है। विवाह विच्छेद की समस्या भी केवल पति पत्नी को ही समस्या नहीं रहती है बरन् उस परिवार और विरादरी के सदस्यों की समस्या रहती है जिसके सदस्य होते हैं।

आन्विवासी परिवार इस प्रकार उस परिवार की श्रेणी में आता है, जिन मानवजातिरयों ने विस्तृत परिवार (Extended Family) कहा है। विस्तृत परिवार वह परिवार है जिसमें प्राथमिक परिवार (Primary Family) का साधारणतया दो या तीन पीढ़ियाँ में विस्तार होता है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि आन्विवासी समाज में प्राथमिक परिवार नहीं पाया जाता है। वास्तव में जसा कि मानवजातिरयों ने प्रतिपादित किया है प्राथमिक परिवार जिसमें पति पत्नी और उनकी सन्तान आती है सभी प्रकार के परिवारों का मूलधार है। प्राथमिक परिवार बहुपतित्व तथा बहुपत्नीत्व पर आधारित परिवारों में भी समाया रहता है। प्राथमिक परिवार साव्य भौतिक और सावकालिक है यद्यपि आधुनिक समाज में वह अधिक स्पष्ट रूप तथा मर्यादा में पाया जाता है। आन्विवासी समाज में प्राथमिक परिवार विद्यमान तो रहता है लेकिन सामाजिक सम्बन्धों में स्वतन्त्र सम्बन्धों की प्रधानता के कारण वह विस्तृत परिवार में समाया रहता है। प्राथमिक परिवार स्वाभाविक परिवार है जिसमें चौमुखी सम्बन्धों का समाया रहता है यद्यपि इन सम्बन्धों में सबसे अधिक महत्ता एकपक्षीय स्वतन्त्र सम्बन्धों की होती है। विस्तृत परिवार सभी उत्पन्न होता है जब एकपक्षीय स्वतन्त्र सम्बन्धों तथा सम्मिलित वास्तविक आधार पर प्राथमिक परिवार का विस्तार होता है। इसीलिये विस्तृत परिवार का एकपक्षीय परिवार (Unilateral Family) तथा स्वतन्त्र सम्बन्धी परिवार (Conjugal Family) की संज्ञाएँ भी दी गई हैं। बहुपत्नीत्व और बहुपतित्व पर आधारित तथा मनुकृत परिवार विस्तृत परिवार की श्रेणी में आते हैं। क्लान भी स्वतन्त्र सम्बन्धों के एकपक्षीय विस्तार के सिद्धांत पर आधारित है। किंतु उसे विस्तृत परिवार की श्रेणी में नहीं रखता जा सकता क्योंकि एक क्लान के सम्बन्ध एक ही गृहस्थी में नहीं रहते हैं। गृहस्थी की एकता का भावना अथर्व विद्यापतामनी के साथ परिवार की एक मुख्य विचारपता है।

भारत के आन्विवासियों में, पितासत्तात्मक मनुकृत परिवार पाया जाता है यद्यपि यहाँ वहाँ पितृसत्तात्मक संरचना में मातृसत्तात्मक संरचना के तत्व भी मिलते हैं जो साधारणतया गौण हैं। उदाहरणार्थ जोनसॉन बावर का पितृसत्तात्मक संरचना में नारियों का कुछ विशेषाधिकार मिल चुका है जिनमें से एक पिता के घर में यौन-जीवन की स्वतन्त्रता है। अपन पिता के घर में रहने हुए जोनसॉन नारी विवाहित होत हुए भी परमस्वयंघों का कर सकता है जिस, मजूमदार ने पितृसत्तात्मक व्यवस्था में मानसत्तात्मक प्रभाव का परिणाम माना है। इसी प्रकार छाटानागपुर के आम पास रहने वाली नारियाँ गणजाति के परिवार में मामा का जा विशेष स्थान प्राप्त है उन भी मातृसत्तात्मक प्रथा की दृष्टि से माना गया है। किंतु ये उदाहरण इस निष्कर्ष के प्रमाण नहीं हैं कि भारत का आन्विवासी परिवार मूलतः मातृसत्तात्मक ही था। आन्विवासी समाज में पितृसत्तात्मक परिवार की संरचना और

संगठन किस प्रकार का है यह खरिया और हो गणजातियों के परिवारों के उम वयन में स्पष्ट होता है जो मजूमदार और मदन न प्रस्तुत किया है। खरिया गणजाति में, माता पिता और उनकी सत्तान या एक सत्तान परिवार की मूल इकाई है। इस इकाई में, कहीं कहीं जमाइ भी शामिल हो जाता है, विशेषतः उस अवस्थाम, जहाँ किसी के लड़का नहीं होता है और वह किसी का दत्तक पुत्र बनना और जमाई को अपने परिवार का सदस्य बना लेता है। कहीं कहीं गृहपति के पिता, पितामह, चाचा और चाचा की सत्तान भी परिवार के सदस्य के रूप में पाये जाते हैं। किंतु अधिकतर नौजवान अपना भापड़ा अलग बना लेते हैं, जिसके कारण पति पत्नी और उनकी सत्तान में बने परिवार ही समाज की मूल इकाई रहता है। दूर के सम्बन्धी, परिवार सदस्य भी निराला ही शामिल किए जाते हैं। किंतु ही परिवार के संगठन में, कार्यात्मक तथा मरचनात्मक दृष्टिकोण में परिवार और कीली (गण) एक मिला गये हैं यद्यपि परिवार और कीली के बीच में कार्यों का विभाजन स्पष्ट है। यहाँ कीली विस्तृत परिवार का रूप ले लेती है। खाद्य-पादन विस्तृत परिवार की जिम्मेदारी है किंतु उत्पादन ग्राह्यसामग्री अलग अलग परिवारों (Individual Families) में बाँट दी जाती है। बच्चों की शिक्षा दीक्षा सामाजिक नियंत्रण, बीमाग्न्या से रक्षा तथा त्याहारों और उत्सवों का मनाना कीली का सामाजिक उत्तरदायित्व है। इसका यह तात्पर्य नहीं कि हा-परिवार कीली में पूर्णतया समाहित हो गया है। प्रत्येक हा परिवार, अपनी अलग पूजा पद्धति का अपनाता है। ही गणजाति में काली और परिवार के सम्बन्ध परस्परिकता तथा सामूहिकता का आवश्यकताओं पर आधारित है। जहाँ सामाजिक सामूहिकता की आवश्यकता है वहाँ कीली का महत्व बढ़ जाता है। लड़के के विवाह पर जब किसी परिवार का बंधन की आवश्यकता होती है तो उसकी कीली के सदस्य उसकी सहायता करते हैं।

खरिया और ही परिवार पितृसत्तात्मक हैं जिसके कारण पिता कर्ता के रूप में परिवार का मुख्य है। पिता ही परिवार की सत्ता केन्द्रित रहती है और पिता से ही वंश चलाता है। विवाह के बाद प्रत्येक स्त्री पिता का घर छोड़ कर पति के घर में रहती है। एक विवाह का आम रिवाज है यद्यपि बहुपत्नी विवाह भी होते हैं दोनों गणजातियों में परिवार के द्वारा, जबकि मानसिक (यौन मनुष्य और भस्त्र) की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के साथ साथ नई पीढ़ियों की शिक्षा भी होती है। भद्र और जानवर धरान तथा खती के कामों की शिक्षा लड़कों को पिता से मिलती है और गृहकार्य की शिक्षा लड़कियों को माता से मिलती है। बालक और परिवार एक साथ, गणजाति का भाषा प्रयोग रूढ़ियाँ तथा जनशैलियों को, एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक ले जाना हुआ खरिया संस्कृति की स्थापित प्रदान करती है। परिवार से वैवाहिक जीवन का भी नियमन होता है।

खरिया परिवार एक आर्थिक समूह भी है। परिवार के सदस्य एक साथ,

साथ सामग्री का उत्सादन और सग्रह करते हैं तथा सबके लिए एक समान सुरक्षा (Shelter) और कपड़ा का प्रबंध करते हैं। पति पत्नी समान रूप से परिवार का चयन में अपना अपना योग देते हैं। यद्यपि उनके कार्यों का विभाजन लिंग के आधार पर होता है। पति का आर्थिक कार्य मछली मारना और आखट करना है तथा पत्नी का कार्य फल का जार खास-जड़ियों का एकत्र करना है। पत्नी खाना बनाती, पानी भरती और बच्चा का देखभाल करती है और सती के काम में भाग नहीं लेती है। पति के प्रभुत्व के हात हुए भी, परिवार में, पत्नी का स्थान गौण नहीं है। बच्चा के पालन तथा गृहस्थी के चलान में पत्नी का काफी स्वतंत्रता रहती है। खरिया नारी को अनेक सामाजिक निर्बोध्यताओं तथा निषेधों का पालन करना पड़ता है जिनमें से मुख्य है धार्मिक अनुष्ठानों में भाग न लेना। धित्तु, इन निषेधों को नारी को निम्न सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक नहीं माना जा सकता है। खरिया नारी का अपनी व्यक्तिगत वस्तुओं, जिनमें उसके आभूषण, कपड़ों और वस्तुएँ जाती हैं जिनका वह स्वयं अजन करती है या जिन्हें वह स्वयं बनाती है, पर स्वतंत्र अधिकार रहता है।

घासी और गारो परिवार ही, भारत के आदिवासियों में, मातृसत्तात्मक परिवारों के उचित उदाहरण हैं। घासी और गारो, आसाम के घासी और जयन्तिया पहाड़ियों के प्रदेश में पाये जाते हैं। घासी परिवार में सबसे छोटी लड़की, परिवार की उत्तराधिकारिणी समझी जाती है जिसके कारण, सम्पत्ति उत्तराधिकार में सबसे बड़ी लड़की को न मिल कर, छोटी लड़की को मिलती है। परिवार की पूजा अनुष्ठान-प्रथाओं का छोटी लड़की ही सम्पन्न करती है और परिवार के सदस्यों के मरने पर, उनकी अस्थियों का वही परिवार के समान स्थान में गाड़ती है। इस प्रकार छोटी लड़की परिवार की मरणात्मक समझी जाती है जिसके कारण उस परिवार की सम्पत्ति में भी, सबसे अधिक भाग मिलता है। जब कर्ता स्त्री का देहात होना है तो उसका दाह नम्बार सबसे छोटी लड़की ही करती है। गारो परिवार में उत्तराधिकार माना न लड़की का चलता है किन्तु यहाँ उत्तराधिकारिणी वह लड़की होती है जिस माता-पिता उत्तराधिकारिणी घोषित करके हैं। माधारणतया जम्प्ट पृथ्वी का उत्तराधिकारिणी नहीं घोषित किया जाता है। उत्तराधिकारिणी घोषित की हुई पृथ्वी के धलावा, भ्रम पुत्रियों केवल परिवार में रह सकती हैं जबतक कि उनका विवाह नहीं हुआ जाता। विवाह हुआ जाने पर वह, अपने मायके में ही पिता द्वारा दी हुई भूमि पर अपने पर बनाता है। यदि कर्ता स्त्री के लड़की न हो तो उत्तराधिकार बहिन का या बहिन की लड़की का मिलता है। यदि कोई न हो तो मातृसत्ता सम्बन्धी वगैरे लड़की का ही जा सकती है।

घासी परिवार में साधारणतः, कर्ता स्त्री, उसका पति, उसके धर्मिवाहित पुत्र पुत्रियों और विवाहित पुत्रियों के पति पाये जाते हैं। विवाह के समय, प्रदेश

पुरुष को अपनी पत्नी के घर में जाकर रहना पड़ता है किन्तु, कालांतर में, यदि पुरुष में अलग घर बसाने का क्षमता आ जाती है तो वह अपनी स्त्री और बच्चा के साथ, अलग घर बसा सकता है। किन्तु इस प्रकार बसा हुआ नया परिवार मातृवशी ही रहता है¹। परिवार की नारियों और पुरुषों की सारी बर्माई पर वर्तनी स्त्री का अधिकार रहता है और वहीं परिवार के सदस्यों की बर्माई का परिवार के सदस्यों के लिए उपयोग कर्ता है। खासी परिवार प्रणाली के परम्परागत नियमों के अनुसार पुष्टपो का वयवित्त सम्पत्ति के अधिकार नहीं हैं, चाहे परिवार में उनका स्थान पति और पिता का हा या पुत्र का। पुष्टपो की अपेक्षा, स्त्रियों का अधिकार मत्ता और प्रतिष्ठा मिली रहती है। श्रम विभाजन लिंग के अनुसार होता है। वृषि काम पुष्टपो द्वारा किया जाता है और कपड़ा बुनने का काम नारियाँ क द्वारा। कुलीगोरी पुरुष और नारी दोनों कर सकते हैं। इस प्रकार खासी परिवार-संगठन का मूल पारिवारिक सम्पत्ति सत्ता तथा धार्मिक कृत्यों का अधिकार रक्तसम्बन्धी नारियाँ में ही केन्द्रित रहता है। परिवार में पुरुष के पास न तो सत्ता है और न सम्पत्ति। पुरुष वैसे ही आदर और सम्मान का अधिकारी है जैसे पितृसत्तात्मक परिवार में नारी।

विवाह एक सावभौमिक तथा सवकालिक सत्ता है यद्यपि, विभिन्न समाजों में उनके विभिन्न विधान रूप पाये जाते हैं। विवाह सत्ता का उन आदर्श सामाजिक नियमों का एक मकुल कहा जा सकता है जिनके द्वारा, समाज में नर-नारी के सम्बन्ध पति-पत्नी के रूप में नियमित तथा नियंत्रित होते हैं और, साथ ही साथ पति-पत्नी के सम्बन्धों का पारस्परिक सम्बन्ध, माता-पिता और सत्तानों के सम्बन्ध तथा परिवार और समाज के सम्बन्ध परिभाषित होते हैं। पति-पत्नी के रूप में, समाज में नर-नारी के क्या अधिकार कर्तव्य और आवश्यकताएँ हैं, यह विवाह सत्ता द्वारा ही निर्धारित होता है। विवाह सत्ता, परिवार के स्वरूप आकार, सामाजिक क्षेत्र और कार्यों को प्रभावित करती है। सवेशन (Mating) और विवाह में अंतर है। सवेशन किन्हीं भी दो विषयमालिनी व्यक्तियों द्वारा की जान वाली अस्थाई काम-तुष्टि है जो केवल नर-मादा की स्वाभाविक विषय-वासना से ही प्रेरित होती है। विवाह समाज द्वारा नियोजित नियंत्रित तथा नियमित सवेशन है। अतः विवाह केवल सवेशन नहीं है यद्यपि सवेशन विवाह का आधार है। इसी कारण यह भी प्रतिपादित किया गया है कि विवाह का आधार केवल काम-तुष्टि ही नहीं है। काम-तुष्टि के साथ-साथ प्रजनन और आर्थिक जीवन का आवश्यकताएँ भी विवाह सत्ता क द्वारा पूर्ण होती हैं। समाज का स्थायित्व नई पीढ़ियों की देखभाल तथा शिक्षा दीक्षा और विवाह सम्बन्ध में बँधने वाले नर-नारियाँ क विस्तृत परिवारों के सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्धों तथा अधिकारों

1 खासी समाज में यह विवाह नया है जो इसाइयत के प्रभाव से उत्पन्न हुआ माना जाता है—देखिए मजूमदार और मदन पृष्ठ 51

और कृतव्यो का निर्धारण विवाह सस्या के द्वारा सम्पन्न होता है, जिसके कारण, विवाह की महत्ता, जबकि महत्ता से आगे बढ़कर सामाजिक महत्ता में बदल जाती है।

आदिवासी समाज में विवाह सस्या भी पाइ जाती है और, उमक साथ-साथ पूर्व-ववाहिक (Pre Marital) तथा विवाहान्तिरिक्त (Extra Marital) यौन सम्बन्ध भी। जहाँ वही भा पूर्वववाहिक तथा विवाहान्तिरिक्त यौन-सम्बन्ध पाये जाते हैं व विवाह सम्बन्धों की भांति मर्यादित हाकर आदिवासी सभ्यता का एक अंग बन गए हैं। किंतु इसमें यह निष्कर्ष निकालना कि आदिवासी-जातों एक जायत रूपान्ती जीवन है और आदिवासी समाज में उन्मुक्त यौन सम्बन्ध पाये जाते हैं एक भूल हागो।

पातिव्रत्य तथा सतीत्व के जादव अलग-अलग समाजों में भिन्न हैं। जहाँ पितृता का दृढ करने के लिए दा पुत्र्य एक-दूसरे की पत्नी में यौन-तुष्टि करते हैं या अतिथि का आवश्यक के लिए पत्नी अर्पित की जाती है या आवश्यकता पडने पर पत्नी का बचक रख दिया जाता है, वहाँ यह माना जाता है कि इन कृत्यों से नारी का सतीत्व भंग नहीं होता है। नटी म बन्धावृत्ति के विवरण मिलते हैं। नट स्त्रियां भोज मागती हुई या दण्ड जडो वृष्टिया बचती हुई सूर्योत्थ ससूर्यास्त तक घर के बाहर रहती हुई परमम्य धा द्वारा भी घनापाजन करती रू पाइ गई हैं। किंतु, यदि सूर्यास्त हात हाते, व पति के पास वापस न आ जाय ता पति या उनकी बिरादरी उन पर सतीत्व भंग करने का आराप लगा कर, उन् दण्डित कर सकती है। जौनसार-बावर में बहुपतित्व की प्रथा के साथ साथ नारी नतिवता का दाहरा माप दण्ड प्रचलित है। पत्नी के रूप में नारी को राखी कहा जाता है और घर को लडकी तथा गाव की बालिका के रूप में घ्याण्टी। घ्याण्टी के रूप में नारी का परसम्बन्ध भी छूट है; परसम्बन्ध का, जास्ती (दोस्ती) की धारणा के रूप में, एक सस्या का रूप मिल गया है। जास्ती में हानि वाल परसम्बन्ध उत्तन ही पवित्र है जितने कि विवाह सम्बन्ध। किंतु पति के घर में या पति की मौजूदगी में जौनसारी नारी उत्तनी ही पतिव्रता रहती है जितनी कि किसी अन्य समाज की नारी।

नारी-नतिवता का दोस्तर मापदण्ड न ता निरीर कामुकता से प्रेरित है और न कामाचार से। इसका सामाजिक पहलू भी है। जौनसार-बावर में बहुपतित्व की प्रथा है और परिवार की सरचना, गमुवन तथा पितृगतात्मक है। बयावड पीढी के पुण्या में, ज्येष्ठ भाई परिवार का वर्ता हाता है। वही को बहुपतित्व प्रथा में बइ मा भाई एक या एक में अधिक पत्नी में सम्मिलित विवाह करते हैं किंतु, सम्मिलित पतिव्रता पर, वता का ही प्रथम अधिकार रहता है। पहाडी प्रान्त में व कारण, वहा सती योग्य भूमि की कमी है और जब से सरकार ने जगता के मरुधन की नीति का अपना कर, अतिरिक्त भूमि पर कर लगा कर लिया है, नइ भूमि (नी तान) प्राप्त

बहिर्वैवाहिकी (Clan Exogamy) के दो ऐसे प्रकार हैं जो आदिवासी भारत में सर्वत्र मिलते हैं।

सर्वगण नियमन से सम्बन्धित नियमों की दूसरी श्रेणी में वे नियम आते हैं जो एक निवारित सामाजिक सीमा में विवाह की बाध्यता प्रतिपादित करते हैं। अंतर्वैवाहिकी (Endogamy) सीतली माँ का उत्तराधिकार के रूप में ग्रहण करना (Fihal Inheritance) लेविरेट (Levirate) मत पति के भाई से विवाह करना), सारारेट (Sororate) मत पत्नी के बहिन से विवाह करना), सारारण पालीजिनो (Sororal Polygamy) पत्नी के जीवित रहते हुए उसकी बहिन या बहिनों से विवाह करना) और पिता की बहिन को लड़की या लड़के से और माता के भाई का लड़की या लड़के से विवाह करना (Cross Cousin Marriage) इसी श्रेणी के नियमों में आते हैं। अंतर्वैवाहिकी का अर्थ है व्यक्ति द्वारा उस निर्धारित समूह में विवाह करना जिसका वह सदस्य है। जाति-अंतर्वैवाहिकी हिन्दू प्रथा है और गणजाति अंतर्वैवाहिकी (Tribe Endogamy) आदिवासी प्रथा। स्थानीय अंतर्वैवाहिकी (Local Endogamy) आदिवासी भारत में नहीं पाई जाती है यद्यपि बाहर इसका उदाहरण मिलते हैं। म्वायटी अंतर्वैवाहिकी (Moiety Endogamy) अंतर्वैवाहिकी का तीसरा प्रकार है जो टांडा गणजाति में पाया जाता है। अगम्यगमन बहिर्वैवाहिकी तथा अंतर्वैवाहिकी के नियम साथ-साथ और सर्वत्र पाये जाते हैं यद्यपि उनके व्यावहारिक प्रकारों में भिन्नता है।

अगम्यगमन (Incest) और बहिर्वैवाहिकी रक्तसम्बन्धों में विवाह न करने के सिद्धांत पर आधारित हैं। किन्तु जैसा कि पिछले उदाहरणों से स्पष्ट है अगम्यगमन और बहिर्वैवाहिकी वास्तविक रक्तसम्बन्धों पर आधारित न होकर उन सम्बन्धों पर आधारित हैं जिनमें समाज रक्तसम्बन्धों की कल्पना कर लेता है। बाली द्वीप में जुड़वा भाई-बहिन का विवाह की अनुमति हाना इसका उदाहरण है। प्राचीन मिथ के राजपरिवारों में भाई-बहिन के विवाह की अनुमति हाना इसका दूसरा उदाहरण है। अगम्यगमन और बहिर्वैवाहिकी में वही सम्बन्ध रक्तसम्बन्ध माने जाते हैं जिनको समाज रक्तसम्बन्ध परिभाषित कर देता है न कि वास्तविक रक्तसम्बन्ध। इसका कारण है परिवार तथा परिवार के विस्तृत आधार पर बने समूहों की सगठनात्मक एकता को सुदृढ़ बनाये रखने की आवश्यकता। यदि भाई-बहिन माता-पुत्र और पिता-पुत्री में सर्वगण का निषेध न हो तो परिवार की एकता ही भंग हो जाय। जैसा कि प्राचीन मिथ के राजपरिवारों में पाया गया है, राजपरिवार की विविष्ट एकता बनाय रखने के लिये, वहाँ भाई-बहिन से विवाह की अनुमति नहीं है। काम-ठपणा की तुष्टि की आवश्यकता एक ऐसा सामाजिक तत्व है जो समूहों की एकता को प्रोत्साहित भी कर सकता है और उसे नष्ट भी कर सकता है। परिवार और क्लान की एकता तभी दृढ़ रहती है जब इन समूहों के सदस्यों ने बाहर विवाह करते हैं। यदि ऐसा न हो तो,

परिवार के पुत्रों में वहा की नारियो के लिये जो प्रतिष्ठा पदा हो वह परिवार की एकता का ही लक्ष्य करते हैं। बाह्यतीय मवदान नियमों का आधार भी यही सामाजिक आवश्यकता है। गणजाति अन्तर्वैवाहिकी से गणजाति की एकता सुदृढ़ रहती है और म्वायटी अन्तर्वैवाहिकी (Moiety Endogamy) से म्वायटी की। मौनली माताश्रा का उत्तराधिकार के रूप में पत्नी बनाने से परिवार की एकता बनी रहती है। लेविगट (Levirate) पितृवश को सुदृढ़ बनाकर परिवार की समुक्तता बनाये रखने का एक माध्यम है। सॉरोरेट से पति-पत्नी का समायाजन आसान हो जाता है। मारोरल पालीजिनो वही पाई जाती है जहा बहुपत्नीत्व पाया जाता है और इस कारण, सॉरोरेल पालीजिनो बहुपत्नीत्व वाल परिवार में स्त्रीतिया डाह पर राक लगाकर परिवार की एकता में सहायक हो जाती है। पिता की बहिन की लडकी से विवाह या माता के भाई की लडकी से विवाह वस्तुतः उन व्यक्तियों और परिवारों में विवाह है जो पहले ही में एक दूसरे को जानते हैं और परस्पर सम्बन्धी हैं। इस विवाह में पति-पत्नी एक दूसरे का बचपन से जानते रहते हैं। जहा माँ के भाई की लडकी से विवाह किया जाता है वही लडकी को फूपी (पिता की बहिन) उसकी सास हो जाती है। एसी रीति में पति-पत्नी तथा सास-बहू के सम्बन्ध में तनाव की सम्भावना कम हो जाती है और परिवार की एकता का बल मिलता है।

पति-पत्नी की संख्या के आधार पर, विवाह के दो प्रकार मिलते हैं—एकविवाह और बहुविवाह। एक विवाह में एक समय में एक पुरुष एक नारी बहुपत्नित्व और में तथा एक नारी एक पुरुष से ही विवाह करती है। बहुविवाह बहुपत्नीत्व में एक पुरुष एक समय में कई नारियो से और एक नारी या कई नारियो, कई पुरुषों से सम्मिलित विवाह करती हैं। एकविवाह और एकविवाही परिवार सधन पाये जाते हैं—उन समाजों में भी जहाँ बहुपत्नीत्व (एक पुरुष या एक समय में कई पत्नियाँ से विवाह) और बहुपत्नित्व (कई पुरुषों का एक या कुछ पत्नियाँ से सम्मिलित विवाह) पाये जाते हैं। आदिवासी समाज में, बहुपत्नीत्व की सामाजिक अनुमति है किन्तु बहुपत्नीत्व आम प्रथा नहीं है। पत्नी पत्नी के बीच हान पर परिवार में अधिक काम करने वाला की आवश्यकता हान पर (जसा पहले लिये हुए जीवनकार के उदाहरण से स्पष्ट है) और सामाजिक प्रतिष्ठा

- 1 इसका यह अर्थ नहीं कि आदिवासी परिवार-व्यवस्था पूर्वनिर्धारित है। इसका यह भी अर्थ नहीं है कि आदिवासी परिवार में तनाव होना ही नहीं है। यहाँ जो स्पष्टीकरण लिये गए हैं, उनपर अधिकतर मानवशास्त्रज्ञों और समाजशास्त्रियों एकमत है।
- 2 नागा गणजातियों में जो गणजाति के मूलियाँ हैं, और जिनकी अधिक स्थिति सामान्य लोगों से अच्छी है वे, बहुधा एक से अधिक विवाह करते हैं।

प्राप्त करने के लिए बहूपत्नीत्व का आश्रय लिया जाता है। किन्तु, सौमित्रा यह और कुछ पतिव्रता के भरण-पोषण की समस्याएँ उत्पन्न करती हैं, जिनका बहू-सुपत्नीत्व सदैव सीमित रहा है। भारत में बहूपत्नि व जौनमार-वाचक टांगला का नापनों में पाया गया है। नापनों में मानसतात्मक व्यवस्था का विवाह-प्रथा में बहूपत्नि का जन्म लिया था। नापनों और नम्बूद्रा जातिओं की विवाह-परम्पराओं में यह स्पष्ट होता है। नम्बूद्रा जाति में एक पति-दार का सबसे बड़ा लड़का ही नम्बूद्रा नारायण विवाह करता है और अन्य नापन-नारियाँ में। नापन मिश्रण जन्ती में यह घर रहती थी और उनके नम्बूद्रा पति तथा उनके पास आया कर्तव्य जिसमें नापन-रानी बहूपत्नि-सम्बन्ध स्थापित करता थी। टांगलों में सदा जाट या जाइ या जा व्यति मिलकर एक पत्नी में विवाह कर सकते हैं। जौनमार-नापन में नारायण (जा बहूधा एक मा की संतान हाउ है) एक या बहू पत्निदा में सम्मिलित विवाह करत है। आदिवासी नारायण है कि भारत में बहूपत्नि व सुदुर्लभ परिवार के सम्बन्ध का सामाजिक मानों में पाया गया है। जसा कि पट्टा लिखा गया है बहूपत्नि, विभिन्न सामाजिक संन्दर्भों में परिवार का सुदुर्लभ बनाय रखन का एक माध्यम रहा है।

पत्नी-अधिग्रहण (Acquiring of Mate) के तरिका के आधार पर आदिवासी विवाह के जा मुख्य प्रकार निम्नलिखित किये गए हैं व हैं अन्य विवाह पत्नी-अधिग्रहण (Marriage by Purchase) सेवा-विवाह (Marriage by Service) विनिमय-विवाह (Marriage by Exchange) अनहरण विवाह (Marriage by Capture) पत्नी का उत्तराधिकार में प्राप्त करना (Inheritance of Wives) और गन्धर्व विवाह। क्रम विवाह का अर्थ यह नहीं है कि आदिवासी समाज में नारियों का अर्थ विक्रय होता है। लगभग सार आदिवासी भारत तथा भारत के बाहर के आदिवासी समाज में उनकी के पिता का एक निश्चित रकम देने की प्रथा है। इस बधु-मूल्य (Bride Price) की प्रथा कहा गया है। यह प्रथा दहेज प्रथा का उल्टा है।

दहेज प्रथा में, बधु का पिता वर के पिता या एक तय का मुद्रा रकम देता है जबकि बधु-मूल्य प्रथा में अनुसार वर का पिता बधु के पिता या एक बधु-मूल्य निश्चित रकम देता है। जिस प्रकार, दहेज की रकम का ता नन्द लगी हुआ उपहारों के रूप में ली जाती है उसी प्रकार बधु-मूल्य भी याना नन्द लगी है या उपहारों के रूप में लिया जाता है। बधु-मूल्य परम्परा में निश्चित है (जैसे जौनमार में) जा बड़ी (जसा कि है, गन्धर्व न है) वर का या वर का एक नन्द्य के द्वारा उस रकम का तय किया जाता है। दहेज हिन्दू समाज का प्रथा है जबकि बधु-मूल्य आदिवासी समाज की। जिस प्रकार, मुद्रापी आर्थिक व्यवस्था (Monetary Economy) के प्रभाव से दहेज उत्तराधिकार

नकद रकम के रूप में दिया जाने लगा है उसी प्रकार, वधू मूल्य भी धीरे धीरे नकद रकम का रूप लेता रहा है। विहार की मुण्डा गणजातियों में, वधू मूल्य इतना बढ़ गया है कि वह दहज की भांति एक आर्थिक-सामाजिक समस्या बन गया है। जिस व्यक्ति को सामाजिक आर्थिक प्रतिष्ठा जितनी उच्च है, वह उतनी ही बड़ी रकम वधू मूल्य के रूप में मांगता है। इसका परिणाम यह हुआ है कि याता लडक-लडकिया कुबार रह जाते हैं या वे अपहरण या गधव विवाह करते हैं। इस समस्या का एक अन्य परिणाम यह है कि यदि एक लडकी का पिता मनमाना वधू मूल्य न पान के कारण उसका विवाह नहीं करता है तो वह जिस लडक से विवाह करना चाहती है, उसका घर चली जाती है और वहाँ, कुछ दिनों का भ्रमनाघार जनमान के बाद, वह स्वीकृत हो जाती है। इसप्रकार के विवाह का मुण्डा भाषा में 'जनदर' (अपघारण Intrusion) की संज्ञा दी गई है। गाधव अपहरण (घानागतिथी) और अपघारण (जनदर) विवाह अनियमित विवाह हैं किन्तु कालान्तर में उन्हें सामाजिक स्वीकृति मिल जाती है।

वधू मूल्य देने तथा वधू शय (Purchase of Bride) में वधू ही अंतर करना कठिन हो जाता है जैसे कि भेंट और रिदवत में। यह आगवा निमूल नहीं होगी कि कि-ही परिस्थितियों में वधू मूल्य काया विनय का रूप ले सकता है। बहुत कुछ वधू मूल्य (Bride Price) लेने वाला वद्विवाण पर निर्भर करता है। किन्तु, वधू मूल्य प्रथा का एक दूसरा पहलू भी है। वधू मूल्य आम तौर पर वर-काया के परिवारों में भेंट विनिमय (Gift Exchange) के रूप में माल (kind) में दी जाती रही है। वर का पिता, अपन वधु वाचवों से भेंट लेकर वधु व पिता को देता रहा है और वधु का पिता उस अपने वधु वाचवों में बांट देता रहा है। आज वधू मूल्य का यह रूप समाप्त हो रहा है। किन्तु यहाँ सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि वधू मूल्य दिया ही क्यों जाता है। इस प्रश्न का उत्तर आन्विषी विद्वान और प्रथाओं में नहीं मिला है। वही इस काया कद्रुप का मोल कहा जाता है, वही इसे वधु के लिए दिया जान वाला प्रतिदान और वही, जैसा कि बासी द्वीप में है वधु-मूल्य उस आर्थिक हानि का मूल्य है जो विवाह के द्वारा, लडकी के गणजाति के सागों में यदि कोई स्त्री बाँभ जाता है तो उन अपन पति व दूसरे गणजाति के लिए वधु धन का प्रबंध करना पड़ता है। दक्षिणी अफ्रीका की बण्डा सारी विस्ता का अंदा नहीं कर देता है तब तक उसका बन्धु जगकी पत्नी व पिता व पास बंधक के रूप में रहते हैं। मानवशास्त्रियों का यह मत है कि वधू मूल्य से, उन दो परिवारों में, आदान प्रदान के द्वारा, सामाजिक सम्बन्ध दृढ़ होत हैं, जिनके

दा विपमर्लिंगी सदस्य विवाह सूत्र में बघने है¹ ।

विवाह विच्छेद हो जाने पर वधू मूल्य लौटाने की प्रथा भी सर्वत्र पाई जाती है । लेकिन ऐसी परिस्थिति में जसा कि जौनसार बावर में हाता है, पति वधू मूल्य हरजान के रूप में वसूल करता है । विवाह विच्छेद में, पति जो रकम रता है, उसमें व्याह का खर्चा भी जुड जाता है, जिसके कारण विवाह विच्छेद की रकम वधू मूल्य से बढ जाती है । यह रकम उस व्यक्ति को दनी पडती है जो तलाक दी हुई स्त्री से विवाह करता है । ऐसी दशा में, तलाको की सह्या व साथ साथ, हजनि की रकम भी बढती जाती है किंतु, यह रकम तभी तक बढती है जब तक स्त्री तरुण और स्वस्थ रहती है । मुण्डा गणजातियो में, वधू मूल्य की रकम वधू की सुदरता, उम्र और उसके पिता की सामाजिक प्रतिष्ठा पर निर्भर करती है । वधू मूल्य तथा तलाक में हजनि की रकम तय करने में, मध्यस्थ का रोल काफी महत्व पूण हाता है, जिसका आगे बघन किया जायेगा ।

गोड और बगा गणजातियो में यदि कोई व्यक्ति वधू मूल्य चुकाने में असमथ होता है तो वह अपने भावी समुर के घर में जाकर, एक निर्धारित समय तक, घर का काम काज करता है और उसके बाद विवाह करके अपने घर वापस आ जाता है । बिरहोर गणजाति में, भावी दामाद को वधू-मूल्य की रकम उधार दे दी जाती है और जब तक वधू मूल्य का भुगतान नहीं हो जाता है दामाद को अपने समुर के घर में रहकर, उसके घर का काम करना पडता है । जौनसार बावर में, कृषि का काय करने वाल के लिए कभी कभी गुरखे भी इस शत पर रख लिए जात हैं कि एक निश्चित समय के बाद घर की लडकी से उनका विवाह कर दिया जायगा² । ऐसे विवाहो को सदा विवाह की श्रेणी में रखा जाता है । घर-जवाई पद्धति और सदा विवाह में अन्तर है । घरजवाई पद्धति में जब किसी के लडका नहीं होता है तो वह विवाह के बाद से या पहले ही से दामाद को अपने घर की दखभाल के लिए रख लेता है । वधू मूल्य जुटाने की समस्या का हल करने के लिय जब दा परिवार कायाआ का विनिमय कर लेत है तो उसे विनिमय विवाह कहा जाता है । जहा नास बजिन भरिज (मामा फूफी की सतानो में विवाह) की प्रथा है, वहा विनिमय विवाह आसानी में हो जाता है । आसाम के खासियो में ऐम विवाह की अनुमति नहीं है । वधू मूल्य की समस्या से बचने के लिए मध्यभारत के आदिवासियो में लेबिरट विवाह का प्रोत्साहन दिया जाता है । परिवीक्ष्य विवाह (Probationary Marriage), जो आसाम की कुकी गणजाति में पाया जाता है, घरजवाई विवाह तथा सेवा विवाह से भिन्न है । परिवीक्ष्य विवाह में, भावी पति पत्नी को प्रेमी तथा

1 ह्यूबेल, ई० ए० मन इन द प्रिमिटिव वर्ल्ड पृष्ठ 205-210

2 भजूमदार और मदन वही पृष्ठ 90

प्रेमिका व रूप म क्या के घर म कुछ समय के लिए रहने दिया जाता है और इस बीच म यदि घर-क्या एक-दूसरे को पसंद कर लेते हैं ता दोनों का विवाह हो जाता है वना अलग-अलग होने पर, वर का क्या के पिता का प्रतिदान (Compensation) देना पडता है। सेमा नागाआ म, पिता के मरने पर, पुत्र को सौतेली विधवा माताओ से विवाह करना आवश्यक हो जाता है क्योंकि समा नागाआ की उत्तराधिकार परम्परा के अनुसार मत व्यक्ति की सम्पत्ति का उत्तराधिकार उसकी विधवा या विधवाओ को मिलता है और यदि पुत्र उस सम्पत्ति का उत्तराधिकारी होना चाहता है तो उस अपनी सगी माँ को छोडकर, अथ सौतेली विधवा माताओ स विवाह करना आवश्यक हो जाता है।

अपहरण विवाह क जम उग्रहरण भारतीय इतिहास म मिलते हैं वने अपहरण विवाह वतमान दण्ड-महिता के अनुसार, अपराध हैं। ज्या-ज्या सामाजिक प्रगति होती रही है और भारतीय दण्ड-महिता को लागू किया जाता रहा है अपहरण विवाह की मर्या कम होती रही है। फिर भी नागा हो गाड भील, सरिया और बिरहार गणजातियो म, वास्तविक या आभासी (Mock) अपहरण विवाह के प्रमाण मिलते हैं। आसाम की नागा गणजातियो म जब एक गाव के निवासी दूसरे गाव पर आक्रमण करते हैं तो स्त्रिया का भी अपहरण करते हैं। यही कारण है कि नागाआ म, लडकियो को जमत ही मार डालने की प्रथा रही है। यही अपहरण पहले के पिता के अनुरोध पर, लडकी का अपहरण किया जाता है। यह अपहरण पहले ही स निधारित होता है। वरणा के लोग, वधू का अपहरण करत हैं और वधू-पक्ष व लाग इसका विरोध करते हैं। किंतु यह अपहरण, वास्तविक न होकर केवल अपहरण का नाटकमानहाता है। इसी प्रकार, हो गणजाति मे वधू मुख्य की समस्या उठ खडी हाने पर, आभासी अपहरण मयोजित किया जाता है। सरिया और बिरहोर गणजातियो म, अपहरण विवाह ने एक सस्कार का रूप ल लिया है। जब कोई पुरुष किसी भी स्त्री स, सामान्य तरीके स विवाह नहीं कर पाता है ता वह किसी मल या अन्य स्थान म छुपकर बठ जाता है और उस स्त्री के उपर निबन्धन पर, सहसा उसक माथे पर तल मिथित मित्रूर मल देता है तो वह उस स्त्री से विवाह करन का अधिकारी मान लिया जाता है। मध्यभारत मे त्याहारा के अवसरा पर, जब कई गाँवा के लाग एक-साथ नाचत-गाते और घाराव पीकर एतन शान हैं तब नौजवान उन लडकियो का अपहरण करत हैं जिनक माप व विवाह करना चाहत हैं। ये अपहरण शांतिमय हाने हैं। नागाओं व अनघाम आनमों का छड कर हर दगा म अपहरण पूनमयात्रिन हाते हैं और वास्तविक अपहरण का आभासमात्र होत है। वधूया, वर-वधू व माता पिता की अनुमति स अपहरण हाना है। अपहरण विवाह को गणजाति बिरादरी सन भी मान्यता मिलती है जब, अपहरण करन वाला या ता बिरादरी का हर्जाना देता है या भाज देता है।

भीलो के गोल गेघादा विवाह में, जहा एक ओर, अपहरण का आभास मिलता है वहा दूसरी ओर, विवाह के उम्मेदवार नौजवान के साथ ओर बहादुरी का अजमाने का भी आभास है। गाल गेघादो प्रथा के अनुसार, विवाह के इच्छुक भील नौजवान का, किसी लडकी से विवाह प्रस्ताव करने के पहले अपनी बहादुरी और शक्ति का परिचय देना पडता है। होली के त्याहार पर अविवाहित पुरुष और स्त्रिया किसी पेड़ या जमीन पर गड पोल (Pole गम्भे) के आस पास नृत्य करने है। इस नृत्य में स्त्रिया पोल या पड के आस पास घेरा बनाकर नाचती है और पुरुष स्त्रियों के घेरे के बाहर, घेरा बनाकर, नाचते हैं। पोल या पेड़ पर गुड और नारियल बंधा रहता है। नाचते नाचते जब कोई नौजवान स्त्रियों का घेरा तोड़ कर पोल या पेड़ पर चढ़ने का प्रयास करता है तो स्त्रिया उसे रोक्ने का प्रयास करती हैं और इस प्रयास में, वे उसका कपड़े नाच सकती हैं उस चुटकी काट सकती हैं या थोड़ से मार सकती हैं। किन्तु इन रूखावटों के बावजूद भी, यदि कोई नौजवान गुड और नारियल तक पहुंच कर गुड खाने तथा नारियल तोड़ने में सफल हो जाता है तो, वहा पर नृत्य करती हुई लडकियों में से, वह किसी से भी विवाह करने का अधिकारी हो जाता है और वह चुनी हुई लडकी का तत्काल बहास ले जा सकता है¹।

जसाकि खरिया और हो गणजातिया में, होता है साधारणत असली (नियमित) विवाह वर वधू के माता पिता द्वारा संयोजित होते हैं यद्यपि इस संयोजन में वर वधू की भी अनुमति ली जाती है। विवाह में, इसकारण, व्यक्ति के स्वतंत्रता का सीमित स्थान मिलता है। उन्मुक्त वैयक्तिक प्रेम और विवाह परस्पर विरोधी हैं और, इसकारण विवाह के विधिवत नियमों का उल्लंघन भी हाता है। गांधी विवाह वहां आता है जहा दो विपरीतलिंगी व्यक्ति असली विवाह के नियमों की अवहेलना करके विवाह सूत्र में बंधते हैं और बाद में, उनका विवाह समाज में स्वीकृत हाता है। वैवाहिक नियमों के सामाजिक बंधन भी सांभौतिक हैं और समाज द्वारा निर्धारित मर्यादाओं के अंदर उनकी अवहेलना भी। उदाहरणार्थ, अभिभावकों की इच्छा के विरुद्ध, लडकी को भगा कर विवाह सूत्र में बंधना, खरिया गणजाति में लडकी का इच्छित पुरुष के घर जाकर पत्नी बनने का तब तक अनुरोध करना जब तक कि वह अपने प्रेमी पुरुष के घर में पत्नी और वधू के रूप में स्वीकृत

- 1 इसप्रकार की प्रथाएँ, जिनमें विवाह से पहले वर को अपनी शक्ति का परिचय देना पडता है विभिन्न रूपों में हिन्दुओं में भी पाई जाती है। लखनऊ के आस-पास के गांवों में, जब वर वाराणसी के लिये अपने घर से चलता है तो उसे लात मार कर मिट्टी की हाडी फोडनी पडती है। यदि हाणी एक ही प्रयास में नहीं टूटती है तो वर का उपहास किया जाता है।

न हो जाय तथा अपनी प्रेमिका के मृत्यु पर सिद्ध मेल कर उससे विवाह करने की अनुमति प्राप्त करना, ऐसे उदाहरण हैं जिनमें प्रचलित नियमों की अवहेलना है। किंतु, य सभी प्रकार के विवाह, समाज की मर्यादा के अंतर्गत हैं और जब ऐसे विवाह किये जाते हैं तो उन्हें समाज में स्वीकार कर लिया जाता है।

धर्मशास्त्रों के रचयिताओं ने ब्राह्मण दस आप प्राजापात्य, आसुर गंधर्व राक्षस और पशाच ये आठ प्रकार के विवाह माने हैं। आसुर वह विवाह है जिसमें वधू मूल्य दिया जाता है। गांधर्व प्रेम विवाह है और राक्षस तथा पशाच अपहरण-विवाह की श्रेणी में आते हैं। हिंदू धर्मशास्त्रों के अनुसार इन आठ विवाह प्रकारों में प्रथम चार वाछनीय हैं और अंतिम चार अवाछनीय। इनमें यह स्पष्ट होता है कि हिंदू विचारधारा के विकास में आदिवासी विवाह प्रकारों को अवाछनीय बहकर उन्हें निपथात्मक सामाजिक प्रदान करने का प्रयास किया गया है। जीर ऐसा हुआ भी है। ज्यों ज्यों गणजातियों का हिंदूकरण हुआ है उनमें हिंदू तत्वा का समावेश होता गया है। आदिवासी मान्यताओं में विवाह दो रिपमलिंगी व्यक्तियों, उनके परिवारों तथा विस्तृत सम्बन्धों समूहों में प्रजनन तथा गृहस्थी बसान के लिये एक-एक सामाजिक समझौता है जो आवश्यकता पड़ने पर ताश भी जा सकता है। आदिवासी के लिये साधारणतः विवाह का सामाजिक पक्ष धार्मिक पक्ष की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है। जिसके कारण आदिवासी विवाह में सस्कारों की वह जटिलता नहीं मिलती है जो हिंदू विवाह में मिलती है। किंतु आदिवासी विवाह का धार्मिक पक्ष सत्र गौण नहीं है। सासी विवाह में, सामाजिक और धार्मिक पक्षों का एक-सा महत्व है क्योंकि सासी परिवार धार्मिक कृत्या के सम्पन्न की एक सामाजिक इकाई है। जिस गणजाति पर हिंदूकरण का जितना प्रभाव है उसके विवाह-सस्कार में उतनी ही सस्कार जटिलता भी बड़ी है। ही गणजाति में सस्कार के दृष्टिकोण से 'अग्नी' और दिक्कू भ्रदी दो प्रकार के विवाहों का पाया जाना इसका प्रमाण है। 'द्विकू' अग्नी वह विवाह है जिसमें अग्नि की सासी बनाकर विवाह सम्पन्न कराया जाता है जबकि 'भ्रदी' विवाह में गणजाति के देवताओं की स्तुति की जाती है और उनका प्रसन करने के लिये बलि चढ़ाई जाती है। 'अग्नी' विवाह स्थानीय पुराहित द्वारा सम्पन्न होता है जबकि 'द्विकू' भ्रदी हिंदू पुरोहित के द्वारा।

आदिवासी समाज में, विवाह के लिए लड़क लड़की का चुनाव ता माता पिता करते हैं किन्तु साधारणतः विवाह मध्यस्थ द्वारा तय किया जाता है। मध्यस्थ के विभिन्न गणजातियों में अलग-अलग नाम हैं। उदाहरणार्थ ही मध्यस्थ को 'दूतम बट्टन' और गरिया टण्डिया। मध्यस्थ के द्वारा ही वधू मूल्य तय होता है। कभी-कभी, जगत् कि हो गणजाति में होता है नावा पत्नी का चुनाव करके, लड़का अपन मित्रों द्वारा अपन माँ-बाप का सूचना भिजवा देता है और वे

मन्यस्थ को नियुक्त करके विवाह तय करते हैं। आदिवासी समाज में, विवाह से दो व्यक्ति और उनके परिवारों का ही सम्बन्ध नहीं है। प्लान और गांव के सदस्य भी विवाह से उतने ही सम्बन्धित हैं जितने कि परिवार के सदस्य। यही कारण है कि विवाह ऐसे समय किया जाता है जब सभी उसमें शामिल हो सकें। बहुधा, जाड़ा की फसल काटने के बाद विवाह की तारीख रक्खी जाती है।

आदिवासी विवाह का एक अविच्छेद्य धार्मिक संस्कार न मान कर, एक समाजीकृत समझौता मानते हैं जिसके कारण आदिवासी समाज में तलाक विवाह विच्छेद आसानी से हो जाता है। खासियों में परस्त्री या परपुरुषगमन और स्त्री के बाधन के कारण विवाह विच्छेद किया जा सकता है। उसी प्रकार, भोंडों में यदि स्त्री परपुरुषगामिनी है गृहस्थों के कार्यों की ओर उदासीन है, बाध या झगडालू स्वभाव की है तो उसे तलाक दिया जाता है। खासियों और गाड़ों में तलाक के जो आधार हैं वे खरिया लोगों में भी पाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त खरिया गणजाति में यदि ग्राम पचायत किसी की स्त्री को डायन (Witch) घोषित कर देती है तो उसके पति का उसे तलाक देना आवश्यक हो जाता है। वास्तविकता तो यह है कि, आदिवासी समाज में उन सभी परिस्थितियों और कारणों के कारण तलाक हा जाता है जिनमें पति पत्नी ववाहिक समझौते को चलाने में असफल हो जाते हैं। पति पत्नी में असंगति आ जाना ही तलाक का मुख्य आधार है। तलाक देन का अधिकार पति और पत्नी दोनों का है। तलाक का निणय पचायत के द्वारा होता है। पचायत के नियम अलिखित होते हैं जिसके कारण तलाक के मुकल्मा का निपटारा व्यावहारिकता की कसौटी पर किया जाता है और तलाक की अनुमति तभी दी जाती है जब दोनों पक्ष तलाक के पक्ष में हों। जो पक्ष तलाक की मांग करता है उसे दूसरे पक्ष को हर्जाना देना पड़ता है। लुसाई गणजाति में यदि पति पत्नी को तलाक देता है तो उस वधू मूल्य का वह भ्रश देना पड़ता है जो उमकी आर बाकी होता है। किन्तु यदि पत्नी पति को छोड़ती है या परसम्बन्धों के अपराध के कारण उसे तलाक दिया जाता है तो उस वधू मूल्य में दो गई रकम वापस करनी पड़ती है। खासी गणजाति में, तलाक के बाद, बच्चों पर स्त्री का अधिकार रहता है। किन्तु अन्य गणजातियों में, बच्चों पर अधिकार की समस्या पारस्परिक समझौते द्वारा तय की जाती है। तलाक के बाद स्त्री-पुरुषों के पुनर्विवाह में कठिनाई नहीं होती है क्योंकि, आदिवासी समाज में तलाक और तलाक देन बाध स्त्री पुरुषों को अवाछनीय नहीं समझा जाता है। विधवा-पुनर्विवाह भी आसानी से हा जाता है।

आदिवासी समाज में जहाँ एक धार, रचनसम्बन्ध के सिद्धांत पर आधारित परिवार और क्लान जैसे समूह पाये जाते हैं वहाँ, दूसरी ओर धमनिरपेक्ष और धमसापेक्ष समूह भी पाए जाते हैं जिनकी सदस्यता एंटीक होनी है और जो समितियों के रूप में कार्य करते हैं। धमसापेक्ष

युवागृह

समूह, धार्मिक इतको के लिए संगठित होते हैं जिनमें नूतन पद्धत पर, क्या अनुष्ठान का सम्पन्न करने के लिए संगठित समूह। धमनिरपेक्ष एंटीक समूह के समितियों या सभ हैं जो, विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए, संगठित होते हैं। ये समितियाँ अपनी ओर अमरीका के आन्ध्रप्रदेश में पाये जाने वाले गुप्त सभ (Secret Societies) के प्रकार के भी होते हैं और मनोरंजन के लिए संगठित क्लानों के प्रकार के भी। इन समितियों के संगठन में आयु का कारण महत्वपूर्ण होता है जिसके कारण इसे आयु समूह (Age Groups) भी कहा गया है। उदाहरणार्थ गुप्त सभ (Secret Society) के सम्बन्ध में पुरुष ही ही होते हैं। इस दृष्टिकोण से भारत के आन्ध्रप्रदेश में युवा संगठन (Youth Organization) एक महत्वपूर्ण संगठन है। युवा संगठन भारतीयों द्वारा ही स्थापित हुआ और नागाओं में पाया जाता है।

युवा-संगठन अविवाहित (बुद्ध) लड़के लड़कियों की एक समिति है जिसके नियमानुसार अविवाहित लड़के लड़की युवागृह में रात्रि बिताते हैं। सभी नागाओं का युवागृह इस संवर्धित नियम का अपवाद है क्योंकि उनके यहाँ लड़के और लड़कियाँ के युवागृह अलग अलग होते हैं। विभिन्न गणजातियों में युवागृह के अलग अलग नाम हैं। युवागृह के लिए मुंडाओं और हा गणजातियों में गीतो बारा, आराओ में जावरपा या घुमकुरिया, मुंडाओं में घगरवागा गाँव में गाबुल, भोटिया में 'रगबग और एला तथा समा नागाओ में मोरग सनाओ का प्रयोग होता है। सभी नागाओं में लड़कों के युवागृह का इच्छाओं और लड़कियों के युवागृह का 'इलाइची' कहा जाता है। युवागृह इस प्रकार, एक प्रकार का युवा-संगठन है, जिसके माध्यम में अविवाहित लड़के और लड़कियाँ एक-दूसरे के साथ होते हैं यद्यपि युवागृह में सम्बन्धित प्रथाओं में अतिरिक्त पाई जाती है। उदाहरणार्थ मुंडाओं में आराओ और नागा गणजातियों में अविवाहित लड़के और लड़कियों के अतिरिक्त भावकों की द्वाारा में लड़के लड़कियाँ अलग अलग गृहों में सोते हैं जबकि अन्य के मुरिया गाँव में, अविवाहित लड़के-लड़कियाँ एक ही गृह में साथ सोते हैं।

युवागृह केवल शयनगृह ही नहीं है। युवागृह में सम्बन्धित नियमों और प्रथाओं में युवागृह की सामाजिक महत्ता स्पष्ट होती है। युवागृह गाय के बीचों-बीच या गाँव की सरहद पर बनाया जाता है। युवागृह गाय के बीचों-बीच या गाँव की सरहद पर बनाया जाता है। गाय के सना अविवाहित लड़के लड़कियों, युवागृह के सदस्य होते हैं। युवागृह की बातों का गुप्त रतना युवागृह के

सदस्य का वत य होता है। विवाह के बाद, युवागह की सदस्यता समाप्त हो जाती है गाडो में, जब किसी युवागह के सदस्य का विवाह हो जाता है तो, उसका तथा उसकी पत्नी के लिए गातुल में जा स्वागत मनागोह होता है वह वस्तुतः, उसका गातुल में विवाह समारोह होता है क्योंकि उसके बाद वह गातुल का सदस्य नहीं रहता है। वह गातुल में फिर भी आता है तो उसे मना किया जाता है और यदि वह फिर भी नहीं मानता है तो गातुल के सदस्य उसका फमल या जानबरा को नुकसान पहुंचाकर उसका आना रोकते हैं।

युवागह संगठन में अधिकारी बसे ही पाये जाते हैं जैसे कि व किसी भी समिति में पाये जाते हैं। गातुल का एक जघप न होता है जिस सरगार या मुखिया कहते हैं। उसका पद वगानुत्तम से चलता है। युवागह में मुखिया और उसके मलाह-कारा से मिलकर युवागह की कार्यकारिणी संगठित होती है। मुखिया को विशेषाधिकार भी मिलता है। मरिया गातुल का मुखिया गातुल की किसी भी लडकी को, अपनी प्रमिका बनाकर सबसाधारण में उसकी घोषणा कर सकता है। गातुल के मुखिया की प्रमिका होना गौरव और सम्मान की बात समझी जाती है जिसके लिए गातुल की प्रत्येक सदस्या लालायित रहती है।

नाच गीत, किस्म कहानिया तथा हाम परिहास के द्वारा युवागह के सदस्य परस्पर मनोरतन करते हैं। जोरात्र युवागह का वणन करने हुए टाल्टन में लिखा है कि युवागह में छापी आयु के लडके बडी आयु के लडका का बदन देखाते हैं मालिश करते हैं और उनका बाला का मवारत हैं। छापी आयु के लडकी को बडी आयु के लडका के कठिन अनुगामन में रहना पडता है। जसाकि गाता के युवागह में हाता है जहा लडके लडकिया साथ साथ रहते हैं वहा छोटी आयु के लडका का स्थान लडकिया ले लती है। मजूमदार के अनुसार युवागह में लडके लडकी अपनी अपनी आयु के अनुसार अलग अलग समूह में बडे रहते हैं—छापी उम्र के लडके लडकी एक साथ रहते हैं और बनी उम्र के एक साथ। गातुल का उगाहरण देते हुए, मजूमदार ने यह लिखा है कि एक गाव के गातुल के सदस्य कभी कभी दूसरे गाव के गातुल के सदस्य से मिलने जाते हैं गातुल के सदस्य गाता की जगन्नी जानबरो और शत्रुता से रक्षा करते हैं और कभी कभी गाव के सावजनिक बागों में हाथ बटाने हैं या जानबराका पन्न पर उन प्रमिका की भी सहायता करते हैं, जिसकी सहायता की आवश्यकता होती है। धनुष चलाने की तथा प्रतिरक्षा के उपायो की शिक्षा और अभ्यस में भी गातुल के कायन्तम का एक अंग है।

बस्तर के मरिया गाडा के युवागह का वणन करते हुए प्रिगसन ने लिखा है कि जादिवानी लडके लडकियो का काम रहस्य (Mysteries of Sex) से परिचित कराना गातुल का जाधारभूत काय है। मजूमदार के अनुसार, गातुल के लडके लडकियो में यौन सम्बन्ध का ज्ञान है लेकिन ऐसे सम्बन्ध में तो आमतौर पर पाये

जाते हैं और न गालुल उह प्रोत्साहित ही करता है। यदि काम शिक्षा ही युवागह का एकमात्र सामाजिक काम माना जाय तो यह स्पष्ट करना कठिन हो जायगा कि कि लड़क लड़कियाँ क अलग अलग युवागृह क्या पाये जाते हैं। मजूमदार का यह मत है कि युवागृह से आदिवासी समाज क ऐक्य का प्राप्ताहन मिलता है, नौजवानों की गति रचनात्मक कार्यों का द्वार प्रवाहित होती है और उह भावी कल्पना की प्रगति मिलती है। युवागृह की उत्पत्ति का कारण काम तुष्टि की शिक्षा की आवश्यकता नहीं बरन प्रतिरक्षा (Defence) की आवश्यकता है। यही कारण है कि युवा गृह या तो गाव क बीच म स्थापित होता है या गाव की सरहद पर। कालांतर म, अय जनक प्रयाए युवागृह म सम्बन्धन हो गई हैं जो मरिया गोडा क गालुल संगठन म स्पष्ट है।

६

धर्म और जादू अनाधिक के प्रति विश्वास तथा कर्मकाण्ड

आदिवासी समाज और मरुति धर्मसापेक्ष (Sacred) है न कि धर्मनिरपेक्ष। धर्मसापेक्ष और धर्मनिरपेक्ष की द्विभाजना कतमान योरापीय सभ्यता की दृष्टि है। आदिवासी धर्म इमादयत की भाँति, न तो ऐतिहासिक और मरुटित धर्म है और न उमम रादान (Dogmas) और मिशनरीपन ही पाये जाते हैं। रादानों और मिशनरीपन की अनुपस्थिति म आदिवासियों म न तो अपने धर्म के सुसुविचरण की प्रवृत्ति मिलती है और न धर्मविद्या (Theology) का निरूपण करने की प्रवृत्ति। आदिवासियों धर्म जहाँ ईश्वरवाणी है वहाँ बहुदेववाणी भी। आदिवासी धर्म मानवीय अलौकिक गतिवा का दकताआ क रूप म पूजना है न क अलौकिक तथा प्राधि-दैविक अवैयक्तिक गति (Impersonal Supernatural Force) म भी विश्वास करता है और भूत प्रता तथा डाइनों स भी डरता है। वह प्राथना भी करता है और अपने दकताआ की तुष्टि के लिए बलि भी चता है। जत्र यत्र म भी उमका विश्वास है और दकताआ म भी। धर्म वह प्राधिदैविक का अलौकिक मानवर प्राथना के द्वारा उमका अनुष्ठा की कामना करता है ता साथ ही साथ, वह यह भी मानता है कि प्राधिदैविक की इष्टतिदि करक, उमक द्वारा मनायाहित पल भी प्राप्त किया जा सकता है और इच्छित, मारण माहन उच्चाहन तथा जनक जनों मनों का प्रयाग करता है। वह पेडा का पूजना है और पनाड तथा परधरा का भी। आदिवासी धर्म तथा औद्योगिकी द्वारा, धर्म वह अपने और मरुति क बीच तथा सामाजिक संगठन के द्वारा, यदि अपने तथा सापिदा क बीच मे तात्काल्य स्थापित करता है तो धर्म क द्वारा वह अपने प्राधिदैविक और प्राकृतवास क बीच म समाधान

ज्ञान का प्रयास करके, जीवन के उन स्थलों में भावात्मक सुरक्षा पाने का प्रयास करता है जहाँ अथ किसी प्रकार की मानवीय सुरक्षा उपलब्ध नहीं है। आदिवासी के लिए धर्म, मानव, प्रकृति तथा समाज में, आधिदैविक के द्वारा भावात्मक समायोजन लाने का एक माध्यम है।

आदिवासी धर्म एक भी है और अनेक भी। प्रत्येक गणजाति की अपनी धार्मिक प्रथाय और विश्वास है। उदाहरणार्थ, मिर्जापुर जिले की कारवा आदिवासी गणजाति के आदिवासियों का यदि निरानार भगवान या 'ईश्वर' धर्म के कुछ में विश्वास है तो साथ ही साथ वह फसल वर्षा और जानवरों रूप के अधिष्ठाता देवों में भी विश्वास करते हैं। दुग्धी की लगभग सभी पहाड़ियाँ और जलस्रोत, किसी न किसी देवी या देवता से सम्बन्धित हैं। गाव के आस पास आने वाले पीपल पलास और महुआ के पेड़ प्रेतों और चुड़ैलों के वासस्थान माने जाते हैं। कोरवा जिन देवताओं की मानता है उनके नाम हैं राजा चंदोल टिकरी के बरमवाबा भरमगावा, मुद्दिसेमर के बिलचर राजा गुरहर, राजा मोरहमन, अहितर (एक पहाड़ी का नाम) के महाराज और बरमडन के महाराज। कोरवा के द्वारा पूज्य देवियों में बुढीमाई शीतला माई मिरगा रानी काठा रानी, दक्खिनी माई कोठा की ज्वालामुखी और काटर की देवी मुख्य हैं। इन देवी देवताओं की कारवा गणजाति के पड़ोस में रहने वाली अन्य गणजातियाँ भी मानती हैं। 'महादेवी कारवा लोगो का मुख्य देवता है जिसका वासस्थान प्रत्येक गाव के पूर्व में आने वाला बास का भुरमुट माना जाता है। प्रत्येक ऐसे भुरमुट में, इस देवता के प्रतीक के रूप में एक पत्थर रक्खा रहता है। कोरवा लोगो का विश्वास है कि पत्थर और बास का भुरमुट अत्यंत प्राचीन काल के हैं और 'महादेवी देवता गाव के लोगो की बीमारी महामारी भयानक सकती और दुष्घटनाओं से रक्षा करता है। प्रत्येक तीन साल बाद, देवता को प्रसन्न करने के लिये एक सफेद बछड़े की बलि दी जाती है। बछड़े के न मिलने पर सफेद बकरी या सफेद मुर्गी की बलि दी जाती है। 'महादेवी वाले बास के भुरमुट के समीप ही एक दूसरा बास का भुरमुट (देवघर) होता है जिसमें रखे हुए पत्थर गाव के सभी लोगो (जिनमें कारवा और अन्य जातियाँ शामिल हैं) के देवताओं के प्रतीक होते हैं। सूखा पटने पर, कोरवा गणजाति के लोग पहाड़ियों पर से बड़े बड़े पत्थर ढनगाते हैं, क्योंकि उनका विश्वास है कि पत्थरों की गडगडाहट बादलों की गडगडाहट को आकर्षित करके, वर्षा लायगी।

मुण्डा और हाँ गणजातियाँ, एक प्रकार की अवैयक्तिक आधिदैविक शक्ति में विश्वास करती हैं, जिसे वे बोगा के नाम से सम्बोधित करती हैं। बोगा एक

अव्यक्तक भौतिक शक्ति है जिसके ससग से भौतिक वस्तुओं और व्यक्तियों में अलौकिक गुण उत्पन्न होते हैं। बागा का एक रूप सिगबागा है जो ही गणजाति में मूय देवता के समान पूजा जाता है। ही ओर मुण्डा गणजातियों का विश्वास है कि बोगा, सपा के द्वारा, भावी जीवन की भ्रार सवेत करता है। बोगा ही सभी प्रकार की ऊर्जा का स्रोत है। जिस किमी भी वस्तु में ऊर्जा की अभिव्यक्ति होती है वह बोगा ही है। साइक्लि वाण्डजिन और हवाई जहाज चलाने-अलग बागा हैं। हवाई जहाज इन सब में बड़ा बागा है। जिस व्यक्ति में बागा की जितनी अधिक मात्रा होगी, उसमें गुण और उसकी प्रतिष्ठा, अयो से, उतनी ही ज्यादा होगी। जिस किसी नयी वस्तु से नया समायाजन का सन्तुलन बिगड़ जाता है, व सब बोगा हो जाते हैं। इन गणजातियों के विश्वासों के अनुसार उनके प्राकृतवास के अनक तत्व और जानवर बोगा हो गए हैं। वर्षा न होने पर, ही गणजाति के लोग, आग जलाकर, धुएँ के बादल उठाते हैं क्योंकि उनका विश्वास है कि धुएँ के बादल, वर्षा के बादलों को आकृष्ट करते हैं।

मध्य भारत में मुरिया गाड़ों के बारे में लिखते हुए एल्विन ने लिखा है कि मुरिया गाड़ों का धर्म हिन्दुत्व के गैर सम्प्रदाय के अधिक समीप है, यद्यपि उसकी अपनी निजी बिगिष्टता है। मुरिया धर्म में शिव के साथ अन्य अनक देवताओं की पूजा की जाती है जिन्हें मुरिया लोग ने मानवीय रूप दिया है। मुरिया लोग के अपने पुरोहित होते हैं। व मतवा के लिए छतरी (Shrine) मंदिर और भापड़े बनाकर उनका मानव देवता के रूप में पूजन है। मुरिया धर्म, एक ओर, तत्काल जीवन का आधार है और, दूसरी ओर, देवताओं तथा जावित और मन मनुष्या को एकसूत्र में बांधता है। आत्मवक्ति से वचन के लिए गाथा में, अनक एगी प्रथाएँ पायी जाती हैं जो मुरिया धर्म का अभिन्न अंग हैं।

इस प्रकार, इदरवाद, बहुदेववाद, प्रकृतिवाद बागावाद आत्मावाद शक्तिवाद तथा गैरवाद भूत प्रता चुड़ैल और शक्तिवाद तथा सौम्य अग्नि परीक्षा (Ordeal) जन्म मंत्रा, गन्धुन अपगन्धुना, टाटम और टबू में विश्वास आत्मावासी के धार्मिक विश्वासों और कर्मकाण्डों में शामिल हैं। हिन्दू विचारधारा के दृष्टिकोण से आत्मावासी धार्मिक विश्वास और प्रथाएँ वाममार्गी तथा आगमवादी परम्पराओं में आती हैं। वाममार्गी प्रथाओं के बड़े ही दिलचस्प रूप दर्शन का मिलते हैं। कोरवा का विश्वास है कि पत्थरों की गडगडाहट वर्षा के बादलों का आकृष्ट करती हैं, ही के विश्वास के अनुसार, धुएँ के बादल, वर्षा के बादलों को आकृष्ट करते हैं, किन्तु साडा का यह विश्वास रहा है कि भरवलि के समय बलि दिया जान वाला मनुष्य का आत्मा न गिरते हुए आमुआ तथा उमक शरीर से निरलती हुई गूँ में

की ओर अधिक झुकी हुई है। ग्राम सामाजिक व्यवस्था में नट कजर (यू० पी० और बिहार में) और बागड़ी तथा बरगुण्डा (मध्यप्रदेश में) इसके उदाहरण हैं। नट बहुधा गाँवों के किनारे पर रहते हैं पत्थर की बस्तुएँ (मुख्यतया चक्की सिल और बट्टा) बनाते हैं, शहद निकालते हैं शिकार करते हैं सिरकी के पाल बनाकर बचते हैं और पचायतो में सगठित रहते हैं। किसी कुएँ वाग या मंदिर के किनारे बैठकर, दूर से ब्राह्मण से सत्यनारायण की कथा सुन लेते हैं और अपने विविष्ट दबी देवताओं को भी पूजते हैं। उनके यहाँ दहेज नहीं बधू धन की प्रथा है। मित्रता में परदा नहीं है। कलावाजी दिखाकर या नाच गाकर नट गाँववालों का मनोरंजन भी करते हैं और जहाँ जहाँ मुविधा मिलती है वहाँ खेती भी करते हैं। वे गाँव वालों पर निर्भर करते हैं किन्तु गाँववालों उनसे डरते हैं और दूर रहते हैं। उनकी अपनी अलग धाँसी भी है। नट एक अतिविवाही समूह है। इस प्रकार नट जाति की श्रेणी में भी आते हैं और गणजाति की भी। नट एक गणजातीय गणजाति है।

जाति व्यवस्था में गणजातीय जातियों की संख्या काफी ज्यादा है जिनकी विवेचनाएँ इस प्रकार हैं। गणजातीय जातियों के नाम वरुण नामावलि में भिन्न होते हैं। एक स्तर की अनेक उपजातियों का एक ही पूजक से अपनी उत्पत्ति मानना उनके सामाजिक सगठन में टाटेमा का पाया जाना आदिवासी देवताओं में विश्वास बना रहना और ब्राह्मण के स्थान पर जाति के पुरोहित का उपयोग करना गणजातीय जातियों की मुख्य विशेषताएँ हैं। गणजातीय जातियों का प्रसार एक बड़े क्षेत्र में रहता है। गणजातियों में अतिविवाही के नियम उतने कठोर नहीं होते हैं। उच्च जातियों की अपेक्षा गणजातीय जातियों में, नारियाँ पर्दा प्रथा का कम अनुसरण करती हैं, अधिक जीवन में अधिक सत्रिय भाग लेती हैं और उनमें विधवा पुनर्विवाह तथा तलाक़ माय होता है। वेबर के अनुसार जहाँ एक ही पेशे को करने वाला कई जातियों में अलग अलग गणजातीय नाम पाये जाते हैं वहाँ गणजातीय जाति अधिक स्पष्टता से पहचानी जा सकती है। उत्तर भारत के विभिन्न क्षेत्रों में पायी जाने वाली अतिविवाही चमार जातियाँ इसका उदाहरण हैं। अहीर मुनार और अहीर लोहार जैसे अतिविवाही समूह इसका दूसरा उदाहरण हैं। ऐसी गणजातियाँ सम्भवतः आर्थिक विशेषीकरण और सम्पत्ति तथा शिल्पकारिता से उत्पन्न हान वाली विभेदीकरण के कारण उत्पन्न हुई हैं। आर्थिक विशेषीकरण एक ही गणजाति में कई शिल्पी समूहों को जन्म दे सकता है या एक ही गणजाति का एक शिल्पी समूह का।

उच्चतम स्तर की जाति और गणजाति भारतीय संरचना के दो विभेदी किनारे हैं जिनके बीच में विभिन्न सामाजिक प्रतिष्ठाओं वाले अनेक अतिविवाही समूह आते हैं जो या तो आदिवासी स्तर से जाति संरचना में आये हैं या अतिविवाह के नियमों को भंग करने या जाति के नियमों की अवहेलना करने या काइ नया पेशा अपना देने के कारण उच्च स्तर से अधःपतित हुई हैं। गणजाति का जाति में रूपांतरण

अत्यन्त प्राचीन काल से चलता चला आ रहा है। इस रूपान्तरण की कई सत्रमण-कालीन अवस्थाएँ मिलती हैं। कहीं गणजाति में हिन्दुत्व और जाति-मरचना की विशेषताओं का सातमीकरण मिश्रित रूप में मिलना है और कहीं जब किसी गणजाति का कोई भाग ग्राम-व्यवस्था में बड़ी जातियाँ का आश्रित-अभ्यागत समूह बन जाती है, तो वह जाति का रूप ले लेता है और कहीं प्रचार के द्वारा गणजाति के सदस्यों को हिन्दुत्व में धीरे धीरे सम्मिलित किया जाता है। हिन्दुत्व का प्रचार हिन्दू सभ्राटों, ब्राह्मणों और गणजाति के अभिजात वर्ग द्वारा हुआ है।

मजूमदार और मदन¹ ने रिमले के आधार पर गणजाति के जाति में रूपान्तरित होने की पाँच प्रक्रियाओं का वर्णन किया है। पहली, गणजाति के समूह और अभिजात वर्ग के लोग साधारणतया राजपूत जाति का रूप ग्रहण करके, ब्राह्मण द्वारा प्रपन्नो वगावली बनवा कर हिन्दुत्व का ग्रहण करते हैं और हिन्दुत्व के प्रसार का माध्यम बन जाते हैं। प्राचीन भारत में, शासक हिन्दूकरण का मुख्य प्रेरक रहा है। इतिहास में इस बात के अनेक प्रमाण मिलते हैं। गंगा के मैदान के पूर्वी भाग से उत्तर दक्षिण में कुमारी अन्तरीप तक, राजाओं ने ब्राह्मणों को जागीर देकर अपने यहाँ आमंत्रित किया ताकि उनकी महायत्ना से वे अपने राज्य का हिन्दू मान्यताओं के अनुसार मजबूत कर सकें और वे ब्राह्मणों की सहायता में, अपने का बंध शासक (Legitimate Ruler) घोषित कर सकें²। अठारहवीं शताब्दी में गिवाजी का क्षत्रिय घोषित किया जाना और उनके द्वारा हिन्दू राज्य की स्थापना का प्रयास इसका एक उदाहरण है। दूसरी, गणजाति के सदस्यों का किसी हिन्दू पथ या सम्प्रदाय में सम्मिलित होकर और अपना आदिवासी नाम त्याग कर एक हिन्दू जाति का रूप ग्रहण करना। तीसरी, किसी एक गणजाति या किसी एक गणजाति के एक बड़े समूह का हिन्दुत्व के विचारों और प्रथाओं का ग्रहण करके, एक जाति नाम ग्रहण करना। चौथी, बिना आदिवासी नाम का त्याग किये हुए, किसी एक गणजाति या उसके एक बड़े भाग का हिन्दुत्व का स्वीकार करना। पाँचवीं, किसी गणजाति के एक समूह व्यक्ति का किसी जातिविशेष और एक गोत्र की मना ग्रहण करके, उस जाति में विवाह करना और उसके उदाहरण का अनुसरण करते हुए गणजाति के अन्य सदस्यों द्वारा बसा हो करके गणजाति में जाति की स्थापना करना।

जहाँ आदिवासी और हिन्दू सम्पर्क में आय है, वहाँ आदिवासी, हिन्दू पथाओं का पाना, विश्वास, देवी देवताओं और त्योहारों को अपनाकर, हिन्दूकरण की ओर अग्रसर हुए हैं। एक बार, गणजातियों स्वयं हिन्दुत्व की ओर अग्रसर हुई हैं यद्यपि हिन्दूकरण के द्वारा जाति का रूप लेने पर, गणजाति का अनेक सामाजिक नियोग्य-

1 मजूमदार एण्ड मदन वही पृष्ठ 243-44

2 वेबर, मक्स दि रिलीजन अफ इण्डिया पृष्ठ 23

ताम्रा का सामना करना पडा है। यही नही उह ताम्रास भक्षण और मदिरा भवा जसो अनक अपनी प्रयाभा की छोडना पडा है। दूसरी आर हिंदू समाज, गणजातियो को पराजित करके, उह हिंदुत्व के प्रभाव मे लाये हे। उनका ध्यान सम्भवत राज नैतिक मता क द्वारा राजस्व बढाने का स्वाथ रहा ागा। तीसरी आर, गणजाति के दासको ने ब्राह्मणो की सहायता से राजपूत बनने की कागिश की और व उसमे सफल भी हुए। चौथी ओर ब्राह्मणो न जहा, एक ओर गण जातियो क अभिजात वर्ग को राजपूत बनान मे सहायता दी वहा, दूसरी ओर, हिंदू जाति व्यवस्था म स्थान पान के लिए लालायित गणजातियो का, जाति का रूप ग्रहण करन मे नेतृत्व किया। हिंदू समाज म यदि एक ओर, उच्चस्तर के ब्राह्मण रह है तो, दूसरी ओर निम्न स्तर के ब्राह्मण जा निम्नस्तर की जातियो के पुराहित रह हे। चवरे का मत है कि आर्थिक स्वाथ तथा अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा का रक्ष बनाय रखने क लिए ब्राह्मणाने गणजातिया का नेतृत्व किया। आज भी जो निम्न स्तर की जाति अपना सामाजिक स्तर उठाने क लिए लालायित है वह ब्राह्मणो की सवाएँ प्राप्त करन का प्रयास करती है और एम ब्राह्मण सत्ता उपलब्ध भी रहत है। इसी सद्भ म दूसरा विचारणीय तथ्य यह है कि भारत क सभी एतिहासिक सुधारवादी आदालतो न वे से प्रेरणा ली है सभी न जाति का विरोध किया है और वर्ण का प्रतिपादन किया है और जनवाद तथा बुद्धवाद का छोड कर लगभग सभी ब्राह्मणो क चलाय हुए है तथा जातिविरोधी हाकर भी वे जाति की सत्मीकरण की गतिन के शिकार हो गए। जना म जाति प्रथा इसका प्रमाण है।

ब्राह्मणो ने हिंदुत्व का प्रसार दो रूपो म किया है। एक ओर उहान आदि वासियो को अपनी म्वायें अपित की, उह हिंदू विश्वास और प्रथाओ से अवगत करा कर उनमे तथा हिंदुत्व म सांस्कृतिक समीपता का बढावा दिया औ प्रत्येक गणजातीय समूह को पौराणिक प्रमाणो के आधार पर वय जाति का रूप करार दिया। ब्राह्मणाने इस विचारधारा का प्रचार किया कि प्रत्येक गणजाति पहले ही स जाति है और उसके प्रमाण उहोन पुराणा और महाभारत म हूँ निकाल। यदि किसी गणजाति या जाति का स्तर निम्न भी था ता उहान यह कर कि अमुक समूह मूलत क्षत्रिय था और वन्कि कमकाड भूलने क कारण उसका अध पतन हुआ है, उहान उमे आत्मविश्वास भी बढाया और भावी प्रगति का आशा भी बयोकि जिसका अध पतन वन्कि कमकाड और पान की अवहत्या क कारण हुआ है वह उनको अपनाकर पुन अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा का उठा सकता है। चवरे पुराण म चमारा का मूलत चवरेवशी क्षत्रिय मिद्ध करना इस प्रक्रिया का एक उदाहरण है। दूसरी ओर, सुधारवादी आदालतो क द्वारा ब्राह्मण ने जाति की भत्सना की, वर्मा नुसार वर्ण का श्रेष्ठ माना और बर्दिक परम्परा का इस ढंग से निवचन किया कि वह व्यापक रूप से लागू की जा सक। दयानंद द्वारा हिंदू क स्थान पर आय शब्द का

प्रयोग करना, आय का अर्थ श्रेष्ठ करना और, ईसाई तथा इस्लाम के समान, आय-यम की श्रेष्ठता प्रतिपादित करना इस प्रक्रिया का आधुनिकतम ऐतिहासिक प्रमाण है। म्प्रसारक आन्दोलनों से जो हिन्दुत्व के निम्न स्तर पर आ चुके थे, उन्हें एक नया उत्साह मिला और जो हिन्दुत्व की सीमा में थे हिन्दुत्व में आकर एक बंध स्थान पान के लिए प्रेरित हुए। मध्यकालीन भारत के भक्ति आन्दोलनों के माध्यम से अनेक गणजातीय जातियाँ हिन्दुत्व में बंध स्थान पान में सफल हुई हैं।

मुधारवादी आन्दोलनों जाति का विराय किमा है किन्तु वस्तुतः व जाति के ही प्रसार में सहायक हुए हैं। प्रत्येक मुधारवादी आन्दोलन में व जातियों के साथ आकृष्ट हुए किन्तु उनमें से प्रत्येक जाति के साथ अपनी ही जाति विरोधी विचारों के कारण, एक जलग विगिष्ट समूह बन गए। उधर जसाकि विगायत सम्प्रदाय का हाल हुआ है मुधारवादी सम्प्रदाय ही का उत्तर में एक जाति बन गया। चूँकि मुधारवादी आन्दोलन में सभी स्तर की जाति के साथ आत हैं इसकारण जसा जैसी शिक्षा लिपायता ब्रह्मसमाजियों और आयसमाजियों में हुआ मुधारवादी सम्प्रदाय जाति में मुक्त नहीं हो पाता है और मुधारवादी सम्प्रदाय में आने वाला प्रत्येक व्यक्ति अपनी जाति का नहीं छोड़ पाता है। इसका परिणाम यह होता है कि प्रत्येक मुधारवादी सम्प्रदाय में अन्तर्विवाही जाति समूह उत्पन्न हो जाते हैं। उदाहरणार्थ, आयसमाजी ब्राह्मण आयसमाजी चमार में नहीं मिल पाता है। क्योंकि उम मिलने से न तो चमार की निश्चित सामाजिक प्रतिष्ठा रह पाती है और न ब्राह्मण की। आयसमाजी चमार चमारों में एक विशिष्ट समूह बन जाते हैं और आयसमाजी ब्राह्मण ब्राह्मणों में। सिविल जाट मिकर खत्री इत्यादि का उत्तर में अलग अलग जातियाँ बन जाती हैं। जाति से बहिष्कृत व्यक्ति, जाति से बहिष्कृत होगा है न कि हिन्दुत्व से और पुन जाति में वापस जा सकता है। जाति का सुयुक्तिरूप रूप है जिसमें उन्हें सहाय मिला है जो जाति विरोधी रहे हैं। इसप्रकार जाति एक स्वयं-वर्धित सस्था रही है और उसके द्वारा हिन्दुत्व का प्रसार होता है। जाति के द्वारा विभिन्न समूहों का समाज में बंध स्थान मिलता रहा है और अपनी इसी विशेषता के कारण जाति इतनी गतिशीली रही है कि इस्लाम और दसाइयत भी इसके प्रभाव में न बच सके।

विहार में पालामऊ तथा उत्तरप्रदेश में मिजापुर के खरवार जनक धारण करते हैं और उच्चवर्गी होने का दावा करते हैं। दोनाजपुर, रणपुर, जरापाइगुडी और कूचबिहार के पाँचवा क्षत्रियवर्गी हान का दावा करते हैं और अपने का राज वर्गी कहते हैं। गाड़ अपने को राजपूत मानते हैं। भील गिब की पूजा करते हैं। रणभग सभी गणजातियों में मुधारवादी आन्दोलन चले हैं जिनमें एकेश्वरवाद का प्रति-रक्षण किया गया है और मात मंदिरों के छोड़ने पर जोर दिया गया है। वर्तमान समय में निम्न स्तर की जातियों में यह आन्दोलन काफी व्यापक है। लखनऊ के चमारों

ने स त रविदास को देवतुय मान लिया है, उनके नाम पर एक मंदिर की स्थापना भी की है लेकिन उसमें विष्णु की मूर्ति को उच्चतम आसन प्राप्त है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि इस बात पर सघप भी हुआ कि रविदास की मूर्ति के साथ विष्णु की मूर्ति रखी जाय या नहीं, और अंत में बहुमत इसी पक्ष में रहा कि रविदास के साथ विष्णु की मूर्ति रखी जाय और उसे उच्चतर आसन दिया जाय। इन विकासो का ग्राहणों की चालाकी मान नहीं कहा जा सकता है और न इस ग्राहणों का प्रसार। वास्तविकता तो यह है कि जरा हिंदुत्व एक विकासशील सचयी सांस्कृतिक प्रक्रिया रहा है वहाँ साथ ही साथ गणजाति और हिंदुत्व की सीमा में स्थित गणजातीय जातियाँ हिंदुत्व में आने के लिए प्रेरित रही हैं। ग्राहण तो इसके एक माध्यम मान रहे हैं। ग्राहणों ने इस प्रक्रिया को सुयुक्तिवत् किया है और उन्होंने इस प्रयास में, पौराणिक कथाओं के आधार पर यह प्रतिपादित किया है कि गणजाति और गणजातीय जाति दोनों पहले ही से हिंदुत्व का अंग हैं और उन्हें हिंदुत्व में स्थान मिल सकता है बशर्ते कि वे ग्राहणवादी कल्पाचार को अपना लें। जो प्रेरणा स्रोत पहले ही से विद्यमान है ग्राहणों की पूर्ति का एक माध्यम रहे है।

तब प्रश्न उठता है कि गणजाति के जाति में रूपांतरित होने के प्रश्न क्या हैं? वेबर के मत में सामाजिक तथा राजनतिक प्रभुता सम्पन्न वर्गों के अविकारों को एक सुनिश्चित बंधता प्रदान करने में, प्रभुता सम्पन्न वर्गों में और पुराहिताई के बीच सचिव एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक प्रमेय है। भारत में विशेषतः हिंदूकालीन भारत में ग्राहण पुराहिता के रूप में इसी सचिव के एक माध्यम रहे हैं। हिंदुत्व ने जब एक सुनिश्चित धर्म का रूप ले लिया तब ग्राहणों के माध्यम से, ग्राहण वर्ग के अविकारों को धार्मिक बंधता मिला। इसी कारण हिंदू और आदिवासी ग्राहणों ने ग्राहणों के माध्यम से, हिंदूकरण के प्रसार के लिए प्रयत्न किया। किंतु इसका दूसरा पक्ष भी है। ग्राहणों के माध्यम से, हिंदुत्व विभिन्न गणजातीय समूहों की सामाजिक प्रतिष्ठाओं आर्थिक भूमिकाओं तथा स्वार्थों की बंधता (Legitimation) का कारण भी बना। जाति पंचायत के अंतर्गत संगठित और सामाजिक व्यवस्था में एक विशेष आर्थिक भूमिका निभाते हुए जाति, वस्तुतः एक ऐसे अंतर्विवाही, और विस्तृत सम्बन्धी-समूह (Extended Group) के रूप में विकसित हुई, जिसका मूल रूप ट्रेड यूनियन का सा रहा है। जब गणजाति अपने क्षेत्र और अपनी आर्थिक आत्मनिर्भरता का त्याग कर जाति या गणजातीय जाति के रूप में, हिंदुत्व में प्रविष्ट करती है तो जहाँ उसे बहिष्कृत जातियों की नियोग्यता का शिकार होना पड़ता है, वहाँ, एक पक्ष पर एकाधिकार तथा एक स्तर विशेष की सामाजिक प्रतिष्ठा मिलने के कारण, उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा और उसके आर्थिक एकाधिकार को धार्मिक बंधता भी मिलता है। यजमानी प्रथा, जिसके द्वारा हर जाति के लोग को अपने अपने पैसे के अनुसार कुल निश्चित परिवारों की सेवा और उसके बदले में

आर्थिक लाभ लेने का अधिकार मिलता है से विभिन्न समझों के आर्थिक स्वाध और भी वैधिक तथा सुरक्षित हो जाते हैं। शिल्पी ममूहा को इसप्रकार की वधता से, और भी सुरक्षा मिली। इसप्रकार हिन्दुत्व में निहित सामाजिक प्रतिष्ठा और उसमें सम्बन्धित सम्भव आर्थिक लाभों का मिलने वाली धार्मिक वैधता (Religious Legitimation) है।

जाति और गणजाति दोनों जन्म पर आधारित समूह हैं। गणजाति आत्मनिर्भर है पर जाति नहीं। जाति जन्म पर आधारित सामाजिक प्रतिष्ठा प्रणाली का एक अंग है। गणजाति के जाति में रूपांतरित होने का अर्थ है गणजाति का जन्म पर आधारित सामाजिक प्रतिष्ठा प्रणाली में, एक स्तर मिलना और, आर्थिक आत्मनिर्भरता व स्थान पर अन्तर्निर्भरता और उसके साथ साथ धार्मिक विशेषाधिकारों का मिलना। इस रूपांतरण में, गणजाति की केवल एक विशेषता लुप्त होती है और वह है उसकी सामाजिक धार्मिक आत्मनिर्भरता। गणजाति जन्मजात की सदस्यता अन्तर्वैवाहिकी तथा पवायती समूहों के लिये बने रहने है और साथ ही साथ, उसके सामाजिक अस्तित्व को एक मायता प्राप्त धर्म के आधार पर वधता भी मिलती है। अतः, गणजाति का जाति में रूपांतरण, गणजाति का केवल आर्थिक रूपांतरण है। जाति संरचना के माध्यम से गणजाति को मिलने वाली प्रतिष्ठा वैध और जन्मजात है किन्तु अपरिवर्तनीय नहीं है क्योंकि हिन्दुत्व में सिद्धांततः सामाजिक प्रतिष्ठा का आधार जन्म नहीं, कम रहा है। कम को ब्राह्मणवादी बहुराज्य और मायताओं पर आधारित करके जब इस बात पर जोर दिया गया कि कम के आधार पर वर्ग-परिवर्तन करके सामाजिक प्रतिष्ठा की उच्चोच्च परम्परा में उच्चतर स्तर प्राप्त किया जा सकता है तो एक ओर, हिन्दुत्व गणजातियों के लिए उत्तरोत्तर हिन्दूकरण के लिए मार्ग प्रशस्त किया गया और, दूसरी ओर, जाति-व्यवस्था के निम्न स्तर पर आने वाली गणजातियों को भावी उद्धार की आशा प्रदान की गई। पारलौकिकता और भुक्ति की धारणाओं से यह आशा और भी बलवती हुई। जाति प्रथा के विरुद्ध उठने वाले सुधारवादी आन्दोलनों ने जब वर्ण सिद्धांत का आश्रय लिया तब गणजातियों के उत्तरोत्तर हिन्दूकरण और सामाजिक धनिष्णुता का मार्ग और भी प्रशस्त हुआ और दबो हुई जातियों के लिए हिन्दुत्व में उद्धार की जा आशा निहित थी, वह और भी बलवती हुई।

गणजातियों के लिए, हिन्दुत्व एक दाहरी प्रेरक शक्ति रहा है और, अपनी इसी दाहरी प्रेरणा शक्ति के कारण, हिन्दुत्व एक दुनियाँ सामाजिक सांस्कृतिक शक्ति रहा है। जैनवाद और बौद्धवाद जैसे उद्धारवादी धर्म ऐसी शक्ति न दे पाये। इसकारण आदिवासीयों में फलने के बावजूद भी वे हिन्दुत्व में आत्मसात हो गये। इस्लाम और ईसाईयत भी वह शक्ति न दे सके। आदिवासी आज भी हिन्दुत्व की ओर उतना ही आकृष्ट है। आज आदिवासी हिन्दू महाजन, हिन्दू व्यापारी, हिन्दू

ने सत रविदास का देवतु-य मान लिया है, उनके नाम पर एक मन्दिर की स्थापना भी की है लेकिन उसमें विष्णु की मूर्ति को उच्चतम आसन प्राप्त है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि इस बात पर सघप भी हुआ कि रविदास की मूर्ति के साथ विष्णु की मूर्ति रखी जाय या नहीं और अंत में बहुमत इसी पक्ष में रहा कि रविदास के साथ विष्णु की मूर्ति रखी जाय और उसे उच्चतर आसन दिया जाय। इन बिकासी का ब्राह्मणों की चालाकी मात्र नहीं कहा जा सकता है और न इसे ब्राह्मणों का प्रसार। वास्तविकता तो यह है कि जहाँ हिन्दु धर्म एक विकासशील सचयी सांस्कृतिक प्रक्रिया रहा है, वहाँ साथ ही साथ गणजाति और हिन्दुत्व की सीमा में स्थित गणजातीय जातियाँ हिन्दुत्व में आन के लिए प्रेरित रही हैं। ब्राह्मण तो इसके एक माध्यम मात्र रहे हैं। ब्राह्मणों ने इस प्रक्रिया को सुयुक्तिवृत्त किया है और उन्होंने इस प्रयास में, पौराणिक कथाओं के आधार पर यह प्रतिपादित किया है कि गणजाति जो गणजातीय जाति दाना पहल ही से हिन्दुत्व का अंग है और उन्हें हिन्दुत्व में स्थान मिल सकता है बशर्ते कि वे ब्राह्मणवादी कल्पाचार को अपना लें। जो प्रेरणा स्रोत पटल ही से विद्यमान हैं ब्राह्मण असकी पूति का एक माध्यम रहे हैं।

तब प्रश्न उठता है कि गणजाति के जाति में रूपांतरित होने के प्रश्न कहाँ हैं? वेबर के मत में सामाजिक तथा राजनतिक प्रभुता सम्पन्न वर्गों के अधिकारों को एक सुनिश्चित बधता प्रदान करने में प्रभुता सम्पन्न वर्गों में और पुराहिताई के बीच सचि एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक प्रभय है। भारत में विशिष्ट हिन्दूकालीन भारत में ब्राह्मण पुराहिता के रूप में इसी सचि के एक माध्यम रहे हैं। हिन्दुत्व ने जब एक सुनिश्चित धर्म का रूप ले लिया तब ब्राह्मणों के माध्यम से शासक वर्ग के अधिकारों का धार्मिक बधता मिली। इसी कारण हिन्दू और आदिवासी नामको ने, ब्राह्मणों के माध्यम से, हिन्दूकरण के प्रसार के लिए प्रयत्न किया। किन्तु इसका दूसरा पक्ष भी है। ब्राह्मणों के माध्यम से हिन्दुत्व विभिन्न गणजातीय समूहों की सामाजिक प्रतिष्ठानों, आर्थिक भूमिकाओं तथा स्वार्थों की बधता (Legitimation) का कारण भी बना। जाति पंचायत के अंतर्गत संगठित और ग्राम-आर्थिक व्यवस्था में एक विशेष आर्थिक भूमिका निभाते हुए जाति, वस्तुतः, एक ऐसे अंतर्विवाही, और विस्तृत सम्बन्धी समूह (Extended kinship group) के रूप में विकसित हुई, जिसका मूल रूप टूट यूनिट का सा रहा है। जब गणजाति अपने क्षेत्र और अपनी आर्थिक आत्मनिर्भरता को त्याग कर, जाति या गणजातीय जाति के रूप में हिन्दुत्व में प्रविष्ट करती है तो जहाँ उसे बहिष्कृत जातियों की नियंत्रितता का पिन्कार होना पड़ता है वहाँ, एक पक्ष पर एकाधिकार तथा एक स्तर विशेष की सामाजिक प्रतिष्ठा मिलने के कारण, उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा और उसके आर्थिक एकाधिकार को धार्मिक बधता भी मिलता है। यजमानी प्रथा, जिसके द्वारा हर जाति के लोग को अपने अपने पेशे के अनुसार कुल निश्चित परिवारों की सेवा और उसके बदले में

आर्थिक लाभ लेने का अधिकार मिलना है से विभिन्न समूहों के आर्थिक स्वायत्त और भी अधिक तथा सुरक्षित हो जाते हैं। शिल्पी समूहों को, इस प्रकार की वधता से, और भी सुरक्षा मिली। इस प्रकार, हिन्दुत्व में निहित सामाजिक प्रतिष्ठा और उसमें सम्बन्धित सम्भव आर्थिक लाभों का मिलने वाली धार्मिक वैधता (Religious Legitimation) है।

जाति और गणजाति दोनों जन्म पर आधारित समूह हैं। गणजाति आत्मनिर्भर है पर जाति नहीं। जाति जन्म पर आधारित सामाजिक प्रतिष्ठा प्रणाली का एक अंग है। गणजाति के जाति में रूपांतरित होने का अर्थ है गणजाति का जन्म पर आधारित सामाजिक प्रतिष्ठा प्रणाली में, एक स्तर मिलना और आर्थिक आत्मनिर्भरता के स्थान पर, अन्तर्निर्भरता और उसके माप-मान धार्मिक विशेषाधिकारों का मिलना। इस रूपांतरण में गणजाति की केवल एक विशेषता लुप्त होती है और वह है उसकी सामाजिक धार्मिक आत्मनिर्भरता। गणजाति जन्मजात की सदस्यता अन्तर्व्यक्तिगत तथा पारिवारिक संगठन ज्यों के लिये बने रहती है और, साथ ही साथ, उसमें सामाजिक अस्तित्व का एक मापता प्रायः धर्म के आधार पर, वैधता भी मिलती है। अतः, गणजाति का जाति में रूपांतरण गणजाति का केवल आर्थिक रूपांतरण है। जाति संरचना के माध्यम में, गणजाति का मिलने वाली प्रतिष्ठा वैध और जन्मजात है किन्तु अपरिवर्तनीय नहीं है क्योंकि हिन्दुत्व में सिद्धांततः सामाजिक प्रतिष्ठा का आधार जन्म नहीं, कर्म रहा है। कर्म का ब्राह्मणवादी कल्याण और मापताओं पर आधारित करके, जब इस बात पर जोर दिया गया कि कर्म के आधार पर वर्ण-परिवर्तन करके सामाजिक प्रतिष्ठा की उच्चोच्च परम्परा में उच्चतर स्तर प्राप्त किया जा सकता है तो एक ओर हिन्दूधर्म गणजातियों के लिए उत्तरात्तर हिन्दूकरण के लिए मार्ग प्रशस्त किया गया और, दूसरी ओर, जाति व्यवस्था के निम्न स्तर पर आने वाली गणजातियों का भावी उद्धार की आशा प्रदान की गई। पारलौकिकता और पुण्य की धारणाओं से यह आशा और भी बलवती हुई। जाति प्रथा के विरुद्ध उठने वाले सुधारवादी आन्दोलनों ने जब वर्ण भिन्नता का आश्रय लिया तब गणजातियों के उत्तरोत्तर हिन्दूकरण और सामाजिक चलिष्णुता का मार्ग और भी प्रशस्त हुआ और दबो हुई जातियों के लिए हिन्दुत्व में उद्धार की जो आशा निहित थी, वह और भी बलवती हुई।

गणजातियों के लिए, हिन्दुत्व एक दोहरी प्रेरक शक्ति रहा है और, अपनी इसी दोहरी प्रेरणा शक्ति के कारण, हिन्दुत्व एक दुनियाँव्यापी सामाजिक सांस्कृतिक शक्ति रहा है। जनवाद और बुद्धवाद जैसे उद्धारवादी धर्म ऐसी शक्ति न दे पाये। इस कारण आदिवासियों में फैलने के बावजूद भी वे हिन्दुत्व में आत्मगर्वाह गये। इस्लाम और ईसाइयत भी वह शक्ति न दे सके। आदिवासी आज भी हिन्दुत्व की ओर उतना ही आकृष्ट है। आज आदिवासी हिन्दू महाजन, हिन्दू व्यापारी, हिन्दू

सरकारी अपसर और हिंदू ठेकेदार का विराधी है, हिंदुत्व का नहीं। उसके इस विराध का कारण व नई आर्थिक परिस्थितियाँ हैं जो अंग्रेजों राज की स्थापना के बाद से, भारत में उत्पन्न हुई है और जिनका आगे वर्णन किया जायेगा। यहाँ ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि गणजातियाँ जो जाति के रूप में जात्मसात करके, हिंदुत्व का प्रसरण हुआ है। वास्तव में, यदि देखा जाय तो वर्ण और गणजाति भारतीय सामाजिक संगठन के दो अलग अलग सिद्धांत हैं। पहला हिंदुत्व का प्रतीक है और दूसरा जातिवाद का। जाति उन दोनों के बीच का प्रयोग है। जाति वर्ण सिद्धांत के आधार पर हिंदूकृत गणजातियों के सामाजिक वर्गीकरण का प्रथम और माध्यम है। जाति की उत्पत्ति गणजाति की पृष्ठभूमि से हुई है। जाति वस्तुतः, हिंदूकृत जातिवाद का है और यही कारण है कि हिंदुत्व में जाति का विरोध होता रहा है और वर्ण का प्रतिपादन¹।

जाति उत्पत्ति के सिद्धांतों में इस तथ्य का प्रतिपादन मिलता है। जाति का ब्राह्मण मस्तिष्क की उपज मानना अवास्तविक है। हटन ने जाति के खान पान के नियमों के पीछे उन जातुई और माना सम्बन्धी विचारों को माना है जो गणजातीय संगठन की विशेषताएँ हैं। मात्र बलान का हिंदूकृत रूप जान पड़ता है। बलान-संगठन के सम्बन्धी सिद्धांत (The Principle of Kinship) का जाति में विस्तृत रूप मिलता है। अतर्वैवाहिकों के आधार पर, जाति और गणजाति में अंतर करना कठिन है। त्रिजितो में पराजितो का लडकी न देने की प्रवृत्ति सबूत पाई गई है। अभिजात वर्ग की लडकी अभिजात वर्ग को ही जाती है। ग्रामों और आदिवासियों के वर्णभेद से अनुलोम और प्रतिलोम विवाहों का संगठन हुआ। अनुलोम विवाह से जन्मात अभिजात को प्राप्तान मिलता। वेबर के अनुसार सवचेतनवादी (Animistic) विश्वासों के प्रभाव में, सामाजिक प्रतिष्ठा विशेषतया सत्ता-अधिकार और पौराहित्य पद उसे मिलता है जिसके अधिकार में जादुई करिश्मा (Magical Charisma) होता है। किंतु भारत में शिल्पी-बला, बलान करिश्मा का रूप लेकर अततागत्या वशानुगत हो गई। कृषि पर आधारित आर्थिक व्यवस्था, प्रौद्योगिकी तथा गृहवर्णन का निम्न स्तर, धातुओं की कमी, ग्राम सामाजिक आर्थिक व्यवस्था, प्रजातीय भिन्नताएँ गणजातीय व्यवस्था गणजातियों की आरंभिक निरंतर उन्मुख पौराहित्यवादिता और बलान करिश्मा इस प्रकार जाति के विकास के केन्द्र-

1. अंग्रेजों राज की स्थापना के पहले जाति और गणजाति का विभेद ही नहीं था। अतर्वैवाही होने के कारण गणजाति, वस्तुतः जाति थी। गणजाति शब्द अंग्रेजी भाषा के 'टाइप' शब्द का एक गढ़ा हुआ पर्याय है। संस्कृत और पाली में टाइप का पर्याय नहीं मिलेगा। जाति और गणजाति का अंतर अंग्रेजों राज की स्थापना के बाद से किया जाने लगा है।

विदुषः । इसी केन्द्र विदुषः माध्यम से गणजाति का जाति में रूपांतरित हानि की प्रेरणा मिली । कृषिवादी आर्थिक व्यवस्था और सामंतवादी सामाजिक-राजनैतिक संगठन, इस केन्द्र विदुषः के मुख्य घटक हैं । व्यापारी वर्ग साख प्रणाली (Credit System) उद्योगों और सामंतवादी व्यवस्था के बावजूद भी, भारत में, पूँजीवाद का विकास नहीं हुआ । भारत में पूँजीवाद परिचय में आया है । गणजाति का जाति में रूपांतरण उस सामाजिक आर्थिक व्यवस्था में अधिक होता रहा है जो पूँजीवादी नहीं है । पूँजीवाद ने नये प्रेरणा और गतिशीलता को जन्म दिया है । आज गणजाति का गन्तव्य जाति में ही नहीं है । गणजाति का जाति में रूपांतरण गणजाति का विघटन और विध्वंस नहीं, बरन गणजाति का एक बड़े समाज में अधिक सुनिश्चित एकीकरण है ।

उपरोक्त विवरण से यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि गणजाति का स्वाभाविक गन्तव्य जाति में ही रहा है । यह रूपांतरण हर दशा में अमुविधाहीन भा नहीं रहा है । इस रूपांतरण का अर्थ रहा है आदिवासी का हिन्दुत्व और आदिवासीत्व के दोहरा संसार में प्रवेश करना जिसके कारण आदिवासी में, संस्कृतिसंघर्ष में उत्पन्न मानसिक दशा और उदासीनता भी उत्पन्न हुई है । भारत की एक बड़ी जनसंख्या में भाग्यवादिता का भावना की उत्पत्ति भी यही से मानी जा सकता है । गणजाति का जाति में रूपांतरण इस भावना में प्रेरित रहा है कि हिन्दुत्व, आदिवासीत्व की अपेक्षा अधिक समादर और वाञ्छनीय है । इसका परिणाम यह हुआ है कि स्वयं आदिवासी न आदिवासीत्व को हेय दृष्टिकोण से देखा है और, समय-समय पर, ऐसी प्रयास का अपनाया है जो आदिवासी संस्कृति-संकुल में कभी कभी फिट नहीं हो पाती हैं । यह इसी प्रभाव का परिणाम है कि हाल में आदिवासियों में बाल विवाह का प्रचार बढ़ा है, जो आदिवासी संस्कृति-संकुल में फिट नहीं है । फिर भी गणजाति का जाति में रूपांतरण आर्थिक लाभों में प्रेरित रहा है और, इसी कारण, इस प्रक्रिया में व्यवधान और समस्याएँ सभी आई जब भारत पर, अंग्रेजी राज के माध्यम से पूँजीवादी यारोपीय सभ्यता का प्रभाव पड़ा ।

३

आदिवासीत्व और इस्लाम

इस्लाम का भारत में आदिवासियों पर क्या प्रभाव पड़ा, या भारत में इस्लाम आदिवासी संस्कृति में किस प्रकार और कहाँ तक प्रभावित हुआ है यह प्रश्न भारतीय समाज और संस्कृति के इतिहासकारों की नजर में ओझल ही रहा है । सम्भवतः, इसका कारण यह है कि भारत के राष्ट्रीय जीवन में हिन्दू मुस्लिम समस्या

सरकारी अपसर और हिंदू ठेकेदार का विराधी है हिंदुत्व का नहीं। उसके इस विरोध का कारण वे ई आर्थिक परिस्थितियाँ हैं जो अंग्रेजों राज की स्थापना के बाद से भारत में उत्पन्न हुई हैं और जिनका आगे बणन किया जायेगा। यहाँ ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि गणजातियों को जाति के रूप में जात्मसात करने, हिंदुत्व का प्रमरण हुआ है। वास्तव में यदि देखा जाय तो बण और गणजाति भारतीय सामाजिक संगठन के दो अलग अलग सिद्धांत हैं। पहला हिंदुत्व का प्रतीक है और दूसरा आदिवासीत्व का। जाति उन दोनों के बीच का प्रमय है। जाति, बण सिद्धांत के आधार पर हिंदूकृत गणजातियों के सामाजिक वर्गीकरण का प्रयास और माध्यम है। जाति की उत्पत्ति गणजाति की पृष्ठभूमि से हुई है। जाति, वस्तुतः, हिंदूकृत आदिवासीत्व है और यही कारण है कि हिंदुत्व में जाति का विराय होता रहा है और बण का प्रतिपादन¹।

जाति उत्पत्ति के सिद्धांतों में इस तथ्य का प्रतिपादन मिलता है। जाति की ब्राह्मण मस्तिष्क की उपज मानना अवास्तविक है। हटन ने जाति के खान पान के नियमों के पीछे उन जातुई और माना सम्बन्धी विचारों को माना है जो गणजातीय संगठन की विशेषताएँ हैं। ग्राम बलान का हिंदूकृत रूप जान पड़ता है। क्लान-संगठन के सम्बन्धी सिद्धांत (The Principle of Kinship) का जाति में विस्तृत रूप मिलता है। अंतर्वैवाहिकी के आधार पर, जाति और गणजाति में अंतर करना कठिन है। विजितों में पराजितों का लड़की न देने की प्रवृत्ति सर्वत्र पाई गई है। अभिजात वर्ग की लड़की अभिजात वर्ग को ही जाती है। भार्यों और आदिवासियों के बणभेद से, अनुलाम और प्रतिलाम विवाहों का संगठन हुआ। अनुलोम विवाह से जन्मजात अधिकार को प्रोत्साहन मिला। बर के अनुसार सवधतनवादी (Animistic) विश्वासों के प्रभाव में सामाजिक प्रतिष्ठा विशेषतया सत्ता-अधिकार और पौराणिक पद उस मिलता है जिसके अधिकार में जातुई करिश्मा (Magical Charisma) होता है। किन्तु भारत में शिल्पी-बला, बलान करिश्मा का रूप लेकर अततागता वशानुगत हो गई। कृषि पर आधारित आर्थिक व्यवस्था प्रौद्योगिकी तथा गहरीकरण का निम्न स्तर घातुओं को कमी, ग्राम सामाजिक आर्थिक व्यवस्था, प्रजातीय भिन्नताएँ गणजातीय व्यवस्था, गणजातियों की आरंभ और निरंतर उन्मुख पौराणिकजाति और बलान करिश्मा, इस प्रकार, जाति के विकास के केन्द्र-

1 अंग्रेजों राज की स्थापना के पहले जाति और गणजाति का विभेद ही नहीं था। अंतर्वैवाही होने के कारण गणजाति, वस्तुतः, जाति थी। गणजाति शब्द अंग्रेजों भाषा के ट्राइब शब्द का एक गढ़ा हुआ पर्याय है। संस्कृत और पाली में ट्राइब का पर्याय नहीं मिलेगा। जाति और गणजाति का अंतर अंग्रेजों राज की स्थापना के बाद से किया जाने लगा है।

बिन्दु बन । इसी केन्द्र बिन्दु के माध्यम से गणजाति को जाति में रूपांतरित होने की प्रेरणा मिली । कृषिवादी आर्थिक व्यवस्था और सामंजस्यवादी सामाजिक-राजनतिक संगठन, इस केन्द्र बिन्दु के मुख्य घटक हैं । व्यापारी चण, साक्ष प्रणाली (Credit System) उद्योगी और सामंजस्यवादी व्यवस्था का बावजूद भी, भारत में पूँजीवाद का विकास नहीं हुआ । भारत में पूँजीवाद पश्चिम से आया है । गणजाति का जाति में रूपांतरण उस सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था में अधिक होता रहा है जो पूँजीवादी नहीं है । पूँजीवाद ने नये प्रेरणा और गतियों का जन्म दिया है । आज गणजाति का गतव्य जाति में ही नहीं है । गणजाति का जाति में रूपांतरण, गणजाति का विघटन और विघटन नहीं करके गणजाति का एक बड़ा समाज में अधिक सुनिश्चित एकीकरण है ।

उपरोक्त विश्लेषण में यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि गणजाति का स्वाभाविक गतव्य जाति में ही रहा है । यह रूपांतरण हर देश में अमुविधा-हीन भी नहीं रहा है । इस रूपांतरण का अर्थ रहा है आदिवासी का हिन्दुत्व और आदिवासीत्व के दोहरे सप्ताह में प्रवेश करना जिसके कारण, आदिवासी में, संस्कृतिसंघर्ष से उत्पन्न मानसिक दशा और उदासीनता भी उत्पन्न हुई है । भारत की एक-वही जन्मरूपा में भाग्यवादिता की भावना की उत्पत्ति भी यही से मानी जा सकती है । गणजाति का जाति में रूपांतरण इस भावना से प्रेरित रहा है कि हिन्दुत्व, आदिवासीत्व की अपेक्षा अधिक समादन और वाछनाय है । इसका परिणाम यह हुआ है कि स्वयं आदिवासी ने आदिवासीत्व को हेय दृष्टिकोण में देखा है और, समय-समय पर, एसी प्रयास का अपनाया है जो आदिवासी संस्कृति-संस्कृल में कभी कभी फिट नहीं हो पाती हैं । यह इसी प्रभाव का परिणाम है कि हाल में आदिवासीयों का बाल विवाह का प्रचार बढ़ा है जो आदिवासी संस्कृति-संस्कृल में फिट नहीं है । फि भी, गणजाति का जाति में, रूपांतरण आर्थिक लाभ से प्रेरित रहा है और इस कारण, इस प्रक्रिया में व्यवधान और समस्याएँ तभी आइ जब भारत पर अर्थ की राज के माध्यम से पूँजीवादी यारोपीय सभ्यता का प्रभाव पड़ा ।

आदिवासीत्व और इस्लाम

३

इस्लाम का भारत में आदिवासीयों पर बड़ा प्रभाव देना का नाम ही इस्लाम आदिवासी संस्कृति से किन्तु प्रकार और कृती तत्त्व प्रकृतियों द्वारा है यह प्रश्न भारतीय समाज और संस्कृति के इतिहासकारों को उत्तर देना पड़ेगा । यह प्रश्न सम्भवतः, इसका कारण यह है कि भारत में मुस्लिम सभ्यता ने हिन्दु-मुस्लिम समस्या

जितनी गम्भीर रही है, आदिवासी मुस्लिम या आदिवासी हिन्दू समस्या उतनी गम्भीर नहीं रही है। यह नहीं कहा जा सकता कि आदिवासी मुस्लिम प्रभाव स मुक्त रहे है। इस्लाम का केन्द्रीकरण उही इलाको (उत्तरी पूर्वी उत्तरप्रदेश, बिहार, बंगाल आसाम, मद्रास और केरल) में हुआ है जहाँ आदिवासी जनसंख्या की अपेक्षा-वृत्त अधिकता रही है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि जिस प्रकार गणजाति के हिन्दुत्व में जाने के कारण, हिन्दुत्व में जाति की जड़ें जमी उमी प्रकार इस्लाम में जाति का समावेश गणजातियों के इस्लाम में प्रवृत्त करने से हुआ है। इस्लाम में जादुई विश्वास और प्रथाओं का समावेश गणजातियों के ही माध्यम से आया हुआ माना जा सकता है। बहराइन में गाँवों में मजारों के पीछे एक छोटा सा कुण्ड है जहाँ कोई भी इम विश्वास से नहीं है कि वहाँ नहाने से कोढ़ दूर हो जाता है। वहाँ एक अथ मजार पर लकड़ी के टुकड़े चढ़ाये जाते हैं। ये प्रथाएँ गर इस्लामी हैं और इनका स्रोत निश्चय ही आदिवासी संस्कृति है या तर्जिक बुद्धवाद जो स्वयं बुद्धवाद में आदिवासी प्रथाओं से आया जान पड़ता है। इस्लाम का मानने वाले अनेक ऐसे अतिविवाही समूह हैं जो इस्लाम में गणजातीय जातियों (Tribe Castes) के रूप में हैं। उत्तर भारत की अनेक अपराधी गणजातियाँ अपने को चित्तौड़गढ़ के राजा प्रताप का वंश मानती हैं। उनके उपाख्यान में यह वृणन मिलता है कि उनका सामाजिक अध पतन उस समय से हुआ जब अलाउद्दीन खिलजी के हाथों चित्तौड़ का पतन हुआ था और, इस्लाम से बचने के लिए उन्होंने यायावर और डाके जनी तथा लूटपाट का जीवन अपना लिया। बी० एस० भागवत के अनुसार, मुस्लिम अपराधी गणजातियाँ वे समूह हैं जिनको जबरदस्ती मुसलमान बनाया गया होगा और, इसकारण, सामाजिक जीवन के विभ्रूललित होने के कारण उन्होंने अपराधी इतरों का जीविका के साधन के रूप में अपना लिया होगा¹।

४

आदिवासीत्व और योरोपीय सभ्यता

उन्नीसवीं शताब्दी के आते आते गणजाति के जाति में रुपांतरित होने की प्रक्रिया में यवधान भी आय और उस एक नयी अभिव्यक्ति भी मिली—वह अभिव्यक्ति जिसमें, आदिवासी पुनरुत्थान (Tribal Revivalism) की भावना के साथ साथ प्रतिक्रिया का भी अन्वय हुआ। पहले हिन्दू आदिवासी सम्प्रदाय में सामाजिक प्रतिष्ठा का विधायन (Legitimization) हिन्दू धर्म द्वारा होता था। इसकारण

गणजातियाँ स्वभावतया हिन्दुत्व की ओर आकर्षित होती थी। वण वम और मुक्ति की धारणाओं से गणजातियाँ को आगा भी मिलती थी और निरन्तर हिन्दूकरण की ओर बढ़ने की प्रेरणा भी। इस्लाम के आग से मध्यकालीन भारत में, गणजातियाँ का इस्लाम की ओर आकर्षित होने की प्रेरणा मिली यद्यपि इस्लाम की अपना, हिन्दुत्व के प्रति आकर्षित और प्रेरित होने की मात्रा अधिक रही। मध्य कालीन भारत में सगुण तथा निगुण भक्तिमार्गी तथा सुधारवादी पथों के द्वारा, आदिवासियों के उत्तरात्तर हिन्दूकरण की ऐतिहासिक प्रक्रिया चलती रही है। गणजाति के हिन्दूकरण और इस्लामीकरण से गणजातियाँ को हिन्दू और मुस्लिम जातियों का रूप मिलता रहा है। गणजाति का हिन्दूकरण और इस्लामीकरण निर्बाध होता रहा है क्योंकि इससे गणजाति के आर्थिक जीवन का उन्मूलन नहीं रूपांतरण होता रहा है और गणजाति की सामाजिक प्रतिष्ठा भी परिस्थिति के अनुसार उठती रही है। गणजाति का सामाजिक अस्तित्व भी बना रहा है क्योंकि इस रूपांतरण में गणजाति ने वही तक हिन्दुत्व या इस्लाम के आधारभूत तत्त्वों को अपनाया है, जहाँ तक आवश्यक था। हिन्दुत्व या इस्लाम में जाने से गणजाति का आर्थिक उन्मूलन नहीं हुआ है बल्कि उसे एक नया आर्थिक संतुलन मिला है या करना पड़ा है क्योंकि जिनसेवी शताब्दी के पहले तक हिन्दुत्व और इस्लाम दोनों का आर्थिक आधार कृषि आर्थिक व्यवस्था थी। कृषि आर्थिक व्यवस्था में हिन्दू या मुस्लिम जाति में रूपांतरित होने से गणजाति की एकता भी बनी रही। किंतु अंग्रेजी राज की स्थापना के बाद से, योरोपीय सभ्यता और पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था के प्रभावों से, भारत की गणजातियों का बाह्य संपर्क तेजी से बढ़ा और गणजाति में वसी ही विशृंखलक और एकताकारी शक्तियाँ का एक साथ प्रादुर्भाव हुआ जसी जाति में हुई हैं। एक ओर यदि भारतीय राष्ट्रवादिता का विकास हुआ तो दूसरी ओर, हिन्दू इस्लामी और आदिवासी राष्ट्रीयताओं का, जिसके कारण हिन्दुत्व और आदिवासीत्व में वैसे ही तनाव उत्पन्न हुआ जैसे कि इस्लाम और हिन्दुत्व में। आदिवासियों में बढ़ते हुए इसाइयत के प्रसार से इस तनाव को और भी प्रोत्साहन मिला क्योंकि, सामाजिक प्रतिष्ठा की धार्मिक वैधता (Religious Legitimization) के लिए इसाइयत ने, हिन्दुत्व और इस्लाम से अलग एक अर्थ आधार प्रदान किया।

भारत में अंग्रेजी राज की स्थापना के साथ साथ और बाद में भी आदिवासी योरोपियनों के सम्पर्क में वही अधिक आये जहाँ योरोप ने इसाई मिशनरियों ने मिशनरी और चर्चों की स्थापना करके, एक ओर, इसाई धर्म का प्रचार प्रारम्भ किया और दूसरी ओर, अस्पताल और स्कूल खोल कर, समाज सेवा का कार्य प्रारम्भ किया। किंतु, यह सम्पर्क उतना व्यापक और प्रभावकारी नहीं रहा है जितना कि योरोपीय सभ्यता और पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था के सघात से उत्पन्न परिवर्तनकारी

शक्तियो का प्रभाव रहा है। सोलहवीं शताब्दी के बाद से जब, सत्तार में योरोपियनो के प्रभुत्व का प्रसार होना शुरू हुआ तो सत्तार के सभी भागो में योरोपीय सभ्यता और आदिवासी सत्कृतियो का सम्पर्क हुआ। इस सम्पर्क में योरोपीय सत्कृति की प्रभुता रही है। इसकारण, जमा अय स्थानो में हुआ भारत में भी, योरोपीय सत्कृति का सघात आदिवासी सत्कृति पर पडा। इस सघात ने, जैसे अय स्थाना (अमरीका, अफ्रीका, यूजीलड आस्ट्रेलिया और प्रशांत महासागर के द्वीपो) से आदिवासी-सत्कृति में विश्व खलन की प्रक्रियाओं को जन्म दिया, वस ही भारत में भी हुआ। अय स्थानो की भांति, भारत में भी, आदिवासियो के सात्कृति में स्वास्थ्य का इससे धक्का पहुँचा। आदिवासी सत्कृति पर सभ्यता के सघातिक परिणामो का विश्लेषण करने के पहले, इस सत्कृति सम्पर्क के माध्यमो पर विचार करना आवश्यक है।

यातायात के साधनो (मुख्यतः रेल तार और सडक)के उत्तरोत्तर विकसित होने से जो आदिवासी क्षेत्र पहले दुर्गम थे व सुगम हो गये। बढ़त हुए औद्योगी-सभ्यताकरण से खनिज पदार्थो की माँग बढ़ी। आदिवासी क्षेत्र उस प्रदूषण में आते हैं जहाँ कोयला, लोहा और अभ्रक जैसे खनिज पदार्थ पाए जाते हैं। अतः आदिवासी क्षेत्रो में कोयले अभ्रक और लाहे की खानें खुलने लगीं। जमशदपुर राउरकेला और भिलाई जैसे स्थानों में कारखाने खुलने लग गये जहाँ आदिवासी, श्रमिको के रूप में काम करने लगे और बाहरी लोग तथा सभ्यता के प्रभावो में आने लगे। आसाम के चाय के बाग आदिवासी श्रमिको के द्वारा ही बने हैं जिसप्रकार भारत में गाँवों के किसान, मजदूरो के रूप में औद्योगिक शहरो में जाकर वहाँ के कारखानों में काम करने के लिए विवश हुए उसीप्रकार, आदिवासी भी, श्रमिको के रूप में, औद्योगिक क्षेत्रो में जाने के लिए विवश हुए क्योंकि पूँजीवादी सघात से जैसे गाँवों की आर्थिक व्यवस्था का आधार हिले, वस ही, पूँजीवादी सघात से आदिवासी आर्थिक व्यवस्था के आधार हिले। मेला और यथा-कदा लगने वाली हाटा के स्थान पर नियमित बाजार का प्रभाव बढ़ा, जहाँ गर-आदिवासी व्यापारियो विसातिधा और पेटे ट दवाइयाँ बेचने वाला ने उन वस्तुओं का व्यापार प्रारम्भ किया जिसका उत्पादन आदिवासी क्षेत्रों में नहीं होता है। साबुन, तल, सस्ते किस्म के सट नकला ज्वर, बच्चा के खिलौने रंग मिलो के बने कपडे इत्यादि, इस श्रेणी की वस्तुओं में आते हैं। सरकार ने व्यापारी और प्रशासनिक नियुक्त किए जा नई सभ्यता के माध्यम बन। जंगल का सुरक्षित रखने की नीति के कारण जंगल विभाग के कमचारियो का संगठन किया गया। जंगल के नियोजित सवधन और उपभाग की नीति के कारण एक ओर जंगल को लगाने के लिए श्रमिको का रखा गया तो, दूसरी ओर आवश्यकतानुसार जंगल को काटने के लिए ठेकेदारो का नियुक्त किया गया। इसप्रकार जंगलो के कमचारी, ठेकेदार और उनके श्रमिक जा अधिकतर बाहर से जाते थे एक नये सत्कृति सम्पर्क के माध्यम

बने । जंगल की घोक उपजा जैसे लाख और बीड़ी बनाने के पत्ता का नयी आर्थिक महत्ता मिली और उनको एकत्र करने के लिए ठेकेदारी प्रथा का संगठन किया गया । स्कूल का संगठन करके वहाँ शिक्षका का नियुक्त किया गया । एक धार, मिशनो ने सेवा-काय का अपनाया ता दूसरी धोर भारतीय नताआ का प्ररणा स आदिमजाति सेवक सध जसी समाजसवी सस्थाआ का संगठन हुआ जिससे सम्पत्ता-मस्कृति-सम्पक और भी बढा । इसी बीच म, मानवशास्त्रिया न अपने अययन प्रारम्भ किए जिमसे आदिवासी अपने प्रति सजग हुए और भारतीयो तथा सरकार का ध्यान उनकी समस्याओ की ओर गया । इसी बीच म, सम्भवत, भारत म चलन वाली सास्कृतिक पुनरुत्थनवादिता के विचार व प्रभाव व कारण लोक मस्कृति व अध्यायन की आर लणा का ध्यान गया और लोक गीतो के अनेक सकलनकर्ता आदिवासिया को बाह्य सम्पक म लाने के मायम बन । अनेक चित्रकारा ने नए डिजाइना की प्रेरणा के लिए आदिवासी क्षेत्रा का भ्रमण किया । द्वितीय महायुद्ध के दिना मे, जब इम्फाल और कोहिमा के क्षेत्र युद्ध क भाँचे बने और राची पूर्वी कमान का हेडक्वाटर बना तो यह सम्पक और भी बढा । अधिकतर प्रांतो की ग्रीष्मकालीन राजधानिया आदिवासी क्षेत्रो म ही है । स्वतंत्रता के बाद, जब वालिंग मताधिकार के आधार पर चुनाव हुए, सटकारी आन्दोलन का प्रसार हुआ बडेपैमान पर शिक्षा संगठित हुई, उच्च-शिक्षा के लिए आदिवासिया को बजोफे दिए जाने लगे और आदिवासी क्षेत्रो मे सामुदायिक विकास याजनाओं का संगठन हुआ ता सस्कृति सम्पक पहल की अपेक्षा और भी बढा । सन उनीस सौ बासठ म, जब चीन ने भागत की उत्तरी सीमा पर आक्रमण किया ता उस प्रदेश के आदिवासिया का सम्पक और भी बढा । आज उस प्रदेश के विकास पर जो अधिक ध्यान दिया जा रहा है उससे वहाँ के आदिवासिया का सम्पत्ता के सम्पक म आना निश्चित ही है ।

आदिवासिया को सम्पत्ता के सम्पक म लाने वाली गनितया अगत आर्थिक, अगत औद्योगिक प्रौद्योगिकीय, अगत प्रणामकीय अगत राजनतिक और सम्पत्ता अगत मानवतावापी है । जिसप्रकार, सारा भारत और भारतीय सघात के सस्कृति, सम्पत्ता के प्रभाव मे आय उसीप्रकार भारतीय सस्कृति परिणाम का एक अग हाने के कारण आदिवासी मस्कृति भी यारोपीय सम्पत्ता के प्रभाव म आई । इस प्रभाव से आदिवासी सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन की पथकता (Isolation) समाप्त हा गयी और उत्तरात्तर समाप्त हाती जा रही है । भारत व दा कराड आदिवासी आज भारत राष्ट्र का एक महत्व पूण हिस्सा हैं जिनकी अवहलना नही की जा सकती है । उह सगुचित समाप्त विकास के स्तर पर लाना सविधान का आदेश है जिम पूरा करना राज्य का आव द्यक कतय है । इस उद्देश्य को पूरा करन का मतलब है आदिवासिया का अधिका धिक सम्पत्ता के सम्पक म लाना, जिम समय पर नही छाडा जा सकता है । हिन्दू-

परम्परा में, हिन्दू और आदिवासी में विभेद नहीं किया गया है और न हिन्दू तथा आदिवासी में ऐसा विभेद मित्रता ही है। हिन्दू के दृष्टिकोण से, प्रत्येक गणजाति एक जाति है और उसकी सस्कृति उसका स्वधर्म। किन्तु सभ्यता के सघात ने इस हिन्दू आदिवासी-नर नय को शिथिल कर दिया है। आज आदिवासी भारत राष्ट्र के अल्पमध्यम नागरिक हो गए हैं, अपनी राजनैतिक सत्ता को बनाये रखने के लिये, अपने तथा अपनी सस्कृति की विशिष्टता के प्रति जागरूक है। आज सामाजिक प्रतिष्ठा की वैधता धर्म में नहीं, राजनैतिक अधिकांग, आर्थिक स्तर, शिक्षा और सरकारी नौकरी से होती है। इस प्रकार, हिन्दू-आदिवासी नरतय शिथिल पद गया है। धर्मनिरपेक्षता ने इस शिथिलता को और भी बढ़ावा दिया है। यद्यपि, योरोपीय सभ्यता के प्रभाव में, हिन्दुत्व की इतनी मापक परिभाषा करने का प्रयास किया गया है कि आदिवासी भी उसमें आ जाय। किन्तु इस काल में, आदिवासीयों ने हिन्दुत्व का अर्थस्वागत ही किया है।

योरोपीय सभ्यता के सघात से जैसे सारे भारत की कृषि आर्थिक व्यवस्था का धीरे धीरे औद्योगिक-मूजीवादी व्यवस्था में रूपांतरण हो रहा है, वैसे ही गणजाति आर्थिक व्यवस्था का भी रूपांतरण हो रहा है। किन्तु इस रूपांतरण में, भ्रष्टाचारी राज के निहित स्वार्थों के कारण, एक भ्रष्ट, जमींदारों के रूप में गामतवादी भी उत्पन्न हुआ और, दूसरी ओर व्यापारी मध्यजनों के वर्ण का जो आदिवासी आर्थिक व्यवस्था में घोषण का माध्यम बन गया। उपर जगलों के सुरक्षित रखने की नीति से आदिवासियों से जगलों का आर्थिक लाभ छिन गया। जंगल कृषि पर रोक लगा दी गई या उम एक क्षेत्र में सीमित कर दिया गया जिसके कारण, जंगल कृषि उतनी उबरक न रही जितनी कि वह पहले हुआ करती थी। जंगल कृषि में खाद जलाए हुए पेटों से मिलती थी। पेटों की कमी होने के कारण, खाद की मात्रा कम होने लगी जिसका असर पदावार पर पड़ा। आदिवासी उद्योग धंधे बस ही क्षीण हुए जैसे कि सारे भारत के हुए। आदिवासी भी मिल की बनी वस्तुओं के प्रयोग की आरंभ कर पित हुए। बन्दोबस्त के स्थान पर, मुद्रा का प्रयोग बढ़ने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि गणजातीय आर्थिक व्यवस्था की अन्तर्निर्भरता समाप्त होने लगी और आदिवासी भारत के गरीब वर्ण वर्ग का एक अंग बन गया। मुद्रा के प्रसार के कारण आदिवासी आर्थिक व्यवस्था में व्यापारियाँ ठेकेदारों और सूखारों (सिक्का और पठानों) का प्रवेश हुआ और वे वहाँ की व्यवस्था में घोषक वर्ग बन गए। जमींदारी प्रथा के कारण, सारा भूमि हिन्दू जमींदारों के हाथ में चली गई जिसका परिणाम हुआ उत्तरात्तर बढ़ती हुई दीनता, नराशय असंतोष और प्रतिश्रिया।

आदिवासियों की आर्थिक दावता का अन्दाजा डा० मजूमदार द्वारा दिए हुए एक उदाहरण से लगाया जा सकता है। एक आने का साग खरीदने या बेचने के लिये आदिवासी नारियाँ बीस-बीस माल तक का रास्ता तय करती हैं। छमासा की

एक साप्ताहिक बाजार में, सर्वेक्षण से यह पता चला कि फल और सब्जी बचन वाली आदिवासी नारिया की सख्या चौरासी थी जबकि उनका माल की कीमत ग्यारह रुपए से ज्यादा नहीं थी और खरीदने वाले की सख्या हजारों में थी। लग बड़ी घाटा नमक घोड़ी तम्बाकू और घाटा मिट्टी का तेल ही अधिक खरीद रहे थे। बाजार से दस मील दूर एक गांव के लोग न जितना मामान खरीदा था उमकी लागत साठे तीन रुपए से ज्यादा नहीं थी जबकि उस गांव से आए हुए खरीदारों की सख्या साठ थी। काल्पनिक अक्षर यह दर्शन में जाता है कि आदिवासी नारिया, मुद्रा शाम, पड़ोस के गहरी स्थानों या रेलवे स्टेशन के गांवों की बड़े मील की यात्रा सिर्फ घोड़ी की सजा या घाटा चावल बचकर और उसके बदले में थोड़ा नमक या परिवार की आवश्यकता की अन्य छोटी माटी चीजें लाने के लिए करती हैं। छवासा के बाजार में सिर्फ खरीद फराहत करने वाले ही नहीं आते हैं। वहां घूमने वाले, गप लड़ाने वाले और ठेकों पर गराव पाने वाले एक बड़ी सख्या में आते हैं जो आदिवासी की दीनता और उनके द्वारा क्षीण होने वाले राष्ट्रीय धर्म के बकाए जाने का परिचायक है¹।

गणजातीय आर्थिक व्यवस्था मुद्रारहित आर्थिक व्यवस्था (Moneyless Economy) से, मुद्रा पर आधारित आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तित हुई जिसका एक परिणाम हुआ आदिवासियों का उत्तरात्तर गणपण और आर्थिक दीनता तथा, दूसरा गणजाति-भरचना में सामाजिक प्रतिष्ठा विभेद का अभ्युदय और गणजातीय सत्ता अधिकार में परिवर्तन। मुद्रारहित आर्थिक व्यवस्था स्वभावतया समष्टिवादी होती है। उसमें व्यक्तियों या परिवारों द्वारा सम्पत्ति-संचय का काम स्थान रहता है क्योंकि सम्पत्ति मुद्रा में न निहित होकर कृषि की उपज तथा जानवरों के रूप में होती है जिसे प्रत्येक परिवार के व्यक्ति अपने धर्म से उत्पन्न करते हैं। इस व्यवस्था में प्रत्येक परिवार के सदस्यों को अपनी प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं करनी पड़ती है। इस व्यवस्था में जो कुछ भी अतिरिक्त उपज होती है उसे संचित नहीं किया जा सकता क्योंकि वह जल्दी ही क्षीण हो जाती है। इस कारण, अतिरिक्त उपज विरादरी के भोजन में समाप्त कर दी जाती है। मौद्रिक अर्थ व्यवस्था में, मुद्रा के रूप में व्यक्ति को सम्पत्ति संचय का अधिक अवसर मिलता है यदि वह सम्पत्ति संचय के अवसर दूसरों से छीन सके। इस व्यवस्था में, अपने समुदाय के कल्याण के परम्परागत उत्तरदायित्व से भी व्यक्ति मुक्त हो जाता है। यहां सामाजिक प्रतिष्ठा जन्म पर आधारित नहीं रह कर धर्म के द्वारा अर्जित सम्पत्ति पर आधारित हो जाती है जिसके कारण व्यक्तिवाद को प्रोत्साहन मिलता है।

मुद्रा अर्थ व्यवस्था के निरंतर प्रसार तथा व्यापार सरकारी नौकरियों और

वारतानो म काम करके धन कमाने के बड़े हुए अवसरों से, आदिवासियों में उन व्यक्तियों को धन कमाने और संचय करने के अवसर मिले जो इसके योग्य थे। इसका परिणाम हुआ गणजाति की सामाजिक प्रणाली (Social Status System) के आधार में परिवर्तन। पहले एक गणजाति में उच्च सामाजिक प्रतिष्ठा वाले व्यक्ति हान थे और निम्न सामाजिक प्रतिष्ठा वाले भी। किन्तु यह व्यवस्था बगानुत्पन्न व गिद्धात पर चलती थी। दूसरे, निम्न सामाजिक प्रतिष्ठा वाले के पास अपनी प्रतिष्ठा के बढ़ाने के साधन न थे और उच्च प्रतिष्ठा वाले के पास सम्पत्ति-संचय का अधिक गुंजाइश न थी। अतः सामाजिक प्रतिष्ठाओं का अंतर आर्थिक विषमताओं पर आधारित न था। मुद्रा प्रथम व्यवस्था में गणजाति के उच्च प्रतिष्ठा वाले का सम्पत्ति संचय का अवसर मिला और निम्न प्रतिष्ठा वाले को अपने आर्थिक स्तर का बढ़ा कर सामाजिक प्रतिष्ठा उठाने का अवसर। अंग्रेजी राज में लागू की गई विधि प्रणाली और कृषि के अतिरिक्त मिलने वाले आर्थिक साधनों ने इस परिवर्तन प्रक्रिया को और भी प्रेरित किया। इसका परिणाम यह हुआ कि प्रत्येक गणजाति में ऐसे व्यक्तियों का अन्वेषण हुआ जिन्होंने शिक्षा के द्वारा या सरकारी नौकरियों के द्वारा या गाँवों में या चाम के बागों में काम करके या अन्य क स्थान पर मुक्त कमाने वाली फसल को बोझ अपनी आर्थिक स्थिति को उधार में सामाजिक प्रतिष्ठा अर्जित की। यह वह वृत्त है जो बगानुत्पन्न समाचारिका को प्रथम अधिक प्रभावशाली बना रहा है जिसके कारण जमाने में गणजाति में हा रहा है परम्परागत गणजातीय नेतृत्व का ह्रास हो रहा है। यह वृत्त या तो योरो पीयता की ओर उन्मुख है या हिन्दुत्व की ओर और भारत की नई सामाजिक प्रतिष्ठा व्यवस्था में समाहित स्थान पाने के लिए उन्मुख है। अतः वह आदिवासी जीवन में अलग होने के प्रयास में है। पर, साथ ही साथ उम उम स्तर पर सामाजिक भावना नहीं मिलती है जहाँ वह मा रना पात्र का इच्छा है। इसके परिणामस्वरूप यह वृत्त पर भार आदिवासी जीवन में अपने को दूर भी रखना चाहता है और, दूसरी ओर, आदिवासी-जीवन को गगठिन भी करना चाहता है और बदलना भी चाहता है ताकि आदिवासी का स्तर बदलने के साथ साथ उसका भी स्तर बदल। बालिग मताधि वार सरकारी नौकरियों तथा विधानसभाओं में आदिवासियों का मिनी आरक्षित साधने न इस प्रक्रिया को और भी प्रोत्साहित बना दिया है।

इस विकास के कई सामाजिक परिणाम निकले हैं। पहला गणजाति में वृत्त व्यवस्था का समावेश हो रहा है जिसके कारण, गणजाति में वृत्तविभेदीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई है। दूसरा उच्च वर्ग को अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए गणजाति की प्रतिष्ठा को उठाने का आवश्यकता पड़ रही है जिसके कारण वृत्त-विभेदीकरण के साथ साथ गणजाति एकीकरण की प्रक्रिया भी चल रही है। जाति की भाँति गणजाति में भी विभेद चलने तथा एकीकरण की प्रक्रियाएँ साथ साथ चल

रही है। तीसरा, इन साथ-साथ चलने वाली विशुद्ध खलन तथा एकीकरण की प्रक्रियाओं की एक अभिवृत्ति है हिंदूकरण और योरोपीयकरण दूसरी आदिवासी पुनरुत्थान और तीसरी आदिवासी सभ्य जैसे सुधारवादी संगठनों का अभ्युदय, स्वतंत्र नागा प्रदेश और बिहार तथा उड़ीसा के आदिवासियों द्वारा अखण्ड प्राप्त जमीन मांगों के द्वारा राजनतिक अधिकारों की मांग। चौथा आदिवासी समाज में एक ऐसा बग पैदा हुआ गया है जो आदिवासी है भी और नहीं भी, जो आदिवासी सभ्यता के सीमांत में है और आदिवासी सभ्यता के सुधार की मांग कर रहा है। आज आदिवासी समाज का नतत्व इसी बग के हाथ में है—वह बग जो अशत आदिवासी नहीं रहा है किंतु जो आदिवासीत्व को छोड़ भी नहीं सकता है क्योंकि उसका स्वायत्त इसी में है। वगानुगत नतत्व के प्रभाव के कम होने और इस बग के नतत्व का प्रभाव बढ़ने का परिणाम यह हुआ है कि आदिवासी सभ्यता के प्रति आदिवासी के दृष्टिकोण में विरोध आ गया है जिससे जीवन के प्रति उदासीनता को प्राप्त करने में मिल रहा है।

अंग्रेजी राज के सघात में, एक ओर गणजाति प्रशासन व्यवस्था बदली। अंग्रेजों की पथवर्तण की नीति के कारण आदिवासी राष्ट्रीय जीवन के प्रवाह से अलग रहें और दूसरी ओर यह विचार धीरे धीरे पनपता गया कि आदिवासी क्षेत्रों के लिए एक अलग प्रशासन प्रणाली की आवश्यकता है। इसका परिणाम हुआ अप्रत्यक्ष प्रशासन प्रणाली (The System of Indirect Rule) जो अंग्रेजी राज्य-काल में विकसित हुआ है। इस विकास का ऐतिहासिक परिस्थितियों ने जन्म दिया है। अप्रत्यक्ष प्रशासन और आदिवासियों का पथवर्तण, अंग्रेजी नीति के दो आधार रहे हैं जिनका शीर्षक उस समय हुआ था जब बंगाल की राजमहल पहाड़ियों में रहने वाली गणजाति (हिल पहाड़ियों) के आंदोलन को कुचलने तथा आदिवासी नेताओं का पेंशन के रूप में धूस देकर उन्हें चुप करने के बाद, सन 1872 में अंग्रेजों ने राजमहल पहाड़ियों के आदिवासी क्षेत्र में, स्थानीय नताजा को दीवानी तथा पौजदारी के मुकदमा का फलान करने का अधिकार देकर, स्थानीय न्यायालयों का संगठन किया। हिल पहाड़ियों गणजाति के लोगों ने, हिंदू जमींदारों से तग आकर, विद्रोह किया था। इसलिये उह बेलगानी जमीन दी गई। एक विधानसभा का संगठन करके, उसे स्थानीय प्रशासन और न्याय व्यवस्था को संगठित करने का अधिकार दिया गया। किंतु, स्थानीय अपसरो के भ्रष्टाचार के कारण यह प्रयोग सफल न हुआ सगा। बाद में (1827), इस प्रदेश की गणजातियों को साधारण न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र में लाकर, उह अशत आदिवासी विधि प्रणाली और अशत, सामान्य भारतीय विधि प्रणाली के अंतगत रक्खा गया। सन 1855 में, जब न्यायालय ने विद्रोह किया तो न्यायालय क्षेत्र के अपसरो को विशेष प्रशासनिक अधिकार देकर, न्यायालय क्षेत्रों का विशेष प्रशासन क्षेत्र घोषित करके उनका विशेष उत्तरदायित्व गवर्नर जनरल को दिया गया। इसप्रकार, आदिवासी क्षेत्रों को विशेष अनुसूचित

क्षेत्र मानकर और उनके लिये स्थानीय प्रशासो व अनुसार, स्थानीय नेताओं की सहायता से प्रशासन चलाने की परम्परा का अन्वयण हुआ, जो सन 1947 तक बनी रही। इस परम्परा में, किसी भी क्षेत्र को विशेष या अनुसूचित क्षेत्र घोषित करने का अधिकार गवर्नर और गवर्नर जनरल का था और वहाँ का प्रशासन सामान्य प्रशासन से अलग गवर्नर जनरल का विशेष उत्तरदायित्व था। इस नीति से आदिवासी पथकरण को प्राप्ति मिली। अंग्रेजों में आदिवासियों को अन्य भारतीयों से पथवृत्त ही नहीं किया वरन् उनके लिये अलग प्रशासन नियमों और दण्ड विधान की व्यवस्था थी। अपराधी गणजातियाँ अधिनियम के अनुसार, अपराधी गणजातियों व अपराधियों को समान अपराध के लिये, सामान्य व्यक्ति से अधिक दण्ड देने का विधान किया गया था जो अब समाप्त हो गया है।

गणजातियों के अप्रत्यक्ष प्रशासन की परम्परा अंग्रेजों के पहले से बनी आ रही थी। भारत के सम्राटों और राजाओं ने गणजातियों को अपनी राजनतिक अधीनता में रखा, उनसे कर लिया कि तु उनके सामाजिक आर्थिक जीवन का वसा ही रहने दिया और गणजाति के आंतरिक प्रशासन में हस्तक्षेप नहीं किया। गणजाति के वशानुक्रम नेता किसी राजा या सम्राट की अधीनता में अवश्य रहते थे किन्तु स्थानीय शासन के रूप में, वे स्वतंत्र रहते थे। वे प्रशासन के वनानिक एजेण्ट नहीं होते थे। किन्तु अंग्रेजों व अप्रत्यक्ष प्रशासन की जाँच-व्यवस्था चलाइ उसमें गणजाति के नेता जब अंग्रेजों की धार से सरकारी प्रशासन नियुक्त किए गए तो वे नेता न रहकर एक विदेशी सरकार के वतनिक एजेण्ट हो गए। उनका उत्तरदायित्व गणजाति के प्रति न रहकर सरकार के प्रति हो गया। उनका नेतृत्व गणजाति के सदस्यों की इच्छा पर न निर्भर रहकर, सरकार की इच्छा पर निर्भर रहने लगा। अपनी सत्ता जमाये रखने के लिये विदेशी सरकार ने उन्हें अधिक से अधिक सम्भव अधिकार दिये। इसका परिणाम यह हुआ कि, नयी आर्थिक प्रशासन व्यवस्था में, उन्हें वैयक्तिक स्वार्थों को समझने की प्रेरणा मिली। रिस्वत नेता गवर्नर करना, भ्रष्टाचार फलाना, अपराधों के प्रमाणों को दबाना और अपने ही साथियों का शोषण करना, सरकार द्वारा नियुक्त आदिवासी अफसरों के मुख्य काय हो गए। आसाम की अप्रत्यक्ष प्रशासन प्रणाली की आलोचना करते हुए हटन ने लिखा था कि 'वशानुक्रम मुखिया को मिलने वाली सरकारी भायता से शोषण और भ्रष्टाचार का फलना स्वाभाविक है क्योंकि बिद्रोह के डर से सरकार मुखिया के अधिकारों को सहन करती है और मुखिया अपने अधिकारों का निरकुश दुरूपयोग करता है'।

मजूमदार के मत में आदिवासी स्थानीय प्रशासन भ्रष्ट है लेकिन फिर भी, आदिवासियों में गुड स्थानीय प्रशासन की स्थापना के पक्ष में दृष्टि तक है पहना, आदिवासियों में स्थानीय प्रशासन की परम्परा रही है और उसे उन्होंने सुरक्षित कर

रखता है। दूसरा आदिवासी-भारतियन सम्प्रदाय के बाबजूद आदिवासी संस्कृति के अनेक पक्ष ज्यों के त्यों हैं। तीसरा आदिवासी के मुखिया अब भी बल्ले ही काम कर रहे हैं जब कि वे आदिवासियों के सम्प्रदाय के अर्थ में कुछ करते थे। चौथा, प्रजातंत्र की आदिवासीय धारणा आदिवासियों से नहीं पाई जाती है। आदिवासी शासक तथा उनकी बड़ परिवार के स्थान पर जिम्माधीन की नियुक्ति आदिवासी प्रशासन का स्थान नहीं ले सकती है। आदिवासी शासन प्रणाली के स्थान पर, जिम्माधीन शासन प्रणाली की स्थापना बरतुन एक ऐसी बाह्य प्रणाली की स्थापना करना है जिसका आदिवासी जीवन में कोई स्थान नहीं है। गजूमदार आदिवासी क्षेत्रों में स्थानीय प्रशासन प्रणाली अपना देने के पक्ष में हैं क्योंकि एक और गैर-आदिवासी प्रशासन प्रणाली आदिवासियों के लिये विदेशी है और दूसरी ओर आदिवासियों में स्थानीय प्रशासन प्रणाली की परम्पराय अब भी विद्यमान है¹। इसी परम्परा का

1 अधिकतर गणजातियों में गणजातीय संगठन पाया जाता है। वहीं सम्पूर्ण गणजाति का धनानुक्रम मुखिया पाया जाता है वहीं गाँव या कई गाँवों से मिलकर बने क्षेत्र के धनानुक्रम अध्यक्ष या मुखिया पाये जाते हैं जो राजनीतिक और सामाजिक सत्ता के अधिकारी होते हैं। ये अध्यक्ष या मुखिया अक्सर गणजाति के लोगों की सलाहकार परिषद की राय से काम करते हैं। परिषद के सदस्यों की सत्ता या तो मुखिया से मिलती है या गाँव के निर्माण में उनके द्वारा दिये हुए योगदान से। छोटा नागपुर में ऐसे लोगों को चूट बट्टीदार या बुद्धहार (जंगल साफ करने वाला) कहते हैं। ही गणजाति में प्रत्येक गाँव का एक अध्यक्ष (मुण्डा) होता है जो पूर्ण अध्यक्ष (मांशी) के अधीन होता है। एक पूर्ण में दो या तीन गाँव आते हैं। प्रत्येक गाँव में एक पुजारी, एक मुनीम और कई धर्मगुरु होते हैं जो गाँव के अफसर समझे जाते हैं। पहाल पठने पर, इन लोगों को प्रत्येक परिवार से पारिवारिक मिलता है। कुछ मुण्डा गाँवों में ग्राम अध्यक्ष और पुजारी एक ही व्यक्ति होता है किन्तु जहाँ गाँव बड़ा होता है, वहाँ पुजारी और अध्यक्ष के पद अलग अलग लोगों के पास होते हैं। सचालो में, ग्रामाध्यक्ष मांशी कहलाता है और वह परगना अध्यक्ष (परगनाइत) के अधीन होता है। एक परगना में कई गाँव आते हैं। मांशी और परगनाइत दोनों मिलकर ही पूर्ण सामाजिक व्यवस्था का नियंत्रण करते हैं। जोग मांशी, मांशी के आदेशों को लागू करता है। लोगों में प्रत्येक धर्मगुरु का मुखिया और ग्रामाध्यक्ष मिलकर स्थानीय प्रशासन चलाते हैं। गाँवों में पटल ग्रामाध्यक्ष भी होता है और धर्मगुरु भी। इस प्रकार, आदिवासी शासन के भी धनानुक्रम प्रशासन केवल प्रशासन नहीं है और न केवल वे राजनीतिक प्रशासन हैं। उनका पद सांस्कृतिक जीवन का एक अंग है—गजूमदार वि. मद्रिक्ता आय. इन्डियन बहुर. पृष्ठ 110-11

उपयोग आदिवासी प्रशासन में होना चाहिए न कि सरकार द्वारा नियुक्त भ्रष्ट आदिवासी एजेंटों का। मजूमदार के तर्क का आधार यह तथ्य है कि आदिवासी प्रशासन व्यवस्था यारपीय व्यवस्था से भिन्न है और संस्कारण आदिवासियों पर यारपीय व्यवस्था लादी नहीं जानी चाहिए। आदिवासी क्षत्रा मयाना और पुलीस की स्थापना का मजूमदार मत्त्व नहीं देते हैं क्योंकि व आदिवासियों का आदिवासियों द्वारा प्रशासन चाहिए है। उनका तर्क का मुख्य उद्देश्य है आदिवासी जीवन का सम्यता के विश्वलनकारी प्रभावों से बचाना।

स्वतंत्रता के पश्चात् सारी समस्याएँ एक नया रूप ले ली हैं क्योंकि अब योरोपीय वनाम आदिवासी की समस्या नहीं रही है। अब समस्या है एक ऐसी प्रशासन प्रणाली की स्थापना की जिसमें आदिवासी जीवन विश्व संरक्षित भी न हो और उसका राष्ट्रीय प्रवाह से पर्यवर्ण भी न हो। मविधान में जिस प्रशासन प्रणाली का निर्णय किया गया है उसमें अंग्रेजों द्वारा स्वीकृत प्रणाली को थोड़ा बदलकर स्वीकार किया गया है। आज आदिवासी एक जलज समूह नहीं है। व भारत के नागरिक हैं और उन्हें वही मौलिक अधिकार तथा सुविधाएँ प्राप्त हैं जो भारत के एक सामान्य नागरिक का प्राप्त हैं। किंतु आदिवासी एक पिछड़ा हुआ अल्पसंख्यक वर्ग है अतः उनके लिये विशेष प्रशासन की व्यवस्था का स्वीकार किया गया है। मविधान में यह निर्देश दिया गया है आदिवासियों और पिछड़ी जातियों व सामाजिक विकास और कल्याण की दृष्टिकोण राष्ट्रपति और राज्यपालों का विशेष उत्तरदायित्व है। इसके लिये राष्ट्रपति का राज्यपाल की सलाह से, किसी भी गणजाति और जाति का अनुसूचित घोषित करने का अधिकार दिया गया है। राष्ट्रपति को यह अनुसूचित क्षेत्र घोषित करके वहाँ का राज्यपाल का अधिकार भी दिया गया है कि आदिवासी कल्याण के लिये वह आदिवासी-क्षत्रों का उत्तरी दृष्टिकोण व लिए आदेश दे और समय-समय पर उनमें कल्याणकारी कार्यक्रमों के विकास पर रिपोर्ट ले। पिछड़े वर्गों की जाँच करने और उनके सुधार के लिये सलाह देने के लिये, राष्ट्रपति को कमिशन नियुक्त करने का भी अधिकार है। काका कालेक्टर की अल्पसंख्यता में ऐसा एक कमिशन (1952-53) अपनी रिपोर्ट पेश कर चुका है। राष्ट्रपति को इसके लिये एक विशेष अधिकार नियुक्त करने का अधिकार है जिसके फलस्वरूप पिछड़े वर्गों (जिसमें अनुसूचित जातियाँ तथा गणजातियाँ और क्षत्रा आते हैं) में विकास काम की देखभाल के लिये एक कमिशनरी नियुक्त की गई है।

मविधान में यह निर्देश दिया गया है कि राज्य समाज के कमजोर तबकों की शिक्षा और आर्थिक हितों का विशेष ध्यान रखेगी और सभी प्रकार के सामाजिक अत्याचारों तथा घावों में उनकी रक्षा करेगी तथा इस दिशा में अनुसूचित जातियों और गणजातियों की दृष्टि पर विशेष ध्यान देगी। मविधान में बिहार, मध्यप्रदेश और उड़ीसा में आदिवासी-कल्याण मंत्रालयों के संगठन का निर्देश है क्योंकि इन

प्रदेशों में आदिवासियों की सहायता ज्यादा है। आसाम के प्रशासन के लिये, अलग विधान है और, जा क्षेत्र आसाम, उड़ीसा बिहार और मध्यप्रदेश के बाहर पड़ते हैं, उनके लिये एक अलग विधान की व्यवस्था है। आसाम के आदिवासी-क्षेत्रों के प्रशासन के लिये, स्थानीय शासन के अधिकारों से युक्त, मण्डला और प्रशासन के निर्माण तथा उनमें परिपक्वता के संगठन का विधान किया गया है। यह परिपक्व स्थानीय मामलों में स्वतंत्र हैं और स्थानीय सामाजिक जीवन के नियमन का इन्हें अधिकार है। प्रायः प्रशासन का भी इन्हें अधिकार है। भारतीय दण्ड मंहिता में स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार, ये परिपक्व परिवर्तन कर सकती हैं। संसद के अधिनियमों का अपने क्षेत्र में लागू कराने, रोकने या बदलने का इन्हें अधिकार है। नागालैण्ड आज एक अलग प्रदेश के रूप में बदल गया है।

संविधान के अनुसार, आदिवासियों का बालिंग मताधिकार मिला है। भारतीय संसद और प्रदेशों की विधानसभाओं में आदिवासियों की सीटें आरक्षित हैं। सरकारी नौकरियों में भी उनकी सीटें आरक्षित हैं। सीटों के आरक्षण का विधान पहले दस साल के लिये था किन्तु बाद में, इसे अब 26 जनवरी सन 1970 तक बढ़ा दिया गया है। अनुसूचित गणजातियों के कल्याण तथा उनकी अच्छा प्रशासन प्रदान करने के लिये संविधान में यह निर्देश दिया गया है कि केन्द्रिय सरकार राज्य सरकारों को जलम में अनुदान दिया करगी।

संविधान में आदिवासी सलाहकार परिपक्व के संगठन का विधान है। इस परिपक्व का कार्य राज्यपाल को आदिवासी प्रशासन के मामलों में सलाह देना है। संविधान में राज्यपाल को यह अधिकार दिया गया है कि अपने राज्य के अनुसूचित क्षेत्र में सामान्य कानून का लागू होना रोक सकता है या उसे आवश्यकतानुसार बदल सकता है। राज्यपाल सलाहकार परिपक्व की सलाह मानने के लिए बाध्य नहीं है किन्तु उसका यह अधिकार निरकुश भी नहीं है। आदिवासी क्षेत्र में शांति बनाये रखने के लिए या उनमें प्रशासन लाने के लिए या व्यापारियों तथा मूदयोरों की गतिविधियों पर नियंत्रण रखने के लिए या आदिवासियों की भूमि का दूसरों के हाथ में जाने से रोकने के लिए या भूमि का बटवारा करने के लिए राज्यपाल सामान्य कानून का रोक या बदल सकता है।

भारतीय संविधान में, इस प्रकार, जिस प्रशासन व्यवस्था की रूपरेखा रखी गई है उसके आधारभूत उद्देश्य हैं आदिवासी समाज की दिगिष्टता बनाये रखना, उस धीरे धीरे भारत के राष्ट्रीय जीवन से एकीकृत करना विश्व खलनकारी तथा गोपण शक्तियों का दूर करना और आदिवासी समाज के विकास तथा कल्याण के माग को प्रशस्त करना। भारत का नागरिक मानते हुए भी आदिवासियों को अलग से दिशिष्ट अधिकार प्रदान करना अर्थात् भारत की संस्कृतीकरण की प्रक्रियाओं और अग्रगण्य द्वारा अपनाई गई नीति के स्वामाविक ऐतिहासिक परिणाम है।

मजूमदार के अनुसार, इसाई मिशनरियो ने आदिवासियो म इसाइयत का प्रचार करके आदिवासी सामाजिक सांस्कृतिक जीवन की जटिलताओं और इसाइयत का समस्याओं को और भी बढ़ा दिया है। एक ओर, पूजातादी सघात व्यवस्था के प्रभावा से गणजाति की सामाजिक संरचना में वण-विभेदीकरण बढ़ा तो, दूसरी ओर, इसाइयत के प्रचार से गणजाति का धर्म के आधार पर लम्बा मक (Vertical) विभाजन हुआ और दोनों के सम्मिलित प्रभाव से सामाजिक विभूत खलन और गैर आदिवासीकरण (Detribalization)। आदिवासी गावों की जनता और गणजातिया आदिवासियो और गर-आदिवासिया में बँट गए और उनमें सम्पर्क ही नहीं कम हुआ वरन् धार्मिक सघात भी बढ़ा। खासी इसाइया और गर इसाइयो में बँट गए हैं और खासी गणजाति के इन दो तबकों में बहुत ही कम सामाजिक सम्पर्क है। इसाई धर्म में प्रविष्ट सभी आदिवासियो को उच्च आर्थिक स्तर न मिल सका। इसाई धर्म स्वीकार करने वाले आदिवासियो को समाज में हिकारत की नजर से देखा जाता है जिसका परिणाम यह होता है कि इसाई आदिवासियो को अनेक नागरिक अधिकारों (Civil Rights) स भी हाथ धोना पड़ता है क्योंकि आदिवासी, इसाई आदिवासी को धूत मानते है जत, इसाई होने वाले आदिवासी या तो अधिकतर मिशन की नौकरी करते हैं या फिर शहरो में चले जाते हैं। जहा इसाई आदिवासियो की सख्या अधिक है, वहा उनका प्रभुत्व रहता है, और जहा उनकी सख्या कम है वहा, अपनी ही बिरादरी की दृष्टि में ह्य बनने से बचने के लिए, वे शहरो में स्थानांतरित हा जाते हैं। तमाम ओराव और मुण्डा इसाई रिक्का चलाकर बाशा ढोकर खेतिहर मजदूरों के रूप में काम करके और छोटे मोटे शिल्पी पेग अपनाकर जीवन बसर करते पाये गये है।

इसाइयत के प्रसार से आदिवासी समाज में विपमता ही नहीं आई है वरन् सांस्कृतिकरण की अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो गई हैं। हिंदुत्व में गणजाति का रूपांतरण धीरे धीरे होता था और इस रूपांतरण में आदिवासी को अपने विश्वासों और प्रथाओं को सहना बदलना नहीं पड़ता था। जाति गणजाति सतत में चलने वाली हिंदूकरण की प्रक्रिया में या तो सम्पूर्ण गणजाति किसी सुधारवादी आंदोलन के माध्यम से अपना उत्तरोत्तर हिंदूकरण करती थी, या गणजाति के नेता, हिंदुत्व से आकृष्ट हाकर अपनी तथा गणजाति की सामाजिक प्रतिष्ठा का ऊँचा उठाने के लिए गणजाति में हिंदू विश्वासों और प्रथाओं को नवोन्मेष (Innovation) के रूप में धीरे धीरे अपनाते थे। जाति के रूप में गणजाति की विनिष्ठाएँ बनी रहती थी। हिंदूकरण का मूल आधार रहा है सस्वताइजेशन जिसे हिंदू प्रथाओं को वही तक अपनाया गया है जहाँ तक आवश्यक है। सस्वताइजेशन का अर्थ गणजाति की सस्वृति का आमूल चूल परिवर्तन नहीं रहा है और इसकारण, सस्वृताइजेशन से गणजाति का सांस्कृतिक उन्मूलन नहीं होता था वरन्

हिन्दू समाज में गणजाति को उसकी आधारभूत विगिष्टताओं के साथ, एक निश्चित सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त होती थी। गणजाति का जाति में रूपांतरित होना का अर्थ होता था गणजाति द्वारा अपने विद्वानों और प्रधानों में, निगम परम्पराओं का सम्बन्ध। हिन्दुत्व उस रूप में समझित मिशनरीवादी धर्म नहीं रहा है जिस रूप में इसाइयत है। इसलिए हिन्दुत्व में प्रवेश करने वाले समूहों से आरंभभूत सांस्कृतिक परिवर्तन की मांग नहीं की गई है। और फिर जाति तथा गणजाति के सांस्कृतिक आधारों में इतनी समानता रही है कि गणजाति का जाति में रूपांतरण, अवरोध रहित होने के साथ-साथ सामाजिक प्रतिष्ठा प्रणाली में एक स्तर ऊपर उठा हुआ नदम होता था।

इसाइयत के सघात से इस प्रक्रिया को दूसरा रूप मिला। इसाइयत का पहला प्रभाव यह पड़ा कि आदिवासी विशेषतः इसाई आदिवासी अपने को आदिवासी और हिन्दू से अलग, एक विशिष्ट-समूह मानने लगे। इसाई मिशनरियाँ ने व्यक्तिगत रूप से धर्म परिवर्तन कराया है, गणजातियों का नहीं जिसके कारण, आदिवासी समाज में और इसाई आदिवासियों के मानसिक गठन में हिन्दू बनाम आदिवासी का लेकर सामाजिक-मानसिक द्वन्द्व का समावेश हुआ। इसाई मिशनरियाँ ने दबाइयाँ अन्न और कपड़े पहले बाँटे, स्कूल पहले खोले और इसाइयत का प्रचार बाद में किया। इसलिए, आदिवासी इसाइयत की ओर आध्यात्मिकता के कारण नहीं बरन कुछ सामाजिक लाभों की पूर्ति की प्रेरणा से आकृष्ट हुए। इसाइयत की सुयुक्तकृत बौद्धिक धर्मविद्या और आदिवासी के आधिदैविक सम्बन्धी भावात्मक विश्वास और कमकाण्ड परस्पर विरोधी हैं। इसाई आदिवासी इसी विरोध का शिकार हुआ जिसका परिणाम यह हुआ कि इसाई-आदिवासी न तो इसाई रहे और न आदिवासी। दूसरे धर्मों को हेय बताकर, अपने धर्म की श्रेष्ठता प्रतिपादित करना मिशनरी कार्य की एक साधारण विशेषता है। इसका परिणाम यह हुआ कि इसाई मिशनरी और इसाई आदिवासी ने जहाँ आदिवासीत्व को हेय माना वहाँ आदिवासी इसाइयत के प्रति शकालु हो गया।

जहाँ गणजातियाँ और निम्नस्तर की जातियाँ काफी दिनों से साथ साथ रहती आई हैं और उनके हितों में संघर्ष नहीं रहा है, वहाँ गणजातियाँ जाति के घेरे में प्रवेश करती रही हैं। किन्तु, जहाँ आदिवासी हिन्दू जमींदारों, व्यापारियों और सूदखोरों के शासन के शिकार रहे हैं और उन्हें बेगार करनी पड़ी है तथा आर्थिक बहिष्कारों के कारण अपनी खेती की भूमि से हाथ धोना पड़ा है और इन बाहरी शक्तियों के कारण आदिवासी नारियाँ का सतीत्व भंग होता रहा है वहाँ, इसाइयत को एक प्रतिनिधायक माध्यम के रूप में अपनाया गया है। कोल विद्रोह (1932) और छोटा नागपुर के आस पास इसाइयत का प्रसार, ऐसी ही परिस्थिति का परिणाम है। छोटा नागपुर के आस-पास गाये जाने वाले एक लोकगीत में यह भाव आता है कि 'पठाना ने आकर हमारी दूरमत और सिक्कों ने हमारी बहना की अस्मत् लूट ली।

हमारा जीवन अब निरपेक्ष है। हम एक ही गणजाति के हैं। माओ, हम सगठित हों और सगठित होकर हम भी मारें, लूट और नाश करें।' छोटा नागपुर के एक जर्मन मिशन की रिपोर्ट में आदिवासी भावना को इस प्रकार व्यक्त किया गया है, 'हम प्रेतात्मा की पूजा छोड़कर इसाई हो जाना चाहिए ताकि, पादरियों की सहायता से, हम हिंदुओं के अत्याय से बच सकें और अपनी खोई हुई खेती पुनः प्राप्त कर सकें'। इसाइयत ने आदिवासियों को आध्यात्मिक प्रेरणा नहीं दी वरन् प्रतिस्पर्धात्मक प्रेरणा दी है। इसाइयत से, आदिवासी बनाम गर-आदिवासी के सामाजिक संघर्ष को प्रेरणा मिली है। नागा प्रदेश के और हाल के बिहार तथा झंडीसा के दंग इसका प्रमाण हैं।

इसाइयत के सघात ने आदिवासियों में सस्कृतीकरण की जिस प्रक्रिया को जन्म दिया है वह सस्कृताइजेशन की आरंभ नहीं वरन् योरोपीयकरण की आरंभ उन्मुख रही है। योरोपीयकरण का अर्थ रहा है चर्च-संगठन में प्रविष्ट होना चर्च-पूजा पद्धति का तथा इसाई ईश्वरवाद को अपनाना आदिवासी विश्वासों तथा कर्मकाण्ड को छोड़ना, योरोपीय वंश भूषण तथा तीर-तरीका और इसाई सामाजिक संगठनों (मुख्यतया एक विवाही पितृसत्तात्मक परिवार इसाई विवाह पद्धति तथा व्यक्तिवादी सामाजिक सम्बन्धों) को अपनाना। इसाई धर्म में प्रविष्ट होने वाले आदिवासी, सस्कृतीकरण की इस प्रक्रिया में, अपने ही पर नहीं छाड़ दिये जाते हैं। इसाई मिशनरी बराबर इस प्रक्रिया का जगमग बढ़ने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि आदिवासी के देशी तीर-तरीको और इसाई तीर-तरीका में संघर्ष उत्पन्न हो जाता है। इसाइयत ने आदिवासी समाज में, व्यक्तिगत सम्पत्ति के अधिकारों पितृसत्तात्मक परिवार और उत्तराधिकार-सम्बन्धी विचारों को प्रोत्साहित किया है। वही वही ये विचार, आदिवासी प्रथाओं के विरोध में पड़ कर, संघर्ष उत्पन्न करते हैं। खासी इसाइया के मातृसत्तात्मक परिवार संगठन में सबसे छोटी लड़कियों के उत्तराधिकार की वधता को लेकर, मुकदम चलने के विवरण मिले हैं। जो इसाई खासी हो गए हैं वे खासी परम्पराओं का नवनिवचन करके वह प्रतिपादित करने लग्ये जा सकते हैं, खासी परम्पराओं में नहीं है। इसाई गाड़ गातुल को हेय दृष्टि से देखने लग्ये हैं।

इसाई मिशनरियों ने आदिवासियों में शिक्षा का प्रसार किया उह सम्यता से परिचित कराया, उनके लिए अस्पताल का स्थापित किया, उनकी बोलियों का विकास करके, उह भाषा का स्तर प्रगति करने का प्रयास किया और जमींदारों तथा महाजनों के शासन से उह प्राण-मिलान की कांक्षा भी की। किन्तु साथ ही साथ मिशनरियों ने, आदिवासियों का इसाई बना कर, एक ऐसे सांस्कृतिक मसार में ला पटवा है जो न भारतीय है, न आदिवासी और न योरोपीय। यह एक सीमांत मसार

है जिसमें सस्त्रुति-सधप का समावग है। वही वही, इसाइयत का बड़ा अस्वस्थ प्रभाव पड़ा है। इसाइयत के सघात के कारण आदिवासी में अधपनी परम्परागत सस्त्रुति के प्रति विद्वेष और घणा का भाव जाया है। इसाइयत में जीवन स्तर का उठान की प्रेरणा अवश्य मिली है किन्तु इसाइयत में वे प्राथिक साधन नहीं मिले हैं, जिनसे जीवन-स्तर को उठाया जा सके। मिशनो ने, अधिकतर गरतवनीकी शिक्षा का ही संगठन किया है। और फिर सभी इसाई होने वाले आदिवासी मिशन के स्कूलों में दो जान वाली शिक्षा का उपयोग भी नहीं कर पाये हैं। इसाई हान वाले अधिकतर लोग मजदूर, कुली माली, खानसामा बँरा और अधिक से अधिक बल्क और पादरी होकर रह गये हैं। कुछ ऐसा दसन में आता है कि भारतीय इसान्या की लक्ष्यता शिक्षा का उपयोग कर लती है किन्तु लक्ष्य नहीं कर पात हैं। इसका परिणाम यह होता है कि इसाई लक्ष्यियों की गादी एक सामाजिक समस्या बन जाती है।

जीवन स्तर को ऊँचा उठाने की प्रेरणा के अनुरूप साधन न मिलने से नैराश्या, दोनता, हीनता की भावना दिखावे की प्रवृत्ति और अपराधी वृत्तियों का जन्म हाता है। मजूमदार ने अनराधी गणजातियाँ के एक कम्प के असिस्टेंट मुपरिटेण्डेंट की स्थिति का वर्णन करके, इसाई हान वाले गरीब लोग की दोनता का वर्णन किया है। बड़ दिन की दावत में उसने मजूमदार को आमंत्रित किया था। मजूमदार के अनुसार, खाने की मज के पाय टूटे थे उसे इटो के पाय पर खड़ा किया गया था और खाना आमंत्रित लोग के लिए काफी न था। बीच ही में खाना खत्म हो जाने में, महमान्तो के सामने ही पति पत्नी में अशासन बातचीत हुई। दूसरे दिन प्रात काल उस मुपरिटेण्डेंट ने मजूमदार को बताया कि उसने उस दावत के लिए कर्जा लिया था और उसने यह भी बताया कि कैसे उसे अक्सर रखी-सूखी राटी खाकर गुजर करना पड़ता था। उसने यह भी बताया कि कैसे चूच जाना और दूसरों के समान कपड़े पहन कर सत्तोप और ऊँचे स्तर की जिदगी का दिखावा करके रहना उसके लिए लाजिमी था। मजूमदार के अनुसार ऐसा सधप उस व्यक्ति का ही नहीं बरन बहुता का है और, सम्भवत सम्पता के सघात का परिणाम है। छोटा नागपुर के इसाई आदिवासी बहुधा गहरो में आ जात हैं और वहाँ मजदूर, कुलीगिरी, रिक्शागिरी और छोटे माटे गिल्पी कामों को करके, जीवन निर्वाह करते हैं। लेकिन साथ ही साथ वे योरोपियना की वगमूपा की नकल करते हैं, प्लेटों में तथा मेज पर खाना पसन्द करते हैं इतवार का योरोपियना की भाँति कपड़ पहन कर चूच जाना पसन्द करते हैं और उन तमाम आरामत्यायक सम्पता के उपकरणों का पाने की स्वाहिंग करते हैं जो उनके आर्थिक साधना की सीमा के बाहर हैं। फलत उनमें सामाजिक अयोग्यता और दोनता की भावना आती है, जो उन्हें अपराधी वृत्त्या की ओर प्रेरित करती है। एक व्यापारी एजेण्ट के अनुभव का हवाला देत हुए, मजूमदार ने यह लिखा है कि नागा प्रदेश में अगराग (Cosmetics), पाउडर, लिपस्टिक,

साबुन और सुगंधित तेलों की माग आठ नौ गुना बढ़ी है जबकि रबर की बनी सतति निरोधक वस्तुओं की माग इतनी बढ़ गई है कि वे बाजार भाव पर भी मिलती नहीं है। इन चीजों की माग इसाई खासिया में ही अधिक है क्योंकि उनमें, इसाईयत के प्रभाव से व्यवहृत स्वच्छता का स्तर बढ़ गया है¹।

मानवशास्त्रियों का यह मत रहा है कि विदेशी इसाई मिशनरी के दृष्टिकोण में आदिवासी सस्कृति के प्रति उदारता और सहानुभूति का अभाव है क्योंकि उनका उद्देश्य आदिवासी को सच्चा इसाई बनाना रहा है। इसमें मिशनरी का भी दाव नहीं है क्योंकि आदिवासी को सच्चा इसाई बनाना उसका पेशा है और उसकी जीविका का आधार है। मिशनरी द्वारा की जाने वाली सेवाओं ने पीछे स्वाय है, और स्वाय तथा उदारता में विरोध है। व्यापारी चाहे धर्म का हा या पार्थिव वस्तु का, न तो सहिष्णु रह सकता है और न उदार। यही कारण है कि मिशनरी की गतिविधियों के प्रभाव से, आदिवासी सस्कृति की शक्ति का ह्रास हुआ है और अनेक गणजातियों का सामाजिक-सास्कृतिक सतुलन बिगड़ गया है। यही कारण है कि मजूमदार, शरतचंद्र राय, मिल्स और हटन जैसे मानवशास्त्रियों ने आदिवासी क्षेत्रों में काम करने वाली मिशनरियों की गतिविधि पर रोक और नियंत्रण लगाने की माग की है।

सम्पत्ता के उत्तरोत्तर सघात से अनेक आदिवासी सास्कृतिक प्रथाएँ धीरे धीरे लुप्त हो गईं अनेक नई प्रथाएँ सामाजिक समस्या के रूप में आविर्भूत सस्कृति सम्पत्त हूँ और अनेक प्रचलित प्रथाएँ सामाजिक समस्याएँ बन गईं। और समस्याएँ जहाँ हिंदूकरण की प्रवृत्ति है वहाँ सरल आदिवासी अनुष्ठानों के स्थान पर जटिल हिंदू अनुष्ठानों को और जहाँ इसाईयत का प्रभाव है वहाँ इसाई अनुष्ठानों को अपनाया जा रहा है। वहीं कहीं, बाल विवाह नया आदश बन गया है जो आदिवासी परम्पराओं के प्रतिकूल है। युवागण के ह्रास से आदिवासी जीवन में तनाव पैदा हो रहा है। परम्परागत जादुई धार्मिक प्रथाओं पर से आदिवासी का विश्वास उठ रहा है किन्तु उनके स्थान पर कोई नया आधार नहीं उत्पन्न हो रहा है। जहाँ विवाहपूर्व और विवाहापरांत परम्पराओं की प्रथा थी वहाँ इस प्रथा के दुरुपयोग के कारण आदिवासियों का नैतिक शापण हो रहा है। जब तक ऐस सम्बन्ध गणजाति के ही घरे तक सीमित थे तब तक ये सामाजिक समस्या न थी²। आज आदिवासी क्षेत्र में घर आदिवासियों के रहने के कारण, यह प्रथा वैश्यावृत्ति

1 मजूमदार, डी० एन० दि मद्रिक्त आफ इण्डियन कल्चर पृष्ठ 136 144-45

2 बदलती हुई परिस्थितियों में एक सामाजिक सस्या किस प्रकार नतिक पतन और सामाजिक समस्या का कारण बन जाती है इसका एक उपयुक्त उदाहरण

और नतिक पतन का कारण बन रही है। इसके कारण आदिवासी प्रदंगों में गुप्त रागा की भयंकरता भी फल रही है। वधूधन जो पहले घाय के रूप में दिया जाता था और रक्त सम्बन्धियों के योगदान से एकत्र होता था, आज नकद दिया जाता है और प्रत्येक पिता का अपन पुत्र के लिये या स्वयं वर का अपने लिये वधू धन का प्रबंध करना पड़ता है। उधर वधू धन की रकम वैसे ही बढ़ गई है जित हिन्दुओं में दहश की रकम बढ़ गई है। जिस व्यक्ति का सामाजिक स्तर जितना ऊँचा है वह अपनी कन्या के लिये उतना ही ज्यादा वधू धन मांगता है। इसका परिणाम यह हुआ कि गिहार में, छोटा नागपुर के आस पास की अनन्त गणजातियाँ में, तमाम कन्यायें कुंवारी रह जाती हैं। पहले यदि कोई वर व्यक्ति वधू धन नहीं दे पाता था किन्तु यदि कन्या और उसका पिता विवाह करने पर राजी हात थे तो वह, अपनी भाबी पत्नी का भगाने या उसका अपहरण करके, विवाह कर लेता था। किन्तु आज 'भगाना (Elopement) और अपहरण (Capture), भारतीय दण्ड-महिता के अनुसार, अपनयन (Abduction) हैं और दण्डनीय हैं। वधू धन की समस्या, एक आर, ऋणप्रस्तता की समस्या का जन्म दे रही है और, दूसरी ओर, अविवाहिताओं की नैतिक समस्या का। पहले, जगला का काटकर, जगम कृषि करना एक सामान्य आदिवासी सांस्कृतिक प्रथा थी किन्तु आज वह कानूनन बन्द कर दी गई है और कानून की सीमा का उल्लंघन दण्डनीय है। आदिवासी पंचायत प्रणाली की अनेक दण्ड व्यवस्थायें, जिनका पहले उल्लेख किया जा चुका है, भारतीय दण्ड-महिता के

जीनसार बाबर में मिलता है। यहाँ स्त्रियाँ कई पतियों की पत्नी होती हैं। अपने पिता के घर में, उन्हें गाँव के लोग के साथ विलासी जीवन बिताने की अनुमति रहती थी। स्त्रियों को मिलने वाली यह सांस्कृतिक छूट, बहुपतित्व पर आधारित समुच्च परिवार की पोषक थी। किन्तु, इस प्रदेश में, जब बाहर के लोगों का आना-जाना प्रारम्भ हुआ तो इस प्रथा का शोषण होने लगा क्योंकि बाहरी लोग यहाँ की लड़कियों को गरीब बेचने के लिये लालच देने लगे। प्रत्येक जीनसारी पुरुष जानता है कि उसकी स्त्री यदि उसकी पत्नी है तो अपने गाँव में वह किसी की प्रेमिका भी है। लाला मण्डल के आस पास से यहाँ की स्त्रियों के बेश्या बन कर बड़े बड़े गहरों में जाने के समाचार मिले हैं, जो सबका निम्न नहीं हैं। वहाँ पोषकाय करने वाले मेरे एक मित्र ने बताया कि बहुपतित्व की प्रथा और नतिकता के दोहरे मापदण्ड में पत्नी नारी के लिये घर और बंगालों बराबर हैं क्योंकि यह एक से अधिक पुरुषों की कामतृप्ति प्रदान करने की आदी है। गहरों की चकाचौंध, बेश्यालयों में मिलने वाला मान, अच्छे कपड़े और अच्छा खाना और कठिन सेती के परिधम से मुक्ति बंगालों के प्रति आकर्षित होने के कारण बन जाते हैं।

अनुसार, प्रमाय ही नहीं, दण्डनीय हैं। नर बलि और नागाआ म दी जान वाली मूण्डा की बलि जसा प्रयायें आज गरकानूनी बन गई हैं।

मदिरा सेवन आदिवासी मरुति का एक अंग रहा है क्योकि आदिवासी अपने जादुई धार्मिक अनुष्ठानों उत्सवा पर्वों और सस्कारों म मदिरा का प्रयोग करता रहा है। आदिवासी के साथ साथ, उसके देवी दैवता भी मदिरा का भाग करत हैं। विवाह की रस्मों म मदिरा भट करन की आदिवासीयो म प्रथा रही है। वाममार्गी हिंदू अनुष्ठानों और प्रथाओं म मदिरा का प्रयोग आदिवासीयो मे ही आया जान पड़ता है। चावल और महुए की मन्त्रि आदिवासी अत्यंत प्राचीन काल स बनाते और प्रयोग करत आये हैं। अंग्रेजी राज की स्थापना के बाद से सरकार न मदिरा का उत्पादन और वितरण अपने हाथ म ल लिया ताकि सरकारी राजस्व बढ़ सक। अंग्रेजी सरकार न आचकारी की जो नीति अपनाई, उमम उत्पादन और वितरण ठेके पर दिया जाने लगा। मदिरा उत्पादन वितरण क चार प्रकार धीरे धीरे विकसित हुए हैं—एक शराब बनाने के बड़े बड़े कारखानों और वितरण की दूकानों का साइसम देना दूसरा, वितरण का राशन करना जस मद्यनिषेध क क्षेत्रों म है तीसरा, देशी तरीक स शराब बनाने की आम छूट देना जसा कि जीनसार बावर म है जहा हर व्यक्ति अपनी आवश्यकतानुसार अपने राश भर की शराब बना लता है और, चौथा, देशी शराब बनाने तथा बेचने की भट्टियों को कायम करना। आदिवासी क्षेत्रों के लिये चौथे प्रकार का तरीका अपनाया गया है। इसम काई सन्देह नहीं कि इस प्रकार क उत्पादन और वितरण मे अय स्थानों की अवेना आदिवासी क्षेत्रों म अवेनाश्रित सस्ती शराब मिलनी है लेकिन उसम स्पिरिट (Spirit) की मात्रा इतनी ज्यादा होनी है कि वह स्वास्थ्य क लिये हानिकारक हो जाती है। आदिवासी द्वारा बनाई हुई शराब इतनी तेज नहीं होती थी और, इसकारण वह अधिक स्वास्थ्यवदक थी। पहले, जब आदिवासी स्वयं शराब बनाता था तब, शराब का उत्पादन भी कम होता था और शराब का प्रयोग भी विगोप अवसरों पर ही होता था। किंतु, भट्टियों के कायम हा जाने स शराब के उपभाग की मात्रा बढ़ गई है। बढ़ती हुई आर्थिक दैनिकता से उत्पन्न मरदाय के कारण शराब का बढ़ता हुआ उपभोग आज आदिवासी की मानसिक दण्डता का परिचायक हो गया है।

बाह्य ससार से बढ़ते हुए सम्पर्क क कारण, अनेक स्वास्थ्य तथा आचार सम्बंधी समस्यायें उत्पन्न हो गई हैं। अधिकतर आदिवासी क्षेत्रों म कपडे का प्रयोग अल्पतम होता था। अधिकतर आदिवासी कमर से ऊपर का बदन नगा रखत थ। इसाइ मिशनरियो और अन्य लोगो ने वह इसकारण हय नष्टि से देखा। अत शरीर ढकने क लिय कपडे का प्रयोग बढ़ा। किंतु आर्थिक साधना की कमी क कारण, आदिवासी अधिक कपडा का प्रबंध न कर पाया। इसका परिणाम यह हुआ कि आदिवासी तन तो ढकने लगे मगर, कपडा की कमी के कारण, वह कपडों की

गन्धगी और उससे उत्पन्न बीमारियाँ का भी गिवार हुआ। आदिवासी नारी को मिली परसम्बन्धी की सांस्कृतिक मर्यादा के गायण स आदिवासियों में गुप्त रागों (गर्भों और मूजाव) का प्रसार जनस्वास्थ्य का एक प्रधान समस्या बन गया है। तपस्विक जस संश्लेषक रागा की सख्या बढ गई है। नागाप्रत्या में सादीनुमा खेता में खेती करन के प्रचार में, मलरिया का प्रकाप बढ गया है क्योंकि इन खेता में भर रहने वाल पानी में, मच्छरों की पक्षावार बढती है। थाइओ में राट (Franchoma) की बीमारी का अधिकता है। खाटा और गोडो में गर्भों (Siphillis) के प्रकार की याज (Laws) नामक बीमारी का प्रवण हुआ गया है। खाण प्रदण में इस खाटा की बीमारी और मारिया खाटा में इस मारिया बीमारी कहा जाता है। इसप्रकार, मभ्यता के सम्पर्क में आदिवासियों में नयी-नयी बीमारियाँ आ गइ हैं जिनका निदान-उपचार न उनकी जडो बूटिया में है और न जातू-टाने में।

गहरीकरण और औद्योगीकरण न भी आदिवासियों का प्रभावित किया है। अंग्रेजी राज में एक ओर आदिवासियों की आर्थिक दीनता बनी और, दूसरी ओर सहरा तथा नये उद्योगों ने नये आर्थिक अवसर प्रदान किये। कारखाना खाना, जंगल और चाम के वाया में श्रमिकों की माग बनी। फलत आदिवासी, श्रमिक के रूप में गहरा और उद्योग का ओर आकर्षित हुआ। इसप्रकार गहरीकरण तथा औद्योगीकरण ने आदिवासियों में श्रमिक वर्ग का जन्म दिया। इस वर्ग में बिहार, बंगाल और आसाम के आदिवासी ही अधिक हैं। इस वर्ग में सम्पात हो, भूदया और मुण्डा गणजातियों के आदिवासी हैं। जमशेदपुर के कारखाने में हा गणजाति के समस्या की सख्या मजदूरों की कुल सख्या का दस फीसदी है। इस वर्ग के आदिवासियों का आर्थिक स्तर अपेक्षाकृत अच्छा है किन्तु उनकी दशा ठीक नहीं है। यह वर्ग भी मूदखोरा और टेनेरों के गायण का शिकार है। सहरा में रहत हुए और कारखाना में काम करते हुए इस वर्ग के आदिवासी, जुआ शराबीपन और व्यापन जैसे अस्वस्थ बूटियों के शिकार होने हैं। शराब पीन और व्यापन के कारण ये तमाम बीमारियाँ के भी शिकार होते रहते हैं। सहरों से ही ये अधकचरे राजनीतिक विचारों और नारों को ग्रहण करते हैं जिनसे छोटा नागपुर के शारखण्ड जैसे हठधर्मों अन्दोलनों को बल मिलता है।

अंग्रेजी राज्यकाल में, अधिकतर गणजातियाँ ग्रामीण सामाजिक आर्थिक व्यवस्था में आकर भारत के विंगल कृषक वर्ग में मिल गई हैं। साथ ही साथ, श्रमिकों सरकारी और गर सरकारी नौकरों के रूप में आदिवासी गहरो में भी आ बने हैं। शिक्षा के प्रभाव ने उन्हें सहरा की ओर आकर्षित किया है। इसप्रकार आदिवासी ग्राम गहर मत्ति (Tribal Rural-Urban Continuum) का दिक्कत हुआ है। आज आदिवासी ग्रामीण भी हैं और गहरी भी हैं। आदिवासी ग्राम गहर-सत्तति, आज, आदिवासी संस्कृति को परिवर्तन के आधार प्रदान कर रही है।

उत्तरात्तर हिंदूकरण, इसाईकरण, योरोपीयकरण गैर आदिवासीकरण (Detribalization) और आदिवासी पुनर्रनयन की प्रक्रियाएँ, आदिवासी ग्राम शहर सतति को पष्ठभूमि में चल रही हैं। जो समूह इस सतति में जितना समीप है वह उतना ही अधिक परिवर्तित हो रहा है।

संस्कृति सम्यता सम्भव था, आदिवासी संस्कृति पर, स्वस्य प्रभाव नहीं पड़ा है।

इससे आदिवासियों का आर्थिक सांस्कृतिक उमूलन हुआ है।

आदिवासी अंग्रेजी राजवाल में आदिवासियों का जो भी इसाईकरण या समस्या हिंदूकरण हुआ है उससे उनकी सांस्कृतिक भासा को घनका पहुँचा है। शोषण के कारण उनकी दोनता बनी है और आदिवासी तीर-तरीक़ा के प्रति उनमें हीनता का भाव आया है। एक ओर ऐसे आदिवासी हैं जो आदिवासीत्व से मुह मोड़ रहे हैं (जिनमें पढा लिखा तबका आता है) और, दूसरी ओर एक ऐसा समूह (विशाल समूह) है जो आदिवासी जीवन के प्रति उत्साहीन है। साथ ही साथ एक ऐसा भी समूह है जो आदिवासी पुनर्रनयन का हामी है। सांस्कृतिक उदासीनता जो हर दशा में पाई जाती है, सांस्कृतिक विभ्रूलन की परिचायक है। सांस्कृतिक विभ्रूलन की प्रक्रिया अंग्रेजा के आने के बाद से प्रारम्भ हुई है और, अंग्रेजी राज्यवाल में यह प्रक्रिया उत्तरोत्तर बढती गई है। इसकारण आदिवासी समाज अपने आंतरिक संघर्षों तनावों और हलचलों का शिकार रहा है जिसकी अभिव्यक्ति पहारिया, सघाल (1855) और कोल (1932) विद्रोहों के रूप में होती रही है। अंग्रेजा की नीति आदिवासियों को पथकृत करने की रही मिशनरिया की नीति उन्हें इसाई बनाने की हिंदुओं ने उन्हें हिंदुत्व में आत्मसात करने की माग रखी और राष्ट्रीय आंदोलन के प्रणताओं ने उनमें राजनितिक चेतना जगाकर उन्हें राष्ट्रीय आंदोलन के प्रवाह में लाने का प्रयास किया। आदिवासी क्षेत्रों में समाज सुधार तथा समाजसवा करने वालों का उद्देश्य याता राजनितिक रहा है या धार्मिक। आदिवासियों को समझने की सबसे कौशिस की किंतु अपने अपने दृष्टिकोण में। मानवशास्त्री ने आदिवासी और उसकी समस्याओं को सद्धान्तिक स्तर पर समझने का प्रयास किया, सरकारी नौकरी में अंग्रेज मानवशास्त्री पथककरण का हामी रहा स्टीफन कुक्स जैसे मिशनरी मानवशास्त्री हिंदुत्व के बाहर जाने में आदिवासी का कल्याण देखते रहे एल्विन जैसे लोग आदिवासियों के निर्वाध आदिवासीकरण और पुनर्रनयन के प्रतिष्ठापोषक रहे¹ और

1 एल्विन का यह मत रहा है कि आदिवासी संस्कृति का विभ्रूलन प्रणासकों, मिशनरियों व्यापारियों और सरकारी अफसरों के अनुदार दृष्टिकोण और गतिविधियों के कारण हो रहा है। आदिवासियों को नहीं धरन प्रणासकों, मिशनरियों, व्यापारियों और अफसरों को सुधारने की आवश्यकता है। और

मजूमदार जैसे मानवशास्त्री हम बात पर ज़ार दन रह कि आदिवासी सभ्कृति को नरक्षण की आवश्यकता है क्योंकि आदिवासी सभ्कृति की विशुद्धता से बचाकर, ऐम स्तर पर जाना है जहा वह भारतीय सांस्कृतिक संधान (Indian Federation of Cultures) का एक अंग बन सके।

द्वितीय महायुद्ध के दौरान में आदिवासी समाज का विशुद्धता भी बढ़ा और उनकी समस्याओं का ज़रिफ़ प्रश्न हुई। स्वतंत्रता के बाद जब नागा प्रदेश में स्वतंत्र नागा प्रदेश की मांग उठी और सरकार का विद्रोही नागाओं के विरुद्ध पुलिस पायवाही करनी पडा विद्रोह और उड़ीसा के आदिवासियों ने एक अलग प्रान्त (पारमण्डल प्रांत) की मांग की और यहा के आदिवासियों ने तिसात्मक असन्ताप व्यक्त किया ता नागा का ध्यान आदिवासी समस्याओं की आर गया। आदिवासी समाज की समस्याओं और आदिवासियों में बढ़ता हुआ असन्ताप जा अराष्ट्रीय प्रवृत्तियों का प्रगित करता है उस सांस्कृतिक विघटन की प्रक्रिया का परिणाम है। जो अग्र जा के ज्ञान के बाद तब पारम्भ हुई जब पूजावादी शक्तियों के बढ़ते हुए प्रभाव के कारण आदिवासियों का शक्ति उमूल्य प्रारम्भ हुआ और उसका कारण उनकी आर्थिक कठिनाइयां बढ़ी। व्यापारियों ठेकेदारों सूदखोरा और मिशनरियों के हाथों उनका शोषण बढ़ा, उनकी राजनितिक स्वतंत्रता का छपहरण हुआ उनकी राजनितिक सस्थाओं का अवैधानिक करार द दिया गया और उनकी विधि तथा शासन प्रणाली छिन भिन हा गई। इस विघटन प्रक्रिया के कई परिणाम निकले— एक आदिवासी में नराम्यजनक सांस्कृतिक तथा राष्ट्रीय उन्मादीता की भावना का अभ्युदय, दूसरा अपनी समस्याओं के कारणों के न समझ पान के कारण आदिवासी में, दूसरों को उत्तरदायी ठहराने तथा दूसरों के प्रति प्रतिक्रियात्मक विद्रोही भावना का अभ्युदय तीसरा आदिवासियों में अराष्ट्रीयता की भावना का अभ्युदय, और चौथा आदिवासियों का असामाजिक कृत्यों का अपनाना और उनका सुयुक्तिवृत बताना।

आदिवासी अराष्ट्रीयता की सर्वाधिक अभिव्यक्ति नागा प्रदेश में हुई है जहा में स्वतंत्र नागा प्रदेश की मांग के लिए सशस्त्र विद्रोह के विवरण ज्ञान गंत है। आदिवासी किस प्रकार असामाजिक कृत्यों को अपनाने के लिए प्रेरित हुए हैं इसका पमाण भारत की अपराधी कहो जाने वाली गणजातिवादी हैं जिनके सदस्यों की सभ्या, अपराधी गणजाति अधिनियम के रह होने के पहले बाइस लाख, अबसठ हजार

यदि हम इ हैं नहीं सुधार सकते तो हमें आदिवासियों को उनके हाल पर छोड़ देना चाहिए। आदिवासियों की सम्पत्ता से दूर रखने की आवश्यकता क्योंकि, सभ्यता सम्पन्न आदिवासी के लिए अनिष्कारनी है। इसप्रकार, एल्विन का दृष्टिकोण पथकरणवादी ही नहीं बरन समाना भी है।

घोर तीन सौ अड़तालीस थी^१। गरीबी व वारण, गुजरात के कुछ भागों में, भील अपराधों की आरंभ प्रवृत्त हुए हैं। मजूमदार व अनुमार, जीविका के साधनों की कमी, निरंतर बढ़ती हुई दीनता और प्रशासन द्वारा भीला की आवश्यकताओं की श्रवण न भीला का डाकेजनी हत्या और लूट के लिए प्रेरित किया है। गरीबी और अपराध, भील जीवन में इतना समा गया है कि भील उस जीवन का एक आवश्यक अंग मानने हुए पौराणिक कथाओं के आधार पर उस सुपुत्रित्व को करत है। भीला में प्रचलित एक पौराणिक कथा के अनुसार पावती भील का या थी और भीलों ने जब भगवान शंकर से पूछा कि भगवान शंकर ने यह कहकर इन्कार कर दिया कि उन जस पकड़ा के पास धन क्या? तब भीला ने नारी (भगवान शंकर के बल) की हत्या कर दी क्योंकि उन्होंने सुन रक्या था कि उसका कथे में अपार रत्न गति थी। इस जघन पाप के लिए जमी कि कथा है भीला को गरीबी और आर्थिक यानना का जीवन बिताना पड़ रहा है। बासवाडा (राजस्थान) के पास पास प्रचलित एक ऐसी लोक कथा के अनुसार महादेव ने भीला को यह वरदान दिया कि उनका चारों का पाप नहीं लगेगा। वहाँ का भील अपने को महादेव शंकर का चार मानता है। यही कारण है कि भील एक आर, अपने महाजन को अपना सारा सामान कुच कर लने देगा किन्तु दूसरी आर वह उम लूट भी लगेगा क्योंकि भीलों का विश्वास है कि किसी का कर्जा न देना पाप है किन्तु उस लूटना पाप नहीं। तमाम अपराधों की जाने वाला गणजातिया, इसी प्रकार अपने अपराधों की सुपुत्रित्व कारण करती हैं और अमानाजित वृत्तों का अपनी सृष्टि का अंग मानती हैं।

हिंदू मुस्लिम और यारोपीय सभ्यता व सनातों को महने हुए जाज आदि वामी मस्वृति उस स्तर पर था गई है जहा वह हिंदू, इस्लाम और इगाम्यन सभिन है किन्तु भारतीय मस्वृति और राष्ट्र का एक महत्वपूर्ण अंग है। इन सनातों के फलस्वरूप उसमें अनेक आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विधियों का समावेश हो गया है जिसके कारण उनका विश्व खलन हो रहा है। कुछ आदिवासी समूह निराश्रित तथा धार्मिक दृष्टिकोण के निवारण हुए हैं कुछ (जम टाडा और वारवा) सम प्ल हो रहे हैं कुछ हिन्दू या यारोपीयकरण की आर बढ़ रहे हैं और कुछ पुनः पवन की ओर। यन्मान भारत में दो करोड़ आदिवासी एक महत्वपूर्ण अल्पसंख्यक इकाई हैं। स्वतंत्र भारत उनकी अवहमना नहीं कर सकती है। उनकी अवहमना राष्ट्रीय एकता और भारतीय समाज के सर्वांग विकास में बाधक हो सकती है। यदि समाज के सारे अंग एकसाथ नहीं विकसित होते हैं तो अविकसित अंग प्रगति के माग में बाधक होकर प्रगति पर उदा ही प्रभाव डालता है। अतः विवासा मुख आदि वामी कल्याण और आदिवासी मस्वृति का पुनर्संस्थापन आज के भारत की राजनतिक

तथा सामाजिक सांस्कृतिक आवश्यकता है ।

भ्रातृवासी-व्यापण और मस्जिद पुनर्स्थापन की स्वरूपाशा का विरूपण करन न पल एउ और तथे पर विचार करना आवश्यक है । सम्यता-मघात के प्रति आन्ध्रवासियों का प्रतिक्रिया सबत्र एक सी नहीं है । यह जिमके कारण आन्ध्रवासी मस्जिद विभगीकरण तथा परिवर्तन की भिन्न गतिमा आर दिगाए उत्पन्न हुई है । उदाहरणार्थ जोर और गाड जमी गणजातिया की जनमस्या बढी है जबकि कारवा और टाहा जमी गणजातिया न अपने वा सम्यता-सम्पक न अलग रखकर, अपने लिए विकास का माग अवच्छेद कर लिया है । जा गणजातिया सम्यता सम्पक स दूर गयी है उनकी अलग समस्यायें हैं । जा म वृषि जिस वे अधिकतर करती हैं, आज अनवर निदृष्ट हा रनी है यथाजि जगम वृषि के लिए आज उह उतता विस्तन यन प्रदण नहीं मिलता है चितना कि कभी मिलता था । जमीन की बढती हुई अनवरता और कटाव व कारण तथा सम्यता-सम्पक न दूर रहने की प्रवृत्ति के कारण एमी गणजातिया का विकास ही नहीं रहा ह वरन भुखमरी उनकी एक विरुद्ध समस्या बन गई है । नील और गाड जमी गणजातिया अपने को हिन्दूकृत करती हुई तथा स्थाई रूपि अपनाकर, प्राचीन सामाजिक आर्थिक व्यवस्था म आ गई है । आज उनकी वही समस्यायें हैं जो भारत क वृषका की है । जिन आन्ध्रवासियों का दायरीकरण हा रहा ह उनकी समस्या है एक नया गहरीकृत सामाजिक-सांस्कृतिक मनुष्य । जा श्रमिक वर्ग म आ गए हैं उनकी अलग समस्यायें हैं और, जा ग्राम गहरीक क बीच म हैं गाणणकारी तत्वा स मुक्ति पाना उनकी विशेष समस्या ह ।

सम्यता-मघात न आन्ध्रवासियों म, इसप्रकार विभिन्न परिवर्तन की गतिया और विगाशा का जन्म लिया है जिमके कारण गणजातिया म विभिन्न सांस्कृतिक स्तरा का समावेश हा गया है । विभिन्न समाधान सांस्कृतिक स्तरा क समावेश ने, अलग-अलग गणजातियों वीर क्षत्रा मे, अलग अलग समस्याओ का जन्म दिया है । इसीलिए इस बात पर जार दिया गया है कि आन्ध्रवासी व्यापण और मस्जिद पुनर्स्थापन की एक राष्ट्रीय नीति हो सकती है न कि एक कामकम । हा यह अवश्य है कि राष्ट्रीय नीति क आधार पर एक योजना का अपना लिया जाय और विभिन्न क्षेत्रा तथा गणजातियों की आवश्यकतानुसार, उसके आधार पर, अलग-अलग स्थानीय कायदमों को तैयार किया जाय । किन्तु इसक लिए गणजातियों क वर्गीकरण की आवश्यकता है । आन्ध्रवासी कल्याण की योजना क दृष्टिकोण म विद्वान न विभिन्न आधारों पर गणजातियों के वर्गीकरण प्रस्तुत किए हैं । सभी न मस्जिद-करण की प्रक्रिया का मुख्य आधार माना है किन्तु सांस्कृतिकरण के अलग-अलग दमों पर जार दिया है । उदाहरणार्थ मजूमदार ने गणजातियों में पाई जन्म दाली हिन्दूकरण की मात्रा पर जोर दिया है । उनका वर्गीकरण इस प्रकार है—

हिंदू प्रभाव के बाहर की गणजातिया (वास्तविक आदिवासी), दूसरी, वे गणजातिया जिन्होंने हिंदू प्रयाजा को तो अपना लिया है कि नु बहिष्कृत जातिया की श्रेणी में नहीं आई हैं और, तीसरी, वे गणजातिया जो हिंदूजत हा गई हैं, जिन्हें जाति का रूप भा मिल गया है किंतु जो उच्च जातियों में सामाजिक जतर मानती है। इस प्रकार, कुछ गणजातियों का हिंदूत्व में सात्मीकरण हो गया है जिन्हें सात्मीकृत (Assimilated) आदिवासी समूह कहा जा सकता है और कुछ समायाजन प्रक्रिया (Process of Adaptation) में हैं। समायाजन प्रक्रिया में जो गणजातिया है वे अपने को बदलती हुई परिस्थितियों के अनुकूल ढाल रही हैं। दूसरे प्रकार की गणजातिया का मजूमदार न तीन श्रेणिया में राखा है—पहली कम्यसल्टिक (Commensal) दूसरी सिम्बायोटिक (Symbiotic) और तीसरी एक्लचरेटिव (Acculturative)। कम्यसल्टिक गणजातिया का आर्थिक जीवन आत्मनिभर है। सिम्बायोटिक गणजातिया का आर्थिक सामाजिक जीवन अतनिभर हा गया है जैसे नीलगिरि की गणजातिया। एक्लचरेटिव गणजातिया सम्पक के कारण बाह्य सांस्कृतिक तत्वा का आत्मसात करते हुए अपना संस्कृतिवरण कर रही है। कम्यसल्टिक गणजातिया की संख्या वस्तुतः नहीं के बराबर है क्योंकि आज शायद ही कोई गणजाति हो, जो बाह्य संसार के सम्पक में आई हो।

सन 1952 की इण्डियन वार्फेस आफ सोशल स्क के द्वारा नियुक्त आदिवासी बल्याण-समिति (1952) ने गणजातियों का चार श्रेणिया में बाटा है पहली आदिवासी समुदाय दूसरी अर्द्ध आदिवासी समुदाय तीसरी वे आदिवासी समुदाय जिनका संस्कृतिकरण हा चुका है अर्थात् जि होने बाह्य संस्कृति के तत्वा का आत्मसात करते हुए, अपनी विविष्टता कायम रखी है और चौथी, सात्मीकृत (Assimilated) गणजातिया। एक दशक पहले, एल्विन ने सम्यता सम्पक के परिणामों के दृष्टिकोण से, एक वर्गीकरण प्रस्तुत किया था। उनके अनुसार चार श्रेणिया हैं पहली श्रेणी में वे आदिवासी आते हैं जो अत्यंत प्राचीन हैं, दुग्ध जंगल में रहते हैं जिनका सामाजिक-आर्थिक जीवन समष्टिवादी है और जो कुल्हाडिया खेती करते हैं। दूसरी श्रेणी में वे आदिवासी आते हैं जो पहली श्रेणी के आदिवासियों की भांति सम्यता से दूर हैं किन्तु जिनका सामाजिक आर्थिक संगठन अष्टिवादी है और पहली श्रेणी के आदिवासियों की अपेक्षा कम सरल है। तीसरी श्रेणी में वे आदिवासी आते हैं जिनकी संख्या सबसे अधिक है और जो, सम्यता सम्पक में आने के कारण अपनी संस्कृति से दूर जा रहे हैं। चौथी श्रेणी में वे आदिवासी हैं जो प्राचीन आदिवासी गामक-समूहों के प्रतिनिधि हैं (जैसे भील और नागा) जिनका प्राचीन आदिवासी जीवन अग्रणी है और जो संस्कृति सम्यता सम्पक में विजयी हुए हैं। एल्विन का यह मत है कि पहली और दूसरी श्रेणी के आदिवासियों को चौथी श्रेणिया में लाना ही मुख्य आदिवासी-समस्या है। एल्विन के मत में, चौथी श्रेणी ही वाछनीय है। किन्तु

चौथी श्रेणी में आकर हर दंगे में, आदिवासी संस्कृति सुरक्षित ही रहेगी यह मायता वैज्ञानिक कम रामाष्टिक अधिक् है क्योंकि चौथी श्रेणी में आकर न तो विकास ही रुक जायगा और न संस्कृति सम्पक् ही । आदिवासियों को राष्ट्रीय जीवन की प्रधान धारा से या सामाजिक आर्थिक शक्तियों के प्रभाव से अलग रखना न तो सम्भव ही है और न वांछनीय ही । आदिवासी संस्कृति की अक्षुण्ण बनाने रखने की मानवतावादी भावुकता के प्रवाह में बहकर इस बात का पक्ष नहीं लिया जा सकता कि आदिवासियों का सम्बन्ध के तमों में दूर रखा जाय । एल्विन के मत से यह ध्वनि हाती है कि मानव आदिवासी संस्कृति को बस रखना चाहते हो जस कि वे मानव अज्ञाथ धर (Human Zoo) की वस्तुएं हो । एल्विन का मत पथकरणवादी है और, एक प्रकार से रामाष्टिक है । जो भारतीय राष्ट्रीयता के प्रतिकूल पड़ता है^१ ।

गणजातियों के आर्थिक आधारों और उनमें हुए परिवर्तनों के आधार पर उन्हें चार श्रेणियों में रखा जा सकता है—एक, वे जो जंगलों में रहती हैं जंगल पर निर्भर हैं और कदमूल पर जीवन बसर करती हैं, दो वे (कमार वगैरे और रडडी वगैरे) जो कदमूल पर भी निर्भर हैं और साधारण किस्म की वृषि पर भी, तीन वे जो मुख्यतः वृषि पर निर्भर होने के साथ साथ, जंगलों की उपज पर भी निर्भर करती हैं (जैसे उत्तरी पूर्वी तथा मध्यभारत की गणजातियाँ) और आदिवासी जनसंख्या का सबसे बड़ा भाग है चार, वे आदिवासी जो औद्योगिक श्रमिक की श्रेणी में आ गए हैं । इस वर्गीकरण से यह स्पष्ट होता है कि आर्थिक दृष्टिकोण से आदिवासी जनसंख्या का अधिकतम भाग वृषि और जंगल की उपज पर निर्भर है और किसी भी कल्याण योजना में इस तथ्य की अवहलना नहीं की जा सकती है । यह पहले ही कहा जा चुका है कि सम्बन्ध के प्रभाव से गणजातियाँ ग्राम गहर सतति (I rural Urban Continuum) के विभिन्न स्तरों में आ गई हैं और इस दृष्टिकोण से मजूमदार और मदन ने गणजातियों का तीन श्रेणियों में बाँटा है—पहला वे गणजातियाँ जिनका संस्कृति ग्रामीण शहरी समूहों से दूर है अर्थात् जो सम्पक् से बाहर हैं, दूसरी, वे जो ग्रामीण और शहरी समूहों के सम्पक् में आकर सामाजिक और आर्थिक समस्याओं का शिकार हो गई हैं, तीसरी, वे जो ग्राम गहर के सम्पक् में आई हैं किन्तु उन्होंने ऐसा सांस्कृतिक समायाजन कर लिया है जिसके कारण वे सामाजिक आर्थिक समस्याओं का शिकार हान से बच गई हैं यद्यपि हो सकता है कि पहले वे सामाजिक-आर्थिक समस्याओं का शिकार रही हो । समाज-कल्याण की आवश्यकता पहली और दूसरी श्रेणियों की गणजातियों को है । आदिवासी-कल्याण, विकास और सांस्कृतिक पुनर्स्थापन इस दंगे से है कि आदिवासी ग्राम-शहर की सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था में आ जाय ताकि, ज्यों ज्यों इस व्यवस्था का विकास हो, आदि

वासियो का भी विकास हो ।

आदिवासी कल्याण और मस्वृति पुनसंस्थापन की योजना एसी है कि उनसे आदिवासियों की मस्वृति और उनके दिलों की रक्षा भी हो और उसे अपने ही आधार पर विकसित होने का अवसर भी मिले । आदिवासियों का भारत की सामाजिक आर्थिक धाराओं से अलग रहना न सम्भव ही है और न ऐसा करना वाछनीय ही है । उनका सहमा न तो हिन्दुत्व में आत्मसात किया जा सकता है और न इस्लाम या इसाईमत में । आदिवासियों का उस राजनैतिक, आर्थिक और सामूहिक मरक्षण की आवश्यकता है जिसके तत्त्व और साधन व अपना विकास करते हुए, राष्ट्रीय जीवन का अंग बन सकें । उनका राष्ट्रीय मातृकीकरण वाछनीय है न कि सामाजिक या सांस्कृतिक । उह विकास के माग पर लात हुए वहाँ आना है जहाँ उह भारत के मस्वृति मघात में एक निश्चित स्थान मिले । आदिवासियों का उत्तरांतर मस्वृति करण आदिवासी कल्याण योजना का आगम होना चाहिए । इस योजना के तीन पहलू हैं—एक निष्पत्तात्मक (Positive), दूसरा निषेधात्मक (Negative) और तीसरा विरोधात्मक (Preventive) । आदिवासियों में शिक्षा का प्रसार, आदिवासी श्रेणियों द्वारा आदिवासी क्षेत्रों के प्राकृतिक साधनों का उत्तरांतर उपयोग और उनसे आदिवासियों की आर्थिक दशा सुधारने का प्रयास आदिवासियों में नई चेतना का प्रसार, आदिवासियों का सामाजिक कल्याण और मातृत्व तथा शिशुकल्याण निश्चयात्मक पहलू में आते हैं । आदिवासी मस्वृति को विभू खलित करने वाली शक्तियों को रोकना और आदिवासियों का दायण करने वाले प्रतिकारकों (माफारी, सूदखोर धल अफमर और दुमाई मिगनरी) का निवारण निषेधात्मक पक्ष में आते हैं और आदिवासियों में पाइ जान वाली सत्रामक बीमारियों की रोक धाम निरोधात्मक पहलू में ।

आदिवासियों का समस्याओं का दो श्रेणियों में रकला जा सकता है पहली श्रेणी में वे समस्यायें आती हैं जो आदिवासी और जय पिछड़े वर्गों की समान समस्यायें हैं और दूसरी वग में वे समस्यायें आती हैं जो आदिवासी की अपनी समस्यायें हैं । गरीबी, अनिष्ठा, सांस्कृतिक उदासीनता, परम्परागत आदिवासी गामन प्रणाली तथा सरकारी गामन प्रणाली में समवय बीमारी और स्वास्थ्य गाराव और मिगनरी की समस्यायें आदिवासी की अपना विनिष्ट समस्यायें हैं । उनकी आर्थिक रक्षाओं का दूर करने लिए यह मिफारित की गई है कि व्यापारियों टकदारों और सूखारा के शाण से उह मुक्त किया जाए जगम वृषि के लिए, जहाँ तक हा सके, उह अवसर दते हुए, उह स्थायी वृषि की आर ले जाया जाय और उनमें उद्योग धंधा का विकास किया जाय, जहाँ तक हो सके जगल की उपज को उनके अधिकार में दिया जाय ताकि वे उनसे आर्थिक लाभ उठा सकें, उनमें शिक्षा का प्रसार किया जाय उनके स्वास्थ्य की आर विनोप ध्यान दिया जाय और सत्रामक बीमारियों की रोक धाम के लिए अधिक से अधिक सरकारी प्रबध किया जाय, आदिवासी क्षेत्रों का,

अप्रत्यक्ष प्रशासन प्रणाली के सिद्धांतों के आधार पर प्रशासन किया जाय और उमने लिए परम्परागत पचासत प्रणाली का प्रयोग किया जाय और मायिक तथा राजनीतिक प्रशासन में आदिवासी साम्प्रतिक प्रथाओं की अवहलना न की जाय। मन्मथर आदिवासी क्षत्रा में पुत्रीस संगठन की पक्ष में नहीं हैं। उनके मत में आदिवासी अपसर का ही प्रशासन में लगाया जाय। बहुत में लागू का यह मत है कि आदिवासी को अपने उपयोग के लिए शराब बनाने की अनुमति दे दी जाय क्योंकि इससे उनका स्वास्थ्यवर्द्धक पद मिलगा आजकल कच्ची शराब बनाने का अपराध है त है व मिट जायगी और शराबखारी में कमी जायगी। किन्तु इस मत का पक्ष लेने वाले यह मन्मथर जान है कि आज आदिवासी क्षत्रा में आदिवासी ही नहीं अन्य लोग भी पाये जाते हैं जो शराब आदिवासी ही नहीं शर-आदिवासी भी पीते हैं। एसी दशा में, शराब खीचन की अनुमति, छोटे पैमाने पर शराब बनान और बेचन के व्यापार को जम दे सकती है। जौनसार में ऐसा हो रहा है। यहा जगला में काम करन वाले श्रमिकों व्यापारियों और शय प्रकार के लोग क आने में शराब की माग बढ़ी है। शराब बनाने की परम्परागत तरीके में समय भी लगता है और पसा भी। अत, यहा हर आदिवासी नोसादर और चूने से शराब बनाने लगा है जिसका प्रयाग स्वास्थ्य को नष्ट कर रहा है।

मानवशास्त्रियों की यह मायता है कि आदिवासी की शिक्षा स्वास्थ्य, अनतिक्रम और शराबखोरी सम्बन्धी समस्याओं का दूर करने के लिए शिक्षाप्रद सामाजिक प्रचार का आवश्यकता है—यह प्रचार जिसका उद्देश्य नय जीवन के लिए शिक्षाप्रद सामाजिक चेतना लाना है। इस काय के लिए समाजसेवकों की आवश्यकता है। आदिवासी क्षत्रा में आज कई प्रकार के समाजसेवा मिलते हैं। एक ओर, वे प्रशिक्षित समाजसेवी हैं जो सरकारी समाजकल्याण विभागों की ओर से अधिकारियों के रूप में नियुक्त हैं। दूसरी ओर, इसाई समाजसेवी हैं जिनके लिए समाज-सेवा इसाइयत के प्रचार का एक मायम है। तीसरी ओर राजनयिक समाजसेवी हैं और, चौथी ओर आदिवासी सेवक सघ जसो प्राइवेट मस्याओं के समाजसेवा हैं, जिनमें से कुछ राजनीति के हारे हुए खिलाड़ी हैं और कुछ परिस्थितिवश पसेवर समाज सेवक बन गए हैं। इधर, आदिवासीयों में बढ़ते हुए इसाइयत के प्रसार की प्रतिक्रिया में हिंदू संगठनों में भी आदिवासीयों में समाजसेवा काय संगठित करना प्रारम्भ कर दिया है। इस धनापेल में, आदिवासी समाज सेवा काय में व्यवधान ही अधिक आता है। समाज-सेवियों की इस सेवा के प्रति आदिवासी गजालु हा उठता है—विशेषतया उम दशा में जब आदिवासी यह देखता है कि यह सारा मेला तो उसके नाम पर है किन्तु लाभ दूसरों को हा रहा है। आज हम यह भूल रहे हैं कि जहा समाज सेवा के लिए फंड सरकार से आए और उसका सब गैर सरकारी संस्थाओं के द्वारा हा गया, समाज सेवा में, राजनीति और निहित स्वार्थों का प्रवेश

अव्ययभावी है। आदिवासी क्षत्रा में किए जाने वाले समाज सेवा कार्य का प्राइवेट संस्थाओं के कर्णधारों के निहित स्वार्थों के जगल से निकालना और उम प्रशिक्षित समाज सेवियों के हाथ में देना आदिवासी समाज सेवा-कार्य की आज प्राथमिक आवश्यकता भी है और समस्या भी।

आदिवासी संस्कृति की राष्ट्रीय महत्ता के प्रति भारत बहुत पहले ही सजग हो चुका था और स्वतंत्रता के पहले ही से समाज सेवा के कार्यक्रमों द्वारा (जिनका सूत्रपात गांधी जी की प्रेरणा से ठेकर बापा के द्वारा हुआ था) उच्च राष्ट्रीय प्रवाह में लाने का प्रयास किया गया है। प्रारम्भ से ही भारत में व्यवस्थापक और सांस्कृतिक नीतियों को तरजीह नहीं दी गई है यद्यपि उनके प्रतिष्ठापक सरकार में भी रहे हैं और बाहर भी। एल्विन सरकार के मलाहकार रहें हैं और उन्होंने आदिवासी लोगों को नगण्य पाकों के रूप में विकसित करने का पक्ष लिया था जिसे स्वीकार नहीं किया गया है। संविधान में जिस नीति की आधारशिला रखी गई है उसमें एक अंग, निश्चयात्मक (Positive) निषेधात्मक (Prohibitive) और निराशात्मक (Preventive) कार्यक्रमों का उल्लेख है और दूसरी ओर, यह स्वीकार किया गया है कि भारतीय नागरिकों के रूप में आदिवासियों को अपने विकास का और अपनी संस्कृति की सुरक्षित रखने का पूरा अधिकार है और उसके लिए अवसर प्रदान करना राज्य का कर्तव्य है। आदिवासियों के वही मौलिक अधिकार हैं जो अन्य भारतीयों के हैं। उन्हें अपनी संस्कृति, प्रथाओं और अपने विश्वास बनाये रखने का पूरा अधिकार है यद्यपि कि वह राष्ट्रीय जीवन के आदर्शों के विरोध में न आते हों। संविधान में बगल और अस्पष्टता को गंवावनी करार दे दिया गया है। राज्या विशेषतः राज्यपालों, को आदिवासियों का शासन रोकने और आदिवासियों के अधिकारों की रक्षा करने का विशेष अधिकार है। संविधान की पाचवी और छठी अनुसूचियों के द्वारा आदिवासी का अप्रत्यक्ष प्रशासन के लाभों को देने का भी प्रयास किया गया है।

अंग्रेजों के समय से चली आ रही एक समस्या आज भी उतनी ही विवादपूर्ण है और वह यह है कि भारत राष्ट्र में आदिवासी संस्कृति का क्या स्थान है? अंग्रेजों ने आदिवासियों को सचेतनावादी कहकर, उन्हें हिंदुओं से अलग माना और उन्हें अलग रखने की काशिश भी की यद्यपि, आदिवासियों में, विद्वानों इसाई मिशनरियों का इसाईयत का प्रचार करने दिया। इस प्रतिनिधियों का परिणाम यह हुआ कि घुंटे जन्म समाजशास्त्रियों ने आदिवासियों का विच्छेद कर हिंदू बहकर, उन्हें हिंदुत्व में पूर्णरूपण आत्मसात कर लेने का मत की पुष्टि की। हिंदू राष्ट्रवादिता पर आधारित जनमत भी इसी पक्ष में रहता है। किंतु, आज, न तो पथकरण ही सम्भव है और न आदिवासियों का हिंदुत्व में पूर्ण आत्मिकरण ही। संविधान में आदिवासी संस्कृति को स्वतंत्र विकास का अवसर प्रदान कर देने के बाद भी समस्या

का समाधान नहीं हुआ है क्योंकि, संविधान के बावजूद भी, आदिवासी को अपनी सृष्टि व स्वतंत्र विकास का अवसर नहीं मिला रहा है। विदेशी इसाई मिशनरी उसे इसाइयत की ओर खींच रहा है और आपसमाज तथा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ जैसे संगठन हिंदुत्व की धार। सृष्टि सचय की समस्या वहीं उठ खड़ी होती है जहाँ आदिवासियों का किसी संगठित धर्म की ओर लाने का संगठित प्रयास किया जाता है।

आदिवासियों ने जहाँ हिन्दूकरण को स्वयं अपनाया है वहाँ, जैसा कि सृष्टिकरण की प्रक्रिया का नियम है, उहाँ ही हिंदुत्व और आदिवासीत्व का मिलाकर एक नई सामूहिक आकल्पना को जन्म दिया है जो हिंदू भी है और आदिवासी भी। बंगाल के राजवंशी एक ओर, हिंदुत्व में प्रवेश करके जाति कस्त्र पर आ गये हैं और दूसरी ओर, अपने परम्परागत सामाजिक संगठन को भी अपनाया है। सभी राजवंशी एक ही गोत्र (कश्यप) के हैं और समगोत्र विवाह करते हैं जो हिंदुत्व में मान्य नहीं है मगर हिंदू इसका विरोध नहीं करते हैं। दक्षिण की लम्बाड़ी गणजाति कई सम्प्रदायों में बंट गई है और प्रत्येक सम्प्रदाय के लोगो ने गोत्रों को अपना लिया है। लम्बाड़ियों में प्रत्येक सम्प्रदाय एक जाति बन गया है। वे विवाह-संस्कार ब्राह्मण द्वारा करवाते हैं। पहले वे मामा या पिता की बहिन के लड़के-लड़की से विवाह नहीं करते थे किन्तु अब करने लगे हैं क्योंकि दक्षिण के हिंदुओं में यह प्रथा पाई जाती है। गाँवों, भौलों और छोटा नागपुर के आस-पास की गणजातियों ने भी ठेस ही अनेक प्रथाओं को अपना लिया है।

भारत में आदिवासी सृष्टि तभी सुरक्षित रह सकती है और भारतीय सृष्टि में अपना एक विनिष्ट स्थान बना सकती है जब उस पर सृष्टिकरण लादा न जाय। जब विदेशी मिशनरी आदिवासी को प्रलोभन देकर इसाई बनाते हैं तो, वस्तुतः, वे उसकी सामूहिक-स्वतंत्रता का अपहरण करते हैं। जब इसाई मिशनरियाँ की देखा देखी हिंदू आदिवासी को हिंदू बनाते हैं तो वे भी उसकी सामूहिक-स्वतंत्रता पर बुठाराधान करते हैं। आदिवासी को इसाई या हिंदू बनाने की होड़ में, आदिवासी-सृष्टि की समायाजन-समस्या वस्तुतः, राजनीतिक रूप ले लेती है। राष्ट्रीय एकता के हित में आवश्यकता इस बात की है कि आदिवासी को उसके ऊपर छाड़ दिया जाय ताकि वह हिन्दुत्व, इसाइयत, इस्लाम और आदिवासीत्व को मिलाकर, सृष्टिकरण की प्रक्रिया के द्वारा अपने लिये आवश्यकानुसार एक नया सृष्टि-कलाप का निर्माण कर सकें। किन्तु, यदि आदिवासी के बीच में विदेशी मिशनरी रहेगा तो हिंदू मिशनरी या राजनीतिज्ञ को रोका नहीं जा सकता। आदिवासी सृष्टि का मिशनरी से बचाने की आवश्यकता है चाहे वह हिंदू ही या इसाई या मुसलमान। किन्तु, यह तभी सम्भव है जब आदिवासी इसाइयत के चर्चों का आदिवासीकरण और भारतीयकरण हो जाय और चर्च संगठन का उद्देश्य अपने

अनुयाइयो की आध्यात्मिक उन्नति हो न कि इसाइयत का प्रचार करना या इसाई बने हुए सागो का योरापीय बनाना । आदिवासियों में धर्म प्रचार की हाठ, अल्प-मध्यक और बहुसंख्यक के सधय का रूप लेकर, साम्प्रदायिता में बदल सकती है जिसकी प्रतिक्रिया आदिवासी सस्त्रति के विमृखलन का भी कारण बन सकती है और विद्रोह का भी आर जो हर दशा में राष्ट्र की भावनात्मक एफता के प्रतिकूल पडती है । धर्मनिरपक्ष राय में धर्म प्रचार की होड, साम्प्रदायिकता का ही जन्म दे सकती है ।



I I

t..... 3166

